Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जुलाई, २०१० ■ बीस रुपये

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

हर माह एक दिन आपके स्वास्थ्य के नाम

ग्राम स्वास्थ्य एवं पोषण दिवस

(मंगलवार अथवा शुक्रवार)

हर गांव में, एक दिन लाता है सेहत से जुड़ी सभी मुश्किलों का हल।
निश्चित दिन और समय तय कर, निश्चित स्थान पर
गांव के स्वास्थ्य से जुड़े सभी मैदानी कार्यकर्त्ता होते हैं।

● प्रसवपूर्व और प्रसव के बाद की जांच

● बच्चों की जांच, टीकाकरण और वज़न

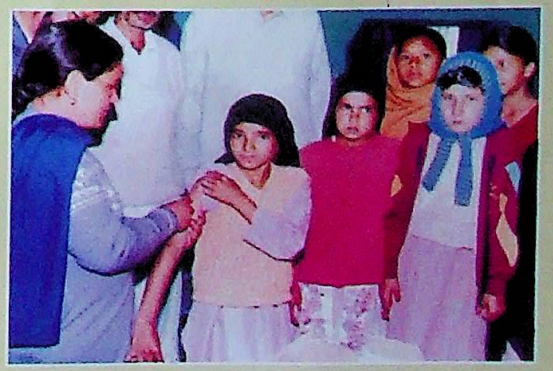

● किशोरियों के स्वास्थ्य का परीक्षण

● टीबी और मलेरिया की दवा का वितरण ● स्वास्थ्य से जुड़ी ज़रूरी सलाह दी जाती है।

स्वस्थ ग्राम समिति और गांव के लोगों की खास भूमिका होती है।

सबकी सेहत का ख्याल, सब हों खुशहाल

मध्यप्रदेश माध्यम/10

लोक स्वास्थ्य एवं
परिवार कल्याण विभाग, मध्यप्रदेश

NATIONAL RURAL HEALTH MISSION

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

सम्पादक

नारायण राय

सिंह

क

बिसारिया ❑ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

कीय सहयोग : प्रदीप सक्सेना

क : राजीव श्रीवास्तव

वेद शर्मा, बीकानेर

: बिसारत अली

त्र : दिलीप कुमार शर्मा 'अज्ञात'

: सूरजनंदा

हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

वर्ष 26 ❑ जुलाई, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय

28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001

टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com

Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; ❑ वार्षिक : 230/-; ❑ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 250/- ❑ आजीवन : 2000/- ❑ विदेशों में साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। चैक से भुगतान करने पर तीस रुपये अतिरिक्त जोड़कर भेजें।)

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

Gurukul Kangri (A.) Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

इस अंक में

131840

/2

त/5

यंती के अवसर पर विशेष

साहित्य में भावी भारत की तस्वीर'/कुँवरपाल सिंह/7

का साहित्य : संस्कृति और भाषा'/रामकली सराफ/13

समाज का साहित्य'/देवी प्रसाद मौर्य/17

विता

वशिष्ठ अनूप/13

/ दिनकर कुमार/22

ताएँ/त्रेपन सिंह चौहान/23

दस कविताएँ/अर्पण कुमार/25

हीर कुरेशी/26

/सच्चिदानंद विशाख/60

/शोभनाथ यादव/62

/व्ही0 व्ही0 रमण किरण/64

हेश चंद्र जोशी/27

ता/राजेश झरपुरे/30

कुलजीत सिंह/33

ल तुम सबला हो/ डॉ. निहारिका/38

महावीर रवांल्टा/43

ा ज़िंदगी/जाफ़र मेहदी ज़ाफरी/57

कहानी बारहमासा/डॉ0 नसीम फात्मा/48

भारतीय चिंतन में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा/ डॉ. ऋतु वार्ष्णेय/50

पास-पड़ोस-उड़िया कहानी

'लौटकर न आने वाली नदी की कसक'/कमला सत्पथी/52

पुस्तक चर्चा

अन्याय की न्याय संगत प्रमाणिकता का उपन्यास/ तरसेम गुजराल/65

पुस्तक समीक्षा

समय सत्य रचती कविताएँ/वेदप्रकाश अमिताभ/68

मिलजुल मन : सधी कलम की कृति/अधीर कुमार/69

लहर-दर-लहर कहानियों का उपन्यास/नग़मा जावेद मलिक/70

व्यंग्य की स्मित रेखाएँ/शशि मिश्रा/72

त्रिलोचन को समझने की सार्थक कोशिश

सांस्कृतिक समाचार/75

आखिरी पन्ना

अमरीका का बिखरता सपना/गिरीश मि

लघुकथा

मंत्री के पेन/राजीव कुमार त्रिगर्ती/32

पैंतरा-1, पैंतरा-2, सराहनीय बजट/संजय जनागल/37

अपने/शैलजा श्यामा/51

भाई/पंकज शर्मा/56

जनता/रत्नेश कुमार/59

131840

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वर्तमान साहित्य' का जून-2010 का अंक मिला। सब कुछ पढ़ा। कई रचनाओं ने प्रभावित किया। फिर भी कुछ के बारे में अलग से।

'अपनी बात' में विचार की एक अलग-सी और धारदार उपस्थिति एवं सुनिश्चित दृष्टि ने इस अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण बनाया है। कविताएँ सभी अच्छी हैं। शहरयार साहब, डॉ0 रामदरश मिश्र, डा0 संजीव कौशल एवं निशांत की कविताओं को पढ़ना कई अच्छे से अहसासों के करीब से गुजर गया। कुछ कहानियाँ और नीलम कुलश्रेष्ठ की समीक्षा भी अपने गांभीर्य के चलते पठनीय लगीं। ऋचा पाठक की कहानी पठनीय है। अपने कथ्य को अधिकार एवं विश्वास के साथ पाठक तक पहुँचा भी रही है। पर इसमें अनजाने हुई एक चूक खटक रही है। आपके माध्यम से उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट करूँ ताकि आगे अन्यत्र प्रकाशित होते समय इस चूक को ठीक किया जा सके। कहानी में पृ0 45 पर उद्धृत काव्य-पंक्तियाँ—'पढ़िए गीता, बनिए सीता...., फ़िराक साहब की नहीं-रघुवीर सहाय की हैं।

प्रेमकुमार, अलीगढ़

श्री डी0सी0 धर्मा के माध्यम से 'वर्तमान साहित्य' मई अंक पढ़ने को मिला। ऐसे धैर्य और साहस के साथ आप बन्धुवर कुँवरपाल सिंह जी का अभाव झेलते हुए प्रभावी संपादन कर रही हैं। यह गौरवपूर्ण समर्पण भावों का परिचायक है। डा0 विजय बहादुर सिंह एवं वीरेन्द्र जैन के संस्मरण, एहसान हसन, प्रदीप सक्सेना एवं अहमद फराज के आलेख दस्तावेजी हैं। कवितायें, कहानियाँ, पुस्तक समीक्षा सभी स्तरीय एवं बुद्धिपरक हैं।

लगन एवं निष्ठापूर्ण संपादन हेतु बधाई।

मदन मोहन उपेन्द्र, मथुरा

'वर्तमान साहित्य' मई, 2010। इस अंक में कई चीजें विशिष्ट हैं। सबसे पहले 'अपनी बात' के अंतर्गत महिला आरक्षण के मुद्दे को जिस ढंग से उठाया गया है उससे विश्वास दृढ़ होता है कि इसके विषय में कई जानकारियाँ उन लोगों के सामने आ जाएँगी जो महिला आरक्षण के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। उनके लिए भी आँखें खोलने वाली बातें यहाँ पर हैं जो अपने परिवार की महिलाओं को पंचायतों में चुन लिए जाने पर उनके स्थान पर स्वयं बैठकों में प्रतिभाग करके इतराते रहते हैं। कितनी बड़ी विडंबना है कि किसी भी राजनीतिक दल ने न प्रादेशिक और न राष्ट्रीय संगठनों में महिलाओं को तैंतीस प्रतिशत पद दिए हैं और न ही किसी चुनाव में इतने ही टिकट दिए। मुझे लगता है कि महिलाओं को पुरुषों की दया के चंगुल में से निकलने के लिए स्वयं ही संघर्ष करना होगा। वीरेन्द्र जैन ने कर्मवाची शी का स्मरण करते हुए संक्षिप्तता से काम लिया है। शील व विडंबनाओं ने जीवन भर घेरे रखा। उन पर चर्चा और उनके लि का मूल्यांकन करने में उपेक्षा के मुकाबले कोताही बरत व विद्वानों को पता नहीं क्या मिल गया। कहानियों में 'ज़िंदगी घर जाना' और 'लौट पीछे की तरफ ऐ गर्दिशे अय्याम तू' अच लगीं। 'मुक्तिबोध की तीन कहानियाँ' पुनर्दृष्टि के माध्यम अधिक स्पष्ट होकर सामने आती हैं। मुक्तिबोध के कहानीक पर शोध की आवश्यकता है। कैफ़ी आज़मी और कबीर पर ले नए संदर्भ खोजने का प्रयास है। 1857 को याद करते हुए डा प्रदीप सक्सेना ने जो बात उठाई है वह महत्त्वपूर्ण है। भारती इतिहास की इस विश्वस्तरीय घटना के महत्त्व को समझने औ आगे आने वाली पीढ़ी के लिए संबंधित दस्तावेजों का अध्यय अनिवार्य है। प्रदीप सक्सेना ने 1857 को लेकर प्रेरणादायक का किया है। इसके लिए इनको याद किया जायेगा। आखिरी पन्न में गिरीश मिश्र का भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्लेषण महत्वपू है। संक्षेप में भी काफी कुछ कह दिया गया है।

हरपाल सिंह 'अरुष

'वर्तमान साहित्य' का मई अंक। देवांशु पाल द्वारा रचित 'ज़िंदग मेरे घर जाना' ग़ौर से पढ़ी। यह नारी अस्मिता की कहानी है प्रस्तुत कहानी समाज शास्त्रीय है। इसके द्वारा लेखक ने आज क सबसे ज्वलंत समस्या उठाई है।

साकेत पांडेय, प्रेमधन मार्ग, मीरजापु

'वर्तमान साहित्य' का मई अंक पढ़ा। कहानियाँ मर्मस्पर्शी ए दिल को छू गईं। देवाँशु पाल और चन्द्र रेखा ढडवाल ने अपन कहानी के माध्यम से बहुत कुछ कह दिया। रैगिंग से बच्चे क मानसिक स्थिति एवं अंत में एक पिता की मार्मिक स्थिति व बखूबी चित्रण हुआ है। अंत में बच्चे का बड़ा हो जाना जो क तक पिता से बात करने से कतराता था आज माँ के नहीं रहने अचानक बड़ा हो जाता है एवं पिता को मानसिक रूप से सहार देता है। देवाँशु पाल की कहानी भी अच्छी लगी। नग़मा जावेद की कहानी पढ़कर मुझे वो हर परिवार याद आया, जो अपनी ज़िंदगी की आधी उम्र तो परिवार एवं बच्चों की शिक्षा और परवरिश मे गुज़ार देता है। अब शहर की सुविधा भोगी महिलाएँ गाँव जाने से कतराती हैं। पति के लिए माँ की जितनी अहमियत होती है उतनी ही पत्नी की। एजाज़ साहब तो फिर भी खुशकिस्मत हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बेटी ऐसी है जिसको दादी से लगाव है। विजय बहादुर सिंह का संस्मरण सारगर्भित लगा।

संपादकीय में नमिता जी ने जो बात कही है बिलकुल सही है। इस संपादकीय के लिए साधुवाद।

माधुरी मिश्रा, जमशेदपुर

मई, 2010 अंक का संपादकीय बड़ा सटीक लगा। संकीर्ण सोच और पुरुष समाज का पाखंड ही महिला आरक्षण बिल के पास होने में बड़ी बाधा है। सुनीता जैन की कविताएँ सहज शिल्प के कारण 'कहानी' को असरदार बना देती हैं। 1857 के स्वाधीनता संग्राम पर प्रदीप सक्सेना का लेख खोज भरा है और नई जानकारियाँ देता है। 'टैक्नीकल हैण्ड' लघुकथा भी प्रभावित करती है।

अशोक भाटिया, करनाल

संपादकीय वर्तमान समाज व्यवस्था पर प्रहार करता है। बाजारवाद, उपभोक्तावाद तथा वैश्वीकरण समाज व्यवस्था की अनेक समस्याओं को जन्म देती हैं जिस अवस्था में स्त्री स्वयं को उससे बाहर नहीं निकाल पाती और आधुनिकता की चमक में खुद का अस्तित्व खोती नज़र आती है। रवीन्द्र कुमार पाठक के लेख 'भक्तिकालीन मूल्य व्यवस्था और नारी की घुटन' में युगों-युगों से चली आ रही नारी के दर्द की छटपटाहट को महसूस किया जा सकता है, जो सदियों से पीड़ा का दंश झेलती आ रही हैं। भक्तिकाल की मीरा साहसी थी, जो समाज की प्रताड़ना को सहती चली गई और हार नहीं मानी।

रजनी गुप्त का लेख नयी स्त्री को आइना दिखाता है, जहाँ स्त्री स्वयं की छवि को आधुनिकता की आज़ादी में देखना पसंद करती है, क्योंकि हर स्त्री समाज की प्रताड़ना व अराजकता को बर्दाश्त नहीं कर पाती। मेजर रतन जागिड़ का दृष्टिकोण युवा वर्ग के प्रेम की धज्जियाँ उडाता है। हेमा नायक की कहानी 'दुर्गावतार' अत्यंत साहसिक है, जो स्त्री को किसी भी परिस्थिति में हार न मानने की प्रेरणा देती है। के0एम0 मालती के लेख में मलयालम महिला उपन्यासकारों की सक्रियता को दर्शाया है।

उषा यादव की कविता अच्छी लगी। अनुपमा की लघुकथा सपना और यथार्थ परिस्थिति की मापक है जहाँ दोनों के बीच जमीन आसमान का अंतर है।

बीना सिंह, कानपुर नगर

सर के देहावसान के बाद शब्द साथ नहीं दे रहे थे। वे मेरे पिता जैसे थे। मुझ जैसे किसी अज्ञात कुलशील गोत्र को उन्होंने न जाने किस गुण पर अपना बना लिया था। उन्होंने बग़ैर कहे मेरी चिंता हमेशा की। उनके ऋण से उऋण होना मेरे वश की बात नहीं है। अब आप का स्नेह हम सब लोगों का संबल है।

'वर्तमान साहित्य' को उन्होंने पुनर्जीवन दिया था। एक स्मृति के रूप में अब वर्तमान साहित्य का निकलना हमारा मिशन भी है।

दिनेश कुशवाह, रीवा

'वर्तमान साहित्य' में अच्छे सृजनात्मक साहित्य के आस्वादन के साथ देश और समाज के ज्वलंत विषयों पर आलेख विचारोत्तेजना देते हैं। 'अपनी बात' अर्थात् आपका संपादकीय पढ़ता हूँ जो इस बार महिला आरक्षण पर है। महिलाओं के सशक्तीकरण की आवश्यकता है सिर्फ़ आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि राजनैतिक दृष्टि से भी ।इसके लिए विधान सभाओं और लोक सभा में उन्हें तैंतीस प्रतिशत सीटें आरक्षित करने की जद्दो-जहद चल रही है। लेकिन देखने में आ रहा है कि जो दल उनके लिए आरक्षण चाहते हैं और जो दल नहीं चाहते हैं उनमें से किसी के पास कुल कार्यकर्त्ताओं की तैंतीस प्रतिशत महिला कार्यकर्त्ता नहीं हैं। जब इस सख्या में महिलाएँ राजनैतिक आरक्षण क्यों चाहिए इस प्रश्न का भी जवाब आना चाहिए। दूसरी बात यह है कि महिलाओं का सशक्तीकरण क्या लोकसभा और विधान सभाओं में सीटें आरक्षित करके ही हो सकता है ? राज्य सभा और विधान परिषदों की तैंतीस प्रतिशत या आधी या पूरी सीटें उन्हें देकर क्यों नहीं सबल किया जा सकता है ? इससे तो क़ानून बनवाने, लागू करवाने और बहसें उठाने में उनकी भूमिका और कारगर होगी। लोकसभा और विधान सभाओं में महिलाएँ अब तक जैसे चुनाव लड़ती रही हैं, लड़ती रहें। आशा है आप या कोई और विद्वान इस संबंध में कठिनाइयाँ या इसका औचित्य/अनौचित्य बतायेगा।

देश-देशांतर में इस बार नीदरलैंड के कवि राजमोहन की कविताएँ हैं जिनका अनुवाद प्रो0 पुष्पिता अवस्थी ने किया है। लेकिन कहीं भी यह ज़िक्र नहीं है कि ये कविताएँ किस भाषा की हैं। भोजपुरी की ? अंग्रेज़ी की ? डच की? दूसरी बात यह है कि हैरत होती है कि ऐसी भी कविताओं का अनुवाद होता है।

केशव शरण, वाराणसी

'वर्तमान साहित्य' का पाठक पिछले चार वर्षों से हूँ। पत्रिका मेरी वैचारिकी के निर्माण में सहायक तो है ही साथ ही मेरी रुचि के अनुकूल सामग्री वर्तमान साहित्य में उपलब्ध हो जाती है। एक कमी मुझे इसके कविता पक्षों में लगती है-कविताओं का चयन और थोड़ा मज़बूत हो जाए तो वर्तमान साहित्य का दूसरा विकल्प नहीं रहेगा।

अरुणाम सौरभ, बिहार

यह सचमुच हम सबके लिए गर्व और प्रसन्नता की बात है कि आप आदरणीय कुँवरपाल सिंह जी के जाने के बावजूद 'वर्तमान साहित्य' नियमित जारी कर रही हैं। यही उनको सच्ची श्रद्धांजलि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

है। आप जिस तरह का सहयोग चाहें मैं तैयार हूँ।

पल्लव, उदयपुर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन-संपादन में नहीं आयी।

यश मालवीय, इलाहाबाद

इस अंक की कई कहानियाँ मुझे बहुत अच्छी लगीं। 'वे अठहत्तर दिन' (ओमप्रकाश नामदेव), 'लौट पीछे की तरफ़ ऐ गर्दिशे अय्याम तू' (नगमा जावेद)। वैसे वर्तमान साहित्य पत्रिका की कहानियाँ अच्छी होती हैं। यह एक विकसित पत्रिका है।

गायत्री कमलेश्वर

कुँवरपाल जी नेपथ्य में जाकर जैसे और भी अधिक आप में बोलने लगे हैं। उनकी प्रतिबद्धता, वैचारिकता, संपादन, रचनाकर्म और विशेषकर जीवन धर्मिता, यह सारे तत्व पूरे आवेग से आपमें साँसें लेने लगे। 'वर्तमान साहित्य' की चकित कर देने वाली नैरन्तर्यता इसका प्रमाण है, उनके जाने के बाद ज़रा सी भी शिथिलता इसके

वर्तमान साहित्य की पाठिका होने तथा थोड़ा बहुत साहित्य का शौक पैदा होने के कारण मुझे कुँवरपाल जी की रचनायें पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं उनके व्यक्तित्व से भी काफी प्रभावित थी। आप दोनों का ही साहित्य सृजन मुझे बहुत उर्ज़ा देता है तथा मैं जीवन के विभिन्न आयामों व दृष्टिकोण से पत्रिका के जरिये रू-ब-रू होना महसूस करती हूँ।

श्री कुँवरपाल सिंह जी का इस दुनिया से चले जाना आपके लिये जितनी बड़ी क्षति है उतनी ही अपूरणीय क्षति हम साहित्य प्रेमियों के लिये भी है।

कविता अग्रवाल, दिल्ली

वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010

वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010 के लिए मौलिक, अप्रकाशित कहानियाँ आमंत्रित हैं। पुरस्कार राशि रु0 11,000.00 है, जो कमलेश्वर जी के परिवार ने इस प्रयोजन हेतु 'वर्तमान साहित्य' को प्रदान की है।

कहानियाँ साफ़ टाइप की हुई हों तथा तीन प्रतियों में हों। कहानी की हर प्रति पर लेखक का नाम व पता अवश्य हो। कहानी भेजने की अंतिम तिथि 30 सितंबर, 2010 है। लिफाफे पर **'वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार'** अवश्य लिखें।

कहानियों का चयन एक निर्णायक-मंडल द्वारा किया जायेगा। चयनित कहानी पर पुरस्कार जनवरी, 2011 में प्रदान किया जाएगा।

कहानियाँ संपादक, वर्तमान साहित्य को निम्नलिखित पते पर भेजें।

संपादक

वर्तमान साहित्य

28-एम0आई0जी0, अवन्तिका-1, रामघाट रोड, अलीगढ़

ई-मेल से भेजी कहानी प्रतियोगिता में स्वीकार नहीं की जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

भोपाल गैस त्रासदी के 25 साल हो गये। यह दुनिया की भीषणतम औद्योगिक दुर्घटना है जिसमें अनुमानतः बीस हज़ार लोग मारे गये और बड़ी संख्या में बीमार हुए, अपाहिज हुए। इतना ही नहीं आने वाली पीढ़ी ने भी इसका खामियाज़ा भुगता और आज एक अशक्त, विकलांग पीढ़ी वहाँ मौजूद है, आने वाले वक्त में इस त्रासदी और मानवता के प्रति हुए अन्याय की शिनाख्त के रूप में।

प्राकृतिक आपदायें कभी भी आ सकती हैं... और आती हैं। दुर्घटनाएँ कभी भी हो सकती हैं और होती रहती हैं। हालाँकि कई बार हम नज़रअंदाज़ कर जाते हैं कि अक्सर प्राकृतिक आपदाएँ और दुर्घटनाएँ मानव निर्मित होती हैं। धर्म-भीरु हिन्दुस्तानी समाज, ईश्वर की इच्छा पर भरोसा करने वाला, पाप और पुण्य की व्याख्या और अवधारणा पर आधारित ईश्वरीय दंड और पुरस्कार के भावों को स्वीकृत करने वाला, पुनर्जन्म जैसे विश्वास और कर्मफल के भावों को मानने वाला सामाजिक असमानता और भेदभाव पर आधारित इन दुर्घटनाओं को सहज स्वीकार कर लेता है। मौतें चाहे गर्मी में लू के थपेड़ों से हों या भीषण सर्दी में ठिठुरकर हों या बरसात के प्रकोप से इमारतों के मलबे के नीचे दबकर, पानी में बह कर हों... केवल साधनहीन, ग़रीब और बेसहारा लोग ही क्यों इसकी चपेट में आते हैं। क्या राज्य व्यवस्था की यह जिम्मेदारी नहीं बनती कि लोगों की भूख से होने वाली मौतों को रोका जाय, सर्दी-गर्मी के प्रकोप से मरने वालों के लिये भी भरपेट भोजन और सर के ऊपर छत मुहैया करायी जाय। ईश्वर की इच्छा मानकर जो कुछ घट रहा है उसे सहज स्वीकार लेना सबके लिये सुविधाजनक है, राज्य व्यवस्था के लिये भी और समाज के लिये भी। यही अध्यात्म की विशेषता है जो सहज, शंका रहित जीवन के लिये रास्ता बनाता है। लेकिन समाज का वह हिस्सा, जो इस आध्यात्मिक प्रपंच में नहीं उलझता, वह सीधे सवाल कर रहा है। इस भोपाल गैस त्रासदी के पिछले पच्चीस सालों में उन लोगों के पक्ष में राज्य से, इस व्यवस्था से सवाल कर रहा है और उनसे जवाब मांग रहा है। पच्चीस साल में एक पूरी पीढ़ी जवान हो गयी है और राज्य व्यवस्था कठघरे में है। कठघरे में हैं वे जनता के प्रतिनिधि जिनके अपने ही शब्द आज उनके सामने सवाल बन कर खड़े हैं। सुप्रसिद्ध न्यायविद् पालखीवाला ने उस समय स्पष्ट कहा था कि यूनियन कार्बाइड पर अगर हिन्दुस्तान की न्याय व्यवस्था के अंतर्गत मुकद्मा चलता है तो समय पर और उचित न्याय पाना लगभग असंभव है। उस समय जब अनेक सामाजिक समूह (जिसमें कुछ अमरीकी संस्थाएँ भी थीं) यह मांग कर रहे थे कि यूनियन कार्बाइड पर अमरीकी कानून के अंतर्गत मुकदमा चलाया जाय तो उन्हें अपने पूर्व बयान से पलटते देर नहीं लगी और उन्होंने कहा कि मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तान की न्याय व्यवस्था उचित न्यायिक परिणाम देने में पूर्णरूप से सक्षम है। आज कांग्रेस और भाजपा तथा इनकी अन्य सहयोगी पार्टियाँ एक दूसरे पर आरोप प्रत्यारोप लगा रही हैं। भाजपा कहती है कि 1984 में केन्द्र में मध्य प्रदेश दोनों जगह कांग्रेस पार्टी सत्ता में थी अतः यूनियन कार्बाइड कंपनी के प्रमुख वारेन एंडरसन को रातों रात देश से भगाने में उसका हाथ है। मुंबई के अमरीकी कौन्स्यूलेट के 26 जुलाई 2004 के दस्तावेज के मुताबिक 'भारत सरकार के उच्चाधिकारी राजनैतिक कारणों से वारेन एंडरसन के प्रत्यार्पण मामले को संज्ञान में रखना तो आवश्यक समझते हैं लेकिन द्विपक्षीय संबंधों के अंतर्गत यह मामला भारत सरकार की प्राथमिकताओं में नहीं दिखाई देता।' दस्तावेज की यह टिप्पणी यूनियन कार्बाइड मामले में एन.डी.ए. सरकार की भूमिका को लेकर है। एक अन्य पत्र उस समय के एटार्नी जनरल सोली सोराबजी की अगस्त 2001 की टिप्पणी के संबंध में है जिसमें उन्होंने कहा, (यूनियन कार्बाइड प्लांट में) 'गैस रिसाव के मामले में वारेन एंडरसन के सीधे संबंध के लिये क्योंकि पर्याप्त सबूत नहीं हैं इसीलिये उनके प्रत्यार्पण हेतु प्रयास नहीं किये जाने चाहिये।' इसी पत्र में तत्कालीन रसायन और उर्वरक मंत्री तपन सिकदर का नवंबर 2002 में पार्लियामेन्ट में दिया गया बयान भी गौर तलब है 'सरकार एंडरसन के प्रत्यार्पण की मांग पर विचार कर रही है। सी.बी.आई. से कहा गया है कि भोपाल गैस त्रासदी से एंडरसन के संबंध के बारे में पुख्ता सबूत जुटाये ताकि प्रत्यार्पण के लिये अमरीकी सरकार से अनुरोध किया जा सके।' (हिन्दुस्तान टाइम्स-13 जून, 2010) दिलचस्प है कि भोपाल गैस कांड के पीड़ितों के प्रति जो अन्याय हुआ, उसके लिये दुनियाँ भर के मानवाधिकार समूहों, खुद अमरीका स्थित अनेक संस्थाओं ने रोष प्रकट किया और यूनियन कार्बाइड के खिलाफ़ न सिर्फ़ सख्त सजा की मांग की बल्कि पीड़ितों के लिये उचित मुआवजे की मांग का भी जोरदार समर्थन किया। कई बार अमरीकी सरकार के प्रवक्ता ने कहा कि अगर भारत सरकार उचित रूप से अनुरोध करती है तो एंडरसन के प्रत्यार्पण के मामले का मूल्यांकन किया जा सकता है।

अमरीकी सरकार से 'अनुरोध' तो बाद में हो, अपने देश की राज्य व्यवस्था भी पीड़ितों के पक्ष में कभी गंभीरतापूर्वक प्रयास करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं दिखाई दी। तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अर्जुन सिंह के सीधे हस्तक्षेप के बिना कैसे एंडरसन को तुरंत जमानत मिली और जिले के उच्च प्रशासनिक अधिकारी ने अपनी सरकारी गाड़ी में एंडरसन को सरकारी विमान के ज़रिये दिल्ली भेजने की व्यवस्था की। कैसे वह देश छोड़ने से पहले, मानो क्लीन चिट लेने गये हों, तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह से मिले और फिर देश छोड़ दिया। मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह की दिलचस्पी भी दोषियों को सजा दिलाने की नहीं रही। वे 'उचित' मुआवज़े का ही आश्वासन देते रहे... और अंततः इस उचित मुआवज़े की हकीकत भी सामने आ गयी। नामालूम सा मुआवज़ा और वह भी सभी पीड़ितों, बीमारों को नहीं।

भोपाल गैस कांड के पीड़ित पिछले पच्चीस सालों से लड़ रहे हैं और अब व्यवस्था की संवेदनहीनता की चरम स्थिति इस फैसले के रूप में आ गयी। सात हिन्दुस्तानी अधिकारियों को दो-दो साल की क़ैद और 25 हज़ार की जमानत पर राहत। लोगों ने ठीक कहा कि ऐसा लगता है कि यह सब जैसे किसी सड़क दुर्घटना के मुकदमे का फैसला हो।

अमरीकी सरकार के साथ लगातार गहरे हो रहे संबंधों के प्रति उत्साहित उच्च पदाधिकारियों का प्रत्यार्पण की मांग के विरोध में यह कहना कि एंडरसन यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन का चीफ़ था। उसे सुरक्षा व्यवस्था के प्रबंधों से कैसे सीधा जोड़ा जा सकता है, नितांत भ्रामक है। उस समय के प्रबंधक केशव महिन्द्रा समेत जो सात आरोपी अब न्यायलय ने तय किये हैं, उनकी भी आज यही दलील है। यानि सुरक्षा प्रबंध पूरे नहीं थे, उसमें खामियाँ थीं, तो यह उनकी जिम्मेदारी नहीं थी। सब अपनी-अपनी जिम्मेदारियों की गठरी एक सिर से दूसरे सिर पर पटक रहे हैं। दरअसल असली जिम्मेदारी वहाँ के चौकीदार पर डाल देनी चाहिए कि तुमने क्यों नहीं देखा... कहाँ गये बेचारे एंडरसन, कहाँ गये केशव महिन्द्रा और उनके साथी। उस एक चौकीदार को फांसी पर लटका देना चाहिये।

दरअसल दस्तावेज के रूप में सबूत मौजूद हैं कि हर छोटी-बड़ी व्यवस्था के लिये अमरीका स्थित यूनियन कार्बाइड के कॉरपोरेट आफिस से आदेश लिये जाते थे और उसे हर स्थिति से अवगत कराया जाता था। दुर्घटना से तीन महीने पहिले गैस लीक को रोकने के सुरक्षा प्रबंधों की जानकारी दी गई थी और यह भी कहा गया था कि पुख्ता सुरक्षा व्यवस्था आवश्यक है लेकिन यह प्रबंध मंहगा होगा। इसीलिये दुर्घटना के पीछे केवल लापरवाही से होने वाली चूक नहीं है बल्कि जानबूझकर लापरवाही बरती गयी क्योंकि हजारों की तादाद में लोगों की जान के मुकाबले सुरक्षा व्यवस्था में होने वाला खर्च मंहगा पड़ रहा था। हमारे राजनेताओं और उनकी शासन व्यवस्था के सामने न केवल राजनीतिक बल्कि व्यक्तिगत हित और लाभ सर्वोपरि रहे हैं। दुनियाँ के सबसे बड़े लोकतंत्र में व्यवस्था की यह संवेदनहीनता कहीं न कहीं लोकशक्ति की पराजय और उसकी असफलता है। हास्यास्पद स्थिति तो यह है कि अब पार्टी सीमाओं को लांघ, निकट हो या दूरस्थ सब एक दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे हैं।

राजनेता एक दूसरे को कठघरे में खड़ा कर रहे हैं। कुछ न मिला तो ठीकरा न्यायपालिका के सर पर फोड़ा जा रहा है। आखिर विधायिका हो या न्यायपालिका, सब एक ही राज्य व्यवस्था के अंग हैं। भारतीय जनता पार्टी हो, कांग्रेस हो, इनके सहयोगी दल हों, सभी कॉरपोरेट जगत के दबाव के तहत काम कर रहे हैं और ये दवाब आज सरकारी नीतियों पर भी स्पष्ट दिखाई देते हैं।

भोपाल गैस कांड पर 25 साल बाद आया यह निर्णय एक चुटकुला बन कर रह गया है। कहा जा रहा है कि एक आदमी की हत्या की सज़ा आजीवन कारावास या मृत्युदंड हो सकती है लेकिन 20 हज़ार लोगों की मौत के जिम्मेदार लोगों को केवल दो साल के कैद (?) और 25 हज़ार रुपये की तुरंत जमानत।

यह भी सोचने की बात है कि इस अन्याय पर व्यापक जनता की प्रतिक्रिया का अभाव क्यों है? भोपाल में इस पर धरने प्रदर्शन हो रहे हैं। विदेशों से प्रतिक्रियायें आ रही हैं और आक्रोश है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश ने कॉरपोरेट जगत की शक्ति और प्रभाव के सामने घुटने टेक दिये। इस त्रासदी के पीढ़ितों से देश के विभिन्न भागों की जनता का, लेखक, बुद्धिजीवियों और समाज सेवी संस्थाओं का, सामाजिक कार्यकर्ताओं का सक्रिय सरोकार होगा, तभी सकारात्मक परिणाम निकलेंगे। आखिर लोक के प्रतिरोध से ही व्यवस्था के फ़ैसलों और कार्यप्रणाली में बदलाव संभव है। वर्ना फिर वही अध्यात्म हम पर तारी होने लगेगा—होइ है सोइ जो राम रचि राखा।

नमिता सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्द़ साहित्य में भावी भारत की तरस्वीर

कुँवरपाल सिंह

(कुँवरपाल सिंह जी ने यह लेख तैयार किया था लेकिन प्रकाशित नहीं हो पाया था। प्रेमचंद जयंती के अवसर पर हम उनका यह अप्रकाशित लेख छाप रहे हैं।–संपादक)

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने विज्ञान और टेक्नोलोजी का विकास भारत की ग़रीबी दूर करने के लिये नहीं किया था बल्कि उसका एकमात्र उद्देश्य यहाँ के संपूर्ण साधनों तथा मानव शक्ति का अपने हित में भरपूर उपयोग करना था। यह साम्राज्यवादी शोषण का आधुनिक रूप था जो विज्ञान और तकनीकी के विकास के साथ-साथ अधिक जटिल और अमानवीय होता जा रहा था। इसका उद्देश्य यहाँ भारतीय-जन जागरण और जनता के बौद्धिक और सांस्कृतिक उत्थान के लिए नहीं बल्कि एक ऐसे भारतीय वर्ग को तैयार करने के लिए था जो साम्राज्यवादी शोषण तंत्र में सहायक होता।

सन् 1854 के बाद भारत में रेलवे और सड़क परिवहन के बढ़ते प्रयोग ने इस शोषण तंत्र को नये आयाम प्रदान किये। इन नये साधनों के द्वारा अब भारत का कच्चा माल बहुत शीघ्रता से इंग्लैण्ड के कारखानों के लिए बंदरगाहों तक पहुँचाया जा सकता था। इंग्लैण्ड का बना माल भी भारतीय मंडियों में अब आसानी से उपलब्ध हो सकता था। 19वीं शताब्दी के अंत में कुल माल का 82 प्रतिशत ब्रिटेन से भारत के बाजारों में आयात होता था तथा 11 प्रतिशत ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य हिस्सों से। इस प्रकार भारतीय माल की खपत केवल 7 प्रतिशत ही थी।

प्रथम महायुद्ध से पूर्व तक (1914) भारत के औद्योगिक विकास की गति अत्यंत धीमी रही और भारतीय उद्योगपति अधिकतर कपड़ा उद्योग तथा कुछ अन्य छोटे-मोटे उद्योगों (कपास और जूट) तक ही सीमित रहे। ब्रिटेन के साथ स्पर्द्धा के लिए अब अमेरिका, जर्मनी और जापान मैदान में थे। अन्य औपनिवेशिक देशों के साथ-साथ भारतीय बाज़ार में भी अपने माल की खपत के लिये इन सभी साम्राज्यवादी देशों में एक होड़ शुरू हुई जो इनके आपसी अंतर्विरोधों को अधिक जटिल और तीव्र बना रही थी। 1914 ई. तक इस होड़ का परिणाम यह हुआ कि भारतीय बाज़ार में ब्रिटिश माल की खपत 63 प्रतिशत रह गयी।[2] इसी अंतर्विरोध का परिणाम था कि ये दूसरे देश भारतीय क्रांतिकारियों को सीमित सहयोग प्रदान कर रहे थे।

ऐतिहासिक और राजनीतिक कारणों ने भारतीय उद्योग धंधों को प्रथम महायुद्ध के दौरान गति प्रदान की। महायुद्ध के दौरान ब्रिटिश माल का आयात रुक जाने के कारण भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देना ब्रिटिश शासकों की मज़बूरी थी। भारतीय उद्योगपतियों ने इस बीच अपनी स्थिति काफी सुदृढ़ की अतः यह गति महायुद्ध के बाद भी जारी रही। 1914 में जहाँ 2874 कारखाने थे और 9,50,275 मज़दूर थे वहीं 1921 में कारखानों की संख्या बढ़कर 3965 हो गई और औद्योगिक मजदूरों की संख्या 12,66,365 हो गई।[3] इसके अतिरिक्त फैक्टरी क़ानून के अंतर्गत न आने वाले छोटे उद्योगों में मज़दूरों की संख्या 21 लाख से बढ़कर 26 लाख 81 हज़ार हो गई।[4] लेकिन इस औद्योगीकरण के साथ भारतीय दस्तकारों और कुटीर उद्योगों का सर्वनाश हो गया जो उद्योगों के मशीनीकरण की स्वाभाविक परिणति थी। परिणामतः देहातों में लाखों लोग बेकारी और भुखमरी का शिकार होने लगे। गाँव अब साम्राज्यवादी और भारतीय उद्योगपति दोनों के सीधे शोषण के शिकार बने। इस शोषणतंत्र में कच्चा माल पैदा करने वाले किसानों की स्थिति दयनीय हो गई थी क्योंकि कच्चे माल और तैयार माल की कीमतों में अंतर लगातार तेज़ी से बढ़ रहा था। ब्रिटिश उद्योगपतियों के साथ-साथ भारतीय पूँजीपति भी तेज़ी से मुनाफा बटोर रहे थे, जिनमें अधिकतर कपड़ा मिल मालिक थे। टाटा को जहाँ 1915 में 1 लाख 86 हज़ार 9 सौ पौंड का मुनाफ़ा हुआ वहीं 1920 में 8 लाख 38 हज़ार 99 पौंड का मुनाफ़ा हुआ।[5]

स्पष्ट है कि देशी और विदेशी पूँजीपति भारतीय मजदूर और किसानों के संबंध में लगभग एक जैसा ही रुख अपनाये हुए थे। मुनाफ़ा बटोरने में और मजदूरों के शोषण के संबंध में दोनों ही समान रूप से निर्मम और कठोर थे। इनके अंतर्विरोध अधिक से अधिक बाज़ार पर कब्ज़ा तथा सरकारी सहयोग की आकांक्षा की वजह से थे। ब्रिटिश साम्राज्यवादी विदेशी पूँजीपतियों और व्यापारियों को अधिक सहयोग देते थे। अतः साम्राज्यवाद से उभर रहे भारतीय पूँजीपति वर्ग का विरोध स्वाभाविक था। इस विरोध को अधिक प्रखर बनाने के लिए भारतीय पूँजीपति वर्ग राष्ट्रीय आंदोलन का इस्तेमाल अपने हितों के लिए बहुत कौशल के साथ करने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदैव प्रयत्नशील रहता था।

महायुद्ध के बाद मजदूरों और किसानों तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बीच संघर्ष बहुत तीखा होता गया। यह संघर्ष कई स्तरों पर था। एक ओर किसान और मजदूर संगठित होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध कर रहे थे। इसके साथ ही मजदूरों और भारतीय पूँजीपतियों के बीच भी संघर्ष तीव्र हुआ। गाँव में किसान जमींदारों के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। देशी रियासतों की जनता भी युगों के शोषण का जुआ फेंकने को तत्पर थी और विरोध के लिए उठ खड़ी हुई थी। भारतीय पूँजीपति अधिक से अधिक राजनीतिक और आर्थिक अधिकार पाने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध कर रहे थे। राष्ट्रीय आंदोलन में हर वर्ग के लोग अपने-अपने वर्ग हितों के अनुरूप इसमें सम्मिलित हो रहे थे। यह संघर्ष होमरूल की माँग, सशस्त्र क्राँति द्वारा स्वराज्य प्राप्ति की चेष्टा, विशाल संगठित तथा असंगठित किसानों और मजदूरों के आंदोलन जैसे विभिन्न रूपों में था।

1918 के बाद जगह-जगह मजदूरों के विभिन्न संगठन बने। 1920 तक पूरे देश में 25 प्रमुख ट्रेड यूनियनें थीं। इन सबका एक केन्द्रीय संगठन 31 अक्टूबर में 1920 को 'ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन काँग्रेस' के नाम से स्थापित हुआ जिसमें बहुत दिनों तक नेतृत्व उदारपंथी कांग्रेसजनों का रहा। भारतीय बुर्जुआ वर्ग ने इन सुधारवादी नेताओं के माध्यम से बढ़ते हुए मजदूर आंदोलन को अपने नियंत्रण में रखने की कोशिश की। दूसरी ओर अपने दलालों के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्यवाद भी इन मज़दूर आंदोलनों को अपने हितों के लिए इस्तेमाल की कोशिश करता रहा। एक दिलचस्प उदाहरण मद्रास लेबर यूनियन के अध्यक्ष वी.पी. वाडिया का वह तर्क है जो उन्होंने ब्रिटिश शासकों के पक्ष में विन्नी मिल्स के हड़ताली मजदूरों के समक्ष रखा। वाडिया ने कहा "अगर आप हड़ताल करके मैसर्स विन्नी एंड कंपनी की जेब पर असर डालने जा रहे हैं तो मैं बुरा न मानूँगा क्योंकि वह बहुत पैसा कमा रहे हैं। लेकिन ऐसा करके आप मित्र राष्ट्रों को नुकसान पहुँचायेंगे। हमारे सिपाही जिनके पहनने के लिए कपड़ा चाहिए, वे असुविधा में पड़ जायेंगे और सिर्फ़ इसलिए कि मिल से संबंधित कुछ योरोपीय तथा यह सरकार बुरी तरह काम कर रही है, हमें उन लोगों को मुसीबत में डालने का कोई अधिकार नहीं है जो हमारे महाराज के लिए लड़ रहे हैं। इसलिए हमें हड़ताल नहीं करनी चाहिये।"[6] यह बड़ी दिलचस्प बात है कि यही वाडिया ब्रिटिश सरकार द्वारा 1919 में मजदूरों के प्रतिनिधि बनाकर इंटरनेशनल लेबर ऑरगनाइजेशन की कांफ्रेंस में वाशिंगटन भेजे गये थे।

लगभग ऐसा ही मंतव्य भारतीय कांग्रेस के सर्वोच्च नेता महात्मा गांधी ने अप्रैल 1918 में प्रकट किया था। मजदूर आंदोलनों की बढ़ती हुई शक्ति तथा उनके वर्ग संघर्ष की तीव्रता से घबराकर 1918 में अहमदाबाद में "मजदूर-महाजन" संघ की स्थापना की गयी। वर्ग सहयोग के आधार पर ऐसे संगठन गांधी जी पूरे देश में बनाना चाहते थे। इसका सदस्यता शुल्क मालिक स्वयं मजदूरों के वेतन से काटकर इकट्ठा करते थे और यूनियन को देते थे।"[7] वर्तमान भारत का बुर्जुआ वर्ग जिसके हाथ में शासनतंत्र है, आज मजदूर आंदोलनों को तोड़ने के लिए जिन तरीकों और हथकंडों का चतुराई पूर्ण इस्तेमाल कर रहा है, उसकी यह शुरूआत थी।

1920-22 में देश में न केवल मजदूरों बल्कि किसानों के विशाल आंदोलन हुए। दलित शोषित किसान एक शक्ति के रूप में उभर कर आया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के समर्थक पत्र यह चेतावनी दे रहे थे कि भारत क्राँति के द्वार पर खड़ा है।[8] लेकिन इस क्राँतिकारी जनता के पास केवल सुधारवादी नेतृत्व था। गांधी जी सरकार को परेशान करना नहीं चाहते थे। इसीलिए उन्होंने जनता के क्राँतिकारी और आक्रामक रूप को देखकर अपना आंदोलन स्थगित कर दिया था और मांटेग्यू-जेम्सफोर्ड सुधारों को लागू करवाने में सरकार के साथ सहयोग का प्रस्ताव काँग्रेस के अधिवेशन में किसी तरह से पास करवा दिया था।[9] कांग्रेसी नेतृत्व द्वारा भारतीय बुर्जुवा वर्ग के हितों की रक्षा, साम्राज्यवादियों के साथ अप्रत्यक्ष सहयोग तथा वर्ग सहयोग की ढुलमुल राजनीति का परिणाम यह हुआ कि देश में तेजी से उभर रहे साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद विरोधी जन-आंदोलन या तो हताशा के गर्त में समाप्त हो गये या सांप्रदायिक रूप में बदल कर विद्वेष के प्रचारक बन गये। मोपला विद्रोह और अकाली आंदोलनों की यही परिणति हुई। यही हाल संयुक्त प्रदेश के किसान आंदोलनों का हुआ। इन आंदोलनों का नेतृत्व कांग्रेस का कोई बड़ा नेता नहीं, बल्कि स्थानीय लोग कर रहे थे। इन्होंने किसानों का आह्वान किया कि वे उन खेतों को न छोड़ें जो ग़ैर क़ानूनी ढंग से ले लिए गये हैं। वे सिर्फ़ निश्चित लगान दें और उसकी रसीद की माँग करें। वे जमींदारों के यहाँ बेगार करने से इंकार करें। तालाबों का पानी निशुल्क इस्तेमाल करें। अपने मवेशियों को जंगलों और दूसरी खाली जमीनों में चरायें।[10]

राष्ट्रीय आंदोलन का कांग्रेसी नेतृत्व किसानों का साथ नहीं दे रहा था लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से जमींदारों के हितों की रक्षा कर रहा था। इस नेतृत्व ने किसानों को सलाह दी कि "किसानों को अपने शत्रुओं के पत्थर जैसे कठोर हृदयों को अपनी दया और प्रेम से जीतना होगा। ज़मींदारों को क़ानूनी लगान देने से इंकार करके इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न, या उनका काम करने से इंकार करना अनैतिक समझा जा सकता है।[11] कांग्रेसी नेतृत्व का किसान आंदोलनों के प्रति यह दृष्टिकोण केवल संयुक्त प्रांत के किसान आंदोलनों के प्रति नहीं बल्कि बंगाल, आंध्र आदि के किसान आंदोलनों तथा राजस्थान के आदिवासियों के आंदोलनों के प्रति भी था। कांग्रेसी नेतृत्व का यह अंतर्विरोध निरंतर बढ़ता ही गया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से भारतीय बुर्जुवा वर्ग की संघर्ष और सहयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नीति निरंतर प्रगाढ़ होती गयी। 1928-32 के बीच हुए किसान-मजदूरों के आंदोलनों के प्रति, क्राँतिकारियों के लिए दमनकारी नीति के प्रति उनकी साम्राज्यवादियों से मूक सहमति थी। जन आंदोलनों के निर्णायक बिन्दु पर पहुँचते ही ये नेतृत्व साम्राज्यवादियों से समझौते का रुख अपनाता था और आंदोलन को स्थगित कर देता था। फलस्वरूप ब्रिटिश शासक भारतीय पूँजीपतियों और सामंतों की मदद से किसानों, मजदूरों और क्राँतिकारियों के निर्मम दमन में सफल रहे। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन एक क्राँतिकारी स्वरूप ले, यह न ब्रिटिश शासकों के हित में था और न ही भारतीय बुर्जुवा तथा सामंत वर्ग के हित में था। यह एक अलिखित समझौता था। फलस्वरूप 1933 के लगभग ब्रिटिश शासकों ने भारतीय पूँजीपतियों को अनेक सुविधाएँ प्रदान कीं।

0 0 0

प्रेमचंद का रचना संसार राष्ट्रीय आंदोलन की इसी पृष्ठभूमि पर आधारित है। राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न आयाम, किसानों और मजदूरों के आंदोलन, जटिल होती हुई आर्थिक व्यवस्था और शोषण तंत्र, संश्लिष्ट भारतीय समाज व्यवस्था, भारतीय बुर्जुवा वर्ग और सामंत वर्ग का परस्पर सहयोग और आपसी अंतर्विरोध, पतनशील साम्राज्य व्यवस्था, दलित वर्ग और नारी मुक्ति, धर्म, सांप्रदायिकता तथा भावी भारत का स्वरूप भारतीय साहित्य, संस्कृति और भाषा का रूप-ये सब प्रेमचंद की चिंता के विषय हैं। ज्यों-ज्यों उनकी चिंताओं का दायरा बढ़ता गया, उनकी दृष्टि लगातार व्यापक होती गई। समाज और राजनीति के जटिल अंतः संबंधों पर धीरे-धीरे उनकी पकड़ मजबूत और गहरी होती गयी। उनकी चेतना एक विकासशील प्रक्रिया का नमूना है। मूलभूत स्वर-समाज के दलित-शोषित जन के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति का रहा जिसके माध्यम से वह जटिल राजनीतिक तानों-बानों को और उनके सामाजिक स्वरूप को सही दिशा में विश्लेषित कर पाये। धीरे-धीरे राष्ट्रीय आंदोलन का, उसके बुर्जुवा नेतृत्व का तथा विकसित हो रही विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक शक्तियों का स्वरूप उनके सामने स्पष्ट होता गया। उसके साथ ही साथ उनके क्रमिक विकास की प्रक्रिया, उनके सामने देश के स्वराज्य के भावी स्वरूप को भी स्पष्ट करती रही। इसी ऐतिहासिक विकास क्रम में प्रेमचंद का साहित्य समझा जा सकता है और उसका मूल्यांकन किया जा सकता है।

प्रेमचंद हर राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन के सार्थक पक्ष के समर्थक रहे हैं। इन आंदोलनों को प्रेमचंद ने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा और परखा है। जब भी इन आंदोलनों अथवा इनसे जुड़े व्यक्तियों की सार्थक भूमिका समाप्त होती दिखाई दी, प्रेमचंद नये सार्थक रास्ते की तलाश में आगे निकल आते हैं। 1901 से 1936 के बीच प्रेमचंद ने एक लंबी वैचारिक यात्रा तय की है। 'गोदान' को आधुनिक जीवन का महाकाव्य बनाने में उन्हें पैंतीस वर्ष लगे। किसी एक भारतीय लेखक ने इतनी लंबी निरंतर ऊर्ध्वगामी विकास यात्रा का परिचय इससे पहले नहीं दिया। भारत में पहली बार प्रेमचंद ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीति के अंतः संबंधों की जटिलता को अपने साहित्य के माध्यम से जन साधारण के लिए सुलभ बनाया। इसी विकास यात्रा के साथ प्रेमचंद की दृष्टि में स्वराज का स्वरूप भी निरंतर विकसित होता गया जो अंत में क्रांतिकारी-जनवादी होता रूप ग्रहण करता गया।

प्रेमचंद के आरंभिक लेखन में स्वराज्य की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं है। उन्होंने धार्मिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों, महंत, पंडों, पुरोहितों जनता को भ्रमित करने वाली धार्मिक संस्थाओं तथा नारी मुक्ति जैसे विषयों को अपने लेखन का विषय बनाया। इसके साथ ही साथ प्रेमचंद ने अपने समकालीन लेखकों से अपनी विशिष्टता का परिचय हमेशा दिया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ़ तथा देशप्रेम की भावना उनके लेखन में आरंभ से ही रही है। साम्राज्यवाद के सक्रिय विरोध के कारण ही उनकी रचनाएँ ज़ब्त हुई। आर्य समाज के सुधारवाद तथा स्वदेशी आंदोलन में आर्य समाज की सक्रिय भूमिका ने प्रेमचंद को प्रभावित किया। जून 1905 में 'ज़माना' के एक लेख में उन्होंने कहा, "लाहौर के आर्य समाज मेंबरों को सर से पैर तक हिन्दुस्तान की बनी चीजों से सजे हुये देखना सचमुच बहुत दिलचस्प और याद रखने काबिल दृश्य था। हम अपने समाजी भाइयों के देश प्रेम और कौमी जोश के हमेशा से प्रशंसक रहे हैं। यह लोग उसी सम्मान और धन्यवाद के अधिकारी होंगे जितने कि वह राष्ट्रीय और सामाजिक सुधारों के लिए हैं।"[12]

आर्य समाज की ऐतिहासिक भूमिका धीरे-धीरे समाप्त होती गयी और वह देश में प्रतिक्रियावादी और सांप्रदायिक राजनीति का भाग बनता गया, जिस दलदल से वह भारतीय समाज को निकालने का दावा करता था, यह संगठन अंततः उसी दलदल में फँसता गया। प्रेमचंद ने 1923 में आर्य समाज की इस बदली हुई प्रतिगामी भूमिका का खुलकर विरोध किया। मुंशी दया नारायण निगम को लिखे गये एक पत्र में उन्होंने स्पष्ट कहा "लेकिन मलकाना शुद्धि पर एक मुख्तसर सा मजमून लिख रहा हूँ। मुझे इस तहरीक से सख्त इख़्तिलाफ़ है।... आर्य समाज वाले भन्नायेंगे। लेकिन मुझे उम्मीद है आप इस मजमून को 'ज़माना' में जगह देंगे।"[13]

प्रथम महायुद्ध तक भारतीय बुर्जुवा वर्ग की प्रगतिशील और साम्राज्यवाद विरोधी भूमिका का प्रेमचंद ने समर्थन किया। स्वदेशी आंदोलन भारतीय उद्योग धंधों को प्रोत्साहन देने के लिए आरंभ किया गया था। स्वदेशी को प्रेमचंद ने स्वराज्य की भावना से जोड़ा। 1905-1906 में प्रेमचंद को यह चिंता थी कि स्वदेशी वस्तुओं का देश में अधिक से अधिक प्रयोग होना चाहिये। विदेशी माल के वहिष्कार से राष्ट्रीयता को बल मिलेगा। इस संबंध में उन्होंने 'ज़माना' में कई लेख भी लिखे। उनका विचार था कि बिना स्वदेशी चीजों जैसे रूई, कपड़ा, चीनी आदि के प्रसार के राष्ट्रीय मुक्ति नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।"[14]

भारत की जनता ने इस स्वदेशी आंदोलन का खुले दिल से समर्थन किया। 'गबन' के देवीदीन जैसे साधारणजन ने उसी आंदोलन में अपने दो जवान बेटे चढ़ा दिये।[15] इसके बाद भी यह हौसला रखा कि यदि मेरे और भी बेटे होते तो उन्हें भी देश पर बलिदान कर देता।

भारतीय बुर्जुआ वर्ग के सामने जन मानस के इस त्याग और बलिदान की भावना का केवल व्यापारिक महत्व है, यह बात प्रेमचंद के सामने आगे चलकर स्पष्ट हो गई। गाँधी तथा कांग्रेस के अन्य नेता जहाँ इस स्वदेशी आंदोलन को अंत तक अपना आधार बनाये रहे, प्रेमचंद ने साफ़-साफ़ देखा कि इस आंदोलन से भारतीय पूँजीपतिवर्ग का मुनाफ़ा कई गुना बढ़ गया है। साधारण जनता निरंतर आर्थिक मंदी, भुखमरी और बेकारी का शिकार बनती जा रही थी। मजदूरी सस्ती हो गई थी। कच्चा माल सस्ता हो गया था पर कपड़े के दाम ज्यों के त्यों थे। उन्होंने क्षोभ के साथ कहा कि "वह मिल मालिक तो यही चाहता है कि भारत में कहीं का माल न आने पाये और वह अपनी चीज के मुँह माँगे दाम खड़े करे। लेकिन यह नीति बहुत दिनों तक नहीं चल सकती न जनता को हमेशा मुगालते में रखा जा सकता है।"[16]

राष्ट्रीय आंदोलन में कांग्रेस के नेतृत्व में विभिन्न विचारधाराओं के लोग थे। कांग्रेस ही देश का सबसे बड़ा जन संगठन था हालांकि इसके नेतृत्व में अनेक अंतर्विरोध थे। प्रेमचंद का साम्राज्यवाद विरोध ही उन्हें कांग्रेस के नजदीक ले गया। लेकिन कांग्रेस के नेतृत्व वर्ग में राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नों पर गहरे मतभेद थे। प्रेमचंद राजनीतिक स्तर पर गर्म दल के साथ थे क्योंकि वह पूर्ण स्वराज्य की बात करते थे। समझौतावादी नरम दल की उन्होंने आलोचना की। उनके मित्र दयानारायण ने लिखा है, "प्रेमचंद का राजनैतिक रूझान गर्म दल की ओर था। वे तिलक के हामी थे और मैं गोखले और फिरोजशाह मेहता का हामी था।"[17]

प्रेमचंद नरमदलीय राजनीति के विरोधी रहे। असहयोग आंदोलन के दौरान उन्होंने इस राजनीति पर व्यंग्य करते हुए लिखा, "अब ख़्याल कीजिये। अभी दो साल पहले यहाँ की राजनीतिक हालत क्या थी। लोग बेजा खुशामद और लच्छेदार बातों को राजनीति का मुख्य अंग समझते थे। यहाँ तक कि मज़हबी जलसों और मुशायरों में भी राजभक्ति पर प्रस्ताव करना एक मुख्य कर्त्तव्य हो गया था। सरकारी नौकरियों के लिए कितनी दौड़ धूप, कितनी छीना झपटी और कितनी गुप्त कार्यवाहियाँ की जाती थीं।"[18]

यह दिलचस्प बात है कि राजनीतिक रूप से तिलक के पूर्ण स्वराज्य के हिमायती प्रेमचंद, उनके रूढ़िवादी और धार्मिक पुनरूत्थानवादी दृष्टिकोण के विरोधी थे। पूर्ण स्वराज्य की माँग करने वाले तिलक सामाजिक मूल्यों में विधवा-विवाह, स्त्री शिक्षा आदि के समर्थक नहीं थे। प्रेमचंद ने उनकी इन सामाजिक प्रवृत्तियों का अपने लेखन में सदैव विरोध किया। नारी मुक्ति के प्रेमचंद सदैव हिमायती रहे। 1907 में छपे उपन्यास 'प्रेमा' में प्रेमचंद ने विधवा-विवाह का समर्थन किया है। इस प्रकार इन सामाजिक मूल्यों में वह गोखले की रिफार्म लीग के समर्थक थे। वे इस रूप में मूर्ति भंजक हैं। किसी के अंध भक्त कभी नहीं रहे।

समझौतावादी नरमदलियों के मुकाबले तथा अव्यावहारिक और अंतर्विरोधी राजनीतिज्ञ तिलक के मुकाबले गाँधी जी प्रेमचंद को ही नहीं बल्कि देश की समस्त पीड़ित जनता को भी मुक्तिदाता के रूप में दिखाई दिये। भारतीय राजनीति में गाँधी ने पहली बार समझौते के साथ संघर्ष की नीति को व्यापक रूप प्रदान किया। उन्होंने कांग्रेस के आंदोलन को उच्च मध्यम वर्ग के दायरे से निकाल कर लाखों किसानों-मजदूरों और निम्न मध्यम वर्ग से जोड़ दिया। राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक जन आधार प्रदान करने में गाँधी जी की ऐतिहासिक भूमिका से कोई इंकार नहीं कर सकता। प्रेमचंद संघर्षशील गाँधी के साथ थे। किसानों की पीड़ा पर मरहम लगाने वाले साम्राज्यवाद विरोधी महात्मा जी को वह श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे गाँधीवादी थे या गाँधी के स्वराज्य की कल्पना ही प्रेमचंद के स्वराज्य की कल्पना है। गाँधी के व्यक्तित्व से प्रभावित प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर के चरित्र को प्रस्तुत किया है। वह पहला उपन्यास है जो जमींदारों के शोषण का संपूर्ण रूप से चित्रण करता है तथा इस वर्ग द्वारा किए जा रहे अन्याय और क्रूरता का कलात्मक विवरण भी देता है। उस समय के किसान आंदोलन की प्रमुख माँगों जैसे लगानबंदी, चारागाहों, तालाबों का समाजीकरण तथा बेगारी के विरोध का प्रेमचंद ने इस उपन्यास में पूरा समर्थन किया है। हालांकि गाँधी जी इस तरह के किसान आंदोलनों के कभी पक्षधर नहीं रहे। उन्हें सन्देह है कि 'सत्याग्रह में अन्याय का दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धांत भ्राँतिपूर्ण सिद्ध हो गया है।[19] यद्यपि उपन्यास का अंत प्रेमाश्रम बनाकर करते हैं जो गाँधी के नैतिकतावादी आदर्श से प्रभावित है।

इसी उपन्यास में प्रेमचंद किसानों की मुक्ति के लिए सोवियत क्रांति की ओर आशापूर्ण दृष्टि डालते हैं। रूस और बल्गारिया में हुई समाजवादी क्रांतियों की तरह वे भारत में भी किसान मजदूरों के राज्य की आशापूर्ण कल्पना करते हैं।[20] दूसरों की कमाई अर्थात मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित व्यवस्था का विरोध प्रेमचंद ने 1920 में लिखे अपने इस पहले राजनीतिक उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में ही किया है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि मेरा यह सिद्धांत है कि मनुष्य को अपनी कमाई खानी चाहिए। किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरों की कमाई को अपनी जीवन वृत्ति का आधार बनाये।[21]

यह ढूंढ कर चयन किया संदर्भ नहीं हैं। प्रेमाश्रम के लेखन के दौरान ही प्रेमचंद ने 'नया ज़माना-पुराना ज़माना' नामक अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध लेख फरवरी 1919 में लिखा था। अपने स्वराज्य की भावी रूपरेखा बड़े स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हुए उन्होंने उस लेख में कहा "स्वराज्य की बेकार और बेमतलब सदाओं पर तकिया करके बैठने का अब वक़्त नहीं। क्योंकि आने वाला ज़माना अब जनता का है। वह लोग पछतायेंगे जो जमाने के क़दम से क़दम मिलाकर न चलेंगे।"[22]

इसी लेख में एक अन्य जगह उन्होंने कहा—"क्या यह शर्म की बात नहीं है जिस देश में 90 फीसदी आबादी किसानों की हो उस देश में कोई किसान सभा, कोई किसान की भलाई के आंदोलन का व्यवस्थित प्रयत्न न हो।... आने वाला ज़माना अब किसानों और मजदूरों का है।[23]

आने वाले ज़माने में किसानों और मजदूरों की मुक्ति का यह स्वप्न प्रेमचंद का केवल सामयिक आवेश नहीं था बल्कि यह उनका निरंतर विचार था जो समय के साथ-साथ और प्रगाढ़ तथा अधिक तर्क संगत होता गया। मई 1934 में प्रेमचंद ने फिर अपनी इसी आकांक्षा को दुहराया। जब तक कोई काश्तकारों के बीच रहकर काम नहीं करेगा तब तक उनकी स्थिति सुधारी नहीं जा सकती। जरूरत है खुद उनके बीच रहकर उनमें काम करें। लंबी-लंबी स्पीचों से किसानों की भलाई संभव नहीं। यह पढ़ने लिखने का काम छोड़कर देहातों में भी काम करने की मेरी इच्छा है।[24]

दृष्टव्य है कि राष्ट्रीय आंदोलन का बुर्जुवा नेतृत्व मजदूरों और किसानों के लड़ाकू संगठनों का आरंभ से ही विरोधी रहा था। गांधी ने निर्णायक रूप ले रहे मजदूरों के संघर्षों की निंदा की तथा उनसे आंदोलन वापिस लेने को कहा था। इसी प्रकार मालाबार के मोपला विद्रोह तथा संयुक्त प्रदेश के किसान विद्रोहों को भी निंदनीय बताया। चौरी चौरा में दलित किसानों के संगठित विद्रोह की उन्होंने भर्त्सना की तथा नाराज होकर असहयोग आंदोलन वापिस ले लिया। राजपूताना के भील आंदोलन के चरम बिंदु पर उन्होंने हस्तक्षेप करके उसे ख़त्म करवा दिया। निश्चय ही प्रेमचंद का स्वराज्य, गाँधी के रामराज्य की कल्पना से बिल्कुल अलग था। अपने अवास्तविक रामराज्य की आकांक्षा करने वाले गाँधी ट्रस्टीशिप के सिद्धांत द्वारा एक ऐसे समाज की कल्पना कर रहे थे जिसमें पूँजीपति और जमींदारों के वर्चस्व पर कोई आँच न आये। शेर और बकरी एक घाट पर पानी पियें। किसी भी स्थिति में गाँधी पूँजीपतियों से उनकी संपत्ति छीनने के हामी नहीं थे। बल्कि उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि यदि उन्हें (जमीदारों को) उनकी जायदाद से वंचित करने का प्रयत्न किया जायेगा तो वे उनकी ओर से संघर्ष करेंगे।[25]

प्रेमचंद ने ठीक इसके विपरीत किसानों और मजदूरों की मुक्ति का मार्ग पूँजीवाद और सामंतवाद के उन्मूलन में देखा। उन्होंने स्पष्ट कहा कि मैं कम्युनिस्ट हूँ। किंतु मेरा कम्युनिज़्म यही है कि मेरे देश में जमींदार सेठ आदि जो कृषकों के शोषक हैं, न रहें।[26]

प्रेमचंद सामंती व्यवस्था की समाप्ति में ही किसानों की मुक्ति देखते थे। विश्व पटल पर हो रही घटनाएँ उन्हें प्रभावित कर रही थीं और उनकी आकांक्षा को आशा का संबल मिल रहा था। अपनी पत्नी के साथ हुये वार्तालाप में उन्होंने कहा—"हाँ, रूस है जहाँ कि बड़ों को मार-मार कर दुरूस्त कर दिया गया। अब वहाँ ग़रीबों को आनंद है। शायद यहाँ भी कुछ दिनों बाद रूस जैसा ही हो।"[27] यह वार्तालाप नवंबर, 1928 में हुआ। इसी वार्तालाप के दौरान प्रेमचंद ने यह भी स्पष्ट किया कि वे हर स्थिति में मजदूरों और काश्तकारों का साथ देंगे।

गाँधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस की समझौतावादी नीति के फलस्वरूप मिलने वाले स्वराज्य के भावी स्वरूप के प्रति प्रेमचंद को अब कोई ग़लतफ़हमी नहीं थी। विकसित हो रहे भारतीय बुर्जुवा वर्ग का रूप और उसकी आधारभूत प्रवृत्तियाँ अब स्पष्ट थीं। इसके अतिरिक्त मजदूर तथा किसान आंदोलनों के प्रति ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के ही समान इस बुर्जुआ वर्ग की दमनकारी नीति भी अब स्पष्ट हो चुकी थी। 'गबन' के प्रसिद्ध देशभक्त पात्र देवीदीन ने स्पष्ट रूप से एक बड़े कांग्रेसी नेता से कहा था- "तुम सुराज का नाम लेते हो, तो उसका कौन सा रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है। तुम भी बड़ी-बड़ी तलब लोगे, तुम भी अंग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेज़ी ठाट बनाये घूमोगे। इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा.... तुम दिन में पाँच बेर ख़ाना खाते हो और वह भी बढ़िया माल। ग़रीब किसान को एक जून सूखा चबेना भी नहीं मिलता... अभी तुम्हारा राज नहीं है तब तो तुम भोग विलास पर इतना मरते हो। जब तुम्हारा राज हो जायेगा तब तो तुम ग़रीबों को पीस कर पी जाओगे।"[28]

स्पष्ट है कि स्वराज के इस रूप से प्रेमचंद सशंकित थे। यह शंका 'महाजनी सभ्यता' तक आते-आते उनके पक्के विश्वास में बदल गयी थी। वे समझ गये थे कि ऐसा स्वराज खन्ना और राय अमरपाल सिंह के वर्ग हितों की ही रक्षा करेगा। देवीदीन जैसे जन साधारण से आये देशभक्तों की इस स्वराज्य में वही दुर्दशा होगी जो साम्राज्यवादी शासन में हुई थी। भूधर चौधरी, सलोनी काकी, मुन्नी, धनिया, होरी आदि स्वराज के बाद अंधेरी गलियों में धकेल दिये जायेंगे। उच्च वर्ग की इस देशभक्ति का पर्दाफ़ाश करते हुए मालती के यह उद्‌गार दृष्टव्य हैं "लेकिन मैंने केवल एक बार जेल जाने के सिवा और क्या जन सेवा की है.... और सच पूछिये तो उस बार भी मैं अपने मतलब से ही गयी थी, जैसे राय साहब और खन्ना गये थे। इस नयी सभ्यता का आधार धन है। विद्या और सेवा और कुल और जाति सब धन के सामने हेय हैं।[29]

इसी धन के बलबूते पर बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में लाया गया स्वराज्य और उस स्वराज में जन प्रतिनिधियों के स्वरूप के बारे में भी प्रेमचंद को कोई ग़लतफ़हमी नहीं रह गई थी। जन प्रतिनिधियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सरकार के जिस चुनाव का आधार धन हो वहाँ कोई जन साधारण चुनाव की वैतरणी पार नहीं कर सकता। उन्होंने कहा कि जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं वह व्यवहार में बड़े-बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज है और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाज़ी ले जाता है जिसके पास रुपये हैं। रुपये के जोर से उसके लिए सभी सुविधाएँ तैयार हो जाती हैं।[30]

आज के संदर्भ में इस कथन पर टिप्पणी की कोई आवश्यकता नहीं है। धन के आधार पर टिके हुए जनतंत्र से प्रेमचंद ने अपनी असहमति प्रकट की और जन साधारण को इस पूँजीवादी जनतंत्र से अधिक आशा रखने के लिए चेतावनी भी दी। प्रेमचंद के लिए स्वराज का अर्थ केवल राजनीतिक स्वाधीनता नहीं था। वे जन साधारण की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति की आकांक्षा रखते थे। व्यक्तियों को बदलने से किसी बड़े परिवर्तन की आशा नहीं की जा सकती है। साम्राज्यवाद से भारत को शीघ्र मुक्ति मिलेगी—प्रेमचंद के ऐतिहासिक बोध और घटनाक्रम के सही विश्लेषण ने उन्हें इसके प्रति आश्वस्त कर दिया था। लेकिन ब्रिटिश शासन के बाद भारत की भावी रूप रेखा के प्रश्न पर वह अधिक चिंतित थे। उन्हें भय था कि स्वराज की गंगा को पूँजीपति और जमींदार आज़ादी के बाद भी केवल अपने हित साधन में प्रयोग करेंगे। त्याग और बलिदान करने वाले श्रमिक किसान तट से ही प्यासे लौट जायेंगे। "जान के स्थान पर गोविन्द को बैठा देने से ही स्वराज नहीं आ जायेगा। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राण हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराईयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ायेगी कि वह विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं।"[31] उन्होंने स्पष्ट कहा था।

प्रेमचंद के अपने स्वराज की कल्पना में किसी भी प्रकार की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विषमता का कोई स्थान नहीं है। उनका स्वराज शोषण रहित समाज के रूप में है। अपने प्रसिद्ध और अंतिम लेख 'महाजनी सभ्यता' में उन्होंने कहा कि 'धन्य है वह समता जो मालदारी और व्यक्तिगत संपत्ति का अंत कर रही है और जल्दी या देर से दुनिया उसका पदानुकरण अवश्य करेगी। यह समता अमुक देश की समाज रचना अथवा धर्म मजहब से मेल नहीं खाती या उस वातावरण के अनुकूल नहीं है—यह तर्क नितांत असंगत है। जो शासन विधान और समाजव्यवस्था एक देश के लिए कल्याणकारी है वह दूसरे देशों के लिये भी हितकर होगी। हाँ, महाजनी सभ्यता और गुर्गे अपनी शक्ति भर उसका विरोध करेंगे, उसके बारे में भ्रमजनक बातों का प्रचार करेंगे, जन साधारण को बहकायेंगे, उनकी आँखों में धूल झोकेंगे। पर जो सत्य है एक दिन उसी की विजय होगी और अवश्य होगी।"[32]

इस शोषण विहीन स्वराज के स्वप्न को साकार करने के लिये प्रेमचंद हाथ पर हाथ धर कर बैठने के लिये नहीं कहते। केवल स्वप्न देखने और बात करने से ही इस स्वराज की आकांक्षा पूरी नहीं होती। महाजनी सभ्यता के पैने दांतों और नाख़ूनों से वह भली-भाँति परिचित थे। उससे लड़ने के लिये उचित तैयारी और रणनीति की आवश्यकता को उन्होंने उस समय भी महसूस किया था। उन्होंने मृत्यु शय्या से आह्वान किया था "मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ेगा। दरिंदों के बीच में उनसे लड़ने के लिये हथियार बाँधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं चाहता।"[33]

प्रेमचंद की यह वसीयत, यह स्वप्न आज पूरा करने के लिये भागीरथ प्रयास करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. रजनी पामदत्त-आज का भारत, पृ0 161
2. वही, पृ. 161
3. अयोध्या सिंह-भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 369
4. सी.पी.एन.वकील-एस.के. मुरंजन-करेंसी एण्ड प्राइसेज इन इंडिया पृ0 188
5. अयोध्या सिंह-भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 397
6. रजनी पामदत्त-इंडिया टुडे, पृ. 407
7. अयोध्या सिंह-भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 397
8. टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 18 अप्रैल 1919
9. अयोध्या सिंह-भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 415
10. इंडियन डेली न्यूज, 10 मार्च 1922
11. उद्धृत-अयोध्या सिंह-भारत का मुक्ति संग्राम, पृ0 428
12. विविध प्रसंग, भाग-1, पृ0 19
13. अमृत राय सं0-चिट्ठी-पत्री : 1 : पृ0 132
14. विविध प्रसंग, भाग-1, पृ0 18
15. गबन, पृ0 170
16. विविध प्रसंग भाग-3-पृ0 165
17. प्रेमचंद की बातें-ज़माना, प्रेमचंद अंक-1937
18. विविध प्रसंग भाग-2, पृ0 23
19. प्रेमाश्रम, पृ0 227
20. प्रेमाश्रम, पृ0 43
21. वही, पृ0 164
22. विविध प्रसंग भाग-1, पृ0 269
23. वही, पृ0 263
24. प्रेमचंद घर में-शिवरानी देवी प्रेमचंद, पृ0 172
25. निर्मल कुमार बोस-सेलेक्शन फ्राम गांधी, पृ0 88: 1948
26. माराठी साहित्यकार टीकेकर के साथ वार्ता-प्रेमचंद-एक अध्ययन डा0 राजेश्वर गुरू, पृ0 101
27. प्रेमचंद घर में, शिवरानी देवी प्रेमचंद, पृ0 110
28. गबन, पृ0
29. गोदान पृ0 137
30. वही, पृ0
31. आहुति : हंस, नवम्बर 1930
32. महाजनी सभ्यता-प्रेमचंद स्मृति, पृ0 264
33. मंगलसूत्र और अन्य रचनाएँ, पृ0 390

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचंद जयंती के अवसर पर

प्रेमचन्द का साहित्य : संस्कृति और भाषा

रामकली सराफ

किसी देश के साहित्य का संबंध उस देश की संस्कृति और परंपरा से होता है और साहित्य की भाषा उस सांस्कृतिक चेतना का अभिन्न अंग होती है। प्रेमचंद अपने साहित्य में जिस संस्कृति के पक्षधर बन उपस्थित हुए वह जनसंस्कृति थी। इस संस्कृति की स्थापना हेतु वे बराबर रचनात्मक और वैचारिक संघर्ष करते रहे। संस्कृति का पूँजीभूत रूप रचनाकार की विचारधारात्मक प्रतिबद्धता, सामाजिक विचारों और कला-साहित्य के नाना रूपों को प्रत्यक्ष करता है। प्रेमचंद की लेखकीय प्रतिबद्धता मनुष्य के चिंतन और सौंदर्य-बोध को जीवंत रूप देने और उदात्त जीवन मूल्यों से बद्ध हो मनुष्यता के अपरिमित विस्तार के रूप में उनके लेखन का हिस्सा बनी। प्रेमचंद का सीधा जुड़ाव समाज के सर्वाधिक उत्पीड़ित वर्ग-किसानों, खेतिहर मजदूरों, अछूतों और स्त्रियों से था। उन्होंने जिस धरती की गंध को, अपने अत्यंत आत्मीय ग्राम्य-जीवन और ग्राम्य, परिवेश को अपनी रचनाशीलता में संजोया, उसी के अनुरूप अनुभूति, विचार और अभिव्यक्ति-माध्यमों का इस्तेमाल किया। जन सामान्य की ज़िंदगी से जुड़ी सहज-सरल अनगढ़ भाषा का ऐसा रचनात्मक प्रयोग किया कि यह सहज ही पाठकीय चेतना का अंग बन जाती है। अपने समाज और समय के अंतर्विरोधों के प्रति उनका आलोचनात्मक रुख, उनकी जनसंपृक्ति और चरित्रों की अदम्य जिजीविषा और संघर्ष क्षमता के मूल में भाषा का प्रभावी-ओजस्वी रूप रहा है, जो उन्हें विशिष्ट बनाता है। साहित्य और जीवन के प्रति गहरी अंतर्सम्बद्धता ही है, जिसने प्रेमचंद की रचनात्मक प्रतिभा और कलात्मक रूपों के प्रति पूरे विश्व को आकृष्ट किया। उनका जन-जीवन के प्रति गहरा लगाव, उनके आंतरिक जीवन का उद्घाटन, आपसी करुणा, सहानुभूति, प्रेम और सहयोग का सार्वभौमिक मानवीय स्वरूप जो भिन्न पृष्ठभूमि, अलग जीवन-पद्धति, अलग रीति-रिवाज़ों वाले दूसरे देश के लोगों के लिए अहम् बन जाता है। व्यापक मानवीयता के धरातल पर खड़ा उनका लेखन हर पढ़ने वाले को अपना महसूस होने लगता है, यही वजह है उनकी गहरी मानवीय चेतना और सद्भावना ने वैश्विक स्तर पर पाठकीय-चेतना को नयी जागृति दी।

दरअसल, लेखन-रचनाशीलता स्वयं में एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जो निजी नहीं होती, व्यापक मनुष्यता के पक्ष में खड़ी हो अन्याय, उत्पीड़न और भेदभाव के प्रति संवेदनशील बनाती है। जाहिर है कि प्रेमचंद ने जनसामान्य के परे की संस्कृति और कला के पुराने रूपों यानि उन्हें आभिजात्य-सामंती प्रभावों से अलग कर विचारो-भावनाओं और कलागत प्रतिमानों का भिन्न दायरा निर्मित किया। साहित्य की अंतर्वस्तु ही नहीं बदली, शब्दावली ही बदल दी। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि 'हमें सुंदरता की कसौटी बदलनी होगी। अब तक यह कसौटी अमीरों और विलासिता के ढंग की थी। कला नाम था और अब भी है संकुचित रूप पूजा का। उसकी दृष्टि अभी भी इतनी व्यापक नहीं है कि जीवन-संग्राम में सौंदर्य का परमोत्कर्ष देखें।' स्पष्ट ही सौंदर्य के कला के प्रतिमान रचना के भीतर से नहीं वरन् जनमानस, उनका परिवेश, क्रियाकलाप, चिंतन और इरादों का द्वन्द्वात्मक रूप ही उन प्रतिमानों को निर्मित करता है। सुंदरता की, सच्चाई की जीवनसंबद्ध व्याख्या, जनसामान्य के दुःखदर्द, स्थितियों के साथ उनका घात-प्रतिघात का, उनकी आशा-आकांक्षा और स्वप्नों का, उनकी ही भाषा और कलारूपों में खुलासा गंभीर ढंग से प्रेमचंद के साहित्य की खासियत बना। सदियों से चले आ रहे सामंतों-जमींदारों, महाजनों, धार्मिक ठेकेदारों की अमानवीय निर्ममता और अमूर्त सांस्कृतिक पाखंड को उन्होंने बड़ी शिद्दत से उधेड़ा, जिन्होंने समाज को रुग्ण और जड़ बना दिया था। ये प्रेमचंद ही थे कि पहली बार दीन-हीन निरीह पात्र नायक के पद पर आसीन हुए। साहित्य में मानवीय गरिमा, मानवीय आस्था और आशावादिता का गहरा भाव प्रस्फुटित हुआ। वे बड़े मानवतावादी रचनाकार बन उपस्थित हुए।

उनकी चिंता का केन्द्र बिन्दु ही था, विपरीत परिस्थितियों की मार झेलते आम लोगों की नियति, बेबसी और यातना से मुक्ति की राह कैसे निर्मित हो? कैसे जनचेतना अपने भाग्य की विधात्री स्वयं बने? उनके भीतर सुषुप्त पड़ी उनकी क्रियमाण क्षमता कैसे सक्रिय हो? इन बृहत्तर मानवीय प्रश्नों से संबद्ध हो उनका भाषाई मुहावरा ज़्यादा बृहद्, प्रासंगिक और आत्मीय सहजता से संबद्ध हुआ। अभाव और दुख के दंश का गहरा अहसास और उनके भीतर से सुख और खुशी की खोज की छटपटाहट और अभिव्यक्ति साधारण रचनाधर्मिता से संबद्ध कृत्य नहीं है। यह महान बड़े रचनाकार की जागरुक-संवेदनशील दृष्टि के साथ ही भाषायी धरातल पर अधिक वास्तविक, कलात्मक और सहज होने का परिणाम है। उन्होंने 'दो बैलों की कथा', 'सवासेर गेहूँ', 'पंच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर', 'विध्वंस' जैसी कई कहानियाँ सीधे आख्यान शैली में लिखीं जिनका सशक्त कथा-तत्व (कन्टेन्ट) ही शिल्पगत सहजता का प्रेरक बना। जनजीवन से सीधा गहरा समग्र लगाव, वैसा ही आत्मीयता भरा 'कहन' का ढंग और अपनत्वभरी सहज-सरल प्रभावमयी भाषा। लेकिन सहजता-सरलता के भीतर छिपी जटिलता, असाधारण के भीतर साधारण। कठिन से कठिन बात को, पेचीदे यथार्थ को, सरल ढंग से सीधे कथनों के माध्यम से उपस्थित कर सहज संप्रेषणीय बनाना, जिससे वास्तविकता का एक-एक रेशा खुलता जाता है, जिसको पढ़ा से पढ़ा भी पढ़े और कम से कम पढ़ा साधारण आदमी भी सहज ही समझ-पढ़ ले। 'विध्वंस' कहानी का प्रारंभ करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं—'ज़िला-बनारस में वीरा नाम का एक गाँव है, वहाँ एक विधवा वृद्धा संतानहीन गोड़िन रहती थी, जिसका भुनगी नाम था। उसके पास एक धुर भी ज़मीन न थी और न कहने को घर ही था। उसके जीवन का सहारा केवल एक भाड़ था।' हुंकारी भरते हुए सुनने का रस जन-मन पर स्थायी प्रभाव बनाता है, यह है उनकी 'कहन' शैली जो सीधे जनचेतना का हिस्सा बनती है। पर प्रेमचंद द्वारा अपनाया गया यह रास्ता इतना सीधा-सरल सपाट और नियमित नहीं है, यह अत्यंत टेढ़ा-मेड़ा है। लेकिन यह प्रेमचंद की ही सामर्थ्य है कि वे जटिलतम सच्चाईयों को भी अत्यंत सादगी और सहजता से अभिव्यक्ति देते जनजीवन के भीतर घर किए हुए वैषम्यों का खुलासा करते चलते हैं। गाँव की ग़रीबी का चित्र उकेरते हैं : 'गाँव के लोग प्रायः एक बेला चबैना या सत्तु पर निर्वाह करते ही हैं, इसलिए भुनगी के भाड़ पर नित्य भीड़ लगी रहती है।' इसी के साथ बड़ी शिद्दत से पाठकों को यह भी बताते हैं कि 'जिस दिन उसे उदयभानु पाण्डेय के दाने भूनने पड़ते थे, उस दिन उसे भूखे ही सो रहना पड़ता था।' भुनगी विवश थी मुफ़्त में उनका दाना भूनने के लिए, पर उसके भीतर धीरे-धीरे जागृति आती है। भीतर पैदा होती सजगता के कारण उसका आत्मबल बढ़ता है और वह एक दिन स्वयं आग की माफ़िक भभक उठती है, भुनगी : 'पंडित जी कौन से मेरी रोटियाँ चला देते हैं? कौन मेरे आँसू पोंछ देते हैं। अपना रकत जलाती हूँ तब कहीं दाना मिलता है। पर जब देखो खोपड़ी पर सवार रहते हैं, इसीलिए न कि उनकी चार अंगुल धरती पर मेरा निस्तार हो रहा है। क्या इतनी सी जमीन का इतना मोल ?' पानी सी बहती भाषा, उसमें समोया गया व्यापक जीवन-प्रवाह। जाहिर है कि भुनगी का यह बढ़-चढ़कर बोलना पंडित जी को नागवार गुजरता है, उन्हें यह सब क्यों बर्दाश्त हो? वे भुनगी की भाड़ को ही खुदवा देते हैं। वह हिम्मत नहीं हारती, वह भाड़ को पुनर्निर्मित करती है। प्रेमचंद के चरित्रों के भीतर पैठी यह अद्भुत जिजीविषा शक्ति है। वे चरित्रों को ऊँचाई देते हैं, संघर्ष-क्षमता भरते हैं। 'रंगभूमि' के सूरदास को भला कौन भूल सकता है? मरने को मर जाता है, पर अपनी जमीन को नहीं छोड़ता, भुनगी भी अपनी जमीन को क्यों छोड़े? अंततः झोपड़े में आग लगा दी जाती है और वह उसमें कूदकर मर जाती है। यह प्रेमचंद के बूते की बात थी कि अंतस् को हिला देने वाली दर्दनाक सच्चाई को उन्होंने इतना बड़ा कैनवास दिया कि एक छोटी सी कहानी में सामाजिक-सांस्कृतिक अंतर्विरोधों और पारंपरिक संबंधों का पूरा ढाँचा ही समाविष्ट हो गया। कहानी में ज़िंदगी की, युग की धड़कन को सहज ही महसूस किया जा सकता है।

दरअसल प्रेमचंद के रचनाशीलता में समाहित लोकजीवन का सौंदर्यबोध, उसका बहुआयामी रूप, उसका सच सीधा और सपाट नहीं है, वह अत्यंत जटिल है, उसकी नाना परतें हैं, प्रेमचंद उनका सामान्यीकरण करते हैं—सहज, साफ़ और सीधी भाषा में बिना किसी बनावट के। यही वह भूमि है, जहाँ अंतर्विरोधों से पगा संश्लिष्ट यथार्थ और ज़िंदगी से जुटी सच्चाईयाँ और उनसे बद्ध जीवन की वास्तविक नियति को भुगतते चरित्र खास न रहकर सर्वसामान्य के हो जाते हैं। 'ईदगाह' कहानी में एक सामान्य सा चिमटा अपूर्व करतबों, अनोखे गुणों की खान बन अनहोने बखान में बदल जाता है। वाक्य के वाक्य पूरे संरचनात्मक रचाव में कहानी के प्रभाव को सघन बनाते हैं। केवल बाल मनोविज्ञान ही नहीं, जहाँ माता-पिता का न होना, अभाव और निर्धनता की व्यथा-कथा के साथ आंतरिक मनोभावों का विशाल फलक है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य है और उसमें हामिद की कीमती पूँजी 'तीन पैसे' है, जिससे हामिद 'चिमटा' खरीदता है। बाह्य के साथ आंतरिक द्वन्द्व का सहज भाषाई विवरण और उसमें अंतर्ग्रथित समाज औरर बालक हामिद की निश्छल तर्कशक्ति, द्वन्द्वशक्ति, द्वन्द्वबोध कहानी को मानवीय मूल्यों के सघन अहसास से संपृक्त करता है। टिकाऊ चिमटा नहीं है, टिकाऊ है दादी के प्रति गहरा लगाव, टिकाऊ है गहरी मानवीय संवेदना। आज भी कहानी पढ़ने पर उतनी ही असरकारी। 'ऐसी लगभग पचास कहानियाँ है, जिन्हें बड़े चाव से बालक पढ़ते हैं, जिन्हें संसार के श्रेष्ठतम बाल साहित्य के समकक्ष रखा जा सकता है।' फिराक गोरखपुरी के इस 'कहन' के पीछे यथार्थ से जन्मीं ताकत और गहरी मानवीय दृष्टि है जो आज भी हमें प्रेमचंद की ओर खींचे ले जाती है, उनके पास खड़ा करती है। प्रेमचंद जनभाषा के स्तर तक भाषा की सरलता को तवज्जो देते हैं। निश्चित ही उनके यहाँ जीवन और रचना एकमएक है। लेखन में वे रचनाकार की बजाय स्वयं रचना बन उपस्थित हुए, जिसकी वजह से रचना और पाठक में कोई दूरी नहीं रह जाती वरन् परस्पर सीधा संवाद होता है, सीधा संपर्क, सीधा संप्रेषण। यही कारण है कि प्रेमचंद के लेखन का दायरा विस्तृत परिधि के बीच पसरा, सार्वभौमिक रूप ले लेता है, सबकी चेतना का संस्पर्श करता है, झकझोरता है। उनका उद्देश्य स्पष्ट था कि वे न्याय-अन्याय, सत्-असत्, अच्छा-खराब के द्वन्द्व का एक खाका बनाकर असत बुरे और अन्याय के विरोध में लड़ने का, संघर्ष करने का नैतिक साहस और हिम्मत चरित्रों को देते हैं, आत्मविश्वास भरते हैं, चारित्रिक दृढ़ता देते हैं। यही कारण है कि बहुधा वे स्वयं ही कहानी के बीच में प्रकट हो अपनी बात कहने से स्वयं को रोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं पाते थे, उनका लक्ष्य ही था पाठक तक अपनी बात को पहुँचाना। भले ही कुछ लोगों के लिए यह 'कलात्मक बोध' को क्षति पहुँचाने जैसा रहा हो। हृदय-परिवर्तन या आदर्शवाद का सहारा लेने के मूल में उनका गहरा मानवीय बोध-नैतिक बोध, राष्ट्र की नियति के प्रति गहरे लगाव को ही प्रदर्शित करता है। हालांकि धीरे- धीरे वे उससे मुक्त होते चलते हैं, उनकी दृष्टि और खरी और पैनी होती चली जाती है, 'पूस की रात' और 'कफ़न' कहानियाँ इसका सशक्त उदाहरण है। अन्यायकारी तंत्र का, मशीनरी के बारीक रूप से अत्यंत सूक्ष्मता से खुलासा करते हैं। उनकी लेखन-प्रक्रिया में एक गतिशीलता है, परिवार-समाज, आपसी रिश्तों, मित्र और शत्रु की पहचान सभी जगह भाषाई ढाँचा भी उतना ही जीवंत, कहीं मर्माहत करने वाला तो कहीं तीखे तेवरों से संस्पृक्त हो औपनिवेशिक सत्ता का, सामंती पूँजीवादी सत्ता का, भाषा का द्वन्द्व निर्मित करता है। भाषा और संस्कृति के बीच जीवन की बहुरंगी छवियों का ताना-बाना बुनती उनकी कथन-पद्धति अत्यंत आत्मीय भावबोधों से युक्त सहज पठनीय है। युगीन विशुद्ध मनोरंजन और चौंकाऊपन से अलग जीवन के निकट खड़ा भाषाई-वाक्य विन्यास, कथन की सहजता में वक्रता लिए ज़िंदगी की अनेक उलझी गुत्थियों को खोलता कथ्य को प्रभावी रूप देता है। बोलचाल की भाषा की रचनात्मकता में ढालने की उनमें अद्भुत सूझ है। उन्होंने लाक्षणिक प्रयोग किए पर सरलता और सहजता के स्तर पर। बावजूद इसके कलात्मक सौष्ठव में कोई कमी नहीं है, भाषा में व्यंग्य है, विनोद है, उपमा है, उत्प्रेक्षा है, मुहावरा है। जीवंत, बोलता हुआ भाषाई रचाव सृजनात्मक भाषा के, रचनात्मक भाषा के रचनाकार बन अपने लेखन में उपस्थित हैं प्रेमचंद। अपनी रचनाओं में मनुष्य को बौना बनाने वाली और स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने वाली ताकतों की क्षुद्रता उनके ओछेपन की खरी पहचान करवाते हैं प्रेमचंद। अन्यायकारी ताकतों की स्पष्ट पहचान के साथ अपनी तरफदारी की गंभीर चिंता को उन्होंने सृजनात्मक रूप दिया है। 'मजूरी हम करें मजा वे लूटें', हल्कू के जीवन के इस विडंबनात्मक यथार्थ की व्यंग्यपरक अभिव्यक्ति, जिसे अपने समूचे सांस्कृतिक स्तर पर संस्कारों के प्रसार में पाठक महसूस करता है। जाहिर है कि व्यंग्यात्मक तेवर प्रतिपक्ष को स्पष्ट करता है। प्रेमचंद प्रतिक्रिया देने से नहीं चूकते 'कफ़न' हो या 'गोदान या अन्य, अंतर्निहित ढंग से रचनात्मकता में समोया गया है उसे। सामाजिक यथार्थ से टकराने वाली प्रतिध्वनियों को वे पकड़ते हैं, एक अंतर्लय होती है रचना के भीतर जो प्रसारित होकर पाठकीय संवेदना पर अर्थपूर्ण संघात करती है। पाठक यथास्थिति को बदलने की आंतरिक छटपटाहट को जीने लगता है।

निश्चित ही प्रेमचंद की जनचेतना को दिशाबद्ध करने की साफ़ दृष्टि ने और अन्यायकारी शक्तियों की सच्ची पहचान ने उनके साहित्य को अर्थवान बनाया। अवश्य ही उनकी इतिहास और संस्कृति की समझ अत्यंत विकसित थी। उनका आलोचनात्मक विवेक, इतिहास संबद्ध, चिंतन, वर्तमान के खरे विश्लेषण के साथ भविष्य की चिंता से बद्ध हो संस्कृति का ताना-बाना निर्मित करता है। मूल्यबोध उनकी संस्कृति चिंता का अभिन्न हिस्सा रहा है। इतिहास की तरह संस्कृति भी परंपरा और विरासत का संश्लेषण करती है। प्रेमचंद मानवतावादी संस्कृति के प्रबल पक्षधर बनकर उपस्थित हैं अपने लेखन में। उनका उद्देश्य विभिन्न घटनाओं पात्रों और उनके मनोभावों में अंतर्संबद्धता स्थापित कर एकसूत्रता देने का रहा है ताकि संपूर्ण जीवन-प्रक्रिया का रूप खुलकर सामने आ सके। निश्चितरूपेण घटनाओं और चरित्रों की मनोभूमि को पूरे परिवेश की जीवंतता में प्रस्तुत करने हेतु जिस सजावरहित भदेस, अनगढ़ भाषा का इस्तेमाल किया है, वह 'जरूरी ज़िंदगी की भाषा' है। यथार्थ के ठोस संदर्भों की उपस्थिति में भाषा उसका प्रतिबिंब बनकर उभरी है। उनकी रचनाशीलता में ज़िंदगी का जो ठोस, संश्लिष्ट बहुविध रूप उपस्थित हुआ है, उसके मूल में भाषायी वैविध्य, नये-नये शब्दों की निर्मिति और उन शब्दों में छिपे अपार भाव और क्रिया संपदा का योग है। प्रेमचंद ने सीधे लोक से शब्दों को लिया, उन्हीं के बीच मनुष्य की क्रियायें, चेष्टाएँ और सोच तथा चिंतन का विकास हुआ। भोजपुरी और अवधी के अनेक शब्दों को सहज ही ग्रहण किया। प्रेमचंद ने स्वयं ही कहा : 'सीधी सादी ठेठ हिन्दी' यही 'ठेठ' हिन्दी का ठाठ, उनकी रचनाशीलता में प्रवाहित होता-हिलोरें लेता उपस्थित है, जो सीधे जनमानस को उनके क्रियाकलापों और परिवेश को जीवंत बनाता, वैषम्यों का खुलासा करता है। राहुल जी ने लिखा : 'कोई भी साहित्यिक भाषा जीवटवाली भाषा नहीं हो सकती, जिसका अपनी स्थानीय भाषा (डाइलेक्ट) से अविच्छिन्न संबंध नहीं है। हमारे प्रेमचंद भोजपुरी भाषा-भाषी थे, उन्होंने केवल शहर के मध्यवर्ग को ही चित्रित नहीं करना चाहा। उनकी अमर लेखनी जनसाधारण की ओर दौड़ी और जनजीवन को चित्रित करने में यह भोजपुरी के कितने ही शब्दों को लेने के लिए मजबूर हुई। इतना ही नहीं, बल्कि जीवन के जिन अंगों को दूसरे हिन्दी लेखक शब्दों की कठिनाईयों के कारण अधूरा छोड़ देते हैं, उसे हमारे कौरवी क्षेत्र के साहित्यकार ने पूरा किया। (राहुल निबंधावली, पृ0 34)

वस्तुतः यह भाषाई लचीलापन है, जो मानवीय श्रेष्ठ क्रियाओं को लोच देता उपस्थित है, उनकी लेखकीय रचना प्रक्रिया में। प्रेमचंद उर्दू से हिन्दी में आए, उर्दू का संस्कार भी उनकी हिन्दी से झांकता है। संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी के शब्दों का इस्तेमाल किया जो सहज ही हिन्दी भाषा का अंग बन उसकी संप्रेषणीयता में सहायक हुआ। वास्तव में प्रेमचंद की सहज प्रवाहमयी भाषा में एक खुलापन है जिसमें न केवल उर्दू, जनपदीय और प्रादेशिक वरन् संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी के शब्द ही समाहित हो गये हैं। एक सामान्य आदमी के बातचीत के लहजे को रचनात्मकता में ढालकर उपस्थित करना प्रेमचंद के वश की ही बात थी। अनुभवों, भावों, विचारों और आपसी संबंधों की वैविध्यमयी अभिव्यक्ति के मूल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-एक शब्द और मुहावरा जीवंत रूप से अवस्थित है। किसानों मजदूरों की ज़िंदगी से जुड़ी सच्चाईयों का, अंतर्विरोधों को उन्हीं की भाषा में खुलासा आमजन के प्रति उनके गहरे रागात्मक लगाव का परिणाम है। ऐसी भाषा जो आदमी से आदमी को जोड़ती है। वास्तव में 'देहाती, उर्दू, अंग्रेजी और उनके मिश्रण से बनी अनेक प्रकार की भाषा शैलियाँ एक युग के आदान-प्रदान का इतिहास है।' (डॉ0 रामविलास शर्मा) युगीन जासूसी, तिलस्मी सम्मोहक भावबोधों से भिन्न अंतर्वस्तु और मानसिकता के निर्माण हेतु वे सामान्य-सहज रूप से नये शब्दों और मुहावरों से जुड़े, जो उनकी जनपक्षधर दृष्टि-संभावनाओं के विकास से बद्ध थी। कहीं कोई अमूर्तता नहीं, नफासत नहीं, आभिजात्यता नहीं। सर्वत्र भाषा का वस्तून्मुखी रूप ही प्रत्यक्ष हुआ है। कथ्य के भीतर पैठी यथार्थ से जन्मीं ताकत और गहरी मानवीय दृष्टि है, गहरा नैतिक बोध है, जो असुंदर अमानवीय और अहितकर के बदल देने की गहरी कामना से प्रेरित है। यहीं प्रेमचंद क्लासिक ऊँचाई का संस्पर्श करते है और उनकी भाषा क्लासिक जीवंतता का, जहाँ जीवन और रचना एकमएक हो जाते हैं। रचना और पाठक में कोई दूरी नहीं रह जाती, सीधा संप्रेषण सीधा संवाद। यही वैशिष्ट्य है, जिसने प्रेमचंद की रचनाशीलता को सार्वभौमिक रूप दिया पूरे विश्व को अपनी ओर आकृष्ट किया। आज प्रेमचंद वैश्विक क्षितिज पर लोकप्रिय हैं तो यह उनके लेखन की अंतर्निहित शक्ति है। उनकी साहित्यिक और सांस्कृतिक गहरी-जटिल जीवनानुभूतियों से निःसृत प्रेमचंद की जो सहज भाषा है, जो पूरे विश्व के कल्याण की, सुंदरता की, शांति की भाषा बन उपस्थित है, जिसने प्रेमचंद के लेखन को, पाठ को वैश्विक क्षितिज तक लोकप्रिय बनाया, रचनात्मक समृद्धि दी।

एन-1/ए-1/61, शशि नगर कॉलोनी
सामने घाट रोड, वाराणसी-221005 (उ0प्र0)

ग़ज़लें

वशिष्ठ अनूप

::एक ::

बच्चियाँ, लड़कियाँ, औरतें;
काँच की खिड़कियाँ औरतें।

कोख से ही सज़ा मिल रही,
की हैं क्या गलतियाँ औरतें।

इक हवालात-सी ज़िंदगी,
गालियाँ, झिड़कियाँ औरतें।

रोज़ जल-जल उजाला करें,
मोम की बत्तियाँ औरतें।

प्यार-ममता की प्रतिमूर्ति हैं,
हैं मधुर लोरियाँ औरतें।

फूल हैं, तितलियाँ हैं कभी,
तेज़ मधुमक्खियाँ औरतें।

कितने लोगों का सम्बल बनीं
कुछ की कमजोरियाँ औरतें।

दर्द उनका बगावत पे है,
कस रहीं मुट्ठियाँ औरतें।

::दो::

कहीं तलाक कहीं अग्नि-परीक्षाएँ हैं,
आज भी इन्द्र हैं, गौतम हैं, अहल्याएँ हैं।

प्यार की राह में दुष्यंत जिन्हें छोड़ गये,
भटकती फिर रहीं वन-वन शकुन्तलाएँ हैं।

ये जो मासूम पल रहे हैं यहाँ लव-कुश से,
हमारे युग की ये सीता की तमन्नाएँ हैं।

क़दम-क़दम पे यहाँ बेड़ियाँ हैं, पहरे हैं,
हरेक साँस पर प्राचीन अर्गलाएँ हैं।

ये ब्याह-शादियाँ हैं खेल गड्डे-गुड़िया के,
कहीं भी हाँक दो खूँटे से बंधी गायें हैं।

हौसले हो रहे बुलंद, बँध रही मुट्ठी,
रफ़्ता-रफ़्ता ये गर्म हो रही हवाएँ हैं।

प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग,
बी0एच0यू0,
वाराणसी-221005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचंद जयंती के अवसर पर

बदलते समाज का साहित्य

देवी प्रसाद मौर्य

भारतीय समाज जितनी तेज़ी से बदल रहा है, उसे देखकर पिछली पीढ़ी के लोग बहुत हैरान हैं। साठ-सत्तर साल के लोगों को लगातार बदलते जमाने के साथ सामंजस्य बनाये रखने की फिकर बराबर बनी रहती है। अपने नाती-पोतियों की निगाह में दादाजी, नानाजी पुराने ज़माने के जीव हैं-उनके ज़माने के मेले-ठेले, खेत-खलिहान, मौसमी फलबहारों की मिठास गंध, शादी बारातों की हँसी ठिठोली, नौटंकी-भंड़ई के किस्से-आधुनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में किस्से-कहानियाँ ही बनकर रह गये हैं। खुद उनकी जीवनशैली भी बच्चों को मज़ाक लगती है—हमारे दादाजी तो बस....। दादी जी, दादा जी हर परिवार में एक ग़ैर ज़रूरी सामान की तरह किसी कोने में बीतती ज़िंदगी जी रहे हैं। जो कुछ था अब नहीं रहा-उसके बीत जाने का विषाद उनकी बैठकों, वार्ताओं में पसरा हुआ है। आज आप शहर की सड़क पर खड़े हों या गाँव-देहात के रास्तों पर-लोग भागे जा रहे हैं। आपाधापी में किसी को खड़े होकर किसी के दुःख-सुख के हालचाल पूछने की फुरसत नहीं है। समय है कि आगे आगे और समाज है कि पीछे-पीछे चला जा रहा है। किताबों में हम पढ़ते हैं कि भारतीय समाज एक अपरिवर्तनीय शाश्वत जीवन मूल्यों वाला समाज है। हमारी परंपराओं, सामाजिक व्यवहार, धार्मिक कर्मकाण्ड और अनुष्ठान, पर्व-त्यौहार, तीरथ-व्रत-पीढ़ी दर पीढ़ी अविरत सतत् एक शांत बहती नदी की धारा सी प्रवाहित रही है—पर वह शिप्रा, वह गंगा आज कचरे से भरा नाला बन कर रह गयी है, पर्व त्यौहार पर उनके किनारे इकट्ठे होने वाले तीर्थयात्रियों की श्रद्धा को समेट पाना इन दिव्य नदियों के लिये मुश्किल हो गया है।

अभी वह पीढ़ी पूरी तरह समाप्त नही हुयी है जिसने अपनी जवानी में जोर-जोर से नारे लगाये थे-एक धक्का और दो-सड़ी व्यवस्था तोड़ दो। वह व्यवस्था तो टूट गयी, जिस नये जमाने के लिये गाँव-गाँव, गली-गली, बैनर-झण्डों के साथ जुलूस निकालते थे। क्या सचमुच वह जमाना आ गया ? राजनैतिक आज़ादी मिल जाने के बाद सब कुछ राजनीतिमय हो गया है। भाई लोग बराबर याद दिलातें रहते हैं—भावुक मत बनो, तय करो तुम्हारी राजनीति क्या है। कहने की ज़रूरत नही कि पिछले साठ सालों में जो राजनीति दिखाई दे रही है वहाँ असामाजिक तत्वों और दलालों की भीड़ ही बढ़ी है। तो क्या पूरा समाज ही गुण्डे और दलालों का हो गया है ? समाज विश्रृंखलित हुआ है, समाज की प्रतिष्ठा गिरी है-अभी तक समाज का कोई नया स्वरूप गठित नहीं हो पाया है। इसलिये यहाँ केवल वे मुखर हैं जो तोड़ सकते हैं, जो गिरा सकते हैं, बनाने में-रचना करने में इनकी कोर्ट दिलचस्पी नहीं है। इस तरह तोड़ने-छीनने से वे लोगों को आतंकित कर सकते हैं, लोगों पर धाक जमा सकते हैं। मजे की बात है कि हम चारों तरफ पुराने को बिखरता हुआ टूटता हुआ देख रहे हैं और हमें कहा जा रहा है कि हम दुनिया की एक बड़ी ताकत बन चुके हैं, हमने दुनिया का सबसे बड़ा गणतंत्र निर्मित किया है। छब्बीस जनवरी, पंद्रह अगस्त को हमें याद दिलाया जाता है कि देखो हमारा लोकतंत्र साठ-साल-बासठ साल पुराना हो गया। विचित्र बात है विसर्जित होते हुए हम सर्जन का, संरचना का पाठ पढ़ा रहे हैं। यथार्थ और माया का विचित्र संगम है—स्वीकार-अस्वीकार के इस व्यामोह में हम अपनी ही अवस्थिति को कैसे अस्वीकार कर सकते हैं। समय की सामाजिकता में यदि समाज को बचे रहना है तो रचना भी समाज को ही करनी होगी। रचनाधर्मी समाज ही टिकता है—पाँच हज़ार वर्ष से भी ज़्यादा समय से जो समाज अभी तक बचा हुआ है, उस भारतीय समाज की रचना धर्मिता के चुक जाने की बात हम कैसे स्वीकार करें ?

समाज की बुनावट ही अमूर्त संबंधों से होती है, यदि मानवीय संबंध न हों तो समाज का अस्तित्व भी नहीं रहेगा। ये मानवीय संबंध कुछ अमूर्त सर्व स्वीकृत विचारों को समाज के भीतर मूर्तस्वरूप प्रदान करते हैं। अपने दादा परदादाओं से हम सुनते चले आ रहे हैं—धर्म सनातन है, इसका न कोई आदि है, न कोई अन्त, कितनी तरह की विपत्तियाँ आईं, अत्याचार हुये, धर्म का बाल बांका भी नहीं हुआ। 'जब-जब होहिं धरम की हानी। बाढ़े पाप मूढ़ अभिमानी। तब तक लेहुं मनुज अवतारा। मुनि जनन के काज संवारा'-प्रभु की शाश्वत लीला है। धर्म को बचाने के लिये साक्षात भगवान ही मनुष्य रूप में अवतार लेते हैं। पन्द्रह सौ वर्षों से भी ज़्यादा समय से स्थिर रहे हिन्दू समाज में यह प्रबल धारणा बनी हुयी है कि धर्म हमारी रक्षा करता है इसलिये हमें धर्म की रक्षा करनी चाहिए- धर्मो रक्षति रक्षितः। चालीस साल हो गये चन्द्रमा ग्रह की सतह पर मनुष्यों के पहुँचने और वहाँ की धरती के टुकड़े लाने को, परंतु अभी हिन्दू धर्माचार्य लोगों को समझा रहे हैं कि हमारा चन्द्रलोक-सूर्यलोक तो अलग हैं, मनुष्य की औकात नहीं उसे छूने की। इसी तरह इस्लाम के मुल्ला-मौलवी, ईसाईयों के पादरी परंपरागत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक विश्वासों को अभी भी बचाये रखने की पूरी कोशिशों में लगे हुये हैं। मानव समाजों की स्थिरता (या यों कहें कि जड़ता) के पीछे बहुत ही सामान्य क़िस्म के विचारों की निष्ठा कितनी प्रबल होती हैं उसे इक्कीसवीं सदी के वैश्विक एकीकरण और वैज्ञानिक प्रौद्योगिक प्रगति के बावजूद धार्मिक अंधविश्वासों और सांप्रदायिक आतंकवाद के भीषण प्रहारों में हम रोज़-बरोज़ देख रहे हैं। हम माने न माने तथ्यों की सचाई तो इतनी ही कठोर है। यह मानव जाति की नियति है कि यदि उसे समाज की तरह विभिन्न मानव समूहों में रहना है तो उसके लिये कोई न कोई सर्वमान्य विश्वास को बनाये रखना पड़ता है।

हिन्दुस्तानी समाज का वर्षों का पुराना विश्वास दरक चुका है, परिस्थितियों के वशीभूत सैकड़ों वर्षों में जो हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव तैयार हुआ था-गंगा जमुनी तहरीक बनी थी उसमें गहरी दरार आ गयी है। जातियों संप्रदायों की परंपरागत सामूहिक अस्मिता संकट ग्रस्त है-उनकी सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की क्षमता अब चुक गयी है। नये संवैधानिक मूल्यों और कानूनों की वजह से पुराने जाति, पंथ, धर्म के विभेद अस्वीकृत कर दिये गये हैं, किंतु व्यवहार में अभी भी उन्हीं की आड़ में स्वार्थ सिद्ध हो रहे हैं। न्याय, कानून, परंपरा, धार्मिक विश्वास, सब कुछ अस्थिर है, उनके बीच व्यक्ति मानसिक रूप से असुरक्षित होकर विसंगत सामाजिक रूढ़ियों को आधेमन से ढ़ो रहा है। यूरोप के समाजों में भी सत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व ऐसा ही विसंगतिपूर्ण विद्रूप भरा जनजीवन प्रकट हुआ था-व्यक्ति का अस्तित्व की दांव पर लगा हुआ था, जिसे सार्त्र, काफ़्का, कामू जैसे संवेदनशील बुद्धिजीवियों ने अपने लेखन में अभिव्यक्त किया। भारतीय समाज में भी आज सभी तरह के सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत और मूल्य विशृंखलित हो चुके हैं। पुराना पूरी तरह से छोड़ा नहीं जा रहा है, नया जो कुछ सिर पर आ पड़ा है उससे सामंजस्य बनाना मुश्किल हो रहा है। संशय, अविश्वास, विद्रूप, असुरक्षा और विभ्रम के बीच हम यह तय ही नहीं कर पा रहे हैं कि यथार्थ क्या है और झूठ क्या है ? पुराने धार्मिक मायामोह में और नयी अवधारणाओं-बाजार, आधुनिकता, विचारधारा के प्रपंच में क्या बुनियादी भेद है ?

बदलते समाज के सामाजिक संज्ञान को सामाजिक विज्ञान की विभिन्न विधाओं-समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, सामाजिक मनोविज्ञान, राजनीति शास्त्र आदि में तथ्यात्मक ढंग से विवेचित किया जाता है किन्तु सामान्यजन के संज्ञान की सहज अभिव्यक्ति रचनात्मक साहित्य में ही हो पाती है। उपन्यास, कहानी, कविता ललित निबंध, रिपोर्ताज जैसे शिल्प में जो कि नये इलैक्ट्रानिक माध्यमों के कारण फिल्म एवं टेलिविजन के दृश्य-श्रव्य रूप में भी परिवर्तित होते जा रहे हैं—रागात्मक ऐन्द्रिकता होती है। इस रागात्मक ऐन्द्रिकता के कारण सहभोक्ता-पाठक दर्शन रचना के साथ अपने चारों तरफ के संसार को पुनर्जीवित करता है तथा जब चाहता है तब बार-बार अनुभूत करता है। साहित्य के इसी गुण के कारण इसे सामाजिक रूपांतरण का सशक्त माध्यम माना गया है। भारतीय विचारक साहित्य को सर्वहित की भावना से सम्बद्ध करते हैं। सबके हित-सबके कल्याण की सामाजिकता में से साहित्य उद्भुत होता है। जीवन की नयी आपाधापी में जबकि प्रौद्योगिकी ने मनुष्य की प्रवृत्तियों को विविध यांत्रिक संसाधनों से घेर रखा है, एकांत साहित्य, विशेषकर मुद्रित साहित्य के साथ अनुभवों एवं भावनाओं के संसार में डूबने उतराने के अवसर कम होते जा रहे हैं-तब स्वाभाविक तौर पर साहित्य की प्रासंगिकता का प्रश्न उठता है। प्रौद्योगिकी जिस तेजी के साथ सामाजिकता और मानवीय संवेदनाओं को नियंत्रित करने की दिशा में बढ़ रही है वैसी स्थिति में तो साहित्य के औचित्य पर और अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है। यह आशंका अकारण नहीं है कि मनुष्य की मनुष्यता-सामाजिकता पर खतरे बढ़ रहे हैं (फुकुयामा की किताब 'अवर पोस्ट ह्यूमन फ्यूचर' इसी खतरे की ओर संकेत करती है।) तब मानवीय गुणों को बचाये रखने के साधन-ललित कला, साहित्य तथा आत्मिक सजगता (अध्यात्म) आदि को विकसित, तथा प्रचारित करने की सामाजिक जवाबदारी और अधिक बढ़ जाती है।

पश्चिमी सांस्कृतिक जगत में जो विविध प्रकार के अंतों की घोषणायें हो रही हैं, उनमें साहित्यकार (ऑथर) के अंत की घोषणा भी शामिल है। पाँच हज़ार वर्ष के लंबे अंतराल में प्राचीन भारतीय संस्कृति के सामने ऐसे अंत और उदय के कई प्रसंग आये हैं। इसलिये यहाँ के साहित्यकार के लिये तो यह स्थिति युग के प्रत्यावर्तन की है। यूरोपीय एवं अमेरिकी समाजों का यह अंतर-औद्योगिक प्रत्यावर्तन है। भारतीय समाज भी धीरे-धीरे उस तरफ़ बढ़ रहा है और कोई आश्चर्य नहीं कि कुछ ही वर्षों में हमारा युगों पुराना कृषि समाज पूरी तरह औद्योगीकृत हो जाय। वैश्विक एकीकरण की प्रक्रिया बहुत तीव्र है-हमें आर्थिक साम्राज्यवादी वैश्वीकरण का तो मुकाबला करना होगा किन्तु नयी उभरती हुयी वैश्विकता के साथ उचितं सामंजस्य बनाना पड़ेगा। ज्ञान-विज्ञान पूरे मानव जाति की सम्पत्ति है, मानवीय विकासक्रम में आयत्त विज्ञान और उसका उपयोग पूरे मानव जाति की भलाई के लिये है यूरोप की इस आधुनिकता को एशिया की प्राचीन सभ्यताओं ने भी अपने आगामी चरण की तरह स्वीकार कर लिया है। आधुनिकता और औद्योगीकरण की प्रक्रिया अभी भी हमारे यहाँ अधूरी है, किन्तु उत्तर औपनिवेशिक नयी स्थितियाँ जो उभर रही हैं उसके दबाव में उत्तर आधुनिकता भी हम पर ऊपर से हावी हो रही है। अस्तु, वर्तमान भारतीय समाज वैश्विक संदर्भ में अभी तीन तरह की सामाजिक अवस्थाओं को एक साथ जी रहा है-पूर्व आधुनिक, आधुनिक और उत्तर आधुनिक। मध्ययुगीन सामंती व्यवस्था टूट गयी है, किन्तु उसके चेतनागत प्रभाव अभी भी हमारी मानसिकता पर हावी हैं। शहरीकरण और औद्योगीकरण की आधुनिकता धीरे-धीरे गाँव-देहात तक पसर रही है। वित्तीय पूंजी के बलबूते बहुराष्ट्रीय कारपोरेट सुदूर इलाकों जंगलों और पिछड़े क्षेत्रों तक पहुँच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हैं, उसके साथ महानगरीय उपभोगवाद की बढ़ती प्रवृत्तियों के कारण हमारे यहाँ भी उत्तर आधुनिकतावाद का अर्थ विपर्यय सामने आने लगा है। स्वाभाविक है इन सबका मिला जुला प्रभाव हमारे साहित्य में दिखाई दे। सामंती समाज में साहित्य को लोकरंजन और रागात्मक प्रवृत्तियों के पोषणकर्त्ता साधन की तरह देखा गया। उसके फलस्वरूप भक्तिकाल एवं रीतिकाल का साहित्य आत्मरति और आत्म-विस्मृति का साधन बना। स्वामी भक्ति तथा शरणागति को सांस्कृतिक मूल्य की तरह लिया गया, वहाँ राजा और ईश्वर की सामाजिक जीवन के नियंता थे। औद्योगिक युग में जीवन के उपयोगी साधन यंत्रीकृत होकर पण्य बन जाते हैं, वहाँ बाजार सर्वशक्तिमान होता है, अमूर्त ईश्वर को अमूर्त बाजार स्थानापन्न कर देता है। बाजार की निर्मम सार्वभौमिकता में मनुष्य की सत्ता और सामाजिकता भी क्रय की वस्तु में परिणित हो जाती हैं तथा साहित्यकार से अपेक्षा की जाती है कि वह बाजार की माँग की आपूर्ति करे।

समाचार पत्र-पत्रिकाओं एवं इलैक्ट्रानिक संचार माध्यमों के जरिये रोज-बरोज जनजीवन के तरह-तरह के विवरणों को विरेचित होते हुए देखा जा सकता है। सामाजिक पतन शीलता और भ्रष्टाचार, हिंसा एवं अपराध, सांप्रदायिक आतंकवाद तथा वामपंथी माओवाद, आर्थिक तंगी के कारण होती आत्महत्यायें, प्रशासन और सामाजिक संस्थाओं का क्षरण, राज्यसत्ता की प्रभावहीनता, राजनैतिक दलों का झूठ-फरेब, धार्मिक पाखंड तथा अंधविश्वास, ग्रामीण क्षेत्र की दुर्दशा आदि-आदि बदलते समाज की विशृंखलताओं की सूचनायें जनता के सामने उलीचीं जा रही हैं। उधर साहित्य में भी इसी तरह का यथार्थवाद विपुल मात्रा में लिखा जा सकता है। देखने में यह आता है कि पत्रकारिता का यथार्थ साहित्य के यथार्थ से होड़ ले रहा है। पत्रकारों की आंकड़े बाजी और रिआलिटी इफेक्ट साहित्य के व्यंग्य तथा विचारधारा से हीं ज़्यादा लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं। इसी प्रसंग में याद आ रहा है कि साहित्यिक गोष्ठियों में अक्सर यह बात दुहराई जाती है कि पिछले साठ-सालों में हिन्दी साहित्य में 'गोदान' उपन्यास के बाद केवल दो अन्य उपन्यास 'मैला आँचल' और 'रागदरबारी' ही जन सामान्य की भावनाओं को उद्वेलित करने में कामयाब हुये। लिखा बहुत गया है—रचना कौशल विचारधारा, कथ्य और रचनात्मक उत्कृष्टता की दृष्टि से संभवतः बाद का कथा साहित्य और कविता कर्म पहले से ज़्यादा समृद्ध रहा हो सकता है, परंतु महसूस यही किया जा रहा है कि जनसामान्य की साहित्य में रुचि कम होती जा रही है। कारण और भी कई हो सकते हैं, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि जितना गहरे ढंग से संवेदनात्मक साहित्य जनमानस को छूता है उतना यथार्थपरक सूचनायें नहीं कर पातीं।

साहित्य समाज के सचेतन एवं संवेदनशील व्यक्तियों के द्वारा रचा जाता है, कहने की जरूरत नहीं है कि जो लोग साहित्य रचना कर रहे हैं उन्हें इन नयी स्थितियों का ज्ञान होगा। यदि आज साहित्य कर्म चुनौती भरा दिखाई देता है तो हमें स्मरण करना चाहिये कि पहले भी संकट ग्रस्त सभ्यताओं में तरह-तरह की यातनाओं और खतरों को झेलते हुए साहित्यकारों ने ऐसी रचनायें कीं जिनकी बदौलत समाज का पूरा परिदृश्य बदल गया। साहित्यकार भले ही सीधे-सीधे क्रांतिकारी नहीं दिखाई देता हो परंतु जनता की मानसिकता तैयार करने में तो उसकी महती भूमिका होती ही है। मानव समाज की आकांक्षाओं, संवेदनाओं का प्रकटीकरण यदि होना है तो साहित्य भी रहेगा और साहित्यकार भी। जो भी नयी चुनौतियाँ सामने हैं उनके प्रतिक्रमण के तरीके भी निकलेंगे, प्रतिरोध की ताकत भी बनेगी। जो लोग साहित्य को प्रतिरोध का माध्यम नहीं मानते हैं और लोकरंजन तथा आनंद के लिये ही लिखते हैं उनके सामने इस तरह के विचार नहीं आयेंगे। परंतु सच तो यह है कि मनोविनोद, हास्य व्यंग्य और कामनातृप्ति के लिये लोग अब लिखित साहित्य क्यों पढ़ेंगे जबकि फिल्म और टेलिविजन उससे ज़्यादा उत्तेजक ढंग से उन्हें प्रस्तुत कर सकते हैं ? मानवीय चेतना का साहित्य तीव्र जिजीविषा से निसृत होता है, वह हर स्थिति में लिखा जायेगा और लोग उसे ढूँढ कर पढ़ेंगे।

लोकतांत्रिक जन कल्याणकारी राज्य को जब आर्थिक उदारवाद की ओर मोड़ा गया तभी से पूंजीवादी आर्थिक तंत्र ने धीरे-धीरे हमारे समाजवादी ढाँचे के भीतर सेंध लगायी। और अब तो पश्चिमी पूंजीवादी तंत्र के सामने संस्कृति, कला साहित्य जैसी रचनात्मक प्रवृत्तियों को पीछे धकेल कर नकलचीपन और पिछलग्गू वृत्ति को प्रोत्साहित किया जा रहा है। पूंजीवादी व्यवस्था साहित्य को मन बहलावे के साधन से ज़्यादा महत्व नहीं देती है, इसलिये सामाजिक अन्याय एवं शोषण तथा मानवीय गरिमा को ध्वस्त करने वाले चित्रण से सत्ताधारी वर्ग को हमेशा परहेज रहता है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि यह व्यवस्था समझौता परस्त, छद्म आशावादी साहित्य को प्रोत्साहित और सम्मानित कर सामाजिक क्षेत्र में संतुष्ट तथा समृद्ध जीवन होने का भ्रम तैयार करती है। सामंती मानसिकता और पूँजीवादी व्यवहार का एक विचित्र घालमेल है हमारे समाज में, उसी की वजह से बौद्धिकों को दो अलग-अलग खेमे साफ़ दिखायी देते हैं— धार्मिकता, परंपरा और संस्कृति के पक्षधर भारतीय एक तरफ तो दूसरी तरफ औपनिवेशिक धारा प्रवाह से निकले विवेकवादी विश्वमानव। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में भारतीय नवजागरण और स्वातंत्र्य आंदोलन के प्रयासों से जो विवेकपूर्ण राष्ट्रीय सामाजिक चेतना जागृत हुयी थी उसे स्वार्थी राजनीति ने ध्वस्त कर दिया। उसका फायदा उठाया तत्त्ववादियों ने धार्मिक अंधविश्वास, सांप्रदायिक विग्रह और परस्पर अविश्वास फैलाकर। आधुनिकता तो आयी पर नकली प्रतिक्रिया की तरह, अंध राष्ट्रभक्ति और छद्म धर्म निरपेक्षता की तरह।

इस तरह की राष्ट्रीय विसंगति तथा संशयों के धुंधल के को साफ़ करने की जवाबदारी से बुद्धिवादी और साहित्यकार बच नहीं सकते हैं। हम देखते हैं कि इस चुनौती को ग़ैर-हिन्दी भाषी

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य जगत ने अपनी स्वायत्त संस्कृति तथा मातृभाषा की अस्मिता के रूप में ग्रहण किया है, इसलिये वहाँ साहित्यिक रचनात्मकता और उत्कृष्टता के प्रति स्वाभाविक उत्साह देखने में आता है। यदि हम यह मान भी लेवें कि राष्ट्रीय और राजनैतिक आंदोलनों में भाषायी वर्चस्व की दृष्टि से हिन्दी भाषा के विकास को विवादास्पद बनाया गया, तो भी हिन्दी साहित्यक क्षेत्र में उतनी रचनात्मकता और समर्पण भावना दृष्टिगत नहीं होती है जितनी कि बांग्ला, तमिल, मलयाली, मराठी आदि में है। हिन्दी भाषा के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व पर चर्चा करना एक अलग मुद्दा बन जायेगा किन्तु हिन्दी साहित्य की वर्तमान स्थिति पर नज़र डालें तो आमजनों के द्वारा पढ़ी जानेवाली साहित्यिक पत्रिकाओं का बंद होते जाना और साहित्यिक रचनाकर्म का केवल लेखकों, कवियों तथा अध्ययनकर्ताओं तक ही सिमट जाना एक दुःखद स्थिति है। इसका आशय तो स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य के अस्तित्व पर ही जबरदस्त दबाव है। हिन्दी साहित्य का प्रकाशन व्यवसाय कथा साहित्य तथा अनुवाद तक सिमट गया है, कविता के पाठक-लेखक कवि भर हैं और वैचारिक तथा गंभीर लेखन के लिये प्रकाशक साहित्यकार से पुस्तक बिकने की गारंटी तय करते हैं।

साफ़ है कि उपभोगवाद और कैरियरिज़्म ने जीवन के लालित्य तथा सौंदर्यानुभूति को पीछे धकेल दिया है। शहराती माध्यम वर्ग ने नये अवसरों का अच्छा लाभ उठाया है किन्तु कुलीन और सभ्रांत बनने की उनकी ज़रूरतें भी बढ़ी है, उन्हें पाने तथा एकत्र करने से फुरसत मिले तो संस्कृति और साहित्य की बात हो। विकास के तमाम दावों के बावजूद भारतीय समाज की बीच-पच्चीस प्रतिशत आबादी ही संपन्न होकर आराम की ज़िंदगी गुजार रही है। जो ऊपर वैभव विलास की चकाचौंध दिखाई दे रही है, उसके पीछे स्लम के घेट्टो तथा गाँवों के अँधेरे भी पसरे हुए हैं। जन जीवन की असलियत तो चारों तरफ़ फैली इच्छाओं की ललक, संशय और उन्माद में ही दिखाई देती है। हिन्दी में लिखी जाने वाली कहानियों में ऐसे दृश्य चित्र पर्याप्त मात्रा में देखे जा सकते हैं। कवियों के प्रतीकों, बिंबों और अमूर्त छटपटाहट में भी ऐसे ही तनाव अभिव्यक्त हो रहे हैं। साहित्य को यदि समाज और समय की धड़कनों की अभिव्यक्ति माना जाता है तो हिन्दी साहित्य में सुदूर गाँवों कस्बों से आने वाले साहित्यकारों की भाषा में ही वह साहित्य प्रकट हो रहा है, शहराती एवं मृदुलोक के साहित्यकार तो व्यक्तिवादी अहमन्यता तथा अतृप्त कामनाओं के उलझे धागों को ही सुलझाने में लगे हैं।

बीसवीं सदी के अस्सी की दहाई से हिन्दी पट्टी में मध्यम कृषक और कारीगर जातियों में, जो कि वास्तव में सामाजिक मध्यमवर्ग है, उसमें जो स्फूर्ति और उत्साह प्रकट हुआ, उससे सैकड़ों वर्षों से अपरिवर्तनीय बने, स्थिर पड़े भारतीय समाज में हलचल मन गयी। मण्डल कमीशन के अस्तित्व में आने के साथ ही इस नये सामाजिक मध्यम वर्ग ने हिन्दू समाज के पारंपरिक सांस्कृतिक ढाँचे में हस्तक्षेप शुरू किया। इस हस्तक्षेप की प्रतिक्रिया में परंपरावादियों ने धार्मिकता की नयी चाल चली, जिसके पीछे हिन्दू-मुस्लिम भेद उभारने के साथ हिन्दुओं के पिछड़े तबके के बीच भी आपसी बैरभाव बढ़ाने की मंशा थी। ब्राह्मणवादी व्यवस्था में शूद्र कहे जाने वाले वर्ग में पिछड़े और दलित दोनों आते हैं; सामंती प्रतिक्रियावादियों की नयी चाल ने शूद्रों को दो फाँक में बाँट दिया। कमण्डल की माया मण्डल पर भारी पड़ी। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया दलितों और पिछड़ों दोनों में ही चल रही है-देखा यह जाना है कि इनका सांस्कृतिक संभ्रम-मायाजाल कब टूटता है। हिन्दी साहित्य में इस परिदृश्य को यथा उचित स्थान मिलना चाहिये, दलितों का जुझारूपन तो सामने आ गया है, पिछड़ों की सामंती मानसिकता की जाँच परख होनी चाहिये। साहित्य को यदि समाज के सुसंस्कृत वर्ग की पहचान कहा जाता है तो स्वाभाविक है हिन्दी साहित्य में पिछले कुछ वर्षों से सुसंस्कृत वर्ग में जो कुछ चल रहा है उस पर इस नये परिवर्तन की छाया भी है। हम कह सकते हैं कि वर्तमान हिन्दी साहित्य पर सामाजिक भ्रष्टाचार और बौद्धिक उपरामता की छाया पड़ी है। साहित्य को वर्गीय दृष्टि के साथ बाँधकर नहीं देखा जाना चाहिये, बाहरहाल किसी भी समाज के सांस्कृतिक विकास की समग्र अभिव्यक्ति उसकी समग्र आत्मिक चेतना की मुखरता को वहाँ जो लिखा जा रहा है उसी से समझा जा सकता है। सवाल हिन्दी भाषा समुदाय के साहित्यिक संस्कारों को समझने का है, यह अच्छी बात है कि दलित विमर्श और स्त्री विमर्श को इन दिनों हिन्दी साहित्य में आगे लाया जा रहा है, इसकी ऊर्जा को और अधिक बढ़ाने की ज़रूरत है।

जब हिन्दी भाषा समुदाय के संस्कारों की बात उठती है तो स्वाभाविक तौर पर लंबी हिन्दी पट्टी पर रहने वालों के सामाजिक संज्ञान का ध्यान आता है क्योंकि भाषा सामाजिक संज्ञान से ही तैयार होती है। उत्तर भारत का लंबा भू-भाग पिछले तीन चार हज़ार वर्षों में कभी भी जनविहीन नहीं हुआ। उल्टे समय समय पर जो विदेशी सभ्यता के लोग यहाँ आये, वे यहाँ के ही होकर रह गये। उनकी बोली भाषा यहाँ की बोली भाषा में विलीन होकर के उसे नये-नये स्वर-व्यंजनों के साथ विविधता प्रदान करती रही। असमी, बंगाली, उड़िया, मराठी, गुजराती, सिंधी, पंजाबी भले ही हिन्दी के ध्वनि विन्यास से अलग सुनाई देती हो किन्तु सामाजिक संज्ञान और शब्दों के अर्थों में उनके बीच किसी तरह का कोई मतभेद नही है। इस्लाम धर्म स्वीकार करने वाली जो विविध नस्लें यहाँ आयीं, उन्होंने भी यहाँ के क्रियापद और वाक्य विन्यास के साथ अपनी बोली भाषा के शब्दों को मिला दिया। उर्दू भाषा अरबी या फारसी नहीं है-वह एक ऐसी हिन्दी है, जिसमें ज़्यादा शब्द अरबी या फारसी के प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी और उर्दू के वाक्य विन्यास एक जैसे ही हैं, इसलिये दुनिया भर में हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हिन्दवी, हिन्दुस्तानी) अंग्रेजी और स्पेनी बोली जाने वाली कुल आबादी से भी ज़्यादा लोगों के द्वारा सुनी और समझी जाती है। हम भाषा शास्त्र के तर्कों में न उलझें तब भी हिन्दी पट्टी को एक भाषा परिवार का मानने में कोई दिक्कत नहीं है। पाकिस्तान के मुसलमान और हिन्दुस्तान के हिन्दू भले ही केवल भाषा के आधार पर ही अपने को विभिन्न संस्कृति का मानते हैं किन्तु ऐतिहासिक-भौगोलिक कारणों से जो सामाजिक संज्ञान उन्होंने प्राप्त किये हैं, वे संज्ञान-वे संस्कार उन्हें एक ही मानवीय संबंध में बाँधते हैं। भारतीय समाज की हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे की गंगा जमुनी तहरीक से हिन्दी साहित्य को किसी तरह भी अलग नहीं किया जा सकता है।

जैसा कि अभी कहा गया है कि समाज की भाषा सामाजिक व्यवहार और जीवन शैली से तय होती है, जीवंत समाज में सदैव नये नये शब्द बाहर से आते रहते हैं। उनका स्थानीय सामाजिक संस्करण तैयार हो जाता है। शब्दों के साथ उनका इतिहास भी चलता है, उदाहरण के लिये हम धर्म, आत्मा और मुक्ति जैसे रहस्यवादी और मज़हबी शब्दों को ही लें और इनके दो हज़ार पूर्व के गणतंत्रीय अतीत में जाकर इनके वास्तविक आशय तलाशें तो आधुनिक समय के प्राकृतिक स्वभाव, मानवीय व्यक्तित्व और स्वतंत्रता की अवधारणायें हमारे सामने प्रत्यक्ष हो जाती हैं। मध्यकाल में इस्लामी प्रभाव से सलामती, खैरियत, एहसान, परहेज, इल्म जैसे हज़ारों अरबी, फारसी शब्द हमारी मानसिकता और जीवन शैली के हिस्से बने। आज का पोस्ट माडर्न (उत्तर आधुनिक) शब्द हमारे साहित्यकारों को मुँह चिढ़ाता सा दिखता है, पर तलाशने पर दो हज़ार वर्ष पूर्व से लोकोत्तर, उत्तराध्ययन, उत्तरकाण्ड, उत्तरोत्तर जैसे शब्द हमारी परिवर्तन धर्मी जिजीविषा को परिलक्षित करते रहे हैं जहाँ पूर्ववर्ती सत्ता की व्याप्ति को उत्तरवर्ती ज्ञानमीमांसा में फैलाये जाने का अभिक्रम रहा है। कहने की ज़रूरत नहीं कि सच्चा साहित्य सामाजिक जीवन की संलग्नता से ही प्रकट होता है। आज हम आरक्षण, आतंकवाद, नक्सलवाद जैसे शब्दों से आक्रांत है, इन शब्दों के पर्याय हमारे अतीत में नहीं मिलेंगे, परन्तु इसका आशय यह नहीं कि हमारा अतीत जीवन ही नहीं था। हमारे तात्कालिक संदर्भों में जब हम विचारधारा की चर्चा उठाते हैं तो हमें सभ्यता के संकट जैसे मुहावरों से सामना करना पड़ता है—भारतीयता बनाम पाश्चात्य सभ्यता। तब हमारी प्रगतिशीलता को यह एक तरह का प्रतिक्रियावाद दिखाई देता है क्योंकि हमें यह याद नहीं रहता है कि हर प्रकार की द्वन्द्वात्मकता-जिसमें से अनिवार्य रूप में गतिशीलता निकलती है—अर्द्धसत्यों की टकराहट का ही परिणाम होती है। हमारे अपने पक्ष के लिये विचारधारा हमें ताकत देती है परंतु उसका जन्म भी विचारों में से होता है और हर विचार की अपनी स्थानीय संरचना होती है। कहने का आशय है कि जनजीवन स्थानीय होता है, इसलिये उससे उद्‌भूत संवेदना, विचार भी स्थानीय होंगे, उसको प्रभावित करने वाले ऐतिहासिक-सामाजिक कारण भले ही वैश्विक हों उनकी विष्पत्ति स्थानीयता में ही है।

यह उत्साहजनक बात है कि पिछले वर्षों में हिन्दी भाषा के समाचार-पत्रों की प्रसार संख्या लगातार बढ़ती गयी है। स्थानीय समाचार-विचार पत्रिकायें भी छप रही हैं और पढ़ी जा रही हैं, किन्तु हिन्दी साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास पर हम इस प्रकार से उत्साहित क्यों नहीं हो पाते हैं ? हिन्दी मातृभाषा वाले बुद्धिजीवी अंग्रेजी में लिख रहे हैं, बौद्धिक मोर्चों पर अपनी अभिव्यक्ति को अंग्रेज़ी में प्रकट करने पर उन्हें गर्व महसूस होता है। हिन्दी भाषी पाठक मराठी, बंगला के मोटे-मोटे उपन्यासों के अनुवादों को पढ़ रहे हैं, किन्तु उनकी जगह लेने के लिये वैसे उपन्यास हिन्दी में नहीं आ पा रहे हैं। बिखरते हुये समाज में एकीकृत जीवन की कथा कहना निश्चित ही कठिन काम है, संभवतः इसीलिये उपन्यासों पर कम काम हो रहा है। परन्तु यह भी सत्य है कि अपने समय और समाज को समग्र रूप से अभिव्यक्त करने का समर्थ माध्यम उपन्यास ही हैं। यह मुद्‌दा आलोचना का नहीं है बल्कि चुनौती स्वीकार करने का है। हम भारतीय स्वभाव से ही वैश्विक मानवतावादी हैं-साहित्य को बचाये रखने का संबंध मनुष्य की अस्मिता को बचाये रखने से भी जुड़ता है और आध्यात्मिक परंपरा से जुड़े हम लोगों के लिये तो निर्मम बाजार एवं सर्वग्रासी प्रौद्योगिकी से मनुष्य तथा प्राकृतिक जीवन को बचाना एक आवश्यक प्रतिबद्धता है।

91, हीरानगर, इन्दौर-452010

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)
131840

ब्रिटेन में रहने वाले हिन्दी के कथाकार श्री महेन्द्र दवेसर 'दीपक' के कहानी संग्रह "अपनी-अपनी आग" को कथा (यूके) के पद्‌मानंद हिन्दी साहित्यिक पुरस्कार के लिये चुना गया है। 'वर्तमान साहित्य' परिवार की ओर से उन्हें बधाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

दिनकर कुमार

1. जो भी आए लौटकर नहीं गए

जो भी आए लौटकर नहीं गए
लौटने की अभिलाषा बची रही
बचा रहा अपनी जड़ के प्रति मोह
अपने मूल परिवेश को दुबारा पाने का आकर्षण

जो भी आए लौटकर नहीं गए
चाहते थे लौट जाना
देहात की ज़िंदगी में दुबारा रम जाना
बचपन की स्मृतियों के संग
खुशहाल जीवन बिताना

जो भी आए लौटकर नहीं गए
बन गए लोकगीतों की ऐसी पंक्तियाँ
जिनमें विरह की टीस बसी है
जिनमें पूरब देश न जाने की
हिदायत दी गई है

2. इन दिनों संवेदनाएँ

इन दिनों संवेदनाएँ भीतर ही भीतर
कुरेदती रहती हैं
कहती हैं कि तुम कबसे इतने बदल गए
नृशंस शब्दों के जंगल में
कबसे तुम भटक गए

संवेदनाएँ मुझे बुरी तरह बेचैन बना देती हैं
अमानुषिक दृश्यों से आहत होता है हृदय
बनावटी रिश्तों से निकलती रहती है सडांध
ओढ़ी गई मुस्कानों के पीछे गुर्राता रहता है पशु

यह अस्थिरता मुझे सवालों से टकराने के लिए
प्रेरित करती है
अनगिनत मोर्चे और अनगिनत सवाल
झूठ के लिफाफे में बंद समय के मिजाज का हाल
सत्य की शर्मिंदगी का बोझिल अहसास
आजकल आँखों में तैरते नहीं मीठे सपने
कड़वा यथार्थ पलकों पर उठाकर
निकला हूँ सफर पर

3. आवेग

आवेग ने बनाया किसी को प्रेमी
किसी को क्रांतिकारी
किसी को हत्यारा
किसी को शिकारी

आवेग में ही चुनी गई गलत राह
लिए गए गलत फैसले
बुने गए सपने
रचा गया संशय का अरण्य

यह आवेग गर्भ से ही संग रहा है
गर्भ से बाहर वे जगत में भी
इसी का सम्मोहन में
भूल जाते हैं मुसाफिर अपनी राह
इसी के सम्मोहन में
इतनी पीड़ा इतना हाहाकार।

रोहिणी भवन
श्रीनगर बाईलेन नं0 ९
दिसपुर
गुवाहाटी-781005 (भारत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन कविताएँ

त्रेपन सिंह चौहान

परिवर्तन

जब वो गाँव में था
हर रोज मेहमानों का इंतजार करता
कोई तो आये, जिसे बाँट सके अपने दुखों को
जिससे कर सके बातें खेतों में लहराती फसलों की
जंगल में खिले फूलों की
खेतों की कूल की
गाविन भैंसों की
मुरा बैल की
बकरियों और गाय की
चुगली कर सके आज की युवा पीढ़ी की
और भी बहुत सी बातें करता वो रात-रात भर

एक दिन वह बाजार आया तो वापस नहीं गया गाँव को
अब उसे मेहमानों का इंतजार नहीं रहता
यहाँ उसके पास टीवी था गप्प मारने के लिए
जिसकी कोई भी बात उसकी समझ में नहीं आती
फिर भी देखता था वह उसे हर रोज
किसी ख़ास नजर से
मेहमान आ गया तो स्वागत करता है उसका।
पूछता है गाँव के हालचाल इतिहास की किताबों की तरह
गाँव की राजनीति पर खूब गरियाता
गाँव बदल रहा है इसका रोना रोता
वह खुद भी बदल रहा है इसको वह कभी महसूस नहीं करता
खुश खबर लेता गाँव की
अब भी गाँव ज़िंदा है, उसे सुकून मिलता

वह बड़े शहर में आ गया है अब
मेहमानों की कोई जरूरत उसे नहीं रही
दूर भागने लगा है मेहमानों से
मेहमानों के आने पर देता है गाली
बढ़ती मंहगाई को
शहर की उलझी ज़िंदगी को
किसी के साथ नहीं बाँटना चाहता
अपने पंखे की हवा
टोकरी की रोटी
और उस बिस्तर को जो लगा ही रहता है
सदा मेहमानों के लिए।

एक औरत

उसने अपनी ज़िंदगी में सिर्फ़ तीन पहाड़ देखे
सामने का पहाड़ जिसमें पसरी है ज़िंदगी
बायीं तरफ का पहाड़, जो ढका है चीड़ों से
और वह पहाड़ जिसमें आबाद है उसका गाँव

उसने सिर्फ़ दो ही पट्टी देखी,
मायका और ससुराल की.

गाँव के नीचे बहती नदी से उसे खासा लगाव है
क्योंकि वह बहकर आ रही है उसके मायके से
आज भी सुन सकती है वह गीत, नदी के स्वर में अपने पूर्वजों के
वह जानती है, प्राण पनपते हैं इस नदी में

वह गाती है
जब उसे उदासी घेर लेती है
परवासी पति, बेटे की याद सताती है
कभी-कभी मायका में छोड़े अपने अतीत पर
वह गाती है बाजूबंद सिर्फ बाजूबंद

वह देती है गाली
ककड़ी की चोरी पर लड़कों को
खेतों के चुगान पर ग्वालों को
घास की चोरी पर घसियारियों को
चुगली खाने पर चुगलखोरों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी गाली में भी एक संगीत होता है
जो बजता है अपनी ही धुन में....

वह नफ़रत करती है
पूष के ठंडे पानी से
पेटीकोट के जुंओं से
काला बाँसा और गाजर घास से
खाकी बर्दी से
वह चाहे जंगलात की हो
या पुलिस की

वह वोट को दान नहीं मानती
उसने ज़िंदगी में दो बार वोट दिया
एक प्रधान को, जहां उसके पति को खानी पड़ी है मार
एक विधायक को, जिसने बेच दिया है उसके बच्चे के बचपन को

उसे अपने बिस्तर के अलावा कहीं नींद नहीं आती
वह मायका भी सिर्फ़ दिन भर के लिए जाती है

सड़क उसने वही देखी जिस पर चलती है वह
उसका आदि और अंत उसे नहीं मालूम
वह सड़क उसे मरे अजगर जैसे लगती
जिस पर फिसलती है ज़िंदगी

उसने चाँद को देखा सोचा वह सिर्फ़ हमारा है
सूरज-जो तपता है सिर्फ़ हमारे लिए
तारे जो चमकते है सिर्फ़ हमारे गाँव के ऊपर

जंगल
बाज, बुरांस, मौरु, कणदी से उसके अपने रिश्ते है।
घिंघारु, मोळ, भमोर, किल्मोड़ और हिंसर जी भर कर खाती है
घुघती, हिलांस, फ्योलड़ी, कफ्फू उसके दुख के साथी हैं
जो आते हैं उसके गीतों में
क्योंकि जंगल और खुद में उसने कोई अंतर नहीं समझा

आज
उसका गाँव उजड़ गया विकास के नाम पर
उसकी नदी बिक गयी विकास के नाम पर
उसका जंगल कट गया विकास के नाम पर
उसको छोड़ चले उसके रिश्ते के परिन्दे
वह गा रही है गीत ज़िंदा रहने के
गाली दे रही है, किसको, पता नहीं
वह पिट रही है पुलिस के हाथों
और सो रही है जेल के सड़े कंबलों पर
एक गहरी सपनो से भरी नींद में.

(फलेण्ड आंदोलन के दौरान टिहरी जेल में लिखी गयी कविता। जिसमें गाँव की दर्जनों महिलाएँ, एक साल का बच्चा, पिच्चासी साल की वृद्ध तक अपनी नदी और जंगल बचाने हेतु जेल चली गयी थी।)

गंगा भागीरथी

मैंने देखा,
भागीरथी को
बच्चों की तरह किलोल करती हुई
बांद तरूणी की तरह बल खाती
कभी-कभार गुस्से में फुंकारती हुई
वृद्ध की तरह डाँटती हुई
संगीत की तरह जीती हुई
जाती, अपने गंतव्य की ओर

मैंने देखा
भागीरथी को
हमाम में बंद बच्चे की तरह रोती
बेसहारा अशक्त बीमार वृद्ध की तरह छटपटाती
बचाओ-बचाओ की दारूण चीख के दम तोड़ते शब्द
अस्मत लुटी तरूणी की तरह
याचना की भीख मांगते हाथों के साथ

और
मैं देख रहा हूँ उसे
बीमार मासूम के चेहरे पर मक्खी भिनभिनाती
किसी लावारिस वृद्ध की लाश की तरह पड़ी
जिसके इर्द-गिर्द मंडराने लगे हैं
सैलानियों के नाम पर
तमाशबीनों की बड़ी फौज.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी पर दस कविताएँ

अर्पण कुमार

:1:

नदी मूक
निश्चेष्ट और
अप्राप्य रही

इस तरह
हासिल के बाहर
नदी हासिल हुई

:2:

नदी की उदासी
मुझे परेशान करती है

नदी का प्रवाह
मुझे ऊर्जा देता है

नदी की कलकल ध्वनि
मुझे सुख देती है

नदी का हर रूप
हर अंश
देता है
कुछ-न-कुछ
मिलकर
रिक्त हाथ कभी
नहीं जाने देती नदी

:3:

नदी मुझे बहा नहीं रही
जानता हूँ मैं
मैं नदी की धारा नहीं
मोड़ रहा
जानती है नदी
मगर बह रहे हैं दोनों
साथ-साथ, स्वतः स्फूर्त
किसी बल-प्रयोग के
दंभ से मुक्त
किसी समीकरण से अनजान
और परे किसी कुंठा से

:4:

नदी का शब्द-सागर अपार
या मेरी अभिव्यक्ति अनिवार
कौन जीतेगा आखिरकार!

:5:

मैं साँस लेता हूँ
शहर के इस छोर पर
नदी में लहर बनती है
शहर के उस छोर पर

रात्रि के अर्धपहर में
जब पूरा शहर
गहरी नींद में है
एक छोर से दूसरे छोर तक
दो जागती, सिहरती उपस्थितियों के बीच
यह कैसी आवाजाही है
जो शहर को चीर रही है/
अपनी खामोश उद्दामता में

:6:

नदी
अनजान नहीं थी
मेरे दर्द की
टीस से

फिर
मैं अधीर
हुआ क्योंकर
नदी के तट पर
अपनी
निःशब्दता खोकर

:7:

मैं
बिखर रहा था
काँच के किरचों सा
और
नदी
नहीं आ रही थी
समेटने
टुकड़ों के
इस ढेर को

किसी चीख, टूटन से
विचलित हुए बग़ैर
नदी
बह रही थी
अपनी प्राकृतिक गति में
घुलाए अपने विस्तार में
जीवन के मर्म को
और
संबोधित करती कहीं
मुझे भी
किसी उलझन, भटकाव से
निकल बाहर आने को
अपनी सहज, क्रियाशील द्रुतमयता में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:8:

मेरा एक हिस्सा
जाता है जो अक्सर
नदी के तट पर,
वह मेरी उम्र से
बढ़कर
पुरातन है
और उसका अतीत
नदी की परंपरा के
बराबर टिकता है

:9:

नदी
इंतजार करती थी
अपनी सहचरी का

नदी
हुलसती थी
मुझे देखकर
अपने इंतजार में

:10:

दुनिया का सारा संगीत
नदी के गर्जनयुक्त बहाव में है
प्रकृति का समस्त सौंदर्य
नदी की तरल वक्रता में है
सृष्टि की सारी
जानी-अनजानी
भाषाओं को
सँवार/ रच रही है नदी
अपने क्रोड़ में

नदी के होने में
संगीत, सौंदर्य
और भाषा का होना है।

द्वितीय तल, डी-287, नेहरू विहार
तिमारपुर के समीप, दिल्ली-110054

ग़ज़ल

जहीर कुरैशी

उपालम्भ में करता है या आदर से बातें करता है,
हर मनुष्य अपनी भाषा में ईश्वर से बातें करता है।

गागर ने महसूस किया तब एक अनिर्वचनीय स्फुरण,
पानी रिस-रिस कर, जब कोरी गागर से बातें करता है।

आसमान, झीलों में खुद को देख सका कब पूरा-पूरा,
इस कारण भी, गगन असीमित सागर से बातें करता है।

घंटों घर के लोग मगन रहते हैं बच्चे से बतरस में,
बच्चा, किलकारी के द्वारा घर भर से बातें करता है।

अवसर तक पहुँचाने वाले को भी कहता नहीं 'शुक्रिया',
अवसर से मिलते ही, सीधा अवसर से बातें करता है।

हर पंछी द्वारा, उड़ान से पहले तौले जाते हैं 'पर',
उसके बाद, परिन्दा नीले अम्बर से बातें करता है।

आगे चलते-चलते, पीछे मुड़कर भी देखा जाता है,
कभी-कभी कलयुग भी, त्रेता-द्वापर से बातें करता है।

समीर काटेज, बी-21, सूर्य नगर
शब्द प्रताप आश्रम् के पास
ग्वालियर-474012 (म0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनाम

महेश चंद्र जोशी

जमादार के तौर पर पदोन्नत होने का आदेश पाते ही उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा।... न जाने कब से उसकी तमन्ना थी कि चपरासी चोले के बदले उसे जमादार का चोला मिल जाए।

सत्तरह-अठारह वर्षों से चपरासीगिरी का बोझ उठाते-उठाते उसे भीतर ही भीतर भारीपन महसूस हो रहा था। हाथों पर लिये गये बोझ से ज़्यादा वह मन पर रखे गये बोझ से पीड़ित था... सम्मान के नाम पर अक्सर उसे मैदान साफ़ ही नज़र आता... बस बोझा उठाओ, अपना व अपने परिवार का पेट भरो... जितना मिल रहा है, उसे ही अपना सौभाग्य समझो... ऑफ़िस में सबसे पहले आओ, सबके बाद जाओ... जमादार से लेकर साहब तक के कहे अनुसार काम करते जाओ... अपनी आवाज़ को नगाड़ों के बीच तूती की आवाज़ समझो...

लेकिन, अब ऐसा नहीं होगा। अब वह जमादार बन गया है। दस चपरासी उसके अंडर में काम करेंगे। वह इनमें से किसी को भी ऑफ़िस में सफ़ाई वग़ैरह के संबंध में कह सकता है। कहना न मानने वाले के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने के लिए संबंधित अधिकारी पर विशेष ज़ोर दे सकता है... अब किसी चपरासी का उससे भिड़ना आसान नहीं होगा... भारी पड़ेगा...

वह अब स्वयं को ऐसी जमात के बीच खड़ा महसूस कर रहा था, जिनका कोई वजूद होता है... आज, जब वह बड़े साहब के चेंबर में उन्हें शुक्रिया अदा करने गया, तो उसके बोलने से पूर्व उन्होंने उसे केवल मदन नहीं, मदन सिंह कहकर संबोधित किया. फिर, वह ऑफ़िस की मुख्य बिल्डिंग के अंदर-बाहर कभी काम व कभी बिना काम के आता-जाता रहा, जैसे सफ़ाई का निरीक्षण कर रहा हो। तब उसके साथ काम करने वाले चपरासियों में से किसी ने उसे 'बधाई हो' कहकर, किसी ने प्यार से कंधे पर हाथ रखकर अपनी शुभकामनाओं का इज़हार किया। उसका सबसे नज़दीकी चपरासी मित्र मांगीलाल तो उसके गले लगकर अपनी ख़ुशी प्रकट करने लगा। इससे वह गद्‌गद् हो गया... कुछ क्षणों के बाद उसे लगा कि वह घर जाए और यह ख़ुशख़बरी अपने बीवी-बच्चों को सुनाए। तब वे भी जानेंगे कि वास्तव में आज उसकी दिली तमन्ना पूरी हुई है... उसकी सोयी हुई तक़दीर जागी है... वह दस चपरासियों का मुखिया बन गया है। वह, जिसे...

पर, वह जल्दी घर जा कैसे सकता है?.... आज से उसे जमादारी की ज़िम्मेदारी सँभालनी है। समय पर ऑफ़िस में तैनात सिपाही के सामने ऑफ़िस की मुख्य बिल्डिंग पर ताला लगवाकर, चाबी एडमिनिस्ट्रेटिव विंग के की-बोर्ड पर टाँगनी होगी... आज भी उसके पास साइकिल नहीं है। नहीं तो ज़िम्मेदारी से फ़ारिग होते ही वह जल्दी-जल्दी पैडल मारकर घर पहुँच जाता... गोविंद भी ख़ूब लापरवाह निकला, ख़ुद की साइकिल ख़राब हुई, तो उसकी ले जाने लगा। दो-तीन दिन से पैदल ऑफ़िस आना-जाना पड़ रहा है... कहने को यह शहर, प्रांत के पाँच बड़े शहरों में से एक है, फिर भी सिटी बस क्या, वाज़िब किराया लेने वाले टेम्पू तक नहीं चलते यहाँ। केवल ऑटो-रिक्शा वाले को मुँहमाँगा भाड़ा देकर कहीं भी जाओ...

आख़िर अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर मदन आज भी मांगीलाल की साइकिल के पीछे बैठकर घर की ओर चल दिया, लेकिन रास्ते भर उसने उसके साथ न सदा की तरह गप्पे हाँकीं, न रास्ते में पड़ने वाली पुलिया पर बैठकर बीड़ी फूँकी। हाँ, मांगीलाल के साइकिल चलाने की स्पीड धीमी महसूस कर वह एक-दो बार झुँझलाया अवश्य—"आज रोटी खाकर नहीं आया है का?.... मार पैडल पर पैडल ज़रा तेज़ी से..."

मांगीलाल ने हर बार तनिक हँसते हुए साइकिल की स्पीड तेज़ करने की कोशिश की, लेकिन मदन जब अपने घर पहुँचा तो वह हाँफ रहा था। उसे पता ही नहीं चला कि कब दोराहा आया, कब वह साइकिल से कूदकर अपने घर की ओर मुड़ गया और तेज़ी से चल पड़ा...

"का हो गया?" पत्नी का घबराया स्वर उभरा—"काहे हाँफत हो?"

मदन मुस्कुराया। जेब से तरक़्क़ी के आदेश की कॉपी निकालकर उसकी आँखों के सामने फैलाते हुए ख़ुशी-ख़ुशी बोला—"देखु जसोदा देखु..."

मदन को मुस्कुराता देखकर जसोदा ने एक गहरी साँस छोड़ी। मुस्कुराते हुए, धोती के पल्ले से हाथ पोंछकर पन्ने को पकड़ा। कुछ क्षणों तक उलट-पुलट कर बोली—"का है?... कोई लॉटरी खुल गवी का?"

"हाँ बावली.... लॉटरी ही खुली गवी है... हमारे भाग की लॉटरी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कित्ते रुपवों की?"

"सचमुच भोरी की भोरी ही रह गयी री तू तो... अरी रुपवों को मार गोली... हमरो परमोशन हो गुवा है.... हम जमादार बन गवे हैं... जमादार।"

जसोदा न जाने कब से मदन की जमादार बनने की इच्छा सुनती आ रही थी... शुरू में सोचा भी था उसने कि ऑफ़िस में जमादार का क्या काम?... गली साफ़ कराने वाले जमादार तो उसने देखे हैं... फिर ऑफ़िस का जमादार....?

एक दिन उसने मदन से ही पूछकर जाना था कि जिस ऑफ़िस में चपरासियों की संख्या विशेष होती है, वहाँ जमादार के पद भी होते हैं... ऑफ़िस का जमादार, वहाँ के चपरासियों से काम करवाता है... न करने वाले को वह डाँट सकता है। ऊपर शिकायत कर उनके ख़िलाफ़ कार्रवाई करवा सकता है... तब से जसोदा भी उसकी इस पद पर तरक़्क़ी की इच्छा को मन ही मन संजोये हुए थी। आज इच्छा पूरी होने पर उसको बहुत ख़ुशी हुई, बोली—"तब तो मुँह मिठवा कराय देवो।"

"काहे नाहीं...," कहते-कहते उसने पैंट की दोनों जेबों में लगभग एक साथ हाथ डाले। निकाले, तो कुल राशि नौ रुपये के आसपास बनती थी। उसने जसोदा के सामने वे पैसे रखकर तनिक झेंपते हुए पूछा, "तेरे पल्ले कुछ दमड़ी, वमड़ी है का?"

जसोदा खिसियाती-सी हँसी, बोली—"ऐर सारे हैं न....।"

"फिकर नाहीं कर... कल तो टका को इन्तजाम कछुन-कछुन सूँ हो जावेगो।"

"आपो भी कछु चिंता मति करो....गोविंद कूँ स्कूल सूँ से लौट आने दो, मिठवा उसूँ ही मँगवा लेवेंगे।"

"जैसी त्वार मनसा"

गोविंद आया, फिर मिठाई भी आ गयी। घरवालों ने खायी। थोड़ी-थोड़ी नज़दीकियों को भी भेजी। तब मदन को लगा कि वास्तव में ऐसे मौक़ों पर ही मिठाई खाने व खिलाने में आनंद कुछ ख़ास ही आता है... अगले दिन ऑफ़िस जाकर उसने टी-पार्टी चाहने वालों को खाता खुले केंटीन में बिस्कुट व चाय पिला दी, जिससे एक बार को तो उसकी जय-जयकार का स्वर गूँज उठा... भले ही उसके थोड़े अरसे बाद, उस गूँज का स्वर सिर्फ़ उसे ही सुनायी देने लगा हो।

दरअसल, ऑफ़िस में गुटबाजी का दौर तेज़ी पर था। अपने गुट वालों के अलावा कोई किसी की परवाह ही नहीं करता था। किसी दबंग नेता से जुड़े कर्मचारी तो एकदम मनमानी पर उतर चुके थे। इच्छा मुताबिक ऑफ़िस आते और जाते। छोटे-मोटे विरोध करने वालों को दो टूक उत्तर दे देते.... ऐसे में तरक़्क़ी पाने के बाद एक दिन मदन की एक ऊँची पहुँच के चपरासी शंभू से कहा-सुनी हो गयी। शंभू ने उसके कहे अनुसार काम करने से साफ़ इन्कार कर दिया। तब उसने बड़े साहब से उसकी शिकायत कर दी। वे उसी से उखड़े स्वर में बोले—"तो तुम करते क्या हो?.....जमादार हो, लो काम उससे।"

उसे लगा था कि उसकी अहमियत तो है, पर वह समझने में अपने को असमर्थ पा रहा था कि इस पक्षपातपूर्ण व ओर फैल रहे विषैले माहौल में स्वयं का सम्मान कैसे बचाये जाए?....अपने को सुरक्षित कैसे रखे...?

अभी मदन अपनी समस्या का हल तलाश ही रहा श शाम को छुट्टी के बाद शंभू ने पीछे से उसकी गर्दन पक कड़कते स्वर में कहा—"होश में आ जा मदन, नहीं तो जमादा नशा उतारते देर न लगेगी।"

मदन एक बार को तो घबराया, पर शंभू की शक्ल देख वह क्रोध से भर गया। उसने तेज़ झटके से उसे दूर धकेल वे दोनों एक-दूसरे से उलझ गये... मांगीलाल के बीच-बचाव से शारीरिक मुक़ाबला तो अधिक न हो सका, हाँ, वाक्-बाण देर तक अवश्य छूटते रहे।

मदन का बिना रुकावट ऑफ़िस आना-जाना जारी था से झगड़े के बाद ऑफ़िस आकर उसे अपने प्रति सब श नज़र आया। वह भी मस्तिष्क के बोझ को झटककर अपने पर लग गया।

पर यह क्या?..... जो-जो कार्य उसे जहाँ-जहाँ करवाने वहाँ-वहाँ चपरासी नदारद नज़र आते... लेकिन कार्य की ग देखकर, वह अपने सहयोगियों का कार्य स्वयं करने लगा वक़्त मांगीलाल भी उसे दूर-दूर ही नज़र आया... बस सं अधिकारियों की शाबासी उसे मिलती रही। परंतु, शीघ्र ही उसने अपने सहयोगी चपरासियों का लगातार एक-सा रवैया तो वह भीतर ही भीतर बुरी तरह आहत हो गया। ऑफ़िस में गया कार्य स्वयं ही निबटाने पर न तो अफ़सरों की शाबासी पीड़ा पर मरहम का असर कर पा रही थी, न उसे कुछ पल से बैठकर कोई ठोस निर्णय लेने दे रही थी। केवल रह- उसकी मुट्ठियाँ भिंचती रहीं, आँखें तनती रहीं। फिर ऑफ़ीसरों के बताये गये कार्यों को स्वयं निबटाने का प्रयत्न रहा... उस दिन विभाग के मंत्री महोदय का ऑफ़िस में विजि .. उसके मस्तिष्क-पटल पर बार-बार यह बात उभर-उभर रही थी कि मंत्री जी का कोरे दर्शन देने के लिये आने से लाभ नहीं, हाँ, यदि उनके आये से यहाँ तेज़ी से फैल रहे तत्त्वों का बोलबाला ख़त्म हो जाए, तब तो लगे भी कि करने कोई इन्सान आया था, नहीं तो....

मदन मंत्री महोदय के आने का इंतज़ार करने बीच-बीच में उनके न आने की चर्चा सुन-सुनकर उसे लगता रहा... ऑफ़िस बंद होते-होते भी जब मंत्री महोदय आने की चर्चा ज़ोरों पर थी, तो वह तनिक उदास भी हो दूसरी ओर मंत्री महोदय के विजिट के कारण ठहरे हुए अधि बाबू और चपरासी ख़ुश हुए और फुर्ती से घर की ओर रव गये, जैसे जेल से छूटे हों... कुछ देर बाद एडमिनिस्ट्रेटिव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए ...ब के अतिरिक्त उनका पी.ए., ऑफ़िस सुपरिन्टेन्डेन्ट सेत भाँति छुट्टी होते-होते ऑफ़िस आकर साहब को सलाम ठोंकने ले तीन-चार ब.ू और मदन के अतिरिक्त साहब की ओर से क-दो चपरासी रवाना होने की तैयारी में थे कि मंत्री महोदय के त आने की सूचना आयी। अपनी-अपनी स्थिति में और सभी ो घबराहट-सी हुई, पर मदन को यह ठीक लगा। तत्पश्चात् ाहब के आदेशानुसार सब बताये गये कार्य करने के लिए रवाना गये।

मदन ने भी लपककर मुख्य बिल्डिंग का दरवाज़ा खोला, फिर त्री महोदय के आने तक ख़ास-ख़ास दरवाज़े व खिड़कियाँ खोल ।

मंत्री महोदय पूरे लवाज़मे के साथ आये। और कुछ देर बाद न्होंने बड़े साहब व कुछ प्रमुख लोगों के साथ मुख्य बिल्डिंग में वेश किया। मदन को लगा कि अब मौक़ा लगते ही वह मिनिस्टर होदय को बताएगा कि वे जो यहाँ ऊपर से देख रहे हैं, वो सही हीं है.... सही वह बताएगा... उनकी आँख खुल जाएगी... बस ीका हाथ लग जाए।... वे जान जाएँगे कि इस उजड़े से उपवन केवल एक ही पंछी क्यों फड़फड़ा रहा है, बाक़ी सब कहाँ हैं?. .. वह आज चूकेगा नहीं... सब साफ़-साफ़ बता देगा...

अभी मदन अपने दिल का बोझ हल्का करने की सोच ही हा था कि मिनिस्टर महोदय बिल्डिंग में एक सरसरी नज़र डालकर ाथ आये लोगों के साथ लौट गये। मदन को आश्चर्य व अफ़सोस आ, पर उसने हिम्मत न हारी। अपनी पीड़ा मिनिस्टर महोदय तक हुँचाने के लिए वह तेज़ी से बाहर निकला। उसे फिर झटका लगा, ब वे बड़े साहब के साथ एडमिनिस्ट्रेटिव विंग में प्रवेश कर रहे । लौटे, तो पहले से ज़्यादा भीड़ उनके पीछे थी। वह उस भीड़ घुस गया और मिनिस्टर महोदय के नज़दीक पहुँचने का प्रयत्न रने लगा। लेकिन, उनके नज़दीक सुरक्षा-व्यवस्था इतनी मज़बूत ी कि बहुत कोशिश करने पर भी वह उनके नज़दीक नहीं पहुँच का। जब तक वह आगे बढ़ा, तब तक मिनिस्टर महोदय की कार ाड़ियों के काफ़िले के साथ तेज़ी से रवाना हो चुकी थी। अब तो से मुख्य रूप से नज़र आये बड़े साहब, उनके नज़दीक खड़े ऑफ़िस सुपरिन्टेन्डेन्ट और पी.ए.। वह कुछ पल रुककर कुछ कहना ही चाह रहा था कि साहब उस पर गरज पड़े—"मदन तुम एकदम ग़ैर-ज़िम्मेदार कर्मचारी हो। जमादार ऑफ़िस में और चपरासी अपने-अपने घर... तुम नौकरी करने लायक नहीं हो..."

"आप ग़लत कह रहे हैं सा'ब," मदन का क्रोध भी फूट पड़ा, "जिसकी मनमानी से यह सब हुआ, जिसने यहाँ अपनी दादागिरी चला रक्खी है, उसे आप कुछ....

साहब ने मदन की पूरी बात सुने बग़ैर ही ऑफ़िस सुपरिन्टेन्डेन्ट को आदेश दे डाला—"सस्पेन्ड हिम इमिजिएटली।"

मदन को साहब का आदेश तीर की तरह चुभा। क्रोध से काँप उठा वह। फिर भी लगा, जैसे वह कुछ बोला। लेकिन, कोई शब्द स्पष्ट सुनायी न पड़ सका उसका। अलबत्ता, उसके होंठ अवश्य फड़फड़ाते से नज़र आये और आँखें अश्रुजल से भर उठीं।

2/183, मुक्ता प्रसाद नगर
बीकानेर-334004

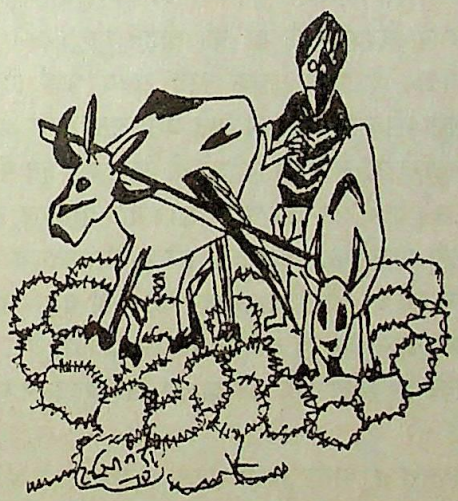

डॉ0 रामेश्वर वर्मा सम्मानित

वरिष्ठ कलाकार-साहित्यकार डॉक्टर-रामेश्वर वर्मा को आगरा में संपन्न हुए 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन', प्रयाग के भव्य 'शताब्दी-समारोह' में 'साहित्य मनीषी' उपाधि से सम्मानित किया गया। बहुआयामी प्रतिभा के धनी डाक्टर वर्मा ने जहाँ अंतरराष्ट्रीय कला-जगत में अपनी अनेकशः उपलब्धियाँ हासिल की हैं वहीं साहित्य-जगत को अपनी लेखनी से समृद्ध किया है। सेवा निवृत्ति के बाद भी उनकी तूलिका और लेखनी अनवरत् जारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंगड़े पिता

राजेश झरपुरे

बंटी के पिता

पिता की तरह पिता होने का अहसास उन्हें उस वक़्त हुआ जब पलटकर बंटी ने उन्हें जवाब दिया। वे पिता थे, पर पिता की तरह पिता हो जाने की कल्पना उन्होंने नहीं की थी।

उनके पास पिता होने के अधिकार, अधिकार से जुडे ढेरों निर्देश थे। प्रश्नों के सामने खड़े बंटी के पास बेटा होने के कर्तव्य और कर्तव्यों से जुड़ी विवश ज़िम्मेदारी थी। किसी एक दिन कुछ इस तरह घटा कि अधिकार और कर्तव्य के मध्य संतुलन बिगड़ गया। बंटी ने विवशता के घेरे को तोड़ते हुए अपने पिता को पलटकर जवाब दे दिया। ठीक उसी समय उन्हें अपने पिता विशेश्वर शर्मा की तरह पिता हो जाने जैसा लगा। इस अहसास के बाद उन्होंने गंभीरता से सोचा कि बेटे के पैर उनके जूते में आ जाते होंगे, पर उसने कभी पहनकर नहीं देखा। यदि पहन ले, तो उनका अनुमान सही निकलेगा... इस तरह की मानसिकता वे बना चुके थे। बंटी बढ़ रहा था और दिन-पर-दिन बढ़ता ही चला जा रहा था। बंटी को उस घटना के पूर्व तक वे एक आज्ञाकारी बेटा माने हुए थे, जो उनकी हर इच्छा और आदेश का सिर झुकाकर पालन कर सकता था।

बंटी द्वारा की गयी उपेक्षा से वह किंचित मात्र भी उद्वेलित नहीं हुए, न क्रोधित, बल्कि अपने पिता विशेश्वर शर्मा के प्रति अत्यधिक विनम्र और सहृदय हो उठे। उन्होंने अपनी एकाग्रता, सुविधा और पैसा बंटी के सुखद भविष्य के लिए केंद्रित कर दिया था, पर अब इस सोच से वे पूरी तरह उबर गये हैं।

उनकी इस विमुखता से बंटी के हिस्से से पिता की चिंता और एकाग्रता समाप्त हो गयी। पैसा और सुविधा उसे यथावत मिलता रहा। उनकी चिंता का स्थान माँ ने ले लिया। प्यार और स्नेह उसे उतना ही मिलता रहा, जितना पहले मिलता था, पर माँ से ही—माँ और पिता दोनों का।

सालों पहले ऐसी ही घटना इसी छत के नीचे हुई थी। पिता विशेश्वर शर्मा अपने बेटे सतीश शर्मा के पीछे जूता लेकर दौड़े थे। माँ द्वारा समझाये जाने पर वे रुक गये और अपने पिता होने के कर्तव्य के बोझ से रुके ही रहे। इस दिन के बाद वे अबोले हो उठे। उन्होंने आजीवन न पितातुल्य व्यवहार किया और न अधिकार जताया। बस, मौन रहकर पिता होने के दायित्व का निर्वाह क रहे। पिता होने का अभिमान कभी उनके सिर चढ़कर नहीं बोल पिता की वह चुप्पी सतीश शर्मा को बंटी के साथ घटी घटना बाद शूल जैसी चुभने लगी थी, जैसे विशेश्वर शर्मा को आज त चुभ रही हो।

सतीश शर्मा का व्यवहार पिता के प्रति क्षमायाचना में बद गया, पर उनके लिए इन बातों के कोई मायने नहीं थे। पुत्र द्व वर्षों पूर्व की गयी उपेक्षा के बाद वे अपनी आयु का महत्त्वपूर्ण हिस निर्लिप्त भाव से गुज़ार चुके थे, बिना पितृ-भाव और आवेग के . पोते और पुत्र के बीच हुई घटना पर उन्होंने न कोई आश्चर्य प्रक किया और न दुखी हुए। बस, शून्य से समय को ताकते रहे

बिट्टू के पिता...

दो पुत्री के बाद बिट्टू के जन्म के साथ ही उनके अंदर ह सारी महत्त्वाकांक्षाएँ और योजनाएँ पल रही थीं। बेटे की बढ़ती उ के साथ महत्वाकांक्षा और योजनाएँ भी बढ़ने लगीं। बेटे के बचप और युवावस्था पर उन्होंने पैनी नज़र गड़ा रखी थे। वे बिट्टू के ह क्रिया-कलाप पर गहन चिंतन करते। सही और ठीक-ठाक बा और कार्यों पर उसे प्रोत्साहित करते, मगर अनुचित, फिर व बाल-सुलभ ही क्यों न हो, के लिए उसे और पत्नी को लंबा-चौ पाठ पढ़ाते। बहुधा बिट्टू की हर ग़लती पर माँ यानी अपनी पत को दोषी ठहराते थे।

"यह सब तुम्हारे लाड़-प्यार का परिणाम है... लड़क बिगड़ेगा नहीं तो क्या होगा?" अधिक गुस्सा होने पर.... "यह स तुम्हारे दिये संस्कार हैं। बताओ... कोई एक भी लक्षण ऐसा नज़ आता है, जिससे पता चल सके कि तुमने कुछ बोया है...? न तो पिता के निर्देशों पर चलने के लिए उसे प्रेरित क्यों न करतीं।" पत्नी सदैव चुप रहती। वह धैर्यवान है। वह जानती है .. जब पुत्र विरोध करना सीखता है, तो उसका पहला विरोध पि से ही होता है। वह पति की चिंता से भली-भाँति अवगत है औ पुत्र को अच्छे संस्कारों में ढालने के लिए निरंतर प्रयासरत भी। प सुधीर वर्मा को सदैव लगता है कि कमियाँ सिर्फ़ माँ में ही हैं, जि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वजह से उनका पुत्र उनके मापदंडों पर अपूर्ण-सा है। इसी सोच के कारण उन्होंने बिट्टू के आसपास अपने होने का अहसास बनाये रखा।

वे अक्सर क्लब जाया करते थे और देर से लौटते। रात का भोजन वे 11 बजे के बाद किया करते थे। बिट्टू जैसे ही छटवीं कक्षा में पहुँचा, उन्होंने क्लब में देर रात तक बैठे रहने का अपना कार्यक्रम रद्द कर दिया। हाँ, क्लब से पत्र-पत्रिकाएँ ज़रूर उठा लाते। घर पर बिट्टू के सामने बैठकर पढ़ते रहते। उनका विश्वास था कि इस तरह से बिट्टू का मन पढ़ाई में लगा रहेगा। वे समय के साथ चलते हुए आगे तक की सोच रखते थे, पर पत्नी से उन्हें किसी तरह का सहयोग नहीं मिलता।

पत्नी सोचती.... "बिट्टू से उसका बचपना छीना जा रहा है।" मातृत्व के बोझ से दबी वह विनम्र विरोध करती... "ज़बरदस्ती बच्चे के पीछे क्यूँ पड़े रहते हो? अभी बच्चा है। बड़ा होगा, बड़ी क्लास में जाएगा, समझ जाएगा।"

वे नासमझ नहीं थे, न ही जबरदस्ती करना उनके स्वभाव में शामिल था। वे व्यवस्थित और नियंत्रित जीवन की मर्यादा में रहना पसंद करते थे और इसके आदी हो चुके थे। वे अपने घर-परिवार और मित्रों से भी इसी तरह के व्यवहार की अपेक्षा रखते थे। वे पत्नी के दिये तर्कों से असहमत नहीं थे, पर संतुष्ट हो जाने का कोई लक्षण भी नज़र नहीं आता था।

वे कॉलोनी के अन्य बच्चों से अपने पुत्र बिट्टू की तुलना करते। वे सब कम सुविधाओं और साधन में पल रहे थे और साधन से अधिक गुणात्मक प्रभाव उत्पन्न कर रहे थे। वे हीनता और अभाव से हारे हुए नहीं थे, पर बढ़ती कक्षाओं और पुस्तकों से प्राप्त नवीनतम जानकारी व बढ़ती हुई शिक्षा के परिणाम से उनके पास इसकी कमी भी नहीं थी।

सब जानते हैं... उन्हें हर रास्ते की मंजिल का पता है। उन्हें रास्तों में आने वाली दिक़्क़तों और अवरोधों की पूर्ण जानकारी है। अब ये ही जानकारियाँ और शिक्षा उनके पिता होने के दुख का मूल कारण है। पुत्र उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहता। पत्नी इसे बिट्टू के हाथ का औज़ार नहीं बनाना चाहती। परिणामस्वरूप वह सामान्य दिनचर्या से गुज़रकर रह जाता है।

बिट्टू बड़ा हो चुका है। वह स्कूल से कॉलेज में पहुँच चुका है, पर प्रतिस्पर्धा से लगातार पिछड़ता जा रहा है... यह बात न बिट्टू समझ पा रहा था और न उसकी माँ। उनका मानसिक क्लेश लगातार बढ़ता जा रहा था। परिस्थितियाँ विपरीत होती जा रही थीं। तनाव सर्वत्र बना रहता... घर-आँगन और कार्यालय में उनके काम के साथ भी।

वे घुप्प अँधेरे में एक जुगनू की चमक की आशा लिये जी रहे हैं। सबकी अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए परिस्थिति को अनुकूल बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर सफल नहीं हो पाते।

वे पिता हैं... बिट्टू के पिता। उन्हें पिता होने के कर्तव्य और दायित्व का अहसास है।

बिट्टू और बंटी के पिता

"कहाँ थे इतने दिन... ख़ुश तो हो!"

"हाँ! ख़ुश हूँ" कहते हुए वह उनके गले लग गया।

"इतने बुझे-बुझे से क्यूँ लग रहे हो...?"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। बस थोड़ी व्यस्तताएँ बढ़ गयी हैं।"

"व्यस्तताएँ बढ़ने से थकावट तो ज़रूर होती है, पर ख़ुशियाँ नहीं मुरझातीं।"

"सालों बाद मिला है। क्या सारी बातें यहीं चौराहे पर कर लेगा। चल! घर चलते हैं। इत्मीनान से बैठकर बातें करेंगे।"

पंद्रह मिनट से भी कम समय में वे दोनों घर पहुँच गये। दरवाज़ा बेटी ने खोला। पत्नी दो गिलास पानी ले आयी।

"यह मेरी पत्नी है.... प्रमिला।"

"नमस्ते भाभी जी!"

"यह मेरा बचपन का मित्र है... सतीश शर्मा। आज बहुत दिनों बाद मिला।"

"नमस्ते! प्रमिला ने मुस्कराते हुए कहा।"

"भाभी जी, मैं भी आपका परिचय एक ऐसे व्यक्ति से कराता हूँ, जिसे आप जानती हैं, पर नहीं जानती। इनसे मिलिए ये हैं... सुधीर वर्मा। ये जो हैं, पहले नहीं थे; जो पहले थे, शायद अब नहीं रहे होंगे..."

"अच्छा, तू नहीं बदलेगा। नौटंकी करने की तेरी आदत गयी नहीं।"

और समवेत हँसी का एक ठहाका कमरे में गूँज गया। इस समवेत हँसी के साथ चिंता की महीन लकीर उन दोनों के चेहरे पर खिंचती चली गयी। दोनों मित्रों ने एक दूसरे के चेहरे पर इसे स्पष्ट देखा और पढ़ा।

"तुम्हें नहीं लगता हम जितने ख़ुश हैं, उससे ज़्यादा होना चाहिये।"

"सच कहा तुमने, हम जितने दुखी और चिंतित हैं, उतना दर्द और चिंता हमारे हिस्से में नहीं थी।"

"हाँ! सच कह रहे हो। तुमने बंटी को क्या दिलवाया....?"

"आई0टी0।"

"सिक्स्थ सेमिस्टर होगा।"

"हाँ"

"पढ़ने में कैसा है...?"

"अच्छा है। चार-पाँच सब्जेक्ट रुके हैं," इतना कहकर सुधीर वर्मा ने कमरे की दीवार पर अपनी नज़र गढ़ा दी, जो वर्षों से सफ़ेदी के लिए तरस रही थी।

"बिट्टू का भी तो सिक्स्थ सेमिस्टर होगा। उसका डिसिप्लिन क्या है....?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कम्प्यूटर साइंस। दोनों की एक साथ ही तो काउंसलिंग हुई थी।"

"हाँ! याद आया। कैसी चल रही है उसकी पढ़ाई..."

"ठीक ही है। ज़्यादा बैक नहीं लगे। एवरेज ही समझो।"

उसे लगा.... उसका दुख मित्र के दुख से अलग नहीं है।

"तुम तो अपनी क्लास में कभी सेकंड नहीं आये।"

"तो तू भला कौन-सा सैकंड आता था? हमेशा मुझसे कंप्टीशन करता था, पर रहा सदैव पीछे दो-चार नंबरों से ही सही पर पीछे तो रहा," उसने गर्व के साथ कहा और उसके चेहरे पर एक विजयी मुस्कान तिर गयी।

"हा! आज भी पीछे हूँ... बंटी के कारण।"

"मैं कहाँ आगे निकल गया हूँ। दौड़कर आगे आकर भी पीछे ही रह गया।"

"हाँ हम दोनों पिता हैं।"

"हाँ ! हम दोनों अब पिता हैं।" सपनों की बैसाखी पर टिके, लंगड़े पिता... कहते हुए उसकी आवाज़ काँप गयी और एक गहरी निस्तब्धता कमरे में छा गयी।"

वीटीसी सुकरी, पो0 जुन्नारदेव
ज़िला-छिंदवाड़ा-480551 (म0प्र0)

लघु कथा

मंत्री के पेन

राजीव कुमार त्रिगर्ती

मंत्री जी से मिलने वालों का ताँता आज सुबह से ही लगा था। बहुत से लोग नौकरियों तथा अन्य अनेक कार्यों के लिए मंत्री जी का हस्ताक्षरित पत्र प्राप्त करना चाह रहे थे। मंत्री जी सभी मिलने वालों से मुस्कुराकर बोल रहे थे तथा किसी को भी निराश नहीं कर रहे थे। हर किसी की चिट्ठी पर वे अपनी तरफ़ से नोट देकर हस्ताक्षर किए जा रहे थे। सभी प्रसन्न मुद्रा में हाथ जोड़कर अपने-अपने कार्य के हो जाने की आशा के साथ लौट रहे थे।

मंत्री जी का पुराना मित्र काफ़ी अर्से के बाद उनसे मिलने पहुँचा था। वह बारीकी के साथ सारी गतिविधियों को देख रहा था। आख़िरकार उसने पूछ ही लिया, 'आने वाले लोगों को नोट देते समय तुम अलग-अलग पैनों का प्रयोग कर रहे हो। इसका क्या मतलब है।'

मंत्रीजी ने मुँह उसके कान से सटाकर कहा, 'देखो राजनीति में किसी को नाराज़ नहीं कर सकते। विरोधियों को भी न नहीं कहा जा सकता। जो भी आया उसको हाँ। हाँ, काम तो कुछ लोगों के ही होंगे। कुछ के हो सकते हैं और कुछ के होने की संभावना तो बिल्कुल नहीं।'

'काम में पैन की क्या भूमिका?' मित्र ने उत्सुकतावश पूछा।

देखो राज की बात है, हर किसी को बताई नहीं जाती परंतु तुम तो हमारे पुराने मित्र हो, इसलिए बता रहे हैं। सुनो, जहाँ लाल पैन से हस्ताक्षर किए उनके काम बिलकुल नहीं होंगे। जिनके ऊपर नीले पैन से लिखा, वे विचाराधीन हैं। समय आने पर उनके काम हो भी सकते हैं। जिन पर हरे पैन से लिखा है उनके काम तो होंगे और काले पैन वालों को कुछ चक्कर काटने पड़ेंगे। जिस दिन वे हमें जनता का सेवक न समझते हुए हमारे असली महत्त्व को समझ पाएँगे, उनके काम भी हो जायेंगे।

ग्राम-लंधू डाकघर, गांधीग्राम
वाया-बैजनाथ, जिला-काँगड़ा (हि0प्र0)-176125

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्प

कुलजीत सिंह

निशा जब दफ़्तर से लौटी, तो संयोग से घर में कोई नहीं था। ऐसा कम ही होता है। ताला खोल, अंदर आकर उसने शांत-से घर को कुछ पल चुपचाप निहारा। फिर, बैग रखकर, शायद पहली बार, सारे कपड़े उतार फेंके और धम्म से पलंग पर गिर पड़ी। लेटे-लेटे उसे घर आज कुछ ज़्यादा ही आत्मीय लगने लगा। दरअसल, घर हो, चाहे कोई और जगह, जब तक वहाँ कोई और उपस्थित रहता है, फिर चाहे वो कितना ही अपना या तथाकथित घर का व्यक्ति ही क्यों न हो, वह जगह पूरी तरह अपनी नहीं रह जाती और दूसरे की उपस्थिति की चेतना हमें पूर्णतः सहज नहीं होने देती। निशा को लगा जैसे आज पहली बार वह अपने घर के आत्मीय स्पर्श को अपनी सारी त्वचा पर अनुभव कर रही हो। इसी अनुभव में डूबे हुए पता नहीं वह अपने अंदर ही कहीं खो गयी या उसे हल्की झपकी-सी आ गयी। पर, एक झटके के साथ उसे ध्यान आया कि जल्दी ही उस पल के लिए तैयार हो जाना चाहिए, जब यह घर फिर इतना अपना नहीं रह जाएगा।

नहाते हुए उसे आज पानी की सहलाहट भी कुछ ज़्यादा क़रीब लगी—ज़्यादा धीमी और शीतल, कहीं गहरे तक छूती हुई... अक्सर जब वह लौटती थी, तो उसके बच्चे और पति या दोनों में से कोई एक ज़रूर घर पर होता। बच्चे होते, तो माँ के आते ही अपनी भूख की बिलबिलाहट से भरे स्वर में खाने की किसी चीज़ की फ़रमाइश करने लगते और उसे बिना दो पल चैन लिए, बिना दो घूँट पानी तक प्यास से सूखे हलक़ में उतारे, रसोई में जाना पड़ता।

अक्सर, उसके मन में आता कि बाप और बच्चों में से कोई भी कभी यह क्यों नहीं सोच पाता कि वह भी भूखी-प्यासी, थकान से टूटी हुई लौटी है। बाप से तो ख़ैर उसे शुरू से ही कोई उम्मीद नहीं रही थी, पर बेटा जब छोटा था, तो ज़रूर उसे लगा करता था कि बड़े होने पर वह उसकी स्थिति को समझेगा। आख़िर माँ-बेटे के रिश्ते में सह-अनुभूति का एक न्यूनतम स्तर तो होता ही होगा! घर का पुरुष अगर काम करता है, तो उसके घर आने पर पत्नी ही नहीं, घर के सभी सदस्य दूसरे सब काम छोड़, उसकी भूख-प्यास, उसके आराम की चिंता और व्यवस्था में लग जाते हैं। पर, घर भर की आजीविका का वही बोझ, अकेले अपने कंधों पर उठाने वाली औरत जब उसी तरह दिन भर के काम से थकी-हारी घर लौटती है, तो उसे पानी पूछना तो दूर, अपने आप लेकर दो घूँट पानी पीने की फ़ुरसत तक देने का धैर्य किसी में दिखायी नहीं पड़ता...! बेटा भी अब छोटा नहीं कहा जा सकता था, बल्कि कुछ मामलों में तो निशा को वह कभी-कभी अपने से ज़्यादा ही वयस्क लगता था। हाँ बेटी ज़रूर अभी छोटी थी।

ख़ैर, बच्चों के होने पर जो स्थिति होती थी, वह निशा के लिए फिर भी सहनीय थी। पर, जब उसके लौटने पर उसका पति अकेला घर में होता, तो स्थिति बिलकुल असहनीय हो जाती। रमेश ने शादी के बाद से ही लगातार लगकर या लंबे समय तक कभी काम नहीं किया। कोई भी काम हो, दो-चार महीने बाद उसे कोई न कोई शिकायत होने लगती, वहाँ काम करना असंभव होने लगता और वह नौकरी छोड़कर घर आ बैठता। कभी तनख़्वाह की तुलना में काम बहुत ज़्यादा होता; कभी काम बहुत तक़लीफ़देह होता; कभी स्वास्थ्य के लिए ख़तरा पैदा हो जाता; कभी मालिक साला निहायत कमीना, लुच्चा, बेईमान निकलता; तो कभी किसी सहकर्मी से ही झगड़ा हो जाता। उसी के दोस्त या साथी जहाँ कोई काम बड़े मज़े में बरसों से करते चले आ रहे थे, वहीं वो काम करना रमेश के लिए छह-आठ महीने बाद ही नामुमकिन हो जाता।

शादी के बाद शुरू के दो-तीन साल तो सास-ससुर साथ थे, सो इस बीच बेकारी के दिनों में उनका सहारा रहता था। निशा ने भी तब नौकरी करना शुरू नहीं किया था। दबंग स्वभाव के पिता की डाँट-डपट और दौड़- धूप रमेश को ज़्यादा दिन बेकार रहने भी नहीं देती थी। पर, एक दिन सास-ससुर का धैर्य भी जवाब दे गया और उन्होने रमेश को अपना परिवार ख़ुद चलाने की चुनौती देते हुए घर से निकाल बाहर किया। ग़नीमत यह हुई कि निशा के माता-पिता भी उसी शहर में थे। वे अपने सामने बेटी-जँवाई, नाती-नातिन को भूखा-प्यासा तो नहीं देख सकते थे। रमेश के लिए यह स्थिति बेहतर ही थी, क्योंकि सास-ससुर राशन और कपड़े ही दे सकते थे, साथ में पिता की तरह डाँट-फटकार और गालियाँ नहीं। पर, पाँच साल पहले जब निशा के पिता रिटायर हो गये, तो वे लोग यह शहर छोड़कर अपने बड़े बेटे के पास चले गये। अब निशा की तनख़्वाह के अलावा घर चलाने का प्रायः कोई और ज़रिया नहीं था।

घर में सारा दिन बेकार पड़ा रमेश देह की भूख में हमेशा किसी नरभक्षी पशु-सा लोलुप और बेताब बना रहता। इसलिए, जब वह अकेला घर पर मिलता, तो जैसे किसी शिकारी पशु की तरह घात लगाये हमला करने को तैयार बैठा होता। उसे निशा की मनस्थिति, थकान आदि से कोई मतलब नहीं होता। आख़िर पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने का कोई अधिकार होता है या नहीं? वह अधिकार सीधी तरह न मिले, तो अँगुली टेढ़ी भी की जा सकती है, बल्कि की ही जानी चाहिए...

उसने नहा-धोकर कपड़े पहने ही थे कि सामने वाले घर से ज़ोर-ज़ोर की आवाज़ें आने लगीं। वही सीता का 'राम' आज कुछ जल्दी ही शुरू हो गया था :

"साली, तेरे को बोला न... चल बाहर निकल... चल साली रंडी, जा बाहर ...!"

"अभी का किया... ? आपका कछू बोला का?... हम तो. .."

...ज़ोर का थप्पड़ पड़ने के साथ ही सीता की बात बीच में कट गयी और रोने की आवाज़ आने लगी। फिर अनवरत देह पर पड़ते लात-घूँसे, अनर्गल गालियाँ और सीता के साथ बच्चों के भी रोने-चिल्लाने, अनुनय-विनय, चिरौरी करने की आवाज़ें आने लगीं।

निशा ने पर्दा हटाकर दरवाज़े की दरार से झाँका। सीता का पति कभी हाथों, कभी पैरों से मारता हुआ, गालियाँ बकता उसे दरवाज़े से बाहर धकेल रहा था और वह हाथ जोड़ती, उसके पैरों से लिपटती, दरवाज़ा-चौखट पकड़ती अंदर बने रहने की जी-तोड़ कोशिश कर रही थी। जब से वे लोग इस मुहल्ले में रहने आये थे, इस तरह की वारदातें उसके जीवन में लगभग रोज़मर्रा की बातें हो चुकी थीं। पास-पड़ोस और आमने-सामने के पाँच-सात घरों में से किसी न किसी में हर दूसरे दिन आदमियों का पीकर या बिन पिये भी परिवार में मार-पीट, गाली-गलौज, चीज़ें फेंकने- तोड़ने-फोड़ने का नाटक करना एक ज़रूरी सामाजिक व्यवहार था। फिर, चाहे वो आदमी पति हो, भाई हो या और कोई, ...और उसके बाद, शायद अगली सुबह, कभी अपनी झेंप मिटाने के लिए, तो कभी भड़ाँस निकालने के लिए औरतों का घर के बच्चों को निर्दयता से पीटना और फिर उनके साथ खुद भी फूट-फूटकर रोना इसी नाटक का अनिवार्य विस्तार कहा जा सकता था।

पर, यह सीता का पति तो हद ही था। आधी-आधी रात को, फिर कड़ाके की ठंड पड़ रही हो या मूसलाधार बारिश हो रही हो, उसका मार-पीट कर पत्नी को घर से बाहर कर देना आम बात थी। तीन-चार महीने का बच्चा जब रोता, तो सीता को अंदर बुला लेता और बच्चे को दूध पिला चुकने पर फिर से बाहर निकाल देता। एक बार सीता ने लजाते हुए बताया था कि कभी-कभी तो अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिए भी उसे बाहर से अंदर खींच लेता था और देह की आग बुझाकर उसे फिर बाहर धकेलकर आराम से सो जाता। इस तरह, एक बार तो उसे बिना कपड़ों के ही बाहर कर दिया था, बहुत हाथ-पैर जोड़ने के बाद खिड़की से उसकी साड़ी बाहर फेंकी थी... सारी-सारी रात वह बाहर ही ठिठुरती या भीगती रहती। सुबह उसका पति दरवाज़ा खोलता और घर के काम के लिए उसे अंदर आने देता, फिर काम पर जाते हुए कड़कती आवाज़ में चेतावनी देता जाता :

"ख़बरदार जो ख़ाना पकायी और बच्चों की नहलाई- धुला के बाद एक मिनट भी घर में रही...! हम सुना, तो आ हड्डी-पसली एक कर दूँगा! ... हमारे घर में तेरा ई सब चलित नहीं चलेगा...!"

वह कई बार सोचती कि पता नहीं कैसे कोई आदमी ऐ कर पाता है, कोई औरत क्यों यह सब बर्दाश्त करती जाती है और उनकी गृहस्थी फिर भी कैसे चलती रहती है !

वैसे निशा को औरों के मामले में दख़ल देने की आदत नहीं ख़ासकर, इस मुहल्ले के लोगों को तो वह सामान्य मिलने-जुल या मुँह लगाने लायक भी नहीं समझती थी—तो इनके झगड़ों बोलने का सवाल ही नहीं था। फिर भी, कभी-कभी जब माम उसकी बर्दाश्त की हद से आगे बढ़ जाता, तो वह निकल दख़लंदाज़ी करने से अपने को नहीं रोक पाती थी। बीच-बचा करते हुए वह आगे बढ़कर सीता के पति को रोकती, क झिड़कती या समझाने की कोशिश करती।

वह पढ़ी-लिखी है, खुद स्कूटर चलाकर किसी दफ़्तर नौकरी करने जाती है, मुहल्ले के बाक़ी लोगों से बेहतर कप पहनती है; इसलिए मुहल्ले के लोगों की दृष्टि में उसका स्थान कु ऊँचा है। दूसरी औरतों की तरह यहाँ के लोग सहज ही उस तू-तड़ाक में बात नहीं करते। सीता का पति भी इसका अपवा नहीं, इसलिए निशा के बीच में आ जाने पर वह मार-पीट तो ब कर देता, पर उसे बाहर ही छोड़ घर के अंदर घुसके धड़ाम दरवाज़ा बंद कर लेता, फिर कितना भी बुलाने पर बाहर नह निकलता। बाक़ी सभी औरतों-मर्दो के साथ निहायत बदतमीज़ी पेश आने वाले उस शख़्स की नज़रों में भी निशा के लिए इ थोड़े-बहुत सम्मान या लिहाज़ को देखते हुए ही, जब सीता पर प का जुल्म हदें पार करने लगता और निशा घर में होती, त कभी-कभी पास-पड़ोस की औरतें आकर उससे बीच-बचाव कर की मिन्नतें करतीं। किसी और में इतनी हिम्मत नहीं थी कि ऐ वक़्त पास भी फटके। औरतें तो एक तरफ़, मर्द भी उससे जुबा लड़ाना ठीक नहीं समझते थे। जब सीता रात-रात भर ठंड बारिश में बाहर होती, तो उसके पति के ही डर से कोई उसे अप घर में पनाह नहीं देता था... पर निशा को यह अहसास भी था कि अगर उसने एक हद से ज़्यादा दखलंदाज़ी की या उसका बीच-बचा करना रोज़ की बात हो गयी, तो सीता के पति की नज़रों में उस जो लिहाज़ बना हुआ है, शायद ज़्यादा दिन न टिके। इसलिए, व बहुत अधिक उलझनों से बचना चाहती थी.... और वैसे भी य कोई स्थायी समाधान तो था नहीं। रमेश को भी उसका यूँ उन झगड़े में पड़ना नापसंद था, वह कड़ुवाहट-भरे स्वर में कहता—"क यहाँ नेतागिरी करने का इरादा है क्या?"

आज अभी, आवाज़ें ऊँची होने के साथ वह सोच ही रही कि बाहर निकले या नहीं कि इस बीच बच्चे स्कूल से आ गये उसे अपनी दुविधा से आसान-सा छुटकारा मिल गया। बच्चे भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मम्मी को अकेला पाकर ख़ुश थे। पिता के रहने पर वे भी एक घुटन-सी महसूस करते थे। उसने सोचा, बच्चों के लिए उनकी पसंद का कुछ बनाए, पर देखा तो घर में न सूजी थी, न बेसन। आख़िर उसने तय किया कि पास की दूकान से ही कुछ गरमा-गरम मँगा लिया जाए। चिंतू को पैसे देकर भेजने के लिए उसने अलमारी खोली, यह देखकर वह धकक् से रह गयी कि पैसों में से सौ का एक नोट ग़ायब था। साफ़ था कि रमेश ही ये सौ रुपये ले गया था। पहले कुल जितने पैसे थे, उनमें भी महीना चलना मुश्किल ही था, अब और सौ रुपये घट गये थे। कैसे क्या करेगी वो.... उसने गिना... वेतन आने में अभी दस दिन बचे थे और रुपये थे कुल एक सौ आठ.... कम से कम सौ रुपये तो उसके दफ़्तर आने-जाने के लिए पैट्रोल पर ही ख़र्च होने वाले थे, फिर सब्ज़ी-भाजी, बच्चों का ख़र्च और... उफ्... उसका दिमाग़ चकराने लगा। ख़ैर, भारी मन से उसने दस रुपये निकालकर चिंतू को दिये और बाहर भेजा। रिंकू बाथरूम में चली गयी।

रमेश घर का या ज़रूरत का कोई सामान लेने पैसे लेकर निकला हो, यह असंभव ही था। ज़रूर आज फिर वो पास की उस गंदी बस्ती में गया होगा, जहाँ से अक्सर शराब पीकर आता था। आस-पास के कुछ लोगों ने तो इशारों-इशारों में उसे यह भी बताया था कि वहाँ वो कुछ औरतों पर भी पैसे लुटाता था....! काम-धाम न करने के साथ-साथ उसकी ये सब दिनोंदिन बढ़ती आदतें परिवार और ख़ासकर निशा की मुश्किलें बढाती जा रही थीं। घर चलाने में उससे किसी भी तरह की मदद की उम्मीद तो निशा कब की छोड़ चुकी थी, पर कम से कम मुसीबतें तो न खड़ी करे... कुल साढ़े चार हज़ार महीने की निजी कंपनी की क्लर्की में दो-दो बच्चों की पढ़ाई और घर का बाक़ी ख़र्च कैसे चलता है, यह तो वही जानती है। रमेश न जानता है, न जानने की ख़्वाहिश ही रखता है... ज़रूरत भी क्या है? पत्नी चला ही रही है न! ... और जब बाक़ी सारी ज़िम्मेदारियाँ उसने उठायी हुई हैं, तो पति के शराब-कबाब-शबाब के शौक की ज़िम्मेदारी भी उसी की हुई न... उसे क्यों नहीं उठा सकती?

चिंतू समोसे ले आया था, रिंकू भी हाथ-मुँह धोकर आ चुकी थी। इस बीच सीता के घर का शोर-शराबा भी थम गया था। निशा ने चाय बनायी और बच्चों के साथ नाश्ता करने लगी।

अचानक फ़ोन की घंटी बजी। निशा ने उठाया। रमेश का फ़ोन था। आवाज़ नशे में धुत्त :

"आ गयी तफ़रीह करके ...?"

"मैं तो कब की ऑफ़िस से आयी हुई हूँ। बच्चे भी आ गये हैं। तुम..."

"हाँ... हाँ सब जानता हूँ तेरा ऑफ़िस-वॉफ़िस... अच्छा सुन, बहुत दिन से तेरा साला घास-फूस खाते-खाते बोर हो गया हूँ। आज चिंतू को भेज थोड़ा-सा मुर्गा मँगा लेना और बढ़िया से बनाके रखना, वर्ना तेरी थाली-वाली उठाके तेरे मुँह पर मारूँगा... समझी न... वो हालत बनाऊँगा कि सवेरे अपने ऑफ़िस-वॉफ़िस जाने लायक नहीं रहेगी... फिर मत बोलना... हैं...!"

वह कुछ बोल पाती उसके पहले फ़ोन कट गया। निशा का शक सही था। रमेश उसी बस्ती में था। पिये हुए तो था ही, जब गालियाँ और धमकियाँ दे रहा था, तो पास से किसी औरत की दबी-दबी-सी हँसी की आवाज़ भी आ रही थी। उसके हाथ-पैर काँपने लगे। जब भी वो इस तरह बात करता, निशा घबराहट में अपना संतुलन खोने लगती थी। किसी भी तरह उसे संतुष्ट कर के शांत करने के अलावा उसे कुछ न सूझता, क्योंकि गुस्से में वो कुछ भी उठाके कहीं भी मार सकता था ,कुछ भी कर सकता था... ।

बच्चों ने मम्मी के चेहरे के भावों और प्रतिक्रिया से अंदाज़ा लगा लिया कि उनके पिता का ही फ़ोन था और यह भी समझ गये कि कैसी बातचीत हुई होगी। वे अब इतने छोटे और नासमझ नहीं रह गये थे। चिंतू सोलह का था और रिंकू भले ग्यारह की ही थी, बोलती भी कम थी, पर समझती सब थी। चिंतू तो खुलकर विद्रोह भी करने लगा था। वैसे भी, उसका स्वभाव अपने पिता की तरह कुछ ज़्यादा ही गुस्सैल-सा था। पिता की अनुपस्थिति में तो ज़हर उगलता ही था, कभी-कभी अब सामने भी बोल पड़ता था। निशा को ये आसार अच्छे नहीं लगते थे, पर करे भी तो क्या?

रिंकू थोड़ा पास सरक आयी, जैसे कुछ सहम-सी गयी हो। वैसे रमेश के गुस्से में आने पर सहम तो निशा भी जाती थी उसने अपने घर, ननिहाल, यहाँ तक कि आसपास के रिश्तेदारों में किसी के यहाँ भी इस तरह की न तो गालियाँ सुनी थीं, न मार-पीट ही देखी थी। पहले-पहल जब यह सब शुरू हुआ, तो उसे इतना ऊलजलूल लगता था कि समझ में ही नहीं आता था कि हो क्या रहा है। यकीन ही नहीं होता था कि यह सब उसके अपने साथ हो रहा है। इसलिए तो शर्म के मारे वह अपने पिता और भाइयों तक को कभी यह सब खुलकर बता नहीं पायी। एकाध बार माँ को बताने की कोशिश की, पर उसने बिना ठीक से पूरी बात सुने ही, 'ओ... ये सब छोटी-मोटी बातें घरों में होती रहती हैं, फ़िकर मतकर, सब ठीक हो जाएगा'-कहकर बात टाल दी।

"क्या बोल रहा था?" चिंतू का स्वर काफ़ी उत्तेजित था।

"ऐसे नहीं बोलते बेटे, तेरे पापा हैं न...!"

"हमेशा यही बोल के तो चुप करा देती हो... जानता हूँ, पर बाप वाला कोई काम कभी किया है ? अच्छा, बताओ तो सही, क्या बोल रहे थे आपके पतिदेव?"

"कुछ नहीं, रात को खाने में मुर्गा बनाने को कह रहे थे, दूध पीकर जा के ले आना ज़रा...।" निशा ने सहज होने की कोशिश की।

"बिल्कुल नहीं जाऊँगा और तुम भी, मम्मा, बिलकुल मत बनाना..! देखते हैं क्या कर लेगा, और अगर इस बार हाथ उठाया, तो मैं भी चुप नहीं रहूँगा, देख लेना! पहले से बोल देता हूँ, हाँ..

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर मत बोलना!''

निशा तो जैसे सन्न रह गयी। आज पहली बार चिंतू ने इतनी बड़ी बात कह दी थी, जो वह सोच भी नहीं सकती थी। पहले तो उसे इस बदतमीज़ी पर गुस्सा आने लगा, पर फिर सोचने लगी कि आये दिन घर में जो देखे, वह न सीखे, यह कैसे हो सकता है? वह कोई जवाब सोच पाती, इससे पहले ही वह गुस्से में फुफकारता हुआ बाहर चला गया। हालात जैसे चल रहे थे, उसे आशंका तो होती थी कि बाप-बेटे में टकराव की स्थिति भी आ सकती है, पर वह इतनी जल्दी आ सकती है, यह उसके ख़्याल में नही था। उसकी तो भरसक यही कोशिश रहती थी कि बच्चों के मन में अपने पिता के लिए आदर बना रहे। उसके अपने और रमेश के बीच के तनाव का असर बच्चों पर न पड़े, पर शायद यह नामुमकिन ही था।

रिंकू ने अपना सर माँ की गोद में रख दिया था, निशा उस पर हाथ फेरते हुए सोचने लगी....। अचानक उसे लगा, क्या फ़र्क़ है खुद उसमें और उस सीता में, जिसे वो अनपढ़-गँवार समझ कर प्रायः हिकारत से देखती है...! सीता का पति कम से कम अपनी मेहनत की कमाई से घर तो चलाता है। आर्थिक निर्भरता के चलते वह कुछ हद तक उसके अत्याचार सहने को शायद विवश है; पर वह खुद पढ़ी-लिखी, काम-काज़ी, निसबतन जागरूक होने का दम भरने वाली क्यों सहन करती है ? सिर्फ़ इसलिए कि अपनी और घर की इज़्ज़त बनी रहे, बात बाहर न निकले, वर्ना लोग क्या कहेंगे... ? रमेश गुस्से में आपे से बाहर होने वाला है, यह भाँपते ही सबसे पहले वो दरवाज़े-खिड़कियाँ बंद करने लगती है कि आवाज़ें बाहर न जाएँ। दफ़्तर के सहकर्मियों, परिचितों, रिश्तेदारों को पता चल जाए कि उसका पति उसे मारता-पीटता, गंदी गालियाँ बकता है, यह सोच कर ही वह शर्म से गड़ जाती है।

पिछले बारह-तेरह वर्षों से वह यह सब सहती आ रही है। जहाँ तक संभव हुआ, उसने अपने माता-पिता, भाई-बहनों तक से छुपाने की कोशिश की। जब तक वे लोग यहाँ थे, चोटों के निशान मिटने तक वह मायके जाती ही नहीं थी। जाना पड़ ही जाता या कोई आ ही जाता, तो गिरने का या ऐक्सीडेंट का बहाना बनाती। दो-तीन बार ही ऐसा हुआ कि उन लोगों को पता चल पाया, वो भी इसलिए कि ऐन ऐसे वक़्त कोई आ पहुँचा, जब छुपाना संभव नहीं था।

...और उसकी तमाम कोशिशों के बाद भी क्या सचमुच बाहर वालों को, इस बस्ती के जाहिल-गँवार लोगों को कुछ पता नहीं होगा? यह ठीक है कि रमेश ने उसे कभी घसीटकर बाहर नहीं निकाला, पर गले के पूरे ज़ोर से चिल्लाने, गालियाँ देने और दबाने की सारी कोशिश के बावजूद निकल पड़ने वाली चीख़ों को बाहर जाने से रोकने में ये कमज़ोर दरवाज़े-खिड़कियाँ कहाँ तक कामयाब होते होंगे?

दिन-ब-दिन स्थिति बदतर ही हुई है, बेहतर नहीं। जो ग़लत कर रहा है, उसे अपनी बदनामी का कोई डर नहीं, या शायद उसे पक्का यकीन है कि घर की इज़्ज़त बचाये रखने के इस अटूट आग्रह में उसकी अपनी स्थिति पूरी तरह सुरक्षित है।

...आज जाने क्यों निशा के मन में पहली बार यह सवाल उठ रहा है कि उसका वह आग्रह कहीं दुराग्रह तो नहीं ?

.. इस तरह 'इज़्ज़त के बच जाने' में क्या सचमुच इज़्ज़त है, सच्चा आत्म-सम्मान है ?

शायद, चिंतू के दृढ़ निश्चय से भरे विद्रोही स्वर ने आज उसके विचारों को एक नयी दिशा में मोड़ दिया था! यह सिर्फ़ उसकी अपनी ज़िंदगी का सवाल भी तो नहीं था... इस माहौल में रहते हुए क्या बच्चे अपनी मासूमियत और शिष्टाचार बचा पाएँगे, पढ़-लिखकर अपना जीवन और चरित्र किसी लायक बना पाएँगे ? क्या उसका यह कर्तव्य नहीं कि वो अपने बच्चों की सुरक्षा करे ? क्या ये ठीक होगा कि उसकी कायरता या झूठी इज़्ज़त की वजह से उसके साथ यह दोनों भी इस नर्क में पड़े रहें, ... उनका जीवन इसी अनिश्चित अँधेरी राह पर चलता हुआ न जाने कब किधर भटक जाए!

अक्सर वह सोचा करती थी कि उसकी सहनशीलता के आगे एक न एक दिन रमेश के वहशीपने की हार ज़रूर होगी। वह अपनी भूल को समझकर सुधर जाएगा। पर, आज उसे महसूस हुआ कि ऐसी उम्मीद बेवकूफ़ी के सिवा कुछ नहीं थी, क्योंकि सुधरने के बजाय स्थितियाँ तो बिगड़ती ही गयी थीं। अब वो हालत हो चुकी थी, जब सहनशीलता अत्याचार में सहयोग बन जाती है। .. परिवार के लोग या दूसरे सगे-संबंधी, मित्र आदि कोई स्थायी समाधान निकाल देंगे, ऐसा सोचने का भी कोई आधार नहीं था। पहले दो-चार बार इस तरह की असफल कोशिशें हो भी चुकी थीं। कुछ दिन हालत ज़रा ठीक रहती, फिर जस-की-तस हो जाती। दूसरों के सामने रमेश का व्यवहार भी इतना विनम्र होता कि अधिकतर लोग बंद दरवाज़ों के पीछे घर में उसकी नृशंसता का अनुमान ही नहीं लगा सकते थे। ज़रूरत पड़ने पर वह किसी के भी पैर पकड़कर माफी माँग सकता था। दूसरों के सामने—निशा के भी! खुद निशा भी उसके इस गिरगिट की तरह रंग बदलने से, उसकी इस नौटंकी से दंग रह जाती थी। दूसरे लोग, जिन्होंने उसका असली रूप नहीं देखा, वे तो उसका नाटक समझ ही नहीं सकते थे... नहीं, दूसरा कोई ऐसा नहीं था, जो उसे इस दलदल से खींचकर निकाले। इस नर्क से अगर निकलना था, तो उसे खुद अपने ही साहस, अपनी ही ताक़त से निकलना था...।

चिंतू बाहर से घूम-घाम कर लौट आया। वह अब चुप और मुरझाया-सा लग रहा था। निशा ने उसे बुलाकर पास बैठाया। उसके चेहरे को हथेलियों मे भर के कुछ पल देखती रही, फिर माथे को चूम लिया और बहुत की शांत स्वर में बोली—''तूने ठीक ही कहा बेटे, आज से हम न उसकी धमकियों में आएँगे, न उसका कोई अत्याचार बर्दाश्त करेंगे, पर इसके लिए तुझे कुछ करने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रूरत नहीं... देखना, मैं अकेली ही सबके लिए काफ़ी हूँ... तुम दोनों बस मेरे साथ रहना...''

अचानक एक अजीब-सी खामोशी छा गयी। बच्चों के चेहरों पर भी जैसे एक बहुत वयस्क गंभीरता झलक रही थी। चिंतू और रिंकू ने पहले कभी अपनी माँ की आवाज़ में ऐसी ताक़त महसूस नहीं की थी। निशा ने कई सालों में पहली बार अपने को अंदर से इतना शांत, इतना निर्भय पा रही थी।... उसने अनुभव किया कि एक संकल्प ही कितना कुछ बदल सकता है!

एम-117, गोपबंधु नगर
छेंड कॉलोनी, राउरकेला-769015 (उड़ीसा)

लघु कथायें

पैंतरा-1

संजय जनागल

नेता जी के पाँव छूते युवा नेता मोहन उनके पास ही बैठ गया। नेताजी ने कहा, ''मोहन आज तुम्हें मैं जो बात बताने जा रहा हूँ उसको ध्यान से सुनना।''

''हूँ'' मोहन ने गर्दन हिलाकर नीचे कर ली।

''अगर इस बात को अच्छी तरह से सीख लिया तो बहुत जल्दी तुम एक अच्छे राजनीतिज्ञ और धनवान बन जाओगे। फिर देखना धन के पीछे-पीछे शोहरत खुद-ब-खुद चली आयेगी। बस करना इतना है कि जो भी तुम्हें मिले उससे ऐसे बात करना जैसे तुम हमेशा उसकी ही बात करते हो। ऐसी खुशामदें करना कि उसे लगे कि तुम उसके भक्त हो। फिर देखना तुम्हारे काम स्वतः ही बनते चले जायेंगे।''

''लेकिन अगर दो विरोधी नेताओं ने मुझे अपना-अपना भक्त समझ लिया तो मैं किसका साथ दूँ?'' मोहन बीच में ही बोल पड़ा।

नेताजी ने हँसते हुए कहा, ''तब तुम किसी का भी साथ मत देना। बस, साथ देने का वादा करते रहना।

पैंतरा-2

'आगे बढ़ने के लिए अख़बारों में छाए हुए रहना ज़रूरी है।' नेताजी ने कहा।

'वो कैसे ?' मोहन ने पूछा।

'बस संपादक महोदय को ख़ुश कर दो और फिर देखो।' नेताजी ने मुस्कुराते हुए कहा।

'कैसे ख़ुश किया जाये?' मोहन ने फिर पूछा।

'अख़बार वालों को विज्ञापन देकर। जैसा आज तक मैंने किया है। मैं रोड पर पड़ा कंकड भी उठाकर फेंकता हूँ तो अख़बार में छपता है कि 'मैंने समाज सेवा की है। राहगीरों को कंकड़ से चोट न लगे इसलिए मैंने रोड पर से कंकड़ उठाकर फेंका। फोटो सहित छपता है।' गर्व से फैलते हुए नेताजी ने कहा।

'वाह! क्या बात है।' मोहन प्रसन्नचित मुद्रा में बोला।

अब मोहन को नेताजी से दूसरा गुरुमंत्र मिल चुका था।

सराहनीय बजट !

पूरी तरह से शाबासी देने के बाद नेताजी ने अपने आलेख में जारी नये बजट की जमकर तारीफ़ की। वित्तमंत्री की शान में तारीफ़ों के पुल बाँध दिये। अपने घर पर पहुँचे तो पत्नी ने कहा, ''ये क्या सुनने में आ रहा है कि आप कह रहे हैं कि वित्तमंत्री ने जो बजट प्रस्तुत किया है वो सही है।''

''हाँ'' थोड़ा उदासी के नाम निकला नेताजी के मुँह से।

''लेकिन हर चीज़ के दाम बढ़ाये हैं फिर भी आप कह रहे हैं कि बजट सही है।'' पत्नी फिर बोली।

''हाँ, हाँ, एक बार बोलने से समझती नहीं हो क्या ? आजकल तुम बहुत बोलने लगी हो।'' चिल्लाते हुए कहा।

पत्नी पति के चिल्लाहट में छिपे उनके दर्द को जान चुकी थी। चुपचाप जाकर अपने काम में लग गयी।

अनु कम्प्यूटर्स, बड़ी जसोलाई, रामदेवजी मन्दिर के पास, चौखूंटी, बीकानेर-01

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी तुम केवल सबला हो

डॉ. नीहारिका

नरेश ने दूसरी शादी कर ली। जिसने भी सुना हैरान रह गया। नरेश और रचना के बीच कितना प्यार, कितनी समझदारी और कितनी सद्भावना थी। फिर ये क्या हो गया? किसी को विश्वास नहीं होता। एक से दूसरा कहता और दोनों आश्चर्यचकित, निर्वाक हो एक-दूसरे को देखते ही रह जाते। ऐसे कैसे हो गया? कैसे हो सकता है। सदमें से उबरते लोग तो एक-दूसरे से पूछ बैठते 'किससे? किससे शादी की है नरेश ने? कौन है वो घरफोड़नी? हे भगवान! अब रचना का क्या होगा और बच्चे? वे बेचारे क्या करेंगे अब? कितने प्रश्न कितनी जिज्ञासाएँ। लेकिन उत्तर कोई नहीं। नरेश ने कल शादी की है किसी आर्य समाज मंदिर में और रात में ही वे दोनों हनीमून मनाने चले गये। छिःछिः! कल्पना की सारी देह गिनगिना उठी। कुछेक साल में उनकी बेटी शादी लायक हो जायेगी। दो-चार सालों मे उन्हें दामाद और बहू लाना चाहिए। वे खुद हनीमून मनाने चले गयें?

लेकिन कैसे, क्यों? आख़िर ऐसी क्या सिचूएशन आ गई कि इस तरह उन्हें अचानक शादी करनी पड़ गई। और वो भी तब जबकि उनका और रचना का घर-संसार बहुत अच्छी तरह चल रहा था। ऑफिस का पूरा स्टाफ रचना की बहुत इज़्ज़त करता है। वो है ही ऐसी। सबकी देख-भाल करने वाली, सबके दुख-तकलीफ बाँटने वाली। अपनी ऑफिस की परेशानियाँ तो सब बाँटते ही थे उसके साथ, अपनी घरेलू परेशानियों का हल ढूँढने भी उसी के पास आते थे। रचना कितने अपनेपन से उन्हें बैठाती, चाय-नाश्ता कराती, उनकी समस्याएँ सुनती और समाधान सुझाती। कितना हल्का महसूस होता उसके साथ अपनी समस्याओं को शेयर करके। कल्पना की मां की मृत्यु हुई थी तब रचना ने ही उसे सम्भाला था। वह रोज उसके घर जाती, उसकी देख-भाल करती। बाद में भी फ़ोन से बराबर उसका हाल-चाल पूछती रहती थी। उसे अपने घर बुलाती रहती। उसके अपनेपन में कल्पना अपनी माँ की छवि देखने लगी थी। नरेश सर ने शादी कर ली, उससे ज़्यादा तकलीफ की बात ये थी कि उसकी माँ जैसी रचना के पति ने शादी कर ली।

'हे! कम ऑन यार। अब अफवाह होगी। नरेश कैसे कर सकता है? रचना से कितना प्यार करता है वह। अभी पिछले हफ़्ते ही तो उसने रचना के लिए एक कविता लिखी थी। याद है? हम सबको कितनी ही बार सुनाई है उसने वो कविता, 'तुम ईश्वर की हो रचना या हो मेरे ख्वाबों की रचना...' फिर ऐसा कैसे कर सकता है वह?

'कर सकता है? कर चुका है ऑल रेडी! हु बुड बी दिस लवली लेडी? अरे वाह! मैं तो नरेश की तरह कविता करने लगा। नरेश कर चुका शादी ऑल, रेडी। हू बुड बी दिस लवली लेडी? हे! हे!! लिसन। मैं भी कविता कर सकता हूँ। लेकिन मेरी किस्मत तो देखो, नरेश को दो-दो मिल गईं, मुझे एक भी नसीब नहीं। रूपेश बक-बक किये जा रहा है।

'शट अप रूपेश! बकवास बंद कर अपनी। वी आर सीरियस।' नितिन बोला

'ऐ रेवा! रूपेश भी शॉक्ड है। माफ़ कर दे उसे।' नितिन बोला।

फिर सबके सब चुप हो उठे। जैसे लग रहा है कि सारे के सारे किसी के मातम में आए हों। एकाएक कल्पना उठी, मैं नरेश सर, नहीं, मैं रचना जी के घर जा रही हूँ। कोई चल रहा है मेरे साथ? जवाब किसी ने नहीं दिया लेकिन सब कल्पना के पीछे-पीछे चल दिये। कॉलबेल दबाने की भी ज़रूरत नहीं पड़ी। दरवाजा पहले से ही खुला था। रचना चुपचाप सोफ़े पर बैठी थी। दोनों बच्चे उसके अगल-बगल बैठे थे। 17-18 साल की बेटी नेहा और उससे डेढ़ साल छोटा अमन। रचना के माँ-बाप, भैया-भाभी भी वहीं थे। लेकिन पूरा घर बिल्कुल खामोश। ऑफिस के स्टाफ के इतने लोगों के आने से भी कोई हलचल नहीं मची। बस रचना की भाभी उठ कर किचन में गई और एक ट्रे में कई गिलास पानी लेकर आ गई। कल्पना रचना के पास कालीन पर ही बैठ गई,

आंटी । ये हम क्या सुन रहे हैं?'

अमन की पूरी देह गुस्से से काँपी या तनाव से और उसकी मुट्ठियाँ भिंच सी गयीं। नेहा की गर्दन आधा फुट नीचे झुक गई। लेकिन रचना ने अपनी गर्दन और सीधी कर ली। अमन की भिंची मुट्ठी और नेहा की पसीजी सी हथेली उसने अपने हाथों में भर ली। बच्चे जैसे संभल से गये। माँ है न? माँ जो इस वक़्त चट्टान की तरह अडिग और मज़बूत लग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है। माँ ही इन तरुण बच्चों का अब इकलौता संबल है। दोनों बच्चों ने अपनी दूसरी हथेली माँ की हथेली पर रख दी। एक मौन आश्वासन सा था कि माँ, हम तुम्हारे साथ हैं। मगर इस आश्वासन ने कहीं भीतर रचना को हिला दिया। कितने ही कठिन समयों पर नरेश ने ऐसे ही उसकी हथेली थाम कर आश्वासन दिये थे, मैं हू न! आज वही नरेश उसे पूरे समाज के बीच बेइज़्ज़त कर गये। मूर्ख साबित कर गये उसे। मूर्ख और नाकारा? कहाँ, कब गलत हो गई वह? और कितनी नासमझ? उसकी अक्लमंदी और समझदारी की लोग कितनी चर्चा करते थे-और वह इतनी कमअक्ल निकली कि अपने ही घर में, अपने सामने खुद चोर को न्योता देती रही। उसे ज़रा भी भनक तक नहीं लगी। उसकी सारी जमा-पूँजी लुट गई और वह लुटेरन पर स्नेह और ममता ही लुटाती रही। इतनी मूर्ख कैसे हो सकती है वह? लेकिन अब तो सब कुछ साबित भी हो चुका है। तुम ईश्वर की हो रचना या हो मेरे ख्वाबों की रचना..... गुनगुनाती वह प्रेम-जगत की किन ऊँचाइयों को छू रही थी कि नीचे से नरेश ने तो सीढ़ी ही खींच ली और वह धड़ाम से चारों खाने चित जमीन पर गिर पड़ी। जमीन पर? उसे तो लगता है जैसे वह पाताल लोक की अतल गहराइयों में डूबती जा रही है, डूबती ही जा रही है।....

0 0 0

रात के साढ़े नौ बजने को आ रहे थे। अब तक नरेश ऑफिस से लौटे नहीं। मारे चिंता के रचना के होशो-हवास गुम हो रहे हैं। ऑफिस से तो वह शाम पाँच बजे ही निकल चुके थे। सारे दोस्तों को फ़ोन कर चुकी है वह। अपने मायके भी फ़ोन कर दिया। नौ बजे तक भी जब नरेश घर नहीं पहुँचा तो भैया-भाभी भी परेशान होकर चले आये। कितने बुरे-बुरे ख्याल आते रहे उसे। मोटर साइकिल लेकर अमन जाने कहाँ-कहाँ खोजता ढूँढता रहा। जितनी बार लौट कर आता, माँ किसी और जगह खोज आने को कहती। सोलह साल का अमन माँ-पापा के प्रेम को ख़ूब अच्छी तरह समझने-पहचानने लगा है। फिर जब पापा का फ़ोन आया तो माँ कितनी खुश हो गई थी। अब खुश हो मम्मा? शर्माती मुस्कुराती माँ को उसने गार्जियन की तरह सीने से लगा लिया था। पापा के समय से घर न आने पर वह हमेशा ऐसे ही व्याकुल हो जाती हैं और अमन का जी चाहता है कि कहीं से पापा को खोज लाये और माँ के सामने खड़ा कर दे। पापा के घर पहुँचने पर माँ खुश तो होती हैं लेकिन साथ ही जैसे दुश्चिताओं का सागर आँखों से बहाने लग जाती है। आँसुओं की झड़ी और पापा को उलाहने एक साथ शुरू हो जाते हैं–'कहाँ रह गये थे आप? मारे चिंता के मेरा दिमाग फटने-फटने को हो आया है। आपको हम लोगों की ज़रा भी परवाह नहीं है....' पता नहीं क्या क्या बोलती जाती हैं वह और पापा मंद-मंद मुस्कुराते रहते हैं'– अरे भाई! अब तो आ गया हूँ। अब क्यों डाँट रही हो?' पापा कहते तो माँ झूठा गुस्सा दिखाती-देखा अब मैं डाँट रही हूँ? और ये बड़े अच्छे हैं जो मेरी डाँट सुन रहे हैं। जो थोड़ी सी भी हम लोगों की चिंता होती इन्हें तो क्या कहना था?..... माँ पापा की ये नोंक-झोंक बच्चों को बहुत मजेदार लगती थी। वे हमेशा भगवान को धन्यवाद देते थे कि उनके माँ-पापा में बस ये मीठी-मीठी सी नोक-झोंक ही होती है, भारी-भरकम लड़ाई या बहस नहीं। वर्ना अपने रिश्तेदारों और दोस्तों के यहाँ पति-पत्नी की कैसी विकराल लड़ाइयाँ भी देखी हैं उन्होंने। उनके माँ-पापा दुनिया में सबसे अच्छे हैं। लेकिन आज अमन पापा को कहीं भीं नहीं खोज पा रहा। साढ़े नौ बजने लगे और अमन को दौड़-भाग करते और चिंता के मारे निढाल देख मामा ने फिर बाहर जाने से रोक दिया। तभी कॉलबेल बजी। सबके चेहरे पर राहत सी आई। 'आ गये पापा' कहता अमन दरवाजा खोलने लपका लेकिन उससे पहले ही माँ ने दरवाजा खोल दिया–'कहाँ थे आप? हम सब कितने चिंतित हो रहे थे', कहती रचना ने दरवाजा खोला था और वहीं जड़ हो गयी थी। माथे पर तिलक लगाये नरेश जूली का हाथ पकड़े खड़े थे। जूली की माँग में ताजा-ताजा सिंदूर चमक रहा था और गले में मंगलसूत्र। कुछ कहने-सुनने को बचा ही नहीं। चक्कर खाकर गिरती रचना उसके पहले ही अमन ने उसे संभाल लिया। रचना की तो जुबान ही बंद हो गई। अमन-नेहा ने माँ को संभाल कर सोफ़े पर बैठा दिया, भाभी पानी ले आई। लेकिन रचना पत्थर की तरह बैठी रही। भैया गुस्से से चिल्लाये-'ये सब क्या है नरेश जी?'

नरेश बिल्कुल शांत थे, 'भाई साहब! मैंने जूली से शादी कर ली है। क्यों, कैसे, इसका जवाब मैं आपको नहीं केवल और केवल रचना को दूँगा। किसी और के प्रति मेरी जवाबदेही नहीं है। प्लीज मुझे रचना से अकेले में बात करने दीजिए। बच्चों तुम लोग भी कमरे में जाओ'।

भैया और बच्चों ने रचना की और देखा। शायद वह भी ऐसा ही चाहती थी। अब भी एक पत्नी अपने पति को किसी के सामने यहाँ तक कि अपने भाई और बच्चों के सामने भी घटिया रूप में नहीं देखना चाहती। उसके घटियापन कमीनेपन को ढँक लेना चाहती है। भैया बच्चों को समेटे बाहर चले गये थे। कितने सपाट शब्दों में नरेश ने अपनी बात की थी, 'रचना मैं पुरुष हूँ, मुझे स्त्री का साथ चाहिए, तुम जातनी हो। लेकिन तुम एक पत्नी से ज़्यादा एक माँ हो, एक बहू हो। तुम्हारे लिए शारीरिक संबंध बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। ये केवल एक पार्ट भर है जीवन का जो मेरे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। तुम्हारी उम्र, तुम्हारे जीवन अध्यात्म, व्यस्तता, थकान, और-और जिम्मेदारियाँ, बीमारी, सब तुम्हें इन संबंधों से दूर ले जाती हैं। लेकिन मैं तो पुरुष हूँ। पुरुष की कोई उम्र नहीं होती। मेरा सारा अध्यात्म, जीवन की सारी फिलासफी तुमसे अलग हो जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। तुम्हारी अरुचि से मुझे जीवन से अरुचि होने लगी है। पता नहीं नानी की गोद में सिर डाले रोये जा रही थी। नानी तुमसे मुझे कोई भी, कैसा भी स्फुरण नहीं मिलता। यह स्फुरण मुझे जूली से मिला। जूली का जोश, जिंदादिली, लापरवाही मुझे स्फूर्ति से भर देती है। मैं अपनी उम्र बीमार पत्नी, बड़े हो रहे बच्चे सब भूल जाता हूँ। मुझे लगता है जैसे मैं 25-26 साल का नवयुवक हूँ, जोश और स्फूर्ति से भरा हुआ। तुम्हारे साथ मैं एक पुरुष, पति न होकर एक सहचर, एक केयर टेकर जैसा होता जा रहा था। और ये मैं नहीं चाहता, मैं नहीं झेल सकता तुम्हें और तुम्हारे साथ को।.....'

कितना कुछ कहता रहा नरेश और उसके एक-एक शब्द से रचना घायल होती रही, मरती रही। जूली जो थोड़ा सा झुक कर बैठी थी, शायद अपनी करनी की वजह से, वह भी नरेश के शब्द दर शब्द पर सीधी होती गई। गर्व से ऐंठती गई।

नरेश फिर बोला, 'लेकिन इतने वर्षों का हमारा साथ रहा है, मैं तुम्हें बहुत प्यार भी करता रहा हूँ और अपने बच्चों को तो बिल्कुल भी नहीं छोड़ सकता मैं। इसलिए मैं तुम्हें छोड़ूँगा भी नहीं। हम सब साथ रह सकते हैं। या मैं दोनों जगह रह सकता हूँ। या मैं जूली के साथ रहूँ और तुम लोगों के पास भी आता हूँ। मैं तुम लोगों की पूरी देख-भाल करता रहूँगा। बस जिस व्यवस्था से तुम खुश रहो वही बना लेंगे हम लोग।' कितना अहसान कर रहा है नरेश रचना पर, उसके बच्चों पर। अर्द्धबेहोश सी रचना जैसे एकदम ही होश में आ गई—'नहीं नरेश। तुम्हें मेरे या मेरे बच्चों के लिए कुछ भी नहीं करना होगा। क्योंकि तुम्हारे लिए मैं और बच्चे कोई मायने नहीं रखते। इतने वर्षों का साथ भी कुछ नहीं है तुम्हारे लिए। जिस रिश्ते की बात तुम कर रहे हो, जिसके लिए तुम ने जूली से शादी की, मैं उसके कारण तुमसे सारे रिश्ते खत्म करती हूँ। तुम्हारे लिये वही रिश्ता सबसे ज़्यादा अहम है और मेरे लिए वह सबसे गौण है। तुम्हारी इन व्यवस्थाओं से मैं इन्कार करती हूँ। और एक बात... रचना के स्वर में एक घनी कठोरता, अद्‌भुत ठहराव आया। ये घर मेरा है, मेरे नाम से है। और मेरे घर में तुम्हारे जैसे व्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है। तुम अभी इसी वक़्त मेरे घर से अपने सामान सहित निकल जाओ। तुम्हारा जो भी सामान यहाँ छूटेगा वो मैं बाहर फेंक दूंगी।' भैया, बच्चे, माँ-बाबूजी सब कमरे में आ गये। कहने को सब कमरे से बाहर थे लेकिन उनके मन-कान तो इधर ही लगे थे। रचना बिल्कुल शांत थी। उसने किसी को भी कुछ बोलने-कहने से मना कर दिया। जिस आदमी से कोई रिश्ता ही नहीं रखना, उससे क्या बात करनी। नरेश ने फिर भी एक प्रयास किया, 'तुम अभी गुस्से में हो रचना। मैं और जूली हनीमून के लिए विदेश जा रहे हैं। लौट कर आऊँगा तब बातें करेंगे।' कहता नरेश अपना सामान समेटने लगा।

रचना फिर भी शांत थी। भैया किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े खुद भी रो रही थीं। नाना बेचारे बस—'ऐसा कैसे कर सकते हैं आप नरेश बाबू? मेरी बेटी से क्या गलती हुई है और ये बच्चे? ये क्या कहेंगे दुनिया से कि उनके पापा एकाएक उन्हें क्यों छोड़ गये' कहते बड़बड़ाते रहे। लेकिन उनके प्रश्नों का जवाब किसी ने नहीं दिया। किसी के पास जवाब है भी तो नहीं। अमन का जवान खून खौल उठा था। जाने किस खूनी इरादे से वह जूली की ओर झपटा कि रचना ने उसको अपनी बाहों में भर रोक लिया। अमन कसमसाया, 'माँ छोडो, छोड़ो मुझे!'

'नहीं अमन! अपने पिता पर हाथ उठा सकता है तू? नहीं न? जबकि गलती उनकी है, दोष उनका है। जूली को क्या सजा देता तू? विश्वासघात तो तेरे पिता ने, मेरे पति ने किया है, पराए व्यक्ति को क्या दोष? रचना छोटे बच्चे की तरह अमन को थपकियाँ देती रही और गुस्से से काँपता अमन हिचकियों से रोने लगा था। सबकी आँखों से आँसू गिरने लगे। माँ-बाबूजी भैया-भाभी बच्चे, लेकिन रचना की आँखें सूनी ही रहीं। शायद अपनी शादी की कोई और वजह बताई होती नरेश ने तो वह रो दी होती लेकिन ये वजह? बाइस साल से भी ज़्यादा हो गये दोनों की शादी को। कितने ही अच्छे-बुरे पल साथ बिताये हैं उन्होंने। शादी की कसमों के अलावा भी जाने कितनी कसमें खाई हैं, वादे किये हैं एक-दूसरे से। मन-प्राण के वादे। और आज मन-प्राण से ऊपर देह हो गई? छिः छिः। प्यार के संबंध केवल देह के संबंध बन गये। एक-दूसरे पर न्योछावर हो जाना केवल शारीरिक संबंध बनकर रह गया? अपना समर्पण भी अब उसे घिनौना लिजलिजा लग रहा है। अपने आप से ही जैसे घिन सी आने लगी रचना को।

नरेश और जूली चले गये अपने हनीमून पर। जंगल की आग की तरह उनकी शादी की चर्चा पूरे शहर में फैल गई। जो सुनता वही अवाक् रह जाता। इस उम्र में भी रचना-नरेश लव-बर्ड्स की तरह ट्रीट किये जाते थे। नये विवाहित जोड़े हों या प्रेमी-युगल! उन दोनों की तरह जीवन जीने की कसमें खाते। वे आदर्श पति-पत्नी थे और विवाहित होते हुये भी आदर्श प्रेमी-प्रेमिका थे। किसी को विश्वास न होता लेकिन सच्चाई तो सबके सामने थी। सब भाग कर रचना के पास पहुँचते। लेकिन रचना की दृढ़ता के आगे न कोई कुछ पूछ पाता, न कह पाता। अपने आप को हँसी का पात्र नहीं बना सकती वह। किससे क्या कहे और कहने से फ़ायदा क्या है? जो हो चुका उसे पलटा तो नहीं जा सकता? फिर भी—मुझे कोशिश तो करनी ही चाहिए। बच्चों का वास्ता देकर उसे वापस लाना चाहिए, माँ की इस सीख को वह एक कान से सुनती दूसरे से बाहर निकाल देती। क्या अब भी नरेश को वह वापस पाना चाहेगी? कभी नहीं! बच्चे अपने कॉलेजों से वापस लौटते तो उनके उतरे मुँह, लाल आँखे सब बयान कर देते कि कॉलेज में उनके साथ क्या बीत रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है? कैसे-कैसे व्यंग्य, ताने, मर्मांतक सुनने पड़ रहे होंगे उन्हें, वे समझ पाना किसी के लिए मुश्किल नहीं। दूसरों का दुख कुछ के लिए हँसी-मजाक, आनंद का उत्सव बन जाता है-ये क्या कोई नई बात है। लेकिन उनकी पढ़ाई छुड़ाई भी तो नहीं जा सकती। नये सेशन तक तो उन्हें इंतजार करना ही होगा। सब कुछ हिम्मत से झेलना ही होगा। माँ को इतना दृढ़ देख उनमें भी हिम्मत आ जाती है। माँ से ज़्यादा कौन झेल रहा है ये सब? सहानुभूति दिखाने के नाम पर कितना कुछ बोल जाते हैं लोग-'च् च्! कोई भी ऐब हो तो क्या ऐसे किसी के पति दूसरी शादी कर लेते हैं। ऐब तो सबमें होते ही हैं।' नीता आंटी बोली तो सुमन आंटी क्यों पीछे रहतीं, 'अरे छोड़िये बहनजी। कहीं रचना जी ही गुल खिला रही होंगी वर्ना पति क्यों छोड़ देता। देखिए ना अब भी कैसी ठसक बनी हैं। कहीं कोई दुख है इन्हें। कुछ अपना इंतजाम कर रखा होगा तभी तो।' वे गंदे से इशारे कर हँस देती हैं।

'अरे से सब मुंह से कहकर अपना मुंह क्यों गंदा कर रही हैं आप भाभी जी। सबने तो देखा है, नौकरी के बहाने जाने कहाँ-कहाँ जाती रहती हैं ये। जब नरेश भाई साहब को पता चल गया होगा तो फिर कैसे साथ रह सकते हैं? ' मीता कहती।

'भैया! हमारी शादी को तो पैंतीस बरस हो गये। लेकिन आज भी हमारे मियाँ को हमारे बिना चैन ही नहीं आता। कभी देखा है मुझे अकेले मैके भी जाते? जाने ही नहीं देते।' शर्मा आँटी खी-खी हँसते बोलीं।

उधर शर्मा जी सहानुभूति जताते रचना की बाँह पर हाथ फेरे दे रहे हैं, 'आप बिल्कुल भी चिंता न कीजिएगा। मैं हूँ न! जब कहेंगी हाजिर हो जाऊँगा। रात बेरात की फिक्र न कीजिएगा। मैं तो हमेशा से आपका बेहद प्रशंसक रहा हूँ। आप ही कभी निगाह नहीं फेरतीं...' एक कुत्सित हँसी फैल गई शर्मा जी के चेहरे पर।

जितने मुँह उतनी बातें। सहानुभूति जताने के उतने तरीके। रचना की खामोशी कुछ को तो चुप कर देती लेकिन कुछ लोग और भी ज़्यादा मुखर हो उठते। सब बर्दाश्त करना ही था उसको। अपने ने जो दुख दिया उसका खामियाजा तो भुगतना ही था। माँ ने बेटी के दुख से खाट पकड़ ली और छः महीने में ही दुनिया से चल दी। बाबूजी ने तब अंतहीन खामोशी ओढ़ ली। भैया भी गुमसुम हो गये। सबकी दुलारी थी रचना। उसके दुख से पूरा परिवार दुखी हो गया। नया सेशन शुरू होते ही दोनों बच्चों को रचना ने बाहर भेज दिया। अकेला घर और यादें! घर काटने को दौड़ता लेकिन क्या कर सकती है। रचना उन्हीं यादों में से अच्छी-अच्छी यादें चुनकर खुश होने की कोशिश करती। नेहा और अमन का जन्म और बचपन याद आता। उनका पहली बार करवट लेना, बिस्तर से नीचे उतरना, बकैंया चलना, पहली बार बोलना, उनकी तोतली बातें। दौड़-दौड़ कर माँ-पापा के गले लग जाना। कितनी ही बातें और फिर जूली का हाथ पकड़े नरेश याद आते। जैसे जूली अट्टहास सा करने लगती। 'तुम ठंडी, बेकार, नाकारा औरत! किसी काम की नहीं। मुझे देखो, मैं हूँ संपूर्ण नारी। अलौकिक निरूपम नारी। मैं! मैं!! मैं!!' उसका हाथ लेते नरेश भी अट्टहास कर उठते। रचना पसीने-पसीने हो जाती। सबके बीच में चट्टान की तरह दृढ़ वह अकेले में फूट-फूट कर रोती। बार-बार पानी के नीचे खड़ी हो मल-मल कर नहाती जैसे नरेश को बार-बार उसको पीछे से बाँहो में घेर लेना याद आता और फिर वही अट्टहास! कैसे निकले यादों के इस भंवरजाल से वह ? यादें जो कभी पीछा ही नहीं छोड़तीं।

समय बीत चला। दस साल चले गये। भैया की तमाम कोशिशों के बाद नेहा की शादी हो पाई, वो भी बहुत दूर, क्योंकि आस-पास तो उसके पिता की कीर्ति फैली हुई थी। अमन तीन साल से विदेश में है। पिछले महीने आया था, परसों ही वापस गया है। शादी करने को तैयार ही नहीं है वह। अगले साल तक विदेश से फाइनली वापस आ जायेगा—तब तुम नौकरी छोड़ कर मेरे साथ चलोगी, माँ'... एक निर्णय सा सुनाया उसने।

रचना हँस दी। 'हाँ-हाँ ! बिल्कुल चलूँगी तेरे साथ। आख़िर मेरा बेटा अब बड़ा हो गया है।' अमन के सिर पर हाथ फेर दिया था उसने। लेकिन मन न जाने क्यों उदास हो गया। अब हर खुशी में मन उदास हो जाया करता है। उदास होने की आदत सी पड़ गई जैसे। या मजबूरी है ये उसकी। मन हमेशा आशंकित रहता है। न जाने कब किस खुशी को नजर लग जाये और खुशी ज़िंदगी भर का गम बन जाये। अमन वापस चला गया तो घर फिर भांय-भाँय करने लगा।

उस रात फिर साढ़े नौ ही बजे थे। रचना पुरानी यादों की कालिमा में डूब-उतरा रही थी कि कॉलबेल बजी। कितनी जानी-पहचानी सी लेकिन बरसों बाद सुनी हुई। नरेश के हाथ से बजी कॉलबेल खूब पहचानती है वह। लेकिन वह कैसे हो सकता है? वह तो उसके भूले-बिसरे जीवन की जीवंत याद बन चुका है। फिर भी कॉलबेल के साथ ही कहीं मन की घंटी सी भी बज उठी। सिर झटक कर इन वाहियात सी बातों को झटका रचना ने और बंद दरवाजे के अंदर से ही पूछा,-"कौन है?"

एक क्षण की चुप्पी के बाद जवाब आया 'मैं हूँ, नरेश! दरवाजा खोलो रचना।'

जैसे एक घूँसा सा लगा रचना के सीने पर या कोई मरहम सा लगा गया? बुत बनी दरवाजे से टेक लगाये खड़ी रह गई वहीं। क्या करे? क्या न करे? दरवाजा खोले या अंदर से ही कह दे कि उसे नरेश से कोई बात नहीं करनी। और क्यों आया है वह इतने वर्षों बाद? रात के इस वक़्त? क्या चाहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे रचना से? कितना कठिन समय बिताया है उसने नरेश के जाने के बाद। समाज के बीच रहते हुये समाज का तिरस्कार, उपहास सहना आसान तो नहीं होता न? और बच्चे, उनका क्या दोष था। उन्होंने जमाने की कितनी ही बातें सुनीं। कितनी खिल्ली उड़ाई गई उन तीनों की, ये नरेश क्या जाने। आज सब कुछ स्थिर सा हो चला है, धीरे-धीरे करके सब कुछ सहेज लिया उन तीनों ने सिवाय अपने टूटे मन के। माँ-बाबूजी को असमय खो दिया रचना ने। ठहाके लगाते भाई को गुमसुम-गुमसुम देखना कितना कष्टप्रद है- ये रचना ही जानती है। भाभी की सहानुभूति में किसी निहित भाव की तलाश करती रचना से खुद रचना को शर्म आने लगती लेकिन मन हर बात पर, हर संबंध पर शंका करता है। जब अमन ने नौकरी छोड़ अपने साथ चलने की बात कही तो 'हाँ हाँ क्यों नहीं... ये शंका भी थी कि तू मेरा कितना ध्यान रख सकेगा बेटा? जब तेरा पिता अग्नि के चारों ओर फेरे लगाने और सात कसमें खाने के बाद भी मुँह फेर कर चला गया। कहाँ खो गई है रचना? बेसुध सी। तभी नरेश की आवाज फिर आई, रचना। दरवाजा खोलो। प्लीज! रचना प्लीज!

जाने कैसी याचना थी उसकी आवाज़ में कि रचना ने दरवाजा खोल ही तो दिया। किस दीन वेश में खड़ा है नरेश। बढ़ी दाढ़ी, मुड़े-तुड़े कपड़े। रचना को देखते ही आँखों से आँसुओं की झड़ी बहने लगी—रचना! मुझे माफ़ कर दो। मैंने बहुत खड़ा अपराध किया है तुम्हारे प्रति, बच्चों के प्रति। मुझे माफ़ कर दो रचना। मैंने जो तुम्हारे साथ किया आज वही जूली मेरे साथ कर रही है वो भी ब्याज के साथ। जाने किस-किस के साथ कैसे-कैसे संबंध हैं उसके। कुछ कहता हूँ तो मुझ पर नाराज होती है कि तुम बुड्ढे हो गये हो लेकिन मैं तो बुढ़िया नहीं हुई। मैं क्यों तुम्हारे साथ अपना यौवन नष्ट करूँ। मुझे मेरे लायक तमाम लोग मिल जायेंगे। शादी, शादी की पवित्रता, कर्तव्य की बात करता हूँ तो मेरा ही मखौल उड़ाने लगती है। 'तुम शादी, पवित्रता और कर्तव्य की बातें कर रहे हो नरेश? तुम?? तुमने कितना पालन किया इनका। जब तक पत्नी तुम्हारे ऐशो-आराम में सहयोग करती रही तब तक सब ठीक रहा। जैसे ही उसकी उम्र और बीमारी उस पर हावी होने लगी, तुमने उसे दुत्कार दिया और मुझे, एक नवयौवना को अपनी बातों के जाल में फँसा लिया। मैं तुम्हारे चंगुल से कहीं निकल न जाऊँ सिर्फ इसीलिए तो शादी की थी तुमने मुझसे। और मेरा यौवन कहीं रचना की तरह मेरा भी साथ न छोड़ दे इसीलिए तो तुमने मुझे बच्चे भी नहीं पैदा करने दिये। तुम बाप बनने का सुख पा चुके थे लेकिन मुझे माँ बनने का सुख नहीं लेने दिया तुमने। तो आज मैं चिर यौवना होने का सुख क्यों ने भोगूं। तुम्हारे बुढ़ापे में मैं क्यों अपने शरीर को गलाऊँ? निर्द्वंद्व जूली कभी भी, कहीं भी आती-जाती रहती है। मेरा उस पर कोई वश नहीं चलता। मैं वापस आना चाहता हूँ रचना। तुम्हारे पास, तुम्हारे निर्लोभी प्यार की छाँव में आना चाहता हूँ। मुझे तुम्हारी, बच्चों की बहुत याद आती है। कितना बड़ा हो गया है हमारा अमन! मैंने दूर दूर से देखा है उसे। पास आने की हिम्मत ही नहीं हुई। जवान लड़का है, पता नहीं किस प्रकार की प्रतिक्रिया करे? लेकिन तुम उसे समझा लोगी न? और नेहा, उसकी छोटी सी बिटिया, कितनी प्यारी है। अब तुम सबसे दूर नहीं रहा जाता। मुझे मेरे घर-संसार में वापस स्वीकार कर लो रचना, प्लीज।' कहता नरेश रचना के मौन को ही स्वीकृति मान दरवाजे से अंदर आने को हुआ कि दोनों दरवाजों को हाथों से पकड़ रचना ने उसका रास्ता रोक दिया। पूरे आत्म-विश्वास से कहा उसने, "एक मिनट मि0 नरेश! मेरी कुछ शर्तें हैं।"

'बोलो रचना बोलो! मैं हर शर्त मनाने को तैयार हूँ।

'मि0 नरेश! मेरे पिछले दस साल मेरे जीवन में से काट देंगे आप? मेरे बच्चों ने, मैंने जो लाँछन, उपहास, तानें झेले उन्हें हमारे दिल-दिमाग से हटा सकेंगे आप? मेरे निश्छल निःशंक मन को जो चिरशंकालु बना दिया है आपने उसको पहले जैसा बना सकेंगे आप? मैं और मेरे बच्चे अब किसी का भी विश्वास नहीं कर पाते क्योंकि मेरे पति और बच्चों के पिता ने उनके साथ विश्वासघात किया। उनके जीवन की इस सच्चाई को कैसे झुठलाएँगे आप? जरा बताइये तो सही। मेरी माँ, मेरे बाबूजी को वापस ला सकेंगे, मेरे भाई की हँसी लौटा देंगे? मेरे बच्चों के मन से दीन होने, बेबाप का होने के, नहीं, बाप के बदचलन होने के अहसास को मिटा सकेंगे आप? मैंने अपना और अपने बच्चों का जीवन सँवारने में जो तकलीफें उठायीं उसकी क्या भरपाई करेंगे? लोगों की जो गंदी नजरें और बातें मैंने झेलीं उनका क्या करेंगे? और अब तो मैं और भी ज़्यादा उम्रदराज़ हो गई हूँ। शायद आपके किसी काम की नहीं, और आपकी सहचरी या केयर टेकर बनने की मेरी अब कोई इच्छा नहीं है। जब मैं तब आपके काम की नहीं थी तो अब किस काम आ सकूंगी? पहले आप इतने सवालों का जवाब दीजिए या इनमें से किसी एक का भी जवाब दीजिए तभी आप इस घर के अंदर आ सकेंगे। मेरे पास अभी और भी सवाल हैं। मेरे किसी एक प्रश्न का जवाब दीजिए और इस घर में प्रवेश कीजिए। दरवाजा खुला है',

कहकर रचना अंदर चली गई। जाहिर है नरेश के पास उसकी बातों का कोई जवाब नहीं था। थोड़ी देर बाद आकर रचना ने देखा। दरवाजा खुला था और दूर तक सिर्फ अंधकार और शून्य था।

द्वारा श्री अजय श्रीवास्तव
सहायक अधीक्षक पुरातत्वविद्
पुरातत्व संग्रहालय, सारनाथ
वाराणसी-221007

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ॉल्स-पी

महावीर रवांल्टा

"कौन?" कसाईबाड़ा मुहल्ले के मकान संख्या चौबीस की चौखट पर खड़ी बीना के किवाड़ की कुंडी खड़खड़ाते ही भीतर से पुरुष स्वर उभरा था।

"हम हैं भैया किवाड़ खोलो," बीना ने उत्तर दिया।

"कौन हम?" भीतर से फिर प्रश्न उछला। सलीम है—बीना आश्वस्त थी और भीतर सलीम भी आश्वस्त हो चुका था कि दरवाज़े पर पोलियो-टीम खड़ी है।

"बहन की... रोज़ चली आवें चु..." तन पर सफ़ेद बनियान और चौखाना लुंगी डाले सलीम भद्दी गाली देता हुआ भीतर ही चहलक़दमी करने लगा और बाहर खड़ी बीना का चेहरा क्रोध व ग्लानि से बुरी तरह तमतमा गया था। उसके एक हाथ में तख़्ती पर लगी टेलीशीट थी, तो दूसरे हाथ में कमल। अड़तालीस के आसपास की उम्र। चेहरे पर नाममात्र की झुर्रियों के कारण उसकी उम्र का सही अंदाज़ा मुश्किल था। गोरा रंग, सुव्यवस्थित दंत-पंक्तियाँ, चेहरे पर ताज़गी और बनाव-शृंगार में कोई कमी नहीं। वह स्वीकारती कि सजने-सँवरने का उसे बचपन से ही शौक रहा है। अब वह अपने पैरों पर खड़ी है, तो क्यों न अपने पर मनमाफ़िक ख़र्च करे। और, अपनी इस हठ कहें या इच्छा, को उसने बराबर बनाये रखा है। कानों में झालदार सोने के टॉप्स, दोनों हाथ की कलाइयों पर सोने की दो-दो चूड़ियों, तीन-चार अँगूठियों व सोने की चेन के साथ ही वह लकदक सजी रहती। उसके इस शृंगार पर सहकर्मी उसे टोकते कि उसे इतना सब... अब पहले सा समय नहीं रहा, सौ-पचास रुपये के लिए खुले आम क़त्ल हो रहे हैं और वह इतनी सारीं चीज़ें एक साथ...

"अरे भैया, मेरा पहनना देखकर चोर-उचक्के भी यकीन कर लेंगे कि ज़रूर आर्टिफ़ीशियल होंगे। लोग तरकीब बुनते रहते हैं और हम जैसे लोग उसका फ़ायदा उठाते हैं", कहती हुई वह बेख़ौफ़ लंबी हँसी हँसती, ठहाके लगाती।

हाथ में अँगुलियों के बीच क़लम दबाकर मुट्ठी से वह घर के किवाड़ पीटती तब उसके हाथ की चूड़ियाँ छन-छान कर बज उठतीं।

उसके पीछे सविता खड़ी थी। एक हाथ में पोलियो-वैक्सीन की पायल (शीशी) और दूसरे हाथ में चॉक। बत्तीस के आसपास की उम्र। साँवला रंग। माथे पर साड़ी-ब्लाउज़ से मेल खाती कलेजी रंग की अंडाकार बिंदी। लंबा चेहरा, कानों में कुंडल। लंबी-घुटनों तक लहराती चोटी। गले में मामूली-सी चेन। आँगनबाड़ी कार्यकत्री मकान पर किवाड़ की बाँयी ओर टीम 'चौदह मकान चौबीस' को दर्शाते टी-14 एच 24 को अंकित करने के बाद उसके हाथ वहीं थम गये थे। औपचारिक प्रश्नों की निवृत्ति के बाद ही उसे घर को 'एक्स' या 'पी' मार्क करना था। थर्ड पर्सन यानी ज़ाहिदा दरवाज़े के बिल्कुल बराबर में खड़ी थी। उसने वैक्सीन-कैरियर को एक ओर ज़मीन पर रख दिया था और उसे भी इंतज़ार था कि किवाड़ खुलें और बच्चे को दवा पिलाने के बाद वे अगले घर की ओर बढ़ें। ज़ाहिदा सैंतीस के आसपास की होगी। आसमानी रंग के सलवार-कुर्ते से मेल खाता दुपट्टा। छोटी-सी उम्र में बेवा होने के बाद वहीं अपने बच्चों का भरण-पोषण कर रही है। विगत कई चरणों से पोलियो की टीम में थर्ड पर्सन का काम करने वाली ज़ाहिदा को 'आशा' में चयन से घर की ज़िम्मेदारियों में राहत के साथ ही अपना रुतबा भी बढ़ता हुआ लगता। चिकित्सक, फ़ार्मेसिस्ट, ए.एन.एम.-सभी से उसकी निकटता बढ़ी है और सुगमता से दो-चार पैसे भी हाथ आने लगे हैं। पोलियो के किसी भी चरण की सूचना मिलते ही उसमें उत्साह भरने लगता है। एक हाथ अपनी ठुड्डी पर रखे वह भी टकटकी लगाये सिर्फ़ सलीम के घर की किवाड़ को देख रही थी।

वे तीनों घर के बाहर खड़ी इंतज़ार कर रही थीं। हाड़तोड़ देने वाली ठंड को देखते हुए उन्होंने गर्म कपड़े पहने हुए थे और बार-बार अपने कपड़ों पर दबाव बनाते हुए वे जैसे एक-दूसरे को अहसास करा रही थीं कि इस बार ठंड कुछ ज़्यादा ही है। पर करते भी क्या, ड्यूटी के मामले में सब कुछ सहन करना पड़ता है, यहाँ तक कि ठंड भी। और, किवाड़ अब भी नहीं खुले थे और वे किसी खोजी दस्ते की तरह पैनी नज़र गढ़ाये हुए थे, जैसे किसी आतंकवादी को उसकी खोह से बाहर निकलने के लिए ललकार रहे हों। किवाड़ खुलने के साथ ही तीनों को सलीम के बाहर निकलने की उम्मीद थी।

किवाड़ खुली। चौखट पर सलीम, नहीं बल्कि हमीदा खड़ी थी। सलवार-कुर्ता पहने। शरीर शॉल से ढका हुआ। बाहर सिर्फ़ चेहरा झाँक रहा था।

"नमस्ते भाभी," बीना ने संवाद बनाने की गरज़ से अभिवादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया।

"नमस्ते भैन जी", उसका सपाट-सा उत्तर था।

"भाभी, घर में बच्चों को दवा पिलवा दीजिए", बीना ने काम पर आते हुए कहा।

"दवा..., भैन जी वो तो सभी पी चुके हैं", उसने यूँ ही अनमने ढंग से कहा।

"तो बच्चों को दिखा दीजिए... ज़ाहिदा, ज़रा सारे बच्चों को सामने कर ले", बीना ने पीछे खड़ी ज़ाहिदा से कहा।

हमीदा एकाएक बोल पड़ी—"भैन जी, बच्चे तो अभी सो रहे है।"

"कोई बात नहीं, अब तो साढ़े नौ बज चुके हैं, उन्हें जगा दो या हमें भीतर जाकर...", बीना ने कलाई पर बँधी घड़ी पर नज़र डालकर समय का अहसास कराते हुए बात को आगे बढ़ाया।

"कहा न, हमारे बच्चे दवा पी चुके हैं", इस बार बजाये हमीदा के भीतर से सलीम का स्वर उभरा।

"सलीम भैया जी..." बीना ने उसका स्वर सुनते ही अभिवादन की औपचारिकता निभायी। प्रत्युत्तर में खामोशी।

"हमने कब कहा कि आपके बच्चों ने दवा नहीं पी। बस एक बार उनके बाएँ हाथ की अँगुली पर निशान देखकर तसल्ली कर लें", बीना ने अपनी बात रखी।

"तो क्या हम झूठ बोलेंगे?" बजाय सहजता के किसी जानवर की तरह गुर्राया था सलीम।

"आप सच ही कह रहे हैं, लेकिन हमें एक बार..." बीना का कड़ा प्रतिवाद था।

"फिर वही बात, हमने कहा न... हम बच्चे को इस वक़्त नहीं जगाएँगे।"

उसकी बात सुनकर बीना के चेहरे पर तनाव उभरा। उसने टेलीशीट के 'एक्स आर' कॉलम पर टिक किया।

"दरवाज़े पर एक्स मार्क कर", उसके कहते ही सविता ने अपना काम पूरा किया—टी-चौदह एच चौबीस एक्स। उसके नीचे दिनांक लिखकर टीम आगे बढ़ गयी।

सलीम का घर छोड़कर टीम बीस-बाइस घर आगे बढ़ चुकी थी, पर उसके सदस्यों के चेहरों पर चिंता पहले जितनी ही गाढ़ी थी। आज ठिठुरती सर्दी में आठ बजे से काम शुरू करने के बाद सलीम का घर प्रतिरोध के रूप में दर्ज़ हुआ। दोपहर तक 'हाउस टू हाउस' दवा पिलाने के इस अभियान में उन्हें अच्छी ख़ासी मशक्कत करनी पड़ती है। अपनी ओर से तमाम ज़रूरी तरकीबें—जिनसे वे परिवारीजनों को कन्विन्स कर सकें—इस्तेमाल करती हैं। लगभग सौ घरों का आँकड़ा पार करने के बाद उसकी रपट टेलीशीट में अंतिम स्थिति में पर्यवेक्षक के सुपुर्द करनी होती है।

कसाईबाड़ा मुहल्ले में काम करते हुए उसे तीन वर्ष हो गये हैं, लेकिन दवा पिलाने के इस अभियान के दौरान् हर बार वह मुहल्ले के अनेक लोगों के लिए जैसे अजनबी हो जाती है। पहले इस मुहल्ले में अभियान आम अभियान जैसा ही चला था लेकिन बाद में..."

"हम अपने बच्चों को दवा नहीं पिलाएँगे भैन जी", शकील के घर की दहलीज़ पर क़दम रखते ही उसकी पत्नी अख़्तरी ने एकाएक प्रतिवाद किया था।

"क्यों?" हठात् वह इतना ही पूछ सकी थी।

"क्यों? क्या तुम्हें पता नहीं ? हम सब जानते हैं... नहीं, हमें नहीं करना अपनी औलाद को बेकार...", इतना कहते ही उसने अपने एक बच्चे को अपने सीने से चिपका लिया था, दूसरा उसकी अँगुली पकड़े खड़ा था और तीसरा दोनों हाथों से रोटी पकड़े उसे चूहे की तरह कुतरने के अपने प्रयास को अंजाम दे रहा था। तीनों के बीच मुश्किल से एक-एक वर्ष का अंतर। तीनों ही अधनंगे।

"बेकार... मैं कुछ समझी नहीं," बीना ने अनभिज्ञता ज़ाहिर की।

"तो मैं ही बता देती हूँ, अच्छा सोचा है इस नासपीटी सरकार ने, हमारे बच्चों को पोलियो की दवा पिलाने के बहाने ऐसा नाकारा बनाने पर तुले हैं कि फिर बच्चे पैदा करने के काबिल ही न रहें।"

उसकी बात सुनकर बीना जड़ हो गयी थी।

"यह तुम्हें किसने बताया?" उसने अचरज से यूँ ही पूछा।

"किसने क्या, सारे मुहल्ले में चर्चा है। कल ही इसके पापा हमें बता रहे थे", उसने सीने से चिपके बच्चे की ओर इशारा करते हुए कहा, जो दुनिया से बेख़बर एक हाथ से माँ का दूसरा स्तन पकड़कर दूध पीने में मस्त था।

"बच्चे पैदा करने के काबिल ही नहीं यानी नपुंसक?" सुनकर बीना को झटका-सा लगा था और ज़ोर से उसकी हँसी भी फूट पड़ी थी, "अरी बहन, तुम्हें जिस किसी ने बहकाया, बिल्कुल झूठ बताया। फिर, यह दवा सिर्फ़ तुम्हारे बच्चों को ही थोड़े पिलायी जा रही है, इसे तो पूरे मुल्क के बच्चे..."

"मुल्क नहीं, सिर्फ़ मुसलमानों के बच्चों को पिलायी जा रही है यह दवा। हिंदुओं के बच्चों के लिए अलग दवा है। यह भी कोई बात हुई कि हिंदुओं के बच्चों के लिए अलग दवा और मुसलमानों के बच्चों के लिए अलग...."

"हे भगवान," कहते हुए उसने अपना एक हाथ अपने सिर पर रखा था, जैसे कि इससे बेतुकी बात उसने सारी उम्र में न सुनी हो।

"ले बहना, मेरे वैक्सीन-कैरियर में तीन शीशी दवा रखी है, इनमें से जिससे चाहे तू अपने बच्चों को दवा पिलवा ले।"

अख़्तरी को समझाने व अफ़वाहों के धुंध से बाहर निकालने का दूसरा तरीका और कोई नहीं था।

समझा-बुझाकर वह अख़्तरी को इस बात के लिए राज़ी कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी थी कि वह अपने तीनों बच्चों को पोलियो की खुराक पिलवाए। उस दिन उसने पहली बार जाना था कि जब अफ़वाहों का बाज़ार गर्म होता है, तब उसे ठंडा करने के लिए कितनी मशक़्क़त करनी पड़ती है। कुछ घरों में लोगों की भ्रांति मिटाने के लिए उसे स्वयं भी पोलियों की खुराक पीनी पड़ी थी।

पड़ोस के जनपद में पोलियो के चार संदिग्ध केस मिलने के कारण पूरे तंत्र में हड़कंप मचा हुआ था। पोलियो-प्रतिरक्षण अभियान चलाने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन, चिकित्सा एवं परिवार कल्याण विभाग के साथ ही यूनीसेफ़ ने भी कमर कस ली थी। प्रशासनिक स्तर से भी भागीदारी तय हुई। अभियान चलाने के लिए व्यापक सोच व सूझबूझ के साथ योजना बनने लगी। काग़ज़ी घोड़ों की रफ़्तार तेज़ होने लगी।

बूथ पर एक दिन दवा पिलाने के साथ ही घर-घर दवा पिलाने के लिए माइक्रोप्लान फिर माइक्रोप्लान रिव्यू में हाई रिस्क एरिया के लिए अलग से रणनीति। टीमों का गठन। वैक्सीनेटर, सेकेंड वैक्सीनेटर फिर थर्ड पर्सन यानी एक पूरी टीम।

टीमों के गाँव-शहर में मुहल्लेवार कार्य-दिवस। क्षेत्र के प्रभावशाली व्यक्ति। कार्य का आरंभ, अंत...। कार्यक्षेत्र के नक़्शे के साथ ही सुपवाइज़र, सेक्टर सुपरवाइज़र, नोडल अधिकारी तक सभी की ज़िम्मेदारी तय की गयी थी यानी पूरा तंत्र सक्रिय। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मॉनीटर, यूनीसेफ़ के सी. एम.सी., बी.एम.सी. से लेकर एस.एम.सी. व एस.एम.ओ., सी.एम.ओ.डी. एम. सभी सक्रिय। घर-घर दवा पिलाने के बाद एक बार फिर 'बी टीम एक्टिविटी' के लिए माइक्रोप्लान, बी-टीम एक्टिविटी, बचे घरों व 'रिपीटेड एक्स' की सूची के साथ ही उन्हें निजात मिल पाती। एक चरण समाप्त, फिर दूसरे की तैयारी।

बीना को लगता, जैसे अब तो सारी नौकरी ही पोलियो में निकल जाएगी। सुबह चार बजे से आरंभ उसकी दिनचर्या का अंत रात्रि आठ बजे उसकी थकी-बुझी काया के घर में समाने से होता। सुनती है कि चेचक को जड़ से समाप्त करने के लिए भी अपने देश में कभी ऐसा ही अभियान चला था और उसमें हम सफल भी रहे। हर बार के हर चरण के साथ ही उसे अपनी जीत की आश्वस्ति रहती।

माइक्रोप्लान रिव्यू के दौरान् ही गहरा तनाव व्याप गया था बीना के मन में। अपनी नौकरी के दो दशक काटने के बाद उसे महसूस होने लगा था कि बेशक माया अंत तक साथ दे, पर काया की अपनी कोई सीमा हैं। सुबह से शाम... ठंडी सुबह, तपती दुपहरी... डूबती शाम... घनघोर वर्षा... आँधी.... सभी तरह के मौसम का सामना उसने पोलियो के इन अभियानों में किया था, पर चेहरे पर शिकन तक न आती थी। अब यहाँ-वहाँ गंदगी के ढेर की तरह फैली अफ़वाहों के कारण उन्हें ज़रूरत से ज़्यादा परेशानी व ज़लालत सहनी पड़ती है। तब मन करता है कि 'वॉलेन्टरी रिटायरमेंट' लेकर घर लौट आए... फिर वहाँ भी तो खटना ही होगा दिन-रात, अपनों के बीच ही सही... सोचते हुए वह फिर उसी धारा की ओर मुड़ जाती ।

सलीम के घर को 'एक्स आर' मार्क करने के बाद उसे सोचते हुए कष्ट हुआ था कि इन लोगों के बीच वह पिछले डेढ़ दशक से नियमित कार्य कर रही है, लेकिन इतने वर्षों में भी विश्वास नहीं जीत सकी कि.... किसी गंदगी के भभके की तरह फैली अफ़वाह ने उन्हें इस क़दर अपने वश में कर लिया था कि उन्हें कोई दूसरी गंध नहीं सुहाती थी। सोचते हुए उसका अंतस बुरी तरह झुलस पड़ा था कि अपने समाज के लोग कैसे रसातल को जा रहे हैं। झूठी अफ़वाहों के चक्कर में उन्हें अपने नौनिहालों का भविष्य नज़र नहीं आता! वे उनके जीवन से खिलवाड़ का जोख़िम कितनी आसानी से ले रहे हैं!

'ए टीम एक्टिविटी' के दौरान् सलीम का घर एक्स आर रहा। सुपरवाइज़र ने एक्स आर दर्ज़ कर रिपोर्ट दी। इसी दौरान् एक दिन सलीम के दरवाज़े के बाहर की गली के नुक्कड़ पर एक जीप रुकी। जीप में से कुछ लोग उतरे। उनके क़दम मकान संख्या चौबीस यानी सलीम के दरवाज़े के सामने रुके।

"कौन?" किवाड़ खटखटाने पर भीतर से स्वर उभरा।

"हम हैं, दरवाज़ा खोलिए", बी. एम. सी. रोहित कुमार ने अतिरिक्त मिठास व नम्रता से उत्तर दिया।

हमीदा किवाड़ खोलकर उनके सामने खड़ी थी।

" वो... आपके घर मे कोई बच्चा दवा पीने से रह गया है, उसे दवा..." इस बार सुपरवाइज़र ने सतर्कता के साथ बात सामने रखी थी।

"हाँ, रह गया है, पर हमें दवा नहीं पिलानी", बिना किसी लाग-लपेट के उसका इन्कार हुआ।

"अरे बहन जी, आप समझने की कोशिश करो, कितने ही बच्चे दवा पीने से रह जाने के कारण अपाहिज़ हो रहे है; तुम अपने बच्चे के जीवन से खिलवाड़ कर रही हो। डॉ. साहब आप ही इन्हें समझाए न", सुपरवाइज़र की बात का असर न होते देख मॉनीटर ने विश्व स्वास्थ्य संगठन के एस. एम. ओ. डॉ. मुजाहिद अंसारी के पाले में बात डाली।

"बहन जी, ये बिल्कुल सही कह रहे हैं। आये दिन कितना प्रचार-प्रसार हो रहा है। टीवी, रेडियो पर गवर्नमेंट पोलियो को भगाने के लिए करोड़ों रुपये पानी की तरह बहा रही है। विश्वास करें... ईमान से मैं भी सच्चा मुसलमान हूँ, मेरे बच्चे भी इस दवा को पीते हैं फिर आपके बच्चे..."

"मैंने कहा न, मुझे नहीं पिलवानी दवा..., तुम मुसलमान हो या भंगी, मुझे इससे मतलब नहीं... रही रुपये बहाने की बात, तो उस पर तुम लोग पल रहे हो... सरकारी टुकड़ों पर पल रहे हो, तो उसके गुण तो गाओगे ही न....," गरजी थी हमीदा।

"सलीम कहाँ है?" अपनी बात का असर न पड़ते देख डॉ0 अंसारी ने पैंतरा बदला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बाहर गये हैं, रात को लौटेंगे", कहकर उसने 'भड़ाक्' से किवाड़ बंद कर दिये और वे ठगे से खड़े रह गये।

अपना आना बेअसर समझकर वे गाँव के मोहम्मद अकरम को साथ ले आये, जो पोलियो-अभियान के हर चरण में पोलियो-टीम की भरसक मदद करता था। कसाईबाड़ा मुहल्ले के लिए वही प्रभावशाली व्यक्ति रखा गया था।

"भाभीजान, किवाड़ खोल, मैं हूँ अकरम", अकरम ने किवाड़ पर दस्तक देते हुए आवाज़ दी। किवाड़ खुल गयी।

"भाभी बच्चे को दवा पिलवा दो, क्यों बच्चे की दुश्मन बन रही हो। ये लोग सरकारी मुलाज़िम हैं, पर हैं तो हमारे भले के लिए ही। तभी तो सर्दी-गर्मी की परवाह किये बग़ैर दर-दर भटक रहे हैं, क्योंकि इन्हें एक-एक बच्चे के भविष्य की चिंता है।"

"एक-एक बच्चे की नहीं, इन्हें बस अपनी नौकरी की चिंता है, सरकार के टुकड़ों पर जो पल रहे हैं और अब तू भी इनका भड़वा बनकर चला आया। मैंने कह दिया कि मुझे दवा नहीं पिलवानी, अब जो मर्ज़ी कर लें," आक्रामक रूप अख़्तियार करते हुए हमीदा ने जैसे अपना निर्णय सुनाया था और अकरम का चेहरा सबके सामने हुए अपने अपमान के कारण बिल्कुल तमतमा गया था। प्रभावशाली पहली बार सबके सामने प्रभावहीन साबित हुआ था। यह हीनता उसे बाहर-भीतर बुरी तरह डस रही थी।

"अब सोच भी ले भाभी, कल हमसे मत कहना कि...", अकरम लगभग बुझी आवाज़ में सिर्फ़ इतना ही बोल पाया था।

सलीम का घर संख्या-24 पूरी तरह एक्स आर दर्ज रहा। सामूहिक प्रयास विफल रहा।

एक ही रास्ता बाक़ी था। प्रशासनिक सहयोग लेकर घर को पी किया जा सकता था। 'बी टीम एक्टीविटी के दौरान् घर ज़रूर पी हो जाएगा—बीना का संकल्प था सुपरवाइज़र का प्रयास। तंत्र जागरूक था, पर परिस्थिति उसके साथ नहीं रही और घर एक्स आर ही रहा।

"बच्चे घर पर नहीं है", दरवाज़े पर बीना की दस्तक के साथ ही हमीदा का स्वर फूटा, जैसे वह बीना की दस्तक को भी समझती हो।

"दरवाज़ा तो खोलो", बीना ने ज़ोर देकर कहा, तब कहीं अनमने ढंग से हमीदा ने किवाड़ के पट खोले।

"बच्चे कहाँ गये?" बीना ने प्रश्न दागा।

"अपनी नानी के घर... मेरठ"

"कब लौटेंगे?"

"महीना भर लग जाएगा"

दरवाजे के एक ओर फिर से एक्स दर्ज हुआ और बीना आगे बढ़ गयी।

अगला चरण। घर संख्या वही-24

"बच्चे कहाँ हैं?"

"सो रहे है"

"दवा पी ली?"

"हाँ, परसों ही अपनी नानी के यहाँ से पीकर आये हैं"

"ज़ाहिदा, ज़रा बच्चे की अँगुली पर निशान को चेक कर", बीना ने कहा और स्वयं हाथ में लगी तख़्ती पर टेलीशीट के कॉलम की पड़ताल करने लगी।

"जीजी, पी ली होगी, पर बच्चे की अँगुली पर निशान कुछ फीका..." उसने आशंका जतायी।

"देखूँ तो.." बीना ने आगे बढ़कर बच्चे का नन्हा बायाँ हाथ अपने हाथ में ले लिया, "बेटा, दवा पी ली?" उसने प्रश्न किया।

"हाँ भैन जी, पी ली", बच्चा निरुत्तर खड़ा था, लेकिन पीछे खड़ी हमीदा का उत्तर था।

"निशान कुछ फीका है ऊपर से तुमने उस पर नाखूनी.." बीना दुविधा में थी, तुम्हें निशान मिटाना नहीं चाहिए था, ऊपर से नाखूनी... मुझे नहीं लगता कि बच्चे ने दवा पी ली है। सविता, बच्चे को दवा पिला दे।" उसने सविता की ओर रुख़ किया।

"कैसी बात करती हो भैन जी, तुम्हें हम मुसलमानों की बात पर ज़रा भी ऐतबार नहीं?" अब की बार जो बात हमीदा ने कही थी, वह बीना ने कल्पना में भी नहीं सोची थी।

"क्या बात करती हो हमीदा, इसमें हिंदू-मुसलमान पर ऐतबार की क्या बात? सवाल एक नादान बच्चे के जीवन से जुड़ा है, चलो तुम सच कह रही हो, तो हम यकीन कर लेते हैं कि फ़िरोज़ ने दवा पी ली होगी, पर ऊपर वाले..."

बीना ने दुविधा की स्थिति में हमीदा की बात पर विश्वास कर लिया। सलीम का घर पी हो गया, पर बीना का मन डाँवाडोल था। उसे लगता कि कहीं वह भावना में बहकर... अँगुली पर निशान जैसा कुछ था, पर क्या... नानी के घर बूथ पर... और टीम आगे बढ़ चली।

0 0 0

फिर जो घटा, वह किसी की कल्पना में भी नहीं था। एक दिन फ़िरोज़ चलने के बजाय लुढ़कने लगा। अम्मी-अब्बू चिंतित, उन्होंने उसे अपने पैरों पर खड़ा करने का भरसक यत्न किया, लेकिन उसका बायाँ पैर रबड़ की तरह एक ओर मुड़ जाता।

"देख तो हमीदा, फ़िरोज़ का दाहिना पैर बिल्कुल नहीं उठ रहा है", सुनकर हमीदा के सीने में जैसे काँटा धँसा था और सलीम का दिमाग सुन्न हो गया था।

"हाँ सकीना के अब्बू, ये तो आज... न जाने किसकी नज़र लग गयी मेरे बच्चे को", और वह रो पड़ी।

"रो मत, इसे अभी अस्पताल ले चलेंगें", सलीम ने हमीदा को ढाँढस बँधाते हुए कहा।

बच्चे को लेकर वे प्राथमिक स्वास्थ्य-केंद्र की ओर बढ़े। सलीम के कंधे से बच्चा लगा था और उसके पीछे हमीदा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सलीम भैया नमस्ते," बीना ने उन्हें देखते ही अभिवादन किया।

"सलाम भैन जी", बिल्कुल किसी बच्चे की तरह झेंप गया था सलीम।

"कैसे आना हुआ?" बच्चे की ओर दृष्टि डालते हुए बीना ने पूछा।

सलीम अपनी व्यथा सुनाना चाहता था, पर शब्द थे कि जैसे गले में ही अटक रहे थे, फिर भी कहना तो था ही।

"भैन जी... ये फ़िरोज़..." आगे के शब्द उसकी मायूसी और रुँधे स्वर में ही जैसे बिलीन हो गये।

"क्या हुआ भाभी फ़िरोज़ को?" उसने अपना रुख़ पीछे हमीदा की ओर किया।

"होना क्या भैन जी, कल से इसकी दाहिनी टाँग हरकत नहीं कर रही है", उसने फ़िरोज़ की ओर इशारा करते हुए बताया, जो अब भी सलीम के कंधे से लगा हुआ था।

"घबराओ नहीं, अभी डॉ. साहब को दिखाती हूँ।"

बीना उन्हें बाह्य रोगी विभाग के उस कमरे की ओर ले गयी, जहाँ नाटे कद व साँवले रंग के डॉ. गजेंद्र कुमार मरीज़ों के बड़े से रेले के बीच घिरे उन्हें क्रमवार देखते जा रहे थे। आसपास ख़ूब शोर-शराबा था। सामने मेज़ पर पर्चों का बड़ा-सा ढेर। 'नेक्स्ट' एक रोगी को देखने के बाद वे पुकारते और दूसरा आकर उनकी बायीं ओर रखे 'रिवॉल्विंग स्टूल' पर बैठ जाता। फिर शुरू हो जाता उसे एक्ज़ामिन करने का सिलसिला। रोगियों को लेकर डॉ. गजेंद्र कुमार में एक बात ख़ास है कि वे कितनी भी शीघ्रता में हों, रोगी को पूरी तसल्ली से देखते हैं। कोई प्रतिकूल स्थिति होगी, तब साफ़ कह देंगे- "कल आना।"

"डॉ. साहब नमस्ते," बीना ने सामने बैठे बार्ड व्वाय से बनवाकर लाया पर्चा उनके सामने रखते हुए अभिवादन किया।

"बैठो", डॉ. गजेंद्र कुमार ने उसे बैठने का इशारा करते हुए रोगियों के रेले को वहीं रोक दिया। वे फ़िरोज़ को एक्ज़ामिन करने लगे। बीच-बीच में उसके माँ-बाप से भी ज़रूरी सवाल करते। उन्होंने फ़िरोज़ को अपनी टेबल पर खड़ाकर चलाने की कोशिश की पर... फिर वे उसका पूरा ब्यौरा रजिस्टर पर दर्ज करने लगे।

"बीना, दिस इज़ द सस्पेक्ट केस ऑफ़ ए.एफ़.पी." बताते हुए उनके चेहरे पर विषाद उतर आया था।

"सुनो सलीम, यूँ तो ईश्वर करे तुम्हारा बच्चा सही-सलामत ही है, पर क्या इसने पोलियो की सारी ख़ुराकें पी ली थीं?" डॉ. कुमार ने अपनी निगाह पैनी करते हुए सलीम से पूछा।

"हाँ, डॉ. साहब, पर..." सलीम की जुबान से यूँ ही फूटा था, लेकिन वह जानता था कि पिछले कई चरणों से वह फ़िरोज़ को दवा पिलाने से बचाता रहा। गाँव से ऐन मौक़े पर उसे नहिहाल भेजना और ननिहाल से गाँव में। प्रत्येक चरण में वह दोनों ही जगहों पर दवा पीने से रह जाता।

"लगता है कि तुम्हारे बच्चे में पोलियो के लक्षण हैं, किंतु इसकी पुष्टि इसके मल(स्टूल) की जाँच के बाद ही हो सकती है।"

डॉ. गजेंद्र कुमार की बात सुनकर सलीम की आँखों के आगे पल भर को अँधेरा छा गया और उसने फ़िरोज़ को एक बार फिर अपने सीने से लगा लिया। वहीं, बाहर एक ओर पड़ी बेंच पर बैठ गया। खड़ा रह सकने का सामर्थ्य भी उसमें नहीं था। वह पूरी तरह टूटा हुआ था। उसे पश्चाताप होने लगा कि अपने पैरों पर उसने आप ही कुल्हाड़ी मारी है। वही है, जिसने अपने फ़िरोज़ का सुनहरा भविष्य उससे छीन लिया। अपने कलेजे के टुकड़े को उसने अपाहिज़... और उसके सामने बैसाखियों का सहारा लेकर चलते फ़िरोज़ का चेहरा आने लगता... "या अल्लाह" उसका आर्तनाद फूटा। आँसू उसके चेहरे से लुढ़कते हुए होंठों तक पहुँचकर मुँह में समा गये थे।

"धीरज रख भाभी, सब ठीक हो जाएगा", बीना ने हमीदा से लिपटकर उसे ढाँढस दिया, पर वे इतने शर्मिंदा थे कि बीना से नज़र मिलाने में भी कतरा रहे थे। फिर भी, दुख में विह्वल हमीदा उसके गले से लिपटकर रो पड़ी थी।

कुछ महीने बाद फ़िरोज़ के रूप में जनपद में पोलियों के एक मामले की पुष्टि का समाचार, समाचार-पत्रों की सुर्ख़ियों में था। एक दिन फ़िरोज़ सुर्ख़ियों में रहा, फिर ग़ायब हो गया सिवाय काग़ज़ी उपस्थिति और अब्बू-अम्मी के सीने पर पश्चाताप के दंश की तरह।

विभागीय जाँच में सरकारी कर्मियों व पोलियो टीमों की कोई कमी नहीं पायी गयी। उस क्षेत्र में हुए कार्य से सभी संतुष्ट थे, पर बीना...

"कहीं यह फ़ाल्स पी.. अँगुली का फीका निशान..." बुदबुदाते हुए फ़िरोज़ की अँगुली पर लगा फीका-सा निशान उसकी आँखों के सामने तैरने लगा... फिर वह सोचने लगी, "मैंने तो पूरा ऐतबार किया था, पर...

अगली बार पोलियो बूथ पर बच्चों को दवा पिलाने में जो लोग सर्वाधिक सक्रिय थे, उनमें एक सलीम भी था।

प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र -धरप
बुलंदशहर, उ. प्र.-20313

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू काव्य का लेख : प्रथम प्रमाणिक नमूना

बिकट कहानी : बारह मासा

डॉ0 नसीम फात्मा

'बिकट कहानी' जिसे उचित रूप से 'उत्तरी भारत में उर्दू काव्य का प्रथम प्रमाणित नमूना' कहा गया है, सबसे पहले उस्मानिया विश्वद्यिालय, हैदराबाद के उर्दू विभाग के शैक्षणिक एंव शोध पत्रिका 'कदीम उर्दू' (प्रथम भाग) में 1965 में प्रकाशित हुई। शोधकर्ताओं को इसके प्रकाशन का वर्ष ज्ञात नहीं, परंतु यह बात तय है कि इसके रचयिता मोहम्मद अफ़ज़ल की मृत्यु 1625 ई0 में हुई! इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह संभवतः सत्रहवीं सदी ईसवी के तीसरे दशक की रचना है। अमीर खुसरो (1253 से 1325 ई0 तक) के 'तथाकथित' हिन्दी काव्य को छोड़कर उत्तरी भारत में बिकट कहानी से पूर्व की कोई भी महत्त्वपूर्ण साहित्यिक उर्दू रचना अब तक उपलब्ध नहीं है। उत्तरी भारत में उर्दू के प्राचीन साहित्यिक नमूनों का बड़ा अकाल है। खुसरों के काव्य के उपरांत यहाँ पूरे तीन सौ साल तक सन्नाटा छाया रहता है। ऐसी स्थिति में यहाँ के साहित्यिक क्षितिज पर अफ़ज़ल का प्रकट होना किसी चमत्कार से कम नहीं।

'बिकट कहानी' तीन सौ इक्कीस (321) पद्यों पर आधारित एक लंबी मसनवी है जिसे 'बारहमासा' का भी नाम दिया गया है। साहित्यिक महत्व के अतिरिक्त 'बिकट कहानी' का भाषाई महत्व भी है। अफ़ज़ल ही के मथुरा निवास का दूसरा नाम गोपाल था और वह हरियाणा के कस्बे नारनौल का रहने वाला था।

डॉ0 प्रकाश मूनिस ने बिकट कहानी के संदर्भ में कुछ प्रश्न उठाए हैं, परंतु उनमें से अधिकतर हिन्दू समाज के बारे में साधारण अभिव्यक्तियाँ है।

1. "पुजारियों का कट्टरपन उस युग में अपने चरम को पहुँचा हुआ था। क्या यह सम्भव है कि एक बूढ़ा मुसलमान शिक्षक जो अरबी फारसी का महान ज्ञाता हो, एक हिन्दू का स्वांग भरकर मंदिर में निवास करे?"

2. "हिन्दुओं में हाथ चूमने या पैर चूमने का रिवाज नहीं. .. छुआछूत का बोध इतना तीव्र है कि कोई व्यक्ति किसी धार्मिक गुरू के बदन को हाथ लगाने की बात भी नहीं सोच सकता। उन्हें दूर से दंडवत् की जाती है।"

3."वास्तव में प्राचीन उर्दू लेखकों के यहाँ दास्तानों में मुसलमान प्रेमियों के पीछे हिन्दू स्त्रियों के धर्म परिवर्तन का एक लगातार एवं स्थायी रिवाज चला आया है।"

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अफ़ज़ल का काल अकबर एंव जहाँगीर का काल था। उन दोनों राजाओं के काल में सामाजिक स्तर पर हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं मिलन की बहुत सी बातें सामाजिक दृष्टिकोण से समझ में नहीं आतीं। यह वह समाज था जिस में राजा से लेकर प्रजा और शहंशाह से लेकर सूफियाना क्षेत्र के बादशाह तक, दैहिक एवं दिव्य, दोनों प्रकार के प्रेम में डूबे हुए थे। रहा इस का प्रश्न कि अफ़ज़ल आयु के लिहाज़ से उस हिन्दू जवान स्त्री से बहुत अधिक आयु के थे, तो मनोविज्ञान के ज्ञाता भली भाँति जानते हैं कि अधेड़ आयु का प्रेम जवानी से भी अधिक तूफानी होता है : भड़कता है चिराग-ए- सुबह जब ख़ामोश होता है।

कहा जा सकता है कि प्रेम की न कोई आयु होती है और न कोई जात। मध्यकालीन भारत का इतिहास इस प्रकार के आश्चर्यजनक उदाहरणों से भरा पड़ा है। अफ़ज़ल की जीवनी एवं सदाचार के बारे में सबसे महत्त्वपूर्ण बातें 'अली कुली खाँ वाला दागिस्तानी' के फारसी कवियों के तज़किरे 'रियाजुश शोरा' में मिलती हैं जो 1774 ई. की रचना है और जिसे कायम के मखजन-ए-निकात (1755 ई0) पर भी वरीयता प्राप्त है। चूँकि अफ़ज़ल फारसी कवि की हैसियत से भी लोकप्रिय थे-शेर-ए-हिन्दी व फारसी रा बगायत ख़ूब मी मुफ़्त' (वाला), इस लिये लेखक ने अपने तज़किरे में अफ़ज़ल के वर्णन के लिये दो पृष्ठ सुरक्षित किये है। वाला ने स्पष्ट रूप से उन्हें 'पानीपत' लिखा है। उस के कथनानुसार वह न केवल हिन्दी और फारसी के निपुण कवि थे बल्कि फारसी गद्य लिखने पर भी बराबर का कमाल रखते थे। शिक्षण उनका व्यवसाय था और उनकी लोकप्रियता का यह हाल था कि लोगों की भीड़ उनके पाठ में सम्मिलित होती थी। चूँकि आरंभ से ही 'प्रेम की मिठास और साधन के पंथ' से मानूस थे इस लिये बड़ी आयु में एक हिन्दू स्त्री के अकस्मात प्रेम का शिकार हो गए और अपनी साधना एवं संयम को अलविदा कहकर मजनूं की राह पकड़ ली और बसंत ऋतु के अलमस्त बादल की भाँति बदनामी की गली का चक्कर लगाने पर तैयार हो गए। इसी दीवानगी की स्थिति में प्रेम संबंधित ग़ज़लें लिखने लगे जिस में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से एक प्रारंभिक शेर, वाला के अनुसार यह है :

आलम ख़राब-ए-हुस्न-ए-क़यामत निशान-ए-कीस्त
दौर-ए-कदाम फ़ितना गर अस्त-ओ-ज़मान-ए-कीस्त

मौलाना की यह स्थिति देख कर पहले तो वह स्त्री छिप गई परंतु इस प्रेम की चर्चा और बदनामियाँ कम न हुईं और अंततः एक रात छुप छुपाकर खामोशी से उस के संबंधियों ने उसे मथुरा पहुँचा दिया। मौलाना कुछ समय तक इधर-उधर सिर टकराते रहे, अंततः उस स्त्री का पता मालूम करके अपनी प्रेयसी के नगर पहुँच गए। वहाँ बड़ी ढूँढ़-खोज के उपरांत एक दिन क्या देखते हैं कि वह कुछ और सुंदर स्त्रियों सहित प्रसन्न मुद्रा में सैर करती फिर रही है। अनायास उसकी ओर बढ़े और तत्काल यह शेर पढ़ाः

खुशा रूस्वाई-ओ-हाल-ए-तबाहे
सरे राह-ए-व-आह-ए-व निगाहें

मौलाना की यह अनायास हरकत उस सुंदर स्त्री को बुरी लगी और बड़े कड़वे शब्दों में उस ने कहा कि

'तुरा शर्म अज़ मुहासिन-ए-सफेद नीस्त/ कि सौदाए इश्क़बाज़ी चूँ मन जवाने दर सर दारी?'

मौलवी इस ताने को बर्दाशत न कर सका और उस वहशी हिरनी को राम करने के लिये दाढ़ी मूढ़ी, कंठमाला पहनी और ब्राह्मणों जैसा वस्त्र धारण करके एक मंदिर के पुजारी का चेला बन बैठा। उस पंडित की रात-दिन सेवा की और हिन्दुस्तानी ज्ञान-विज्ञान में निपुण हो गये। इससे प्रसन्न होकर गुरू ने उसे अपना सहायक गुरू बना दिया और जब कुछ समय उपरांत मृत्यु शैय्या पर पहुँच गया तो उसने वसीयत की कि उसकी मृत्यु के बाद अफ़ज़ल को गुरू माना जाए। धीर-धीरे मौलवी की लोकप्रियता दूर-दूर तक फैल गई और उसको मानने वालों की भीड़ जुटने लगी। वहाँ का यह रिवाज था कि साल में एक बार स्त्रियाँ उस मंदिर में पूजा के लिए आती थीं और बड़ा उपहार आदि भेंट करती थीं। संयोग से उस दिन जब रिवाज के अनुसार स्त्रियाँ उपहार आदि देने हेतु आईं और एक के बाद एक आकर गुरू के चरणों में अर्चना के लिए झुकीं तो मौलाना की प्रेयसी भी उस भीड़ में सम्मिलित थी। जैसे ही वह चरण स्पर्श के लिये आगे बढ़ी मौलाना ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा "मुरा मी शनासी?" जब उस नटखट ने आँखें उठाईं और पहचान लिया कि यह वही व्यक्ति है जो गुरू के रूप में यहाँ बैठा है तो कुछ समय तक आश्चर्य चकित रहने के उपरांत उसने माना कि, "बराए खातिर चूँ मने नाकस हमा तसदीअ्-व-ताब कशीदा ऐद? दीगर हर चे दर आँ रज़ाए शुमस्त रज़ाए मास्त" इसके उपरांत वह स्त्री मुसलमान हो जाती है। दोनों अपने वतन को लौटते हैं और लंबे समय तक साथ जीवन व्यतीत करते हैं।

जानकारी के अनुसार यह पंजाबी, गुजराती, अवधी और उत्तरी भारत की दूसरी बोलियों की लोकप्रिय काव्य रचना रही है। इसका विकास संस्कृत एवं अपभ्रंश के प्रबंध काव्य के ऋतु वर्णन से हुआ हैं। 'ऋतु वर्णन' में सामान्यतः छह मौसमों का वर्णन होता है। कालिदास की कविता 'ऋतु श्रृंगार' इस का सर्वोच्च उदाहरण है। हिन्दी साहित्य के वीर गाथा काल के अधिकतर रासों में 'ऋतु वर्णन' का विशेष प्रयोजन मिलता है। यही 'ऋतु वर्णन' अपने मासिक वर्णन में जाकर 'बारह मासा' बन जाता है जिसमें सामान्यतया एक विरह की मारी पत्नी अपने पति की याद में तड़पती है और उसके भावों में उतार चढ़ाव बाहर बदलते हुए मौसमों के प्रभाव से उत्पन्न होता है। इस प्रकार की अंतरंग एंव वाह्य प्रभाव एक काव्य रूपी भाषा में गुंथ जाते हैं।

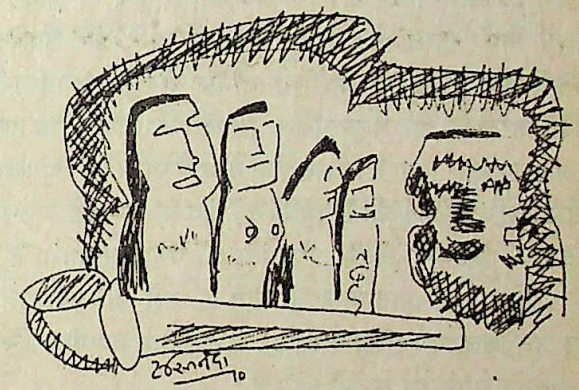

अफ़ज़ल को बारहमासा की एक प्राचीन एंव लंबी रीत मिली थी परंतु उसके निकट हिन्दी का सबसे लोकप्रिय, मलिक मुहम्मद जायसी का बारह मासा था जो उनकी प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' का एक खंड है। यह बारह मासा अफ़ज़ल से एक सौ वर्ष पूर्व लिखा गया था। अफ़ज़ल भी सूफ़ी थे परंतु उन्होंने प्रेम का खेल दैहिक स्तर पर इस प्रकार खेला था कि उर्दू काव्य के इतिहास में इससे अधिक रंगीन दास्तान और कहीं नहीं मिलती। बारह मासा के अंतिम शेर :

बयादे दिलरुबा खुशहाल मी बाश
गह अफ़ज़ल गेह गोपाल मी बाश

से स्पष्ट है कि अफ़ज़ल ने अपना बारह मासा प्रेम का यह रंगीन नाटक खेलने के उपरांत ही लिखा है।

काव्य शैली के दृष्टिकोण से बिकट कहानी उस युग की रेख्तागोई का पूरा नमूना है।

म. नं. 4/1166 ए., एस. एस. नगर, अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय चिंतन में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

डा0 ऋतु वार्ष्णेय

मानव और पर्यावरण का अभिन्न संबंध है। वस्तुतः अपने लिये सुंदरतम् आवास चाहने वाले मानव का मूल आवास पृथ्वी है। पृथ्वी जिसे प्रकृति ने बनाया है यह पर्यावरणीय तत्त्वों से बनी है। पर्यावरण के विभिन्न घटकों और अवयवों के बीच ही जीवों का अस्तित्त्व निर्भर करता है। पर्यावरण हमारे चारों ओर उपस्थित प्राकृतिक और अप्राकृतिक परिस्थितियों का योग है जो मनुष्य को प्रभावित करता है और मनुष्य जिसे प्रभावित करता है। यह हमारे चारों ओर उपस्थित रहता है। विश्व शब्द कोष में लिखा है–"पर्यावरण उन सभी दशाओं, प्रणालियों व प्रभावों का योग है, जो जीवों व उनकी प्रजातियों के विकास, जीवन और मृत्यु को प्रभावित करता है।"

पर्यावरण वह आवरण है जो जीव के चारों ओर उपस्थित है अर्थात् जल, थल, नभ तीनों में जैविक व अजैविक रुप में उपस्थित सभी अवयव पर्यावरण का ही भाग है।

भारतीय चिंतन में पर्यावरण संरक्षण की अवधारण उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव जाति का इतिहास। प्रकृति के क्रिया-कलापों की विविध गतिविधियों का वेदों में भली-भाँति वर्णन है और प्रकृति के क्रिया-कलाप भी वैज्ञानिक नियमों पर आधारित है। इन नियमों का उल्लंघन विनाश प्रक्रिया को आमंत्रण देता है। वेदों में विभिन्न सूक्तों में प्रकृति की महत्ता को दर्शाया गया है। ऋग्वेद में अग्नि के स्वरूप, कार्य एवं गुणों की विस्तृत व्याख्या की गयी है। यजुर्वेद में वायु के विविध रूपों एवं गुण धर्म का वर्णन है। सामवेद में जल तत्त्व एवं अथर्ववेद में पृथ्वी तत्त्व की व्याख्या की गयी है। अथर्ववेद के अनुसार-

'यस्या हृदयं परमेव्योमन्।'

अर्थात् जैसे हृदय की धड़कन पर प्राणी का जीवन निर्भर करता है। उसी प्रकार से अंतरिक्ष (परम व्योम) की सुरक्षा में ही पृथ्वी और पर्यावरण की सुरक्षा निहित है।

पर्यावरण संतुलन न केवल मानव जाति के लिए बल्कि संपूर्ण पृथ्वी पर पाए जाने वाले समस्त जीवों के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। पर्यावरणीय प्रबंध के प्रति मानव की संवेदनशीलता को केवल वर्तमान में ही नहीं बल्कि प्राचीन समय में भी देखा जा सकता है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय इतिहास पर दृष्टि डालें तो यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों के शासकों द्वारा पर्यावरणीय प्रबंध से संबंधित अनेक कार्य किए गए, यज्वपाल नामक राजवंश के शासकों द्वारा पर्यावरणीय प्रबंध हेतु वाटिकाओं (उद्यानों), वापियों (बावड़ियों) और कूपों (कुओं) आदि का निर्माण करवाने की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

पौराणिक आख्यान पर आधारित 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में कालिदास पृथकत्व की अपेक्षा प्रकृति का मानवीकरण कर मनुष्य के साथ उसका परस्परापेक्षी सहअस्तित्व स्वीकार करते हुए प्रकृति के आठ रुपों में भगवान शिव की आठ मूर्तियों की कल्पना कर उसी से विश्वमंगल की कामना करते हैं। वाल्मीकीय रामायण भी पर्यावरणीय चेतना से ओत-प्रोत रही है। रामायण में पर्यावरण के तीनों क्षेत्रों जल मंडल, थल मंडल, वायु मंडल के प्रदूषण निवारण के लिए उपाय बताए गए हैं। इसमें शुद्ध एवं निर्मल जल की अलौकिकता और पवित्रता का समुचित वर्णन किया गया है और जल को दूषित करने वालों के लिए दंड का भी विधान किया गया है। वायु के प्रकुपित और प्रदूषित होने के दुष्परिणाम भी इस महाकाव्य में वर्णित है।

वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वामिदं जगत्।
वायुना सम्परित्यक्तः न सुखं विन्दते जगत्।।

ग्लोबल वार्मिंग के रुप में पर्यावरण के प्रदूषण का भयावह और विनाशकारी रूप आज हमारे सामने उपस्थित है। औद्योगीकरण की आपाधापी ने शहरों का वातावरण पूर्ण से प्रभावित कर दिया है जिसकी वजह से प्रकृति में आश्चर्यजनक परिवर्तन देखने को मिलते रहते हैं। हिमनदों के अस्तित्व से लेकर जलवायु चक्र में परिवर्तन दिखते हैं जिसकी वजह से पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है और बड़े ग्लेशियर पिघल रहे हैं। साथ ही पृथ्वी की सतह के अंदर का मजबूत धरातल भी गल रहा है।

पर्यावरण का प्रभाव व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास को प्रभावित करता है। स्वच्छ पर्यावरण स्वस्थ मस्तिष्क एवं स्वस्थ विचारों की पहचान है। हमारे देश का धर्म और साहित्य दोनों ही पर्यावरण से प्रभावित होते हैं। पेड़-पौधे, नदी, पर्वत एवं पशु-पक्षियों को देवी-देवताओं की तरह पूजा जाता है। विभिन्न कर्मकांडों एवं अनुष्ठानों का निर्माण पर्यावरण को ध्यान में रखकर बनाया गया। पर्यावरण का प्रभाव कला और साहित्य पर भी निश्चित रुप से पड़ता है। रचनाकार तो हमेशा से ही प्रकृति-प्रेमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। कबीर कहते हैं-

कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास,
समंदहि तिनका बरि गिनै, स्वाति बूँद की आस।
XXXX
काहे री नलिनी तै कुम्हिलानी,
तेरे ही नाल सरोवर पानी।
जल में उत्पति जल में बास
जल में नलिनी तोर निवास।

जायसी ने पद्मावत में प्रकृति के मनोरम रूपों का वर्णन किया है। विरह-वेदना में प्रकृति का चित्रण करते हुए, आसाढ़ के बाद सावन और भादों का महीना आता है। नायिका की वेदना तीव्र हो उठती है, धरती जलमयी हुई, नायिका विरह से सूख गयी–

पुरवा लाग भूमि जल पूरी।
आक जवास भई तस झूरी।

'कामायनी' में जयशंकर प्रसाद ने प्रकृति पर हो रहे अत्याचार का परिणाम ही प्रलय को दर्शाया है। जब रक्षक ही भक्षक का रुप धारण करता है तब प्रकृति को रौद्ररूप धारण करना पड़ता है। 'कामायनी' के चिंता सर्ग में प्रलय का कारण पृथ्वी प्रकृति का शोषण दिखाया गया है-

अपने में सब कुछ भर कैसे, व्यक्ति विकास करेगा?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है, अपना नाश करेगा।

प्रकृति हमारे उत्कर्ष का साधन है जिसकी रक्षा करना हमार कर्तव्य है। महानगरीय संत्रास, मशीनीयुग, दुर्दशा से हम, प्राकृतिव संपदा को बिगाड़ रहे हैं। हम अपनी सृष्टि के प्रति, सौंदर्य के प्रति संवेदना शून्य हो रहे हैं। इसलिए अज्ञेय भी चिंतित हैं–

नंदा, जल्दी-ही बीस तीस पचास बरसों में
हम तुम्हारे नीचे एक मरू बिछा चुके होंगे
और तुम्हारे उस नदी द्योत सीढ़ी वाले मंदिर में
जला करेगा मरुदीप।

पर्यावरण प्रदूषण अद्यतन समाज की सबसे बड़ी समस्या है वह समस्या मानव निर्मित है। यह मानव सभ्यता के लिए मंद वि के समान है, जो मानव जीवन को धीरे-धीरे कलुषित कर रही है अतः पर्यावरण प्रदूषण के संकट को समाप्त करना आवश्यक ह नहीं बल्कि अपरिहार्य है। तभी एक सुरक्षित एवं सुखद भविष्य क कल्पना सम्भव हो सकेगी।

प्रवक्ता हिन्दी, आर्य महिला पी0जी0 कालेज, वाराणर

लघु कथा

अपने

शैलजा श्यामा

पिंजरे में फंसे बाघ की प्रार्थना सुनकर एक आदमी ने उसे मुक्त किया, पर जब उसने उस आदमी को ही खाने की इच्छा व्य की, तब घबराकर उसने वहाँ से जा रहे सियार को निर्णय करने के लिए बुलाया। यह देख बाघ ने आदमी से कहा, "निर्णय करने लिए तुम्हें यही मिला था? इसकी न्यायबुद्धि का क्या कहना!" सियार ने अनसुना कर आदमी की ओर देखा। आदमी ने कहा, "सिय जी, मैंने इस पिंजरे से इन्हें मुक्त किया। मैंने दया दिखा दी, पर ये मेरे प्राण लेना चाहते हैं। आप ही निर्णय करें।"

बाघ ने कहा, "यह क्या कहेगा? यह कभी पिंजरे में फँसता नहीं, अतः बंदी होने का दुख यह क्या जाने! मैं तीन-चार दिनों भूखा हूँ। आदमी, क्या तुम्हारा कर्तव्य नहीं बनता कि जिसे स्वतंत्रता दी, उसकी भूख भी मिटा दो ?"

सियार ने बीच में कहा," पर व्याघ्रराज, अगर आदमी पिंजरा न खोलता, तो आप अभी तक बंदी ही बने रहते.... मैं तो कह हूँ कि...."

"बस करो", बाघ ने गर्जना की, "अब कहोगे कि मैं पिंजरे में कैसे बंद था, यह तुम्हें दिखाऊँ... फिर से अंदर जाकर... पर ख़ूब समझ लो, मैं मूढ़-गँवार नहीं हूँ... तुम्हारी न्यायबुद्धि का क्या कहना! आदमी नहीं, तो तुम ही मे भोजन बनो, मैं तुम्हें खा लूँगा. "

प्राणों पर आँच आते देख सियार ने नम्रता से कहा, "ऐसा नहीं कहते व्याघ्रराज... आप और मैं एक ही बिरादरी के हैं... ज जंगलनिवासी चतुष्पाद... तो यह शहर निवासी और द्विपाद। ऐसे पराये पर दया दिखाकर स्वजातीय का शिकार करना चतुष्पाद की जा को कलंक लगाना है, अनुचित है यह... अन्याय है... ज़रा सोचिए ..."

जाति-बिरादरी के अभियान की विजय हुई और बाघ ने आदमी पर हमला करते कहा, "वाह! सियार की न्यायबुद्धि का व कहना!"

मरणासन्न आदमी ने स्वगत कहा, "काश ! मैं न्याय करने के लिए किसी अपने को बुलाता!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौटकर न आने वाली नदी की कसक

कमला सत्पथी

'ढाएँ-ढाएँ' के कटु कर्कश शब्दों से दीवार की घड़ी ने त के बारह बजने की सूचना दी और फिर मौन हो गयी। ाथ ही, सड़क पर चलती गाड़ी-मोटरों की पों-पों की आवाज़ों भी कमी आ गयी। रह गयी केवल आवारा कुत्तों की ने-चिल्लाने की आवाज़ें, चौकीदारों के लाठी ठोंकने के शब्द ौर पुलिसगाड़ी के सायरन। नहीं तो और कुछ नहीं...

फिर भी न जाने कैसे एक रुँधा-सा तन्हा-तन्हा भाव ारों ओर से कचोटता जाता था। रात के बारह बज गये, यह ानते हुए भी न जाने क्यों उसने कलाई की घड़ी टटोली। खा, घंटे की सुई, सेकंड की सुई जैसी दौड़ पड़ी है। घड़ी की क-टिक के साथ आवाज़ मिलाकर कोई आवाज़ उसकी छाती र हथौड़े की चोट कसती जाती है। सुवर्णा अभी तक नहीं ोटी...

शहर सो गया है, परिवेश भी उकता गया है, फिर भी वर्णा की पार्टी ख़त्म नहीं हुई। अपने घर-परिवार, पति-पुत्र ादि किसी का ख़्याल नहीं... आख़िर क्या करती होगी वह हाँ के माहौल में... किसी की बाहों में चेहरा छुपाती, किसी ंग्रेज़ी धुन से क़दम मिलाती झूम-झूम कर नाचती होगी या ाउंटर पर खड़ी होकर पेग पर पेग ले रही होगी या फिर छाती साड़ी सरकाती किसी के कैमरे के सामने पोज़ देती अपने ो उछाल रही होगी, नहीं तो किसी.....

प्रभात बाबू और आगे सोच नहीं सके, लंबी-सी एक ारी साँस के साथ कुर्सी छोड़कर बालकनी में आ गये। गहन ँधेरे के भारी आगोश में पूरा घर-आँगन मज़े की नींद ले रहा , केवल उनकी ही आँखों में नींद नहीं है, कैसे होती....? ेसकी जवान ख़ूबसूरत पत्नी आधी-आधी रात तक बाहर रहती , देर रात गये किसी ग़ैर की गाड़ी में बिल्कुल बेहोशी की ालत में घर लौटती है... उसकी आँखों में भला नींद कहाँ....?

उन्होंने सिर उठाकर दूर सड़क की ओर नज़र दौडाई... र-दूर तक कोई भी नहीं था। लेकिन, आज सुवर्णा ने बहुत र कर दी। घड़ी की सुईयाँ दौड़ती जा रही थीं, पर उससे भी धिक तेज़ी से बढ़ती जाती थी प्रभात बाबू की व्याकुलता। ाँखें डबडबा जाती थीं, मन में निराशा की चोट कैसी तो ढ़ती जा रही थी, फिर भी वे अपने को दिलासा देने की कोशिशें कर रहे थे।

दीवार पर सुवर्णा का फ़ोटो टँगा हुआ था—शादी के समय का... साड़ी, चूड़ी, सिंदूर, मथौरी में स्वर्ग की किसी अप्सरा से भी अधिक लगती थी उस फ़ोटो में। भारी भाव-लगाव से प्रभात बाबू की ओर बड़ी मोहित नज़रों से देखती जा रही थी। छाती के किसी अंदरूनी कोने से फिर एक हूक निकल आयी। आँखों से टपक पड़े बेरोक आँसू। चेहरे पर हाथ धरते फफक-फफक कर वे रो पडे। रुँधे हुए कंठ से भारी विनती के साथ बोल उठे, "लौट आओ सुवर्णा! प्यार और आदर से बनाये अपने इस छोटे-से संसार में लौट आओ तुम।"

चौंक पड़े वे। किससे बातें करने लगे हैं वे? कौन सुनेगा उनके इस प्रलाप को?

क्या....प्रलाप...?

हाँ, प्रलाप नहीं तो और क्या? भरे यौवन में जिस ज़हरीले बीज को खाद-पानी देकर उन्होंने बढ़ाया था, अब उसके फल को देखकर घबराकर बड़बड़ाने को प्रलाप नहीं तो और क्या कहा जाएगा?

मेन गेट के पास किसी गाड़ी के रुकने की आवाज़ सुनकर प्रभात बाबू बाहर की ओर दौड़ पड़े। उनका अनुमान सही निकला। आधी बेहोशी की हालत में गिरती-सँभलती किसी ग़ैर की बाहों के सहारे गाड़ी से उतरती लड़खड़ाती ज़बान में सुवर्णा बाय-बाय कर रही थी।

गाड़ी चली गयी, फिर भी देर तक उसी ओर देखते रहने के बाद दरवाज़े की ओर रुख़ किया उसने। दरवाज़े खोलने और बंद होने की आवाज़ तो आयी, पर बाद में सब निशब्द। देर तक राह देखते रहने के बावजूद जब वह ऊपर नहीं आयी, तो प्रभात बाबू को चिंता हुई... क्या हुआ.... कुछ अनहोनी तो नहीं?

नीचे आते ही ठिठक कर खड़े रह गये। सीड़ी के नीचे अधनंगे हाल में लुढ़क पड़ी थी सुवर्णा। एक हाथ से सीड़ी की रेलिंग को टटोलती, दूसरे हाथ से छाती की साड़ी सँभालने का असफल प्रयास करती भारी बदहाली में बेहोश पड़ी थी वह।

प्रभात बाबू नीचे उतरे, दोनों हाथों से अपनी पत्नी को उठाया। सारे शरीर से शराब और सिगरेट की बू छलक रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। प्रभात बाबू की आँखें छलछला उठीं, "क्या से क्या दुर्गति हो गयी तुम्हारी। नरक की इस गंदगी से क्या तुम कभी भी नहीं लौटोगी?"

कहते-कहते ख़ुद अपने ही प्रश्न से वे घायल हो गये।

ख़ूब जतन से सुवर्णा को पलंग पर लिटाकर प्रभात बाबू बत्ती बुझाकर कमरे से बाहर आ गये। सुवर्णा सो गयी थी, लेकिन प्रभात बाबू की आँखों में नींद कहाँ? भारी उदासी से मौन साधते सुवर्णा के उस वधू वेशधारी फ़ोटो के सामने आ खड़े हुए। क्या ख़ूब लगती है सुवर्णा! इस वेश में सुवर्णा को देखे कई युग बीत गये। उसकी उन आँखों की निरीहता, मन की कोमलता न जाने इन दिनों कहाँ खो गयी..!

जो सुवर्णा पत्नी के रूप में आज उनके पास रह रही है, वह तो बस महज उग्र आधुनिकता का एक निकृष्ट प्रतिरूप है। साड़ी, चूड़ी के संसार से परे निकल जीन्स-टॉप और ब्रेसलेट में खोया हुआ एक कृत्रिम रूप है। बहुत सोचने पर भी यह अंदाज़ा लगा पाना मुमकिन नहीं होता कि कभी यही सुवर्णा अपने चाल-चलन, रूप-रंग, पोशाक-पहनावे के कारण हाई सोसाइटी में बहुत ही लज्जास्पद स्थिति पैदा कर लेती थी। इसीलिए तो अपनी नयी-नवेली पत्नी को आक्षेप-उलाहनाओं के ताने सुना-सुनाकर प्रभात बाबू उससे दूर भागा करते थे, उसे कहीं साथ ले जाने से कन्नी काटते थे। वे सिर्फ़ अपने यार-दोस्तों में ही डूबे रहते थे।

आज भी ख़ूब याद आती हैं वे सब बातें, जब ऑफ़िस के काम का बहाना बनाकर वे अपने दोस्तों के साथ मौज-मस्ती करने में जुटे रहते थे और इधर किसी हादसे या अनहोनी के डर से सुवर्णा सारी-सारी रात रोती-बिलखती बैठी रहती थी। लेकिन उसके रोने-धोने का कुछ भी असर प्रभात बाबू पर नहीं पड़ता था। नरमी से पेश आने के बदले उलटा उसको देखकर वे गुस्से से बिफर उठते। उसको चुप कराने के लिए गाली भी बक देते थे,..."चुप करो, बंद करो यह नाटक, मैं कहीं मौज-मस्ती नहीं कर रहा था। यह तुम्हारा गाँव नहीं कि जहाँ तुम्हारा पति साँझ होने से पहले घर आ जाए और पत्नी के हाथ का बना हुआ रूखा-सूखा खाकर बाहर बरामदे में ताश खेलने बैठ जाए।"

जवाब में कभी मुँह तक नहीं खोला। किसी दिन मरमरी सी निर्दोष आँखें उठाकर अपने पति को नासमझी में केवल देखती भर रह जाती। उसका इस तरह का देखना प्रभात बाबू को बिलकुल ही पसंद नहीं था। अपनी आवाज़ में और तेज़ी लाते हुए चिल्ला उठतेद्व "कितनी दफ़े कहा है कि इस प्रकार बिना खाये-पिये मेरा रास्ता देखने की कोई ज़रूरत नहीं है। खा-पीकर तुम सो क्यों नहीं जातीं?"

"कैसे सोऊँ, देर रात तक आपका घर न आना...चिंता तो बढ़ेगी ही...", हिम्मत करके कैसे तो बोल पड़ी थी सुवर्णा।

"हूँ...", भारी उपेक्षा की हँसी हँसते बड़े रुआब के साथ अपने कमरे में चले गये प्रभात बाबू, पलटकर देखा तक न कि उनकी बातों का क्या असर हो रहा होगा उसके ऊपर।

आज शायद उन सब बातों का बदला ले रही है सुवर्ण वर्षों से ऐसे ही ढलती रात को वह लौटती है। प्रभात बाबू राह देखना, रात-रात भर प्रतीक्षा करना, किसी की भी परवाह करते हुए उलटा पूछती है—"क्या हुआ... बिना सोये इस प्रव जाग क्यों रहे हो?"

प्रभात बाबू जल्दी लौट आने का अनुरोध करते। सुन मुँह बना लेती, ठीक उसी तरह, जिस तरह कुछ साल पा ख़ुद प्रभात बाबू कर रहे थे।

बेलगाम आँसू आज उनके कब्ज़े में नहीं है। बहते-टपक ख़त्म हो जाने के लिए शायद आज बार-बार उमड़ रहे हैं। स के कमरे में भारी बेहोशी से बेसुध पड़ी है सुवर्णा। न च चिंता, न फ़िकर। बदला लेने की भावना से अपने पति पराजय को पैरों तले रौंदती-कुचलती एक मौन संतुष्टि उ निद्रित चेहरे पर ख़ूब झलक रही है।

वैसे तो सुवर्णा के साथ उनके शादी-ब्याह को उनके जी की सबसे बड़ी दुर्घटना कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी। के दबाव के कारण विवाह के लिए सहमति प्रदान करने पर सुवर्णा को पत्नी के रूप में हासिल कर गर्व करने या आनं होने में प्रभात बाबू शुरू से ही पीछे रह गये थे। शहरी जी के चमकते रंग-रूप और क्लब-पार्टी आदि के स्वप्नमय परि में सुवर्णा जैसी एक ठेठ गँवार नारी को साथ ले जाने के अपने लिए दुर्भाग्य ही मानते थे। इसी कारण, सुवर्णा के प्रेम, पूजा, तपस्या आदि उन्हें शराब की खाली बोतल बेकार लगते थे। प्रभात दास जैसे एक आधुनिक नौजवान पत्नी है सुवर्णा जैसी गंदी, भद्दी देहातिन! उफ़, कैसे ऐसी असह्य कल्पना सच बन गयी उनके जीवन में!

ऑफ़िस में ख़ूबसूरत रंगीन कन्याओं की भ अड़ोस-पड़ोस, क्लब-पार्टियों में, यार दोस्तों के अखाड़े में भ जगह उन छैल-छबीलियों का बोलबाला, पर इस प्रभात दास घर में? बिजली की तेज़ रोशनी के सामने कोई एक उगलती ढिबरी! अपनी निजी असहायता के लिए सुवर्णा दोषी करार देते बहुत गुस्सा करते थे प्रभात बाबू। क्यों टपक पड़ी वह उनके जीवन में? क्यों तोड़-फोड़ कर तहस-कर डालीं उनकी सारी आशाएँ? उजाड़ डाले तमाम सपने? घु कर जीने का यह जीवन क्या कोई जीवन है?

न, अब एक नहीं... इस अन्याय के ख़िलाफ़ वे नि ही आवाज़ उठाएँगे... निश्चय ही कोई ठोस क़दम उठा सुवर्णा को ज़बरन अपने गाँव भेज देंगे... अपनी इस प्या दुनिया में मग्न-मस्त रहने के लिए अवसर प्रदान करने को व विवश कर देंगे...

दिन-रात, चौबीस घंटे ऑफ़िस के काम के बहाने वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुनिया में मस्त रहने लगे। जान-बूझकर सुवर्णा की भारी उपेक्षा करने लगे। कभी-कभार ही वे समय पर घर लौटते थे। और, जब कभी भी लौटते, बाहर की दुनिया के रंग-रूप में खोये-खोये ही लौटते। बिना किसी संकोच के अपनी अनेकानेक उपलब्धियों को मज़े ले-लेकर सुवर्णा को सुनाते जाते थे। कभी इस बात का ख़्याल भी नहीं करते थे कि इस प्रकार की बातें सुनकर सुवर्णा को कैसा लगता होगा। कभी यह भी नहीं सोचते कि जिस प्रकार का जीवन वे जी रहे हैं, उस जैसी मौज-मस्ती की कामना सुवर्णा भी कभी कर सकती है। सुवर्णा के साथ शादी उनके लिए दुर्भाग्य तो है ही, पर उनसे शादी करके सुवर्णा को क्या-क्या सौभाग्य हासिल हुआ है, यह उनके ख़याल में भी कभी नहीं आता था।

न्याय-अन्याय की उस भरी तिजोरी को चुपचाप अपने में रती, पति को परमेश्वर मान पूजा करने की शिक्षा से विवाह की वेदी पर अपने को स्वाह कर देने वाली सुवर्णा जी-जान से अपने को प्रभात बाबू के लायक बनाये की ख़ूब कोशिशें करती रही, लेकिन उन सब को महत्ता न देते प्रभात बाबू सुवर्णा से किनारा कर गये। चोंच भिडंत, कहासुनी से दिन बीतते गये और दोनों के बीच खाई भी दिनों-दिन चौड़ी होती गयी और अंत तक वह काम भी पूरा हो गया, जब नशे से बेहाल वे अपने मन के जख़्मों को अधिक से अधिक चीरफाड़कर सुवर्णा के सामने धर देने को उतारू हो गये। बस, उसी क्षण से सब कुछ बदल गया। बड़े यत्न से बनायी गयी किसी ख़ूबसूरत चेहरे पर उन्होंने बड़ी निर्मोही से उस दिन जो स्याही उड़ेल दी, उसे लाख कोशिशें करने पर भी फिर से साफ़ कर पाना शायद संभव नहीं है।

हाँ, श्रीवास्तव साहब की पार्टी से ही पासे पलट गये, जहाँ सुवर्णा को साथ लिये बिना प्रभात बाबू गये थे। वैसे तो, सुवर्णा को साथ ले जाने की कल्पना तक भी वे कभी न करते, क्योंकि उस दिन की स्थिति कुछ अलग-सी थी। ऑफ़ीशियल पार्टी में सब लोग अपनी-अपनी पत्नियों के साथ आये हुए थे, उसे देख प्रभात बाबू की छाती पर साँप लोट गये... मन में ढेरों पीड़ाओं की चादर तन गयी।

नाच-गाने हँसी-ख़ुशी के उस भरपूर माहौल में वे रह गये बिलकुल अकेले। तन्हा-तन्हा डान्स फ़्लोर पर सबको जोड़ी-जोड़ी में नाचते देखकर अपने अकेलेपन से बिफर उठे। दिल को लोटती उस पीड़ा को बरदाश्त करने के लिए जाम पर जाम पीते गये, भारी बदहवासी से अपने को भूले-भुलाये न जाने कहाँ तक अपनी निस्संगता का शोक मनाते रहे। किसी ने उन्हें समझा-बुझाकर दिलासे की दो बातें करने की तकलीफ़ नहीं की।

और फिर पार्टी के अंत में सब के विदा ले जाने के बाद ख़ुद ही लौट आये थे चार दीवारों के उस असहज माहौल में, जिसे लोग उनका घर कहते थे। नींद भरी आँखों से खिड़की टटोलती, उनकी राह देखते-देखते पत्थर का बुत बनी बैठी सुवर्णा को सामने पाकर तो वे मानो फट पड़े। अपने में उफान भरते, तमाम गुस्से को बेकाबू छोड़ते वे एकाएक आपे से बाहर हो गये। 'बेमतलब संस्कारों के बोझ ढोते हुई यह फ़रेबी स्वाँग क्यों?' कह कर भारी सवाल कर डाला।

"क्यों यहाँ दरवाज़े पर बैठे-बैठे ऊँघ रही हो? क्यों नहीं सो जातीं तुम? नेक बनने का यह नाटक क्यों कर रही हो?"

डबडबाई आँखों से सुवर्णा केवल देखती रह गयी। शादी-ब्याह रचातीं, घर-गृहस्थी के सुंदर सपनों को आँखों में सँजोतीं, बाक़ी सब को किनारा करती उसकी आँखें यह सब सुनकर फटी-सी रह गयीं।

पतिदेव के लड़खड़ाते क़दम.... व्यस्त विरक्त भाव... निष्ठुर-निर्मोही उक्ति और टाँय-टाँय करते स्वर से उस दिन सुवर्णा जो रो पड़ी थी, उसकी कल्पना तक आज वे नहीं कर पाते हैं। सोच तक नहीं पाते हैं कि कैसे भला वे उसे गंदी-भद्दी गालियाँ सुनाते जा रहे थे, उस सरल निष्पाप नारी को, जो मुँह खोल कुछ कह पाने के बजाय केवल आँसुओं के बहाव में बहती जाती थी। न कोई गिला, न कोई शिकवा... ऊँची आवाज़ तक न निकाली।

घर की देहली से ठोकर खाते गिरने को हो रहे अपने पति को सँभाल लेने को दौड़ पड़ती सुवर्णा को धक्के देकर अपने कमरे में चले गये प्रभात बाबू। पलंग पर पड़े-पड़े ग़रज-तरज कर बोले—"जानती हो, तुमसे शादी करने के बाद भी मैं कितना तन्हा हूँ! सारी दुनिया आज जब अपनी सुंदर पत्नियों की बाहों में झूम-झूमकर नाच रही थी, तब मैं...? हाँ, मैं भारी हृदय से सब की तरफ़ सिर्फ़ देख रहा था, क्यों आयी हो तुम मेरे जीवन में? कौन-सा पाप किया था मैंने?... क्यों मुझे ऐसे जला-भुनाकर मारती जा रही हो?... कौन सी शांति मिलती है तुमको...?

सुवर्णा केवल ताकती रह गयी। छह महीनों के इस वैवाहिक जीवन में भले ही कुछ बात समझ में आने से रह गयी हो, पर उसकी समझ में यह बात ख़ूब बैठ गयी थी कि अपने पति को प्यार की डोरी से बाँध पाने में वह बिल्कुल असफल रह गयी है। शायद इसीलिए अपने पति के आरोपों-उलाहनों की बोली को मन ही मन हजम कर जाने का धीरज उसने ख़ूब पैदा कर लिया था।

"तुम जैसी जाहिल-गँवार औरत से ब्याह करके कोई मर्द क्या कभी सुखी रह सकता है? केवल रसोई सँभालने, घर की सफ़ाई करने और कपड़े-लत्ते धोने-सुखाने के लिए क्या कोई मर्द शादी करता है? क्या इन सब कामों के लिए एक अदना नौकरानी काफ़ी नहीं है?"

बेचारी सुवर्णा फफकती हुई रो पड़ी। बरदाश्त करने की भी एक सीमा होती है। पत्नी का दायित्व निभाने में उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कर्तव्यों में कभी ढील नहीं दी है, तो फिर बातों-बातों में यह तानाकशी क्यों?

"तू मेरे साथ कभी किसी क्लब में जा पाएगी क्या? क्लब...अरे जा.... तू क्या समझेगी क्लब-पार्टी की बातें? नाच-रंग क्या होते हैं? बियर की महक तन-मन पर कैसे चढ़ जाती है.. . कैसे-कैसे रोमांचित कर डालती है...? उस अद्‌भुत अनुभव को तू कैसे जानेगी...बे...? तू तो ठहरी बिलकुल... निरी गोबर. .. निहायत क्षुद्र गँवारन...पूरी तरह से बेमेल...मेरे लिए, और इस आधुनिक समाज के लिए तू केवल एक बोझ है.. हाँ, हाँ बोझ... बेकार और बेमतलब का बोझ....!"

"उन सब चीज़ों को अपना लेने से क्या मैं आपके लायक हो पाऊँगी?"

उस छोटे से दो टूक प्रश्न से प्रभात बाबू चौंक पड़े। नशे से भारी पड़ी जातीं उनकी आँखें थोड़ी देर के लिए आश्चर्य से खुली रह गयी। बाद में, उसे बिन मेघ की बिजली कह कर हँसी से टाल दिया।

लेकिन सुवर्णा टाल नहीं पायी। रातों रात उसने अपने आपको बदल डाला और अपनी उस निषिद्ध पृथ्वी से झट से बाहर निकलकर आ गयी। आधुनिकता के आवरण को एड़ी से चोटी तक चढ़ाते अपने पारंपरिक रूप-शृंगार को उतार फेंका, जिसकी खोज करते प्रभात बाबू बड़े दिनों से तड़प रहे थे।

बड़ी तेज़ी से आधुनिकता की सीढ़ियों को चढ़ती जा रही सुवर्णा को देखकर प्रभात बाबू बाग़-बाग़ हो उठे। जिस सुवर्णा के देहाती रूप-रंग, पोशाक-पहनावे के कारण उसे पार्टी में ले जाना बनता नहीं था, अब उस सुवर्णा के रूप-सौंदर्य के यहाँ की पार्टियों में ख़ूब चर्चे हो रहे थे। दूसरों की ईर्ष्यालु आँखों की भाषा पढ़कर भारी ख़ुशी से ख़ूब उछाल भरते थे। अब तो हर क्लब, हर पार्टी में उनकी रातें बीतने लगीं। वे यह भी भूल गये कि जिस सुवर्णा को इससे पहले वे कभी श्राप समझ बैठे, उस सुवर्णा के कारण आज सोसाइटी में उन्हें ख़ूब नाम मिल रहा है। अपनी मित्र-मंडली में सुवर्णा दास की चर्चा सुन-सुन कर सच में वे ख़ुशी से विभोर होने लगे थे। फूले न समाते थे।

लेकिन, पासा पलटने में देर नहीं लगी। बहुत जल्द प्रभात बाबू की विभोरता का रंग बदलने लगा और साथ ही उड़ गयी उनकी आँखों की नींद भी। मन की शांति डगमगा गयी। आधुनिकता के लिबास के नीचे उनमें जो एक संस्कारी मन बैठा हुआ था, उसकी जानकारी उन्हें तभी मिली, जब कोल्ड ड्रिंक्स पीती सुवर्णा के हाथ हार्ड ड्रिंक्स की ओर बढ़ते चले गये। उनकी बाहों में नाचती बलखाती सुवर्णा दूसरों की बाहों में भी झूलने लगी। साड़ी और आभूषणों की दुनिया से निकली, सलवार-कमीज़ से होती हुई वह निकल पड़ी जीन्स और स्लीव लेस टॉप पहनकर। आधुनिकता का यह उग्र रूप उनकी कल्पना के दायरे से निकलकर आगे बढ़ता जा रहा था, बस इतना ही सही। आगे और नहीं.....एक भी नहीं... लेकिन उनके कब्जे में और था ही भला क्या!

प्रभात बाबू के मुँह से बस का अनुरोध सुन सुवर्णा हँस पड़ी—"अरे अब तो मैं कोई बोझ या अप्रासंगिक नहीं हूँ आपके लिए या आपके आधुनिक समाज के लिए... मैं अब और नालायक नहीं रही... बियर की भीनी-भीनी महक के अनुभवों को मैं रोम-रोम जान चुकी हूँ, तो फिर आज यह फ़िकर किस बात की? अब तो हरेक पार्टी में मुख्य आकर्षण बन खड़ी है यही सुवर्णा दास... आपके लिए तो गर्व की बात है कि आपके यार-दोस्त लोग आपसे डाह के मारे जलने लगे हैं... आपके भाग्य से ख़ार खाने लगे हैं... गाँव से आयी वह देहातन सुवर्णा दास बड़े दिनों की मर चुकी है, जी। तो फिर उसके नाम ये लफ़ड़े आज क्यों? अब और किस बात की चिंता है? क्या मेरी इस तरक़्क़ी से आप सुखी नहीं हैं....क्या मेरे लिए आपके मन में कोई गर्व नहीं है?"

भारी बेचैनी से तड़पते हुए सिकुड़ जाते हैं प्रभाब बाबू अधखुली आँखों से बियर की बोतल को टटोलती फिरती है सुवर्णा। अब तो दिन के उजाले में भी वह पीने लगी है। नकार की बोली एक नहीं सुनती। मना करने पर केवल ज़ोर से हँस देती है, कहती है—"अब यह रोक की बोली किसलिए जी! बस करने का अनुरोध किसलिए? मैं तो आपकी परीक्षाओं में ख़ूब सफलता पा चुकी हूँ... न-नुकर मत करो प्रभात, मदिरा के बिना जीवन के कोई मायने ही नहीं हैं। मदिरा ही जीवन है... स्वप्न है.... मदिरा ही मेरे लिए सब कुछ है... बिन मदिरा के क्या कोई जी भी सकता है...? अब तो सोच के ही हैरानी होती है कि बिन मदिरा के इतने अरसे तक मैं जी कैसे? सच में आपकी ही बातों में सच्चाई थी... मूरख थी मैं... मूरख...! ख़ैर आपको बहुत-बहुत धन्यवाद!"

कहते-कहते गिरती-सँभलती-लड़खड़ाती हुई आगे बढ़ जाती है सुवर्णा। आँखों में भर आये आँसुओं को भारी सावधानी से पोंछ डालती है, तो चौंक-सी लगती है प्रभात बाबू को...क्या सुवर्णा की ओर से यह कोई आक्षेप है... क्या सच में वह सुखी है?

कहते हैं, दुख आता है, तो कभी अकेला नहीं आता, अपने साथ पराजय को भी घसीट लाता है। भारी बरबादी की ओर खिंचती चली जाती अपनी पत्नी के आगे घुटने के बल बैठ जाते हैं वे। अपनी ग़लतियों के लिए पछतावे का रोना रोते, उससे लौट आने का आग्रह करते हैं।

लेकिन, सुवर्णा लापरवाही की हँसी हँसती गयी। साथ ही, अनोखी करुणा भी उसके होंठों पर थिरकती रही, "जिसकी संभावना अब नहीं है, उसका सपना क्यों देखते हो प्रभात... बहता पानी फिर से कभी लौट आता है क्या? इस अनमोल सुख से हिलमिल जाने के बाद फिर से कोई उस तंग कमरे की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारदीवारी में अपने को बंद कर रखना पसंद करेगी क्या? तुम अपने रास्ते में चले जा रहे हो और मैं अपने वापस लौट जाने का रास्ता कब से खो चुकी हूँ। सुख के इस महासागर में तैरने के बाद किनारे पर आ जाना कौन चाहेगा भला? प्रभात दास की पत्नी आज इस शहर की सबसे चर्चित महिला है, यह श्रद्धा-सम्मान केवल आप ही के कारण मुझे हासिल हुए हैं। फिर उसे किस खुशी से तज जाऊँ? अब आप ही कहिए प्रभात बाबू, आपके कहने पर अगर मैं लौट भी आऊँ, तो आख़िर करूँगी क्या? आपके लिए रसोई करूँ, आपके कपड़े-लत्ते साफ़ करूँ, घर-बाहर झाड़ू-बुहारी करूँ या फिर आपकी चरण-सेवा करूँ?... यह सब तो नौकरानियों का काम है... वे सब कर लेंगी।''

अपने द्वारा किये-कराये ज़ख़्म, चोट फिर से उन तक लौट आते थे। बार-बार बड़े ही निर्मोही ढंग से सुवर्णा अपनी पटरी पर चलती जाती थी, आगे और आगे बढ़ती जाती थी।

अपने आँसुओं को समेटते-सहेजते प्रभात बाबू ठगे से रह जाते थे। सुवर्णा अब उनकी निजी नहीं, हज़ारों की हो गयी है। आज... कितने आराम से वह अपने पति के सामने स्वीकार कर गयी अपने गंदे-भद्दे रंग-रूप को! क्या इस प्रकार की किसी पत्नी की सपना प्रभात बाबू ने कभी देखा था? लेकिन क्या करें, वह तो खुल्लमखुल्ला कह चुकी है कि फिर से लौट आ पाना उससे नहीं बनेगा। क्लब-पार्टी की ज़िंदगी की वह आदी हो चुकी है। क्या सच में वह इसी से ही सुखी है?

न जाने क्यों सुवर्णा की बातों पर प्रभात बाबू को यकीन नहीं होता। बार-बार ठोकरें खाने पर भी बड़े मन से वे कोशिशें करते जाते हैं, ताकि ग़लत रास्ते पर चल पड़ी अपनी पत्नी को फिर से लौटा लाएँ, क्योंकि उन्हें यह ख़ूब पता है कि अपने को लाख सुखी कहने पर भी सुवर्णा असल में सुखी नहीं है। यदि वैसा होता, तो बातें करते-करते उसकी आँखें क्यों भर आती है भला!!

12, अटलांटा सी.एच.एस.,
प्लॉट नबंर-29, सेक्टर-40
नेरुल, नवी मुंबई - 400706
अनुवादक-योगेश पाणी,
सत्यविहार, ड़मपडा,
कटक-754007

लघु कथा

भाई

पंकज शर्मा

बस स्टैंड पर खड़ा हुआ मैं बस का इन्तजार कर रहा था। इतने में एक 10-12 साल का लड़का जो भीख माँगता फिर रहा था, मेरे पास खड़ी एक बस में बैठे लोगों से हाथ फैलाए भीख माँगने लगा। एक आदमी पकौड़े खा रहा था। उसने खाते-खाते एक पकौड़ा उस लड़के के हाथ में धर दिया। लड़के ने झट से उसे अपनी ऊपर की जेब में डाल लिया। मुझे बड़ी हैरानी हुई।

जैसे ही वह मेरे पास से गुजरा, मैंने उसे पुकारा और दो रुपये का सिक्का पकड़ाते हुए पूछ ही लिया, ''बेटा यह पकौड़ा तुमने जेब में क्यों डाल लिया, खाया क्यों नहीं?'' वह सकपकाया, फिर बोला, ''यह मेरे भाई के लिए है।''

''भाई के लिये क्यों?'' मैंने फिर सवाल किया।

वह बोला, ''क्योंकि वह अभी बहुत छोटा है, माँग नहीं सकता है न, इसलिए।

मैं उस छोटे से लड़के का अपने भाई के प्रति प्यार देखकर मुग्ध और चकित रह गया।

प्लाट नं0 19, सैनिक विहार
सामने विकास पब्लिक स्कूल
जण्डली, अंबाला शहर (हरि0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्हा-तन्हा ज़िंदगी...

जाफ़र मेहदी जाफ़री

वह जब घर लौटा, तो शाम अपना बदन समेटकर काला बुरका ओढ़ चुकी थी। उसने ताला खोला और बिजली गुल हो गयी। हर छोटे शहर की यह कहानी है, रात आते ही लाइट की कटौती शुरू हो जाती है।

उसने दरवाज़े को धीरे से धक्का देकर खोला, ड्योढ़ी को पार किया और आँगन में पहुँच गया। चारों तरफ़ घुप अँधेरा था। उसके क़दम इस घर से मानूस थे, आँगन से दालान की दूरी को जानते थे, वह आराम से वहाँ तक पहुँच गया। बायें हाथ पर ताक थी। उसने हाथ बढ़ाया, मोमबत्ती उठायी और रोशन कर दी। धीमी रोशनी ने अंधकार को काफ़ी हद तक कम कर दिया। वह दालान से आँगन में आ गया। नमाज़ के लिए बनी पत्थर की चौकी पर बैठ गया। उसने एक नज़र चारों तरफ़ डाली। सन्नाटा अपने पाँव पसारे घूर रहा था, जैसे पूंछ रहा हो—'अरे तुम फिर आ गये?... तुमसे यह जगह छूटती क्यों नहीं?... तुम आख़िर यहाँ से कब जाओगे?... अब तो बिलकुल तन्हा रह गये हो।''

हाँ, मैं तन्हा हूँ,... बिल्कुल तन्हा... सब चले गये... कौन किसका साथ देता है... पाँच लड़कियाँ... सब अपने-अपने घरों की हो गयीं... लड़का, जिसने बहुत दूर अपनी दुनियां बसा ली... सबका अपना जीवन है... अपनी इच्छाएँ हैं... अपने काम हैं... अपनी ज़रूरतें हैं.... कौन, किसके लिए रुका है?... किसने किस के लिए पलट कर देखा है?... किसके पास इतना वक़्त है कि कुछ देर ठहरे... कुछ देर साथ दे... कुछ कहे... कुछ पूछे... कुछ सुनाये... कुछ जाने... कुछ दुख बाँटे, कुछ सुख दे... एक व्यस्त जीवन में भागम-भाग ही है... रुके तो ज़रूरत से... चले तो ज़रूरत से... हँसना-बोलना, रोना-गाना—हर चीज़, एक ज़रूरत के दायरे में क़ैद है... न जाने लोग साँस भी कैसे लेते हैं?

मैं यहाँ से कैसे चला जाऊँ? यहाँ के दरो-दीवार में यादें बसी हैं—हँसते-मुस्कुराते, बातें करते, चेहरे दिखते हैं। आँगन हो या कमरे, मेरे क़दमों की चाप पहचानते हैं। हर ईंट, हर दर, हर गोशा—इस घर की हर शै मुझे जानती है, मुझे पहचानती है और मैं उसे जानता-पहचानता हूँ। तुम भी तो मेरे अंदर हो, मेरी रूह का हिस्सा हो जो बाहर है, वही भीतर है, क्या तुम्हें महसूस नहीं होता? तुम्हारा—मेरा अब चोली-दामन का साथ है। तुम मेरी आदत बन चुके हो। न मैं तुम से अलग हूँ और न तुम मुझ से।

और देखो, यह आँगन में लगा अमरूद का पेड़, जो अब मेरी तरह बूढ़ा हो चुका है। इसे मैं बहुत अज़ीज़ रखता हूँ, बेपनाह प्यार है। यह मेरा सहारा है। मेरा साथी है। यह खामोश खड़ा हसरत-भरी निगाह से मुझे देखता है—मुझ से बातें करता है।

मेरा बचपन-मेरी जवानी इसकी बांहों में, इसके मीठे फल खाकर बीती है। उसकी दायें-बायें निकली शाखें मुझे आगोश में लेकर फुनगी तक पहुँचाती थीं, जहाँ बैठकर मैं खुद भी अमरूद खाता और दूसरों को भी खिलाता। जब बंदर पेड़ कर कूदता, तो मैं डर जाता। नीचे खड़े लोग शोर मचाते। बंदर पूरे पेड़ को झकझोर देता, अमरूद तोड़ता, एक हाथ में, एक मुँह में दबाता। शोर सुनकर लाल-लाल चेहरे से ज़ोर-ज़ोर से खों-खों करता। दाँतों में फँसा अमरूद नीचे गिर जाता। उसे गुस्सा आ जाता। पेड़ को फिर ज़ोर से हिलाता, फिर अमरूद तोड़ता और पास की दीवार पर छलाँग लगा देता।

तुम देखते हो—बंदर तो आज भी आते हैं, अमरूद के पेड़ पर कूदते हैं—लेकिन अब शोर मचाने वाला कोई नहीं।

अब तो, ये बंदर भी मेरे अकेले के साथी हैं। उनके आने से घर में चहल-पहल हो जाती है। जिस दिन उनका रुख़ इधर नहीं होता, उनकी कमी महसूस होती है। मैं बेचैनी से उनका इंतज़ार करता हूँ।

घर में रौनक, घर में नन्हा-नन्हा शोर-गुल, नन्हीं-नन्हीं चिड़ियों से भी होता है, जो मुझे अच्छा लगता है। इसलिए, मैं रोज़ ही चावल के दाने आँगन में बिखेर देता हूँ। बहुत सारी गौरइयाँ उन्हें चुगने आ जाती हैं। पंख फड़फड़ाती हुई—चीं-चीं करती हुई आपस में किलोलें करती हैं। मैं मुस्कराता हुआ, उन्हें देखा करता हूँ। फिर, टहलता हुआ उनके बीच जाकर खड़ा हो जाता हूँ। पल भर के लिए वे सब फुर्र से उड़ जाती हैं, फिर मेरे चारों तरफ़ जमा होकर दाना चुगने लगती हैं। मुझे लगता है कि अब वो सब भी मुझसे काफ़ी मानूस हो गयी हैं। उन्हें भी लगता है कि यह बूढ़ा इन्सान अब बेज़ार है, इसके पर अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कट चुके हैं।

फूलों वाली बेल में बुलबुल का घोंसला है। एक दिन मैंने उसमें दो अंडे भी देखे थे, अब बच्चे निकलने का इंतज़ार है। मैं रोज़ चुपके से जाकर झाँककर देखता हूँ कि अंडे फूटे या नहीं?

इसी बेल के पास की दीवार में लोनी लग गयी थी। उसकी ईंटें मैंने बदलवा दीं और अच्छा-सा प्लास्टर कराके सफ़ेद चूने से पुताई करा दी। अब देखो, दीवार कैसी सुंदर लगती है और वह ताक़ भी, जो नमाज़ की चौकी के ठीक सामने है। उसके बराबर, गोल दर का ज़ीना है, जो ऊपर के कमरे में जाता है, जहाँ 'कोई' रहता है... तुम हँस रहे हो? हँसो नहीं... यह मैं नहीं कहता—यह मेरी बीवी का अक़ीदा था। वह रोज़ाना शाम को जब मग़रिब की अज़ान होती है... इस ताक़ में, अगरबत्तियाँ जलाती थी, मैं हँसकर उससे कहता था—"ये तुम रोज़ इस ताक़ में अगरबत्तियाँ क्यों जलाती हो?"

वह जवाब देती—"जब दोनों वक़्त मिलते हैं, तब घर में ख़ुशबू करनी चाहिए।"

मैं उसे छेड़ता—"शाम को ही क्यों? सुबह क्यों नहीं? सुबह भी तो दोनों वक़्त मिलते हैं।"

वह प्यारा-सा ग़ुस्सा करते हुए कहती—"आप तो चुप ही रहिए, कुछ समझते ही नहीं... ख़ुशबूओं से घर के बुज़ुर्ग ख़ुश होते हैं, उन्हें ख़ुशबुएँ अच्छी लगती हैं।"

"बुज़ुर्ग? कौन बुज़ुर्ग?"

मैं अनजान बनता हुआ उससे पूछता, जबकि मैं जानता था कि उसका इशारा किस तरफ़ है। उसे यकीन था कि इस घर में कुछ 'जिन्नात' रहते हैं, जिन्हें अगर ख़ुश रखा जाए, तो घर में ख़ुशहाली आती है और अगर वो नाराज़ हो गये, तो परेशानियाँ आ घेरती हैं। इसलिए, वह बिना नागा फूल, अगरबत्ती ताक़ पर चढ़ाती रहती।

उसने घूमकर ताक़ को देखा और उठकर उसके पास आ गया। उसे ऐसा महसूस हुआ, जैसे उसकी शरीकेहयात पास खड़ी, मुस्कुराती हुई फूल अगरबत्तियाँ हाथ में लिये उसे देख रही है और कह रही है—"आओ, इसे जला दो। कितने दिन हो गये, यहाँ अगरबत्तियाँ नहीं सुलगीं। आज तुम अपने हाथों से जलाओ।"

"कोई फ़ायदा नहीं, इन सब बातों से। तुमने भी तो बहुत जलायीं थीं तुम्हें क्या मिला?... तब मैं और तुम अकेले थे, आज मैं अकेला हूँ, फ़र्क़ क्या पड़ा? मैं इन सब पर यकीन नहीं रखता।"

वह अपनी ही आवाज़ से चौंक गया। फीकी हँसी हँसता हुआ दालान की तरफ़ मुड़ गया। खाने-पीने की कोई ख़्वाहिश न थी, इसलिए फोल्डिंग पलंग आँगन में खींचकर बिस्तर बिछा लिया। मच्छरदानी लगायी और लेट गया।

खुला आसमान उसके चेहरे के ऊपर था। चाँद ऊँची दीवार को पार करता हुआ अमरूद के पेड़ की फुनगी पर चमकने लगा था। उसकी चाँदनी पूरे घर में बिखर गयी थी। वह एकटक उसे देखने लगा। आज चाँद जैसे एक चेहरे में तबदील हो गया हो, उसके होंठ हिल रहे हों और वह कह रहा हो—मैं तुमसे बहुत ऊँचाई पर हूँ। मुझे सब दिखता है। वो भी, जो तुम नहीं देख पाते, मैं देखता हूँ... मैंने तुम्हें रोका था, मगर तुम माने नहीं... जाकर तुम्हें क्या मिला? एक झूठी आस थी, वो भी जाती रही... अब किस भ्रम में जियोगे? कैसे काटोगे ज़िंदगी?

वह हँसा, कहने लगा—"मेरे लिए तुम उदास न हो। जीने के लिए मेरे पास बहुत कुछ है... देखो मैं तुमसे बातें कर रहा हूँ... तुम मेरा दिल बहला रहे हो। जब तुम चले जाओगे, तो आकाश पर टँगे अनगिनत सितारे मेरे हमराह होंगे। कुछ वो सुनाएँगे, कुछ मैं सुनाऊँगा। रात गुज़रती रहेगी और मच्छरों की भनभनाहट मेरे लिए गुनगुनाहट में बदल जाएगी और उनकी सारंगी सुनते-सुनते मैं नींद के आगोश में सपनों की सैर करने चला जाऊँगा... फिर सुबह होगी और इस घर की गोद होगी। गोद में कौन अकेला होता है? इतना सब कुछ जिसके पास हो, वो अकेला कहाँ?

"तुम कहते हो कि तुम सब कुछ देख लेते हो? ग़लत! तुम बहुत कुछ नहीं देख पाते। तुम सब कुछ जानते हो, फिर भी बहुत कुछ नहीं जानते। पहले तुम खिड़कियों के रास्ते कमरों के अंदर झाँक लिया करते थे, अब वो खिड़कियाँ बंद हो चुकी हैं। अब ए0सी0 कमरों में तुम्हारा गुज़र कहाँ? वहाँ क्या होता है?... वहाँ क्या बातें होती है?... तुम क्या जानो? चलो, आज मैं तुम्हें बताता हूँ कि उन बंद घरों में, उन बंद कमरों में, उन इन्सानों में क्या-क्या बातें होती हैं...

"मेरे बेटे को एक नया घर ख़रीदना है। उसे रुपयों की सख़्त ज़रूरत है। ऐसे में, बाप तो याद आएगा ही। बग़ैर ज़रूरत के कौन नज़र उठाकर देखता है? वह चाहता है कि मैं उसके साथ रहूँ। देखो... वह कितना प्यार करता है? आज प्यार भी अक्ल से किया जाता है। दिल-विल तो पुरानी चीज़ हो गयी। वह कहता है कि यहाँ का सारा कबाड़ बेच दूँ। इस घर में रखी चीज़ें उसे कबाड़ नज़र आती हैं। वह मसहरी, जो अब टूट गयी है, फिर भी मैं उसे सँभाल कर रखता हूँ, जानते हो क्यों? क्योंकि ये वह मसहरी है, जिस पर मैंने अपनी हमसफ़र के साथ पहली रात गुज़ारी थी। वह छुईमुई बनी लाल जोड़े में इस मसहरी पर बैठी थी। हमने पूरी रात एक-दूसरे की बांहों में गुज़ार दी थी। आज भी वह मुझे वहीं, वैसे ही बैठी नज़र आती है। उसका सिंगारदान, उसकी कुर्सी, उसके कपड़े, उसकी छोटी-छोटी चीज़ें, उसके बरतन, उसके बचे-खुचे नकली ज़ेवर, उसकी हर वो चीज़, जिसमें से उसकी ख़ुशबू आती है, उसे मैं कैसे फेंक दूँ? इस घर को मैं कैसे बेच दूँ ? चप्पे-चप्पे पर वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे हँसती-खिलखिलाती और कभी-कभी लड़ती-झगड़ती दिखायी देती है। यही सब तो मेरी दौलत है, मेरा खजाना है। मैं कैसे ये सब छोड़ दूँ? मैंने साफ़ इन्कार कर दिया। बहू-बेटे नाराज़ हो गये, अब मेरे अंदर कीड़े की कीड़े थे...

"एक दिन घर में दूध नहीं था.... चाय को दिल चाह रहा था। मैंने अपने पोते से कहा—जाओ, पड़ोस से एक प्याली दूध ले आओ—वह चला गया। जब दूध लेकर वापस लौट रहा था, तो बहू बाज़ार से आ गयी। मेरे पोते पर भी चीखी और मुझे भी खरी-खोटी सुनायी। कहने लगी कि लोग क्या सोचेंगे? आपने तो नाक कटवा दी। मैंने कहा—"बहू, आपस का ये लेन-देन ही मोहब्बतों में इज़ाफ़ा करता है।" कहने लगी कि आप अपना फ़लसफ़ा अपने पास रखिए। फिर चौंककर बोली—"अगर ऐसा ही है, तो घर बेचकर रुपया हमें दे दीजिए।"

चाँद खिसककर कुछ और ऊपर आ गया—"फिर तुमने क्या कहा?"

"मैंने कहा—यह मुमकिन नहीं। अपने हाथों से मैं अपना गला नहीं काट सकता। अगर मैंने घर बेच दिया, तो मेरा सहारा मुझी से छिन जाएगा। जिस गोद में मैं सुकून पाता हूँ, उसे मैं अपने हाथों कैसे उजाड़ दूँ?

एक बादल का टुकड़ा उसके और चाँद के बीच आ गया। उसने करवट बदली। सामने नीबू के झाड़ पर एक जुगनू चमक रहा था। वह उसे ग़ौर से देखता रहा। कभी नीली, कभी सुनहरी रोशनी जल-बुझ रही थी। बादल हटा तो चाँद बाहर निकल आया—"देखो, सो न जाना। आगे क्या हुआ, मुझे जल्दी से बताओ। मैं जानता हूँ, तुम बहुत थक गये हो, जिस्मानी तौर से भी और ज़ेहनी तौर से भी। फिर भी बात पूरी करो, मुझे बेचैनी हो रही है।"

वह सीधा लेट गया, चाँद की तरफ़ देखा और उदास आवाज़ में कहने लगा—"फिर एक दिन मेरा पोता मेरे पास आया, कहने लगा—दादाजी, अम्मी-पापा जो खाना आप के लिए रखकर गये हैं, आप उसे न खाइएगा।"

मैंने पूछा—"क्यों?"

कहने लगा—"उसमें जहर है।"

उसकी सिसकियों से आँगन का सन्नाटा टूटने लगा। चाँद भी शर्म से बादल का टुकड़ा ढूँढने लगा। जुगनू की चमक बुझ गयी, वह पेड़ से ज़मीन पर आ गिरा।

उसने अपनां आँसुओं से भीगा चेहरा तकिये से छिपा लिया और फिर... उसे ऐसा महसूस हुआ, जैसे इस घर की हर चीज़ उससे कुछ कह रही है। सब में हरकत पैदा हो गयी है। कोई उसके आँसू पोंछ रहा है, कोई सिर सहला रहा है...

178/247, मुमताज़ महल होता
गोलागंज, लखनऊ

लघु कथा

रहीम रो रहा है

रत्नेश कुमार

मैं रहीम के घर गया। मैंने देखा, वह रो रहा है।

मैंने पूछा, "भाई, रो क्यों रहे हो?"

"मैं भी आदमी हूँ बड़े भाई। मुझे भी बुरा लगता है...." वह फूट-फूट कर रोने लगा।

"क्या बुरा लगा जो इतना रो रहे हो ?" मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा।

"आपने मुझे भाई कहा। वे मुझे आई0एस0आई0 बोलते हैं।" वह हिचकियाँ लेता बोला।

जनगणना-2011

वह स्कूल से लौटकर ख़ुश है। उसने माँ को बतलाया, "जनगणना हो रही है।"

माँ ने पूछा, "ई का होती है?"

उसने कहा, "देश के आदमी-औरत की गिनती हो रही है।"

वह बोली, "तो इमें हेतना ख़ुश होने का बात का है।"

उसने कहा, "खरबपति मुकेश अंबानी और हम एक-सा, एक ही कागज पर रहेंगे।"

जनता

एक अंग्रेज़ी स्कूल का शिक्षार्थी मेरे पास आया, "अंकल, जनता का मीनिंग क्या होता है?"

मैंने उससे सवाल किया, "ताक़त जानते हो ?"

उसने जवाब दिया, "जी अंकल।"

मैंने उसके हाथ से उसकी कॉपी ले ली और उलटते हुए बतलाया, "जैसे गुड, बेटर, बेस्ट, वैसे ही ताक़त, ताक़तवर, जनता"

उसने अपनी कॉपी लेकर कहा, "समझ गया अंकल।"

डॉल्फिन कॉम्युनिकेशंस
राजगढ़ रोड, गुवाहटी-781003 (असम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

सच्चिदानंद विशाख

मनुष्य का शरीर छिद्रों से भरा होता है

मनुष्य का शरीर छिद्रों से भरा होता है
छिद्रों से जुड़ते हैं कई-कई अदृश्य से तार, जो उसके मस्तिष्क और प्रकृति द्वारा स्थापित होते हैं
अदृश्य से तार ही उसे टाँगे रहते हैं
पूर्वजों का मस्तिष्क भी वंशजों की आकांक्षाओं के साथ ही जुड़ा होता है
पर मानव के मस्तिष्क में कोई बड़ा-सा पत्थर होता है शायद
बड़ा-सा पत्थर बैठाये रहता है एक ही जगह
या फिर वह उठकर थोड़ी ही दूर जाता है लिए हुए बड़ा-सा पत्थर !

उसे पकड़कर खींचती है उसकी पत्नी भी
वह फैला होता है अपने मस्तिष्क में प्लास्टिक सा
पर बार-बार खड़ा पाता है खुद को धरती पर
पैरों को बार-बार टिकाता है
हवा में बहता रहता है खड़े-खड़े
नदी, पहाड़ सभी पकड़े रहते हैं उसे अपने आगोश में

उसे बुलाती हैं कई धाराएँ-उपधाराएँ
बड़ी-से-बड़ी प्रतिक्रिया होती है सागर की, महासागर की
वह हाथों में जल उठाता है नदी का, सागर का और अंगों में समा लेता है
वह मिला लेता है धूल-कंकड़ अपने व्यक्तित्व के साथ
और कभी पसर गया होता है धरती पर उसके केन्द्राभिगामी बल के साथ।

तसवीरें

तसवीरें काफ़ी दूर देखती हैं
पर हल्के उभार से बदल जाती हैं
इन्हें मोड़ा जा सकता है
इन्हें दबाया जा सकता है दलदल में।
मगर तसवीरें ताकती हैं काफ़ी दूर
हम स्वयं जा नहीं पाते उतनी दूर
हालाँकि हम बहुत ज़्यादा हिल लेते हैं थोड़ी देर में

हम अपने आपको स्थिर रखते हैं
पर हमारे पास का उजास गुम हो जाता है
थोड़ी देर के लिए हमारी अन्तरात्मा बढ़ जाती है
हम अपने हाथ बढ़ाते हैं
अपने चौड़ाते हुए दिमाग को छोरों में बाँट लेते हैं
पर तसवीरें दिमाग के रेशों जैसी नहीं होती
ये फूटकर बह नहीं पातीं
साँप के फन-सी कठोर होती हैं

किसी कठिनतम मस्तिष्क की रचना होती हैं तसवीरें
ये बदलती नहीं स्थायी होती हैं।
आदमी के दीवार जैसे स्क्रीन पर,
और पूरे भूमण्डल में हवा की परतों पर तैरती होती हैं

कहीं से इन्हें धरें, ये हथेलियों में आती हैं
अपनी बाँहों के चतुर्भुज में कैद होती हैं
ये हिलती डुलती नहीं
ये एक साथ उतर जाती हैं हमारे समग्र व्यक्तित्व के क्षेत्र में

एक आदमी के होने के साथ

एक आदमी के होने के साथ जो कुछ हो जाता है
हवा में, जहाँ कीटाणु तैरते हैं
पानी जहाँ मछलियाँ रहती हैं
वहाँ आदमी का शरीर-स्थल भी होता है
उसकी नींद में भी
उसके जागने में भी खड़ा होता है कोई जलाशय अपने आकार में
आदमी मोड़ देता है बहुत सी चीजें
बहुत सी लताएँ ऐंठ डालता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अपने पैरों पर सवार होकर हिलता होता है
उसका शरीर थमा होता है सैकड़ों प्रतिबिंब लाँघकर
और कभी चला जाता है पुनः कहीं किसी दूसरे स्थल-खण्ड पर

बहुत सी बातें अपने व्यक्तित्व में साटता होता है
बहुत से रहस्य अपने आकार में मिलाता है
उछलकर कूदकर अखाड़े में पड़ा होता है
कहीं से उठकर आएँगे लोग उसे सहारा देने, कुछ बोलेंगे

पर बातें उगलने लगते हैं लोग
बोल बोलकर धीमे पड़ते हैं सभी
लड़खड़ाते हुए सभी आते हैं
घर पर औरतों की बातें सुनते हैं बहुत ज़्यादा
बातों से ढक जाते हैं रूई के ढेर से
फिर किसी दिन अपनी दुनिया का विस्तार करते हैं
रूई-से अपने हाथ फैला लेते हैं पेड़ से
चलते हैं थकते हैं
अपने पैर खोलते हैं
किसी फॉल पर बहते हैं मछलियों के ढेर के साथ
दावे पर दावे करते हैं अपनी महानता के
खुद को लेटाकर विश्राम कराते हैं
चित्त धरती से मिल जाते हैं
और धरती तब बहुत दूर कहीं गई होती है अपनी धुरी पर सूर्य के चारों ओर
चारों ओर से मारते हैं जब कभी किसी आदमी को, सभी
अपने आपमें कीड़ों सा समा जाता है आदमी भी

फिर वही घर होता है
फिर वही पत्नी, वही बच्चे होते हैं
उसमें समा जाते हैं
फिर वही घर वही सपने पूरे करने का आश्वासन होता है,
वही आसमान में फैले हुए अपनी किरणों के तार वह तोड़ता है

वह थम जाता है
स्थैतिज ऊर्जा में समाता है अपने शरीर में
कुछ और होता नहीं
सिर्फ़ हवाओं में बिखरता है
हवा से हवा में गुजरता है साथ-साथ
रह जाता है अपने द्वारा बना-बनाया संसार
घटाकर कोई टोप पहनकर
कहीं आसमान के नीचे कहीं बैठे हुए
अपने आप में ढालते हुए किसी पुल के पाये
उठा खड़ा करने कोई पुल अपने आप पर
अपना कोई साँचा बनाकर
अपने जैसा ही बच्चा पैदा करते हैं
कहीं खुलते बंद होते
कहीं स्थिर होते हुए निकलते।

सौंदर्य

किसी का दूधिया रंग भरा है सूरज की धूप में
धूप को जितना चढ़ालो धूप घटती नहीं
रंग भी घटता नहीं उसे जितना उतार लो
रंग बैठता नहीं, रंग छितराता नहीं

किसी बैठे हुए आदमी को उठा सकते हैं
वह दौड़ सकता है बेमन
किसी खाली घर को भर सकते हैं आदमी से
पर रंग तो बादल की परत की तरह सटा होता है अपने उपादान से

हम हाथों को जोड़ लेते हैं
उन्हें मोड़ देते हैं पैरों के तलवों तक
एक चीख हमेशा होती है पैरों की जमीन पर
जब तारों की नींद भी टूटी होती है,
पर वैसा कुछ नहीं होता है रंग को निहारने में।
रंग तो जकड़ देता है किसी दीवार से हमें
हमारे दाँतों का कटकटाना भी बंद हो जाता है

जब चराग जला देते हैं
और अंधेरा तोड़ते हैं
ढल जाती है उसी में जब रौशनी
गढ़ते-गढ़ते रूप हम उम्र बिता देते हैं
बालाओं के मुखड़े पर ताकते हम स्वयं हवा में रह जाते हैं

हम कुछ कहकर चले जाते हैं मौत से पहले
हम जाने के बाद कभी आना नहीं चाहते
कभी घटता नहीं संसार
कभी पेड़ों का बढ़ना रुक नहीं सकता
हम ही जकड़ जाते हैं पहाड़ से
ईंट के टुकड़ों में हम ही बदलते हैं
हम ही घिर आते हैं कभी बादल बनकर।

मध्य विद्यालय कल्याणपुर
पोस्ट-कल्याणपुर, वाया-पुनपुन, जिला-पटना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

शोभनाथ यादव

ढहायेगा शब्दकार दीवारों को

दीवारें जब ढहेंगी,
तो रचनाकार ही ढहायेगा–
न नेता ढहायेगा,
न अभिनेता,
न धर्म-गुरु,
न ढहायेगा समाज,
न देश ढहायेगा।

दूसरे तो महसूस भी
नहीं करेंगे कि
दीवारें घिरी हैं चहुँओर कि नहीं,
क्योंकि
कुंद है नेता,
कुंद हैं धर्मगुरु,
कुंद है समाज,
कुंद है देश !

जागता है शब्दकार
शब्दकार जागता है सिर्फ़,
चलता है शब्दकार
शब्दकार चलता है सिर्फ़–
कहीं रुकता नहीं वह
इन रुग्ण दीवारों में,
तो ढहायेगा वही, ढहायेगा वही सिर्फ़
क्योंकि मंजिल उसकी सिर्फ़ चलना है,
धर्म उसका ढहाना है–
सारा पुरातन
सारी डरावनी
वीभत्स-विद्रूप दीवारें–
ढहायेगा रचनाकार ही !

देवता से कुछ नहीं माँगूंगा

तुम लाये घर में
देवता की मूर्ति,
चमक-दमक वाले विद्युत-बल्वों से
सजाया तुमने उसे !

इसके पहले जाते थे तुम
देवता के मंदिर में नियमित,
लाखों-करोड़ों लोग
जाते हैं मंदिर में अब भी
तुम्हारी तरह !

पर मैं तो कहता हूँ–
बसाओ देवता को मन में
तुम नियमित,
पद्मासन में बैठ जाओ घंटों
और उसी के ध्यान में
डूबे रहो निरंतर,
छोड़ो यह प्रपंच बाहरी,
रंग-रोगन, चमक-दमक बाहरी
अपने भीतर ही बसा लो देवता को,
मुझे बिठाना होता देवता को
मन में तो,
ध्यान करता 'विपश्यना' का
और डूब जाता गहरे
कहीं अपने ही समंदर में–
देवता मेरा वहीं मिलता मुझे
और मिलता वह उन इंसानों में भी
जो ग़रीबी और भुखमरी के मारे हैं,
जिनके लिए हर सूर्योदय में
मिलने को मचलता है
मेरा जिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं देवता से
कुछ नहीं मांगूंगा,
सिर्फ़ इन्सानों से
प्यार करूँगा–
यही मेरी भक्ति,
यही मेरी श्रद्धा है !

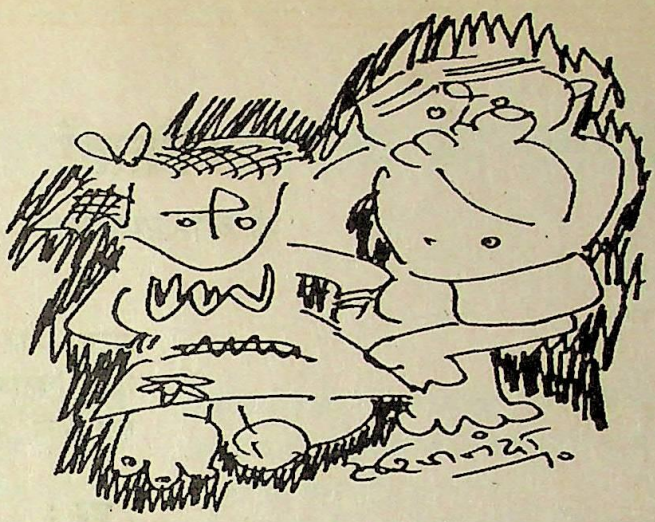

जरूर आऊँगा तुम्हारे पास

तुम्हारे ईश्वर ने ही एक दिन
कहा था मुझसे–
मत आना मेरे पास कभी तुम !
यदि तुम
अपने ख्यालों,
एहसासों,
संकल्पों में
पूरी आस्था,
पूरे समर्पण
और
पूरी खुद्दारी में जीओगे,
तो खुद खड़ा दिखूंगा
तुम्हारे सामने हमेशा–
मेरी भक्ति करने की
जरूरत नहीं तुम्हें !

मैं नास्तिक नहीं हूँ

ईश्वर मैं नास्तिक नहीं हूँ–
भले ही तुम्हारी भक्ति नहीं करता,
पर मैं आस्तिक ज़रूर हूँ
क्योंकि मैं
खुद को चाहता हूँ,
तुम्हारे द्वारा बनायी गयी
दुनिया को चाहता हूँ,
इस दुनिया के सभी इन्सानों को
चाहता हूँ,
उनकी तमाम बस्तियों से
मोहब्बत करता हूँ–
अपने दिल में
प्यार का दरिया भरकर
झूमता हूँ-लहराता हूँ
मैं नास्तिक नहीं, आस्तिक हूँ

तो बोलो ईश्वर,
कौन नास्तिक है–
मैं या
तुम्हारे तथाकथित नुमाइंदे ?

संपा-प्रगतिशील आकल्प
पंकज क्लासेस, पोस्ट आफिस बिल्डिंग
जोगेश्वरी (पूर्व), मुंबई-400060

इस अंक का रेखांकन
सूरज नंदा
76, पी.बी. कीडगंज, इलाहाबाद (उ0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

व्ही.व्ही. रमणकिरण

:एकः
छोड़ देते हैं
सभी रंग
अंधेरे में
अपना अपना रंग

:दोः
मेरी माँ
चाँद को
सिरहाने रख सोती है
माँ की आँखें;
खुलती हैं जब
सूरज...
आँखों के सामने होता है

:तीनः
पचहत्तर रुपये में ख़रीदा था
आस्तीन से नीचे थोड़ा फटने लगा है
मेरा पुराना रेनकोट
आज बारिश होनी चाहिए

:चारः
जंगल हूँ मैं
मेरे तन पर
मोर नाचते हैं
रेंगते हैं सर्प
जानवर पलते हैं
मेरे अंदर
तपोभूमि था मैं
कभी मेरे साये में
जीता था आदमी

:पाँचः
उधार की गर्मी लेकर
कपड़े सुखाने से अच्छा होगा
ताउम्र... गीले कपड़ों में ही
जलती चिताओं के साथ
गंगा किनारे, विचरण करना।

: छह :
एक किताब हूँ
केवल आवरण में ही नहीं
एक एक पन्ने में,
एक एक शब्द में,
तलाशो मुझको,
पढ़ो और समझो।
मत रखना मुझको
सहेजकर
अलमीरे में।

:सात :
हरे पत्तों की
चादर
कल फिर से
ओढ़ लूंगी।
देख लो,
बहुत...
पास आकर
खड़ी हूँ.... मैं
पत्ता.... पत्ता...
उतार कर।

: आठ :
ऊपर मत देखो;
देखोगे तो...
याद रखो,
आकाश नहीं होता,
एक रंग में हमेशा।

गौरी किरण प्रकाशन, सतबहनिया दाई मंदिर
देवरीखुर्द, बिलासपुर (छ0ग0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्याय की न्याय-संगत प्रामाणिकता का उपन्यास

तरसेम गुजराल

मित्रसेन मीत की उपन्यासत्रयी 'राम राज्य' पढ़कर लगता है कि हम इन्सानों की बस्ती में नहीं, किसी भयानक नर्क में जी रहे हैं। नागरिकों के अधिकार, लोकतंत्र की शक्ति और न्याय का मंदिर—ये सब ऊपर-ऊपर की चीज़ें हैं, लोहे की ज़ंजीरें, भ्रष्टाचार की जकड़न, क़ानून के ये छेद जिन्हें बंद नहीं किया जा सका और जिनकी नाक मरोड़कर किसी भी अपराधी को छोड़ा जा सकता है और किसी को भी अपराधी ठहराया जा सकता है। एक मासूम बच्चे बंटी के अपहरण और फिर क़त्ल के लिए दो लोगों को, जो छोटे-मोटे जेबकतरे हैं या चोर रहे हैं और फिर अपराध की दुनिया को अलविदा कहकर मेहनत-मज़दूरी से पेट भरने की कोशिश में हैं, इस अपराध के लिए नामजद किया जाता है और अदालत में निरपराध साबित होने पर भी उम्रक़ैद की सज़ा सुना दी जाती है। इस कहानी के माध्यम से उपन्यासकार ने क़ानून, अपराध और न्याय-व्यवस्था को कठघरे में खड़ा कर दिया है।

कहा गया है कि चेतना जीवन का धर्म है। उपन्यासत्रयी के माध्यम से हम जान पाते हैं कि सत्य-शोधन की आकांक्षा के प्रति अनादर, अविश्वास जगाने वाले, अपने क्षुद्र स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए किसी भी हद तक जाने वाले स्वप्न बुनने के तमाम घोंसलों को तबाह करते जा रहे हैं। 15 अगस्त, 1947 को देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि भविष्य की नज़रें हमारी ओर हैं—हम कहाँ जाएँगे? हम क्या करेंगे? भारत के आम आदमी, किसानों और मजदूरों तक आज़ादी और अवसर पहुँचाएँगे; ग़रीबी, अज्ञानता और बीमारियों से लड़ेंगे; एक समृद्ध, लोकतांत्रिक और प्रगतिशील राष्ट्र की रचना करेंगे और ऐसे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थान क़ायम करेंगे, जो हर स्त्री और पुरुष के लिए न्याय को सुनिश्चित करेंगे।

उपन्यासकार ने लोगों को न्याय से वंचित रह जाने के पूरे सिलसिले को अभिव्यक्त करने के लिए तीन हिस्सों में विभाजित किया है। तफ़्तीश, कठघरा (कटहरा) और सुधार घर। आत्मकथन में उन्होंने कहा है कि वे उन साहित्यकारों से सहमत नहीं है, जो यह कहते हैं कि वे बिना सोचे-समझे लिखने बैठ जाते हैं। रचना के पात्र उँगली पकड़कर उन्हें अपने साथ-साथ लिये चलते है, घटनाएँ अपने आप घटती रहती हैं। उनका कहना है कि "मैं प्रोजेक्ट बनाकर योजनाबद्ध तरीक़े से लिखता हूँ। उपन्यास को कितने खंडों में बाँटना है, किस खंड मैं कौन-सी घटना घटित होगी, उपन्यास कहाँ से शुरू करना है—कहाँ ख़त्म करना है? यह सब मैं पहले से तय कर लेता हूँ।"

कहावतें और मुहावरे सैंकड़ों सालों के जीवन के अनुभव और कठोर जीवन-स्थितियों से निकलकर रूपाकार ग्रहण करते हैं। बचपन में बड़े-बुज़र्गों से सुना करते थे कि अगर घर में बीमारी न हो, घर के किसी सदस्य पर मुक़दमा नहीं हो, तो घर बच जाता है, परंतु अगर किसी को दोनों में से एक अभिशाप झेलना पड़े, तो घर नहीं बनता और अगर दोनों झेलने पड़ें, तो घर तबाह हो जाता है। साहित्य के ढाई अक्षर पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो गांधी को भी पढ़ा। 'हिन्द स्वराज' में गांधी गुलामी के तंत्र को खोलते हैं, तो वकीलों के साथ डाक्टरों को गुलामी के तंत्र को मज़बूत करने वालों में खड़ा पाते हैं। वकीलों के बारे में उन्होंने कहा है कि उनका धंधा उन्हें अनीति सिखाता है, वे ग़लत लालच में पड़ जाते हैं। उससे उबरने वाले थोड़े हैं... वकील का यह कर्तव्य हो गया है कि वह अपने मुवक्किल का पक्ष ले। वकील तो संघर्ष को ज़्यादातर बढ़ाने की सलाह देगा। लोग वकील बनते हैं, सो कुछ दूसरों के दुख दूर करने के लिए नहीं, वरन् पैसा कमाने के लिए। यह पैसा कमाने का एक रास्ता है, इसलिए वकील का स्वार्थ टंटा बढ़ाने में ही है। मुख़्तयार भी वकील की जाति के ही हैं। जहाँ कुछ न हो, वे वहाँ झगड़े खड़े करते हैं। उनके दलाल होते हैं, वे जोंक की तरह ग़रीब आदमी से चिपट जाते हैं और उनका ख़ून चूस लेते हैं। लोगों से कितनी फ़ीस ली जाए, यह भी वे ही तय करते हैं और उन पर रौब जमाने के लिए आडंबर ऐसा करते हैं, मानो आकाश से अवतरित कोई दिव्यपुरुष हों। (गांधी का अहिंसक इन्क्लाब और हिन्द स्वराज /सं. विनोद शाही पृ0 सं0 71,72)

उपन्यास का पुलिस अधिकारी ख़ान मानता है कि हमारी न्याय-प्रणाली रास्ते से भटक चुकी है। ख़ान मुज़रिमों को समाप्त करने का पक्षधर था। बिहार की पुलिस के अनुसार मुज़रिमों को सज़ा देने के हक़ में था, जिन्होंने चोरों की आँखें ही निकाल दी थीं। समाज-सुधारकों की दुहाई ख़ान को पसंद नहीं थी। यहाँ उपन्यासकार अपराध-विज्ञान के साथ जुड़ी बहस की तरफ़ इशारा करता है। एक वर्ग यह मानता है कि अपराध की प्रवृत्ति ख़ानदानी होती है। जुर्म मुज़रिमों के ख़ून में रचा-बसा होता है, दूसरा वर्ग मार्क्स के समर्थकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का है, जो जुर्म का कारण सामाजिक परिस्थितियों को मानते हैं। जब तक समाज में असमानता रहेगी, लोगों को अपनी मेहनत की पूरी क़ीमत नहीं मिलेगी व काम करने वालों की लूट-खसोट होती रहेगी, तब तक समाज में जुर्म होता रहेगा। (तफ़्तीश/पृ. सं 103)

जुर्म पूँजीवादी / साम्राज्यवादी व्यवस्था का एक हिस्सा है। धन का प्रलोभन मनुष्य की संवेदना का हनन कर पशु का व्यवहार देता है और मार्क्सवाद में कहा गया है कि मनुष्य और पशु की संवेदनाओं में मौलिक अंतर होता है; उदाहरण के लिए, गिद्ध मनुष्य से अधिक दूर तक देख सकता है, पर देखी हुई चीज़ में मनुष्य की अंतर्दृष्टि पशु की तुलना में अपरिमित रूप में अधिक होती है। (वि0अफनास्येव/मार्क्सवादी दर्शन, पी. पी. एच. पृ0सं0 83)

'तफ़्तीश' में संतरी से लेकर पुलिस कप्तान तक सभी भ्रष्ट हैं। यहाँ तक कि बंटी का शव-परीक्षण डॉक्टर को करना है, लेकिन जोगिंदर, जोकि भ्रष्ट ढाँचे का अदना सा हिस्सा है, फ़ीस लिये बिना लाश को हाथ तक नहीं लगाने वाला। वह शव का पेट चीरेगा, तभी शव-परीक्षण होगा। बंटी के क़ातिलों के पकड़ने की मूल चिंता इस व्यवस्था में ग़ायब है। डिप्टी इस बहाने से उन लोगों को घेर लेता है, जो उसकी ख़िदमत में हाज़िर नहीं हो रहे थे। डी.आई.जी. निर्भय सिंह डिप्टी से निपटना चाहता है, इसलिए बंटी के क़त्ल की तफ़्तीश के बहाने वह अपना उल्लू सीधा करता है। कॉमरेडों की टोली इस व्यवस्था को लेकर स्पष्ट है—शहर में सट्टेबाज़ हैं, रंडियाँ हैं, जुआघर हैं, नाजायज़ शराब बिकती है। अफ़ीम व अन्य नशे के ट्रक आना आम बात है। शाम को आधी पुलिस सट्टेबाजों के घर में होती है और बाक़ी जुएबाज़ों के घर। रंडियाँ थानों में बैठी रहती हैं, थानेदार उन्हें बराबर की कुर्सी देते हैं। उनकी सुनवाई जन-प्रतिनिधियों से कहीं ज़्यादा है। सभी तरह के नाजायज़ धंधों में पुलिस की हिस्सेदारी है। (रामराज्य पृ0सं0 202)

क़ानून का डंडा जिस तरह ग़रीब साधनहीन पर चलता है, उस तरह संपन्न वर्ग पर नहीं चलता :

"मॉडल टाउन की सभी कोठियों के मालिक चोर, ठग और लुटेरे थे। कोई रिश्वतख़ोर था, कोई टैक्सचोर और कोई ब्लैकिया। हैरानी की बात थी कि न तो समाज और न ही क़ानून इन्हें मुज़रिम मानता था। उल्टा दोनों तरफ़ से इन्हें इज़्ज़त की नज़र से देखा जाता था।" (तफ़्तीश, पृ. सं. 137)

ओस्वाल्ड स्पेंगलर ने पूँजीवादी सभ्यता और संस्कृति के शिखर दिखाये, साथ ही यह कहा कि इसके ह्रास के साथ मानव-जाति अनिवार्यतः बर्बरता के दौर में जा गिरेगी, पुलिस-व्यवस्था की हालत मित्रसेन मीत ने कुछ इस तरह भी दर्ज़ की है—"मौक़े पर पहुँचकर पुलिस ने कौन-सा तीर मार लेना है। पुलिस को घटना घट जाने के बाद ही सूचना मिलती है। लड़ाई हो, मुज़रिम हथियारों को छोड़कर अपनी रिश्तेदारियों में पहुँच चुके होते हैं। चोरी हुई, तो चोर माल बेचकर पैसे भी खा चुके होते हैं। मारकाट हुई हो, तो ज़ख़्मी भगवान को प्यारा हो चुका होता है। दो घंटे पहले हो गया या बाद में, क्या फ़र्क़ पड़ता है? (रामराज्य, पृ. सं. 297)

'तफ़्तीश' के बाद का दूसरा चरण न्यायालय है। जैसे वहाँ संतरी से लेकर उच्चाधिकारी तक सभी भ्रष्टाचार में लिप्त, कर्त्तव्य के प्रति लापरवाह और रुतबे के भूखे हैं, वैसे ही 'कटहरा (कठघरा) में पेशकार से लेकर उच्चाधिकारियों तक उन्हीं सूत्रों से बँधे हैं। प्यारे लाल की पीड़ा कुछ इस तरह रेखांकित हुई है—"इस पीड़ा का कारण यह था कि न्यायपालिका के जिस स्वरूप को अपने ज़ेहन में चित्रित कर रखा था, इस फ़ैसले ने उस चित्र का हुलिया बिगाड़कर रख दिया था। भारतीय न्याय-पालिका की आज़ादी, निडरता व निष्पक्षता पर उसे शक होने लगा था। क्या इसी का नाम इन्साफ़ है? (रामराज्य पृ. सं. 435)

गांधी जहाँ देश की स्वाधीनता का लाभ अंतिम व्यक्ति तक को देना चाहते थे, वहाँ स्वतंत्रता पाने के बाद राजनीतिक पार्टियाँ मात्र शक्ति-केंद्रों से जुड़कर रह जाती हैं। वे आँखें खुली नहीं रखना चाहतीं। कांग्रेस के बहाने उपन्यासकार यही कह रहा है कि कांग्रेस को अपने सौ साल के इतिहास पर गर्व था। कांग्रेस ने देश को जिस न्याय-प्रणाली से नवाज़ा था, उसकी मिसाल दुनिया में नहीं मिलती। क़ानून का एक-एक शब्द लिखित है। वही क़ानून देश के राष्ट्रपति पर लागू होता है, वही क़ानून एक सफ़ाई-सेवक पर। अदालतें निष्पक्ष रहें, इसलिए उन्हें सरकारी दबाव से मुक्त रखा गया।" (कटेहरा, पृ. सं. 409)

परंतु, उपन्यासकार ज़ाहिर कर देता है कि इस पवित्र दिखने वाले वक्तव्य में छलनी जितने छेद हैं। पाला और मीता निरपराध साबित होने के बावजूद सज़ा पा जाते है।

न्याय का पूरा ढाँचा राज्य के चरित्र से जुड़ा हुआ है। 'रागदरबारी' उपन्यास में कहा गया है—"ईंट-गारा ढोने वाला मज़दूर भी जानता था कि बैठक का मतलब ईंट ओर गारे की बनी हुई इमारत भर नहीं है। नं0 10, डाउनिंग स्ट्रीट, व्हाइट हाउस, क्रेमलिन आदि मकानों के नहीं ताक़तों के नाम हैं।

'रागदरबारी' उपन्यास में ही आम आदमी के न्याय के साथ संबंधों को इस तरह बयान किया गया है—"जब कचहरी का मुँह देखा है, तो सभी कुछ झेलना पड़ेगा, जिसे यहाँ आना पड़े, समझ लो उसका करम ही फूट गया। (रागदरबारी/श्रीलाल शुक्ल पृ0सं0 286)

रामराज्य में प्यारे लाल कहता है—"मैंने भी रोटी खानी है। ईमानदारी से नहीं मिलती, तो बेईमानी से ही सही। पहले कौन-सा अदालतों में सारा काम सही होता है। सब कुछ तो झूठ ही है। कोई छिपाकर ठगी मारता है, तो कोई सरेआम।" (कटेहरा/ पृ सं. 389)

नराता कहता है—"जहाँ क़ाननू अंधा और बहरा हो, जहाँ जजों को हक़ीक़त खोजने के लिए किसी तरह की पहलक़दमी की इज़ाजत न हो, जहाँ इन्साफ़ लेने आये लोग मूक-दर्शक बनकर खड़े रहते हों, जहाँ वकीलों की जुबानदराज़ी को तरजीह मिलती हो, वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नागरिकों को चाहिए कि वे चौकन्ने रहें।" (कटेहरा/ पृ0सं0 541)

'तफ़्तीश' और 'कठघरे' (कटेहरा) का अंत 'सुधार घर' के पृष्ठ 633 में जगतार के इस कथन की गंभीरता में छुपा है—"न तो तफ़्तीश के दौरान सच और झूठ का फ़ैसला होता है, न ही मुक़द्दमे की सुनवाई के दौरान्।"

'सुधार घर' भी पहले दो खंडों के भ्रष्टाचार, घटियापन, झूठ और क्रूरता का विस्तार है। यहाँ लाभ सिंह का मानना है कि जेल में बंद आधे से ज़्यादा क़ैदियों को सज़ा वकीलों की लापरवाही अथवा लालच के कारण ही होती है। (पृ0सं0 616)

स्वतंत्र भारत की जेल को सुधार घर का नाम दिया गया था, ताकि अपराधी की जीवन-दशा सज़ा पाने के बाद सुधर पाए। वह जेल में कुछ सीख सके और बाद के जीवन में अच्छा व्यवहार करे। जेल मेनुअल है और, हाकम सिंह सिद्धांत को व्यवहार में बदलना चाहता है, परंतु प्रशासनिक ढाँचा इसके ऊपर है। अंग्रेज़ का सिद्धांत था—'प्रिज़र्व द बाडी, क्रश द माइंड' और स्वतंत्रता के बाद लालफीताशाही का व्यवहार नहीं बदला था। सो, हाकम सिंह को इसका मज़ा चखाया जाता है।

धर्मपाल मेनुअल का एक पन्ना खोल कर कहता है—"यह मेनुअल अंग्रेज़ों का बनाया हुआ है। तेरे जैसे बाग़ियों से निपटने के लिए इस नियम में दर्ज़ 'किंतु-परंतु' पढ़ ले। यहाँ दर्ज़ है कि यदि तुम्हारी तरह किसी क़ैदी का दिमाग़ ख़राब हो जाए, तो उससे बी क्लास छीनी जा सकती है। अभी तुमसे बी क्लास नहीं छीनी गयी। मशक़्क़त का स्वाद चखाने के लिए तुम्हें फ़ैक्टरी भेजा गया है।" (पृ0सं0 881)

उपन्यास में बहुत से पात्र हैं। संभव है कि पाठक को पढ़ने के बाद बहुत से नाम भी याद न रहें, परंतु जो कुछ नहीं भूल पाता वे हैं—राज्य के लापरवाही में दिये गये ज़ख़्म। इन ज़ख़्मों ने जन सामान्य के जीवन को बदलकर रख दिया है और लोगों को असहनीय पीड़ा झेलनी पड़ी है। संभव है, किसी पाठक को यह भी लगे कि उपन्यास में स्याह धब्बे इतने ज़्यादा हैं कि उन्होंने क्षितिज को ढाँक लिया है, परंतु इस अंधकार में टिमटिमाते दीप भी हैं, जिन पर विश्वास का पुल बाँधा जा सकता है।

उपन्यास में बाबा गुरदित सिंह है। आप पंजाबी के प्रगतिशील नाटककार गुरशरण सिंह का रूपांतरण चरित्र में देख सकते हैं। पहली बग़ावत वे पिता के ख़िलाफ़ करते हैं, जो जागीरदारों को दामाद बनाने पर तुले थे। जनपदीय जुझारू तेवर का साहित्य प्रकाशित कर जनता तक पहुँचाने की मुहिम चलाते हैं, 'जन नाट्य मंच' चलाते हैं, जलसे मे सैकड़ों लड़कों को सामने लाते हैं, जिन पर पुलिस ने अत्याचार किया था। बेकसूर को छुड़वाने की लंबी लड़ाई लड़ते हैं।

आम जनता का सकारात्मक पक्ष भी काफ़ी मजबूत है। बेटी के क़त्ल के सवाल को लेकर हड़ताल लोगों के न्याय पाने की गहरी इच्छा की अभिव्यक्ति है, जो जागरूकता के अभाव में कई बार नज़र नहीं आती। हाकम सिंह के माध्यम से क़ानून के जानकारों के सकारात्मक पक्ष की झलक मिलती है। कभी उसे लगता था कि अभिमन्यु की तरह अकेला चक्रव्यूह में फँस गया है, परंतु जुझारू लोगों का साथ पाकर वह साधनहीन जमात के लिए खुद को लड़ने के लिए तैयार पाता है। व्यवस्था के घटियापन, क्रूरता और संवेदनहीनता को ज़ाहिर करने में उपन्यासकार ने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है।

78, रामशरण कालोनी, कालेज रोड
बसती दानिशमंदा, जालंधर

1. जिन सदस्यों की वार्षिक सदस्यता शुल्क की अवधि समाप्त हो गयी है वे अपना नवीनीकरण तुरंत करायें।

2. सदस्यता राशि ड्राफ्ट अथवा मनीऑर्डर के द्वारा ही भेजें। चैक स्वीकार नहीं किये जायेंगे।

3. मनीऑर्डर द्वारा सदस्यता राशि भेजने पर अपनी नाम व पता साफ़-साफ़ अवश्य लिखें। अच्छा होगा कि सदस्यता राशि भेजने के बाद एक पोस्टकार्ड द्वारा सूचना भी भेज दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय-सत्य रचती कविताएँ

वेदप्रकाश अमिताभ

साठ वर्षों से अधिक अवधि से कविताएँ लिख रहे कवि का नया कविता-संग्रह देखकर यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि किन सरोकारों ने आज तक उसके लिए कविता-विधा को प्रासंगिक बनाये रखा है; वह कौन-सी ऊर्जा है, जो उसकी संवेदनाशीलता को जिजीविषा और प्रतिरोध की गर्माहट देती है? स्वयं कवि ने 'जन्मदिन' कविता में लिखा है :

मैं स्वयं किसी के साथ खड़ा होकर
लड़ाई तो नहीं लड़ सकता अंधी व्यवस्था से
लेकिन मेरी कलम लड़ती रही है
और रचती रही है एक ऐसी दुनिया
जिसे आदमी रहने लायक अपनी दुनिया कह सके।

ज़ाहिर है, रामदरश मिश्र मात्र लिखने-छपने के लिए नहीं लिखते हैं, उनकी कविताएँ उनके निजी दुख-दर्द का विरेचन मात्र भी नहीं है। उनकी कविता के सरोकार बड़े हैं, व्यापक हैं, क्योंकि उनकी क़लम 'समय-सत्य रचती रहती है।' एक बेहतर समाज और बेहतर व्यवस्था के लिए कृतसंकल्प कवि का सन्नाटे में कुछ न लिख पाना बहुत अर्थ-व्यंजक है—'इसके लिए तो मुझे/अपने छोटे से एकांत के बाहर चलती-फिरती दुनिया चाहिए।' चलती-फिरती दुनिया के जीवंत संपर्क से अनुभव-विचार लेकर (हर आदमी के रहने लायक दुनिया अभी वास्तव में भले ही न हो) मिश्र जी इस तरह के सकारात्मक बदलाव के प्रति आश्वस्त हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि उनकी 'ध्यानयोग', 'गिरा हुआ हरसिंगार', 'आदमी अकेला है', 'क्यों इसको रहने को भेजा', 'ड्राइंगरूम', 'आत्महत्या : दो कविताएँ', 'दिन फागुन के', 'धरती गुलाब की फुलवारी है' आदि अनेक कविताओं में बार-बार सपनों का उल्लेख है। तरह-तरह के सपने हैं। 'उद्विग्न सपने', 'मीठे-मीठे स्वप्नों की उष्मा', 'दो रोटी के लिए महज कितने सपने', 'घरेलू सपनों', 'उन सपनों को बेचने की आवाज़ें', 'मेरे स्वप्नों से भर जाता है,' 'अनंत सपने', 'स्वप्न देखती आँखों', 'सपने हज़ार' आदि पदों में जहाँ रोटी तक सपना बन जाने की पीड़ा और वास्तविकता केन्द्रस्थ है, वहीं इन कुरूपताओं के तिरोहित होने की व्यंजना भी है। 'रोती हुई आँख में उगती हुई हँसी, श्रम का मैल धोने की करुणा, सुख और शांति की अपूर्ण दीप्ति आदि से जो एक वृहत्तर स्वप्न उगता है, वही कवि का अभीष्ट है, काम्य है, प्रतिपाद्य है। मनुष्य और जीवन को बेहतर और सुंदर बनाने की छटपटाहट अनेक कविताओं में है। ईश्वर की उपस्थित उसे महसूस होती है—'जो तुम्हें देख लेती हैं वहाँ-वहाँ/ जहाँ-जहाँ जीवन-सौंदर्य की ज्योति जगमगा रही होती है।'

'आम के पत्ते' संग्रह की कई कविताओं में मिश्र जी ने बहुत साधारण-सी चीज़ों को निमित्त बनाकर असाधारण व्यजनाएं की थीं। लगभग उसी प्रकृति की दो-तीन कविताएँ इस संग्रह में भी है। इन कविताओं में सभ्य और अभिजात मनोवृत्ति का स्पष्ट तिरस्कार है। कवि का ड्राइंगरूम 'अभिजात चहल-पहल', 'निर्जीव शोख सजावट' से असंपृक्त है और एक आंतरिक लय से स्पंदित है। पोस्टकार्ड भी कोई 'सभ्य क़ीमती लिफ़ाफ़ा' न होकर 'मोटी खुरदरी अँगुलियों के सुख-दुख' को महसूसता आम आदमी है। 'अँगुली' इस संग्रह की शायद सबसे प्रभावपूर्ण रचना है। अँगुली के दर्द से जो अंतर्यात्रा प्रारंभ होती है, वह अँगुली के विभिन्न उपयोगों के बहाने अपने समय-सत्य के विभिन्न संदर्भों को उद्घाटित करती चलती है। अँगुली बैल का पगहा, हँसिया, जांता, हल, चूल्हे के कर्म-सौंदर्य की नियामक होने के साथ-साथ अन्याय के प्रतिरोध, बुढ़ापे के सहारे युवा हृदयों के कोमल बंधन से भी जुड़ी हुई है। कवि की जीवन-दृष्टि विशेषतः प्रतिवाद-चेतना को इस कविता में सलीके से अभिव्यक्ति मिली है :

और तन जाती है मुट्ठी बनकर असत्य के सामने
किसी विद्रूप पर इशारा करती हुई हँसती है
या राह दिखाती है किसी भूले-भटके को

इस संग्रह की कई कविताओं में पेड़ों के कटने-गिरने के संदर्भ हैं। 'आम का पेड़' में धार्मिक कर्मकांडों के उत्पात ने आम के पेड़ को नष्ट करा दिया है और 'गिरा हुआ हरसिंगार' स्मृतिशेष हो चुका है। 'कहाँ गया वह बाग' में एक-दो पेड़ नहीं, बड़ा-सा बाग़ ग़ायब है और 'समृद्धि की ख़ुशबू' के बीच अमराई की सुगंध तिरोहित हो चुकी है। पेड़ों का गिरना या कटना कवि के लिए सामान्य दुर्घटना नहीं है, यह मनुष्य की संवेदना पर सीधी चोट है, मनुष्यता का निरंतर क्षरण है।

इस संग्रह में मिश्र जी के बहुत से गीत भी सम्मिलित हैं। गीतों मे आत्मालोचन और सिंहावलोकन की मुद्राएँ अपेक्षाकृत मुखर हैं। 'तनहाई में बैठा-बैठा अपने से संवाद किया,' 'तेरा दिन चुपके-चुपके भट्टी में रोटी सा सिंकता है,' 'निकला था मैं, सालों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले घर से गठरी लिए सफर की,' 'अब भी कल के लिए रात में नये-नये सपने बुनता हूँ' आदि में अतीत की स्मृति है, वर्तमान की विसंगतियाँ हैं और रचना-प्रक्रिया के अंतर्सूत्र भी हैं। ऐसा नहीं है कि गीतों में अपने समय के खुरदरे और नुकीले यथार्थ की उपस्थिति धूमिल है। जहाँ आवश्यक हुआ है, गीत समय-समाज की विडंबनाओं और कुरूपताओं को सशक्त ढंग से व्यक्त करते हैं। 'हाय वह मारा गया' गीत इस दृष्टि से पठनीय है। इस गीत का समापन चरण अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है :

पूछती है एक माँ शव को उठाये हुए फूल से
आ रहा था गुनगुनाता गीत अपने स्कूल से
कोई बोलो—क्या खता थी, आँख का तारा गया।

कई गीतों में दूसरों के दुख-दर्द को सहेज लेने, उनसे तादात्म्य स्थापित करने की ललक स्पष्ट है। 'दूसरों के सुख-दुखों से आपका होना सजेगा', 'पर इनके-उनके अश्कों की ज्वाला में दहता है मन' आदि में जो परदुखकातरता है, मनुष्यता की पक्षधरता है, वह कविताओं के बोध के मेल में है। एक कविता में मिश्र जी ने जीवन की सार्थकता को कुछ इस तरह रेखांकित किया है :

लोगों से प्यार करना
लोगों के लिए अपने को देते रहना
और अनुभव करते रहना कि तुम अकेले नहीं हो

अपने आसपास के परिदृश्य के जीवंत-संपर्क में बने रहने से मिश्र जी की भाषा में भी जीवंतता बनी हुई है और हमेशा की तरह कविताओं-गीतों में अभिव्यक्ति की पारदर्शिता है, जिसके फलस्वरूप अर्थ तक पहुँचने में असुविधा नहीं होती। बिंब-विधान अनेक व्यंजनों से संश्लिष्ट है, लेकिन उलझाता नहीं है। 'संवेदनों के फूल', 'चिंताओं के दिए', 'ज़ख़्मी हवाएँ,' 'गठरी दुःखों की', 'तारीखों में संवाद,' 'घायल सूनापन,' 'लहूलुहान होते कड़े दिन' आदि में बिंब कविता-गीत की अंतर्वस्तु को अनेक अर्थच्छटाओं से संपन्न करते हैं। एक गीत में लिए हुए आखरों की सार्थकता को लेकर मिश्र जी आश्वस्त नहीं है—'तेरे ही क्या सबके आखर हैं रीत रहे यों ही यों ही', किंतु उनकी स्वयं की रचनाओं में 'खुरदरी मिट्टी का दर्द' बराबर बोलता है, क्योंकि 'कविता' उनके लिए महज़ शब्द-कर्म न होकर ज़िंदगी की समझ के लिए एक ज़रूरी चीज़ है—'और ज़िंदगी की समझ के लिए कविता तो है ही।'

डी-131, रमेश विहार, अलीगढ़

कभी कभी इन दिनों, रामदरश मिश्र, इन्द्रप्रस्थ इंटरनेशल, 18 बी साउथ अनारकली, दिल्ली-110051, 2010, मूल्य : 175.00 रुपये

□

मिलजुल मन : सधी कलम की कृति

अधीर कुमार

मृदुला जी का नया उपन्यास 'मिलजुल मन' सधी कलम की सुंदर कृति है। दो बहनों की ज़िंदगी का दोआब अपने देश-काल के अधिकांश फैलाव में सहज प्रवाही है। समूचे कथा-क्रम में अतिरिक्त प्रयास पाठकीय आस्वाद को कहीं भी बाधित नहीं करता। चमकीला दिखने की 'बेस्ट सेलरी' प्रवृत्ति से इस कृति का कोई लगाव नहीं।

इस उपन्यास के दो अहम किरदार-गुलमोहर और मोगरा दरअस्ल अपनी प्रकट भिन्नताओं के बावजूद यकसाँ हैं। शख़्सियत की मूल बनावट में इनकी यकसानियत पाठक को सोचने की यह छूट देती है कि गुलमोहर और मोगरा को सामने रखकर लेखिका ने अपने समय में आकार पाती स्त्री-संभावना के दो छोरों को एक साथ साधने की कोशिश की है। प्रकट अवसरों पर जहाँ लेखिका मोगरा से एकतान होती है, वहीं बिना कहे गुलमोहर की हमदम बनी रहती है। इस तरह 'चाहिए और है' की तनी रस्सी पर ज़िंदगी का पुरलुत्फ़ मंज़र रू-ब-रू होता है। डॉक्टर नाना, मामाजी, पिताजी (बैजनाथ जैन), माँ (कनकलता), जुग्गी चाचा, छोटे और बड़े लाला, अमेरिकी दम्पति और रामदेव तथा पार्वती की सहयोगी उपस्थिति पूरे कथानक को दिलचस्प सहजता और विश्वसनीयता देती है।

आज़ादी के बाद इस देश में हो रहे बदलाव के विविध पहलुओं के पारस्परिक अंतःसूत्रों और साधारण मध्यवर्गीय जीवन पर उनके प्रभावों को सामने लाने की महत्वाकांक्षी योजना इस कृति का आधार है। अर्थशास्त्र से गहरी वाक़फ़ियत के ज़ोर से लेखिका ने आज़ादी के बाद की शुरूआती नीतियों की आलोचना चलते-चलते की है। ज़ाहिर है कि इस मामले को ज़्यादा बारीक़ी से देखना ज़रूरी है। देश और दुनिया की तवारीख़ में आर्थिक और सियासी नीतियों की भूमिका अहम है, लेकिन इसके बारे में लेखिका के फ़ैसले से पूरी तरह सहमत होना मुश्किल है। मिली-जुली अर्थव्यवस्था और गुट-निरपेक्षता की नीति के बारे में आज लिया गया निर्णय उस दौर पर चस्पाँ नहीं किया जा सकता।

इस उपन्यास का सबसे प्रभावी पहलू इसकी पुरकशिश ज़बान है, जो रचनात्मकता की बेमाप दूरियों को अपनी गहरी व्यंजकता से बार-बार मापती चलती है। अर्थ की संभावना के अनेक स्तरों को खोलते पद, वाक्य और प्रसंगों का कुशल संयोजन देश और काल की सीमाओं को अतिक्रमित करता है। हिन्दुस्तान की मादरी ज़ुबान की ताक़त और लताफ़त का यह मुज़ाहिरा नई पीढ़ी के रचनाकारों के लिए बहुत से संकेत लेकर आया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उपन्यास के बारे में एक और बात बहुत ज़रूरी है, लेखिका ने इसमें गुल की कहानियों और उपन्यासों के बारे में और मोगरा के ज़रिये कई बार खुद की रचनाशीलता के बारे में टिप्पणियाँ की हैं, जो साहित्य के आलोचकों और पाठकों की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं। लेखिका ने इन टिप्पणियों में सावधानी और निरपेक्षता का निर्मम निर्वाह किया है। रचनाकार के स्वाभिमान को पूरी तरह सुरक्षित रखते हुए रचना के भीतर रचनात्मकता के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों पर ज़बरदस्त पकड़ को प्रमाणित करती ये टिप्पणियाँ हिन्दी में कहानी और उपन्यास की आलोचना की कमियों की ओर कई बेहद ज़रूरी संकेत करती हैं। यह अलग बात है कि इन संकेतों को अपना सफ़र पूरा करने में अभी काफ़ी वक़्त लगेगा।

गुलमोहर और मोगरा के व्यक्तित्त्व-विकास के मुख़्तलिफ़ मरहलों को उनकी जीवंतता के साथ आकार पाता देखकर इस उपन्यास की लोकप्रियता के बारे में कोई संशय नहीं रह जाता। स्त्रीवाद के प्रचलित मुहावरों और आग्रहों से अलग ज़मीन पर आधी आबादी के सच्चे सरोकारों, वंचनाओं, सपनों, ज़िदों, हसरतों, आकार पाते उसूलों और जिजीविषा को सहजता के साथ पेश करता यह उपन्यास इस बात का पुख़्ता सबूत है कि 'मूहूर्त्त ज्वलितम्' ही एकमात्र श्रेय नहीं है, 'धूमायितं चिरम्' की अपनी ही महिमा और गरिमा होती है।

एक दूसरे को बनाती और बनती गुल-मोगरा की दास्तान, आरंभ से अंत तक प्यार के फ़लसफ़ाई आसमान और हक़ीकी ज़मीन के दरम्यान आकार पाते फ़लक पर अंकित है। भारतीय मध्यवर्ग में आधुनिकता के तमाम मुग़ालतों के साथ लड़कियों के प्रति पल रही दकियानूसी व्यवहार-प्रणाली का अंतरंग परिचय देती यह कहानी परिदृश्य में बदलाव की सुस्त रफ़्तार और भटकावों को बख़ूबी रेखांकित करती है। हास्य और विनोद के साथ व्यंग्य के मेल से पुरा सफ़र पुरलुत्फ़ बन पड़ा है। कहना न होगा कि इस उपन्यास के मुताल्लिक कही गयी इन बातों की जाँच के लिए इस राह से गुज़रना लाज़िमी है। इससे गुज़रते हुए ही यह जान पाना मुमकिन है कि लोगों द्वारा बनायी गयी छवि को तोड़कर अपनी असलियत को जानना और पहचान पाना किस क़दर दिलफ़रेब होता है।

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर
नैनीताल, उत्तराखण्ड - 244715

मिलजुल मन, मृदुला गर्ग, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली-02

□

लहर-दर-लहर कहानियों का उपन्यास

नग़मा जावेद मलिक

कुछ घटनाएँ बड़ी आश्चर्यजनक होती हैं। 'कहानी कोई सुनाओ मिताशा' पढ़कर यह मालूम हुआ कि डॉ. सादिका नवाब सहर के छोटे से दिलकश पैकर में एक क़द्दावर उपन्यासकार छिपा बैठा था, जिसकी उपस्थिति से वे स्वयं भी बेख़बर थीं और एक दिन उसने बड़े गर्व के साथ अपने अस्तित्त्व को मनवा लिया, यानी सादिका जी के कलाकार-व्यक्तित्त्व का एक और दरवाज़ा खुला।

किसी मनीषी का कहना है—"उपन्यास वह आईना है, जिसे हम सड़क पर से लेकर गुज़रते हैं।" सड़क की सारी गहमागहमी, घटनाएँ, स्थितियाँ अपनी तमामतर सच्चाइयों के साथ आईने में प्रतिबिंबित होकर पाठक के ज़ेहन को बाँध लेती हैं, एक अच्छे उपन्यास की यही पहचान है।

सादिका जी का उपन्यास इस कसौटी पर 100 प्रतिशत खरा उतरा है। एक निर्झर है..... मिताशा की ज़िंदगी का निर्झर, जो परिस्थितियों के टेढ़े-मेढ़े पत्थरों से अपना सिर फोड़ता, तल्ख़ियों को अपने दामन में समेटता, भाग्य के तारों से जूझता, अपना रास्ता स्वयं तराशता मंज़िल की तलाश में व्यस्त है। मिताशा की ज़िंदगी की कहानी में हज़ारों मिताशाओं की दुखी ज़िंदगियों का क्रंदन है। क्या औरत जन्म इसीलिए हुआ है? इस उपन्यास में दर्द के थान के थान खुले पड़े हैं। निताशा की माँ अपने पति के जुल्मो सितम सहती है, लेकिन यही माँ जब मिताशा के सीने पर पाँव रखकर उसे मूसल से मारना चाहती है, तो क्या खुद पुरुष-सत्तात्मक समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करती? मासूम मिताशा की समझ में यह बात ज़रा भी नहीं आती कि उसकी माँ उसे इतना मारती क्यों है? बार-बार यह सवाल उसके छोटे-से ज़ेहन में चुभता है।

लेखिका की गहन दृष्टि ने सामाजिक और आर्थिक शोषण की शिकार औरत की मानसिक गुत्थियों को समझने व सुलझाने की कोशिश की है। आगे, यही माँ जब देखती है कि पिता मिताशा की शादी भरत जैसे दुष्ट व्यक्ति से करना चाहता है, तो शेरनी की तरह बिफर उठती है—"ख़बरदार! जो एक क़दम भी आगे आये तो लकड़ी जलाकर आग में भून दूँगी... मैंने आपकी हर बात सहन की, लेकिन भरत से शादी करके अपनी बेटी की ज़िंदगी उजाड़ने नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूँगी।''

यहाँ नारीवाद की महक है, अपने अहं का अहसास है। मिताशा की दादी का भी बड़ा जानदार बुत तराशा है लेखिका ने—रिवायती सासों से एकदम हटकर। आमतौर पर यह होता है कि बेटा चाहे जैसा हो... शराबी, जुआरी, कोठेबाज़... माँ उसका पक्ष लेते हुए बहू को आत्याचारों की सलीब पर चढ़ा देती है। लेकिन, यह जागरूक नारी अपने बेटे के ख़िलाफ़ उठ खड़ी होती है। पुलिस में शिकायत दर्ज करती है। मैं पूरे विश्वास के साथ यह बात कह सकती हूँ कि जिस दिन हमारे समाज की औरतें दादी की तरह सोचने लगेंगी, उस दिन औरत के जीवन में एक नयी चमकदार, उजली सुबह उगेगी और वह सच्चे अर्थों में स्वतंत्र होगी।

इस उपन्यास का कैनवस बहुत विस्तृत है, कई पुश्तों का परिचय इसमें दर्ज है। इतिहास के पन्नों को भी पलटा गया है। साथ ही, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक समस्याओं और वास्तविकताओं को इसमें बड़े ठोस सबूतों के साथ पेश किया गया है। इसकी शुरूआत अंग्रेज़ों की गुलामी से होती है। जगदंबा प्रसाद बेटे की चुटिया न देखकर क्रुद्ध होकर पूछते हैं :

''चुटिया किधर गयी?''

''काट दी,'' बेटे ने नज़रें चुराईं।

''चुटिया हमारी रिवायत है और परंपरा को मानना पड़ता है।''

''नहीं मान सकता,'' ईसाई धर्म को अपना लेने वाले बेटे के जवाब में दो पीढ़ियों के नज़रयाती तफ़ावत (अंतर) को भी देखा जा सकता हैं। प्रभा खेतान के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' की प्रिया की तरह मिताशा भी लगातार परिस्थितियों के जाल में उलझती है लेकिन अजय के हिम्मत और हौसले के बलबूते हर जाल से निकल जाती है। प्रिया आख़िर में एक कामयाब बिजनेसवुमैन के रूप में अपनी पहचान बनाने में सफल होती है। मिताशा को कोई ऐसा मौका नहीं मिल पाता। मृदुला गर्ग के उपन्यास 'कठगुलाब' की स्मिता की तरह बलात्कार के बाद मिताशा के भीतर पुरुषों के लिए नफ़रत का अलाव तो लपट-लपट जलता है, लेकिन वह स्वयं अपराध-बोध का शिकार नहीं होती। लेखिका बधाई की पात्र हैं कि उन्होंने नारी को नयी नज़र, नयी फ़िक्र दी है। मैं पूछती हूँ, क्यों मिले लड़कियों को नाकरदा गुनाह की सज़ा? क्यों वह मानसिक यातना सहे? समाज को क्या हक़ है उसे लांछित करने का? मर्द की कामुकता का शिकार भी वह बने और तुर्रा यह कि समाज की निगाहों के तीर भी उसकी रूह को लहूलुहान करके रहें... कहाँ का इंसाफ़ है?

यह आत्मकथात्मक उपन्यास कृष्णा सोबती के 'ज़िंदगीनामा' की भी याद दिलाता है। यशपाल के 'दिव्या' की तरह इसमें एक औरत की ज़िंदगी के उतार-चढ़ाव को बड़े ही प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मिताशा की ज़िंदगी की दास्तान बड़ी अजीब है। भाग्य की विडंबना कि जब-जब ज़िंदगी की बहारें उसके लिए अपना दरवाज़ा खोलती हैं, कुछ न कुछ ऐसा घटित होता है कि उसका दामन खाली ही रह जाता है। ज़ालिम बाप डॉक्टर प्रभाकर और उसके बीच ग़लतफ़हमी के काँटे बो देता है। युवराज भी उसे चाहता है, लेकिन ग़लतफ़हमी दीवार बनकर खड़ी हो जाती है। समीर और मिताशा के बीच काका ज़हर फैलाने की कोशिश करता है। समीर मिताशा से बेहद मुहब्बत करता है, लेकिन उसका बाप उसकी मंगनी अपनी पसंद की लड़की से कर देता है। मिताशा और समीर के बीच संवाद होता है—''तो इस को रक्खें न डैडी! मैं तो तुम्हारे साथ ही रहूँगा।''

''यानी दो-दो।''

''... मैं इसके लिए तैयार हूँ।''

''मगर मैं तैयार नहीं।''

वह लगातार मेरे चेहरे पर प्यार की बौछार कर रहा था और मैं बेबस थी।

आख़िर में पाँच बच्चों का बाप गौतम उसके जीवन में बहार के झोंके की तरह आता है। गौतम से शादी करके वह एक बच्चे की माँ भी बनती है, लेकिन जल्दी ही उसकी ज़िंदगी में पतझड़ आ जाता है। गौतम की मौत उसके सिर पर से छत छीन ले जाती है। लेकिन, लगातार भाग्य के थपेड़े सहकर भी न जद्दोज़हद की आँच धीमी पड़ती है, न हौसले के पंख टूटते हैं, न हिमत के पाँव लड़खड़ाते हैं; बल्कि हर चोट उसे फ़ौलाद बनाती है और वह बड़े पौरुष के साथ उठते तूफ़ानों का मुक़ाबला करती है।

मिताशा के चरित्र का विश्लेषण करें, तो उसमें इन्सान से ज़्यादा फ़रिश्तों की ख़ूबियाँ हैं। बड़े धैर्य के साथ वह शंकर भगवान् की तरह सारा ज़हर स्वयं पी लेती है, यहाँ तक कि जो लोग उसकी ज़िंदगी में काँटे बोते हैं, उनके साथ भी वह शराफ़त से पेश आती है। द्वंद्व, कशमकश, बदले की भावना मानव की प्रकृति है, लेकिन मिताशा भीतर या बाहर कहीं भी क्रोध से बल खाती नहीं दिखायी देती है, यह बात मानव-स्वभाव के विरुद्ध है। उसके दिल-दिमाग़ ज़ज़्बात व अक़्ल में कहीं भी रस्साकशी नहीं होती। हो सकता है कि मिताशा अटल फ़ैसला करने वाली औरत हो। मेरा ख़्याल है कि लेखिका इन अहसासात और कैफ़ियतों को थोड़ा विस्तार देती, तो यथार्थ और भी जानदार और प्रभावी होता। सोने पर सुहागा.... बहरहाल! आख़िर में नवनीता को अपनाना और उसके बच्चे की परवरिश की ज़िम्मेदारी कबूल करना मिताशा के क़द को बहुत ऊँचा उठा देता है।

कहानी को किनारे कर इस उपन्यास की अहम ख़ूबी है—बेसाख़्तापन (अकृत्रिमता)। बिना किसी बाहरी तामझाम के बेहद सरल व सरस ढंग से कहना। न अलंकारों की भीड़ है, न प्रतीकों की बारिश, न बिंबों का सैलाब। जैसे कोई रेलगाड़ी छोटी पटरी पर सरपट दौड़ती चली जा रही हो। इस सादगी पर कौन न मर जाए...?

समुद्र का वजूद लहरों से सार्थक है। इस उपन्यास में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लहर दर लहर कहानियाँ ही कहानियाँ हैं। एक कहानी ख़त्म हुई नहीं कि समुद्र की लहर की भाँति दूसरी अधिक ज़ोर-शोर व ताक़त के साथ उठ खड़ी होती है। न कहानी में कोई सिलवट पड़ती है, न उकता देने वाली वर्णनात्मकता रास्ता रोकती है, न अजनबी माहौल के ग्लेशियर्स पाठक को भयभीत करते हैं।

लेखिका की गंभीर सोच और गहरी नज़र सामाजिक समस्याओं और सांस्कृतिक मूल्यों का भरपूर जायज़ा लेती है। कहानीपन इस उपन्यास की एक अहम ख़ूबी है, जो आजकल के शुष्क और बेजार दिमाग़ों को माज़ून मुहय्या करती है। सहर जी ने छोटे-बड़े शीर्षक बड़े सलीक़े से रखे हैं, जो सचलाइट का काम देते हैं और तकनीकी की नूतनता को भी दर्शाते हैं। सामाजिक यथार्थ और सुंदर प्रस्तुतीकरण इस उपन्यास की सफलता का सूचक है। नारीवादी साहित्य के राजमार्ग पर 'कहानी कोई सुनाओ मिताशा' लेकर उपस्थित होने वाली इस कलाकार ने क़िस्सागोई का नया क्षितिज तलाश किया है। अल्ला करे ज़ोरे क़लम और ज़्यादा...

रीडर स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
एस. एन. डी. टी. महिला विश्वविद्यालय, मुम्बई-400020

कहानी कोई सुनाओ मिताशा, सादिका नवाब 'सहर'

□

व्यंग्य की स्मित रेखाएँ

शशि मिश्रा

'अजगर करे न चाकरी', 'धृतराष्ट्र टाइम्स' और 'देश-सेवा के अखाड़े में' के बाद डॉ. सूर्यबाला का चौथा व्यंग्य-संग्रह है—'भगवान ने कहा था'। संग्रह की 23 रचनाएँ हमारे समय की उन तमाम विसंगतियों, छल, प्रपंच, धोखा, फ़रेब, चालबाज़ी, भ्रष्टाचार रूपी 'विषदंशों' का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती हैं, जिन्हें महसूस करना हर किसी की नियति बन चुकी है। हर कोई जिन्हें झेलने और सहने को अभिशप्त है। जीवन की विषमताएँ, बेचैनियाँ, इन्सानी तकलीफ़, संत्रास अर्थात् आज के वक़्त की वे समग्र बातें और स्थितियाँ इन रचनाओं में हैं, जो अब जीवन में हर कहीं व्याप्त हैं। ये विकार स्वातंत्र्योत्तर भारत के परिवेश से उपजे विकार हैं। कहा गया है कि दुख सामान्य जनों को तोड़ता है और विशेष चेतनासंपन्न लोगों का उदात्तीकरण करता है, उन्हें निजी दायरे से बाहर निकाल सामाजिक पीड़ा का सहयोगी बनाता है। ऐसे उदात्त चेतनासंपन्न रचनाकार जन-सामान्य की तकलीफ़ों, यातनाओं के साथ ख़ुद को जोड़ते हुए उनकी अनुभूतियों को शब्द देते हैं। डॉ. सूर्यबाला ऐसी ही चेतना-संपन्न धीर-गंभीर रचनाकार हैं, जो अपने स्वभाव के खिलंदड़पन, ज़िंदादिली के माध्यम से रोज़मर्रा की ज़िंदगी के मारक तत्त्वों की सहभोक्ता बनकर सामान्य लोगों को राहत प्रदान करती हैं।

"अधिकांश रचनाओं के मूल में मैं स्वयं भी तो हूँ। मेरी प्रकृति यानी मानव-प्रकृति। और मानव-मन यानी एक से बढ़कर एक कुटिल, तिलिस्मी, मायावी, लफ़्फ़ाज, बहानेबाज़, दंभी, स्वार्थी, अवसरवादी, स्वयं को सदा दूध का धुला साबित करने वाला और यह मानकर चलने वाला कि उसकी चालें कोई समझ नहीं पा रहा है—सारी खलनायकी की सूत्रधार मानव-मन की प्रवृत्ति ही तो है।

सो, इस संग्रह में आम ज़िंदगी की उन तमाम बेशर्म स्थितियों, चरित्रों यहाँ तक कि कहन-शैलियों का ब्यौरा है, जिसने हमारे गणतंत्र को 'महागणतंत्र की धाँधलियों' में बदल दिया है। इसमें लेखकीय छद्म है, आधुनिक अतियाँ हैं, कचहरियों में कमीशन खाता न्याय है, लेखकीय पारिश्रमिक को डकारते संपादक हैं, तो लेखकों के मान-सम्मान की रक्षा करने को कटिबद्ध संपादक भी। अनुदान के घपले, सहायता राशि की लूट, तथाकथित 'इलीट कल्चर' का पाखंड, राजनीतिक सौदेबाज़ी, स्त्री-विमर्श के दीदावर और इन सबसे ऊपर और गहरे वे स्थितियाँ हैं, जिन्होंने हमें जड़च्युत किया है; अपने आपको उपेक्षा और दुत्कार की 'वस्तु' बनने के इन्कार करने वाली 'सफल कारोबारी' इंडियन वुमन का वह मायाजाल है, जिसने अपनी आँख के पानी को सुखा दिया है और 'आँचल में दूध और आँखों में पानी' की भारतीय परंपरागत स्त्री-पहचान को झुठला दिया है, ध्वस्त कर दिया है।

एक धीर-गंभीर, शालीन, सरल स्त्री-व्यक्तित्त्व का व्यंग्यकार बन जाना इस तथ्य का प्रमाण है कि आज़ादी के बाद देश के परिवेश में विसंगतियाँ इस कोटि और प्रमाण में हो गयी हैं कि व्यंग्य अभिव्यक्ति का एक अनिवार्य शाब्दिक चोला बन गया है।

'भगवान ने कहा था' की व्यंग्य रचनाएँ युगीन यथार्थ को सहज, सरल, विश्वसनीय और सहनीय बनाकर पुनर्प्रस्तुत करती हैं। यह पुनर्प्रस्तुतीकरण अपने भीतर स्थितियों की सक्षम एवं गहरी पकड़ लिये हुए है, जो हमें हमारी जड़ों से जोड़ती है, सांस्कृतिक क्षरण की पीड़ा से जोड़ती है :

"नहीं रहीं हमारी जड़ें अब हमारे पास। तभी तो हम ग़ैरों-सा खाते, पहनते, बोलते और सोचते हैं।" (पृ. 45)

इससे बड़ा सांस्कृतिक संकट भला किसी देश, समाज का क्या होगा कि उनका 'स्वत्व' और 'सत्व' स्वयं उसके अपने लोग ध्वस्त कर रहे हों। निस्संदेह, इसके मूल में वे कुठाएँ हैं, जो हमें आत्मसम्मान और स्वाभिमान के संस्कारों से जुड़ने नहीं देतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथ्य की दृष्टि से संग्रह की रचनाओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। सबसे गहरी और मीठी चुटकी लेखिका ने स्वयं सहकर्मियों, हिंदी लेखकों, हिंदी-भाषा, संपादक, 'पुरस्कार पैकेजेज़' अध्यक्ष-पाखंड पर ली है।

'समकालीन लेखक का पत्रोत्तर', 'पुरस्कार मेले की उत्तर-आधुनिकता', 'कोटा नाम का शहर', 'यात्रा एक सम्मेलन की', 'हिन्दी साहित्य और पचास के हुए लेखक', 'साहित्य में शालीनता का अर्थ', 'साठ के हुए लेखक', 'अध्यक्ष विलाप', 'शर्मिंदगी के आखिरी पायदान से...' तथा 'पाँच-सितारा लेखक सम्मेलन' शीर्षक दस रचनाओं में हिन्दी भाषा, हिंदी साहित्यकारों, प्रायोजित पुरस्कार मेले जैसे विषयों पर व्यंग्यालेख, दो रचनाओं में व्यंग्य-संबंधी मान्यताओं का विवरण लेखिका की संजीदगी और विकलता के प्रमाण हैं। पुस्तक के तर्ज़ पर पुरस्कारों का क्रय-विक्रय; पुरस्कारों के विभिन्न पैकेजेज़; लेखकों के अंहकार, उनकी कुंठा, आत्म-प्रचार की उनकी भूख के चलते बनती शर्मनाक स्थितियों को व्यक्त करने के लिए सर्वाधिक रचनाओं की संख्या इस तथ्य का प्रमाण है कि हमारा बौद्धिक वर्ग, लेखक, रचनाकार, समीक्षक आदि ज़िम्मेदार लोग कितने ग़ैर-ज़िम्मेदार भ्रष्ट और चरित्रहीन हो चुके हैं। साथ ही, रचनाकारों के प्रति सरकारी उदासीनता पर टिप्पणी करने से भी लेखिका चूकती नहीं। लेखकीय ख़ेमेबाज़ी, उठा-पटक सभी कुछ डॉ. सूर्यबाला की लेखनी से व्यंजित होने को विवश है।

डॉ. सूर्यबाला के व्यंग्य का दूसरा उल्लेखनीय आलंबन है—स्त्री विमर्श, स्त्री-शक्ति, स्त्री-चेतना के नाम पर विलुप्त होती भारतीय स्त्री। मेधा, मनीषा, माधुर्य और शील-संपन्नता को भुलाकार तथाकथित आधुनिकाएँ किसी भी क़ीमत पर बाज़ार में बिकने को बेताब हैं। जिस शोषण के ख़िलाफ़ खड़ी हुई थीं, उसी का जाल अब अपने हाथों बुन रही हैं। कभी धैर्य, गहराई, लज्जा और सहनशक्ति स्त्री की पूँजी हुआ करती थी, अपनी इसी पूँजी से वह बड़े-बड़े अनगिनत सदस्यों वाले खानदानों को सँभालने -सँवारने का माद्दा रखती थीं, आज विज्ञापनों की भौतिक दुनिया में बिकनी पहनने, निर्वस्त्र होने को ही जीवन का गौरव मानती हैं। सौंदर्य—प्रतियोगिताओं-विश्वसुंदरी और ब्रह्मांड सुंदरी—की आड़ में स्त्री-शोषण एवं देह-प्रदर्शन, अश्लीलताओं के दौर पर लेखिका के व्यंग्य पठनीय है—"समर्थ स्त्री कौन है? समर्थ स्त्री वह है, जो बिकनी पहनकर सारी दुनिया में शांति और भाईचारे का संदेश पहुँचाती है। सद्भावना का संदेश देती है... समाज में चेतना का अलख जगाना चाहती है। वह लोगों को बताना चाहती है कि चूँकि उसके देश में ग़रीबी रेखा के नीचे रहने वालों के पास तन ढँकने भर को कपड़े नहीं होते, अतः अपने ड्रेस-डिजाइनर से कहकर जानबूझकर ऐसे कपड़े बनवाती और पहनती है, जिससे बमुश्किल तन ढँका जा सके अर्थात् न ढका जा सके।" (पृ. 37)

इस संग्रह का तीसरा और सर्वाधिक चिंतनीय विषय है—सांस्कृतिक-क्षरण। 'व्यंजना का जमूड़ा' जैसे शब्द-रचाव व्यंग्य की व्यंजना-शक्ति, अभिव्यक्ति पक्ष की त्रियक रेखाओं को व्यक्त करते हैं, तो 'शोक पक्ष', 'शुक्ल पक्ष', मेधा, मनीषा, माधुर्य, शील-संपन्नता जैसे शब्द उनकी संस्कृतनिष्ठ चिंतन-धारा को। इस संपूर्ण संग्रह को सांस्कृतिक स्खलन की सांस्कारिक अभिव्यक्ति का नाम दिया जा सकता है। इन्सान और इन्सानी रिश्तों के लिए मर-मिटने की सांस्कृतिक विरासत आज आयातित उपभोक्तावाद की भेंट चढ़ चुकी है। आर्थिक विपन्नता से कहीं अधिक गहरी सांस्कृतिक विपन्नता है, अतः 'इस्तेमाल करो और फेंको' (यूज़ एंड थ्रो) के पश्चिमी-दर्शन को लेखिका भारतीय संस्कृति का संबल देते हुए आश्वस्त करती हैं कि "हिंदी के कुछ लेखकों में अभी भी थोड़ी -बहुत ग़ैरत बाक़ी है... वह आज भी भारतीय संस्कारों की लादी ढोने का माद्दा रखता है, बल्कि सच-सच कहें, तो ढो रहा है।" (पृ. 32)

बोलचाल की भाषा, चुटीले वाक्य, हर हाल में ज़िंदा रहने की ज़िंदादिली, ज़िंदगी का खिलंदड़ अंदाज़ एक पृथक् रसधार बनकर निकलते हैं :

"बर्गर, पिज्जा, थाई, मंचूरियन से अँटे पड़े बाज़ार में आम सूखी रोटी और चुल्लू भर पानी की तृष्णा लिये बेहाल है।" (पृ. 26)

"साहित्य की जड़ों की सुरक्षा की उसकी देखभाल वाली बात का दायित्व खाँटी गालियों, अपशब्दों और बेलगाम बयानों ने ले लिया है।"

"हिन्दी लेखक आजकल साहित्य में पैदा बाद में होते हैं, अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में पहले हो आते हैं।..... ये विदेश हिंदी लेखकों के लिए काबा-कैलास हैं मक्का-मदीना हैं, चारों धाम हैं।" (पृ. 55)

'भगवान ने कहा था' संग्रह की व्यंग्य-रचनाएँ देश-विदेश की उन सभी अनास्था, उन्माद, कुंठा और गुमान को पुरज़ोर विनोदी तेवर प्रदान करती हैं, जिनके बीच अमेरिकी लोग डॉलर पाकर पागल हैं, हम डॉलर पाने के लिए। जीवन की विषमताओं और जद्दोज़हद को, मारक स्थितियों को ज़िंदादिली के साथ प्रस्तुत करना डॉ. सूर्यबाला की ख़ूबी है। वैचारिक दुश्चिंताओं का भाव -प्रवण अभिप्रेषण वह स्मित मुस्कान की डोर है, जिससे अश्रुविगलित व्यथा- कथाओं को बाँधकर वक़्त की चिंता-धारा और चिंतन -धारा के सूत्र टटोले जा सकते हैं। आदमी के प्रति आदमी के बढ़ते अविश्वास और अनास्था को विश्वास और आस्था के अंकुर का रूप देने की कोशिश है यह व्यंग्य- संग्रह।

महर्षि दयानंद महाविद्यालय
परेल, मुंबई-400 012

भगवान ने कहा था, डॉ0 सूर्यबाला, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिलोचन को समझने की सार्थक कोशिश

महावीर रवांल्टा

रचनात्मक अभियान के 25 साल पूरे कर रही युवा चेतना की ज़रूरी पत्रिका 'आधारशिला' का अंक 70-72 त्रिलोचन पर केंद्रित है। 'त्रिलोचन' कितने पास अपने-1' अंक 'रचना विवेचना', 'संस्मरण', 'साक्षात्कार', 'कविताएँ', 'आलेख', कृति समग्र : पहचान और परख' शीर्षकों के माध्यम से उनके बारे में बहुत सारी सामग्री देने में समर्थ विशेषांक है।

'रचना विवेचना' खंड में त्रिलोचन की 'चंपा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती', 'नगई महरा' एवं 'चित्रा जांबोरकर' कविताएँ दी गयी हैं तथा उन पर महेश चन्द्र पुनेठा, सुल्तान अहमद, प्रीति प्रकाश, प्रजापति की विवेचनाएँ हैं। ''चंपा....'' पर महेश चन्द्र पुनेठा लिखते है—''यह कविता दूरस्थ जनपदों में रहने वाली स्त्री के जीवन, स्वभाव और नियति से हमारा परिचय कराती है। यह भारतीय ज़मीन पर खड़े रहकर पश्चिमी आधुनिकता से टकराती एक कालजयी रचना है।'' त्रिलोचन की 'नगई महरा' का पूरा परिवेश ग्रामीण है। सुल्तान अहमद इसे त्रिलोचन की निहायत सरल कविता मानते हैं और कहते हैं कि सरलता के कारण ही इसकी गहरी कलात्मकता पकड़ में नहीं आती। 'चित्रा जांबोरकर' पर प्रीति प्रकाश प्रजापति लिखती हैं कि—यह कविता यथार्थगत विडंबना का बोध ही नहीं कराती, वरन् संबंधों के बीच पनपती यांत्रिकता और ठंडेपन के बावजूद जहाँ कहीं भी ऊष्मा शेष है, उसके प्रति आस्था भी जगाती है।

'संस्मरण' में नामवर सिंह, सत्येन्द्र श्रीवास्तव, आनंद भैरव शारी, हरिपाल त्यागी, रमेश कुंतल मेघ, अब्दुल बिस्मिल्लाह, श्याम विमल, रामधनी द्विवेदी, पूनम सिंह, रामकुमार कृषक, सुभाष चन्द्र कुशवाहा, रामाज्ञा राय शशिधर, दिविक रमेश ने अपने संस्मरणों के माध्यम से त्रिलोचन को याद किया है और उनकी यही यादें जाने-अनजाने उनके बारे में बहुत बता देती हैं और त्रिलोचन की जीवन-संघर्ष, रचनाधर्मिता, व्यवहार सभी हमारे सामने होता है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह त्रिलोचन के लिए कविता को वस्तुतः शब्द की कला मानते हैं और शब्द-साधना को उनका परम काव्य-मूल्य। चित्रकार हरिपाल त्यागी एवं अब्दुल बिस्मिल्लाह के संस्मरणों में त्रिलोचन बेहद आत्मीय रूप में आते हैं, तो दिविक रमेश ख़ुद ही ज़्यादा 'एक्सपोज' होते नज़र आते हैं।

'साक्षात्कार' खंड में वीरेन्द्र मोहन एवं पलाश विश्वास त्रिलोचन के असीमित रचना-संसार एवं वृहद व्यक्तित्त्व तथा संवेदनशीलता से हमें रू-ब-रू करवाते हैं। ज्ञानेंद्रपति, हरीश चन्द्र पांडे, ब्रह्माशंकर पांडेय, केशव तिवारी, शहंशाह आलम, देवेन्द्र आर्य, दिनेश शुक्ल ने त्रिलोचन की रचनाओं एव व्यक्तित्त्व पर केंद्रित अपनी कविताओं के माध्यम से उनका स्मरण किया है, तो 'आलेख' में ए. अरविंदाक्षन, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, विजय बहादुर सिंह, जीवन सिंह, स्वप्निल श्रीवास्तव, बलराज पांडेय, कमलेश भट्ट कमल, रामनिहाल गुंजन, अरुण देव के आलेख उनके व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व पर गहन अध्ययन एवं शोध के बाद लिखे गए हैं, जो त्रिलोचन को लोक एवं जीवन के समर्थ भारतीय कवि के रूप में स्थापित करने के साथ ही उनकी रचनाधर्मिता को गहनता से उजागर करते हैं।

'कृति समग्रः पहचान और परख' में त्रिलोचन की 'धरती ' (1945) 'गुलाब और बुलबुल' (1956), 'दिगन्त' (1957) 'ताप के ताए हुए दिन' (1980), 'शब्द' (1980), 'उस जनपद का कवि हूँ' (1981), 'अरधान' (1983), 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' (1985), 'तुम्हें सौंपता हूँ' (1985), 'फूल नाम है एक' (1985), 'सबका अपना आकाश' (1987), 'अमोल' (1990), 'मेरा घर' (2002), 'जीने की कला' (2004) कृतियों पर मुक्तिबोध, वशिष्ठ अनूप, देवीशंकर अवस्थी, रेवती रमण, वाचस्पति, परमानंद श्रीवास्तव, राजेन्द्र कुमार, मूलचंद सोनकर, अवधेश प्रधान, रघुवंश मणि, बुद्धिनाथ मिश्र, भवदेव पांडेय, विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रभात कुमार मिश्र, ओम निश्चल तथा कहानी-संग्रह 'देश काल' (1986) पर लता ध. शिरोडकर, उनकी डायरी ''रोजनामचा'' पर मधुरेश, 'काव्य और अर्थबोध' (1995) आलोचना-कृति को लेकर विनोद तिवारी ने लिखा है।

'आधारशिला' का त्रिलोचन पर केंद्रित विशेषांक अपने आप में बेमिसाल बन पड़ा है, जिसका श्रेय संपादक दिवाकर भट्ट के साथ इस अंक के संपादक वाचस्पति को जाता है। 'त्रिलोचन : इतने पास अपने' की प्रतीक्षा भी स्वाभाविक ही है, क्योंकि जिन्होंने 'आधारशिला' का यह विशेषांक पढ़ा होगा, वे निस्संदेह दूसरे से भी गुज़रना चाहेंगे, जिसका एक कारण यह भी लगता है कि त्रिलोचन को जितना पढ़ो कम ही कम त्रिलोचन पर जितना पढ़ो कम ही कम।

संभावना, महरगाँव

पत्रालय मोल्टाड़ी, पुरोला, उत्तरकाशी, उत्तरखंड-249185

आधारशिला, त्रिलोचन : इतने पास अपने-1, दिवाकर भट्ट, अतिथि संपादकः वाचस्पति, मूल्यः 60.00 रुपये मात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य क्लब रिपोर्ट

वर्तमान साहित्य, क्लब की बैठक किदवई नगर, कन्हैया भवन, डॉ0 दया दीक्षित के आवास में संपन्न हुई। संपादकीय पर सुनीता चढ्ढा ने कहा कि नमिता जी के संपादकीय से यह जाहिर होता है कि कानून चाहे जितना स्त्री को स्वतंत्र और सशक्त बताये परंतु हकीकत में ऐसा नहीं है। स्त्री हमेशा किसी न किसी के अधीन रहने को अभिशप्त है। संयोजिका डा0 दया दीक्षित ने कहा जब तक स्त्री स्वयं नहीं चाहेगी तब तक वह अपने अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण नहीं कर सकती। अपने जीवन की कीमत पर उसे किसी भी शोषण या प्रताड़ना के विरुद्ध कमर कसनी होगी। बीना सिंह ने कहा कि नमिता जी ने वैश्विक परिप्रेक्ष्य में स्त्री की स्थिति के मुद्दे उठाते हुए कहा है कि वह सुखद है कि चाहे देशी हो या विदेशी, स्त्रियाँ आज अपने हक की लड़ाई लड़ रही हैं और जीत रही हैं। संध्या मिश्रा ने कहा, नमिता जी ने बाजारवाद और रूढ़िवाद में पिसती औरत की स्थिति को स्पष्ट किया है कि इन विरोधी घटनाओं के पीछे कहीं न कहीं उपभोक्तावादी दृष्टि व बाजारवाद मौजूद है। बाजारवादी व्यवस्था में एक बड़ा समूह जो उस व्यवस्था में फिट नहीं बैठता, उपेक्षित रहता है। यही वर्ग अपनी प्राचीन रूढ़ियों में आकर कट्टर हो जाता है। आरती त्रिपाठी का कहना था, अलग-अलग समाजों में स्त्री की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए नमिता जी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि विश्व की सबसे कमजोर कड़ी स्त्री ही है। आज का समाज तेजी से बदल रहा है। उपभोक्तावाद अपने पाँव पसार रहा है। सब तरफ़ मुनाफ़े का सौदा हो रहा है। ऐसे में विश्व की विविध संस्कृतियाँ प्रत्येक मायने में विलक्षण एवं अलग हैं किन्तु स्त्री के प्रति सबकी मानसिकता समान है। ऐसे में यदि स्त्रियाँ स्वयं ही अपने अस्तित्व के प्रति सजग होकर प्रतिरोध न करें तो उनके लिये भला कौन सोचेगा। जया सिंह ने कहा स्त्रियों को शिक्षा की सख़्त ज़रूरत है जिससे वह अपने फैसले स्वयं ले सकें तथा दूसरों पर निर्भर न रहे।

रजनी गुप्त के लेख 'आज़ादी और आत्म निर्णय से लैस नई स्त्री के अक्स' को संयोजिका ने नारी विमर्श में अगली कड़ी के रूप में देखते हुए कहा कि आज रूढ़ियों में पिसना या तलाक से डरना या अन्य किसी दबाव को सहन करना छोड़कर स्त्री जिस स्वनिर्णय की ओर बढ़ रही है वह उसे मानवोचित जीवन की तरफ़ प्रयुक्त कर रहा है। सुनीता चढ्ढा के साथ ही अन्य सदस्यों ने इस लेख पर कहा कि अगर स्त्री अपने विवेक से निर्णय ले, अपने दम पर अपनी ज़िंदगी जिये तो शायद अधिक सुकून और सहज जीवन जी सकेगी। नई स्त्री जो आज की पीढ़ी की है, बहुत भिन्न है क्योंकि वह अपने अधिकार का इस्तेमाल करके संतुष्ट होती है। किसी प्रकार की अराजकता को बर्दाश्त नहीं कर पाती। यह लेख उस कानून-व्यवस्था पर प्रहार करता है जहाँ स्त्री की संवेदनाओं को दबा दिया जाता है या कोर्ट में घसीटकर उनको निर्बल बनाने की साजिश रची जाती है।

रजनी गुप्त ने जिन-जिन अक्सों को दिखाया है वह यथार्थ के धरातल का कटु सत्य है। सदस्यों ने लघु कथाओं के साथ ही 'विषाद' और 'उसने कहा था' की विशेष चर्चा की। संयोजिका ने कहा 'नई माँ' कहानी में देवी नागरानी ने जिस वैश्विक बहनापे की प्रभावी रीति को नई माँ और उसकी उम्रदराज बेटी में दिखाया है वही कहीं न कहीं पितृ सत्ता की जड़ों पर प्रहार करती है।

सदस्यों ने रजनी मोरवाल और ऊषा यादव की कविताओं के लिये कवयित्रियाँ को बधाई देते हुए रचनाओं की सराहना की। सुनहरे पर्दे में मील का पत्थर सिनेतारिका देविका रानी पर आलेख सभी के मन भाया। ऋतु अग्रवाल तथा रवीन्द्र कुमार पाठक के प्रामाणिक शोधपरक लेखों की सभी ने चर्चा की तथा इस पर विचार किया कि किस तरह से धर्म ने तथा धार्मिक मूल्यों ने स्त्रियों को एक क्रीत दासी से ज़्यादा स्थान नहीं दिया। केवल हिन्दू धर्म ही नहीं दुनिया का कोई भी धर्म हो, कभी भी स्त्री के पक्ष में नहीं रहा। हर तरह से फुरुष वर्चस्व की संस्थापना ही उसका मुख्य ध्येय रहा है।

प्रस्तुति : जया सिंह

इंडिया और भारत का अंतर्संबंध उलझन भरा है : नामवर सिंह

इंडिया और भारत का अंतर्संबंध उलझन भरा रहा है। इंडिया का रिश्ता सिंध की अवधारणा से रहा है। 'अहं राष्ट्रे संगमनी वसूनाम चिकितुषी' और 'महाभारत' जैसी कृति के नाम से भारत जुड़ा है। आज सिंधु शब्द से उद्भुत आशय निष्प्राण हो गया है। आज यह भूमंडलीकरण की ओर ले जाने वाली अवधारणा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकेतक है। उक्त बातें प्रसिद्ध समालोचक प्रो0 नामवर सिंह ने कहीं। वे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के अंग्रेज़ी विभाग की ओर से राधाकृष्णन सभागार में आयोजित 'भारत की परिकल्पना और राष्ट्र की अवधारणा का विमर्श' विषयक दो दिनी संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में बोल रहे थे।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता संकाय प्रमुख प्रो0 कमलशील ने की। स्वागत अंग्रेज़ी विभागाध्यक्ष प्रो0 पी0के0 पाण्डेय, संचालन डॉ0 धृति रे दलाई और धन्यवाद ज्ञापन डॉ0 अर्चना कुमार ने किया। संगोष्ठी के बारे में संयोजक डॉ0 संजय कुमार ने बताया।

प्रस्तुति : प्रमोद कुमार वर्णवाल, वाराणसी

सत्यजीत रे स्मृति व्याख्यान एवं फिल्म महोत्सव की रपट

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग द्वारा कला संकाय प्रेक्षागृह में दो दिवसीय 'सत्यजीत रे स्मृति व्याख्यान एवं फिल्म महोत्सव' का आयोजन किया गया। इसका उद्घाटन करते हुए ख्यात फिल्म निर्माता निर्देशक श्याम बेनेगल ने कहा कि फिल्में कल्पनाओं से जुड़ी होती हैं लेकिन इनमें परंपरा और वास्तविकता की छवि भी दिखनी चाहिए।

इस अवसर पर श्याम बेनेगल ने सत्यजीत रे पर आधारित एक स्मारिका का विमोचन किया। अध्यक्षता कला संकाय के प्रमुख प्रो0 कमलशील ने की। फिल्म समीक्षक गौतम चटर्जी ने उनका परिचय कराया। स्वागत विभागाध्यक्ष प्रो0 शिशिर बसु और धन्यवाद ज्ञापन अनिल कुमार ने किया। इस अवसर पर सत्यजीत रे की 'पोस्ट मास्टर', 'प्रतिद्वंद्वी', 'शतरंज के खिलाड़ी', सर्गेई आइंस्टाइन की 'अक्टूबर', इंगमार बर्गमेन की 'वाइल्ड स्ट्रॉबेरी' फिल्में दिखाई गयीं।

प्रस्तुति : प्रमोद कुमार वर्णवाल, वाराणसी

बुंदेलखंड की धरती के सौंदर्य के बेजोड़ चितेरे कवि थे जनकवि-केदार

बाँदा, केदार शोध पीठन्यास एवं प्रगतिशील लेखक संघ बाँदा इकाई के तत्वावधान में जनकवि केदार नाथ अग्रवाल के सौ वें जन्मदिन के अवसर पर जनकवि केदार के शताब्दी वर्ष की शुरूआत की गई। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए जे0एन0 कालेज के प्रधानाचार्य डा0 नन्द लाल शुक्ल ने कहा-'मुझे केदार जी के सृजन में जो कुछ भी है उसमें कमासिन की छायायें स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।' केदार शोधपीठ के न्यासी सदस्य चन्द्रवाल कश्यप ने बोलते हुए कहा केदार नाथ अग्रवाल के भीतर किसानी संवेदना रची-बसी थी, जिसने उनकी रचना धर्मिता में वैसी ही सहज उल्लास प्रियता, सौंदर्य में मुग्ध होने का भाव कूट-कूटकर भर गया था। जिला प्रलेस इकाई के सचिव योगेश श्रीवास्तव ने भी संबोधित किया।

केदार शोधपीठ के सचिव एवं वरिष्ठ कवि नरेन्द्र पुण्डरीक ने कहा, केदार नाथ अग्रवाल ने बहुत बड़ी मात्रा में आदमी को पौरुष को जगाने और ललकारने वाली कविताएँ लिखी हैं।

इस अवसर पर श्रीमती आशा सिन्हा, वरिष्ठ पत्रकार श्री बी0डी0 गुप्ता, डॉ0 प्रेमलता मिश्रा, श्री भगवंत सिंह, श्री देवी दयाल यादव, श्री रणवीर सिंह चौहान, श्री राम विशाल सिंह, अजित विन्दुल ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

प्रस्तुति : योगेश श्रीवास्तव, बाँदा

पत्रिकाएँ हमारी साहित्यिक समृद्धता का प्रतीक हैं

खरगोन, म0प्र0। साहित्यिक सांस्कृतिक संस्था 'वयम्' के तत्वावधान में संस्था की छठवीं वर्षगांठ पर आयोजित हिन्दी साहित्यिक पत्रिका प्रदर्शनी के उद्घाटन अवसर पर ख्यात कहानीकार भालचन्द्र जोशी ने अपने उद्बोधन में कहा कि 'हिन्दी में आज भी आकृष्ट और रुचिपूर्ण साहित्यिक पत्रिकाओं की अच्छी खासी तादाद है। हालाँकि इनकी संख्या और पाठक संख्या का अंतर चौंकाने वाला है, लेकिन फिर भी ये आश्वस्त करती हैं कि हिन्दी में भी इन दिनों खूब रचनात्मक और मौलिक लिखा जा रहा है।' अध्यक्ष श्री सुनील गीते ने हिन्दी समाज और पत्रिकाओं में पाठकों की घटती संख्या पर चिंता प्रकट करते हुए कहा कि इतनी मात्रा में पत्रिकाएँ देश भर से आ रही हैं फिर भी छोटे शहरों के पाठकों तक नहीं पहुँच पा रही है, यह एक बड़ी चिंता का विषय है। युवा कवि और इस प्रदर्शनी के संयोजक प्रदीप जिलवाने ने इस अवसर पर कहा कि पत्रिकाएँ हमारी साहित्यिक समृद्धता का प्रतीक हैं। वे भाषा की अस्मिता को बचाए रखने का महत्वपूर्ण दायित्व निभा रही हैं। संस्था द्वारा वरिष्ठ कवि तुकाराम गोयल के पुत्र शुभेन्दु गोयल की स्मृति में स्थापित द्वितीय 'वयम्' सम्मान इंदौर के वरिष्ठ कवि श्री कृष्णकांत निलोसे को प्रदान किया गया एवं श्री गोयल के निमाड़ी कविता संग्रह 'रात बिरात' का विमोचन किया गया।

प्रस्तुति : प्रदीप जिलवाने, खरगोन

मंटो और ज़ाहिदा हिना की पुस्तकों का विमोचन

महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्व विद्यालय के लखनऊ केन्द्र में 13 मई को 'साझी दुनिया' के तत्त्वावधान में सआदत हसन मंटो की 'गुनहगार मंटो' तथा ज़ाहिदा हिना की पुस्तक 'पाकिस्तानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री-यातना और संघर्ष' का विमोचन संपन्न हुआ। उर्दू से हिन्दी में इनका अनुवाद शकील सिद्दीकी ने किया है। मूल रूप में से पुस्तकें 'लज़्ज़ते संग' तथा 'औरत-ज़िंदगी का ज़िन्दां' नाम से चर्चित है। मंटों की पुस्तक का विमोचन कामता नाथ ने एवम् ज़ाहिदा हिना की पुस्तक का विमोचन रवीन्द्र वर्मा ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रो0 शारिब रूदौलिवी ने की। ज़ाहिदा हिना ने स्त्री प्रश्नों को जिस तीखेपन से और व्यापकता में विमर्श का विषय बनाया है। वह अत्यंत महत्वपूर्ण है सैनिक तानाशाही तथा धर्म के बीच की दुरभि संधि ने कैसे वहाँ स्त्री जीवन को यातना से भर दिया है, इसका बहुत अच्छा विश्लेषण पुस्तक में मिलता है।

प्रो0 अनीस अशफ़ाक ने चर्चा में भाग लेते हुए बताया कि साठ-पैंसठ साल पहले मंटो पर चले मुकद्दमों में जो हीरालाल सिब्बल साहब मंटो के वकील बने थे वह दरअसल कपिल सिब्बल के पिता जी हैं। वह अभी जीवित हैं। उन्होंने कहा कि ज़ाहिदा हिना की किताब बहुत महत्त्वपूर्ण है। आलोचक वीरेन्द्र यादव ने विचार प्रकट किया कि ज़ाहिदा हिना का स्त्री-विमर्श प्रचलित स्त्री विमर्श से अलग हटकर है और अधिक संपूर्ण है। प्रो0 रमेश दीक्षित ने अदालत में दिये गये मंटो के बयान के इन शब्दों को दोहराया कि–"अगर आप मेरे अफ़सानों को बर्दाश्त नहीं कर सकते तो फिर मौजूदा ज़माना भी नाक़ाबिले बर्दाश्त है क्योंकि मैंने अपने अफ़सानों में इसी ज़माने की हक़ीक़तों को बयान किया है। 'साझी दुनिया' की सचिव प्रो0 रूप रेखा वर्मा ने-'ज़ाहिदा हिना की इस स्थापना से असहमति प्रकट की है कि विश्व में पहले मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी। मातृ सत्ता कभी नहीं रही'। प्रो0 वर्मा का कहना था कि ज़ाहिदा हिना पाकिस्तानी स्त्री के साथ वह भारतीय स्त्री के संघर्ष को भी शामिल करती हैं।

इस अवसर पर बेग़म हामिदा हबीबुल्लाह, नरेश सक्सेना, वन्दना मिश्र, सुभाष चन्द्र कुशवाहा, वीरेन्द्र सारंग, राजेश कुमार, नवीन जोशी, आबिद सुहैल, सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ, डा0 सबीहा अनवर, आयशा सिद्दीकी के अतिरिक्त बड़ी संख्या में उर्दू-हिन्दी के लेखक तथा अन्य संस्कृति कर्मी उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन मनोज पांडेय तथा अतिथियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापन उज़्मा ज़की ने किया।

प्रस्तुति : मनोज पांडेय

'टेम्स की सरगम' का लोकार्पण

सुप्रसिद्ध कथा लेखिका संतोष श्रीवास्तव के सद्यः प्रकाशित उपन्यास 'टेम्स की सरगम' का लोकार्पण श्रीमती परमेश्वरी देवी दुर्गादत्त टीबड़ेवाला कॉलेज के प्रांगण में किया। कवि एवं पत्रकार आलोक भट्टाचार्य के संचालन से प्रारंभ हुए इस उपन्यास का लोकार्पण करते हुए पुष्पा भारती ने कहा कि "डायना और चंडीदास के अनूठे प्रेम से वर्णित यह उपन्यास अनूठा है जिसमें इतिहास भी धड़क रहा है, और भक्ति मार्ग का संगम भी है।

कथाकार ओमा शर्मा ने उपन्यास पर अपना वक्तव्य देते हुए कहा कि लेखिका पात्रों की बातचीत के बीच। अपनी भाषा के माध्यम से उस अनकही को रचती है, जो कथा की भरपाई करती है। कथाकार-पत्रकार प्रमिला वर्मा ने अपने कथन में लेखिका के साथ जिए रचना क्षणों को याद किया। टी0वी0 कलाकार रवि राजेश ने उपन्यास के कुछ प्रसंगों की भावपूर्ण-प्रस्तुति की। लेखक धीरेन्द्र अस्थाना ने कहा कि इतिहास के प्रांगण में प्रवेश कर कुछ बटोर लाने के लिए लेखिका का साहस सलाम का हकदार है।

उपन्यास की लेखिका कथाकार संतोष श्रीवास्तव ने अपने मनोगत वक्तव्य में कहा कि इस उपन्यास की कथा गढ़ने के दौरान उन्होंने सोचा भी न था कि वे एक बड़ी चुनौती को आमंत्रण दे रही हैं। सतना से आए वरिष्ठ साहित्यकार प्रह्लाद अग्रवाल ने अपने संक्षिप्त वक्तव्य में कहा कि जब किसी रचना में प्रेम का अद्भुत तत्व मन को भिगो देता है तो बाकी सारी घटनाएँ निरर्थक हो जाती हैं। विशेष अतिथि चर्चित कथाकार सुधा अरोड़ा ने कहा कि इसमें इतिहास झांकता है और आज की नारी का चरित्र भी उभरकर सामने आता है।

अध्यक्ष विनोद टीबड़ेवाला ने कहा कि इस उपन्यास की पकड़ बहुत मजबूत है।

हेमंत फाउंडेशन की सदस्य तथा लेखिका सुमीता केशवा ने सबके प्रति अपना आभार प्रकट किया। देवी नागरानी ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की।

प्रस्तुति : निधीश पांडे

उस्ताद असद अली को लतीफ़ खाँ सम्मान

भोपाल। सारंगी के पर्याय जन्नतनशीं पद्मश्री उस्ताद अब्दुल लतीफ़ खाँ की यादों को संजोता दो दिनी 'सारंगी समारोह एवं लतीफ खाँ सम्मान' भारत भवन में मनाया गया। इस मौके पर प्रख्यात रूद्रवीणा वादक उस्ताद असद अली खाँ, दिल्ली को पचास हज़ार रुपये राशि के लतीफ खाँ सम्मान से नवाजा गया। संचालन सुपरिचित कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने किया। संस्कृति संचालक श्रीराम तिवारी, जलसे के सहयोगी घटक लतीफ़ खाँ न्याय के प्रमुख स्तंभ तथा लतीफ खाँ की विरासत को पूरे मनोयोग से संभाल रहे लतीफ खाँ के यशस्वी पौत्र सरवर हुसैन खाँ, यमन अकादमी के सूत्रधार व कला समीक्षक श्याम मुंशी के अलावा खाँ साहब की जीवन संगिनी बशीरन बी उपस्थित रहे।

सम्मान से भावविभोर उस्ताद असद ने कहा, एक ऐसे फनकार दोस्त जिनसे मेरी मौखिकी का फलसफ़ा बहुत गहराई तक जुड़ा रहा, उनके नाम पर मिले इस सम्मान से मैं सचमुच बेहद खुश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। इस मौके पर उन्होंने रूद्रवीणा और उसके विभिन्न आधार प्रकारों की दिलचस्प व्याख्या भी की।

प्रस्तुति : वसंत सकरगाए

कुँवरपाल सिंह की स्मृति में

अलीगढ़ 7 जून : सुप्रसिद्ध साहित्यकार, समाज सेवी और वर्तमान साहित्य के पूर्व संपादक स्वर्गीय प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह के जन्मदिन के अवसर पर ''जनवादी लेखक संघ'' एवं ''हरीतिमा'' के तत्वाधान में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए सुप्रसिद्ध शायर प्रोफ़ेसर शहरयार ने कहा कि कुँवरपाल सिंह ने धर्मनिरपेक्षता को मजबूत आधार प्रदान किया तथा अलीगढ़ के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक वातावरण को समृद्ध किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जब अलीगढ़ का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहास लिखा जायेगा तो उसमें कुँवरपाल सिंह का महत्वपूर्ण स्थान होगा। इस अवसर पर हरीतिमा के अध्यक्ष श्री सुबोधनंदन शर्मा ने कहा कि प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह पर्यावरण को लेकर बेहद चिंतित रहते थे और निरंतर कार्य करने के लिए प्रेरित करते थे। उन्होंने कहा कि हरीतिमा उनकी स्मृति में दस हज़ार ''नीम'' के पेड़ रोपित करेगी।

गोष्ठी में मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए श्री हरनाम सिंह ए0डी0एम0 (प्रशासन) ने कहा कि प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह के अंदर उत्कट जिजीविषा थी। दलित और उत्पीड़ित व्यक्ति के बारे में वे सदैव चिंतित रहते थे इसके साथ ही वे दृढ़ इच्छा शक्ति के व्यक्ति थे। तमाम समस्याओं के बावजूद वर्तमान साहित्य को निकालना इसका एक उदाहरण है। विशिष्ट अतिथि के रूप में बोलते हुए विधायक श्री विवेक बंसल ने कहा कि उनका व्यक्तित्व हमें आज प्रेरणा देता है। वह शारीरिक रूप से भले ही नहीं हैं लेकिन आत्मिक रूप से हमारे साथ हैं। उन्होंने कहा कि पर्यावरण की सुरक्षा हमारे लिए प्रमुख चिंता है।

साहित्यकार एवं वर्तमान साहित्य की संपादक नमिता सिंह ने कहा कि प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह सामाजिक पर्यावरण के लिए जितने चिंतित रहते थे उतने ही प्राकृतिक पर्यावरण के लिए भी। उन्हें पेड़ पौधों से उतना ही प्यार था जितना इंसानों से। उन्होंने सांप्रदायिक सद्भाव एवं पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए खतरे भी उठाये।

इस अवसर पर प्रोफ़ेसर बुद्धसैन शर्मा 'नीहार' ने कहा कि अलीगढ़ शहर की सांस्कृतिक चेतना में प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उनका सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण बहुत व्यापक एवं स्वस्थ्य है। श्री हरनारायण सिंह एडवोकेट ने कहा कि प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह को आम लोगों की बेहद चिंता रहती थी। वे उन्हें जागरूक करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। सुप्रसिद्ध आलोचक प्रोफ़ेसर प्रदीप सक्सेना ने कहा कि प्रोफ़ेसर सिंह के यहाँ विचारधारा कार्यरूप में परिणत होती थी। उनके अंदर सक्रियता सदैव विद्यमान रहती थी। उन्होंने वर्तमान साहित्य को एक मजबूत आधार प्रदान किया। प्रगतिशील लेखक संघ अलीगढ़ के सचिव एवं कवि श्री सुरेश कुमार ने जाँनिसार अख्तर के संदर्भ से कहा कि 'हम न रहेंगे, बहुत याद करोगे।' प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरित करते रहते थे तथा उनकी हर संभव मदद करते थे। डा0 इफ़्फ़त असग़र ने कहा कि प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह को याद करने के लिए किसी जन्म तिथि की जरूरत नहीं है। उन्हें अपने विद्यार्थियों की बेहद चिंता रहती थी।

गोष्ठी का संचालन करते हुए श्री अजय बिसारिया ने कहा कि प्रोफ़ेसर कुँवरपाल सिंह का व्यक्तित्व बहुआयामी था। उन्होंने सामाजिक, साहित्यक एवं सांस्कृतिक स्तर पर पूरे वातावरण में गतिशीलता उत्पन्न की। उनका व्यक्तित्व हमें आज मार्ग-दर्शन देता है।

इस अवसर पर हरीतिमा ने वृक्षारोपण का कार्यक्रम भी रखा जिसमें शहरयार, विवेक बंसल, हरनाम सिंह, नमिता सिंह आदि द्वारा नीम और तुलसी के पौधे रोपित किये गये।

इस पूरे कार्यक्रम में प्रोफ़ेसर आशिक अली, डा0 राजीव शुक्ल, श्री रामकुमार, श्री मिर्जा मसूद बेग, डॉ0 देवेन्द्र गुप्ता, डॉ0 ऋतु अग्रवाल आदि उपस्थित थे।

प्रस्तुति : ज़ीशान अहमद, सहायक जनसंपर्क अधिकारी, अमुवि, अलीगढ़

पुस्तक 'मैं झाँसी हूँ' का विमोचन

जनवादी लेखक संघ, उत्तर प्रदेश की राज्य कार्यकारिणी की सभा भारत ज्ञान विज्ञान समिति के सभागार लखनऊ में संपन्न हुई। सभा में आगामी राज्य सम्मेलन संबंधी निर्णय लिये गये तथा झांसी के लेखक शमीम शेख़ को सम्मानित किया गया। आगामी राज्य सम्मेलन बांदा में करने का निर्णय लेते हुये वहाँ एक विचार गोष्ठी का प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से लिया गया। इसके लिये जो विषय प्रस्तावित हुए उनमें सांप्रदायिकता के विरुद्ध, बाजारवाद के विरुद्ध तथा लोकतंत्र के सम्मुख वर्तमान चुनौतियों के संदर्भ में लेखकों और लेखक संगठनों की भूमिका जैसे विषय है। इस अवसर पर शमीम शेख की पुस्तक ''मैं झाँसी हूँ-1857 से अब तक'' तथा कहानी संग्रह ''विस्मय'' अवधेश कुमार श्रीवास्तव और पत्रिका ''कर्म श्री'' के नवीनतम अंक का विमोचन अध्यक्ष जलेस नमिता सिंह द्वारा किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका का बिखरता सपना

गिरीश मिश्र

काल बड़ा निर्दयी है, वह न किसी का लिहाज़ करता है और न किसी की धौंस में आता है। कबीर ने ठीक ही कहा है कि राजा, रानी और भुइयाँ भूपाल—सब काल-कवलित हो गये। एक दिन सूरज चाँद और यहाँ तक कि सृष्टि की भी यही गति होगी। अपने ही देश में देखें, कितने साम्राज्य बने और मिट गये। मौर्य, गुप्त, मुग़ल साम्राज्य और उनके प्रतापी शासकों की याद के रूप में कुछ खंडहर और इमारतें भर रह गयी हैं। अन्यत्र रोमन साम्राज्य, ऑटोमन साम्राज्य और ब्रिटिश साम्राज्य—सब के सब बने, चमके और मिट गये।

अजीब बात है कि इसके बावजूद कुछ लोग यह भ्रम पाल लेते हैं कि उनका दबदबा सदा-सदा के लिए रहेगा। इस भ्रम में हाल में ग्रसित होने का उदाहरण अमरीका का है। 1989 में बर्लिन की दीवार के ध्वस्त होने और सोवियत-नीत समाजवादी खेमे के बिखरने के बाद कहा जाने लगा कि पूँजीवाद का कोई सक्षम विकल्प नहीं रह गया। फ्रांसिस फुकुयामा ने इतिहास के अंत की घोषणा कर दी। इस प्रकार, बाज़ार-रूढ़िवाद पर आधारित पूँजीवाद को समाज-विकास का आख़िरी पड़ाव कहा गया और वर्ग संघर्ष को निरर्थक बतलाया गया। हेनरी किसिंगर ने 12 अक्टूबर, 1999 को रेखांकित किया कि दुनिया के सामने अमरीकी विचारों, मूल्यों और जीवन-शैली को अपनाने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। 'न्यूयॉर्क टाइम्स' के स्तंभकार टॉमस एल फ्रीडमैन अपनी पुस्तक 'द लेक्सस एन्ड ओलिव ट्री' लेकर आये, जिसमें कहा कि "हम अमरीकी गतिशील विश्व के समर्थक हैं, खुले बाज़ार के पैरोकार हैं और उच्च तकनीक के पुजारी हैं। हम अपने मूल्यों और पिज्जा हट—दोनों का ही विस्तार चाहते हैं। हम चाहते हैं कि विश्व हमारे नेतृत्व में रहे और लोकतांत्रिक तथा पूँजीवादी बने। प्रत्येक होंठ पर पेप्सी हो और प्रत्येक कंप्यूटर में माइक्रोसॉफ़्ट विंडो हो।" सोवियत खेमे के अवसान के साथ गुट-निरपेक्ष आंदोलन अशक्त हो गया और विकासशील राष्ट्रों का आत्मनिर्भर स्वतंत्र अर्थव्यवस्था का लक्ष्य पीछे छूट गया। अमरीका और सहयोगी देश पूँजी, बाज़ार, प्रौद्योगिकी आदि के सबसे बड़े स्रोत रह गये।

वे और उनके प्रभाव में चलने वाले आर्थिक संगठनों ने वाशिंगटन आम राय के ज़रिये नव उदारवाद या बाज़ार-रुढ़िवाद की विचारधारा लादने का अभियान शुरू किया। इसको सही ठहराने की मुहिम में शिकागो स्कूल ऑफ़ इकॉनमिक्स के चिंतन से प्रभावित लोग आगे आये। हमारे अपने देश में भी ऐसे लोग जो पहले दबी जुबान से नेहरूवादी विचारधारा की आलोचना करते थे, अब खुलकर बोलने लगे। विश्वनाथ प्रताप सिंह, चन्द्रशेखर के शासनकाल के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति इतनी खराब हुई कि देश का सोना बैंक ऑफ़ इंग्लैंड के पास गिरवी रख विदेशी विनिमय प्राप्त करना पड़ा। इस स्थिति ने देश को वाशिंगटन आम राय मानने के लिए मजबूर कर दिया।

Gurukul Kangri University Central Library Haridwar

नरसिंह राव सरकार ने वाशिंगटन आम राय से अनुप्राणित आर्थिक सुधार कार्यक्रम शुरू किए, जो अब तक जारी हैं, यद्यपि विभिन्न रंगों की कई सरकारें आयीं और गयीं। नेहरू युग के आर्थिक दर्शन को कूड़ेदान में डाल दिया गया, जिसमें देश की पूँजी, देश के श्रम, देश के उद्यम और देश के बाज़ार को धुरी बनाकर एक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर अर्थ-व्यवस्था के निर्माण पर ज़ोर था, जिससे बेरोज़गारी मिटे, आय बढ़े, आय-वितरण में व्याप्त असमानता और क्षेत्रीय विषमता घटे। इस चिंतन को नकारने के परिणाम स्पष्ट दिखने लगे हैं।

जहाँ तक अमरीका का विश्व पर अपना चुनौतीविहीन दबदबा कायम करने का सपना था, वह महज़ दो दशकों में धराशायी हो गया। ठीक-ठीक कहें, तो 15 सितंबर, 2008 को उसकी एक बड़ी कंपनी 'लीमैन ब्रदर्स' के दिवालिया होने के साथ ही अमरीकी विश्वविजय अभियान पर विराम लग गया। याद रहे कि 'लीमैन ब्रदर्स' चौथा बड़ा अमरीकी निवेश बैंक था। 'न्यूयार्क टाइम्स' के पत्रकार एंड्रयू रॉस सोरोकिन ने अपनी छह सौ पृष्ठों की किताब 'टू बिग टु फ़ेल' में इसके ज़मींदोज़ होने की विस्तृत कहानी लिखकर अमरीकी पूँजीवाद की बुनियादी खामियों को उजागर किया है। अब इस बात को लेकर ज़ोरदार बहस शुरू हो गयी है कि क्या अमरीकी वर्चस्व का सूर्य ढलने लगा है। अनेक प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी कहने लगे हैं कि निकट भविष्य में अमरीका सर्वोपरि, चुनौतीविहीन विश्व-शक्ति नहीं रह जाएगा। उदाहरण के लिए, हाल में प्रकाशित बैरक डेलौंग और स्टीफ़ेन कोहेन के अध्ययन 'द एंड ऑफ़ इफ्लूएंस' को देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं।

लेखकद्वय ने लिखा है कि पिछले लगभग 25 वर्षों से दुनिया को नव उदारवादी सपने से अभिभूत रखा गया है, जिसके अंतर्गत राज्य की आर्थिक भूमिका को न्यूनतम बनाना आर्थिक कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए अपरिहार्य बतलाया जाता रहा है। इसे ही भूमंडलीय आर्थिक एकीकरण, संवृद्धि तथा नौकरशाही और भ्रष्टाचार के उन्मूलन का मार्ग प्रशस्त करने वाला माना जाता रहा है। परिणामस्वरूप, राजकीय उद्यमों के निजीकरण और बाज़ार को मुख्य आर्थिक नियामक एवं निर्णयकर्ता बनाया गया है। मगर, जैसाकि लेखकद्वय का कहना है, यह सब तेज़ी से बदल रहा है। दुनिया अमरीकी वशीकरण मंत्र से मुक्त होने लगी है। वह जाग रही है और अपनी ग़लतियों को समझने लगी है। स्वयं अमरीका के भीतर यह अहसास होने लगा है कि वह दुनिया के शेष देशों का कर्जदार है क्योंकि बाहर से पैसे आकर अमरीकी ब्रांडों और प्रतिभूतियों में लगते हैं और इन पैसों से अमरीका अपनी आवश्यकता की वस्तुओं की आयात करता है। यदि यह स्थिति बदल जाए और अन्य देश अपनी बचत राशि डॉलर के बदले किसी अन्य मुद्रा में रखने लगें तो अमरीका की हालत ख़राब हो जाएगी। चीन, भारत, रूस, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका की सामूहिक आर्थिक ताक़त में तेज़ वृद्धि से इस तरह की आशंकाएँ पनपने लगी हैं।

इतिहासकार एरिक हॉब्सबॉम ने 'न्यू लेफ्ट रिव्यू' के जनवरी-फ़रवरी, 2010 के अंक में बतलाया है कि वर्ष 2001 के बाद अमरीकी दबदबे में तेज़ी से गिरावट आयी है और ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका का नया संगठन-ब्रिक्स एक आर्थिक-राजनीतिक ताक़त के रूप में उभरा और विश्व-आकर्षण का केंद्र बनने लगा है। इसकी उपेक्षा आसान नहीं है और विश्व के महत्त्वपूर्ण आर्थिक-राजनीतिक निर्णयों में इन्हें निश्चित रूप से शामिल करना होगा। इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि इन देशों की अर्थ-व्यवस्थाओं के कारण ही वर्तमान अतिमंदी का दौर उतना भयावह नहीं हो सका है, जितनी आशंका थी। अमरीका के सामने एक बड़ी चुनौती उसकी जनसंख्या की संरचना में बदलाव के कारण है। यह चुनौती आने वाले समय में उग्र से उग्रतर होती जाएगी। औसत आयु बढ़ने से सेवानिवृत्त लोगों और कार्यरत लोगों के बीच अनुपात में बदलाव का सरकार की वित्तीय स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। कार्यरत लोगों की अपेक्षा सेवानिवृत्त जनों की संख्या में लगातार तेज़ वृद्धि से पेंशन, स्वास्थ्य-सेवाओं, बूढ़े लोगों के खानपान और देखरेख के ऊपर राजस्व का हिस्सा हर साल बढ़ता जा रहा है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार वर्तमान वित्तीय संकट शुरू होने के पहले सकल घरेलू उत्पाद में सार्वजनिक ऋण का हिस्सा 44 प्रतिशत था, जो 2080 तक 716 प्रतिशत हो सकता है। सरकार के सामने भारी दुविधा है—वह बुजुर्गों के ऊपर होने वाले खर्च को घटाये या कार्यरत लोगों के ऊपर कर का बोझ बढ़ाये। एक ओर कुआँ है, तो दूसरी ओर खाई। अमरीका को यह भी चिंता सता रही है कि आर्थिक दृष्टि से उसका दुनिया में वर्तमान पहला स्थान छिन न जाए।

कतिपय आकलनों के अनुसार वर्ष 2027 तक चीन का सकल घरेलू उत्पाद अमरीका की अपेक्षा अधिक हो जाएगा। कुछ अन्य लोग ऐसा वर्ष 2040 में होने की संभावना बतला रहे हैं। यह भी कहा जा रहा है कि वर्ष 2050 तक भारत अमरीका की बराबरी में आ सकता है। जो भी हो, अगर अमरीका अन्य राष्ट्रों के मुक़ाबले पिछड़ता है, तो इसके लिए वह स्वयं ज़िम्मेदार होगा। उसने अपने सकल घरेलू उत्पाद का एक बड़ा भाग सेना और सैनिक अभियानों पर ख़र्च करना जारी रखा है। अफ़ग़ानिस्तान, इराक़ और संभवतः ईरान उसके ध्यान में अगले कुछ वर्षों तक बने रहेंगे। प्रसिद्ध आर्थिक इतिहासकार प्रो0 नॉयल फ़र्गुसन ने 'फ़ॉरेन अफ़ेयर्स' पत्रिका के मार्च-अप्रेल, 2010 के अंक में प्रकाशित अपने निबंध में लिखा है कि हिन्दु-कुश के पहाड़ों अथवा मेसोपोटामिया की समतल भूमि में पराजय अनेक बार साम्राज्यों के पतन का कारण बनी है। 1989 में अफ़ग़ानिस्तान से भागना किसी न किसी प्रकार सोवियत संघ के बिखराव का एक बड़ा कारक उसी तरह बना, जैसे सुदूर पाँचवीं सदी में मेसोपोटामिया में हार दुनिया के एक तत्कालीन बड़े साम्राज्य को ले डूबी। आज दोनों अमरीकी फ़ौजें कठिनाई का सामना कर रही हैं। क्या अमरीकी वर्चस्व पर भी विध्वंसकारी असर होंगे और वह भी डूब जाएगा? त्रुटिपूर्ण ब्रेक या ऊँघना चालक साम्राज्य की गाड़ी को भारी दुर्घटना की चपेट में डाल सकता है।

एम-112, साकेत
नई दिल्ली-110017

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्पायन द्वारा प्रकाशित
कुँवरपाल सिंह की महत्तवपूर्ण और संग्रहणीय पुस्तकें

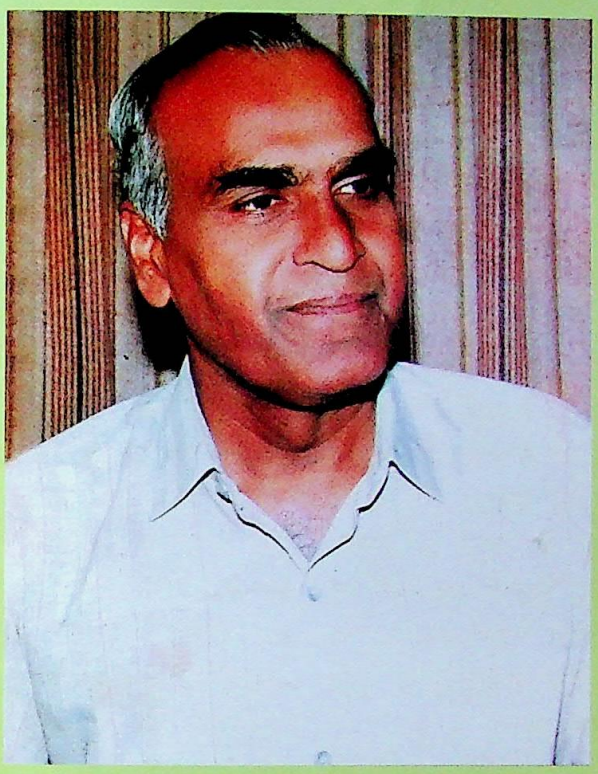

आगामी पुस्तकें

हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना	कुंवरपाल सिंह
समय संवाद	कुंवरपाल सिंह
लिए लुकाठी हाथ	कुंवरपाल सिंह
नवजागरण और हिंदी गद्य	कुंवरपाल सिंह-देवेंद्र गुप्ता

प्रकाशित पुस्तकें

१८५७ और जन प्रतिरोध	संपा. कुंवरपाल सिंह-नमिता सिंह	400.00
यशपाल : पुनर्मूल्यांकन	संपा. कुंवरपाल सिंह	600.00
राही और उनका रचना-संसार	संपा. कुंवरपाल सिंह	400.00
हिंदी उपन्यास : जनवादी परम्परा	सं. कुंवरपाल सिंह-अजय बिसारिया	225.00
मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्रा और हिन्दी उपन्यास	कुंवरपाल सिंह	200.00

पुस्तकों के लिए लिखें–

शिल्पायन

10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
दूरभाष : 011-22821174, 9810101036
e-mail : shilpayan2005@yahoo.co.in, shilpayanbooks@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
RNI पंजीकरण संख्या ४०३४२/८३ डॉक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./६३

सृजन स्मरण

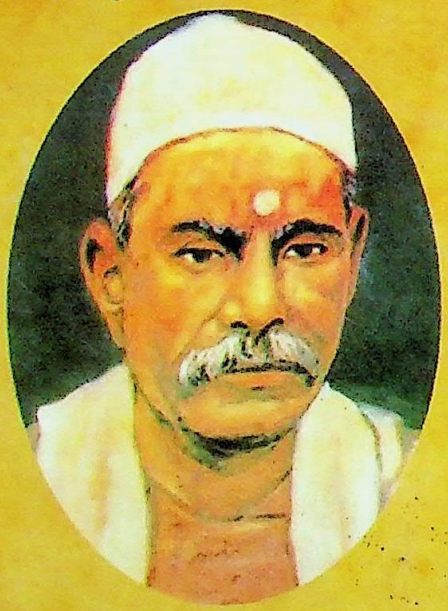

जितने प्राकृतिक पदार्थ हैं
उनका तथा उनके गुणों का
निरूपण विस्तार के साथ वेदों में है
पर जिनसे ऐहिक उन्नति
सूचित होती है या
जो उन्नति के साधन हैं
ऐसे शब्द वेदों में नहीं पाए जाते।

पंडित बालकृष्ण भट्ट
(1844-1914)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, १०२६५, लेन नं. १, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-३२ से मुद्रित तथा २८, एम.आई.जी., अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-२०२००१ से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल सिंह
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगस्त, 2010 ■ बीस रुपये

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

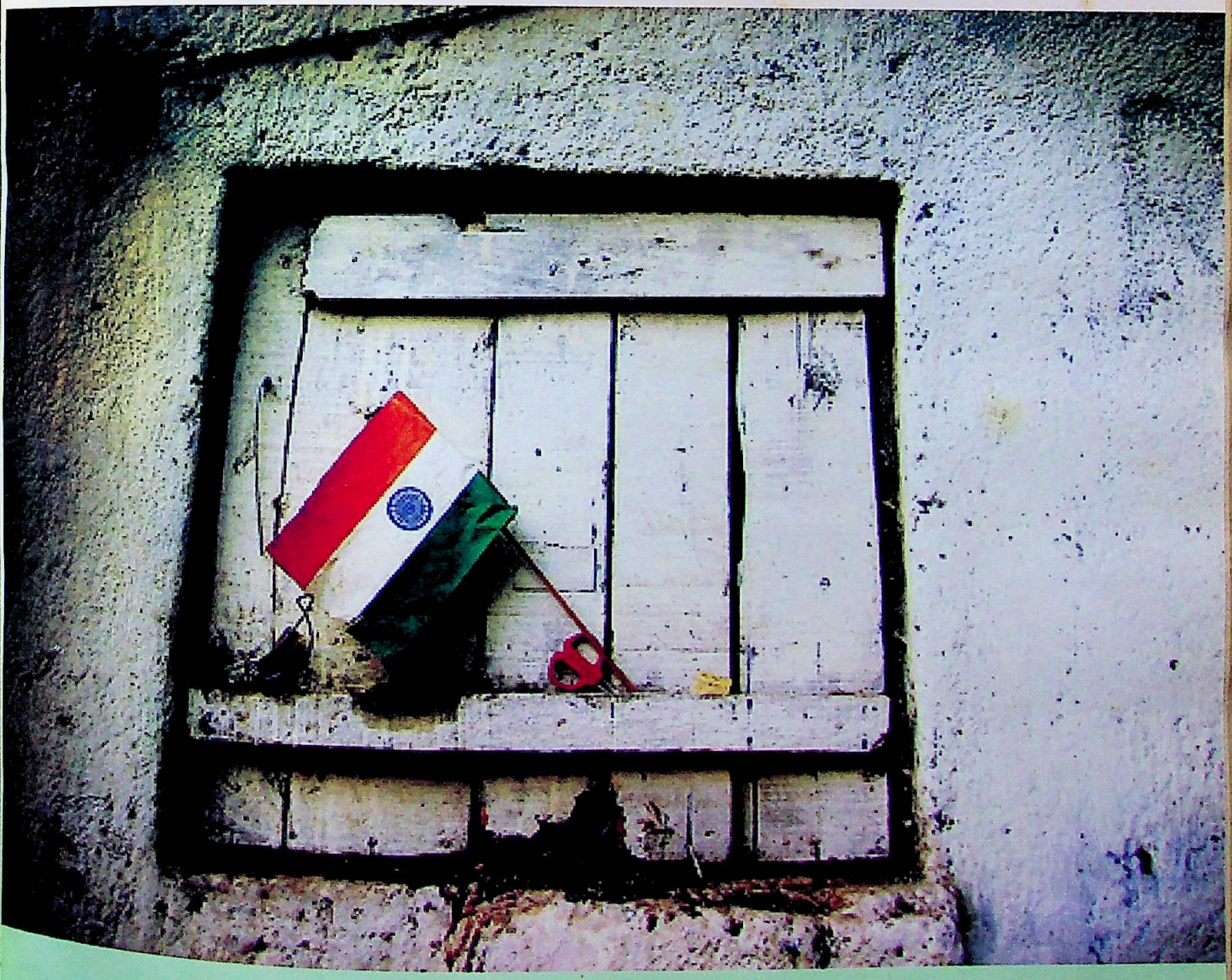

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास की राहों में आगे बढ़ते, भविष्य अपना गढ़ते

प्रदेश ने विकास की राहों पर अपनी गति बढ़ाई है।

बुनियादी अधोसंरचना निर्माण के काम में यह रफ्तार प्रदेश के इतिहास में एक कीर्तिमान है।

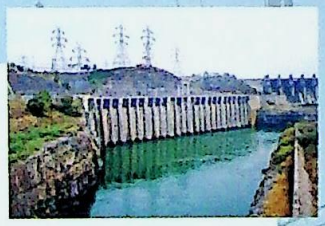

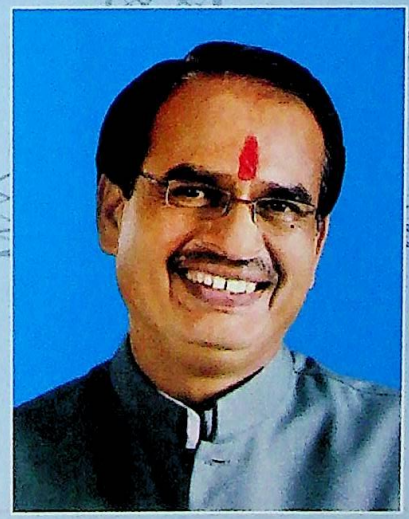

पिछले तीन सालों में -

- मध्यप्रदेश में 32942 किलोमीटर लंबाई की सड़कें बनाई।
- स्टेट रोड इंप्रूवमेंट प्रोग्राम में 544.02 करोड़ रुपयों से 6485 किमी सड़कों का नवीनीकरण हुआ।
- 1379.40 किमी मुख्य जिला मार्ग राज्य मार्ग घोषित हुए।
- ओंकारेश्वर जल विद्युत परियोजना, संजय गांधी ताप विद्युत गृह विस्तार, अमरकंटक ताप विद्युत गृह विस्तार और इंदिरा सागर बाईं नहर इकाई से कुल 1235 मेगावॉट उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई।
- निजी क्षेत्र की परियोजनाओं के लिए 45 कंपनियों से लगभग 58700 मेगावॉट के समझौते।
- पारेषण हानि का प्रतिशत 8 से घट कर 4.09% हुआ। ग्रामीण क्षेत्र के लिए अलग फीडर लाइंस को स्वीकृति।
- ट्रांसमिशन प्रणाली की क्षमता 2006-07 की 6493 मेगावाट से बढ़कर 8050 मेगावाट हुई।
- जल संसाधन और नर्मदा घाटी योजनाओं से 416.87 हजार हैक्टेयर में अतिरिक्त सिंचाई क्षमता निर्मित।

विधानसभा के विशेष सत्र में
'स्वर्णिम मध्यप्रदेश' बनाने का संकल्प पारित कर,
भविष्य का नक्शा तैयार हुआ है।

अगले तीन वर्षों के संकल्प -

- प्रदेश की विकास दर 9 से 10% तक रखी जाएगी।
- संभागीय मुख्यालयों को 4 लेन और जिला मुख्यालयों को 2 लेन सड़कों से और सभी गांवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ा जाएगा।
- चिन्हित राजमार्गों के रख-रखाव के लिए स्टेट हाइवे फंड बनेगा।
- स्थापित सिंचाई क्षमता में 7.50 लाख हैक्टेयर की वृद्धि होगी।
- सिंचाई की स्थापित क्षमता के समुचित उपयोग के लिए कमांड एरिया डेवलपमेंट प्रोग्राम सहित सभी कारगर उपाय होंगे।
- वैज्ञानिक आधारों पर जल के युक्तियुक्त दोहन की योजना बनेगी।
- बिजली आपूर्ति में सुधार के लिए कम से कम 5000 मेगावॉट की वृद्धि होगी।
- सभी तकनीकी और वाणिज्यिक हानियों में 9% की कमी होगी।

आओ बनायें अपना मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
विभूति नारायण राय

सम्पादक
नमिता सिंह

सह-सम्पादक
□ अजय बिसारिया □ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

विशेष संपादकीय सहयोग : प्रदीप सक्सेना

प्रबन्ध सम्पादक : राजीव श्रीवास्तव
शब्दांकन : विसारत अली
रेखांकन : विवेक कुमार मिश्र, झालावाड़
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

वर्ष 26 □ अगस्त, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय
28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com
Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; □ वार्षिक : 230/-; □ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 300/- □ आजीवन : 2000/- □ विदेशों में साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। केवल लोकल चैक ही स्वीकार किये जायेंगे।)

प्रकाशक, मुद्रक : डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (Uttarakhand)

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

इस अंक में

पाठक मंच/2
अपनी बात/5

लेख
भाषा, संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति और इस्लामिकेट कल्चर्स / अब्दुल बिस्मिल्लाह/15

संस्मरण
जगदीश चन्द्र और इतिहास के भीतर का सच/विनोद शाही/9

आज की बात
झारखंड एक नये सांस्कृतिक आन्दोलन का आगाज़/ सुभाष गाताड़े/36

शख़्सियत
एडवर्ड सईद : उत्तर औपनिवेशिक विमर्श में प्रतिरोधी चिंतन/ डा0 प्रभा दीक्षित/ 39

आखिरी पन्ना
सफेदपोश चोरी : एक झलक / गिरीश मिश्र/79

ग़ज़ल/कविता
आलोक श्रीवास्तव की कविताएँ/7
भिखारी के बच्चे/ सीमाकांत महापात्र/7
ग़ज़ल/राजेश रेड्डी/34
ग़ज़ल/इन्दु श्रीवास्तव/ 35
कैसा उदास मंज़र है/टीकेन्द्र शाद/40
तीन नवगीत/यश मालवीय/57
दो कविताएँ/मदन मोहन उपेन्द्र/58
मुझे लौटा दो मेरी मातृभूमि/भरत प्रसाद/59
दो कविताएँ/चन्द्रेश्वर/60
आँसू/नग़मा जावेद/ 74

कहानी
अप्रत्याशित /सुषमा मुनीन्द्र/21
खिरसू/रणीराम गढ़वाली/29
डॉली/ अनवर सुहैल/48
जेबकतरा/अखिलेश श्रीवास्तव चमन/52
जीवन का गणित/गेहूँ की बोरी/पाप/अमर गोस्वामी/44
उर्दू कहानी-एक फूल पत्थर का/रतन सिंह/41

पुस्तक चर्चा
स्वप्न जो यथार्थ बना और फिर स्वप्न में ही ढल गया/ (पूरन चंद्र जोशी) प्रदीप सक्सेना/61

पुस्तक समीक्षा
अलग से पहचानी जा सकने वाली एक आवाज़/ (जहीर कुरैशी) राजेश जोशी/69
बेमंज़िल की मुसलसल तलाश/ (निदा फ़ाज़ली) राजीवलोचन नाथ शुक्ल/70
सामाजिक सरोकार की कविताएँ/ (सुरेश उजाला) राजेन्द्र परदेसी/72
रहीम : समन्वय के सम्राट/ (प्रकाश त्रिपाठी) हितेश कुमार सिंह/73

सांस्कृतिक समाचार/75

लघु कथा
फ्रस्ट्रेशन/मोल भाव/अनुपमा/68

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वर्तमान साहित्य' का जून अंक। नमिता जी ने संपादकीय के अंतर्गत 'अपनी बात' में 'प्रेम' के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए आज के संदर्भ में इसकी व्याख्या की है। यह सही है कि आज अन्य उत्पादों की भाँति 'प्रेम' का भी व्यावसायीकरण हो रहा है। संपादकीय दिल को छू गया। डॉ0 वेद प्रकाश अमिताभ का, डॉ0 मलखान सिंह सिसौदिया पर श्रद्धांजलि-स्मरण पठनीय है। वरिष्ठ गीतकार स्व. नईम पर राम मेश्राम जी की रिपोर्ट हृदयस्फूर्ति है। स्व. नईम जी जितने अच्छे गीतकार थे, उतने ही अच्छे व्यक्ति थे। मुझे उनके गीत रिकार्ड करने का आकाशवाणी भोपाल और लखनऊ में सौभाग्य मिला है। सांस्कृतिक समाचार के अंतर्गत अनेक कार्यक्रमों के आयोजन की जानकारी मिली। अंक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

डॉ. रमेश चन्द्र शुक्ल, उन्नाव

'वर्तमान साहित्य' का जून, 2010 अंक। इस अंक में श्री योगेश चन्द्र बहुगुणा जी का संस्मरण 'माँ, ओ माँ!' बेहद मार्मिक लगा'। बहुगुणा जी ने तो हमें रुला ही दिया। ऐसे मार्मिक संस्मरण के लिए बहुगुणा जी निःसंदेह बधाई के पात्र हैं। इस अंक में नईम को याद करना दिल को भाया। काव्य रचनाओं तथा ग़ज़लों ने भी दिल को छुआ।

आपका संपादकीय 'अपनी बात' सदैव की भाँति चिंतनपरक सामग्री सौंप गया। आपका यह कहना दुरुस्त है कि 'प्रेम का अहसास भी वक़्त के साथ, परिस्थितियों के साथ बदलता है। नया स्वरूप ग्रहण करता चलता है और इसी क्रम में हमारी संवेदनशीलता भी परिवर्तनीय रूप धारण करती चलती है।'' सामग्री चयन, उत्कृष्ट है। पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए समूचे संपादक-मण्डल को मेरी हार्दिक बधाई।

मुकेश कुमार 'निर्विकार', बुलंदशहर

'वर्तमान साहित्य' का जून अंक। आपके 'संपादकीय' मे साहित्य में व्यावसायिकता पर सटीक टिप्पणी है। सच है कि पत्र-पत्रिकाओं पर और हमारे लेखकों पर बाजार का दबाव है। दबाव के सामने अविचलित खड़े रहने की ताकत संपादक और लेखक के विवेक और दायित्व-बोध पर निर्भर है। तब भी हमारे बीच आप जैसे कुछ संपादक और कई लेखक हैं-और इनमें युवा और नये भी हैं-जो गंभीरता से चीजों को देख रहे हैं और व्यक्त कर रहे हैं।

प्रेम के यथार्थ पर आपका कहना सही है। प्रेमी या तो मा दिये जाते हैं या खुद मौत को गले लगा लेते है। लेकिन फिर कुछ लोग डटे रहते हैं और जीतते हैं। जब आप 'सामाजिक यथा से दूर होती कहानियों' की चर्चा करती है तो मैं आपका ध्या दिलाना चाहूँगा कि आज हिन्दी के लेखकों के बीच वर्ग-वैष चौड़ा हो रहा है। बहुत से हमारे लेखक उच्च मध्यवर्ग के हैं, अफ़ हैं, अच्छे ओहदे पर थे या जमे हुए हैं, सरकारी या पूँजी के घरा की पत्रिकाओं में संपादक हैं व्यवसायी हैं, विश्वविद्यालय महाविद्यालयों में है। उन सबके लिए, बदलते यथार्थ में अप समाज को संपूर्णता में, उत्पीड़ित वर्ग समेत, सबको देखना कठि होता है। इस वर्ग की दूसरी नयी पीढ़ी की भी, आकांक्षाएँ, ज़रू मूल्य सब अलग होते हैं। छोटे शहरों, गाँवों, कस्बों और महानग की जन-बस्तियों में रहने वाले छोटी-छोटी नौकरियाँ, काम धं खेत-बगान करने वाले लेखकों की रचनाएँ पहचानी जा सकती हैं उनका अनुभव जगत भी बड़ा और अलग होता है, दृष्टि भी भि होती है। तो हमारे लेखक-संपादकों की जीवन-शैली में जो अं है, वह उनकी सोच और दृष्टि और अभिव्यक्ति में प्रकट होगा ही

'वर्तमान साहित्य' के जून अंक में। प्रकाश कांत, विज शर्मा, शिव अवतार पाल, विनोद पांडेय, कुमार शर्मा, मनो श्रीवास्तव की कहानियाँ इसलिए अच्छी लगी कि या तो प्रेम यथार्थ को या सामाजिक यथार्थ को बता रही हैं। कुँवरपाल सि जी बहुत याद आते हैं। उनके साथ के वे दिन बार-बार याद आ हैं। निधन के एक दिन पूर्व की उनके साथ की मेरी बातच उनकी लड़खड़ाहट के बावजूद अपनेपन से भरी दृढ़ता और विश्व के साथ थी। यही सब हमने उनसे सीखा है। हरीश भादानी, हर्ष तनवीर, कुँवरपाल सिंह, नईम और मार्कण्डेय। हमारे अग्रज पा हमारे लिए बहुत कुछ छोड़ गए हैं। उन्हें लेकर ही आगे जाना है

'समय-संवाद' बंद न करें। गिरीश मिश्र जी से लिखव वे न लिख सकें नियमित, तो अन्य किसी मित्र से लिखवायें

पुस्तक परिचय 'सुजान की पाती' का परिचय पढ़ा। मधु को बधाई। नीलम जी को भी। आपने कुँवरपाल सिंह जी की मृ को मजबूती से उठा रखा है। संपादकीय इस बात का प्रमाण

सनत कुमार, इन्दौ

'वर्तमान साहित्य' का जून, 2010 अंक मिला, लेकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके साथ ही बेदह दुख के साथ दो खबरें मिलीं। कुँवरपाल सिंह जी और नईम साहब दोनों ही इस दुनिया को अलविदा कह गये। दोनों को हम पाठकों की ओर से भावभीनी श्रद्धांजलि। संपादकीय हर बार की तरह इस बार भी बेहतरीन रहा। श्याम नरायन जी की 'बेगार करने वाले' कहानी दिल को छू गई। पुरानी प्रेमिका या पहला प्यार भी कहा जाए तो ठीक रहेगा कि अलग ढंग से 'वही शायद ठीक था' कहानी में उठाया गया, अच्छी कहानी है। शहरयार की ग़ज़ल बेहद खूबसूरत हैं। साथ ही निशांत की कविताएँ भी अच्छी लगीं।

डॉ0 सुरैया ख़ान

'वर्तमान साहित्य' जून का अंक मिला। वर्तमान साहित्य कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010 का विवरण पढ़कर अच्छा लगा। मुझे बार-बार यही लगता है कि जब तक लेखक जीता है, अपना लेखन कार्य करता है तभी तक उसकी चर्चा होती है, उसके चारों तरफ भीड़ इकट्ठी होती है। उसके जाने के बाद आदमी धीरे-धीरे उनको भूलता जाता है। वर्तमान साहित्य में उनका नाम पढ़कर पुराने दिन याद आ गये। खैर, यह तो दुनिया है। चलती का नाम गाड़ी।

अबकी जून का ग्रीष्मावकाश उपहार अंक की कहानियाँ बहुत अच्छी लगीं। 'बंधुआ' शिव अवतार की कहानी 'तीन टांग का सोफा' और सभी कहानियाँ अच्छी हैं। सभी को पढ़ने के बाद एक दर्द का अहसास होता है। कितना कुछ लिखा जा रहा, कितना कुछ लोग सोचते हैं। यही सोचकर अच्छा लगता है।

गायत्री कमलेश्वर, नयी दिल्ली

'वर्तमान साहित्य' में हर बार कुछ न कुछ नया और सार्थक पढ़ने को मिलता रहा है। दो तीन दिन पहले जून अंक मिला। काफ़ी कुछ पढ़ गई।

संपादकीय बहुत अच्छा लगा। आपने कुछ ज्वलंत मुद्दे उठाए हैं। मसलन आलोचक और संपादकों का साहित्य को विमर्श में बाँटना, मार्केटिंग और विज्ञापन तथा प्रेम का विषय और बाजारीकरण को लेकर जिस बेबाकी से आपने अपनी बात कही, वह सराहनीय है।

इस बार कविताओं के अंतर्गत डा0 रामदरश मिश्र का 'धरती' और 'फूल', पुष्पिता अवस्थी का 'अकेलापन' सुशांत सुप्रिय का 'फ़र्क' और 'यूँ आना', निशांत जी का 'पूर्व प्रेमिका को याद करते हुए' अच्छी लगी। श्यामनारायण कुंदन, विनोद पांडे की कहानी क्रमश : बेगार करने वाले तथा तीन टांग का सोफ़ा, शिव अवतार पाल का 'बंधुआ', अंबल्ला जनार्दन की तेलगू कहानी 'सुदामा रिटायर हुए' कहानियाँ ज्वलंत समस्याओं से रू-ब-रू कराती हुई, समाज और परिवार की विडंबना त्रासदी को उकेरती हुई कहीं गहरे मन को स्पर्श करती हैं।

पुस्तक परिचय के माध्यम से गुजरात की प्रथम कवियित्री-मधुमालती के बारे में जानकारी मिली तथा उनके कवित्व में सुजान की पीड़ा की अभिव्यक्ति बहुत सशक्त ढंग से उभर कर सामने आयी है।

निर्मला ठुकर, इलाहाबाद

जून अंक। 'अपनी बात' वही चुटीली भाषा जो सीधे मर्म पर वार करती है। उत्पाद की भाँति साहित्य भी आक्रामक प्रचार का अंग बनता जा रहा है-तुलना सटीक है। 'आज साहित्य पढ़ने की फुर्सत किसी को नहीं'-की चर्चा ने कुछ ज़मीनी यथार्थों की याद दिला दी। वस्तुतः साहित्य का एक पक्ष संवेदात्मक सृजनात्मक है और दूसरा है उसका व्यवहारिक होना। किसी भी समाज में उस समय की सभी परिस्थितियों का मिला जुला प्रभाव ही साहित्य का स्वरूप निर्धारित करता है। इन्हीं परिस्थितियों से जन रुचि भी प्रभावित होती है और यह तो स्थापित तथ्य है कि हर काल की वैचारिकता भिन्न होती है। भूमंडलीकरण ने आमूलचूल हिला दिया है। अब सब बाज़ारी चपेट में है-सिर्फ़ राजनीति या आर्थिक पक्ष ही नहीं, धार्मिक, सांस्कृतिक भी। भौतिक आकर्षण की चकाचौंध से कौन बच पाता है। अब जब यह सब है तो नई स्थितियाँ भी उग आई हैं। सुपर सॉनिक गति से भागती दुनिया में फुर्सत के पल हैं कहाँ-किसके पास जो वह बैठकर साहित्य पढ़े ? युवाओं के पास जब नींद पूरी करने को समय न हो-कम्पनियाँ उन्हें निचोड़े डालती हों और जैसा आपने लिखा कि 'प्रेम' सिर्फ़ शरीर तक रह गया हो-वह भी शायद सदा नहीं-तब खींचतान कर व्यक्ति जो समय निकालता है, चंद पल सांस लेने को विषयांतर यानी तनाव रहित मनोरंजन जब ढूंढ़ता है तो भोंडे हास्य की कविताएँ, रिएलिटी शोज़, चटपटे डांस शौज़, सीरियल्स या फिर अश्लील हद तक जाता, ऐंद्रीय सुख, रोमांच देता साहित्य (यदि उसे साहित्य कहें तो) मिलते हैं। ऐसे में जिस साहित्य की हम बात कर रहे हैं उसे पढ़ने की फुर्सत किसे है? यह एक कड़वी सच्चाई है। इंसान की पहली ज़रूरत है धनोपार्जन और इस धनोपार्जन में साहित्य कोई मदद नहीं करता तो क्यों पढ़े आज का युवा साहित्य ? विश्व आज ग्लोबल विलेज में तब्दील हो चुका है-नए नए विषय चुनौती बने सामने खड़े हैं। एक सवाल यह भी पैदा होता है कि विज्ञान / तकनीकी युग में हम युवकों से विशुद्ध साहित्य में रुचि रखने की उम्मीद क्यों करते हैं ? तब साहित्य के स्वरूप की चर्चा खड़ी हो जाती है।

नताशा अरोड़ा, नोएडा

'वर्तमान साहित्य' जून, 2010। कहानी अंक, कांता के बाल ने खाल से बाल निकालकर चीथ डाला। मुकुलजोशी ने अंगरेजियत की रंगरेजियत को कहानी में भरकर पीट-पीट कर धोया-अंत तक रावण लीला चलती रही। सवर्णशाही परंपरा में प्रेमप्रपंच आधुनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंद्रधनुषीय रंगों में छा चुका है। लोहा लोहे को काटेगा तो, चिंगारी पैदा होगी। राख से बारूद बना मारिया का वंश जिसे सम्हाल कर रखेगा माइकल ? आनंद का ग्रामीण क्षेत्र में बने रहना, विकास धीरे-धीरे होना—श्रम विकास का सेतु है वर्ना-अधिकारियों का भ्रष्टाचार देखते ही बनता है। साहसी कर्म से बंधुआ ने बालश्रम कानून को करीब से देखा। भ्रष्ट अधिकारियों से व्यवस्थाक्रम नरक बनता है। साहसी कार्य इन्हें हटाता है। रिटायर हुए सुदामा की सोच से अनेक बच्चे बंधुआ तो नहीं बनेंगे। जनार्दन की बहुउद्देशीय कहानी सर्वहित में सोचती है। सुशांत सुप्रिय की कविताएँ दिल को छू गई। अंक सुव्यवस्थित रहा।

यशवंत मेश्राम, राजनांदगांव (छ.ग.)

'वर्तमान साहित्य' के मई के अंक में कवि मुकुट बिहारी सरोज पर डा0 विजय बहादुर सिंह का संस्मरण तथा संस्मरण के माध्यम से उनकी कविताओं की विशेषताओं का उल्लेख अच्छा लगा। सरोज जी से मेरे भी व्यक्तिगत संबंध रहे हैं। संभवतः इसी कारण यह संस्मरण मुझे अधिक प्रभावित कर गया है। श्री वीरेन्द्र जैन का शील जी पर लिखा गया संस्मरण भी मार्मिक है और उनके आलेख के शीर्षक को चरितार्थ करता है कि "उनके सामने सदैव राह ही हारती रही।" भगतसिंह को स्मरण करते हुए "ख्यालों की खुशबू को आज़ादी का इंतज़ार' श्री विनीति तिवारी का आलेख भी उल्लेखनीय है। इस अंक में ये तीनों संस्मरण मुझे इस अंक की उपलब्धि लगे।

महिला आरक्षण बिल पर आपका संपादकीय दो टूक ढंग से सही बातों को सामने रखता है। केवल राज्य सभा में उपरोक्त बिल पारित हो जाने से इसकी कोई सार्थकता नहीं जब तक की, जैसा कि आपने लिखा है कि, "अभी अपने मुकाम तक पहुँचने के लिए इसे लंबी यात्रा करनी है, कई बाधाएँ पार करती हैं। चौदह साल पहले की यह पहल कब अपनी पूर्णता को प्राप्त होगी देखना होगा।

संतोष खरे, सतना (म.प्र.)

'वर्तमान साहित्य' का मई, 2010 अंक अपनी निरंतरता बनाए हुए कई अच्छी रचनाओं को समेटे हुए हैं। आकर्षक मुख पृष्ठ और पृष्ठों पर रेखांकन भी खूब हैं। इस अंक में मुझे खासतौर पर दो लघुकथाएँ (अशफ़ाक कादरी) बहुत पसंद आई। 'दुनियादारी और बेदखल' आज की सबसे बड़ी हकीकत है। उन्हें बधाई।

सेराज ख़ान, कोलकाता

'वर्तमान साहित्य' से मेरा रिश्ता बहुत ही पुराना है। दिवंगत कुँवरपाल सिंह जी और आपकी मेहनत ने इस पत्रिका को एक नई ज़िंदगी अता की है। इसे वे निरंतर ऊँचाई तक पहुँचाने के लिए जितनी जद्दोजहद करते रहे हैं, वैसा आज साहित्यिक पत्रकारिता में बहुत कम लोग दिखाई पड़ते हैं। कुँवरपाल सिंह जी का जाना बेहद टीस दायक था। उनकी कमी अदबी दुनिया को तो खलती रहेगी, इंसानियत के पक्षधर एक-एक आदमी को उनकी याद आएगी। उनकी स्मृति को मेरा नमन। आप उनके ख्वाबों को ताबीर तक पहुँचायेगी, ऐसा यक़ीन है। शुभकामनाओं के साथ-

अनवर शमीम, धनबाद-826001

मुझे अपने एक कवि मित्र से आपके विलक्षण संपादकत्व में प्रकाशित 'वर्तमान साहित्य' का जनवरी, 2010 का अंक मिला। अंक पुराना ही सही, किन्तु उसमें संकलित साहित्यिक एवं साहित्येतर समसामयिक चिंतनीय वैविध्यपूर्ण विपुल सामग्री ने गोया मेरे मन-प्राणों को बाँध लिया। अधिकांश सामग्री को मनोयोग से पढ़ने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पत्रिका निश्चय ही वर्तमान साहित्य के परिदृश्य को उजागर करने वाली प्रथम श्रेणी की पत्रिका है।

चिंतन, आज की बात, मीडिया, फ़िल्म शीर्षक स्तंभों में प्रकाशित साहित्येतर सामग्री भी पर्याप्त चिंतनीय व महत्त्वपूर्ण है। पुस्तक-समीक्षाएँ सार्थक व संतुलित हैं। स्व. कुँवरपाल सिंह की वसीयत क्या है, वस्तुतः वह देश और समाज के नाम उनका मानवतावादी पैग़ाम है।

भगवानदास जैन, अहमदाबाद

वर्तमान साहित्य

वर्तमान हिन्दी साहित्य
नये युग का नया साहित्य
सबकी परेशानियाँ दूर करता
प्रगति-पथपर बढ़ रहा साहित्य।
बंधनों के फंदों को तोड़ता
निराला का निराला साहित्य
प्रगति और प्रेम का संदेश देता-
पल-पल प्रगति पथ पर बढ़ रहा
दीप-ज्योति जलाता, प्राणों में प्राण भरता
टूटे दिलों को जोड़ता ये नया साहित्य।
अर्जुन के तीर सा चलता
नफ़रत को प्यार करना सिखाता
सबको एक मुख्य धारा में लाता
सबका हितकारी है ये हिन्दी साहित्य।

कुशल करण, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

पिछले कुछ समय से खाप पंचायतों का कहर बढ़ रहा है और परिवार के सम्मान के नाम पर हत्याओं का जो सिलसिला चल रहा है उसकी तीव्रता और भयावहता लगातार बढ़ती जा रही है।

कभी-कभी ऐसा दौर आता है जब लगता कि पूरा समाज सामूहिक उन्माद (मासं हिस्टीरिया) की स्थिति से गुज़र रहा है। यह सामाजिक उन्माद की स्थिति अक्सर पैदा भी की जाती है जैसा हमने 90-92 के दौर में देखा था। एक चिंगारी लगती है या लगाई जाती है। फिर उसे हवा मिलती है और देखते ही देखते आग भड़क उठती है और सब कुछ जला कर राख कर देने को उतारू हो जाती है। हाल-फिलहाल के वर्षों में यह अंधे उन्माद की स्थिति से हम लोग कई बार गुज़रे हैं। चाहे 1947 का देश विभाजन हो या 1984 के सिख विरोधी दंगे हों या राममंदिर आंदोलन के वर्षों में लंबे चले दंगों का दौर हो या फिर 2002 का गुजरात हो। इन सभी के पीछे राजनीति थी, राजनैतिक मंतव्यों से शुरू हुई चिंगारी थी। राजनीति का अब कोई धर्म नहीं होता। सिर्फ़ सत्ता का खेल होता है।

यह उन्माद जब राजनीति से हटकर सामाजिक जीवन में उतरने लगता है तब स्थिति और भयावह हो जाती है। दंगों के समय अगर आक्रमणकारी समूह में हैं तो उनका हमला झेल रहे लोग भी समूहगत होते हैं। ये समूह चाहे संप्रदाय के हों या जातिगत... मिलजुल कर सामना करने का हौसला प्रतिरोध की ताकत भी देता है। परस्पर एक दूसरे को ऐसे मौकों पर मदद की आशा भी होती है। मिल बैठकर रणनीति तय करने के लिये सिर भी जुड़ते हैं और समुदाय के रूप में अपने को पहचानने की बात भी बनती है। लेकिन जब यह हत्यायें और षडयंत्र स्वयं अपने परिवार के निकटस्थ, प्रियजनों द्वारा होने लगें तो फिर बचाव कहाँ हो... कैसे हो ? एक पूरी पीढ़ी इस हताशा के दौर से गुजरती दिखाई दे रही है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुजफ़्फरनगर जैसे शहरों से लेकर हरियाणा तक फैले इलाके में परिवार की मर्जी के खिलाफ़ शादी करके कितने ही नौजवान लड़के-लड़कियाँ अपने ही परिजनों के हाथों अपनी जान गँवा चुके हैं। मध्य और निम्न मध्यवर्गीय परिवारों में यह घटनाएँ अधिक घट रही हैं। खाप पंचायतें बार-बार बैठकें कर रही हैं और वे तो हिन्दू मैरिज एक्ट में ही बदलाव करा देना चाहती हैं। वोट बैंक का खेल यहाँ भी चल रहा है। अभी ग्रेटर नौयडा में ब्राह्मण लड़की के अपने दलित प्रेमी के साथ भाग जाने पर जिस तरह गाँव के चारों ओर नाकाबंदी कर दी गई, वह स्तब्ध करती है। सबसे बड़े दुख की बात है टी.वी. कैमरे के सामने ताल ठोककर अपने आपराधिक इरादों का ऐलान करना कि अगर हमारी लड़की वापिस नहीं आई तो हम उनकी लड़कियों को ले जायेंगे और.... ! पाकिस्तान की मुख्तारन माई की याद हो आई। वहाँ भी ऐसे ही दो कबीलों के बीच के विवाद के कारण सामूहिक बलात्कार की शिकार मुख्तारन माई हुई थी। हम भी ऐसी ही कबीलाई संस्कृति में जी रहे हैं।

सवाल इस बात का है कि कानून और व्यवस्था भी कोई चीज़ होती है? इन घटनाओं को कानून द्वारा निर्धारित अपराध के तौर पर क्यों नहीं लिया जाता ? अक्सर गिरफ़्तारियाँ होती भी हैं और नहीं भी होती हैं। ऐसे मामलों में क्या आजतक किसी को सज़ा हुई है? मामला न सिर्फ परिवार बल्कि समाज का, समुदाय का आ जाता है। समुदाय के लोग हत्या करने वालों के साथ एक हो जाते हैं। यानि परिवार के साथ-साथ पूरे समाज के लोग हत्यारे के रूप में व्यवहार करने लगते हैं। इसीलिये ऐसे अपराधों के खिलाफ़ सख्त कदम उठाने की जरूरत है।

अब यह सख्त कदम कौन उठायेगा। सबसे पहले पुलिस की भूमिका ही संदिग्ध होती है। खुद पुलिस की नज़र में प्रेम करने वाले लड़का-लड़की अपराधी हैं। इसीलिये भागे हुये जोड़े को ढूँढने में पुलिस भी मुस्तैद रहती है। जहाँ वो जोड़ा पकड़ा गया, फौरन लड़का जेल में और लड़की घरवालों के सुपुर्द। सवाल यह है कि लड़का जेल में क्यों डाला गया है। इसीलिये ताकि घरवाले लड़की के साथ जैसा चाहे सलूक कर सकते हैं!

दूसरी भूमिका पड़ोसियों की होती है। उनके सामने एक व्यक्ति मार दिया जाता है लेकिन वे चुप लगाये घर बंद करके बैठे रहते हैं। यूँ बगल के घर में क्या पक रहा है, इसकी खबर भी पड़ोसी को होती है लेकिन ऐसे मौके पर उनका पड़ोसी धर्म यह कहता है कि दखलंदाजी नहीं करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरअसल इन अपराधिक घटनाओं में पूरा समाज किसी न किसी रूप में शमिल रहता है, चाहे वह मौन स्वीकृति हो या सक्रिय भागीदारी के रूप में हो। कम से कम मध्यवर्गीय समाज के विस्तृत समूह की मानसिकता अभी भी लड़के-लड़कियों को यह आज़ादी नहीं देना चाहती कि वे अपने फैसले खुद लें। फिर अगर चली आ रही परंपरा से हटकर नई पीढ़ी के लड़के-जड़कियाँ कुछ कर रहे हों तो यह अक्षम्य हो जाता है। अपने इन फैसलों में अगर जाति या धर्म की भिन्नता भी शामिल हो गयी तब तो इन नौजवान लड़के-लड़कियों का अपराध और भी कई गुना बढ़ जाता है। फिर तो पूरा समाज एक स्वर से ऐसे जोड़ों के लिये मृत्यु दण्ड की पुकार लगायेगा।

आज जाति और धर्म के आधार पर जो सम्मान हत्यायें हो रही हैं, उनके पीछे जातीय अस्मिता का बढ़ता हुआ उन्माद है। आज समाज का रंगरूप तेजी से बदल रहा है। गाँव-देहात से लेकर शहर तक, रहन-सहन, ओढ़ना, पहनना, खाना-पीना वग़ैरह सब एक जैसे हो रहे हैं। न हो सिनेमा, थियेटर की बात, घर-घर बस रहा टी.वी. नई बन रही दुनिया जहान की झलक दिखा रहा है, प्यार-मुहब्बत के किस्सों का बखान कर रहा है। लड़कियों को स्कूल कालेज में पढ़ाना आज मजबूरी है। और कुछ न सही, शादी के लिये भी शिक्षित होना अनिवार्य बन रहा है। फिर ज़रूरत पड़ने पर नौकरी और नौकरी के साथ बाहरी दुनिया से जीवंत संपर्क... . बातें फिल्मों और टी.वी. सीरियलों के किस्से कहानियाँ तक सीमित न रहकर जीवन का अंग बनने लगती हैं और यहीं से संघर्ष की स्थितियाँ पैदा होती हैं। एक पैर घर के भीतर खूंटी से बंधा और दूसरा पैर बाहर की ओर निरंतर लंबा होता हुआ।

मध्यवर्ग की एक उलझन और है। एक ओर नित नया रूप बदलती दुनियाँ है। वैश्विक संस्कृति है, जिसकी पहुँच में नये तरह का रहन-सहन है, सौंदर्य के नये प्रतिमान हैं, साधन हैं, और इन सबसे लदाफदा बाज़ार है। आज सफलता के मानदंड बदल गये हैं। वही सफल है जो बाजार में खड़ा रह सकता है, उस के अनुरूप खर्च कर सकता है.... बाजार को उठाकर घर में ला सकता है। दूसरी ओर आम किसान की ज़िंदगी आज नये तरह के संकटों से घिरी है। मध्य और निम्न मध्यवर्ग लगातार बढ़ते आर्थिक संकट से त्रस्त है और कठिन होते जीवन में कई स्तरों पर संघर्ष कर रहा है। ऐसे संकट के दौर में, कठिन आर्थिक परिस्थितियों के दौर में उसके पास संभाल कर रखने के लिये अगर कुछ है, गर्व का अहसास कराने के लिये कुछ है तो वह है परंपरा, जातीय गौरव और सामाजिक मर्यादा! यह गर्वीली परंपरा इसीलिये धार्मिक कर्मकांड को भी बढ़ा रही है। पाखंडी बाबाओं के प्रहसन नुमा प्रवचनों में भीड़ इकट्ठा कर रही है जो आज के समय का रोना रोते हैं, घर से बाहर निकल कर कुछ कर सकने की इच्छा रखने वाली औरतों से रुष्ट रहते हैं तथा 'भारतीय' औरतों को 'बिगाड़ने' वाली विदेशी संस्कृति से सावधान करते हैं और जो 'सन्नारियों' की आदर्श छवि प्रस्तुत करते हैं। सीता, सावित्री के उदाहरण दिये जाते हैं। इसलिये अपनी परंपरा और मर्यादा की रक्षा के लिये, अपने जातीय गौरव की रक्षा के लिये प्रेमी-प्रेमिकाओं की हत्या करना मानो परिवार के सदस्यों का परम कर्तव्य हो जाता है। क्योंकि जीवन का वही एक आयाम उसके वश में है।

अतः चाहे खाप पंचायतों के फरमान हों या प्रेमियों के विरुद्ध उनके परिवार, समुदायों की हिंसक कार्यवाहियाँ हों, इनके साथ सख़्ती से पेश आना चाहिये और हत्या में केवल नामज़दों के खिलाफ़ ही नहीं बल्कि पूरे परिवार के खिलाफ़ हत्या के मुकदमे दर्ज करके सख्त सज़ा दी जानी चाहिये। पंचायत के फैसले की वजह से अगर ये हत्याएँ होती हैं वहाँ पूरी पंचायत के खिलाफ़ बिना किसी मुरव्वत और राजनीति के, कानूनी कार्यवाही होनी चाहिए।

जिस गाँव के लोग टी.वी. कैमरे के सामने प्रेमी जोड़ों की हत्या का तालिबानी फरमान सुना रहे हों वहाँ महिला संगठनों और स्वयंसेवी के सैकड़ों कार्यकर्ता सामूहिक रूप से धरना दें कि वे अपनी उपस्थिति में ऐसी घटना नहीं होने देंगे। इससे गाँव की खामोश आबादी को भी बल मिलेगा। सामाजिक प्रतिरोध की एक लंबी कतार भी ऐसे में निर्मित करनी होगी।

इसके अलावा सबसे बड़ा काम पूरे समाज की मानसिकता को बदलने का है। जहाँ दबे-कुचले हों या खाते पीते लोग, सब मन में यह सोचते हों कि हाँ, लड़की को ऐसा नहीं करना चाहिये था... कि वैसा नहीं करना चाहिये था.... वहाँ फिर कैसे बदलाव की उम्मीद की जा सकती है। मन और कर्म दोनों में ही बदलाव लाकर स्थिति सुधरेगी।

कोई खाप, कोई समुदाय, कोई समूह कानून की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसमें अगर पुलिस कार्यवाही में ढील की वजह से वारदात हो तो निश्चित रूप से प्रशासन की जवाब देही होनी चाहिये। सबसे बड़ी बात यह कि इस तरह के सामाजिक अपराध के बीच राजनीति भी नहीं होनी चाहिये। नितीश कटारा हत्याकांड में हाई प्रोफाइल राजनेता और उद्योगपति, डी.पी. यादव के लड़के के खिलाफ या कलकत्ते में रिजवानुर्रहमान की हत्या में उद्योगपति तोदी के खिलाफ और जेसिका लाल हत्याकांड में मनुशर्मा के खिलाफ मुकदमा और सज़ा इसीलिये संभव हो सकी कि जनता ने लामबंद होकर दबाव बनाया था। पारिवारिक सम्मान के नाम पर होने वाली हत्याओं के खिलाफ़ भी ऐसा ही दबाव बनाना पड़ेगा। तभी इस उन्माद की अवस्था को रोका जा सकता है और स्वस्थ समाज की आशा की जा सकती है। वरना छूत के रोग की तरह यह पागलपन बढ़ता ही जायेगा।

नीलिता

(नीलिता)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोक श्रीवास्तव की कविताएँ

बुद्ध की खोज में !

बुद्ध की खोज में तो हम ही जायेंगे
हम जो घिरे रहे दुखों से
रोग, शोक और मृत्यु
यही रहा हमारा जीवन
महाकाल की विशाल सरिता के किनारे
थके पाँव हमने जो धरती पर चिह्न बनाए
अपने कंधों पर ढोया जीवन के दुख को
जिसे कितने कल्पों, कितने युगों से
तमाम देवता, तमाम अवतार
दावा करते रहे वहन करने का

हम जो अपनी हलरेखाओं से
माटी पर फसलों के गीत लिखते रहे
हम जो मिट्टी के इस शरीर को लेकर
जूझते रहे हवा से, पानी से, काल से
शाक्य के पदचिह्न नहीं हैं हमारी बस्तियों में
कोई निशान उनके यहाँ से गुजरने का नहीं
न कोई राजाज्ञा
न कोई शिलालेख
न हाथी-दाँत या क़ीमती लकड़ी की मूर्तियाँ
न ग्रंथ, न चरित, न जातक, न भाष्य
न कोई कथा-उपकथा
कल्पना तक थक जाती है
बुद्धि सोच नहीं पाती ज़्यादा
पर देखती हैं आँखें
दुख और जीवन की संगत का राग सुनती हैं इंद्रियाँ

हम जो
मिट्टी के इस शरीर को लेकर
पीढ़ी-दर-पीढ़ी
गुजरते रहे उजाड़ बियाबानों से,
खोजते रहे आसरा
धरती पर थोड़ी-सी जगह
नींद में थोड़े से सपने
सपनों में थोड़ी-सी ख़ुशी
लड़ेंगे दुख के ख़िलाफ़ भी,
हमारे ही शरीरों से उतरी गई खाल
भस्म करेगी बेड़ियों-सलाखों का
तमाम-तमाम लोहा !

बुद्ध का पथ

"यह है पथ बुद्ध का"
—भिक्षु कहता है

सुरक्षा की दीवारों के पार
अब भी वहाँ एक अरण्य है—
रथ की एक लकीर वहाँ तक जा कर
ठहर गयी है...

हर रोज़
अब भी कोई चाहता है
दुख पर विजय

अब भी कोई विचार
चुनौती देता है दुख को।

सुजाता

सुजाता से मिलने का मन होता है

वह जो रोज़ आती थी
पास के गाँव से
न जाने किन वन-पथों को पार करती

क्या था जो खींच लाता था
उस ग्राम्य कन्या को

ग्रंथों में सुजाता नहीं है
देश में भी नहीं

सुजाता, जो न जाने कैसी थी
पर कल्पना में
अपूर्व रूपवती दिखती है
जिसकी आँखों में है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान की दीप्ति
भाल पर
गौरव

शब्द वे गूँजते

मगध के राजा की आँखों में आँसू थे
करुणा थी

एक राजा करुणा ही तो कर सकता था
नगर के बाहर
बहती नदी तट पर बैठे
तापस पर
जो छोड़ आया था राज्य
मुकुट, महल,
वैभव...

नदी की बहती धाराओं की ओर निहारते
बोधिसत्व ने कहा बिंबिसार से
शब्द वे प्रतिध्वनित होते चले गए कालों के पार
"मुझ पर करुणा न करो
करुणा उन पर करो राजन्
राजसत्ता का भार जिन्हें कुचल रहा है
जो वंचित हैं
और उन पर जो नहीं हैं
पर जिनके
मुकुट और स्वर्ण
रह गए हैं पीछे"

वह क्षण
अमर है इतिहास में
शब्द वे गूँजते
आज भी किसी विजन में
किसी नगर पथ पर
किसी सूने
उदास हृदय में
आज भी कोई माँगता है करुणा की भीख
पीड़ित मानवता के लिए
सत्ता को ठुकराता
नगर पथ से गुज़र जाता है...

ओड़िया कविता

भिखारी बच्चे की मृत्यु

सीताकांत महापात्र

सुबह को वह न था।

क्षीण चिड़िया-सी उसकी देह विश्रामी थी
सर्वसाधारण पार्क की नर्म घास पर
जीले तक इतना कोमल स्पर्श
किसी से कभी उसे, मिला न था।

तमाम रात बोझ भर तारे बैठे रहे ताकते उसको
बुझने आ रहे दीपों की हताशा
और ग्लानि समझने को
शेष होते आ रहे अभिमानी शब्द
एक बार सही, सुनने को।

वह लेकिन चुप था
आकाश के कोटि कोटि उन दीयों को
बुझती आँखों से ताक ताक
कहने को उसका कुछ न था
कहने की उसकी शक्ति न थी
आग्रह न था
इतनी बड़ी पृथ्वी के विरुद्ध
जरा भी उसका अभियोग न था।

चाँद ने अपनी कोमल किरण से
बचपन से खोई उसकी माँ की तरह
उसे सहला दिया था;
तारे सब चकचक दो पैसों की तरह
पाँच पैसों की तरह।
पास में, शून्य खोपड़ी की तरह पड़े
उसके अलमूनियम डिब्बे में खिसक टपक रहे थे
बचपन की तरह, उसी सहलाने में
पवन की लोरी सुनसुन
'ओ चंदा मामा दूर के'
सुन सुन जाने कहाँ की
काली नीद तारी हो रही थी उस पर।

सुबह को वह न था
सुबह न थी।

21, सत्यनगर, भुवनेश्वर, ओ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगदीश चंद्र और इतिहास के भीतर का सच

विनोद शाही

चौरासी के दिल्ली दंगों के बाद पंजाब का उत्तर-आतंकवादी दौर एक तरह का संक्रांतिकाल ही था। अभी बादल छँटे नहीं थे, अनिश्चय, संदेह और उम्मीदों के असहज रूप में बढ़ जाने की वजह से साफ़-साफ़ देखना और सोचना गोया स्थगित-सा हो गया लगता था। मॉडल टाउन, जालंधर वाले अपने उस घर में मैं सर्दियों की वजह से जल्द अँधेरा घिर जाने के कारण सात-सवा सात के आसपास ही मुख्य गेट पर ताला टाँग दिया करता था। ताला बंद नहीं किया जाता था, परंतु साँकल-कुंडी के अभाव में उससे काम चलाये जाने के कारण थोड़ी देर में घर आने वाले मेहमान संकोच से भर उठते थे—"क्या जल्दी ही सो जाते हैं आप लोग?"

"नहीं, नहीं, आप आइए आइए... सोना तो नौ-दस बजे के बाद ही होता है।"

उस दिन जगदीश चंद्र मेरे यहाँ उसी वक़्त के आसपास आए और ड्राइंगरूम में बैठते हुए कहने लगे, हमने यहाँ पजाब में वो दिन भी देखे हैं, जब रात को बारह-एक के क़रीब सड़कों पर अकेले चहलक़दमी करना हमारी आदत में शुमार हो गया था। मैं तो अब भी कभी-कभी रात देर से घर लौटता हूँ, पर अब सभी परेशान हो जाते हैं। मुझे कोई दो-तीन घंटे तो हो ही गये घर से निकले। रिटायर्ड आदमी को तो वक़्तकटी के लिए भी इंतज़ाम करने पड़ते हैं। आज आपका एक घंटा तो लूँगा ही।"

मैं हँस दिया। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि वे शाम होते ही अक्सर रविदास चौक से होते हुए दलित बस्तियों की ओर घूमने जाते हैं; वहाँ से लौटकर मॉडल टाउन के दशहरा ग्राउंड में आकर बैठ जाते हैं। वहाँ इस वक़्त बच्चों का क्रिकेट मैच होता है। वे उनके बीच उठे विवादों पर कभी-कभार उनकी अंपायरिंग भी करते हैं। हँसते हुए मैंने उनसे पूछा था—"और लिखते कब हैं?" तो अचानक संजीदा हो गये थे, "वह तो चलता ही रहता है, बीच-बीच में, हमेशा ही। मैं उसी सिलसिले में आया था। ऑपरेशन ब्लू स्टार पर जैसाकि आपसे मशवरा किया था, मैंने पांडुलिपि तैयार कर ली हैं। ये लीजिए, इसे पढ़ डालिए और यह लीजिए पेंसिल, जहाँ कहीं हिन्दी की अशुद्धियाँ मिलें, जैसी भी, साइड पर ठीक करके लिख दीजिए। मैं उर्दू की मानसिकता वाला लेखक हूँ, मेरी हिन्दी ऐसी ही है।"

मैं हैरान था। उन्हें कंधे पर लटकाए झोले से पांडुलिपि और पेंसिल निकालते हुए देख पूछे बिना न रह पाया—"अरे, बस तीन-चार महीने में ही पूरी किताब लिख डाली?"

"करना क्या था? सब तैयार तो था। दूरदर्शन समाचारों की कवरेज़ के लिए अक्सर अमृतसर जाना होता रहता था। संत भिंडराँवाले और दूसरे लोगों के बयानात के टेप्स और नोट्स मेरे पास थे ही। फिर, ब्लू स्टार ऑपरेशन के दौरान् मैं वहाँ फ़ौज के साथ फ्रंट लाइन पर था। मेरी डायरी बहुत काम आयी। यों, योजना बन जाने पर इस बीच मैं अक्सर आपके यहाँ आया करता था, बताइए क्यों?"

मैं मौन रहा, कौतूहल से और प्रशंसा-भाव से भी।

"मैं आपके साथ चर्चा करते हुए यह जानने और समझने की कोशिश करता रहा हूँ कि हम इस पंजाब समस्या को किन-किन नज़रियों से देखने की कोशिश कर सकते हैं। मैं आपकी इस लिहाज़ से तारीफ़ करता हूँ कि आप कई बार बड़ी गहराई में जाने की कोशिश करते हैं। आपसे बातें करके मैं अपने नोट्स और ब्यौरे दोबारा देखता था। मेरी यह किताब एक तरह से अपनी चर्चा में उठे सवालों के जवाब तलाशने की कोशिश है। आपको पढ़कर अच्छा लगेगा, पर अगर कुछ खले, तो बेबाक तौर पर कह दीजिएगा या पीछे टिप्पणियाँ दर्ज़ कर दीजिएगा यों भी, मुझे इसका कम-अज़-कम एक ड्राफ़्ट तो और तैयार करना ही है।

"आप बड़े मेहनती लेखक हैं..." कहकर मैं हँस दिया, "कितने ड्राफ़्ट बनाते हैं आप अमूमन अपनी किताबों के?"

"इसका तो एक ही ड्राफ़्ट काफ़ी होगा, पर उपन्यासों को तो कई दफ़ा... तीन-तीन बार... भी सुधारना पड़ जाता है।"

"इस किताब में आपका मूल तर्क क्या है? क्या कहना चाहते हैं आप?"

"आप इसे पढ़ लीजिए। हो सकता है, जो मैं कहना चाहता हूँ, किताब उसकी बजाय कुछ और ही कह रही हो... यों मैंने, एक दफ़ा अपने सी.एम. साहब से एक इन्टरव्यू के बाद कहा था कि सारा मामला आर्थिक है, सरकार बेरोज़गार नौजवानों के लिए दस हज़ार नौकरियों का इंतज़ाम कर दे, तो सारा मामला उलट सकता है। पर, सियासतदाँओं को लगता है कि बातें बहुत ज़्यादा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलझी हुई हैं... मैं आपके पास भी इसीलिए आता हूँ कि आप मेरी बातों को ख़ासा जटिल मानते हैं। इस तरह मुझे नया सोचने के लिए ज़मीन मिल जाती है।''

जगदीश चंद्र यहाँ मेरी जिस जटिलता और उलझाव की बात कर रहे थे, उसे मैं अपनी ताक़त मानता रहा हूँ। यहाँ उसका एक काल्पनिक चित्र दे रहा हूँ, इस रूप में कि आज के हालात पर मेरी और जगदीश चंद्र की बातचीत कैसी रही होती... मैं कहता कि मेरी समझ के मुताबिक ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद सन् चौरासी की घटनाएँ एक तार्किक अंतर्विकास की तरह घटती हैं। एक जुनून हमें दूसरे जुनून की तरफ धकेलता है, पागलपन के पीछे भी कुछ तार्किक वैज्ञानिक वजूहात होती हैं... तर्कहीन व्यवहार-संहिताएँ भी कभी-कभार यों खुद को दोहराती हैं, जैसे कि वे भी कोई इतिहास जैसी वस्तुएँ हों... उस पूरे घटनाचक्र के पूरे इक्कीस साल बाद अब हमारे मौजूदा प्रधानमंत्री उस पर राष्ट्रीय शर्मिंदगी-बोध का इज़हार करते हुए मुआफ़ी माँग रहे हैं। पीछे एक और इतिहास भी खड़ा है, जो इस वर्चस्वी पागलपन के हाथों दमित हुआ है। आतंकवाद के द्वारा दसियों हज़ार बेगुनाहों का क़त्ल, जिस पर अभी तक राष्ट्र शर्मिंदा नहीं है; कम-अज़-कम उस रूप में, जिस रूप में वह हाल ही में वर्चस्वी पागलपन के ख़िलाफ़ पश्चाताप में सिर झुकाये है। अजब यथार्थ है कि वर्चस्वी पागलपन भी इतिहास की तरह व्यवहार करता है और एक दमित इतिहास की रचना करता है। एक ऐसे दमित इतिहास की, जिस पर मौन तोड़ना वर्चस्वी पागलपन को नाराज़ करना होता है। सभ्य और धर्म-निरपेक्ष होने-दिखने की सियासतें भी अपने पीछे किसी न किसी वर्चस्वी जुनून की ताक़त को यूँ अपनाती है, जैसे कि उसे नष्ट करना चाहती हों। चाहने के ख़िलाफ़ एक ओर यथार्थ एक अतार्किक इतिहास खड़ा रहता है और उसे नष्ट करने के हमारे तरीके इतने चालाक होते हैं कि उन्हीं की वजह से वह बनता और फलता-फूलता है, लेकिन दमित दुनिया की बात कहीं कोई करता नज़र नहीं आता। कमज़ोरों की सियासत भी कोई सियासत होती है?

जगदीश चंद्र के साथ इन मुद्दों पर इतिहास के ऐसे जटिल अंतर्विरोधों पर ख़ूब और अक्सर ही बहसें हुआ करती थीं। वे एक धैर्यवान श्रोता थे और बेहद समझदार लोगों की तरह कभी, कभार और उतना ही बोलते थे, जिसकी बावत वे बहुत स्पष्ट होते थे। उनकी स्पष्टता कभी-कभार मुझे उथलेपन का आभास देती, परंतु देर-सवेर उन बातों के निहितार्थ जब मेरी पकड़ में आने आरंभ होते, तो मैं अपनी जल्दबाज़ियों के लिए ख़ुद को कोसे बिना नहीं रह पाता।

जगदीश चंद्र साहित्य में सियासत के बड़े चतुर मुख़बिर थे। एक सूचना ब्यूरो में काम करते हुए साहित्य को गंभीर कर्म की तरह निभाना, गहरे में, उनकी सियासी दृष्टि का रचनात्मक होना था। सो, मेरा आज उनकी बावत यह सोचना एकदम ग़ैरमुनासिब नहीं माना जाना चाहिए कि जिस तरह ऑपरेशन ब्लू स्टार की अंदरूनी ख़बरों को संत भिंडराँवाले के जीवित-मृत स्व के साक्षात अनुभव-प्रभावों को और सरकार के असली और प्रचारि चेहरों के बीच के फ़र्क को वे एक सीधे प्रसारण की महिमा के सा मुझ तक ले आया करते थे, उसी तरह इन दिनों वे डा. मनमोह सिंह और प्रकाश सिंह बादल के वक्तव्यों से पैदा हुए हालात औ सवालात को मेरी उपर्युक्त चिंताओं से दो-चार होते ही ज़रूर क सफ़ाई के साथ बाँधकर कह डालतेः शायद इस विचार के रूप कि यह सब पाकिस्तान के साथ नये व्यापार- संबंधों की भूमिका है या कि यह कांग्रेस में एक नये ब्यूरोक्रेटिक रूपांतर सुबूत है या फिर यह कि सरकारें नौजवानों को नौकरियाँ दे पा की अपनी असफलता को छिपाने के लिए मुख्य मुद्दे से परे हट के लिए ऐसे खेल खेला ही करती हैं। मैं नहीं जानता कि जगदी चंद्र होते, तो वे इनमें किस जवाब का चुनाव करते! यह सब कह का मेरा मक़सद केवल यह बताना भर है कि जब आप उलझे हु हालात पर इस तरह की कोई टिप्पणी करते हैं, तो बेशक आप कोई जवाब दे रहे होते हैं, न यथार्थ की तह तक जाने की कोशि करते नज़र आते हैं, परंतु आप बड़े निर्णायक अंदाज़ में वह कह हैं, जिससे जटिलताओं और उलझावों की चर्चा अस्थायी तौर अपंग और बेमानी हो उठती है। यह भी सियासत के एक खेल तरह है और जगदीश चंद्र इस खेल के माहिर खिलाड़ियों में से थे। मैं भी पहले ही से हारने की नीयत और मानसिकता के सा इस खेल में शरीक होता और जानने की कोशिश करता कि हमा पास कितने ऐसे सरलीकरण हो सकते हैं, जो हमारे सवालों इसलिए स्थगित करते हों कि हम नयी बेचैनियों से भर कर नये सवाल खोज पाएँ। मेरा और जगदीश चंद्र का रिश्ता ऐसी आत्मीय जद्दोजेहद का रिश्ता था, जिसमें हमारे पास कोई बने-बनाये बौद्धिक फ़ॉर्मूले नहीं होते थे और हम उपलब्ध फ़ॉर्मूलों हथियारों की तरह इसलिए इस्तेमाल करते थे, कि उन्हें ख़ारि करने के लिए और बेहतर बहाने और प्रमाणिक ज़मीन खोज सकें

ऑपरेशन ब्लू स्टार पर जगदीश चंद्र की किताब गो एक पृष्ठभूमि की तरह थी, जिसने उन्हें पंजाब के इतिहास विधिवत अध्ययन की ओर धकेला था। हालाँकि, इस किताब तुरंत बाद वे 'धरती धन न अपना' के अगले खंडों पर लगातार का करते रहे थे, परंतु समांतर रूप में उनके अध्ययन का नाभिक सि इतिहास और अठारह सौ सत्तावन के बाद के पंजाब के हालात औ संस्कृति पर केंद्रित था। परिधि पर 'नरककुंड में बास' तथा 'ज़म अपनी तो थी' जैसे उपन्यासों की रचना और पुनर्रचना सहज रू में होती जा रही थी। 'धरती धन न अपना' उनके जीवन और जि गये हालात की सबसे क़रीबी घटनाओं से जुड़ा था, अतः उ उपन्यास के पात्र उनके आसपास सहजता से नया जन्म पाते हु विकास करते चले जा रहे थे। फ़र्क़ इतना ही पड़ा था कि 'धरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन न अपना' का केंद्र गाँव था और 'मढ़ी का दीया' उपन्यास जालंधर की ज़मीन पर घट रहे थे—स्वयं लेखक के गाँव से शहर चले आने के समानांतर। जगदीश चंद्र एक बेहद ईमानदार लेखक थे, जिसका सुबूत यह भी है कि वे अपने उपन्यासों को उसी 'लोकेल' में रखकर लिखते थे, जिसमें वे ख़ुद रहते थे। उनके जीवन और रचना-कर्म में न स्थान का फ़ासला था, न समय का। कल्पनात्मक पुनस्सृजन जैसी वस्तु उनके यहाँ उपन्यास की स्थितियों तक महदूद थी, जिन्हें वे सामयिक इतिहास की अहम घटनाओं से चुना करते थे। वहाँ भी लैंड सीलिंग एक्ट, आरक्षण-नीति, क़ानून की नयी करतूतों के सरोकार और यहाँ तक कि पुलिस-थाने में बलात्कार जैसी घटनाओं की रिपोर्टिंग आदि को स्पष्ट प्रेरकों के रूप में आप उनकी कथा-स्थितियों के पीछे खड़ा देख सकते हैं; परंतु कथा-स्थितियों के विकास के मूल तर्क को वे सामयिक इतिहास से नहीं, अपने जीवित और जीवंत बने हुए पात्रों की आशाओं, आकांक्षाओं, सपनों और मोहभंग आदि से निकलता हुआ पाते थे। यह उनके उपन्यासों की एक बड़ी ख़ासियत है कि वहाँ सामयिक इतिहास इतने मुखर रूप में मौजूद होकर भी कथा-स्थितियों के मूल तर्क के अंतर्विकास के लिए उपस्थित हुआ मालूम पड़ता है, जैसे कि सामाजिक विकास अपने यथार्थवादी ठोस रूप में भी उनकी कथा-स्थिति की ज़रूरतों की पूर्ति के लिए निर्मित किया गया हो। मैं इसे ही उनकी कला की सहजता और श्रेष्ठता का सुबूत मानता हूँ। यह यथार्थवादी कल्पना का वह निखरा हुआ रूप है, जिसमें कल्पना अपना कल्पनात्मक विधान तक विसर्जित करके यथार्थनुमा हो उठती है। लूकाच जिसे पात्रों और स्थितियों की प्रतिनिधित्व परकता कहते हैं, उसमें भी जीवन और समाज कथा की कसौटी की तरह उसकी अहमियत और श्रेष्ठता के दस्तावेज़ों पर अपने हस्ताक्षर करते नज़र आते हैं। जगदीश चंद्र इस दूरी को, इस पारस्परिक श्रेष्ठता की कसौटी को, अपने उपन्यासों के ज़रिये ख़ारिज करने की कोशिश करते हैं। मसलन, 'नरककुंड में बास' की टैनरीज की अमानवीय नारकीय स्थितियों को पढ़ते हुए एकबारगी यह लगता है, जैसे जालंधर की एशिया की यह बड़ी चमड़ा मंडियों में से एक मंडी इसलिए यहाँ इस रूप में मौजूद थी कि यह उपन्यास उसे इस रूप में देख, पकड़ और अभिव्यक्त कर सके। और, इस क्रम में जब 'ज़मीं अपनी तो थी' को भी लिख लिया गया, तो जगदीश चंद्र पूरी तरह पंजाब के इतिहास के अध्ययन के लिए समर्पित हो गये।

अपनी मृत्यु से चार-पाँच साल पहले से वे पंजाब के उन्नीसवीं सदी से आरंभ हुए इतिहास को एक सामयिक इतिहास की तरह समझने-पकड़ने के प्रयासों में जुट गये थे। समांतर रूप में 'ज़मीं अपनी तो थी' का पुनर्लेखन चल रहा था। अब वे एक बड़ा काम करना चाहते थे। पंजाब-समस्या का जो रूप वे अपनी ब्लू स्टार वाली रिपोर्ताजनुमा किताब में चित्रित कर चुके थे, उसकी जड़ तलाशने का काम अब शुरू हो गया था। उन्हें लगता था कि महाराजा रणजीत सिंह के राज्य के विघटन-काल से इस पंजाब-समस्या की बुनियाद का ताल्लुक था, जो आगे चलकर धीरे-धीरे इस क़दर उग्र रूप धारण कर गयी। अब उनकी योजना थी—अपने जीवन के पहले ऐतिहासिक उपन्यास को लिखने की। अपनी मृत्यु से पूर्व वे इस उपन्यास को रचना आरंभ कर चुके थे। वे हमारी एक छोटी-सी मंडली के बीच बैठकर अक्सर पंजाब के इस दौर के इतिहास पर लंबी बातचीत करते, लेकिन उन्होंने कभी यह ज़ाहिर नहीं होने दिया कि वे उस उपन्यास का लेखन भी साथ-साथ आरंभ कर चुके थे। हमारी इस छोटी-सी मंडली में डॉ. सेवा सिंह, जसवीर सिंह जौहल और कभी-कभार तरसेम गुजराल भी शामिल हुआ करते थे। यह तो हमें उनके देहांत के बाद ही पता चला था कि वे अपने इस अधूरे उपन्यास के कोई पचासेक पन्ने लिख चुके थे और उन्होंने उसका नामकरण भी कर लिया था—'शताब्दियों का दर्द'।

उनकी मृत्यु के बाद मैंने उनकी किताबों और पांडुलिपियों को देखा, समेटने की कोशिश की और उनके प्रकाशन में रुचि ली। इस काम में मेरी सहायता उनके बेटे पराग वैद्य ने की। पराग ने मुझे 'ज़मीं अपनी तो थी' की दो पाँडुलिपियाँ दीं—एक पूरी थी और दूसरी अधूरी यानी पहली की दो तिहाई के लगभग आकार की। इन्हें पढ़कर मैंने पाया कि यह इस उपन्यास में पुनर्लेखन का प्रयास था। मैंने इसे संपादित करके पुनर्लिखित तथा अधूरी पांडुलिपियों को मिलाकर, कथा की संगति और विकास को ध्यान में रखते हुए, उसे अंतिम रूप दिया। यह उपन्यास, इसी रूप में, बाद में इस आशय को स्पष्ट करने वाली मेरी भूमिका के साथ राजकमल के द्वारा प्रकाशित किया गया। इस कार्य से मुझे संतोष हुआ, परंतु जब मैंने 'शताब्दियों का दर्द' के अधूरे पचास पन्ने देखे और पढ़े, तो मेरे अंसतोष और बेचैनी का ठिकाना न रहा। एक तरह से यह उपन्यास हमारा सामूहिक प्रयास भी तो था। मुझे लगा, जैसे मैंने ख़ुद एक ऐसी अधूरी, लेकिन बेहद महत्त्वपूर्ण कृति इस तरह बीच में ही छोड़ दी है कि अब वह कभी पूरी नहीं हो पाएगी।

पराग ने मुझसे कहा भी कि क्या आप इसे पूरा नहीं कर सकते? परंतु यह मेरे लिए किसी तौर पर संभव नहीं था। यों, एक दफ़ा मन भी बनाया कि मैं जगदीश चंद्र के पैतृक गाँव में चला जाऊँ, पराग के साथ कुछ समय वहाँ रहूँ और उस परिदृश्य को और माहौल को ख़ुद वहाँ के लोगों को अपना आत्मीय बनाकर जीने का प्रयास करूँ, ताकि इस उपन्यास के पात्र और स्थितियाँ मुझे इतने अजनबी न लगें कि उनका अंतर्विकास ही न हो पाए। परंतु, यह कभी संभव नहीं हुआ, मेरे भीतर उपन्यासकार कभी नुमायाँ नहीं हो पाया। वहाँ मुझे हमेशा एक चिंतक बैठा मिला है, जो सवाल तो उठा सकता है, परंतु जीते-जागते लोगों और स्थितियों की मार्फ़त उन्हें धड़कने, संघर्ष करने और फिर मर जाने की हद तक चले जाने के धैर्य को सँजोने के ख़्याल से घबरा उठता है। मैं जानता हूँ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर मुझे सही मायनों में रचनाकार होना है, तो मुझे अपने वितंडे को विसर्जित करना होगा। परंतु, फिर भी, जगदीश चंद्र हो पाना एक विरल ऐतिहासिक घटना जैसी बात ही होगी, जिसे मैं छू भर सकूँगा और आसपास से होकर निकल जाऊँगा। सो, अपनी नियति को पहचानते हुए मैंने तत्काल रूप में उसे एक टिप्पणी के साथ अपने परम मित्र देश निर्मोही को दे दिया—'पल-प्रतिपल' में छापने के लिए। लेकिन, सच्चाई यह है कि तब से अब तक यहाँ 'शताब्दियों का दर्द' मेरे अपने सीने में गहरा होकर एक शूल की तरह हमेशा अपनी मौजूदगी का अहसास बनाये ही रहा है।

इस संस्मरण को लिखने के पीछे मेरा एकमात्र उद्देश्य शताब्दियों के इस दर्द का एक अंतरंग परिचय देने की कोशिश करना है। यह एक ज़रूरी संवाद है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इसका ताल्लुक हमारे अतीत को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के साथ ही नहीं जुड़ा है; यह हमारी नियति और भविष्य दोनों के बुनियादी नक़्शों को खोजने की गहरी तड़प का पर्याय है।

तो आइए, सबसे पहले चलते हैं जगदीशचंद्र के उस पुस्तकालय में, जिसकी इस उपन्यास से ताल्लुक रखने वाली कुछ अहम किताबें इस समय मेरे सामने बिखरी पड़ी हैं।

मुझे याद आता है कि उन्होंने इन किताबों को कितने मनोयोग से इकट्ठा किया था। उपन्यास लिखने के लिए ज़रूरी होता है कि आप उस दौर के माहौल को एक तरह से दोबारा रचें, जो उपन्यास सम-समय से जुड़े होते हैं, वहाँ निरीक्षण-क्षमता और चयन-संयोजन के लिए ज़रूरी अंतर्दृष्टि से काम चल जाता है, परंतु इस उपन्यास के लिए उन्हें 1857 के ठीक बाद के समय में लौटना था। उस समय की पुनर्रचना के लिये इतिहास की किताबें एक हद तक मदद करने के बाद चुक जाती है। वे हमें वर्चस्वी इतिहास और उसमें शिरकत करने वाले पात्रों की एक झलक देती हैं और बाक़ी के असल इतिहास को—लोक-जीवन को, इतिहास के द्वारा दमित हुए पात्रों को और ख़ासतौर पर युग की उस मानसिकता को खुद पुनः रचना पड़ता है, जो यथार्थ में गहरे अंतर्विरोधों के बीच से लगातार खुद को विकसित और अन्वेषित कर रही होती है। इतिहास की घटनाएँ हमें लोक-स्मृतियों के अथाह भंडार की ओर ले जाती हैं और वे अलग-अलग जनसमूह, जातियाँ, संस्कृति व धर्म की निष्ठाएँ, एक भिन्न तरह का बाज़ार और उत्पादन की व्यवस्थाएँ वगैरह विविध जीवन-शैलियों के रूप में जीवंत मूर्त रूप पाया करती हैं। तो, जो बात मैं यहाँ आपसे साझा करना चाहता हूँ, वह यह है कि जगदीश चंद्र इस जटिल रचनात्मकता के प्रति किस हद तक सचेत और सजग थे, इसका अंदाज़ा उनके द्वारा इकट्ठा की गयी किताबों से ही लगाया जा सकता है।

इन किताबों का भी एक इतिहास है। यह पुस्तकालयों के लायक किताबों का चयन-संचयन मात्र नहीं है। इनमें अधिकांश किताबें वे हैं, जिन्हें जगदीश चंद्र ने पंजाब में विविध समयों में लगने वाले मेलों-ठेलों के दौरान, फुटपाथों पर बिकने वा किताबों के बीच से उठाया होगा। इसी तरह, कुछ किताबें ऐसी जिन्हें लगता है कि वे विविध डेरों-गुरुद्वारों या ऐसी ही कि जगहों से ख़रीद कर लाये होंगे। कुछ किताबें इतिहास की सामा किताबें हैं और कुछ उनकी नौकरी-पेशे से जुड़ी सूचना ब्यूरो किताबें भी लगती हैं। इनके अलावा कुछ नक़्शे हैं, जिनसे पंज के इस दौर की पुनर्रचना में मदद ली जाने वाली थी। मैंने इन स किताबों को उनकी मृत्यु के बाद पराग के यहाँ बोरियों में ठूँस 'दजके' में फेंक दी गयी हालत में पाया था। वह और उस परिवार अब परेशान था कि इनका किया क्या जाए! घर में इत जगह नहीं थी कि उनकी व्यवस्था का इंतज़ाम हो सके। यों भी, वे यहाँ किसी के काम की नहीं रह गयी थीं। मैंने उनमें से बहुत किताबें किसी पुस्तकालय को देने का बीड़ा उठाया। मैं और तार गुजराल उन बोरियों को दो-एक दिन खँगालते रहे। प्रकाशन लायक सामग्री-पत्र, नोट्स, टिप्पणियाँ या पांडुलिपियाँ एक कर ली गयीं। 'शताब्दियों का दर्द' के 'पल-प्रतिपल' में छप के बाद अब केवल उनका नाटक 'नेता का जनम' ही रह गया जो अभी तक अप्रकाशित था। सो, हमने एक योजना बनायी 'जगदीश चंद्र : एक रचनात्मक सफ़र' शीर्षक से एक किता संपादित कर ली, जिसमें इससे कुछ सामग्री, उनकी बावत संस्म और उनके उपन्यासों के मूल्यांकन से जुड़े उल्लेखनीय आलेखों इकट्ठा कर लिया गया। यह किताब छप रही है और जल्द ही जाएगी, परंतु 'नेता का जन्म' अभी ज्यों का त्यों पड़ा है। इस अपने एक मित्र से संक्षिप्त रूपांतर भी करवा लिया है, परंतु अ इसके लिए योग्य मंच या प्रकाशक हमें नहीं मिल पाया है। सामग्री के अलावा उनके पुस्तकालय की अधिकांश किताबों 'देशभक्त यादगार पुस्तकालय' को भेंट कर आने के बाद अब कुछ किताबें बच गयी हैं, जिनका मुझे उनके 'शताब्दियों का द उपन्यास से गहरा संबंध प्रतीत होता है। मैं नहीं जानता कि इन अंततः कहाँ और कैसा उपयोग होगा। यहाँ में उनकी एक फेहरि दर्ज कर रहा हूँ।

एक : इतिहास—जलियाँवाला बाग, हमारे पथ प्रदर्श (भेंटवार्ता अशोक कुमार मल्होत्रा), महाराजा रणजीत सिंह (सूच व लोक संपर्क विभाग, पंजाब) स्टडी पैकेज इन हिस्ट्री, मेडीव इंडिया, महाराजा रणजीत सिंह (पब्लिक रिलेशन्स, पंजाब) पंज : अ पिक्टोरियल सर्वे, पंजाब : प्लेसेज़ ऑफ़ ग्लोरियस हैरिटे पंजाब : मौज़ेक ऑफ़ रिच कल्चर, हरियाणा, मैप मास्टर : पंजा

दो : लोककथाएं— किस्सा दलीप सिंह जवाला, किस्स जियूणा मौत, किस्सा किसना डाकू और रोडू नैन, किस्सा रा जगदेव, किस्सा राजा चंदर हांस, काफियां साधु ईशर दास, किस्स सत्यवान सावित्री, किस्सा संगीत नागिन, किस्सा शाह बहराम औ हुस्नबानो, किस्सा तोता मैना, किस्सा शामो नार, किस्सा मस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुन्नु, किस्सा रूप-बसंत।

तीन : जीवन-चरित्र गुरु सायबान—श्री गुरु नानक देव जी, श्री गुरु अंगद देव जी, श्री गुरु अमर दास जी, श्री गुरु हरिगोविंद जी, श्री गुरु हरिगोविंद दर्शन, श्री गुरु हरिराय जी, श्री गुरु अरजन देव जी, श्री गुरु तेग बहादुर जी, साहिबे कमाल गुरु गोविंद सिंह, लीला पूरण भगत, श्री वचित्र नाटक सटीक (आत्मकथा गुरु गोविंद सिंह)

'शताब्दियों का दर्द' का लिखा गया शुरूआती हिस्सा उस दौर के पंजाब की बावत है, जब यहाँ महामारियों और अकाल की वजह से गाँव के गाँव तबाह हो गये थे। गाँव से बाहर जाने का मतलब था—अपनी ज़मीन और संस्कृति से अलहदा होना, परंतु जान बचाने की शर्त भी वही थी। कथानायक का इस तरह का बहिर्गमन उसे अनजान जगहों पर भटकाता है। तत्कालीन बाज़ार की अंदरूनी तस्वीर उसे पिता के मित्र एक बनिये के यहाँ मिलती है, तो प्रशासन की हृदयहीनता और निरंकुश क़िस्म के न्याय की झाँकियाँ वह सूबेदार और नवाब के अहलकारों की मार्फ़त पाता है। इस तरह, हम उन्नीसवीं सदी के अंतिम प्रहर और बीसवीं सदी के आरंभिक दौर की आमद के पूर्वाभासों तक इस अधूरे उपन्यास की मार्फ़त पहुँचते हैं। इसके बाद, इस उपन्यास को बीसवीं सदी के अंतिम प्रहर तक आना था—कोई सौ सवा सौ साल का सफ़र तय करते हुए। जिन दिनों यह उपन्यास लिखा जा रहा था, वे अक्सर डा. सेवा सिंह और जसवीर सिंह जौहल को बड़ी बारीक़ी से कोंच-कोंच कर पूछा करते थे कि उनके मुताबिक वे घटनाएँ और वह समय ठीक-ठीक कौन-सा था, जब पंजाब में हिन्दू और मुसलमानों तथा हिन्दुओं और सिखों के बीच सांप्रदायिक तनाव पैदा होकर गहराने लगता है? और यह भी कि इस समाज-सांस्कृतिक अंतर्विभाजन के कारण क्या रहे होंगे और क्या हम ठीक से इन अंतर्विभाजनों को परिभाषित और व्याख्यायित कर सकते हैं अथवा नहीं?

मुझे याद है कि इस बीच भीष्म साहनी का उपन्यास 'मय्यादास की माड़ी' छपकर आ गया था। इस उपन्यास का रचनाकाल और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क़रीब-क़रीब वही है, जिस पर जगदीश चंद्र लिखना चाह रहे थे। परंतु, यह उपन्यास पंजाब के उक्त काल के इतिहास की पर्तों को बहुत बारीक़ी से पकड़ने और उधेड़ने से बचता हुआ, गोया मूल समस्या को छूकर क़रीब से निकल जाता है। जिन सवालों को लेकर उन दिनों हम जूझ रहे थे, उनके जवाब पाने या खोजने में 'मय्यादास की माड़ी' हमारी विशेष मदद नहीं कर पा रहा था। उस उपन्यास में हम यह तो जान पा रहे थे कि ब्रिटिश हुकूमत किस तरह रेल और नयी न्याय-व्यवस्था के द्वारा और बाज़ार में आ रहे नये-नये उत्पादों की ग्लैमर वाली पकड़ के द्वारा तत्कालीन लोक-चित्त को लुभाने और अपने पक्ष में रखने में ही कामयाब नहीं पा रही थी, उसे इस बात में भी कामयाबी मिल रही थी कि वह इन तमाम सुधारों और प्रगति के मानवीय चेहरे के पीछे अपने असल मक़सद की ओर इंगित करते शोषक और दमनकारी चेहरे को छिपाये रख सके। इस यथार्थ को बखूबी चित्रित करने की वजह से यह उपन्यास एक अर्थ में भीष्म साहनी के 'तमस' के बनिस्त यथार्थ में कहीं अधिक गहरे उतरने का प्रयास करता है। वह हमारे सामंती अतीत के अंतर्विरोध को भी पकड़ता है और सांस्कृतिक आत्मा से वर्तमान में आती हुई तेजस्विता के औपनिवेशिकता-प्रतिरोधी चेतना में रूपांतरित होने की संभावनाओं की कहानी भी कहता है, परंतु यह नहीं बताता कि सिर्फ़ अंग्रेज़ों के उकसावे या उनकी विभाजनकारी नीतियों के चलते हम कैसे और किन गहरी प्रक्रियाओं के ज़रिये इस हद तक चले जाते हैं कि पहले पंजाब का विभाजन होता है—भारत विभाजन के महापरिवर्तनचक्र के तहत और फिर भी बात वहीं रुकती नहीं और हम ब्लू स्टार ऑपरेशन, प्रधानमंत्री की हत्या तथा चौरासी के दंगों तक आ पहुँचते हैं, दसियों हज़ार बेगुनाहों के आतंकवादियों की गोलियों के शिकार होने के बाद। सवाल बड़ा है, जो हमसे पूछता है कि आख़िर क्यों सांप्रदायिक अंतर्विभाजन हमारी औपनिवेशिकता-प्रतिरोधी चेतना के मुक़ाबले में उससे कहीं बड़ा साबित हो जाता है? आख़िर क्यों सत्ता के खेल और दुष्चक्र के लोकचित्त भाँपते और जानते हुए भी भेद नहीं पाता और उत्तेजना के क्षणों मे उल्टे उसी का हिस्सेदार हो निपटता है? तो क्या संस्कृति और सत्ता के गठजोड़ में कुछ ऐसी बातें हैं कि संस्कृति सत्ता का अतिक्रमण करने में अंततः सर्वदा असमर्थ रहती है—सत्ता से परे और ऊँची होने के अपने दावों के बावजूद? तो क्या पंजाब में अतीत से पोषित मुसलमानों और सिखों की सत्तावर्चस्वी मानसिकता ही उनके अंग्रेज़ों के पक्ष-विपक्ष में खड़े होने की मुख्य वजह थी? सिखों की बहादुरी, अंग्रेज़ों के साथ समझौतापरस्ती के खेल में, अपनी क़ौम से गद्दारी थी और शोषणकारी दमन में हिस्सेदारी थी एक अर्से तक मोहताज क्यों बनी रहती है? भीष्म साहनी ने 'मय्यादास की माड़ी' में एक सतनामिया चरित्र प्रस्तुत किया है। सतनामिये तथा अन्य बहुत से वैकल्पिक संप्रदाय पंजाब में सिखों-हिंदुओं के अल्पमत वाले देशभक्त जनसमूहों का पर्याय क्यों बनते हैं और औपनिवेशिकता व मौजूदा दौर की उत्तर-औपनिवेशिकता से मुक्ति पाने में इन जनसमूहों की प्रतिरोधी भूमिकाओं को गहराने व इनकी मदद से राष्ट्र-रूपांतर की संभावनाएँ तलाशने के क्या नये प्रारूप हो सकते हैं—ये सभी सवाल अनुत्तरित हैं। ये सवाल पंजाब के जन-जीवन के गहन अध्ययन की माँग उठाते हैं।

जगदीश चंद्र के साथ और फिर उनके चले जाने के बाद हम सभी मित्र एक अर्से से उस अधूरे उपन्यास से जुड़े सवालों को सुलझाने की कोशिश करते रहे हैं। एक बड़ी समस्या यह रही है कि हमारे पास अपना इतिहास नहीं हैं; जो इतिहास है, वह पंजाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के इतिहास के नाम पर इधर यानी भारत में सिखों का इतिहास है और उधर पाकिस्तान में मुसलमानों का इतिहास है। भीष्म साहनी के दोनों बड़े उपन्यास 'तमस' और 'मय्यादास की माड़ी' विभाजन से पहले के पंजाब के पचपन-साठ प्रतिशत के क़रीब मुसलमानों के जनजीवन का कोई गहरा, प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत नहीं करते। विभाजनोत्तर पंजाब में पचास से पचपन प्रतिशत सिख-समुदाय के इतिहास के आईने में पैतालीस-अड़तालीस प्रतिशत हिन्दू जनसमूहों के इतिहास की अनदेखी कर दी जाती है। इतिहास के सांप्रदायिक अंतर्विभाजन में वर्चस्व की समस्या जनेतिहास का ही दमन किया करती है और 'जन' में सभी एक ही ज़मीन पर खड़े यथार्थ में हिस्सेदारी कर रहे होते हैं—भले ही वे मुसलमान हों, सिख हों हिन्दू हों। जनेतिहास के नज़रिये से पंजाब का प्रामाणिक उपन्यास लिखा जाना अभी बाक़ी है, परंतु उससे पहले हमें उस 'इतिहास' को समझना और पकड़ना होगा, जिसका दमन वर्चस्वी सांप्रदायिक इतिहासों ने किया है।

जगदीश चंद्र जीवित होते, तो वे इस दिशा में प्रयास करने वाले संभवतः पहले रचनाकार होते।

चीमा नगर एक्स, मिट्ठापुर रो
जालंधर (पं) 1440

वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010

वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010 के लिए मौलिक, अप्रकाशित कहानियाँ आमंत्रित हैं। पुरस्कार राशि रु0 11,000.00 है, जो कमलेश्वर जी के परिवार ने इस प्रयोजन हेतु 'वर्तमान साहित्य' को प्रदान की है।

कहानियाँ साफ़ टाइप की हुई हों तथा तीन प्रतियों में हों। कहानी की हर प्रति पर लेखक का नाम व पता अवश्य हो। कहानी भेजने की अंतिम तिथि 30 सितंबर, 2010 है। लिफाफे पर **'वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार'** अवश्य लिखें।

कहानियों का चयन एक निर्णायक-मंडल द्वारा किया जायेगा। चयनित कहानी पर पुरस्कार जनवरी, 2011 में प्रदान किया जाएगा।

कहानियाँ संपादक, वर्तमान साहित्य को निम्नलिखित पते पर भेजें।

संपादक

वर्तमान साहित्य

28-एम0आई0जी0, अवन्तिका-1, रामघाट रोड, अलीगढ़

ई-मेल से भेजी कहानी प्रतियोगिता में स्वीकार नहीं की जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा, संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति और इस्लामिकेट कल्चर्स

अब्दुल बिस्मिल्लाह

देखने में ये चार चीज़ें हैं, लेकिन इन सबकी केन्द्रीय विषयवस्तु एक है। संस्कृति। विशेषतः मुस्लिम संस्कृति। विषय पुराना है, पर आजकल 'संस्कृति' शब्द ऐसा हो गया है कि जो चाहे इसका जो भी अर्थ निकाल ले और शब्द से पहले कोई भी विशेषण लगाकर अपनी सुविधा और इच्छा के अनुरूप इसकी कोई भी व्याख्या प्रस्तुत कर दे। आजकल यही सब हो रहा है।

निस्संदेह यह एक गंभीर और विचारणीय मामला है। इसलिए इस पर चर्चा करना आवश्यक है।

भाषा और संस्कृति

सबसे पहले तो इस बात पर विचार होना चाहिए कि भाषा और संस्कृति का संबंध किस रूप में जुड़ता है? क्या कोई भाषा किसी संस्कृति का निर्धारण करती है ? या, क्या संस्कृति का कोई प्रभाव भाषा पर पड़ता है ? जहाँ तक मेरी निजी समझ है, भाषा और संस्कृति का संबंध वैसा ही है जैसा कि मुँह और शरीर का। यदि मुँह और शरीर का संबंध जानने की चेष्टा की जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि मुँह भी अन्य अंगों की भाँति शरीर का एक अंग है। तो, इसी प्रकार भाषा भी संस्कृति का एक अंग मात्र है। 'संस्कृति' एक व्यापक अर्थबोधक शब्द है, जिसके अंतर्गत राजनीति, अर्थनीति, सामाजिक गठन और तमाम कलारूपों के साथ-साथ भाषा भी आती है। अर्थात् भाषा किसी संस्कृति विशेष का निर्धारण नहीं करती। उदाहरणार्थ : यदि कोई जापानी व्यक्ति फ्रेंच सीख गया तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि उसकी संस्कृति फ्रांसीसी हो गई। इसी उदाहरण से यह भी समझ लेना चाहिए कि उर्दू भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लेने मात्र से कोई व्यक्ति तथाकथित मुस्लिम संस्कृति का वाहक नहीं हो पाता।

इसके बावजूद, यह सत्य है कि भाषा संस्कृति की संरचना में सहायक होती है। इसी प्रकार संस्कृतियों का मेलजोल भाषा को भी प्रभावित करता है। इस संबंध में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। जैसे :

हमारे यहाँ, अर्थात् भारतीय संस्कृति में प्रायः प्रत्येक हिन्दू व्यक्ति का दिवसारंभ सूर्योपासना से होता है। अब अगर इसका स्रोत देखें तो वह वैदिक संस्कृत में मिलता है। ऋग्वेद में 'उषा' से संबंधित ऋचाएँ तो हैं ही, सवितृ (अर्थात् सूर्य) का जो गुणगान किया गया है, वह यदि संस्कृति में समाहित हो गया हो तो यह नितांत स्वाभाविक था। वह ऋचा इस प्रकार है :

विश्वानि देव। सवितर्दुरितानि। परासुव।
यद् भद्रम्। तन्न आसुव।

अर्थात् हे सवितृ (सूर्य देव) संपूर्ण (विश्वानि) दुर्गुणों (दुरितानि) को दूर करो (परासुव)। जो कल्याणकारी हो, उसे प्रदान करो।

दूसरा उदाहरण ऐसा है, जिसकी अनर्गल व्याख्या ने भारतीय संस्कृति में वर्णव्यवस्था को चिरस्थायी कर दिया। ऋग्वेद के 'पुरुष सूक्त' में कहा गया है :

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः
ऊरु तदस्य यद् वैश्यः पदभ्याम् शूद्रोऽजायत।

ऋग्वेद की इस ऋचा की व्याख्या डॉ. राजबली पांडेय ने अपने 'हिन्दू धर्मकोश' में इस प्रकार की है,

...ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में आदि पुरुष की कल्पना विराट पुरुष अथवा विश्वपुरुष के रूप में की गयी है। देवताओं (विश्व की विशिष्ट शंक्तियों) ने इसी पुरुष के द्वारा पुरुषमेध किया, जिसके शरीर के विविध अंगों से संसार के सभी पदार्थ उत्पन्न हुए। (पृ. 407)

इस व्याख्या में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र का उल्लेख कहीं नहीं है। लेकिन कालांतर में मनु महाराज ने इसे तोड़-मरोड़ कर इस प्रकार प्रस्तुत किया :

लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रंच निरवर्तयत्।।

-मनुस्मृति, प्रथम अध्याय, श्लोक सं. 31

और इसका अर्थ कुछ इस प्रकार किया गया कि 'लोकों की वृद्धि के लिए मुख ब्राह्मण, बाहू क्षत्रिय, उरु वैश्य, पाद शूद्र (इस क्रम से सृष्टि कर्ता ने) उत्पन्न किये।'

टीकाकार : पं. तुलसीराम स्वामी, मनुस्मृति, पृ. 9

अर्थात् शूद्र तो पाद (पाँव) के समान है। आज की भाषा में कहें तो पाँव के जूते।

कहीं यह भी देखने में आया है कि ब्राह्मण सृष्टिकर्त्ता के मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र उसके पाँवों से उत्पन्न हुए हैं।

अब कोई इनसे पूछे कि वह तथाकथित सृष्टिकर्त्ता कौन था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या ईश्वर ? जबकि वेदों में तो ईश्वर का कहीं उल्लेख ही नहीं मिलता। ईश्वर तो पैदा ही हुए हैं उपनिषदों के ज़माने में। जब यह कहा गया कि–

ईशावास्यम् इदम् सर्वं यतकिंच जगत्यामू जगत्।

लेकिन वैदिक संस्कृत से आगे बढ़कर मनुस्मृति की लौकिक संस्कृति ने एक ऐसी व्यवस्था तो बना ही दी, जिसने वर्णव्यवस्था और फिर जाति व्यवस्था को भारतीय संस्कृति के चेहरे पर एक सफ़ेद दाग़ के रूप में अंकित कर दिया। यह भाषिक व्याख्या का ही खेल है।

अब एक अन्य उदाहरण देखिए। संस्कृत में 'देव' अर्थ के लिए जो शब्द है, वह है असुर। देवता शब्द स्त्रीलिंग है, ममता की तरह। अतः देवी-देवता न कहकर देवी-देव या देव-देवी ही कहना सार्थक है। ख़ैर, अब स्थिति यह है कि विद्यार्थियों से यदि 'असुर' का विलोम पूछा जाय तो उत्तर मिलेगा 'सुर'। अब भई यह 'सुर' कहाँ से आ गया ? ज़ाहिर है कि इसके पीछे बहुत कुछ अध्यापकीय बुद्धि का योगदान है, क्योंकि अध्यापन-प्रक्रिया में विलोम शब्द बनाने के लिए या तो 'अ' लगा दिया जाता है, या हटा दिया जाता है। जैसे सुन्दर-असुन्दर या शेष-अशेष आदि।

लेकिन असुर का अर्थ राक्षस हो जाना, या उसके विलोम के रूप में सुर शब्द का प्रयोग होने लगना यह अध्यापकीय खेल नहीं है। इसके मूल में है संस्कृति। लेकिन इसे समझने के लिए इस बात को ध्यान में रखना बहुत ज़रूरी है कि हमारे यहाँ देव के लिए 'असुर' शब्द ही था, 'सुर' नहीं। यह सब बाद में हुआ, जिसके सांस्कृतिक कारण थे।

वस्तुतः देव और देवी की परिकल्पना केवल हमारे यहाँ ही नहीं, दूसरे देशों में भी थी। ईरान और अरब तक में थी। अरब के देवी-देवता थेः लात-मनात, बाल और उसकी पत्नी इस्तारात (शिव-पार्वती के समान) आदि। ईरान में देव को 'ख़ुदा' कहते थे। मगर जब भारतीय धर्म एवं दर्शन का प्रभाव वहाँ तक पहुँचा तो अपने देव को वे 'अहुर' कहने लगे। भाषा वैज्ञानिक यह जानते हैं कि फ़ारसी में हिन्दी या संस्कृत की 'स' ध्वनि 'ह' में बदल जाती है। यही वजह है कि 'सिन्धु' को उन्होंने 'हिन्दु' कहा और बाद में पूरा का पूरा देश ही हिन्दुस्तान हो गया। आज भी फ़ारसी में 'सप्ताह' को 'हफ़्त' कहा जाता है। ख़ैर, यह सब तो भाषा के स्तर पर हो रहा था, मगर जब अरब में देव-देवी की पूजा का विरोध आरंभ हुआ तो उसका परिणाम ईरान को भी भुगतना पड़ा। यहाँ यह जान लेना ज़रूरी है कि अरब में देव-देवी की पूजा का विरोध इस्लाम के आविर्भाव से पूर्व ही हो गया था और उस विरोध के जनक थे हज़रत इब्राहीम अ.स. (इससे संदर्भित एक लंबी कथा है, जिसे यहाँ प्रस्तुत करने का अवसर नहीं है।) लेकिन इस्लाम के आविर्भाव के पश्चात् तो वह विरोध और तीव्र हो गया। परिणामतः ईरानियों (जिन्हें अरब के लोग अजमी अर्थात् गूँगा कहा करते थे) के 'अहुर' (अर्थात् असुर) को दैव्य कहना शुरू कर दिया। जब उन्हें यह पता चला कि यह शब्द तो भारत में देव के अर्थ में प्रयुक्त होता है तो उन्होंने अरबी भाषा में 'देव' शब्द को दैत्य या राक्षस के अर्थ में अपना लिया। उन दिनों के अरबी साहित्य में इसका प्रयोग इसी अर्थ में होने लगा, कि... तब राजकुमार को जंगल में एक भयानक देव (यानी दैत्य या राक्षस) मिला.... आदि। ऐसे तमाम उदाहरण 'अलिफ़ लैला' जैसी किताबों में देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार, ईरान का 'अहुर' (यानी ख़ुदा) राक्षस हो गया और उनका सबसे महान पूज्य देव अहुर मज़्दः सबसे बड़ा राक्षस। ज़ाहिर है कि ये सारी बातें पलट कर हमारे देश में पहुँचीं और हमने 'असुर' को राक्षस मान लिया, देव के लिए 'अ' को हटाकर 'सु' शब्द बना लिया। हमारी-अर्थात् भारतीय-संस्कृति अनुलोम-विलोम सबकी अभ्यस्त थी, अतः हमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। मगर संस्कृति पर तो पड़ा। मात्र एक शब्द ने उसे कहाँ से कहाँ ले जाकर खड़ा कर दिया।

भाषा कभी-कभी किसी दर्शन को जन्म दे सकती है, यह तथ्य 'आश्चर्य किन्तु सत्य' की श्रेणी में आता है। भारतीय वाङ्मय जब भारत से बाहर निकलकर अरब की तरफ़ पहुँचा तो वेदांत के एक वाक्य ने ऐसा चमत्कार किया कि इस्लाम के भीतर से ही एक दूसरा ही दर्शन पैदा हो गया, जो ईरान से मध्य एशिया होते हुए हिन्दुस्तान तक आ पहुँचा और यहाँ उसने सांझी संस्कृति को विकसित करने की ऐसी भूमिका अदा की जिसका महत्व आज भी अक्षुण्ण है। उस दर्शन का नाम है सूफ़िज़्म और वेदांत का वह वाक्य था : अहं ब्रह्मस्मि (वैसे यह वाक्य मूलतः यजुर्वेद का है-शायद)। अरब के एक संत मंसूर हल्लाज़ ने इस वाक्य का अरबी भाषा में अनुवाद किया और खुल्लम खुल्ला, चिल्ला चिल्लाकर कहने लगा : अनल हक़! अनल हक़! वहाँ के सत्ताधारी वर्ग ने समझा कि यह तो खुद को अल्लाह कह रहा है और उसे सूली पर लटका दिया। क्योंकि ख़ुद को अल्लाह कहने का अर्थ था इस्लाम का विरोध और यह जघन्य अपराध की श्रेणी में आता था। बेचारों (?) को भला क्या पता कि यह आदमी तो संस्कृत भाषा का एक वाक्य को अरबी भाषा में बोल रहा है, जिसका अर्थ वह नहीं है जो वे समझ रहे थे। बताने की आवश्यकता नहीं कि अहं ब्रह्मस्मि का अर्थ है : मैं ब्रह्म हूँ। और अनल हक़ (अन्-अल-हक़) का अर्थ है : मैं सत्य हूँ। 'हक़' का शाब्दिक अर्थ तो 'सत्य' है (अन्य अर्थ भी हैं) मगर यह शब्द अल्लाह के अर्थ में रूढ़ हो गया था। यही स्थिति 'ब्रह्म' के साथ भी है। इस शब्द का अर्थ 'सत्य' है, मगर कालांतर में यह भी ईश्वर के अर्थ में रूढ़ हो गया। इसे, इस वाक्य से समझा जा सकता हैः ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या। बहरहाल, मंसूर हल्लाज़ को भले ही सूली पर लटका दिया, उसका क़त्ल कर दिया, मगर 'अन-अल-हक़' ने सूफ़िज़्म का तसव्वुफ़ नामक एक ऐसे दर्शन का द्वार खोल दिया, जिससे निकल कर तमाम महान सूफ़ी संतों ने एशियाई और ख़ासकर भारतीय दर्शन का नक़्शा ही बदल दिया। और, नक़्शा चाहे न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदला हो, उसमें एक नया अध्याय तो जोड़ ही दिया।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शब्दों की महिमा भी देखने योग्य है। जैसे : बुत, नमाज़, रोज़ा और ख़ुदा। पहले 'बुत' शब्द को लें। वस्तुतः बौद्ध मत जब भारत से निकला तो श्रीलंका और जापान की तरफ़ ही नहीं गया, उसका प्रभाव अरब और ईरान पर भी पड़ा। अरबी भाषा में बौद्धमत के कुछ सिद्धांतों का अनुवाद 'किताबुल-बुद' के नाम से हुआ। अर्थात् बुद (बुद्ध) की पुस्तक। कालांतर में यही 'बुद' शब्द 'बुत' हो गया और इसका अर्थ 'मूर्ति' के रूप में प्रचलित हो गया। मूर्तिपूजा के लिए बुत-परस्ती शब्द का प्रयोग सर्वविदित है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि भारत में गौतम बुद्ध की मानवाकृति का निर्माण कुषाण काल और कनिष्क के शासनकाल में आरंभ हो गया था। ख़ैर, कहाँ बुद्ध और कहाँ बुत। एक महानता का प्रतीक और दूसरा वर्जना का, इस्लाम ही नहीं, कुछ अन्य मतों में भी। अब रोज़ा, नमाज़ और ख़ुदा पर भी विचार कर लें। अनेक पाठकों को यह अजीब-सा लगेगा कि इन तीनों ही शब्दों का प्रयोग क़ुरआन शरीफ़ में नहीं हुआ है, जबकि इनके बग़ैर मुसलमानों का-ख़ासकर भारतीय मुसलमानों का-काम ही नहीं चल सकता। मगर होता कैसे ? क़ुरआन शरीफ़ तो अरबी भाषा में है, जबकि ये तीनों ही शब्द फ़ारसी भाषा के हैं। अरबी भाषा में तो रोज़ा के लिए 'सौम' और नमाज़ के लिए 'सलात' शब्द हैं। और ख़ुदा ? फ़ारसी में तो ख़ुदा उस देव (या देवता) को कहा जाता था, जिसकी वे पूजा करते थे। मगर इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेने के बावजूद ईरान के निवासियों ने अपने इन शब्दों को नहीं छोड़ा। वे अपने उपवास को रोज़ा और आराधना को नमाज़ ही कहते रहे। हाँ, अपने 'ख़ुदा' को उन्होंने देव या देवता के स्थान पर अल्लाह का अर्थ प्रदान कर दिया।

इस प्रकार, अगर देखा जाय तो अरब ने ईरान पर धार्मिक विजय भले ही प्राप्त कर ली हो, सांस्कृतिक विजय ईरान की ही रही। और मध्य एशिया से लेकर भारत तक-ख़ास कर उत्तर भारत तक-इस्लाम का जो सांस्कृतिक स्वरूप आया, वह ईरान का ही था, अरब का नहीं। दक्षिण भारत पर अवश्य अरब का सांस्कृतिक स्वरूप कुछ-कुछ प्रभावी रहा।

तो, यह है भाषा का सांस्कृतिक संरचना से संबंध। अब एक नया बदलाव देखने में आ रहा है। अभी तक मुसलमान लोग एक-दूसरे से विदा लेते समय 'ख़ुदा हाफ़िज़' कहा करते थे, मगर अब एक ऐसा वर्ग उभर कर सामने आ रहा है जो 'ख़ुदा हाफ़िज़' की बजाय 'अल्लाह हाफ़िज़' कहता है। स्पष्ट है कि वह वर्ग 'ख़ुदा' शब्द के पुराने अर्थ को समझते हुए उसे 'अल्लाह' के पर्याय के रूप में नहीं स्वीकार करना चाहता। (यह मात्र अरबी, फ़ारसी का मामला नहीं है।) पाकिस्तान में तो इसे लेकर एक आंदोलन ही चल पड़ा है। अब देखिए यह मनोवृत्ति संस्कृति के ऊँट को किस करवट बैठाएगी ? ख़ैर, यह तो हुई सांस्कृतिक संरचना में भाषा की भूमिका।

अब ज़रा भाषिक संरचना में संस्कृति अथवा संस्कृतियों की भूमिका की चर्चा भी कर ली जाय। इसमें कोई संदेह नहीं कि भाषाएँ कभी क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं रहीं। वे हमेशा विचरण करती रहीं। यही कारण है कि रूसी भाषा समेत यूरोप की तमाम स्लाविक भाषाओं में संस्कृत के अनगिनत शब्द मिलते हैं। इसी प्रकार भारतीय भाषाओं में भी विश्व की अन्य भाषाओं से आगत शब्द देखे या ढूँढ़े जा सकते हैं। लेकिन जब दो संस्कृतियाँ आपस में मिलती हैं (संस्कृतियाँ हमेशा मिलती हैं, टकराती नहीं।) तो कभी-कभी भाषिक संरचना में ऐसा परिवर्तन होता है, जो अमिट होकर किसी नई भाषा का रूप धारण कर लेता है। इसके दो प्रमुख उदाहरण हैं:

(1) मारीशस की क्रियोली अथवा क्रियोल

(2) और भारत की उर्दू।

क्रियोली अथवा क्रियोल भारत से मारीशस गए गिरमिटियाओं की भाषा, जो मुख्य रूप से भोजपुरी थी और फ्रेंच के मेलजोल से बनी है। और उर्दू भाषा कैसे बनी है, इसका इतिहास सर्वविदित है, इसलिए उसका विवेचन करना अनावश्यक है। हाँ, यह ज़रूर समझ लेना चाहिए कि यदा-कदा जो लोग उर्दू को विदेशी भाषा कहते रहते हैं, सामान्य जन को उनके भ्रमजाल में नहीं फँसना चाहिए। उर्दू एक भारतीय भाषा है और उसमें लिखा गया भारतीय साहित्य है। यहाँ यह भी जान लेना ज़रूरी है कि उर्दू भले ही पाकिस्तान की सरकारी भाषा हो, मगर उसका जन्म और विकास वर्तमान मानचित्र वाले भारत में ही हुआ है। पाकिस्तान के किसी ख़ित्ते से उर्दू का कोई संबंध नहीं रहा है और न है। वहाँ तो उर्दू मुहाजिरों अर्थात् देश-विभाजन के बाद भारत से गये हुए लोगों के माध्यम से पहुँची है। पाकिस्तान में उर्दू के जितने भी महान साहित्यकार हुए या हैं, उनकी जड़ें भारत में ही हैं।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि भाषाएँ और संस्कृतियाँ दोनों ही एक-दूसरे की संरचना को प्रभावित करती हैं। बस। दोनों में से किसी को किसी के परिचय का आधार नहीं बनाया जा सकता।

मुस्लिम संस्कृति

अब रही बात मुस्लिम संस्कृति की, तो एक प्रश्न है कि मुस्लिम संस्कृति किसे कहते हैं ? मुझे इस प्रश्न का सटीक उत्तर आज तक नहीं मिला। इस प्रकार का प्रश्न अध्यापकगण किसी शब्द (वह शब्द किसी भी अर्थ का बोधक हो सकता है) की परिभाषा जानने के लिए पूछा करते हैं। और परिभाषा का तात्पर्य सिर्फ़ उसी शब्द या वस्तु विशेष का बोध कराना होता है। इसीलिए परिभाषा करना बहुत कठिन कार्य है। एक कहावत है कि जहाँ छः अर्थशास्त्री एकत्र होते हैं वहाँ अर्थशास्त्र की सात परिभाषाएँ जन्म लेती हैं। अब इस बात को एक उदाहरण से समझते हैं। मान लीजिए कोई व्यक्ति पूछे कि गाय किसे कहते हैं? तो गाय की क्या परिभाषा होगी ? अगर उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षण बताए जायँ, कि गाय के चार पैर होते हैं, दो सींगें होतें हैं, एक पूँछ होती है, चार थन होते हैं, वह दूध देती है... आदि, तो ये सारे लक्षण तो अन्य पशुओं में भी होते हैं। फिर ऐसी स्थिति में गाय की विशिष्ट पहचान क्या होगी?

इसी प्रकार यदि मुस्लिम संस्कृति के बारे में कोई कहे कि मुसलमानों की संस्कृति को मुस्लिम संस्कृति कहते हैं, तो अगला प्रश्न फिर यह होगा कि मुसलमान किसे कहते हैं? अब यदि इसके उत्तर में यह कहा जाय कि वे नमाज़ पढ़ते हैं, रोज़ा रखते हैं... आदि। तो ये तो धार्मिक क्रियाकलाप हुए और धार्मिक क्रियाकलाप तो सभी धर्मावलंबी करते हैं और सबकी शैलियाँ भिन्न-भिन्न हैं। फिर अगर यह कहा जाय कि वे चार विवाह करते हैं, तो पहली बात तो यह कि यह बात सभी मुसलमानों पर लागू नहीं होती और दूसरी बात यह कि एक से अधिक विवाह अन्य धर्मों के लोग भी करते हैं। अगर कहा जाय कि वे ख़तनें कराते हैं तो ख़तने तो यहूदी भी कराते हैं और यह पूर्व इस्लामी परंपरा है। अब अगर अन्य लक्षण गिनाए जायँ कि मुसलमान लुंगी पहनते हैं, दाढ़ी रखते हैं ? गोल टोपी लगाते हैं... वग़ैरह, तो ये लक्षण भी सभी मुसलमानों पर लागू नहीं होते।

अब बची भाषा। भारतीय मुसलमानों के बारे में यह बात पूरी दुनिया में प्रचारित है कि उनकी भाषा उर्दू है। मगर क्या यह सत्य है? बंगाल का मुसलमान तो बांग्ला बोलता है। जहाँ तक उत्तर प्रदेश, बिहार या मध्य प्रदेश आदि प्रांतों का सवाल है तो वहाँ के मुसलमान भी वही बोलियाँ बोलते हैं, जो अन्य लोग बोलते हैं। यानी वे अवधी, भोजपुरी, मैथिली, छत्तीसगढ़ी आदि बोलते हैं; न कि उर्दू। उनकी जीवन-शैली भी अन्य लोगों से बहुत भिन्न नहीं है। यह अलग बात है कि उर्दू का अलिफ़, बे तक न जानने वाला मुसलमान भी सरकारी काग़ज़ों पर अपनी मातृभाषा उर्दू लिखता या लिखवाता है। मगर इसके लिए वह दोषी नहीं है, दोषी है वह वर्ग जिसने यह बात उसकी घुट्टी में डालकर पिलाई है कि तुम चूँकि मुसलमान हो इसलिए तुम्हारी मातृभाषा उर्दू है। जबकि वास्तविकता यह है, कि जिसे हम उर्दू कहते हैं (यानी अरबी-फ़ारसी-तुर्की आदि शब्दों से युक्त भाषा) उसे सिर्फ़ उर्दू के अध्यापक और विद्यार्थी बोलते हैं, या फिर शुरफ़ा-यानी अभिजात्य वर्ग के लोग। इसका तात्पर्य यह निकला कि भाषा भी मुसलमानों की पहचान नहीं है।

अब, जबकि मुसलमानों की पहचान ही सुनिश्चित नहीं है तो मुस्लिम संस्कृति की व्याख्या कैसे होगी ? यह प्रश्न मुझे उन दिनों भी उद्वेलित करता था, जब मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी.फिल् उपाधि प्राप्त करने के लिए 'मध्यकालीन हिन्दी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय' विषय पर गुरुवर डॉ. जगदीश गुप्त के साथ शोध-कार्य कर रहा था। मुझे अपने शोध-प्रबंध में बार-बार 'मुस्लिम संस्कृति' (कहीं-कहीं इस्लामी संस्कृति भी) लिखना पड़ रहा था और हर बार मुझे एक प्रश्नवाचक मनःस्थिति से दो-चार होना पड़ रहा था। मगर चारा क्या था ? आज कोई कह सकता है, कि छोड़ देते। मगर आगे क्या होता ? जीवन कैसे चलता? और वीतरागी होना मुझे क़तई नापसंद है।

ख़ैर, बीच में यह एक व्यक्तिगत प्रसंग आ गया; लेकिन यह मात्र व्यक्तिगत भी नहीं है। इसका संबंध हमारे देश की उस समाज-व्यवस्था से है, जिसमें आदमी की ही पहचान धर्म और जाति के बग़ैर संभव नहीं है। फिर संस्कृति क्या चीज़ है? हालत यह है, कि अभी तक तो साहित्य ही इसके घेरे में था (अर्थात् हिन्दी में लिखने वाला मुसलमान 'हिन्दी के मुसलमान लेखक' की श्रेणी में आता है। हिन्दी का हिन्दू लेखक या सिख लेखक तो आज तक देखने-सुनने में नहीं आया।) अब मुस्लिम संगीत और इस्लामी स्थापत्य जैसी चीज़ें भी बहुप्रचारित हो रही हैं। मुसलमान चित्रकार तो जिस स्थिति में है, उससे सब परिचित ही हैं। वस्तुतः संस्कृति एक व्यापक और गंभीर व्यंजना है, जिसके अंतर्गत जीवन के सभी पक्ष समाहित हैं। उनमें भाषा भी है और धर्म भी। अतः धर्म के आधार पर संस्कृति की पहचान करने का औचित्य समझ में नहीं आता। संस्कृतियों का विभाजन भौगोलिक अथवा जातीय (नेशन के अर्थ में) तो हो सकता है, जैसे : रूसी संस्कृति, पोल संस्कृति, फ्रांसीसी संस्कृति, ईरानी संस्कृति, अरबी संस्कृति, जापानी संस्कृति आदि; किन्तु धर्म के आधार पर संस्कृति का विभाजन करना मेरी अपनी राय में न्यायसंगत नहीं है। मुस्लिम संस्कृति कहने के पीछे यदि मुसलमानों को उपर्युक्त 'जाति' के अर्थ में लिए जाने का तर्क हो तो वह भी सही नहीं है। क्योंकि मुसलमान तो दुनिया भर में फैले हुए हैं और हर देश के मुसलमान अपने-अपने देश की सांस्कृतिक संरचना में ढले हुए हैं। विश्व के सभी मुसलमानों में यदि कोई समानता है तो वह है एकमात्र इस्लाम धर्म की आचार संहिता। (बल्कि उसे कर्मकाण्ड कहना अधिक उपयुक्त होगा।) लेकिन वहाँ भी कुछ न कुछ भिन्नताएँ हैं; मुसलमान भी शिया-सुन्नी आदि कई वर्गों में बँटे हुए हैं और उनकी आराधना-पद्धतियाँ अलग-अलग हैं।

रही बात भारतीय मुसलमानों की तो यहाँ भी सबके रीति-रिवाजों में स्थानानुसार भिन्नताएँ विद्यमान हैं। सिर्फ़ एक उदाहरण विवाह को ही लें तो समानता सिर्फ़ 'निकाह' तक सीमित है, अन्य चीज़ें उ.प्र. में अलग हैं तो म.प्र. में अलग। फिर भारतीय मुसलमान भी तो पेशागत जातियों में बँटे हुए हैं। अतः जातिगत भिन्नताएँ भी हैं, जो नगरवासियों या सिर्फ़ किताबी ज्ञान रखने वालों को नज़र नहीं आतीं। आ ही नहीं सकतीं।

ख़ैर, मान लीजिए तमाम तर्कों के बावजूद 'मुस्लिम संस्कृति' का हठ बना ही रहा तो इस देश का क्या होगा ? सबसे पहले तो हिन्दू संस्कृति का मामला आएगा। (आएगा क्या, मौजूद है।) फिर ईसाई संस्कृति, सिख संस्कृति, जैन संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, पारसी संस्कृति, आदिवासी संस्कृति... आदि न जाने कितनी संस्कृतियों की बात भी उसी तरह करनी पड़ेगी जिस तरह मुस्लिम संस्कृति की बात की जा रही है। ऐसी स्थिति में फिर भारतीय संस्कृति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या होगा? अभी तो भाषा और बोलियों के आधार पर नये-नये प्रान्त बन रहे हैं, (यहाँ उनकी आलोचना करना उद्देश्य नहीं है) कालांतर में कहीं यह न हो कि संस्कृतियों (?) के आधार पर पूरा देश ही टुकड़े-टुकड़े हो जाय।

अतः भारतीय संस्कृति के संदर्भ में जिस 'विविधता में एकता' की बात की जाती है, उसे ही सर्वोपरि रहने दिया जाय। 'मुस्लिम संस्कृति' नाम की कोई चीज़ है भी तो उसका कोई नुक़सान नहीं होने वाला है। हो-हल्ला करने से देश का अहित होने की आशंका अधिक है।

इस्लामिकेट कल्चर्स

अभी तक तो 'मुस्लिम संस्कृति' की बात की जाती थी, अब एक नई पारिभाषिक शब्दावली (टरमिनोलॉजी) सामने आई है: इस्लामिकेट कल्चर्स। हाल ही में 'तूलिका बुक्स' नामक प्रकाशन संस्थान से इरा भास्कर और रिचर्ड एलेन द्वारा लिखित एक पुस्तक आई है, जिसका नाम है : इस्लामिकेट ऑफ़ बांबे सिनेमा। ईमानदारी की बात यह है कि मैंने यह किताब नहीं देखी है, लेकिन इस किताब की वह समीक्षा पढ़ी है, जिसे प्रो0 जबरीमल पारख ने 'नया पथ' के जनवरी-मार्च, 2010 वाले अंक में लिखा है। इस समीक्षा से ही किताब के बारे में पर्याप्त जानकारी मिल जाती है। यही नहीं, पारख जी ने अपनी समीक्षा के माध्यम से जो सवाल उठाये हैं, वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अतः उक्त समीक्षा की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए ही इस नई पारिभाषिक शब्दावली पर विचार करना उपयुक्त होगा। पारख जी लिखते हैं : "...लेखकद्वय ने पुस्तक के नाम में 'इस्लामी' शब्द का उपयोग न करके 'इस्लामिकेट' शब्द का उपयोग किया है। इस्लामी संस्कृति कहने का अर्थ सिर्फ़ इस्लाम धर्म से जुड़ी संस्कृति से होता जबकि 'इस्लामिकेट' शब्द की व्याख्या लेखकद्वय ने इस्लाम धर्म से ज़्यादा व्यापक अर्थ में की है।" (नया पथ, पृ. 195)

वह व्यापक अर्थ क्या है ?

"उनके अनुसार, 'इस्लामिकेट' शब्द इस्लामी धर्म से प्रत्यक्ष जुड़ा नहीं है बल्कि यह उस सामाजिक और सांस्कृतिक संश्लिष्टता को व्यक्त करता है जो ऐतिहासिक रूप से इस्लाम और मुसलमानों से जुड़ा है, और जो न केवल मुसलमानों में बल्कि ग़ैर मुसलमानों में भी प्राप्त होता है।" (वही, पृ. 195-196)

उपर्युक्त अंश में तीन बातें ग़ौरतलब हैं :

(1) 'इस्लामिकेट' शब्द इस्लामी धर्म से प्रत्यक्ष जुड़ा नहीं है। अब सवाल यह उठता है कि जो शब्द इस्लाम धर्म से प्रत्यक्ष जुड़ा नहीं है, उसे इस्लाम के साथ नत्थी करने का औचित्य क्या है ?

(2) यह उस सामाजिक और सांस्कृतिक संश्लिष्टता को व्यक्त करता है जो ऐतिहासिक रूप से इस्लाम और मुसलमानों से जुड़ा है...

पहली बात तो यह कि यह कथन ही विरोधाभासपूर्ण है। जो शब्द इस्लाम धर्म से प्रत्यक्ष जुड़ा ही नहीं है वह ऐतिहासिक रूप से इस्लाम और मुसलमानों से कैसे जुड़ गया ? और अगर जुड़ा है तो उसका आधार क्या है? वह सिद्ध कैसे होगा ?

(3) जो (यानी सामाजिक और सांस्कृतिक संश्लिष्टता) न केवल मुसलमानों में बल्कि ग़ैरमुसलमानों में भी प्राप्त होता है।

वे ग़ैर मुसलमान कौन हैं ? हिन्दू, पारसी, ईसाई, यहूदी या कोई और ? फिर उनके लिए कौन-सी पारिभाषिक शब्दावलियाँ हैं, या हो सकती हैं?

जहाँ तक मेरी जानकारी है सी.ए.टी.ई. (इस्लामिकेट का अंतिम हिस्सा) अंग्रेज़ी के जिन शब्दों के साथ जुड़ा है उनमें यह अंत में नहीं, बल्कि पहले है। अर्थात् वह सफिक्स (परसर्ग) न होकर प्रीफिक्स (उपसर्ग) है। जैसे : कैटिकेटिक्स जिसका अर्थ होता है ईसाइयों को दी जाने वाली धर्म-शिक्षा का शास्त्र। यह शिक्षा उन्हें बपतिस्मा (अर्थात् बच्चे को पूर्णतः ईसाई बनाने) से पूर्व दी जाती थी। दूसरा शब्द है : कैटिकिज़्म जो ईसाई धर्म में प्रश्नोत्तर द्वारा निर्देश देने के लिए इस्तेमाल होता था। ईसाई धर्म के शिक्षक अथवा प्रचारक को कैटिकिस्ट कहा जाता था। इनके अलावा सी.ए.टी.ई. शब्द अलग से तो कहीं देखने में आया नहीं, जिसे किसी अन्य शब्द के अंत में लगाकर कोई विशिष्ट अर्थ निकाल लिया जाय। ध्यान रहे कि 'इस्लामिकेट' शब्द कम्युनिकेट, डुप्लीकेट या सिंडीकेट जैसे शब्दों की श्रेणी में नहीं आता, क्योंकि इसमें सी.ए.टी.ई. किसी विशिष्ट अर्थ का बोधक नहीं है। तो क्या जो बात ईसाई धर्म से संबंधित हो उसे इस्लाम तथा अन्य धर्मों से जोड़ कर 'साझा संस्कृति' (जैसा कि पारख जी ने कहा है) का बोधक या प्रतीक बना दिया जाय? यह प्रश्न गंभीर और विचारणीय है।

मगर अधिक गंभीर बात यह है कि 'इस्लामिकेट संस्कृतियों की पहचान के लिए लेखकद्वय ने कुछ सांस्कृतिक रूपों को आधार बनाया है।' (यह पारख जी ने अपनी समीक्षा में बताया है।) वे सांस्कृतिक रूप कौन से हैं ? पारख जी ने उनका उल्लेख इस प्रकार किया है : सारे संदर्भ हिन्दी या हिन्दुस्तानी फ़िल्मों से हैं)

1. स्थापत्य-जिनमें क़िले, मस्जिदें, दरगाह और मज़ार आदि हैं।

2. संगीत-जिसमें हिन्दुस्तानी और सूफ़ी संगीत को शामिल किया गया है।

3. उर्दू शायरी के कुछ खास रूप जैसे ग़ज़ल, क़व्वाली, नज़्में आदि।

4. लेखकद्वय ने तवायफ़ केंद्रित फ़िल्मों पर विचार करते हुए इन्हें भी इस्लामिकेट परंपरा का एक हिस्सा बताया है।

अब यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि लेखकद्वय भले ही अपने 'इस्लामिकेट' शब्द को तथाकथित व्यापक अर्थ में प्रयुक्त कर रहे हों, वास्तविकता यह है कि 'इस्लाम' शब्द के जुड़ते ही कोई भी शब्द 'इस्लाम से संबंधित' अर्थ में ही लिया जाएगा। 'व्यापक' अर्थ में कितने प्रतिशत लोग लेंगे, यह कहना कठिन है।

और यह जान लेना चाहिए कि कोई भी स्थापत्य कला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लामी नहीं है। 'इस्लामी' वही है, जिसे इस्लाम ने स्वीकृति दी हो। जहाँ तक इस्लामी स्थापत्य की बात है, कुरआन शरीफ़ में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। वह अरब, जहाँ बालू या बलुहीं मिट्टी और खजूर के वृक्षों के अलावा और कुछ हो ही नहीं, वहाँ इस्लाम ने भला किस स्थापत्य कला का विकास किया होगा? अपने मदीना-प्रवास के दौरान हज़रत मुहम्मद साहब ने वहाँ ज़मीन ख़रीद कर बहुत ही सादा तरीक़े से जो एक मस्जिद बनवाई थी, उसकी दीवारें कच्ची ईंटों की और छत खजूर के पत्तों की थी। क़ाबे की इमारत भी कुछ-कुछ ऐसी ही रही होगी। हाँ, उसकी दीवारों पर देवी-देवताओं के चित्र बने हुए थे, जिन्हें हज़रत मुहम्मद साहब ने मिटवा दिया था।

अरब के प्रसिद्ध इतिहासकार इब्ने ख़ल्दून ने तो अपने 'मुक़द्दमा' में यह साफ़-साफ़ लिख दिया है कि 'अरब लोग कलाओं से सब क़ौमों की अपेक्षा दूर रहते हैं।' (इब्ने ख़ल्दून का मुक़द्दमा, पृ. 444)

वे यह भी कहते हैं कि अरब बदवी (अर्थात् बंजारों) का जीवन व्यतीत करते हैं। वे नागर जीवन, नगर की संस्कृति तथा कला-कौशल से अपरिचित होते हैं। (वही, पृ. 444)

एक स्थान पर इब्ने ख़ल्दून यह ज़रूर बताते हैं कि उमय्या काल में मस्जिदों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया गया... (और) स्थानीय शैलियों के आधार पर मेहराब, मक़सूरा (छोटा, विशिष्ट कमरा, हुजरा) एवं गुम्बद के निर्माण की कला को उन्नत किया। (वही, पृ. 20)

बाद में मीनारें आदि भी बनीं। विशाल भवन भी बने, मगर महलों के निर्माण में कोई प्रगति नहीं हुई। (वही, पृ. 20)

ध्यातव्य है कि मेहराब, मक़सूरा, गुंबद, मीनार आदि जो कुछ भी बने उसका आधार 'स्थानीय शैली' थी, न कि इस्लामी स्थापत्य कला। वस्तुतः हिन्दुस्तान समेत तमाम मुस्लिम मुल्कों (?) में जो स्थापत्य कला देखने में आती है, वह या तो ईरान की है या फि टर्की की। संगीत के मामले में तो 'इस्लामिकेट' वाले खुद ही मान हैं कि उसमें हिन्दुस्तानी और सूफ़ी (इस्लामी नहीं) संगीत शामि है।

जहाँ तक शाइरी का सवाल है तो 'ग़ज़ल' का जन्म और विकास अरब में इस्लाम से पहले ही हो गया था। इस्लाम के आविर्भाव के बाद तो वह विश्व ईरान की ओर प्रस्थान कर गई और वहीं से मध्य एशिया होते हुए भारत तक आ पहुँची।

क़व्वाली का जन्म भी सूफ़ी ख़ानकाहों में हुआ है, किसी इस्लामी संस्थान में नहीं। और नज़्में तो संभवतः अंग्रेज़ी कविता के प्रभाव से आई हैं।

तवायफ़ों के संदर्भ में तो 'इस्लामिकेट' के आविष्कर्ताओं ने हद ही कर दी। मानो इस्लाम से पूर्व भारत में ऐसी कोई 'जाति' थी ही नहीं। फिर गणिकाएँ और रूपाजीवाएँ क्या थीं ?

प्रो0 जबरीमल पारख ने अपनी समीक्षा में निष्कर्षतः यह कह ही दिया है कि 'जिसे इस्लामिकेट संस्कृति के रूप में प्रस्तु किया गया है, क्या उसे इस्लाम के साथ जोड़कर देखना उचित है .. इसी तरह ग़ज़ल, क़व्वाली या अन्य कलारूपों को इस्लामिके कहना उनकी सेक्युलर पहचान को कमतर करके आंकना है (नया पथ, पृ. 199)

यहाँ सिर्फ़ यह जोड़ना ज़रूरी है कि संस्कृति के सा मुस्लिम, इस्लामी या इस्लामिकेट जैसे किसी भी विशेषण को जोड़ संस्कृति की मूल व्यंजना के विरुद्ध है। साथ ही घातक भी।

प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्य
हिन्दी विभा
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नयी दिल्

इस अंक का रेखांकन

विवेक कुमार मिश्र

टाइप-।।।, भू-तल-2
सिविल लाइन्स
झालावाड़ (राजस्थान)
मोबाइल : 09414595515

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रत्याशित

सुषमा मुनीन्द्र

लड़का–

नाम–रूपक, आयु–तीस वर्ष, शिक्षा–एम.बी.बी.एस., पद–आर्मी में मेडिकल आफ़ीसर। ख़ूबसूरत भी और ख़ूबसूरत होने का अहसास भी। विगत पाँच वर्षों से इसके लिए लड़की देखी जा रही है। अपेक्षित लड़की अब तक नहीं मिली। लड़की चिकित्सक हो, सुंदर, आधुनिक, लंबी हो। फ़र्राटा अंग्रेज़ी बोले। कार चला ले। तमाम गुण, जो लड़की को बुद्धिमती साबित करें। ऐसी विलक्षण कन्या शायद मिल जाती, यदि इसके पिता इसका मूल्य चालीस-पचास लाख न आँक रहे होते। होते-होते इसकी अपेक्षाओं का पतन होता गया, अतः एम.बी.ए., एम.एस-सी लड़की भी चलेगी।

लड़के के माता पिता–

माँ का नाम गंगी। आठवीं पास गृहिणी। पिता शिक्षक हैं और गुरुजी कहे जाते हैं। दो बेटियों को ब्याह कर कंगाल हो चुके हैं, अतः रूपक के ब्याह से माला-माल होना चाहते हैं। पाँच साल पहले जब रूपक को नयी-नयी नौकरी मिली थी, इनकी आर्थिक आकांक्षा चालीस-पचास लाख पर थी। आँकड़ा सुन कन्या पक्ष का दम फूल जाता। अब अपना अपराध स्वीकार करते हुए गुरुजी रूपक को घटी दरों पर ब्याहने को तैयार हैं। रूपक जब भी आता है, याद दिला देता है कि आपके लोभ के कारण अच्छे प्रस्ताव हाथ से निकल गये। गुरुजी का अपराध-बोध बहुत बढ़ जाता है।

लड़की–

नाम–काशी, आयु–चौबीस वर्ष, शिक्षा–एम.एस-सी. (बायो टेक)। अति सुंदर। फ़र्राटा अंग्रेज़ी से तमाम लोग अनुमान लगाते हैं कि यह आधुनिक लड़कियों की तरह तेज़, कुतर्की, परंपराभंजक और प्रदर्शनप्रिय होगी, जो कि नहीं है। आरंभिक रुचि में राजपत्रित अधिकारी रखे गये थे। क़ीमत जो भी देनी पड़े। दो साल में समझ गये कि मनोवांछित वर मिलना कठिन है, तो अब अरमान उतार पर हैं।

लड़की के माता-पिता–

माँ का नाम–मधु, एम. ए.। पिता–सदानंद, ख़ानदानी जायदाद और खानदानी वकालत। ज़ाहिर है, समृद्ध पृष्ठभूमि के स्वामी, यू.पी.एस.सी. चयनित अधिकारी का सौदा न कर सके, तो अब रूपक के लिए प्रस्ताव लेकर जा रहे हैं।

रविवार को जब सदानंद की स्कार्पियो गुरुजी के दरवाज़े पर रुकी, गुरुजी हुलास से भर गये। कभी इनके घर गाड़ियाँ तादाद में आती थीं। इधर दिनों बाद आयी। गुरुजी ने सदानंद का स्वागत किया। गंगी पानी और कई दिनों का बासी कलाकंद ले आयी–"धूप में आये हैं, कुछ खाकर ही पानी पीजिए।"

सदानंद ने हाथ जोड़े, "लड़की वाला हूँ, खाना उचित न होगा।

गुरुजी हुलहुला गये, "लीजिए। अभी उचित है।"

छोटा टुकड़ा मुँह में दबा सदानंद के रूपक की फ़्रेम्ड तस्वीरों का अवलोकन किया। रूपक इस निम्न औसत परिवार की संपदा और संप्राप्ति है।

गुरुजी बताने लगे "यही हैं डॉक्टर साहब। इस तस्वीर में वे सियाचिन में हैं, इसमें जम्मू में, त्रिवेंद्रम में, उसमें... सदानंद जी, असंख्य लोग प्रस्ताव लेकर आ चुके हैं, पर डॉक्टर साहब को लड़की पसंद नहीं आती। लोगों ने दुष्प्रचार कर दिया कि मैं लोभ दिखाता हूँ, इसलिए लड़के की शादी नहीं हो रही है। मैं आपको लोभी लगता हूँ? अरे मैं ज़मीन से जुड़ा आदमी हूँ। हाँ स्पष्ट बात करता हूँ, आप इसे अपराध कहें, तो कह लें।"

सदानंद विनयी बने रहे "अपराध कैसा ? बेटा आपका है, अपनी इच्छा बताएँ, यह आपका अधिकार है।"

गुरुजी दम्म से फूल गये "चलिए, आप लड़के वालों का दर्द समझते हैं। हम लड़के वाले प्राथमिकताएँ तय करते हैं, तो बदनाम हो जाते हैं; जबकि लड़की वाले भी योजना बनाते हैं, प्राथमिकताएँ तय करते हैं... लड़का सभ्य हो, सुंदर, सुशिक्षित, कमाऊ हो। अब एक चीज़ और देखी जाने लगी है, लड़के का परिवार छोटा हो कि लड़की को कुछ ख़ास ज़िम्मेदारी न उठानी पड़े। यानी लड़की वालों को पूरी सुख-सुविधा और अच्छा बंदोबस्त चाहिए। तब दहेज़ तो बढ़ेगा। रूपक यदि बेरोज़गार होता, तो आप मेरे घर न आते। देखिए, कुछ बातें अशोभन लगती हैं, पर सच होती हैं।"

"ठीक फ़रमाते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुजी मुद्दे पर आये "लड़की की तस्वीर और बायोडाटा लाये हैं न? और गंगी तुम क्या सुस्त बैठी हो? बढ़िया लस्सी बनाओ।"

गंगी भीतर चली गयी। सदानंद ने सफ़ेद लिफ़ाफ़े से काशी की तस्वीर निकालकर गुरुजी को पकड़ा दी।

गुरुजी ने तस्वीर को पास से... दूर से... कई कोण से देखा—"लड़की क्या इतनी ही ख़ूबसूरत है जितनी तस्वीर में है? कुछ लोग तस्वीर पता नहीं किस स्टूडियों में उतरवाते हैं कि फ़ोटो सुंदर होती है और लड़की देखने जाओ तो, अरमान पानी हो जाते हैं।"

"लड़की अच्छी है"

"तब हम निश्चिंत हुये। लेन-देन की कुछ बातें हो जाएँ, तो अच्छा होगा। स्पष्ट बात करना दोनों पक्षों के लिए सुविधाजनक होता है।"

"बताएँ साहब।"

"मेरी एक ही साध है—लोगन कार, बाकी आप अपना संकल्प कहें।"

"बीस लाख का संकल्प है। कार इसी में शामिल रहेगी।"

गुरुजी पंद्रह में पट जाते। रकम उनकी आशा से अधिक थी। खुश हो गये "आपकी बात रही। अब कहें मैं लोभी लगता हूँ? लोगों ने ऐसा खलनायक बना दिया।"

"रूपक की तस्वीर मिल जाती, तो मैं घर में दिखा देता।"

"हाँ, हाँ..." सदानंद ने स्टील के बड़े गिलास भर लस्सी पी और तस्वीर ले घर पहुँचे। मधु ने तस्वीर काशी को दिखायी "रूपक सुंदर है न?"

काशी प्रभावित हुई, लेकिन बोली "चिपकू।"

सदानंद बताने लगे, "मधु, देख आया रूपक का घर-द्वार। साधारण लोग हैं। समझ लो, उस घर में कुछ है, तो रूपक है.... बस।"

मधु ने संतोष ज़ाहिर किया, "अच्छा है न। हमसे कम स्तर रहेगा, तो शान नहीं दिखा सकेंगे। काशी को यहाँ तो रहना नहीं है। रूपक के पास रहेगी। दान-दहेज़ की चर्चा हुई?"

"हाँ। लोगन उनकी च्वॉइस है। बाक़ी मैंने अपना संकल्प बता दिया है।"

काशी ने बुरा मुँह बनाया "लोगन देखी है उन्होंने?"

सदानंद ने उसे स्नेह से निहारा, "काशी तुम मेरी एक ही बेटी हो। हमें तो देना ही है। भगवान का दिया बहुत- कुछ है। तुम्हारे विधान भैया का यह एम.बी.ए. लास्ट सैम है, फिर उसे भी जॉब मिल जाएगा। सब अच्छा है। सबसे अच्छा है कि यह स्थानीय परिवार है। कहीं दूर रिश्ता हो, तो तमाम डर हैं मेरे मन में।"

तीसरे दिन गुरुजी फ़ोन पर थे—"डॉक्टर साहब से फ़ोन पर बात हुई। काशी की तस्वीर उन्हें मेल कर दी है। उन्होंने कहा है कि हम लोग काशी को देख लें। फिर आगे मामला बढ़े।"

सदानंद उत्साहित हुए, "आप लोग शाम को आएँ। ड्राइवर भेज दूँगा।"

मधु हड़बड़ा गयी, "काशी, मैं तैयारी कर लूँ, तुम ब्यूटी पार्लर क्यों नहीं चली जातीं?"

काशी अड़ गयी, "मैं वैसे ही सुंदर हूँ। माँ, रूपक मुझे देखने आएगा तो क्या पार्लर या जिम होकर आएगा कि मैं उसे पसंद आ लूँ? मैं नहीं जाऊँगी। तुमने मामा की लड़की का हाल देखा तो! ब्यूटी पार्लर से सजवाकर बैठा दिया। पसंद कर ली गयी। उसका पति कहता है कि उस दिन पता नहीं क्या मेकअप कि थी कि रंगत बन गयी, जबकि रंगत है नहीं। माँ, एक दिन स्पेशल तैयारी कर हम धोखा ही देते हैं। शादी एक दिन का मामला नहीं है, वहाँ ज़िंदगी गुज़ारनी होती है।"

मधु जानती है, काशी स्वाभिमानी है, "रसोई में मदद करो कि वह भी नहीं।"

"करूँगी, पर तुम झूठ नहीं बोलोगी कि यह सब काशी ने बनाया है, जैसा उमरिया वालों से कह दिया था। वे पूछेंगे, तो साफ़ कहूँगी कि खाना ठीक तरह नहीं बना पाती।"

"नही पूछेंगे। यह नाटक हमारे समय में होता था। लड़के वालों की जिधर नज़र पड़ी, वहीं से सवाल शुरू। मेज़पोश लड़की ने बनाया? वह पेंटिंग? लड्डू? यह गुलदस्ता? तुम्हारे पापा ने परिवार वालों ने क्या-क्या न पूछा। मेरा जी करता था पूछूँ आपके लड़के की वकालत ठीक चलती है? चरित्र ठीक है सिगरेट-शराब की आदत तो नहीं?"

मधु बताती रही, काशी हँसती रही।

ड्राइवर मेहमानों को ले आया। वे पति-पत्नी स्कार्पियो में कदाचित, पहली बार बैठे थे। उसमें बैठने का विशिष्टता-बोध चेहरे पर दिखाई देता था। अच्छे परिसर वाले घर को देख बोध बढ़ गया। अनुमान से बड़ी पार्टी जान पड़ती है। ज़िंदगी भर सौगातें मिलती रहेंगी। मधु उन्हें कला-कक्ष में ले चली। जल्दी ही मेज़ खाद्य सामग्री से भर दी गयी। गुरुजी और गंगी ने छक कर खाया। पश्चात् काशी ने प्रस्तुति दी। उसे देख गुरुजी तनिक उचक गये। रूपक तुमने कहा है लड़की बहुत ख़ूबसूरत हो, तभी तुम उसे देखने आओगे तो महाराज, ऐसी कमनीय लड़की है कि तुम सिर के बल चलकर आओगे।

गुरुजी काशी से पूछने लगे, "काशी तुम अंग्रेज़ी बोलती हो न?"

"जी, अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ी हूँ।"

"शावास, आर्मी का वातावरण एकदम अलग है। अंग्रेज़ फ़र्राटा अंग्रेज़ी बोलती हैं, कार चलाती हैं, डान्स-वान्स, पता नहीं क्या-क्या। हम देहाती हैं, इसलिए हमारे लिए ये अनोखी चीज़ें हैं पर डॉक्टर साहब को ऐसी ही लड़की चाहिए... कार चला लेती हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपक महाराज तुम्हें पाक-कला में निपुण लज्जाशील लड़की नहीं, बल्कि अंग्रेज़ी बोलने वाली, प्रोफ़ेशनल डिग्री कोर्स और कार चलाने वाली लड़की चाहिए न? मिल गयी।

वक्ता बड़जोगी गुरुजी चुप हुए, तो गंगी ने कहना प्रारंभ किया–"हम लोग डॉक्टर साहब के पास जाते रहते हैं। बड़ी शानदार ज़िंदगी है मलेटरी की । बंगला, रसोइया, नौकर-चाकर। क्या नहीं है? कैन्टीन में इतना सस्ता सामान। काशी, तुम्हें पूरी छूट रहेगी हमारे घर में। जीन्स, स्कर्ट जो पहनना है, पहनो।"

गुरुजी लौट चले। मधु ने दबाव बनाने के लिए दोनों को एक हज़ार एक रुपये भेंट स्वरूप दिये। लक्ष्मी की महिमा अपरंपार है।

घर पहुँच गुरुजी ने रूपक को कॉल किया–"रूपक, लड़की बहुत सुंदर है, स्मार्ट है... हाँ, अंग्रेज़ी बोलती है... तुम आओ, लड़की देख लो। बहुत हुआ.... लोग कहते हैं कि लड़का क्या बुढ़ापे में शादी करेगा?...."

गुरुजी सुबह फ़ोन पर थे, "सदानंद जी, डॉक्टर साहब तीन मई को आ रहे हैं। दक्षिण से यहाँ तक का बड़ा लंबा सफ़र है.. उन्हें काशी पसंद आ गयी, तो तुरंत शादी करनी होगी। बार-बार लंबी छुट्टी नहीं मिलती.... मेरा सुझाव है कि शादी की तैयारी शुरू करें।

उधर से सदानंद जी 'पंडित जी', कृपा पंडित जी, बहुत अच्छा पंडित जी.... करते रहे।

काशी तुनक गयी...–"क्या पापा, आप उनके ख़ादिम बने जा रहे हैं। वे देवता नहीं हैं।"

मधु ने समझाया "देवता नहीं हैं, पर लड़की वालों को कुछ शिष्टाचार करना पड़ता है। मुझे तो लगता है कि शादी बहुत जल्दी करनी पड़ेगी।"

काशी का चेहरा लाल हो गया, "पापा, आप पंडित जी, पंडित जी करते रहेंगे और वे आपको कितना ही लूट लें... भैया को बुला लीजिए। वो कुछ सँहाल लेगा।"

दो मई की शाम विधान पहुँच गया, आते ही माहौल बना दिया, "काशी, चल मेरे घर से रवाना हो... बोरिया-बिस्तर बाँध।"

काशी ने माहौल को करुण कर दिया, "इतना अच्छा घर और इतने अच्छे लोगों को छोड़कर जाने को दिल नहीं करता भैया। क्यों न यहीं रह जाऊँ। तुम्हारी प्रापर्टी की केयरटेकर बन जाऊँगी..."

"केयरटेकर किसी भरोसेमंद को बनाऊँगा।"

"डरते हो, दावेदारी करूँगी!"

"कर सकती हो, वकील की बेटी हो।"

परिवार में बना सानंद वातावरण तीन मई को मंद पड़े गया।

गुरुजी लजाये हुये थे फ़ोन पर "... हैलो..... सदानंद जी डॉक्टर साहब की छुट्टी कैंसिल हो गयी। वहाँ पता नहीं कौन-सा ऑपरेशन चलाया जा रहा है, जो पंद्रह दिन चलेगा। आर्मी में यही होता है। रिलैक्शेशन कैंसिल कराना पड़ा।"

सदानंद उलझन में, "हम इंतज़ार कर रहे थे, मेरा बेटा विधान छुट्टी लेकर आ गया कि डॉक्टर साहब से मिल लेगा।"

"हमसे मिल ले। उसे घर भेजिए... क्या बताऊँ मैं स्वयं इतना उदास हुआ कि... आगे भी डॉक्टर साहब को छुट्टी नहीं मिलती है, तो चलिए हम सब मिलकर उनके पास चलते हैं। दक्षिण घूम लेंगे और सब बातें तय कर लेंगे।

रूपक का न आना सदानंद परिवार को असमंजस में डाल रहा था। मधु बोली "रूपक शादी नहीं करना चाहता, इसलिए तो आना नहीं टाल दिया?"

विधान ने मधु का समर्थन किया, "हाँ पापा, रूपक का पता नहीं है और यहाँ शादी की तैयारी है।"

सदानंद दुराशा में नहीं पड़ना चाहते थे, "रूपक की छुट्टी सचमुच कैंसिल हो गयी होगी। विधान, हमें सकारात्मक भाव रखना चाहिए। तुम गुरुजी से मिल आओ। दक्षिण जाने का कार्यक्रम बनाया जा सकता है।"

"ठीक है पापा, हमें वहाँ जाना चाहिए। इधर इतनी अधिक चीटिंग, फ़ेलियर होने लगा है कि हमें पूरी जानकारी लेनी होगी।"

गुरुजी ने विधान का स्वागत किया–"आओ, आओ... गंगी, देखो सदानंद जी के बेटे आये हैं... विधान, डॉक्टर साहब नहीं आ सके, इसलिए गंगी उदास हैं। माँ जो हैं। तुम आ गये हो, तो कुछ मन बहल जाएगा।"

विधान मुद्दे पर आया, "अंकल, डॉक्टर साहब को समय नहीं है, तो चलिए हम लोग वहाँ हो आते हैं।"

"बिल्कुल, मैं उनको सूचित कर कार्यक्रम बना लेता हूँ। तुम देखोगे, वह एक अलग वातावरण है। वहाँ अनुशासन है, जबकि सिवीलियन लाइफ़ बड़ी अस्त-व्यस्त-सी होती है। डॉक्टर साहब अनुशासनहीनता ज़रा पसंद नहीं करते।"

"होता है।"

"देखिए, घर हमारा छोटा है, पर काशी को यहाँ तो रहना नहीं है। कभी दो-चार दिन को आएगी, तो बेटी की तरह रखेंगे।"

पति-पत्नी ने जिस उत्साह-उंमग से बातें कीं, विधान ने मान लिया कि छुट्टी रद्द हो गयी होगी।

विधान ने घर में घुसते ही कहा, "माँ मैं खाना नहीं खाऊँगा। इतने बड़े गिलास में लस्सी पीकर आ रहा हूँ... काशी, जान लो, उस घर में दो चीज़ें ख़ास हैं–लड़का और लस्सी। वैसे एक बात है, ये लोग लोभी हो सकते हैं, पर धोखेबाज़ नहीं लगते। शादी के लिए इतने उतावले हैं कि जो मुँह में आता है, बोल देते है।"

मधु मलिन दिखी, "विधान तुम्हें ये सब ठीक लग रहा है?"

"देखते हैं माँ..."

गुरुजी फिर फ़ोन पर थे–"सदानंद जी, मैंने डॉक्टर साहब से बात की कि यदि छुट्टी न हो, तो हम लोग काशी को लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ जाते हैं। तब उन्होंने कहा कि मधु में आप लोग परेशान न हों। मैं तेईस को आ रहा हूँ। पंद्रह दिन रहूँगा।''

सदानंद ने हाल कहा, तब मधु बोली—''तेईस को आता है तो ठीक, वरना हम अन्य प्रस्तावों पर विचार करेंगे।''

विधान को बात उचित लगी, ''बिल्कुल... माँ, मैं लौटूँगा। रूपक आये, तो बताना। किसी तरह मैनेज करूँगा।''

और रूपक आया।

विधान को फिर बुलाया गया।

विधान रात्रिभोज के लिए रूपक के परिवार को लेने पहुँचा। रूपक सामने के कमरे में एक-दो मरीज़ों को देख रहा था। विधान ने रूपक को देखा। अच्छी बिल्ड वाली देह और सुंदर चेहरा। यह हीरा इस साधारण घर में कैसे जन्मा? गुरुजी ने दोनों का परिचय कराया।

विधान से हाथ मिलाकर रूपक बोला, ''आइए, बैठिये। मैं इन पेशेन्ट्स को देख लूँ। मेरे आने की सूचना पाकर आस-पास के मरीज़ आ जाते हैं।''

''डॉक्टर कहीं भी हो, लोग फुर्सत नहीं लेने देते,'' विधान मरीज़ों की गतिविधि देखने लगा।

पहला मरीज़ बता रहा था ''बुखार है, मितली आती है, खाने की इच्छा नहीं होती। पीलिया हो गया है।''

रूपक हँसा, ''बाबा तुम तकलीफ़ बताओ, बीमारी क्या है, मैं बताऊँगा। यदि जानते हो पीलिया है, तो यहाँ क्यों आये हो? जाओ, परहेज़ वाला खाना खाओ,'' आगे उसने अंग्रेज़ी में विधान से कहा ''इन गँवई लोगों का यही है। ये ख़ुद जान जाते हैं कि बीमारी क्या है? केमिस्ट से कोई दवाई लेकर खा लेते हैं। रोग बढ़ जाता है, तब डॉक्टर के पास भागते हैं।''

''यही है,'' विधान ने अनुमोदन किया।

उन्हें बातों में व्यस्त देख गुरुजी भीतर चले गये और काशी को फ़ोन पर निर्देश देने लगे—''देखो बिटिया, डॉक्टर साहब जो भी पूछें, पूरे आत्मविश्वास से जवाब देना। मैं तुम्हारे साथ हूँ। मुझे अपना पिता समझो। बता ही चुका हूँ कि डॉक्टर साहब को पारंपरिक छवि वाली नहीं, स्मार्ट लड़की चाहिये। तुम्हें अच्छा प्रदर्शन करना है। तुम्हारा व्यक्तित्त्व प्रभावशाली है, यह साबित होना चाहिए। डॉक्टर साहब यहाँ आते हैं, तो हम उन्हें वी.आई.पी. की तरह रखते हैं। उन्हें आर्मी के तौर-तरीक़े से रहना पसंद है न। शादी के बाद तुम देखोगी कि वहाँ चौकीदार सुबह वेकअप कॉल देने आता है....।''

काशी को एक क़िस्म के संदेह ने घेर लिया, ''माँ, ये अंकल, जिस तरह उतावले हो रहे हैं, मुझे अजीब लगता है।''

मधु अज्ञात भय में, ''अब क्या कहूँ?''

सदानंद ने हौसला बढ़ाया ''कुछ मत कहो। वे लोग आते होंगे। देखते हैं कि रूपक का व्यवहार कैसा है। तभी कुछ समझ में आएगा। वैसे सीधी-सी बात है। गुरुजी यह प्रस्ताव चूकना नहीं चाहते हैं, इसलिए कुछ उतावले होने लगते हैं। रूपक की शादी को उन्हें कितना अरमान है, इस बात को समझो।''

विधान अतिथियों को ले आया।

रूपक ने कला-कक्ष की सराहना की ''मुझे आप लोगों की तरतीब अच्छी लगी। ड्राइंग रूम में क्या रखा जाए, इसका ज्ञान होना चाहिए। मैंने माँ से कहा मेरी तस्वीरें बैठक से हटा दो बेवकूफ़ी लगती है, पर ये लोग नहीं मानते। प्रदर्शन की क्या ज़रूरत?''

सुनकर गुरुजी और गंगी कुछ लजा गये।

सदानंद ने स्थिति समझी, ''बेटा होनहार हो, तो माता-पिता की इच्छा होती है कि लोगों को उसके विषय में बताएँ।''

''मैं ऐसा होनहार नहीं,'' कहकर रूपक ने सदानंद के परिवार का दिल जीत लिया।

बादामी परिधान में काशी आ पहुँची।

रूपक उस पर ध्यान केंद्रित न कर सियाचिन प्रवास के अनुभव बताता रहा कि तापमान में ठंड से किस तरह बचाव करना पड़ता है।

गुरुजी को प्रसंग न सुहाया। विषय परिवर्तन कर काशी को बोले—''काशी प्लेटें लगाओ, सब ठंडा हुआ जा रहा है।''

वे रूपक का दिखाना चाहते थे कि लड़की को परोसने का सभ्य तरीका आता है। रूपक ने अपनी प्लेट में बहुत कम चीज़ें रखवायीं, ''बस, इतना नहीं, मैं मोटा नहीं होना चाहता।''

गंगी हँसी, ''इनके लिए इतनी चीज़ें बनाकर मैंने रखी हैं, ये खाते नहीं।''

रूपक ने गंगी को आगे नहीं बोलने दिया, ''काशी तुम जॉब करना चाहती हो?''

''कुछ कन्सलटेन्सी में सी.वी. भेजी है। कम्पनीज़ में भी रिज़्यूम भेजा है।''

''हाँ लड़कियों को अवसर मिल रहे हैं, उन्हें अपनी योग्यता का उपयोग करना चाहिए।''

''आप ऐसा सोचते हैं, मुझे अच्छा लगा।''

काशी कुछ बताने में झिझक या चूक जाती, तब विधान उसके उत्तर को दुरुस्त कर देता था। वह प्रतिक्षण सतर्क था कि काशी का प्रस्तुतीकरण बेहतर हो।

सदानंद बोले, ''आइए हम लोग अलग बैठें। रूपक और काशी अकेले में जो पूछना चाहें, पूछ लें।''

''बिल्कुल,'' गुरुजी उठ खड़े हुए।

इधर रूपक को सहसा कुछ समझ में न आया, किसी तरह पूछा—''एम. एस-सी. कहाँ से किया है?''

''दिल्ली से... जे.एन.यू।''

''नाइस, कोई अफ़ेयर?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं, मैंने सोचा नहीं। डेटिंग, चैटिंग, मैसेजिंग, स्लीवलेस, शोल्डरलेस, बैकलेस कपड़ों से हम आधुनिक नहीं बनते हैं, बल्कि ज्ञान और आत्मविश्वास से बनते हैं।"

"हाँ, देह-प्रदर्शन को मैं बेवकूफ़ी कहता हूँ। लड़कियाँ क्या चाहती हैं? तुमने पूरी बाँह के कपड़े पहने हुए हैं और यह तुम्हारी स्मार्टनेस को कम नहीं कर रहे हैं। खैर.... अपने बारे में बता दूँ। दो अफ़ेयर हो चुके हैं। अब नहीं हैं, पर मैं स्पष्ट बता देना ज़रूरी समझता हूँ, बाद में किन्हीं सूत्रों से पता चले, तो संदेह पैदा होता है। संबंधों में अविश्वास आ जाता है। आर्मी में डाँस पार्टीज़, बियर पार्टीज़ औपचारिकता की तरह होती रहती है। मुझे यह सब पंसद है। ज़िंदगी का भरपूर मज़ा मिले। इसके अलावा मैं खाने का शौकीन हूँ। खाना अच्छा हो, सलीके से परोसा गया हो। मुझे हर चीज़ सलीके और सही रूप में चाहिए। यहाँ तक कि मैं जूते पर भी धूल सहन नहीं करता। तुम्हारी कोई पसंद?"

"जो चाहा, मिलता रहा, इसलिए सोचा नहीं कि क्या पसंद है, क्या नहीं है।"

"इसलिए पूछ रहा हूँ, क्योंकि दबाव या समझौते के साथ बहुत दिनों तक नहीं रहा जा सकता। सहना पड़े, तो जीवन में खीझ और कटुता आती है।"

"मैं बहुत नहीं चाहती। चाहती हूँ, मेरा जो वज़ूद है, उसे इतना न बदलना पड़े कि अफ़सोस हो।"

"यानी तुम आत्मविश्वास से भरी लड़की हो। मुझे बात-बात में भावुक होने वाली, रोने-धोने वाली लड़कियाँ बोर करती हैं। ओ हाँ, तुमने मेरे अफ़ेयर पर कुछ नहीं कहा।"

"आप बता रहे हैं कि अफ़ेयर अब नहीं रहे।"

"थे तो।"

"आपने बता दिया, यह आपकी ईमानदारी है," रूपक चकित हुआ—कुछ भी इस लड़की को चौंका नहीं रहा है। पिछली बार जब आया था, तो गुरुजी एक-दो प्रस्ताव लिये बैठे थे। रूपक ने अफ़ेयर की बात बतायी, तब लड़की वाले भड़क गये थे कि ऐसी खुली बातें करने वाला लड़का सभ्य नहीं हो सकता।

काशी अन्यमनस्क हुई—क्या दर्शाना चाहता है यह दंभी लड़का? मुझसे थोड़ी भी कमी हुई, तो सहन नहीं करेगा! हर बात में मानो निर्णायक हो रहा है। न किसी को बोलने का अवसर देता है, न पूछने का। अपने माता-पिता को भी नहीं। एक तरह से अपना अभिभावक खुद बना हुआ है। इसके साथ ज़िंदगी बिताना आसान न होगा।

अतिथियों के जाने के बाद चारों सदस्य मंत्रणा करने बैठे। विधान ने काशी की राय माँगी, "काशी, रूपक कैसा लगा?"

"भैया, ऐसा लगता है कि अपने सारे फ़ैसले खुद करता है। उसके दो अफ़ेयर हो चुके हैं।"

विधान हँसा, "अफ़ेयर? काशी, अब यह सब फ़ैशन हो गया है। हाँ, यह मुझे लगता है कि रूपक अपने माता-पिता को वैसा महत्त्व नहीं देता, जैसा देना चाहिए... रूपक लगा कैसा?"...

"अफ़ेयर और घमंड को हटा दो, तो अच्छा है।"

मधु कुछ तल्ख़ हुई "काशी, हर बात पर अड़ोगी, तो तुम्हारी शादी मुश्किल हो जाएगी... रूपक भला लड़का है।"

सदानंद ने दबाव बनाया, "लड़का योग्य है... बस उसकी ओर से हाँ हो जाए।"

घर में एक आशा दिखायी देने लगी, मानो नये क्षितिज का निर्माण होने जा रहा है।

कोई सूचना न आयी, तो सदानंद ने गुरुजी को फ़ोन किया। गुरुजी आनंदित भाव में बोले—"हाँ, हाँ, हमारी ओर से 'हाँ' है। क्या है कि उस दिन आपके घर में डॉक्टर साहब काशी से ठीक से बात नहीं कर पाए। वे चाहते हैं कि काशी के साथ बाहर डिनर लें। कुछ बातें हो जाएँगी। अब हमारा ज़माना तो रहा नहीं जो...."

"ठीक है, घर में बात करके बताता हूँ।"

काशी भड़क गयी, "सब नौटंकी... पापा, मुझे लगता है रूपक अपना मनोरंजन कर रहा है।"

सदानंद ने पुत्री को शांत किया, "बेटी, लड़की वालों को सचमुच बहुत नाचना पड़ता है... लगता है कि यहाँ बात बन जाएगी... चली जाओ... हो सकता है रूपक उस दिन ठीक से बात न कर पाया हो।"

"मैं नहीं जाऊँगी, जिसे बात करना है, वह घर आए।"

"काशी, बेवकूफ़ों की तरह व्यवहार मत करो।"

"भैया, तुम भी चलो। यह लड़का विचित्र लगता है। बाप की लार टपकी पड़ती है, बेटा ऐंठ रहा है। पता नहीं क्यों... पर मुझे लग रहा है...."

सदानंद के काशी का मनोबल बढ़ाया "काशी, चीज़ों को नकारात्मक भाव में मत लो। रूपक निश्चिंत होना चाहता है कि तुम उसके साथ ठीक तरह मूव कर सकोगी या नहीं। और यदि कुछ बकवास करे, तो ऐसा करारा जवाब देना कि फिर किसी लड़की को देखने का साहस न करे... विधान साथ में जा ही रहा है।"

रूपक होटल के लॉन में चहलक़दमी करता हुआ मिला। उसे विधान की अपेक्षा नहीं थी, पर उसने व्यक्त किया कि उसे विधान का आना अच्छा लगा है।

तीनों कोने वाली मेज़ पर आ गये। विधान ने सूप और स्टार्टर का ऑर्डर देते हुए बेयरे से कहा "अभी कुछ बातें होंगी, खाने का ऑर्डर थोड़ी देर बाद लेना।"

सूप पीते हुए रूपक वही बातें दुहराने लगा, जो पहले बता चुका था। विधान समझ गया कि यह काशी से बात करना चाहता है और मैं बीच में डटा हूँ। सूप ख़त्म कर बोला—"मैं एक दोस्त से मिलकर आता हूँ, यहीं पास में रहता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी को जाता हुआ विधान दयनीय और लाचार लगा। बहन ब्याहकर अच्छे घर चली जाए इसलिए यह जतन कर रहा है। उसकी इच्छा हुई कि जाते हुए भाई को रोक ले—"भैया तुम कहीं नहीं जाओगे। जो बातें होंगी, तुम्हारे सामने होंगी।" कह न सकी। हर पिता और भाई जतन करते हैं। हर लड़की प्रतिकूलन से गुज़रती है। कुछ क्षण व्यर्थता-बोध में बीते। तब रूपक ने मुँह खोला—"परेशान हो, मैंने यहाँ बुलाया।"

"ओ.... हाँ.... नहीं...."

"मुझे तुम, तुम्हारा परिवार अच्छा लगा। तुम सब सचमुच अच्छे लोग हो। एक-दूसरे को समझते हो।"

"धन्यवाद।"

"पर, मेरे परिवार में यह बात नहीं है। पापा ने मेरी दोनों बहनों को पूरी शिक्षा नहीं दिलायी। किसी तरह ब्याहकर पिंड छुड़ा लिया। जो है, जैसा है—उसे अपना भाग्य समझकर वे दोनों निभा रही हैं। जब भी बहनों से मिलता हूँ, पछतावा होता है कि उनके लिए कुछ कर पाता... मैं बहनों से छोटा हूँ... तब मेरे हाथ में कुछ नहीं था.... मेरे नाना ने मेरी पढ़ाई में पैसा लगाया, वरना पापा के भरोसे आज मैं मास्टर होता या कंपाउंडर...."

"मेरा मानना है कि सभी की एक नियति होती है, आप डॉक्टर बनते...."

"डॉक्टर बनकर मैं एक हुंडी हो गया, जिसे पापा चालीस-पचास लाख में भुनाना चाहते थे। इसी कारण मैंने कुछ अच्छे प्रस्ताव खो दिये।"

काशी क्षुब्ध हुई—रूपक ने अपने माता-पिता का लिहाज़ करना ही नहीं छोड़ा है, उन्हें ग़लत भी ठहरा रहा है। वह भी एक अल्प परिचित लड़की के सामने। विचित्र बात है! बोली—"मेरे पापा से उन्होंने डिमांड नहीं की।"

"पाँच साल पहले की स्थिति अलग थी। हम लोगों में बड़ा उत्साह था। पापा को पचास लाख और मुझे मेडिको गर्ल चाहिए थी। मेरे दोनों अफ़ेयर डॉक्टर लड़कियों से ही हुए। शादी हो जाती, पर पता चला कि एक लड़की का अफ़ेयर किसी और से भी था। वह लड़का विदेश जा रहा था और वहाँ बसने के चाव में लड़की मुझे अँगूठा दिखा गयी। दूसरी लड़की के पिता को मेरे पापा ने पचास लाख माँगकर डरा दिया। मैं चाहता, तो उस लड़की से शादी कर लेता, पर मैं पापा के विरुद्ध नहीं जाना चाहता था। पापा ने मेरी नज़रों में सम्मान खो दिया। उन्हें मेरी भावनाओं की चिंता नहीं, तो मैंने उनकी फ़िक्र छोड़ दी... बोर तो नहीं हो रही हो?"

"नहीं तो।"

"काशी, मैं इस देखने-दिखाने से आजिज़ आ गया हूँ। जब भी आता हूँ, पापा एक-दो प्रस्ताव लिये बैठे होते हैं।"

"आप शादी नहीं करना चाहते?"

"नहीं, पापा को समझा चुका हूँ, वे नहीं मानते.... काशी, तुम मुझे ग़लत तो नहीं समझोगी? नहीं न ? मुझे तुम सुलझे दिमाग़ वाली लड़की लगती हो, इसलिए कह रहा हूँ कि मैं शादी कर चुका हूँ... अपने आफ़ीसर की बेटी से।"

काशी ने बहुत कुछ सोचा था, यही नहीं सोचा था, "मतलब?"

"मेरी शादी हो चुकी है। जहाँ पापा की माँग पूरी होती थी, वहाँ मुझे लड़की पंसद नहीं आती थी। जहाँ लड़की पसंद आती, पापा की माँग पूरी नहीं होती थी... मैं क्या करता? मुझे यही समझ में आया।"

काशी ने देखा कि एक थका, दुविधाग्रस्त पराजित-सा चेहरा ठीक सामने है। क्या है यह चेहरा? फ़रेबी या खरा? इस पर कैसे विश्वास करें? स्थिति थी मूर्छित होने की, किंतु काशी ने ख़ुद को सँभाल लिया, "तो आप मुझे देखने क्यों आये? आपके पापा ने आपको मेरी फ़ोटो मेल की, आप तभी कह देते कि फ़ोटो पसंद नहीं।"

"पापा ने मुझे फ़ोटो नहीं भेजी।"

"भेजी, तभी तो आप तीन मई को आने वाले थे। छुट्टी रद्द हुई, आ न सके।".

"नहीं, मैं अपने निर्धारित कार्यक्रम पर ही आया हूँ। पापा तुम लोगों को बेवकूफ़ बनाते रहे। मैं यहाँ आया, तब मुझे पता चला कि वे फिर प्रस्ताव लिये बैठे हैं। सोचा, इनके संतोष के लिए लड़की देख लेता हूँ। कह दूँगा कि लड़की पसंद नहीं आयी, पर तुमसे और तुम्हारे परिवार से मिलकर पता नहीं क्यों लगा कि मैं कहीं ग़लत हूँ... काशी, तुम मुझे ग़लत समझो, पर सच कहता हूँ कि तुम्हें देखकर चाह जागी है, मैंने शादी न की होती..."

काशी की आँखें भर आयीं "कितना आसान है आपके लिए यह सब कह देना... मेरे घर में तैयारी चल रही है।"

"काशी, प्लीज़..."

"आप अपने पापा को सब कुछ बता दो।"

"हिम्मत नहीं होती। हम ख़ुद को कितना ही आज़ाद मानें, पर कुछ फ़ैसले कठिन होते हैं। शादी का फ़ैसला बहुत कठिन होता है। बेटा किसी का क़त्ल करके आये, तो पिता उसे बचाने की पूरी कोशिश करता है, पर बेटा अपनी मर्ज़ी से शादी कर ले, तो माँ-बाप के स्वाभिमान को ऐसी ठेस लगती है कि वे उसे घर से बेदखल करने में भी नहीं हिचकते। वैसे मुझे डर पापा का नहीं, माँ का है। उन्हें एक बार कार्डियक एरेस्ट आ चुका है। मेरी शादी की बात सुन यदि दूसरी बार ऐसा हो... सोचकर परेशान हूँ... मेरी नाराज़गी पापा से है। माँ बेचारी क्या करे? घर में उनकी कभी नहीं सुनी गयी।"

रूपक के चेहरे पर क्षोभ और याचना के भाव थे।

"बात छिपाकर आप अपने माता-पिता का मज़ाक बना रहे हैं। वे चाहे जहाँ लड़की देखने चल पड़ते हैं।"

"तुम पापा की ज़िद को नहीं जानती। बता दूँ कि मैंने शादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर ली है, तो वे इस शादी को क़ानूनी नहीं मानेंगे। मानेंगे, तो कहेंगे कि तलाक दे दो।"

काशी मोहभंग की स्थिति में।

"आपके परिवार में जो भी परेशानी है, पर किसी दूसरे परिवार को परेशान करने का आप लोगों को हक़ नहीं है।"

"इसलिए तुमसे कुछ कह डाला। कहा न, तुमसे मिलने के बाद मुझे लगा कि अब यह नाटक बंद होना चाहिए।"

"घर वालों से साफ़ बात कीजिए।"

"हाँ.... मैं चाहता हूँ कि यह काम तुम करो।" रूपक इस विश्वास से काशी को देख रहा था मानो उसे एक सदी से जानता है।

"आप पागल... सॉरी..." काशी को लगा कि वह एक विक्षिप्त व्यक्ति के समीप बैठी है।

"काशी, समझो... मैं पागल नहीं हूँ," रूपक के चेहरे पर निवेदन था।

"तुम कहो कि मुझे रूपक पसंद नहीं है। कह दो कि तुम मेरे अनुसार खुद को नहीं ढाल सकोगी। कह दो कि रूपक की उम्र कुछ अधिक है, तालमेल नहीं बैठेगा... कुछ भी कह देना।"

"मेरा कुछ कहना साबित नहीं करेगा कि आप शादी कर चुके हैं।"

"पापा को सबक ज़रूर मिलेगा। वे लोगों से कहते फिरते हैं कि हमने अब तक पैंतीस लड़कियों को रिजेक्ट किया है। उन्हें पता तो चले कि हमें भी कोई नापसंद कर सकता है... तुम शादी से मना करोगी, पापा बौखला जाएँगे... मैं पी.जी. के एन्ट्रेन्स एग्जाम का बहाना कर वापस चला जाऊँगा, फिर फ़ोन पर सच बता दूँगा।"

अप्रत्याशित हमला।

काशी को सूझता न था कि क्या करे। पर्स से सेल फ़ोन निकाला।

"मैं भैया से बात करना चाहती हूँ।"

विधान ने आते ही परख लिया कि माहौल बुझा हुआ है। काशी सिर झुकाये बैठी है। रूपक इधर-उधर ताक रहा है। वह मुस्कुराया—"मेरे बिना आप लोग बोर तो नहीं हुए?"

"भैया, तुम बड़ी देर बाद आये," काशी को आँखें भरी हुई थीं।

तो काशी जैसी लड़की भी इसे पसंद नहीं आयी? इसे आसमान की परी चाहिए या सिनेमा की हीरोइन?

"हाँ, बस... कॉफ़ी हाऊस के सामने कुछ दोस्त मिल गये। मैं खाना ऑर्डर करता हूँ, बड़ी भूख लग रही है—"

खाना ख़त्म कर पाँच सौ पचास रुपये वाले बिल को रूपक ने झपट लिया, "विधान, तुम दोनों आज मेरे गेस्ट हो। पेमेन्ट मैं करूँगा।"

चलते-चलते बोला, "तुम दोनों से मिलकर अच्छा लगा। यह मेरा सेल नंबर है। जब भी चाहो, मुझसे बात कर सकते हो। कभी आओ उधर... दक्षिण भारत देख लो।"

रहस्योद्घाटन पर भूचाल आना ही था। मधु नियंत्रण न रख अशिष्ट हो गयी—"मक्कार लड़का और फ्रॉड माँ-बाप। हमारा खाना हजम कर गये। रुपये हड़प गये।"

सदानंद ने कटाक्ष किया, "रुपये? मधु, तुम तो कपड़े भी देना चाहती थीं। मैंने मना किया कि बात फ़ाइनल नहीं हुई है।"

मधु ने सदानंद पर हिंसक दृष्टि फेंकी, "हम भले लोग हैं और सोचते हैं कि दूसरे भी भले होंगे।"

"मधु चुप रहो, ठंडे दिमाग़ से सोचने दो।"

विधान ने रोका, "आप दोनों लड़ने न बैठो। काशी परेशान है, उसकी तरफ़ ध्यान दो।"

सदानंद सँभल गये, "विधान, कहो क्या करना चाहिए?"

"बात ख़त्म करनी चाहिए।"

"मुझे नहीं लगता कि रूपक शादी कर चुका है। करता, तो घर में बता देता। वह माँ-बाप के सामने जिस तरह ऐंठा रहता है, देखकर नहीं लगता कि उसमें हिम्मत नहीं है बताने की," मधु तर्क भिड़ाती रही।

"माँ, मैं तो इसे रूपक की ईमानदारी ही कहूँगा, वरना वह सच बताये बिना लौट जाता और हम यहाँ गुरुजी की जी-हुजूरी में लगे रहते।"

विधान की बात से सदानंद को मानसिक बल मिला, "बिल्कुल, रूपक ने शादी की-नहीं की उसका मामला है। अच्छी बात यह रही कि उसने हमें धोखा नहीं दिया। गुरुजी अधीर थे ही, हम भी रूपक को देखकर मोहित थे। शादी हो जाती, तब क्या होता, सोचकर घबराहट होती।"

मधु नहीं रुकी, "हमारे साथ इतना बड़ा धोखा होता, तो हम रूपक की नौकरी दाँव पर लगा देते।"

काशी देर से चुप थी, बोली—"माँ तुम उसे जो भी सज़ा दिलाती पर मेरी ज़िंदगी तो प्रभावित हो जाती न... बंद करो बहस ...मुझे घबराहट हो रही है।"

उधर भी यही सब था। रूपक को अचानक जाने की तैयारी करते देख गुरुजी बौखला गये, "अभी तो छुट्टियाँ हैं न?"

"जाना है।"

"सदानंद जी को क्या जवाब दूँ?"

"मना कर दीजिए।"

"कारण क्या बताऊँ?"

"जो ठीक समझें... कह चुका हूँ कि लड़की न देखें, पर आप मानते नहीं।"

"मैं खुद नहीं जाता, लोग सम्मान से बुलाते हैं। तुम तो बाहर जाकर बैठ गये, लेकिन मुझे इसी समाज में रहना है। लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछते हैं कि लड़का बुढ़ा जाएगा तब उसकी शादी करेंगे?''

जवाब न दे रूपक छत पर चला गया।

गुरुजी का कोप गंगी पर बरसा, ''देख लो सपूत को... डॉक्टर क्या बन गया बाप को अर्दली समझने लगा.. यह पछताएगा... काशी जैसी लड़की अब नहीं मिलेगी। इतना प्रतिष्ठित परिवार... हमारी भी प्रतिष्ठा बढ़ती। तुम उसे कुछ कहती नहीं, वह लिहाज़ छोड़ता जा रहा है।''

''इसीलिए नहीं कहती कि जो थोड़ा-बहुत लिहाज़ है, वह बचा रहे। साल-डेढ़ साल में आ जाता है। फिर कहो न आये। ग़लती हमने की है, वरना अब तक रूपक की शादी हो जाती।''

माहौल में व्याप रहा तनाव देख गंगी ने नहीं कहा कि तुम्हारे लोभ ने आज यह दिन दिखाया। वह असहायता में रोने लगी।

रूपक हर बार इसी तरह लौटा है।

हर बार कलह हुई है।

गुरुजी को पहले ही कष्ट बहुत था, सदानंद ने कॉल कर कष्ट को बढ़ा दिया। सदांनद की आवाज़ सुन गुरुजी भभक उठे—''एक सप्ताह हुआ डॉक्टर साहब चले गये वापस। उस दिन रेस्टोरन्ट में जो भी बात हुई हो, डॉक्टर साहब तब से अनमने थे और....''

''क्या बात हुई काशी बताएगी... लीजिए, बात कीजिए।''

सदानंद ने रिसीवर काशी को थमा दिया।

''नमस्ते अंकल, मैं ठीक हूँ। डॉक्टर साहब से मेरी खुलकर बात हुई। हम दोनों के विचारों में बहुत अंतर है। मेरा मानना है कि इस साइबर युग में कुंडली नहीं, केमिस्ट्री मिलानी चाहिए। हमारी केमिस्ट्री बिल्कुल नहीं मिलती। डॉक्टर साहब की उम्मीदें इतनी अधिक हैं कि मैं तालमेल नहीं बना सकूँगी।''

गुरुजी सदमे में। यह घमंडी लड़की रूपक जैसे सर्वगुणसंपन्न लड़के को अस्वीकार कर रही है। असभ्यता देखो-सीधे मुझसे संबोधित है कि रखो अपना लड़का अपने पास। और, यह केमिस्ट्री मिलान क्या होता है?

''काशी, डॉक्टर साहब की कोई बात बुरी लगी हो, तो मैं उन्हें समझाऊँगा।''

''मुझे उनकी बातों के आधार पर फ़ैसला नहीं लेना है।''

बहुत कुछ खो देने की निराशा ने गुरुजी को ध्वस्त कर दिया। लड़का तो रूठा ही है, अब लड़की वाले ऐंठने लगे हैं... इतना पतन। वे दीवान पर ढह गये। पसीना चुचुआने लगा। अस्वीकार की पीड़ा, दंश, निराशा क्या होता है पता नहीं था। आज पता चला कि अस्वीकार भूत, वर्तमान, भविष्य को एक बड़े शून्य में बदल देता है।

''क्या हुआ?'' गंगी समीप आयी।

''काशी शादी से इन्कार करती है।''

''पागल हो गयी है।''

''अरे, हम इस घमंडी लड़की से बच गये। रूपक तो ऐंठा ही रहता है, यह हमें चाकर बना लेती...''

''रूपक को क्या कहेंगे?''

''कहना कि तुम्हें लड़कियाँ रिजेक्ट करने लगी हैं। काशी को मना लो, वरना कुँवारे बैठे रहोगे।''

''मैं रूपक से बात करूँगी। तुम गुस्से में बात करते हो। बहस हो जाती है। नतीजा नहीं निकलता।''

गंगी ने फ़ोन पर रूपक से बात की—''हाँ सब ठीक है... तुम ठीक हो न... तुमने कुछ ठीक जवाब नहीं दिया और अब काशी शादी से मना करती है... पछताएगी.... बेवकूफ लड़की।''

रूपक हँसने लगा।

''तुम हँस रहे हो, मैं उसे गाली दे रही हूँ।''

''माँ, बख़्श दो बेचारी को। कुछ कारण बताया?''

''कहती है कि विचार नहीं मिलते। यह कौन-सा कारण है?''

''माँ लड़की सुखी रहेगी, क्योंकि इसे स्पष्ट बोलना आता है। तुम्हें अजीब लगेगा, पर इस लड़की ने मुझे हौसला दिया है.....मैंने शादी कर ली है... एक साल हुआ। मैं लड़की देखने की नौटंकी करते हुए परेशान हो गया था। पापा को बोल दो कि अब किसी लड़की वाले को उम्मीद न दें...''

गुरुजी ने देखा कि गंगी का चेहरा स्याह होता जा रहा है।

''गंगी, रूपक ठीक तो है न?... यहाँ से तनाव में गया था? .....बात क्या है?.....''

बात जो थी, गंगी बता नहीं सकती थी।

द्वारा श्री एम. के. मिश्र, एडवोकेट
लक्ष्मी मार्केट
रीवा रोड, सतना (म. प्र.)-485001

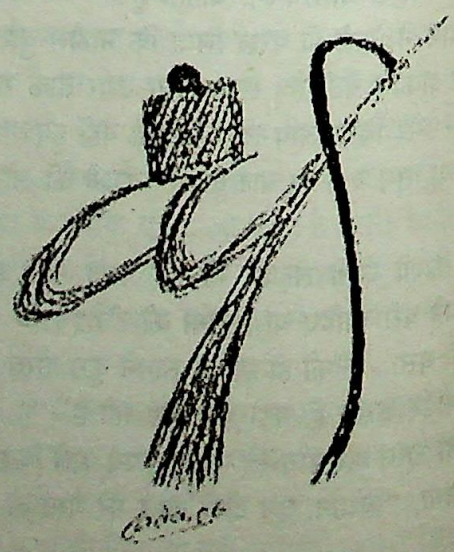

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिरसू

रणीराम गढ़वाली

आधी रात का समय बीत चुका था, लेकिन भीमा ठाकुर की आँखों में नींद नहीं थी, जबकि ठकुराइन गहरी नींद में सो रही थीं। करवटें बदलते हुए जब भीमा ठाकुर अपनी सोचों को कम करने में असमर्थ रहा, तो वह बाहर आकर छज्जे पर टहलने लगा।

बाहर घुप्प अँधेरा था, कहीं कोई पत्ता तक नहीं हिल रहा था, आकाश में टिमटिमाते तारों के आस-पास सेमल के पेड़ों से उड़ती हुई सफ़ेद रुई के फुनगों की तरह बादलों के टुकड़े दूर-दूर तक बिखरे हुए थे, रौली गदेरियों का बहता शोर अँधेरी रात को और भी डरावना बना रहा था। कहीं दूर से आती भोटिया कुत्तों की आवाज़ें रात के सन्नाटे में ठाकुर के कानों से टकरा रही थीं—भौं... भौं... भौं...।

लेकिन, ठाकुर को भोटिया कुत्तों की इन आवाज़ों से कोई लेना-देना नहीं था। उसकी सोच व उसकी बेचैनी लगातार बढ़ती ही जा रही थी। छज्जे पर टहलते हुए वह कुछ पल तक आकाश की ओर देखता रहा, जो कि अंधेरी रात होने पर भी उसे स्वच्छ नीला व ख़ूबसूरत दिखायी दे रहा था।

एकाएक ठकुराइन की बातों को सुनकर ठाकुर की आँखों की नींद ग़ायब हो गयी थी, ठकुराइन ने जब उसे यह बताया कि सातुली अपने ससुराल से भागकर आयी है, तो सातुली का नाम सुनते ही ठाकुर को ऐसा लगा कि जैसे किसी ने उसके माथे में जंग लगी हुई कील गाड़ दी हो। मुँह में जाते-जाते उँगलियों के बीच पकड़ा हुआ रोटी का टुकड़ा वापस थाली में ही गिर गया था।

ठाकुर के हाथों से रोटी का टुकड़ा गिरते देख व उसके चेहरे पर आते-जाते बदलाव को देखकर ठकुराइन ने पूछा "क्या हुआ?"

तुम्हें किसने बताया कि सातुली आयी हुई है?

"भूरी सिंह ने"

"क्या...? भूरी सिंह ने...? लेकिन उसने मुझे तो नहीं बताया।"

"तुम उस वक़्त आराम कर रहे थे, इसलिए वह तुम्हारी नींद में खलल नहीं डालना चाहता था।"

वह बड़ी देर तक टकटकी लगाये ठकुराइन के चेहरे को देखता रहा और फिर उसने थाली एक ओर सरकाते हुए भूरी सिंह को आवाज़ दी।

"भूरी सिंह...,"

"आप इस वक़्त भूरी सिंह से क्या कहना चाहते हैं?"

"सातुली को इसी वक़्त यहाँ बुलाया जाए।"

"नहीं ठाकुर... सातुली इस वक़्त आठवें महीने से है, इसलिए रात के अँधेरे में उसे यहाँ बुलाना ठीक नहीं है। वह अपनी ससुराल से क्यों भागकर आयी है, यह आप कल भी पूछ सकते हैं।"

ठकुराइन की बातें सुनकर ठाकुर ख़ामोश हो गया था, लेकिन उस वक़्त से वह बहुत बेचैन दिखायी दे रहा था।

छज्जे पर टहलते हुए अचानक ही उसकी आँखों में एक अनोखी चमक उभर आयी थी। उसकी उँगलियाँ लंबी-लंबी मूछों को मरोड़ने लगी थीं। सातुली ने उसके साथ जो किया था, आज उससे बदला लेने का समय आ गया था।

छज्जे पर टहलते हुए उसे वह दिन याद आया, जब एक दिन सातुली उसके जूते देने उसके घर आयी थी। उस दिन कल्लन के घर में मेहमान आये हुए थे और भीमासिंह को जूते देने भी ज़रूरी थे, इसलिए कल्लन ने सातुली को जूते देकर ठाकुर के घर भेज दिया था।

उस समय ठाकुर घर में अकेला था, न ठकुराइन थी, और न ही भूरी सिंह था। शादी के बाद सातुली का चेहरा व गदराया यौवन देखकर उसकी आँखों में वासना हिलोरें लेने लगी। आज सातुली उसे बेहद ख़ूबसूरत दिखायी दे रही थी। शादी होने के बाद उसका चेहरा किसी खिले गुलाब की तरह लग रहा था। पहले की अपेक्षा उसके नितंब कुछ उठे हुए व भारी लग रहे थे।

शादी से पहले भी ठाकुर मौके की तलाश में रहता था, क्योंकि सातुली को देखते ही उसका दिमाग झन्ना जाता था। लेकिन, उसे ऐसा मौक़ा कभी नहीं मिला कि उसे सातुली अकेले में दिखायी दे। आज सातुली को देखकर उसके मुँह में पानी भर आया था। वह भी अकेला और सातुली भी अकेली...

सातुली ने जैसे ही जूते उसके सामने रखे, वैसे ही ठाकुर ने उसे अपनी बाँहों में कसते हुए उसके होठों पर अपने होठों को रख दिया।

छोड़ दे ठाकुर... मैं रजस्वला हूँ", सातुली ने ठाकुर की बाँहों में कसमसाते हुए कहा।

"तू बहुत सुंदर है सातुली। मैं ऐसा मौक़ा हाथ से नहीं जाने दूँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातुली समझ गयी थी कि ठाकुर के दिमाग़ में शैतान बस गया है, उसकी बलिष्ठ भुजाओं के बीच से निकलना मुश्किल है। उसने पलक झपकते ठाकुर के बायें बाजू पर अपने दाँत गाड़ दिये, ठाकुर दर्द के कारण बिलबिला उठा था, उसकी बाँहों का कसाव खुल गया था, इसी बीच सातुली तेज़ी से अपने घर की ओर भाग गयी थी।

ठाकुर हताश होकर उस भूखे शेर की तरह उसे देखता रहा, जिसके मुँह में आया हुआ जानवर अचानक अपने आपको छुड़ाते हुए भाग जाता है। वह गुस्से में बड़बड़ाते हुए बोला, "मैं तुझे देख लूँगा सातुली, इसकी सज़ा तुझे अवश्य मिलेगी। मैं तुझे वो सज़ा दूँगा जिसे सुनकर तेरे पुरखे भी काँपने लगेंगे।"

बीती बातों को सोचते हुए ठाकुर अपने छज्जे पर टहल रहा था। फिर अपने कमरे में जाकर अपनी चारपाई के नीचे रखी खुँखरी निकालकर अपनी उँगलियों से उसकी धार को देखते हुए मन ही मन बुदबुदाया—अब बदला लेने का समय है, अब मैं तेरे पति के दोनों हाथों को कटवा दूँगा।"

सुबह होते ही भूरीसिंह ने उसके सामने हुक्का रखते हुए बताया कि सातुली भागकर आयी है, तो गुस्से के कारण उसने अपनी दोनों मुट्ठियों को कसकर भींच लिया। ऐसा करते वक़्त पलभर के लिए उसकी आँखें इस तरह बंद हो गयी थीं, जैसेकि अचानक धूल का गुब्बारा तेज आँधी में उड़ता हुआ उसकी आँखों में समा गया हो। अपनी दोनों मुट्ठियों को आपस में टकराते हुए उसने भूरी सिंह से कहा कि वह कल्लन के घर जाकर सातुली को बुलाकर लाए, क्योंकि वह जानना चाहता है कि वह भागकर क्यों आयी है?

"मालिक, यह तो उनके परिवार का निजी मामला है।"

"हम जानते हैं भूरी सिंह, लेकिन क्या वह लड़की यह भी भूल गयी है कि इसमें हमारी व हमारे गाँव की बेइज़्ज़ती होती है।"

"लेकिन मालिक इसमें आपका व गाँव का क्या दोष? भला कोई आपको क्यों कहेगा? सातुली भागकर आयी है, तो उसके घरवाले जानें या फिर उसके रिश्तेदार या फिर उसकी बिरादरी के लोग।"

"तुम नहीं जानते भूरी सिंह, लेकिन हम जानते हैं। अगर हमने अभी हस्तक्षेप नहीं किया, तो सातुली के साथ उसके ससुराल में कुछ भी हो सकता है। फिर, हमारे व कछोला गाँव के बीच सदा-सदा के लिए दुश्मनी पैदा हो जाएगी। मैं जानता हूँ भूरी सिंह कि कछोला गाँव का ठाकुर विजय सिंह हम से किसी भी बात में कम नहीं है। हम उससे झगड़ा मोल नहीं ले सकते।"

"यह तो पति-पत्नी का मामूली-सा झगड़ा है मालिक, इसमें इतना घबराने व सोचने की आवश्यकता ही नहीं है।"

"आवश्यकता है भूरी सिंह, आवश्यकता है। तुम कल्लन से जाकर कहो कि वह सातुली को मेरे पास लेकर आए, क्योंकि हम जानना चाहते हैं कि सातुली ऐसे समय अपने ससुराल से भागकर क्यों आयी है, जबकि वह आठवें महीने के पेट से है?"

ठाकुर के हुक्म के मुताबिक भूरी सिंह जब कल्लन के घर पहुँचा, तो वह उस वक़्त एक पुरानी मैली बनियान और धारीदार कच्छा पहने जूता सिल रहा था। अचानक भूरी सिंह को देखकर कल्लन चौंक पड़ा, उसका दिल ज़ोरों से धड़कने लगा। वह मन ही मन बुदबुदाने लगा कि इस मनहूस को भी इस समय मेरे ही घर आना था, पता नहीं अब कौन-सी मुसीबत आने वाली है! उसने जूता एक ओर रखते हुए कहा—"कैसे आना हुआ ठाकुर?"

"ठाकुर ने आपको और आपकी बेटी को अभी और इसी वक़्त बुलाया है।"

"लेकिन हमने तो अनाज पहले ही चुकता कर दिया था।"

"अनाज की बात नहीं है कल्लन, तुम्हारी बेटी भाग कर आयी है, ठाकुर जानना चाहते हैं।"...

"लगता है, अब कोई अनहोनी घटने वाली है", कल्लन की पत्नी ने कहा।

अब जो भी हो, ठाकुर ने बुलाया है, तो जाना तो पड़ेगा ही।

कल्लन ने कुर्ता-पजामा पहना और फिर वह सातुली व गोदावरी को लेकर ठाकुर के पास पहुँचा, तो ठाकुर की बड़ी-बड़ी आँखों में तैरते लाल डोरे व उसकी शेर की तरह की लंबी घनी मूछ को देखकर उसने अपने हाथ जोड़ते हुए कहा, "आपने हमें बुलाया ठाकुर?"

"हाँ कल्लन... हम यह जानना चाहते हैं कि सातुली भागकर क्यों आयी है? क्या उसे हमारी मान-मर्यादा का कोई ध्यान नहीं रहा?"

"आपकी मान-मर्यादा का ध्यान था ठाकुर, लेकिन सातुली अगर भागकर नहीं आती, तो गंगा उसे जान से मार देता।"

"तुम इतने विश्वास से कैसे कह सकते हो कि गंगा ने उसे मारा है?"

"सातुली के शरीर पर उभरे हुए नीले निशान इस बात के गवाह हैं मालिक कि उसने सातुली को बेरहमी से मारा है।"

कल्लन के शब्दों को सुनकर भीमा अपनी जगह खड़ा रह गया। वह अपने दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाकर अपनी उँगलियों को आपस में फँसाते हुए टहलने लगा। एकाएक सातुली के उठे हुए पेट पर अपनी नज़रें गड़ाते हुए उसने पूछ, "क्या यह सच है सातुली?"

सातुली ने मुँह से तो कोई जवाब नहीं दिया, लेकिन उसने हाँ में अपना सिर हिलाते हुए अपनी स्वीकृति ज़रूर दे दी। अपने पेट पर टिकी हुई ठाकुर की नज़रों को देखकर पेंट को छिपाने की कोशिश करते हुए वह तिरछी खड़ी हो गयी। ठाकुर की ओर जो पहले उसका चेहरा था, वहीं अब ठाकुर की ओर उसका दायाँ हाथ व पीछे का कुछ हिस्सा आ गया था।

ठाकुर कुछ पल तक सातुली को देखता रहा और फिर उसने ठकुराइन से कहा कि वह सातुली को घुड़साल में ले जाकर यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगायें कि गंगा ने उसे मारा भी है या नहीं?

ठकुराइन सातुली को घुड़साल के अंदर ले गयी।

ठकुराइन ने जब सातुली के बदन को देखा, तो उसके बदन पर जगह-जगह उभरे हुए नीले निशान देखकर ठकुराइन चौंकते हुए उन निशानों को गिनने लगी। एक... दो... तीन... चौदह... पन्द्रह... और फिर ठकुराइन ने उससे पूछा, "उसने तुझे क्यों मारा?"

"वह रात को शराब के नशे में धुत होकर मेरे साथ ज़बरदस्ती करने लगा, तो मैंने उसका विरोध करते हुए उसे दूर धकेल दिया था। बस्स...फिर वह सारी रात मुझे मारता रहा।"

सातुली की बातें सुनकर ठकुराइन अचंभे में पड़ गयी। उसने ठाकुर को सारी बातें बतायीं, तो ठाकुर ने गरजते हुए कहा, "जिन हाथों ने सातुली को बेरहमी से मारा है, हम उन हाथों को कटवा देंगे।"

"ये क्या कह रहे हैं आप?"

"हम ठीक कह रहे हैं ठकुराइन।" फिर ठाकुर ने सातुली की ओर मुड़ते हुए कहा "तुम्हारे साथ न्याय होगा सातुली, अब तुम जा सकती हो।"

सातुली अपने माता-पिता के साथ वापस लौट आयी, जबकि ठाकुर के होंठों पर एक कुटिल मुस्कान तैर गयी, वह उसी वक़्त कछोला गाँव के ठाकुर विजय सिंह को पत्र लिखने लगा, तो पत्र लिखते हुए उसके हाथ अचानक ही रुक गये। एकाएक उसके मन में विचार आया कि उससे इस समय टक्कर लेने वाला एकमात्र ठाकुर विजय सिंह ही है, जो उससे किसी भी बात में कम नहीं है। उसकी घुड़साल में दो घोड़े हैं, जबकि विजय सिंह की घुड़साल में तीन घोड़े हैं। उसकी एक बेटी है, जबकि विजय सिंह के तीन बेटे हैं। जितनी ज़मीन उसके पास है, उससे एक तिहाई ज़मीन विजय सिंह के पास ज़्यादा है। उसके पास एक ही सेवक है, जबकि विजय सिंह ने दो सेवक रखे हैं। अर्थात् हर तरह से विजय सिंह का पलड़ा भारी है, अगर उसका पत्र पढ़कर ठाकुर विजय सिंह ने कह दिया कि वह गंगा को ख़ुद ही सज़ा देगा तो...? तो फिर वह सातुली से बदला कैसे लेगा? गंगा के हाथ काटने की जो बात वह सोच रहा है, वह सब धरी की धरी ही रह जाएगी। लेकिन, तभी उसके दिमाग़ में बिजली की तरह एक विचार कौंधा कि अगर विजय सिंह गंगा के बारे में ख़ुद ही फ़ैसला करना चाहता है, तो वह करे लेकिन अगर फ़ैसला ग़लत हुआ, तो ठाकुर विजय सिंह को उसके साथ कुश्ती लड़नी पड़ेगी और जो कुश्ती में हारेगा, उसे जीतने वाले के अधीन रहना पड़ेगा।

ऐसा सोचते हुए भीमा ने यही बातें पत्र में लिखकर पत्र भूरी सिंह को देते हुए उसे ठाकुर विजय सिंह के पास कछौला गाँव के लिए भेज दिया।

भूरी सिंह के जाने के बाद ठाकुर की आँखों की नींद उड़ गयी थी। उस रात वह लगातार करवटें बदलता रहा, आधी रात बीत जाने पर जब ठाकुर ने देख लिया कि ठकुराइन गहरी नींद में सो रही है, तो वह चुपचाप अपनी चारपाई से उठकर बाहर निकल आया।

बाहर घुप्प अँधेरा था। आकाश में कहीं भी तारे नहीं दिखायी दे रहे थे। घने बादलों ने चारों ओर अपना जाल फैला रखा था। कहीं कोई पत्ता तक नहीं हिल रहा था, फिर भी अगर थोड़ी सी सरसराहट होती, तो ठाकुर सिर से लेकर पाँवों तक काँप जाता था। उस वक़्त वह अपने आगे-पीछे, दायें-वायें देखते हुए किसी चोर की भाँति दबे क़दमों से आगे बढ़ रहा था।

भूरी सिंह के घर की ओर बढ़ते हुए ठाकुर का दिल तेज़ी से धड़क रहा था। जो ठाकुर दिन के उजाले में किसी से नहीं डरता था, वही ठाकुर रात के सन्नाटे में अपने आप से ही डर रहा था, ठाकुर को लग रहा था जैसे उसके पैरों की सारी ताक़त ख़त्म हो गयी है। भारी-भरकम शरीर होने के बावजूद ठाकुर डर के मारे काँप रहा था। फिर भी रात के अँधेरे में अपनी नज़रें चारों ओर दौड़ाते हुए जब ठाकुर भूरी सिंह के घर पहुँचा, तो दरवाज़ा भिड़ा हुआ था। अंदर कमरे में चिमनी की बहुत धीमी रोशनी फैली हुई थी। कमरे में घुसकर जैसे ही ठाकुर ने दरवाज़ा बंद किया, तो रामप्यारी ने धीमे स्वर में कहा—"आ गये ठाकुर?"

"हाँ छोटी ठकुराइन, तेरे पास आने में बहुत डर लगता है", कहते हुए उसने चिमनी को बुझा दिया।

कुछ देर तक कमरे में सन्नाटा पसरा रहा और फिर कमरे में उनकी साँसों के अलावा उनकी बातें तथा चारपाई की चड़-चड़ सुनायी देने लगी थी।

"रमिया ने कुछ कहा रामप्यारी?"

"तुम रमिया से बचकर रहना, वह तुमसे बहुत चिढ़ती है। वैसे में कोशिश कर रही हूँ शायद वह मान जाएगी। पीठ पीछे अँधेरी रात में तुम क्या करते हो, यह किसी को पता नहीं है। गाँव वाले तुम्हें देवता समझते हैं, इसलिए क़दम फूँक-फूँककर रखो ठाकुर, दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पीता है। वह दिन याद करो ठाकुर, जब मालू के पिता की मृत्यु होने पर तुमने उसका कन्यादान किया था। उस वक़्त सारे गाँव में तुम्हारी जय-जयकार होने लगी थी। गाँववालों ने तुम्हें कंधे पर उठा लिया था।"

कमरे में कुछ पल तक ख़ामोशी छायी रही। साँसों का उतार-चढ़ाव और तेज़ हो गया और जब वह उतार-चढ़ाव शांत हुआ, तो ठाकुर ने उसके हाथों में रुपये रखते हुए पूछा—"चमेली से बात हुई?"

"हाँ, दो महीने बाद ही उसकी शादी है, फिर भी वह तुम्हारे पास आने के लिए तैयार हो गयी है। तुम जहाँ कहो, मैं उसे वहीं भेज दूँगी।"

"ठीक है, तुम मेरे हुक्म का इंतज़ार करो।"

...ठाकुर दबे क़दमों से अपनी हवेली की ओर निकल पड़ा, लेकिन इस वक़्त वह पहले की तरह भयभीत नहीं था। वह किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्त हाथी की तरह क़दम बढ़ाते हुए जब अपने कमरे में पहुँचा, तो ठकुराइन गहरी नींद में सो रही थी। वह चुपचाप पलंग पर लेट गया, लेकिन चमेली का चेहरा आँखों में आते ही नींद उसकी आँखों से ओझल हो गयी। भूरी सिंह ने ठाकुर का दिया हुआ पत्र ठाकुर विजय सिंह को पकड़ाया, तो वह पत्र पढ़ते हुए सोच में डूब गया, क्योंकि वह जानता था कि भीमा ठाकुर किसी भी गुनहगार को कभी माफ़ नहीं करता, वह गुनहगार से ही पूछता है कि उसे क्या सज़ा दी जाए।

सोच में डूबे हुए वह टहलने लगा था। वह ख़ुद भी न्याय कर सकता है। भीमा ठाकुर से तो वह हर बात में ज़्यादा ही है, लेकिन उसका फ़ैसला अगर ग़लत हुआ, तो उसे ठाकुर भीमा के साथ कुश्ती लड़नी पड़ेगी और अगर वह कुश्ती में हार गया तो....?

यह सोचते हुए उसे अपने बीते दिन याद आने लगे, जब दोनों गाँवों के द्वारा तीन साल में तीन बार कुश्ती प्रतियोगिता हुई थी। दो बार तो वे दोनों बराबर रहे, लेकिन तीसरी बार वह भीमा से कुश्ती हार गया था। इस उम्र में भी भीमा उसे कुश्ती की चुनौती दे रहा है, इसलिए यही अच्छा है कि न्याय करने का हक़ भीमा को ही दे देना चाहिए। वैसे भी, सातुली ने उसके पास जाकर न्याय की गुहार की है, तो न्याय करने का हक़ भी उसी का बनता है। इसलिए, उसने भूरी सिंह से कहा कि गंगा उनके गाँव पहुँच जाएगा।

दूसरे दिन भूरी सिंह ने वापस आकर जब भीमा को यह बताया कि गंगा यहाँ आएगा, तो ख़ुशी के मारे उसकी मूँछें ऐंठ गयीं। वह मन ही मन बुदबुदाया कि अब सातुली से बदला लेने का मौक़ा आ गया है। अपने फ़ैसले में वह गंगा के दोनों हाथ कटवा देगा। उसने भूरी सिंह से कहा, "सुनो भूरी सिंह, जब हम सज़ा सुनाएँ, तो उस वक़्त खुखरी तुम्हारे पास होनी चाहिए, लेकिन इतना ध्यान रखना कि एक ही बार में गंगा के हाथ कट जाने चाहिए।"

ठाकुर के शब्दों को सुनकर भूरी सिंह सन्न रह गया। वह टकटकी लगाये जब ठाकुर के चेहरे की ओर देखने लगा, तो ठाकुर ने गरजते हुए कहा—"नज़र नीची रखो भूरी सिंह, अभी वो समय नहीं आया है कि तुम हमसे नज़र मिला सको।"

भूरी सिंह का चेहरा स्याह पड़ गया। उसने धीरे-धीरे अपनी नज़रें नीचे झुका लीं।

क़रीब एक हफ़्ते बाद ही कल्लन ठाकुर के सामने निश्चित समय गंगा को लेकर खड़ा हुआ, तो सारे गाँववाले ठाकुर का फ़ैसला सुनने के लिए तैयार हो गये। ठाकुर बड़ी देर तक गंगा को देखता रहा। दुबला-पतला मरियल-सा गंगा। उसके मुँह से अब भी शराब की बदबू आ रही थी।

"गंगा...," ठाकुर किसी शेर की तरह गरजा। उसकी भारी-भरकम शरीर को कंपकंपा देने वाली आवाज़ सुनकर हवेली के आस-पास के पेड़ पर बैठी हुई चिड़िया पंख फड़फड़ाकर उड़ गयीं।

ठाकुर के मुँह से अपना नाम सुनते ही गंगा थर-थर काँपने लगा था।

"जी मालिक...," गंगा ने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा।

"तुमने सातुली को इतनी बेरहमी से क्यों मारा गंगा?"

"अब आपको क्या बताऊँ हुजूर? गलती हो गयी है।"

"तुमने खिरसू की कहानी सुनी है गंगा?"

"नहीं मालिक..."

"तो सुनो गंगा, आज मैं तुम्हें खिरसू के बारे में बताता हूँ। बहुत साल पहले इन पहाड़ी जंगलों में खिरसू नाम का एक दो मुँह वाला जानवर रहता था, वह जंगलों में घास-लकड़ियाँ लेने गयी उन्हीं औरतों को उठाकर ले जाता था, जो पेट से होती थीं। वह उन्हें अपनी गुफा में ले जाकर उनसे शारीरिक संबंध बनाता, औरतें चीखती रहतीं और वह दहाड़ता रहता, बाद में वह उन औरतों का ख़ून पी जाता था... तुम भी वही खिरसू हो गंगा, इसलिए मैं आज से तुम्हारा नाम खिरसू रख रहा हूँ, आज के बाद लोग तुम्हे गंगा नहीं खिरसू कहेंगे। हमने तुम्हारी सज़ा तय कर दी है खिरसू, हम तुम्हारे हाथ कटवा देंगे, लेकिन तुम्हें सज़ा सुनाने से पहले नियम के मुताबिक हम तुम्हें सज़ा चुनने का एक मौक़ा अवश्य देंगे। बोलो खिरसू तुम्हें क्या सज़ा दी जाए?... खुखरी लाये हो भूरी सिंह?"

"जी मालिक...?"

"अगर खिरसू सज़ा नहीं चुनता है, तो इसके दोनों हाथ काट दिए जाएँ... न इसके हाथ रहेंगे और न ही यह कभी ज़िंदगी में सातुली पर हाथ उठाएगा।"

ठाकुर के शब्दों को सुनकर गाँव के सभी लोगों की नज़रें गंगा के चेहरे पर टिक गयीं। सभी फुसफुसा रहे थे कि अब गंगा के दोनों हाथ काट दिए जाएँगे। कल्लन, उसकी पत्नी व सातुली तीनों ही थर-थर काँप रहे थे, लेकिन खिरसू के चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी।

"मैं आपसे क्या सज़ा माँगू ठाकुर, मैंने सुना है कि आपके दरवाज़े पर जो आता है, उसकी झोली भर दी जाती है। मैं दूसरे गाँव से आकर आपके सामने खड़ा हूँ, जब मैं कछौला गाँव से चला था, तो ठाकुर विजय सिंह ने मुझसे कहा था कि सुनो गंगा, ठाकुर भीमा के सामने झोली फैलाकर जाना, वे बहुत रहमदिल इन्सान हैं और जब कोई उनके दरवाज़े पर झोली फैलाकर जाता है, तो उसे वे निराश नहीं करते, क्योंकि ठाकुर का दिल उस वक़्त और भी बड़ा हो जाता है।"

"हाँ... हाँ... हाँ..., ठाकुर ने हँसते हुए कहा, "ठाकुर विजय सिंह ने हमारे बारे में ऐसा कहा?"

"हाँ...अन्नदाता, एक ठाकुर ही नहीं, बल्कि कछौला गाँव तथा आस-पास के गाँवों के सभी निवासी आपका गुण गाते हैं सुबह उठते ही वे आपको नमस्कार करते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हा... हा... हा...," ठाकुर ने ज़ोर से हँसते हुए कहा, "सुना गाँववालो तुमने? एक कछौला गाँव वाले ही नहीं, बल्कि आस-पास के लोग भी हमारा गुण गाते हैं... और क्या-क्या कहते हैं लोग हमारे बारे में?

"यही कि आप बड़े दयावान हैं। आपकी हवेली में भूखों को भरपेट भोजन व नंगों को कपड़ा मिलता है। लोग कहते हैं कि आप जैसा दानी व दयावान इन पहाड़ों में और कोई नहीं होगा। ठाकुर विजय सिंह कहते हैं कि आपके सामने तो सभी ठाकुर बौने लगते हैं।"

"हा... हा... हा..." ठाकुर ज़ोर-ज़ोर से हँसता रहा और गाँववाले उसे ख़ामोश निगाहों से हँसते हुए देखते रहे।

गाँववाले अचंभे में थे कि आज से पहले उन्होंने सज़ा सुनाते वक़्त ठाकुर को इस तरह से हँसते हुए कभी नहीं देखा था। वे तो केवल खिरसू को दी जाने वाली सज़ा के बारे में सुनना चाहते थे कि ठाकुर खिरसू के हाथों को काटने की सज़ा कितनी देर में सुनाएगा!

ठाकुर बड़ी देर तक हँसता रहा। फिर अचानक ठाकुर ने खुखरी अपने हाथों में लेते हुए कहा, "तुमने बताया नहीं खिरसू कि तुम्हें क्या सज़ा दी जाए? हम तुम्हें अपने मुँह से सज़ा माँगते हुए सुनना चाहते हैं।"

"मैं आपसे क्या सजा माँगू ठाकुर, आपको जो सज़ा उचित लगे, वही दे दीजिए। ग़लती तो हो ही गयी है। सातुली कहती है कि ठाकुर बड़े दयावान हैं, वे कभी किसी का बुरा नहीं सोचते और न किसी का बुरा चाहते हैं।"

"क्या...? क्या कहा तुमने?" चौंकते हुए ठाकुर अपनी जगह से खड़ा हो गया।"

"मैं सच कह रहा हूँ ठाकुर, वह सुबह शाम आपके गुण गाते हुए कहती है कि गाँव की लड़कियों का भला जितना हमारे गाँव के ठाकुर सोचते हैं, उतना कोई दूसरा ठाकुर नहीं सोचता। वे अपने गाँव की लड़कियों को दुखी नहीं देख सकते। उनकी आँखों में आँसू नहीं देख सकते। ठाकुर विजय सिंह कहते हैं कि आपका न्याय भगवान के न्याय जैसा होता है, ऊपर भगवान है, तो नीचे आप है।"

"वाह! देखा गाँववालो, हमारे न्याय के चर्चे चारों तरफ़ हैं। आज भी न्याय होगा खिरसू और ऐसा न्याय होगा कि लोग सोच भी नहीं सकते कि हमारे जैसा न्याय कोई दूसरा कर पाएगा।"

लोग ठाकुर को देख रहे थे, जबकि भूरी सिंह हाथों में खुँखरी लिए गंगा के हाथ काटने के लिए तैयार खड़ा था।

"सज़ा बोलो खिरसू, सज़ा बोलो?... तुम्हें क्या सज़ा दी जाय?"

"अगर आप मुझे सज़ा देना ही चाहते हैं मालिक, तो मुझे ऐसी सज़ा दीजिए कि जिसे सुनकर गाँववाले आपका जयकारा लगाएँ, आपके न्याय की चारों ओर धूम हो, जिसे सुनकर सातुली की आँखों में आँसू न बहें, और जिसे सुनकर कछौला गाँव के लोग तालियाँ बजाकर आपका स्वागत करें। ठाकुर विजय सिंह आपके स्वागत के लिए हाथ जोड़े खड़े रहें।"

"क्या कहा... स्वागत करें? हा... हा... हा... हमने तुम्हें माफ़ किया खिरसू। हा... हा... हा... माफ़ किया।"

ठाकुर का फ़ैसला सुनकर गाँववाले चौंक पड़े। सबकी आँखें फटी की फटी रह गयीं। लोगों के बीच एकाएक सन्नाटा पसर गया, भयभीत गंगा की आँखों में ठाकुर की सज़ा का जो डर समाया हुआ था, वह पलक झपकते ग़ायब हो गया था। वह जहाँ खड़ा था, वहीं बैठ गया, उसके साथ ही कल्लन, गोदावरी व सातुली के हाथ ठाकुर के लिए जुड़ गये।

ठाकुर जी नज़रें एक बार फिर सातुली के उठे हुए पेट पर टिक गयी।

जी.ई. (प्रो.) ईस्ट
टिगरिस रोड, दिल्ली कैंट-10

1. **जिन सदस्यों की वार्षिक सदस्यता शुल्क की अवधि समाप्त हो गयी है वे अपना नवीनीकरण तुरंत करायें।**

2. **सदस्यता राशि ड्राफ्ट अथवा मनीऑर्डर के द्वारा ही भेजें। बाहर के चैक स्वीकार नहीं किये जायेंगे।**

3. **मनीऑर्डर द्वारा सदस्यता राशि भेजने पर अपना नाम व पता साफ़-साफ़ अवश्य लिखें। अच्छा होगा कि सदस्यता राशि भेजने के बाद एक पोस्टकार्ड द्वारा सूचना भी भेज दें।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

राजेश रेड्डी

सुना है ये जहाँ अच्छा था पहले
ये जो अब दश्त है दरिया था पहले

जो होता, कौन आता इस जहाँ में
किसे दुनिया का अंदाज़ा था पहले

बड़ी तस्वीर लटका दी है अपनी
जहाँ छोटा सा आईना था पहले

समझ में कुछ नहीं आता अब उसकी
वो जो औरों को समझाता था पहले

किया ईजाद जिसने भी ख़ुदा को
वो ख़ुद को कैसे बहलाता था पहले

बहुत कुछ भी नहीं काफ़ी यहाँ अब
बहुत थोड़े से चल जाता था पहले

ये दीवारें तो हैं इस दौर का सच
खुला हर दिल का दरवाज़ा ये था पहले

रहा क़रीब किसी के किसी के साथ रहा
ये इक मुअम्मा मेरी ज़िंदगी के साथ रहा

मैं बहती लहरों में शामिल तो था शरीक न था
नदी में रहके भी मैं कब नदी के साथ रहा

न ज़ात पूछी नदी ने न पेड़ ने मज़हब
ये मसअला तो फ़क़त आदमी के साथ रहा

कभी-कभार ही हो पाई सुर्ख़रू नेकी
वगरना वक़्त तो अक्सर बदी के साथ रहा

हवा अँधेरों के पैग़ाम लेके आती रही
मगर चिराग़ था मैं, रोशनी के साथ रहा

न जाने कौन था हमाक्ल वो मेरा मुझमें
तमाम उम्र मैं जिस अजनवी के साथ रहा

अख़बारों को फिर ख़ून में नहला के गया कल
सुनते हैं कि आने को है इससे भी बुरा कल

पूछा जो सबब आज ने हालात का अपनी
नज़रों को झुकाए हुए ख़ामोश रहा कल

बिखरी हुई लाशें हैं दरख़्तों की, हर इक सिम्त
क्या जानिये क्या सोच के आई थी हवा कल

दुनिया पे अभी तारी है तक़्सीम का मौसम
नक्शे में लकीरों ने नया नाम लिखा कल

आने पे है बस जिसके न जाने पे है क़ाबू
मुट्ठी से हर इक आज की बाहर ही रहा कल

है जड़ों की सोच से कुछ मुख्तलिफ़ पत्तों की सोच
रहती आई है बुजुर्गों से अलग बच्चों की सोच

सिलसिला है जब्र का तारीख़ कहते हैं जिसे
हुक्मराँ हर अह्द में रहती है तलवारों की सोच

क्यूँ नहीं दुनिया किसी दिन एक होकर सोचती
मुख्तलिफ़ कब तक रहेगी मुख्तलिफ़ मुल्कों की सोच

होता आया है यही, आगे भी होना है यही
खो ही जानी है बुरों की सोच में अच्छों की सोच

अब कहाँ रिश्तों की वो बरसों पुरानी खुशबुएँ
काग़ज़ी फूलों के जैसी है नए रिश्तों की सोच

ए/403, सिल्वर मिस्टर, अमरनाथ टावर के पास
सात बंगला, अंधेरी (प0) मुंबई-400061

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

इन्दु श्रीवास्तव

:1:

भीतर बाहर डर है संतो
चारों ओर कहर है संतो

माना घर में झगड़ा भारी
फिर भी घर तो घर है संतो

जीने को जीने सा जीना
सबसे बड़ा हुनर है संतो

ऊँची गद्दी पर बैठेगा
जो भी कद्दावर है संतो

मारा-मारी चोर-चकारी
जाँ-ताँ मची गदर है संतो

'म' से मैं हूँ, 'य' से दुनिया
माया का चक्कर है संतो

इतनी माला इतना चंदन
पत्थर तो पत्थर है संतो

पत्ता-पत्ता ज़हर पिए है
घट-घट में शंकर है संतो

:2:

तिरी बात में कितना दम है फ़क़ीरे
गिरस्ती बड़ी बेरहम है फ़क़ीरे

जो पीए वो डोले नपीए वो डोले
ये ऐसी अनोखी चिलम है फ़क़ीरे

बदन तो बदन रूह भी जल रही है
यहाँ की हवा यूँ ग़रम है फ़क़ीरे

शहर से निकल कर चलें जंगलों को
वहाँ पर ज़रा दर्द कम है फ़क़ीरे

शराफ़त यहाँ प्याज सी पिस रही है
इसी से मेरी आँख नम है फ़क़ीरे

न बुत न इबादत न जन्नत की चाहत
हमारा ख़ुदा तो सनम है फ़क़ीरे

:3:

तेरे भीतर आग कबीरे
जाग सके तो जाग कबीरे

तेरी धरती तेरा अंबर
फ़िर कैसा बैराग कबीरे

ख़ुद को छोड़ कहाँ जाएगा
चाहे जितना भाग कबीरे

आड़ा चंदन बन जाएगा
पेशानी का दाग कबीरे

भूखा बंजारा क्या समझे
क्या कजरी क्या फाग कबीरे

मन तो तारों में बजता है
रोटी का ही राग कबीरे

:4:

चिड़ियाँ चुग गयीं दाना साधो
अब कैसा पछताना साधो

अपना कोई घाट न डेरा
कइं रैना कइं खाना साधो

किसका सर है किसकी पगड़ी
कैसा कठिन ज़माना साधो

कौन सिपाही कौन लुटेरा
कौन करे जुर्माना साधो

बीच बजरिया बुने जुलाहा
छल का ताना-बाना साधो

नकली सूत चदरिया उजरी
दाम लगे मनमाना साधो

जीते जाओ पीते जाओ
आँसू का पैमाना साधो

दुनियाँ क्या, रिन्दों की बस्ती
हर कोई दीवाना साधो

एम.आई.जी. 1/6/101
इन्दिरा नगर, रीवा (म.प्र.)

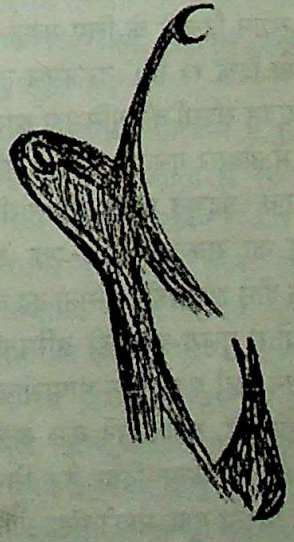

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झारखंड : एक नए सांस्कृतिक आंदोलन का आगाज़ !

सुभाष गाताडे

आदिवासीजनों को अपने इतिहासों, भाषाओं, मौखिक परंपराओं, दर्शनों, लेखन पद्धतियों और साहित्यों को पुनरूज्जीवित करने, उनका प्रयोग करने, उनको विकसित करने और अपनी भावी पीढ़ियों को संचारित/हस्तांतरित करने तथा अपने समुदायों, स्थानों और व्यक्तियों के लिए अपने खुद के नाम रखने और उनको क़ायम रखने का अधिकार है।

(अनुच्छेद 13, आदिवासी जनों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा)

कल्पना करें आबादी के हिसाब से एक छोटे से सूबे में 'मुख्यधारा' पर हावी भाषाओं के बरअक्स कई अन्य भाषाएँ-जो लोगों के छोटे-बड़े हिस्सों द्वारा सदियों से प्रयोग की जाती रही हों. .. अपने दावे के साथ हाज़िर हों, तब क्या होगा ? क्या सत्ता एवम समाज संचालन में ऐतिहासिक तौर पर वरीयता प्राप्त भाषाएँ इतना समावेशी रुख अख़्तियार करेंगी कि लिखित दुनिया में नयी दाखिल हो रही इन भाषाओं को भी फलने-फूलने का अवसर मिले या वे उन्हें अपने में जबरन समाविष्ट करने या बहिष्कृत करने की राह पर चलेंगी ?

किसी के लिए यह सवाल विशुद्ध मनगढ़ंत लग सकता है !

मगर भाषाओं, संस्कृतियों, समुदायों में व्याप्त भिन्नता के तौर पर एक बहुरंगी किस्म की शक्ल अख़्तियार किये हिन्दोस्तां की तुलना में नवनिर्मित सूबा झारखंड में फिलवक्त यह एक ज़िंदा सवाल है। मुंडा, खड़िया हो, कुडुख, संताली सहित बिरहोरी, असुरी, मालतो जैसी आदिम एवं खोरठा, नागपुरी, पंचपरगनिया, कुरमाली जैसी क्षेत्रीय भाषाओं से संबद्ध लोग आज अपनी भाषाओं को गरिमापूर्ण स्थान दिलाने के लिए महज संकल्पबद्ध ही नहीं बल्कि प्रयासरत भी दिख रहे हैं। दरअसल उपनिवेशकाल के जमाने से आंदोलनों एवम संघर्षों की भूमि रहा झारखंड-जो पिछले कुछ समय से मीडिया में अक्सर गलत कारणों से सुर्खियों में रहता आया है-इन दिनों ऐसे एक अद्‌भुत प्रयोग का साक्षी है।

कहा जा सकता है कि एक अलग राज्य के गठन के बाद-जिसके पीछे झारखंडी अस्मिता का लंबा संघर्ष था, जो विभिन्न उतार चढ़ावों से गुज़रा-झारखंडी अस्मिता के प्रस्फुटन का यह नया दौर है, जिसने जहाँ एक तरफ भाषाओं के विकास एवं संवर्द्धन के नये रास्ते खोले हैं, वहीं उसने कुछ अलग किस्म के प्रश्नों एवम चुनौतियों को भी जन्म दिया है। सिनगी दई, तिलका माँझी, सिदो-कान्हू, बिरसा मुंडा, मांकी मुंडा आदि तमाम वीरों-वीरांगनाओं ने अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से अगर लगातार संघर्ष की इस विरासत को ज़िंदा रखा है और आगे बढ़ाया है तो आज अस्मिताओं के प्रस्फुटन के इस नये चरण में ऐसे तमाम समर्पित लोगों की कहानियाँ दंतकथाओं की शक्ल धारण करती दिख रही हैं, जिन्होंने राज्यसत्ता से प्रत्यक्ष लोहा लेते हुये राजनीतिक-सामाजिक संघर्ष के दौर में आदिवासी समाज, देशज समाज में प्रबोधन का काम शुरू किया। गुरु गोमके पंडित, रघुनाथ मूर्मू , प्यारा केरकेट्टा, आदिवासी महासभा के संस्थापक इग्नेस बेक और कोल गुरु लाको बोदरा, ऐसे तमाम नाम हैं जिन्हें आज काफ़ी सम्मान से याद किया जा रहा है। इन आंदोलनों का ही नतीजा था कि संताली में 'ओलचिकी' तथा हो में 'वारंगक्षिति' लिपि सामने आ सकी। भाषा, लिपि और साहित्य के स्तर पर चले ऐसे संगठित प्रयासों का ही परिणाम था कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण का एक नया दौर शुरू हो सका और उसके परिणामस्वरूप राजनीतिक चेतना में नई तेज़ी आई। दिलचस्प है कि इनमें से कुछ भाषाएँ ऐसी भी हैं जहाँ रचा तो बहुत कुछ जा रहा है, मगर इसी दौरान अपनी अपनी लिपि ढूँढने की , उनके मानक स्वरूप निर्माण की कोशिशें भी चल रही हैं। इतना ही नहीं भाषा के बहाने जब कोई समुदाय अपने इतिहास की खोज में मुब्तिला हो, तब जहाँ यह उजागर हो रहा है कि उसकी जड़ें कहाँ-कहाँ तक फैली रही हैं वहीं साथ ही साथ यह कड़वी सच्चाई भी उजागर हो रही है कि अगर कारगर कदम नहीं उठाए गए तो इन्हीं में से कुछ भाषाएँ समय के शिलालेख में विलुप्त की श्रेणी में शुमार हो जाएगी।

यूँ तो इन भाषाओं के संवर्द्धन का मसला झारखंडी अस्मिता के लिए जारी संघर्ष का अभिन्न हिस्सा रहा है, लेकिन इसे अधिक संस्थाबद्ध करने का काम झारखंड आंदोलन के उरूज के दिनों में सामने आया। उन दिनों रांची विश्वविद्यालय में जनजातीय भाषा विभाग की नींव डाली गयी, जो अपने किस्म का समूचे देश के किसी भी विश्वविद्यालय में पहला विभाग था। आदिवासी जीवन पर अपने गंभीर अध्ययन के लिए चर्चित कुमार सुरेश सिंह के विश्वविद्यालय के कुलपति बनने के दौरान ही इसकी नींव पड़ी। उन दिनों मिनेसोटा विश्वविद्यालय में अध्यापन में संलग्न प्रोफ़ेसर रामदयाल मुंडा इस विभाग के पहले अध्यक्ष बने। अपने आप में यह देखना भी दिलचस्प है कि इन भाषाओं में पहली बार स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई शुरू हुई, फिर क्षेत्र के महाविद्यालयों में इन भाषाओं की पढ़ाई स्नातक स्तर पर होने लगी और बाद में स्कूलों में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिलसिला पहुँचा। अब प्राइमरी स्तर पर भी इन भाषाओं को पढ़ाए जाने की योजना बनी है।

कुछ भाषाओं को लेकर आज एक चुनौती यह भी है कि इनमें से कुछ भाषाओं की लिपि का मानकीकरण भी नहीं हुआ है अर्थात यह तय नहीं है कि वह कैसे लिखी जाएँगी। इसे संक्रमणकालीन जरूरतों को पूरा करना कह सकते हैं कि इनमें से संताली और कुछ हद तक 'हो' को छोड़कर अधिकांश भाषाएँ फिलवक्त देवनागरी लिपि में ही लिखी जा रही हैं। इन भाषाओं के विकास में संलग्न लोग बताते हैं कि अगर हिन्दी, मराठी, नेपाली एक ही लिपि में लिखे जाने के बावजूद अलग-अलग भाषाओं में शुमार हो सकती हैं तो यही सिलसिला इन आदिवासी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के साथ भी सामने आ सकता है।

लिपि निर्माण की जटिलता को देखते हुए हम अंदाज़ा लगा सकते हैं कि इन भाषाओं के विकास एवम संवर्द्धन के लिए कितना कुछ किया जाना बाकी है। प्रयोजनमूलक स्तरीय किताबों की कमी है, व्याकरण आदि सीखने के लिए मानकीकृत सामग्री तो है लेकिन 'मानकीकरण' का सवाल आम सहमति या व्यवहारिक प्रयोग के अभाव में जटिल बना हुआ है।

रोज केरकेट्टा, सुषमा असुर, सुकुमार, डोबरो बुड़ीउली, गोविन्द शरण लोहरा, सिकरादास तिर्की, बारीलाल टुडू, गिरधारी गोस्वामी या डा शांति खलखो, निताई महातो जैसे नामों से भले ही हिन्दी की मुख्यधारा के साहित्य के अध्येता अपरिचित जान पड़ें, मगर ये सभी झारखंडी अस्मिता से अपने आप को संबद्ध समझने वाली विभिन्न आदिवासी एवमं क्षेत्रीय भाषाओं में आकार ले रहे एक अलग किस्म के सांस्कृतिक आंदोलन के अग्रणी नाम हैं। निश्चित ही यह कोई समग्र सूची नहीं है, अलग-अलग भाषाओं में सक्रिय सैकड़ों ऐसे छोटे-बड़े नाम हैं, जो भाषाओं के इस पुनर्नवीकरण की मुहिम में कहीं न कहीं लगे हुये हैं। रोज केरकेट्टा राष्ट्रीय स्तर पर आदिवासी संघर्ष और सृजन का पर्याय बन चुकी हैं, तो सुषमा असुर अभी-अभी क़दम रख रही हैं। हो भाषा के साहित्यकार डोबरो 1992 से साहित्य के क्षेत्र में काम कर रहे हैं, जिनकी अभी तक पाँच पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं ; डॉ0 शांति खलखो वर्ष 1994 से कुडुख भाषा में काम कर रही हैं तथा उनकी तीन किताबें, 'उरांव संस्कृति : परिवर्तन एवं दिशाएँ', 'पुना डहरे' व 'तोड़न अखुआ' प्रकाशित हुए हैं। सिकरादास तिर्की खुद उरांव जनजाति से हैं पर इन्होंने मुंडारी साहित्य को लेकर काम किया है। 'बा चांडुआर तोअक' व 'झारखंड के आदिवासी और उनके गोत्र' इनकी प्रमुख पुस्तकें हैं। बारीलाल टुडू संथाली कवि हैं जिनकी कविता में झारखंड का विद्रोही स्वर आज भी मिलता है।

एक तरफ जहाँ झारखंडी समुदायों के एक हिस्से में, लेखक-साहित्यकार-संस्कृतिकर्मियों की बिरादरी में भाषाओं को नवजीवन देने को लेकर जबरदस्त उत्साह है, वहीं जहाँ तक सरकारी नीतियों एवम उनके अमल को देखें तो यही प्रतीत होता है कि उनके लिए इसका प्रचार-प्रसार दरअसल अन्य सरकारी महकमों की कार्यप्रणाली का ही विस्तार है, जिसमें लालफीताशाही है, बरबादी है। मिसाल के तौर पर अप्रैल माह में यह ख़बर सुर्खियाँ बनीं कि किस तरह एक करोड़ से अधिक रुपये खर्च कर जनजातीय भाषा की 25 लाख किताबें छपवायी गयीं, लेकिन अधिकतर किताबें बंटी नहीं। कुछ पुस्तकें बंटी, मगर उनका उचित इस्तेमाल इसलिए नहीं हो सका क्योंकि जनजातीय एवम क्षेत्रीय भाषा के शिक्षक स्कूलों में हैं ही नहीं और न ही इन पुस्तकों को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। हद तो तब हो गयी जब दोबारा 33.75 लाख रुपये खर्च कर 50 हज़ार किताबें छपवायी गयीं, जो उसी तरह पड़ी रह गयीं; यहाँ तक तीसरी दफा भी 25 लाख रुपये खर्च कर किताबें छपीं, जो उसी तरह पड़ी रह गयीं। (प्रभात ख़बर, 24 अप्रैल 2010)

मुमकिन है कि अंग्रेजी तथा हिन्दी जैसी भाषाओं में (वैसे अधिकतर अंग्रेजी) संप्रेषित करने में अपने आप को अधिक सहज महसूस करने वाले प्रबुद्धजनों के लिए विलुप्त होती बोलियों, भाषाओं या हाशिये पर पड़ी इन जुबानों के पुनर्नवीकरण की मुहिम निरर्थक जान पड़ती हो या समय एवम संसाधनों का अपव्यय मालूम देती हो, मगर जहाँ तक भाषाई विविधता और बहुभाषावाद की अहमियत को स्वीकारते विश्व जनमत का सवाल है तो उसके लिए यह एक सकारात्मक विकासक्रम है। पिछले दिनों अन्तरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के अवसर पर यूनेस्को की महानिदेशक सुश्री इरीना बोकोवा ने जो संदेश दिया वह मुख़्तसर में बहुत कुछ बयाँ करता है :

"मातृभाषाएँ, जिनमें कोई भी अपना पहला शब्द बोलता है और फिर उसमें अपनी व्यक्तिगत सोच की अभिव्यक्ति करता है, वही उनके इतिहास एवं संस्कृति की मूल बुनियाद होती हैं। मातृभाषाओं की अवधारणा का पूरक है बहुभाषावाद जिसके प्रोत्साहन के लिए तीन स्तरों पर-मातृभाषा, राष्ट्रभाषा और संचार की एक भाषा पर विशेष जोर आवश्यक है। भाषाएँ आपसी समझ और सहिष्णुता की कड़ी हैं। भाषाओं का सम्मान करना ही समाज और उसके सभी सदस्यों के साथ भेदभाव किए बिना शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को सुनिश्चित करने की प्रमुख कुंजी है।'

स्पष्ट है कि दूसरी भाषा का अध्ययन विभिन्न भाषाओं के प्रयोग में लाने की व्यक्तिगत क्षमता को बढ़ाता ही है, भाषाई विविधता के प्रति नज़रिए में खुलापन भी आता है और अन्य संस्कृतियों को समझने का रास्ता भी खुलता है। इसलिए अब यह बात जरूरी हो चली है कि आधुनिक शिक्षा के एक अनिवार्य रचनात्मक एवं संरचनात्मक तत्व के रूप में इसे समर्थन दिया जाए। ध्यान देने योग्य बात है कि विगत दस वर्षों से संयुक्त राष्ट्रसंघ के मुख्यालय और उसके सदस्य देशों द्वारा अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस का आयोजन करने का सिलसिला शुरू हुआ है।

कुछ माह पहले अन्दमान की 'बो' भाषा की एकमात्र बची जानकार महिला के देहांत के समाचार ने भाषाओं के विलुप्त होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आम होती परिघटना की तरफ हम सब लोगों का ध्यान आकर्षित कराया था और हम सब संयुक्त राष्ट्रसंघ की सांस्कृतिक परिषद के उस विचलित करने वाले आकलन से भी रू-ब-रू हुए थे कि इस सदी में 6,300 भाषाएँ हमेशा हमेशा के लिए ख़तम हो जाएँगी। भाषाई विविधता के मामले में बेहद संपन्न भारत में जहाँ 600 से अधिक भाषाएँ और 5000 से अधिक बोलियों की समृद्धशाली विरासत है वहाँ पर फिलवक्त बारह भाषाएँ गहरे संकट से गुजर रही हैं। खुद झारखंड में जहाँ एक तरफ़ भाषाओं के पुनर्नवीकरण की मुहिम आकार ले रही है, वहीं पर साथ साथ यह भी आकलन है कि वहाँ की छह भाषाएँ विलुप्त होने के कगार पर हैं।

निश्चित ही भाषाओं के विलोप का गतिविज्ञान उतना सरल नहीं कहा जा सकता, जितना वह लगता है।

यह सही है विशिष्ट भाषा बोलनेवाला कोई समुदाय ही समाप्त हो जाए तो भाषा का विलोप अवश्यंभावी होगा, मगर किसी भाषा विशेष को व्यवहार में लाने वाले लाखों लोगों के होने के बावजूद भी यह स्थिति बन सकती है, अगर विशेष प्रयास नहीं किए गए तो ! मसलन, उरांव समुदाय जिनकी आबादी लाखों में है तथा जो कुडुख बोलते हैं वह भी विलुप्त होने के कगार पर है।

वैसे भाषाओं के विकास में ठहराव की परिघटना करोड़ों लोगों द्वारा बोली जानेवाली हिन्दी में भी दिखती है। हिन्दी के विज्ञान एवम टेक्नोलोजी की भाषा न बनने की स्थिति को देखते हुए साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष प्रख्यात कन्नड साहित्यकार यू आर अनन्तमूर्ति ने जो चेतावनी दी थी वह ध्यान रखने लायक है। उन्होंने कहा कि 'अगर हिन्दी की इस सीमाबद्धता को तोड़ा नहीं गया तो उसके किचन लैंग्वेज अर्थात रसोईघर की भाषा में रूपांतरण को रोकना असंभव होगा।'

जहाँ यह स्वागत योग्य है कि अब तक हाशिये पर रही ये अलग-अलग भाषाएँ आगे आ रही हैं, इनमें बहुत कुछ लिखा जा रहा है, वहीं इसने तमाम संकीर्णमन लोगों/संगठनों को भी ऐसा मौका प्रदान किया है कि वे इतिहास को इस ढंग से शब्दबद्ध करें कि जो भविष्य में नए तनाव का सबब बने।

दरअसल अस्मिताओं का यह विस्फोट झारखंड स्तर पर कहीं नकारात्मक शक्ल धारण करता भी दिख रहा है, जहाँ दो आदिवासी या क्षेत्रीय समुदाय आपस में एक दूसरे के खिलाफ संघर्ष में उतरे दिखे हैं। कुछ समय पहले झारखंड की एक तहसील में हुआ भूमिज बनाम संथाल संघर्ष इसकी गवाही है, जहाँ विवाद का मसला यह बना कि किसका आगमन पहले हुआ!

आज से लगभग ढाई सौ साल पहले संपन्न तिलका माँझी का विद्रोह हमेशा से चर्चा में रहा है। अंग्रेजों के खिलाफ बग़ावत का परचम लहराने वाले इस महान शहीद की मूर्ति आज भी भागलपुर कमिश्नरी में लगी है। अब तक उनके बारे में यही मान्यता रही है कि तिलका माँझी संथाल थे, जबकि अब पहाड़िया समुदाय ने भी उन पर अपना दावा ठोंक दिया है, उसका कहना है कि माँझी तो उन दिनों एक पद था।

निश्चित ही अभी साझेपन की भावना के साथ आगे बढ़ रहे इस सांस्कृतिक आंदोलन को ऐसे तमाम जटिल सवालों से रू-ब-रू होना होगा।

उसे इस प्रश्न से भी जूझना होगा जिसका ज़िक्र चर्चित 'हो' साहित्यकार घनश्याम गागराई ने अपने एक वक्तव्य में किया था कि आदिवासी एवम देशज समुदायों के एक हिस्से में अपनी कही जाने वाली भाषाओं को सीखने को लेकर कई सारे सवाल हैं। उनका कहना है कि अब जबकि हमारी संतानें अंग्रेजी, हिन्दी सीख रही हैं ताकि दुनिया की प्रतियोगिता में बराबरी से टिक सकें, तब इन भाषाओं की ओर ध्यान बंटाने से लंबे दौर में उनका ही नुकसान होगा।

यह मसला भी काबिलेगौर है कि भूमंडलीकृत होती आज की दुनिया में छोटी-छोटी भाषाएँ कहाँ तक टिक सकेंगी ?

बहरहाल, ये सभी सवाल बिल्कुल वाजिब हैं, जिनको संबोधित करना ही होगा। मगर फिलवक्त जरूरत है कि झारखंड की सरज़मीं पर आकार लेते इस अनूठे सांस्कृतिक आंदोलन का हम ख़ैरमकदम करें। मिटने के कगार पर खड़ी या हाशिये पर डाली गयी कई भाषाओं को बोलने वाली आम जनता और उसके लेखकों-बुद्धिजीवियों को संगठित कर लिखी जा रही सांस्कृतिक आंदोलन की नई इबारत पर गौर करें। यूँ तो कई लोग इस प्रयास में लगे हैं मगर झारखंडी भाषा साहित्य-संस्कृति अखड़ा की तरफ से चल रही कोशिशें विशिष्ट प्रतीत होती हैं। अपनी पत्रिकाएँ, अपनी वेबसाइटें या जगह जगह अपने समान धर्म लेखकों, भाषाविदों, साहित्यकारों संस्कृतिकर्मियों एवम् बुद्धिजीवियों को एकत्रित कर झारखंडी पहचान और सांस्कृतिक अस्मिता को पुनर्प्रतिष्ठित करने के मकसद से जारी उनकी कोशिशें एक नयी बयार की तरह प्रतीत होती हैं। पिछले दिनों झारखंड की राजधानी राँची में अखड़ा का द्वितीय महासम्मेलन हुआ, जिसमें अलग-अलग प्रांतों से आए लगभग ढाई सौ से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

अखड़ा के हस्तक्षेप की ख़बर किस तरह दूर तक फैली है इसकी एक मिसाल उपरोक्त सम्मेलन में भाग लेने नेपाल से आए युवक रामसुंदर दास से मिल रही थी, जो नेपाल में लंबे समय पहले पहुँचे उरांव जनजाति से जुड़े हैं। विगत कुछ समय में नेपाल में उथल पुथल से गुजरा है, उसने वहाँ की जनजातियों में भी एक आंदोलन पैदा किया है।

महासम्मेलन में प्रस्तुत अपने गीत से लोक कलाकार मंसूरी ने एक तरह से इस आयोजन की केन्द्रीय भावना को छू दी 'गाँव छोड़ब नहीं, जंगल छोड़ब नहीं, माई-माटी छोड़ब नहीं लड़ाई छोड़ब नहीं'।

एच-4, पूसा अपार्टमेंटस, सेक्टर-
रोहिणी, दिल्ली-110

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एडवर्ड सईद : उत्तर-औपनिवेशिक-विमर्श में प्रतिरोधी-चिंतन

डॉ0 प्रभा दीक्षित

1935 में जन्मे एडवर्ड सईद की आवश्यकता आज सारे विश्व को थी, खासतौर से तीसरी दुनिया के अविकसित देशों को। दुःख की बात है कि अब हमारे बीच नहीं रहे किंतु उनका विवादास्पद साहित्य अगली सदी के अंत तक विश्व-विमर्श के केन्द्र में रहेगा। 16वीं शताब्दी के पूर्व से ही पश्चिमी चिंतकों की यह सोच रही है कि अफ्रीकी, एशियाई, अरबी एवं लाटिन अमेरिकी मुल्कों के लोग अशिक्षित, असभ्य एवं प्राकृतिक तौर पर पश्चिम के लोगों की अपेक्षा कम बुद्धिमान होते हैं। यह विचार साम्राज्यवाद के राजनैतिक पुरोधाओं के ही नहीं है बल्कि वहाँ के दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों के भी हैं। इस बात को राजनैतिक रूप से क्रमबद्ध ढंग से खंडित करने का काम सबसे पहले चीन के एशियापरस्त चिंतक माओत्से तुंग ने किया था। माओ ने पूँजीवादी प्रजातंत्र और सर्वहारा के प्रजातंत्र का अंतर स्पष्ट करते हुए यह बताने का प्रयास किया कि तीसरी दुनिया के देशों के लिये पूँजीवादी प्रजातंत्र इतने कारगर नहीं होंगे ,जितने सर्वहारा के प्रजातंत्र क्योंकि समान अवसरों को खरीदने की शक्ति इन देशों के आम आदमी में नहीं होगी। माओ ने आगे इस बात पर बल दिया है कि आज पूर्वी चिंतक पश्चिमी चिंतकों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक दृष्टि से सोच रहे हैं और अतीत में भी सोचते रहे हैं। वह गाँवों से शहरों को घेरने की क्रांतिकारी अवधारणा में विश्व स्तर पर पश्चिम को शहर और पूरब को गाँवों की संज्ञा देते थे। दो शब्दों में कहा जाय तो जो काम माओ ने राजनीति के माध्यम से करना चाहा था उसी काम के चिंतन की अनुगूंज हमें एडवर्ड सईद के साहित्यिक विमर्श में भी सुनाई देती है।

सहित्य एवं संस्कृति के विखंडन द्वारा पूर्वी शोषण पर आधारित पश्चिमी राजनीति की परत दर परत उधेड़ने वाले इस लेखक ने पश्चिमी लेखकों के उपन्यासों को उद्धृत करते हुये यह स्पष्ट रूप से कहा है कि पश्चिमी विभेदीकरण की नीति उनकी वैश्विक परिकल्पना की पोल खोल देती है। आज साम्राज्यवाद के मिथ्या वादों या दावों से ऊबे हुये पूर्वी देशों के चिंतक इस उत्तर औपनिवेशिक युग में सईद के चिंतन की रोशनी में उन व्यापक राजनैतिक, सामाजिक आयामों की तलाश कर रहे हैं जो विश्व-ग्राम के नाम पर सारे जग को बंधुआ बनाने का प्रयास कर रही हैं। तीसरी दुनिया की धीमी प्रगति का श्रेय साम्राज्यवाद को ही दिया जाना चाहिये—इस सत्य का स्पष्टीकरण सईद ने अपनी पुस्तक "औरियन्टेलिज्म" में विस्तार से किया है। पूर्वी अस्मिता को भदेस प्रमाणित करने वाले उपन्यासकारों जोसेफ कोनार्ड आदि के चिंतन का पोस्टमार्टम करते हुए एडवर्ड सईद इस नतीजे पर पहुँचते दिखाई देते हैं कि साम्राज्यवादी देश केवल तीसरी दुनिया के देशों का राजनैतिक, आर्थिक शोषण ही नहीं करते बल्कि उनकी सांस्कृतिक अस्मिता को भी समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं।

अपनी मातृभूमि फिलीस्तीन के समर्थन में इज़राइल के विरूद्ध इज़राइल समर्थक अमेरिका में रह कर आंदोलनरत इस लेखक ने पूरी स्पष्टता के साथ अपने देश की पक्षधरता में अमेरिकी-इज़राइली नीति की आलोचना की है। अपनी मातृभूमि छोड़ने का दर्द अपने दिल में बसाये इस लेखक ने सही अर्थों में विश्वनागरिक बनने की अपनी भूमिका का सफल निर्वाह किया है।

प्रायः यह देखा जाता है कि साम्राज्यवादी देशों के पालित लेखक अपने देश की जनता के असंतोष को व्यक्त नहीं करते। सईद ने इस बात का खुलासा करते हुये इस अवधारणा पर काम किया है कि साम्राज्यवाद की अनीतियों को वहाँ के नागरिक ही दूर कर सकते हैं। ज्ञात हो कि साम्राज्यवादियें द्वारा अपनी जनता को लूट के माल में हिस्सेदारी देने की बात माओ भी करते रहे हैं। पिछले दिनें ईराक युद्ध के बाद फोर्ड फाउंडेशन के तत्वावधान में अमेरिका में बोलते हुये सुश्री अरूंधती राय ने कहा था कि 'अमेरिका की विश्वस्तर की दादागिरी को कोई दूसरा मुल्क समाप्त नहीं कर सकता केवल अमेरिकी जनता ही ऐसा कर सकती है। अमेरिका के मायने जार्ज बुश या उनकी सरकार नहीं हैं, बल्कि अमेरिकी जनता है।' कहना न होगा कि इस अवधारणा पर सईद का लेखन एक विकल्प प्राप्त कर चुका है। अमेरिकी साम्राज्यवाद अपने हितों के अनुसार आतंकवाद को जन्म देकर पालता पोसता रहा है और अपने विरूद्ध भस्मासुर प्रमाणित होने पर उसे समाप्त भी किया है। लादेन के विरुद्ध अफगानिस्तान में तालिबान के सफाये को इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिये। आज अमेरिकी साम्राज्यवाद विश्व से आतंकवाद समाप्त करने का फतवा दे रहा है। अमेरिकी लेखकों की इस अवधारणा को कि "अरब देश अपने सांस्कृतिक पिछड़ेपन के कारण आतंकवाद को बढ़ावा देते हैं", का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सईद ने खंडन किया है। दर्शन, राजनीति, साहित्य, संस्कृति पर एक साथ काम करने वाले इस लेखक ने जो ईसाई मूल के अरब परिवार में पैदा हुआ, जेरूसलम, कैरों में रहता हुआ, हावर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ा हुआ तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालय (न्यूयार्क) में अध्यापन करते हुए अपने देश फ़िलीस्तीन की मुक्ति के लिये काम करते हुये, अपने व्यवहार और चिंतन के द्वारा सही अर्थों में अपने आपको विश्व नागरिक के रूप में चिन्हित किया है। साम्राज्यवादी सत्ता और समाज के अंतर्विरोध आपसी तालमेल की विवशता, कला या साहित्य में प्रतिरोधी क्षमता एवं अन्य शोषित समाजों पर पड़ने वाले प्रभावों को चिन्हित करने का प्रयास इस लेखक की विखंडनवादी अवधारणाओं का विशेष लक्ष्य रहा है। लेखक ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक गैर राजनैतिक, साहित्यिक या सांस्कृतिक मुहिम का सूत्रपात किया है जिसे साहित्य के क्षेत्र में विशेष अवदान के रूप में चिन्हित किया जा रहा है। संभवतः इस उत्तर औपनिवेशिक विमर्श का यह प्रभाव है कि आज "जबरा मारे रोने न दे" की कुनीति के अनुसार अमेरिका द्वारा ईराक पर युद्ध थोपा गया है और पूरी बेशर्मी के साथ उसे मुक्त कराने की संज्ञा दी जा रही है, जिसका विरोध विश्व के सभी देशों के बुद्धिजीवी एक स्वर से कर रहे हैं। प्रजातंत्र की व्यवस्था के दोहरे आयाम अर्थात पूर्व के प्रजातंत्र एवं पश्चिम के प्रजातंत्रों के रखरखाव का फर्क या अर्द्ध सामंती समाजों एवं बुर्जुआ जनतंत्र के समाजों में रहने वाले फर्क को, उनके अंतर्विरोधों को तथा उनकी जनता के आपसी जुड़ाव की तीव्रता का बोध हमें सईद के साहित्य में दृष्टिगत होता है। कारण चाहे जो कुछ रहा हो किन्तु पहली बार ईराक पर अमेरिकी हमले के विरूद्ध अमेरिकी जनता ने बड़ी संख्या में अपनी सरकार के विरूद्ध उग्र प्रदर्शन किया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंत में यह कि कोई भी चिंतक आज की पल-पल परिवर्तित होती दुनियां की परिस्थितियों मे समग्र रूप से मानवीय पक्षधरता के संपूर्ण आयामों पर पूर्णता में सोच सके, ऐसा संभव नहीं है। उनके व्यक्तिवादी रुझानों अथवा जाने-अनजाने साम्राज्यवादी क्रूर रूझानों पर धुंध-दृष्टि को लेकर हम सईद से असहमत भी हो सकते हैं। हाँ, इस असहमति को वर्ग-शत्रु की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। इसके बाद भी आज के साम्राज्यवादी षडयंत्रों के बीच, बाज़ारवादी उपभोक्ता संस्कृति के साये में पलते हुये, हम जिस मानव द्रोही प्रवृत्ति को अपने आसपास के समाज में, सामाजिक सरोकारों में या आपसी संबंधों या रिश्तों में मूर्त रूप से प्रकट होते देख रहे हैं और एक असुरक्षा के बीच मात्र जीने के लिये जी रहे हैं, ऐसे में जन-जन के द्वारा सम्राज्यवादी सत्ता के प्रति सांस्कृतिक प्रतिरोध की अवधारणा विराट अंधेरे में टार्च की सार्थकता का बोध प्रदान करती है। पश्चिमी साम्राज्यवादी चिंतन के बरअक्स पूर्वी पक्षधरता के विमर्श का लेखकीय अवदान जहाँ कुछ नई बहसों को जन्म देता है वहीं विश्वग्राम (भूमंडलीकरण) का जागरुक नागरिक बनने की सही तमीज़ पैदा करता है। माउत्से तुंग और सईद की अवधारणाओं में काफी फर्क होने के बाद भी पश्चिम पर पूर्व के चिंतन की श्रेष्ठता का बोध एवं साम्राज्यवाद का हर स्तर पर विरोध इन्हें एक ही राह का राही बना देते हैं।

128/222 वाई वन ब्लाक
किदवई नगर, कानपुर

कविता

कैसा उदास मंजर है...?

टीकेन्द्र 'शाद'

उफ...
ये कैसा उदास मंजर है
दौरे-तामीर है या
सहरा-ए-समुन्दर है,
धरा के आँचल से
छिन रही है हरियाली
फ़िज़ा है गर्म न ताज़गी हवाओं में
अगर हम आज न जागे तो कल
न बहार होगी न कहीं खुशहाली,
घरों में गौरेया अब नहीं आती
और न बुलबुल किसी बगीचे में
कूक कोयल की खो गई है कहाँ

उदास बैठा हुआ है बनमाली,
तितलियाँ तक नज़र नहीं आतीं
गर्म हवाओं से फूल झुलस जाते हैं
उदास बेटियाँ हैं अब यहाँ किसानों की
देखके खलिहान हैं खाली-खाली,
सारे दुखदर्द समेटे अपने दामन में
उदास यमुना है ठीक माँ की तरह
क़दम बोसी को मुंतज़िर हैं घाट के पत्थर
मगर आती नहीं कोई यहाँ पनिहारी...
उफ.... ये कैसा उदास मंजर है...

सचिव जनवादी लेखक संघ
मथुरा (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक फूल पत्थर का

रतन सिंह

सरबुलंद पहाड़ों की वादियों में घूमते हुए पत्थरघाड़े के पैर एक बड़ी सी चट्टान के छोटे से हिस्से को देखकर ठिठक गये। सारी चट्टान का रंग आम पत्थरों जैसा था—गाँचनी रंग, मटमैला-सा; लेकिन उसके एक सिरे पर ऊपर को उठता हुआ पतला-सा पत्थर उस चट्टान का हिस्सा होते हुए भी उससे अलग-थलग लग रहा था। ऐसा लगता था, जैसे कुदरत ने चट्टान के गाँचनी रंग में हल्की-सी सुर्ख़ी मिला दी हो।

चट्टान के उस हिस्से पर पत्थरघाड़े की नज़र टिककर रह गयी।

पत्थर की मोटी तहों की गहराई में छिपी हुई ख़ूबसूरती को भाँपने के लिए पत्थरघाड़े की तीख़ी नज़रें अपनों की तरह पत्थर में धँसी जा रही थीं।

अरे, इस पत्थर के अंदर यह ख़ूबसूरत फूल कैसे क़ैद हो गया! फूल भी वो, जो पौधे की टहनी से लगा हुआ हो। पत्थरघाड़े के मन से ये अल्फ़ाज़ ऊँची आवाज में यूँ अदा हुए, जैसे वो उसका जवाब खुद से भी पूछ रहा हो और उस चंट्टान से भी।

यह कहते हुए उसने अपना हथौड़ों और छैनियों से भरा थैला एक पत्थर पर रख दिया और फूलवाली चट्टान के कुछ पास जाकर पत्थर का मुआयना करने लगा।

"है। फूल है। है... फूल है" वो उस पत्थर की तरफ़ देखते हुए बार-बार बोले जा रहा था और उसके वजूद का हर रंग उसके ख़्याल की ताईद कर रहा था।

आँखें फूल की तरफ़ देखकर ख़ुशी और हैरानी से फूली जा रही थीं। नथुने जैसे पत्थर में छिपे हुए फूल की ख़ुशबू अभी से सूँघने के लिए लंबी-लंबी साँसें खींच रहे थे।

उसके हाथों की अंगुलियाँ उस फूल का स्पर्श पाने के लिए बेचैन हो रही थीं और दिल तसव्वुर में फूल की शक्ल व सूरत देखकर मतवालों की तरह धड़के जा रहा था।

और फिर पत्थरघाड़ा कब अपने सन्दों का थैला लिए चट्टान के उस हिस्से पर जा पहुँचा, जहाँ उसे पत्थर के अंदर कहीं छोटे-से फूल के होने का आभास हो रहा था, इसका अहसास तो ख़ुद पत्थरघाड़े को भी नहीं था।

वक़्त की तारीख़ इस सिलसिले में मुकम्मल तौर पर ख़ामोश है।

हाँ! वहाँ दूर-दूर तक फैले हुए ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों को इतना याद है कि जब पत्थरघाड़े के हथौड़े और छैनी की ठुक-ठुक में एक लय-सी बन गयी, तो सारी वादी में और घाटियों में सुरलहरी-सी बिखर गयी। पहाड़ों की चोटियों ने नीचे झाँक-झाँककर देखा कि जब पत्थरघाड़े के हथौड़े की चोट खाकर छेनी चट्टान के कोनों को काटती थी, तो चट्टान उस दर्द को ख़ुश-ख़ुश यों सह रही थी, जैसे दर्देजाह (बच्चे की पैदाइश के वक़्त होने वाला दर्द) को कोई जननी सहती है। पत्थरघाड़े के हथौड़े की ठुक-ठुक चलती रही। पत्थर की चट्टान उसकी छैनी की काट से होने वाले दर्द को सहती रही।

वक़्त का दरिया बहता रहा।

फिर, पत्थरघाड़े का यकीन ईमान में बदल गया। फूल के नक़्शोनिगार धीरे-धीरे साफ़ ज़ाहिर होने लगे। फूल किसी पौधे की टहनी पर लगा था। टहनी पर दो-चार हरी पत्तियाँ भी थीं और फिर उसके सिरे पर फूल का आकार था।

जैसे-जैसे उनकी शक्ल साफ़ होती जा रही थी वैसे-वैसे पत्थरघाड़े का काम मुश्किल होता जा रहा था। हथौड़े की जगह अब पत्थरघाड़े के हाथ में छोटी-सी हथौड़ी थी। ऐसी, जैसी सुनार के हाथ में होती है। छैनी भी बारीक़ काम के लिए इतनी बारीक़ हो गयी थी कि उसकी अंगुलियों में फँसी पसीने से भीग-भीग जाती थी। लगता था, जैसे उस काम को अंजाम देते-देते हथौड़ी को भी पसीना आ रहा था।

ऐसे में पत्थरघाड़े की ठुक-ठुक की आवाज़ भी बहते हुए पानी की कल-कल में बदल गयी थी। कल-कल, जो किसी की सुनायी नहीं देती। उसको सुनकर तो लमता है, जैसे दरिया सो रहा हो। उस कल-कल को सुनकर इर्द-गिर्द के पहाड़ों पर भी गुनूंदगी-सी छा रही थी, जैसे उनको नींद आ रही हो, लेकिन, वो सो नहीं रहे थे... जाग रहे थे... पूरी तरह जाग रहे थे।

जब नयी तख़लीक़ हो रही हो तो दुनियाँ सोती नहीं, जागती है।

उस वक़्त भी सारा माहौल जाग रहा था। ज़मीन जाग रही थी, आसमान जाग रहा था। चट्टान के वजूद में दर्देजाह की मीठी-मीठी दर्द भरी लहरें उठ रही थीं।

एक फूल जन्म ले रहा था।

एक ज़िंदगी वजूद में आ रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वाह, कितना ख़ूबसूरत फूल है,"

पत्थरघाड़े की कान में ये अल्फ़ाज़ पड़े ज़रूर, लेकिन उसने कोई ध्यान नहीं दिया। उसने सोचा कि यह उसका अपना दिल कह रहा है। इसलिए, सुनी-अनसुनी करके वो अपने काम में मगन रहा।

लेकिन ये अल्फ़ाज़ दूसरी बार उसके कान में पड़े, तो उसने गर्दन उठाकर देखा और हैरान रह गया।

उसके सामने तमाम ख़ूबसूरती को जन्म देने वाली ज़िंदगी की देवी खड़ी मुस्कुरा रही थी। साकार सौंदर्य।

"बहुत अच्छा फूल गढ़ रहे हो।"

"मैं गढ़ नहीं रहा। यह तो पहले से ही इस चट्टान के अंदर मौजूद था। मैं तो इसे बाहर निकाल रहा हूँ बस", यह कहते हुए पत्थरघाड़े ने फूल पर फूँक मारकर उसके गिर्द फैले हुए कणों को उड़ाने की कोशिश की, तो उसकी कुछ ग़र्द ज़िंदगी की देवी के साफ़-सुथरे कपड़ों पर भी पड़ गयी।

"मांफ कीजिएगा, आप के कपड़े मैले हो गये।"

"बच्चों के जिस्म का मैल तो माँओं का शृंगार होता है। उस ग़र्द से मेरे कपड़े और ख़ूबसूरत हो गये हैं", यह कहते हुए ज़िंदगी की देवी अतंर्ध्यान हो गयी।

पत्थरघाड़े ने ज़िंदगी की देवी की एक और झलक पाने के लिए चारों तरफ़ देखा। वो कहीं नहीं थी। मगर, पत्थरघाड़े को यह महसूस हो रहा था, जैसे वो हर तरफ़ थी। चारों दिशाओं में बिखर गयी थी या फिर सिमट गई थी, कण-कण में समा गयी थी। इसीलिए तो हद्दे नज़र तक हरी-भरी ज़मीन पर रंगीनियाँ बिखेर रही थी। हवा वनस्पतियों की ख़ुशबू को अपनी लहरियों में समेटे दिग-दिगंत तक बह रही थी और आसमान उसका लुत्फ़ उठाने के लिए अपनी तमाम नीलाहटों के साथ नीचे झुक आया था।

तभी पत्थरघाड़े के कानों में पक्षियों के कोलाहल की आवाज़ पड़ी, तो वो अभी-अभी देखे कुदरती मंज़र के जादुई असर से बाहर आया और उसकी अंगुलियां ख़ुद ब ख़ुद हरकत में आ गयीं।

फूल फिर तख़लीक होने लगा। पत्थरघाड़े अपने गर्दोपेश से बेनियाज़ होकर फिर अपने काम में जुट गया।

अब उसे न आसमान दिखायी दे रहा था, न क्षितिज, न ज़मीन, न पहाड़। यहाँ तक कि वो चट्टान भी नहीं दिखायी दे रही थी, जिस पर बैठा वो फूल को पत्थर के अंदर से बाहर निकाल रहा था।

उसे दिखायी दे रहा था तो सिर्फ़ पौधों का डंठल और फूल।

पता नहीं वो कितनी देर अपने आप में गुम काम करता रहा।

यहाँ तक कि अब उसके कानों को अपनी ही हथौड़ी के छैनी से टकराने की आवाज़ भी सुनायी नहीं दे रही थी।

बस उसकी आँखें थीं, जो उस पत्थर के फूल की एक-एक पत्ती, पत्ती के एक-एक रेशे के रंगों पर टिकी हुई थीं।

नहीं, टिकी नहीं हुई थीं, बल्कि वहीं जाम होकर रह गयी थीं। नहीं, जाम नहीं थीं, बल्कि हरकत में थी। हरकत ऐसी, जो ठहरी हुई हो, जैसे ज़मीन हर वक़्त हरकत में तो रहती है, मगर किसी को महसूस तक नहीं होता।

पता नहीं कितनी देर यह कैफ़ियत बनी रही... शायद उम्रों तक... शायद कई जन्मों तक।

तारीख़ के पास कोई स्पष्ट बयान नहीं है। पहाड़ कहते हैं कि उन्होंने जब से होश सँभाला है, पत्थरघाड़े की ठुक-ठुक को इसी तरह सुनते आये हैं।

काम करते-करते पत्थरघाड़े ने फूल की तरफ़ गहरी नज़र से देखते हुए एक लंबी साँस ली।

उसे लगा, जैसे फूल की कोई पत्ती ज़रा-सी हिली हो।

"मेरी नज़र धोखा खा रही है",

उसने एक और लंबी साँस ली।

पत्ती में फिर हल्की-सी हरकत हुई।

पत्थरघाड़े की अपनी बेयकीनी अभी यकीन में नहीं बदली थी कि उसने देखा कि चट्टान ख़ुशी से ऐसे निढाल पड़ी थी, जैसे जननी बच्चे को जन्म देने के अमल से फ़ारिग होकर अपने शरीर को ढीला छोड़ देती है।

पत्थरघाड़े ने भरपूर नज़र से पहले चट्टान और फिर पत्थर के फूल की तरफ़ देखा।

पत्थर के फूल पर ऐसी चमक बिखरी थी, जैसे धरती पर फैला हुआ तमाम हुस्न सिमटकर फूल की पत्तियों पर बिखर गया हो।

तभी उसने महसूस किया कि हवा ख़ुशबू से भरी है।

यह ख़ुशबूदार ग़र्द के पहाड़ों पर उगी वनस्पति की ख़ुशबू है या उस फूल की।

पत्थरघाड़ा कुछ समझ नहीं पा रहा था।

तभी फ़िज़ा में कुछ मधुमक्खियाँ आयीं और पत्थर के फूल के ऊपर मँडराने लगीं।

यह मंज़र देखकर पत्थरघाड़े के चेहरे पर मंद-मंद मुस्कुराहट फैल गयी। उसके अंदर का तख़लीककार फूल की ख़ूबसूरती को देखकर तस्कीन महसूस कर रहा था। उसे लगा जैसे उसका काम पूरा हो गया हो।

वो कुछ देर तक मधुमक्खियों को फूल के ऊपर मँडराते देखकर ख़ुश होता रहा।

'नहीं, कुछ कसर बाक़ी है', उसने सोचा, 'मधुमक्खियाँ फूल के ऊपर मँडरा रही हैं, उस पर बैठ नहीं रहीं।

वो फूल की तरफ देखते हुए सोचने लगा कि उसे और क्या करना चाहिए।

अभी वो किसी नतीजे पर नहीं पहुँचा था कि उसे महसूस हुआ कि जैसे इर्द-गिर्द की फ़िज़ा बदल गयी। अब उसे मधुमक्खियाँ कहीं दिखायी नहीं दे रही थीं। अब उसके नथुनों में वनस्पति की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुशबू भी नहीं आ रही थी।

उसने महसूस किया जैसे माहौल में दुर्गंध-सी बस गयी हो।

यह कहाँ से आ गयी?

उसने पलटकर देखा। क्षितिज पर अजीब किस्म की लाली छा गयी थी। यह सूरज के उगते या ढलते वक़्त पैदा होने वाली लाली नहीं थी, जो धरती और आसमान को एक साथ ख़ूबसूरती से भर देती है।

उसे उस लाली में ख़ून की रंगत बसी हुई लगी। ख़ून की रंगत, जो थोड़ी देर में काली पड़ जाती है।

उस लाली को देखकर उसके दिल में ख़ौफ़-सा पैदा हुआ। क्षितिज से उतरती हुई यह कालिख भरी लाली पूरी ज़मीन को घेरे में ले रही थी। आँधी की-सी तेज़ी से आगे बढ़ती हुई उस कालिख को देखकर पत्थरघाड़े का दिल डूबने लगा।

तभी ज़िंदगी की देवी फिर प्रकट हुई।

उसे एक नज़र देखते ही पत्थरघाड़े के होश उड़ गये।

उस सौंदर्य की देवी के चेहरे पर हवाईयाँ उड़ रही थीं।

उसके कपड़े तार-तार थे और जिस्म पर जगह-जगह खरोचों और ज़ख़्मों के निशान।

"यह क्या हुआ", घबराते हुए पत्थरघाड़े के मन से ये अल्फ़ाज़ निकल न सके, लेकिन उसकी आँखें यही पूछ रही थीं।

"बस धमाका होता है और हर तरफ़ लाशें बिछ जाती हैं। इमारतें मलबे का ढेर बन जाती हैं। कोई जगह महफ़ूज़ नज़र नहीं आती। न मंदिर, न मस्जिद; न गाँव, न शहर; न ज़मीन, न समन्दर न आसमान।

"लेकिन यह कर कौन रहा है?" पत्थरघाड़े की आँखों ने फिर पूछा।

"कुछ समझ में नहीं आता। अपनों के बीच से ही कोई ग़ैर बन जाता है। दोस्तों के बीच से ही कोई दुश्मन निकल आता है।

यह कहते हुए जिंदगी की देवी ने एक नज़र क्षितिज से उमड़ती हुई आँधी की तरफ़ देखा और फिर पत्थर में उभरी हुई टहनी पर लगे फूल की तरफ।

"उस फूल में मेरे हुस्न का अक्स है।"

"यह फूल तुम्हारी युगों की मेहनत का साक्षी है।"

"इसे इसकी ज़द से बचाना होगा।"

पत्थरघाड़े की आँखों में आखें डालकर ऐसा कहते हुए, ज़िंदगी की देवी फिर अंतर्ध्यान हो गयी।

ज़िंदगी की देवी के अंतर्ध्यान होते ही उसके अल्फ़ाज़ पत्थरघाड़े के कानों में मधुमक्खियों की गूँ-गूँ की तरह गूँजने लगे—"इस फूल में मेरे तमाम हुस्न का अक्स है... यह फूल तुम्हारी युगों की मेहनत का साक्षी है... इसे आँधी की ज़द से बचाना होगा..."

ये अल्फ़ाज़ हर्फ़-हर्फ़ जब उसके दिल में उतरे, तो पत्थरघाड़ा सोचने लगा कि मैं इस फूल की हिफ़ाज़त कैसे करूँ?

तभी उसे ख़्याल आया कि कुरुक्षेत्र का युद्ध शुरू होने से पहले धर्मराज युधिष्ठर ने अंडे से रही चिड़िया के ऊपर अपना कवच डालकर उसे और उसकी नस्ल को जंग की तबाही से बचाया था।

बस, उस ख़्याल का आना था कि पत्थरघाड़े ने उस फूल को अपने तन के कवच से ढाँप दिया। वक़्त गुज़रने के साथ पत्थरघाड़े का हाड़ का तन पत्थर का बन चुका है, लेकिन लोग कहते हैं कि लहू की लाली वाली यह आँधी जैसे ही हटेगी, वैसे ही पत्थरघाड़े का पत्थर बना तन फिर से हाड़-माँस का बन जाएगा।

और, उसके उठते ही दुनिया पर उस फूल का हुस्न ज़ाहिर होगा, जो ज़िंदगी के हुस्न का अक्स है।

ए-402, बीटा-1, नोयडा (उ0प्र0)

अनुवादक : **फ़ातिमा ज़ेहरा**
ग़ुलाम फ़रीद साबरी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

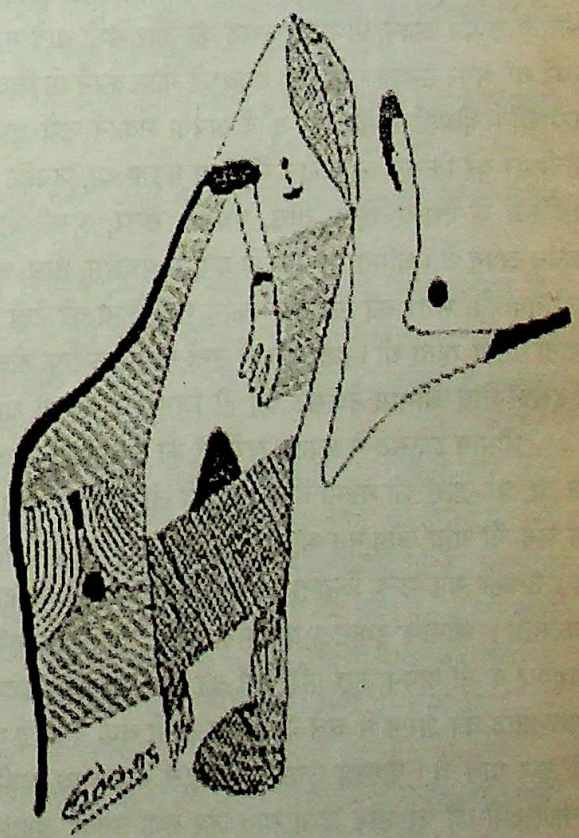

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. जीवन का गणित

अमर गोस्वामी

छत्तीस महामना स्क्वायर की चौथी गली के बहत्तर नंबर का हर दो टाँग वाला परेशान रहता था। सबकी अपनी समस्याएँ थीं। समाधान नज़र नहीं आता था। सब परेशान रहते थे और एक दूसरे की शांति में दख़ल देते रहते थे।

सभी नामवर थे, मगर उनके हरदम लाल-पीले होते रहने के कारण मुहल्ले वाले उनका नाम नहीं लेते थे। वे अपनी उम्र से जाने जाते थे। धीरे-धीरे उनकी उम्र ही उनकी संज्ञा हो गयी थी। वैसे भी, इस कहानी में जो भी चरित्र हैं, उनका नाम नहीं है। नाम से क्या होता है, असली चीज़ तो उम्र होती है।

श्रीमान इकसठ और श्रीमती छप्पन पति-पत्नी थे। दोनों को एक-दूसरे से काफ़ी शिकायतें थीं। श्रीमती छप्पन को लगता कि श्रीमान इकसठ ने उनकी ज़िंदगी तबाह कर दी है। श्रीमान इकसठ को लगता कि औरतों को शिकायतों के अलावा कुछ सूझता नहीं। श्रीमती छप्पन अपने श्रीमान इकसठ की और सभी बातें माफ़ कर चुकी थीं, मगर उनकी एक बड़ी बेवकूफ़ी माफ़ करने के लिए तैयार नहीं थीं। श्रीमती छप्पन का कोई अपना मकान नहीं था। उन्हें ऊँची दर पर किराये के मकान में रहना पड़ता था, जबकि उनकी सहेलियों के दस-ए, तेरह, तीस, पचपन, सत्तर, अस्सी-बी आदि मकान अपने थे। श्रीमती छप्पन को वर्षों से पच्चीस, तीस, चालीस, यहाँ तक कि सत्तर की उम्र की मकान मालकिनों की टेढ़ी भृकुटी सहनी पड़ती रहती थी। इस बात से उन्हें बड़ी तकलीफ़ होती थी। वे इसके लिए श्रीमान इकसठ को ही ज़िम्मेदार मानती थीं।

श्रीमान इकसठ ने मकान ख़रीदने की ईमानदारी से कोशिश की थी, पर औरों की बेईमानी के आगे वे ज़ीरो हो गये थे। बेचारे का धन भी गया और मन भी वह न रहा, जो सनू नब्बे के पहले था। उनका मन उन्हे जितना कोसता, पत्नी उससे ज़्यादा उन्हें भकोसती। श्रीमान इकसठ का मन करता कि मोह-माया को त्यागकर वे भी अपने कुछ परिचितों की तरह श्री श्री गुरुदेव एक हज़ार आठ की शरण में चले जाएँ, पर अभी तक वे कोई फ़ैसला नहीं कर पाये थे। फ़ैसला उन्होंने अष्टदल कमल पर खड़ी रहने वाली लक्ष्मी जी पर छोड़ दिया था। जब तक उनका आदेश नहीं मिलता, तब तक उन्हें पत्नी के ताने और अपने बाने से गृहस्थी का चादर बुनते जाना था।

अपने कारण से परेशान उनका बेटा युवातुर्क श्री चौबीस भी था। वह एक ठीक-ठाक नौकरी करता था, पर वह उतनी ठीक-ठाक नहीं थी। श्रीमान इकसठ को लगता कि वह ठीक से कोशिश करे, तो और बेहतर नौकरी कर सकता है। श्री चौबीस भी सोचता कि वह अपने सफल दोस्तों की तरह कैसे किसी बेहतर नौकरी का जुगाड़ करे। यह उसकी सबसे बड़ी समस्या थी। उसके दोस्त जो उससे बेहतर नौकरी करते थे, उन्हें लगता था कि उनकी नौकरी उतनी बेहतर नहीं, जितनी होनी चाहिए थी।

श्री चौबीस की प्रेम पंक में धँसने वाली उम्र थी। चाँदनी चौक की एक जीन्सधारिणी मिस ट्वन्टी के प्रेम में सन भी चुका था। उसके कानों में अठारह घंटे प्रेम की सन-सन बयार रहती। बाक़ी छह घंटे वह नींद में इस तरह डूबा रहता कि उसके प्रेम की सनसनाहट को भी विवश होकर आराम फ़रमाना पड़ता। श्री चौबीस की समस्या थी कि उसकी प्रेमिका मिस ट्वन्टी एक एक्सपोर्ट हाउस के युवा व्यवसायी श्रीमान अट्ठाइस से प्रेम करती थी। वह अपने प्रेमी के माध्यम से विदेश में एक्सपोर्ट होना चाहती थी। श्री चौबीस की समझ में नहीं आता था कि वह अपने कुँवारे प्रेम की प्रेमिका को एक्सपोर्ट होने से कैसे रोके। मिस ट्वन्टी के घर में भी कम समस्याएँ नहीं थीं। मिस ट्वन्टी के पिता श्रीमान पचहत्तर की समस्या थी कि उनकी बेटी की माता श्रीमती सत्तर ख़ुद उसे श्रीमान अट्ठाइस से प्रेम करने के लिए उकसाती रहती थीं। श्रीमान पचहत्तर को यह बेहयाई बर्दाश्त नहीं थी। श्रीमती सत्तर जमाने की रफ़्तार से अपरिचित अपने पति को मूर्ख समझती थीं। इसके फलस्वरूप पति-पत्नी दोनों का घर में छत्तीस का रिश्ता हो गया था।

मिस ट्वन्टी से एकतरफ़ा प्रेम करने वाले श्री चौबीस की एक बहन थी—मिस एट्टीन। मिस एट्टीन मॉडल बनना चाहती थी। वह घर में हमेशा बिल्ली की तरह घूमा-फिरा करती। उसकी चाल के कारण मुहल्ले के छोकरे उसे बिल्लो कहते थे। मिस एट्टीन हॉट मॉडल बनने के बाद फ़िल्मों से कमाई करना चाहती थी। वह फ़िल्मी दुनिया के सुपर हीरो मिस्टर बॉडीकुमार के साथ 'तुम्हारी चाबी हमारे हाथ' जैसी किसी फ़िल्म में हीरोइन बनकर काम करना चाहती थी। उसकी दिली इच्छा थी कि कभी उन दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चड्ढियाँ कपड़े सुखाने वाले स्टैन्ड पर अलग-अलग नज़र आएँ। श्रीमती छप्पन बेटी की ऐसी ख़्वाहिशों से परेशान रहतीं। श्रीमान इकसठ, बासठ में क़दम बढ़ाते हुए सोचते कि उनके घर में यह क्या हो रहा है! श्री चौबीस को लगता कि बहन को उसके बचपने से बचाना चाहिए। पूरे घर की समस्या अब मिस एट्टीन थी। मिस एट्टीन को यह अपनी स्वतंत्र सत्ता में हस्तक्षेप लगता। वह विद्रोह करने के लिए घर से नौ दो ग्यारह हो जाने की सोच रही थी।

जब सब अपनी समस्याओं से उबरने के लिए कुछ अलग फ़ैसला लेने की बात सोच रहे थे, तो अचानक जो बदरा मज़े से पगुरा रहे थे, वे चंचल बछड़े की भाँति भाग गये।

एक दिन श्री चौबीस को मनलायक नौकरी मिल गयी।

मिस एट्टीन मिस इण्डिया चुनी गयी।

मिस ट्वन्टी अपने प्रेमी के साथ सिंगापुर चली गयी।

मिस्टर इकसठ को नौकरी में एक्सटेंशन भी मिला, प्रमोशन भी। और रहने के लिए सस्ता सरकारी आवास।

इस व्यवस्था से मिस छप्पन थोड़ी ख़ुश हुईं। अपने पति श्रीमान इकसठ को उन्होंने कुछ हद तक माफ़ कर दिया।

सब ठीक चलने लगा था, मगर एक दिन थोड़ी उथल-पुथल हो गयी। हुआ यह कि श्रीमान इकसठ के एक मित्र श्रीमान अट्ठावन ने इस बीच अपना मकान बनवा लिया। उन्होंने अपने नये मकान के गृहप्रवेश की पार्टी में सबको दावत दी। ख़ुशी की इस ख़बर से श्रीमती छप्पन का चेहरा उतर गया और वे श्रीमती सत्तर लगने लगीं। श्रीमान इकसठ की तो मत पूछिए... उस दिन फिर से श्रीमती छप्पन से उनका छत्तीस का रिश्ता बन गया।

2. गेहूँ की बोरी

अचानक एक संस्था ने मुझे पुरस्कृत करने की ठान ली।

मुझे ख़ुश होना चाहिए था, पर मैं हो नहीं पाया। दरअसल, वह पुरस्कार किसी हास्य रस की कृति के लिए दिया जाता था। मैं हास्य रस से कोसों दूर था। मैंने हास्य रस की कोई पुस्तक कभी लिखी ही नहीं। कहीं आयोजकों को कोई ग़लतफ़हमी तो नहीं हो गयी थी ? या फिर वे मुझसे मज़ाक तो नहीं कर रहे थे?

मज़ाक ही होगा, क्योंकि संस्था वाले इस बार पुरस्कार में मानपत्र, नारियल, शॉल आदि के अलावा एक बोरी गेहूँ भी दे रहे थे, यानी ऐसा पुरस्कार, जिसे आप सपरिवार खा सकें।

मुझे पुरस्कार में गेहूँ की बोरी देने की कोई तुक समझ में नहीं आयी। यह बात मैंने आयोजकों से भी कही, जो उस वक़्त मेरे घर में बैठे मेरे मुँह का ज़ायका ख़राब करके अपना मुँह मीठा कर रहे थे। प्लेट की सामग्री खत्म करके ही उन्होंने मेरी ओर ध्यान दिया। मुस्कराते हुए बोले, "माफ़ कीजिए, आप कुछ कहरहे थे।"

मैंने पूछा, "लोग पुरस्कार में रुपये देते हैं, आप गेहूँ की बोरी क्यों दे रहे हैं?"

रुपया तो हाथ का मैल होता है। हम साफ़-सुथरे हाथों वाले लोग हैं। हम हाथ की इज़्ज़त करते हैं।"

मैं भयभीत हो गया। हाथ का खेल दिखाने वालों से मैं बहुत डरता हूँ।

मेरा चेहरा देखकर वे बोले, "हम लेखक का सम्मान करते हैं। उसका सम्मान रुपयों से नहीं आँकते। क्या लेखक की क़लम को रुपयों से तौला जा सकता है? आप ही बताइए। अगर तौलना ही है, तो गेहूँ की बोरी क्या बुरी है?"

"फिर भी पुरस्कार में गेहूँ की बोरी... बात कुछ जमती नहीं।"

"आप लेखक लोग ही किसानों-मज़दूरों के हितों की दुहाई देते हैं, हँसिया-हथौड़े से प्रेरणा लेते हैं। भारत किसानों का देश है। हम उनके श्रम का निर्मल आनंद आपको सौंप रहे हैं। उनकी उपजायी गेहूँ की बालियों से सुनहरा गेहूँ निकलता है, जिससे दुनिया की भूख मिटती है। हम क़लम की उपज का सम्मान किसान की उपज से कर रहे हैं। आपको तो ख़ुश होना चाहिए।"

"ठीक है, पुरस्कार में हमें एक हँसिया और हथौड़ा भी दे दीजिए," मेरे मुँह से निकल गया।

एक पके बालों वाले सज्जन दाँत निकालकर बोले, "सोचेंगे. .. पहले देखना होगा कि आप इसका इस्तेमाल तो नहीं करेंगे। हम अपनी जाँच कमेटी की रिपोर्ट पर काम करते हैं।"

"तो क्या जाँच कमेटी ने ही मेरे साहित्य के बारे में आपको राय दी थी?"

"नहीं, उसके लिए हमी लोग काफ़ी हैं। हमें अपने चयन पर गर्व रहता है।"

मैंने निवेदन किया, "नहीं भाई साहब, कुछ गड़बड़ है। हास्य रस के पैमानें पर मैं उतरता नहीं। मेरे जैसा कायर गंभीर साहित्य ही लिख सकता है। मुझे हँसते हुए डर लगता है। शक्ल से भी मैं मनहूस ही लगता हूँ।"

"मनहूस दिखने वाले कभी-कभी वड़े मज़ाकिया होते हैं," एक दूसरे आयोजक ने कहा, "बल्कि कहा जाए, तो हँसाने की यह भी एक कला है। देखिए, जो फलानेपुर के दारोग़ा हैं, जिन्होंने छप्पन लोगों को मारा है, इतना हँसाते हैं कि क्या कहूँ।" पिछली बार हमने उन्हें ही पुरस्कार दिया था। उस बीच उन्होंने मंच पर इतना हँसाया था कि कई लोगों का बुरा हाल हो गया था।"

"कोई मरा क्या ?" मैंने पूछा।

"नहीं, मृतकों की संख्या छप्पन तक ही रह गयी, आगे नहीं बढ़ी।"

"आपने उन्हें भी एक बोरी गेहूँ दिया था।"

"बोरी ज़रूर दी थी, मगर बोरी में छिपाकर उन्हें छप्पन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारतूस भी भेंट किये थे। ख़ुश हो गये थे दारोग़ा साहब। उन्हें कारतूसों से बड़ा प्रेम है। आप कहें, तो आपकी बोतलों से सेवा कर दी जाए। अभी ले लें। पुरस्कार सेलिब्रेट करने में मज़ा आएगा।''

उन्होंने अपने सहयोगी को इशारा किया—''त्रिपाठी जी, लेखक महोदय की दो बोतलों से सेवा कर दीजिए।'

त्रिपाठी जी बोतलें निकालने के लिए अपने बैग के सीने की ज़िप किसी बलात्कारी की तरह खोलने लगे।

मैंने किसी क्रांतिकारी की तरह भरपूर प्रतिवाद किया। उसके बैग की ज़िप पर अपना हाथ रख दिया। त्रिपाठी जी के चेहरे पर प्रशांति छा गयी।

मुख्य आयोजक ने कहा, ''कोई बात नहीं, हम आपको गेहूँ की बोरी के साथ हँसिया और हथौड़ा भी भेंट कर देंगे। हँसिये से आप सब्ज़ी काटिएगा और हथौड़े से आप दीवार में कीलें ठोकिएगा। घर में ही क्रांति हो जाएगी। बाहर खड़ा ख़तरा है। वैसे बाहर क्रांति भाषणों और नारों से ही हो जाती है।''

वे ठहाका मारकर हँसने लगे। उनके साथ आये तीनों आयोजक भी। मैं उन्हें हँसते हुए देखता रहा।

आप कुछ कहना चाहते हैं?'' उन्होंने मुझसे पूछा।

मैंने शंका प्रकट की—''लोग जब पूछेंगे कि मैं हास्य रस का लेखक कब से हो गया, तो मैं क्या कहूँगा?''

प्रमुख संयोजक ने गंभीर जैसा दिखते हुए कहा, ''अरे साहब, आजकल हर चीज़ का अवमूल्यन हो गया है—व्यक्तियों से लेकर साहित्य तक। साहित्य में हास्य रस वालों को न जाने क्या हो गया है। उनके लेखन में हास्य नहीं रहता। आप लोग गंभीर लेखन के नाम पर जो लिखते हैं, उसे पढ़कर हँसी आती है। हमारे सभी साथी आप लोगों का गंभीर लेखन ही पढ़ते हैं और ख़ूब हँसते हैं। हम पुरस्कार में गेहूँ की बोरी यूँ ही किसी को नहीं देते।''

मैंने कहा, ''क्यों न आप मुझे गेहूँ की बोरी के साथ, चावल-दाल की गठरियाँ भी भेंट कर दें। बोरी में छिपाकर दे दीजिएगा। मुझे भी आप दारोग़ा साहब की तरह कृतज्ञ कर दीजिए।''

''सोचेंगे, वैसे जब हमने आपको सम्मानित मान लिया है, तो आपका अपमान नहीं कर सकते।''

मैंने कहा, ''सच है, हमारा अपमान तो अब आपका अपमान हुआ।''

मेरी बात पर एक आयोजक घबराकर बोला, ''हम मान-अपमान से परे हैं। आपका अपमान मेरा नहीं हो सकता। हम आपके हर काम की गारन्टी नहीं ले सकते। आप लोग कब खतरा पैदा कर दें, ठीक नहीं।''

मैंने पूछा, ''तो क्या आप सरकार की गारन्टी ले सकते हैं कि कब तक वह रहेगी ? विचारधारा की गारन्टी ले सकते हैं कि कब तक चलती रहेगी ? नेताओं के अहिंसक होने की गारन्टी ले सकते हैं? धर्म की गारन्टी ले सकते हैं कि वह सदैव जन कल्याण के रास्ते पर चलता रहेगा ?''

आयोजक मंडल एक दूसरे का मुँह देखने लगा। मुख्य आयोजक ने हँसते हुए कहा, ''बड़ी देर हो गयी। अब आप आज्ञा दीजिए और पुरस्कार लेने की तैयारी शुरू कर दीजिए।''

मैंने संयोजक मंडल से कहा, ''मेरी बस एक ही शर्त है, कि आप गेहूँ की क्वालिटी से समझौता मत कीजिएगा।''

मुख्य आयोजक की खाँटी आवाज़ आयी—''हम सिर्फ़ सत्ता से समझौता करते हैं, जो हमारे आयोजन के लिए धन देती है और गेहूँ की बोरी... बाक़ी सब हमारे ठेंगे पर।

मैं समझ गया। अब मैं अपने पुरस्कार यानी गेहूँ की बोरी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ, पर न जाने क्यों आयोजन की तिथि पिछड़ती जा रही है। क्या पता, गेहूँ की बोरी लेने के लिए कोई और बेहतर व्यक्ति मिल गया हो।

3. पाप

लीला और लोलो। दोनों काम करती थीं एक ही बैंक में। उम्र में दोनों कुछ ऊपर-नीचे थीं। उम्र का फ़र्क़ दिलों में नहीं था। वे पक्की सहेलियाँ थीं। रहती भी एक ही बिल्डिंग में थीं, पर उनके कमरे अलग-अलग थे।

लीला बड़ी थी; पर कितनी, यह उसने लोलो को नहीं बताया था। लोलो, लीला के सख़्त चेहरे को देखती तो सोचती, हाय, इसे मुलायम करने कब कौन आएगा? उसने यह बात मज़ाक में एक दिन लीला से कही भी थी। लीला का कहना था, ''मैं कुँवारी ही रहना चाहती हूँ। कन्याकुमारी बनकर रह सकी, तो गर्व की बात होगी।''

पर, इधर लीला के सपनों में एक पुरुष बेधड़क विचरण करता रहता। लीला को उसका चेहरा दिखायी नहीं पड़ता था। इसके बावजूद वह उसके साथ अठखेलियाँ करती थी बिस्तर पर नवविवाहिताओं की तरह। मगर, वह इस बात को लोगों को बता नहीं सकती थी। लीला के लिए ये दिन भीषण थे। वह छटपटाती रहती थी पर लोलो से इसका ज़िक्र नहीं कर पाती थी। इमेज का सवाल था बाबा।

लोलो को इमेज का कोई ख़तरा नहीं था। उसके सपनों में विविधता होती, जिन्हें लीला को बताने में उसे कोई संकोच नहीं होता था। आश्चर्य है, उन सपनों में कोई पुरुष नहीं होता था। मगर, इधर लोलो के सपने में पुरुष आने लगे थे, जो लोलो को बहुत सताते थे। लोलो उनसे बचने के लिए बेडरूम में भागती थी, बेडरूम से ड्राइंगरूम में, फिर बाथरूम में भागकर जब उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरवाजा बंद कर लेती थी, तो उसे चैन मिलता था। वह लीला से कहती, "मर्द सचमुच बड़े बदमाश होते हैं, सपने में भी पीछा नहीं छोड़ते।"

लीला कहती, "लोलो, मर्दों से जितना दूर रह, उतना ही अच्छा।"

लोलो पुरुषों से दूर रहना चाहती भी, तो पुरुष उसे दूर रहने नहीं देते थे। वह सुंदर थी—फूलदान की तरह, जिसमें सभी अपना-अपना फूल सजाना चाहते थे। खिले फूल की तरह जवान थी। उसकी आँखों में विदेशी व्हिस्की का नशा छलछलाता रहता। वह जिस पुरुष को भी देखती, उसे दुष्ट बना देती थी। वह लोलो के पीछे पड़ जाता। शहर में पतितों की संख्या बढ़ रही थी। आश्चर्य था कि मासूम लोलो को अपनी इस पवित्र भूमिका का पता नहीं था।

लोलो, लीला के साथ उसके ही रिक्शे में बैंक जाती थी। लीला ने ही लोलो को अपने साथ चलने का प्रस्ताव दिया था। लोलो सहर्ष मान गयी थी। थोड़े दिनों तक रास्ता शांति से गुज़रता रहा, फिर नगर के उन्मुक्त युवकों ने लोलो को रिझाने के लिए अपने कौशल का प्रदर्शन शुरू कर दिया। इसमें इशारेबाजी रहती, जुमलों का इस्तेमाल होता और साइकिलों से रिक्शे के पीछे-पीछे चलने का हुनर होता, क्योंकि साइकिलें करतब भी दिखाती थीं। पहले जो रास्ता लीला के लिए बोर हुआ करता, वह लोलो के आने से सरस हो गया था। लीला के लिए यह काफ़ी नयी बात थी। उसके लिए यह रिलीफ़ अनचाहे बालों से मुक्ति की तरह था।

एक दिन नगर के एक होनहार ने, जो एन0सी0सी0 में निशानेबाज़ी सीख रहा था, लोलो को लक्ष्य करके गुलाब का एक फूल फेंका, जो लीला की गोद में जा गिरा। लीला को भ्रम हुआ कि कोई ऐसा भी है, जो लीला को लोलो से सुंदर मानता है। उसका दिल ज़ोरों से धड़कने लगा। वह शर्माते हुए लोलो से बोली, "इतनी दीवानगी भी ठीक नहीं।" उसने आहिस्ता से उस गुलाब को अपने रुमाल से छिपा लिया।

लोलो ने देखकर अनदेखा कर दिया।

लीला को बस एक ही दिन गुलाब का फूल मिला। अगले दिन से वह लोलो को मिलने लगा। एन.सी.सी. के उस होनहार का निशाना अब चूकता नहीं था। वह किसी फ़ौजी की तरह युद्धभूमि में शत्रु पर प्रहार करता और वह फूल लोलो की गोद में जा गिरता। लीला देखती और कुढ़ती हुई कहती, 'छिछोरे हैं सब।"

लोलो मुस्कराकर कहती, "प्रेमी छिछोरे ही होते हैं।"

ऐसे ही रिक्शे में आते-जाते, बैंक में काम करते-करते, रिक्शे के पीछे-पीछे साइकिलों पर करतब दिखाते होनहारों के फ़िल्मी गीत सुनते-सुनते लीला और लोलो के दिन बीत रहे थे। रातें अँधेरे-उजाले के सपनों में। ऐसे ही बीतते हुए समय में एक दिन लीला को ख़बर मिली कि लोलो की शादी तय हो गयी है। लोलो बहुत खुश थी। वह रोज़ नींद से उठने के बाद योगासन करने लगी।

पति को रिझाने की ऐसी तैयारी देखकर लोलो से लीला कुढ़ने लगी। एक दिन वह कह ही बैठी, "इतना ख़ुश मत हो लोलो। अपनी आने वाली गुलामी की ज़िंदगी के बारे में ज़रा सोच। कैसे-कैसे बंधनों में तुझे बँधना पड़ेगा, यह सोचकर ही मेरा दिल बैठा जाता है।"

लोलो ने लीला की बात हँसी में उड़ा दी। बस इतना बोली, "मनहूस बातें मत करो, लीला दादी।"

लोलो की शादी हो गयी। शादी के बाद सुहागरात के लिए लोलो अपने पति के साथ पहाड़ पर गयी। पहाड़ और समुद्र सुहागरात के च्यवनप्राश होते हैं। कुछ दिन सुहागरात के च्यवनप्राश का सेवन करने के बाद हाथों में दर्जन भर चूड़ियाँ पहने, माँग में सिंदूर और गले में मंगलसूत्र डाले लोलो अपने कार्यस्थल पहुँची और सहयोगियों की ज़िद पर उसने अच्छी-ख़ासी पार्टी भी दी।

लोलो इतना खुश थी कि उसने लीला के हिस्से की खुशी भी ले ली।

शाम को जब घर चलने का समय आया, तो लीला ने लोलो को अपने रिक्शे पर बिठाकर ले चलने से मना कर दिया। लीला ने कहा, "मिसेज़ लोलो, रिक्शे पर साथ चलने का हमारा सफ़र पूरा हो गया है।"

लोलो ने आश्चर्य से लीला को देखा।

लीला बोली, "अब तुम शादीशुदा हो मिसेज़ लोलो! किसी पुरुष की बन चुकी हो। बाकायदा सुहागरात भी मना चुकी हो। अब मेरी जैसी कुँवारी लड़की का तुम्हारे साथ आना-जाना ठीक नहीं। मुझे पाप लगेगा। कुँवारी कन्याओं को पुरुषों और नव-विवाहिताओं से दूर ही रहना चाहिए।"

लोलो को हैरत में डालकर लीला अपने रिक्शे पर बैठ गयी।

डी-139, सेक्टर-55
नोएडा-201301 (उ.प्र.)

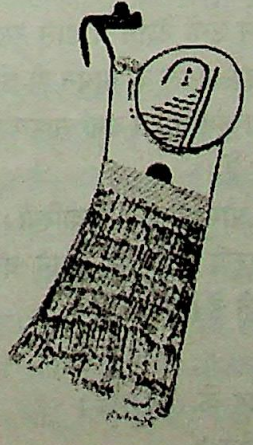

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉली

अनवर सुहैल

रात ग्यारह बजे दरवाज़े की घंटी घनघनायी।
रहमान साहब बारह बजे के आस-पास सो पाते हैं।

उस समय रात की पाली के इंचार्ज को आवश्यक निर्देश दे रहे थे। द्वितीय पाली की समाप्ति पर बॉस का फ़ोन आता ही है। इस बीच हुए ब्रेक-डाउन की जानकारी उन्हें होनी चाहिए, ताकि बॉस को फ़ोन पर संतुष्ट कर सकें कि रात की पाली वालों को ख़दान चलाने में दिक़्क़त न आए।
बॉस से बात हो जाने के बाद वह रात की पाली के फ़ोरमेन से एक बार फिर बात करते हैं और फिर घड़ी में पाँच तीस का अलार्म ऑन करके सोने की कोशिश करते हैं।

रहमान साहब को आसानी से नींद नहीं आती। अपनी इस आदत से वे बड़े परेशान रहते हैं। वे बिस्तर पर लेट कर हस्बेमामूल दरूद शरीफ़ पढ़ते हैं। चाहते हैं कि कम से कम सौ बार दरूद शरीफ़ पढ़ लें, लेकिन सौ की संख्या पूरी होते-होते कब नींद उन्हें अपने आगोश में ले लेती, वे जान नहीं पाते।
ब्लड-प्रेशर और शुगर के कारण मिसेज रहमान की एड़ी में इधर दर्द बढ़ गया है, इसलिए वे पेन-किलर खाकर सो गयी हैं। वैसे भी उनके सोने का समय फ़िक्स है। वे ज़्यादा देर जाग नहीं पाती हैं। किसी दिन यदि उन्हें देर रात जागना पड़ जाए, तो पक्का है कि अगली सुबह उन्हें कोई न कोई रोग आ घेरता है। इसीलिए, रहमान साहब आर्टी-पार्टी में भी टोक दिया करते हैं कि वे जल्द जाकर सो जाएँ।
मच्छरदानी से निकलकर रहमान साहब ने बरामदे की लाइट जलाई, तो देखा कि सामने सूरज खड़ा है। उन्होंने गेट खोला।
दुबले-पतले सूरज के चेहरे पर डर और चिंता की रेखाएँ गहरे तक पैठी हुई थीं। कल से ही सूरज ने उन्हें टेंशन में डाल रखा है। रहमान साहब उसे जानते हैं। उनके बंगले के सामने ही तो खदान के पर्सनल मैनेजर वर्मा साहब का बंगला है। वर्मा साहब छुट्टियाँ बिताने सपरिवार विहार गये हुए हैं।

देश में बेरोज़गारी बढ़ी और कॉलोनी में चोरियाँ। चोरी से बचने के लिए अधिकारीगण छुट्टी जाने पर अपने बंगले की देख-भाल के लिए चौकीदार रखते हैं।
सूरज वैसा एक युवक है।
रहमान साहब ने सवालिया निगाह के तीर छोड़े।
सूरज सकपकाया हुआ था—"साहेब!"
"हाँ, बोल..."
"साहेब, इसमें मेरा कोई कुसूर नहीं साहेब!"
रहमान साहब उसे घूरते रहे।
"साहेब, वो कुतिया मर गयी साहेब!"
रहमान साहब सकते में आ गये—"क्या बोल रहा है बे, कब मर गयी डॉली?"

रहमान साहब की आँखों के आगे एक ऐसी कुतिया की तस्वीर उभरी, जिसकी खाल पर से सारे बाल उड़ गये हों। ज़्यादा उम्र के कारण जो काफ़ी कमज़ोर हो गयी हो। वाकई डॉली अपने ज़माने में होगी बड़ी सुंदर, लेकिन इधर उसे जाने कैसा रोग लगा था कि उसकी चमड़ी दिखायी देने लगी थी। छोटे कद की कुतिया डॉली की पूँछ के नीचे एक फोड़ा भी हो गया था। उस फोड़े से बदबूदार पीप निकलती, तो एक अजीब-सी गंध वर्मा साहब के घर में छायी रहती।
वर्मा साहब जब यहाँ आये थे, तो रहमान साहब उनके घर जाकर बैठा करते थे। वर्मा साहब शतरंज के शौकीन हैं, सो रहमान साहब और उनमें अच्छी पटती। भाभी बीच-बीच में चाय वग़ैरह रख जाया करती थीं। लेकिन, जब से डॉली को रोग हुआ रहमान साहब ने वर्मा साहब के घर जाना कम कर दिया, क्योंकि उन्हें कुत्ता ज़ात से नफ़रत है।

वैसे भी इस्लाम में कुत्ता पालना मना है। हाँ, यदि पालना ही है, तो ऐसे कुत्तों का घर में प्रवेश वर्जित होना चाहिए। उनके लिए अलग से व्यवस्था हो।

डॉली इतने बरसों से वर्मा साहब के घर में है, सो स्वाभाविक है कि दुलारी भी है। मेहमानों के पास आकर उन्हें सूँघती है। रहमान साहब को तकलीफ़ तब होती है, जब वे देखते हैं कि डॉली जूठे बर्तनों को चाटती है।

कोढ़ पर खाज यानी डॉली के बदन से उठती अजीबो-ग़रीब दुर्गंध से उन्हें एलर्जी थी। वह दुर्गंध उनका काफ़ी देर तक पीछा पकड़े रहती। वर्मा साहब और उनके परिवार को तो उस दुर्गंध की आदत थी, लेकिन रहमान साहब की ऐसी कोई मजबूरी न थी कि वे वर्मा साहब के घर जाएँ ही।

डॉली की बीमारी के बाद भी हस्बेमामूल वर्मा साहब उन्हें बुलाते, लेकिन व्यस्तता का कोई न कोई बहाना बना रहमान साहब उनके घर जाने से बचते। मिसेज रहमान जबकि अक्सर इस बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए उन्हें ताना मारा करतीं कि आपकी दोस्ती का क्या हुआ? अब काहे जाकर भौजाई के हाथों की चाय-पकौड़ी का मज़ा नहीं उठाते?

रहमान साहब कहते—"उस घर का पानी भी हराम है। कुतिया है कि मरती भी नहीं।"

मिसेज़ रहमान ने बताया—"जानते हैं जी, उनके घर अब लेडीज़ भी जाने से कतराती हैं। अगर जाना पड़ ही गया, तब कुछ खाने-पीने से बचने के लिए बहाने तलाशती रहती हैं।"

रहमान साहब की बड़ी बेटी शगुफ़्ता ने इंटरनेट पर देखकर बताया था—"अब्बू, डॉगीज़ की लाइफ़ हार्डली फ़िफ़्टीन ईयर हुआ करती है। आंटी बताती हैं कि जब उनकी बेटी पैदा हुई थी, वे डॉली को घर लेकर आये थे। इस हिसाब से डॉली की एज़ फ़ोर्टीन ईयर तो हो ही गयी है। शी विल नॉट सरवाइव मोर डेज़ अब्बू।"

वाकई चौदह साल पूरे करके डॉली मर गयी।

रहमान साहब की समझ में न आया कि ऐसे समय क्या निर्णय लें। अभी परसों की बात है, जब सूरज ने बताया था कि कुतिया को बाहर घुमाने ले गया था। डॉली को सड़क किनारे फ़ारिग होने छोड़ सूरज खैनी खाने मैनेजर साहब के चौकीदार के पास गया। दो मिनट भी न हुआ होगा कि लौटकर देखा कि डॉली अपनी जगह न मिली। वह बहुत परेशान हो गया। डॉली ऐसी गुमी कि उसे खोजते-खोजते शाम हो गयी। जब वह न मिली, तब उसने रहमान साहब को बताया था।

रहमान साहब ने सूरज की लापरवाही के लिए उसे ख़ूब डाँटा-फटकारा और फ़ोन पर वर्मा साहब को बता दिया था कि डॉली गुम गयी है, आप चिंता न करें, उसे तलाश किया जा रहा है। जैसे ही वह मिलेगी, तत्काल आपको फ़ोन कर दिया जाएगा।

वर्मा साहब ने ये बात लगता है कि भाभी को बता दी होगी। थोड़ी देर बाद मिसेज़ रहमान के पास कॉलोनी की औरतों के फ़ोन आने लगे कि कुतिया गुमी तो कैसे गुमी?

"सूरजवा मोटा गया है, कितना लापरवाह हो गया है।"

"कैसे इन कमीनों के भरोसे घर छोड़ा जाए?" आदि

रहमान साहब ने ऑफ़िस के स्वीपर को फ़ोन किया था कि भाई कष्ट करके उस नामुराद कुतिया को कैसे भी हो खोज निकाला जाए।

आख़िर स्वीपर ने ही रात आठ बजे डॉली को खोज निकाला। वह कॉलोनी के बाहर एक छोटे से पुल के नीचे दुबकी हुई थी। डॉली के बाल-विहीन बदन पर कई जगह खरोंच के निशान थे। लगता था, आवारा कुत्तों ने उसे नोंचा-खसोटा था।

डॉली इतनी डरी-सहमी थी कि कूँ-काँ भी नहीं कर रही थी।

रहमान साहब ने तत्काल वर्मा साहब को फ़ोन करके बता दिया कि फ़िक्र न करें, डॉली मिल गयी है। मिसेज़ वर्मा ने फ़ोन पर रहमान साहब से बात की। वे रो रही थीं। रहमान साहब ने ढाँढस बँधाया कि डॉली ठीक है। वह उसे डॉक्टर को दिखा दे रहे हैं। तब जाकर मिसेज़ वर्मा शांत हुईं। उनका वस चलता तो फ़ोन पर डॉली से बात भी कर लेतीं। लेकिन कुतिया भला फोन पर कहाँ बात कर पाती?

रहमान साहब नें अपने ड्राइवर गुप्ता से कहा कि जाकर इसे शहर के वेटेनरी डॉक्टर को दिखा लाए। गुप्ता ड्राइवर भी लगा नखरा दिखाने—"का साहेब, ई कुत्ता-कुतिया की ड्यूटी के लिए हम्में बोलते हैं।"

रहमान साहब को गुस्सा आ गया—"क्या हुआ? मेमसाहब रहती हैं, तो तुम भी उस कुतिया को ख़ूब पुचकारते-दुलारते हो। अब उसकी हालत तो देखो। जाओ, देर न करो।"

गुप्ता ड्राइवर कुनमुनाते हुए गया था और डॉली की मरहम पट्टी करवा लाया था। उसने कहा भी था कि साहब, उम्मीद कम है कि ये कुतिया ज़्यादा दिन जी पाए। इससे अच्छा है कि इसे मौत आ जाए। बेज़ुबान जानवर को अकेले नहीं छोड़ना चाहिए साहब. ...

0 0 0

रात काफ़ी हो चुकी थी।

सूरज मुँह लटकाये उनके सामने खड़ा था।

रहमान साहब अंदर बेड-रूम की तरफ़ मोवाइल लेने गये थे। साथ ही, वे चाहते थे कि मिसेज़ रहमान से भी डिस्कस कर लें कि इस स्थिति में क्या किया जाए?

मिसेज़ रहमान गहरी नींद में थीं। उन्हें जगाया गया।

"क्या हुआ, अभी तक जागे हो? ब्रेक-डाउन हुआ है क्या खदान में?"

"नहीं, तुम उठो तो सही।"

"बोलो न!"

"डॉली मर गयी।"

"क्या?" और मिसेज़ रहमान एक झटके से उठ बैठीं।

"क्या किया जाए, कुछ समझ में नहीं आ रहा है," रहमान साहब चिंतित थे।

मिसेज़ रहमान बड़बड़ायीं-"अच्छी नौटंकी है, खुद तो घूम रहे हैं और हम लोगों को परेशान कर रहे हैं। पता नहीं मिसेज़ वर्मा कहाँ मस्ती काट रही हैं? मेरे ख़्याल से ससुराल से मिसेज़ वर्मा अब लौटकर अपने मायके आ गयी होंगी। आप ही बात करिए।"

रहमान साहब ने मोबाइल पर पहले समय देखा। रात के साढ़े बारह बजे थे। सोचा कि इस समय बात करने पर कहीं वर्मा घबरा न जाएँ। फिर भी पोजीशन जानने के लिए उन्होंने नंबर लगाया। थोड़े सर्च के बाद घंटी गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ोन वर्मा साहब ने ही उठाया था—"हैलो, रहमान साहब!"

"नमस्कार भाई, बस कुछ नहीं आपकी याद आयी और सोचा कि बात कर लें, अभी कहाँ तक पहुँचे?"

वर्मा साहब ने बताया—"लौट ही रहे हैं, इस समय साढ़ू भाई के साथ महफ़िल जमी है। करोड़पति लोग हैं, शिवाज़ रीगल ले आये हैं, बस गप्पों के साथ छान-घोंट रहे हैं। कल शाम को निकलेंगे और रात अंबिकापुर में हॉल्ट करेंगे। यह मान लो कि परसों दुपहर तक हम लौट आएँगे। और कैसा चल रहा है?"

रहमान साहब उनके रंग में भंग डालें, तो डालें कैसे? साढ़ू भाई के साथ दारू चल रही है। ऐसे में डॉली की ख़बर से उनका मज़ा किरकिरा हो जाएगा, सो उन्होंने बात बदल दी—"आप नहीं हैं, तो खदान में ब्रेकडाउन बहुत हो रहे हैं। बॉस पूछ रहे थे कि वर्मा की लीव कब ख़त्म हो रही है। और तो सब ठीक ही है।"

रहमान साहब ने मोबाइल कुर्ते की जेब के हवाले किया और मिसेज़ की तरफ़ मुख़ातिब हुए।

मिसेज़ रहमान बोलीं—"कल ही भाभी से बात हुई थी, वे बोल रही थीं कि उनकी बहन का गृह-प्रवेश है। लगता है कल पूजा-पाठ से फ़ुर्सत पाकर वे लोग लौटने की सोचेंगे।"

"ठीक कहती हो, वर्मा बोल रहा है कि कल शाम को वे लोग वहाँ से चलेंगे।"

"तब..." मिसेज़ रहमान ने गहरी साँस भरी।

रहमान साहब बाहर निकले और सूरज से पूछ बैठे—"गाँव में जब पालतू कुत्ता मरता है, तो क्या करते हो तुम लोग?"

सूरज बोला—"का करते हैं, साहेब, उसे गाँव के बाहर ले जाकर फेंक आते हैं!"

रहमान साहब ने तत्काल कहा—"तुम उसे भी फेंक दो।"

इसके बाद रहमान साहब अपने बिस्तर पर आकर लेट गये।

— उनकी आँखों से नींद ग़ायब हो गयी थी। परसों वर्मा साहब वापस आ जाएँगे, तब जो बवाल होगा देखा जाएगा। कुतिया की लाश को इतने दिन कहाँ सँभाल कर रखा जा सकता है।

अब जो हो, उन्होंने डिसीज़न तो ले ही लिया है।

0 0 0

सुबह रहमान साहब जब ड्यूटी पर थे, वर्मा साहब का फ़ोन आया। वर्मा साहब ने बताया कि वे वापसी पर हैं। कल तक पहुँच जाएँगे। वर्मा साहब फ़ोन पर बहुत चहक रहे थे। मिसेज़ वर्मा और बिटिया की हँसी की आवाज़ फ़ोन पर गूँजी।

रहमान साहब के मन में आया कि वर्मा साहब को डॉली की मौत की ख़बर दे दें। वे बताना ही चाहते थे कि वर्मा साहब ने यह कहकर फ़ोन काट दिया कि मिसेज़ वापसी की पैकेजिंग के लिए याद कर रही हैं, इसलिए अब वे बाद में बात करेंगे।

रहमान साहब डॉली की ख़बर उन्हें बता नहीं पाए। इसके पूर्व भी वर्मा साहब डॉली को छोड़कर गाँव गये थे। तब उसकी सेहत अच्छी हुआ करती थी। इस बार उसकी दशा ऐसी नहीं थी कि किसी नौकर के भरोसे उसे छोड़ा जाए। घर में मालिक रहे, तो पालतू जानवर खाये चाहे न खाये, उदास नहीं रहता है। लेकिन, जब मालिक न रहे, तो चाहे उसे आप काजू-किशमिश खिलाएँ या दूध-दही, वह कुछ भी नहीं खाएगा। खाएगा नहीं, तो धीरे-धीरे उसकी सेहत और बिगड़ जाएगी। डॉली के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ। वैसे भी वह खान-पान में नकचढ़ी कुतिया थी। मिसेज़ वर्मा और उनकी बेटी उसे पुचकार-दुलार कर खिलाते-पिलाते थे। वर्मा साहब डॉली के लिए महँगी-महँगी चॉकलेट लाया करते। वैसे मिसेज़ रहमान ने वर्मा साहब की अनुपस्थिति में जब भी घर में मीट बना, डॉली के लिए ज़रूर भिजवाया था, लेकिन सूरज ने बताया कि कुछ भी नहीं खाती है। बस सूँघकर छोड़ देती है।

इसका मतलब वह मालकिन को खोज रही है।

पहले तो वह रोती भी थी, इस बार डॉली के मुँह से आवाज़ ही नहीं फूटी। जाने उसे कैसी तकलीफ़ थी कि वह बयान नहीं कर पाती होगी।

रहमान साहब को बस इसी बात का अफ़सोस था कि वे वर्मा साहब को डॉली की मौत के बारे में सूचित नहीं कर पाये। कारण सिर्फ़ इतना ही था कि उनका वापसी का सफ़र तनावमुक्त रहे। रहमान साहब ने अपनी मिसेज़ से सुबह कहा भी था कि देखना भाभी ज़रूर बुरा मानेंगी और उल्टी-सीधी बातें बनाएँगी। वैसे डॉली की मौत से उन्हें लाभ ही होगा। वर्मा साहब अस्थमा के पेशेंट हैं, पालतू जानवरों से अस्थमा बढ़ता है। डॉली के बदन से फूटती दुर्गंध से हो सकता है वर्मा साहब को एलर्जी हो।

0 0 0

रहमान साहब ड्यूटी पर थे, जब बेगम का फ़ोन पहुँचा—"खदान नहीं उतरे क्या जी?"

सुबह के नौ बजे थे। सिगरेट सुलगाकर रहमान साहब ज़रूरी काग़ज़ात पर दस्तख़त कर रहे थे। इसके बाद हस्बेमामूल उन्हें गमबूट, हेलमेट और कैप-लैम्प धारण कर अंडरग्राउंड उतरना होता है। सिगरेट के दौरान एक लाल चाय आ जाती है और इस बीच यदि बॉस को ज़रूरत हो, तो वे बुलाकर या टेलीफ़ोन पर उनसे बात कर लेता है।

अंडरग्राउंड उतरना, मतलब कम से कम चार घंटे के लिए परिदृश्य से ग़ायब हो जाना, इसलिए ऊपर के कामकाज वे धड़ाधड़ निपटाते जा रहे हैं।

सिगरेट का कश खींचकर धुँआ छोड़ते हुए रहमान साहब ने बीबी को बताया—"बस उतरने की तैयारी कर रहा था, बोलो!"

"जानते हैं, मिसेज़ वर्मा आ गयी हैं और आते ही रोना-पीटना मचा रखा है। मैं गयी थी, तो वे मुझसे झगड़ पड़ीं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन होते हैं रहमान साहब... डॉली की फिकवाने का डिसीज़न क्यों लिया उन्होंने? वर्मा साहब से तो हर दिन बात हुई है, क्यों नहीं बताया उन्होंने कि डॉली पर क्या गुज़र रही है? मैं तो उनकी बात बर्दाश्त नहीं कर पायी और चली आयी, लेकिन कॉलोनी की औरतें उनकी लल्लो-चप्पो कर रही हैं।"

रहमान साहब सोच में डूब गये। वर्मा साहब ने घर आकर फ़ोन नहीं किया। वे अपनी बीवी को समझाते क्यों नहीं कि जो हुआ, अच्छा हुआ। क्या डॉली कोई उनकी रिश्तेदार थी? इतनी ही फ़िक्र थी तो फिर बेसहारा छोड़कर क्यों गयी थीं मिसेज़ वर्मा। जब तक डॉली ख़ूबसूरत, क्यूट और हेयरी थी, माँ-बेटी उसे गोद में उठाये घूमा करती थीं। चूमा-चाटी करती रहती थी। मेहमानों को लाख पालतू जानवरों से चिढ़ हो, सारा खानदान अपनी डॉली की तारीफ़ करते नहीं अघाते था, ज्यों डॉली कुतिया न होकर उनकी ही संतान हो। फिर उसे बीमारी और बुढ़ापे की दशा में नौकर के भरोसे छोड़कर दो-दो सप्ताह के लिए क्यों बाहर गयी थीं?

रहमान साहब परेशानी की दशा में बोले—"वर्मा साहब तो नाराज़ नहीं हो रहे हैं?"

मिसेज़ रहमान-"नहीं, वे तो बोल रहे थे कि चलो जो हुआ अच्छा ही हुआ, लेकिन वर्मा भाभी मानें तब न, नौकर सूरज को तो उन्होंने हत्यारा तक कह डाला है। बताइए, क्या उसने जानबूझ कर उसे मारा था?"

"छोड़ो, तुमने वर्मा भाभी से झगड़ा तो नहीं कर लिया?"

"मैं क्या झगड़ालू हूँ?... मैंने बस इतना कहा कि आप लोग वहाँ परेशान हो जाते और वापसी का सफ़र मनहूस हो जाता, इसलिए रहमान साहब ने आप लोगों को फ़ोन पर कुछ भी नहीं बताया था। भाभी किसी तरह की सफ़ाई सुनना नहीं चाहती हैं.. उनके बगल वाली सिन्हा भाभी तो उन्हें और भी भड़का रही थीं। कह रही थीं कि भाभी ने जो मीट डॉली के लिए बनाकर फ़्रिज में रख छोड़ा था, उसे सूरज खुद खा गया था और बेचारी डॉली के लिए नहीं बचाया था,"

कहते-कहते मिसेज़ रहमान रूआँसी हो गयीं।

रहमान साहब ने कहा—"तुम अब घर ही में रहो। फ़ालतू टेंशन न लो। अगर मिसेज़ वर्मा ज़्यादा नाटक करें, तो करने दो।"

रहमान साहब ने फ़ोन रख दिया और सिगरेट का कश खींचने लगे। उन्हें बॉस से पहले खदान उतरना था।

0 0 0

अंडरग्राउंड कोयला खदान की अँधेरी गैलरियों में केप-लेंप की रोशनी के सहारे आगे बढ़ते रहमान साहब का दिल कहीं और था। वे मिसेज़ वर्मा की नाटकीयता के बारे में सोच रहे थे। हद है, जब तक चीज़ों की उपयोगिता रहती है, तभी तक उसकी क़द्रो-क़ीमत की फ़िक्र रहती है इन्सान को। जैसे ही चीज़ें अपनी उपयोगिता खो बैठती हैं, उपेक्षा का शिकार होने लगती हैं। इन्सान ऐसी चीज़ों को हाशिये पर फेंक देता है, लेकिन दिखावे के लिए दिल में जगह रखने का नाटक करता है। वो चाहे डॉली जैसी उम्रदार, बीमार कुतिया हो या कि बूढ़े बीमार माँ-बाप।

रहमान साहब को अपने पिता की याद हो आयी, जो एक ज़माने में हिटलर की तरह रोब-दाब रखते थे। वह चाहे अम्मी हों या कि बच्चे, सभी उनकी सहूलियतों का ख़्याल रखा करते थे। उनकी टाइमिंग के हिसाब से घर की तमाम गतिविधियाँ संचालित होती थीं। उन्हें कब पानी चाहिए, कब चाय, कब खाना चाहिए कब आराम। क्या मज़ाल कि पिता आराम फ़रमा रहे हों और कहीं आवाज़ हो जाए। उनके डर से बच्चे बेआवाज़ चला करते थे। अम्मी किचन में बर्तन धो डालतीं और कोई आवाज़ न होती। पिता का आतंक घर में चौतरफ़ा छाया रहता। वही पिता अम्मी की मौत के बाद एकदम तन्हा हो गये हैं। ख़ुद्दार इतने कि रोटी जैसी चीज़ वे खुद गढ़ लेते हैं। नौकरानी तो दस बजे आ पाती है। वह घर की सफ़ाई करती है और दो टाइम के लिए दाल-सब्ज़ी बना देती है। ढेर-सारा आटा गूँधकर फ़्रिज में रख देती है। पिता को जब खाना होता है, फटाफट चार रोटियाँ पका लेते हैं। वे अपने मित्रों में भी अपनी संतानों द्वारा की जा रही उपेक्षा का ज़िक्र नहीं करते। पेंशन से मिली रकम से घर का खर्च चलाते हैं। नल, टेलीफ़ोन बिल और बिजली का बिल स्वयं भरते हैं। डिश एंटीना वाले को भी प्रतिमाह पैसे वही देते हैं। बेटों के सामने कभी हाथ नहीं पसारते। यहाँ तक कि नाती-पोते जब भी उनसे मिलने आते हैं, तो कपड़ा-लत्ता आदि देते हैं। बहुओं को साड़ी ख़रीदने के पैसे देते हैं। फिर भी उनके लिए किसी के दिल में मुहब्बत नहीं है। कोई उन पर दया नहीं दिखाता। ग़लती से भी बेटे उन्हें यह नहीं कहते कि अब्बू आप कुछ दिनों के लिए हमारे घरों में रहने चले आएँ।

रहमान साहब ईद के मौक़े पर साल में एक बार अपने पिता से मिलने ज़रूर जाते हैं। रहमान साहब महसूस करते हैं कि विदाई के दिन पिता काफ़ी संजीदा हो जाते हैं। बच्चों के लिए टॉफ़ी, बिस्किट और मिठाइयाँ लाकर देते हैं। अपनी उदासी छुपाने के लिए कहते हैं—"ठीक है, अब तुम लोग निकलो, मुझे नमाज़ पढ़ने जाना है। सोचता हूँ कि मस्जिद ही चला जाऊँ।"

रहमान साहब सोचते-सोचते टी-5 बेल्ट कन्वेयर पार कर गये। याद ही नहीं रहा कि उन्हें टी-4 बेल्ट कन्वेयर के पास रुककर ज़रूरी निर्देश देने थे।

डॉली और पिता में कैसी तुलना करने लगा उनका मन?

मिसेज़ वर्मा की नौटंकी ने उनके मन में ये कैसी उथल-पुथल मचा दी है।

वे टी-5 से टी-4 की तरफ़ लौट पड़े।

टाइप 4/3, आफ़ीसर्स कॉलोनी,
पो0 बिजुरी, ज़िला-अनूपपुर, म.प्र. 484440

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेबकतरा

अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'

घर से कचहरी जा रहे वकील का रिक्शा अभी बस स्टॉप के सामने ही पहुँचा था कि उनके कानों में 'मारो साले को... मारो साले को... और मारो... और मारो' का कोलाहल सुनायी पड़ा। उड़ती चिड़िया के पर गिनने का दावा करने वाले वकील साहब तुरंत माजरा भाँप गये और रिक्शा रुकवाकर उस पर से कूद पड़े।

"हाँ... हाँ... हाँ... यह क्या अनर्थ हो रहा है भाई...? क्यों इस बेचारे की जान लेने पर तुले हो सब लोग .....? चलो... हटो... हटो...," तेज़ आवाज़ में चिल्लाते तथा दोनों हाथों से भीड़ को चीरते वकील साहब श्री दयाशंकर तिवारी भीड़ के केंद्र की तरफ़ लपके। उनकी तेज़ आवाज़ का असर यह हुआ कि भीड़ का ध्यान बँट गया और मूसल की तरह धमाधम गिर रहे आधा दर्जन हाथ यकायक थम गये। अगले ही क्षण वकील साहब उस भीड़ के घेरे के अंदर पिट रहे व्यक्ति के चारों ओर अपने हाथों का घेरा बनाये खड़े थे। अंदर अठारह- उन्नीस साल का एक दुबला-पतला-सा लड़का खड़ा था, जो पत्ते की तरह काँप रहा था। लोगों के बेमुरव्वत प्रहार के कारण उसकी शर्ट फट कर चिथड़ा हो चुकी थी, बाल बिखर गये थे तथा होंठ, नाक, मुँह, गाल और कई जगहों से ख़ून रिस रहा था।

"क्या बात है भाई...? क्यों सारे लोग मिलकर इस बेचारे की पिटाई कर हैं... मानवता नाम की कोई चीज़ है कि नहीं आप लोगों के अंदर... यह कौन-सी बात हुई कि एक निहत्थे पर पच्चीस लोग पिले पड़े हैं .....ऐं....?" उस लड़के के सामने ढाल की तरह खड़े वकील साहब गरजे।

"यह बेचारा नहीं है... जेबकतरा है, जेबकतरा...," भीड़ की तरफ़ से एक साथ कई आवाज़ें आयीं।

"जेब कतरा है...? किसकी जेब काटी है इसने...? किसने देखा है इसे जेब काटते हुए... ऐं बोलिए....?" वकील साहब ने पूरी भीड़ को प्रश्न के घेरे में खड़ा कर दिया।

"मेरी जेब से पर्स निकाला है इसने...," पैंट-शर्ट पहने, हाथ में बैग लिए एक संभ्रांत व्यक्ति भीड़ से निकल कर सामने आ गया।

"तो ठीक है, चलिए इसकी तलाशी लीजिए। अगर इसके पास से आपका पर्स बरामद होता है तो....

"नहीं.... नहीं पर्स इसने अपने एक साथी को थमा दिया था... मेरे सामने ही भूरे रंग की शर्ट पहने वह लड़का पर्स लेकर नौ-दो ग्यारह हो गया।" वह व्यक्ति वकील साहब की बात बीच में ही काटकर बोल पड़ा।

"महोदय! यह सारा वाकया सिर्फ़ आपने ही देखा है कि किसी और ने भी...? और कोई भी है ऐसा, जो आपकी बात का समर्थन करे?" वकील साहब ने उस व्यक्ति के साथ-साथ पूरी भीड़ की तरफ़ प्रश्न उछाला।

भीड़ में सन्नाटा खिंच गया। कोई भी व्यक्ति आरोप लगाने वाले उसे सज्जन के समर्थन में बोलने के लिए आगे नहीं आया। उन सज्जन ने बहुत आशा भरी नज़रों से भीड़ की तरफ़ देखा, लेकिन सभी के चेहरे पर एक सी तटस्थता नज़र आयी। कोई भी उनके पक्ष में बोलने को तैयार नहीं था। उधर वकील साहब की प्रश्नवाचक नज़रें उनको बेध रही थीं। आख़िर वे मरियल-सी आवाज़ में बोले—"बस से उतरते समय मेरी पैंट की पीछे वाली जेब से पर्स निकला था... मैंने तुरंत पीछे मुड़कर देखा, तो मेरे पीछे यही लड़का था... मैंने इसका हाथ पकड़ा, तभी बगल से एक दूसरा लड़का धक्का देते हुए निकल भागा.... ज़रूर वह इसका साथी रहा होगा।"

माहौल अपने पक्ष में देखकर वकील साहब दूने जोश से बोल—"देखिए महोदय! पहली बात तो यह कि आप इस बेचारे पर जो आरोप लगा रहे हैं, उसके समर्थन में आपके पास कोई गवाह या सबूत नहीं है। फिर, यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाए कि आप सच ही कह रहे हैं, तो सच-झूठ का फ़ैसला करने के लिए थाना-पुलिस है, कोर्ट-कचहरी है... क़ानून को अपने हाथ में लेने का अधिकार आपको किसने दिया....? देखिए! मैं यह नहीं कहता कि जेबकतरे को ऐसे ही छोड़ दिया जाए... बेशक इसे सजा मिलनी चाहिए और आपको आपकी चोरी गयी चीज़ मिलनी चाहिए, लेकिन हर चीज़ का एक तरीक़ा है... आप चलिए, मेरे साथ... थाने में रिपोर्ट लिखाइए... पुलिस पड़ताल करेगी, अगर इसने आपका पर्स उड़ाया होगा, तो पुलिस इसके ख़िलाफ़ कार्यवाही करेगी और आपका पर्स बरामद करके आप को सौंपेगी... हम सब आपकी मदद करेंगे... आइए.... चलिए थाने...।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वकील साहब ने अपनी बात ऐसे तार्किक ढंग से रखी कि वहाँ उपस्थित सारी भीड़ उनकी बात की कायल हो गयी।

"हाँ... हाँ वकील साहब बिल्कुल ठीक कह रहे हैं... केवल संदेह के आधार पर किसी को चोर ठहरा देना क़तई उचित नहीं है...", चंद मिनट पहले तक उस लड़के की पिटाई कर रही भीड़ में से कई लोग एक साथ बोल पड़े।

बुरी तरह कुटा-पिटा वह लड़का हक्का-बक्का हो वकील साहब तथा भीड़ को देख रहा था। वकील साहब की तरफ़ से अपनी ज़ोरदार पैरवी देख उसकी हिम्मत बँधी और वह रोनी आवाज़ में बोला—"मैं जेबकतरा नहीं हूँ..... मैंने कोई पर्स नहीं चुराया है।"

"तुम घबड़ाओ मत बेटा... मैं हूँ न... मैं तुम्हारे साथ अन्याय नहीं होने दूँगा," वकील साहब ने उस लड़के के कंधे पर हाथ रखते हुए पुचकारा और उसे साथ लेकर थाने की तरफ़ बढ़ गये। वकील साहब के पीछे आरोप लगाने वाले सज्जन तथा उनके पीछे कुछ तमाशबीन भी हो लिये।

थाने में दरोगा जी कुर्सी पर अधलेटे होकर आराम से अख़बार पढ़ रहे थे। आगे-आगे एक वकील, उसके साथ एक कुटा-पिटा लड़का तथा उसके पीछे बाहर-पंद्रह लोगों की भीड़ को थाने के गेट के अंदर घुसते देखा, तो दरोगा जी के माथे पर बल पड़ गये। अख़बार एक तरफ़ रख वे तनकर सीधे बैठ गये।

"तो आपको पक्का विश्वास है कि इस लड़के ने आपका पर्स उड़ाया है..?" पूरा वाकया सुनने के बाद दरोगा जी ने आरोप लगाने वाले सज्जन से प्रश्न किया।

"जी हाँ... बस में यह ठीक मेरे पीछे-पीछे उतर रहा था और इसी के साथ वह भूरे रंग की शर्ट पहने ठिगना-सा लड़का था, जो मेरा पर्स लेकर भागा था।"

"कितने रुपये थे आपके पर्स में...?" दरोगा ने दूसरा प्रश्न दागा।

"जी... यही कोई चार हज़ार के क़रीब..."

" इतना पैसा आप लोग जेब में रखते ही क्यों हैं..? घर में क्यों नहीं रखते...? जगह-जगह बैंक किसलिए खोल रखे हैं सरकार ने ...? अपने सामान का ध्यान रहेगा नहीं... ज़रा-ज़रा सी बात पर चले आते हैं रिपोर्ट लिखाने... अब लोगों की जेब और पर्स की हिफ़ाज़त भी पुलिस करे.... जैसे हमारे पास और कोई काम ही नहीं है...," दरोगा जी खिसिया कर बोले। दरअसल, रिपोर्ट दर्ज़ करके वे अपने हल्के में अपराधों की संख्या में वृद्धि करना नहीं चाहते थे। उनकी मंशा थी कि रिपोर्ट लिखाने आया व्यक्ति रिपोर्ट लिखाये बग़ैर ही लौट जाये और वे जेबकतरे से हज़ार-पाँच सौ वसूलकर उसे छोड़ दें। यानी, साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। दरोगा जी की यह मंशा वकील साहब तुरंत भाँप गये। उनकी कोशिश थी कि रिपोर्ट ज़रूर दर्ज हो जाय ताकि मामला आगे बढ़ सके।

"हाँ भाई! दरोगा जी ठीक ही तो कह रहे हैं... अगर हर आदमी अपने तईं सावधानी बरते, तो पुलिस का काम कितना हल हो जाए.... एक से बढ़कर एक बड़े मसले होते हैं पुलिस के सामने... इन छोटी-छोटी बातों के पीछे कहाँ तक अपना समय बर्बाद करें ये लोग....। ख़ैर! चलिए... आप रिपोर्ट लिखाइए... दरोगा जी ख़ुद बहुत सख़्त और ईमानदार अधिकारी हैं... अगर सचमुच आपका पर्स ग़ायब हुआ होगा, तो निश्चित ही ढूँढ निकालेंगे ये....," वकील साहब मौका गँवाये बग़ैर बोल पड़े।

दरोगा जी का दाँव खाली चला गया। वकील साहब ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि न चाहते हुए भी उन्हें रिपोर्ट दर्ज करनी पड़ी। दरोगा जी ने बड़ी बेरुख़ी से रिपोर्ट लिखाने आये व्यक्ति को देखा और भीड़ को थाने से भगा दिया। सिर्फ़ वकील साहब और जेबकतरा ही वहाँ रह गये।

"ऐ शिवमूरत! इस साले के चूतड़ पर चार डंडे लगाकर बंद कर दो हवालात में....।" दरोगा जी पीछे की तरफ सिर घुमाकर बोले। पीछे कुछ दूर बेंच पर बैठे दो सिपाहियों में से एक उठकर आया और उस लड़के को घसीटते हुए ले जाकर हवालात में डाल दिया।

वकील साहब कुछ देर तक दरोगा जी से खुसुर-फुसुर बतियाते रहे, फिर वहाँ से उठकर हवालात में बंद जेबकतरे के पास गये।

"घबड़ाओ मत बेटा... मैं तुम्हें कुछ नहीं होने दूँगा.... साफ़ बचा लूँगा तुम्हें...." वकील साहब उस लड़के को पुचकारते हुए बोले।

"लेकिन वकील साहब मैं जेबकतरा नहीं हूँ.... मैंने कोई पर्स नहीं चुराया है। मैं तो अपनी बुआ के घर से लौट रहा था। बस से उतरते समय एकाएक वह आदमी मेरा हाथ पकड़ कर चिल्लाने लगा और लोग कोई पूछताछ किये बग़ैर मुझे मारने लगे। उसी अफ़रातफ़री में किसी ने मेरा बैग भी छीन लिया। उसमें मेरे कपड़े और पैसे थे," उस लड़के ने रोते हुए कहा। उसके चेहरे और बातचीत से साफ़ झलक रहा था कि वह निर्दोष है।

"कोई बात नहीं.... अगर तुम जेबकतरे नहीं हो, तो यह बहुत अच्छी बात है... लेकिन अगर हो भी, तो दरोगा जी लाख पूछें, तुम अपना जुर्म कबूल मत करना, बाक़ी मैं सँभाल लूँगा। अब अपने बाप का नाम-पता बताओ तो, मैं उन्हें ख़बर कर दूँ और इन काग़ज़ों पर अपने हस्ताक्षर कर दो, ताकि तुम्हें यहाँ से छुड़ाने का बंदोबस्त कर सकूँ," वकील साहब ने लड़के को ढाँढस बँधाते हुए कहा और उसके बाप का नाम-पता पूछने तथा कुछ सादे काग़ज़ों पर उससे हस्ताक्षर कराने के बाद दरोगा वकील साहब के पास लौट आये। उन्होंने दरोगा जी से धीमी आवाज़ में कुछ कहा और थाने से बाहर निकल गये।

थाने से कचहरी लौटने के बाद वकील साहब अपने काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में व्यवस्त हो गये। लगभग दो-ढाई बजे उन्होंने एक मुंशी के ज़रिये उस लड़के के घर ख़बर भेजी। वह लड़का शहर से लगभग छह-सात कि0मी0 दूर स्थित गाँव देबीपुर का रहने वाला था। देबीपुर यादवों का छोटा-सा गाँव था, जहाँ के लोगों का मुख्य धंधा दूध का व्यापार करना था। हर घर में गाय-भैंसे पली थीं, जिनका दूध लेकर मर्द लोग सुबह होते ही शहर निकल जाते थे और उसे बेचकर दोपहर बाद वापस लौटते थे। उस लड़के का बाप गंगादीन अभी दूध बेचकर शहर से लौटा ही था कि वकील साहब के मुंशी ने उसके बेटे के राजेंद्र नगर थाने में बंद होने की सूचना दी।

दरोगा जी ने सारे दिन उस लड़के से कुछ नहीं कहा। खा-पीकर आराम फ़रमाने के बाद वे लगभग चार बजे थाने के ही एक हिस्से में स्थित अपने आवास से बाहर निकले। उन्होंने लड़के को हवालात से बाहर निकलवाकर उसे थाने के आँगन में खड़े नीम के पेड़ के साथ बँधवा दिया, फिर थाने के गेट पर खड़े सिपाही को कुछ निर्देश देने के बाद अपने आसन पर जा बैठे। थोड़ी देर बाद बहदवास गंगादीन आनी बीवी के साथ थाने पहुँचा।

"क्या बात है...? ठहरो... कहाँ घुसे चले जा रहे हो...? "गेट पर खड़े सिपाही ने उन दोनों को बाहर ही रोक लिया।

"दीवान जी ! हमें ख़बर मिली है कि हमारा बेटा इहाँ थाने मे बंद है... यही पता करने आये हैं...,?" परेशान गंगादीन हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया।

"तुम यहीं रुको... मैं पता कर के आता हूँ...," उन दोनों को गेट के बाहर की रोककर सिपाही लपकता हुआ थाने के अंदर गया और दरोगा जी को बताया—"साहब! लड़के के माँ-बाप दोनों आये हैं...।"

"ठीक है.... उन्हें आँगन की तरफ़ भेजो," दरोगा जी ने कहा और कोने में रखा बेंत उठाकर तेज़ क़दमों से आँगन की तरफ़ बढ़ गये।

हाथ में बेंत लिये दरोगा जी लड़के के पास पहुँचे और गुस्से में नथुने फुलाते हुए बोले—"हाँ बे हरामजादे.... अब बता ... किसके पास रखा है वह पर्स..."

दरोगा की भयंकर मुद्रा तथा हाथ में लपलपाता बेंत देखकर लड़के की घिग्गी बँध गयी। उसने हकलाते हुए कहा—"दरोगा जी! मै पॉकिटमार नहीं हूँ... मैंने कोई पर्स नहीं चुराया है...."

"सटाक्.... बहनचो... तू ऐसे थोड़े ही बताएगा... ठहर, अभी तेरी गाँड में पिसी मिर्ची ठुँसवाता हूँ... फिर सब कुछ बक देगा...," लड़के की टाँग पर एक बेंत जमाते हुए दरोगा जी चीख़े।

लड़का बाप-बाप कर के चिल्लाने लगा। तभी सामने से लड़के के माँ-बाप आते दिख गये। उन्हें देख दरोगा जी की आँखें चमक उठीं।

अपने बेटे की चीख सुनी, तो गंगादीन की पत्नी दौड़कर बेटे से चिपट गयी।

"हाय.... हाय... दरोगा बाबू... ऐसे न मारो मेरे लाल को.... यह चोर-उच्चक्का नहीं है....," गंगादीन की पत्नी दरोगा के आगे हाथ जोड़कर बिलखने लगी।

"चोप्प साली... बेटे से पॉकिटमारी कराती है... उठाईगिरी कराती है... हराम की कमाई खाती है, तब नहीं सोचती.... अब रँगे हाथों पकड़ा गया है, तो यहाँ नौटंकी दिखा रही है", दरोगा ने उसे फटकार लगायी और उसे आतंकित करने के लिए लड़के के गाल पर एक ज़ोरदार तमाचा जड़ दिया। लड़का दर्द से बिलबिला उठा और बुक्का फाड़कर रोने लगा। लड़के की दशा देख उसकी माँ भी रोने लगी, गंगादीन हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा और दरोगा अपने पुलिसिया अंदाज़ में उन्हें हड़काने लगा।

दरोगा जीं बातचीत तो उस लड़के के माँ-बाप से कर रहे थे, लेकिन उनकी निगाहें बराबर थाने के गेट की तरफ़ लगी हुई थीं। तभी वकील साहब गेट के अंदर घुसे और "हाँ... हाँ... दरोगा जी, ये क्या जुल्म कर रहे हैं... क्यों जान ले रहे हैं बेचारे की..." कहते हुए उनकी तरफ़ लपके।

"देखिए वकील साहब! इस हरामी के पिल्ले को समझा लीजिए। अगर अपनी भलाई चाहता है, तो चुपचाप अपना जुर्म कबूल कर ले और बता दे कि वह पर्स इसने किसके पास रखा है, वरना इसकी खाल उधेड़ दूँगा मैं," दरोगा जी ने आँखें तरेरते हुए कहा।

"अच्छा-अच्छा, आप मारिए मत। इसे मैं समझाता हूँ.. बात करता हूँ," वकील साहब बोले ।

दरोगा जी ने दो-चार और भद्दी-भद्दी गालियाँ दीं और बेंत लहराते हुए अपने कक्ष की ओर लौट गये।

"क्या देख रहो हो तुम लोग! बहुत ज़ालिम इन्सान है यह दरोगा। वह तो कहो कि मैं समय से पहुँच गया, वरना वह अंग भंग कर देता तुम्हारे बेटे का। अभी उल्टा लटकाकर मारता इसी पेड़ से। दया-माया नाम की तो चीज़ ही नहीं इसके अंदर", दरोगा जी के चले जाने के बाद वकील साहब गंगादीन और उसकी पत्नी से बोले।

"लेकिन वकील साहब, मेरा बेटा चोर-गिरहकट नहीं है", गंगादीन ने कहा ।

"अरे भाई! यह तो बाद की बात है। इसका फ़ैसला तो कचहरी में होगा कि क्या सच है और क्या झूठ। लेकिन, तब तक तो यह ज़ालिम दरोगा मार डालेगा तुम्हारे बेटे को। पुलिस जात का कोई भरोसा नहीं कि क्या कर दे। कहो, किसी मर्डर -डकैती के केस में नामजद दिखाकर इनकाउन्टर ही न कर दे।"

वकील साहब ने ऐसा वातावरण बनाया कि उनकी बातें सुन गंगादीन और उसकी पत्नी अंदर तक हिल उठे। उन दोनों के चेहरे पर पसीना चुहचुहा आया।

"तो आप ही बताइए वकील साहब कि अब क्या करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम", गंगादीन ने विवशता-भरी आवाज़ में पूछा।

"भई! अब तो एक ही तरीक़ा है कि कुछ दे-दिवाकर दरोगा को शांत किया जाए। चाहो तो तुम लोग खुद बात कर लो। मैं तो बस मानवता के नाते इसे बचाने के लिए बस अड्डे पर लोगों से भिड़ गया था और अपने दस ज़रूरी काम छोड़कर यहाँ भी आ गया कि दरोगा मारपीट कर कहीं इसका कचूमर न निकाल दे। सच पूछो, तो लड़के का मासूम चेहरा देखकर मुझे हमदर्दी हो आयी।"

"नहीं-नहीं वकील साहब, आप ही बात करिए दरोगा जी से। जितना भी पैसा लगेगा, हम देंगे, लेकिन हमारे बेटे को बचा लीजिए", लड़के की माँ बीच में ही बोल पड़ी।

"अच्छा, देखता हूँ, बात करता हूँ," वकील साहब ने कहा और गंभीर चेहरा बनाये दरोगा जी के कमरे की तरफ़ चल दिये।

गंगादीन अपना सिर पकड़कर वहीं बैठ गया और जार-जार आँसू बहाती उसकी पत्नी बेटे के घाव सहलाने लगी।

"देखो भाई! जब रिपोर्ट दर्ज हो गयी है, तो अब मुक़दमा तो चलेगा ही। हाँ, दरोगा से इतनी मदद हो सकती है कि वह तुम्हारे बेटे को मारे-पीटे नहीं और मुक़दमा इतना कमज़ोर बनाये कि आसानी से ज़मानत हो जाए। इस काम के लिए वह पाँच हज़ार माँग रहा था। बहुत कहते-सुनते चार हज़ार पर राज़ी हुआ है", दरोगा से बात करके लौटे वकील साहब ने बताया।

"लेकिन वकील साहब, अभी तो मेरे पास सिर्फ़ तीन हज़ार ही हैं। जल्दी-जल्दी में बस इतना ही इंतज़ाम हो पाया", गंगादीन ने बहुत बेचारगी से कहा।

"ठीक है, वही ले आओ। कोशिश करके देखता हूँ, शायद मान जाए", वकील साहब अहसान जताते हुए बोले।

गंगादीन ने कमर में लपेटे धोती के फेंटे को खोलकर तीन हज़ार रुपये वकील साहब को पकड़ाये, जिसे लेकर वे दरोगा के कमरे की तरफ़ बढ़ गये। उसमें से एक हज़ार रुपये वकील साहब ने अपनी जेब के हवाले किये और शेष दो हज़ार दरोगा जी को पकड़ाते हुए बोले, "एक बात ध्यान रखिएगा दरोगा जी, लड़के को मारिएगा नहीं। वैसे भी वह जेबकतरा नहीं है, धोखे से फँस गया है बेचारा।"

वकील साहब जैसी गंभीर मुद्रा बनाये गये थे, वैसी ही गंभीर मुद्रा बनाये हुए लौटे और गंगादीन से बोले, "चलो काम हो गया। मारना तो दूर, अब दरोगा तुम्हारे बेटे को छुएगा भी नहीं और मुक़दमा भी इतना कमज़ोर बनाएगा कि दो-तीन तारीख़ में ही उड़ जाए।"

"अब क्या होगा वकील साहब?" लड़के की माँ ने करुणा भरी आवाज़ में पूछा।

"अब इसको जज साहब के सामने पेश किया जाएगा, वहाँ से ज़मानत करानी होगी, फिर मुक़दमा चलेगा। लेकिन, चिंता न करो, ज़मानत तो मैं कल खड़े-खड़े करा दूँगा और मुक़दमा भी देख लूँगा। कुछ खेती-बारी है कि नहीं तुम लोगों के पास?"

"हाँ करीब डेढ़ बीघा खेत है हमारे नाम से", गंगादीन ने बताया।

"ठीक है, अभी रात को ख़सरा-खतौनी तथा कोर्ट के खर्चे के दो हज़ार रुपये लेकर मेरे घर आ जाना, ताकि इसकी ज़मानत के काग़ज़ तैयार करा दूँ", वकील साहब ने कहा और थाने से निकलकर अपने घर की राह पकड़ ली।

गंगादीन के समक्ष विकट समस्या यह थी कि तत्काल दो हज़ार रुपये की व्यवस्था कहाँ से हो। घर में कुल तीन हज़ार रुपये पड़े थे, वह खर्च हो चुके थे। वह उधेड़बुन में था कि उसकी पत्नी ने सुझाया—"ऐसा काहे नहीं करते कि मुरली से उधार ले लो दो हज़ार, दस-बारह दिनों बाद दूध का पैसा मिलेगा, तो चुकता कर देंगे।"

पत्नी की बात जँची। अपने चचेरे भाई मुरली से दो हज़ार रुपये उधार लेकर ख़सरा-खतौनी के साथ गंगादीन वकील साहब के घर पहुँचा।

"ठीक है, मैं ज़मानत के काग़ज़ तैयार कर लूँगा। अब तुम कल ग्यारह बजे कचहरी में मिलना", वकील साहब ने रुपये और काग़ज़ लेने के बाद कहा और उसे लौटा दिया।

गंगादीन यादव अगले दिन कचहरी पहुँचा तो उसे देखते ही वकील साहब बोले—"हाँ भई यादव जी! ज़मानत के काग़ज़ तो मैंने तैयार करा लिये हैं, अब मेरी फ़ीस के पैसे दे दो, तो कल तुम्हारे बेटे की ज़मानत करा दूँ।

"पैसे तो मैं कल रात आपको दे आया था वकील साहब और आपने कहा था कि आज जमानत हो जाएगी।"

"अरे बौड़मदास, अभी मेरी फ़ीस के पैसे कहाँ दिये तुमने? वह तो कोर्ट की फ़ीस और काग़ज़ तैयार कराने का खर्च दिया था। मेरी फ़ीस दोगे, तभी तो मैं जज के सामने बहस के लिए खड़ा होऊँगा", वकील साहब ने समझाते हुए कहा।

"अच्छा! तो अभी और कितना देना होगा साहेब?"

"वैसे तो मैं पाँच हज़ार से कम नहीं लेता हूँ, लेकिन तुम परेशान हो, इसलिए चार हज़ार ही दे दे ना, तुम्हारा काम कर दूँगा।"

"चार हज़ार?" गंगादीन जैसे आसमान से ज़मीन पर आ गिरा।

"और नहीं तो क्या, कोर्ट-कचहरी का काम कोई सेंत-मेंत थोड़े न होता है। फ़ौजदारी का मुक़दमा है, कोई मज़ाक है क्या? ज़मानत नहीं हुई, तो जेल में ही सड़ जाएगा तुम्हारा बेटा।"

गंगादीन की बोलती बंद हो गयी। आँखों के सामने अँधेरा-सा छाने लगा। ऐसा लगा, गश खाकर गिर जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है, व्यवस्था करता हूँ कहीं से", गंगादीन ने बुझे स्वर में कहा और मुँह लटकाये घर लौट गया। उधर उनकी पत्नी सारे दिन बग़ैर कुछ खाये पिये बेटे के इंतजार में बैठी राह देखती रही। शाम के समय गंगादीन को अकेला आते देखा, तो उनका दिल किसी अनहोनी की आशंका से बैठने लगा।

"क्या हुआ, अनिल कहाँ रह गया?" उसने घबड़ाकर पूछा।

"अभी ज़मानत नहीं हो पायी उसकी, अभी वकील साहब की फ़ीस के चार हज़ार देने होंगे, तब ज़मानत कराएँगे वे", गंगादीन ने कहा और सिर पकड़कर बरामदे में पड़े तख़्त पर धम्म से बैठ गया।

"पाँच हज़ार रुपइया लील लिया उस मुँहझौंसे ने और अभी उसकी फ़ीस बाक़ी ही है... कल तो बहुत हमदर्दी दिखा रहा था दोगला... कह रहा था, लड़के की हालत पर तरस आ रहा है और आज आ गया अपनी असलियत पर... सही कहते हैं सब लोग कि कोर्ट-कचहरी वालों का कोई ईमान-धरम नहीं होता... एक बार इनके जाल में फँस जाओ, तो जोंक की तरह चूस लेते हैं ये... भगवान करे, वह कोढ़ी हो जाए... कीड़े पड़ें उस पापी की देह में", गंगादीन की पत्नी बिफर उठी।

अब समस्या यह थी कि रातों रात चार हज़ार रुपये की व्यवस्था कहाँ से हो। दो हज़ार रुपये पहले ही मुरली से क़र्ज़ ले चुके थे। पूँजी के नाम पर गंगादीन के पास सिर्फ़ तीन भैंसें थीं जिनका दूध बेचकर परिवार का भरण-पोषण होता था। भूख- प्यास भूलकर वे पति-पत्नी पैसे जुटाने के लिए मगज़मारी करने लगे।

"ऐसा करो, हमारी हँसली, नथुनी और बाली बेंच दो सोनार के यहाँ.... गहना-गुरिया आख़िर ऐसे ही अकाज-सुकाज के लिए तो होता है," गंगादीन की पत्नी ने सुझाव दिया।

"दुत् ! ऐसी बात सोचना भी नहीं... आज तक तुमको एक भी चीज़ बनवा नहीं सका, तो बेचूँगा क्यों...?"

"तो फिर क्या करोगे.... एकदम कहाँ से लाओगे चार हज़ार...?"

"ऐसा करते हैं, एक भैंस बेच देते हैं.... दो हज़ार मुरली का क़र्ज़ है ही और पैसा लेकर उसी को दे देते हैं.... भगवान ने चाहा, हाथ में पैसा आया तो कातिक के मेले में एक भैंस खरीद लेंगे... तब तक थोड़ी तक़लीफ़ ही सही...।"

और कोई चारा न देख एक भैंस को बेचने की बात तय हुई और कम से कम दस हज़ार क़ीमत की भैंस मुरली के हाथों केवल आठ हजार में बेच दी गयी। दो हज़ार पहले का क़र्ज़ काटकर मुरली ने मात्र छह हज़ार दिये, जिनमें से चार हज़ार रुपये गंगादीन तत्काल वकील साहब को दे आया। अगले दिन अनिल की ज़मानत हो गयी और घर आ गया, लेकिन मुंशी, पेशकार तथा अर्दली आदि को नज़राना देने में गंगादीन के चार-पाँच सौ और खर्च हो गये।

"अब आगे क्या होगा वकील साहेव...?" घर लौटने से पहले गंगादीन ने पूछा।

"अब मुक़दमा चलेगा... तुम्हें पैरवी करनी होगी... फिर चार-छह तारीख़ों के बाद जब फ़ैसला हो जाएगा, तब यह पूरी तरह से बरी हो पाएगा इस केस से," वकील साहब ने समझाया।

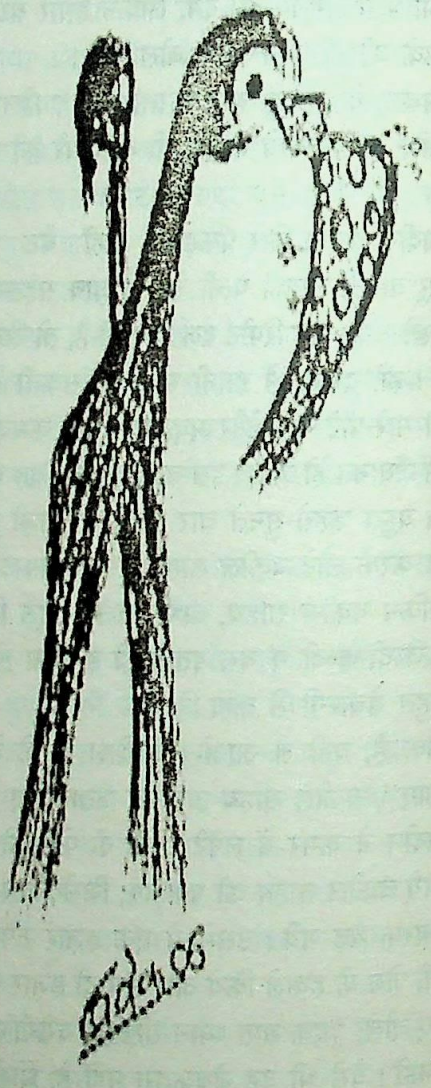

उस घटना को घटे पूरे चार साल बीत चुके हैं, लेकिन अभी तक मुक़दमे का फ़ैसला नहीं हो सका है। हर पंद्रह-बीस दिन बाद तारीख़ लगती है। गंगादीन यादव सारा काम-धाम छोड़ कर पैरवी करने कचहरी जाता है और वकील साहब की फीस तथा मुंशी और पेशकार का नज़राना देकर लौट आता है। इस बीच उनकी दूसरी भैंस भी बिक चुकी है।

त्रिवेणी निवास

सी-2, एच-पार्क महानगर, लखनऊ-266006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन नवगीत

यश मालवीय

लौट रहे दफ़्तर से काकू

बच्चे आस लगाए होंगे
सारा समय जगाए होंगे
लौट रहे दफ़्तर से काकू
सोच रहे, बस सोच रहे हैं

चाय चढ़ा दी होगी उसने
कंघी चोटी कर ली होगी
खोली होगी खिड़की,
ताज़ा हवा साँस में भर ली होगी

सपने रंग रँगाए होंगे
मन में गीत उगाए होंगे
लौट रहे दफ़्तर से काकू
सोच रहे, बस सोच रहे हैं

इनहेलर लेकर बाबू जी
आ बैठे होंगे द्वारे पर
कुछ टटोलती होंगी नज़रें
धुँधले होते उजियारे पर

फिर फल फूल मँगाए होंगे
कबिरा के पद गाए होंगे
लौट रहे दफ़्तर से काकू
सोच रहे, बस सोच रहे हैं

सारे दिन की भागदौड़ को
ठहरा सा पल देती होंगी
जल भीगी आँखों से अम्मा
तुलसी को जल देती होगी

पूरा कुनबा छाए होंगे
लौट गाँव घर आए होंगे
लौट रहे दफ़्तर से काकू
सोच रहे, बस सोच रहे हैं

शाम तुम्हें देता हूँ

ये अथाह अंतरंग
शाम तुम्हें देता हूँ
धारा के बीच थमी
नाव चलो खेता हूँ

तट से कुछ कहकर
फिर लहरों में आता हूँ
नीलापन ओढ़,
हरे पानी को गाता हूँ

भूले से बिछुड़न का
नाम नहीं लेता हूँ

फिर उधेड़ देता हूँ
पुलोवर सवालों का
बुनना कैसा
ताना बाना शैवालों का ?

तुमसे दिल हारा हूँ
तभी तो विजेता हूँ

बातचीत करता हूँ
आक्षितिज उजाले से
अपने हैं ये बादल
साँवले कि काले से

तुम अनन्य मेरे,
मैं तुम्हारा चहेता हूँ

कोई बूढ़ा

सवेरों से हमें
नहला गया है
कोई बूढ़ा टहलकर आ गया है

इधर है दूध,
लाठी उधर रक्खी
सफल दिन की
हुई उम्मीद पक्की

कि घर पर बादलों सा छा गया है
बहुत सी बात करता
पंछियों से
कि सूरत सौंपता है
खिड़कियों से

सुबह के आइने को भा गया है
भजन का, गीत का,
जागा करिश्मा
रखा अख़बार पर
मुस्तैद चश्मा

कि कुछ खोया हुआ सा पा गया है
है तुलसी सूर
मीरा औ, कबीरा
दुवाओं का लिये
बैठा ज़ख़ीरा

क़यामत पर क़यामत ढा गया है
उभर भर रूह
या फिर मन रहा है
समय में चाय जैसा
छन रहा है
सफ़ेदी बाल की लहरा गया है

'रामेश्वरम'
ए-111, मेंहदौरी कॉलोनी
इलाहाबाद-211004 (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो कविताएँ

मदन मोहन उपेन्द्र

औरत-एक

धरती की कोख में जो
सुरक्षित रखती है
फसलों को बीज को
वह औरत ही है ?

अपनी जड़ों से जो
लगाव रखती है
उन्हें जानती पहचानती है
वह औरत ही है

जो भारत का प्रबंध करती है
लोकगीत गाती बजाती है
हरियाली धरती पर
तीज त्यौहार मनाती है
वह औरत ही है

और भली भाँति जान लें आप ?
कि आपदाओं से बचाती
बरगद को सूत बाँधती
बूढ़े बाबा को पूजती
देवी देवताओं की मनौती मनाती
वह औरत ही है सिर्फ़ औरत

औरत-दो

जंगल में जाती
जानवरों से लड़ती
महुओं बहेड़ा दलहन तिलहन
बीनती है औरत
आदमी के कंधे से कंधा लगाए
आदमी को आदमी बनाती है औरत
स्वयं को मिटाती
त्याग तपस की मूर्ति सी दिखती है औरत
पहाड़ों को चीरती
नदियों को फाँदती
आपदाओं को झेलती
लक्ष्य तक पहुँचकर
युगों-युगों से
सभ्यता की चौखट पर
हर नयी दस्तक को देती
नज़र आती है
सिर्फ़ औरत !
औरत ही औरत !!

संपादक-सम्यक
ए-10, शांति नगर, मथुरा

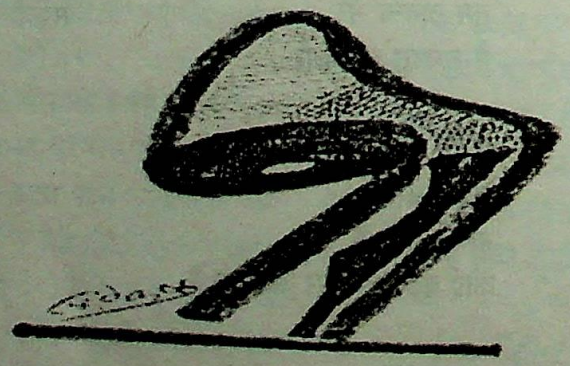

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे लौटा लो मेरी मातृभूमि

भरत प्रसाद

प्रतिपल यह सोचकर कि
मेरे जीवन के प्रत्येक दिन पर,
तुम्हारी महिमा का कितना ऋण चढ़ा हुआ है
हृदय अवाक् रह जाता है,
कह दूँ आज
कि शिरा-शिरा में उमड़ती तुम्हारी ममता का एहसास
अब सह नहीं पाऊँगा,
तुम मेरी क्या हो? कभी कह नहीं पाऊँगा,
आज तुम्हारे समक्ष
पलकें झुकाए अपनी संपूर्ण पराजय घोषित करता हूँ,
उफ् ! धिक्कार है मुझे,
इस तन-मन में तुम्हारी मौजूदगी के बिना
इतनी उम्र कैसे गवाँ दी ?
बेतरह तुमको खोकर मैं सोता कैसे रहा ?
तुम्हारे बग़ैर मृत रहकर मैं जीता कैसे रहा ?
यह दर हकीकत है
तुमसे रिश्ता तोड़कर
अपने वजूद की कल्पना करना भी
अक्षम्य अपराध जैसा है।
आज चालीस वर्षों की खोखली नींद से घबराकर
जब मैं उठा हूँ,
पोर-पोर में तुम्हारी मोह-माया के सिवा
और कुछ धड़कता ही नहीं;
सदियों का अपना दुःख-दर्द
तुम कहो, न कहो
हृदय सब सुनता है,
तुम्हारी गूँगी वेदना का रहस्य
कोई मेरी आत्मा से पूछे,
अपने लाखों तिरस्कार तुम भूल सकती हो,
माँ हो न !
परंतु मैं कैसे भूलूँ ?
आखिर तुम्हारा कुछ लगता हूँ कि नहीं ?
ग़ौर से देखता हूँ,
तुम्हारे शरीर पर पुराने घाव ताजा हैं अब भी
पुतलियों में इतिहास का भय मौजूद है अब भी
आँखों में मातृत्व की पराजय बहती है अब भी
जन्मभूमि !
तुम्हारी माटी के सामने
हमारी उम्र ही क्या है ?
मेरी कल्पना में इतना दुस्साहस कहाँ,
कि तुम्हारे मर्म को शब्दों में ढाल सकूँ,
तुम्हारे विस्तृत आकाश को देखकर
अपने जीवन पर हँसी आती है हमें
दिशाओं ने आज बता ही दिया
कि अपनी सीमाओं से कभी संतुष्ट न रहना
धरती पर जीने के मायने
कोई तुम्हारी नदियों से सीखे,
फसलों ने अपने बारे में मौन रहकर
हमें हमारी औकात ही बता दी।
पुकारता हूँ शिशुवत् कि
अपनी धूल में छिपा लो मुझे
अपने हृदय से लगा लो मुझे
अपनी छाया में शरण दे दो;
तुम्हारे स्पर्श से दूर रहकर मैं चैन से मर भी नहीं पाऊँगा
शेष जीवन की साँसें
तुम्हें समर्पित करने की प्यास
दिनों दिन तीव्र होने लगी है।
मेरी भस्म का कोई सा टुकड़ा
तुम्हारा गौरव लिखने के तनिक भी काम आ सके
तो समझूँगा,
मेरे प्राण का तुम्हारें आँचल में जीवन भर पलना
व्यर्थ नहीं चला गया।

(यह कविता भारतवर्ष के अमर गायक गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोर की कविता 'ओ मेरे देश की-माटी' को समर्पित है।)

सहायक प्रोफेसर-हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलाँग-793022 (मेघालय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद्रेश्वर की कविताएँ

कहीं दाग़ न लग जाए

सफ़ेद कुर्ता-पाजामा पहने
सुबह से शाम तक
रहा परेशान मैं
कहीं चू न पड़े
इस पर
एक भी बूँद
चाय की
दाल-सब्जी में पड़ी
हल्दी का
लग न जाए
दाग़ कहीं
खाना खाते समय

रख न दे कोई अपना
गंदा हाथ
पीठ या कंधे पर
बगल में थूके कोई
चबाकर पान
तो पड़ न जाएँ छींटे
पहली बार पहना था
होश संभालने के बाद
सफ़ेद कुर्ता-पाजामा
उस रोज़
जब तक पहने रहा
असहज रहा
रात में लौटते ही घर
उतार डाला
दाग़ से बचने के चक्कर में
सिर ही चकराता रहा
दिन भर !

एक था हत्यारा

एक था हत्यारा
उसकी माँ बीमार पड़ी एक बार
हत्यारे ने की सेवा
दिन-रात एक किया
कराया इलाज
अच्छे चिकित्सक से
जबतक रही उसकी बीमार माँ
अस्पताल में
स्थगित रहीं
उसकी सारी योजनाएँ
लूट-डकैती
हत्या-अपहरण की
उसके दिल में था
गहरा दर्द
आँखों में आँसू
लबालब
माँ के लिए
जिसने देखा उसे
इस रूप में
रहा चकित
अरे! कहाँ से इसके भीतर
इतना दर्द
कहाँ से इतने आँसू!

ऐसोसियेट प्रोफ़ेसर
एम.एल.के. कॉलेज
बलरामपुर-271201 (उ0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न, जो यथार्थ बना और फिर स्वप्न में ही ढल गया

प्रदीप सक्सेना

अभी कुछ समय पहले ही 1857 की डेढ़ सौवीं जयंती पर 'उद्‌भावना' के महाविशेषांक को तैयार करते हुए बार-बार मुझे कॉमरेड पी0सी0 जोशी की याद आती रही। 1857 को लेकर उनके गंभीर प्रयत्न, अलग-अलग दृष्टियों से लिखे गये छोटे-बड़े लेख, संपादकीय, स्थापना-लेख, रिबेलियन-1857 पूरा ग्रंथ (संपादित), लोकगीतों का संकलन और उनके अंग्रेज़ी में किये गये अनुवाद, यानी 1857 की एक पूरी विचार-यात्रा, जो 1957 में उन्होंने पूरी की और पी0पी0एच0 से लेकर स्मारिकाओं तक अपने मौलिक प्रश्न रखे, भ्रम तोड़ा कि "यह एक प्रतिक्रियावादी संग्राम नहीं था "जैसाकि पं0 नेहरू और रजनीपाम दत्त जैसे बड़े व्यक्तियों और मार्क्सवादियों ने दर्शाया था और सामान्यतः अन्य अधिकांश चिंतकों ने, विशेषकर मार्क्सवादी लेखकों ने दोहराया था। उन्होंने विद्वानों के लिए ही तो अनुवाद किये कि वे लोक में उपलब्ध सामग्री पर ध्यान दें, उसे भी इतिहास का एक साधन समझें और फिर अपने निष्कर्ष दें। कई जगह उन्होंने यह बात कही कि 'मुझे स्वयं वृंदावनलाल वर्मा ने 'झांसी की रानी' का वह मूल पत्र दिखाया है, जिसमें 'स्वराज' शब्द अपनी अभिधा में पूरी तरह एक ही स्पष्ट अर्थ दे रहा है कि "वे स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रही हैं।" इस अर्थ को भी स्पष्ट करने के लिए उन्होंने लगभग 130 पृष्ठ का लंबा निबंध लिखा—'हमारे इतिहास में 1857' और उसके ऐतिहासिक चरित्र का सर्वोत्तम उद्‌घाटन किया। यानी वह सब किया, जो इस महान संघर्ष को इतिहास में उसकी जगह दिलाने के लिए ज़रूरी था और उस दौर में किया, जब भारत आज़ादी के संश्लिष्ट और गूढ़ अर्थों की व्याख्या में व्यस्त था, अर्थात् 1957 में। लेकिन, हमारे मनीषियों ने कम से कम तीन दशकों तक तो उनका नाम भी नहीं लिया। फिर नाम भी लिया, जैसेकि मनीषी रामविलास शर्मा ने, तो उनकी '1857 की ग़लत समझ के लिए'। मैं जब उनका महत्त्व उद्‌घाटित कर पाया (1996 में प्रकाशित ग्रंथ '1857 और भारतीय नवजागरण का संदर्भ'), तब भी बहुत देर हो चुकी थी और अब भी 2007 में उनके द्वारा संपादित ग्रंथ—'रिबेलिअन-1857' का एन0बी0टी0 ने अनुवाद तो प्रकाशित किया, लेकिन उनके ऊपर कोई बहस प्रस्तुत नहीं की। जो लोग यह मानते हैं कि 'कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव होते ही व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ बुद्धिजीवी बन जाता है और पद त्यागते ही मूर्ख', उन लोगों ने भी उनके महासचिव काल के बौद्धिक अवदान पर उँगली नहीं रखी। मेरा निवेदन सिर्फ़ यही है कि हमारे चारों ओर जो बौद्धिक वातावरण है, वह शायद मूल श्रमजीवी वर्गों से अलगाव वाले बुद्धिजीवियों के द्वारा आक्रांत है, जिसमें इश्यूज-चेतना के निर्माण की चेतना, सैद्धांतिक विकास के लिए देश के अनुभवों की व्याख्या और अपनी मातृभाषाओं में चिंतन के प्रति हीनताबोध—यह सब एक ऐसी धूल बनकर छाया रहा है, जिसमें दृष्टि और गति दोनों बाधित हैं। जब अपने ही संघर्ष के प्रति ऐसी उदासीनता है, तो रूस में बोल्शेविकों के संघर्ष के प्रति कितनी होगी—यह समझा जा सकता है।

यह संयोग ही है कि जब मैं कॉमरेड पी0सी0 जोशी के योगदान की संचेतना के पाश से मुक्त हो रहा था, तो मनीषी पी0सी0 जोशी की गिरफ़्त में आने लगा। एक योगदान से दूसरे अवदान के बीच इतनी उत्तेजना—चिंतन की, इश्यूज की, जन संबोधनों और आग्रहों की—गड़गड़ाती तेज़ जलधारा में बहने लगा, क्योंकि एक पी0सी0 जोशी मेरे प्रिय विषय '1857' के आधार-स्रोत थे, तो दूसरे मेरे स्वप्न के। उस स्वप्न के, जिसे सदियों से, विशेषकर दशकों से अलग-अलग कारणों और दृष्टियों से लाखों-करोड़ों लोग देखते आ रहे हैं और फ़िलहाल सोवियत संघ के पतन में उसे हाँफता हुआ देख रहे हैं और कुछ-कुछ हतप्रभ हो चुके हैं। लेकिन, हतप्रभ होने की वजह से भाग नहीं रहे। अभी 70 साल तक 'जो' धड़क रहा था, वही अब फड़क क्यों रहा है?

यह पुस्तक 'यादों से रची यात्रा' भी इस हाँफते हुए स्वप्न की एक गंभीर पड़ताल है। बहुआयामी। आत्मीय चिंताओं से भरी हुई। प्रश्नों से समृद्ध और विकल्पों के प्रति उदार आग्रहों के साथ आह्वान करती हुई। लेकिन, प्रकृति से संश्लिष्ट है, उत्तर से गुंफित भी। क्यों न विकल्पों का जायज़ा लेने हमारे साथ 'वर्तमान साहित्य' के पाठक भी मैदान में उतर पड़ें। लेकिन, इसके लिए ज़रूरी है कि लेखक की कोशिश को, आग्रहों और ज्ञानात्मक संवेदनों को अच्छी तरह समझ लिया जाए।

यात्रा नहीं यात्राएँ : समांतर

सबसे पहले मुझे इस बात की दिली ख़ुशी है कि मनीषी पूरन चंद्र जोशी हिन्दी के अपने हैं। समाजविज्ञानों की दुनिया से, विशेषकर अर्थशास्त्र की प्रतिष्ठित दुनिया से आकर वे हिन्दी वालों की बुद्धि पर—चेतना के स्तर, पद्धति और अवधारणाओं में—जो भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमियाँ हैं, उन पर पिल नहीं, पड़ते बल्कि बड़ी रेखा खींचने में विश्वास करते हैं। 'काउबेल्ट' या हिन्दी-पट्टी के नयी-पुरानी पीढ़ी के हर सक्रिय मस्तिष्क को संबोधित करते हैं। अगर हिन्दी-बुद्धिजीवी पूरी तरह संकटग्रस्त भी है, या घोर पिछड़ा हुआ भी है, तब भी, उसे लतियाने-गरियाने की राह उनकी नहीं हैं। वे उसकी उपेक्षा तो करते हैं या अनजाने ही उसका ड्यू उसे नहीं दे पाते, लेकिन वे उस पर लानतें नहीं भेजते। आकार लेते हुए बुद्धिजीवी वर्ग को संबोधित करते हैं, क्योंकि फटकारने का काम, दाख़िल-खारिज करने का काम स्वयं हिन्दी जन ही कर रहे हैं। वामपंथी हिन्दी-बुद्धिजीवी इसे और भी अधिक उग्रता से कर रहे हैं। यह दुर्भाग्य ही है कि हिन्दी-चिंतन मान्यता के लिए संस्थाओं की जगह व्यक्तियों पर और व्यक्तिगत ढंग की कसौटियों पर निर्भर कर रहा है। आइए, देखा जाए कि जोशी जी यात्रा पर कैसे, क्यों और कब निकले? कहाँ के उत्तर में तो पूरी किताब ही है कि सोवियत संघ की यात्रा पर ही निकले। लेखक ने गेटे की दो पंक्तियों को उद्धृत किया है जिनमें उनका मंतव्य निहित है :

"सारे सिद्धांत बेरंग हैं
केवल जीवन का वृक्ष हरा है"

कई बार सिद्धांतों के बेरंगपने को जीवन ने ही सुधारा है, वही मूल है। वही ऐसी सामग्री है, जिससे सिद्धांत जन्म लेते हैं और धार प्राप्त करते हैं। "सन् 1978, 84 और 88 में तिबलीसी, लेनिनग्राद और मास्को की मेरी यात्राएँ सभी विकल्प पर संशयमुक्त विश्वास के युग में नहीं, बल्कि उस दौर में की गयी यात्राएँ थीं, जब रूस स्तालिन के उत्तराधिकारी निकिता ख्रुश्चेव के बीसवीं कांग्रेस में किये गये हिला देने वाले उद्घाटनों और उससे प्रेरित प्रक्रियाओं द्वारा गहरे आंतरिक संकट के युग में प्रवेश कर चुका था और जब संशय और अविश्वास गहरी जड़ें जमाने लगा था।" (भूमिका, पृ08) इस यात्रा का बाह्य पक्ष यह है कि "विश्व के प्रथम समाजवादी विकल्प की प्रयोगभूमि रूस, महान बोल्शेविक क्रांति के बाद से ही विश्व भर के प्रबुद्ध और साधारण जन-दोनों का आकर्षण-केंद्र और प्रेरणा-स्रोत रहा है। इस प्रयोग ने उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में गंभीर संकटग्रस्त पूँजीवादी व्यवस्था का जो कारगर विकल्प प्रस्तुत करने का साहस किया था, वह अभावग्रस्त तथा निराशा के अंधकार से त्रस्त, उत्पीड़ित मानव के लिए उम्मीद की किरन बन गया था और विश्व भर के प्रबुद्धजनों के लिए प्रत्यक्ष दर्शन, गहरी जाँच-पड़ताल, अध्ययन, और मूल्यांकन का आमंत्रण।" (वही पृ08) दरअसल, जोशी जी की प्रेरणाओं की तह में भी उन्हीं 'चमत्कारी संभावनाओं और उपलब्धियों के वे परिचय ही थे, जो युवा काल में यात्रा-वृत्तांतों और ऐसे ही अध्ययनों से निर्मित थे।' तभी से 'समाजवाद उनके लिए एक स्वप्न, एक आदर्श न रहकर एक व्यवहार्य कार्यक्रम, प्रोजेक्ट, एक अभियान बन गया।' लेकिन यह भी सही है कि "ख्रुश्चेव के हिला देने वाले उद्घाटनों" ने उन्हें संशय और अविश्वास से भी भर दिया, वही संशय और अविश्वास, जिसे हम 'नया विवेकसंगत विश्वास' भी कह सकते हैं। उसका महज़ अस्तित्त्व था उन दिनों, लेकिन गंभीर अहसास 1985 के आसपास ही हुआ। इसे जोशी जी ने अपने 'विश्वास का नवजागरण' भी कहा है। हालाँकि, 'नवजागरण' संज्ञा की अंतर्वस्तु काल और दिक् की अनिश्चितता के साथ सुनिर्धारित नहीं है। फिर भी, जो भी अर्थ लिया हो इसका जोशी जी ने, उसमें नया तत्त्व तो है ही। 1980-85 के दौरान् केंद्रीय सरकार द्वारा बनायी गयी 'दूरदर्शन सॉफ़्टवेयर प्लानिंग कमेटी' के अध्यक्ष के रूप में और बाद में (संभवतः 1988) राजीव गांधी द्वारा बनाये गये 'रूरल लेबर इन्क्वॉयरी कमीशन' के सदस्य के रूप में जब वे सक्रिय हुए, तो रूस की तरह भारत की यात्राएँ भी उन्होंने कीं, जिन्होंने "जनजागरण के नये उभार का प्रेरणादायी परिदृश्य पेश किया, साथ ही, नयी संभावनाओं और इस संदर्भ में चुनौतियों के नये क्षितिज भी उजागर कर दिये थे।" ये नये क्षितिज थे—"भारत के महानगरीय नव मध्यम वर्ग और बाद में भारत के विशाल श्रमिक जन से मेरा साक्षात्कार, मेरा नया परिचय, जो अपनी यथास्थिति के अवरोधों, उत्पीड़नों और बाधाओं से मुक्त होकर अपने लिए एक नया वर्तमान बनाने, अपने बच्चों के लिए नया भविष्य खोजने के लिए आतुर थे।" (वही पृ0 9) हालाँकि जोशी जी ने पृ0 8 पर जो कहा है—'संशयात्मा विनश्यति' की भी मिसाल बन सकती है यह। लेकिन, वे बच गये और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "अविश्वास अभिजनों का विलास है" और "उसके लिए कर्मप्रधान, सतत संघर्ष के श्रमिक जीवन में कोई स्थान नहीं।" (वही, पृ 9) ज़ाहिर है कि एक समय रूस की बोल्शेविक क्रांति ने इसी सत्य पर मुहर लगायी थी और "मार्क्सवाद और उस पर आधारित समाजवाद, बहुसंख्यक श्रमिकजन के बहिष्कार और वंचन का प्रतिरोध और उनका सक्षमीकरण; उन्हें हाशिए से केंद्र में लाने का दर्शन और कार्यक्रम बनकर विश्व भर में फैला था।" (वही पृ0 10) लेकिन, "किन्हीं ऐतिहासिक कारणों से प्रथम प्रयोग संकटग्रस्त हो गया।" (वही) इसी से जुड़ी हुई चीज़ यह है कि उस संकट और विघटन से पैदा हुए वैचारिक शून्य की स्थिति में नव उदारवाद विश्व के नये दर्शन और कार्यक्रम के रूप में सामने आ गया। यानी, समाजवाद के अंत के साथ ही नव उदारवाद का शंखनाद हुआ है। अर्थात्, रूस की जीवन-प्रक्रिया रुकी नहीं है, बस अप्रत्याशित दिशा में चल निकली है। लेखक का निष्कर्ष यही है कि "किसी ज़माने के समाजवादी रूस का नव उदारवाद में संक्रमण वरदान नहीं, आम लोगों के लिए अभिशाप साबित हुआ।" (वही) लेकिन रूस तो इतिहास में फिर भी 70 साल एक मॉडल रहा, नव उदारवाद की पोल तो 10 साल में ही खुल गयी। उचित ही कहा है लेखक ने कि "एरिक हाब्सबाम की यह बात कितनी सच है कि इतिहास हमें बार-बार आश्चर्य में डाल देता है या अभी फुकूयामा इतिहास, विचाराधारा और समाजवाद के अंत की बात कर रहे थे, अब उन्हें नव उदारवाद के अंत की करनी पड़ रही है।" लेकिन, आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो दोनों अंतों के बीच वैचारिक शून्य को भरने की है। इससे पहले कि अंतवाद हमें आकर्षित कर ले, लेखक का मत है और मैं इससे सहमत हूँ कि "इस चुनौती से जूझने के लिए एक नवजागरण अपेक्षित है। दुनिया को बदलने के लिए आतुर मार्क्सवाद और उदारवाद के विचारकों को एक बार फिर स्वयं अपने को युग के अनुकूल बदलना होगा, नये सांचे में ढालना होगा, तभी नई राह की खोज सार्थक होगी।" (वही, पृ. 11) यहीं लेखक यह निर्णय भी देता है कि "विश्व का प्रथम समाजवादी प्रयोग समता का वाहक तो बना, किंतु मानसिक स्वतंत्रता और लोकतंत्र की नयी लहर के प्रति असंवेदी रहा।" (वही) इसके उलट "विश्व के उदारवादी, नव उदारवादी प्रयोग स्वतंत्रता और लोकतंत्र के प्रति संवेदी थे, तो समता के प्रति असंवेदी रहे।" (वही, पृ0 11) अर्थात्, इस दृष्टि से नये युग की आवश्यकताओं को पूरा करने में न पारंपरिक समाजवाद सक्षम है, न उदारवाद। दोनों को अपनी अपूर्णता को समझना होगा और स्वयं को नये साँचे में ढालना होगा।" (वही, पृ 11)

अब संकट यह है कि "मार्क्सवाद और उदारवाद दोनों में अपनी कमियों और कमज़ोरियों का अहसास नहीं है।" (वही) जहाँ तक मार्क्सवादियों का प्रश्न है, वे "उदारवादियों की ख़ामियों को तो प्रकाश में लाते हैं, लेकिन अपनी नहीं।" (वही) अब फिर आत्म-परीक्षण कैसे हो और आत्मालोचन और इसके बिना नवजागरण कैसे हो? फिर यह क्या व्यक्तियों के सोचने से ही हो जाएगा या पार्टियों के प्रस्तावों से? या बुद्धिजीवियों के निर्भय प्रश्नों से या इसमें उत्पादन, टेक्नोलाजी, वितरण और विनिवेश की वर्गीय शक्तियों का भी कोई दख़ल हो पाएगा। मार्क्सवादियों ने अपनी कमियाँ, ऐतिहासिक भूलें, वग़ैरह भारत में कितनी ही बार स्वीकार की हैं। आत्म मंथन भी प्रकाशित किये हैं। इससे बहुत आगे बढ़कर, क्योंकि रूस की तरह यहाँ केवल एक कम्युनिस्ट पार्टी नहीं हैं, दो बड़ी और 17 छोटी पार्टियाँ और ग्रुप और उग्र पार्टियाँ भी हैं, जिन्होंने दूसरी पार्टियों की कमियों पर ही शोध किया है और दिन-रात उन्हें प्रचारित भी कर रही हैं, बल्कि यह काम वे व्यवस्था से भी बेहतर ढंग से कर रही हैं और यह अहसास करा रही हैं कि भारत में कम्युनिस्टों का इतिहास भूलों का ही इतिहास है, आंदोलनों का नहीं। रूस में कमियों पर तो पूरी दुनिया ही पिल पड़ी थी, न केवल क़लम से, बल्कि फ़ौजी और आर्थिक हमलों से मार्क्सवादी कमियों को पहले दिन से ही सामने ला रही हैं, बल्कि क्रांतिपूर्व जारशाही रूस को ही ठीक ठहरा रही हैं। ऐसे में, कुछ लोगों को, कुछ बातें और गहरे समझ में आने से ही या ग़लितियों को समझ लेने से ही नवजागरण का आरंभ हो जाएगा, इसमें मुझे संदेह है। लेकिन, व्यक्ति, विशेषकर जब वह सत्ता बन जाता है, उस दौर की कमियों को प्रकट कर सकने में जो भूमिका एक क्रांतिकारी बुद्धिजीवी को निभानी चाहिए थी, वह भारत से जाने वाले बुद्धिजीवियों ने, ख़ासकर हिंदी बुद्धिजीवियों ने, जैसेकि भीष्म साहनी ने नहीं निभायी, इस पर लेखक का क्षोभ उचित है। इसी प्रकाश में पुस्तक की रचना हुई है।

व्यक्ति और सत्ताओं का विमर्श

इतिहास में आकस्मिकता इतना भयानक तत्त्व है कि इतिहास मनचाहे ढंग से नहीं चल पाता, न बन पाता है। बस उसे अपने ढंग से लिखा जा सकता है। लेखन, कला और रचना कौशल इसीलिए कहे जाते हैं कि जहाँ कमज़ोरियाँ थीं, वहाँ क्रांति दिखा दी, जहाँ क्राँति हुई, वहाँ महज चंद अराजक लोगों का शगल! सत्य देखिए अपनी यात्रा किस तरह करते हैं। डायबिटीज़ एक बुरा रोग है। 'पूरी दुनिया इससे परेशान है। चुपके-चुपके मारता है।' लेकिन एक सत्य उड़ चला कि यह "अमीर देशों और लोगों की बीमारी है। पड़े रहते हैं, काम नहीं करते।" इसके निर्मूलन के लिए चिकित्सकीय शोध अपनी जगह हैं, लेकिन राजनीतिक प्रचार भी एक ज़बरदस्त औषधि है। उस हिसाब से यह बीमारी सबसे अधिक अमेरिकनों को होनी चाहिए। अमीर हैं। बैठे-बैठे बम गिराते रहते हैं। हर वक़्त ऐश! युद्धभूमि में भी। लेकिन, इसके रोगी पाये गये सबसे ज़्यादा एशिया में! भारत और चीन में! अब 'सत्य' का क्या हो? इसी तरह यह पुस्तक भी यह मानकर चलती है कि सारा सत्य गोर्बाचेव के पास था। इससे पहले ख्रुश्चेव के पास था। स्तालिन के पास तो सिर्फ़ झूठ और आतंक था। खण्ड-1 'यादों से रची यात्रा : विकल्प की तलाश' में 7 लेख हैं। इनमें से 4 लेख स्तालिन, उसके काल और उसकी व्यवस्था को लेकर हैं। बहुत ही ईमानदारी से और अपने व्यक्ति-स्रोतों से लेखक अपनी मान्यताएँ पेश करते हैं। पहले ही अध्याय में लेखक यह बात कहते हैं कि "समाज-विज्ञान यदि किसी देश के समाज, उसके लोगों, उनकी भाषा, रहन-सहन, प्रकृति, परिवेश, पर्यावरण, अर्थव्यवस्था, रीति-रिवाज़, धार्मिक विश्वास, संस्कृति, सभ्यता आदि के सुनियोजित निरीक्षण और अध्ययन का पर्याय हैं, तो उस देश की यात्रा उस समाज को जानने-पहचानने-समझने का सबसे प्रारंभिक, सबसे आदिम, सबसे पुराना माध्यम है।" (पृ0 21) सही है, मामला चाहे स्वदेश का हो या विदेश का—यात्राएँ अनुभव हैं। जीवन-वृक्ष के फल हैं और समस्त ज्ञान का सैद्धांतिक पक्ष उन्हीं के पक्ष या विपक्ष से संचालित होता है। किताबी ज्ञान की परख अनुभव ही करता है, लेकिन अनुभव की समझ सैद्धांतिक ज्ञान ही देता है। तो, परस्पर पूरक हैं ये या ऐतराज़ न हो, तो यह एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया है। यहाँ लेखक को तकलीफ़ यह है कि "यात्रा के इतने महत्त्वपूर्ण माध्यम होने के बावजूद समाज-विज्ञान के विचार को, शिक्षकों, विधा और नियम के रचनाकारों के चिंतन और लेखन में यात्रा का कहीं भी विचार-गर्भित विवेचन नहीं मिलता।" (वही, पृ0 21)

अगर, समाज विज्ञानी अंग्रेज़ी माध्यम के बाहर भी मानें जाएँ और हिन्दी को इस लायक समझा जाए, तो हमारे महापंडित राहुल सांकृत्यायन को याद किया जा सकता है, जिन्होंने न केवल ऐतिहासिक यात्राएँ कीं, न केवल 'एशिया के दुर्गम भूखंडों में'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भटके, न केवल तिब्बत में भयानक जोख़िमों के बीच अप्रतिम कार्य किये और विश्व को बौद्ध पांडुलिपियों से नवाज़ा और यात्रा के महत्त्व पर 'घुमक्कड़ शास्त्र' की भी रचना की। वे तीन बार सोवियत संघ भी गये और अंतिम बार स्तालिन के आतंकवादी काल में 4 साल वहाँ रहे भी। प्रोफ़ेसरी भी की। लेकिन, भीष्म साहनी और निर्मल वर्मा के साथ लेखक की मान्यताओं और शंकाओं के निवारण में सबसे पहले राहुल जी का हक़ बनता था और दूसरे नंबर पर यशपाल का, जिनकी पुस्तकों से तमाम हिन्दी-जन सोवियत-प्रेमी और मार्क्सवादी बने। ख़ैर, यह हम हिन्दी वालों का दुर्भाग्य ही है कि हमें अपने रिकॉग्नीशन के लिए अंग्रेज़ी माध्यम के मान्यता देने वालों पर निर्भर रहना पड़ता है।

यहाँ मुझे सबसे महत्त्वपूर्ण बात जोशी जी की यह घोषणा लगती है कि "मेरे लिए रूस-यात्रा का अर्थ एक साथ सीमित और व्यापक, एकलआयामी और बहुआयामी है।" (वही पृ. 22) अर्थात् "सीमित अर्थ में रूस-यात्रा मेरे लिए संयुक्त सोवियत समाजवादी गणराज्य के आधार रूस की और रूस के वर्चस्व में करीब सात दशक तक रहे अन्य राज्यों की यात्रा है, तो व्यापक अर्थ में यह एक बहुआयामी वैचारिक यात्रा है।" (वही, पृ. 22)"।

यद्यपि, यादों का पैटर्न या स्वरूप कोई तरतीबवार, सिलसिलेवार, व्यवस्थित, क्रमबद्ध, सुसंगत, संबंद्ध पाठ या वृत्तांत की तरह नहीं है। (वही, पृ. 23) लेकिन, लेखक जब यह कहते हैं कि रूस का विवरण ही फ्रेंगमेंटेड, एलिमेंटल या अनियमित सा नहीं है क्या? या कि रूस का "इतिहास भी ऐसा ही अराजक एलिमेंटल-सा नहीं है? विशेषकर रूस की क्रांति के पूर्व और बाद का इतिहास भी किसी निश्चित पैटर्न, किसी व्यवस्थाबद्धता, नियमबद्धता क्रमबद्धता की अवज्ञा करता उसे बार-बार चुनौती देता-सा नहीं लगता?" (वही, पृ. 24) अब यह कौन बताए? या तो लेखक ही इसे सिद्ध करते, तो उसके पक्ष या प्रतिपक्ष में कुछ कहा जा सकता। यह प्रश्न बहुत जटिल और अमूर्त बनाकर पेश किया गया है—"जैसे उसकी निरंतरता की कुंजी उसकी नियमहीनता—स्वयं बनाये नियमों को बार-बार उलटने में है।" (वही पृ24) लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि "बीसवीं सदी का इतिहास, जिसमें रूस का इतिहास एक प्रमुख तत्त्व है, बार-बार मानव निर्धारित विधान और प्लान, इच्छा और इरादे के सववर्जन (उच्छेदन) का इतिहास है।" (वही पृ. 24) यहाँ उदाहरण के लिए यह भी कहा गया है—"क्या स्वयं को दुर्जेय समझने की आदी जारशाही को 1917 की क्रांति की आहट भी सुनायी दी थी या उससे अपने अंत का ज़रा भी अहसास था?" (वही पृ. 24) यह संयोग है या इतिहास का नियम? या परिस्थिति या क्राँतिकारियों की समझ और शक्ति और जन-संगठनों की भी कोई भूमिका है इसमें? मैं समझता हूँ, यह कुछ काव्यात्मक प्रश्न अधिक है, बनिस्बत वैज्ञानिक दृष्टि के! जिस तरह जारशाही को इसका अंदाज़ा नहीं था, उसी तरह समाजवाद-विरोधी ताक़तों को अपने हारने का? इसी कड़ी में तीसरा प्रकरण अजेय समझे जाने वाले स्तालिन का है—"जिस रूसी जनता ने लौह अनुशासन द्वारा और इस अनुशासन के महानायक स्तालिन के नेतृत्व में साम्राजी घेराबंदी और फ़ासीवादी आक्रमण को नाकाम कर दोनों पर महाविजय हासिल की थी, वही स्टालिन द्वारा स्थापित इसी लौह अनुशासन और उस पर आधारित तानाशाही राजतंत्र को स्वयं ही किसी दिन उलट देगी, इसका ज़रा भी अहसास न स्टालिन के उत्तराधिकारियों को था, न पश्चिमी राजनेताओं को; जो इस स्टालिनवादी तंत्र को दुर्जेय मान बैठे थे और जिनकी सारी रणनीति स्वयं रूस को शीत युद्ध और आयरन कर्टेन द्वारा आइसोलेटेड रखने की थी। (वही, पृ0 24-25) इसी सोच और पद्धति को यानी इतिहास में अनिश्चितता और आकस्मिकता को और भी आगे बढ़ाया जा सकता है कि गांधी जी और कांग्रेस को ही क्या यह अहसास हो पाया था कि एक हिन्दू ही उनकी हत्या कर देगा? क्या विश्वगुरु अमेरिका को ही यह अहसास हो सका कि ओसामा बिन लादेन, जिसका कि वह जनक और पालनहार है, वही उसकी राह में सबसे बड़ा रोड़ बन जाएगा? या कि सद्दाम हुसैन ही क्या जान पाए कि उनका हर जनरल और अधिकारी अमेरिका का आदेश पालन करने लगेगा?

इसकी जगह साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, विदेशी पूँजी, वित्तीय पूंजी का चरित्र, तकनालॉजी का भूत और प्रबंधन का दर्शन, श्रम के जटिल रूप, युद्ध-साधन-उद्योग, एशिया की धरती और तेल और प्रच्छन्न तानाशाहियाँ और तमसाच्छन्न लोकतंत्र, श्रमजीवी वर्गों से वास्तविक अलगाव वगैरह का अध्ययन अधिक ज़रूरी है। ऐसे अध्ययनों से ही आकस्मिकता, फ्रेंग्मेन्टेन्ड या ऐलिमेंटलिज्म वगैरह की भी अधिक विश्वसनीय व्याख्या हो सकती है।

इतिहास के दौर में आकस्मिकताओं का नज़ारा इतना भयंकर होता है कि बुद्धि चकरा जाती है। जो देश कभी स्पूतनिक के कारण विश्व में समाजवादी तकनीक की विजय के लिए जाना गया था, उसी देश में ग्लासनोस्त और पेरेस्त्रोइका के दौरान् नवजागरण के अग्रदूत श्री गोर्बाचेव ने 'स्पूतनिक पत्रिका' से यह खुलापन शुरू किया कि मार्च, 1990 के अंक में पृ. 108 पर एक अमेरिका की टक्कर की रूसी युवती की नंगी तस्वीर छापी।

ग्लासनोस्तवादी कई रूसी उस पर क्रीम लगा रहे हैं। उसे शीर्षक दिया गया है—'नारी केक'। उस पर ये पंक्तियाँ भी अंकित हैं—"नारी केक बनाते हुए। बाद में तमाशे के दौरान् यह क्रीम खा ली जाएगी और सिर्फ़ नारी रह जाएगी।" और नंगी स्त्री से बड़ा नवजागरण क्या होगा? 1990 में ही मेरा यह मानना था कि रूस अब अमरीका के प्रादर्श में ढले बिना नहीं रह सकता। अमरीकी साम्राज्यी पूँजी का जो सूराख़ ख्रुश्चेव ने 20वीं कांग्रेस में किया था, पेरेस्त्रोइका के दार्शनिक गोर्बाचेव तक आते-आते वह पूरा तला-तोड़ बन गया। बाहर से देखने पर वह जहाज़ डूब गया। कभी -कभी चूहे इतने मज़बूत हो जाते हैं कि बिल्डिंग की पूरी नींव खा जाते हैं । यह रूपक नहीं यथार्थ है।

1990 में जब खुलेपन की आँधी आयी हुई थी, तब पंजाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मे भिंडरावाला के बाद का दौर अभी जारी था यानी दहशत से उबरने का। एक से एक अच्छे कॉमरेड को गोली मारी गयी। तमाम कम्युनिस्ट आंदोलन उधड़ गया। फिर भी पता नहीं क्यों पेरेस्त्रोइका और ग्लासनोस्त का दौर जारी रहा, यानी कॉमरेडजन इस पर बहुत जमकर बहस करना चाहते थे। कॉमरेड दर्शन सिंह, कॉमरेड विजय मिश्रा, कॉ0 रोजेश्वर सिंह, कॉ0 बिलगा साहब 'गदरी'—सब में इतना जोश था कि पेरेस्त्रोइका के अलावा किसी पर बात नहीं कर रहे थे। पेरेस्त्रोइका की प्रतियाँ मिल नहीं रही थीं, लिहाज़ा रूसी दूतावास के सहयोग से उसका पंजाबी अनुवाद छापा गया, ताकि धुर देहात के कॉमरेड भी उस पर बात कर सकें। मुझे अन्य किसी राज्य में ऐसी जोशीली पहल नहीं मिली थी। मैं भी साथ लग गया। हिन्दी में अनुवाद था नहीं। पंजाबी कुछ सीखी, कुछ समझ में आती थी। 'दिया बला सारी रात!' रात-रात भर सरदार साथी भिड़े। ख़ैर, मैंने 1990 में ही तीन दिनी बहस के लिए एक ड्राफ़्ट तैयार किया था, वह बाद में प्रगतिशील पत्रिका 'साम्य' की ओर से 1991 में पुस्तिका रूप में प्रकाशित हुआ। इसमें 90 सूत्रों में मैंने बहस के लिए मुद्दे चुने थे। उन पर बहस हुई और वह भी प्रकाशित हुई। यहाँ मैं उसके कवर पेज़ की पंक्तियाँ दोहराता हूँ—

"पेरेस्त्रोइका और ग्लासनोस्त का सारतत्त्व?
अर्थात्
क्या मार्क्सवाद पराजित हो गया है?
या
मार्क्सवाद के विकास का ऐतिहासिक दौर
आ पहुँचा है?
(विदेशी पूँजी विघटन और तकनीक या राष्ट्रीय
एकता
समाजवाद और विचारधारा)
चुनाव अरबों शोषित जनगणों को करना है
इस ओर या उस ओर ?

भीतर पेरेस्त्रोइका और ग्लासनोस्त की क़ब्र थी। उसी पर कुछ विचारों के पत्र-पुष्प भी चढ़ाये थे। स्टालिन के दसियों मूल्यांकन मौजूद हैं, फिर भी प्रत्येक लेखक क्या व्यक्ति को भी अधिकार है कि वह किसे चुने। लेकिन, हमारे लेखक ने हरपाल बराड़ से लेकर माओ-त्से-तुंग तक, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से अल्बानियां के अत्यंत गंभीर विश्लेषक कॉमरेड प्रेसीडेंट अनवर हौक्सा तक किसी के प्रमाणिक विचारों की जाँच-पड़ताल नहीं की है। इन लोगों ने अंग्रेज़ी माध्यम से ही लिखा है और 'वर्ग-संघर्ष के अर्थशास्त्र' को धराशायी करने वाले कारणों की खोज की है, लेकिन अब भी मुझे रवींद्रनाथ टैगोर, गांधी जी पं0 नेहरू, मि0 निगमेंद्र सक्सेना, पी0सी0 जोशी, डी0पी0 मुखर्जी के सभी महत्त्वपूर्ण विचारों के साथ स्टालिन के दौर में महायुद्ध में हिटलर की पराजय के बाद सोवियत संघ में स्टालिन पर आँखों देखी टिप्पणी के तहत महापंडित राहुल सांकृत्यायन की बातें ही सर्वाधिक विश्वसनीय प्रतीत होती हैं। राहुल जी की इन पंक्तियों को भी पढ़ें- "पूँजीवादी पत्रों और लेखकों ने इतना ज़ोर का प्रचार कर रखा है कि कितने ही ईमानदार लोग भी बाज़ वक़्त इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि सोवियत रूस में सचमुच ही विचार-स्वातंत्र्य नहीं है। वे समझते हैं कि वहाँ के लोगों का गला घोंट दिया गया है। यह समझ लेना चाहिए कि सोवियत-शासन को आर्थिक और शिक्षा संबंधी क्षेत्रों में जो सफलताएँ मिली हैं, वे केवल अभूतपूर्व ही नहीं है, बल्कि मात्रा में इतनी अधिक हैं कि उनसे जनता के निन्यानवे फ़ीसदी लोगों ने लाभ उठाया है। उन्होंने अपनी आँखों के सामने उन लाभों को दिन पर दिन बढ़ते देखा है। द्वितीय विश्वयुद्ध में विजय प्राप्त करके सोवियत शासन ने लोगों के हृदयों में अपने गौरव को और भी अधिक बैठा दिया है। इसीलिए सोवियत जनता में 99 फ़ीसदी लोग सोवियत शासन के अंधभक्त हैं।" (मेरी जीवन-यात्रा, भाग-3, पृ. 789) स्तालिन के बारे में तो फिर कहना ही क्या—"स्तालन तो उनके लिए सजीव भगवान है, जिसके विरुद्ध वे एक शब्द भी सुनने के लिए तैयार नहीं है। ऐसी अवस्था में भाषण मंच पर खड़े होकर सोवियत-शासन या स्तालिन को गाली देने की हिम्मत ही किसकी हो सकती है? लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि विरोधी मत रखने वाले लोग वहाँ नहीं हैं, और वे अपने मतभेदों को प्रकट नहीं करते। अपनी मित्र-मंडली में सभी अपने विचारों को खुलकर प्रकट करते हैं। हाँ, मतभेद प्रकट करने वाले भी सोवियत-विरोधी होने तक बहुत कम जाते हैं। (वही, पृ. 79) इसी तरह धर्म विरोधी प्रचार के बारे में राहुल जी का मत है :

"क्रिसमस—25 दिसंबर ईसाइयों का सबसे बड़ा पर्व दिन है, लेकिन सोवियत में किसी भी धार्मिक पर्व दिन की छुट्टी नहीं होती। वहाँ लोग राष्ट्र के तौर पर धर्म का प्रदर्शन नहीं करते। हमारे यहाँ तो इन धार्मिक पर्व दिनों ने नाक में दम कर रखा हैं। हिन्दुओं के तो 365 दिन ही धार्मिक पर्व के हैं।" (वही, पृ. 140) जबकि रूस में "सरकारी छट्टी न भी हो, सरकार चाहे बिलकुल धर्म-निरपेक्ष हो, किंतु वहाँ की जनता (नास्तिक?) व्यक्तिगत तौर से धर्म-निरपेक्ष नहीं है। आज भी रूसी गिरजे (प्रचार : इन्हें नेस्तानाबूद कर दिया गया है) इतवार के दिन भक्तों से भरे रहते हैं। क्रिसमस के लिए हरी देवदार की शाखा ख़ूब बिकती है और बहुत ही कम ऐसे घर होंगे, जिनमें क्रिसमस वृक्ष न लगा हो।" (वही, पृ.140)

इन सबको स्तालिन ने साइबेरिया क्यों नहीं भेज दिया? क्यों नहीं कोड़े बरसाये इन पर? जोशी जी ने जो प्रसंग प्रोफ़ेसर आशाराम तथा धूर्जटि बाबू तथा कॉमरेड पी0सी0 जोशी के माध्यम से उठाये हैं, वे किसी भी देश में कम्युनिज़्म के निर्माण में महत्त्वपूर्ण हैं। बतौर वैज्ञानिक बुद्धिजीवी ये मार्गदर्शक प्रसंग हैं। लेकिन, मैं विनम्रतापूर्वक यही कहना चाहता हूँ कि मुखर्जी साहब 1951 में सोवियत संघ में जो कमियाँ पाते हैं; राहुल जी 1947 में 4 साल रहकर जो देखते हैं उसे आकर लिखते हैं, तो हमें दोनों संदर्भों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलाकर देखना चाहिए। धूर्जटि बाबू के बाद लेखक के प्रिय एवं आदर्श पं. नेहरू की स्टालिन के लिए दी गयी श्रद्धांजलि में व्यक्त कुछ सूत्र यहाँ फिर देखे जा सकते हैं—"मार्शल स्तलिन अब नहीं रहे।... सिर्फ़ दो या तीन दिन, हफ़्ते पहले ही हमारे मॉस्को स्थित राजदूत ने उनसे मुलाकात की थी... उन्होंने हिन्दुस्तान के लिए अपनी सद्भावनाएँ प्रकट की थीं...यह बात और भी दिलचस्प है कि उन्होंने हमारी बहुत-सी सांस्कृतिक समस्याओं के बारे में भी बातचीत की थी...

"जब हम मार्शल स्तालिन के बारे में सोचते हैं, तो हमारे, कम से कम मेरे दिमाग़ के सामने कई विचार आ जाते हैं और पिछले पैंतीस वर्षों के इतिहास की घटनावली जैसे आँखों के सामने आ जाती है। हम सब इसी युग की संतान हैं और हम पर अनेक प्रकार से इसका असर भी पड़ा है। इस दौरान् हम न सिर्फ़ अपने देश में ही संघर्ष करके बड़े हुए हैं, दुनिया के दूसरे हिस्सों में होने वाले ताक़तवर संघर्षों ने भी हम पर अपना असर डाला है।

"इन 35 वर्षों की घटनाओं पर नज़र डालने से कई उल्लेखनीय व्यक्ति सामने आते हैं, पर शायद कोई भी ऐसा दूसरा व्यक्तित्त्व नज़र नहीं आता, जिसने मार्शल स्तालिन की तरह इन वर्षों के इतिहास का इतना प्रभावित किया और बनाया हो। धीरे-धीरे वे कथा-कहानियों के नायक की तरह बन गये। कभी वे रहस्यमय व्यक्ति के रूप में और कभी असंख्य लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध रखने वाले व्यक्ति के रूप में वे सामने आये। शांति और युद्ध—दोनों में ही उन्होंने अपने आपको महान साबित किया। उन्होंने जिस दुदम्य इच्छा-शक्ति और असाधारण साहस का परिचय दिया, कम ही लोगों में मिलती है। जब इस काल का इतिहास लिखा जाएगा, तो उनके बारे में तरह-तरह की बातें कही जाएँगी और पता नहीं, आने वाली पीढ़ियाँ क्या राय कायम करेंगी; पर इस बात से तो सभी सहमत होंगे कि मार्शल स्तालिन एक बहुत बड़े व्यक्तित्त्व वाले आदमी थे, जिहोंने अपने युग के भाग्य का निर्माण किया। यद्यपि, उन्हें लड़ाई में ही काफ़ी सफलता मिली, पर उन्हें सबसे ज़्यादा तो इसलिए याद किया जाएगा कि उन्होंने अपने देश को महान बनाया है।" (स्तालिन : राहुल सांकृत्यायन, पृ. 235-6)

1953 के इस मूल्यांकन के प्रकाश में ख्रुश्चेव, गोर्बाचेव और येल्तसिन वगैरह के मूल्यांकनों को देखना चाहिए। जोशी जी ने स्तालिन काल के आतंक की स्थिति को व्यक्त करने वाली कविताएँ दी हैं और उनसे एक राय बनती है। मेरे पास रूसी किसानों के लोकगीत हैं, जिनमें स्तालिन को पूजा गया है। भारत में भी हिन्दी और उर्दू में उन पर लंबी कविताएँ लिखी गयी हैं—मार्क्सवादी, प्रगतिशील और जनवादी कवियों द्वारा भी। लेकिन, मैं पाठकों के लिए एक राष्ट्रवादी गायक की कविता पेश कर रहा हूँ, जिसे कोई भी प्रचार रूस का एजेन्ट सिद्ध नहीं कर सकता। 'मार्क्सवाद के खंडहर' के सिद्धांतकार शंकर शरण जी भी नहीं! यह कविता है पं0 नरेंद्र शर्मा की और उसी दौर की है।

"जागरूक प्रहरी धरती का, जनता का अभिभावक!
लौह और हिम का तन धरकर आया था ज्यों पावक!
हिटलर से हिरनाकुस मारे बन-बनकर नर-नाहर!
खेल सके फिर धरती की फुलवारी में मनु-शावक!
निर्णय अभयस्वरूप कि जिससे जन का भय भगता था!
गहन मौन जिसका रिपु को हुंकार सदृश लगता था!
नपी-तुली संयत वाणी में उत्स नये जन-मन का,
उसके दो नयनों में शतमुख स्वप्न-दीप जगता था!
उसकी उँगली के इंगित पर स्वयम् काल भी नाचा,
रक्त-मांस का मनुज बना दुर्दांत क्रांति का ढाँचा!
अंतर में करुणा, कराल कर स्वार्थों के संहारक
कोमल मोम लिये सीने में वह इस्पाती साँचा!
पूँजीवादी चक्रव्यूह का द्वार तोड़ने वाला,
अधोगामिनी सरिताओं की धार मोड़ने वाला,
सदियों के भूखे बंजर को दिया बीज का दाना,
नित्य नये नौ तोड़ जोतकर भूमि गोड़ने वाला!
निश्चित नियत योजनाओं से नियति प्रकृति को कीला
क्रांति विपथगा उसके बल-कौशल से बनी सुशीला!"

जो बड़े होते हैं, उनके अंतर्विरोध भी बड़े होते हैं। उनकी ग़ल्तियाँ भी बड़ी होती हैं। उनके ऋण-धन से विश्व प्रभावित होता है। इसीलिए, विरोधी शक्तियाँ उनके विरुद्ध पूरी बेचैनी से प्रचार और प्रहार करती हैं। स्तालिन की सही छवि को अंतर्विरोधों के रूप में ही देखना चाहिए तथा उनका मूल्यांकन विश्व समाजवादी आंदोलन और उसके विश्व-विरोध के बीच निर्धारित करना चाहिए—ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

विकल्प और संकल्प

बहुत ही शानदार अध्याय है—'सलाम लेनिनग्राद'! लेखक एक ओर जहाँ यह कहते हैं कि "रूस पर हिटलर के आकस्मिक और भयानक रूप से आक्रामक हमले के बाद यह स्पष्ट हो गया कि रूस की भूमि पर विशेषकर लेनिनग्राद और स्तालिनग्राद अथवा रूसवासियों या सोवियत संघ के देशों की ही नहीं, समस्त सभ्य, शांतिप्रिय और युद्धविरोधी, बर्बरताविरोधी मानवता की है।" (वही, पृ. 151) वहीं दूसरी ओर वे यह कहते हैं कि "यह विवेचन अधूरा एकांगी और पूर्वाग्रहग्रस्त माना जाएगा, यदि स्वयं रूस के अंदर लेनिनग्राद की शहादत से उपजी बुनियादी मूल्यों की रक्षा में सकारात्मक सहयोग की खोज को प्राथमिकता देने के आग्रह के भयावह तिरस्कार को भी न रेखांकित किया गया।" (वही, पृ. 156) उनका यह भी मत है कि "सच तो यह है कि रूसी समाजवाद के सत्तर वर्षों का जितना विश्वसनीय, निष्पक्ष,वस्तुनिष्ठ विवेचन और पुनर्मूल्यांकन इन थोड़े से पश्चिमी विचारकों और अन्वेषकों ने तैयार किया है, उतना समाजवादी बुद्धिजीवियों ने नहीं।" (वही, पृ. 165) इससे स्वाभाविक निष्कर्ष यह निकलता है कि "उदारवाद और समाजवाद/मार्क्सवाद दोनों आज वैचारिक जड़ता और अवरुद्धता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ग्रस्त हैं, इसी कारण वे किसी भी जीवंत व्यावहारिक कार्यक्रम की पहल करने में भी अक्षम हैं।''(वही, पृ. 167) अर्थात् पीटने वाला पश्चिम और पिटने वाले समाजवादी देश एक बराबर हो जाते हैं। फिर जो लोग फ़ासिज़्म और सोशलिज़्म को, हिटलर और स्टालिन को एक ही धरातल पर रखते हैं, वे भी सही होंगे? तानाशाही चाहे फ़ौजी और फ़ासिस्ट हो या सर्वहारा वर्ग की, बराबरी पर छूटेगी। इसी बराबरी पर पहुँचाने के लिए पश्चिम ने, अमरीकी साम्राज्यवाद ने पिछले 50 वर्षों से अनथक मेहनत की थी। आज वह सफल हुआ है! और इसकी स्वाभाविक परिणति रही है-''गोर्बाचोब की नयी दिशा : आख़िरी उम्मीद!'' (वही, पृ. 194)

मैं यहाँ पाठकों से क्षमा माँगूगा, क्योंकि मुझे 1990 में ही गोर्बाचेव से कोई उम्मीद नहीं रही थी और उसे मैंने 'पहल' पुस्तिका के माध्यम से ज़ाहिर कर दिया था—'सांस्कृतिक संकट गहरा रहा है।' और, इसी संकट की व्याख्या के रूप में तभी 'पहल' का 'इतिहास अंक' भी तैयार किया था। मैं यह देखकर चकित और भ्रमित था कि गोर्बाचेव और येल्तसिन महोदय कैसे इस लौह अनुशासन और आतंक के पर्यायवाची सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी में 5 साल के अंदर ही पोलित ब्यूरो होते हुए शिखर पर जा पहुंचे? जिस तरह ख्रुश्चेव के वास्तविक स्वरूप को माओ-त्से-तुंग और अनवर हौक्सा ने स्पष्ट किया था, उसी तरह श्री गोर्बाचेव और येल्तसिन का विवेचन भूमिगत रूसी बोल्शेविक पार्टी ने 'प्रोग्रामेटिक प्रोक्लेमेशन ऑफ़ दि सोवियत रेवोल्यूशनरी कम्युनिस्ट्स (बोल्शेविक्स)' में किया है। आशा करता हूँ, जोशी जी उसे भी देखेंगे। साथ ही वर्ग-संघर्ष के अर्थशास्त्र के लिए श्री हरपाल बराड और श्री केशवप्रसाद वर्मा के कार्य को भी। इसकी जगह मैं जोशी जी की इस संदर्भ में बहुत-बहुत प्रशंसा करना चाहूँगा कि उन्होंने भारतीय आधुनिक नवजागरण के अग्रदूत माने जाने लायक, लेकिन उपेक्षित डॉ0 ज़ाकिर हुसैन पर पूरा अंतिम अध्याय लिखा—'पूँजीवाद : विकल्प के विचारक ज़ाकिर हुसैन'। शिक्षा और अर्थशास्त्र से लेकर पर्यावरण तक, यानी मुग़ल गार्डन की परिकल्पना तक जिनकी अवधारणाएँ बहुमूल्य हैं। यहाँ एक समीक्षा में, जो पहले ही इतनी बड़ी हो चुकी है, इस अध्याय पर विस्तार से कहने की गुंजाइश नहीं है, लेकिन यह जोशी जी की दृष्टि, अध्ययन-क्षेत्र, संभावना और संकल्प को मूल्यवान प्रस्ताव के रूप में है। ठीक-ठीक व्यक्त करने वाला अध्याय है।

यह पुस्तक विस्तृत क्षेत्रों में गहन बहस के लिए आमंत्रित करती है। निर्भीक और बहुत ही ईमानदारी, मेहनत, सत्यप्रियता, साहस और स्वप्न-चर्चा के रूप में उन्होंने एक वैज्ञानिक बुद्धिजीवी का रोल-मॉडल इसके माध्यम से पेश किया है। एक विचारोत्तोजक विचारधारात्मक आह्वान बन सकी है यह पुस्तक, ऐसा मेरा मत है। कहा जा सकता है कि इतिहास, राजनीति या अर्थशास्त्र-संबंधी सभी प्रश्नों का एक मिला-जुला रूपाकार यहाँ उपलब्ध है, सामान्यतः पश्चिम के, विशेषतः भारत के अनुभवों के प्रकाश में संवेदना और ज्ञान की एकतानता में संभव विकल्प सुझाये गये हैं। लेकिन, जिस तरह हिन्दी के उस चिंतन की उपेक्षा की गयी है, जो इन्हीं प्रश्नों से टकराता रहा है, उसी तरह भारतीय वामपंथी पार्टियों के नेताओं और पार्टियों के मूल्यांकन को यहाँ कोई तरजीह नहीं दी गयी है। समाजवाद का निर्माण केवल मार्क्सवादी और मार्क्सवाद-प्रेमी बुद्धिजीवियों का ही वैचारिक मसला नहीं है, वर्गीय शक्तियों का और उनकी पक्षधर, सिद्धांतकार पार्टियों का भी मसला है, उन्हें क्यों जोशी जी ने बहस से बाहर रखा है, वे ही बातएँगे। 81 देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों ने पहले स्तालिन को सही पाया था, फिर एकदम ख्रुश्चेव को, फिर गोर्बाचेव और येल्तसिन को यह क्या कम बड़ा मसला है? अभी गत दिनों 45 देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों ने आत्म-मंथन के बाद फिर से समाजवाद में संकल्प व्यक्त किया है। इनके संकल्प के साथ ही जिस देश की शत-प्रतिशत जनता साक्षर, सुशिक्षित और सांस्कृतिक रूप से उन्नत थी, क्या वह एकदम अंधी और मूर्ख हो गयी है, जो साम्राज्यवाद और समाजवाद में फ़र्क़ नहीं कर पा रही है? सच है, विकल्प हम सबके संकल्पों के बिना बेकार है। ज़ब मार्क्स-एंगेल्स ने राह दिखायी थी, तब तो कहीं क्रांति भी नहीं हुई थी, तब भी लोग आकर्षित हुए थे। अब तो इतिहास के कई अनुभव हमारे साथ हैं। क्या ये सब बेकार चले जाएँगे? मैं समझता हूँ कि अनुभवों की यादों से ही अगली यात्रा संपन्न होगी। अवश्य ही हमें जोशी जी के अध्ययनों से जोड़कर कुछ और चीज़ों को भी देखना चाहिए। यानी, 'ऑन सोशलिज्म', जिस ग्रंथ को इतिहासकार इरफ़ान हबीब ने तैयार किया है, जिसमें समाजवादी चिंतनधारा को 'मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-स्तालिन और माओ ज़े दोंग' क्रम में प्रस्तुत किया है।

जोशी जी ने स्तालिन के आरंभिक जीवन में धर्म-दीक्षित मानस के कारण उनकी कट्टरता में यूरोपीय परंपरा की लेनिनवादी मूल्य-चेतना नहीं पायी है। यह बात बाकायदा अलेक्जेंडर याकोवलेव ने भी कही थी। वे पोलित ब्यूरो मेंबर थे सीपीएसयू के। 28वीं कांग्रेस में स्तालिन को थ्योराइज़ कर रहे थे। ''आई कंसीडर स्टालिनिज़्म टू बी ए रूडीमेंट एन्ड एन ऑफ़स्प्रिंग ऑफ़ ए पिक्यूलिअर सॉर्ट ऑफ़ रिलीजियस कांशसनेस।'' वे यह सिद्ध कर रहे थे कि गोर्बाचेव ही सच्चे यूरोपिअन परंपरा के लेनिन हैं।

भारतीय अध्ययन केंद्रों में बनारस-आज़मगढ वाम ग्रुप के 1991 के प्रकाशन. इस मामले में बहुत गंभीर थे। यद्यपि वे हिन्दी-माध्यम के थे, लेकिन उन्होंने 'क्षुद्र' और 'द्वंद्व' नाम से जो प्रकाशन किये, वे पश्चिमी चिंतन और अंग्रेज़ी के दबदबे से उबर जाएँ, तो बेहद महत्त्वपूर्ण थे जैसे—'श्री गोर्बाचेव की तख़्तापलटी व बहाली : कारण व कारक महत्त्व और सबक।'

आर्थिक अध्ययनों में ऐसे भी अध्ययन हैं, जिन्होंने स्तॉलिन युग को सुधारवादी पाया था। द्रष्टव्य—'इज़ देयर सोशलिज़्म इन यू एस एस आर', जिसमें स्तालिन के तहत समाजवादी नहीं 'स्टेट मोनोपोली कैपिटलिज़्म' माना गया था। यह प्रकाशन 1976 में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने आया था।

स्वयं जयप्रकाश नारायण ने 'व्हाई सोशलिज़्म' में 1936 में जो कुछ कहा था, 1954 में स्तालिन के संदर्भ में वापस ले लिया था। हालाँकि कॉ0 अजय घोष ने उनका उत्तर दे दिया था, लेकिन जो आरोप उन्होंने रूसी और भारतीय कम्युनिस्टों पर लगाये, वे पश्चिम के ही आक्रमण थे, जो गोर्बाचेव युग में अधिक तीव्र ढंग से दोहराये गये हैं।

मैं समझता हूँ कि जोशी जी स्वयं भी इस दिशा में हर समाजवाद-प्रेमी को प्रेरणा और वैचारिक उत्तेजना प्रदान कर रहे हैं। हमें उनसे सीखते हए बहस को इस दिशा में और आगे बढ़ाना चाहिए। इतिहास में स्वप्न और यथार्थ एक दूसरे पर हावी होते हुए ही प्रगति संज्ञा को सार्थक करते हैं।

प्रोफ़ेसर एवं पूर्व अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, अ0मु0वि0
अलीगढ।

चर्चित पुस्तक	: यादों से रची यात्रा : विकल्प की तलाश
लेखक	: पूरनचंद्र जोशी
प्रकाशक	: राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य	: 325 रुपये

लघु कथा

फ्रस्ट्रेशन

अनुपमा

एक मोहल्ले की कुछ लड़कियाँ कॉलेज से लौट रही थीं। उन्होंने जींस, टी-शर्ट, स्कर्ट आदि पहने हुए थे। कंधे पर कटे हुए खुले बाल, हाथों में फ़ैंसी पर्स, पैरों में हाई–हील, कुल मिलाकर वे आज के ज़माने की लड़कियाँ थीं, ज़िंदादिल–अपनी ज़िंदगी को एन्जॉय करने वाली। उसी मोहल्ले की रहने वाली एक बुजुर्ग महिला बाहर चारपाई पर एक छड़ी लेकर बैठी थी। उन लड़कियों को देखते ही उसकी त्यौरियाँ चढ़ गयी। अपनी लाठी को ज़ोर से ज़मीन पर खड़काकर बोली, "ऐ वेखो कुड़ियाँ नूँ, कोई शर्म, हया नी रह गई ऐनां विच, चल पैंदिया नें पैंटा कस के। साड़े जमाने विच ते कुडियाँ बार वी नई-सी निकल दियाँ, जे निक्कलदियाँ वी-सी, वे चुन्नी नाल मत्था ढक के... नी कोई रोको ऐनां नूँ, गंद फैला रखया ऐ ऐना नें।"

उस बुढ़िया की ये बातें सुनकर एक लड़की ने दूसरी लड़की से कहा–"पता नहीं ये बुढ़िया हमें रोज़ क्यों कोसती रहती है। क्या बिगाड़ा है हमने इसका?"

"कुछ नहीं बिगाड़ा हमने! यह हमारी तरह कॉलेज नहीं जा पायी, स्वतंत्र नहीं घूम सकी कभी हमारी तरह। सिंपल! शी इज ए फ्रस्ट्रेटेड पर्सनैलिटी। इसलिए, ये सारी भड़ास हम पर निकाल रही है। तुम टेंशन मत लो।" दूसरी लड़की ने बड़ी सहजता से उसके व्यवहार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर दिया। सभी खिलखिलाकर हँस पड़ीं। उधर बुढ़िया अभी भी लाठी खड़का कर बड़बड़ाती जा रही थी।

मोल-भाव

"जी, बस हमें तो ऐसी लड़की चाहिए, जो देखने में ख़ूबसूरत हो... पढ़ी-लिखी हो, घर का सारा काम जानती हो, सरकारी नौकरी करती हो," एक सज्जन अपने इंजीनियर पुत्र के लिए अपनी भावी वधू में अपेक्षित गुणों का बखान कर रहे थे।

"हमारी लड़की सरकारी स्कूल में टीचर है और वह घर के सारे काम बख़ूबी कर लेती है," लड़की के पिता ने कहा!

"और हाँ, लड़की को चश्मा नहीं लगा होना चाहिए... क्योंकि मेरे बेटे को चश्मे से सख़्त नफ़रत है... लड़की का क़द भी पाँच फुट चार इंच तो होना ही चाहिए।"

"और कुछ?"

"हमारा बेटा इंजीनियर है, उसका उठना-बैठना बड़े-बड़े लोगों के बीच है, इसलिए शादी में ख़ातिरदारी भी अच्छी होनी चाहिए... किसी अच्छे फ़ॉर्म हाउस में या फिर किसी बैंकेट हॉल में... और दहेज़ में अच्छी गाड़ी भी हो तो..."

लड़की के पिता ने खड़े होकर कहा, "जी मुझे लड़की का रिश्ता करना है, कोई सब्ज़ी-तरकारी नहीं बेचनी।"

484, आज़ाद नगर, निरंकारी भवन के पीछे,
करनाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग से पहचानी जा सकने वाली एक आवाज़

राजेश जोशी

उर्दू में आधुनिकता के आंदोलन की एक बड़ी बहस यह थी कि ग़ज़ल के फार्म में जो भी सर्वश्रेष्ठ हो सकता था उसे उस्ताद शायर पहले ही कर चुके हैं। ग़ज़ल का फार्म पूरी तरह खर्च किया जा चुका है और अब उसमें नया कुछ भी संभव नहीं है। जो कुछ भी नया होना है वह नज़्म में ही संभव होगा। सत्तर के दशक में, लेकिन, लगभग सभी भारतीय भाषाओं में एकाएक ग़ज़ल के फार्म की इतनी लोकप्रियता बढ़ी कि हर भाषा में ग़ज़ल लिखी जाने लगी। जो कवि पहले गीत लिख रहे थे, वे अचानक ग़ज़ल की तरफ़ आकृष्ट हो गये। हिन्दी में दुष्यंत कुमार संभवतः वह पहले कवि थे, जिन्हें ग़ज़ल के लिए शोहरत और प्रतिष्ठा मिली। यह लगभग सत्तर के दशक के शुरूआती वर्षों में हुआ। तिहत्तर-चौहत्तर में जब जयप्रकाश नारायण का आंदोलन अपने चरम पर था, हिन्दी ग़ज़ल ने लोकप्रियता हासिल की। हिन्दी ग़ज़ल का मिज़ाज यहीं से राजनीतिक हो गया और उसने प्रतिरोध की भाषा में बोलना भी सीख लिया। कहना न होगा कि उसने हिन्दी की आधुनिक कविता के कुछ अंदाज़ भी सीखे और लोकप्रियता और समकालीन हिन्दी कविता के बीच के अंतराल को भरने की छोटी-मोटी कोशिश भी उसने की।

सत्तर के दशक में अचानक ही अनेक भारतीय भाषाओं में ग़ज़ल लिखने का जो चलन शुरू हुआ और ग़ज़ल का फार्म उर्दू से बाहर अन्य भारतीय भाषाओं में लोकप्रिय हुआ, इसके समाजार्थिक और सांस्कृतिक कारणों की पड़ताल की जानी चाहिए। जहीर कुरेशी दुष्यंत कुमार के बाद ग़ज़ल के फार्म में लिखने वाले कवियों की पहली पाँत के कवि हैं। वह गीत और नवगीत से ग़ज़ल की तरफ़ आये हैं। मुझे यह भी लगता है कि भारतीय भाषाओं में लिखी जा रही ग़ज़ल पर अलग से विचार किया जाना चाहिए। हर भाषा में जाते हुए ग़ज़ल ने उस भाषा के काव्य-व्यवहार को भी अपने में विन्यस्त किया होगा। इस तरह कम से कम वह ग़ज़ल ठीक उर्दू की ग़ज़ल जैसी ग़ज़ल तो नहीं ही होगी। हम उर्दू ग़ज़ल की ग़ज़लियत की अपेक्षा हिन्दी या पंजाबी या गुजराती ग़ज़ल से नहीं कर सकते। हर भाषा में ग़ज़ल का फार्म किस तरह बदला है, इस पर भी गंभीरता से विचार किया जाना चाहिये और शायद उसे उर्दू ग़ज़ल के मीज़ान पर कस कर देखने का चलन हमें छोड़ देना चाहिये।

जहीर कुरेशी के नये ग़ज़ल संग्रह 'पेड़ तन कर भी नहीं टूटा' की पहली ग़ज़ल का पहला शेर है :

जो भी कहता था, वह अनकहा रह गया/ कुछ पुराना रहा, कुछ नया रह गया।

जहीर की ग़ज़लों के मिज़ाज का यह शायद केन्द्रीय शेर है। कहने में अनकहना छूट जाना और जो कहा जा रहा है उसमें पुराने से एक रिश्ता बनाते हुए नये की तरफ़ जाना। यह पुराना अपना अतीत भी है, अपने समाज का अतीत भी। उसमें परंपराओं की अनुगूंज भी है और दिनों-दिन क्षरित होते जीवन मूल्यों की स्मृति भी। जहीर ऊपर से दिख रही सच्चाई के भीतर झाँकने और उसे कहने की कोशिश करते हैं :

आग में जल गया रस्सियों का बदन/ फिर भी, बल रस्सियों में बचा रह गया।

घाव ऊपर से लगने लगा था भरा/घाव अंदर ही अंदर हरा रह गया।

इन दोनों ही शेरों में लोक में प्रचलित कहावतों की स्मृतियों की ध्वनि सुनी जा सकती है। यही नहीं 'रस्सी जल गई, बल नहीं गया' को जहीर एकदम नये अर्थ दे रहे हैं। एक कवि की यह भी खूबी होती है कि वह अकर्मक क्रियाओं को सकर्मक में बदल देता है। वह प्रचलित अर्थ को उलट देता है। जहीर की कविता सिर्फ़ लोक में प्रचलित कहावतों की ही स्मृति को नहीं जगाती, वह अपनी काव्य परंपरा के भूले-बिसरे से भी एक पुल बनाती है :

वो हिम्मत करके पहले, अपने अंदर से निकलते हैं,
बहुत कम लोग घर को फूँक कर, घर से निकलते हैं।

जो उड़ना चाहते हैं, उड़ नहीं पाते,
वो, जी भर कर, पतंगों को उड़ाते हैं।

जहीर के इस संग्रह में 'उड़ना' शब्द बार-बार अलग-अलग तरह से और अलग-अलग भंगिमाओं के साथ प्रस्तुत हुआ है। यह शेर एक स्तर पर मनोवैज्ञानिक शेर भी है। मनुष्य अपने उड़ने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा को तरह-तरह से अभिव्यक्त करता है। पतंग उड़ाना या कनकौवा उड़ाना, कागज़ के हवाई जहाज बना कर उड़ाना आदि उसकी उड़ने की इच्छा की ही अभिव्यक्ति है। उड़ने की क्रिया को लेकर लिखे कुछ शेर और देखे जा सकते हैं, मसलन :

पतंगे कब लगीं आज़ाद पंछी/ पतंगों की तरह उड़ना अलग है।
महक को ले उड़े पंछी हवा के/सशंकित रातरानी हो रही है।

जो छोड़ देते हैं अभ्यास उड़ते रहने का
फिर उनके पंख भी बेजान होते जाते हैं।

एक थोड़े अलग अंदाज़ में यहाँ भी उड़ने का ही भाव है-

क़ैद में रह कर, सफर पर भी निकलना है हमें,
कल्पनाओं से भी पर लेने की आदत बन गई।

जहीर कुरेशी अपने समय की अनेक गंभीर और बहस तलब समस्याओं को बहुत हुनर के साथ शेर में लाते हैं। इस तरह, जहीर शेर के छंद के साथ चाहे बहुत छेड़छाड़ न करें, लेकिन, ग़ज़ल के पारंपरिक मिजाज से वे पर्याप्त छेड़छाड़ करते हैं। बल्कि यह कहना सही होगा कि शेर के ऊपरी ढाँचे को तोड़े बिना भी वह उसकी आंतरिक स्पेस को और अधिक बढ़ा देते हैं। हमारे समय में अस्मिता के अनेक आंदोलन उभरे हैं। हमारे समय में अनेक जनजातियाँ लुप्त होती जा रही हैं। कई भाषाएँ हर दिन ख़त्म हो रही हैं। जहीर का एक शेर है :

इधर कुछ लुप्त सी जनजातियों को,
निजी पहचान का संकट रहा है।

इसी तरह, हमारे समय की एक और मार्मिक समस्या को जहीर दो पंक्तियों में बाँधते हैं :

हमारे बच्चे अगर पूछते नहीं हमको,
हम, इस तरह भी, निःसंतान होते जाते हैं।

जहीर कुरेशी का यह संग्रह हमारे समय से कविता के रू-ब-रू होने का सबूत है। उनकी ग़ज़ल में हिन्दी की अपनी बनक है। हो सकता है, वह हिन्दी के अपने छंद या अपने गीत से आयी हो। लेकिन, यह कहना शायद ग़लत नहीं होगा कि उसका मिज़ाज समकालीन कविता के पास है और उसकी लय कहीं हमारे गीतों की लय के करीब, हालाँकि उसमें गीतों वाली मासूमियत और कोमलता कम हुई है। उसमें फाल्गुनी दोहे लिख कर अपने समय से आँख चुराने की चतुराई नहीं है। वह सिर्फ जन-रिझाऊ कविता नहीं है। वह सिर्फ़ 'वाह-वाह' की चाहत में दूर की कौड़ी खोजने और उक्ति-चातुर्य के कमाल दिखाले वाली कविता भी नहीं है। उसमें हमारे बहुत नाजुक भावों के लिये भी जगह है और अपने समय में साफ़-साफ़ बोलने का साहस भी। जहीर का एक शेर है जो हमारे समय के प्रति हमें चेताने का काम करता है :

मौन रहने को स्वीकार मानेंगे लोग
खुल के प्रतिकार का, बस, यही वक्त है!

वक़्त की इस पहचान और प्रतिकार के इस हौसले ने ही जहीर कुरेशी की ग़ज़ल को ऐसा रचा है, जैसी वह है, अलग से पहचानी जा सकने वाली एक आवाज़।

पुस्तक का नाम	: पेड़ तन कर भी नहीं टूटा
लेखक	: जहीर कुरेशी
प्रकाशन	: अयन प्रकाशन, 1/20 मेहरौली, नयी दिल्ली-110030
मूल्य	: 150 रुपये

11, निराला नगर, दुष्यंत कुमार त्यागी मार्ग, भदभदा रोड, भोपाल-462003

बेमंज़िल की मुसलसल तलाश

राजीवलोचन नाथ शुक्ल

निदा फ़ाज़ली आधुनिक उर्दू शायरी के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी चुनिंदा रचनाएँ, 'दुनिया जिसे कहते हैं' शीर्षक से संकलन के रूप में प्रकाशित हुई है। संकलन में निदा फ़ाजली की नज़्में, ग़ज़लें और दोहे तो हैं ही, साथ ही मुक्त छंद में कुछ फुटकर रचनाएँ भी हैं।

उक्ति-वैचित्र्य उर्दू साहित्य का वैशिष्ट्य है, विधा चाहे कोई भी हो। उर्दू शायरी की जिस समृद्ध परंपरा का आगाज़ ग़ालिब ने किया था, वह अक्षुण्ण बनी हुई है। 'आधुनिकता-बोध' अपने समय को जानने-समझने की वह दृष्टि है, जो प्रगति के मार्ग को दिशा देती है। इस अर्थ में ग़ालिब उर्दू-शायरी के पहले आधुनिकता-बोध-संपन्न रचनाकार थे। ग़ालिब ही थे, जिन्होंने ग़ज़ल को आध्यात्मिक एवं दार्शनिक भाव-भूमि प्रदान की। आशिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और माशूक़ के संवाद-माध्यम से अपने समय

शायरी का एक लंबा सफ़र तय करने के बाद 'अंजुमने पंजाब' ने 'नज़्म' विधा को पल्लवित किया। 1874 ई0 से उर्दू में नयी कविता प्रारंभ हो चुकी थी। हाली, इस्माईल, इक़बाल, जोश जैसे शायरों ने उर्दू शायरी की 'नज़्म' और 'ग़ज़ल' विधाओं को दार्शनिक, राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और प्रकृति-चित्रण को स्थान दिया।

ब्रिटिश राजशाही के विरुद्ध उर्दू शायरों ने कविता को जन-जागरण का माध्यम बनाया और देश-प्रेम की अलख जगायी। 1935 में प्रगतिशील आंदोलन ने उर्दू के रचनाकारों को सर्वाधिक प्रभावित किया। प्रेमचंद की अध्यक्षता में हुए प्र.ले.स. के सम्मेलन में हिन्दी के एकमात्र रचनाकार जैनेन्द्र ही थे। इसके अनंतर प्रगतिशीलता के समानांतर उर्दू लेखकों ने आधुनिकता को वरेण्य समझा। वे प्रगतिशीलों के मुक़ाबले स्वयं को आधुनिक-भावबोध का रचनाकार मानने में सहजता अनुभव करने लगे।

निदा फ़ाजली आधुनिक भाव-बोध के संवेदनशील रचनाकार हैं, जिनकी शायरी में विविधवर्णी रचनाएँ हैं। जीवन के प्रति अटूट निष्ठा, रागात्मकता, भविष्य के प्रति सकारात्मक सोच और आश्वस्ति उनकी रचनाओं का मूल उत्स है।

निदा फ़ाज़ली, मनुष्य को मनुष्य ही बने रहने देने और उसे देवता न बनाने की हिमायत करते हैं :

देवता है कोई हम में/न फ़रिश्ता कोई
छू के मत देखना/ हर रंग बिखर जाता है/
मिलने-जुलने का सलीका है ज़रूरी वरना/आदमी चंद मुलाकातों में मर जाता है। (सलीका)

परोक्ष सत्ता के प्रति अनावश्यक आसक्ति कवि के लिए कोई अर्थ नहीं रखती, यदि मनुष्य जागतिक संबंधों के प्रति संवेदनशील है। 'हैरत है' कविता यही संदेश देती है :

घास पर खेलता है इक बच्चा/ पास माँ बैठी मुस्कुराती है/
मुझको हैरत है जाने क्यों दुनिया/क़ाबः-ओ-सोमनाथ जाती है।

या

घर से मस्जिद है बहुत दूर चलो यूँ कर लें/ किसी रोते हुए बच्चे को हँसाया जाए।

मनुष्य के पतन का कारण उसका सोच, सफलता के शिखर पर विवेकहीन आचरण और दंभ है। ऐसे ही क्षणों की ओर संकेत करता, कवि मनुष्य की नियति व्यक्त करता है :

तुमने/बेकार ही मौसम को सताया/
फूल जब खिलके बहक जाता है/खुद ब खुद शाख से गिर जाता है।

जीवन के भौतिक संसाधनों के प्रति व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व के क्षरण का इस क़दर बंदोबस्त करके उन्हीं में क़ैद हो जाता है कि वह उसी में जीवन की सार्थकता-सफलता समझकर अपना अस्तित्व खो देता है।

देखते-देखते/ टी.वी./ फ्रिज़/सोफ़ा बनके
आदमी खो गया इज़्ज़त का तमाशा बनके

निदा फ़ाज़ली अपने समय और इतिहास, अपने राजनीतिक-सामाजिक परिवेश को ख़ूब जानते-पहचानते हैं:

इस युग का इतिहास यही है/अपनी-अपनी भेड़ें चुनकर/
जो भी चरवाहा होता है,
उसके सर पर नीलगगन की
रहमत का साया होता है।

मनुष्य-जीवन उपलब्धियों के लिए निरंतर सचेष्ट रहता है। उनके हासिल हो जाने पर व्यर्थता-बोध जागता है और अप्राप्य के प्रति लालसा बनी रहती है। उपलब्धियों के इस आकर्षण-विकर्षण को कवि ने अत्यंत सहज ढंग से व्यक्त किया है :

दुनिया जिसे कहते हैं, बच्चे का खिलौना है।
मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है।

मनुष्य का स्वभाव/व्यक्तित्त्व उसके परिवेश परिस्थितियों की देन है, ज़िंदगी का सफ़र सरल-सीधी राह नहीं। कवि इससे पूरी तरह बाख़बर है :

मेरी गुरबत को शराफ़त का अभी नाम न दे।
वक़्त बदला तो तिरी राय बदल जाएगी।

0 0 0

मन बैरागी, तन अनुरागी, क़दम-क़दम दुश्वारी है।
जीवन जीना सहल न जानो, बहुत बड़ी फ़नकारी है।

निदा फ़ाज़ली इन्सानी रिश्तों के क़ायल हैं। नक़ाब-मुखौटों को बड़ी बेदर्दी से नोंच फेंकते हैं। वे इन्सान को फ़रिश्ता समझने की भूल नहीं करते :

जिससे भी मिलें झुकके मिलें, हँस के हों रुख़्सत।
अख़लाक भी इस शहर में पेशा नज़र आए।

0 0 0

भूल थी अपनी, फ़रिश्ता आदमी में ढूँढना।
आदमी में आदमीयत है, चलो यूँ ही सही।

निदा फ़ाज़ली के कई शेर कबीर के फक्कड़पन की याद करा देते हैं। मनुष्यता से बड़ा कोई धर्म नहीं उनके नज़दीकः

अल्लाह अरब में, फ़ारसी में वो खुदा
मैंने जो माँ का नाम लिया, फिर किसी को क्या।

0 0 0

उसको पाया तो नहीं, ढूँढा किये
हमसे जितना हो सका वो कर चले।

गिरजा में, मंदिरों में, अज़ानों में बँट गया
होते ही सुबह आदमी खानों में बँट गया।

कोई अदृश्य सत्ता व्यक्ति के भाग्य की निर्मात्री नहीं, अपितु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका पुरुषार्थ, प्रयत्न ही उसके जीवन का निर्माण करता है। कवि मनुष्य को नजूमी से दूर रहने का मशविरा देता है; कर्म के प्रति आस्था विश्वास ही व्यक्ति को सफलता देते हैं :

आसमाँ देखते रहते हैं, नजूमी यूँ ही
अपने ही हाथ में होता है सितारा सबका।
एक-सा रहता नहीं वक़्त हमेशा सबका
कल हवेली थी जहाँ, आज है रस्ता सबका।

निदा फ़ाज़ली के इस संग्रह में दोहे भी हैं। लेकिन, उन्होंने इन दोहों को उर्दू-दोहे का नाम नहीं दिया। निदा फ़ाज़ली हिन्दुस्तानियत के क़ायल हैं, उनकी भाषा और कथ्य में प्रेमचंद की सादगी और गांभीर्य है, तो विचारों में कबीर जैसा फक्कड़पन। अपने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिवेश पर उनकी पैनी नज़र है। विवेक-दृष्टि-संपन्न कवि ग्राह्य परंपराओं को आत्मसात् करते हुए आधुनिक भावभूमि को ग्रहण करता है :

मज़हब को लिखने लगे रस्तों के कंगाल,
विष्नू के अवतार ने, छोड़ दिया नैपाल।

0 0 0

किस्मत-विस्मत कुछ नहीं, जग का एक विधान।
जगते का संसार है, सोते का शमशान।

हिन्दू का हो दान या मुस्लिम की ख़ैरात
गेहूँ, चावल, दाल का, क्या मज़हब क्या जात।

कवि ने दोहों के माध्यम से धर्म, साहित्य, संस्कृति और देश के सवालों पर अपने दौर की चिंताएँ व्यक्त की हैं। वह उन सवालों से जूझता है, जवाब देता है और जवाब चाहता भी है:

नक़्शा लेकर हाथ में, बच्चा है हैरान
कैसे दीमक खा गयी, उसका हिन्दुस्तान।।

0 0 0

चाहे गीता बाँचिए, या पढ़िए कुरआन।
मेरा तेरा प्यार ही हर पुस्तक का ज्ञान।।

तोता, मैना, जलपरी, लाख मचाएँ शोर।
जिसके पर पैसों भरे, नाम उसी का मोर।।

निदा फ़ाज़ली का यह काव्य-संग्रह उन पाठकों को संतोष देगा, जिन्हें अच्छी कविता/ शायरी का शौक है।

पुस्तक का नाम	: दुनिया जिसे कहते हैं
लेखक	: निदा फ़ाज़ली
प्रकाशक	: संवाद प्रकाशन, मेरठ
वर्ष	: 2009
मूल्य	: 125 रुपये (पेपर बैक)

रीडर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी, अलीगढ़

सामाजिक सरोकार की कविताएँ : बोधिपथ

राजेन्द्र परदेसी

बोधिपथ चर्चित कवि डा0 सुरेश उजाला की कविताओं का संकलन है। कविताएँ जीवन के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करती हुई युगीन विसंगतियों पर सोचने को बाध्य करती हैं। ऐसा कवि के जीवनानुभव की व्यापकता के कारण संभव हुआ क्योंकि कलाकार के जीवन से कला का घनिष्ठ संबंध है, कलाकृति में कलाकार का जीवन और व्यक्तित्व अलक्षित रूप से आ जाता है। काव्य रचना के क्षणों में, और हो सकता है कि उसके बाद भी कलाकार को इसका पता न चले, पर कला के पारखी को साफ़-साफ़ इसका पता चल जाता है। काव्य में जो अप्रस्तुत विधान होते हैं, वे कवि के व्यक्तिगत अनुभव से ही गृहीत होते हैं। कल्पना के आधार पर किये गये अप्रस्तुत विधान के मूल में भी व्यक्तिगत अनुभव क्रियाशील रहता है।

डा0 उजाला की कविताओं के अधिकांश बिंब प्रतीक रूपक आदि उनके लौकिक जीवन से ही लिये गये हैं। उनकी एक श्रेष्ठ कविता 'बोधिपथ' भगवान बुद्ध के जीवन पर ही आधृत है-जैसा तुम चाहते थे/वैसा ही हुआ/ हे! शाक्य संघ-/मैं त्याग चुका हूँ/अपना सर्वस्व /सिवा तन के/ और/ बन चुका हूँ धर्म प्रवर्तक/ विश्व के मानचित्र पर/ मानव कल्याणार्थ। डा0 सुरेश उजाला कोरी कलात्मक चमक-दमक की अपेक्षा सरोकारों के कवि हैं। समाज की विषमताएँ, कड़वाहटें समाज का नग्न यथार्थ, अमानवीयता की त्रासदियाँ और दुःखद स्मृतियाँ उनके काव्य में ही नहीं मन के पोर-पोर में झलकती हैं। उनकी कविताओं में साफगोई है, बनावटीपन नहीं, कोरा किताबीपन नहीं, वे बाज़ार में खड़े होकर बाजार पर हमला करने वाले कद्दावर कवि हैं। दृष्टव्य है—जानता हूँ/ जीवन के/ जुड़े प्रत्येक समीकरण को/आदमी के घन और घनत्व को/ अर्थ के अनर्थ को/ कैसे चढ़ता है/चक्रवृद्धि ब्याज/ कैसे हो जाते हैं/ पांच-पचास/ और / कैसे खाई जाती है/ खेतों के संग जवानी।

डा0 सुरेश उजाला कविता को बेलाग, सपाट और सीधे एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हथियार के रूप में प्रयुक्त करने वाले कवि के रूप में नज़र आते हैं–मात्र शब्द नहीं/ शब्द बुलट हैं/ गालियाँ नहीं-गोलियाँ हैं/ जो करती हैं/ वार-प्रहार/ तनी प्रत्यंचा से निकले/ बाण की तरह/ मन को भेदकर/ जो दागी जाती रही हैं-/ सदैव/ उपेक्षितों-शोषितों-वंचितों/ और दलितों पर/ सामंतों-तानाशाहों/जमींदारों/ और/ बाहुबलियों द्वारा/ समय-समय पर/ समाज में बढ़ती विसंगतियों तथा विद्रूपताओं ने सदैव से मानव मन को उद्वेलित किया है। बशर्ते व्यक्ति विशेष स्वयं इनका शिकार न हो। एक सजग संवेदनशील रचनाकार के लिए ये स्थितियाँ जनसामान्य की अपेक्षा कहीं अधिक असह्य हो जाती हैं–मजबूर-मजबूरी से बना है/ जिसका कोई/ खामियाजा नहीं दुनिया में/ जिनके उठने-गिरने का/ कोई शोर नहीं होता/ न जीने का- न मरने का/ बेशोर-बोझा हैं/ ऐसी बस्तियाँ / जमीन पर।

आधुनिक दृष्टि में नवीन के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है परंतु परंपरा का विरोध मात्र विरोध के लिए तर्क संगत नहीं है। भारतीय मनीषा माँ के प्रति जो आदरभाव रखती है, वह निःसंदेह विश्व के लिए अनुकरणीय हैं। डा. सुरेश उजाला की कविता 'माँ' की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–माँ/ कसौटी है/ कस लेती है-बच्चे का/ भला-बुरा/ अतएव/ शिक्षित बाप का बच्चा/ रह सकता है-अनपढ़ / लेकिन/ पढ़ी-लिखी माँ का नहीं/ वह रोटी सेंकते-सेंकते/ कर जाती है/ शिक्षित-दीक्षित/ हर हाल में बच्चे को/ आखिर/ माँ/ माँ होती है/ माँ-पाठशाला है-स्कूल है/ विद्यालय है/ इस धरती पर/ हर घर की। मानवीय सरोकारों को केन्द्र में रखकर कलम चलाने वाले कवि डा. सुरेश उजाला आज के यथार्थ को कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं–तमाम/ पत्थर फेंके हैं/ वक्त-बेवक्त मेरी ओर/ कुछ हल्के-कुछ भारी/ चोट पर चोट/ घाव पर घाव दिये हैं/ इस संवेदनशील-समाज ने/ तब भी/ स्वागत किया है-/इन पत्थरों का मैंने।

समसमा डा. उजाला के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। इनका काव्य लोक चेतना और यथार्थानुभव से अनुप्रमाणित है। प्रायः इन्होंने शोषित और दलित वर्ग की पीड़ाओं को अपनी कविताओं का विषय बनाया है। इनकी भाषा में सच्चाई और यथार्थ अनुभूति के साथ-साथ अतीव तीखे गहरे व्यंग्य हैं 'आस्तीन का साँप' में एक मौकापरस्त पर कितना तीव्र व्यंग्य है–कोई व्यक्ति/ नहीं पालता अब/ साँप आस्तीन में-घर में/ जानबूझकर/ झटकता रहता आस्तीन अक्सर/ ताकि/ कोई साँप/ पल न सके/ आस्तीन में।

विवेच्य काव्य संग्रह 'बोधिपथ' के अवलोकन से यही निष्कर्ष निकलता है कि कवि डा. सुरेश उजाला की कविता ने समाज की संपूर्ण विसंगतियों, विडंबनाओं को पूरे तौर पर खुले रूप में अभिव्यक्त किया है। कवि ने गंभीरता से समाज मूल्यों पर दृष्टिपात किया है जो समाजिकता के लिए अपरिहार्य है। जैसे हमारे समाज में व्यक्तिवाद, अजनबीपन एवं सामाजिक, धार्मिक एवं जातीय असहिष्णुता का एक व्यापक एवं कटु साम्राज्य है। डा. उजाला इनसे जुड़कर न केवल इसको अभिव्यक्त करते हैं वरन् इनकी कविताएँ इनके विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देती हैं। पुस्तक की छपाई और गेटअप सुंदर है। हिन्दी जगत में यह एक अलग छाप छोड़ेगी, ऐसा विश्वास है।

पुस्तक का नाम	: बोधिपथ
कवि	: डा. सुरेश उजाला
प्रकाशक	: एशिया लाइट शिक्षा संस्थान 86, शेखूपुरा अलीगंज, लखनऊ
मूल्य	: 250 रुपये

B-1118, इन्दिरा नगर, लखनऊ-226016

रहीम : समन्वय के सम्राट

हितेश कुमार सिंह

भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस काल में सूर, कबीर, तुलसी, जायसी के अतिरिक्त जिस एक और विद्वान कवि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, वह है–अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना। रहीम अकबर के संरक्षक, सेनापति एवं अद्भुत व्यक्तित्त्व के धनी बैरम ख़ाँ के पुत्र थे।

रहीम उद्भट विद्वान, कवि, भाषाविद्, कुशल प्रशासक, ज्योतिर्विद, दानी, ज्ञान-विज्ञान के शोधक सहित विलक्षण प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उनका काव्य समकालीन कवियों की भाँति अतिवादी न होकर समन्वयवादी है। उनकी रचनाओं में धार्मिक, सांस्कृतिक, नीति एवं ज्ञान का अप्रतिम समन्वय दिखायी देता है। रहीम जैसे विस्मयकारी पुरुष, जिसने कि युद्ध में, शांति में, जय में, पराजय में अपनी सर्जनात्मकता, अपनी शैली को अक्षुण्ण बनाये रखा, उसका पुनः मूल्यांकन ज़रूरी है, जिससे उनके जीवन, साहित्य और उनकी नीतियों से वर्तमान पीढ़ी को नये परिप्रेक्ष्य में अवगत कराया जा सके। डॉ0 प्रकाश त्रिपाठी ने ऐसे विद्वान कवि को पुनर्मूल्यांकित करने का एक सफल प्रयास किया है।

अपनी सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'रहीम की काव्य भाषा' में डॉ0

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश त्रिपाठी ने रहीम का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्मूल्यांकन किया है। इस पुस्तक में त्रिपाठी जी ने रहीम के पारिवारिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक जीवन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रकाश डाला है, साथ ही साथ, उनके कृतित्व तथा उसकी भाषा, उसके सौंदर्य और उसके व्याकरणिक पक्ष पर भी गहन दृष्टि डाली है।

डॉ0 प्रकाश त्रिपाठी ने इस पुस्तक में रहीम के जीवन के ढेर सारे ऐसे प्रसंगों को खोज निकाला है, जो सामान्य पाठक या व्यक्ति को शायद ही मालूम हों, जैसे—रहीम की माँ सईदा राजपूत ज़मींदार जमाल खाँ मेवाती की लड़की थी। (पृष्ठ-18) वह एक कवयित्री भी थी। (पृष्ठ-19) रहीम ने अपने खर्च से मक्का जाने वाले यात्रियों के लिए सलारी करीमी और रहीमी की व्यवस्था की थी। (पृष्ठ-36)

डॉ0 प्रकाश त्रिपाठी ने इस पुस्तक में रहीम के जीवनवृत्त का बड़े ही रोचक ढंग से तुलनात्मक विवेचन किया हे। रहीम की प्रशंसा में कवि जाडा, केशवदास, गंग, मंडन आदि के द्वारा लिखे गए काव्य का उल्लेख इस पुस्तक में प्राप्त होता है :

ख़ानखानां नवाब हो मोही अचंभो एह।
मापो किम गिरि मेरुमन साढ तिटस्पी देह।।
खानखानां नवाब री आदमगीरी धन्न।
यह ठकुराई मेरु गिर मनी न राई मन्न।।

(कवि जाडा)

रहीम द्वारा रचित पुस्तकों में दोहावली, नगर शोभा, बरवै नायिका भेद, खेट कौतुक जातकम, मदनाष्टक, शृंगार सोरठा आदि प्रमुख हैं। डॉ0 प्रकाश त्रिपाठी ने प्रस्तुत पुस्तक में एक समालोचक की भाँति प्रत्येक पुस्तक के बारे में विश्लेषणात्मक शैली में दुर्लभतम जानकारियाँ प्रस्तुत की हैं। उनकी रचनाएँ केवल तत्कालीन समय की समस्याएँ ही नहीं बतातीं, बल्कि यह भी बताती हैं कि उन समस्याओं का हल क्या है। शायद इसी कारण प्रो0 सत्यप्रकाश मिश्र ने रहीम की कविता को हिन्दी भाषीजन के 'गाढ़े का साथी' कहा है।

यह पुस्तक हमें रहीम के संपूर्ण साहित्य से भली भाँति परिचित कराती है। उनकी कौन-सी रचना किस ग्रंथ में कौन-सी भाषा मे है, किस रचना में कौन-सा रस, छंद या अलंकार है तथा संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, लिंग, वचन, कारक, काल, उपसर्ग, प्रत्यय, समास आदि तमाम व्याकरणिक रचनाओं एवं शब्द-रचना प्रक्रिया पर यह पुस्तक गंभीरता से प्रकाश डालती है।

त्रिपाठी की यह पुस्तक रहीम के ऊपर एक समग्र ग्रंथ है, जो रहीम के व्यक्तित्त्व व कृतित्व के विविध सोपानों से पाठकों को रू-ब-रू कराती है।

पुस्तक का नाम : रहीम की काव्य भाषा
लेखक : डा0 प्रकाश त्रिपाठी
प्रकाशक : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद (उ.प्र.)

द्वारा डॉ0 घनश्याम सिंह, 1144, भारद्वाजपुरम्, (नज़दीक ई0 डब्लू. एस.), अल्लापुर, इलाहाबाद

कविता

आँसू

नग़मा जावेद

आँखों में
आँसुओं के
चिराग़
क्यों जलते हैं ?
मेरे दिल के
खामोश टापुओं से
दर्द के काफ़्ले
क्यों गुज़रते हैं ?
जानां !
कभी फ़ुर्सत मिले
तो
सोच के बताना...
क्यों मिलते हो अब ऐसे ?

मेरे तुम्हारे बीच
कोई परिचय न हो जैसे...
उल्फ़त की महक
आत्मीयता और
स्नेह
के तमाम सिलसिले...
क्या वक़्त के पानियों पर
लिखी तहरीरें थीं ?

ऐसोसिएट प्रोफ़ेसर
पी.जी. हिन्दी विभाग
एस.एन.डी.टी. यूनिवर्सिटी
मुम्बई-20

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अनोखा बाल शोध मेला

एक अनोखा मेला, जिसमें न कोई देवता की डोली न कोई दुकान और न ही खरीददारों की भीड़। मेले में बच्चों की भीड़। चारों तरफ़ बच्चे-ही-बच्चे। दुकानों के नाम पर स्टॉल ही स्टॉल। स्टॉलों में बेचने के सामान के बजाय जानकारियों का पिटारा। कहीं बच्चों द्वारा लिखी कविताओं का संकलन है तो कहीं कहानियाँ। कहीं पौराणिक औखाणों (लोकोक्ति) के अर्थ सहित लगे हैं। किसी स्टॉल में क्षेत्र के मंदिर व उनकी वास्तुकला के साथ इतिहास का ज़िक्र तो कहीं देखते ही मुँह में पानी आ जाने वाले पकवान बनाने की विधि के साथ सजे हैं। मेले में प्रवेश करते ही सबकी की लंबाई व वजन को नापा जा रहा था। यह सारा नज़ारा ब्लाक संसाधन केन्द्र मनेरी में चल रहे शोध मेले का है।

उत्तरकाशी के ब्लाक संसाधन केन्द्र मनेरी द्वारा आयोजित बाल शोध मेले में 26 स्कूलों के 300 से ज़्यादा बच्चों ने प्रतिभाग किया। बच्चे अलग-अलग विषयों पर शोध कर उसको अपने साथियों व समुदाय के साथ साझा करने के लिए एकत्र हुए। शोध की जानकारी को साझा करने के साथ ही सीखने और सिखाने की प्रक्रिया खुद बच्चे ही कर रहे थे। वे आपस में सीख और सीखा रहे थे। बच्चे स्थानीय परिवेश से संबंधित चीजों पर गहन शोध से प्राप्त ज्ञान को आपस में बाँट रहे थे। कैंपस में आ रहे बच्चों का पंजीकरण खुद बच्चे ही कर रहे थे। पंजीकरण के बाद बच्चे वजन और लंबाई नापकर उसका दस्तावेजीकरण कर रहे थे। बाल शोध मेले का उद्घाटन भी बच्चों ने बाल गीत गाकर किया।

बाल शोध मेले के स्टॉलों में बच्चों ने बहुत ही गंभीर विषयों पर मजे-मजे में सारी जानकारियों को मॉडलो, दृश्यों व चार्टों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया था। बच्चों ने अपने परिवेश से जुड़ी चीजों को समुदाय के साथ मिलकर गहराई से जानकारियों को एकत्र कर उनको बेहतर तरीके से प्रदर्शित किया गया। बच्चों ने साहित्य के प्रति मेले में बाल कल्पना को उकेरकर रख दिया। छोटी-छोटी कविताओं में बच्चों ने पहाड़, पशु-पक्षी, अपने शिक्षक और खुद की पसंद को अभिव्यक्त करने सफल कोशिश की। वहीं पहाड़ में विलुप्ति के कगार पर पहुँच चुके औखाणे (लोकोक्ति) का बच्चों ने खासा संकलन किया था। औखाणों के संकलन के साथ ही उनका हिन्दी भाषा में अर्थ भी लिखा गया जो देखने वालों के लिए बहुत ही मजेदार लग रहा था। पहाड़ के अपने पारंपरिक पकवान जो आज विलुप्ति के कगार पर हैं, बच्चों ने समुदाय के सहयोग से न के केवल उनके बारे में बनाने की विधियाँ ढूँढ़ी बल्कि उसके ख़ास अवसरों पर महत्त्व और पकवानों को बनाकर प्रदर्शित भी किया था। वास्तुकला के रूप में बच्चों ने मंदिरों के शिल्प को मॉडलों के जरिए बेहतर तरीके से पेश किया व मंदिरों के ऐतिहासिक तथ्यों व स्थापना के बारे में काफ़ी जानकारियाँ सबसे साथ साझा करने के लिए प्रस्तुत की गई थी।

बाल शोध मेले के बारे में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के राज्य प्रमुख अनंत गंगोला का कहना है कि शोध मेले से स्कूल से कटे समुदाय को जोड़ने का प्रयास है। आस-पास की चीजों को शिक्षा-शिक्षण में शामिल करने की एक पहल है जिसके केन्द्र में बच्चा है जो खुद ज्ञान की खोज करता है।

बाल शोध मेले के बारे में फाउण्डेशन के राजीव शर्मा बताते हैं कि बाल शोध मेला एक आयोजन मात्र नहीं है बल्कि इससे महत्त्वपूर्ण इसकी तैयारी की प्रक्रिया है। बच्चे चयनित विषय को शिक्षकों, समुदाय की मदद से शोध के जरिए ज्ञान का सृजन करते हैं। सृजित ज्ञान को बेहतर तरीके से प्रस्तुत करने की तैयारी करते हैं जिससे उनमें खुद करके सीखने और सीखकर अभिव्यक्त करने की दक्षता का विकास होता है।

बाल शोध मेले में बच्चों ने जिस तरीके से साहित्य में अपनी रुचि को दिखाया और बढ़चढ़ कर रचनात्मक हुनर का प्रदर्शन किया उससे लगता है कि अगर बच्चों को सही माहौल मिले या उनको अवसर मिले तो वे भी पढ़ने-लिखने में किसी से कमतर नहीं हैं।

प्रस्तुति : जगमोहन चोपता
गायत्रीकुंज, बिरला गली, उत्तरकाशी,
उत्तराखंड

अनकही का लोकार्पण

जयश्री राय के कथा संग्रह 'अनकही' का लोकार्पण गोवा के भूतपूर्व मंत्री, प्राचार्य तथा मराठी साहित्य के प्रकांड विद्वान श्री गोपाल राव मयेकर के हाथों होटल मांडवी में संपन्न हुआ।

इस अवसर के लिए दिल्ली से विशेषरूप से आये शिल्पायन संस्थान के प्रकाशक श्री ललित शर्मा ने जयश्री राय को शुभकामनाएँ देते हुए कहा कि इस वर्ष उनके संस्थान से प्रकाशित पुस्तकों में से 'अनकही' उनकी कुछेक प्रिय पुस्तकों में से एक है। उत्तर गोवा के संसद सदस्य श्री श्रीपाद नाईक तथा एम.एल.ए. श्री मांद्रेकर ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने वक्तव्य में कहा कि जयश्री ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह बहुत अच्छी तरह से किया है।

लेखक तथा गोवा विश्वविद्यालय के पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष डा. रोहिताश्व ने इस अवसर पर बोलते हुए कहा कि जयश्री की रचनाओं में भाषा की परिपक्वता तथा विचारों की गहराई दिखती है। डा. आशा गहलोत ने इतने कम समय में इतनी प्रसिद्धि हासिल करने के लिए अपनी मित्र को बधाई दी। गोवा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि उन्हें यह सोचकर आज गर्व होता है कि जयश्री राय उनकी विद्यार्थी रही हैं।

अपने संक्षिप्त वक्तव्य में लेखिका जयश्री राय ने कहा कि उनके लेखन में उनके मस्तिष्क से ज़्यादा उनका हृदय होता है। इस अवसर पर गोवा के विभिन्न अख़बारों के संपादक, यूनीवर्सिटी के प्राध्यापक, कॉलेजों के प्राचार्य, शिक्षाविद्, मराठी तथा कोंकणी अकादमी के साहित्यकार बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। कार्यक्रम का सूत्र संचालन सेंट जेवियर्स कॉलेज की हिन्दी विभागाध्यक्ष डा. रमिता गुरब ने किया। कार्यक्रम के अंत में जयश्री राय के पति प्रसिद्ध चित्रकार तथा राजनीतिक श्री संयज हरमलकर ने सबका धन्यवाद किया।

प्रस्तुति :अभिषेक कश्यप

शमशेर पर विचार गोष्ठी

नवगठित साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मंच 'विन्यास' के तत्त्वावधान में शमशेर जन्मशताब्दी के अंतर्गत सुविख्यात कवियों के कवि शमशेर बहादुर सिंह की पुण्य तिथि 12 मई, 2010 के अवसर पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन कोट रोड पर 'कमल क्लासेज' पर किया गया। गोष्ठी में वक्ताओं ने शमशेर बहादुर सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी कविताओं में निहित संश्लिष्ट यथार्थ के मर्म को उद्घाटित किया।

सर्वप्रथम परमेन्द्र सिंह ने शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं का पाठ किया—'काल तुझसे होड़ है मेरी / अपराजित तू—/ तुझमें अपराजित मैं/ वास करूँ।' श्री विशाल गोपाल ने शमशेर के कृतित्व की चर्चा करते हुए कहा कि शमशेर ऐसे कवि हैं जिनकी अमूर्तता वायवीय न होकर समय की दीवार पर साफ़-साफ़ उकेरी गयी है।

श्री हरपाल सिंह 'अरुष' ने अपने वक्तव्य में कहा कि "इनकी कविता में एक विशेषता यह भी है कि देखने की प्रक्रिया में स्वयं शब्द ही दृश्य होकर उभरते हैं। ऐसा लगता है जैसे कवि ने उनको स्वयं देखते हुए लिखा है। श्री आर0एम0 तिवारी ने कहा कि शमशेर ने जिस भाषा को अपने काव्य का माध्यम बनाया वह उन्होंने अपने परिवेश से अर्जित की। श्री धीरेश सैनी ने कहा कि शमशेर का मूल्यांकन करते समय हमें उन्हें किसी वाद-विशेष के खाँचे में बैठाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। चर्चा में सर्वश्री अश्वघोष, हरपाल पँवार, कीर्तिराजन, कमल त्यागी, सुरेन्द्र कुमार वत्स, शिवकुमार 'समन्वय', अब्दुल हक सहर, मनु स्वामी आदि ने भी भाग लिया। बैठक की अध्यक्षता श्री जे0पी0 सविता ने की तथा संचालन अश्वनी खंडेलवाल ने किया।

113, लालबाग कॉलोनी, मुजफ्फरनगर

दो दिवसीय भारतीय कविता उत्सव संपन्न

जाने-माने कवि सीताशंकर महापात्र ने 'भारतीय कविता उत्सव' का उद्घाटन करते हुए कहा कि भारतीय कविता में हमें कल्पना, भाषा की शुद्धता और अपने स्मृतिबोध को बचाए रखना होगा। हमारी स्मृति हमें अतीत और भविष्य दोनों की ओर देखने के लिए दृष्टि देती है। उन्होंने उड़िया में पाँच कविताएँ भी सुनाईं।

भारतीय कविता की प्रस्तावना पर बोलते हुए प्रसिद्ध कवि और आलोचक श्री नंदकिशोर आचार्य जी ने कहा कि भारतीय कविता में न्याय की स्थापना का आग्रह ही हमारी भारतीय कविता का उत्स है।

अकादमी के सचिव प्रो0 रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास' ने कहा कि कविता का भारतीय स्वरूप विश्व स्तर का है और उसे केवल हिन्दी की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। अकादमी के उपाध्यक्ष प्रो0 अशोक चक्रधर ने कहा कि शब्द परंपरा से आते हैं और कविता बेहतर मनुष्य बनाने का कार्य करती है।

18 मार्च को हुए पहले सत्र जिसकी अध्यक्षता वरिष्ठ कवि लेखक श्री अजित कुमार ने की, में अग्रहार कृष्णमूर्ति (कन्नड़), वनीता (पंजाबी), वीरभद्र कार्कीढोली (नेपाली), दिनेश कुशवाह और अष्टभुजा शुक्ल (हिन्दी) ने कविता पाठ किया।

द्वितीय सत्र में राधावल्लभ त्रिपाठी की अध्यक्षता में हेमंत दिवटे (मराठी), प्रवीण पंड्या (गुजराती), जगमोहन सक्सेना (राजस्थानी), सुरजीत सिंह जोबन और अरुण श्रीवास्तव (हिन्दी) कविताएँ पढ़ीं।

तृतीय सत्र में वरिष्ठ कवि नरेश सक्सेना की अध्यक्षता में इफ़्फत जरीन (उर्दू), सुषमा गिरी (उड़िया), अनिल कुमार सिंह व राजेश्वरी द्विवेदी (हिन्दी) ने कविताएँ पढ़ीं। 19 मार्च को पहले सत्र के अध्यक्ष वरिष्ठ कवि लीलाधर जगूड़ी थे, ने कहा कि आज की सभी कविताओं और कल भी सुनाई गई कविताओं में भारत के खोते जा रहे मनुष्य की आवाज़ें थीं।

दूसरे सत्र की अध्यक्षता लीलाधर मंडलोई ने की। टी0 संपक कुमार ने तेलुगू, रमेश चन्द्र हेाता ने संस्कृत, रवीन्द्र रवि ने कश्मीरी और मिथिलेश श्रीवास्तव तथा ब्रजेन्द्र त्रिपाठी ने हिन्दी में कविताएँ प्रस्तुत कीं। अपने अध्यक्षीय भाषण में मंडलोई ने कहा कि इस पूरे उत्सव ने जैसे कविता की 20वीं शताब्दी की पूरी यात्रा हमारे सामने रख दी हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यक्रम में अंतिम सत्र में अज्ञेय जन्मशती पर विशेष प्रस्तुति के तहत उनकी कविताओं 'पानी बरसा', 'आज तुम शब्द न दो', 'साम्राज्ञी का नैवध्य दान' और 'क़दम कालिंदी' पर देवानंद परिहार और उनके ग्रुप शारदा नृत्य निकेतन के कलाकारों ने कथक नृत्य प्रस्तुत किया।

प्रस्तुति : अजय कुमार शर्मा

हिन्दी अकादमी का 'सम्मान-अर्पण' समारोह

"हर लेखक भारतीय साहित्यकार है और उसे किसी भाषा के दायरे में बाँधना ठीक नहीं "उक्त विचार वरिष्ठ ओड़िया साहित्यकार एवं सरस्वती सम्मान से समादृत डॉ0 जगन्नाथ प्रसाद दास ने हिन्दी अकादमी, दिल्ली के 'सम्मान-अर्पण' समारोह के दौरान अपने संक्षिप्त उद्बोधन में प्रकट किए। उन्होंने कहा कि हर लेखक अपनी सजगता के चलते अखिल भारतीय है।

दिल्ली सचिवालय में आयोजित इस कार्यक्रम की मुख्य अतिथि दिल्ली की मुख्यमंत्री और अकादमी की अध्यक्ष श्रीमती शीला दीक्षित थीं। उन्होंने साहित्यकारों को अपनी सोच और चिंतन के जरिए समाज को रास्ता दिखाने वाला बताया। इस अवसर पर दिल्ली की स्वास्थ्य भाषा एवं संस्कृति मंत्री प्रो0 किरण वालिया ने विश्वास जताया कि साहित्यकार अपनी कलम से इसी तरह समाज को नई रोशनी देते रहेंगे।

अकादमी के उपाध्यक्ष प्रो0 अशोक चक्रधर ने कहा कि पुरस्कार की तुलना राशि से नहीं की जानी चाहिए। तब भी आगे से इन पुरस्कारों की राशि और बढ़ाई जाएगी। अकादमी की अध्यक्ष मुख्यमंत्री के मर्यादित व जनतांत्रिक फैसलों की तारीफ़ करते हुए उन्होंने कहा कि उनके दिशा निर्देशन में ही हम अकादमी को राष्ट्रीय स्वरूप देना चाहते हैं।

अकादमी के सचिव प्रो0 रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास' ने कहा कि वर्ष 2008-2009 के साहित्यकार सम्मान श्री द्रोणवीर कोहली, प्रो0 इन्द्रनाथ चौधुरी, श्री सुरेश सलिल, प्रो0 अब्दुल बिस्मिल्लाह, सुश्री गगन गिल को दिए गए। इस वर्ष का काका हाथरसी सम्मान कार्टूनिस्ट श्री इरफान को दिया गया। डॉ0 रामेश्वर प्रेम का पुरस्कार उनके बेटे ने ग्रहण किया।

वर्ष 2009-2010 के लिए हिन्दी अकादमी विशिष्ट योगदान सम्मान-प्रो0 मुजीब रिजवी, काव्य सम्मान-डा0 कन्हैया लाल नंदन, गद्य विधा सम्मान-प्रो0 सुधीश पचौरी, नाटक सम्मान-डा0 असगर वजाहत, हास्य व्यंग्य सम्मान-डा0 ज्ञान चतुर्वेदी तथा ज्ञान प्रोद्यौगिकी सम्मान- श्री बालेन्दु दाधीच को दिया गया।

प्रस्तुति : अजय कुमार शर्मा

वीरेन्द्र सारंग का कविता पाठ

'ये कैसा रिश्ता/कैसा मन/उनके जैसा मेरा तन/उनकी अम्मा गाँव की अम्मा/मेरी माँ धोबन'—ये पंक्तियाँ हैं हिन्दी के जाने माने कवि वीरेन्द्र सारंग की कविता 'कैसा रिश्ता कैसा मन' की जिसका पाठ उन्होंने लखनऊ में श्रोताओं के बीच किया। जन संस्कृति मंच ने वीरेन्द्र सारंग के एकल कविता पाठ और उस पर बातचीत का कार्यक्रम महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय के महानगर स्थित लखनऊ केन्द्र के सभागार में आयोजित किया था।

इस मौके पर वीरेन्द्र सारंग ने 'गाती हुई चिड़िया', 'छन्ना', 'ले लो आम और भी सामान !', 'मोती लाल लिखता रहा', 'अलगनी का कपड़ा', 'मतदान के पहले और बाद में' सहित करीब अपनी एक दर्जन कविताएँ सुनाईं। कविता पाठ के बाद इन पर बातचीत भी हुई। आलोचक चन्द्रेश्वर ने कहा कि ये सामाजिक चिंताओं की कविताएँ हैं जिनमें से ज़्यादातर ग्रामीण लोक से लेकर शहरी लोक के बीच फैली हैं। कार्यक्रम का संचालन जसम के संयोजक व कवि कौशल किशोर ने किया। उनका कहना था कि वीरेन्द्र सारंग की कविताओं में उनके अनुभव की दुनिया है। सारंग इन्हें अपनी कविता का विषय बनाते हैं, इन छोटी-छोटी चीजों के महत्त्व को उदघाटित करते चलते हैं। इस मौके पर लेखक व समीक्षक अनिल सिन्हा ने कहा कि हिन्दी कविता की सुपरिचित तस्वीर से अलग वीरेन्द्र सारंग एक ऐसी तस्वीर बनाते हैं जिसमें शहर और गाँव गड्ड-मड्ड से हो गये हैं।

वीरेन्द्र सारंग की कविताओ पर 'निष्कर्ष' के संपादक गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव ने कहा कि बाजार और पूँजी ने जिस अमानवीयता को फैलाया है, सारंग की कविताएँ उनसे मुठभेड़ करती हैं।

कवि भगवानं स्वरूप कटियार, लेखक रवीन्द्र कुमार सिन्हा, कवयित्री व कथाकार रंजना जायसवाल, कथाकार सुभाष चन्द्र कुशवाहा आदि ने भी अपने विचार रखे। इस कार्यक्रम में वंदना मिश्र, पूनम सिंह, शकील सिद्दीकी, राजेश कुमार, मृदुला भारद्वाज, नसीम साकेती, सुरेश पंजम, श्याम अंकुरम, विमल किशोर, राघवेन्द्र, बी0 एम0 प्रसाद, राजेन्द्र वर्मा, धर्मेन्द्र, गंगा प्रसाद आदि सहित बड़ी संख्या में लेखकों व संस्कृतिकर्मियों ने शिरकत की।

प्रस्तुति : कौशल किशोर

एफ-3144, राजाजीपुरम, लखनऊ-226017

वर्तमान से भविष्य को ताकती कहानियाँ

भोपाल! हमारी ज़िंदगी में उबाऊपन और समस्याओं की उपस्थिति के चलते दीगर कई महत्त्वपूर्ण तर्क छूट गए हैं। इन्हें कहानी के जरिए आसानी से उजागर किया जा सकता है। वरिष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथाकार द्वारिकेश नेमा की कहानियों के किरदार पूरी बौद्धिकता और सहजपन के साथ छुपे हुए तर्कों को सामने पेश करते हैं।

इस आशय के विचार कथा संसार से जुड़े विभिन्न शब्द-शिल्पियों ने स्वराज संस्थान में वरिष्ठ कहानीकारी-नाटककार द्वारिकेश नेमा के नवीनतम कहानी संग्रह 'हीरामन अमृर्त्य सेन और अन्य कहानियाँ' पर एकाग्र आत्मीय चर्चा के दौरान पेश किए। जनवादी लेखक संघ (जलेस) भोपाल द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम में प्रसिद्ध कथाकार रमेश उपाध्याय और चर्चित आलोचक डा0 अजय तिवारी खासतौर पर शामिल हुए। अध्यक्षता यशस्वी कथाकारद्वय प्रो0 आफ़ाक अहमद तथा मंजूर एहतेशाम ने की। लेखक श्याम मुंशी ने इस मौके पर कहानी 'बाहर की तरफ़ खुलने वाला दरवाज़ा' का पाठ किया।

इस विमर्श गोष्ठी की शुरूआत सुप्रसिद्ध कवि-कथाकार संतोष चौबे के आधार व्यक्त से हुई। उन्होंने कहा कि नेमा कथा सरजना के दौरान विभिन्न सतहों पर काम करते हैं और इस तरह ये सतहें सामने और भीतर का अलग-अलग अर्थ खोलती हैं। आलोचक डॉ0 तिवारी ने विचार रखते हुए कहा कि अपने ढंग के निराले कथाकार द्वारिकेश नेमा के पास जितने तरह के अनुभव हैं, उतनी बहुत कम लेखकों के पास होती है। कथाकार रमेश उपाध्याय के अनुसार नेमा के पास कथ्य और शिल्प तो नया है ही, साथ ही दुनिया को देखने की एक ऐसी दृष्टि है जो सिर्फ़ वर्तमान तक सीमित नहीं हैं, बल्कि भविष्य को भी देखती है। प्रो0 आफ़ाक ने कहा कि उनकी कहानियों में हमारी अपनी धरती की खुशबू नज़र आती है।

प्रख्यात उपन्यासकार मंजूर एहतेशाम ने कहा कि नेमा की कहानियों के बयान लाउडनेस के बजाए आहिस्तगी से पेश आते हैं। संचालन सविता भार्गव ने किया।

प्रस्तुति : वसंल सकरगाए, भोपाल

शमशेर और अज्ञेय जन्मशती के अवसर पर पुस्तकों का प्रकाशन

प्रकाशकों की बैठक का आयोजन प्रसिद्ध कवि-आलोचक श्री अशोक वाजपेयी की अध्यक्षता में हुआ जिसमें अज्ञेय और शमशेर की जन्मशतियों के उपलक्ष्य में तैयार कराई जा रहीं पुस्तकों के प्रकाशन को लेकर विचार हुआ। शमशेर पर तैयार कराई जा रहीं पुस्तकों के क्रम से निर्धारित प्रकाशन हैं- शमशेर रचनावली : (सं. रंजना अरगड़े), शमशेर सहचर : (सं. अरुण कमल) राजकमल प्रकाशन, शमशेर के साक्षात्कार : (सं. अपूर्वानंद), गद्य संचयन : (सं. उदयन वाजपेयी) किताबघर, काव्य-संचयन : (सं. पंकज सिंह), शमशेर का अर्थ : (ज्योतिष जोशी) वाणी प्रकाशन, शमशेर उर्दू में : (सं. शमीम हनफी, रमण सिन्हा), पंद्रह कविताओं पर पंद्रह निबंध (सं. मदन सोनी), शमशेर के अनुवाद : (सं. सुरेश सलिल) मेधा बुक्स, कला संबंधी रचनाएँ : (सं. प्रयाग शुक्ल) ललित कला अकादेमी, चिट्ठियों का संग्रह : (सं. मैनेजर पांडेय) नई किताब प्रकाशन, शमशेर की आलोचना दृष्टि : (गजेन्द्र पाठक) सामयिक प्रकाशन।

अज्ञेय पर तैयार कराई जा रहीं पुस्तकों के क्रम से निर्धारित प्रकाशन हैं-अज्ञेय रचनावली (सं. कृष्णदत्त पालीवाल) भारतीय ज्ञानपीठ, कविता संचयन : (सं. यतीन्द्र मिश्र), गद्य संचयन : (सं. उदय प्रकाश) अज्ञेय के संस्मरण : (सं. ओम थानवी) वाणी प्रकाशन, कहानी संचयन : (सं. गीतांजलि श्री), आलोचना संचयन : (ओम निश्चल), उपन्यास संचयन : (सं. संजीव) राजकमल प्रकाशन, पंद्रह कविताओं पर पंद्रह निबंध : (सं. गिरिराज किराडु), अज्ञेय सहचर : (सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी) किताब घर, अज्ञेय का कलालेखन : (प्रयाग शुक्ल) ललित कला अकादेमी, अज्ञेय की कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद : पेंगुइन्स (अनुवाद और सम्पादन-प्रजापति शाह), अज्ञेय की आलोचना : (डॉ. राजेंद्र प्रसाद पांडेय) सामयिक, अज्ञेय का चिंतन : (रमेश ऋषिकल्प) मेधा बुक्स, प्रतीक, नया प्रतीक से संचयन : (सं. ज्योतिष जोशी) यश पब्लिकेशन।

बैठक में जिन प्रकाशकों ने हिस्सा लिया वे थे-श्री अशोक महेश्वरी (राजकमल प्रकाशन), श्री अरुण महेश्वरी (वाणी प्रकाशन), श्री महेश भारद्वाज (सामयिक प्रकाशन), श्री भगवत स्वरूप शर्मा (यश पब्लिकेशन्स), श्री सत्यव्रत शर्मा (किताबघर), श्री अजय कुमार (मेधा बुक्स) तथा श्री किशन कालजयी (नई किताब)।

यह पहली बार हो रहा है कि देश के प्रमुख हिन्दी प्रकाशक हिन्दी के दो कालजयी लेखकों की जन्मशती में संयुक्त रूप से शामिल हो रहे हैं और इतनी बड़ी संख्या में उनकी और उन पर पुस्तकें प्रकाशित करने जा रहे हैं।

शमशेर, अज्ञेय जन्मशती आयोजन समिति
संपर्क-डॉ.ज्योतिष जोशी

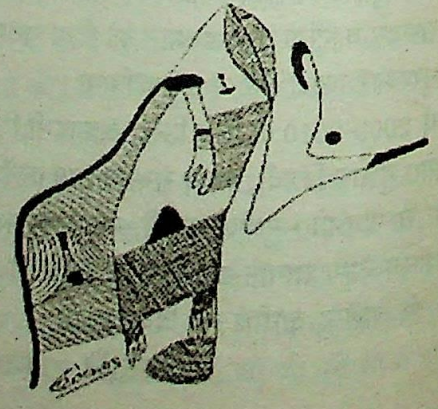

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफेदपोश चोरी : एक झलक

गिरीश मिश्र

चोरी प्राचीनतम अपराधों में से है जिसका ज़िक्र ऋग्वेद में अनेक बार आता है। खाद्य एवं पेय पदार्थों, सिंचाई के पानी, पशुओं और यहाँ तक कि स्त्रियों को चुराने की बात बार-बार आती है। सीता-हरण और असुरों द्वारा अमृत चुराना भयंकर युद्ध के कारण बने। आर्यों के आने के बाद अनार्य पीछे हट गए मगर अंधेरा होने पर वे आर्यों की संपत्ति चुराने लगे। यही कारण है कि आर्य अंधेरे से भयभीत रहते और सूर्य एवं उषा की अभ्यर्थना करते थे। दंडी के 'दशकुमार चरितम्' में हम चौर्यशास्त्र के विधिवत अध्ययन-अध्यापन का उल्लेख पाते हैं। हम कर्णीसुत द्वारा विरचित 'चौर्यशास्त्र' का ज़िक्र पाते हैं। 'अमरकोश' में चोरी की चार किस्मों तथा दस प्रकार के चोरों का उल्लेख पाते हैं मगर चोरी के सामान के लिए एक ही शब्द आता है। दूसरे शब्दों में, चोरी के खेल में अनेक प्रकार के खिलाड़ियों और उनकी विविध रणनीतियों के बावजूद परिणाम एक ही होता है।

संस्कृत साहित्य में चोरी की रणनीति द्वारा दुश्मन को मात देने की बात आती है। विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' में चाणक्य अपने प्रतिद्वंद्वी की मुहर चुरवाकर उसे परास्त करता है। यह परंपरा जारी है। कुछ दशक पहले अमरीकी रिपब्लिक में पार्टी के नेता ने अपनी प्रतिद्वंद्वी डेमोक्रेटिक पार्टी के दफ़्तर से कागज़ात चुरवा कर उसके खिलाफ़ इस्तेमाल करने की साजिश की थी मगर उसके असफल होने पर उनकी बड़ी छीछालेदर हुई। इसे हम वाटरगेट कांड के नाम से जानते हैं। कारपोरेट जगत में प्रतिद्वंद्वियों द्वारा एक-दूसरे का राज चुराने की बात आम है।

चोरी के स्वरूप और चरित्र में निजी स्वामित्य के उदय के बाद काफी बदलाव आया है। सामूहिक स्वामित्व और आमजन के परंपरागत अधिकार में भारी कमी आई है। हम अपने देश में इसे स्पष्ट रूप से देखते हैं। आदिवासियों के आंदोलन में यह एक बड़ा मुद्दा है। अंग्रेज़ी में एक शब्द है 'कामंस' जिसका अर्थ है लोक संपत्ति। इसमें मूर्त और अमूर्त सब प्रकार के संसाधन आते हैं जिन्हें जनता इस्तेमाल करती है और उन पर सामूहिक स्वामित्व होता है। इनमें जल संसाधन, वन-संपदा, हवा, खनिज-पदार्थ, पहाड़, क्रीड़ास्थल, स्कूल-कॉलेज, अस्पताल, सड़क, आकाश, ऐतिहासिक स्मारक, मूर्तियाँ, कलाकृतियाँ और वे साहित्यिक कृतियाँ जिन पर कॉपीराइट कानून नहीं लागू होता, वैज्ञानिक खोज आदि ढेरों चीजें आती हैं। साथ ही परंपरागत गीत-संगीत, नृत्य, चित्रकला की शैलियाँ, भवन-निर्माण के तौर-तरीके आते हैं।

लोक संपत्ति का दायरा घटाने और उन्हें हड़पने का धंधा औद्योगिक पूँजीवाद के आने के साथ जोरों से शुरू हुआ। इंग्लैंड में इसकी शुरूआत 'इंकलोजर मूवमेंट' के साथ 18वीं सदी में हुई जब बाड़ा बनाकर किसानों के लकड़ी लेने और माल-मवेशी चराने पर रोक लगाई गई। अंग्रेज़ीराज के पहले भारत में भूमि पर निजी स्वामित्व न था अर्थात वह खरीद-फरोख़्त की चीज न थी। उस पर ग्राम समुदाय का अधिकार होता था जो उसे कतिपय शर्तों पर किसानों को खेती के लिए देता था। निर्वश होने या गाँव छोड़ने पर उसका ग्राम समुदाय पुनरावंटन करता था। अंग्रेज़ों ने नई भूराजस्व व्यवस्थाओं के जरिए भूमि ही नहीं बल्कि नदियों, तालाबों आदि से जुड़े अधिकारों का निजीकरण कर दिया। इसी प्रकार खनिज पदार्थ निजी अधिकार में चले गए। उस समय से लेकर आज तक आदिवासी अपने परंपरागत अधिकार छीने जाने के खिलाफ़ संघर्षरत हैं।

वे पहले की तरह वन-संपदा का इस्तेमाल नहीं कर सकते, जलावन और झोपड़ी बनाने के लिए लकड़ी नहीं ले सकते और न ही मवेशी बेरोकटोक चरा सकते। अब वन उनकी जीविका का सहारा नहीं रहा। तेंदूपत्ता हो या लाख या कोई अन्य उत्पाद, सबकी नीलामी होती है। आदिवासियों को उनके परंपरागत आश्रय स्थान से निकाल वहाँ सैरगाह और आरामगाह बनाए जा रहे हैं। दिल्ली जैसे शहर में सार्वजनिक भूमि निजी अस्पतालों और शिक्षण संस्थानों को कौड़ियों के भाव आवंटित की गई है जिससे वे भारी कमाई करते हैं। सरकार ने सार्वजनिक भूमि पर स्पोर्ट्स कम्पलेक्स बनाए हैं जिनका उपयोग पैसे वाले ही कर सकते हैं।

औषधि की दृष्टि से उपयोगी पौधों को उगाने और जड़ी-बूटियाँ बटोरने के लिए बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों को वन दिए जा रहे हैं। भ्रष्ट अधिकारियों और राजनेताओं की शह पर तस्करों ने जानवरों की खालें, पक्षियों के परों, लकड़ी और जड़ी-बूटियों का धंधा चला रखा है। ऐतिहासिक स्मारकों पर निजी कब्ज़ा जमाने का सिलसिला जारी है। मंदिरों और संग्रहालयों से मूर्तियाँ, कलाकृतियाँ और दुर्लभ ग्रंथ निरंतर बाहर भेजे जा रहे हैं। सभी शहरों में सार्वजनिक स्थलों पर कब्जा जमाना आम है। इस होड़ में सब धर्म और संप्रदाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शामिल हैं। कब्जे की शुरूआत फ़ोटो लगाकर होती है, फिर भवन निर्माण होता है। दुकानदार भ्रष्ट अधिकारियों और राजनेताओं की मदद से रिहायशी इलाकों में अपना कारोबार धड़ल्ले से चलाते हैं। अवैध ढंग से चलनेवाले इन धंधों के कारण स्थायी निवासियों को होनेवाली दिक्कतों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। वहाँ पटरियों पर दुकानदारों को बैठा पुलिस और स्थानीय निकायों के अधिकारी कमाई करते हैं। इधर अंग्रेजी माध्यम के तथाकथित पब्लिक स्कूलों की बाढ़-सी आ गई है। इनमें से अधिकतर सार्वजनिक भूमि पर कब्ज़ा जमाने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाते।

चोरी को दो कोटियों, परंपरागत और गैर-परंपरागत, में बाँटा जा सकता है। परंपरागत चोरी के अंतर्गत दूसरों के नाम दर्ज़ अचल या चलसपंत्ति को हड़पने की कोशिश आती है। इसके बारे में काफ़ी सामग्री उपलब्ध है परंतु गैर परंपरागत चोरी के विभिन्न आयाम अब भी स्पष्ट नहीं हैं। भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी में क्रांतिकारी परिवर्तनों ने गैर परंपरागत चोरी को नए आयाम दिए हैं। आए दिन क्रेडिट कार्ड के नंबर और पासवर्ड चुराकर खरीददारी करने तथा ए.टी.एम. से पैसे निकालने की बात आम हो गई है। दूसरों से जुड़ी व्यक्तिगत सूचनाएँ उड़ाकर उनके बैंक खातों में सेंध लगाई जाती है। 1990 के दशक से पूर्व चौर्यवृत्ति से अर्जित धन को बक्सों में भर इच्छित स्थानों पर पहुँचाया जाता था जिनके खो जाने से लेकर लुटे जाने का डर बना रहता था। पकड़े जाने का खतरा तो रहता ही था। अब संचार एवं बैंकिंग प्रौद्योगिकी में हुए परिवर्तनों ने स्थिति बदल दी है। इंटरनेट और कूट तथा बेनामी और फर्जी कंपनियों की मदद से चोरी के धन को अन्यत्र सुरक्षित रखा जा रहा है। हम आए दिन सुनते हैं कि सरकार और देशी-विदेशी संस्थाओं द्वारा आपदा पीड़ित लोगों के लिए राहत तथा कल्याणकारी कार्यों के लिए अनुदान को बिचौलिए हड़प लेते हैं। यही बात मनरेगा के बारे में सुनी जा रही है। हड़पने वालों में राजनेता, अफसर, ठेकेदार और स्वंयसेवी संगठनों के लोग होते हैं। आए दिन सरकारी संसाधनों का निजी इस्तेमाल धड़ल्ले से होता, देखा जाता है।

गैर परंपरागत चोर अमानवीय होने से नहीं हिचकते। अगर ऐसा न होता तो वे अपने अधिकार का दुरुपयोग कर अस्पतालों से दवाएँ, खाद्य पदार्थ और उपकरण चुराकर नहीं बेच लेते। इसी तरह की बात जेलों के संदर्भ में भी देखी जाती है। कैदियों के खाने-पीने, पहनने-ओढ़मे तथा दवा-दारू की व्यवस्था के लिए आवंटित राशि फर्जी कागजात के जरिए हड़प ली जाती है। अमरीकी संस्था 'केअर' ने 1950-1960 के दशक में बच्चों के लिए मिल्क पाउडर, बटर ऑयल और दलिया का इंतजाम बड़े पैमाने पर किया था। उस समय देखने में आया कि इनमें से काफी कुछ खुले बाजार में बिक गया। जब तक यह कार्यक्रम चलता रहा तब तक बिहार के रेलवे स्टेशनों और बस स्टॉपों पर फेरीवाले पेड़े बेचते दिखते थे जो कुपोषित बच्चों के लिए आए मिल्क पाउडर से बनते थे।

अरविंद अडिगा ने अपने चर्चित उपन्यास 'द व्हाइट टाइगर' में चित्रित किया है कि कैसे विद्यालयों के छात्रों के लिए सरकार से मिलने वाले पहनावों, दोपहर के भोजन की सामग्रियों तथा फर्नीचर को अन्यत्र बेचकर पैसे बनाए जाते हैं। इसी तरह उन्होंने सरकारी अस्पतालों के अनुदान को हड़पने का भी चित्रण किया है। भारत सरकार ने स्वतंत्रता सेनानियों के लिए पेंशन और मुफ़्त चिकित्सा और रेलयात्रा की व्यवस्था की है। देखा गया है कि इन सुविधाओं को पाने वालों में ऐसे लोग भी शामिल हैं जो ब्रिटिश परस्त थे या उनको जनमे कुछ साल ही हुए थे। ऐसी घटनाएँ भी सामने आई हैं जिनमें राजनेता और अधिकारी षड़यंत्र रच सरकारी धन हड़प लेते हैं। आए दिन इसमें व्यवसायी भी शामिल होते हैं। याद करें यूनिट-64 से जुड़े घोटाले को या दूरसंचार से जुड़े घोटाले को जिसमें एक तत्कालीन केंद्रीय मंत्री और कई बड़े अफसर शामिल थे। यूनिट-64 घोटाले में लखनऊ के रस्तोगी बंधुओं ने यूनिट ट्रस्ट से बड़े अफसरों की मदद से भारी रकम हड़पी। बिहार में चारा घोटाला, मेधा घोटाला और अलकतरा घोटाला से जुड़े मुकदमे अपने अंतिम मुकाम तक दशकों बाद भी नहीं पहुँच पाए हैं कि झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री मधु कोड़ा से जुड़ा भ्रष्टाचार का एक बड़ा मामला सामने आया है जिसमें सार्वजनिक संपत्ति हड़पने की बात है।

ध्यान देने की बात है कि सार्वजनिक संसाधन के चोरी जाने के साथ ही मुकदमों पर भारी धन व्यय होता है किंतु शायद ही दोषियों को कोई सजा होती है, चोरी के माल को वापस पाने की बात तो दूर रही। चोरी का एक अन्य रूप बौद्धिक चोरी है जिसके अंतर्गत दूसरों की पुस्तकों, लेखों, कला-कृतियों, संगीत, कविताओं आदि को चोर अपने नाम से प्रचारित करते हैं। परिणामस्वरूप मूल रचनाकारों से उनकी शोहरत और संभावित आय चुरा ली जाती है। इस चोरी में नामी-गिरामी लोगों की लिप्तता देखने में आती है।

एम-112, साकेत
नई दिल्ली-110017

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्पायन द्वारा प्रकाशित

कुँवरपाल सिंह की महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय पुस्तकें

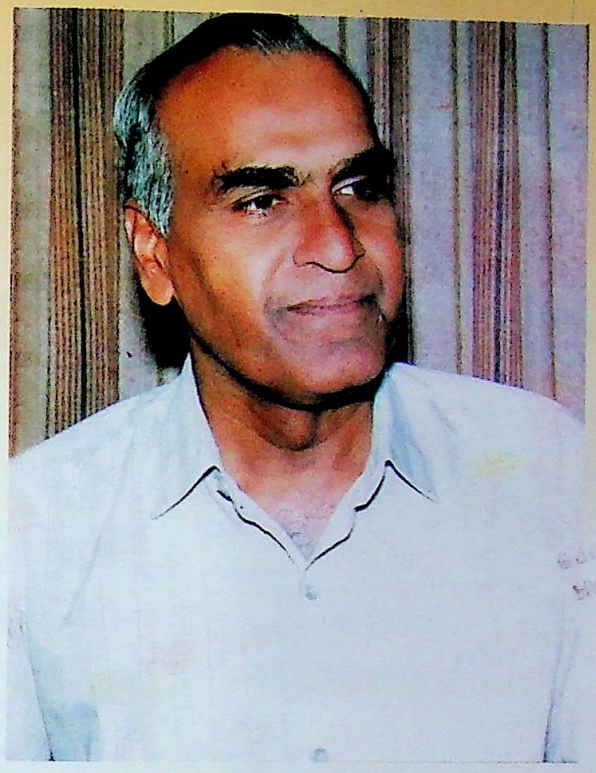

आगामी पुस्तकें

हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना	कुंवरपाल सिंह
समय संवाद	कुंवरपाल सिंह
लिए लुकाठी हाथ	कुंवरपाल सिंह
नवजागरण और हिंदी गद्य	कुंवरपाल सिंह-देवेंद्र गुप्ता

प्रकाशित पुस्तकें

1857 और जन प्रतिरोध	संपा. कुंवरपाल सिंह-नमिता सिंह	400.00
यशपाल : पुनर्मूल्यांकन	संपा. कुंवरपाल सिंह	600.00
राही और उनका रचना-संसार	संपा. कुंवरपाल सिंह	400.00
हिंदी उपन्यास : जनवादी परम्परा	सं. कुंवरपाल सिंह-अजय बिसारिया	225.00
मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी उपन्यास	कुंवरपाल सिंह	200.00

पुस्तकों के लिए लिखें–

शिल्पायन

10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
दूरभाष : 011-22821174, 9810101036
e-mail : shilpayan2005@yahoo.co.in, shilpayanbooks@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83

डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सृजन स्मरण

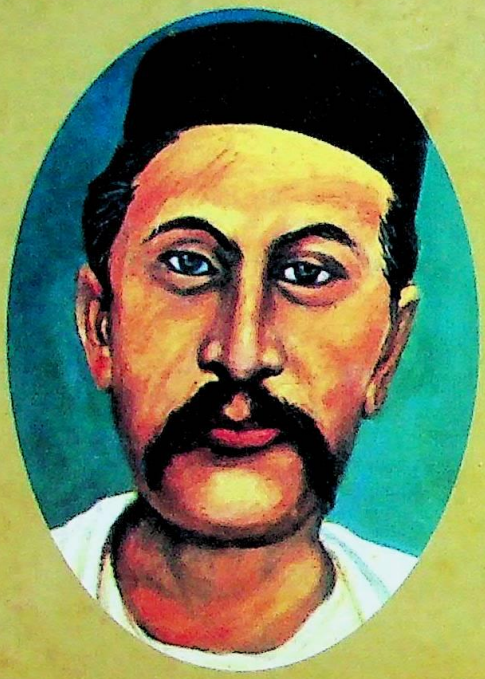

जहाँ हमने मन अथवा वचन से कहा –
हे प्रभु हम पर दया करो, वहीं हम उस निराकार
की छाती के भीतर मन की कल्पना कर चुके हैं।
क्योंकि मन न होगा तो दया ठहरेगी कहाँ
और शरीर न होगा तो मन रहेगा कहाँ?

प्रताप नारायण मिश्र
(1856-1894)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित तथा 28, एम.आई.जी., अवन्तिका-।, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सितम्बर, 2010 ■ बीस रुपये

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वराज और सुराज का सपना देखते थे देश की आज़ादी के सेनानी

रानी लक्ष्मीबाई

चन्द्रशेखर आज़ाद

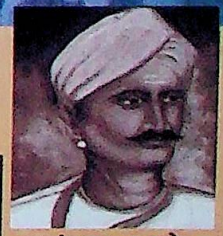
मंगल पाण्डे

शंकर शाह

टंट्या भील

राणा बख्तावर सिंह

रघुनाथ शाह

हमें मिली स्वाधीनता, जनतंत्र और जनाधिकार

मध्यप्रदेश में
अब सुशासन की अभिनव कड़ी
लोक सेवाओं के प्रदान की गारंटी का कानून

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

सभी नागरिकों को
64वें स्वतंत्रता दिवस की
हार्दिक शुभकामनायें

मध्यप्रदेश जनसंपर्क द्वारा जारी

जय भारत, जय मध्यप्रदेश

आकल्पन : मध्यप्रदेश मध्यम/2010

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
विभूति नारायण राय

सम्पादक
नमिता सिंह

सह-सम्पादक
□ अजय विसारिया □ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

विशेष संपादकीय सहयोग : प्रदीप सक्सेना

कार्यकारी सम्पादक : राजीव श्रीवास्तव
मुद्रांकन : विसारत अली
रेखांकन : राजेन्द्र परदेसी, लखनऊ
मुख पृष्ठ : दिलीपकुमार शर्मा 'अज्ञात', कोलकाता

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

वर्ष 26 □ सितंबर, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय
28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com
Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; □ वार्षिक : 230/-; □ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 300/- □ आजीवन : 2000/- □ विदेशों में साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। केवल लोकल चैक ही स्वीकार किये जायेंगे।)

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

इस अंक में

पाठक मंच/2
अपनी बात/4
स्मरण : मार्कण्डेय-यादें एक श्रद्धांजलि/अरविंद बिन्दु/6
स्मरण : मार्कण्डेय-कविता/संतोष कुमार चतुर्वेदी/8
स्मरण : राही मासूम रज़ा/डा0 कृष्ण चन्द्र गुप्ता/10

हिन्दी दिवस के अवसर पर विशेष
भूमंडलीकरण और राष्ट्र भाषा/रहीम मियाँ/49
भूमंडलीकरण और हिन्दी/अब्दुल लतीफ/51
हिन्दी के अनन्य उपासक : बालशौरि रेड्डी/महेन्द्र प्रसाद कुशवाहा/53
राष्ट्रीय पहचान के कवि : अरविंदाक्षन/वीरेन्द्र मोहन/58
हाल के कुछ विशिष्ट कहानीकार/के0एम0 मालती/62
भारत में भाषायी अस्मिता/अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी/66

कहानी
सपना मर चुके हैं/जयश्री राय/23
कर्ज़ा वसूली/गिरिजा कुलश्रेष्ठ/28
अट्टहास/नताशा अरोड़ा/32

पास-पड़ोस—मराठी कहानी
आँगन का मिठू लाल/दिवाकर कृष्ण/36

प्रवासी कहानी
सावित्री नं. 3/सुदर्शन प्रियदर्शिनी/41

लेख
संकोच एवं ब्रेख़्त: यथार्थवाद की समस्या/रवि श्रीवास्तव/13

गज़ल/कविता
नज़्म/कलकत्ता-2010/शहरयार/9
ग़ज़लें/सलीम खाँ फरीद/12
ग़ज़लें/देवी नागरानी/12

कविता/सुनहरी किरणें/मनीषा जैन/38
कविताएँ/अंशु मालवीय/39
कविता/कविराज/सूरज बड़त्या/46
कविता/भगवान का दिल्ली दर्शन/राकेश भारतीय/47
कविताएँ/राजकिशोर राजन/48
दो कविताएँ/सुमित पी0वी0/50
कविता/पहाड़/सुरेश सेन निशांत/52
कविता/मेरा जीवन/कृष्ण 'सौमित्र'/65

पुस्तक समीक्षा
स्वप्न और संघर्ष के बीच.../(एकांत श्रीवास्तव)/संजीव कौशल/69
कहानियाँ : वक्त को आईना.../राजीवलोचन नाथ शुक्ल/70
गढ़वाली का गढ़वाल/(रणीराम गढ़वाली)/सुरेश पंडित/72
समकालीन कथा साहित्य पर कुछ नोट्स/(परमानंद श्रीवास्तव) /कमला नंद झा/74
सुलगती नदी : आतंकवाद का कुचक्र/(सुरेश सेठ)अनुपाल/75
जीवन दारिद्रय को बूझती कहानियाँ/(देवेन्द्र कुमार पाठक) /विवेक तिवारी/77

सांस्कृतिक समाचार/78

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वर्तमान साहित्य' के अंगस्त अंक में जहाँ एक ओर अनवर सुहैल की कहानी 'डॉली' और अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन' की कहानी 'जेबकतरा' प्रभावित करती हैं वहीं दूसरी ओर यश मालवीय के तीनों नवगीत मन को तो छूते ही हैं साथ ही नवगीत की नयी व्याख्या भी करते हैं। राजेश रेड्डी की ग़ज़लें अच्छी बन पड़ी हैं लेकिन सीताकांत महापात्र की कविता 'भिखारी के बच्चे' अति उत्तम है। कुल मिलाकर अंक संग्रहणीय है।

योगेन्द्र वर्मा 'व्योम', मुरादाबाद

'वर्तमान साहित्य' के अगस्त अंक में प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह का लेख "भाषा, संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति और इस्लामिकेट कल्चर्स" पढ़ा। मैं इस विषय में निम्न बातें विद्वान लेखक तथा आपके मनीषी पाठकों के विचारार्थ प्रस्तुत करना चाहता हूँ :

1. क्या यह अच्छा नहीं होता कि लेखक महोदय संस्कृति का अर्थ समझाकर तब आगे की बातें कहते। मेरा विचार है कि जो एक देश या क्षेत्र के व्यक्ति, परिवार और समाज को परिष्कृत करे वह संस्कृति है। निश्चित ही यह परिष्कृत करने की बात कुछ बातों पर आधारित होगी जैसे आर्य संस्कृति, ज्ञान, भौतिकता तथा अध्यात्म के सुंदर, गतिशील, सम्मिश्रण पर आधारित थी और यह आशा की जाती थी कि आयु के साथ-साथ व्यक्ति अपनी भौतिकता तथा सत्ता की भूख कम करता जायेगा। इसी तरह आज की पाश्चात्य संस्कृति का आधार विज्ञान, भौतिक वस्तुओं की विविधता तथा मात्रा और सत्ता है। रूस से उपजी साम्यवादी संस्कृति के मूल में भौतिक वस्तुओं की मात्रा और व्यक्तिगत संपत्ति की शून्यता थी।

2. भाषा किसी संस्कृति का निर्धारण करती है, स्वीकार करना जरा कठिन लग रहा है। भाषा तो अभिव्यक्ति का एक साधन मात्र है। यह संस्कृति बदलने के साथ बदलती है। ग्रामीण संस्कृति की भाषा, तहसील नगर की भाषा तथा किसी राजधानी की भाषा के अंतर बात को स्पष्ट करते हैं। जैसे-जैसे संस्कृति व्यक्ति को परिष्कृत करती जाती है वैसे वैसे उसकी अभिव्यक्ति प्रभावशाली तथा मधुर होने लगती है।

भाषा की तरह चित्र-कला, संगीत-कला एवं नृत्य-कला अभिव्यक्ति की विविधि विधायें हैं। शायद ये आपस में भी दूसरे से अधिक परिष्कृत विधियाँ हैं।

3. विद्वान लेखक का यह मत कि मुस्लिम संस्कृति कोई संस्कृति नहीं है, उचित है। सऊदी अरब से निकला इस्लाम है जिसके एकमात्र भगवान अल्लाह हैं, एकमात्र पैग़ मौहम्मद साहब हैं, और एकमात्र धर्मग्रंथ कुरान शरीफ है। सऊ अरब से इस्लाम धर्म के प्रभाव में पनपी जो संस्कृति है उ अपनी विशेषताएँ हैं। इस्लाम दूसरे देशों में भी पहुँचा। आज तक 80 देशों में इस्लाम के मतावलंबी पाये जाते हैं पर वे मुसलमान से नहीं जाने जाते हैं। तुर्की के रहने वाले तुर्क, ईरान के रहने ईरानी, अफगानिस्तान के रहने वाले अफगान, इराक के रहने इराकी कहलाते हैं। इन सब देशों के इस्लाम के मतावलंबियों संस्कृतियाँ एक सी नहीं हैं। सब में कुछ न कुछ अंतर है। में तो कमाल पाशा ने बहुत अधिक परिवर्तन कर दिये थे। जिसे हम मुस्लिम संस्कृति कहने लगे हैं वह मूलतः पाकिस्तान और बंगलादेश में इस्लाम के मानने वालों की संस्कृ है जो अन्य इस्लामिक देशों से भिन्न है। विद्वान लेखक ने मुस्लि संस्कृति के इस पक्ष को सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।

शांति स्वरूप
(पूर्व कुलपति, आगरा विश्वविद्यालय)

'वर्तमान साहित्य' अगस्त अंक का मुख पृष्ठ बहुत ही लगा। इस अंक में अब्दुल बिस्मिल्लाह के लेख 'भाषा, संस्कृ मुस्लिम संस्कृति और इस्लामिकेट कल्चर्स' में 'संस्कृति' शब्द जो जोर दिया गया है वह विचार करने योग्य है। अंक में रेड्डी और इन्दु श्रीवास्तव की ग़ज़लें संग्रहणीय हैं। उर्दू कहानी फूल पत्थर का' का अनुवाद अनुवादक ने बहुत सलीके से है। अखिलेश श्रीवास्तव की कहानी 'जेबकतरा' आज के रू-ब-रू कराती है। आज जो हमारे समाज में हो रहा है यह उसी को चित्रित करती है। गिरीश मिश्र ने अपने 'आखिरी में 'चोरी' का ज़िक्र ऋग्वेद से अब तक होने की बात कही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्कुल सच है और चोरी अनेक प्रकारों की होती है जैसा कि इस लेख में दर्शाया है।

पत्रिका का बढ़ता क़द देखकर बहुत प्रसन्नता होती है। साथ ही पत्रिका में जो सामग्री प्रकाशित हो रही है वह संग्रहणीय है। अबकी ऐसा सुनने को मिला है कि सर (कुँवरपाल सिंह जी) के न रहने से अलीगढ़ में प्रेमचंद जयंती के अवसर पर कोई कार्यक्रम नहीं हो पाया। यह गंभीर बात है।

बिसारत अली, केला नगर, अलीगढ़

जुलाई अंक में बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना को आपने-अपने संपादकीय में उठाया है। कॉरपोरेट जगत जिस तरह से भारत पर हावी होता जा रहा है उसमें भोपाल गैस कांड मात्र एक उदाहरण है। आने वाले समय में यदि ऐसी निर्मम घटनाएँ बढ़ती रहीं और सरकार ने कोई कठोर कदम न उठाये तो जनता कीड़े मकोड़ों की तरह मरती रहेगी और प्रशासन गवाह और सबूतों को एकत्र करने में पीढ़ियाँ बिता देगा।

वर्तमान समय में सभी पत्र-पत्रिकाओं व टी.वी. आदि की प्रमुख खबर है नक्सलवाद। नक्सली अपनी अस्मिता को बचाने में जी जान से लगे हैं। भले ही पिछड़े हों, आदिवासी हों, अविकसित समझे जाते हों किन्तु उन्हें एक बात बहुत स्पष्ट ढंग से पता है कि यदि वे अपने जंगलों को शासन या कॉरपोरेट संस्थाओं को दे देंगे तो एक दिन उन्हें भी निर्मम त्रासदी का सामना करना पड़ेगा। आत्मरक्षा के लिए जब जीव-जंतु तक फुसकारना, काटना नहीं छोड़ते फिर वे तो इन्सान हैं। आज जो स्थिति आ गयी है उसमें मात्र नक्सली दोषी नहीं हैं, सरकार भी दोषी है जिसका फल साधारणजन भुगत रहे हैं। 'संकल्प' और 'नारी तुम केवल सबला हो' कहानी बहुत अच्छी लगीं। 'निशा' और 'रचना' नामक पात्रों के रूप में रचनाकार ने यह सिद्ध कर दिया है कि निर्णायक भूमिका सिर्फ़ पुरुष की ही नहीं स्त्री की भी होती है।

त्रेपन सिंह चौहान की तीनों ही कविताएँ अच्छी लगीं।

संध्या मिश्रा, कानपुर

'वर्तमान साहित्य' के जुलाई, 2010 के अंक की कहानियों ने अपनी जबर्दस्त उपस्थिति दर्ज की है। इनाम, संकल्प, लंगड़े पिता, नारी तुम केवल सबला हो और तन्हा-तन्हा ज़िंदगी कहानियाँ शिल्प, कथानक हर दृष्टि से बेजोड़ लगीं। फाल्स-पी कहानी लेखक की सब्जेक्ट पर पूरी पकड़ दर्शाती है। कहानी का अंत कहानी की आत्मा को जीवित कर गया। लघु कथाएँ भी बहुत उम्दा हैं मगर 'भाई' लघुकथा में छोटे भाई के प्रति छिपा हुआ प्यार पकौड़े की शक्ल में दीखता जरूर है पर ये प्यार मुग्ध और चकित करने से ज़्यादा उसके अंधकार पूर्ण भविष्य की ओर इशारा करता है और ये एक त्रासदीपूर्ण अवस्था है जिसे पंकज शर्मा ने सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया है।

ग़ज़लों, कविताओं को पत्रिका में समुचित और सम्मानित स्थान मिला हुआ है, उसी के अनुरूप प्रस्तुतियाँ भी हैं जिन्हें पढ़ना बहुत अच्छा लगा।

आलेख, पुस्तक समीक्षा, आपका संपादकीय, बहुत कुछ है जो वक्त लेकर पढ़ने योग्य है। अप्रतिम प्रयास के लिये बधाई और आगत के लिए शुभकामनायें।

लेखकों के नाम पते के साथ उनका दूरभाष नंबर भी छापने की व्यवस्था हो जाये तो कैसा रहे ? सुझाव है।

राजवंत राज

'वर्तमान साहित्य' जुलाई अंक। संपादकीय में अनेक मुद्दे उठाये गये हैं, जिनका संबंध हमारे राजनैतिक व लोकतंत्र की व्यवस्था से संबंधित है। इस व्यवस्था का शिकार ग़रीब व लाचार जनता होती है जिससे हर प्रकार की व्यवस्था बदलती जा रही है।

कुँवरपाल सिंह का लेख अत्यधिक प्रभावी है, क्योंकि प्रेमचंद सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टिकोण से संवेदनशील रचनाकार थे, जिन्होंने ग़रीब किसानों व दलितों तथा स्त्रियों के लिए आंदोलन चलाये। उनका लेखन समाज के कई वर्गों में प्रभावी रहा।

इस अंक की सभी कहानियाँ आज की स्थिति से जूझती व समाधान की तलाश करती हुयी प्रतीत हो रही हैं। 'संकल्प' अत्यधिक संघर्षशील है। स्त्री कमजोर नहीं है वह काफ़ी कुछ कर सकती है। डॉ0 निहारिका की कहानी स्त्री चेतना को जाग्रत करती है जो जीवन के रास्तों में आने वाले बिखरावों से सहर्ष संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है। जाफ़र मेहदी जाफ़री की कहानी 'तन्हा-तन्हा ज़िंदगी' व राजेश झरपुरे की कहानी 'लंगड़े पिता' युवा वर्ग पर प्रहार करती है जिसका दंश बेचारे बुजुर्गों को झेलना ही पड़ता है। आधुनिक परिवेश ने उन्हें संवेदनशील बना दिया है। कमला सतपथी की कहानी में आधुनिकता का सैलाब उमड़ता है, जो न सिर्फ़ एक ज़िंदगी को तबाह करता है, बल्कि कई घरों को श्मशान बना देता है। डॉ0 ऋतु वार्ष्णेय का लेख पर्यावरण को बचाने की ओर संकेत करता है, जबकि आधुनिक पीढ़ी के इस प्रकृति संपदा से अधिक महत्त्वपूर्ण उनके जीवन में उतरने वाली बनावटी चीजें हैं जिनकी जद्दोजहद में मूल्यविघटन के साथ-साथ वह संवेदनहीन हो गये हैं।

लघुकथाएँ व्यंग्यात्मक हैं। ग़ज़लें प्रेरक हैं। त्रेपनसिंह चौहान की कविता असहजता से भरी स्त्री की आत्मीयता की छटपटाहट से लबरेज है।

बीना सिंह, छतरापुर, कानपुर नगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

चर्चित उपन्यासकार और अंतरराष्ट्रीय महात्मागांधी हिन्दी विश्वविद्यालय के कुलपति विभूति नारायण राय का 'नया ज्ञानोदय' में छपा इंटरव्यू। वह कुछ जो दबी-दबी ज़बानों में कहा जा रहा था, उस के पर्दे उघाड़े, तो तूफ़ान आना ही था। बेहद सुसंस्कृत और शालीन माने जाने वाले विभूति जी ने जिस शब्द का प्रयोग कुछ लेखिकाओं के लिए किया, वह अशोभनीय था और निंदा योग्य था, मगर जब उन्होंने इसे अपनी ग़लती मानते हुए सार्वजनिक रूप से माफ़ी माँग ली, तो इस प्रकरण को समाप्त हो जाना चाहिए था।

साहित्य जगत के लिए अफ़सोस की बात यह है कि किसी ने पूरे इन्टरव्यू पर कोई बात नहीं की और एक शब्द पर ही जाकर पूरी बहस औंधी हो गयी। मेरा भी इस शब्द के इस्तेमाल पर सख़्त ऐतराज़ है, लेकिन उससे ज़्यादा ऐतराज़ साहित्य के उस बाज़ारीकरण से है, जिसे लगातार बाज़ारू बनाने की कोशिश की जा रही है और इसमें अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं संपादक के रूप में रवीन्द्र कालिया जी। पहले 'वागर्थ' और अब प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था ज्ञानपीठ और उसकी पत्रिका, जिसका एक गौरवशाली इतिहास रहा है, साहित्य-समृद्धि की एक निष्ठावान परंपरा रही है, उसका श्राद्ध करने में जुटे हुए हैं और सबको जिमा रहे हैं। आज के साहित्यिक सरोकारों में सबसे बड़ा मुद्दा बना दिया गया है—'क्या बिकेगा'। इससे पहले भी 'युवा' और 'प्रेम' के नाम पर जो फ़ौज खड़ी की गयी और जो साहित्य छापा गया, वह सबकी निगाहों में है। 'आठ-आठ पुनर्मुद्रण' के रूप में शायद वो कीर्तिमान स्थापित करना चाहते हैं, जो एक ज़माने में प्यारेलाल आवारा, कुशवाहा कांत और बाद की पीढ़ी में गुलशन नंदा मार्का लेखकों ने बनाये थे, जिनके एक-एक उपन्यास की लाखों प्रतियाँ छपती थीं। साहित्य का उद्देश्य और सामाजिक सरोकार अब 'बेवफाई' और 'सुपर बेवफाई' तक सीमित हो रहे हैं और पत्रिका की बिक्री बढ़ना ही मात्र उद्देश्य रह गया है। विचारहीन और अगंभीर हाथों में कमान होने से साहित्य का इस मुकाम तक पहुँचना लाज़िमी है।

इस अगंभीर वातावरण में विभूति जी ने अगर इन्टरव्यू दिया, तो आश्चर्य नहीं कि वे भी ऐसे शाब्दिक विचलन के शिकार हुए, लेकिन इसके बावजूद किसी ने उस इन्टरव्यू की चर्चा नहीं की, जिसने आज के स्त्री-विमर्श के बेहद जरूरी मुद्दों को सामने रखा और जिसके विषय में पिछले समय से लगातार कहा जा रहा है कि आज का स्त्री-विमर्श देहवाद तक सिमट कर रह गया है, जो अब पूरे महिला-आंदोलन को भी प्रभावित कर रहा है।

स्त्री-विमर्श की आधुनिक अवधारणा उच्च मध्य वर्ग की महिलाओं के सोच पर आधारित है, जिसका क्षेत्र बेहद सीमित है। स्त्री-पुरुष के बीच बराबरी के अधिकार के लिए संघर्ष की शुरूआत निश्चित रूप से उसी स्त्री-समूह के द्वारा संभव थी, जो खुद पढ़ी-लिखी, सक्षम और हर प्रकार से योग्य थीं और बावजूद इसके अपने स्त्री होने के कारण दोयम दर्ज़े का स्थान उनके लिए यातनादायक था। स्त्री-आंदोलन की यह सबसे बड़ी सफलता थी कि स्त्री ने अपने सामाजिक, नैतिक और परंपरा-प्रदत्त बंधनों की पहचान की और उन्हें समाप्त करने की दिशा में प्रयास किया और धीरे-धीरे सफलता भी पायी। अपने हालात की सही पहचान कर पाना भी एक क्रांतिकारी क़दम होता है और वही आगे संघर्ष का रास्ता तय करता है और बदलाव के लिए साहस देता है। इस संदर्भ में विभूति जी ने एंगेल्स की पुस्तक 'परिवार, व्यक्तिगत संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' से सही उद्धृत किया है कि 'लंबे नीरस दांपत्य से उत्कट प्रेमपगा एक ही चुंबन बेहतर है', की दलील को एंगेल्स ख़ारिज करते हैं और कहते हैं कि यह तर्क पुरुष के पक्ष में ही जाता है। जब तक संपत्ति और उत्पादन के स्रोतों पर स्त्री-पुरुष का समान अधिकार नहीं होगा, पुरुष इस स्थिति का फ़ायदा स्त्री के भावनात्मक शोषण के लिए करेगा।" मैंने किसी समाचार-पत्र में पढ़ा कि 'इस प्रकरण से पूरे स्त्री आंदोलन में एक नया मोड़ आयेगा।' निश्चित रूप से यह प्रकरण इस मुद्दे पर भी लोगों का ध्यान केंद्रित करेगा कि आज स्त्री-स्वातंत्र्य की अवधारणा उस मोड़ पर है, जहाँ स्त्री अपनी यौनिकता पर चर्चा कर सकती है, अपनी स्वयं की देह पर अपने अधिकार का प्रश्न उठा सकती है। यह उसके व्यक्तित्त्व के, उसकी अस्मिता के जुड़े मुद्दे हैं, लेकिन यह प्रकरण इस बहस को नये सिरे से फिर शुरू करेगा कि क्या स्त्री-स्वातंत्र्य का अर्थ केवल यौन-संबंधों की स्वतंत्रता तक सीमित है। दरअसल, पूँजीवाद अपने आरंभिक चरण में समाज के सामने उदारवादी चेहरा लेकर आता है, क्योंकि उसे श्रम करने वाले हाथों की ज़रूरत होती है और यह व्यवस्था स्त्री के श्रम के लिए जगह बनाती है, उसे बंद घर से बाहर लेकर आती है, जहाँ एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरा-पूरा विस्तृत संसार उसे नज़र आता है और वह उसका हिस्सा बनने की कोशिश करने लगती है। यही पूँजीवाद जब अपने चरम में नयी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करने लगता है, औपनिवेशिक रूप में नये बाज़ारों का निर्माण करने लगता है, तो बाज़ार-संगत नये मूल्य निर्धारित होने लगते हैं। यह नयी बाज़ारवादी व्यवस्था स्त्री-पुरुष को आमने-सामने खड़ा करके नये संघर्ष पैदा करने लगती है। इसीलिए, लैंगिक असमानता को दूर करने का मुद्दा, स्त्री-पुरुष के परस्पर सहयोगी बनने का मुद्दा कहीं पीछे छूट जाता है और स्त्री-मुक्ति की अवधारणा अपने यौन-संबंधों की स्वतंत्रता के संघर्ष तक सीमित हो जाती है, हालाँकि यह भी केवल वर्ग विशेष की स्त्रियों की ही समस्या बनकर रह जाती है। इस बाज़ारवादी समय में ज्यों-ज्यों संपन्नता बढ़ती है, स्त्री बनाम पुरुष प्रश्न उठने लगते हैं और अंततः देहवाद हावी होने लगता है।

विभूति जी यह भी कहते हैं कि "एक ओर शहरीकरण, शिक्षा और स्वावलंबन ने स्त्री-पुरुषों को ज़्यादा घुलने-मिलने के अवसर प्रदान किये हैं, लेकिन इसके साथ ही परस्पर लोकतांत्रिक संबंध विकसित नहीं हुए हैं, क्योंकि अर्ध सामंती और अर्ध औपनिवेशिक भारतीय समाज आज भी बड़ी हद तक पितृसत्तात्मक है। पुरुष के लिए स्त्री आज भी किसी ट्रॉफ़ी की तरह है... रोज़ ही अख़बारों में महिला मित्रों की वीडियोक्लिपिंग बना कर बाँटते हुए पुरुषों की ख़बरें पढ़ने को मिलेंगी... पितृसत्तात्मक समाज में स्वाभाविक ही है कि स्त्री पुरुष के लिए ट्रॉफ़ी की तरह है... देह-विमर्श तक सिमटने से स्त्री-मुक्ति के मुद्दे हाशिये पर चले गये हैं।"

दरअसल, उच्च-मध्यवर्ग और उच्च वर्ग से आने वाली स्त्रियों के सरोकार जहाँ आर्थिक रूप से पुरुष पर निर्भरता अपेक्षाकृत कम होगी या दैनिकजीवन में अर्थ संबंधी समस्याओं से सामना नहीं होगा, निश्चित रूप से दूसरे वर्ग की स्त्रियों से भिन्न होंगे। इसीलिए इसी सीमित वर्ग के मुखर होने से और समाज में इसके अग्रणी भूमिकाओं में होने से यही मुद्दे स्त्री-विमर्श में प्रमुखता पाने लगते हैं और स्त्रियों की अपेक्षाकृत बहुत बड़ी तादाद आंदोलन के स्वरूप और सरोकारों से बाहर हो जाती है, जहाँ जीवन को बचाये रखने की जद्दोज़हद पहला सवाल होती है। वहाँ तो औरत काम करती है, भूखी भी रहती है और फिर पिटती भी है, लेकिन फिर भी सब कुछ छोड़कर बाहर नहीं आ सकती, क्योंकि सर के ऊपर छत चाहिए। सड़क पर खड़ी मजबूर औरत का रास्ता सिर्फ़ अंधेरी बंद गलियों में जाता है। इसलिए, स्त्री-विमर्श के स्वरूप को भी निर्धारित करना होगा और बहुसंख्यक स्त्रियों के लिए, उनके मुद्दों के लिए उसमें जगह बनानी होगी, तभी स्त्री-मुक्ति का आंदोलन विस्तृत हो सकता है। साहित्य में, जहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों की अंतरंगता, चटख़ारेदार, रस लेने वाली हो, उससे कौन-सा महान मक़सद पूरा होता है, कौन से सरोकार रेखांकित होते हैं या किस तरह के सामाजिक ज्ञान में वृद्धि होती है... ये महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। लेखक पुरुष हो अथवा स्त्री, उनकी आत्मकथाओं में उनके किस-किस से और किस प्रकार के यौन संबंध रहे, उन्होंने अपने अंतरंग क्षणों को कैसे जिया... इससे पाठक को क्या हासिल होना है? दरअसल, साहित्य में छाया बाज़ारवाद आज साहित्य के, साहित्यिक पत्रिकाओं के और लेखन के सरोकारों के उद्देश्यों को, उसके सामाजिक विमर्श को सनसनीखेज बनाकर बिकाऊ बना रहा है। मक़सद बिक्री बढ़ाना है। जो सनसनाहट पैदा कर सकेगा, वही बाज़ार में टिकेगा। अपनी महिला मित्रों के साथ पुरुष - रंगरेलियाँ मनाते हैं और फिर उन अंतरंग क्षणों की वीडियो क्लिपिंग बनाकर बाजार में भी उतार देते हैं, जो संज्ञेय अपराध की श्रेणी में आता है। यही साहित्य में शब्दों के माध्यम से क्रांतिकारी तेवरों के साथ जब होने लगता है, तो सोचना पड़ता है।

विभूति नारायण राय के लेखन और गतिविधियों में हमेशा बड़े सामाजिक सरोकार रहे हैं। सांप्रदायिकता के मुद्दे पर उसके विरुद्ध वे हमेशा चट्टान की तरह खड़े रहे। हाशिमपुरा कांड का न सिर्फ़ उन्होंने उद्घाटन किया, बल्कि अपने ही विभाग के सहकर्मियों को, जो जघन्य सांप्रदायिक हत्याओं के ज़िम्मेदार थे, कठघरे में खड़ा किया। आज भी यह प्रकरण न्यायालय में चल रहा है। नब्बे के दशक में जब राम मंदिर आंदोलन चरम पर था, अपनी बेबाक राय को सार्वजनिक करने के कारण उन्हें बहुत बड़ा रिस्क लेना पड़ा और उ. प्र. से पलायन करना पड़ा। मुझे याद है, वे अलीगढ़ आये थे और कुँवरपाल ने, जो उस समय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे, उनका व्याख्यान कराया था। उसके बाद ही वे विभागीय स्तर पर परेशान किये जाने लगे थे। निश्चित रूप से अपने इस इंटरव्यू में उन्होंने यौन-संबंधों को बहुत बहादुरी और बेबाकी से प्रस्तुत करने वाली लेखिकाओं के लिए जो कहा, वह बेहद अनुचित है और स्वयं विभूति जी की गरिमा के अनुकूल नहीं है, लेकिन इस एक शब्द के विचलन से उनका पूरा कृतित्व, उनके पूर्व के सारे क्रियाकलाप, सामाजिक सरोकारों के लिए रिस्क लेने की सीमा तक प्रतिबद्धता, सब एक झटके में शून्य तो नहीं हो जाएँगे। उन्हें ऐसा चित्रित किया गया, मानो वे सदी के वे सबसे बड़ा खलनायक हों! और वे लेखक, संपादक जो अपनी लंपटता और बेहयायी को साहित्य बनाकर उछालते रहे हैं, सिंहासन पर बैठकर फतवे देने लगे?

दरअसल, धर्म और राज्य-व्यवस्था के संबंध और सांप्रदायिकता जैसे मुद्दे हमारी लेखिकाओं के सरोकारों में नहीं आ पाये हैं। इन प्रश्नों पर आते ही मुक्तिबोध के शब्दों में कहें, तो तय करना पड़ता है कि 'हम किस ओर हैं।' स्त्री-पुरुष पाले के अलावा समाज में दूसरे भी पाले हैं और उन पर भी ध्यान देने की ज़रूरत है, अपना स्टैंड लेने की ज़रूरत है। विभूति जी ने इन खास मुद्दों को लेकर जो बात कही है, उस पर भी ध्यान देने की ज़रूरत है। वरना तो यही कहा जाएगा कि—

"लमहों ने ख़ता की थी, सदियों ने सज़ा पायी।"

नीलिमा सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यादें : एक श्रद्धांजलि

अरविंद बिन्दु

मैंने परदे के पीछे से झाँक कर देखा। बेंत की कुर्सी पर एक खूबसूरत व्यक्ति पैर पर पैर चढ़ाए, पिता से बातें कर रहा था। माँ से मैंने पूछा—"कौन हैं"? बताया—'बाबू जी के दोस्त हैं।'

नाम से मुझे क्या मतलब था। इसका बोध भी नहीं था कि इनका नाम जानना चाहिए। उस समय मेरी उम्र काफ़ी छोटी थी, पाँचवी कक्षा में पढ़ता था।

बहरहाल मैं बैट-बाल खेलने में लग गया। घर बड़ा नहीं था। करेला बाग कॉलोनी का यह मकान एक कमरे का, जहाँ बरामदे से लगा आँगन था।

बॉल खेलते-खेलते कमरे में चली गई। मेरी परेशानी बढ़ गयी, कैसे जाऊँ? माँ से मैंने कहा, 'तुम लेकर आओ।' बाल उस व्यक्ति के पैर से टकराई और कुछ ही क्षणों में कमरे से बाहर आ गयी। उनका पैर परदे के नीचे से दिख रहा था।

दिन के बारह बज रहे थे। पिता ने उस व्यक्ति से कहा 'मैं पाँच मिनट में नहाकर आ रहा हूँ, तुम बैठो।' और वह चले गये। व्यक्ति ने मुझे अंदर बुलवाया। सुंदर चेहरा, पैंट शर्ट में, लंबाई 6 फिट की। बड़े प्यार से पूछा, 'बेटा, यहाँ कोई पास में दुकान है, जहाँ कुछ खाने की चीज मिलती हो?' दुकान करीब ही थी।

वह मुझे वहाँ लेकर गये और खूब सारी टाफियाँ खरीदकर मेरी पैंट-शर्ट की जेब में भर दीं।

घर जब पहुँचे तो पिता नहा चुके थे। माँ ने नाश्ते में पकौड़ियाँ और आँटे का हलुआ तैयार किया था। मेरी जेब को देखते ही, पिता ने उन व्यक्ति से कहा 'अरे मार्कण्डेय ये इतनी टाफियाँ खायेगा? इसने जिद्द किया होगा। उन्होंने मुस्कुराते हुए जैसे बड़ी गंभीर बात हो, (थी गंभीर) 'अमरकांत, बेटे को पता लगना चाहिए कि उसके पिता का मैं करीबी दोस्त हूँ। इसकी इसे जरूरत थी मैं समझता हूँ'। बहन भी छोटी ही थी मगर मुझसे बड़ी। कहने लगे 'अपने जेब से कुछ टाफियाँ निकालकर संध्या को दे दो।' मैंने दो-चार टाफियाँ निकालकर उसे दे दीं। हम दोनों ही कमरे से उछलते हुए आँगन तक गये, फिर कमरे में। अब मार्कण्डेय जी अन्जान नहीं थे।

कमरे में माँ, अमरकांत जी, मार्कण्डेय जी और हम भाई-बहन। बातचीत-संवाद होने लगे, मैं और बहन लुत्फ़ उठाने में सक्षम नहीं थे, मगर संवाद में जो ठहाके लगते वह अलग-बगल के कई दरवाजों को प्रभावित कर जाते। उन दिनों मार्कण्डेय जी और कथाकार शेखर जोशी का आना अक्सर होता था। वैसे तो घर पर बड़े-छोटे साहित्यकारों का जमावड़ा अक्सर हुआ करता था, बाहर से कोई रचनाकार बिना अमरकांत जी के मिले जाते नहीं थे। एक खुशनुमा साहित्यिक वातावरण की अनुभूति बराबर बनी रहती थी। अक्सर दावतों और नाश्ते का दौर चलता, सत्कार का वेहद ख्याल रखा जाता। मेरी माँ के बनाये व्यंजनों की आज भी तारीफ की जाती है और उनके सेंस आफ़ ह्यूमर की भी।

मार्कण्डेय जी कई बार यह कहते कि गिरजा भाभी के व्यंजन के बारे में तो कुछ कहना ही नहीं लेकिन व्यंग और मजाक का जवाब नहीं। एक जबरदस्त प्रतिभा से वह संपन्न थीं।

समय गुजरता चला गया, मेरी भी उम्र बढ़ी। अब रचनाकारों और उनके साहित्यिक मूल्यों को समझने में मुझे कुछ सहूलियत होने लगी। मैं साहित्यिक रचनायें समझने लगा। मार्कण्डेय जी को भी हल्का सा एहसास हो गया—'भाई अमरकांत लगता है बिटुआ में भी कुछ साहित्यिक समझने पढ़ने की रुचि बढ़ी है।' पिता ने कोई कमेंट नहीं, अलबत्ता कह दिया 'राजा, रथ छोड़ दो, कोचवान परेशान है, कितनी देर बैठाओगे?' बाहर मार्कण्डेय जी का रिक्शा खड़ा था और रिक्शे वाला अमलताश के पेड़ की छाँह में बैठा इंतजार कर रहा था।

मुझे एक वाकया याद आ गया। एक दिन मार्कण्डेय जी का प्रातःकालीन आगमन हुआ, 9 बजा था। नाश्ता पानी, हंसी-मजाक, गल्प होने लगा। बातचीत के दर्मियान उन्होंने बताया, भैरव जी और उपेन्द्रनाथ अश्क जी एक दूसरे को फूटी आँखों नहीं देख सकते। अगर इन दोनों में किसी को पता चल जाय फंला मेरे घर में है, तो इनका रास्ता बदल देना निश्चित है। यह मैं सुन रहा था। मन ही मन मैंने सोचा, अच्छा तो यह बात है। चलो एक दिन मजा लिया जाय। ठीक उसी वक्त अश्क जी का रिक्शा घर के सामने आकर खड़ा हुआ। अंदर से मैंने देख लिया। मैं दौड़कर उनके पास गया, नमस्कार किया। उन्होंने पूछा, कहो बेटे कौन-कौन आया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने मुस्कुराकर कहा-भैरव अंकल। इतना सुनते ही वह रिक्शे से उतर गये, रिक्शे वाले का हैंडिल पकड़कर उन्होंने मोड़ दिया। 'जल्दी चलो एक काम याद आ गया।' रिक्शा वाला अवाक् होकर उन्हें देखने लगा।' मेरे लाख कहने पर कि नहीं वह नहीं आये हैं, लकने का नाम नहीं और चले गये। पिताजी और मार्कण्डेय जी को पता चला तो कुछ दुखी हुए, फिर सामान्य हो गये।

काफी समय पश्चात् मैंने मार्कण्डेय जी की एक रचना 'हंसा जाई अकेला' पढ़ी। यह कहानी 1956 में पहलीबार कहानी पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। कहानी पढ़ने के बाद मार्कण्डेय जी की जो पर्सनालिटी उभर कर आई, वह पहले वाले मार्कण्डेय से मुक्त हो चुकी थी और वह प्रगतिशील मूल्यों के जनवादी रचनाकार के रूप में सामने उभर आये।

मार्कण्डेय जी ग्रामीण परिवेश के सशक्त रचनाकार थे और शोषित वर्ग के समर्थन में प्रगतिशील मूल्यों की बात करते।

'हंसा जाई अकेला' का हंसा मूर्ख समझा जाने वाला एक ऐसा करेक्टर है जो उपेक्षित है। मगर जब प्रबुद्ध लोगों द्वारा यह सुनता है कि कोई सुशीला देवी कांग्रेस पार्टी की मीटिंग करने के लिए आ रही हैं, तो वह खुश हो जाता है। वहाँ मीटिंग होना इतना आसान नहीं था, उस गाँव में तो हमेशा रामलीला ही होती थी लेकिन हंसा मीटिंग करवाने की दावेदारी पेश कर देता है। मीटिंग सफल हो जाती है। अब उसमें चेतना का संचार होता है। वह सुशीला देवी से एक लगाव भी महसूस करता है। वह गन्ही महात्मा (महात्मा गांधी) जवाहिर लाल (जवाहरलाल) और जनता की फौज यह शब्द जानने लगा है। सुशीला देवी की मृत्यु पश्चात तिरंगा को टांगता है और उनका बिगुल भी।

आज़ादी पश्चात् उसे कुछ रुपये मिलते हैं, उसे लेकर वह खूब हँसता है और उसमें से एक-एक रुपया गाँव की दीवारों पर लगा देता है। लोग उसे पागल समझते हैं, मगर ऐसा है नहीं, दरअसल उसे नोट पाने की खुशी नहीं है, खुशी है तो आज़ादी मिलने की। इस कहानी को हिन्दी साहित्य में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है और मार्कण्डेय जी की ताकत की एक जबरदस्त पहचान है।

मार्कण्डेय जी का जन्म 02 मई, 1930 को गाँव-बराई, केराकत तहसील, जिला-जौनपुर में हुआ। किसान आंदोलन से जुड़कर भूमिहीन मजदूरों और ग़रीब किसानों की दुर्दशा एवं पीड़ा को उन्होंने देखा, उससे गहरे प्रभावित हुए। यह प्रभाव उनकी अनेक कहानियों में दिखाई पड़ता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के एक प्रमुख कहानीकार के रूप में वह दिखाई पड़ते हैं।

मार्कण्डेय जी ने हमेशा नये रचनाकारों को प्रोत्साहित किया। रवीन्द्र कालिया जी मेरी एक कहानी 'रूमाल' पत्रिका गंगा-जमुना में प्रकाशित करना चाहते थे। यह इलाहाबाद से निकलती थी, वह इसका संपादन कर रहे थे। वह चाहते थे, इस कहानी पर कोई बड़े रचनाकार की टिप्पणी। मैंने उनसे कहा, आपके संपादन में यह छप रही है यह मेरा सौभाग्य है, हालाँकि यह इसके पूर्व साक्षात्कार में प्रकाशित हो चुकी थी। फिर मैंने कहा, बिना टिप्पणी के प्रकाशित कीजिए। तारीफ़ में बोले, 'यार तुमने क्या लिख दिया है तुम्हें खुद नहीं पता', तुरंत मार्कण्डेय जी को फोन किया जो उस वक्त कुछ अस्वस्थ थे।

कहानी उनके पास पहुँच गयी थी। उन्होंने मुझे फोन किया। उन्हें नहीं मालूम था कि 'अरविन्द बिन्दु' अमरकांत जी का बेटा है। वह मेरी पहली कहानी थी, जो इसी नाम से लिखी गयी थी। मार्कण्डेय जी से मिले काफी समय बीत चुका था। मैं भी दिल्ली चला गया था और वहाँ नौकरी कर रहा था, वहाँ से जब इलाहाबाद आया। यहाँ माता-पिता दोनों ही बीमार चल रहे थे। मार्कण्डेय जी भी अस्वस्थ हो गये, सर्जरी बाईपास के बाद उनका भी निकलना बंद हो गया था। वह मेरा बिन्दु ही नाम जानते थे। उनकी कल्पना में इस कहानी का लेखक कोई और था। श्री रवीन्द्र कालिया जी ने बताया नहीं था।

देखते ही बोले, 'अरे भाई, तुम अमरकांत जी के बेटे हो ना? यार तुमने ऐसी कहानी लिख दी, मुझे कहना नहीं चाहिए मगर मैं रोक नहीं सकता', उन्होंने एक असहज वाक्य कह दिया 'यह कहानी विश्व की अमर कहानियों के समकक्ष रखी जाने वाली रचना है। तुम्हें अपने पर संयम रखना होगा। टिप्पणी मैंने लिखी है कल पढ़ना।' उन्होंने जो टिप्पणी की थी उसका मुझे अनुमान नहीं था, बहुत संतुलित नये रचनाकारों के लिए जो शब्द इस्तेमाल किये जाते हैं और कहानी की हाइट। मैं कहानीकार हो गया। उनकी टिप्पणी के बाद वह कई जगह प्रकाशित हुई। कई चेक उन्हीं के पास आये। एक चेक तो उन्होंने कवि बोधिसत्व के हाथ भिजवाया। कमलेश्वर जी ने कहानी लिफ्ट कर ली और उनके द्वारा भेजा गया एक चेक मार्कण्डेय जी के यहाँ आया। भेजे हुए लिफाफे पर एक छोटा वाक्य लिखा था, यह कहानी दूर तक ले जायेगी-मार्कण्डेय।

वह अच्छे आलोचक और अच्छे संपादक थे। उनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं जिनमें कहानी संग्रह-पानफूल, महुए का पेड़, हंसा जाई अकेला, भूदान, माही, महज शुभ और बीच के लोग।

उपन्यास	: सेमल के फूल और अग्निबीज
एकांकी संग्रह	: पत्थर और परछाइयाँ
आलोचना-पुस्तक	: कहानी की बात

एफ-6, पंचपुष्प अपार्टमेन्ट
नेवादा, अशोक नगर, इलाहाबाद-211001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आदमी जिया करता था लगातार

संतोष कुमार चतुर्वेदी

उनके बारे में तमाम बातें
जानने का दावा कर सकता हूँ मैं
बावजूद इसके
एहतियातन यह भी कहा जा सकता है
कि बहुत कुछ नहीं भी जान पाया
उनके बारे में
उनके अंदरूनी ज़ख़्मों के बारे में तो कत्तई नहीं
जिनका टभकना
तमाम कोशिशों के बाद भी
नहीं उतर पाता था उनके चेहरे पर
जानते हुए भी नहीं जान पाये
जैसे अपने को जीते हुए भी
नहीं जान-समझ पाते हम
खुद अपने ही जीवन की पहेली
जैसे आँखें खुली होने के बावजूद
टंग जाता है इन पर एक ऐसा पर्दा
जिससे होकर देखते हुए भी
नजर नहीं आता हमें कुछ भी

फिर भी
एक आदमी के तौर पर मैं उनको
बखूबी जानता-पहचानता था
रिश्तों के तार को
अपनी धुन के मुताबिक छेड़ते हुए
गढ़ लेते थे वे
बातों-बातों में ही
कोई न कोई बात
उनको फुहारों के रूप में
कई बार महसूस किया था मैंने
तपती हुई धूप में जब
धरती का कलेजा
जगह-जगह से फटने लगता था
और किसानों की आँख में
उग आती थी
दिन में ही जोन्ही
उमड़-घुमड़ कर घिर आते थे वे आदतन
आसमान में घटा बनकर
फिर बरसने लगते थे धरती पर इस कदर छहर-छहर
कि भीग जाती थी समूची मिट्टी
तब हरियाली झूमने लगती थी
धरती की डाल पर डालकर झूला
बेखौफ़ होकर

उनको वृक्ष रूप में पाया
जब-जब मैंने देखा उनको
जब कभी आते लोग थके-मांदे
अपनी छाँव से ढँककर
वे अपनी पत्तियों का बेना
हाँकने लगते फौरन
वे खिल उठते अपने फूलों में
किसी के दुःख को कम करने खातिर
तत्काल ही
और भूखों के आगे तो
अपनी ही पत्तियाँ के दोने में परोस देते
अपनी ही डाल के पके हुए फल बिना किसी हिचक के
उनसे बतियाना एक पेड़ से बतियाना था
दिल खोलकर
पूरी-पूरी सच्ची-मुच्ची बातें
जिसे मैं अक्सर दोहराता था
उनसे बातें करते-करते

सूरज बनकर एक दुनिया का अंधेरा दूर करते
मैंने उन्हें अपनी आँखों देखा था
खुद में जलते रहते थे वे पल-प्रतिपल
जैसे हजारों हाइड्रोजन बम
फूट पड़े हों एक साथ
और धधक उठा हो
उनका अपना धरातल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन दूर कहीं फैलने लगा हो उजास
और दूर कहीं फिसलता हुआ चाँद
पड़ने लगा हो शीतल
आसमान में फैले बादल भी
जब उनके उजास से
तात हो जाते थे
एक अनोखे अंदाज में

कथा रूप में तो वाकई बेजोड़ थे वे
कई-कई प्रसंग एक साथ जुड़ते थे उनसे
कुछ-कुछ सच्चे तो तमाम झूठे-मुट्ठे
इस कथा में ही कहीं
अपनी ही चोट से
व्यथित नजर आते दिख जाते वे
और जब कहीं कभी हम
डूबते-दिखते निराशा के भंवर में
भांप जाते वे तुरंत
फिर सामने आते
राह दिखलाते
तमाम-तमाम बातें बतलाते

इतना ही जाना मैंने उनको जितना देखा
लेकिन इतना भी नहीं जाना
कि ढाल दूँ उन्हें ही
एक कहानी के दायरे में तुरत-फुरत
हमारे लिए तो यह भी मुश्किल है
कि उन्हें कविता के बीच
लाकर रख दूँ
जैसे का तैसा
और रही जहाँ तक नाटक की बात
तो बस इतना समझ लीजिए
कि कई नाटकों में कई मौकों पर
उनकी आँखें कई बार
नम होते पाया था मैंने
और इसे कहीं से भी
नाटक कहना मुनासिब नहीं
वे तो बस एक आदमी थे
आदमी की शक्ल में एक ठेठ आदमी
अपने घर-बार में मशगूल रहते हुए भी
दूसरों की चिंता में
लगातार घुलता हुआ एक आदमी
वे तो बस एक कहानी थे
दूसरों के जीवन को
अपनी फिक्र में ढालते हुए
वे तो बस एक घबराहट थे
प्रतिरोध की आहट
लगातार कम होते जाने से
बेहिसाब घबराये हुए

सच-सच कहूँ तो
बस इतना ही जानता हूँ मैं उनको
इससे कम या इससे ज़्यादा कुछ भी नहीं
कि कठोर होते जा रहे समय में बहुत नरम थे वे
कि ठण्डे पड़ते जा रहे जमाने में गरम आँच से थे वे
कि हताशाओं के दौर में
एक गहरी आस जैसे थे वे
बार-बार महसूस किया मैंने
कि एक आदमी जिया करता था उनके अंदर
अपनी ही शर्तों पर
उनके धर्म और उनकी जाति के अहम को
लगातार ठेंगा दिखाते हुए
अपने साथ-साथ हमें भी लगातार
कुछ और अधिक आदमी बनाते हुए।

3/1, बी.बी. बनर्जी मार्ग
नया कटरा, इलाहाबाद-211002

नज़्म

कलकत्ता-2010

शहरयार

ऐ मेरी उम्मीद के ख़्वाबों के शहर
मेरी आँखों की चमक,
आने वाले ख़ूबसूरत रोज़ो-शब के ऐ अमीं
सुन कि अब मख़्लूक तुझ से खुश नहीं
मेरे हक़ में ये सज़ा तजबीज़ बस होने को है
मैं तुझे वीरान होते देखने के वास्ते
और भी कुछ दिन अभी ज़िंदा रहूँ।

मेडीकल रोड, अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राही मासूम रज़ा के बहाने

डॉ. कृष्ण चन्द्र गुप्त

बात तो घुमड़ रही थी काफ़ी समय से, जब से बहुसंख्यक सांप्रदायिकता का ज़हर भोली भाली जनता में भरा जा रहा था। लेकिन उसकी मुखर अभिव्यक्ति हुई, ''मैं राही मासूम'' को देखकर। हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा मार्च में आयोजित राष्ट्रीय कार्यशाला ''साहित्य, सिनेमा और युवा'' पर केंद्रित थी। इसमें 9 मार्च को हैदराबाद की 'सूत्रधार' नाट्य संस्था द्वारा ''मैं राही मासूम'' नामक 70 मिनट के एकपात्रीय नाटक में श्री विनय वर्मा ने जब ''अभिनव क़दम'' नामक पत्रिका के राही मासूम रज़ा विशेषांक (सं0-कुँवरपाल सिंह) के आधार पर राही मासूम रज़ा को बड़े ही जीवंत और सहज रूप में प्रस्तुत किया। राही मासूम रज़ा अपने उपन्यास 'आधा गाँव' के कारण हुए विवाद से और अधिक चर्चित हुए। गाली गलौज के प्रयोग के कारण अभिजात रुचि को पसंद नहीं आए थे।

राही की ख्याति महाभारत नामक प्रसिद्ध धारावाहिक के संवाद लेखक के रूप में डॉ. नगेन्द्र ने यह लिखकर और पुष्ट कर दी कि हिन्दी में ऐसे संवाद नहीं लिखे गये। राही प्रगतिशील दृष्टिसंपन्न कवि, कथाकार, आलोचक, अध्यापक के नाते भी प्रसिद्ध भी थे लेकिन सबसे अधिक उन्होंने सांप्रदायिकता-अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक-पर प्रखर प्रहार करते हुए अपने को सबसे पहले हिन्दुस्तानी के रूप में घोषित किया और फिर मुसलमान बताया क्योंकि आज के समय में हिन्दुस्तानी होना उतना आवश्यक नहीं समझा जाता, जितना हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई के रूप में अपनी पहचान बनाना और घोषित करते फिरना है।

पिछले तीन दशकों से हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सांप्रदायिकता के दुष्परिणाम निर्दोष, भोली भाली जनता भुगत रही है। वह भोली भाली जनता जिसे अपनी रोजी रोटी जुटाने से ही फ़ुरसत नहीं उसे मंदिर, मस्जिद या खालिस्तान के बनने या ना बनने के विवाद से कोई मतलब नहीं। लेकिन उसी के नाम पर राष्ट्रीय या कौमी अस्मिता की आड़ में अल्संख्यक या बहुसंख्यक सांप्रदायिक उन्माद, घृणा और द्वेष फैलाया जाता रहा, जिसका शिकार निर्दोष, भोली भाली जनता हो रही थी। सांप्रदायिक मुल्ला-मौलवियों, संघ परिवारियों और धर्म गुरुओं द्वारा बड़ी धूर्तता से समाज को विषाक्त किया जाता रहा। कश्मीर में आतंकवाद को भी सीमा पार से अपने अपने स्वार्थों के लिए पाला पोसा जा रहा है।

तो ऐसे माहौल में राही मासूम रज़ा की इस प्रस्तुति सांप्रदायिकता की भयावहता को और अधिक उजागर कर दि

पहले राही का विरोध हुआ-गलियों के कारण, जिसका उ अपने उपन्यास की भूमिका में उन्होंने यह दिया कि जनजीवन गालियाँ ख़ूब दी जाती हैं। सभ्य लोग भी प्रायः अंग्रेज़ी गालियों प्रयोग करते हैं और सामान्य हिन्दुस्तानी तो अपने स्तर के अनु बोलचाल के लहजे में धड़ल्ले से गालियों का प्रयोग करता है और कुछ तो गालियों के बग़ैर बोल ही नहीं सकते। यहाँ तक स्त्री-बच्चों को भी नहीं बख़्शा जाता क्योंकि इनके सामने ही इन्हें भी गंदी गालियाँ दी जाती हैं। इसीलिए यदि पात्र मानसिकता को व्यक्त करने के लिए गालियों का प्रयोग सा में होता है तो आपत्ति क्यों ? जबकि लोक जीवन में यह आ कहीं दिखाई नहीं पड़ती। इस तर्क को अनदेखा नहीं किया सकता। राही के ''टोपी शुक्ला'' उपन्यास में एक भी गाली है लेकिन यह उपन्यास उन्हीं के अनुसार अपने समय की बड़ी गाली है-अश्लील गाली।'

इसके अलावा मुसलमान होने के कारण प्रायः संदिग्ध प्रच्छन्न देशद्रोही और आतंकवादी नहीं तो आतंकवाद का समर्थक माना गया। लेकिन खालिस्तानी और उत्तर-पूर्वी सीमा पर सक्रिय आतंकवादी और तमिलनाडु में लिट्टे समर्थक भी मुसलमान हैं ? जातीय दंगे, हत्याएँ और नरसंहार क्या मुसल करते हैं। इस तथ्य को राही ने बड़ी प्रखरता से प्रकट किया। सांप्रदायिकता, मराठी अस्मिता की ठेकेदारी, खालिस्तानी मर की भयानक रक्त-पिपासा, सभी को राही ने उधेड़ा।

मुसलमान होने के नाते ''महाभारत'' धारावाहिक के लेखन पर भी जब आपत्ति उठायी गयी और चोपड़ा परिवार पर को संवाद लेखन से अलग करने का दवाब पड़ा, तो उन्होंने कह दिया कि वे ''महाभारत'' धारावाहिक को बंद कर सकते लेकिन राही को संवाद लेखन से अलग नहीं कर सकते।

केवल मुसलमान होने के कारण ही यह बवंडर किया जा था।

अपनी अस्मिता को रूपायित करते हुए राही ने अपनी माँओं का उल्लेख किया है—पहली जन्मदात्री नफ़ीसा बेगम, गंगा नदी और तीसरी अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी, जहाँ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू में एम.ए., पी-एच.डी. किया और कुछ वर्ष पढ़ाया भी। लेकिन यूनिवर्सिटी का विषाक्त वातावरण उन्हें रास नहीं आया। जहाँ गालिब की आलोचना का मापदंड उनका शिया या सुन्नी होना हो, जहाँ रसखान की कृष्ण भक्ति पर संदेह किया जाता हो, वहाँ कैसे रहा जा सकता है ? फिर राही की धर्मनिरपेक्षता, व्यापक उदारता और सहिष्णुता के कारण उनका रहना असंभव होता गया। उन्हें यूनिवर्सिटी छोड़कर मुंबई का रुख करना पड़ा, जहाँ उनकी सृजनात्मकता को नये आयाम मिले। गीत, पटकथा और संवाद लेखन अपने सहज रूप में पल्लवित-पुष्पित हुआ। लेकिन मुसलमान होने के नाते जो संदेह घृणा और अविश्वास उन पर ही नहीं पूरी मुस्लिम जाति पर किया गया, उसके दंश से वे मुक्त नहीं हो पाए।

सोनिया गांधी का इसलिए विरोध किया गया प्रधानमंत्री पद के लिए कि वे विदेशी मूल की हैं जबकि भारतीय नागरिक बन जाने के बाद वे लोक सभा में बहुमत प्राप्त करने के बाद संवैधानिक रूप से इसके योग्य थीं। क्या आशंका थी उनको लेकर ? यही कि वे अपनी जन्म भूमि इटली का स्वार्थ साधेंगी। इसी बात को राही मासूम रज़ा ने लिखा है—"मेरे दादा कहीं बाहर से नहीं आए थे, जबकि आडवाणी जी सिंध से आए थे, विभाजन के बाद ही सही।" जब आडवाणी के विषय में कोई आशंका नहीं है तो सोनिया के विषय में क्यों ? राजनीति इतने दूषित गढ्ढे में क्यों धकेल दी गयी है।

राही की वसीयत के ये अंश उनके दर्द को बताते हैं-मेरे लहू से चुल्लू भर कर महादेव के मुँह फेंको और उस जोगी से यह कह दो कि जलील तुर्कों के बदन में यह गंगा गाढ़ा गर्म लहू बनकर दौड़ रही है.... मेरे शव को गंगा में डाल देना, वो मेरे बदन का सारा जहर पी लेगी... हज़ारों बार वो पी चुकी है... मेरा जहर पीकर वो फिर एक बार जी लेगी, वो मेरी माँ है... और यदि वतन से दूर मरूँ तो जिस देश में वहाँ छोटी सी नदी बहती हो, तो मुझे उसकी गोद में सुला देना और उस नदी से यह कह देना कि यह गंगा का यह बेटा आज से तेरे हवाले है।

और देखिए-क्या विडंबना है कि 9 तारीख को यह शो देखा और 10 तारीख को शाहरुख खान की फ़िल्म "माई नेम इज़ ख़ान" देखी, जिसमें रिज़वान ख़ान बने हुए शाहरुख खान को भी अमरीका की 11 सितंबर की घटना के बाद प्रत्येक मुसलमान की तरह आतंकवादी समझा गया। अमरीका प्रवेश के लिए निषिद्ध नहीं तो अत्यधिक संदिग्ध। मेरी एक परिचित हिन्दू महिला प्रोफ़ेसर को अमरीका में रिसर्च पेपर पढ़ने के लिए वीज़ा नहीं दिया गया। कारण? उन्होंने पिछले वर्ष ईरान में होने वाले रिसर्च सेमिनार में भाग लिया था। वीजा न देने का कारण कुछ और बताया गया था, लेकिन था यही। इस फिल्म में भी रिजवान खान की कैसी अमानवीय चैकिंग होती है, देखकर हैरानी होती है। जिस बेटे की तलाकशुदा हिन्दू मम्मी से रिज़वान ने शादी कर ली थी उसे अपनी जान अपने स्कूली साथियों के हाथों सिर्फ इसलिए गंवानी पड़ी कि उसके हिन्दू नाम के पीछे खान शब्द लग गया था और बच्चे की हत्या के बाद उस हिन्दू महिला ने रिज़वान के मुसलमान होने के कारण, हत्या का उत्तरदायी समझकर छोड़ दिया। इसके बाद रिज़वान खान राही की तरह से ही आतंकवादी समझे जाने के विरोध में अमरीकी राष्ट्रपति से मिलना चाहता है सिर्फ़ यह कहने के लिए कि उसका नाम खान है लेकिन वह आतंकवादी नहीं है। यद्यपि अंत में उसकी राष्ट्रपति से भेंट हो भी जाती है, राष्ट्रपति उसके बेटे की मौत पर दुखी भी होते हैं और उसे आश्वस्त भी करते हैं। लेकिन इससे पहले इसी रिज़वान खान को संदिग्ध आतंकवादी समझकर बहुत ही असहनीय और अमानवीय पीड़ाएँ दी गयीं। कुछ मुट्ठी भर आतंकवादियों की करतूतें कैसे पूरे धर्म, जाति और संप्रदाय को अपराधी बनाकर भीषण मानसिक और शारीरिक यंत्रणा का शिकार बना रही हैं, इसे भुक्त भोगी ही जान सकते हैं।

राही मासूम रज़ा, शाहरुख खान और इससे पहले शबाना आज़मी ने भी यही कहा था—दुनिया में कहीं भी कोई मुस्लिम आतंकवादी करतूत करता है, सारे मुसलमानों को अपनी निर्दोषता क्यों सिद्ध करना पड़ती है ? यह क्या अंधेरगर्दी है ? लेकिन है। पूरी कौम ही नहीं, देश भी इसकी कीमत चुका रहे हैं। अफगानिस्तान और इराक इसकी जीती-जागती मिसालें हैं।

इन्हीं सब भयानक प्रश्नों और समस्याओं की तीखी लपट, "मैं राही मासूम" को देखकर किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को झुलसाए बिना नहीं रह सकती।

176/12, आर्यपुरी
मुजफ़्फ़रनगर-251001

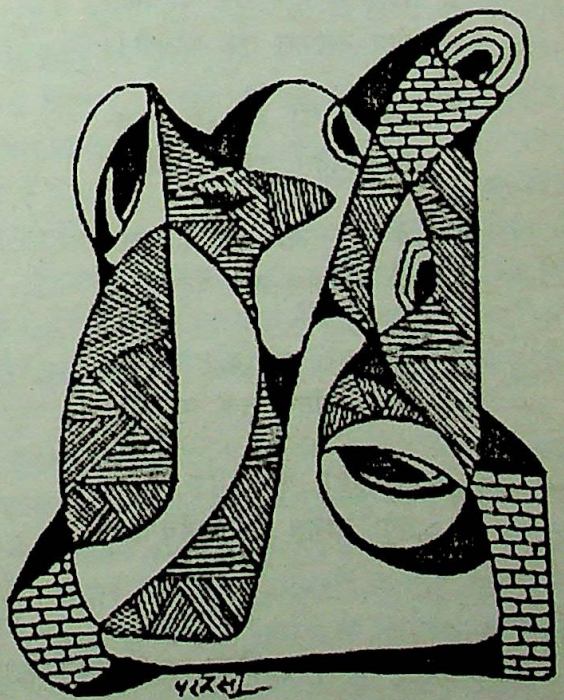

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलीम ख़ाँ फ़रीद की दो ग़ज़लें

।। एक ।।

बच्चा-बच्चा बोल रहा है।
औ' सिंहासन डोल रहा है।।

जिसको हम-तुम बोल न पाते-
बोल वही, अनमोल रहा है।।

सुख-नगरी में बंद है लेकिन
दुःख की गठरी खोल रहा है।।

इक नाबीना, एक हाथ से-
सारा जगत टटोल रहा है।।

आध-अधूरी, इस दुनिया में
कौन ये पूरा तोल रहा है।।

।। दो ।।

दिल से दिल तक पहुँचेगी।
फिर महफिल तक पहुँचेगी।।

मेहनत की हर इक रेखा-
मुस्तक़बिल तक पहुँचेगी।।

ये जो आसानी है ना।
वो मुश्किल तक पहुँचेगी।।

क़ानूनों की क्रूर कमंद-
कब क़ातिल तक पहुँचेगी।

गुमराहों की भीड़ है ये
क्या मंजिल तक पहुँचेगी।।

हसामपुर,
सीकर (राजस्थान) पिन-332718

देवी नागरानी की दो ग़ज़लें

।। एक ।।

तवील जितना सफ़र ग़ज़ल का
कठिन है मंजिल का पाना उतना।
ये कैसी खुशबू है सोच में भी
कि लफ़्ज बनकर गुलाब महका।
वो चुलबुलाहट, वो खिलखिलाहट
वो मेरा बचपन न फिर से लौटा।
कहीं तो मिलती नहीं है फितरत
तो दिल से दिल भी है जुड़ता।
है दीप मंदिर का ये मेरा दिल
जो भक्ति के तेल से है जलता।
ये झूठ इतना हुआ है हावी
कि सच भी आकर गले में अटका।
गुमां हुआ है क्षितिज पे 'देवी'
जमीं पे यूं आसमां है झुकता।

।। दो ।।

दाव पर अपने ही दिल को हम लगाकर देखते हैं
चाहते हैं जिनको उनसे मात खाकर देखते हैं।

आगे खाई पीछे खाई अब बचे तो कोई कैसे
इस मुसीबत में मुकद्दर आज़मा कर देखते हैं।

देखते थे हम तमाशा घर जलाकर दूसरों का
अब तो घर की आग में दामन जला कर देखते हैं।

आज़माते जो रहे अरसे से हमको उनको भी हम
आज मौक़ा जो मिला तो आज़माकर देखते हैं।

नाचते थे बनके कठपुतली कभी हम जिनके आगे
आज उनको हम इशारों पर नचा कर देखते हैं।

दिल जलाकर रोशनी करते कभी हम जुल्मतों में
तो कभी दीपक दुआओं के जलाकर देखते हैं।

पाँव में मजबूरियों की है पड़ी ज़ंजीर 'देवी'
चाल की रफ़्तार लेकिन हम बढ़ा कर देखते हैं।

9-D, Corner View Soc
15/33, Road, Bandra, MUMBAI-400

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लूकाच एवं ब्रेख़्त : यथार्थवाद की समस्या

रवि श्रीवास्तव

टेरी ईगल्टन ने लूकाच की टिप्पणी 'साहित्य में अगर कोई चीज़ वास्तव में सामाजिक होती है, तो वह है उसका रूप यानी फ़ॉर्म' पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखा है कि एक प्रतिबद्ध मार्क्सवादी चिंतक का यह कथन आश्चर्य में डालने वाला है, क्योंकि साहित्य की आलोचना का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य साहित्य में ही नहीं, इतर विधाओं में भी रूपवाद का प्रखर विरोधी रहा है। किंतु ऐसा कहकर लूकाच ने मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के एक बुनियादी पहलू की ओर संकेत किया है। साहित्य में रूप का विचारधारात्मक महत्व होता है, इसे कॉडवेल और लूकाच जैसे पुराने मार्क्सवादियों ने ही नहीं, फ्रेंडरिक जेमसन एवं ईगल्टन जैसे प्रतिभाशाली आधुनिक मार्क्सवादियों ने भी माना है। लूकाच के उक्त कथन का आशय क्या है? अगर उसका आशय यह है कि लिखते समय यदि कोई लेखक यह महसूस करता है कि उसे रूप और तकनीक की जो परंपरा विरासत में मिली है, वह बदले हुए समाज की नयी हक़ीक़त की अभिव्यक्ति के लिए अनुपयोगी हो चुकी है, तब उसे नये रूप और तकनीक की आवश्यकता होती है, जो इतिहास के उस विशेष कालखंड के नये यथार्थ और उसके आधारभूत जीवन-दर्शन की संगति में हो, जो इस परिवर्तन को संभव बना सके, तो यह तर्क आधुनिक काल की प्रतिनिधि साहित्य-विधा उपन्यास पर जितना लागू होता है, उतना ही उसे आधार बनाकर साहित्य को परखने वाले आलोचना के मानदंडों पर भी। अगर इस दृष्टि से विचार करें, तो पिछली सदी के तीसरे-चौथे दशक में मार्क्सवादी आलोचना में जॉर्ज लूकाच और बर्टोल्ड ब्रेख़्त के बीच हुई अब तक की सबसे तीखी बौद्धिक बहस पर नये तरीक़े से सोचा जा सकता है।

लूकाच और ब्रेख़्त एक-दूसरे के लेखन-चिंतन से परिचित थे। अलग-अलग मुद्दों पर दोनों में गहरा मतभेद था। फ़िलहाल उन सबके ब्यौरे में न जाकर बहस के कुछ चुनिंदा नुक़्तों पर टिकना वाजिब होगा। सबसे पहले समग्रता की अवधारणा और साहित्य रूप को लें।

समग्रतावाद और साहित्य रूप–

लूकाच और ब्रेख़्त ने साहित्य में रूप की समस्या पर काफ़ी विचार किया है। विशेषकर लूकाच ने हीगेल के प्रभाव के भीतर और फिर उससे पूरी तरह उबरकर मार्क्सवाद को अपना लेने के बाद साहित्य-विधा उपन्यास के बदलते स्वरूप पर विस्तार से लिखा है। लूकाच के मुताबिक किसी युग की केंद्रीय साहित्य-विधा अपने समय के सारभूत सत्य को अभिव्यक्ति देने की सार्वभौम आवश्यकता से जन्म लेती है। उपन्यास वह पहली साहित्य विधा है, जिसमें राजनीति एवं इतिहास से परिभाषित मनुष्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। वह अकेली ऐसी विधा है, जिसमें आधुनिक युग की नयी ऐतिहासिक चेतना–व्यक्तिवाद–अपने सर्वोत्तम साहित्यिक रूप में दिखायी देती है। महाकाव्यों का नायक उसकी संपूर्ण अंतर्बाह्य दुनिया की समग्र एकता है, जबकि औपन्यासिक रूप-विधान के केंद्र में वह व्यक्ति-चरित्र है, जिसे लूकाच ने 'पापों के संपूर्ण दौर में उपजा समस्यामूलक नायक' कहा था; एक ऐसा व्यक्तिनायक, जिसकी अपने समाज से पटरी न बैठती हो साथ ही उसे इस बात का अहसास हो कि उसके आस-पास की दुनिया बिगड़ चुकी है। ऐसी बिगड़ी हुई भ्रष्ट और मूल्यहीन दुनिया में अपने अकेलेपन का त्रास एवं कुछ न कर पाने की विवशतापूर्ण छटपटाहट के साथ वांछित मूल्यों और आदर्शों की खोज उपन्यास के समस्याग्रस्त नायक की पहचान बन गयी। लूकाच ने माना कि उपन्यास के समस्यामूलक नायक का आविर्भाव महाकाव्यों के सामुदायिक जीवन के विग्रह एवं समग्रताबोध के अंत एवं आधुनिक दुनिया में मनुष्य के बेघरपन, अलगाव और उसकी तुच्छता की अनुभूति के जन्म के साथ जुड़ा हआ है। वहाँ सकल विश्व और समस्याधर्मी नायक के बीच एक फाँक दिखायी देती है और उसके विरुद्ध व्यक्ति का निजी प्रतिरोध भी। उपन्यास आधुनिक जीवन और समाज की इसी विडंबना को प्रस्तुत करने वाली साहित्यिक विधा है। वह एक ऐसी दुनिया का महाख्यान है, जहाँ से ईश्वर विदा ले चुका है। वह एक साहित्यिक विधा ही नहीं, एक मूल्य-दृष्टि भी है।

लूकाच ने महाकाव्यों के युग से आधुनिक पूँजीवादी समाज की गुणात्मक भिन्नता को होमर में पहचाना। उन्होंने हिस्टोरिकल नॉवेल में ऐतिहासक यथार्थवाद के तीन महान दौरों की ओर संकेत किया है : प्राचीन ग्रीक समाज, पुनर्जागरण और 19वीं सदी के आरंभ का फ्रांसीसी समाज। लूकाच के मुताबिक अगर होमर प्राचीन ग्रीक समाज में मनुष्य, समाज और प्रकृति के रिश्तों को उनकी समग्रता में बाँधने वाला पहला प्रतिनिधि यथार्थवादी कृतिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तो इसलिए कि उनकी रचना में उन प्रश्नों के उत्तर निहित हैं, जो परवर्ती दौर में व्यक्ति और समाज के बीच विघटन एवं अलगाव के कारण उत्पन्न हुए थे। लूकाच के मत में 'ग्रीक केवल उत्तर जानता था, प्रश्न नहीं। केवल समाधान जानता था, चाहे वह कितना ही उलझा हुआ क्यों न हो, समस्याएँ नहीं। केवल रूप जानता था, अराजक अनुभवों की दिशा और गति नहीं। वह हर वस्तु, जो हमारे दौर को क्षुद्र स्वार्थों की ओर खींचती है, वास्तव में ग्रीक को पूर्णता की ओर ले जाती थी, क्योंकि वास्तव में उसका अस्तित्त्व था ही नहीं।' किंतु, 'आधुनिक जीवन ने मनुष्य और उसकी दुनिया के बीच लयबद्ध एकता और समरसतापूर्ण संबंध को तोड़ दिया है, जिसका शिकार प्राचीन ग्रीक समाज नहीं था। मनुष्य और समाज की बढ़ी हुई दूरी ने ग्रीक समाज की समग्रता को नष्ट कर दिया है। एक ऐसी समग्रता, जिसमें मनुष्य और समाज की जैविक एकता से बाहर कोई दूसरी स्थिति थी ही नहीं। होमर के ज़माने से अलग आज का इन्सान पूरी दुनिया में घबराया हुआ और बेचैन है। उसकी इसी घबराहट और बेचैनी का आख्यान उपन्यास है। 'व्यक्ति और समाज का अलगाव दोनों के अधःपतन का कारण है, जो पूँजीवादी श्रम-विभाजन का परिणाम है, जिसमें एक औसत इन्सान जीता है। ऐसे में विषम परिस्थितियों की चुनौती से भिड़ने के लिए उस खोयी हुई समग्रता को नये तरीक़े से जन्म देना कथाकार की नैतिक ज़िम्मेदारी बन जाती है। लूकाच ने 'स्टडीज़ इन योरोपियन रियलिज़्म' और 'द मीनिंग ऑफ़ कन्टम्प्ररी रियलिज़्म' में बताया है कि महान लेखक आधुनिक समाज में आये विघटन और बिखराव के ऐतिहासिक कारणों को पकड़कर मानव-जीवन की समरसतापूर्ण समग्रता के पुनर्निर्माण में सक्षम होता है। इसके पीछे संभवतः मार्क्स की यह धारणा रही हो, जब उन्होंने प्राचीन ग्रीक समाज में मनुष्य और प्रकृति के बीच उस आदिम संतुलन की ओर ध्यान खींचा था, जिसे वे समग्रता कहते थे और जिसे पूँजीवाद अनिवार्यतः नष्ट करता है और जिसे वैज्ञानिक समाजवाद की उन्नतशील अवस्था में पूँजीवाद को उखाड़कर पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

'इतिहास एवं वर्ग चेतना' में लूकाच ने पूँजीवादी 'अलगाव' के दुष्परिणामों को तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचाया। उन्होंने उत्पादन और उपभोग के आनुपातिक भेद को पहचाना। उनका कहना है कि उत्पादक या श्रमिक जितना ही अतिरिक्त मूल्य का सृजन करता है, उतना ही वह मूल्यहीन और सम्मानहीन होता जाता है। श्रम जितना ही शक्तिशाली होता है, श्रमिक उतना ही दयनीय एवं कमज़ोर होता चलता है। श्रमिक जितना ही आधुनिक वस्तुएँ बनाता है, वह उतना ही आदिम एवं बर्बर होता जाता है और अंत में औज़ारों एवं मशीनों की उपयोगिता ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, श्रमिक की निपुणता घटती जाती है, वह प्रकृति का मालिक बनने के बजाय उसका दास बनकर उभरता है। लूकाच कहते हैं कि पूँजीवाद मनुष्य को उस अवस्था में पहुँचा देता है, जहाँ प्रकृति पर विजय पाने की मनुष्य की नैसर्गिक क्षमता पर विराम लग जाता है। पूँजीवाद की इस मानव-विरोधी प्रकृति की पहचान में सबसे बड़ी बाधा है—मनुष्य की चेतना का वस्तुकरण, जो सामाजिक संघटनाओं को समग्रता में देखने में उसे असमर्थ बना देता है। साहित्य में यथार्थ के कलात्मक प्रतिबिंबन की समस्या इसी से जुड़ी हुई है। यथार्थ के सतही, एकांगी एवं सतह की वस्तुपरकता से ऊपर उठकर उसकी बहुतस्तरीय गतिशील द्वंद्वात्मक सत्ता को देख पाने की लेखक की असमर्थता का कारण चेतना का वस्तु-रूपांतरण है। लूकाच ने प्रकृतवादियों- आधुनिकतावादियों की कड़ी आलोचना इसी दृष्टि से की है। काफ़्का, कामू और सार्त्र का 'एब्सर्ड संसार' एवं 'निगेटिव हीरो' की परिकल्पित नैतिकता उनकी औपन्यासिक संरचना के भीतर सिर्फ़ मनोवैज्ञानिक समस्या बनकर रह जाती है। लूकाच ने एकाधिक स्थलों पर संकेत दिया है कि महान यथार्थवादी लेखक आधुनिक पूँजीवादी समाजों में अलगाव एवं आत्मपरायेपन को सरल रेखीय एकरूपता में देखने के बजाय उसे समाज की ऋजुरेखीय जटिल समग्रता में देखता है। ऐसा करते हुए वह न केवल बाज़ार-उत्पादन से निर्मित वस्तुकरण (कमोडाइज़ेशन) के परिणामस्वरूप सामाजिक विघटन और बिखराव को समेटने का प्रयत्न करता है, बल्कि प्रारूपों-(टाइप) की रचना करता है। 'टाइप' से लूकाच का अभिप्राय 'समाज की उस आंतरिक शक्ति से है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण एवं प्रगतिशील होती है', जिसे यथार्थवादी लेखक जैविक घटनाओं के बीच से उभरने वाले जीवंत एवं मूर्त मनुष्यों के क्रियाकलापों के रूप में चित्रित करता है। 'समग्र मानव व्यक्तित्त्व का सजीव निरूपण तभी संभव है, जबकि लेखक प्रारूपों-(टिप्पकेलिटी) का निर्माण करता है। मूल समस्या एक निजी व्यक्ति के रूप में मनुष्य और एक सामाजिक प्राणी या समुदाय के सदस्य के रूप में मनुष्य के बीच जैविक अविच्छिन्नता के निर्वाह की है।' लूकाच ऐसी कला को यथार्थवाद का नाम देते हैं, जिसके दायरे में तोल्सतोय और बाल्ज़ाक ही नहीं, प्राचीन ग्रीक कवि होमर और पुनर्जागरणकालीन शेक्सपीयर भी साथ खड़े दिखायी देते हैं।

लूकाच ने बाल्ज़ाक की महानता को पूँजीवादी समाज में मनुष्य की सर्वग्रासी पतनशीलता के बावजूद सामंती निरंकुशता के विरुद्ध उसके संघर्ष की अपरिहार्य विजय के यथार्थवादी चित्रण में देखा। अपने कैथॉलिक एवं राजसत्तावादी पूर्वाग्रहों के बावजूद उसने इतिहास की विकासशील धारा को पहचानने की गहरी क्षमता थी। एमिल ज़ोला और फ़्लॉबेयर उसके सूची-निर्माता भर हैं इसलिए सच्चे यथार्थवादी भी नहीं है। कारण, उनके यहाँ इतिहास मानवीय क्रियाशीलता का वह क्षेत्र नहीं है, जहाँ मनुष्य समाज में अपनी ऐतिहासिक भूमिका की सचेत कल्पना कर सके। सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं और तथ्यों का ब्यौरेवार वर्णन भी प्रकृतवाद 'टाइप' गढ़ने में मदद नहीं करता। फलतः, यथार्थवादी साहित्य की तरह महाकाव्यात्मक फलक वाली नाटकीय घटनाओं और पात्रों के बीच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन की समग्रता का बोध भी वहाँ नहीं है।

क्रांतिकारी परंपरा से विद्रोह -

काफ़्का लूकाच को यथार्थवादी लेखक नहीं लगते हैं। उनका विचार है कि अगर उनके विश्व-बोध और विस्तृत चयन के सिद्धांतों पर विचार करें, तो भी इसी की पुष्टि होती है। काफ़्का की दुनिया एक ऐसी दुनिया है, जिसमें मनुष्य मकड़जाल में फँसी मक्खी जैसा है। वह जितना ही उससे बाहर निकलने की कोशिश करता है, उतना ही उसमें फँसता है। यह ठीक है कि वर्तमान पूँजीवादी दुनिया अजनबियत एवं मानव-विरोधी भयावहता से भरी हुई है। किंतु, आधुनिक पूँजीवादी समाज का नरकपूर्ण जीवन और उसमें फँसे असहाय मनुष्य का काफ़्का द्वारा किया गया चित्रण वस्तुतः यथार्थ का भ्रम ही खड़ा करता है, क्योंकि एक यथार्थवादी लेखक के लिए यह सामाजिक इतिहास के एक खंड-विशेष का यथार्थ है, जिसे काफ़्का स्थायी मानव-नियति की तरह पेश करते हैं। यथार्थ के प्रति काफ़्का का यह दृष्टिकोण अस्तित्त्ववादियों की तरह है, जो जीवन की निरर्थकता को ईश्वर की अनुपस्थिति में ढूंढते हैं। मकड़जाल में फँसी मक्खी का रूपक भी अलगावग्रस्त पूँजीवादी समाज में मानव-नियति एवं त्रासदी की कालातीतता को ही दर्शाता है, इसलिए उनकी शैली भी यथार्थवादी नहीं है। कुल मिलाकर, काफ़्का की कला 'प्रारुपों' की रचना करने में समर्थ नहीं है, इसलिए वह यथार्थवादी भी नहीं है। वह मूलतः रुपवादी है, प्रयोगशील है। (द मीनिंग ऑफ़ कन्टेम्प्ररी रियलिज़्म, काफ़्का ऑर टॉमस मान?) लूकाच का तर्क है कि 'प्रकृतवादी यथार्थ को जड़ एवं मृत प्रपंच मानते हैं और चेतना पर उसके प्रभाव को कार्य-कारण संबंधों की यांत्रिकता में देखते हैं। स्वभावतः प्रकृतवादी रचना-सृजन के नाम पर तथ्यों का दस्तावेज़ बन जाती है। इसके विपरीत आधुनिकतावादी यथार्थ के चेतना पर पड़ने वाले प्रभाव को निरपेक्ष रूप से स्वतंत्र एवं स्वतः संपूर्ण सत्ता मानकर उसे सामाजिक आधार से अलग कर देते हैं, किंतु दोनों की परिणति अनुभववाद में होती है। अंतर केवल इतना है कि आधुनिकतावादी लेखक तथ्यों को दस्तावेज़ी कोटि-क्रम निर्धारण तक सीमित न रखकर अपनी आत्मपरकता को भी उन निर्जीव तथ्यों के साथ अमूर्त तरीक़े से नत्थी करता चलता है।" (आइडिया एंड फॉर्म इन लिट्रेचर : मार्क्सिज़्म एंड ह्यूमन लिबरेशन, सं. ई. एस. जुमान, न्यूयॉर्क, 1973 पृ. 129) प्रकृतवादियों का प्रत्यक्षवाद और आधुनिकतावादियों का मनोविज्ञानवाद-दोनों समाज की विकासशील धारणा में विश्वास नहीं करते, दोनों व्यक्ति और परिस्थिति की प्रातिनिधिकता का निर्माण नहीं करते, दोनों यथार्थ का खंडित चित्र प्रस्तुत करते हैं, दोनों के यहाँ व्यक्ति और समाज के आपसी रिश्तों का वह समग्र बोध नहीं दिखायी देता, जो यथार्थवाद की आत्मा है, दोनों की परिणति रूपवाद की पतनशील बुर्जुआ शैली में होती है।

रूपवाद की इस पतनशील बुर्जुआ शैली का संबंध लूकाच ने 1848 की असफल योरोपीय क्रांति से जोड़ा है। क्रांति की असफलता एवं इंग्लैंड के चार्टिस्ट आंदोलन के पतन ने वर्ग-संघर्ष को तो कमज़ोर किया ही, प्रगतिशील बुर्जुआ शक्तियों के नेतृत्वकारी संघर्षों का भी अंत कर डाला और उसका स्थान एक गहरी विचारधारात्मक उदासी ने ले लिया। परिणामस्वरूप, अपने नवजागरण कालीन क्रांतिकारी आदर्शों से भटककर बुर्जुआ विचारधारा ने संकीर्ण यथास्थितिवाद को अपना लिया। उसके चिंतन के प्रभाव में आये लेखकों ने सामाजिक परिवर्तन से उदासीन होकर तटस्थ रहना सीख लिया। पूँजीवाद के ह्रासोन्मुखी दौर में यह तटस्थता अंतर्मुखी लेखन में प्रकट हुई। साहित्य में उसकी प्रतिक्रिया इतिहास के निषेध में हुई। व्यक्ति की हताशा और गुस्सा अराजकतावाद में बदल गया, मनुष्य की आंतरिक और बाह्य दुनिया की एकता छिन्न-भिन्न हो गयी। आधुनिकतावादी लेखकों की छिन्नमूल अलगावग्रस्त दुनिया किसी विकल्प के अभाव में केवल मनःस्थितियों के चित्रण और चेतना के प्रवाह 'स्ट्रीम ऑफ़ कांशसनेस' में बदल गया। उससे परे कोई दुनिया नहीं थी। काफ़्का, मुसिल, ज्वॉयस, बैकेट, कामू जैसे आधुनिकतावादियों की आत्मगत दुनिया और एमिल ज़ोला, स्टिनबर्ग एवं हाफ़्टमैन जैसे प्रकृतवादियों की वस्तुपरकता, दोनों ही यथार्थ की सार्वजनीन द्वंद्वात्मकता को ख़ारिज़ करने के कारण यथार्थवादी कला से दूर होते गये, जिसमें सामान्य और विशिष्ट, सतह-प्रतीति और सारतत्त्व तथा प्रातिनिधिक चरित्रों और स्थितियों के निर्माण के बीच विशिष्ट संबंध कायम होता है।

'स्टडीज़ इन योरोपियन रियलिज़्म' के आमुख में लूकाच ने लिखा है कि "महज आस्वाद' के आधार पर यह निर्णय नहीं हो सकता कि साहित्य के इतिहास के संदर्भ में 11वीं सदी के महान क्लासिक प्रतिनिधि उपन्यासकार बाल्ज़ाक हैं या फ़्लॉबेयर क्योंकि एक कला-विधा के रूप में उपन्यास में यथार्थवाद की प्रतिष्ठा स्वयं सौंदर्यशास्त्र की केंद्रीय समस्या से जुड़ी हुई है। प्रश्न है कि उपन्यास की श्रेष्ठता का सामाजिक आधार क्या हो– अंतर्बाह्य जगत की एकता या विच्छेद? आधुनिक उपन्यास की सर्वोत्तम उपलब्धियाँ आंद्रे जीद, प्रूस्त और ज्वॉयस हैं या बाल्ज़ाक, तोल्सतोय एवं टॉम्-स मान? यह दो परस्पर-विरोधी सौंदर्यबोधी श्रेणियों की भिन्नता उतनी नहीं है, जितनी दो विरोधी सामाजिक प्रकृति एवं इतिहास-दर्शन की भिन्नता है, संभवतः साहित्य-विधा उपन्यास के ऐतिहासिक विकास की भिन्नता भी। बुर्जुआ संस्कृति के प्रतिनिधि कला-रूप उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में सक्रिय दो विपमवादी सौंदर्यबोधी अवधारणाएँ हमें कुछ और पीछे स्वयं साहित्य के विकास की मूलभूत संकल्पना की ओर ले जाती हैं, अपनी संपूर्णता में समस्त मानव-संस्कृति के अध्ययन की ओर। इसलिए, इतिहास-दर्शन के आगे मुख्य प्रश्न है कि वर्तमान समय का सांस्कृतिक विकास अग्रगामी है या पश्चगामी?"

इस पश्चगामिता के ख़िलाफ़ लूकाच बुर्जुआ यथार्थवाद की महान मानवतावादी परंपराओं को खड़ा करते हैं, जिसके अंतिम प्रतिनिधि लेखक बाल्ज़ाक थे। उन्होंने बुर्जुआ क्रांति के मूल मंतव्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं अभिप्रायों—तर्कबुद्धि और विवेक के साम्राज्य की उसकी वास्तविक निष्ठा के साथ 'ला मोंदे पेरीजन', 'ला कॉमदी ह्यूमनी' एवं 'द लौस्ट ईल्यूज़न्स' में गढ़ा था और राज्य-क्रांति के बाद पतनशील फ्राँसीसी सामंती समाज का कच्चा चिट्ठा पेश करते हुए उसके महानायकों को उन 'अभागों' की तरह पेश किया था, जिनका नवोदित पूँजीपति वर्ग की भावी संभावनाओं के आगे कोई भविष्य नहीं था। तोल्सतोय लूकाच को इसलिए प्रिय हैं कि उन्होंने 1856 से 1905 के बीच रूस में पूँजीवाद के अभ्युदय के परिणामस्वरूप रूसी किसान जनता के विस्थापन की पीड़ा और ज़ारशाही के विरुद्ध उसके मुक्ति-आंदोलन से बख़ूबी परिचित कराया है। टॉमस मान इसलिए अच्छे हैं कि उनके लेखन में (द मैजिक लैन्टर्न) 'यथार्थवाद की ऐसी झलक दिखायी देती है, जो समाज के सकारात्मक, आलोचनात्मक और समग्र चिंतन के रूप में 19वीं सदी के रचनात्मक लेखन की विशेषता रही है।' ज्वॉयस और बैकेट में पूँजीवादी पतनशीलता से पार जाने की क्षमता समाप्त हो चुकी है, क्योंकि मनुष्य की अंतर्बाह्य दुनिया की द्वंद्वात्मक एकता वहाँ नहीं है। परिणामस्वरूप, उनके लेखन में व्यक्ति और समाज दोनों अपने वास्तविक अर्थों को खोकर महज़ निजी हितों के प्रदर्शन तक सीमित रह गये हैं। लूकाच का कहना है कि बुर्जुआ यथार्थवाद की महान मानवतावादी परंपरा की अगड़ी पंक्ति के लेखकों ने जहाँ 'मनुष्य के पूँजीवादी पतन के ख़िलाफ़ महान संघर्षों को दिखलाया है, वहीं परवर्ती दौर के लेखकों ने सिर्फ़ पूँजीवाद की पतित दुनिया को ही दिखाया है।' बुर्जुआ व्यवस्था के किसी विकल्प की संभावना के अभाव में उनका लेखन उन विकृतियों को ही प्रकट करता है, जो बुर्जुआ चेतना की अपनी विकृति भी है। लूकाच का तर्क है कि चूँकि यथार्थ का विकृत प्रतिबिंबन विकृत कला को ही जन्म देगा, इसलिए आधुनिक लेखकों को पूँजीवादी समाज के अलगाव और विघटन के साथ मुठभेड़ करने वाली 19वीं सदी के महान लेखकों की परंपरा को अपनाना चाहिए। उन्हें बुर्जुआ समाजों की निस्सारता एवं बेसुरे लयहीन जीवन की अभिव्यक्ति तक ही सीमित न रहकर उनके प्रति आलोचनात्मक रवैया अख़्तियार करना चाहिए क्योंकि अलगाव एवं अकेलापन, निराशा एवं उदासी तथा विघटन एवं बिखरावपूर्ण पूँजीवादी जीवन को दिखाने वाली खंडित एवं भग्न कला और कला-रूप खंडित एवं भग्न सभ्यता का सही विकल्प नहीं बन सकते, जिसका स्पष्ट मतलब था कि कला-चक्र घूमकर पुनः 19वीं सदी की ओर चल पड़े। अपनी स्पष्ट बुनियादी धारणा के कारण लूकाच ने न केवल घासलेटी समाजवादी यथार्थवाद की आलोचना की, बल्कि खंडित जीवन के खंड-खंड अनुभवों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने वाले एमिल ज़ोला, फ़्लॉबेयर, स्ट्रिनबर्ग एवं हाफ़्मान जैसे प्रकृतवादी और काफ़्का, कामू, सार्त्र, जेम्स ज्वॉयस और प्रूस्त जैसे आधुनिकतावादी ही नहीं, ब्रेख़्त और सैमुअल बैकेट जैसे मार्क्सवादी लेखक भी उनकी उपेक्षा के शिकार हुए। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि लूकाच अपने यथार्थवाद की कसौटी पर लंबे अर्से तक ब्रेख़्त के नाटकों को भी रूपवादी मानते रहे और अंत में उनके महत्त्व को गणेश-वंदना में सिर हिलाया, तो आधे-अधूरे मन से। इन सबके विपरीत, यथार्थ को उसकी बहुस्तरीय समग्रता में पिरोने वाले 19वीं सदी के यथार्थवादी लेखक लूकाच को अधिक प्रिय लगे, क्योंकि उन्हीं में लूकाच को द्वंद्वात्मक भौतिकवाद एवं मानवजाति के विकास की वास्तविक संभावना दिखायी दी। उन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल बाल्ज़ाक, तोल्सतोय, टॉमस मान, वाल्टर स्कॉट और स्टेंढल को चुना और उनके उपन्यासों का गंभीर विश्लेषण करते हुए न केवल सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र में मार्क्सवादी द्वंद्ववाद की केंद्रीय अवधारणा 'समग्रता' को स्थापित किया, बल्कि साहित्य के मूल्यांकन के अपने मानदंड— 'आलोचनात्मक यथार्थवाद'—भी निर्मित किये।

रूपवाद और यथार्थवाद -

ब्रेख़्त ने लूकाच के यथार्थवाद का तर्कसंगत खंडन किया है। उनका कहना है कि लूकाच ने 19वीं सदी के यथार्थवाद को पूजा की वस्तु बनाकर आधुनिक लेखन की घोर उपेक्षा की है। 'लूकाच की मान्यताओं के आधार ठोस सिद्धांत हैं, लेकिन इसके बावजूद अक्सर ऐसा लगता है कि वे सच्चाई से काफ़ी दूर पड़े हुए हैं।' ब्रेख़्त की दृष्टि में उनकी यथार्थवाद-संबंधी मान्यताएँ महत्वपूर्ण हैं, लेकिन अपर्याप्त हैं, क्योंकि उनमें नयी परिस्थितियों के अनुरूप नये कला- रूपों की ऐतिहासिक अनिवार्यता की समझ नहीं है। ब्रेख़्त ने लूकाच के यथार्थवाद को 'प्रॉब्लमेटिक सर्रियलिज़्म—झंझटिया यथार्थवाद कहा था। वे लूकाच की समीक्षा दृष्टि पर व्यंग्यपूर्वक हँसते हैं, 'जहाँ वर्ग-समाज में मौजूद व्यक्तिपूजा की भव्य इमारत खड़ी होती है।' उन्होंने लूकाच के यथार्थवाद के आतिशी शीशमहल की तुलना 'मादाम तुसाद की उस बंद दुकान से की, जिसमें स्कॉट, बाल्ज़ाक, तोल्सतोय आदि की महान मोमी मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं, जहाँ किसी समकालीन की पहुँच नहीं है।' ब्रेख़्त का मानना है कि कला में रूपवाद अनैतिहासिक चिंतन से जन्म लेता है। यथार्थवाद का भी अपना रूपवाद होता है। ब्रेख़्त ने लूकाच के यथार्थवादी तिति में निहित प्रतिमानों की रूपवादी प्रकृति को पहचाना और उन लूकाच के अनैतिहासिक सोच का परिणाम बताया, जिसने उन्हें बीसवीं सदी की साहित्य समीक्षा से बराबर एक सुरक्षित दूरी रोके रखा। लूकाच के लिए तोल्सतोय और बाल्ज़ाक समकालीन यथार्थवाद के मानक थे, इसलिए अनुकरणीय भी थे। लेकिन ब्रेख़्त में जवाब देने की हिम्मत थी। वॉल्टर बेंजामिन को अपने एक पत्र में ब्रेख़्त ने लिखा—"दो टूक शब्दों में कहें, तो वे (लूकाच और उनके समर्थक) उत्पादन के शत्रु हैं। उनकी समझ में उत्पादन कोई अप्रत्याशित घटना है। वे स्वयं उत्पादन करना नहीं चाहते, बल्कि दूसरों पर नियंत्रण रखना चाहते हैं। उनकी हर आलोचना में एक धमकी मौजूद रहती है।"

लूकाच सक्रिय राजनीति से संन्यास लेकर साहित्य-समीक्षा की ओर बढ़े थे। वे स्वयं कवि या कथाकार नहीं थे। ब्रेख़्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटककार और कवि थे। साथ ही, अपने समय में ज़बरदस्त प्रतिरोधी राजनीति के प्रखर बुद्धिजीवी भी। इसलिए, ब्रेख़्त की आलोचना एक सर्जक आलोचक की दृष्टि से की गयी आलोचना है। आश्चर्य नहीं कि ब्रेख़्त को लूकाच की समीक्षा-पद्धति विशुद्ध एकेडेमिक लगे और साहित्य-रूपों के चुनाव में लेखक की पसंद को तय करने वाले महत्त्वपूर्ण राजनीतिक एवं सामाजिक बदलावों की भूमिका की अनदेखी वहाँ दिखायी दे। मार्क्सवादी नज़रिये से भी 19वीं सदी के कालजयी उपन्यासों के पात्र अपने समय की ऐतिहासिक परिस्थितियों से अनुशासनबद्ध रहे हैं। 20वीं सदी के आधुनिक लेखकों के मूल्यांकन में नये यथार्थ को नये ढंग से अभिव्यक्ति देने की ज़रूरत के पीछे उन बदली हुई परिस्थितियों की आपराधिक अनदेखी के कारण ब्रेख़्त ने लूकाच को कोरा रूपवादी बतलाया। 'तोल्सतोय बनो, लेकिन उसकी कमज़ोरियों को छोड़कर! बाल्ज़ाक बनो, लेकिन फिर पूरा बाल्ज़ाक बनो ऑनली अप-टू-डेट!!' ज़ाहिर है कि यह तीखा व्यंग्य लूकाच पर था, जिन्होंने नये लेखकों को लिखने के सही और ग़लत तरीक़ों में चुनाव का निर्देश देने वाला पूरा का पूरा शास्त्र तैयार कर रखा था।

ब्रेख़्त ने स्वीकार किया है कि उन्होंने यथार्थवाद प्रवचनों के बजाय किसान बुएल के चित्रों से अधिक सीखा है। ब्रेख़्त मानते हैं कि यथार्थवादी शैली एक ऐतिहासिक अनिवार्यता हासिल कर चुकी है, उसे आसानी से ठुकराया नहीं जा सकता, वह भी उस समय जब शासक-वर्ग पहले से ज़्यादा शातिर हो गया है और तब की तुलना में अब बहुत विश्वसनीय तरीक़े से झूठ बोलने की कला में महारत हासिल कर ली है। ऐसी स्थिति में सच्चाई को सामने लाना बहुत मुश्किल एवं जोख़िम से भरा काम है। इसलिए, साहित्य एवं कला में यथार्थवाद का मसला सिर्फ़ कलात्मक सृजन की समस्या तक सीमित नहीं रह गया है, वह उससे कहीं महत्त्वपूर्ण राजनीति, दर्शन और सामाजिक व्यवहार का मसला भी है। उस पर एक आम व्यक्ति की रुचि और उसे प्रभावित करने वाले नये साहित्य-रूपों एवं नयी शैलियों की खोज की दृष्टि से भी विचार करना होगा, क्योंकि वर्तमान की समस्याओं का निदान अतीत की ओर लौटना नहीं हो सकता। कहने की ज़रूरत नहीं कि ब्रेख़्त को लूकाच के सिद्धांत और सुझाव अत्यंत अव्यावहारिक लगे। समस्या 'दिव्य अतीत से नहीं, बल्कि आने वाले ख़तरनाक दिनों से जुड़ी हुई है, यह तकनीकों को रद्द करने की जगह उनके विकास की माँग करती है। सहित्य केवल यही रास्ता अपना सकता है।' ब्रेख़्त ने लिखा है कि "लूकाच के निबंधों में अब भी आत्म-समर्पण, पलायन और अव्यावहारिक आदर्शवाद मौजूद है। उनकी कृतियों में मूल्यों की जो असंतोषजनक भरमार है, उससे यह प्रभाव पड़ता है कि लूकाच को केवल मनोरंजन से प्रेम है, संघर्ष से नहीं यानी आगे बढ़ने के बजाय वे पलायन करते हैं।"

बाल्ज़ाक और तोल्सतोय के बारे में ब्रेख़्त ने दो टूक शब्दों में लिखा है कि यदि एक ने व्यापार को, तो दूसरे ने ग़रीबी को भी कविता बना दिया है। यद्यपि वे मेरे हाड़-माँस के हिस्से हैं, फिर भी मैं उनसे बमुश्किल ही कुछ सीख पाता हूँ। साहित्यिक कृतियों में निहित राजनीतिक मंतव्यों की सिद्धि अपनी ज़रूरतों और समस्याओं के मद्देनज़र उनसे आवश्यक चीज़ें ग्रहण करने से होती है। इस दृष्टि से बाल्ज़ाक और तोल्सतोय की मदद से न तो बदले हुए समाज की हक़ीक़त को समझा जा सकता है और न वे हमारे लिए कोई बड़ी नसीहत दरपेश करते हैं। इस मामले में ब्रेख़्त लूकाच को एक ऐसा सेनानायक कहते हैं, एक ऐसा 'अगुआ, जो हमें हार और रसातल में भी धकेल सकता है। वह इतना आगे बढ़ जाता है कि बाक़ी सेना से उसका संपर्क ही टूट जाता है और इस प्रकार लूकाच के यथार्थवाद की सच्चाई भी खुल जाती है और साहित्य का वह पूरा ढेर, जो अपने आकार में बड़ा क्रांतिकारी दिखायी देता है, वह मात्र काग़ज़ी समाधान पेश करने वाला पूर्णतः रूपवादी प्रयास साबित होता है।' ब्रेख़्त की दृष्टि में साहित्य की सही समझ पैदा करने के लिए उसके विकास को समझना ज़रूरी है, किंतु 'अध्यात्मवादी तत्त्व-मीमांसकों के चश्मे से कुछ कृतियों को जितनी आसानी से सफल सिद्ध किया जा सकता है, उतनी ही आसानी से असफल भी।' इसलिए, ब्रेख़्त ने बहुत ज़ोर देकर लिखा है—"जब जनता संघर्षरत हो, तब वर्णन के परखे हुए सिद्धांतों, पूजनीय फ़ॉर्मूलों और सुंदरता के कभी न बदलने वाले मानदंडों को अपनाने की कोई ज़रूरत नहीं है" क्योंकि रूपवाद का संबंध केवल साहित्यिक कृतियों के आकार-प्रकार से ही नहीं है, उसका संबंध स्वयं यथार्थ के उत्तर-कर्म अर्थात श्राद्ध-कर्म से भी है। इस मायने में ब्रेख़्त की दृष्टि लूकाच की अपेक्षा अधिक मूलगामी है, जो यथार्थवाद को मात्र सत्ता-मीमांसा तक सीमित रखते हैं। ब्रेख़्त का पूरा ज़ोर इस बात पर है कि यथार्थवाद का तरीक़ा पुराना हो या नया, उसकी धारणा व्यापक रूप से हमारी राजनीतिक एवं सभी स्थापित कलारूढ़ियों से ऊपर होनी चाहिए। ब्रेख़्त ने लूकाच के 'सिस्टम' की आलोचना करते हुए लिखा है—"यथार्थवाद किन्हीं ख़ास कृतियों से जन्म नहीं ले सकता। इसके लिए हमें नये-पुराने, परीक्षित-अपरीक्षित, कला के आधार पर बना हो या अन्य किसी आधार पर—उन सभी रूपों को यथार्थ को जनता तक पहुँचाने के लिए अपनाना होगा, जिसमें वे पारंगत हों। हमें इस बात का भी पूरा ख़्याल रखना होगा कि एक विशेष समय के ऐतिहासिक साहित्य-रूप—बाल्ज़ाक और तोल्सतोय के साहित्य-रूप—को सच्चा यथार्थवादी बताकर उसके आधार पर यथार्थवाद का कोई नितांत औपचारिक साहित्यिक मानदंड तैयार कर लिया जाए, हम केवल उसे ही लिखने की साहित्यिक शैली नहीं कहेंगे। यथार्थवाद का मतलब है—समाज की आकस्मिक जटिलताओं का रहस्योद्घाटन, चीज़ों के बारे में वर्तमान दृष्टिकोण पर चढ़े शासक वर्ग के विचारों के मुखौटे को उतारना, मानव-समाज की सर्वाधिक ज्वलंत समस्याओं का व्यापक समाधान देने वाली वर्ग-दृष्टि को लेखन में उतारना तथा विकास तत्त्व की प्रधानता को मानते हुए उसे मूर्त आकार देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभव बनाना। इनकी अभिव्यक्ति के लिए कलाकार को फ़ैंटेसी, मौलिकता और प्रहसन की छूट देनी होगी। हम न तो ब्यौरों के बोझ से दबे साहित्यिक प्रारूपों (मॉडलों) पर ठहर सकते हैं और न वर्णन के बने-बनाये नियमों से कलाकार को बाँध सकते हैं।''

यदि साहित्य में यथार्थ के कलात्मक प्रतिबिंबन के तरीक़ों और बहुविधता को नये सर्जनात्मक प्रयोगों की आवश्यकता से जोड़कर देखें, तो क्लासिकीय रचनाओं के सामान्यीकरण का आग्रह बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं लगता है। इस संबंध में ब्रेख़्त का तर्क था कि परिवर्तनशील यथार्थ के चित्रण के लिए आवश्यक है कि चित्रण के माध्यमों और शैलियों को भी बदलते रहें, क्योंकि यथार्थ के चित्रण की समस्या पूर्व निर्धारित किसी नियम या प्रणाली तक सीमित नहीं हो सकती है। वह यथार्थ के कलात्मक प्रतिबिंबन के नित नये और प्रभावी साधनों की खोज करती है। यथार्थवादी कला हर तरह की जड़ता और रूढ़ि से बचते हुए विश्व-विकास की दिशा और गति का नवीन चित्रण करते हए स्वयं अपना भी नीवीनीकरण करती है। ब्रेख़्त के शब्द है : ''कोई रचना यथार्थपरक है या नहीं, यह उसकी यथार्थवादी मानी जाने वाली और अपने समय के लिए ठीक ऐसी माने जाने वाली रचनाओं से समानता और असमानता सिद्ध करके ही तय नहीं किया जा सकता। हर रचना के मामले में जीवन के प्रतिबिंब की मात्र अन्य प्रतिबिंबों से नहीं, बल्कि इससे भी बढ़कर स्वयं प्रतिबिंबित जीवन से तुलना की जानी चाहिए। (उद्धृत, मिखाइल ख्रापचेंको, समकालीन सौंदर्यशास्त्र की समस्याएं, साहित्य और सौंदर्यशास्त्र, रादुगा, मास्को, 1987 पृ. 222)

ब्रेख़्त का दावा है कि लूकाच के यथार्थ को एक निरंकुश 'तकनीज्ञता' मिल गयी है, जबकि रूपवाद उनके द्वारा सुझाये गये क्लासिकल क़िस्म के यथार्थवादी मॉडल में भी उतर सकता है। ऐसा वे शुद्ध आत्मगत धारणाओं के कारण करते हैं जबकि सच्चा यथार्थवाद ऐतिहासिक प्रक्रियाओं पर आत्मगत प्रतीतियों के आरोपण की छूट नहीं देता। ब्रेख़्त का तर्क है कि लूकाच के यथार्थवादी सिद्धांतों की रूपवादी प्रकृति का पर्दाफ़ाश इस सच्चाई से भी हो जाता है कि वह न केवल पिछली सदी के कुछेक औपन्यासिक रूपों के आधार पर निकाले गये हैं, जिनके वे समाजवादी लेखकों से अनुगमन की आशा रखते हैं और उनकी शैली की प्रशंसा करते हैं, बल्कि गीतिकाव्य और नाटकों में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति के विषय में सुविधापूर्ण चुप्पी साधे रखते हैं। ब्रेख़्त ने लूकाच के अंतर्विरोधों को उजागर करते हुए बताया है कि 'एक तरफ़ तो वे अपने मानदंडों के विपरीत पड़ने वाले अभिव्यक्तिवादी-आधुनिकतावादी लेखन को पतनशील और अमानवीय तकनीक पर आधारित बुर्जुआ रूपवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति मानकर ख़ारिज़ करते हैं, दूसरी ओर उनके पूर्वजों की ओर उँगली दिखाते हुए उनके पतित वंशजों को उनका अनुकरण करने की नसीहत भी देते हैं।' ब्रेख़्त की दृष्टि में लूकाच के यथार्थवाद में निहित यह स्पष्ट अंतर्विरोध उन्हें स्वयं रूपवादी आलोचक बनाता है और उन्हें भ्रमों की ऐसी आरामदेह रोमेंटिक दुनिया में ले जाता है। हाँ, यह जड़ीभूत विश्वास और मज़बूत होता है कि नये लेखकों की तार्किक क्षमताएँ नष्ट हो चुकी हैं, जबकि उनका काम अपने साहित्य में उस स्वतःस्फूर्त समग्रता का निर्माण करना है, जिसे पूँजीवाद अनिवार्यतः नष्ट करता है और जिसे महान यथार्थवादी लेखक साहित्य और कला में समरसता और समग्रता की पुनर्रचना से व्यक्ति और समाज, प्रत्यक्ष और सार-तत्त्व, मूर्त और अमूर्त के बीच पूँजीवादी अंतर्विरोधों को समाप्त करता है। ब्रेख़्त ने इसे लूकाच का 'प्रतिक्रियावादी अतीत-प्रेम' कहा था। ब्रेख़्त के मत में कला का काम ऐसे अंतर्विरोधों का शमन करना नहीं है, बल्कि उनको और बढ़ाकर व्यक्त करना है, ताकि कला वास्तविक जीवन मे उन अंतर्विरोधों की समाप्ति के लिए व्यावहारिक प्रेरणा बन सके। ब्रेख़्त जानते थे कि हर जवाब एक नये सवाल तक ले जाता है और दुनिया में कुछ भी अंतिम नहीं है, इसलिए सहित्य में 'समग्रता' की स्थापना विशुद्ध कपोल कल्पना है। साहित्य अपने आप में संपूर्ण नहीं हो सकता। वह अन्य चीज़ों की तरह ही अपने इस्तेमाल की प्रक्रिया में संपूर्णता प्राप्त करता है। ब्रेख़्त की यह धारणा इस अटल विश्वास से पैदा हुई थी कि इस दुनिया को बदलकर उसे अधिक बेहतर और तर्कसंगत बनाया जा सकता है–'वे असंख्य उत्पादक, जो अब तक राजनीति की वस्तु थे और जिन्हें अब राजनीति का विषय होना चाहिए।'

यथार्थवाद या आधुनिकतावाद?

यथार्थवाद और आधुनिकतावाद को लेकर लूकाच और ब्रेख़्त के मतभेद का संबंध दोनों के राजनीतिक विचारों के अंतर से है। ऊपर मैंने लिखा है कि लूकाच सक्रिय राजनीति से कटकर साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में उतरने के कारण ब्रेख़्त की निगाह में एक प्रबुद्ध अकादमिक आलोचक हैं, न कि एक सर्जक कलाकार। पिछली सदी के तीसरे-चौथे दशक में फ़ासीवाद के उदय और उसके विरुद्ध तीसरे अंतरराष्ट्रीय (इन्टरनेशनल) में लेखकों एवं बुद्धिजीवियों के लोकप्रिय संयुक्त मोर्चे के दौर में लूकाच की मान्यताओं को कम्युनिस्ट बुद्धिजीवियों के बीच व्यापक स्वीकृति मिली थी। अपने मास्को प्रवास के दौरान् सोवियत बुद्धिजीवियों का एक प्रभावशाली तबक़ा लूकाच के साथ था, जिनसे सामाजिक प्रतिष्ठा और सत्ता-संरक्षण जुड़ा हुआ था। राजनीतिक रूढ़िवाद से जुड़े होने के कारण लूकाच की स्थिति काफ़ी मज़बूत थी, जबकि ब्रेख़्त के बारे में लोगों को भ्रम था कि वे क्रांतिकारी कम्युनिस्ट हैं भी या नहीं। यथार्थवाद-संबंधी ब्रेख़्त की मान्यताएँ नाटक के क्षेत्र में उनकी सक्रियता एवं एक अलग क़िस्म के वैज्ञानिक रंगमंच के निर्माण से कहीं अधिक स्वयं कला की विकासशील सत्ता, उसकी विचारधारात्मक भूमिका एवं ऐतिहासिक प्रयोजनशीलता को दर्शाने वाली हैं। ब्रेख़्त ने कला में यथार्थवाद की स्थापना के लिए सिद्धांत और व्यवहार की द्वंद्वात्मक एकता के मार्क्सवादी सिद्धांत का उपयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लूकाच की तुलना में अधिक बेहतर एवं प्रभावशाली तरीक़े से किया है। वहाँ कलाकार और सिद्धांतकार आलोचक के प्रसंगों के विभाजन से जुड़ी गुत्थियों को भी अकाट्य तर्कों से सुलझाया गया है। लूकाच ने ब्रेख़्त के प्रयोगधर्मी नाटकों पर रूपवाद का गहरा असर देखा था और उसे बुर्जुआ पतनशीलता से जोड़ा था। अपने जवाब में ब्रेख़्त ने ठोस प्रमाणों के आधार पर यह दिखाया था कि लूकाच के सिद्धांत ही नहीं, उसे व्यवहार में उतारने वाली पद्धति भी रूपवादी है। उन्होंने ताल ठोंककर कहा कि 'कोई कृति यथार्थवादी है या नहीं, इस बात से तय नहीं होता कि वह यथार्थवादी समझी जाने वाली अपनी पूर्ववर्ती कृतियों से पूरी तरह मेल में है या नहीं। यह इस बात से तय होता है कि कृति में व्यक्त जीवन जिये जा रहे जीवन के मेल में है या नहीं, न कि किसी दूसरी जी गयी ज़िंदगी के वर्णन की समानुपातिकता से।' ब्रेख़्त ने लूकाच के तर्कों की ज़मीन पर उतरकार उन्हीं के औजारों का उपयोग करते हुए यह समझाया कि 19वीं सदी के ख़ास कालखंड की महान यथार्थवादी मानवतावादी कालजयी कृतियाँ भी लूकाच के अपने आदर्शों के विपरीत आदर्श प्राचीन ग्रीक साहित्य की कसौटियों पर खरी नहीं उतरतीं। पुरातन की ओर मुड़ने का कोई भी आग्रह पूरी तरह से अनैतिहासिक एवं अकादमिक हैं, क्योंकि वह कला को उसके सामाजिक आधार से अलग करता है। ज़ाहिर है ब्रेख़्त का इशारा काफ़्का, कामू और ज्वॉयस जैसे आधुनिकतावादी लेखकों की तरफ़ जितना है, उतना ही स्वयं अपने रचनाकर्म की तरफ़ भी, जिनके बारे में लूकाच हमेशा सशंकित बने रहे। अगर रूपवाद सिर्फ़ साहित्य की समस्या होता, तो दुनिया का महान से महान लेखक भी शायद ही यथार्थवादी होता।

पेरिस में ब्रेख़्त के नाटकों की प्रस्तुति पर मिलने वाली विभिन्न प्रतिक्रियाओं की समीक्षा करते हुए रोलां बार्थ ने लिखा था–"उदारवादी दक्षिणपंथियों के लिए ब्रेख़्त के नाटक पारंपरिक बंध्याकरण से छुट्टी दिलाकर राजनीति के क्षेत्र में स्वच्छंद विहार कराते हैं। ब्रेख़्त का रंगकर्म उस आदमी के हमारे विरुद्ध होने के बावजूद महान है। दूसरी ओर वामपंथी हैं, जो ब्रेंख़्त को टॉमस मान और रोम्या रोलां की तरह महान मानववादी कलाकार की श्रेणी में रखते हैं, वहीं बुद्धिविरोधी पूर्वाग्रहों से ग्रस्त कुछ अति उत्साही ज़्यदानोववादी वामपंथी भी हैं, जो ब्रेख़्त के यांत्रिक समाजवाद के विरोध के कारण उनके नाटकों में रूपवाद देखते हैं और एपिक थिएटर की उनकी नयी संकल्पना के ज़बरदस्त विरोधी हैं। यही लूकाच के ब्रेख़्त-विरोध की भी नियति है।" (ऑन रेसीन, हिल एंड वांग, न्यूयॉर्क, 1964, पृ. 85)

यहाँ यह जानना बहुत ज़रूरी है कि ब्रेख़्त ने पिछली सदी के दूसरे दशक में जर्मनी में वाईमार के परम निरंकुश शासन-काल में अपने लेखन की शुरुआत की थी। उनके आरंभिक नाटकों पर प्रभाववादी कला-आंदोलन (इम्प्रेशनिज़्म) का जो असर दिखायी देता है, वह उसी का परिणाम है। ब्रेख़्त के नव्य रंगमंच के क्रांतिकारी उसूलों का उससे गहरा संबंध है, जिसे लूकाच अनदेखा करते हैं। प्रभाववादी कला-आंदोलन के विषय में अर्न्स्ट फ़िशर ने लिखा है कि वह राजसत्तावादियों के प्रोफ़ेसरीय मंतव्यों वाली अकादमिक कला की स्फीत आडंबरप्रियता के ख़िलाफ़ था, जो 'सुंदरता' और 'उदांत्त' की माला जपते थे, किंतु व्यवहार में शर्मनाक पतनशीलता के द्योतक थे। प्रभाववाद इसी कलात्मक जालसाज़ी के विरुद्ध था।' (नेसेसिटी ऑफ़ आर्ट, पेंगुइन बुक्स, कॉक्स एंड वाइमान लि., लंदन, 1978, पृ. 75) ब्रेख़्त के नाटक 'थ्री पेनी ओपेरा,' 'द मदर,' 'ए मैन्स मैन' इसी प्रभाव के अंतर्गत लिखे गये हैं। ब्रेख़्त ने 1933 से 1947 तक यानी लगभग पंद्रह वर्षों तक डेनमार्क, फ़िनलैंड, स्वीडन और अमेरिका में निर्वासित जीवन बिताया। इस दौर में वे प्रभाववादी आंदोलन की कमज़ोरियों से मुक्त होकर तेज़ी से मार्क्सवाद की ओर बढ़े और 'मदर करेज', 'द काकेशियन चॉक सर्किल' एवं 'गैलेलियो' जैसे कालजयी नाटकों की रचना की। अतः उन पर बहुत आसानी से रूपवादी होने का ठप्पा लगाकर ख़ारिज़ नहीं किया जा सकता है।

एक बार फिर लूकाच की 'पद्धति' पर ब्रेख़्त की आपत्ति की ओर लौटें। ब्रेख़्त का कहना है कि लूकाच की अनैतिहासिकता 'प्रारूपों' के निर्माण-संबंधी उनकी धारणा में भी दिखायी देती है। मनुष्य की मुक्ति का संबंध यथार्थवाद के व्याकरण से नहीं, पूँजीवादी शोषण से है, जबकि लूकाच का यथार्थवाद साहित्य की ज़मीन से जन्म लेता है, न कि परिवर्तनशील समाज की ऐतिहासिक सच्चाइयों से, जिनसे सहित्य का जन्म होता है। ब्रेख़्त ने लिखा है कि "बुर्जुआ और सर्वहारा के निर्णायक संघर्षों के दौर में मानव-जीवन की जटिलता और सघनता को महज़ एक प्लॉट-संयोजन अथवा महान चरित्रों के निर्माण की पृष्ठभूमि बना देना सच्चा लेखन-कर्म नहीं हो सकता। किताबों में व्यक्ति उतनी ही जगह का हक़दार है, जितना वस्तुतः यथार्थ में भी ज़रूरी हो। छोटे-बड़े सभी चरित्र मानवीय सह-अस्तित्व की प्रक्रिया में ही जन्म लेते हैं और अभिव्यक्त भी होते हैं, इसलिए यह मानना सिरे से ग़लत है कि यथार्थवादी लेखक को हमेशा महान चरित्रों को उसकी बहुविध छवियों की प्रतिक्रिया के साथ गढ़कर अभिव्यक्ति देनी चाहिए, संभवतः इस हद तक कि दूसरे पात्रों के साथ उसके संबंध ऊपरिया गौण हो जाएँ। हमें स्थायी पात्रों के निर्माण की टेक्नीक के आधार पर समस्या का सरलीकरण नहीं करना चाहिए और न मादाम तुसाद की तरह साहित्य में स्थायी पात्रों का हवाई क़िला खड़ा करना चाहिए।... साहित्यिक रूपों को फ़ॉमूलों की तरह परखा जा सकता है।

"समय परिवर्तनशील है। यदि ऐसा न होता, तो सोने की मेज़ पर न बैठने वालों के लिए यह एक बड़ी दुर्घटना होती। पद्धतियाँ बदल जाती हैं। उद्दीपन बेकार हो जाते हैं। नयी समस्याएँ उठती हैं और नये तौर-तरीक़े की ज़रूरत पड़ती है। यथार्थ बदल जाता है और इसे व्यक्त करने के लिए अभिव्यक्ति के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौर-तरीक़ों में परिवर्तन आवश्यक है। कुछ नहीं से कुछ भी पैदा नहीं होता, पुराने से नया जन्मता है और इसलिए वह नया है।.. जो कल लोकप्रिय था, आज नहीं है, क्योंकि जनता जो कल थी, आज नहीं है।'' यही वह बीज-भाव है, जो ब्रेख़्त के 'एपिक थियेटर' की परिकल्पना में निहित है।

ब्रेख़्त और थिएटर

ब्रेख़्त की मृत्यु 1956 में हुई। पिछली सदी के छठे दशक में यानी 'ब्रेख़्त रचनावली' के प्रकाशन के साथ पुराने घिसे-पिटे मार्क्सवादी सिद्धांतों के सशक्त विकल्प के रूप में ब्रेख़्त के 'एपिक थिएटर' की नवीन संकल्पना सामने आयी। अरस्तू के रीतिवाद से अपने को अलगाते हुए ब्रेख़्त ने लिखा है कि पहला जहाँ 'दर्शक को नाटक के चरित्र में स्थापित कर देता है', वहीं उनका एपिक थियेटर 'दर्शकों में सिर्फ़ पर्यवेक्षक होने के बोध को जगाये रखकर उनकी कर्म-क्षमता की रक्षा करता है। पुराना परंपरागत नाटक 'दर्शकों की भावनाओं (इमोशन्स) को जगाता है', एपिक थियेटर उन्हें 'निर्णय लेने के लिए बाध्य करता है', पुरानी त्रासदियों में 'मनुष्य अपरिवर्तनशील है', एपिक थियेटर के घटना-विधान में मनुष्य न केवल बदल सकता है, बल्कि बदल देने की क्षमता भी रखता है। ब्रेख़्त की दृष्टि में नाटक की अरस्तूवादी पद्धति दर्शक को अकर्मण्य बनाती है, जहाँ वे आस्वाद और आनंद के नाम पर तैयार अपरिवर्तनीय कला-रूप नाटक के निष्क्रिय उपभोक्ता होते हैं। किसी रचनात्मक सोच के अभाव में वह मानव-नियति को अपरिवर्तनशील मानकर वर्तमान से समझौता करना सिखाता है और दर्शकों को सामाजिक व्यवहार में आलोचनात्मक सहभागिता से दूर रखता है। यह बुर्जुआ रंगमच की अवधारणा के काफ़ी निकट है। अरस्तू के काव्यशास्त्र में 'तादात्म्य' और 'विरेचन' दो ऐसी धारणाएँ हैं, जो इस सम्मोहक भ्रांति की शिकार हैं कि दर्शक 'नाटक' को ही जीवन की वास्तविक प्रस्तुति मानकर आनंदमग्न हों, जबकि हक़ीक़त यह है कि वहाँ दर्शक और अभिनेता दोनों वास्तविक मानवीय क्रियाओं के कर्ताधर्ता नहीं होते हैं। वे महज़ अभिनेता और दर्शक होते हैं, इसलिए अभिनेता और दर्शक में यह विवेक बराबर बना रहना चाहिए कि एक नाटक खेल रहा है और दूसरा उस खेल को देख रहा है। अगर नाटक को खेलना और देखना एक सामाजिक कर्म है, तो अन्य दूसरे सामाजिक व्यवहारों की तरह नाट्य-संपादन में भी अभिनेता और दर्शकों में यह आत्मसजग चेतना मौजूद रहनी चाहिए। उसका विलोप अमूर्त एवं अनैतिहासिक चिंतन का परिणाम है। उसी से यह विश्वास जन्म लेता है कि कला का काम महज़ सौंदर्यानुभूति को जन्म देना या विशुद्ध मनोरंजन है। (देखें ब्रेख़्त ऑन थियेटर, 'आलेख' द जर्मन ड्रामा : प्री हिटलर, अनूदित एवं संपादित जे विलिएट ऐरे मैथुएन, लंदन, 1978, पृ. 77) ऐसी सौंदर्यानुभूति एक त्रुटिहीन समग्र अनुभव है, जो दर्शकों को देशकाल से अलग कर वास्तविक परिस्थितियों के बारे में विवेकसंगत ढंग से सोचने की उनकी क्षमता पर बराबर लगाम लगाये रखता है। उसकी विचारधारात्मक परिणति यथास्थितिवाद में होती।

ब्रेख़्त ने लूकाच की 'समग्रता' की धारणा को नाटक के लिए नितांत अनुपयोगी माना। नाटक में आरंभ, मध्य एवं अंत की जैविक एकता से उन्होंने इन्कार किया, जो दर्शकों को किसी पूर्व निर्धारित निष्कर्षों तक खींचती है, क्योंकि उसका प्रभाव दर्शक को प्रेक्षागृह से बाहर की स्वतंत्र दुनिया के जीवंत संपर्क से काटकर उसके निर्णय लेने की संभावना को ही समाप्त कर देता है। इसके विपरीत नाटक की पटकथा प्रायः अनिश्चित होती है, जिसके बारे में दर्शक स्वतंत्र रूप से सोचने के लिए स्वतंत्र होता है। ब्रेख़्त के लिए यथार्थ की समग्रता सिर्फ़ उसकी कलात्मक प्रस्तुति का ही विषय नहीं होती है, वह पाठक या दर्शक की ग्रहणशीलता का भी विषय होता है। कलाकृतियाँ निरपेक्ष ढंग से समग्र अथवा पूर्ण नहीं होतीं। उनकी समग्रता या पूर्णता सामाजिकों-प्रेक्षकों से उनके सापेक्ष संबंध में निहित होती है। नाटक के बारे में दर्शकों की बार-बार मिलने वाली प्रतिक्रियाओं की रोशनी में उसके पुनर्लेखन एवं पुनर्प्रस्तुति से नाट्य-कर्म को सुधारा जासकता है। इस तरह नाटक एक उपभोग की वस्तु बनने के बजाय एक प्रयोगधर्मी क्रिया बन जाता है।

सोलोमन ने ब्रेख़्त की बुर्जुआ थियेटर की आलोचना को सही ठहराया है एवं उसके एवज़ एपिक थियेटर की अवधारणा को प्रगतिशील कहा है। उन्होंने परोक्षतः लूकाच की ओर इशारा करते हुए लिखा है कि 'ब्रेख़्त के प्रयोगधर्मी नाटकों में सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं उन्हें दिशा और गति देने वाली निर्णायक राजनीतिक शक्तियों की सारभूत पहचान मौजूद है, जो कलाकृति में यथार्थवाद की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक सघन समग्रता (इंटेंसिव टोटेलिटी) के अभाव के बावजूद उसकी प्रभाव-क्षमता को बचाये रखने की हैसियत रखती है। (देखें, एम.सोलोमन, संपा. मार्क्सिज़्म एंड आर्ट : एशेज़ क्लासिक्स एन्ड कन्टम्प्रारी, नोम्फ़, न्यूयार्क, 1973, पृ. 358-59)

इस संदर्भ में ब्रेख़्त के प्रयोगधर्मी वैज्ञानिक रंगमंच की दो धारणाएँ अलगाव एवं 'अतादात्म्य' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। बुर्जुआ रंगमंच से ब्रेख़्त की असहमति—वह 'क्या' और 'कैसे' प्रदर्शित करता है, दोनों से है। उनका कहना है कि दैनंदिन जीवन के प्रति बुर्जुआ रंगमंच वस्तुपूजक दृष्टिकोण (फ़ेटिश) को ही सामने लाता है। ब्रेख़्त उसके समानांतर 'अलगाव-प्रभाव' (एलियनेशन इफ़ेक्ट) की धारणा सामने लाते है। उसके बारे में ब्रेख़्त ने लिखा है—''अलगाव-प्रभाव से अभिप्राय मानवीय एवं सामाजिक घटनाओं के चित्रण को यथावत स्वीकार्य एवं स्वाभाविक बनाने के विपरीत ऐसी टेकनीक से है, जो चौंकाने वाली हो, कुछ इस तरह कि दर्शकों पर उसका प्रभाव सामाजिक दृष्टि से उन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण आलोचना और असहमति के योग्य बना सके।'' (ब्रेख़्त, ऑन थियेटर, पूर्वोद्धृत, पृ. 125) अलगाव-प्रभाव की संकल्पना में अभिनय की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस शैली का निषेध है, जो चरित्र (पात्र) और अभिनेता के बीच पूर्ण तादात्म्य स्थापित करती है। उसका उद्देश्य 'दिखाना' भर है, न कि अभिनीत चरित्र की आदतों, स्वभाव एवं व्यवहार को अपनाकर स्वयं वैसा बन जाना। अगर टेरी ईगल्टन के शब्दों का सहारा लें तो "अभिनेता से अपनी भूमिका से तादात्म्य स्थापित करने के स्थान पर उससे दूरी बनाये रखने की माँग की जाती है, जिससे सनद रहे कि अभिनेता केवल अभिनय कर रहा है। वह उस भूमिका को निभा रहा है, जिसे दिखाया जाना है; न कि उसमें पूरी तरह रम जाए। इस अलगाव- प्रभाव का उद्देश्य दर्शकों का नाटक से अलगाव बनाना है और उनके भावनात्मक जुड़ाव को रोकना है, जो उनकी आलोचनात्मक क्षमता पर अंकुश लगाता है। (मार्क्सिज़्म एंड लिटरेरी क्रिटिसिज़्म मैथ्यून एन्ड क. लि., लंदन, 1977, पृ. 65) स्वयं ब्रेख़्त ने लिखा है कि अभिनेता से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह पूरी तरह से उस चरित्र में रूपांतरित हो जाए, जिसका रंगमंच पर वह अभिनय कर रहा है। अभिनेता मूल पात्र (किंग लियर, हार्पेगन, शेविक) नहीं हो सकता। वह उन्हें केवल दर्शाता है। उसका काम उनकी लीलाओं को हर संभव विश्वसनीय ढंग से पुनर्प्रस्तुत करना भर होता है, न किस स्वयं का और इसी तरह दूसरों का भी कायांतरण करना। (ब्रेख़्त ऑन थियेटर, पूर्वोक्त, ए शार्ट डिस्क्रिप्शन ऑफ़ ए न्यू टेकनीक इन एक्टिंग, पृ. 137) ब्रेख़्त न केवल चरित्र और अभिनेता के बीच एक सुरक्षित दूरी का निर्वाह करने के पक्ष में हैं, बल्कि अभिनेता और दर्शक के बीच भी समान अलगाव को ज़रूरी मानते हैं। इसी से यह ज़रूरी विवेक पैदा होता है कि अभिनेता सिर्फ़ अभिनय को अंजाम दे रहा है और नाटक या दर्शक नाटक को पढ़ने या देखने को। इस अलगाव-प्रभाव को अभिनेता अगले दृश्यों के आने के बारे में रंगमंच पर पहले ही बताकर उत्पन्न करता है, या फिर बैक प्रोजेक्शन, गीत, कोरियोग्राफ़ी आदि साधनों के सहारे कायम करता है।

ब्रेख़्त रंगमंच के मामले में काफ़ी व्यावहारिक दृष्टि को लेकर चले। बुर्जुआ थियेटर से जो सत्याभास उत्पन्न होता है, वह दर्शकों को उसकी प्रश्नातीत स्वीकृति या आत्मसर्मपण की ओर ले जाता है, जो सीधे सत्ताधारी वर्ग के पक्ष में खड़ी होती है। इसके विपरीत ब्रेख़्त का दावा है कि उनके नाटक अलगाव-प्रभाव एवं अ-तादात्मीकरण से दर्शकों में आलोचनात्मक विवेक को प्रोत्साहित करते हैं, जो सामाजिक यथास्थितिवाद और उसकी सुरक्षा में गढ़ गए तर्कों एवं उपायों का खंडन करते हैं। इसके पीछे पूँजीवादी समाज की स्वाभाविक नित्यता और वस्तुपूजा (फ़ेटिशज़्म) के विरुद्ध मोर्चाबंदी का आग्रह मौजूद है, विशेषकर पूँजीवादी समाज के प्रकट यथार्थ के विषय में संदेही रवैया अपनाकर जनता के राजनीतिक प्रशिक्षण द्वारा शासक-वर्ग के विचार और उसके वर्गहितों के बीच के संबंध की परख की जा सकती है। इसके लिए नाटक की सिर्फ़ अंतर्वस्तु ही नहीं, उसके उपकरण अर्थात रूप में भी परिवर्तन लाना ज़रूरी है, ताकि परंपरागत रूढ़ियों एवं विश्वासों के ख़िलाफ़ असहमति एवं विरोध को हवा देकर जनमानस को श्रमजीवी जनता के वर्ग-हितों के पक्ष में किया जा सकता है। ब्रेख़्त ने अपने प्रयोगधर्मी नाटकों के बारे में लिखा है कि वे रंगमंच के माध्यम से जनता के राजनीतिक प्रशिक्षण के औज़ार होने के कारण सर्वहारा के वर्ग-हितों के अधिक अनुकूल हैं (देखें, ब्रेख़्त, राटिंग द ट्रुथ : फाइव डिफ़िकल्टीज़, ट्वाइस ए इयर प्रेस, न्यूयार्क, 1948, पृ. 131)

लूकाच ने ब्रेख़्त के वैज्ञानिक रंगमंच एवं अ-तादात्म्य सिद्धांत पर दो आपत्तियाँ उठायी हैं। एक तो यह कि ब्रेख़्त ने दोनों को मिलाकर विज्ञान एवं कला की सौंदर्यबोधी सत्ता के रूप और अंतर्वस्तु के विशिष्ट संबंधों को ही नकार दिया है। लूकाच का तर्क है कि विज्ञान पूँजीवादी वस्तुकरण (फ़ेटिशाइज़ेशन) का रहस्यभेदन तो करता है, लेकिन ऐसा वह कला के मानकों को अपनाकर नहीं करता अर्थात् विरहस्यीकरण (डीफ़ेटी साईजेशन) वह कलात्मक प्रतिबिंबन के द्वारा नहीं करता, जो प्रत्यक्ष और सार-तत्त्व (एसेंस एन्ड रिएलिटी) के द्वंद्व और टकराव को मानवीय संवेदना का हिस्सा बना सके। इसलिए, ब्रेख़्त का वैज्ञानिक रंगमंच कला के विशिष्ट गुण-धर्म को ही नकार देता है। चूकि आज का इन्सान सतह पर ही जीने का आदी है, इसलिए उसकी चेतना में बदलाव के लिए एक नये समग्र परिप्रेक्ष्य की खोज अनिवार्य है, जो 'जो है', 'जो वस्तुतः है' और 'जो होना चाहिए' के बीच में समझा सके और वस्तुकरण की मिथ्या एवं भ्रामक धारणा के बीच फ़र्क़ करने का विवेक पैदा कर सके। लूकाच की दूसरी आपत्ति विरेचन-संबंधी ब्रेख़्त की आलोचना पर है। ब्रेख़्त के विपरीत लूकाच शास्त्रीय यथार्थवादी नाटकों में इतिहाससिद्ध चरित्रों के प्रतिबिंबन और उनसे जुड़ाव के पक्ष में है। उनका कहना है कि विरेचन का पल स्वयं मानवता की पहचान का एक पल भी होता है। यथार्थवादी कलाओं में व्यक्ति की निजता और उसमें परिवर्तन की क्षमता का जो संभावनापूर्ण समग्र परिप्रेक्ष्य निहित होता है, वह मानव-इतिहास के विशिष्ट दौरों को दिखाने वाला होता है। उसी से आस्वादक को इतिहास में अपनी भूमिका निभाने वाले एक विशिष्ट प्राणी (मनुष्य) होने की पहचान मिलती है। चूँकि कला अपने प्रभाव से दर्शक-आस्वादक के पूरे व्यक्तित्त्व एवं व्यवहार में परिवर्तन लाने में समर्थ होती है, इसलिए विरेचन उनके बौद्धिक संज्ञानात्मक प्रयासों से पूरी होने वाली ऐसी प्रक्रिया है, जो दर्शक की दृष्टि, आचार और नैतिकता को भी बदलने का सामर्थ्य है।

सामान्य अर्थ में दर्शक की ग्रहणशीलता में अलगाव-प्रभाव पर लूकाच को आपत्ति नहीं है। लूकाच इस बात से भी सहमत प्रतीत होते हैं कि कलाकृति को यथार्थ-चित्रण के जड़ वस्तु पूजावादी तरीक़े से अलग होना चाहिए। वे स्वीकार करते हैं कि शेक्सपियर और शिलर जैसे शास्त्रीय रंग-परंपरा के पहुँचे हुए नाटककार भी अपने नाटकों में भावनात्मक प्रतिक्रिया के बजाय आलोचनात्मक विचारशीलता (क्रिटिकल रिफ़्लेक्टिव) को बढ़ावा देने वाली किसी विशिष्ट टेक्नीक के अभाव के बावजूद अलगाव-प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जन्म देने में सफल हुए हैं। लूकाच का तर्क है कि कालजयी यथार्थवादी कृतियों में विरेचन की जो प्रभावी शक्ति होती है, वह भी आस्वादक को वस्तुपूजा वाली मनःस्थिति से ऊपर उठाकर वृहस्तर सच्चाई से परिचित कराने वाली कृतियों में निहित वस्तुपूजा-विरोधी समग्र परिप्रेक्ष्य के दायरे के भीतर ही संभव होता है। अतः अलगाव-प्रभाव के किसी सीधे, प्रत्यक्ष अथवा व्यावहारिक अभिबोध के परिणामों के विषय में सोचना ग़लत है। (देखें, जार्ज लूकाच, ऑन वाल्टर बेंजामिन एन्ड बर्टोल्ड ब्रेख़्त, न्यू लेफ़्ट रिव्यू नं. 110, जु.-अग. 1978, पृ. 81-95 विशेषकर पृ. 90) लूकाच का निष्कर्ष है कि ब्रेख़्त के अलगाव-प्रभाव की टेकनीक अधिक से अधिक शासक-वर्ग के बहुश्रुत विचारों में निहित वर्गहितों का पर्दाफ़ाश करती है। अगर ब्रेख़्त ही शब्द 'क्रिटिकल इमोशन' के मानदंड से उनके रंगमंच का मूल्यांकन करें, तो उनका रंगमंच सिर्फ़ इतना बताता है कि रूढ़िवाद के दिन अब लद गये हैं और उन्हें छोड़ना बहुत ज़रूरी हो गया है। (उपरोक्त)

ऐसा प्रतीत होता है कि लूकाच परोक्ष रूप से यह मानते हैं कि ब्रेख़्त के नाटकों के दर्शक राजनीति के पूर्व प्रशिक्षित कार्यकर्ता हैं और उनके नाटक पहले से ही प्रतिबद्ध दर्शकों के मन में व्यवस्था के प्रति संदेह को जाग्रत रखने के प्रयास के परिणाम हैं। संभवतः इसी से लूकाच की यह धारणा बनती है कि ब्रेख़्त जिस दर्शक के राजनीतिक प्रशिक्षण की बात करते हैं, वह दैनिक जीवन में सामाजिक यथार्थ के स्वयंभोगी असंतोष से संचालित न होकर यथार्थ के ऐसे चित्रण के प्रति अमूर्त ढंग से अपने झुकाव से संचालित होते हैं, जो श्रमिकजन के वर्ग-हितों का आभास देने वाला हो, जबकि ब्रेख़्त ऐसी जनता से हाथ मिलाने की बात करते हैं, जो सबसे अधिक त्रस्त है और निरंतर बढ़ते जंगलीपन के विरुद्ध एकमात्र सहयोगी शक्ति और आशा का स्रोत है, जो शासक-वर्ग की उपलब्धियों को जनता के उस हिस्से तक पहुँचा सके, जो नेतृत्व के लिए लड़ता है। इस प्रकार यथार्थवाद और लोकप्रिय दोनों स्वतः सहयोगी हैं। (ब्रेख़्त अगेंट लूकाच, न्यू लेफ़्ट रिव्यू, अंक 84, अ.मा., 1974, पृ. 104-18, देखें, उपखंड २ कंसेप्ट ऑफ़ पोपुलेरिटी)

यथार्थवाद को लोकप्रिय भी होना चाहिए, ताकि उसकी जटिलताएँ अधिक से अधिक बोधगम्य हो सकें। इसमें जीवन के विश्वसनीय बिंब ही सहायक हो सकते हैं। ब्रेख़्त नव हीगेलवादियों की इस आलोचना से असहमत थे कि कला मनुष्य की शक्ति और संभावना को खोलने की कुंजी है। उनका ज़ोर इस बात पर था कि उन संभावनाओं का संबंध ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों से है, न कि किसी अमूर्त सार्वभौम मानवीय समग्रता से। ब्रेख़्त उन संभावनाओं को निर्धारित करने वाली उत्पादन-प्रक्रिया के भौतिक आधार पर ज़ोर देते थे। ऐसा करते हुए मार्क्स-एंगेल्स की तरह ही सोचते थे। जैसाकि जर्मन विचारधारा में उन्होंने लिखा कि अन्य कुछ कलाकारों की तरह राफ़ेल भी अपने समय से पूर्व हुए तकनीकी विकास, सामाजिक संगठन एवं स्थानीय श्रम-विभाजन से बँधे हुए थे, कंडीशन्ड थे, जिसमें वे रहते थे। (ईगल्टन पूर्वो, पृ. 74) जो है, यह अन्योक्ति लूकाच की तरफ़ है। दूसरी ओर ब्रेख़्त का एपिक थियेटर बेंजामिन के उस क्रांतिकारी कला-सिद्धांत को अपनाता है जो कलात्मक उत्पादन की न केवल अंतर्वस्तु, बल्कि उसकी पद्धति और उपकरणों को भी बदल देना चाहता है। (देखें-अंडरस्टैंडिंग ब्रेख़्त, व्हाट इज़ एपिक थियेटर? अनु. बेस्टॉक, लंदन न्यू लेफ़्ट बुक्स, 1973, पृ. 73) ऐसा करते हुए ब्रेख़्त ग्रुंडिशे में कहे मार्क्स के इस कथन का ही अनुसरण कर रहे थे कि उत्पादन केवल व्यक्तियों के लिए वस्तुओं का ही निर्माण नहीं करता, वह वस्तुओं के लिए व्यक्तियों को तैयार भी करता है।

लूकाच आधिकारिक विद्वान थे। स्वयं वाल्टर बेंजामिन ने स्वीकार किया है कि उनकी पुस्तक 'इतिहास एवं वर्ग-चेतना' मार्क्सवादी चिंतन में एक मील का पत्थर है—'द मोस्ट कन्सिस्टेंट फ़िलासफ़िकल वर्क ऑफ़ मार्क्सिस्ट लिटरेचर'। (उद्धृत, जे. बर्न्स, अंडरस्टैंडिंग बेंजामिन, रेड लेटर्स सं. 7, 1977, लंदन, 16-31, देखें पृ. 7) मानना पड़ेगा कि महान लोगों की भूलें भी महान होती हैं। वे भूलें महान हैं, तो इसलिए कि उनसे भी सीखने की संभावना बनी रहती है। चीज़ों को उसकी पुरातन भव्यता में देखने की ज़िद और उससे ऊपर उठकर उसे समझने की बेचैनी के बीच जो प्रणय-कलह का रिश्ता है, वही लूकाच को ब्रेख़्त के पास लाता है और ब्रेख़्त से लूकाच को अलग भी करता है। यह समन्वय की नहीं है, समझ की है। हमारे समय में विचारों के द्वंद्ववाद लगाव और अलगाव की इस एकता को व्यवहार में ला ले, तो सामाजिक क्रांति न हो जाए!!

प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
राजस्थान वि.वि., जयपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापा मर चुके हैं

जय श्री राय

आज एक बार फिर अरनव को बिस्तर पर उसकी इच्छाओं के चरम क्षण में अचानक छोड़कर मैं उठ आयी थी। अब बाथरूम के एकांत में पीली रोशनी के वृत्त के नीचे खड़ी आईने में प्रतिबिंबित अपनी संपूर्ण निर्वस्त्र देह की थरथराती रेखाओं की तरफ़ देखने की त्राबादी झेलने के लिए मैं बाध्य भी थी और अभिशप्त भी....अपने अंदर के उन्माद के इस पल को मैं धैर्य से गुज़र जाने देना चाहती थी, मगर जानती थी कि यह इतना सहज नहीं होगा। पूरी देह में रेंगती हुई चीटियों की कतारें जैसे अब धीरे-धीरे गले के अंदर धक्के बाँधने लगी थीं। भीतर सनसनाकर उठते हुए आतंक के गहरे नीले बवंडर को मैंने आप्राण घुटककर पसलियों में वापस धकेलने का प्रयास किया था, मगर वह निरंतर बना रहा था—अपनी संपूर्णता में पूरी भयावहता के साथ! कुछ न सोच पाने की मनःस्थिति में मैं बेसिन का नल खोलकर अपने चेहरे पर पानी छपकती चली गयी। सामने जीवित दुःस्वप्न की तरह खड़े आईने की मटमैली धुंध में सुलगता हुआ चेहरा पिघलते हुए आहिस्ता से खो गया था। अब बचे रह गये थे बस वे आँसू, जो अभी-अभी पलकों के किनारे तोड़कर बह आये थे—सिंके हुए गालों पर संवेदनाओं की आड़ी-तिरछी लकीरें खींचते हुए ठोड़ी से छाती तक की उघड़ी त्वचा को एक ही क्षण में पूरी तरह से भिगोते हुए. ...

अपने नग्न घुटनों में चेहरा छिपाये मैं फ़र्श पर बैठ गयी—हे ईश्वर! कब तक... यह कब तक...।''

मैंने आज अपने उन्माद के अतिरेक में अरनव के चेहरे पर अपने नाख़ून खुभा दिये थे। अँधेरे में दर्द से छटपटायी हुई उसकी आवाज़ से मैं स्वयं आहत हो उठी थी—अब यह क्या हो गया मुझसे. .. क्या सचमुच मैं अपना मानसिक संतुलन खोती जा रही हूँ? आज अरनव का हमेशा का मान-मनुहार एक ज़िद में बदल गया था। वह किसी भी सूरत में मेरी 'न' सुनने के लिए राज़ी नहीं था। आपस की छीना-झपटी में मेरा नाइट गाउन पूरी तरह से फट गया था। अपने टीसते उरोजों पर उसके गर्म होंठ-जीभ दातों की जबर्दस्ती को मैं सह नहीं पा रही थी। जांघों के बीच उसकी अबाध उँगलियां उद्दंड हुई जा रही थीं। वही शराबों की गंध में डूबा हुआ ख़ौफनाक अँधेरा... वही मुझमें बलात प्रविष्टि करती हुई पशुवत मर्दानी कठोरता... मेरी देह का प्रत्येक अणु यकायक अपने अंदर के खौलते हुए लावे की ज़द में आ गया था। नहीं, अब यह दुबारा मेरे साथ नहीं होगा...

अरनव मेरे जानुओं को अपने दोनों घुटनों से निर्ममता से चाँपते हुए एक गर्म सलाख की तरह मेरे अंदर आमूल धँस आया था। मेरी साँस रुक गयी थी, अंदर एक बार फिर तहस-नहस हो जाने का तूफान था। ''पापा...।'' अपनी यातना के चरम क्षण में भी मैंने उसे ही पुकारा था, जिससे भागते हुए आज उन्माद के इस कगार पर आ पहुँची थी। तेज़ नाख़ून से तड़पकर अरनव मुझसे अलग हो गया था-''यू मैड वुमन...।'' झन्नाटेदार थप्पड़ के साथ ये प्रत्याशित शब्द मेरे वजूद पर गाज की तरह गिरे थे। अंदर का एक बहुत बड़ा हिस्सा अनायास अवश हो आया था। मेरे भीतर के बार-बार नकारे हुए सत्य को आज अरनव ने एक स्पष्ट नाम दे दिया था। एक आदमक़द आयने की तरह सामने खड़े होकर वह जानलेवा सच बोलने पर उतारू था... मेरे अंदर सहने की सारी शक्ति जैसे यकायक चुक आयी थी, इसलिए खुद को समेटकर मैं चुपचाप उसके सामने से हट गयी थी।

आईने में अपने गालों पर टँकी हुई सुलगती अंगुलियों की छाप को देखते हुए मैं रोना नहीं चाहती थी, मगर बस वही किया. .. रोती रही। कोई और विकल्प नहीं था मेरे इस अछोर दर्द के पास। बाथरूम के गीले फ़र्श पर अपनी ही सिसकियों से टूटते हुए मेरे लिए आज भी सबसे बड़ी तकलीफ़ यही थी कि मैं अपने जीवन के इतने बड़े क्राइसिस के पल में अपने पापा को पुकार नहीं पा रही थी, हालाँकि मैं कही गहरे जानती भी कि आज भी मेरी सबसे बड़ी रूहानी ज़रूरत वही हैं... उनका मेरे जीवन से जाना अभाव की एक पूरी दुनिया ले आया है। इसी अभाव से जन्मी है रिश्तों की एक लंबी फ़ेहरिस्त... दोस्तों की, दुश्मनों की, प्यार की और नफ़रत की... मगर कोई भी, कुछ भी तो उस अभाव का पूरक नहीं बन पाया...। मन के अंदर एक भाँय-भाँय करता हुआ अंधा कुआँ है और उसके सीलन भरे अंधकार में क़ैद मेरा सहमा हुआ बचपन. .. वह आज भी बड़ा नहीं होना चाहता। बड़ों की इस बहुत छोटी दुनियाँ में तो कभी नहीं... यह स्तब्ध अकेलापन मेरी ढाल भी है और कारावास भी। मैं इससे छूटना चाहकर भी छूटना नहीं चाहती। एक सर्द स्याह रात के सूने में मेरे हाथ से उनकी उँगली छूट गयी थी... और तभी से मैं उजालों की इस दुनियाँ में खो गयी हूँ। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक खुद को नहीं ढूँढ पायी हूँ, औरों की क्या कहें...

पापा की उस छूटी हुई उँगली के साथ खो गया है मेरा सबसे बड़ा संबल... मेरी आस्था, मेरा होना, मेरे पाँव की ज़मीन, मेरे सर का आसमान...अपने एकमात्र आश्रय से निकलकर जाना था कि बेघर हो जाने की वास्तविक विडंबना क्या होती है! उसके बाद आस्था-अनास्था के मारक द्वंद्व से जूझती यातना के एक अंतहीन अंतरिक्ष में भारहीन होकर न जाने कब से भटक रही हूँ, स्वयं को समेटने के असफल प्रयास में...एक विराट शून्य के सिवाय हाथ में अब तक कुछ भी नहीं आया है। सबमें डूबकर उनको भुलाने की कोशिश और फिर उन सब में उन्हीं को ढूँढने की कोशिश. ...और अंततः पा लेने का आतंक...हर टूटे रिश्ते में वास्तव में वही-वही रिश्ता एक नये सिरे से जुड़ा है, जिसे पूरी तरह से तोड़कर नष्ट कर देने का प्रयास मैंने बार-बार किया है।

आज आँखों के सामने सायास भुलाये कितने ही दृश्य उमड़े चले आ रहे हैं, जैसे कैमरे में स्लाइड शो चल रहा हो। पापा के कंधों पर बैठी मेले की रंगिनियाँ बटोरती हुई मैं... पीठ पर बस्ता लटकाये पापा की उँगली पकड़े स्कूल जाती हुई मैं... क्या यह सचमुच में मैं ही थी या कोई चिड़िया निरंतर चहकती हुई हँसी की उजली धूप में झिलमिलाती हुई, तितली के परों की तरह रंगीन और चंचल, हर क्षण हवा में फैलकर खुशबू की तरह खो जाने को आतुर. .. हींग-हल्दी में बसी हुई माँ और आफ़्टर शेव से महकते हुए पापा के बीच की रेशम डोर...इतना प्यार, इतना दुलार अपने फ्रॉक के छोटे से घेरे में समेटते-समेटते सच मैं थक ही जाती थी। पापा मेरी बुची नाक पर चुंबन जड़ते हुए पूछते "गुड़िया पापा की या मम्मी की?"

मैं उनके हाथ से चॉकलेट लेकर कहती-"पापा की।"

"क्या कहा, फिर से तो कहना..." माँ अचानक पीछे से आकर मुझे गुदगुदा देती।

मैं खिलखिलाती हुई गुड़ी-मुड़ी हो जाती। पापा-मम्मी कपट गुस्से में दोनों तरफ़ से मेरी दोनों बाँहें खींचने लगते और मैं चिल्ला उठती—"छोड़ो मुझे, नहीं तो गुड़िया टूट जाएगी..."

अपनी ही तेज़ सिसकियों से चौंककर मैं उठ खड़ी हुई थी। बाथरूम के फ़र्श पर न जाने कब से बैठी रह गयी थी। बाहर निकलकर देखा—अरनव कमरे में नहीं है। इतनी रात को कहाँ गया होगा... मैं परेशान हो उठी। तभी बाहर गाड़ी स्टार्ट होने की आवाज़ सुनकर बालकनी में निकलकर देखा कि गेट से हमारी कार निकल रही है। रात को सूनी सड़क पर जलती-बुझती हुई बत्तियाँ एक मोड़ पर जाकर गुम गयी थीं—पीछे के अँधेरे को और-और गहराते हुए...रात की स्याही में दगदगाता हुआ लाल रंग...। सिहरकर मैं कमरे में भाग आयी और फिर एक कटे हुए पेड़ की तरह बिस्तर पर गिरकर तकियों के बीच दुबक गयी...उनकी नर्मी में निरापद होने का आश्वासन ढूँढती हुई... मगर आँखों में दुःस्वप्न की वही असह्य आवाजाही लगी हुई है—खुली आँखों में और-और जीवंत होती हुई और बंद पलकों में दूर तक गहराती हुई... अपने से छूटकर मैं कहाँ जाऊँ... कहाँ जा सकती हूँ...? विवश पड़ी रहती हूँ खुली आँखों से वही नरक देखने के लिए बाध्य और अभिशप्त. ..

मम्मी चली गयी है सुजय काकू के साथ। पापा ड्योढ़ी में खड़े हवा में गोलियाँ दागे जा रहे हैं लगातार। सामने का दालान छटपटाते हुए कबूतरों से पट गया है... चारों तरफ़ ख़ून और टूटे पंख बिखरे पड़े हैं दूर-दूर तक... ये ख़ूबसूरत पक्षी पापा ने किस लाड़-प्यार से पाले थे... इन्हें दाना चुगाये बिना कभी खुद नहीं खाते थे... कहते थे कि ये अमन के पक्षी हैं, इन्हें बस प्यार और मुक्ति के नीले आकाश में बेफ़िक्र उड़ान चाहिए... दादी उनके पाँवों के पास दोहरी होकर बैठ गयी हैं। मैं संगमरमर के स्तंभ के पीछे सहमी हुई खड़ी हूँ। मेरी हिचकियाँ बँधी हुई हैं। गोली की गूँज से हवेली की बूढ़ी दीवारें काँप-काँप उठती हैं।

चार-पाँच महीने पहले सुदर्शन सुजय काकू हमारे जीवन में आये थे और उसके बाद से ही हमारे सहज-सरल जीवन में गिरह पड़नी शुरू हो गयी थी। सुजय काकू रवींद्र संगीत बहुत अच्छा गाते थे और पेंटिंग भी बहुत अच्छी करते थे। जब वे विभोर होकर गाते थे—'आगुनेर परोसमोनि छोआओ प्राने ए जीबोन पूर्णो कॉरो. ..' मम्मी एकटक उनके चेहरे को ताकती रहती थीं। शायद कोई पारसमणि उनके प्राण को भी अजाने छू गयी थी। पापा-मम्मी के बीच रोज़-रोज़ होने वाली बहसों ने मुझे न समझ आने वाली आशंकाओं से भर दिया था। जाने से पहले मम्मी ने अपने गहनों का बक्सा मुझे थमा दिया था। मेरे माथे पर सोने का माँग-टीका सजाकर वे चुपचाप रोती रही थीं। उन्हें रोते देख, मैं भी रोने लगी थी।

उस रात अपने बिस्तर पर रोते-रोते न जाने मैं कब सो गयी थी। शराब की तेज़ गंध से चौंककर शायद मेरी नींद बीच रात में खुल गयी थी। आँखें खुलते ही मुझे लगा था कि कमरे का घना काला अँधेरा अपनी पूरी भयावहता के साथ मुझ पर लदा हुआ है। भय के अतिरेक में मेरी साँसे रुक गयी थीं। मैं कुछ भी समझ नहीं पा रही थी। असह्य पीडा और आतंक से मेरी चेतना शून्य-सी होती जा रही थी। मैं किसी तरह पापा को पुकारना चाहती थी। अपनी समस्त शक्ति जुटाकर जब मैंने पापा को पुकारने के लिए अपना मुँह खोलने का प्रयास किया था, तो उसी भीषण अंधकार ने मेरे मुँह पर अपना पंजा जमा दिया था।

"चुप हरामज़ादी, छिनाल की बेटी...", यह मेरे पापा की आवाज़ थी...। उन्होनें इतनी शराब पी रखी थी कि उनसे बोला भी नहीं जा रहा था। मैं यकायक जैसे पत्थर बन गयी थी... मुझे नोचते-खसोटते हुए ये हाथ मेरे पापा के थे... ये थोड़े से आकारहीन शब्द मुझ पर घन की तरह गिरे थे। मेरी मसली जाती हुई देह के अंदर उस समय एक साथ न जाने क्या-क्या एक ही झनाके से टूट था, न जाने कितनी मौतें हुई थीं... इन्सान मर गया था, भगवान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर गया था, मेरे यकीन की एक पूरी दुनिया मर गयी थी... एक ही पल में मेरा बचपन गहरी झुर्रियों में बदल गया था। मेरे जीने का, मेरे होने का विश्वास अपनी उँगली छुड़ाकर हमेशा-हमेशा के लिए वितृष्णा, संशय और भय की गहरी नीली घाटियों में खो गया था, संभवतः फिर कभी न लौट सकने के लिए... अब उस भीषण क्षण में कुछ शेष रह गया था, तो मेरी असहाय चीख़ें और मेरी कच्ची देह पर पापा का जघन्य आक्रमण। कोई मिट्टी की गुड़ियाँ को भी उस तरह नहीं तोड़ता, जिस तरह उस रात पापा ने मुझे-अपनी गुड़िया को-तोड़ डाला था। उस अछोर दर्द और आतंक के बीच अपने पापा को न बुला सकना ही शायद मेरे लिए सबसे त्रासद अनुभव था। मनुष्य का अपने नितांत संकट के समय में अपने ईश्वर को न बुला पाना उसकी विवशता का चरम है। मैं भी किसे बुलाती, मेरा भगवान ही मिट्टी का बन गया था। एक मंदिर के भग्नावशेष में खंडित देवमूर्तियों के बीच मैं अपनी टूटी आस्था के साथ बिखरी पड़ी थी। इन्सान तो हमेशा से मरता रहा है, मगर उस रात मेरे भगवान का मर जाना मेरे लिए असहनीय हो गया था। उस छोटी अवस्था में मेरा मेरे पापा के साथ यकीन से आगे का कोई रिश्ता था...

दूसरी सुबह एक ख़ून और आँसू की नदी के बीच से शायद दादी मुझे उठाकर ले गयी थीं अपने पैत्रिक गाँव। फिर कभी अपने बेटे के पास न लौटने के लिए, मुझे न लौटाने के लिए... वही बिस्तर में तेज़ बुखार और नीम बेहोशी के बीच डूबते-उतरते हुए मेरे कानों में अस्पष्ट-सा आया था, पापा ने स्वयं को गोली मार ली है और मेरी ही तरह जीवन और मौत के बीच झूल रहे हैं... दादी सुनकर रोती रही थीं, मगर गयी नहीं थीं। मैं साँसों की कच्ची डोर से बँधी न जाने कब तक ज़िंदगी से हाथ छुड़ाती और मौत की तरफ़ भागती रही थी....और एक दिन हारकर अपने तन-मन के घाव समेटकर उठ बैठी थी। दादी ने मुझे मरने नहीं दिया था। न जाने क्यों मुझे ऐसा लगा था कि उनकी इस साज़िश में उनके कृष्ण भी शामिल हैं, जिनकी चौखट पर वे रात-दिन पड़ी रहती थीं। देह के ज़ख़्म भर गये थे और मन के ज़ख़्म दिखते न थे। मगर, उनका समय के साथ और-और दगदगा उठना मैं महसूस कर सकती थी।

...वहीं से मेरी यातनाओं का सफ़र शुरू हुआ था... सुलगती हुई रेत पर नंगे पाँव दुखता हुआ सफ़र... हर पल मरते हुए जीने का एक निस्संग और उदास सफ़र... मुझे कहीं नहीं जाना था, कहीं नहीं पहुँचना था, मगर चल रही थी...न जाने क्यों, न जाने किसलिए...उस रास्ते पर अनवरत-यंत्रवत् चलना, जो इन्सान को स्वयं से ही दूर ले जाए... विवशता किसे कहते हैं, कोई समझ सकता है...?

मैं बोर्डिंग स्कूल में रहकर पढ़ती थी। वहाँ भी मैं एक अकेले द्वीप की तरह सबसे कटी हुई निस्संग जीती रही थी। किसी के क़रीब होना मेरे वश में नहीं रह गया था। स्पर्श मुझे आतंकित करता था। मुझे रिश्तों से डर लगता था। मैं नहीं चाहती थी कि कोई भी मेरे क़रीब आए। अपने चारों ओर एक अदृश्य दीवार उठाकर मैं जिये जा रही थी। कोई मेरे पास चाहकर भी पहुँच नहीं पाया। पहुँचता भी कैसे, मैं ख़ुद ही अपने रास्ते में दीवार बनकर खड़ी थी।

छट्टियों में घर पहुँचकर कई बार दादी से पापा के विषय में पूछना चाहा था, मगर दादी के चेहरे की कठिन रेखाओं को देखकर हिम्मत नहीं कर पायी थी। दादी ने पापा की तस्वीरें तक दीवार से हटवा दी थीं। एक सच्ची माँ थीं, तभी इतनी कठोर माँ बन सकी थीं। उन्होंने पापा को अपना दूध कभी नहीं बख़्शा था। मर कर भी उन्हें माफ़ न कर सकी थीं। पापा को उनकी मिट्टी तक को हाथ लगाने से मना कर दिया गया था।

पाँच वर्ष पहले जब मैं बी.ए. फ़ाइनल की परीक्षा देकर घर लौटी थी, दादी ने तटस्थ भाव से जानकारी दी थी कि वृंदावन के श्रीनाथ जी के मंदिर की सीढियों पर जो भिखारिन मरी हुई पड़ी मिली थी, वह वास्तव में मेरी माँ थी... सुनकर वर्षों से मेरे अंदर जमी हुई पत्थरों की स्तब्ध दुनिया में अचानक एक बड़ी-सी दरार पड़ गयी थी। शिलाएँ पिघलती हैं, तो नदी बन जाती हैं; वही नदी, जिसे बाँधने के लिए कभी ये शिलाएँ जन्मी होती हैं... दर्द बहता है तो अपने तट बंधनों को तोड़ ही देता है... माँ और भिखारिन... मुझे माँ का जड़ाऊ गहनों में जगर-मगर करता हुआ रूप याद आ रहा था। उनकी कच्ची हल्दी-सी रंगत पर नाक में पड़ी हीरे की लौंग लश्कारे मारा करती थी। माँग भर सिंदूर में सूरजमुखी की तरह दपदपाती हुई वह हवेली के गलियारों में चाँद-तारे बिखेरती हुई चलती थीं। मैं पापा की तरह साँवली थी, गोरी बनने की आकांक्षा में प्रायः उनकी हथेलियाँ अपने गालों से रगड़ा करती थी।

माँ की मृत्यु की ख़बर ने मुझे बिल्कुल ही अकेला कर दिया था। वे मेरी ज़िंदगी में नहीं थीं, मगर कहीं थीं। बस यही एक तसल्ली रेगिस्तान-सी इस ज़िंदगी में कहीं से सुकून का चश्मा बनी हुई थी। अब तो वह संबल भी छिन गया था। निशेष हो जाना शायद इसी को कहते हैं। मैंने अपने अकेलेपन से एक नये सिरे से समझौता करने की कोशिश की। अभी ठीक से सँभली भी नहीं थी कि दादी भी मुझे छोड़कर चली गयीं... यह मेरे अकेलेपन की हद थी, इसलिए एक तरह से मैं निश्चिंत हो गयी थी। सर्वहारा होने का भी एक अपना परवर्टेट क़िस्म का सुख होता है... उस स्वाद की तरह, जो शायद हड्डी चबाते-चबाते लहूलुहान हो गये कुत्ते को अपने ही रक्त से मिलने लगता है... अपने ज़ख़्म भी शायद जानवर इसीलिए चाटते रहते हैं कि वे भर न पाएँ, ताज़ा बने रहें, वर्जित सुख का स्वाद निशि बनकर अपने पास बुलाता है, फिर भटकाता है।

अरनव जीवन में एक बिल्कुल अलग अंदाज़ से आया था। उसकी एप्रोच दूसरों से अलग थी। वह मेरी रूह के रास्ते से दिल की ज़मीन पर उतरा था। उसके आने से लगा था कि स्याह बादलों के ठीक पीछे सूरज का उजाला है, सुबह अब होने ही वाली है। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मुस्कुराने लगी थी, गुनगुनाने लगी थी। ज़िंदगी की उदास फ़िजाओं में सात रंगों का इंद्रधनुष भी घुलने लगा था। खिड़की पर चाँद खड़ा था, दरवाज़े पर खुशियों की झिलमिल दस्तक थी... यह जादू का मौसम था, अपने सारे तिलिस्म के साथ। मैंनें आईने में मुस्कुराते हुए अपने ही प्रतिबिंब को काजल का टीका लगा दिया था।

मगर जिस दिन हमारा यह प्यार अशरीरी शब्दों को लाँघकर देह की देहलीज़ तक आ पहुँचा, मैं भय और आतंक से भर उठी। हर मर्दानी छुअन में पापा होते हैं, वह रात होती है और होता है ख़ून में लिसड़ा हुआ मेरा मासूम यकीन... न जाने कितनी रातें बीत गयीं थीं उस रात के बाद मगर वह रात आज तक मेरे अंदर से बीत नहीं सकी थी, पूरी तरह से बनी हुई थी, कहीं न कहीं... अपनी संपूर्ण त्रासदी और विभीषिका के साथ.... जब-जब अरनव क़रीब आता, मुझे चूमता, मेरी देह की नर्म रेखाओं को सहलाता, मैं जैसे कीचड़ से लिसड़ जाती, कीड़े से रेंगते रहते मेरे शरीर पर देर तक... एक बार मैं उसके आफ़्टर शेव की मँहगी बोतलें बिन में फेंक आयी थी... पापा को यही ब्रांड प्रिय था और मुझे भी इसकी मादक गंध मदहोश कर देती थी... शायद इसीलिए इन्हें फेंकना ज़रूरी हो गया था... हर वह चीज़, जो जीवन में प्रिय थी, अब दुःख देने लगी थी, क्योंकि पापा मेरे अब तक के जीवन के हर पहलू से जुड़े हुए थे। कोई ऐसा कोना नहीं था जहाँ पापा नहीं थे।

एक बार यूनीवर्सिटी कैंपस में क्लासेज़ ख़त्म होने के बाद मैं और अरनव अचानक आ गयी बारिश से बचने के लिए फुटबॉल ग्राउंड के पास वाले गुलमोहर के नीचे आ खड़े हुए थे। एकांत पाकर अरनव ने जब मुझे चूमते हुए मेरे कुर्ते के अंदर हाथ डालकर ब्रेजियर के हुक अलगा दिये थे, मैं आतंक से पीपल के पत्ते की तरह काँप उठी थी। मुझे लगा था कि मेरे भीगे हुए उरोजों पर अरनव की सिंकी हुई उँगलियां नहीं, छिपकलियाँ फिसल रही हैं... मैं खुद को उससे छुड़ाकर ज़मीन पर बिखरी हुई किताबों को उठाये बिना ही वहाँ से चल पड़ी थी। अरनव माफ़ी माँगता हुआ दूर तक पीछे-पीछे आया था। ज़ाहिर है कि उसने मेरे इस व्यवहार को मेरा संस्कारजनित संकोच माना था। मैं भी इसी तरह के बहानों की ओट में अपनी देह बहुत दिनों तक छिपाती रही थी।

शादी की बात जब टालना और संभव नहीं रह गया, तब मैंनें हाँ कर दी। मगर, सुहागरात मेरे लिए वही वर्षों पुराना दुःस्वप्न फिर से ले आयी थी। न जाने वह रात किस तरह बीती थी। दूसरी सुबह मैं घंटों नहाती रही थी। चाहती थी, अपनी त्वचा ही सारी छुअन के साथ उतरा फेंकूँ। सारे पुरुष अंततः पापा ही बन जाते हैं। पापा का पुरुष बन जाना या पुरुष का पापा बन जाना कैसा त्रासद अनुभव हो सकता है-मेरा मर्म ही जानता था। पसीने आफ़्टर शेव और सिगरेट की मिली-जुली गंध; गालों में दाढ़ी की खड़खड़ाहट, अबाध होठों का दबाव, उँगलियों का वहशीपन... अरनव के सानिध्य में आते ही न जाने कैसी वर्जित सी इच्छा और ग्लानि की परस्पर विरोधी मनःस्थिति में मैं हो आती हूँ... कपड़ों के अंदर देह पसीजने लगती है, गर्म लहू की नदी शिराओं में ठहराने लगती है... मगर दूसरे ही क्षण वही तनाव और कुंठा... मैं अहल्या की तरह पाषाण हो उठती हूँ। अरनव के लिए मन गीला होता है, मगर अभिशप्त देह की कठिन रेखाएँ सहज नहीं हो पातीं। मैं चाहती हूँ कि हमारी रूह के बीच से यह तन की मिट्टी हट जाए, मगर वह हर बार अपरिहार्य नियति की तरह सामने आ खड़ी होती है।

अरनव की प्रतीक्षा में मैंने वह सारी रात पलकों में काट दी थी। एक न ख़त्म होने वाले दुस्वप्न की तरह बीती थी वह रात। मैं सोने की कोशिश में हर क्षण जागती रही थी। सुबह उठी तो सर भारी था। किचन में पहुँचकर वहाँ अरनव को डाइनिंग टेबल पर बैठे हुए पाया। सामने रखी कॉफ़ी ठंडी हो रही थी। हाथ में सिगरेट जलकर अंतिम सिरे तक पहुँच गयी थी। मेरी आहट पाकर उसने चेहरा उठाकर देखा। उसकी आँखें लाल थीं, जैसे देर तक रोता रहा हो। मैं अपराधी की तरह चुपचाप खड़ी रह गयी, हमारे बीच के सारे शब्द चुक गये हों जैसे। थोड़ी देर बाद उसने न जाने कैसी आवाज़ में कहा था—"संदल, लास्ट नाइट आई हैव बीन टु ए होर...."

अरनव के शब्दों ने मुझे गहरे तक स्तब्ध कर दिया था। कोई आक्रोश, घृणा का भाव नहीं पैदा हुआ था, बस एक गहरी हताशा और दुख ने घेर लिया था। यह अकेले होने का सिलसिला न जाने कब ख़त्म होगा! मुझे चुप देखकर अरनव मुझसे लिपट गया था—"आई एम सॉरी हनी...."

मैंने बड़ी मुश्किल से पूछा था—"डिड यू डू इट..."

"नो, आई कुड नॉट...", वह देर तक सिसकता रहा और फिर हिचकते हुए बोला "ऐन वक़्त पर मैं उसका मुँह नोंचकर भाग आया...."

"व्हाट...", मुझे अपने कानों पर यकीन नहीं आया। "यस संदल तुम ही हो, जिसे मैं चाहता हूँ... नॉट एनी वन एल्स..."

हम दोनों कुछ देर तक एक-दूसरे की तरफ़ देखते रहे और फिर एक साथ हँस पड़े—"यू आर नटस् अरनव..."

"यस आई नो-आई एम...जस्ट लाइक यू..." उसने मेरे सीने में अपना चेहरा धँसा दिया था।

इसके ठीक एक महीने बाद मैं अस्पताल में पापा के बेड के बगल में बैठी सोच रही थी कि मैं वहाँ क्या कर रही हूँ? पापा मर रहे थे, यह उनके चेहरे पर साफ़ लिखा हुआ था। बड़ी बुआ ने आधी रात में मुझे फ़ोन करके कहा था—"दुलाल मर रहा है संदल... तुझसे मिलना चाहता है। एक बार उससे मिल ले उसके लिए नहीं, न सही... अपने लिए... कब तक भागती रहेगी... एक बार सामना करके इस नरक को गुज़र जाने दे अपने अंदर से...तेरे लिए ज़रूरी है..."

"मैं कभी नहीं जाऊँगी" कहकर मैंने फ़ोन पटक दिया था। उस सारी रात मैं रोती रही थी। अंदर जैसे सारे ज़ख़्मों के टाँके एक साथ खुल गये थे। उस रात मैंने अरनव के सामने सब कुछ कह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाला। मुझे रोने दिया, कहा "रो लो संदल, नहीं तो दर्द नासूर बन जाएगा..."

मेरा अकेले का दुख उस दिन साँझे का होकर जैसे अपना वज़न खोता जा रहा था। सुबह के क़रीब मैं। सो गयी।

दूसरे दिन अपनी सारी इच्छा के विरुद्ध मैं अस्पताल जाने के लिए तैयार हो गयी। अरनव साथ नहीं आया। अस्पताल के गेट पर मुझे कार से उतारते हुए हल्के से मेरा हाथ दबाया था "यह तुम्हारा सलीब है, तुम्हें ही उठाना है संदल, आगे बढ़ो, मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा। स्वयं को ढ़ोती हुई-सी मैं पापा के कमरे में दाख़िल हुई। दरवाज़े पर खड़ी बुआ के चेहरे पर मुझे देखकर कोई आश्चर्य के भाव नहीं आये, शायद वे जानती थीं कि मैं ज़रूर आऊँगी। कोई ख़ुद से कहाँ तक भाग सकता है और कब तक!

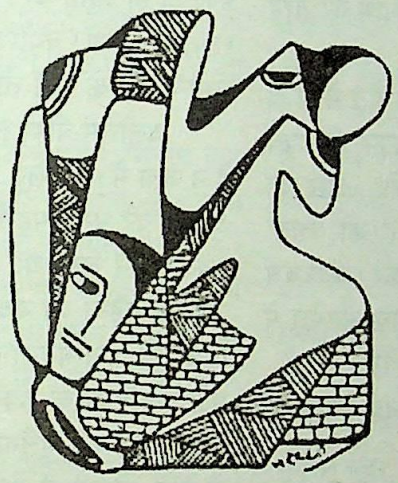

बिस्तर पर पापा लेटे हुए थे। उनकी आँखों से मैंने उन्हें पहचाना था। बाक़ी कहीं कुछ पहले जैसा रहा नहीं था। वे बहुत पहले और शायद बहुत बार मर चुके हैं। आज साँसों में पूर्ण विराम लगाने की औपचारिकता भर निभानी है। बिना कुछ कहे मैं भावशून्य आँखों से उनकी तरफ़ देखती रही। एक हद के बाद संवेदनाएँ ऐसे ख़त्म होती हैं कि अनुभव के परे चली जाती हैं। हाथ रह जाता है तो बस एक अनबुझ-सा स्वाद, जिसे मन नहीं पहचानता...एक शून्य, एक जेड़-अवश हो जाने की सी मन स्थिति...।

पापा ने मेरी तरफ़ आँखें उठाकर नहीं देखा, बस उनकी पलकें थरथराती रही थीं। वे निशब्द रो रहे थे। लग रहा था जैसे बिस्तर से मिला हुआ उनका दुबला शरीर आँसुओं में ही बह जाएगा। पता नहीं, इसी तरह से कितना समय बीत गया था, जब पापा ने रुक-रुककर एक अजनबी सी आवाज़ में कहा था-"मुझे माफ़ कर दो गुड़िया मैंने किसी और को सज़ा देने के लिए आई वाज़ सिक... ज़िंदगी भर मरता रहा, मगर फ़िर भी मर न सका.. अब मुझे मर जाने दो... भगवान् मेरी सज़ा कम न करें, मगर तुम एक बार मुझे माफ़ कर दो... इतना कहते-कहते ही वे बुरी तरह हाँफ उठे थे। पानी से निकली हुई मछली की तरह उनकी हालत थी। मैं अचानक उठ खड़ी हुई थी कि अब इस नर्क का अंत हो।

"मैंने आपको माफ़ कर दिया है पापा, आप अपने दिल पर कोई बोझ न रखें" इतना कहकर मैं झटके से उठकर कमरे से बाहर निकल आयी। अपने पीछे मैंने बुआ की चीख़ सुनी थी, मगर मुड़कर नहीं देखा था। अब मुझे पीछे मुड़कर कभी नहीं देखना है, बस आगे बढ़ना है, जहाँ ज़िंदगी आज भी मेरे इंतज़ार में शायद ढेर-सारी ख़ुशियाँ लिये खड़ी है। पाप कभी क्षम्य नहीं हो सकता, मगर पापी...? और तब, जब पश्चाताप का लंबा रास्ता तय करके कोई सामने याचक बनकर आ खड़ा हुआ हो, क़ुदरत की तमाम सज़ाएँ झेलकर स्वयं को ही ख़त्म कर लेने की नाकाम कोशिश की ज़िल्लत और ग्लानि झेलता हुआ...? अब मैं इस बहस में नहीं पड़ना चाहती।

वह रात उन पर भी भारी थी, उन्हें भी ले डूबी थी... डूबनेवाला अपने अनजाने ही दूसरों को भी ले डूबता है और कभी-कभी उसे इसका अहसास भी नहीं होता। आज उन्हें माफ़ करके मैं स्वयं मुक्त हो गयी थी। एक लंबी उम्र से घृणा के इस रिश्ते से जुड़ी हुई मैं ख़ुद से ही अलग होकर रह गयी थी। घृणा का संबंध सबसे बड़ा संबंध होता है। इसकी बरगद जैसी छाँव के नीचे दूसरा कोई संबंध पनप नहीं पाता, पनप नहीं पा रहा था। इस बंधन को काटना आज ज़रूरी हो गया था। पापा को मेरे अंदर से सचमुच मर जाने देने के लिए और मेरे सही अर्थों में जी सकने के लिए इस नासूर का कोई दूसरा इलाज नहीं था मेरे पास। घृणा किसी बात का हल नहीं हो सकती, अपनी इस लंबी बीमार ज़िंदगी ने मुझे अच्छी तरह से सिखा दिया था। मेरी धमनियों में दौड़ते हुए विष ने मुझे ही प्रतिपल तिल-तिलकर मारा था। स्वयं को प्यार से, ज़िंदगी से, ख़ुद से जोड़ने की एक आख़िरी कोशिश में मैंने अजगर-से घृणा के इस पाश को अपने जीवन से काटकर आज बहुत दूर फेंक दिया था। मेरे समक्ष दो ही विकल्प रह गये थे—या तो अपनी घृणा या अपने होने का। मैंने अपने होने का विकल्प चुना था... इसकी एकमात्र क़ीमत मेरे अंदर की गहरी घृणा थी... मैंने उसे ख़त्म हो जाने दिया। एक पहाड़ यकायक मेरे सीने से उठ गया हो जैसे, मैंने बाहर की खुली हवा में आकर गहरी साँस ली... मैं हील हो रही हूँ... मेरे अंदर प्यार बीज बनकर अँखुआ रहा है... मैं जैसे ख़ुद को ही यकीन दिलाती हूँ... नहीं, अब उन्माद के एक क्षण को अपने पूरे जीवन पर कैसे भी हावी नहीं होने दूँगी... प्यार को नफ़रत से हारने नहीं दूँगी....अरनव गेट के पास कार के बोनट से टेक लगाये खड़ा है। मैं जल्दी से जल्दी उसके पास पहुँचकर उससे लिपट जाना चाहती हूँ। आज मेरा अरनव सिर्फ़ मेरा अरनव है, कोई और नहीं... पापा मर चुके हैं। आज पापा सचमुच मेरे लिए मर चुके है।...

तीन माड, मायना, गोवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ज़ा-वसूली

गिरिजा कुलश्रेष्ठ

बलीराम बोहरे का वही हाल था जो सरेबाजार जेब कटा बैठे किसी मुसाफिर का होता है। वह अवाक् सा खड़ा रह जाता है और लोग मनोविनोद व कौतूहल के लिये उस घटना को तमाशे की तरह देखते हैं।

यह तो हद ही हो गयी। रामनाथ लुहार ने इस चैत में कर्ज़ा चुकाने के लिए कैसी कसमें खाई थी कि 'पिरान' बेचकर भी रुपये लौटाऊँगा... सच्ची जहाँ मानुस मरे वहाँ कसम ले लो... और वह सब भूलकर मानो ठेंगा दिखाते हुए वह 'केला देवी' की 'जात' (मेला) करने गया है अकेला नहीं पूरे 'कुरमा' को लेकर। क्या बस वाला इसका बहनोई है या दुकान वाले चाचा-ताऊ कि सेंतमेंत में घूम आवेगा मेला। पाँच सात सौ रुपये खर्च नहीं होंगे?

बलीराम को तो पता भी न चलता पर सुबह नदी स्नान को जाते हुए कलुआ खवास ने घेर लिया-

"बौहरे जी रामनाथ ने इस बार तो रुपये दे दिये होंगे? "क्यों?—"नहीं यो ही... सोच रहा था कि ऐसे ठाठबाट से मेला जा रहा है पूरी गाड़ी भरकर तो तुम्हारे रुपये तो लौटा दिये होंगे"

बलीराम का मन जैसे भाड़ का चना हो गया। गाँव का बच्चा-बच्चा जानता है कि रामनाथ को बलीराम बोहरे ने रुपये उधार दिये हैं और उसने छह महीने के छह साल तो कर लिये। आगे कितने करेगा या कि रुपये लौटायेगा भी नहीं-कोई भरोसा नहीं। बलीराम काका को 'बौहरगत' का शौक भी हुआ तो रामनाथ के लिए सब जानते हैं कि रामनाथ को रुपया उधार देकर तो भूल जाना ही ठीक है वरना वसूली के लिये इतने चक्कर लगवाता है कि जितने ऑफिस का बाबू भी नहीं लगवाता होगा। गाँव में रहते हुए भी क्या बलीराम काका नहीं जानते?

वेशक जानते थे। सच्ची बात तो यह है कि-लेन-देन का काम भी छोड़ चुके थे। बलीराम बौहरे जी यह काम उनके वश का नहीं है। इसे तो वही चला सकता है जिसकी लाठी में दम हो। ईमानदार लोग तो वादे पर अपने आप रुपया दे जाते हैं पर सब ईमानदार तो नहीं होते और वह रुपया निकलवाने के लिए जूते का जोर चाहिऐ। हाँ बलीराम के पिता, दादा, और परदादा के जमाने में खूब बौहरगत चली थी। लोग सूद सहित मूल ही समय पर नहीं लौटाते थे बल्कि बौहरे जी के बहुत से काम यों ही खुशी खुशी करते थे। खाट बुनने, दीपावली पर पशुओं के लिए मोर पंख के बंधन बनाने, या छप्पर छाने के लिए उन्हें कहना नहीं पड़ता था किसी से। साग भाजी, गन्ना-गुड़ और मौसम की चीजें उनके घर में ढेरों इकट्ठी हो जाती थीं। लोग अपने महाजन को सब तरह से खुश रखते थे। क्यों! क्योंकि उनके पास 'लाठी थी, 'जूता' था। ज़मीन ज़ोर के नहीं तो किसी और के।

बलीराम बौहरे तो नाम के बौहरे है न उनकी तिजोरी में दम है न जूता में। इसलिए लेन-देन का धंधा छोड़ चुके हैं पर उस दिन, आषाढ़ की भरी दुपहरी में पसीने से नहाया रामनाथ पैरों में गमछा रखकर रोने लगा था तो बलीराम असमंजस में पड़ गये। "भैया उजड़ती मड़ैया को बचालो कक्कू! तुम्हारी बहू की नबज भी नहीं मिल रही । अस्पताल ले जाना है पर जेब में एक 'छदाम' नहीं है। मुझे एक हज़ारक रुपयो की सख़्त जरूरत है.. तुम्हारा 'औसान' ज़िंदगी भर नहीं भूलूँगा मालिक। पर बलीराम हिचकिचाये। संकट में फंसे आदमी से मुँह तोड़कर 'न' कैसे कहें।

"रुपये लेकर तू लौटाता तो है नहीं।" बलीराम ने रुपये न देने पाने का एक मज़बूत कारण बताया वह रामनाथ की याचना की धार में कागज की तरह बह गया-

"अब तो रामनाथ नहीं रहा काका! अब घर की लच्छमी जा रही है। मैं भी जीकर क्या करूँगा। उसे बचा लो क़क्कू। तुम्हारा बनकर रहूंगा। 'पिरान' बेचकर भी तुम्हारे रुपये लौटाऊँगा।" रामनाथ फूट फूटकर रो रहा था। पास ही खड़ी राजाबाई (बलीराम की पत्नी) पल्लू से आँखे पौछने लगी। उसने भी हाथ सहारा दे दिया।-

"दे दो-मुसीबत है उसके ऊपर।"

उस समय बलीराम को ना कहते बना ही नहीं। सौ-सौ के दस नोट लाकर हाथ में थमा दिये। ये वे रुपये जो उन्होंने हारिल जाने के लिए बचाये थे। आमदनी का जरिया अब केवल छोटी दुकान ही तो है ज़मीन की आधी उपज तो ज़मीन में ही लग जाती है। सबसे बात कि बलीराम अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए रुपया सोच समझकर ख़र्च करते हैं। वे रुपये बलीराम को देते समय उन्हें लगा मानो कोई अपनी जमा की हुई 'गुल्लक' दे रहा है।

"लौटायेगा कब?

"भगवान ने चाहा तो इसी कार्तिक में। तिली बाजरा तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया तो... नहीं तो चैत में पक्के। मुझ पर भरोसा रखो काका। तुम जैसे भले और दयालु आदमी से दगा न करुँगा। दगा करना और किसे कहते हैं?

कार्तिक की फसल आयी। बाज़रा कुटकुट कर घर आ गया तिली झड़ा कर कनस्तरों में भर ली गयी। मूँग भी हो गयी। रोज मँगौड़े बनने लगे, तिली गुड़ कूटे जाने लगे। महक बौहरे जी की नाक तक पहुँच गयी। दूसरे दिन खुद दुलारी काकाजू को तिलवा और बाजरे की टिकिया दे आयी। खाकर बलीराम बौहरे कह उठे–'वाह!' और पैसों की बात करना ही भूल गये। "चैत में यह हुआ कि गेहूँ चना खलिहान से घर भी न पहुँचा कि सियाराम सेठ के आदमी आकर सारा अनाज भर ले गये-यह बात खुद रामनाथ आकर बोहरे जी को बता गया।

"बच्चों को खाने के लिए भी पूरा न पड़ेगा काका! अभी तो मजबूर हूँ। पर जल्दी ही इन्तजाम कर दूँगा। भूला नहीं हूँ.." वह गिड़गिड़ाया। बौहरे जी मान गये।

और तब से कितने चैत कार्तिक निकल गये। रामनाथ कुछ दिनों तक तो बहुत सारी मजबूरियों और कारण बताता रहा। कभी बहनोई को 'टिसनिस' बन गई तो बहन को सहायता देना पड़ी। कभी साले का बैल, ऐन जुताई के मौके पर मर गया। दुलाहरी ने रो-रोकर भैया को रुपये दिलवा दिये। कभी बहन के देवर का 'एक्सीडेंट' हो गया तो कभी ठिठुरती ठंड से बच्चों को बचाने के लिए नई रजाइयाँ बनवा ली।

"अब घर-गिरस्ती लेकर बैठे हैं तो सब देखना पड़ता है। नातेदारी भी और जिम्मेदारी भी। रामनाथ कह देता–"पर रुपयों की बात मुझे याद अच्छी तरह है काका।"

"रामनाथ की बात, गधे की लात" लोग हँसते थे। बलीराम बौहरे की 'बौहरगत' करने भी कौन मिला रामनाथ लुहार....। 'हरीचरन' का इकलौता सपूत रामनाथ अपने बाप पर रतीभर भी नहीं गया। हरीचरन तो 'बातवाला' आदमी था। मेहनती, ईमानदार और पानी दार भी...। चार-पाँच बीघा ज़मीन के साथ पुश्तैनी धंधा भी था। खेती से जब भी फुरसत मिलती लोहे की चीजें हँसिया, खुरपी, चिमटा, सँडासी, कन्नी वसूला.. बनाकर गाँव वालों को दे देता था बदले में दो-चार महीने का अनाज मिला जाता था। पर रामनाथ ने कभी धन उठाया न हल की झूल पकड़ी। दो-तीन बीघा ज़मीन को तो 'पट्ठा' बैठे-बैठे ही खा गया। चतुर रूपवती घरवाली आ गयी। आये दिन पकौड़ी और जलेबियाँ छनती। खाट में पड़े-पड़े सतरंगे सपने देखे जाते। वह तो एक दिन दुलारी को पता चला कि 'आदमी' अपनी कमाई से नहीं, ज़मीन बेचकर मौज करा रहा है तो वह कमर कसकर खड़ी हो गयी और कोप भवन में जा बैठी, "अन्न जल ग्रहण न करुँगी, 'प्रान' दे दूँगी अगर कहीं काम पर नहीं गये। खेती नहीं होती तो मिट्टी डालो, पत्थर तोड़ो पर काम करो....।"

अब दुलारी ठहरी रामनाथ की नाक का बाल। उसकी बात तो माननी ही रामनाथ को सो खदान में पत्थर तोड़ना शुरू कर ही दिया। हाँ मदद करने में ज़रूर रामनाथ अपने पिता से भी आगे है। कहीं आग लगी हो चाहे कोई कुएँ में गिर गया हो, रामनाथ सबसे आगे कूद पड़ता है। उसकी यह बात उसे गाँव में टिकाये है। हाँ लेन-देन का व्यवहार कोई नहीं करना चाहता। उसकी यही वजह है कि वह रुपये को केवल सुखों का साधन मानता है-संचय की चीज़ नहीं। रुपया अपना हो या दूसरे का। रुपया तो रुपया है। उसकी क़ीमत भी उतनी ही है। "रुपया तो हाथ का मैल है" वह दार्शनिकों की तरह कहता है–इसे क्या चिपकाकर रखना। माया महाठगिनी हम जानी, ये कहू के ना ठहरानी। खूबचंद काका को ही देखो ज़िंदगी भर जोड़ते रहे न ढंग का खाया न पहना। अचार, शक्कर तक को ताले में रखते थे। जब मरे तो उनके गद्दे, तकिये तक से नोट झड़े थे पके पत्तों की तरह। किसके काम आये। लड़के आपस में लड़ने लगे। रुपया तो खरच करने की चीज है.....।

अपना यह दर्शन रामनाथ को इतना प्रिय है कि रुपया हाथ में आना चाहिये बस...। निकालने के बीस रास्ते खुल जाते हैं उसके दिमाग़ में।

हाँ ख़र्च करने में उसे ज़्यादा सोचना नहीं पड़ता। दीना ने घड़ी माँगी उसे घड़ी ला दी। चंदा ने लँहगा चुन्नी माँगे, उसे लँहगा चुन्नी ला दिये और दुलारी ने जो कह दिया कि–'आधी उमर बीत चली कभी नाक में सोने की लौंग तक न पहली।" वो बात रामनाथ के कलेजे को लग जाती है। आधी उमर! अभी तो तीस की भी नहीं लगती चंदा की माँ। लौंग क्या-रामनाथ का वश चले तो सोने से मढ़ दे घरवाली को। कहाँ को काका-बाबा के रुपये। उसकी तिजोरी में पड़े-पड़े सड़ते ही तो रहेंगे? क्या करेंगे लेकर? बलीराम सिवा इन्तज़ार करने के कर ही क्या सकते थे। पिछले साल किसी ने सलाह दी थी कि नगद न सही तुम रामनाथ के घर दूध क्यों नही बाँध लेते। नई भैंस आ गई है। वह कहता तो यह है कि ससुराल से आयी है। जो भी हो... रामनाथ भी इस प्रस्ताव को खुशी-खुशी मान गया। एक-दो दिन दुलारी ने एकदम 'निपनिया' गाढ़ा आधा सेरा दूध चंदा के हाथों बौहरे काका के घर ही भिजवा दिया, पर यह क्रम ठीक से तो आठ दिन भी न चला। कभी दुलारी को 'कास बाबा' को खीर चढ़ानी होती तो कभी बेटी के सासरे खोआ बनाकर भेजना होता। कभी पड़िया छूटकर सारा दूध पी जाती है तो कभी भैंस ही 'उचक जाती'। यों बौहरे जी चाय को भी तरस जाते। अच्छा भला डेरी से दूध आता था। मज़बूरन वही शुरू करना पड़ा। हो गयी कर्जा वसूली।

इधर तो बलीराम बौहरे जी कुढ़ते हुए इन्तजार करते कि रामनाथ कब अपने गोरख धंधों को छोड़कर उनके रुपये लौटाये कि उधर कोई न कोई सूचना आँधी की तरह उन्हें बुरी तरह झकझोर कर रख देती। अभी चार महीने पहले ही तो एक दिन दुलारी के आँगन में ढोलक की थाप के साथ 'जच्चा मेरी सरद पूनों को चाँद' गाया जाने लगा तो बलीराम का माथा ठनका। तभी कैला बुआ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी समाचार चैनल वालों की तरह राजो को पूरी ख़बर दे गई—

"रामनाथ की बेटी की ससुराल से 'तिल चामरी' आयी है। अरे मुझे पता नहीं। सरोज को बेटा हुआ है। दुलारी खूब तगड़ा 'पछ' भेज रही है। बच्चे के दो सूट, चाँदी के कंगल, पाजेब, सोने की 'हाय' लड़की दमाद को पाँचो कपड़े। सास-ससुर, जेठ-जिठानी, देवर-दौरानी, नंनदन-ननदोऊ.... सबको कपड़े। दो कलसा लड्डू। एक में बूँदी दूसरे में सोंठ के...।

"सौंठ के?" रजबाई मन मसोस कर रह गई- एक भी जापे में उसे लड्डू तो क्या चम्मचभर 'हरीरा' तक नहीं मिला बस गुड़ की लपटी और चरुआ का पानी। दुलारी ने लड्डू तो अच्छे बनाये होंगे..."

"अच्छे?... " कैला बुआ तारीफ करते न थकती थी—"आधा भी न खाया गया इतने बड़े थे। निचुड़वा घी, मेवों की भरमार... .. सोंठ, अजवाइन, की अलग खुशबोई... स्वाद।"

"तो इस बार फिर रामनाथ का वायदा" कुंभ का मेला हुआ समझो"—निराश बलीराम ने रामनाथ को बुलवा भेजा।

"मैं तो खुद ही आ रहा था कक्कू!" रामनाथ उमंग और आदर के साथ बोला और सोंठ के दो लड्डू हाथ में देकर पाव छू लिये—

"तुम्हारा नाती आया है।... पर लड़की समझो बच गई। तुम्हारा आसिरवाद है बस...।

"मेरा आसिरवाद' तब मिलेगा जब तू रुपये लेकर आयेगा रामनाथ। तूने जैसे बात ख़राब की है कोई नहीं कर सकता। जग हँसाई हो रही है कि मैं किस फरेबी को रुपये दे बैठा...।

"तुम्हारा गुस्सा वाजिब है काका। पर जब समधियाने की बात है, मेरी क्या तुम सब की इज़्ज़त है, पूरे गाँव की... फिर काका जू तुम्हारे रुपये तो समझो दूध पी रहे हैं।

"ऐसी तैसी दूध पी रहे हैं" बलीराम बौखलाये—"मुझे तेरी चिकनी झुपड़ी बातें नहीं, रुपये चाहिए अपने। बोल कब दे रहा है "आख़िरी बार बोल दे बस, ...फिर मुझसे जो होगा करुँगा..."

"बस दो महीना बाद ही, गेंहूँ की फसल होते ही... सच्ची/ जहाँ मानस भरे वहाँ सौगंध ले लो..." रामनाथ ने छाती पर हाथ रखकर कहा। साथ ही यह भी कि फिर भी कहो तो एक साड़ी भेजकर हाथ जोड़ लूँगा... नहीं भेजूँगा 'पछ'।

"नौटंकी करने में रामनाथ की सानी नहीं। बलीराम बौहरे ने दो महीने का और संतोष कर लिया। पर अब। सचमुच रामनाथ की बात गधे के लात। वह तो ठेंगा दिखाकर मेला चला गया। बलीराम बौहरे जैसा बेवकूफ आदमी कौन होगा। बौहरे जी तिलमिला रहे हैं। जैसे चौमासे में मक्खियाँ लगने पर बछड़ा तिल मिलाता है राज बाई असहाय सी पति को देख रही थी। उसने जान बूझकर यह बात उन्हें बताई थी। वरना रामबाई तो पहले ही बता गई थी दुलारी कैला देवी गई है। रात भर करछी कढ़ाई खटकती रही थी। घी की महक के साथ। राजबाई का ध्यान करजा वाली बात से ज़्यादा इस बात पर था कि दुलारी कैसे ठसके से गई होगी। मेहंदी महावर लगाकर। मेंहदी महावर तो उसके छूटते ही नहीं है, बस बहाना चहिये लगाने का। वह तो इस तरह कभी जात-मेला नहीं गई, न बाप राज न अपराज पर देख रही थी कि रामनाथ जैसे झूठे आदमी के कारण उनका चैन हराम हो गया है। आग लगे ऐसे मौज-सौख को...।"

"अब क्यों अपना ख़ून जला रहे हो। वे बेहया लोग तो मौज कर रहे होंगे मेला में... और तुम...। राजबाई ने पति को समझाने की कोशिश की तो वह उल्टे ही पत्नी पर बरस पड़े।

"रुपये तूने ही दिलवाये थे अपने बाप को। दानी करन की अम्मा बनने चली थी...।" हर खटकने वाली चीज बौहरे जी के लिये राजबाई का बाप होती है चाहे बुखार ही क्यों न हो। राजो बुरा नही मानती। खीज प्रकट करने का तरीका भर ही तो है।

"चलो खाना खालो। मैंने बैंगन का रायता और मूँग की बड़ियाँ बनाई है। तुम्हें अच्छी लगती हैं..."।

"तू खाले... मैं आज तब खाऊँगा जब उसके हलक में से अपने रुपये निकलवा लूँगा। भैरो को बुलवा लेता हूँ। रामनाथ को वही ठिकाने पर ला सकता है। अब और कोई उपाय नहीं सिवा सख़्ती के। डर से तो भूत भी भागते हैं।

रामनाथ अपने परिवार के साथ सचमुच दीन दुनिया को भूलकर मानो सपनों की सैर कर रहा था। चारों और शोर, दुकानें... झूले, गीत... नाच...। आज वह जैसे कुबेर के खज़ाने का मालिक हो।

"चंदा, दीना, दुलारी... तुम सबको जो ख़रीदना हो खरीद लो, जो ख़ाना हो खा लो फिर, मत कहना कि...।

यही इनकी जीवन दृष्टि है सुख दुख बराबर। न दुखों से भागते हैं न खुशी मनाने का कोई मौका छोड़ते हैं।

दुख इनके लिए परिवर्तन कारी घटना है। जीवन के अभावों और मुश्किलों को भूलने का पीछे छोड़ने का अवसर। उसे लगाकर भरपूर जीते हैं। चाहे दुख एक बछड़ा के मर जाने का हो या खेत में आग लग जाने का ही हो दुलारी ख़ूब डकराकर रो लेती है और दुख से मुक़्त हो लेती है। फिर खुशी के लिए ये लोग तन-मन से तैयार रहते हैं। खुशी चाहे गाय के ब्याहने की हो, पेड़ में पहली बार फल आने की हो या घर में नया रेडियो आने की हो। तुलसी और टेसू के विवाह पर भी दुलारी ऐसे सजती है मानो खुद का ब्याह हो रहा है। ज़िंदगी से खुशियों को खींचकर बाहर ले आते हैं ये लोग। ख़ूब ठहाके लगाते हैं। चिंताएँ अपने आप भाग खड़ी होती हैं।

"जो लोग दुखों को ईमानदारी से नहीं भोगते वे सुखों का आनंद भी नही उठा सकते"—इसे अनपढ़ रामनाथ ने जाने कहाँ से सीख लिया है। तभी तो उसे यह जानते हुए भी कि इसकी बौहरे जी की क्या प्रतिक्रिया होगी, वह झकाझक कपड़े पहले, कानों में 'कन्नौजिया अतर' का 'फाहा' खोंसे बाल बच्चों के साथ शान से घूम रहा था। दुलारी कैला मैया को नारियल चढ़कर प्रार्थना कर रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी कि सबको कुशल रखे मैया। ऐसे अब बुलाया है आगे भी बुलाती रहे।"

शाम ढले घर लौटते समय दुलारी का मन तृप्त था। वह चंदा को साथ लेकर गा रही थी—"इन बागनि के फूल मत तोड़ै माली. .."

खुशी के चपट रंगों में रंगे रामनाथ ने चबूतरे पर बलीराम बौहरे के साथ भैरो को देखा तो सब कुछ समझ में आ गया। उसने दुलारी से बच्चों को अंदर ले जाने को कह दिया और खुद स्थिति से निपटने तैयार हो गया। भैरो ने आगे बढ़कर उसकी कमीज़ पकड़ ली।

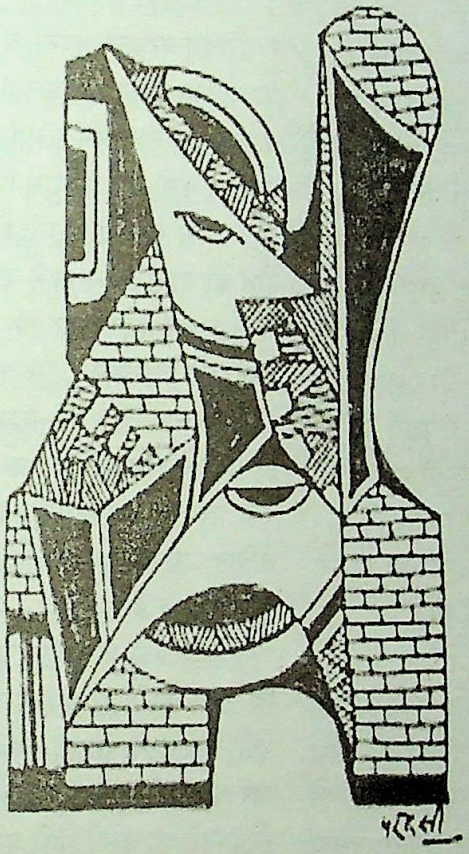

क्यो रे मैने के... दूसरों के रुपये डकारकर गुलछर्रे उड़ते तुझे ज़रा भी लाज नहीं आती?

बलीराम का भान्जा भैरों इलाके का नामी लठैत है। दस-दस आदमियों से अकेले भिड़ने की हिम्मत रखता है। मामा के रुपयों के साथ उसकी भी उधारी थी। दुलारी ने एक बार खेत में जरा हाथ पकड़ लेने पर ही चिल्लाकर उसकी माँ बहन तक को समेट लिया था। गाँव में उसे छिछोरा की उपाधि मिली सो अलग। आज इस सती-सवित्तिरी का गरूर देखेगा।

पर देखे किसे। रामनाथ तो पैरों में पड़ा था।

"भैरों भैया जुबान खराब कर काहे छोटे बनते हो। तुम जो कहो मैं करने तैयार हूँ न..." कोई सामने अड़ा खड़ा होता तो दो चार हाथ करने में मजा आता। आधा जोश तो ठंडा हो ही गया। भैंरो था रामनाथ के पास सबसे बड़ा हथियार।

"मामा के रुपये निकाल अभी... इसी बख़्त—"भैरों फिर भी कड़क आवाज में बोला "रुपये कहाँ हैं भैया! चाहे तो मेरे पिरान ले लो... गुलाम हूँ तुम्हारा।"

"तेरे प्राणों का क्या अचार डालूँगा। हमें रुपये चइये... नहीं तो.... तो" भैरों ने चारों ओर देखा कुछ दिखाई न दिया सिवा खूँटे पर बँधी कजरी भैंस के। "अच्छा हराम खोर दस हज़ार की भैंस बाँधे बैठा है और कहता है ग़रीब हूँ...। मामा! भैंस खोल लो...।"

"चाँदुल?? " एक साथ सबकी छाती पर जैसे किसी ने हथौड़ा मार दिया हो। तीन महीने पहले रामनाथ बच्चों के लिए साले की भैंस ले आया था। उसके पास चारे पानी का ठीक इन्तजाम न था। भैंस में बच्चों की, दुलारी की जान बसती थी पर भैरों जैसे आदमी से कौन जूझे? अब जूझने से कुछ होता भी नहीं। कर्ज वसूली का यह अंतिम चरण था। इस बार रामनाथ बच नहीं सकता था। कोई बचाने वाला भी न था।

भैरों ने आगे बढ़कर भैंस खोल ली। किसी ने चूँ तक न की। गाँव के ज़्यादातर लोगों की हमदर्दी बलीराम के साथ थी। आज बलीराम के जूते में जोर होता तो रामनाथ छह साल से यों ठेंगा न दिखाता रहता। ठीक किया भैरो ने। सबक तो मिलना चइये इस करजाखोर आदमी को।

भैरों की पीठ होते ही रामनाथ के घर में जो कोहराम मचा वह चलता ही रहा रात तक। बच्चों को जैसे-तैसे बहलाकर सुला दिया पर पर दुलारी चुप न होती थी।

"अरे राम। कैसे भला होगा इनका! बच्चों के गले पर लात रखकर भैंस को ले गये पापी... हे कैला मैया...।"

"अरे चुप हो जा बावरी" रामनाथ रूआँसा होकर चिल्ला रहा था...। "भैंस ले गये हैं क़िस्मत तो नहीं ले गये। वे पेट भरलें अपना! ग़रीबों का क्या। जहाँ हाथ मारेंगे पेट तो भर ही लेंगे...। अब हम कम से कम चैन की रोटी तो खायेंगे। नहीं तो रुपया.... रुपया.... रुपया... न हुए प्राण हो गये बौहरे जी के...।"

बोहरे जी गाँव के दूसरे छोर पर रहकर भी जाने क्यों रामनाथ के शब्दों को सुन रहे थे। एक-एक शब्द तंड़ तड़ ओले तरह लग रहा था। भैंस ले भी आये हैं पर उसे बाँधेंगे कहाँ... कौन चारा 'पानी' लायेगा। कौन दूध निकालेगा ! कैसे होगा यह सब... और कौन दुलारी के ताने-मसल्ले सुनेगा। भैंस लाकर उन्हें मिला क्या सिवा इस तसल्ली के कि उनके कर्ज़ की वसूली हो गयी। और यह तसल्ली भी उनको नहीं, भैरों को हुई है। रुपये तो आये न आये बराबर थे। दुलारी का विलाप अब भी उन्हें बेचैन कर रहा था। इसलिए वो मन को पक्का करके बोले—"भैरों! भैंस को वहीं, रामनाथ के द्वार पर बाँधकर आ..."

कोटा वाला मोहल्ला
खारे कुआ के पास,
ग्वालियर-474003

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एहसास

नताशा अरोड़ा

ज्यों ही ट्रेन की खिड़की से आउटर का सिग्नल दिखा, रेखा ने बच्चों के-से उतावलेपन में झट ट्रॉली सूटकेस बर्थ के नीचे से घसीटा और दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। ट्रेन चारबाग़ स्टेशन के नंबर एक प्लेटफॉर्म में प्रवेश कर चुकी थी। रुकते ही रेखा नीचे उतरकर एक ओर खड़ी हो गई। वह बेहद नॉस्टेल्जिक हो उठी, उसने उत्सुकता से इस चिरपरिचित स्टेशन को देखा और आँखें मूँद कर गहरी साँस खींची। वह अपने लखनऊ को अपनी साँसों में महसूस करना चाहती थी। बंद आँखों में उसे दिखी छह वर्ष की गोल-मटोल बालिका जो अमीनाबाद के ऊँचे से गोल मेहराबदार पुराने फाटक से निकलकर, चौड़ी खुली सड़क पर, तितली-सी उड़ती हुई चौराहे पर असग़र अली मोहम्मद अली की दुकान की ओर जा रही थी। अगले ही क्षण वह तितली काउन्टर पर उचक-उचक कर अपना नन्हा-सा हाथ बढ़ाकर बड़ी प्यारी चिरौरी कर रही थी,

"चचा जान इत्ती सी ख़ुशबू लगा दीजिए"।

हँसते हुए यूनुस मियाँ ने रोज़ की तरह, दराज़ से पीतल की मीनाकारी से सजी, लकड़ी की नन्हीं-सी संदूकची निकाली। लाल मखमली बिस्तर पर काँच की पतली-सी कमरवाली नाजुक शीशियाँ सुनहरी ढक्कन का बारीक बूटी सजा ताज सिर पर लगाए, तमाम खुशबुएँ समोए किसी शाहज़ादी की तरह अलमस्त लेटी थीं। काँच की ही नाजुक-सी डंडी से उन्होंने इत्र की बूंद नन्हें गुदगुदे उल्टे हाथ पर रगड़ दी और बच्ची सूँघती हुई ख़ुशी से उछलती कूदती भाग गई। अचानक रेखा का हाथ खुद-ब-खुद नाक पर चला गया। वह पुनः बच्ची बन गई थी। उसने आँखें बंद किये किये ही फिर से एक गहरी साँस खींची, सचमुच उसे फिज़ा में इत्र की घुली ख़ुशबू का एहसास हुआ। किसी ने सच कहा था,' रेखा ने सोचा, 'एहसास तो दिमाग़ में होते हैं। आँखें बंद कर जब आप किसी एहसास को शिद्दत से जीते हैं तो वही महसूस भी करने लगते हैं।'

"दीदी" की सुपरिचित आवाज़ ने उसे वर्तमान में ला खड़ा किया और उसने झट आँखें खोल दी। कैसे अजूबे से थे ये चंद पल, वह मुस्कुरा उठी और छुटकी की तरफ बढ़ ली।

रेखा लगभग बारह वर्षों बाद विदेश से लौटी थी। 'उसका अपना लखनऊ-रोम-रोम में बसा लखनऊ।' वह चारों ओर की सुपरिचित सड़कों-भवनों को देखती जा रही थी। 'कितना वही पुराना जैसा फिर भी कितना बदला-बदला-सा। ऑटोज़ का घर्र घर्र करता शोर-उनसे निकलता और नाकों में घुसता काला धुआँ, क्या सचमुच कुछ क्षण पूर्व उसे फिज़ा में इत्र की महक महसूस हुई थी?'

इस भागती दौड़ती ज़िंदगी में निश्चिंतता भरे मस्ती के पल होते ही कितने हैं। अर्से बाद दोनों बहनें मिली थीं। बहुत पहले से तय कर लिया था कि चंद दिन दोनों अपनी तमाम जरूरी ग़ैर-जरूरी व्यस्तताएँ, घरवालों पर छोड़, बेफिक्री से दो चार दिन सिर्फ़ मौज मस्ती करेंगी-कुछ सुनाएँगी कुछ सुनेंगी। पहली शाम को ही चौक की मशहूर चाट-कचौड़ी और राजा की ठंडाई का कार्यक्रम बना लिया। रेखा को सूचना मिल चुकी थी कि राजा अब नहीं है लेकिन अपनी रेखा भाभी को उनके इसरार से ठंडाई भला वह कैसे भूल सकती है।

चौक के चौराहे पर दोनों बहनें कचौड़ी का आनंद ले रही थीं कि रेखा की नज़र दुकान के बाहर खंभे से टिकी उस औरत पर पड़ी जो सहमी-सहमी सी बैठी थी। उसकी आँखों की पुतलियाँ बार-बार दाएँ-बाएँ हो रही थीं जैसे शिकारी से भयभीत हिरणी। फटे से दुपट्टे को उसने चेहरे पर कुछ ज़्यादा खींच रखा था। लगा स्वयं को छुपाने की कोशिश कर रही हो। दुकानदार से तरस खाकर एक कचौड़ी उसे दे दी थी। पुतलियों की घबराहट में कुछ जाना-पहचाना सा चेहरा। रेखा को लगा जैसे उसके स्मृति चित्रों में अंकित, दूर कहीं से कोई याद-कोई धुँधली-सी घटना, स्मृति के बंद कपाट खोलने की कोशिश कर रही हो।' अपनी इस बेवकूफ़ी पर वह खुद ही मुस्कुरा पड़ी,' होगी कोई भिखारिन। हालाँकि, मैले फटे कपड़ों के बावजूद बैठी सलीके से है।' रेखा पुनः कचौड़ियों का स्वाद लेते हुए बातों में रम गई। अचानक उसी कोने से किसी मर्द की किचकिचाहट भरी फुसफसाहट पर उसकी दृष्टि पुनः घूमी। एक दबंग-सा प्रौढ़ उस औरत को ज़बरदस्ती उठाता हुआ दबी आवाज़ में गुर्रा रहा था।

"हरामज़ादी! उठ, ख़ाला बुला रही हैं। कितनी बार मना किया इधर आने को। कमज़र्फ़ ज़रा भी इज़्ज़त का ख़याल नहीं, कैसी मरभुखी जैसे भकोसे जा रही है। कल का सबक काफ़ी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था क्या? आज सारी हिमाकत न निकाली....।" चौराहे की रोशनी में उस आदमी का चेहरा साफ़ दिखायी दे गया कि अगले ही क्षण रेखा की धूलपटी स्मृति ने झुरझुरी ली और तस्वीर की सारी धूल जैसे झर गई। वह चौंक उठी, 'सचमुच, उसे यूँ ही वह चेहरा जाना पहचाना नहीं लगा था...'

एकदम सन्नाटा खिंचा था, साँसें रुकी थीं। अश्विनी ने चाल तुरुपी करते हुए सौ रुपये ज्यों ही डाले, मामला कुछ गंभीर हो गया, हँसी मज़ाक ठहर गए थे। पैक करने वाले सभी अभी अश्विनी और कुलदीप की ब्लाइंड पर कयास लगा ही रहे थे कि ब्लांइड के पत्तों पर अश्विनी ने चाल चल दी-और ये क्या? कुलदीप ने सीधे पचास की मार दी-आवाज़ें थमने लगीं। फुसफुसाहट में एक दो फिकरे उछले, 'रंग फँस गया है'—'नहीं यार! कलर होगा आख़िर ब्लांइड के पत्तें थे' कि अश्विनी ने चाल सौ की कर दी सो. सन्नाटा खिंचना ही था। यार दोस्तों की मंडली थी, सपरिवार खेलते थे, वह भी बेगम बादशाह ख़तरे में नज़र आने लगा, लेकिन छोड़ भी कैसे दे सो शो माँग ही लिया। चाय लेकर आई शालिनी भी सर्व करना भूल कर पत्ते खुलना देखने लगी। अश्विनी ने पत्ते खोले-तीन चार पाँच स्ट्रेट। एक समवेत स्वर गूंज गया, 'वाओ! क्या पत्ते बड़े हैं' और फिर हँसी ठहाकों के बीच चाय चल पड़ी।

लखनऊ की राजभवन कॉलौनी में उच्च प्रशासनिक अधिकारियों के निवास अधिक थे, कोई सचिव तो कोई डायरेक्टर तो कोई एस.पी.। अक्सर शाम को मित्र मंडलियों की बैठकी हो जाती-एक साथ खाना-पीना , गप्पाष्टक और कभी-कभार ताश भी। एजूकेशन सेक्रेटरी कुलदीप चौधरी और एस.पी. सिटी अश्विनी कुमार पड़ोसी होने से अधिक घनिष्ठ थे। चाय के बाद सभी ने विदा ली। शालिनी और रेखा अंदर बच्चों को लेने चली गयीं। बाहर आई तो अश्विनी कह रहे थे, "ठीक है यार! पक्का! कल प्रोग्राम रखते हैं। एरिया इंचार्ज से कल ही फिक्स कराता हूँ।"

"कल प्रोग्राम बना रहे हैं अश्विनी भाई?" रेखा ने प्रश्न किया।

"अरे भाभी! कल आपको ऐसी जगह दिखाने ले चल रहे हैं कि आप भी क्या याद करेंगी।"

तभी शालिनी ने उत्सुकता से पूछा,

"पर कहाँ?"

अबकी उत्तर कुलदीप ने दिया,

"सरप्राइज़ भाभी! सरप्राइज़"

देर रात अश्विनी की कार चौक के थाने पर रुकी। इंचार्ज ने जोरदार सैल्यूट ठोंका,

"हुजूर! इन्तज़ाम हो गया है। बड़ी मशहूर है, नाम है कुदसिया जान। नाच गाने में इसका जवाब नहीं हूजूर।"

एस.पी. के गंभीर कड़क मुखौटे को चस्पा करते हुए अश्विनी ने पुलिसिया लहजे में पूछा,

"कहीं बात..... ठीक से समझा दिया है ना?"

"हुजूर! मजाल है जुबान खुले, ये लोग बड़ी शातिर होती हैं, बात पचाना अच्छी तरह जानती हैं। हुजूर तशरीफ़ ले चलें, जिनती देर चाहें मुजरा देखें।"

अब रेखा के चौंकने की बारी थी, 'तो इसलिए इतनी रात का कार्यक्रम है।' वह कुछ ठिठक गई। उसका हिचकिचाहट भरा भाव देख अश्विनी हँस पड़े,

"डोंट बी इमोशनल भाभी! अरे दुनिया मजे लूटती है। सब चलता है। है ना सरप्राइज़ ? लेडीज़ को ऐसी जगह देखने के मौके कहाँ मिलते हैं, आइए चलें।"

पुलिस की दो गाड़ियाँ आगे-पीछे एक गली में दाख़िल हुई। इन्तज़ाम ऐसा कि पूरी गली में सन्नाटा, कोई आवाजाही नहीं, दोनों सिरों पर पुलिस तैनात। ये सभी कार से उतरकर उस मकान की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे जिसे कोठा कहते हैं। बेहद सँकरा पुराना ज़ीना, दीवारें पान की पीकों व सीलन की मिली-जुली गंध से भरीं। एक छोटा-सा कमरा, चूना पुती दीवारें कहीं-कहीं सीलन से झरा पलस्तर। फर्श पर एक तरफ़ गद्दे पड़े थे जिन पर सस्ती लेकिन नई फूलदार चादरें बिछी थीं, गाव तकिए भी नए खोल के। वैसे चादरों के कोनों से झाँकते मैले कुचैले गद्दे अपनी अलग दास्ताँ कह रहे थे कि आज की मेहमाननवाज़ी की ख़ातिर हमारी बदसूरत फटे-हाली को ढक दिया गया है। सीढ़ियों की दुर्गंध से अलग यहाँ सस्ते इत्र की तेज खुशबू फैली थी एक तरफ अंदर जाने के दरवाजे पर टँगा मैला पैबंदी पर्दा इस बात की गवाही दे रहा था कि जल्दबाजी में उसे बदलने की तरफ़ किसी का ध्यान नहीं गया था पर्दे के पीछे एक कोठरी की झलक थी, तकरीबन अँधेरी-सी। तभी अंदर से लगभग चालीस-पैंतालीस की उम्र की, सजी-सँवरी, पान रचे होंठ, झिलमिल दुपट्टा ओढ़े एक औरत हाथ में पान की रकाबी लिए बाहर आयी। कमर तक झुक कर खास लखनवी अंदाज़ में आदाब बजाते हुए बोली,

"ताशरीफ़ रखें हुजूर! ज़हे किस्मत", कहते हुए वर्कदार गिलौरी सजी रकाबी बची में रखकर अंदर चली गई। चिकन के कुर्ते, चूड़ीदार पाजामे और दुपल्ली टोपी में साजिन्दे अपना तबला हार्मोनियम लिए बैठे थे। होठों के किनारों से बहती पीक उनके चेहरों की घिनौनी रौनक में इंजाफ़ा कर रही थी, जिस पर बीच-बीच में खीसें निपोर कर साहब लोगों को खुश करने की बेहूदा कोशिश भी जारी थी। हार्मोनियम वाले की खीसें और आँखों से टपकते बहशीपन में कोई तालमेल नहीं था। रेखा को अंदर ही जैसे कँपकपी छूट गई। पर्दे के पीछे से किसी नवजात के कुनमुनाने की मरियल-सी आवाज़ आयी ही थी कि झट किसी ने दरवाजा भेड़ दिया। हार्मोनियम वाले ने ध्यान बँटाने के लिए धुन छेड़ दी, तभी कुदसिया जान ने बाहर आकर निहायत शाइस्तगी से उसी ख़ास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदा भरे अंदाज़ में झुक कर आदाब अर्ज़ किया जिसके लिए शहर लखनऊ की तवायफें दूर-दूर तक मशहूर रही हैं। सामान्य-सा कद, नाक-नक्श भी कोई तीखे नहीं, सस्ता चटकीला मेकअप फिर भी कमसिन उम्र की कशिश और चेहरे की लुनाई ऐसी कि देखते रहने का मन करे। मुश्किल से पंद्रह बंसत देखे एकदम कच्ची कली जो औरत बना दी गई थी। चटक गुलाबी चूड़ीदार पर हरा बूटेदार फ्रॉक जिस पर तिल्ले वाली गहरे कटाव की गुलाब रंगी लखनवी सदरी। गोटे किरन का झिलमिलता दुपट्टा-बेहद सलीके से ओढ़ा हुआ। सस्ते चमकदार झुमके, हार, बाजूबंद, झुमर, बेंदा और भर हाथ लंबे ख़ूबसूरत बाल जिसकी एक लट माथे पर झूलती गालों का बोसा लेती-सी बरबस नजरें खींच रही थीं। ढेर से घुंघरूओं वाली गिलट की वज़नी पायजेबें। नाक में दमकती बड़ी-सी लौंग। इस सस्ते लिबास में भी नादान ख़ूबसूरती फटी पड़ रही थी। उसकी आँखों की पुतलियाँ, जमाने भर का दर्द समेटे, घबरायी हुई-सी पल पल बाएँ दाएँ हो रही थीं।

रेखा उसे देख सकते में आ गई। उसके ज़ेहन में लखनऊ के फिल्मी कोठों के दृश्य कौंध गए। कहाँ उनकी भव्य चकाचौंध और कहाँ ये कोठा। दो एकदम जुदा दुनियाँ। न जाने क्यों रेखा को लगा, कोठों की इस ज़मीन-आसमानी भिन्नता के बावजूद कमख्वाब के कालीन बिछे कोंठों पर बेशकीमती जेवरों और ज़रदोजी लिबासों से लकदम साहिब जान या उमराव जान की ज़िंदगी की तल्ख बदसूरती की कहानी कुदसिया जान जैसी ही तो थी। फर्क़ महज कल्पना की फिल्मी ख़ूबसूरती जड़ी प्रेम कहानी और हकीकत की दिखाई देती खूबसूरती का था। 'उफ़! यही है लखनऊ की मशहूर तवायफ कुदसिया जान जिसके चर्चे उसने अभी सुने, महज एक छोटी-सी बच्ची? रेखा का दिल किया कहीं भाग कर मुँह छिपा ले कि तभी तबले की थाप पायजेबें बज उठीं और लरजते होंठो से स्वर फूट पड़े, 'इन्ही लोगों ने इन्हीं लोगों' अब कुदसिया जान मासूम नहीं लग रही थी। तिरछी नजर फेंके उसने मर्दो की ओर बड़ी अदा से इशारा किया, ''हमरी न मानों सिपहिया से पूछो जिसने बजरिया में छीना...' दुपट्टा लहरा कर सीने की झाँकती गोलाइयों को बेपर्दा करते हुए जो ठुमका मारा तो रेखा की नज़रें नीची हो गई। क्यों हिचकती बैठी है- उठ क्यों नहीं जाती?' तभी घुघरूओं की रुनझुन और तबले की थाप के बीच दरवाजें की झिरी से बच्चे के रोने की मरघिल्ली-सी आवाज़ सुनाई दी। एक क्षण को नाचती रक्कासा के पैरों की तेजी जैसे थमी और फिर जोर पकड़ गई। रेखा ने उसके चेहरे की बदलती रंगत, भाँपी, उसकी नजरों का पीछा किया जो हार्मोनियम वाले पर टिकी चिरौरी-सी कर रही थीं। साजिन्दे की नजरों को हल्की-सी जुंबिश देते हुए 'ना' कहा। नाच बदस्तूर जारी रहा। रेखा ने कनखियों से सभी को देखा, किसी ने शायद यह इशारे नहीं देखे थे उसने धीरे से शालिनी को कोहनी मारी, बच्चे की आवाज़ पर सभी असहज हो रहे थे कि आवाज़ फिर आई और अबकी अश्विनी ने हाथ के इशारे से नाच रुकवा दिया। साज बंद होते ही दरवाजा भिड़ा होने के बावजूद मिमियाते रोने की आवाज़ तेज हो रेखा के दिल में उतरने लगी। कुदसिया सिर झुकाए चुपचाप खड़ी थी। कुछ नाच और कुछ घबराहट से उसका सीना धौंकनी-सा ऊपर नीचे हो रहा था। उसने अब दुपट्टे को फिर से सलीके से ओढ़ लिया था, मानों इसी धड़कती जवानी को छुपाने की कोशिश कर रही हो। अश्विनी ने कहा, ''अंदर तशरीफ ले जाइए।'' जड़वत् खड़ी कुदसिया ने घबरायी नज़रों से साजिन्दे की ओर देखा कि अश्विन ने ज़रा तल्ख़ लहजे में अपनी बात दोहराई ''मैंने कहा ना, आप अंदर तशरीफ ले जाएँ।'' कुदसिया कैद से छूटी हिरनी की तरह अंदर भागी। अगले ही क्षण खींसे निपोरती खाला बाहर आयीं आवाज़ में चाशनी घोलते हुए हाथ जोड़कर बोली।

''नाचीज की दस्तबस्ता गुज़ारिश कुबूल फ़र्माएँ हुज़ूर मुआफ़ी दें। आपकी महफ़िल में खलल पड़ गया-बाँदी बेहद शर्मसार है, खता मुआफ़ हो हुज़ूर। बस सरकार लौंडी को अभी हाज़िर करती हूँ, अब कोई ...'' तब तक सभी खड़े हो चुके थे। थानेदार के बरसने वाले कहर की सोच खाला काँप उठी और बार-बार बैठने की चिरौरी कर कुदसिया को बुलाने अंदर लपकी। सभी जीने की ओर बढ़ चुके थे-ख़ाला की फुसफुसाहट सुनाई दे रही थी,

''नामुराद! कहा था इस हरामजादी औलाद को अफ़ीम चटा देना, बड़े साहब आ रहे हैं। जरा-सा पिंडा क्या तप गया, तू चोंचले दिखाने लगी, कमबख्त। सब सत्यानाश कर डाला। क्यों री, चूचियों से दूध टपका पड़ रेया था क्या? ये ही लच्छन रहे तो कोठा बंद हो जाएगा। इज्जत खाक में मिल जाएगी। थानेदार का कहर कौन झेलेगा? आज तेरी खाल न उधड़वाई तो...।'' रेखा के कानों में जैसे पिघला सीसा भर गया हो। सभी नीचे पहुँच गए। थानेदार ने झट एड़ियाँ बजायीं, हैरान था कि इतनी जल्दी.... चेहरे पर थोड़ी परेशानी-सी झलकी लेकिन बड़ी माहिरी से उसे छिपा आगे बढ़ा, कार का दरवाज़ा खोला। उसे वापिस जाने का हुक़्म देकर अश्विनी की कार में बैठते हुए शालिनी ने शिकायती लहजे में अश्विनी से कहा,

''तुम भी ना-बोर करवा दिया।''

रेखा भौंचक हुई थी कि अश्विनी बोल पड़े,

''साले थानेदार की ख़बर लेनी पड़ेगी। उसे ये बीमार बच्चे वाली ही मिली थी। उल्लू के पठ्टों ने सारी शाम किरकिरी कर दी। ख़ाला ने जेंबें भरने को उतरवाई होगी इसकी नथ किसी रईसजादे से तभी तो.. बाई गॉड कोठा भी ऐसा ढूंढा साले ने कि बैठना भी बस...'', बीच में ही कुलदीप ने बात का रुख मोड़ने की कोशिश की,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अमा छोड़ो भी, अब जो हो गया सो हो गया।"

अश्विनी ने गहरी साँस छोड़ते हुए कहा,

"हाँ यार! हम क्यों मूड बिगाड़ें। वैसे उसकी आवाज़ थी मीठी और नाच भी कुछ बुरा नहीं था.... ।"

रेखा के शरीर में जैसे चीटियाँ रेंग रही थीं। विचारों का झंझावात थम नहीं रहा था, 'उफ! हम कैसे इंसान हैं? कितनी लाचार होगी वह जो खुद अभी बच्ची है। अपने कलेजे के टुकड़े की ख़ातिर हर क्षण लुटती पिटती है। इसी बच्ची का तमाशा देखने गए थे हम छिः। तमाशा देखा ज़रूर-ज़िंदगी की एक बदरंग तस्वीर का तमाशा। तभी कार में फैली चुप्पी को तोड़ते हुए अश्विनी हँस कर बोले,

"अरे भाभी! आप भी किस सोच में पड़ गईं। इन तवायफ़ों के यही रंग ढंग हैं। इनकी हालत पे न जाइए- बड़ी शातिर होती हैं। अरे, रात गयी बात गयी। वो तो उस नामुराद ने कोठा गलत सुन लिया वर्ना... खैर छोड़िये भी।"

रेखा मानो इस अश्विनी को पहली बार देख रही थी। 'क्या वह यह कोठा कभी भूल पाएगी?"

'चलो दीदी! किस सोच में पड़ गईं?"

छुटकी की आवाज़ ने उसे वर्तमान में ला पटका। 'यह अधेड़ आदमी भला वह इस चेहरे के वहशीपन को कभी भूल सकती है जिसे देखते ही ज़िस्म में झुरझुरी दौड़ जाती है। अब तक वह उस औरत को लेकर जा चुका था। अपना संदेह पक्का करने के लिए पूछ ही तो बैठी कचौड़ी वाले से,

"क्यों भइया! कौन थी यह औरत? भिखारिन तो नहीं लगी।"

"अरे बहिन जी! क्या करिएगा जान के, आप लोगों लायक बात नहीं है।"

"फिर भी...", रेखा के इसरार पर रहस्यमयी मुस्कुराहट से ज़रा धीमे स्वर में बोला,

"जी हाँ! यह भिखारिन नहीं-तवायफ़ है। चंद साल पहले इस कुदसिया जान के गली गली चर्चे थे, अब ये हाल है बेचारी का। सुना है, ज़िस्म में सफेद कोढ़... अब लोग तो ख़ूबसूरती पर पैसे लुटाते हैं।"

"अभी भी ये सब होता है? कानून..."

"अरे बहिन जी! ऐसी चीजें खतम नहीं होतीं। कानून के रखवाले तो सबसे पहले... खैर छोड़िए", झेंपी-सी हँसी के साथ फुसफुसाता जवाब आया। रेखा की स्मृति में वर्षों पूर्व उस रात बच्चे का मिमियाना जैसे कानों में गूँजने लगा। उस बच्चे के बारे में कैसे पूछे जिसे उसने देखा भी नहीं था, केवल उसकी मौजूदगी का एहसास झेला था। नहीं रहा गया तो घुमा कर प्रश्न किया,

"घर में इसका कोई तो होगा?"

"कोठे की ख़ाला अब इसे कहाँ से लाई थी ये तो वही जाने। सुना है, किसी ऊँचे खानदान की मालकिन ने पैदा होते ही पोती को ख़तम करने के लिए जिस दाई को सौंपा था वो इसे खाला को बेच गई, अब जित्ते मुँह उत्ती बातें। कोई कहता है यहीं पास में जच्चा अस्पताल में कोई अनाथ छोड़ गया था कि खाला के हाथ लग गई" फिर इधर-उधर देख धीमे से फुसफुसाया, "अलबत्ता इसकी एक बेटी है, पूरी तरह खाला की मुट्ठी में ,नाम है सुरैया जान, क्या सुरीली आवाज़ है। माँ का ही हुस्न पाया है। आजकल उसी के चर्चे हैं... ।"

रेखा का दिमाग भन्ना उठा, 'इसकी बेटी? यानी कि मुश्किल से चौदह पंद्रह साल की। हाँ, वह बता सकती हैं इस कचौड़ी वाले को इस अनदेखी अनजानी सुरैयाजान की उम्र। चौदह पंद्रह बरस पहले नादान उम्र में साँपों जैसे लिजलिजे हाथों को अपने जिस्म पर रेंगने को मजबूर थी यह कुदसिया, आज तक झेल रही है ये दंश। ये बिना निशानों के दंश भला मिटते हैं कभी? उसके लिए यह ज़िंदगी- घिनौनी बंद कोठरी थी जिससे निकलने के इकलौते रास्ते पर दरिंदों का पहरा था। अब यही हश्र है बेटी का।' कुछ बातें सीधे मन पर वार करती हैं, ऐसा वार जिसकी चोट तो नहीं दिखती पर टीसें नहीं जातीं। वर्षों पूर्व कुदसिया जान के कोठे पर जाना ऐसा ही वार था, यह रेखा आज जान पाई। ' क्या सचमुच उसने आज सुबह ही खूशबू भरे मात्र एक काल्पनिक एहसास को इत्र में सराबोर कर ज़िंदगी को खुशियों से भर लिया था? कितने बेमानी होते हैं एहसासों के ऐसे छलावे', विचारों का सैलाब उसे बहाये ले जा रहा था, 'कभी-कभी कैसे हम अपने भरमों को अपने एहसासों में असलियत बनाकर खुशफहमियों में जीने लगते हैं। सच्चाई को नकार कर मन की गहरी पर्तों में उसे दफ़्न कर, भूल जाने के झूठे एहसास को असलियत बना लेते हैं। यह झूठी खुशफहमी, घिनौनी सच्चाइयों से-हमारे अंदर छुपी अमानवीयता से, पलायन ही तो है। सच्चाई की एक दबी सड़ांध ने चौदह साला पर्तों की झिरी से निकल कर सारी खुशबुएँ लील ली हैं। वह चाहें जितना अपनी लाचारी को जस्टीफाई कर ले, सच्चाई तो यही है कि उसमें परिस्थितियों को बदलने का साहस नहीं है। वह स्वयं से तो आँख नहीं चुरा सकती। किसी पर तरस खाना एक बात है और अपनी प्रोटेक्टेड लाइफ़ के गुदगुदे बिस्तर को छोड़ना दूसरी। इस कड़वी सच्चाई का एहसास कितना दर्दीला है।' वह सोच रही थी, 'ज़िंदगी भी कैसे कैसे मुख़्तलिफ़ एहसासों का पुलिंदा होती है..।'

"दीदी क्या सोचने लगीं?"

रेखा झटके से वास्तविकता में लौट आयी, "कुछ भी तो नहीं, अच्छा बोल एक कचौड़ी और चलेगी?"

"सृजन"
ए-16, सेक्टर-27, नोयडा-201301

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँगन का मिठूलाल

दिवाकर कृष्ण

"मिठू, अंदर जाना नहीं, हाँ! भाई कोसेंगे बेटा!"

सेठ नानू भाई उपाख्य भाई साहब ही हवेली के आँगन में एक छह वर्षीय बालक हाथ में लकड़ी का बना हरे रंग और लाल चोंच का खिलौने का तोता लेकर खड़ा था। ऑफ़िस में भाई साहब अपने दो क्लर्कों के साथ कुछ काम कर रहे थे। बायीं ओर के दरवाज़े से एक गतवधा युवती उस बालक को यह मनाही कर रही थी।

मुंबई के गिरगाँव बैक रोड का एक बंगला भाईसाहब ने अपने लिए ईसवी 1907 में ख़रीदा था। बंगले की विशेषता थी कि उसके आगे तिकोना आँगन था और उसके दोनों ओर तिमंज़िली हवेली खड़ी थी। तीसरी ओर से आदमक़द ऊँचाई का छज्जा था, बीच में एक फ़ाटक बनवाया गया था। आँगन चिकने फ़र्शों से सजाया गया था। फ़ाटक में चढ़ने-उतरने हेतु चार सीढ़ियाँ थीं।

नानूभाई मुंबई के दलालों के धंधे के ख्यातकीर्त निष्णात गृहस्थ थे। उनका जन्म गुजरात के बार्डोली शहर में हुआ था। पिता की नौकरी की वजह से वे एक बार मुंबई आये, तो बार्डोली का नाम भी भूल गये। नानूभाई के पिता एक सर्राफ़े पर उमर भर मुनीम रहे। उन्होंने नानूभाई के लिए एस्टेट छोड़ रखी थी। अपनी पद्धति के अनुसार उन्होंने अपनी ही जाति की एक कुलीन लड़की के साथ नानूभाई का विवाह कर दिया था। उन्होंने अपने अंतिम समय में पुत्र नानूभाई से कहा था कि वह गिरगाँव में हवेली ख़रीदें। यही वह हवेली थी। अपनी तरह नानूभाई उपाख्य भाईसाहब की गृहस्थी ईसवी 1907 में शुरु हुई। लोग कहते,"भाईसाहब की मनोवृत्ति ख़ासकर मुबंई में ज़िंदगी व्यतीत करने से एक तरह की व्यापारी बन गयी है।" कई सालों बाद उनके बेटा हुआ, परंतु भाईसाहब की मनोवृत्ति घर-गृहस्थी में अनासक्ति की थी। विरक्ति के कारण नहीं, लेकिन दूसरा कुछ कारण भी बता नहीं सकते। परंतु, एक बात सच थी कि अन्य गृहस्थ या परिवार-प्रमुख अपने स्त्री-बच्चों का जिस तरह या जैसा परामर्श लेते थे, वैसा वे कभी नहीं लेते थे, यह बात सच थी।

भाईसाहब की पत्नी....उनका नाम क्या था, कौन जाने! पर, लोग उन्हें माई कहते। माई उनका मायके का नाम था। भाईसाहब ने घर की सारी ज़िम्मेदारियाँ माई के हाथों सौंप दी थीं। भाईसाहब के लिए उनका अपना व्यवसाय ही कार्यमग्न रहने हेतु काफ़ी था। वे हर महीने नियत रक़म पत्नी की माँग के अनुसार उसके हाथ में रखते। माई ऐसी कुशल थीं कि वे घर के सारे काम नौकरों के हाथों करवा देती थीं। एक बार स्नान हेतु, दो बार चायपान हेतु, दो बार भोजन हेतु और देर रात, निद्रा हेतु भाईसाहब बायीं ओर के कमरे में आते थे। वे स्वयं अपनी निगरानी में सर्राफ़े का काम बारीक़ी से करवा लेते थे। उनकी बढ़ती अमीरी उसका प्रमाण थी। घर में अगर कोई बीमार हो, तो वे डॉक्टर को बुलवाने की कहते, परंतु खुद बीमार के पास जाकर उसका हाल कभी न पूछते। उन्होंने अपने बेटे को भी कभी उठाकर सीने से नहीं लगाया था।

माई ने अपने लाड़ले बेटे का नाम मिठूलाल रखा था। छोटा मिठूलाल मूर्तिमंत आनंद था। उसे तोता बहुत पसंद था, प्रिय था। गैलरी में पीतल का पिंजरा टँगा था, उसमें उसका लाड़ला तोता था। मिठूलाल ने उसका नाम 'लाल' रखा था। उसके हाथ में हरे रंग और लाल चोंचवाला लकड़ी का बना खिलौना था, वह भी मिठू ही था। घर के सारे लोगों का प्यारा लाड़ला मिठू आँगन में खेल रहा था। नर्मदा मौसी ने उसे मिठू की कढ़ाई का रूमाल दिया था। म्युनिसिपल स्कूल के परिचय वाले बच्चे फ़ाटक के बाहर खड़े होकर आते-जाते बुलाते, "मिठू..."

मिठू को फ़ाटक के बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। आँगन के मर्यादित क्षेत्र में मिठूलाल स्वच्छंद रीति से घूमता-फिरता-खेलता रहता।

सन् 1998 की एन्फ़्लूएंज़ा की बीमारी के दिनों में माई का प्रसूतिकाल आ गया। ज्वर से उनकी प्रसूति असमय हुई और बीमारी चरम सीमा तक गयी। मुंबई के सभी डॉक्टरों के बिलकुल सामने, परंतु पति का दर्शन न पाते माई ने इहलोक का अपना जीवन समाप्त किया। भाईसाहब को बीमार व्यक्ति के पास बैठना बिल्कुल ही प्रिय न था। वे अपने कमरे में जा बैठे थे। उन्हें आने में एक मिनट की देरी हुई। मरे हुए बच्चे के साथ माई सदा के लिए चली गयी। नर्मदा के दुख की कोई सीमा नहीं थी। दोनों बहनों का आपस में प्रगाढ़ प्रेम था। उस दिन मिठू को पड़ोस के घर खेलने हेतु भेज दिया गया था। ऐन मौक़े पर मिठू दौड़ता आ ही गया और उसने अपनी जाती हुई माँ के अंतिम दर्शन किये। किंतु, माँ को पुत्र के दर्शन नहीं हुए। मिठूलाल को लगा था कि माँ को चार आदमी कंधे पर उठाकर दवाख़ाने ले गए हैं। कई बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौसी से पूछता, "माँ दवाख़ाने से वापस कब आएगी?" बेचारी नर्मदा को रोना आता था।

उसके बाद जल्दी ही नर्मदा अपने घर गयी। तीन महीने बाद वह वापस आयी। उसके भाल पर कुंकुम तिलक नहीं था। मिठूलाल ने पूछा, "मौसी, तिलक लगाना क्या भूल गयी?"

नर्मदा की आँखों के सामने सहस्रों सूर्य चमकने लगे। नर्मदा के ससुराल के सभी आप्तजन महामारी में मर गये। भाईसाहब निराधार नर्मदा को अपने घर ले आये। दो साल में भाईसाहब के स्वभाव में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। उनका आचरण मिठू से, नर्मदा से, नौकरों-चाकरों से पूर्ववत ही रहा। उसमें फ़र्क़ नहीं हुआ। नर्मदा के लिए एक ही आश्रय था, मनोरंजन था—मिठूलाल! वह अपनी जान से भी ज़्यादा मिठू को सँभालती थी। कहावत है न, 'माँएँ मरें, पर मौसी जिएँ।"

मिठूलाल चाहता था कि वह भाईसाहब के ऑफ़िस में जाए। वह उन्हें अपना लकड़ी का मिठू दिखाने वाला था। भाईसाहब काम में व्यस्त थे। वे महत्त्व के कुछ दस्तावेज़ पढ़ते-पढ़ते क्लर्कों को सूचनाएँ दे रहे थे। ऐसे समय में मिठूलाल पिछले आधे घंटे से ऑफ़िस के दरवाज़े के सामने खड़ा था। उसे लग रहा था, कि अभी नहीं, तो थोड़ी देर बाद भाईसाहब मुझे अंदर बुलाएँगे... फिर मैं उन्हें अपना लकड़ी का मिठू दिखाऊँगा... पर भाईसाहब ने उसे अंदर नहीं बुलाया। इतने में किसी काम हेतु नर्मदा वहाँ आयी। पहले जो मनाही थी, वह उसी की थी।

"नहीं जाऊँ? भाईसाहब काम में हैं? उनका काम कब ख़तम होगा? उनसे मैं कहने वाला हूँ कि वे मेरे मिठू के लिए बाज़ार से अनार लाएँ..."

"शाम को जब भाईसाहब खाना खाने आएँगे, तब उनसे कहना..."

फड़फड़ की आवाज़ आयी। पिंजरे के अंदर बंद मिठू ने पंख फड़फड़ाये।

पिंजरे में रखी कटोरी खाली देख मिठूलाल ने पूछा, "मौसी, आज लाल को चनादाल क्यों नहीं दी?"

नर्मदा ने हँसकर कहा, "शायद स्वयं को चाहिए न, इसीलिए लाल की पूछताछ हो रही है... है न?"

नर्मदा को याद आया। सन् 1998 के चैत्र महीने में चैत्रगौरी पूजा-समारोह में रसभीनी चना-दाल पिंजरे के लाल को देने के बहाने स्वयं आँगन का मिठूलाल ही चबा जाता था। नर्मदा ने कितनी बार छोटे मिठूलाल को सबकी नज़रें चुराकर रसभरी दाल की मुठ्ठी मुँह में ठूँसते पकड़ा था। पिंजरे में बंद लाल और आँगन के मिठू—दोनों को दाल खाने को मिली। पड़ोसवाला बन्सी मिठूलाल से खेलने आया। शाम हुई। रास्ते में मोटरगाड़ियों की आवाजाही थी। म्युनिसिपल स्कूल के बच्चों ने फ़ाटक के सामने खड़े होकर पुकारा, "मिठूलाल..."

उस दिन भाईसाहब को हाथ में लिया काम ख़त्म कर वापस घर आने में देर हुई। तब तक मिठूलाल की मध्यरात्रि हो चुकी थी। नर्मदा जागृत थी। मिठूलाल अपने बिछौने में खर्राटे भर रहा था। दूसरे दिन नये साल का पहला दिन था। नर्मदा ने मिठूलाल के लिए नयी स्लेट मँगवाई। नयी स्लेट लेकर मिठूलाल सारे घर में घूम रहा था, सभी को दिखाता फिरता था। उसे नये साल का नया आनंद हुआ था। भाईसाहब को स्लेट दिखाने मिठूलाल ऑफ़िस के दरवाज़े तक गया। सुना, "भाई साहब नहीं हैं।" अचानक काम निकल आने से अहमदाबाद गये हुए हैं।"

मिठूलाल ने क्लर्क से पूछा, "कब वापस आएँगे?"

"कल शाम को..."

दूसरे दिन मिठूलाल ने नर्मदा मौसी से कहा, "मौसी, भाई अगर रात को देर से भी आ जाएँ, तो भी मुझे जगाना। मैं आज उन्हें अपनी स्लेट दिखाऊँगा..."

नर्मदा मौसी से अनुमति मिलने के बाद वह अपने प्रिय पिंजरे के लाल का हाल पूछने आँगन में गया। उस रात भाई वापस नहीं आये। दूसरे दिन भी नहीं। तीसरे दिन सवेरे दस बजे भाईसाहब अपने फ़ाटक के पास गाड़ी से उतरे। मिठूलाल दौड़ता हुआ उनके पास गया—"भाई, पहले अंदर, आइए, मेरे लिए एक सुंदर हरा-हरा लाल चोंच वाला मिठू लाया गया है।"

भाई मिठू के साथ कुछ बोले नहीं। एक अक्षर भी न कहते, उसकी तरफ़ न देखते वे अपने ऑफ़िस गये। साथ वाले दो आदमियों के साथ दो घंटे तक खुसर-फुसर करते रहे। बहुत बड़ी रक़म का एक करार उलट गया था, अतः भाई एकदम से अस्वस्थ चित्त बन गये थे। उन्हें अगले चार दिनों तक एक क्षण के लिए भी फ़ुर्सत नहीं मिली। वे लगातार मोटर से चक्कर लगाते रहे थे। पाँचवें दिन भी उन्हें मिठूलाल के लकड़ी के मिठू की याद नहीं रही। मिठूलाल को बहुत गुस्सा आया। उसने निश्चय किया कि वह स्वयं जाकर भाई से बात ही नहीं करेगा।

एक रात मिठूलाल का शरीर बुखार से तप गया। नर्मदा घबरा गयी, अस्वस्थ हुई। अब तक कई बार मिठूलाल को बुखार आया था, मगर अब की बार उसकी चिंता बढ़ने लगी। मिठूलाल को दूसरी मंज़िल के रास्ते की तरफ़ वाले कमरे में सुलाया गया था। उसकी इच्छा थी कि वह ग्रामोफ़ोन का गाना सुने। नर्मदा उसके लिए ग्रामोफ़ोन के गाने की ध्वनिमुद्रिका लगा रही थी कि इतने में मिठूलाल ने पूछा, "मौसी, क्या भाई मुझसे खफा हैं? मुझ पर गुस्सा हैं?"

"नहीं बेटा, गुस्सा क्यों होंगे?"

"हाँ! और तुम भी मुझ पर गुस्सा हो। सारे लोग मुझ पर गुस्सा हैं!"

"किसने कहा तुझसे?"

"मुझे लगता है ऐसा...."

नर्मदा अंदर आयी। मिठूलाल खिड़की से बाहर देखने लगा। बन्सी लडकों के साथ स्कूल जा रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिठूलाल ने पुकारा, "बन्सी, बन्सी...."

मगर बन्सी सुन नहीं सका, वह वैसे ही आगे चला गया।

"सभी लोग मुझ से गुस्सा हैं," मिठूलाल ने स्वयं से कहा। आज उसे माँ की याद आयी। नर्मदा कमरे में आयी। मिठूलाल ने उससे पूछा–"मुझे मेरी माँ कब मिलेगी?"

"मिलेगी लल्ला, ज़रूर मिलेगी बेटे।"

नर्मदा क्या, कौन-सा दूसरा उत्तर देती! मिठू की माँ वापस आने हेतु थोड़े ही गयी थीं! मिठूलाल उठकर बाहर जाने लगा।

"कहाँ जा रहे हो?"

"भाईसाहब से मिलने...?"

"ठहरो, भाईसाहब को यहाँ बुलाती हूँ।"

नर्मदा बाहर गयी। उसने नौकर के हाथों संदेश भेजा, "मिठू बुला रहा है।"

"किसलिए बुला रहा है? उसे कहो, अभी काम है, थोड़ी देर में आऊँगा।"

थोड़ी देर बाद भाईसाहब आना भूल गये। मिठू का बुखार चढ़ता ही गया। कुछ भी उपाय करने से बुखार कम न होते देख नर्मदा डॉक्टर की सलाह के मुताबिक़ उसे लेकर हिल स्टेशन माथेरान गयी। वहाँ मोटरगाड़ियों की आवाजाही का सिलसिला नहीं था। वहाँ म्युनिसिपल स्कूल के बच्चे फ़ाटक के सामने खड़े होकर 'मिठू' करके बुला नहीं रहे थे। मिठू का स्वास्थ्य सुधरा नहीं। तीसरे दिन उसे भ्रम होने लगा। बेसुधी में वह बड़बड़ाने लगा,.... "भाई! सभी मुझ पर गुस्सा हैं.....!

नर्मदा ने भाईसाहब को ख़त लिखा–"लल्ला, आपको बहुत याद कर रहा है, एक बार आ जाना...!"

माँ चल बसी, पिता दूर हो गया.... बच्चा डर के मारे बड़बड़ाने लगा, "मौसी, तू तो नहीं न मुझ पर गुस्सा?"

भाईसाहब ने जाने में देरी की। दूसरे दिन तार आया "कम ओवर एट वन्स-(तुरंत आना)" भाईसाहब माथेरान गये। मिठूलाल ने उन्हें पहचाना नहीं। उसका एक ही जाप शुरू था, "सभी मुझ पर गुस्सा हैं...।" पाँचवें दिन घर के नौकरों ने लापरवाही से पीतल के पिंजरे का दरवाज़ा खुला छोड़ दिया उसका मिठूलाल जो एक बार उड़ गया, सो उड़ गया... फिर से मिला नहीं। क़रीब-क़रीब उसी समय आँगन के मिठूलाल ने अपने शरीर का पिंजरा तोड़ा और उड़ गया। वह फिर वापस नहीं आया।

भाईसाहब नर्मदा को साथ लेकर वापस मुंबई आये। लकड़ी का हरा मिठू चौकी पर पड़ा था। टँगा हुआ पीतल का खाली पिंजरा गैलरी में झूल रहा था। सारा घर उदास था। नर्मदा रो रही थी। भाई साहब हाथों में सिर टिकाकर बैठे थे। उन्हें अपनी पत्नी की याद आयी। उसकी विनती थी, "मिठू को संभालो..." कहा हैं मिठू?... मिठू उड़ गया!

शाम हुई थी। रास्ते में मोटरगाड़ियों की आवाजाही शुरू थी। म्युनिसिपल स्कूल के बच्चों ने फ़ाटक के सामने खड़े होकर पुकारा, "मिठूलाल....!"

अनुवादः डॉ. शैलजा 'श्यामा'

कविता

सुनहरी किरणें

मनीषा जैन

जीवन में धूप
सरकती है जब छत से
मोती माणिक दिन के
सब ले जाती है संग में
पीछे छोड़ती जाती है
भयावह अंधेरा
छतों पर भागता है
अंधेरा घना
डराने को कुछ
सहमदिल इंसानों को
सहसा फिर अंधेरे में
बंद किवाड़ों के पीछे से
झाँकती हैं अनगिनत आँखें
करती हैं प्रतीक्षा
आने वाले सूरज की
आयेगा उजाला दरवाजों के दरीचों से
और फैला देगा
सुनहरी किरणों को
उनके जीवन में।

22, वेस्टर्न एवेन्यू
सैनिक फार्म
नई दिल्ली-110062

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

अंशु मालवीय

भूख का तराना

(इरोम शर्मिला के लिये)
हमने जिस्म की मेहराबों पर
भूख झंडे की तरह गाड़ दी
और आज़ादी की ख़्वाहिश को
भूख कहने लगे...
भूख हमारी मजबूरी नहीं थी
हमारा इरादा थी
हमारे क़दमों की जुम्बिश
भूख थी हमारी साँसों की बेखौफ़ आवाज़ाही!
भूख हमारे दाँतों में दबा उम्मीद का कौर थी
भूख माँ थी हमारी
जिसने सफ़र के लिये
न पोटली दी न तावीज़
बस बोसा दिया एक
जो आज भी हमारी पेशानी पर
चाँद सा चमकता है।
हमने बादलों की टोपी पहनी
कुहरे के दस्ताने
चाँद में डाल हरी नीली काइयों के जूते
भूख के तस्मे कसे उस पर
और निकल पड़े उस सफ़र पर
जिसका ज़्यादातर हिस्सा
हमें कोहनियों पर तय करना था।
सर्द की सड़क पर ख़ून के थक्कों से भूख लिखा था
रास्ते में संगीनों की चमक से पथराई आँखें लिये
कुछ थे ख़्वाब सारे
हमने उनकी आँखों की रोशनी
अपने नाखूनों में समेट ली
और उनके नीले होटों पर भूख लिख दिया।
हमने रीढ़ की खपच्चियों पर
लहराते सूरज को बाँध लिया और
भूख लिख दिया उसके माथे पर...
हमने हिरासत में टूटे हुए
पेड़ों के हाथों में कलम रख दी
और क़ौमी तराने पर भूख लिख दिया।
हमने रूह की माँग पर
भूख खा ली
मगर पेट तक न जाने दिया उसे
अब भूख हमारे गले में थरथराता एक नग़मा है...
जिसे आधी रात के अँधेरे में जलाकर
महबूब को ख़त लिखते हैं दीवाने
और जिससे फौजी बूटों की कदमताल में
ख़लल पड़ता है!

नागरिकता का पहला पाठ

एक गणतांत्रिक राज्य में
दो तरह के लोग रहते हैं
नागरिक
.....अनागरिक!
अनागरिक का जीवन
गद्दारी कहलाता है
उसकी मौत
दहशतगर्दी।
नागरिक का जीवन
कहलाता है बहुमत का शासन
और मौत...
शहादत।
शहादत का दाम मिलता है
ज़बानी ही सही
पेट्रोल पंप,
टुकड़ा ज़मीन का
फ्लैट या
नागरिक बच्चे को नौकरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनागरिक की मौत को कहते हैं
कानून का राज क़ायम होना।
नागरिक और
अनागरिक के बीच
एक जर्जर पुल होता है
जिस पर चलने की कोशिश करना
'राज्यद्रोह' है।

माँ

कमरे की दक्खिन दीवार पर
'माँ'
पेंटिग जामिनी राय की
सफ़ेद साड़ी
लाल किनारी
बड़ी आँखों वाली
सादी सी 'माँ'
अबके बदलते मौसमों में
सादगी पर धब्बा उभरा एक
आहट एक
धब्बा बढ़ा...
परली ओर दीवार के
पलस्तर नहीं था
वहीं से पैठी नमी
कोहरे का एक बादल
उमड़ने लगा
नमी
सीलन
कुहरा...
कुहासे का फैलना
मद्धिम होने लगे रंग
एक दिन देखा
धुँधली थी तस्वीर
जर्जर होते फेफड़े जैसी
शीशे के अन्दर फैली धुंध
सामने खड़ा था मैं
शीशे के भीतर मेरे चेहरे पर
रिसने लगी बूँदें
वक़्त ने सीलन दर्ज़ कर दी हमारे चेहरों पर
चलो भाई!
अब हम दोनों भी बूढ़े हो लें
अब तो माँ भी नहीं रही।

लोकतंत्र प्रतिपक्षहीन

गदगद शब्दों की लार बही
बस भीग गई यह महामही
यूँ राजकुँवर आ लगे गले
पुरखों के पुण्य प्रताप फले
जैसे विधना ने बाँह गही

यह लोकतंत्र प्रतिपक्षहीन
केवल सत्ता की बजे बीन
कैसा नवआपातकाल
बोलो लेकिन हो अर्थहीन
धरती भी चपटी हो जाये
बच गई कसर यह रही सही

हैं भजन कर रहे जनगणमन
कृतकृत्य हुये बौद्धिक अभिजन
तुम कैसे प्रकटे हो प्रभु जी
कैसे कीन्हा यह दुष्ट दलन
आँखों से आँसू झरते हैं
क्या कहें आज जो नहीं कही

हम कैसे न तरते प्रभु जी
तुम तारणहार हमारे थे
मंदी का दैत्य खड़ा सिर पर
तुमने सब कर्ज़ उतारे थे
सिक्के का एक ही पहलू है
दूजा पहलू अब नहीं कहीं

हम दीन अभागे दलित-मलित
हम ना जाने कुछ ललित चरित
तुम परब्रह्म परमात्मन हो
तुम से ही सारा विश्व रचित
हम भक्तिपरक हैं जनवादी
नेता ने श्रद्धा अकथ रही।

ए-।।। मेंहदौरी कॉलोनी
तेलियरगंज
इलाहाबाद-211004

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्री नं.-3

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

यह सावित्री की कहानी है। मैंने सावित्री का नाम बदलना चाहा, किंतु मुझे लगता है कि जिस तरह चित्र में कमोबेश रंग का फ़र्क़ आ जाए, तो चित्र की संवेदना या सौंदर्य कम हो जाता है उसी तरह नाम बदलने से सावित्री की कहानी की सहजता कम हो सकती है।

पाश्चात्य विचारक रॉबर्ट लिडेल ने भी कहा है कि मुझे पात्र का रंग या वेशभूषा तक बदलने में कष्ट होता है। ऐसा लगता है कि ऐसा करने से मैं असली पात्र के साथ अन्याय कर रहा हूँ।

यूँ भी मुझ में कौन-सा इतना कलात्मक शऊर है कि मैं कहानी को हूबहू न कह कर उसे किन्हीं चौखटों में कसूँ, ताकि कहानी सुंदर बन जाए। यह तो बस मेरे मन का गुबार है, जो सावित्री को लेकर मन में घुमड़ रहा है और जिसे कहे बग़ैर मुझसे रहा नहीं गया। यथार्थ हो तो सहजता के साथ उस का गठजोड़ आप ही बन जाता है।

अब मैं देख रही हूँ आपके माथे की सलवटें और भौंहों की भृकुटी का तनाव...फिर मैंने सावित्री नं. 3 क्यों लिखा। इस का कारण मैं बताती हूँ।

यूँ तो हमारा सारा साहित्य ही पुराणों का और पुरानी किंवदंतियों का पिष्टपेषण है। हम केवल बैसाखियों पर ही चल पाते हैं। अपने आप हमें कुछ कहने का साहस ही नहीं हो पाता। पुराने शीर्षकों से लेकर प्रतीक तक को अपनी कहानियों के मूल में रखकर हम अपनी विद्वत्ता सिद्ध करते रहते हैं। पुराने खंडहरों पर इमारतें खड़ी करते हैं। मैं भी वही कर रही हूँ, यद्यपि दोनों सावित्रियों का मिलान करें, तो कदाचित् कोई समानता उनमें नहीं मिलेगी। यह नाम की समानता भी संयोग ही है।

पौराणिक सावित्री, जैसाकि आप जानते हैं, बड़ी हठी, निष्ठावान, सूझ-बूझ वाली एक पतिव्रता स्त्री थी; पर मेरी सावित्री मूर्खता की हद तक बौड़म है। नंबर तीन इसलिए कह रही हूँ कि यह वह यम के पीछे चलने वाली हठी और वीर पौराणिक सावित्री नहीं है और न ही यह धर्मवीर भारती की 'सावित्री नंबर दो' जैसी है। इसलिए, अगर इसे नंबर नहीं देती, तो मामला खड़ा हो सकता था। प्रत्यक्ष रूप से उक्त दो सावित्रियों जैसा ही मेरा नाता इस सावित्री से है—बिल्कुल बेलाग, किंतु बित्ताभर सा नज़दीक कि उसके बारे में मन में सवाल उठ सकें।

ये सवाल मुझे बार बार परेशान करते रहे हैं। इस निरंतर परेशानी से निवृत्त होने के लिए ही यह सवालों भरी कहानी कहने बैठी हूँ... शायद आप मेरी इसमें कुछ सहायता कर सकें।

इस सावित्री के बारे में अरसे से सुनती आयी हूँ कि वह बड़ी सीधी है, गऊ है। ज़मीन बोलती है, पर वह नहीं...। दूसरी ओर, इसी तरह के अन्य विचार भी सुनने को मिले हैं... इस सावित्री में अक़्ल नाम की कोई चीज़ नहीं है। वह भोंदू है और उसका पति भी उससे बेहद नाख़ुश है। दोनों किंवदंतियों को मिलाकर नतीजा यह निकलता है कि वह हिंदुस्तान की अस्सी प्रतिशत औरतों जैसी एक आम-औरत है। मूर्ख, अनपढ़ या कमपढ़ गँवारपन की हद तक। ये संबोधन कोई नये नहीं है, जगविदित हैं। आपके आसपास भी ऐसी ठीकठाक दिखने वाली कई सावित्रियाँ होंगी। ऐसी सावित्रियों की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी होती रहें, मसलन बच्चे हों, पति रात को घर लौटता हो..कब... उसे उन घड़ी की सुइयों से कोई मतलब नहीं। आकर रौब झाड़े, अपना पतित्व निभाये, तो यह मूर्ख स्त्री कभी कोई सवाल नहीं पूछेगी कि कौन-सा दफ़्तर सुबह सात बजे से रात ग्यारह बारह बजे तक खुला रहता है। अगर खुला रहता है, तो उसकी अन्यथा पगार भी आती होगी। ऐसी स्त्रियों को कभी-कभार कुछ स्वतंत्र मिज़ाज की पड़ोसिनें कभी आड़े हाथों लें, तो इनका जवाब होता है—"हम आप जैसी छिछोरी स्त्री नहीं कि पति घड़ी भर के लिए देर से घर आये, तो उस की चौक पर इज़्ज़त नीलाम करने लगे, रोज़ी-रोटी के लिए आदमी क्या नहीं करता और क्या-क्या जुगत लगाने पड़ते हैं घर को चलाने के लिए... वह आदमी भी कोई आदमी हुआ, जो छुट्टी होते ही घर आकर बीबी के घुटने से चिपककर बैठ जाए... उनका बाहर मिलना-घुलना दूसरों के साथ हँसना-बोलना भी काम के लिए ज़रूरी होता है...

कहने का तात्पर्य यह कि सावित्री नं. 3 की पर्यायवाची आप के पड़ोस की कोई भी स्त्री हो सकती है। हमारी सावित्री पर ये सारी ख़ूबियाँ ऊपरवाले ने खुले मन से लुटायी हैं।

मैं जानती हूँ कि आप बेचैन हैं कि मैं मुद्दे पर क्यों नहीं आ रही। अभी तक भूमिका बाँधने में लगी हूँ। कारण यह है कि अगर आप सब ये न जानेंगे, तो सावित्री की कहानी—शायद समझ न पाएँगे, क्योंकि हम सदियों से यह सब जानते हुए भी अनपढ़ बने हुए हैं। पैताने के नीचे पिंजर दुबका देने से अपराध कम तो नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता।

चलिए, थोड़ा सावित्री के बारे में भी बतिया लें कि मुझे अब ही उसकी कहानी कहने की क्यों सूझी, जबकि मैं बता चुकी हूँ कि वह मुझे अंदर ही अदंर वर्षों से साल रही है...

कारण यह कि सावित्री नं. 3 के पति हाल ही में दिवंगत हो गये यानी दुनिया छोड़ गये। इस हादसे पर उनके भाई-बहन-अड़ोस-पड़ोस (पिता पहले ही सिधार लिये थे) सभी भौंचक और दुखी हैं...। सभी इस मूक गाय की भीगी आँखों में अपने प्रश्नों के उत्तर ढूँढ रहे हैं.., पर हमारे मन कुछ और है, विधना के कछु और. ..सभी अवश और विवश हैं। माँ तो आज दोबारा विधवा हुई हैं। माँ का दुख तो यों भी निराला और अलग-थलग होता है। बच्चे उसके हाड़मास के लोथड़े जो होते हैं। वह बिचारी किस पर अल्लाये? किस पर दोष फेंके? ऐसी बहू पर; जिसे वह स्वयं पिछले 15 सालों में देख चुकी है, जो गूँगियों को भी मात करती है?

यों भी हिन्दुस्तानी माँ के न कान होते हैं, न आँखें। परायी औरत उसके सामने उसके बेटे के लिए अपशब्द कहने से पहले धरती में समा जाएगी। माँ को सब मालूम होते हुए भी माँ अँधी बनी रहती है।

हिन्दुस्तानी औरत ने जिस तरह इस मर्दानी औलाद को शुरू से बिगाड़ रखा है उसके आँकड़े इकट्ठे किये जायँ, तो आप भी उस लपेट में आने से न बच सकेंगे। इसी अन्यथा लाड़ और मनुहार ने इस मर्दानी औलाद को इतना ग़ैर-ज़िम्मेदार और ख़ुदगर्ज़ बना दिया है कि वह पति-पिता-भाई बनकर उसी को लताड़ता रहता है, फिर भी माताश्री पुत्रों की बदमिज़ाज़ी और अकर्मण्यता को हवा देते नहीं थकतीं।

आप कहेंगे, सीधे शब्दों में क्यों नहीं कहती कि दिवंगत प्रभुदयाल जी ऐसी ही एक बिगड़ी हुई औलाद थे। आप मानिए कि प्रभुदयाल जी के साथ मेरा कुछ ऐसा मान्य रिश्ता है कि मैं उनके बारे में कोई सीधी बात कहने की क्षमता नहीं रखती। हाँ, मैं आप की राय में हस्तक्षेप भी नहीं करूँगी।

प्रभुदयाल जी से मेरी पहली भेंट बहुत देर से हुई, यद्यपि रिश्तेदारी के नाते यह भेंट बहुत पहले हो जानी चहिए थी। बाद में मालूम हुआ कि इस भेंट के न होने के कारण भी प्रभुदयाल जी ही थे।

पहले साक्ष्य पर उनके व्यक्तित्व का जो प्रभाव मुझ पर पड़ा, वह कुछ इस प्रकार था—कोमल प्रकृति का कोमल व्यक्ति। बात करने का ढंग निहायत मुग़लिया-नज़ाकत एवं नफ़ासत से भरा हुआ। उर्दू के शब्द इसलिए प्रयोग कर रही हूँ कि अगर आप भी उन्हें, उनके लंबे-ऊँचे गोरे-चिट्टे तराशे नैन-नक़्श और मुग़लिया दाड़ी के अंदाज़ में देखते, तो यही कहते। जब मैंने सुनी-सुनायी अफ़वाहों के तहत अपने पति से उनकी चरित्रगत जानकारी के लिए सांकेतिक रूप से पूछा, तो वे विशेष नहीं कह पाये या कहना चाहकर बस ग़लत धारणाओं की थोड़ी पुष्टि करते हुए कहा कि कुछ अय्याशी और पीने-पिलाने की तबीयत है उनकी। इस धारणा की पुष्टि भी उस प्रथम मुलाकात में हो गयी थी। दूसरी धारणा की पुष्टि यदा-कदा इधर-उधर से होती रही थी, पर प्रामाणिक रूप में ऐसा कुछ हाथ नहीं आया।

यों प्रमाणिकता की स्थितियाँ बनते-बनते कई बार रह गईं और अंत तक भ्रमपूर्ण ही बनी रहीं। जब समय आया कि उन्हें कुछ निकट होकर जाँचते, वे दुनियाँ से ही चल बसे।

इस हादसे की चोट से हम सभी अभी तक उबर नहीं पाये हैं।

यह तो मुझे भी उनके जीवित रहते ही पता चल गया था कि प्रभुदयाल जी नीयत के साफ़ हैं। बेईमानी और लालच उन्हें नहीं व्यापता। प्रमाण यह कि पिता की मृत्यु के बाद बड़े होने के नाते जो सारी ज़मीन-जायदाद उनके नाम थी, वह उन्होंने बिना किसी के कहे सब भाइयों में बराबर बाँट दी थी। इस से इतर भी जो कुछ उनके दफ़्तर से पता चला, उस सब से भी उन की इस सदायशता, कोमल स्वभाव और ईमानदारी की ही पुष्टि हुई। निष्कर्ष यह कि व्यक्तिगत रूप में प्रभुदयाल जी में कोई खोट नहीं था। उनकी नौकरी भी ओहदेवाली थी अच्छा पैसा कमा लेते थे किंतु, सावित्री और उसके तीन बच्चों के तन पर कभी कोई ठीक कपड़ा नहीं देखा। जब भी वे परिवार समेत घर आते तो उनके साथ होता एक टूटा-फूटा अटैचीकेस और जंग खाये कनस्तर, जिनमें रास्ते में खाने-पीने की छोटी-मोटी चीज़ें होतीं। एक केन की टोकरी, जिसका कभी हैंडल ग़ायब, तो कभी उसकी बड़ी-बड़ी सूराख़ें सब का मुँह ताक रही होतीं। किसी को मालूम नहीं था कि उनका सारा पैसा कहाँ जाता है। सावित्री से भी कभी दबे स्वर में पूछा गया, तो उत्तर यही था कि मेरे हाथ में तो पैसा देते नहीं।

यह आसपास के लोग ही रहे, जो कभी-कभी उसे समझाने या सचेत करने की कोशिश करते रहते कि दफ़्तर का समय नौ से पाँच का होता है... उन जैसे ओहदे वाले आदमी को लगभग इतनी तनख़्वाह तो मिलनी ही चाहिए... बदले में सावित्री के उत्तर नितांत नादानी ओर नासमझी वाले होते। उसके बाद अरसे तक यह विषय बंद हो जाता। किसी का साहस नहीं होता था कि वे प्रभुदयाल जी से कोई सवाल करे। उनका सभ्य-सौम्य व्यवहार किसी को अंदर नहीं घुसने देता और माँ अपने बिगड़ैल पुत्र को ढँकने का ही काम करती।

कुछ वर्ष पश्चात् हम एक बार प्रभुदयाल जी के घर गये, बंबई की एक अनाम बस्ती में, जहाँ तक पहुँचने वाली गलियों से सारे भारत की दीनता मात खा बैठती है। हमारा इतने यत्न से वहाँ पहुँच जाना प्रभुदयाल जी को खल गया था। वे सिटपिटाये और खिसियाये हुए औपचारिकता निभा रहे थे। बार-बार माथे पर झलक आते स्वेद कण उन्हें परेशान कर रहे थे। वह इस उझक में हमसे चाय-पानी पूछने की औपचारिकता भी भूल गये थे।

एक कमरा थोड़ा बड़ा, पर गंदा नहीं कहेंगे। अधिक नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ा व्यवस्थित ज़रूर। बिस्तर एक ही, मैले साड़ी सुधरी। सावित्री डालते।

तो पिछले ढाई वर्षों से बच्चों समेत गाँव में अपने मायके में रह रही थी। प्रभुदयाल नामक व्यक्ति, जिसकी दाड़ी से लेकर पूरा सब कुछ बेतरतीब और बिखरा हुआ था, उससे ऐसा सुचारुता की अपेक्षा हमें नहीं थी।

प्रभुदयाल हमारे आने का मंतव्य जानते थे, इसीलिए अस्त-व्यस्त थे। उन्होंने पत्नी को मायके यह कहकर नहीं छोड़ा था कि छोड़ रहे हैं या उसे चाहते नहीं हैं। पूछने पर यह बताया गया कि उसके माँ-बाप को उसकी ज़रूरत थी। बूढ़े-माँ-बाप के प्रति भी तो बेटे-बेटियों का कोई कर्तव्य होता है! बस व्यस्तता रहते लेने नहीं जा पाया। ऐसी सौम्यता का कोई क्या प्रतिरोध करे!

समझने की बात थी कि पिछले ढाई-तीन वर्ष में यह व्यस्तता एक दिन भी कम नहीं हुई। सावित्री के भाई-भाभी ने भी कई संदेश भेजे, यहाँ तक कि एक बार वे स्वयं भी आये, किंतु वही सदायशता, सौम्यता और अभेद्य कमनीयता। न कोई कटोक्ति, न मनमुटाव। मैं बस अगले माह आने ही वाला था। एक बार सावित्री के भाई के कुछ शब्दों की उकसाहट में कह गये-"भई मेरे विरुद्ध कोई मुक़दमा करना हो, तो कर लो।

यही बात उन्होंने उस दिन हमारे सामने भी दुहरायी और यह भी जोड़ा कि उनकी ग़लत-सलत चिट्ठियाँ आती रही हैं, जिससे उनका मन खट्टा गया है। प्रभुदयाल जी ने अपनी मासूमियत बनाये रखने के लिए यह भी कहा कि क्या मैं सो सका हूं इतने वर्ष अपने बीवी बच्चों के बग़ैर।

इसके बाद हमारे पास उनसे पूछने के लिए कोई दूसरा सवाल नहीं रह गया था।

मेरे मन में बहुत-सी बातें उठीं। जी चाहता था कि कहूँ गाय जैसी सीधी पत्नी मिली है, फिर क्यों उसे इस तरह सता रहे हैं। बच्चों की पढ़ाई भी गाँव की मिट्टी में मिट्टी हो गयी है। बहुत बार मन हुआ कि पकड़कर झकझोर दूँ और पूछूँ कि सावित्री अगर आप को पसंद नहीं थी, तो क्यों बीस-बाइस वर्ष यूँ घिसटकर समय व्यतीत किया? पर, उनके इस बेबस से जवाब ने हमें पस्त कर दिया था। वे सो नहीं सके हैं इतने वर्ष! हमें यह स्पष्ट हो गया था कि इस मामले की तह में कहीं कोई बहुत बड़ी-गड़बड़ है और उस गहराई तक पहुँचने के लिए प्रभुदयाल जी का संतुलित व्यवहार और ओढ़ी हुई मासूमियत हमें भारी पड़ती रहेगी। यह भी स्पष्ट हो गया था कि वे चाहे कितना ही सौहार्द से पगा नपा-तुला व्यवहार करें, पर उस रात वे हमें वहाँ से खदेड़ने में पूरी तरह सफल ही रहे थे।

आने वाली रात उन्हें भयभीत किये थी। रात में एक ही कमरे में सोने से कई अर्थों के खुलने का हौआ उन्हें विचलित किये था, क्योंकि अँधेरा कई बार ओढ़ी हुई औपचारिकताओं को आप ही आप निगल लेता है। उस रात अगर उन्होंने हमें ठहरने दिया होता तो शायद हम सावित्री नं. 3 के पति की कुछ ख़ूबियाँ तो ज़रूर खँगोल

उन्हीं दिनों पारिवारिक खेमों में सावित्री को सताने, दूसरी शादी कर लेने या किसी को घर में डाल लेने जैसी गरम अफ़वाहें फैली हुई थीं, दूसरी ओर सावित्री के भाइयों द्वारा सावित्री को भड़काये जाने का भी आरोप था। विभिन्न रूपों में ये ख़बरें बिगड़-बिगड़ कर हमारे कानों तक पहुँची थीं। इसी विवशता के हित ही हम उनके पास गये थे।

अंततः हमारे वहाँ जाने का परिणाम यह निकला कि कोई आठ-महीने बाद एक दिन वे सावित्री और बच्चों को वापिस लिवा ले गये।

इस घटना ने एकबारगी चारों ओर उड़ी हुई ख़बरों को शांत कर दिया। किसी की समझ में नहीं आया कि यह सब कैसे हुआ। अफ़वाहें उड़ाने वाले रिश्तेदारों के चेहरे फीके पड़ गये। कुछ को तो शायद यह भी अफ़सोस था कि सावित्री जैसी औरत अपने घर में फिर से कैसे बस गयी?

अफ़वाहों की ज़हरीली हवाओं में यह भी शामिल था कि सावित्री बदचलन है, प्रभुदयाल जी उसे घर में बंद करके ऑफ़िस जाते हैं। इस बेसिर पैर की ख़बर पर कोई कैसे विश्वास करता, वह भी सावित्री को जानते हुए? किंतु, बाद में कमरे में बंद करने वाली बात सच्ची साबित हुई। प्रभुदयाल जी सावित्री को कमरे में इसलिए बंद रखते थे कि मुहल्ले की चालाक अनपढ़ औरतें सावित्री को बरगला सकती थीं। उस बरगलाने में विशेष भय था-सावित्री को उसके पत्नीत्व के अधिकारों के प्रति सचेत करना। प्रभुदयाल जी नहीं चाहते थे कि मुहल्ले की वाचाल औरतें अपनी तिकड़म बाज़ियाँ सावित्री को सिखाएँ और उनकी तरह सावित्री भी अपने पति से उसके वक़्त और पैसे का हिसाब पूछे।

खोज करने पर पता चला कि इस ताले संबंधी बात को भी सावित्री ने बड़ी सहजता से अपनी भलाई से ही जोड़ लिया था। प्रभुदयाल जी ने यह कह कर कि आजकल शहर में बड़े ठग घूम रहे हैं, उसे उसके भोलेपन और बौड़मपन में और विश्वस्त कर दिया था।

यों ठग तो सावित्री के घर में ही मौजूद था।

ऐसे ठग से हर घर में एक न एक औरत ठगी-ठगायी संतुष्ट बैठी है।

सावित्री के वापस आने से सावित्री और प्रभुदयाल का जीवन एक सतह पर आ गया था। प्रभुदयाल जी अब आसपास से उठती आँखों को घूरकर देख सकते थे। उनकी सारी बदनामियाँ अपने आप नेकनामियों में बदल गयी थीं।

यों, अब भी उनका घर आने-जाने का ढर्रा वही था। पहले जैसा ही सामान छोटी-छोटी पुड़ियों में बँधकर आता था। घर में बैठने के लिए नाममात्र को भी कुर्सी या मेज़ नहीं थे।

सावित्री ने बताया कि वे हर बार कहते कि कुछ फ़र्नीचर बढ़िया मिल रहा है। किसी दोस्त का ट्राँसफ़र हुआ है और वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधे दामों में सामान दे रहा है। अगर सावित्री के पास कुछ पैसे हों, तो बात बन सकती है। बिचारी बौड़म सावित्री इधर-उधर से मिला-मिलाया पैसा उनके हाथ पर रख देती। अगर कुछ न होता, तो वे यहाँ तक भी उसे दबाने में नहीं झिझकते कि वह बची-खुची कोई चूड़ी या अँगूठी उन्हें थमा देती। फ़र्नीचर न आने पर दो-चार बार सावित्री पूछताछ करती, उल्टा-सीधा जवाब पाकर धीरे-धीरे डरकर चुप हो जाती।

प्रभुदयाल जी की सामाजिक सदायशता यह रही कि जो कुछ भी किया एक ठंडी नकारात्मकता से किया। कभी निर्दयी या कठोर नहीं हुए। कभी सावित्री पर हाथ नहीं उठाया। वे ऐसे धीरे-धीरे बोलते थे, जैसे कोई ज़रूरतमंद प्रार्थी हो। ऐसे पति पर सावित्री कभी कैसे बिगड़ सकती थी!

कहानी का अगला मोड़ प्रभुदयाल जी के अचानक देहावसान से प्रारंभ होता है। सावित्री चाहे कितनी भी प्रताड़ित, उपेक्षित, अवश थी, किंतु पति की मृत्यु का सदमा उसे बहुत गहराई तक मथ गया। वह कई महीनों तक बिस्तर से लगी रही, शून्य में ताकती—निर्लिप्त-सी, अवसन्न। बच्चों के प्रति उसका मोह नितांत कम हो गया। बड़ी लड़की ने उसे सँभालने में कोई कसर नहीं छोड़ी। बच्चों को सँभालना उसे था, पर उल्टा बच्चे उसे सँभाल रहे थे।

रिश्तेदारों ने प्यार से, डाँट से, दार्शनिक हवाले दे-देकर उसको बिस्तर से उठाया। वह चलती-फिरती फुसफुसाती रहती, मैंने तो कभी कुछ नहीं कहा फिर क्यों नाराज़ होकर चले गये!

देखने वाले दाँतों तले अँगुली दबाते। यह वही सावित्री है, जिसे प्रभुदयाल ने सुख के नाम पर कुछ नहीं दिया—सिवाय दो बेटियों के...

इतर सुख की कल्पना से ही उसकी पहचान ही नहीं हुई थी। बस दो सुंदर तराशी हुई संगमरमर की मूर्तियाँ, जिन्हें अपलक देखने में आदमी आघाता नहीं था। उसी से वह भरी-पूरी थी। वे तो सावित्री की बेटियां ही नहीं लगती थीं। गोरा-रंग सौंदर्य का मानदंड चाहे न हो, पर उसके आकर्षण से तो देवता भी मात खा जाते हैं। सावित्री के अपने नैन-नक़्श की तराश तो किसी संगतराश की मूर्ति जैसी थी, किंतु रंग अमावस की स्याह रात जैसा था। उधर प्रभुदयाल जी साक्षात कामदेव की प्रतिमूर्ति थे। गौरवर्ण, तराशी हुई लंबी सरू के बूटे-सी देह, मोटी-मोटी नशीली आँखें, सुतवाँ नाक और होठों और चेहरे पर एक अद्‌भुत-सी मासूम स्मिति। सावित्री और प्रभुदयाल जी की इस बेजोड़ जोड़ी का भी कहीं इन सारी विसंगतियों में हाथ रहा होगा, इसलिए सावित्री के मन-मंदिर में उस मुग्ध मूरत का बसे रहना कोई अचंभा नहीं था।

बहुत दिनों बाद सावित्री सँभली थी। अभी तक वह कभी-कभी प्रभुदयाल जी से मिलने अकेली श्मशान दौड़ जाती थी...चोरी छिपे। लोग समझते थे पगला गयी है। कई बार उसे बंद करके भी रखा गया।

बहुत देर बाद वह समझी थी कि इस शरीर और जन्म की यही नियति है, इस नियति के समक्ष सब अवश हैं।

धीरे-धीरे सावित्री बच्चों में लौट आयी थी। उसकी मदद को लोग दौड़-दौड़कर आते थे। दूसरी ओर दफ़्तर में भी प्रभुदयाल जी के प्रति सबका व्यवहार बड़ा सौहार्दपूर्ण एवं सदायशता से भरा था। उसी के तहत और क़ानूनन भी प्रभुदयाल जी की मृत्यु के दो-तीन माह बाद ही उनकी बड़ी लड़की, जो महज़ दसवीं में पढ़ती थी—को दफ़्तर में नौकरी दे दी गयी। दूसरी बेटी की पढ़ाई निःशुल्क करवा दी गयी। प्रभुदयाल जी को मिला हुआ क्वार्टर भी सावित्री के पास रहने दिया गया। इन सब चीज़ों ने सावित्री के जीवन में एक व्यवस्था ला दी थी। सावित्री धीरे-धीरे अपने भौंदूपन और मूर्खपन के खोल से बाहर निकल रही थी। अब वह बच्चों के देर से घर आने पर उन्हें डाँट देती थी और ज़रूरत पड़ती तो कभी-कभार एकाध धर भी देती थी। सभी इस बात से संतुष्ट थे कि सावित्री ने अपने आपको एवं बच्चों को सँभाल लिया है।

तभी एक ऐसी घटना घटी, जिसने सावित्री को एक बार फिर अस्त-व्यस्त कर दिया।

एक दिन एक अपूर्व सुंदरी श्वेत साड़ी पहने सावित्री के द्वार पर आकर खड़ी हो गयी। उसने अपना परिचय प्रभुदयाल जी की एक मित्र के रूप में दिया। काफ़ी देर तक सावित्री से बतियाती रही। उनके बीच क्या बात हुई, सावित्री इस पर परदा डालना सीख गयी थी।

वाक्‌दान और जलपान के बाद उस स्त्री ने सावित्री से कहा—"मैं नहीं जानती थी कि तुम प्रभुदयाल से इतना प्यार करती हो।"

सावित्री भौंचक उसका मुँह ताकने लगी। उसके लिए यह वाक्य अटपटा ही नहीं, अचंभे वाला भी था। हिंदुस्तानी औरत अपने पति से प्यार नहीं करेगी, तो क्या करेगी? फिर उन जैसा साधुपति तो कई जन्मों की तपस्या के फल से मिलता है।

कमला नाम की वह स्त्री खिलखिलाकर हँस पड़ी। सावित्री विमूढ़-सी उसे ताक रही थी। इसमें हँसने की क्या बात हो सकती है, वह सोच रही थी।

कमला ने गंभीर होकर कहा—"सावित्री तुम बहुत भोली हो" और अपने हाथों के काग़ज़ों को ज़रा ज़ोर से हथेली में भींच लिया।

सावित्री तुम्हारा पति प्रभुदयाल उम्र भर मेरा रहा, अब मरने के बाद तुम्हारा कैसे हो गया? उम्र भर मैंने उसका समय और कमाई खायी है। अपना घर और घर की हर चीज़ बनायी है। साज-शृंगार के असंख्य सामान आज मेरे पास हैं। अब उसकी जायदाद पर भी मेरा हक़ है।

सावित्री चुपचाप सुनती रही। उसकी आँखों में आँसू नहीं, एक सन्नाटा था।

सावित्री एकाएक पूछ उठी—"तुम उन्हें क्या देती थीं?"

कमला ने अपनी विद्रूप हँसी दबाते हुए कहा—"मैं उन्हें शराब और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना शरीर देती थी।"

यहाँ मैं आपकी जानकारी के लिए जोड़ना चाहती हूँ कि मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार प्रभुदयाल जी की मृत्यु शराब और यौन-संबंधों की पेचीदगियों के कारण ही हुई थी। उनके फेंफड़े पूरी तरह गल गये थे।

सावित्री विमूढ़-सी कमला को बडी सूक्ष्म और शून्य-सी दृष्टि से नखशिख ताकने लगी, अपलक...

कमला हैरान थी, यह कैसी औरत है कि इतना कुछ जानकर भी उसे कुछ बुरा-भला नहीं कह रही हैं। उसने देखा कि सावित्री अपने पल्लू से अपनी भरी-भरी आँखों को पोंछ रही थी और दूसरे ही क्षण वह कमला के पैरों में झुक गयी।

कमला हतप्रभ... "यह क्या कर रही हो सावित्री?" नहीं, आज मुझे तुम्हारे चरण छूकर मुक्ति मिल गयी है। उम्र भर में अपने आप से पूछती रही कि क्या है, जो उन्हें पूरा करता है। कौन है, जिसके सामने वे खुलकर बात करते हैं। कौन है, जो उन्हें पूरी तरह पा सकता होगा। आज तुम्हें पाकर मैं धन्य हूँ। आज तुमने मुझे सब बता दिया है", सावित्री के चेहरे पर एक आलौकिक परितृप्ति थी।

कमला उठ खड़ी हुई। वह स्वयं को ढूँढ रही थी। दरवाज़े से बाहर निकलते ही उसने वे सारे कागज चिंदी-चिंदी करके गली में फेंक दिये।

अब आप ही बताइए, सावित्री को लेकर आपका मन उद्वेलित नहीं होता? आपकी इस बारे में क्या राय है, लिखेंगे न आप मुझे?

246, Stratford Dr. # 246
Broadview Hts, OH 44147 U.S.A.

वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010

वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010 के लिए मौलिक, अप्रकाशित कहानियाँ आमंत्रित हैं। पुरस्कार राशि रु0 11,000.00 है, जो कमलेश्वर जी के परिवार ने इस प्रयोजन हेतु 'वर्तमान साहित्य' को प्रदान की है।

कहानियाँ साफ़ टाइप की हुई हों तथा तीन प्रतियों में हों। कहानी की हर प्रति पर लेखक का नाम व पता अवश्य हो। कहानी भेजने की अंतिम तिथि 30 सितंबर, 2010 है। लिफाफे पर **'वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार'** अवश्य लिखें।

कहानियों का चयन एक निर्णायक-मंडल द्वारा किया जायेगा। चयनित कहानी पर पुरस्कार जनवरी, 2011 में प्रदान किया जाएगा।

कहानियाँ संपादक, वर्तमान साहित्य को निम्नलिखित पते पर भेजें।

संपादक

वर्तमान साहित्य

28-एम0आई0जी0, अवन्तिका-1, रामघाट रोड, अलीगढ़

ई-मेल से भेजी कहानी प्रतियोगिता में स्वीकार नहीं की जायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविराज

सूरज बड़त्या

तुम्हारे और मेरे दरम्यान
क्या कोई रिश्ता है कविराज ?
तुम्हारी लेखनी
कभी कांपी क्यों नहीं कविराज
मेरी दशा देख /
उसका दिल कभी पसीजा क्यों नहीं ?
तुम्हारी लेखनी
गाती रही हमेशा
कालिदास और जयदेव की दासी होकर
सामंती शौर्यगान
खेतों की सोंधी-सोंधी महक पर
तुमने कालिदास को ठिठका दिया था
राधा के नवयौवन पर
जयदेव को मुग्धा दिया था
खेतों में काम करते
दलितों के पसीने की महक पर
तुम क्यों नहीं ठसके कविराज ?
राधा के चेहरे की पीड़ा
तुम्हें क्यों नहीं दिखी कविराज ?

तुम लगातार लिखते रहे...
लेखनी
तुम्हारी दासी बनी रही
तुमने वाल्मीकि को छलकर
शंबुक के सपनों को हर लिया था
सीता की इच्छाओं को
तुमने ही तो डस लिया था
क्या तुम को मालूम था कविराज
कि
दास भी विद्रोह करते हैं
क्या तुम्हें कभी स्पार्टाकस याद नहीं आया ?

युग पर युग बीतते रहे
और तुम कविराज
जबरदस्ती बनाई गई
अपनी दासी लेखनी से
सवर्णों, सामंतों और राजाओं का
यशोगाान कराते रहे।

कभी चंदबरदाई बनकर तुमने
पृथ्वीराज की स्तुति की
तो कभी तुलसीदास बनकर
सवर्ण रामराज्य का यशोगान गाते रहे

क्या तुम्हें याद है कविराज
वेदों और पुराणों में
आततायी संस्कृति को तुमने ही रचा थां
दलितों, स्त्रियों के लिए मनु की संहिता
तुमने ही तो बनाई थी
हवन कुण्ड में जीव बलि से लेकर
दलित बलि का यशोगान
तुमने ही तो गाया था कविराज

पर कविराज
तुम केवल कवि नहीं थे
तुम्हारी एक तय जाति थी
तुम ब्राह्मण थे
तुम क्षत्रिय थे
तुम वैश्य थे
असल में तो तुम दमनकारी थे कविराज
तुम
दलित क्यों नहीं बन पाए कविराज ?

क्या तुमने कभी सोचा है कविराज
समय करवट लेता है
और इतिहास भी बदलता है
क्या तुम्हें याद है कविराज
तुम्हारी दासी लेखनी ने भी
मुक्ति चाही थी
उन्मुक्त हो
बयान देना चाहा था
मीरा बनकर उसने
अपना शोकगीत गाया था
और जब तुम फिर भी न पसीजे
तब वह जुलाहा कबीर बनकर
तुम्हारी गर्दन पर जा चढ़ी थी
और
सीना ताने निकल आयी थी
निर्गुणिया बनकर
बेभाव पड़े थे थप्पड़
तुम्हारी संस्कृति पर।

बहुत हो चुका
अब संभल जाओ कविराज
बदलकर स्वयं को
मुक्त कर दो लेखनी
गाने दो उसे
ताज़ा हवा में
आज़ादी का गान
लेने दो सपने
स्वच्छंद गगन में उड़ने के
उसे रचने दो इतिहास कविराज
गाड़ने दो इतिहास।

सी-97, रामा पार्क उत्तम नगर
नई दिल्ली-110059

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान का दिल्ली-दर्शन

राकेश भारतीय

हे भगवान
तुम्हारे जैसे सर्वशक्तिमान को
मंदिर में बंद देखकर
मुझे अच्छा नहीं लगता
आओ, बाहर निकलो यहाँ से
तुम्हें घुमा लायें शहर दिल्ली
जिस बाकी दुनिया की तरह ही
तुम बना कर भूल चुके हो

चलो, इस ब्लूलाइन में चढ़ते हैं
और पहले जमनापार निकलते हैं
अरे ! अरे ! सँभलकर भगवान
तुम तो अजर और अमर ठहरे
पर तुम्हें सँभालने के चक्कर में
मैं न टपक जाऊँ बिना बात के
खड़े हो जाओ ये डण्डा पकड़ के
और कोई पंगा मत लेना कन्डक्टर से

हाँ तो भगवान, ये है यमुना
वही नदी जिसके किनारे बाँसुरी बजाते
तुम लाइन मारते थे गोपियों पर
अरे ! उत्तरीय से नाक तोप कर
सिर क्यों झटके जा रहे हो
भगवान होकर भी इतने भुलक्कड़ हो
अपनी यमुना को ही भूल गये ?
इसका रूप-रंग बहुत बिगड़ गया
पर है ये तुम्हारी प्यारी यमुना ही
मुझे एक बात समझ में नहीं आयी
मंदिर तो तुम्हारा एयर कंडीशंड नहीं था
पर वहाँ तुम्हें कोई पसीना नहीं आया
और यहाँ पसीने से तरबतर हो रहे हो
चलो, तुम्हें ठण्डा कोक पिलाते हैं
फिर साउथ दिल्ली की सैर कराते हैं
पी जाओ, आजकल यही सब चलता है

तुम्हारी छाछ की फैक्टरी को तो
कबका बंद करवा चुका है कोक

देखो, ये है चमचमाती साउथ दिल्ली
यहाँ रहते हैं आज के राजा लोग
पर इन अट्टालिकाओं को दूर से ही देखो
एक तो तुम्हारी बेशभूषा बड़ी अटपटी है
और ऊपर से संस्कृत में बोल पड़े तो
तुम्हें पक्का आतंकवादी समझ कर
कुत्ता छोड़ देगा राजा का दरबान
ये जगह ही ऐसी है, भगवान

अभी ही हँफनी चढ़ गयी तुम्हें ?
अभी तो शुरूआत है दिल्ली-दर्शन की
कोई बात नहीं, थक गये हो तो
चलो मेरे घर, चाय पिलाता हूँ तुम्हें
पर फिर ब्लूलाइन में ही चलना होगा
बेकार तो हूँ ही और आटो में
बीस किलोमीटर चलने का मतलब है
अधफटी जेब को पूरा ही फाड़ देना

चलो आ गया घर, पर तुम
जरा पीछे ही रहना क्योंकि शाम तक
पारा पूरा हाई हो जाता है बीवी का
बिजली वाली घंटी काम नहीं कर रही
इसलिए आवाज़ लगाता हूँ जोर से
"अरे भागवान ! आ गया हूँ मैं
खोलो जरा दरवाजा और देखो
आया है कौन साथ मेरे आज"

"आ गये हो तो बड़ा अहसान है
आटा ख़त्म है और होमवर्क में
मुन्ने को जन्माष्टमी पर लिखवाना है
जनाब आ रहे हैं आठ बजे
साथ में एक नमूने को चिपकाये हुए"
"अरे भागवान ! ये तो भग..."
"चुप रहो! मुझे कुछ नहीं सुनना
आटा लाकर ही घुसो घर में"

अरे भगवान ! आप कहाँ जा रहे हैं
"हे भगवान ! हे भगवान ! हे भगवान!"
अरे रुकिये तो, ये तो रोज ही
ऐसे कड़कड़ाती-बड़बड़ाती रहती है
"हे भगवान! हे भगवान ! हे भगवान !"
लो, भगवान को घुमाने चला था दिल्ली
और वे वापस मंदिर भाग रहे हैं
"हे भगवान ! हे भगवान !" जपते हुए

एफ-117, प्रगति विहार हॉस्टल
लोदी रोड, नई दिल्ली-3

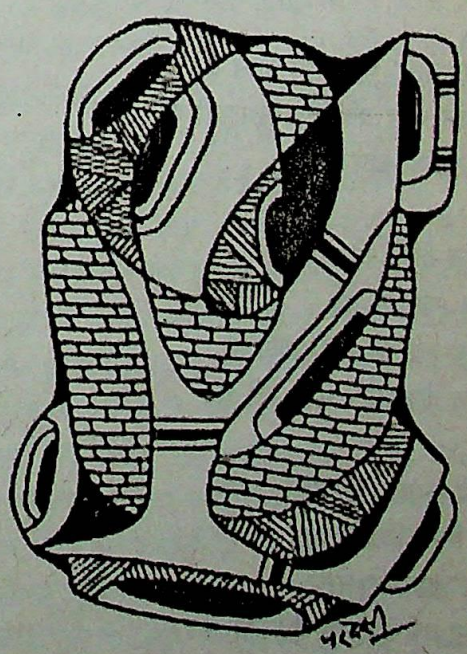

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

राजकिशोर राजन

जीत

वह, मई महीने का आखिरी शुक्रवार था
बस में बैठा खिड़की से बाहर
धूप-हवा को एक साथ खुशियाँ मनाते देख
तुम्हारी याद आ गई

एक दिन, इसी तरह के मौसम में
साथ-साथ टहलते तुमने कह दिया था
आज आखिरी दिन है-तुम्हारे साथ
फिर हम कभी नहीं मिल पाएँगे
न जाने कब का घाव उस क्षण
तुम्हारे चेहरे पर ताजा हो गया था

मैं जिसे समझ रहा था
महीनों-बरसों से
उसे समझ रही थीं तुम भी
कि मैं नहीं देना चाहता इस जन्म में
तुम्हारे साथ के रिश्ते को कोई नाम

तुम 'नाम' पर पहँच जाने को
अपने प्यार की जीत समझती थी
मैं उसको अपनी हार

बहुत दिनों के बाद
उस शुक्रवार को
धूप-हवा के साथ खुश हो
जीत का जश्न मना रही थी

मुझे लगा ऐसी जीत
न मिले किसी को
कि खोने के लिए
कुछ बचे ही नहीं ज़िंदगी में।

नीलकंठ

एक दिन चाची ने
ठूँठ आम के पेड़ के नीचे
धत्... कहकर उड़ाया था
एक चिड़िया को
कौन है यह चिड़िया
और क्यों उड़ा रही हो तुम
पूछा था मैंने

चाची ने समझाया था
कि नीलकंठ का अकेला दिखना
अपसगुन है
करमजला, बोरा भर दुःख
रखता है अपने साथ
बहुत प्यार था चाची को मुझसे
सो चाची के साथ चलते
कोसता रहा उस नीलकंठ को

महीनों बीमार रहने के बाद
एक दिन चल बसी थीं चाची

जब भी याद आती है चाची
याद आता वह नीलकंठ भी
न जाने क्यों ?

चुपचाप

सभी व्यस्त थे वहाँ
बोलने-बतियाने, सुनने-सुनाने में
एकमात्र वही था—चुपचाप
उसके पास
नहीं था कुछ कहने को
कुछ सुनने को
उसकी सहजता असहज कर रही थी
बढ़ गया आगे
थर्र से काँप उठी थी जो देह

चुपचाप, चिंतामग्न आदमी
परेशानी में डालता है हमेशा
मुझे लगता है
जब दुनिया के साथ
नींद में जाग रहा और भाग रहा हूँ मैं
ऐसे में, ये लोग
माथे पर रख हाथ, सोचते होंगे
हे भगवान !
यह क्या हो रहा है दुनिया में!

बसों, ट्रेनों या किसी स्टेशन पर
अब ऐसे लोगों को देख
भीड़ की ओर चुपचाप
बढ़ जाता हूँ मैं
यह बात अलग है कि
पीठ पीछे रहती है चुप्पी।

59-एल0आई0सी0 कॉलोनी
कंकड़बाग, पटना-800020

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमंडलीकरण और राष्ट्रभाषा हिन्दी

रहीम मियाँ

भूमंडलीकरण क्या है—यह सवाल अपने आप में एक पेचीदा जिज्ञासा है, जिसकी तृप्ति किसी भी उत्तर के द्वारा नहीं हो सकती। यूँ कहें, तो सारे राष्ट्रों के एकीकरण के लिए जिस प्रक्रिया को साकार करने की कोशिश चल रही है, उसे ही भूमंडलीकरण कहा जा रहा है। इसका साधारण अर्थ है कि विश्व के सारे देश एक भूमंडल पर एकीकृत होकर एकरूपता में ढल जाएँ। भूमंडलीकरण के पीछे यह दावा किया जाता है कि इससे विश्व का कोई भी देश ग़रीब न रहेगा, अज्ञान में डूबा न रहेगा अर्थात भूमंडलीकरण पूरे विश्व को एक भूमंडलीय गाँव बनाने की कोशिश है, जहाँ हर देश का बाज़ार अपना माल लेकर विश्व-बाज़ार में खड़ा हो सकता है। एक देश के संसाधन, क्रियाकलाप, ज्ञान-विज्ञान अपने देश की सीमा को लाँघकर विश्व-बाज़ार की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।

भूमंडलीकरण के पक्ष में जिस उपर्युक्त उद्देश्य की कल्पना की गयी थी, हक़ीक़त इसके ठीक विपरीत हुई। आज का भूमंडलीकरण केवल पूँजी का भूमंडलीकरण है। यह एक नव-साम्राज्यवादी ताक़त है, जो अपनी पूँजी के बल पर हमें अपना दास बना लेना चाहती है। यह तो वह बिजली है, जो हमारे घर को रोशन करने के साथ ही आग भी लगा सकती है। इस भूमंडलीकरण के प्रसार में विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष एवं गेट समझौते ने अपनी अहम भूमिका निभायी है।

भूमंडलीकरण ने जिस समाज का निर्माण किया, वह औद्योगिक पूँजीवादी समाज है, जहाँ मुनाफ़ा ही सब कुछ है। ऐसे समाज में हमारे मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों की कहीं कोई क़द्र नहीं है। इसके कारण समाज में उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हुआ है, जहाँ उपभोग करना ही जीवन का प्रमुख लक्ष्य बन गया है। समाज में नये उपभोक्तावर्ग का जन्म हुआ है, जो कितना कुछ पाकर एवं उपभोग कर भी संतुष्ट नहीं है। भूमंडलीकरण के नाम पर उदारवादी एवं निजीकरण की नीति अपनायी गयी, जिसने हमारे भारतीय उद्योगों को नष्ट कर दिया है। सरकार आज कोई भी नीति अपनाती है, तो उसके पीछे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित को ध्यान में रखा जाता है।

भूमंडलीकरण ने जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है। ऐसे में भाषा का प्रश्न इससे अछूता कैसे रह सकता है? आज जब भूमंडलीकरण एक नव-साम्राज्यवादी ताक़त के रूप में उभरकर आया है, तो उसका पहला आक्रमण भाषा को ही झेलना पड़ा है। हम जितना ही भूमंडलीकृत होते जा रहे हैं, अपनी भाषा से उतना ही पल्लू झाड़ते नज़र आ रहे हैं। हम जानते हैं कि भाषा किसी भी सभ्यता एवं संस्कृति का मूल है। किसी जाति की भाषा का मिटना, उसकी सभ्यता एवं संस्कृति का मिटना है। भाषा पर हमला कर नव-साम्राज्यवादी ताक़तें हमारी संस्कृति पर हमला कर रही हैं। आज अंग्रेज़ी को ग्लोबल लैंग्वेज के रूप में जाना जाता है। नौबत यहाँ तक आ गयी है कि विश्व-बाज़ार में अपने पैर फैलाने के लिए हमें अंग्रेज़ी सीखना ज़रूरी हो गया है। आज हिन्दी की दशा शोचनीय है, तो इसका एकमात्र कारण यह है कि हमने अपनी भाषा के साथ अपमान का व्यवहार किया है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हिन्दी राष्ट्र भाषा होने के बावजूद अपने ही देश में अवांछित है। आज जहाँ विश्व भूमंडलीकृत हो रहा है, वहाँ हिन्दी भाषा हिन्दी प्रदेश का पर्याय बनकर रह गयी है। आज भी हिन्दुस्तान में अधिकांश राज्यों के लोगों को हिन्दी ज़बान नहीं आती है एवं अहिन्दी प्रदेश के लोग तो हिन्दी बोलने से कतराते हैं। हिन्दी की दुर्दशा के पीछे हिन्दुस्तान का शासक-वर्ग ज़िम्मेदार है। शासक-वर्ग स्वयं हिन्दी के साथ राजनीतिक खेल खेल रहा है। संविधान लागू होते समय 15 वर्षों तक हिन्दी के साथ अंग्रेज़ी लादकर और फिर उसकी सीमा बढ़ाकर हिन्दी को अपाहिज़ कर दिया गया। आज भी हिन्दुस्तान की राजभाषा अकेली हिन्दी न होकर अंग्रेज़ी भी है। यही नहीं, आज हिन्दुस्तान के कई प्रांतों की राजभाषा हिन्दी न होकर अंग्रेज़ी है, इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है?

एक बार की बात है, जब श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित भारत की राजदूत होकर मास्को गयीं तथा अपना परिचय-पत्र रूस के राष्ट्राध्यक्ष को पेश किया तब रूस के राष्ट्राध्यक्ष ने राजदूत को वापस करते हुए कहा कि आपका परिचय-पत्र न तो आपकी भाषा में है और न हमारी। यह परिचय-पत्र अंग्रेज़ी में तैयार किया गया था। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने तत्काल भारत के प्रधानमंत्री (नेहरू जी) से संपर्क किया और उसी समय उसका हिन्दी रूपांतर कर भिजवाने को कहा। कहने का अर्थ है कि हमारा शासक-वर्ग ही हिन्दी का प्रयोग करने से हिचकिचाता है। उन्हें हिन्दी भाषा का प्रयोग करना अपने को नीचा दिखाना लगता है। यह शासक-वर्ग प्रेमचंद की यह बात भूल जाता है—"राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र की

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा है। नदी, पहाड़ और समुद्र राष्ट्र नहीं बनाते। भाषा ही वह बंधन है, जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधे रहता है और उसका शीराजा बिखरने नहीं देता।"

भूमंडलीकरण ने अंग्रेज़ी भाषा को बढ़ावा दिया है। इसने कई स्थानीय भाषाओं को मटियामेट कर दिया है। इसने युवा पीढ़ी के अंदर मातृभाषा के प्रति घृणा-भाव पैदा किया है। नवीन पीढ़ी नव संस्कृति के फ़ैशन में आकर अपनी जड़ों से कट रही है और साथ ही अपनी मातृभाषा से भी। हिन्दी क्षेत्र के लोग आधुनिकता के एवज़ विशिष्ट जन बन जाते हैं। अपनी भाषा के प्रति इनकी चेतना उतनी विकसित नहीं हो पाती है, जितनी कि अंग्रेज़ों की अंग्रेज़ी के प्रति होती है। इसीलिए, ओक्टोवियो पाज़ ने एक स्थान पर लिखा है—"सबसे अधिक घृणा मुझे यहाँ के (भारत के) अंग्रेज़ी पढ़े वर्ग से है, जो एक ओर साहित्य और संस्कृति का स्वाँग करता है, दूसरी ओर अपने ही देश की सांस्कृतिक आकांक्षाओं को नष्ट करता है।"

आज देश में शासक-वर्ग द्वारा जो भी शिक्षा-नीति अपनायी जा रही है, वह सब विदेशी मॉडल के सहारे ही बनायी जाती है। यह शिक्षा-नीति ऐसी होती है, जो बच्चों से उनकी मातृभाषा छीन लेती है। बच्चों से मातृभाषा छीनना, उनसे उनकी रचनाशीलता को छीनना है। अभी हाल ही में 'राइट टू एजूकेशन एक्ट 2009' के नाम पर सरकार द्वारा ऐसी शिक्षा-नीति अपनायी गयी है, जो भारत की शिक्षा-व्यवस्था को पूरी तरह चरमरा कर रख देगी। हमारे बच्चे शिक्षित तो होंगे, किंतु योग्य नहीं। पूरी शिक्षा-नीति हस्ताक्षरी शिक्षा बनकर रह जाएगी। यह और कुछ नहीं नव-साम्राज्यवाद ही है, जहाँ पूँजीवादी राज्य-व्यवस्था ऐसा मानस निर्मित करना चाहती है कि हम अपनी मातृभाषा से हमेशा के लिए कट जाएँ। हमें भारतेंदु द्वारा लगभग 150 वर्ष पूर्व कही इस बात को नहीं भूलना चाहिए :

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल,
बिनु निज भाषा ज्ञान कै, मिटत न हिय को सूल।"

अतः भूमंडलीकरण के दौर में निज भाषा की उन्नति न होने के कारण ही देश में राष्ट्रीय चेतना विकसित नहीं हो पा रही है। आज हम जहाँ दूसरे लोगों से जुड़ रहे हैं, ग्लोबल हो रहे हैं, वहीं हमारी आपसी दूरियाँ बढ़ रही हैं। विदेशी भाषा में विकसित चेतना हमें अपनी जड़ों से काट रही है। अतः आज के दौर में सबसे अधिक ज़रूरी है—अपनी राष्ट्रभाषा की उन्नति और यह तभी हो सकता है, जब हम अपनी संकुचित मानसिकता से बाहर आएँ; जातीयता और क्षेत्रीयता की सीमा से बाहर निकलकर राष्ट्रहित की चिंता करें, राष्ट्रभाषा की चिंता करें। हम आपस में, व्यवहार में, जहाँ-जहाँ संभव हो सके अपनी राष्ट्रभाषा का ही इस्तेमाल करें।

सहायक शिक्षक, मदाती हाई स्कूल
पोस्ट- साहाबाद, ज़िला-दार्जिलिंग

दो कविताएँ

सुमित पी०वी०

बंटवारा

वह कहती थी और कहती रहती थी
तुम मेरे हो।

मैं कहता था
तुम मेरी हो और मेरी ही रहोगी।

आखिर जब बँटवारा हुआ
तो
दोनों आश्चर्य चकित थे....!!

पार्क की बेंच

पार्क की बेंच पर
अक्सर वे दिख जाते थे
आपस में बतियाते... हँसी मजाक करते
फरमाते... प्यार में डूबते....
हाथ मिलाते.... गले मिलते....

बीच के कुछ महीने वे
पार्क की उस बेंच पर नहीं
कहीं भी नहीं मिले।

फिर अचानक एक दिन वहीं
उसी पुरानी बेंच पर वे
आ बैठने लगे
मगर फर्क इतना था
दोनों अपने में खोए हुए थे !

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय, पुदुच्चेरी-605014

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमंडलीकरण और हिन्दी

अब्दुल लतीफ़

भाषा मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है। भाषा के माध्यम से ही उसे देशकाल और समाज का बोध होता है। ज्ञान-विज्ञान की प्रत्येक मूलभूत अवधारणा भाषा-ज्ञान पर आधारित है। मनुष्य भाषा के बिना अपना विकास नहीं कर सकता। भाषा के क्षेत्र में बड़ी तीव्रता से परिवर्तन होते रहते हैं। एक ओर भाषा का विकास होता है, तो दूसरी ओर इसका ह्रास और नाश भी होता रहता है। इसका प्रमुख कारण है भूमंडलीकरण और उसकी वर्चस्ववादी संस्कृति। समकालीन सूचना-क्रांति, विश्वग्राम और पूँजीवादी बाज़ारवाद में अनेक भाषाएँ दम तोड़ रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रपट के अनुसार आज हर तीन मिनट में एक बोली मरती है। बाज़ारवाद और वैश्वीकरण भाषाओं को समृद्ध करने के बजाय उन्हे विकृत कर रहे हैं। पिछले दो दशकों पर नज़र डालें, तो भूमंडलीकरण शब्द ने भारतीय जनमानस को प्रभावित ही नहीं किया, बल्कि अपने वर्तमान और भविष्य के बारे में सोचने-विचारने पर भी विवश कर दिया है। भारतीय जनजीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जो भूमंडलीकरण के प्रभाव से बच पाया हो। इसलिए, हमारे लिए यह ज़रूरी हो जाता है कि हम यह जान लें कि क्या है भूमंडलीकरण?

भूमंडलीकरण मूलतः उदारवादी आर्थिक संरचना की देन है। यह एक ऐसी संकल्पना है, जो बहुस्तरीय विश्लेषण में अर्थतांत्रिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और सिद्धांतवादी सोच को आपस में जोड़ती है। आर0पी0 चतुर्वेदी ने भौगोलिक शब्दकोश में भूमंडलीकरण को परिभाषित करते हुए लिखा है—"व्यापक मापक पर प्राकृतिक और मानवीय तथ्यों की आंतक्रिया का विचार भूमंडलीकरण कहलाता है।" शब्दकोश में इस अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि "ऐसा कोई भी कार्य और प्रसंग, जिसका प्रभाव समूची दुनियाँ को अपने घेरे में लपेट लेता हो 'ग्लोबलाइज़ेशन' कहा जा सकता है।"

सन् 1991 में नयी आर्थिक नीति अपनाने के तहत 'भूमंडलीकरण-उदारीकरण' के नारे के साथ हमारे देश के बड़े पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधि शासक राजनीतिक दलों ने विश्व-अर्थव्यवस्था का अंग बनने के नाम पर देश को पूरी तरह बहुराष्ट्रीय कंपनियों, विश्वबैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के हवाले कर दिया। अंतरराष्ट्रीय वित्त-पूँजी की लूट के इस नवऔपनिवेशिक दौर में बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति विकसित हुई। विश्व-स्तर पर अमेरिकी साम्राज्यवाद ने विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे कई मंचों/संगठनों के माध्यम से पूँजी निर्गत करते समय भारत सहित तीसरी दुनियाँ के देशों को अपना हाट-बाज़ार बनाने की जो नव औपनिवेशिक कार्यशैली अपनायी है, उसे 'रीकॉलोनाइज़ेशन' भी कहा जा सकता है।

आज पूरा विश्व एक 'ग्लोबल विलेज' यानी भूमंडल गांव बन गया है। भूमंडलीकरण और निजीकरण के चलते आज पूरे विश्व की नज़र भारत पर है, क्योंकि भारत सबसे बड़ा बाज़ार। इस दृष्टि से सारी कंपनियों ने अपने प्रचार-तंत्र के लिए भारतीय भाषाओं को चुना है। यदि हम केवल खान-पान व दैनिक जीवन में अपने उपयोग में आने वाले तेल, साबुन, घड़ी, क्रीम, शैंपू और वस्त्रों को लें, तो हम पाएँगे कि इनकी पहुँच मेट्रो सिटी से लेकर नगर, क़स्बे और गाँव तक बन गयी है। आज इन सबके विज्ञापन विदेशी एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हिन्दी में दे रही हैं। पेप्सी, कोका कोला, लिम्का जैसे शीतल पेय अब नगरों तक सीमित नहीं रहे हैं, इनका बाज़ार सुदूरवर्ती क्षेत्र तक देखा जा सकता है। यह सब मुक्त व्यापार/उदारीकृत अर्थव्यवस्था की देन है कि हमारे जीवन में विदेशी या बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पाद प्रयोग होने लगे हैं। परिणामस्वरूप देश, समाज, जीवन, संस्कृति, जीवन-शैली, लोक-व्यवहार, खान-पान, आदतें, रुचियाँ-सभी कुछ भूमंडलीकरण के प्रभाव से प्रभावित हुई हैं।

उदारीकृत अर्थव्यवस्था को बाज़ारोन्मुख दौर में 'प्रोफ़ेशनल कम्यूनिकेशन' एक अनिवार्यता होगी। व्यापक जनसमुदाय को संबोधित करने के व्यावसायिक प्रयत्न में आज बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने विज्ञापन-होर्डिंग राजमार्गों पर ही नहीं, क़स्बों और छोटे शहरों तक पहुँचा रहे हैं। संचार-माध्यम इस बाज़ार-विस्तार और उपयोग में सार्थक और प्रभावशाली भूमिका निभा रहे हैं। संचार-माध्यमों के द्वारा भारतीय जनमानस को उसी की भाषा व मुहावरे में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आर्थिक हितों के अनुकूल बनाया जाता है। विज्ञापन इसका प्रमुख और शक्तिशाली माध्यम है। आज विज्ञापन-कंपनियाँ अपने विज्ञापन हिन्दी में दे रही हैं, भले ही इसके पीछे विज्ञापन कंपनियों का उद्देश्य लाभ कमाना हो। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को यदि अपना माल ज़्यादा लोगों तक पहुँचाना है, तो वहाँ की भाषा में उत्पादों की जानकारी देनी होगी। यही कारण है कि आज विदेशी

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंपनियों ने जहाँ सामग्री हिन्दी में छपवायी है, वहीं वे उत्पादों की जानकारी भी हिन्दी में दे रहे हैं। हिन्दी का भविष्य इस बात में भी है कि जहाँ भी , जिस कंपनी में भी भारत सरकार की भागीदारी रहेगी, उस पर राजभाषा नियम लागू रहेंगे। हिन्दी के महत्त्व और उसकी प्रासंगिकता को आज विश्व के अनेक देश स्वीकार कर चुके हैं। अमेरिका ने इसके महत्त्व को मानते हुए, शिक्षण की व्यवस्था की है। विश्व के गिने-चुने धनियों में से एक तथा कम्प्यूटर के क्षेत्र में विश्व में क्रांति मचाने वाले बिल गेट्स ने इसके महत्त्व को स्वीकारते हुए हिन्दी में सॉफ़्टवेयर बनाये हैं।

भूमंडलीकरण के इस दौर में संसार सिमट गया है। संचार-क्रांति और सूचना-क्रांति ने सपनों को साकार करने की दिशा में क्रांतिकारी क़दम उठाया है और यही कारण है कि इस सारी स्थिति का सर्वाधिक लाभ उठाया है हिन्दी ने। इसमें कोई संदेह नहीं कि इलेक्ट्रॉनिक संचार-माध्यमों ने दुनियाँ को एक गाँव में बदल दिया है। कई विदेशी चैनलों ने अब हिन्दी में चौबीस घंटे अपने कार्यक्रम देना शुरू कर दिया है। विदेशी फ़िल्मों के हिन्दी संस्करण भी आने लगे हैं। हिन्दी में चौबीस घंटे देश-विदेश की ख़बरें सप्ताह भर आती रहती हैं। प्रमुख चैनलों के संवाददाता चाहे भारत के किसी भी कोने में हो, पर्दे पर वे हमसे हिन्दी में ही बात करते हैं। इन्हें देखकर लगता है मानो हिन्दी का ही भूमंडलीकरण हो गया है या हिन्दी अंतरराष्ट्रीय भाषा हो गयी है। टी0वी0 चैनलों में हिन्दी के बढ़ते प्रयोग को देखकर हिन्दी-प्रेमियों को ख़ुशफ़हमी हो सकती है, किंतु इसके पीछे दो बातों पर ध्यान देना अति आवश्यक है।

पहली बात यह कि हिन्दी देश की जन-संपर्क भाषा है, उसके बोलने-समझने, पढ़ने-लिखने वालों का एक विशाल वर्ग है। यह विशाल और व्यापक हिन्दी वर्ग बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दृष्टि में बड़ा बाज़ार है, जिससे अपने आर्थिक हित-लाभ साधने के लिए वे उसी की भाषा, उसी के मुहावरे का उपयोग कर रहे हैं, किसी सेवा-भाव या हिन्दी-प्रेम के कारण नहीं। दूसरी बात, चैनलों में जिस हिन्दी का प्रयोग हो रहा है, वह हिन्दी नहीं है। उसे बोलचाल की हिन्दी का भी भ्रष्ट रूप कह सकते हैं। वह हिन्दी कम, अंग्रेज़ी अधिक है। चूंकि इन चैनलों के अंतरराष्ट्रीय स्तर पर दर्शक हैं, इसलिए वे हिन्दी-अंग्रेज़ी मिश्रित रूप का प्रयोग करने के लिए विवश हैं, जिसे आलोचकों ने 'हिंग्लिश' कहा था। दूसरी भाषा के शब्द हमारी भाषा में आने से हमें कोई परहेज़ नहीं, लेकिन यह भाषा के विकास के लिए होना चाहिए, न कि उसे विकृत करके बाज़ार के लिए औज़ार बनाने हेतु। बाज़ारू बन जाने पर भाषा की गरिमा और गंभीरता नष्ट होती है और इसका अस्तित्त्व भी खतरे में पड़ जाता है।

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
राजकीय रज़ा (पी0जी0) कालेज,
रामपुर (उ0प्र0)

कविता

पहाड़

सुरेश सेन निशांत

वे जा रहे हैं
यहाँ से दूर।

बहुत ऊँचा है
दुख का पहाड़
वे इसके ऐवरेस्ट पर
फहराना चाहते हैं
अपनी जीत का ध्वज।

जा रहे हैं
हमारे तेनजिंग और दोर्जे
आज रात तीन की गाड़ी से

जीने के लिए ऑक्सीजन
वहाँ भी उतनी ही कम है
ज़िंदा लौट पाना
उतना ही कठिन।

जिन दिनों
गर्मियों से बचने के लिए
आते हैं लोग पहाड़ पर
वे जा रहे हैं यहाँ से दूर।

तपिश से भरा
बहुत ऊँचा है
दुख का पहाड़।

द्वारा श्री कुलदीप सिंह सेन
गांव-सलाह, डा0 सुंदर नगर-1
जिला-मंडी (हि0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के अनन्य उपासक : बालशौरि रेड्डी

महेंद्र प्रसाद कुशवाहा

दक्षिण भारत के जिन हिन्दी लेखकों ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार और सृजनात्मक लेखन के द्वारा हिन्दी को समृद्ध बनाने के साथ-साथ उसे 'राष्ट्रभाषा' का रूप प्रदान करने में सर्वाधिक योगदान दिया है, उनमें 'भारतीयता के प्रतीक' डॉ0 बालशौरि रेड्डी का स्थान सर्वोपरि है। मूलतः तेलुगु भाषी होते हुए उन्होंने हिन्दी के प्रति जितनी उदारता और सदाशयता दिखायी है, वह किसी भी हिन्दी भाषी से कहीं ज़्यादा है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार से लेकर साहित्य-लेखन तक उन्होंने बड़े ही मनोयोग से हिन्दी की सेवा की है। रेड्डी जी ने न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार -प्रसार और हिन्दी में साहित्य-सृजन का कार्य किया है, बल्कि मातृभाषा तेलुगु में भी साहित्य-सृजन किया है। मातृभाषा तेलुगु और राष्ट्रभाषा को वे अपने 'दो नयन' मानते हैं। उन्होंने अपने लंबे रचनाकाल में दोनों के विस्तार के लिए पर्याप्त काम किया है। रेड्डी जी ने तेलुगु के साहित्य को हिन्दी में अनूदित कर हिन्दी समाज को तेलुगु साहित्य से परिचित कराने का महनीय कार्य किया है। उन्होंने हिन्दी को अपनी मातृभाषा तेलुगु का संदेशवाहक बनाकर राष्ट्रीय एकता तथा सांस्कृतिक समन्वय का महान् आदर्श प्रस्तुत किया है। जहाँ एक ओर अपने उपन्यासों,कहानियों के द्वारा उन्होंने तेलुगु प्रदेश का व्यापक और सजीव रूप हिन्दी समाज के सामने प्रस्तुत किया है, वहीं दूसरी ओर तेलुगु साहित्य तथा संस्कृति से संबंधित कृतियों के द्वारा भारतीय संस्कृति के साथ तेलुगु संस्कृति का सार्थक समन्वय भी किया है। उनके प्रायः सभी ऐतिहासिक उपन्यासों की कथावस्तु आंध्र प्रदेश से संबंधित है। 'स्वप्न और सत्य','लकुमा','वीर केसरी','दावानल' या शीघ्र ही प्रकाशित होने वाले उपन्यास 'शंखनाद' की बात करें—सभी की कथावस्तु का आधार तेलुगु प्रदेश ही है। रेड्डी जी ने इन कृतियों के द्वारा तेलुगु सभ्यता और संस्कृति का विस्तार किया है। इसके अतिरिक्त 'पंचामृत' 'तेलुगु साहित्य के निर्माता', 'आंध्र भारती', 'तेलुगु साहित्य का इतिहास' आदि महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के द्वारा रेड्डी जी ने तेलुगु संस्कृति का भारतीय संस्कृति के साथ समन्वय करने का अविस्मरणीय कार्य किया है। प्रसिद्ध कथाकार-संपादक कमलेश्वर हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में इस मनीषी-विद्धान के अवदान को रेखांकित करते हुए लिखते हैं—"डॉ0 बालशौरि रेड्डी एक व्यक्ति नहीं, संस्था हैं। उन्होंने हिन्दी की जितनी सेवा की है और जो उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, वे एक वीतराग भाषा-संत की उपलब्धियाँ हैं; निष्काम, निःस्वार्थ काम करने वाले भारतीय की अनुपम मिसाल हैं। वर्तमान तो उन्हें सम्मान देता ही है, पर भविष्य उन्हें उस इतिहास-पुरुष के रूप में याद करेगा, जिसने हिन्दी के माध्यम से इस देश को जोड़ा है।"[1]

अपनी मौलिक प्रतिभा, व्यापक अध्ययन-मनन और कठोर परिश्रम के द्वारा रेड्डी जी ने हिन्दी में दक्षिण भारतीय समाज को उपस्थित किया है। उनके इस साहित्यिक अवदान को रेखांकित करते हुए हिन्दी के वरिष्ठ उपन्यासकार और 'आवारा मसीहा' के लेखक विष्णु प्रभाकर लिखते हैं—"उनके समूचे साहित्य को पढ़ते हुए न केवल पूरे दक्षिण देश की आत्मा हमारे अंतर में प्रवेश कर जाती है, बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि दक्षिण और उत्तर का भेद उनकी रचनाओं में मिलता ही नहीं। इसीलिए, उन्होंने समूचे देश की संस्कृति को अपनी रचनाओं में रेखांकित किया है।"[2] इसीलिए, विष्णु प्रभाकर जी उन्हें 'उत्तर और दक्षिण का सेतु' कहते हैं।

बालशौरि रेड्डी मूलतः तेलुगु भाषी हैं। हिन्दी के प्रति उनके आकर्षित होने और हिन्दी में आने की घटना बड़ी ही नाटकीय है। उन्हीं के शब्दों में—"पद्रंह वर्ष की आयु तक मैं यह भी नहीं जानता था कि हिन्दी नाम की कोई भाषा भी हमारे देश में हैं.... यहीं सोचता था कि सारे भारत में तेलुगु बोली जाती है। पहली बार राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान् अपने नेताओं के मुँह से 'स्वभाषा' और 'राष्ट्रभाषा' शब्द सुनने के लिए मिला। हमारे हाईस्कूल में एक कर्मचारी था, जो रविवार के दिन अपने कंधे पर एक उत्तरीय डालकर हमारे हॉस्टल में आया करता था। शॉल के चारों कोनों में रंगीन अक्षरों में, सुंदर गोल आकृति में एक वाक्य लिखा रहता था, जिसका अर्थ तब तो मैं नहीं समझ पाता था, क्योंकि मैं उसे पढ़ ही नहीं पाता था, किंतु वह मुझे बहुत अच्छा लगता था। पता नहीं क्यों मैं उसे दिल से चाहने लगा था। वह वाक्य था—'एक राष्ट्रभाषा हिन्दी हो, एक हृदय हो भारत जननी।' मैंने एक दिन उस कर्मचारी से पूछा—"यह शॉल किस दूकान में मिलती है? मैं भी ख़रीदना चाहता हूँ।" उसका नाम चँगमा था। उसने कहा—"यह शॉल किसी दूकान में नहीं मिलती। यदि तुम दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाओगे, तो उसके दीक्षांत समारोह में कोई महान् व्यक्ति तुम्हारे कंधों पर यह शॉल पहनाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें विशारद की उपाधि प्रदान करेंगे।" यहीं से मेरे मन में हिन्दी के प्रति पहला प्रेम उत्पन्न हुआ और 1946 ई0 में गांधी जी की प्रेरणा से मैंने हिन्दी सीखने का दृढ़ संकल्प ले लिया।"[3]

आज रेड्डी जी हिन्दी के महत्त्वपूर्ण साहित्यकार और हिन्दी सेवी माने जाते हैं। उन्होंने अपनी साहित्य-साधना से हिन्दी को समृद्ध तो किया ही है, साथ ही यह भी सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं है, बल्कि समूचे देश की भाषा है। इस पर जितना अधिकार हिन्दीभाषियों का है उतना ही हिन्दीतर भाषियों का भी। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज हिन्दी में प्रणीत रेड्डी जी की पुस्तकों की संख्या किसी भी पेशेवर हिन्दी लेखक से कहीं अधिक है। आज शायद ही कोई स्वनामधन्य हिन्दी लेखक यह दावा कर सके कि उसकी पुस्तकों के संस्करण रेड्डी जी के ग्रंथों के बराबर प्रकाशित हुए हैं। रेड्डी जी को हिन्दी के पाठकों ने ख़ूब चाहा और सराहा है, यह इस बात का प्रमाण है। लेकिन, दुख इस बात का है कि हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में रेड्डी जी के अवदान को जिस रूप में रेखांकित किया जाना चाहिए, उस रूप में रेखांकित नहीं किया जा सका है। हमेशा उन्हें एक 'अहिन्दी भाषी हिन्दी लेखक' के रूप में देखने और समझने की कोशिश की गयी है। अतः आज ज़रूरत है कि हम इन छोटी-छोटी बातों से बाहर निकल कर समग्र रूप मे उनके साहित्यिक अवदान को रेखांकित करें। वैसे तो रेड्डी जी को हिन्दी की सेवा के लिए जितने पुरुस्कार प्राप्त हो चुके हैं, उतने शायद ही किसी हिन्दी लेखक को प्राप्त हुए हों।

डॉ0 बालशौरि रेड्डी एक साथ कई भाषाओं के विद्वान हैं। हिन्दी, तमिल, तेलुगु के मर्मज्ञ विद्वान तो वे हैं ही, अंग्रेज़ी के भी ज्ञाता हैं। किंतु, साहित्य-सृजन का कार्य उन्होंने उपर्युक्त सभी भषाओं में न कर सिर्फ़ हिन्दी और मातृभाषा तेलुगु में किया है। 1946 ई0 में गांधी जी से प्रेरणा ग्रहणकर हिन्दी सीखने का दृढ़ संकल्प रेड्डी जी ने लिया था और 1954 ई0 में इसे कार्य रूप में परिणत करते हुए 'पंचामृत' नामक पुस्तक हिन्दी में लिखी। यह रेड्डी जी की प्रथम प्रकाशित पुस्तक है। 1954 ई0 से अब तक रेड्डी जी साहित्य-साधना में अबाध गति से अग्रसर हैं।

आज रेड्डी जी 82 वर्ष के हो चुके हैं, लेकिन उम्र का प्रभाव उनकी साहित्य-लेखन की इच्छा पर नहीं हुआ है। आज भी उनमें सहित्य-लेखन के प्रति उतना ही उत्साह है, जितना एक युवा हिन्दी लेखक में पाया जा सकता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण इस अवस्था में भी शीघ्र प्रकाशित होने वाला उपन्यास 'शंखनाद' है। इसके साथ-साथ इन दिनों रेड्डी जी 'स्वातंत्र्योत्तर तेलुगु पत्रकारिता का इतिहास' लिखने में तल्लीन हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार से0 रा0 यात्री रेड्डी जी के बारे में लिखते हैं– "श्री बालशौरि रेड्डी एक ऊर्जावान और गत्यात्मकता के धनी विद्वान हैं। उनके लेखन में मानवता, नैतिकता, भारतीयता के उच्च एवं श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं। उन्हें हिन्दी का लेखन करने में किसी प्रकार की दुविधा नहीं होती। उन्होंने हिन्दी को मातृभाषा के रूप में सिद्ध कर लिया है।"[4]

गत पचास-साठ सालों में रेड्डी जी ने हिन्दी साहित्य को काफ़ी समृद्ध किया है। उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा में अपनी लेखनी चलायी है। रेड्डी जी ने हिन्दी में अनेक उपन्यास और कहानियाँ ही नहीं लिखीं, वरन् सैकड़ों लेख, निबंध, पुस्तक-समीक्षाएँ, यात्रा-वृत्तांत, रिपोतार्ज आदि लिखे हैं। हम उनके साहित्यिक अवदान को निम्नरूपेण रेखांकित कर सकते हैं:

(क) मौलिक साहित्य-लेखन

डॉ0 बालशौरि रेड्डी ने हिन्दी और तेलुगू दोनों भाषाओं में मौलिक साहित्य-लेखन किया है। हिन्दी में उनके 14 उपन्यास (शीघ्र प्रकाशित होने वाले उपन्यास 'शंखनाद' को मिलाकर) प्रकाशित हैं और एक कहानी-संग्रह 'बैसाखी' नाम से, जिसका संपादन विष्णु प्रभाकर ने किया है। उन्होंने कुल 10-15 कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें 'चाँदी का जूता', 'वैसाखी', 'अतृप्त कामना', 'घर और गृहस्थी', 'पापी चिरायु', 'जब आँखें खुलीं', 'भूख हड़ताल' और 'प्रकाश और परछाईं' काफ़ी चर्चित रही हैं। इनकी कहानियाँ आम जीवन की समस्याओं से जुड़ी हैं। त्रिपुरा के पूर्व राज्यपाल प्रो0 सिद्धेश्वर प्रसाद इनकी कहानियों की तुलना प्रेमचंद और जैनेंद्र की कहानियों से करते हैं। उन्होंने लिखा है- "इन कहानियों में (वैसाखी-संग्रह) मुझे यथार्थ का नया रूप मिला। इनमें प्रेमचंद की सरलता तो है ही, साथ ही जैनेंद्र की मनोवैज्ञानिक गहराई भी है, जिसे आपने मानव-संबंधों के संदर्भ में व्यापक एवं गंभीर सामाजिक-मनोवैज्ञानिक धरातल पर अभिव्यक्त किया है।"[5] प्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर ने इनकी कहानियों को समय की माँग बताया है। उनके अनुसार–"अधः पतित समय के बीच से जो पात्र और कथ्य आपने तलाशे हैं और रेखांकित किये हैं, उन्हें ही तो आज का मानस तलाश रहा है। आपकी कहानियाँ बड़े धीरज से बताती हैं कि अभी भी सब कुछ क्षत-विक्षत नहीं हुआ है। अभी भी पाप और पाती के भीतर कोई 'सोमय्या' जीवित है।"[6]

'चाँदी का जूता' रेड्डी जी की सर्वाधिक चर्चित कहानी है। इस कहानी का प्रथम प्रकाशन 'सारिका' में हुआ था, जिसके संपादक कमलेश्वर थे। दहेज़ को केंद्र में रखकर लिखी गयी इस कहानी में कहानीकार ने थोथे आदर्श एवं दहेज़-प्रथा के समर्थकों के मुँह पर जोरदार तमाचा मारा है। कहानी के नायक बेंकटेश्वर राव थोथे आदर्शवादी पुरुष हैं, जो बातें तो बड़ी-बड़ी करते हैं, पर उसे क्रियारूप में परिणत नहीं कर पाते। बेंकटेश्वर राव अपने आदर्श के अनुरूप अपनी शादी तो बग़ैर दहेज़ के कर लेता है, पर जब अपने पुत्र की शादी की बारी आती है, तो उसे दहेज़ लेने के लिए मजबूर होना पड़ता है। चाहे जिस रूप में सही, वह दहेज़ की माँग करता है। इस कहानी में कहानीकार ने दहेज़ जैसी भयंकर समस्या के लिए पूर्णरूपेण स्त्री को ज़िम्मेदार दिखाया है। बेंकटेश्वर राव की पत्नी बार-बार अपने पति के न चाहने पर भी उसे दहेज़ के लिए उकसाती है। अंत में मजबूर होकर वह अपने समधी (होने वाले) से दहेज़ की माँग करता है। समधी जी उन्हें दहेज़ तो ख़ूब देते हैं, पर उसके साथ एक 'चाँदी का जूता' भी देते हैं। कथानायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे अपने मुँह पर समधी द्वारा चाँदी के जूते से मारे गये तमाचे के रूप में देखता है। वह कहता है—"मेरे समधी ने वह जूता मेरे सर पर नहीं, दिल पर मारा था।" यही इस कहानी का प्रतिपाद्य है।

'बैसाखी' रेड्डी जी की दूसरी महत्त्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी की नायिका अधेड़ उम्र की महिला ज्योतिपिनी है। उसका पति कामचोर,अकर्मण्य, शराबी एवं जुआरी है। वह हमेशा दुष्कर्मों में घिरा रहता है। पति की अकर्मण्यता उसे ज्योतिपिनी बनने को मजबूर करती है। परिणामस्वरूप, वह दूसरों का हाथ देख अपना पेट किसी तरह पालने लगती है। किंतु, उसके शराबी पति को यह भी मंज़ूर नहीं होता। यहाँ उसके पुरुष अहं को ठोस लगती है और वह उस पर चरित्रहीन होने का लांछन लगाने लगता है। वह उसे गाली देते हुए कहता है—"हरामज़ादी! नौजवानों के हाथ छू-छूकर गुदगुदी का अनुभव करती है न! उनके साथ-साथ हँस-हँस कर बात करती है। सबकी आँखें तुझ पर गड़ी रहती हैं, तुझे मर्दों के हाथों का स्पर्श करते शर्म नहीं आती?... कोई और होता तो अपनी बीवी के बारे में ऐसी फब्तियाँ सुन चुल्लू भर पानी में डूब मरता।" बावजूद इसके वह अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को सहती है और अपने बच्चों की परवरिश करने का प्रयास करती है। वह अपने पति को उसकी ज़िम्मेदारी की याद दिलाते हुए कहती है—"तुमने एक औरत का हाथ पकड़ा, उसे खाना-कपड़ा देना तुम्हारी ज़िम्मेदारी है। तुमने मुझे अपनी वासना की भूख मात्र समझा।" अंत में वह उसे समझाते हुए कहती है-"मेरी आख़िरी शर्त यही है कि हम दोनों ऊपरी आमदनी रूपी उप-जीविका की बैसाखी को तोड़कर आत्मविश्वास के साथ अपनी ईमानदारी और मेहनत की कमाई पर अपनी गृहस्थी को दृढ़तर बनाने की कोशिश करेंगे।" कमलेश्वर जी ने इस कहानी को 'आज के आहत समय में बची थोड़ी-सी नैतिकता को रेखांकित' करने वाली कहानी कहा है। उन्हीं के शब्दों में—"बैसाखी' कहानी आज के आहत समय में बची थोड़ी-सी नैतिकता को रेखांकित कर एक बड़ी कहानी बन जाती है, और शायद हमारे समय का सच भी यही है कि खंडित नैतिकता को औरत ही बचाएगी, बैसाखी की प्रखर पत्नी की तरह।"[7] इस कहानी की महत्ता इस बात से भी प्रमाणित होती है कि प्रसिद्ध कथाकार विष्णु प्रभाकर ने रेड्डी जी की कहानियों का एक संग्रह 'बैसाखी' शीर्षक से ही संपादित किया है। 'बैसाखी' संग्रह की भूमिका में वे लिखते हैं-"'बैसाखी' (कहानी) पढ़ते समय हमारे मन और मस्तिष्क को झकझोर देती है। अतिरिक्त कमाई के लिए पति-पत्नी दोनों नाजायज़ कार्यों का सहारा लेते हैं। लेकिन, जैसाकि समाज में होता है, पुरुष फिर भी नारी पर हावी रहना अपना अधिकार मानता है, अपने दुष्कर्म उसे नज़र नहीं आते और पत्नी जब उसका विरोध करती है, तो वह हिंसक हो उठता है, लेकिन अंततः उसका अहं भी जागृत होता है।" अपने पति द्वारा लगाये गये आरोपों के लिए वह स्वयं को ज़िम्मेदार नहीं मानती, बल्कि वह इसके लिए पति को पूर्णरूपेण ज़िम्मेदार मानती है। वह अपने पति को चुनौती देते हुए कहती है—"अपनी सीमा के भीतर रह कर कामना करना बुरी बात नहीं है, पर अपनी ज़िम्मेदारी का विस्मरण कर, बीवी-बच्चों का पेट काटकर तुम गुलछर्रे उड़ाना चाहते हो, तो यह बहुत ज़्यादती है। तुम हमारा ख़्याल नहीं करते, इसीलिए मुझे अपने बच्चों के भविष्य की चिंता की कामना से दूसरे के भविष्य के साथ खिलवाड़ करना पड़ता है। मैं जानती हूँ कि मैं जो कुछ करती हूँ, उचित नहीं है, मगर इसके लिए ज़िम्मेदार तुम हो। समझे?"

इसी प्रकार 'भूख हड़ताल', 'पापी चिरायु', 'घर और गृहस्थी' रेड्डी जी की अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहानियाँ है।

रेड्डी जी ने कुल चौदह उपन्यासों की रचना की है, जिनमें 'शबरी','स्वप्न और सत्य' और 'ज़िंदगी की राह' अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। 'शबरी' रेड्डी जी का पहला प्रकाशित उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंने पौराणिक कथा को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया है। शबर जाति की बेटी शबरी बहुत ही शीलवान, सुंदर, विनयी, निर्भीक और वीरांगना है। वह शबर जाति की मुखिया (प्रधान) चुनी जाती है, किंतु इससे पुरुष समाज के अहं को ठेस लगती है और वे उसे परेशान करने लगते हैं। तंग आकर शबरी संन्यास ग्रहण कर लेती है। ऋषि आश्रम में जाकर उसे नीच जाति के होने का दंश झेलना पड़ता है। अंततः वह इस संघर्ष में विजयी होती है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करती है। रेड्डी जी ने पौराणिक कथा को इस उपन्यास में बड़ा ही मनोरंजक और समसामयिक बनाकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

'ज़िंदगी की राह' रेड्डी जी का दूसरा उपन्यास है। यह मध्यवर्गीय हिन्दू समाज की वैवाहिक समस्या पर आधारित है। रेड्डी जी ने प्रेम-विवाह और निर्धारित विवाहों के वात्याचक्र को उसकी संपूर्णता के साथ इसमें उभारा है। मानव अपने ढंग से जीना चाहता है, अपना जीवन-साथी चुनना चाहता है, परंतु अंततः उसे नियति के हाथ की कठपुतली बनना ही पड़ता है। दहेज़-प्रथा, नारी-जीवन की असहायता आदि राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

'स्वप्न और सत्य' रेड्डी जी का सबसे मोटा उपन्यास है। इस उपन्यास की घटनाएँ यथार्थ होते हुए भी काल्पनिक हैं और काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ। अपने जीवन-काल में ही मनुष्य कोई न कोई सुंदर स्वप्न देखता है और उसे सत्य करने का प्रयास करता है। किंतु, हर किसी का स्वप्न सत्य में परिणत नहीं होता। इसे ही रेड्डी जी ने उपन्यास का विषय बनाया है। वे लिखते हैं- "इस उपन्यास में स्वप्न आदर्श है और सत्य यथार्थ है। अनेक व्यक्तियों के जीवन के स्वप्न स्वप्न ही रह जाते हैं। जीवन में द्वंद्वात्मक अनुभूतियाँ स्वप्न और सत्य का उद्घाटन करती हैं और उसे सहजता प्रदान करती हैं। जीवन में जो वैविध्य है, गहनता है तथा विस्तार है, वह किसी के जीवन में एक ही साथ प्रस्फुटित होता है, तो किसी के में इनमें से कोई एक पक्ष।"[8] इस उपन्यास में ग्रामीण और शहरी जीवन की समस्याओं को एक साथ प्रस्तुत किया गया है, जिनमें संयुक्त परिवारों की समस्या, संबंधों के तनाव की समस्या, पारिवारिक-सामाजिक व्यवस्था की समस्या, साहूकार के

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा ग्रामीणों के शोषण की समस्या, सरकारी सुविधाओं के दुरुपयोग की समस्या, ऋण के भुगतान की दोषपूर्ण पद्धति की समस्या आदि प्रमुख हैं।

रेड्डी जी की कथा-भाषा अत्यंत प्रांजल एवं परिमार्जित है। इनके कथा-साहित्य को पढ़कर कोई भी पाठक यह अंदाज़ नहीं लगा सकता कि यह किसी हिन्दीतर भाषी हिन्दी लेखक की रचना है। प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेंद्र प्रसाद ने इनकी भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा है—"आपकी मातृभाषा हिन्दी न होने पर भी हिन्दी के प्रति आपकी रुचि ही नहीं, आपने इसमें प्रवीणता पा ली है। इससे हिन्दी साहित्य तो समृद्ध हुआ ही है, अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की अभिव्यक्ति भी हुई है।"[9]

रेड्डी जी के साहित्य में संस्कृत तथा तेलुगु के शब्दों का प्रयोग मिलता है। चूँकि रेड्डी जी तेलुगु भाषी हैं। उनकी मातृभाषा तेलुगु है और उनके साहित्य का वर्ण्य-क्षेत्र भी आंध्र प्रदेश ही है, ऐसे में यदि इनके साहित्य में तेलुगु के शब्दों का प्रयोग मिलता है, तो इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। जैसाकि विष्णु प्रभाकर ने भी लिखा है—"यह ठीक है कि उनकी भाषा में कभी-कभी तेलुगु की प्यारी गंध भी सूँघने को मिलती है, पर वह तो स्वाभाविक है और आवश्यक भी। हिन्दी जितना दूसरी राष्ट्रभाषाओं से ग्रहण करेगी, उतना ही संपर्क भाषा के रूप में पुष्ट होगी और अपने अखिल भारतीय रूप को प्रमाणित करेगी।"[10]

जहाँ तक इनके कथा-साहित्य की शैली की बात है, तो इनकी कहानियों या उपन्यासों को पढ़ते वक़्त पाठक को ऐसा लगता है, जैसे घर की बूढ़ी दादी या दादा जी बैठकर उन्हें कहानी सुना रहे हों। यह इनकी शैली की बहुत बड़ी विशेषता मानी जा सकती है। एक तरफ़ जहाँ कथा-साहित्य से यह शैली ग़ायब होती जा रही है, वहीं रेड्डी जी ने अपने पूरे कथा-साहित्य में इसका प्रयोग कर इसे जीवित रखने का प्रयास किया है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि चूँकि रेड्डी जी बाल-मनोविज्ञान और बाल-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं, अतः उनकी यह मर्मज्ञता उनके साहित्य में भी आ गयी है। इनकी भाषा अत्यंत सरल, सहज, बोधगम्य एवं प्रवाहमान है।

हिन्दी के साथ-साथ तेलुगु भाषा में भी रेड्डी जी ने दो मौलिक उपन्यास—'जीवनसूत्रम' (1962) तथा 'आदर्श पुटुंयत' (1963) लिखे हैं और हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'रामायणकालीन भारतीय संस्कृति' (शांति कुमार नानूराम व्यास) का तेलुगु में अनुवाद भी किया है।

(ख) संस्कृति एवं साहित्य से संबंधित पुस्तकें

हिन्दी में मौलिक साहित्य-लेखन के साथ-साथ रेड्डी जी ने कुछ ऐसी पुस्तकों की रचना की है, जिनसे देश की राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक एकता स्थापित करने में बल मिला है। इन पुस्तकों में 'पंचामृत', 'आंध्र भारती', 'तेलुगु साहित्य का इतिहास' तथा 'तेलुगु साहित्य के निर्माता' प्रमुख हैं।

पंचामृत (1954)

यह तेलुगु के पाँच प्राचीन प्रतिनिधि कवियों की उत्कृष्ट रचनाओं का संकलन है। इसका संपादन डॉ0 श्रीराम शर्मा ने किया है। यह रेड्डी की अनुदित कृति है। इसके बावजूद इसे मौलिक साहित्य-सा सम्मान मिला है। हिन्दी के प्रायः सभी बड़े साहित्यकारों ने इसकी तारीफ़ की है। इसके लिए रेड्डी जी को भारत सरकार की ओर से सम्मानित भी किया गया।

इस पुस्तक में तेलुगु के पाँच महत्त्वपूर्ण कवियों—तिकन्ना, पोतन्ना, वेमना, पोदन्ना तथा वेंकट कवि की कविताओं का संकलन कर उनका गवेषणात्मक परिचय दिया गया है। इस पुस्तक की महत्ता बतलाते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार शिवपूजन सहाय लिखते हैं—"'पंचामृत' का पान कर मैं अत्यंत तृप्त हुआ। यह ग्रंथ साहित्यिक भंडार का अमूल्य रत्न है। इसमें राजा-प्रजा के लिए अमृतमय उपदेश भरे हुए हैं। राजनीति, धर्मनीति, समाजनीति, व्यवहारनीति आदि लोकहितकर विषयों पर जो सुधासिक्त सूक्तियाँ तथा हृदयग्राही विशद् वाक्य हैं, वे मनन-अनुशीलन करने योग्य हैं। मानव-जीवन को उन्नत, आदर्श, सुख-शांतिमय और सफल बनाने में यह ग्रंथ विशेष उपयोगी एवं सहयोगी सिद्ध होगा। इसकी भाषा, रचना-शैली, छपाई शुद्ध, सुंदर एवं स्वच्छ है। परिचय गवेषणापूर्ण, ज्ञानवर्द्धक और प्रामाणिक है।"[11] इस कृति के माध्यम से रेड्डी जी ने उत्तर-दक्षिण के सांस्कृतिक समन्वय का आधार प्रस्तुत किया है। डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं—"आपने तेलुगु साहित्य के पाँच प्रसिद्ध कवियों की मूल रचनाओं को अनुवाद के साथ हिन्दी पाठकों के लिए सुलभ बनाकर बहुत उपकार किया है। इस प्रकार के ग्रंथ को देखने की बहुत दिन से इच्छा थी, सो 'पंचामृत' द्वारा पूर्ण हुई। तिकन्ना, पोदूना, पोतन्ना सचमुच हमारे राष्ट्रीय कवि हैं। उनकी महान् कृतियों से परिचय प्राप्त करना सब देशवासियों का कर्तव्य है। हिन्दी के माध्यम से वे सब प्रदेशों के लिए सुलभ बन गये हैं।"[12]

आंध्र भारती (1359)

'आंध्र भारती' रेड्डी जी के शोधपरक निबंधों का संग्रह है। इस पुस्तक के निबंध आंध्र वाङ्मय से संबंधित हैं। इसके अध्ययन से हमें पता चलता है कि तेलुगु साहित्य पर किस तरह का अधिकार रेड्डी जी का है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है- "रेड्डी जी उत्तर और दक्षिण के बीच वाङ्मय के आदान-प्रदान का श्लाघनीय सेतु निर्माण करने की सक्षम योग्यता रखते हैं।" इस पुस्तक की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है :

"मेरे मित्र श्री बालशौरि रेड्डी ने आंध्र साहित्य का परिचय देने वाली यह पुस्तक लिखकर बहुत महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कार्य किया है। भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं में जो साहित्य लिखा गया है, उसके संबंध में हमारा ज्ञान बहुत कम है। जितना हम फ्रांस, जर्मनी और रूस के साहित्य के बारे में जानते हैं, उतना अपने देशी साहित्य के विषय में नहीं जानते। दक्षिण भारत की भाषाओं के संबंध के बारे में तो जानकारी और भी कम है। ऐसी स्थिति में रेड्डी जी ने तेलुगु सहित्य का धारावाहिक परिचय इस कृति में दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने उस साहित्य का बहुत ही विश्वसनीय और मनोहर चित्र भी खींचा है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न विचार-स्रोत से उन्होंने उसकी तुलना भी की है, यह सिद्ध किया है कि दोनों साहित्यों की अंतरात्मा एक है। इस पुस्तक को पढ़कर हम अपना ही परिचय स्पष्ट रूप में पाते हैं।"[13]

तेलुगु इतिहास का इतिहास

यह रेड्डी जी की महत्त्वपूर्ण कृति है। इस पुस्तक में रेड्डी जी ने तेलुगु साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास हिन्दी में प्रस्तुत किया है। भारतीय भाषाओं में जो साहित्य लिखा गया है, उसे समस्त राष्ट्र के सामने प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही रेड्डी जी ने इस पुस्तक की रचना हिन्दी में की है। हिन्दी और तेलुगु के मर्मज्ञ विद्वान होने के कारण रेड्डी जी ने इस पुस्तक में तेलुगु साहित्य की विधाओं का विवेचन शास्त्रीय ढंग से किया है। यह पुस्तक 9 अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में आंध्र प्रदेश का स्वरूप तथा 'आंध्र' शब्द का विश्लेषण किया गया है, जिससे हिन्दी तथा हिन्दीतर भाषी आंध्रवासियों से आसानी से परिचित हो जाते हैं। द्वितीय अध्याय में आंध्र राज्य का इतिहास पौराणिक काल से लेकर आधुनिक काल तक संक्षेप रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही आंध्र जाति के इतिहास की राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक रूपरेखाओं की झलक भी इसमें मिलती है। तीसरे अध्याय में तेलुगु भाषा की प्राचीनता तथा उसके विकास का विश्लेषण किया गया है। चतुर्थ अध्याय में काल विभाजन तथा पंचम अध्याय में भाषांतरीकरण युग की चर्चा, छठे अध्याय में संधि युग की चर्चा, सातवें अध्याय में रॉयल युग की चर्चा, आठवें अध्याय में अर्वाचीन युग या आधुनिक युग की चर्चा तथा नवें अध्याय में आधुनिक युग के साहित्य के विकास का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

तेलुगु साहित्य के निर्माता (1982)

अपनी प्रकृति एवं सांस्कृतिक प्रभाव के कारण तेलुगु भाषा भारत की विशिष्ट भाषा मानी जाती है। तेलुगु साहित्य समृद्ध है, उसकी समस्त विधाएँ प्रौढ़ हैं। इस पुस्तक में रेड्डी जी ने ग्यारहवीं सदी से लेकर आधुनिक काल तक के महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों का गवेषणात्मक परिचय दिया है। इन साहित्यकारों ने तेलुगु वाङ्मय के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस पुस्तक में रेड्डी जी ने ननन्या से लेकर आधुनिक साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित महाकवि सी0 नारायण रेड्डी तक के योगदान की चर्चा की है। इस पुस्तक के बारे में डॉ0 रामकुमार वर्मा लिखते हैं—"भारत के साहित्यों में तेलुगु साहित्य एक प्रशस्त साहित्य है, जिस गहराई से बालशौरि रेड्डी ने इन निर्माताओं के जीवन का अध्ययन करते हुए तथा परिस्थितियों एवं संस्कारों का परिचय कराते हुए उनके साहित्य निर्माण पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, वे अत्यंत प्रेरक एवं प्रभावपूर्ण हैं। उनके इस ग्रंथ में तेलुगु साहित्य के निर्माताओं से हमारा परिचय होता है तथा उत्तर एवं दक्षिण भारत की साहित्यिक एकता के शुभ चिह्न भी प्रतिबिंबित होते हैं।"

बाल-साहित्य

बालशौरि रेड्डी भारतीय भाषाओं के बाल-साहित्य के वाल्मीकि माने जाते हैं। बच्चों तथा प्रौढ़ों में समान रूप से लोकप्रिय रही पत्रिका 'चंदामामा' के वे 23 वर्ष तक संपादक रहे हैं। अपने लंबे संपादकत्व में उन्होंने भारी मात्रा में बाल-साहित्य की रचना तथा संपादन किया है, जिनमें 'तेलुगु की लोककथाएँ', 'आंध्र के महापुरुष', 'तेनालीराम के लतीफ़े', 'तेनालीराम के नये लतीफ़े', 'बूद्धू से बुद्धिमान', 'न्याय की कहानियाँ', 'तेनालीराम की हास्य कहानियाँ', 'आदर्श ज़ीवनियाँ' और 'आयुक्त माल्यदा' जैसी कृतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

समग्र रूप से श्री बालशौरि रेड्डी के साहित्य पर विचार करने पर हम पाते हैं कि बालशौरि रेड्डी ने हिन्दी के अनन्य उपासक की भाँति लंबे समय तक हिन्दी की सेवा की है, जिससे हिन्दी भाषा और साहित्य काफ़ी समृद्ध हुआ है। हिन्दी के प्रति उनकी यह निष्ठा आज भी उसी तरह कायम है और निरंतर वे हिन्दी की श्रीवृद्धि में संलग्न हैं।

संदर्भ-सूची

1. दक्षिण भारत की पत्रिका 'युगमानस' के संपादक श्री जयशंकर बाबू को 01.01.98 को लिखे कमलेश्वर जी के पत्र से।
2. 'अपने-अपने बालशौरि रेड्डी'- सं0 राधाचरण विद्यार्थी, अमित प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, सं.- 2001 पृष्ठ सं0 85
3. लेखक से रेड्डी जी की भेंटवार्ता (दिनांक- 30.05.08)
4. वाङ्मय, जनवरी 2009, पृष्ठ संख्या 75
5. 'अपने-अपने बालशौरि रेड्डी', पृष्ठ संख्या 147
6. बालशौरि रेड्डी के नाम 05.02.1999 को लिखे गये प्रो0 सिद्धेश्वर प्रसाद के पत्र से
7. कमलेश्वर के पत्र से (दिनांक 16.11.99)
8. वही
9. 'स्वप्न और सत्य' उपन्यास की भूमिका 'दो शब्द' से।
10. प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के पत्र से (दिनांक 26 सितंबर, 1959)।
11. 'युगमानस' (बालशौरि रेड्डी अभिनंदन अंक) पृष्ठ संख्या-54
12. शिवपूजन सहाय के पत्र से (दिनांक 11.04.55)
13. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र से (दिनांक 11.04.55)
14. 'आंध्र भारती',- बालशौरि रेड्डी-कवर पृष्ठ पर लिखे हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार।
15. बालशौरि रेड्डी के नाम डॉ0 रामकुमार वर्मा के पत्र से।

6/7 नं0 कॉलोनी, वार्ड नं. 16, (जी0टी0 रोड)
पो.- सियरसोल राजबाडी, थाना- रानीगंज
ज़िला- वर्द्धवान (प0बं0) पिन-713358

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय पहचान के कवि : अरविन्दाक्षन

वीरेन्द्र मोहन

ए. अरविन्दाक्षन एक रचनाकार और समीक्षक के रूप में पिछले क़रीब चार दशकों से क्रियाशील हैं। मूलतः मलयालमभाषी अरविन्दाक्षन के लिए हिन्दी प्यार और सद्भाव की भाषा है, उनके जीवन और कर्म की भाषा है। जीवन और कर्म की भाषा के कारण ही अरविन्दाक्षन को एक राष्ट्रीय पहचान मिली है। मलयालम के रचनाकारों में उनका स्थानीय परिवेश और वातावरण जिस प्रकार से रचना को आच्छादित करता है; अरविन्दाक्षन की रचना में वैसा नहीं है। वे स्थानीयता का अतिक्रमण भी करते हैं। भिन्न स्वभाव के कवि हैं। उनकी रचनाओं का परिवेश और वातावरण कहीं अधिक व्यापक है। उनकी रचना का मुहावरा अलग है, सौंदर्य-बोध अलग है। रचना के भीतर का परिवेश देश-काल-निरपेक्ष न होते हुए भी देश और काल दोनों का अतिक्रमण करता है। वह अपना विस्तार करता है। उनकी रचनाओं के साथ यात्रा करना कवि के भाव-वस्तु संसार से गुज़रना भी है। मलयालम की कविता अपनी परंपरा और नवीन उद्भावनाओं का निर्वहन एक साथ करती है। यहाँ परंपरा और परिवेश का समुच्चय एक सौंदर्य की सृष्टि करता है। हिन्दी की समकालीन कविता भी इसका अपवाद नहीं है। इस अर्थ में अरविन्दाक्षन की कविता जितनी हिन्दी के लिए आत्मीय है, मलयालम के समकालीन साहित्य-परिदृश्य में भी उनकी उपस्थिति उतनी ही प्रीतिकर है। वे हिन्दी और मलयालम की समकालीन साहित्य-परंपरा की साझी विरासत के रचनाकार हैं। वे कबीर, तुलसी, सूर, मीरा के साथ पंत, अज्ञेय, मुक्तिबोध, प्रेमचंद, वेणुगोपाल को अनायास ही नहीं याद करते, इस याद में उनकी प्रेरणाएँ भी शामिल हैं। उनके लिए मनुष्यता की चिंता प्रमुख है। वे मानवीय मुक्ति और प्रेम के शिल्पकार हैं। उनकी पहली आलोचनात्मक कृति महादेवी वर्मा की कविता पर है। वस्तुतः, उनकी आलोचना के आरंभिक सूत्र आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की आलोचना-परंपरा के निकट लगते हैं, तो वे भारतीय परंपरा के संबंध-सूत्रों से भी उलझे हैं। इस प्रकार, परंपरा और आधुनिकता, शास्त्रीयता और स्वच्छंदता के सूत्र उनकी रचना में एक साथ विकसित होते हैं, जो आगे चलकर प्रगतिशील परंपरा के संबंध-सूत्रों से अपना विकास करते हैं, विस्तार करते हैं। परंपरा और प्रगति के प्रति उनका यह भाव और विचार-बोध उन्हें स्मृति, मिथक तथा भारतीय साहित्य की ओर ले जाता है और वे बांग्ला, मलयालम आदि भाषाओं के साहित्य को हिन्दी में लाने का उपक्रम करते हैं। अरविन्दाक्षन का अनुवादक रूप भी कवि और आलोचक की तरह महत्त्वपूर्ण है।

अरविन्दाक्षन अपनी कविता में मानवीय सार-तत्त्व को, उसकी स्थितियों और आशा-आकांक्षा को गहन संवेदन के साथ प्रस्तुत करते हैं। यह अकारण नहीं कि उनकी कविता में एक तरह की चित्रमयता देखने को मिलती है। यह चित्रमयता बिना किसी अलंकरण के बतकही की शैली में प्रस्तुत होती है और कहीं गहन निरीक्षण के बोध को व्यक्त करती है। अरविन्दाक्षन की कविता अपने आस-पास घटित हो रही स्थितियों, विडंबनाओं और विषमताओं की अनदेखी नहीं करती। घर, सड़क, स्कूल, बाज़ार, परिवार, खेत, समाज आदि के प्रति लगाव इस कविता को एक पहचान देता है। यहाँ कवि अतीत में, बचपन की स्मृतियों में और इन स्मृतियों से जुड़े प्रसंग-संदर्भों तक जाता है। उसके लिए सड़क के किनारे खड़ा बछड़ा महत्त्वपूर्ण है, तो घर-आँगन में फुदकती चिरैया भी उसकी संवेदना का हिस्सा बनती है। चिड़िया का संगीत कवि के लिए जीवन का संगीत है। अरविन्दाक्षन की कविता नये प्रतीकों की खोज करती है और परंपरा को स्वीकार करते हुए आगे बढ़ती है। मिथकीय चेतना की पुनर्व्याख्या भी इसी परंपरा का एक रूप है, तो परंपरा से प्रगति तक वे अपनी जड़ों, अपनी मिट्टी में रचे-बसे रहना चाहते हैं। वस्तुतः, अरविन्दाक्षन की कविता का निर्माण और विकास अनेक रूपों में होता है। वे वैचारिकता की जड़ता के स्थान पर विचारों की गतिशीलता को समय-सापेक्ष संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं और पहचान के अपने प्रिय रंग लाल और प्रकृति के प्रिय रंग हरे को एक नयी अर्थ-दीप्ति देते हैं। इस तरह, वे कविता की परिभाषा रचते हैं और जीवन से प्यार की परिभाषा भी।

अरविन्दाक्षन जब कविता रचते हैं, तो वे एकदम खुले मैदान में आ जाते हैं, जहाँ से वे हर तरफ़ देख सकते हैं। हम उन्हें इंद्रिय-जगत में विचरते देख सकते हैं और मन की गहराइयों में उतरते भी देख सकते हैं। वे आंतरिक जगत के साथ बाह्य जगत के नाना रूपाकारों के इतिहास से भी गुज़रते हैं, परंतु, उनकी कविता कहीं भी अँधेरी सुरंगों में भटककर दम नहीं तोड़ देती, वह उजाले के रास्ते की खोज निरंतर करती है। वह यदि वाचाल कविता नहीं है, तो मूक भी नहीं है। वह सब कुछ देखती-समझती है और अपने विवेक पर भरोसा करती है। उसकी विनम्रता भी अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराती है। अरविन्दाक्षन के यहाँ ज़्यादातर कविताएँ छोटी हैं, एकदम चुस्त-दुरुस्त; पर ये छोटी कविताएँ कुहासे से बाहर आने की कविताएँ हैं।

अरविन्दाक्षन की कविता अपनी परंपरा में कबीर के निकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कबीर अरविन्दाक्षन के प्रिय कवि भी हैं। तभी वे कबीर से सवाल पूछते हैं। कबीर से उनकी यह निकटता उन्हें एक परंपरा से भी जोड़ती है और वे कबीर से ही प्रेम का मर्म भी सीखते हैं। अरविन्दाक्षन की कविता में इस प्रेम की विशेष भूमिका है। वे प्रेम की अनेक छवियाँ रचते हैं और उसे प्राणिमात्र के लिए व्यापक बनाते हैं। इस चराचर जगत में वे प्रेम का प्रसार सब ओर देखना चाहते हैं। वे प्यार के अनंत रूपों को इस धरती का उपहार मानते हैं। यह अकारण नहीं कि अरविन्दाक्षन के यहाँ प्रेम कविताओं की एक बड़ी संख्या है, पूरी शृंखला है। उनकी कविता का केंद्रीय भाव प्रेम के आस-पास ही घूमता रहता है। अरविन्दाक्षन के इस प्रेम में संघर्ष की भी भूमिका है। उनका प्रेम किसी आध्यात्मिक समर्पण की तरह नहीं है, किन्हीं भगवानों के लिए भी नहीं है, बल्कि भगवानों को तो वे लगातार समाज के कठघरे में खड़ा करते हैं। ईश्वर के संबंध में उनकी कविताएँ एक व्यंग्य-भाव भी लिये हुए हैं। 'आस-पास' शीर्षक संकलन में प्रेम कविताएँ हैं। 'सपने सच होते हैं' संग्रह में प्रेम के अनेक बिंब हैं। 'सपने सच होते हैं' में कबीर से दस सवाल करती दस कविताओं की शृंखला है। इसी के साथ 'घोड़ा' संग्रह की पहली कविता 'कबीर' को मिलाकर देखें, तो अरविन्दाक्षन की कविता की अपेक्षाओं को भी जाना जा सकता है। यहाँ कवि अपनी रचना-प्रक्रिया और अपनी रचना के स्वरूप को अपनी तरह से परिभाषित करना चाहता है।

अरविन्दाक्षन की कविता 'मुक्ति' को उसकी व्यापकता और समग्रता में स्वीकार करती है। यहाँ स्त्री-मुक्ति का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। 'राग लीलावती' कविता के माध्यम से कवि स्त्री-विरोधी और मनुष्य-विरोधी व्यवस्था के खलनायकों को सबके सामने खड़ा कर देता है :

हमारे सभ्य समाज में
हमारे ज्ञान-समाज में
हमारे प्रौद्योगिकी-संपन्न समाज में
एक जंगली संस्कार भी पल रहा है
उस जंगली संस्कार ने
लीलावती का अंत कर दिया।
हमारा ज्ञान-समाज उस समय
सिर्फ़ समाचार-पत्र पढ़ता रहा
लीलावती की हत्या का समाचार।

कवि नारी के प्रति किये जाने वाले अन्याय का प्रतिकार यदि नहीं कर पा रहा है, तो इसके लिए भी हमारी सामाजिक व्यवस्था ही दोषी है, जो हमारे लिए अनेक अवरोधों को खड़ा करती है। कवि एक स्वप्न-कथा के माध्यम से अपनी माँ के साथ होने वाले अन्यायों के प्रतिकार की तैयारी में एक विचार प्रस्तुत करता है। वस्तुतः, यह विचार ही अनेक अन्यायों के लिए ज़िम्मेदार है। यह मनुष्यता की भी रक्षा नहीं करता है :

सपना देखना आजकल फ़िज़ूलख़र्ची है
बस एक आदमकद आदमी बनकर
सुनसान गलियों में
अँधेरे गुफागेहों को ढूँढ निकालना था मुझे
उसमें छिपे बेदर्द जानवरों को कुचलना था पर
अचानक
गांधी जी का प्रकट होना
मेरी ऊर्जा को नष्ट कर देता है
बस एक सवाल करके
मैं चला जाता हूँ
'बापू इतनी देर तक आप कहाँ थे ?
आपकी मिट्टी में मेरी माँ रौंदी गयी थी।'
(राग लीलावती : मेरी माँ)

अरविन्दाक्षन की कविता की चिंता केवल स्त्री के जीवन तक सीमित नहीं है। वे दलित-समाज के जीवन को भी अपनी चिंता का विषय बनाते हैं। वे अतीत में जाते हैं, तो वर्तमान को भी देखते हैं। उन्हें सर्वत्र एक भेद-आधारित व्यवस्था दिखायी देती है। वस्तुतः, यह सच्चाई की हत्या की, मनुष्यता को नष्ट करने की एक सोची-समझी नीति है। समाज को ऊँच और नीच में, गोरे और काले में विभाजित कर अत्याचार को अनवरत चलाये रखने का कुचक्र है, इसीलिए कवि कहता है :

सच चाहे त्रेता हो या द्वापर
सच एक समर्थ जादू है
उसकी जादुई दुनिया में
मामूली सच के लिए कोई स्थान नहीं है
सच की जादुई दुनिया में
अनाम-सी एक शक्ति सब कुछ करती है
उसे पहचानना मुश्किल है
पर वह रहती है
मामूली सच उसकी जादुई छड़ी के अनुसार खेलता है।
जब उँगलियाँ उठने लगती हैं
उन्हें काट दिया जाता है।
द्वापर में
एक काले मनुष्य की उँगली काट दी गयी
तब व्यास की कथा ही नहीं बदल रही थी
इतिहास बदल रहा था।
(राग लीलावती : उँगली की कथा)

सचमुच इतिहास बदल गया था। अर्जुन के लिए एकलव्य के साथ आज भी यह क्रम जारी है, तमाम योजनाओं, घोषणाओं के बाद। दलित और ग़रीब समाज पर अत्याचार, जैसे स्वतंत्र भारत की नियंता शक्तियों का शगल हो गया हो। हमारे सत्ता-सामंत और उनकी अनुचर शक्तियाँ यही खेल खेलती हैं। वे ही मुसीबत की जड़ें हैं। अपना दोष छिपाने के लिए और अपने वर्गीय हितों की रक्षा के लिए किसी को भी देशद्रोही बताकर ये शक्तियाँ पल्ला झाड़ लेती हैं या ऐसी घटनाओं को विदेशी षड़यंत्र बता देती हैं। आज भी शंबूक, सूर्यपुत्र, एकलव्य को न्याय नहीं मिलता :

फटीचर !
कौन शंबूक ?
फटीचर
कौन सूर्यपुत्र ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फटीचर
कौन एकलव्य ?
चुप !!
अँगूठा काट के रख दो
मेरा राजा बेटा
अँगूठा–काटने के लिए होता है
(घोड़ा : नैरंतर्य)

अरविन्दाक्षन की कविता स्त्री और दलित जीवन के प्रश्नों से टकराती है। वह हमारी संवेदनशीलता को भी जगाती और झकझोरती है, संवेदनशीलता पर प्रश्न खड़ा करती है। इन समाजों के लिए जो योजनाएँ शासन द्वारा लागू की जाती हैं, उनकी वास्तविकता से हम सब परिचित हैं। साक्षरता मिशन के संदर्भ में कवि कहता है :

अक्षर पढ़ाने का यह कार्यक्रम
अब क्यों चल पड़ा है ?
अक्षर के प्रति
यह नया रिश्ता क्यों है ?
अक्षर के दुश्मनों का
यह एक उपक्रम है
अक्षर को फिर से
दफ़नाने का नया क्रम है।
(घोड़ा : नसीहत-3)

अरविन्दाक्षन की कविता की एक प्रमुख चिंता वैश्वीकरण को लेकर है। वस्तुतः, पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शक्तियों का एक ऐसा रूप है, जो सभी को आकर्षित कर रहा है। प्रौद्योगिकी और सूचना-तकनोलॉजी ने मनुष्य की दुनिया में ऐसा परिवर्तन किया कि वह बाज़ार के हाथ का खिलौना बन गया। बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका के साथ अन्य अनेक कारण भी इसके साथ जुड़ते चले गये, फलतः समाज की स्थितियों में भी परिवर्तन आया। अनेक सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों के लिए वैश्वीकरण को, बाज़ारवाद को, उदारीकरण को एकमात्र ज़िम्मेदार माना जा सकता है। बहुराष्ट्रीय निगम भारतीय वनस्पतियों, प्राकृतिक उत्पादनों का पेटेंट कराकर हमारे हितों पर कुठाराघात कर रहे हैं। हमारी पारंपरिक कृषि-व्यवस्था, ग्रामीण और कुटीर उद्योगों को तबाह कर रहे हैं। उन्हीं के दिये बीजों, उर्वरकों, रसायनों के उपयोग के लिए किसान विवश है। वह क़र्ज़ के कारण आत्महत्याएँ कर रहा है। हमारे संसाधनों पर पूँजीवादी शक्तियों का अधिकार होता जा रहा है। प्रकृति-प्रदत्त महाभूत तक व्यापार में बदल दिये गये हैं। यहाँ तक कि अब बोतलबंद पानी के नाम पर हमारी नदियों को बेचा जा रहा है। जो नदियाँ मनुष्यता का, संस्कृति का इतिहास रचती थीं, उन्हें बेचकर आज इतिहास को बदला जा रहा है। कवि कहता है :

अजीब ख़बरें
सब कहीं।
कल ही ख़बर एकदम अजीब
पेरियार का पानी बिक रहा है।
पेरियार हमें सहज कर बहती है
पेरियार हमारे लिए नदी नहीं
मेरा हृदय काँप उठता है
माँ का पानी भी बेचा जा सकता है?
(आसपास : पेरियार का पानी)

'नदी' (आसपास) कविता भी यही कहती है। 'अफ़सोस' (आसपास) में बोतलबंद पानी को दुख का कारण माना गया है।

वस्तुतः, स्वाधीनता के पश्चात् जिस तरह पूँजीवादी व्यवस्था का विकास हुआ, उसने शहरों और गाँवों के लिए अनेक तरह की समस्याएँ उत्पन्न कीं। शहरीकरण और मशीनीकरण के नाम पर देश का असंगत विकास हुआ। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को सामंतों और साहूकारों के हाथों में सौंप दिया गया। किसान के लिए खेती मौत का सौदा बनती गयी। प्राकृतिक विपत्तियाँ–सूखा, बाढ़, अकाल, जिन्हें अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने मानव-निर्मित कहा है तथा क़र्ज़, लेवी, बीज, उर्वरक ने किसान को हर तरफ़ से तोड़ दिया। हरित क्रांति का नारा भी बेमानी हो गया। बड़े-बड़े बाँधों ने विस्थापन की एक नयी मुसीबत पैदा कर दी। अरविन्दाक्षन की कविता इन सभी समस्याओं को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखती हैं। वे संकेत रूप में कहते है :

आंध्र प्रदेश का किसान
जब आत्महत्या करता है
तब कर्नाटक का किसान
अपनी बीवी को गले से लगाते हुए
अपना अंतिम निर्णय लेता है,
कल की सुबह हम नहीं देखेंगे
अपने-अपने गाँवों में
ये किसान ख़त्म होते जाते हैं।
(आसपास : किसान आत्महत्या क्यों करते हैं?)

वैश्वीकरण और अमेरिकी आर्थिक साम्राज्यवाद को लेकर कवि मिथकों का भी प्रयोग करता है। 'अतिथि देवो भवः' (राग लीलावती) वैश्वीकरण और बाज़ारवाद की चिंता से जुड़ी कविता है। अतिथि-सेवा करते हुए हम विदेशी पूँजी को देश में जड़ जमाने और शोषण करने का अवसर दे रहे हैं। उनके लिए हम लाल कालीन बिछा रहे हैं। 'खाना' (राग लीलावती) भी इसी वैश्वीकरण के कारकों को सामने लाती है। इसी बाज़ारवाद का एक रूप यह भी है :

किसी भी हालत में
मैं बाज़ार नहीं बन सकता
पर अफ़सोस की बात है
मेरी पत्नी
मेरे बच्चे
हर रोज़ बाज़ार ढोते हुए घर लौट रहे हैं
लंबे समय तक घर बाज़ार बना रहता है
बाज़ार-घर पर बैठकर
मैं हल्के ढंग से ही कह पाता हूँ
मैं बाज़ार नहीं बन सकता हूँ।
(राग लीलावती : बाज़ार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बाज़ार पति-पत्नी के बीच आ गया है, हमारे शयन-कक्ष तक घुस आया है। इस बाज़ार ने हर चीज़ को ख़रीद-फरोख़्त में बदल दिया है, यहाँ तक कि अब घर भी हमारे लिए घर नहीं, बल्कि वह भी ख़रीदने और बेचने की वस्तु बन गया है। यह संवेदनहीनता का समय है, यह भागमभाग का समय है। यह गलाकाट प्रतियोगिता का समय है। यह हिंसक समय है, आज झूठ के सामने सच हार रहा है, आज न्याय बिक रहा है। आज झूठ पर सच का लेवल लगा दिया गया है। आज की सांप्रदायिक और आतंकवादी हिंसा के सामने गांधीवाद फ़ेल हो रहा है। वैश्वीकरण, उदारीकरण और बाज़ारवाद की ये सहज परिणतियाँ हैं।

अरविन्दाक्षन की कविता वस्तुतः देशज स्वभाव की कविता है, इसीलिए यहाँ हमारा लोक जीवित है, गाँव जीवित है और स्मृतियाँ जीवित हैं। कवि के सपनों की दुनिया जीवित है, कवि का प्रेम जीवित है। उसके लिए कविता भी एक प्रेम है और बीज बोना भी एक प्रेम है। स्वप्न कवि के लिए प्रेम की तरंग है। उसके लिए घास की हर पत्ती मिट्टी की लिखी कविता है। उसके लिए हवा के भीतर केवल तूफ़ान ही नहीं, कविता भी है। वह हमारे स्वप्न को जगाता है। उसका प्रेम व्यापक और अगाध है। वह धरती से आकाश तक फैला है, इसलिए अपनी कविता की खोज में हर उस जगह तक जाना चाहता है, जहाँ कविता संभव होती है :

कविता को सदैव ढूँढना पड़ता है
किसी की झोली में
किसी के बक्से में
किसी के भंडारघर में
किसी के सपने में।
इतने पर भी
बहुत कम कविताएँ ही मिल पाती हैं।

(सपने सच होते हैं : कविता मेरे लिए-2)

इसीलिए, अरविन्दाक्षन के लिए कविता एक स्वप्न भी है। यदि कवि के लिए काव्य-वस्तु की खोज महत्त्वपूर्ण है, तो वह कविता के रूप की भी खोज करता है और इसके लिए वह किसी भी पूर्व निर्धारित स्थिति को स्वीकार नहीं करता।

अरविन्दाक्षन की कविता बार-बार स्मृतियों की दुनिया में लौटती है। वह स्मृतियों के भीतर भी संवेदनाओं की खोज करती है। इस तरह, वह एक बार फिर जिये गये जीवन की दुनिया में जाती है। स्मृतियाँ उसे अपने संस्कारों, अपनी ज़मीन और अपने लोक-जीवन में ले जाती हैं। इन स्मृतियों के माध्यम से वह समय की परिवर्तनशीलता को भी व्यक्त करता है। वस्तुतः, स्मृतियाँ कवि के लिए किसी मायालोक की तरह नहीं हैं, बल्कि एक खुरदरे यथार्थ के साथ वे वर्तमान के यथार्थ से टकराने की शक्ति देती हैं। कवि बताता है :

फ़सल की कटाई के बाद
हम खेतों में खेला करते थे
ठूँठ के लगने से हमारे पैर छिल जाते थे
हमारे बच्चे खेतों में खेलते नहीं हैं
वे जो खेलते हैं
उनसे हम परिचित नहीं हैं।

(आसपास : यादें)

कवि लोक-जीवन की कृषि-संस्कृति और आज की प्रौद्योगिकी की संस्कृति के द्वैत को स्पष्ट रूप से न केवल देख रहा है, बल्कि उनके अलग-अलग मूल्य-संसार को भी व्यक्त कर रहा है। कवि इस फ़र्क़ को सामाजिक, आर्थिक और राजनीति संदर्भों में भी खोजता है।

वस्तुतः, अरविन्दाक्षन की कविता अपनी परंपरा और अपने मूल्य की चिंता की कविता है। वह सांप्रदायिकता का विरोध करती है। वह धर्म के पाखंड का विरोध करती है। वह अपने क्षोभ और आक्रोश तथा खुशी और उल्लास को व्यक्त करती है। वह मानवेतर सृष्टि के साथ अपनी रागात्मकता को बाँटती है। चिरैया, कुत्ता, बिल्ली, चीटियाँ, मकड़ी का जाला, बैल, साँड़, घोड़ा, भैंस—अरविन्दाक्षन की कविता में जीवन की नयी परिभाषा रचते हैं। इस तरह, कवि जीवनानुभूतियों का विस्तार करता है, उनसे जीवन का नया पाठ सीखता है :

चीटियाँ भी गाती हैं
पंक्तिबद्ध होकर
अपने से भी तिगुना बोझ उठाकर जब वे
चलती हैं
वे गाने लगती हैं
गाते-गाते वे अपना बोझ हल्का करती हैं।

(आसपास : चीटियाँ)

कवि जल, मिट्टी, हवा, आकाश और आग से अपना रागात्मक संबंध स्थापित करता है और इनमें आ रहे विकारों, प्रदूषणों की चिंता करता है। बाज़ारवाद ने आज हमारे जीवन को कलुषित किया है, इसकी उसे पीड़ा भी है :

वसंत का भाव कम हो गया है
पर फूल का भाव बढ़ रहा है
वर्षा का सौंदर्य रह नहीं गया है
पर पानी बोतलों में बिक रहा है
आदमी का भाव शून्य हो गया है
पर एक आदमी सब कहीं मौजूद है
घूरते हुए।

(सपने सच होते हैं : एक आदमी)

अरविन्दाक्षन की कविता हमारी उम्मीदों को बचाये रखने की कविता भी है। उनकी कविता चुनौतियों को भी स्वीकार करती है। निश्चय ही, कविता हमारे संवेदन-जगत को जीवित करती है। इस दृष्टि से अरविन्दाक्षन की कविता हमें आश्वस्त करती है कि अभी भी बहुत कुछ बचा है, जिससे मनुष्यता का एक नया इतिहास रचा जा सकता है। अंततः मनुष्यता की विजय अवश्यंभावी है।

आचार्य, हिन्दी विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर-470003

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केरल के कुछ विशिष्ट हिन्दी कहानीकार

के.एम.मालती

केरल में हिन्दी के प्रचार और लोकप्रियता का दिग्दर्शन यहाँ के कुछ विशिष्ट हिन्दी कहानीकारों की मौलिक हिन्दी कहानियों के रूप में हम कर सकते हैं। 'हिन्दी प्रचारक', 'हिन्दी मित्र', 'केरल भारती', 'राष्ट्रवाणी', 'युग प्रभात', 'केरल ज्योति' जैसी पत्रिकाओं में हिन्दी प्रचार के समय पी.के. केशवननायर, एम.पी. माधवक्कुरुप, सी.जी. गोपालकृष्णन, ई.के. दिवाकरनपोट्टी, के. परमेश्वरन पिल्लै, के. कृष्णमेनोन, के. नारायणन जैसे हिन्दी सेवियों की कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। केरल के समकालीन हिन्दी कहानीकारों में डॉ. वी. गोविंद शेनाय एक विशिष्ट हस्ताक्षर हैं। उनका–मिस्टिक साहब का कुरता' तिरूवनन्तपुरम से 1961 में प्रकाशित हुआ। यह 26 लघु व्यंग्य-कथाओं का एक संकलन है। शेनाय जी की धारदार क़लम से उपजे विशिष्ट पात्र अपने आसपास की ज़िंदगी की विडंबनाओं की झलक प्रस्तुत करते हैं। 'चवन्नी' कहानी के पंडित जी के परिवार का चित्र यों खींचा है–"पंडित जी की अर्द्धांगिनी और तीन बच्चियों में विधाता ने इतनी अधिक हड्डियाँ भर दी हैं कि चांदनी रात में पड़ोसी क्या स्वयं पंडित जी भी भयभीत हो जाते हैं।" (मिस्टिक साहब का कुरता, पृ. 8) ग़रीबी हटाने की सरकारी मुहिम और उनके समर्थन में दिये जाने वाले तर्कों को यहाँ स्पष्ट किया गया है। कम्यूनिस्ट किसनू एक ऐसा पात्र है, जो नेता के पीछे अंधा होकर घूमता है। सोच-विचार करने की शक्ति उसमें बिल्कुल नहीं है। अपने व्यक्तिगत जीवन में निर्णय लेने में वह असमर्थ है–"किसनू ने अपनी प्रेमिका लछमी के भारी बदन, पीले और निस्तेज चेहरे की ओर उदासीन दृष्टि से देखा और तनिक गंभीर होकर कहा कि उसके प्रति अपने दायित्व के संबंध में वह सेक्रेटरी कॉमरेड जगन्नाथ से परामर्श करेगा और सूचना देगा"। (पृ.5) नेता लोग किसनू जैसे निरीह मूर्खों का शोषण निरंतर करते कहते हैं। कहानी का अंत इस चुभते व्यंग्य से हुआ है- "जगन्नाथ के मन में किसनू के प्रति विशेष ममता थी और उनकी कृपा से किसनू की अविवाहित बहन को संतान-लाभ हुआ था।" उनकी दूसरी कहानी 'मनमोहन मिस्टिक और मूँगफलियाँ' वर्तमान पुस्तक प्रकाशन की गतिविधियों पर तीखा व्यंग्य है। पुस्तक प्रकाशन के संदर्भ में मनमोहन मिस्टिक के शब्दों पर ध्यान दें–"मुझे सिर्फ़, इतना ही कहना है कि पुस्तक आप जल्दी प्रकाशित करें। 'मस्ती' के संपादक से मेरी घनिष्ठता है। मैं आज ही उन्हें लिखता हूँ कि वे एक सुंदर समीक्षा तैयार करें। मैं चाहता हूँ कि अगर हो सके, तो समीक्षा पहले ही प्रकाशित हो जाए"। (पृ. 50) प्रोफ़ेसर कामाक्षी रमण वेदांत का प्राध्यापक है, जो शेनाय जी का एक अलग पात्र है। उससे चंदनपुर के वेदांत-परिषद में भाषण देने के लिए निवेदन किया गया। वेदांत से उनका नाता छत्तीस का था। "प्रोफ़ेसर साहब दो घंटे तक बोलते रहे। लेकिन लोगों की समझ में कुछ नहीं आया। हाँ, अंत में जब उन्होंने सामने ही महिलाओं के बीच में बैठी हुई श्रीमती मिस्टिक की ओर देखकर कहा कि माया और ममता के बंधनों को तोड़ने का आह्वान करने वाले शंकर के मायावाद को और विद्वान भले ही मानें, मैं नहीं मानता, मान ही नहीं सकता, तो लोगों ने उनके व्याख्यान का मर्म समझा। अचानक किसी के मुँह से निकल पड़ा–अरे, आदमी ख़तरनाक है"। (पृ. 64) शेनाय जी अपने समय पर खुलकर हँसने वाले कहानीकार हैं। बदलते सामाजिक परिवेश में आतंरिक और बाह्य स्थितियों के बदलाव से पैदा हो रही मूल्य-शोषण की समस्या को उन्होंने उठाया। उनकी कहानियों में स्मृतियों का संसार कौंधता रहता है। उनके पात्र वक़्त के अँधेरे में गुम नहीं होते। शेनाय जी की ख़ूबी यह है कि वहाँ लघुकथा और व्यंग्य को हम अलग नहीं कर सकते। लिहाज़ा, लघुकथा की उनकी भाषा वाक़ई आश्चर्यजनक है।

'प्रोफ़ेसर साहब का कुरता' कहानी का एक भाग है–"प्राध्यापक कामाक्षी रमण जी को जब अपने शृंगार-गृह में कहीं भी अपना खद्दर का कुरता दिखायी नहीं दिया, तो उन्होंने अपनी श्रीमती जी को इतने ज़ोर से पीटा कि बाहर गली में 'ऐसस्टिक' का नारा लगाने वाला लड़का भयभीत हो गया। पतिदेव के भावावेग की इस सक्रिय अभिव्यक्ति का श्रीमती जी पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे मुक्तछंदों में विलाप करने लगी। पत्नी के विलाप को किसी अविवाहित भद्र महिला के विलाप के रूप में अनुभव करने में असमर्थ होने के कारण उनकी आँखें अश्रुपूर्ण नहीं हुईं। हाँ, पीटना उन्होंने अवश्य बंद कर दिया। गालियों के तत्सम और तद्भव दोनों रूपों पर प्रोफ़ेसर साहब का पूर्ण अधिकार था और स्थानीय कम्यूनिस्ट जगन्नाथ की कृपा से उनके पास कुछ रूसी गालियों के अंग्रेज़ी रूपांतर भी एकत्र हो गये थे"। (पृ.76) चीज़ों को जानने-पहचानने का शेनाय जी का नज़रिया सराहनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी प्रतिभा का कोई विकल्प नहीं है। वे खुद साफ़ दीपक के हैं और उनकी रचनाओं में जो आत्मीयता है, वही उनकी अस्मिता है। लेखक वर्तमान माहौल का कोना-कोना छानकर रचना करते हैं।

एन: चंद्रशेखरन नायर की कहानियाँ सत्तर के दशक में प्रकाशित हुईं। 'हार की जीत' आठ कहानियों का एक संकलन है, जिनका प्रकाशन 1964 में हुआ। (राजपाल, एंड सन्स, दिल्ली) राष्ट्रभारती, वर्धा का यह कथन इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि 'हार की जीत' न सिर्फ़ इसलिए मान-सम्मान एवं कौतुक की वस्तु है कि उसे एक दक्षिण भारतीय ने, एक केरलीय ने लिखा है, बल्कि इसलिए कि वह हिन्दी भाषा की स्वच्छता एवं सुघड़ता की दृष्टि से भी अवश्यमेव कलाकृति बन पड़ी है। इस संकलन की 'बाप का बेटा' कहानी पिता-पुत्र संबंध को उजागर करती है। कहानी के पिता को जीवन की सफलता और परम आनंद का अनुभव उस पल महसूस हुआ जब बेटा खुद पिता से बढ़कर बड़ा चित्रकार सिद्ध हुआ। 'हार की जीत' कहानी में नाटकीयता है। स्त्री-हृदय की सच्चाई और प्रेम-भावना की गहराई सही अर्थ में समझने में पुरुष असमर्थ होते हैं। कर्णाल के महाराज और उनकी पत्नी मायादेवी के ज़रिये नायर जी इस ओर संकेत करते हैं। 'भवोति अम्मा' कहानी की माँ अपनी बेटियों के साथ जी रही है। ग़रीबी के बीच भी वह समान अवलाओं की मदद करती है। अपनी बेटियों के चरित्र में कलंक नहीं आने देती। कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाती। जीवन की चुनौतियों को बेलौस अंदाज़ में झेल लेने की ताक़त रखने वाली नारी की वह प्रतिनिधि है। 'प्रोफ़ेसर और रसोइया' कहानी-संकलन 1974 में प्रकाशित हुआ। (वाणी प्रकाशन) इसमें ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं। इस की भूमिका में कमलेश्वर ने लिखा है कि ये कहानियाँ आज़ादी के बाद हुए तमाम परिवर्तनों के बीच भी अपरिवर्तित स्थितियों और संस्कारों की कहानियाँ हैं। कहानी का प्रोफ़ेसर तथा रसोइया दो वर्गों के प्रतिनिधि हैं। एक के लिए भूखे रहना नीरोग रहना है और दूसरे के लिए भूखे रहना ही सबसे बड़ा रोग है। दोनों ही खाने के आसपास घूमते हैं, लेकिन दोनों ही चाहकर भी खा नहीं पाते। दोनों का कार्य एक है, लेकिन कारण अलग-अलग हैं। कहानीकार का संकेत यह है कि स्वतंत्र भारत में खुशहाली का सपना, सपना मात्र रह गया है। ऐसा सोचा था कि आज़ादी के बाद यहाँ कोई बीमार नहीं रहेगा, भिखमंगा नहीं दीखेगा। ख़ैर, आज़ादी के बाद की हालत पहले से बिगड़ गयी थी। कहानी में एक दृश्य है—"पर होटल के द्वार पे.वे पाज़ी अब भी सामने बोरे बिछाकर बैठे हुए हैं। बदमाशों के हाथी-पाँव जैसे पावों से पीव निकलती है। हाथ की उँगलियाँ घिस-घिसकर मानों ठूँठ रह गयी हैं! नाक के स्थान पर एक बड़ा गह्वर है! सारे बदन पर मक्खियाँ भिन-भिना रही हैं"। (पृ. 12) आज़ाद भारत की यह तस्वीर है, घृणास्पद, तिरस्कारजन्य व्यवहार सहने के लिए अभिशप्त कोढ़ियों की यह शोचनीय हालत है। 'यह खेल' कहानी सामाजिक विसंगतियों का पर्दाफ़ाश करती है। प्रस्तुत कहानी ग़रीब तबके के लोगों की कहानी है, जो हर दिन किसी न किसी जुलूस में भाग लेते हैं और मज़दूरी पाते हैं। वे इन्सान नहीं, महज़ पैर हैं, जैसे—"कहने को वे सब पैर थे। मगर अक्सर वे अपना रूप बदल लेते थे। कभी वे किसी जुलूस का अंश हो जाते थे और कभी जुलूस के पैर बन उस मूक राह से गुज़रते थे क्योंकि वे मजबूर थे। क्यों न हों, बेचारे जो थे। उन्हें सरकार से ममता थी। हर दल से ममता थी। जुलूस से प्यार था। जुलूस ही उनके जीवन का आसरा था। कोई अन्य काम करे, ज़्यादा कमा लें, तो उनकी बला से। हाँ, इन्हें तो जुलूस से ही प्यार था, ऐसा कहकर संतोष भर कर लेते। नहीं तो क्या, रोज़ इन्हें कुछ न कुछ खाने को तो मिलना ही था"। (पृ. 25) ज़ाहिर है कि ग़रीबी की कोई राजनीति नहीं, किसी पार्टी के दल से उसका उतना मतलब नहीं।

हिन्दी लघुकथा के क्षेत्र में डॉ. जी. गोपीनाथ ने अपनी छाप बना ली है। 'कुट्टिच्चात्तन' (:सद्भावना दर्पण'-अक्तूबर-दिसंबर, 1998) 'निधि का बरतन', 'पांचालियाँ', 'बुरी नज़र', 'भैरव का ताड' (साहित्य अमृत, मार्च-2009), सावो किला महल ('कादंबिनी' कहानी विशेषांक, फ़रवरी-2009), 'रूसी जादू' (कादंबिनी-जुलाई 2009) कुछ उदाहरण हैं। 'कुटिटच्चात्तन' में फ़िनलैंड की बर्फ़ीली शांत जगह में अपने पाँच मंज़िले फ़्लैट के निचले तल्ले पर रहने वाले मणि का अनुभव है। ऊपरी तल्ले पर रहने वाले पति-पत्नी तथा उनके दांपत्य में दरार पैदा करने वाली प्रेमिका इसके पात्र हैं। पति-पत्नी की आपसी फूट चरम बिंदु पर तब पहुँचती हैं, जब पति पत्नी की उपेक्षा करके प्रेमिका के संग निकल पड़ता है। 'कुट्टिच्चात्तन' के मिथक के जरिये फ़िनलैंड के जीवन-परिवेश को उजागर किया गया है। जैसे- "उस रात वह क़रीब चार बजे तक सो नहीं पाया था। शायद चात्तन अपनी सांगिनियों के साथ नाच रहा हो, आवाज़ से तो यही लग रहा था। कुछ दिनों तक फिर शांति रही। तभी एक दिन देर रात वह चमत्कारीक घटना घटी। कुट्टिच्चात्तन और उसकी माया के बीच संबंध-विच्छेद हो रहा था शायद! कई चीज़ें छत पर और नीचे फेंकी जा रही थीं। माया अट्टहास कर कुछ कह रही थी। तभी कोई मोहिनी नीचे अपना वाहन ले आयी और कुट्टिच्चात्तन अपने मंत्र-तंत्र की पिटारियाँ लेके उसमें जा बैठा और माया के पीछे अट्टहास करती रही।" 'पांचालियाँ' कहानी पुरानी पीढ़ी में प्रचलित एक प्रथा की ओर इशारा करती है। विवाहिता स्त्री स्वेच्छा से पांचाली की परंपरा का निर्वाह करने के लिए तैयार होती रही। इस रीति की कड़ी आलोचना करने वाली शिक्षित नारी बेबी एक ऐसी पात्र है, जो पति-पत्नी संबंध में पति के भाइयों को समेटने के पक्ष में बिल्कुल नहीं है। वह इस प्रथा के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाती है। संपत्ति का लालच, यौन-असंतोष और कामातुरता ही आधुनिक पांचालियों की बहुलता के कारण हैं। 'कुट्टिच्चात्तन', 'नागदेवता','निधि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरतन', 'भैरव का ताड' जैसी लघुकथाओं में लोक-तत्त्व और लोक-विश्वासों को समकालीन जीवन-संदर्भ में परखा गया है। 'रूसी जादू' कहानी में व्यंग्य यह है कि रूस जैसे समाजवादी देश में भी जादू-टोना, हस्तरेखाशास्त्र जैसे विषयों में विश्वास रखने वाले इन्सानों की कमी नहीं है।

समकालीन हिन्दी कहानी लेखकों में पी.कृष्णन की कहानियाँ जीवन-यथार्थ से जुड़ी कहानियाँ है।'दूसरा पहलू और अन्य कहानियाँ' नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, कालीकट से 2007 में प्रकाशित है। अपने चारों ओर की ज़िंदगी से कुछ लम्हों को सावधानी से कहानी के सूत्र में उन्होंने पिरोया है। क़ैदियों के जेल जीवन और उनकी मानसिकताओं को केंद्र में रखकर कहानीकार ने 'दुविधा','अलविदा', 'प्रसंगवश' जैसी कहानियाँ लिखी हैं। क़ैदियों में सौ फ़ीसदी अपराध ा-भाव नहीं रहता है। उनमें भी कहीं न कहीं सच्चे मानव का अंश बना रहता है। 'अलविदा' की माधवी, पेशेवर गुंडा मुकुंदन; 'प्रसंगवश' का क़ैदी सुकुमार उनमें से कुछ पात्र हैं। 'दूसरा पहलू' कहानी का लाखन उग्रवादियों के गुट में फँस जाता है और नशीली दवाओं का गुलाम बन जाता हैं। निरीह, निहत्थे,मासूम लोगों की हत्या करके लाखन अपने अंदर घुटन और बेचैनी महसूस करता है। नतीज़तन उसने अंत में पिस्तौल की नली अपनी छाती की ओर मोड़ दी। इस संकलन की 'दहलते रिश्ते' बिगड़ते संबंधों और रिश्तों की कहानी है। नौकरी की तलाश में फँसे हुए परिवार के सदस्यों में रिश्तों की ममता की डोरी एकदम टूट चुकी है। नौकरी पाने का अरमान लेकर आया युवक असमंजस में पड़ा है कि क्या रास्ता अख़्तियार करें। जैसे- "भाभी समय पर नाश्ता और खाना देती थीं। न जाने क्यों वे मुझसे बातें नहीं करती थीं। कभी-कभी मुँह फुलाकर अपने पति से वह खुसुर-फुसुर करती थी। एक दफ़ा शायद मुझे सुनाने की वज़ह से वे बेडरूम से ज़ोर से बोल दी-कैसा बदतमीज़ भाई है तुम्हारा। एक बार आने पर वह जाने का नाम भी नहीं लेता। क्या कमाकर लाने को और कोई है इधर? क्यों साफ़ नहीं कह देते कि भाई अपने गाँव चले जाओ। इधर वर्षों रहने पर भी कोई काम-ध ाम मिलेगा नहीं"। (पृ. 27) वापस जाने के लिए गाड़ी में बैठने पर ही युवक ने इत्मीनान की साँस ली। 'मुखौटा' कहानी में प्राकृतिक विपत्तियों से बचने की कोशिश में अपना सब कुछ छोड़कर सुदूर पहाड़ी इलाकों में आ बसने वाले मज़दूरों की दुखभरी ज़िंदगी और ज़मींदारों द्वारा उन पर किये जाने वाले जुल्मों के जीवंत चित्र बिखरे पड़े हैं। ज़मींदारों के जंगलीपन की यह कहानी है। 'मुझे कहने दो' कहानी में दिखाया गया है कि प्रेम कैसे ईर्ष्या में बदल जाता है और कैसे प्रतिशोध की भावना जन्म लेती है। पी. कृष्णन की कहानियों में रोज़मर्रा के इस्तेमाल में आने वाले शब्दों की बहुलता है। जीवन के संवेदनात्मक सत्य का साक्षात्कार कराने वाली कहानियों के लायक बोलचाल के शब्दों और मुहावरों का चयन करने की पटुता सराहनीय है।

केरल के हिन्दी कहानीकारों में रचनाशीलता की नयी रोशनी जे. बाबू की लेखनी से निःसृत हो रही है। 'तहवील', 'बरसात में आग' (जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2009) दो कहानी संकलन उन्होंने प्रकाशित किये हैं। कहानीकार के अनुसार कहानी एक संवाद है, अपने से और अपने चारों ओर की दुनियाँ से होने वाला रचनात्मक संवाद। तहवील की कहानियाँ व्यक्ति केंद्रित कहानियाँ हैं। व्यक्ति-जीवन में जिन 'स्थितियों' से गुज़रना पड़ता है, उन स्थितियों से पाठक का संवाद कराने वाली ये कहानियाँ हैं। 'तहवील', 'अहसान' जैसी कहानियों में सुनामी से उपजे हादसों और विपत्तियों के शिकार बेसहाराओं की पीड़ा को जीवंतता के साथ शब्दबद्ध किया गया है। कन्याकुमारी ज़िले के मणक्कुडी इलाके के मछुआरों की ज़िंदगी में सुनामी की लहरों ने जो महाविनाश बोया था, इसकी एक झाँकी 'तहवील' में है। सागर मछुआरों का वरदायी है और वह उनका अहित नहीं कर सकता। सागर-तट के निवासियों के इस विश्वास को सुनामी की लहरों ने ग़लत साबित किया। अपनी बच्ची और सास को बचाने का भरसक प्रयास करने वाली फिलोमिना के हाथों से ये भीषण लहरें दोनों को छीन लेती हैं। उसकी झोंपड़ी बह गयी है। वह असहाय औरत दुख और तनाव से मानसिक संतुलन खो बैठी है। फिलोमिना चिंतित है कि पति की अमानत की रक्षा वह न कर सकी। वह अनजान है कि पति भी कन्याकुमारी में सुनामी लहरों का शिकार बन चुका है। 'अहसान' का बालक शंकर ऐसा अभागा है कि अपने पिता की लाश तक नहीं मिली। उनका तर्पण तक वह नहीं कर सका। शंकर का विश्वास है कि पिता के तर्पण न करने की वजह से उस पर इसका पाप ज़रूर रहता है और उसके जीवन में आने वाली भीषण स्थितियाँ इसी पाप का परिणाम हैं। सुनामी-पीड़ित परिवेश को उकेरने में कहानीकार सफल हुआ है। ये कहानियाँ मछुआरों की ज़िंदगी के जीवंतानुभवों की संवेदना का चिंतन हैं। 'छिपकली' जैसी कहानी में हल्के से संकेतों में पति-पत्नी संबंध को, दांपत्य की दरारों को चित्रित किया है। आपसी समझ की, साझेदारी की कमी पारिवारिक संबंधों में ढीलेपन का कारण बनता है। एक विचित्र खींचतान, रस्साकशी के बीच फँसे पति-पत्नी 'छिपकली' कहानी के पात्र हैं। पति की कश्मकश इन पंक्तियों में है—"पैरों की आहट की प्रतीक्षा में लेटे मुझको निराश होना पड़ा। मैं बिस्तर से उठ बैठा। मैंने देख लिया कि रज़नी एक हाथ में माला-डी की गोलियाँ और दूसरे हाथ में एक गिलास पानी लेकर आ रही है। मैं घृणा से तिलमिला उठा। मुझे उबकियाँ होने लगीं। मुझे लगा कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। मेरा मन वितृष्णा से भर गया। रजनी ने लेटने के पहले कुछ कहा था, लेकिन मैंने कुछ सुना नहीं। क्योंकि उस वक़्त उस औरत में सुनने लायक कुछ था ही नहीं। हम दोनों के बीच नीरवता की एक अदृश्य दीवार खड़ी हो गयी। आज यहाँ सागर के किनारे निःश्वास छोड़ते हुए मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचना पड़ा था, हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और''। (बरसात में आग-पृ. 29) मानसिक तनाव को संतुलित और संयमित शैली में दिखाया गया है। सूचना-प्रौद्योगिकी के इस युग में मल्टी नेशनल कंपनी में काम करने वाले युवाओं की व्यस्त ज़िंदगी की परेशानियों को उजागर करने वाली एक सशक्त कहानी है 'www.bekari.com.zindgi' सूचना-प्रौद्योगिकी की दुनियाँ में 'यूज़ एंड थ्रो' या 'हायर एन्ड फ़ायर' का नारा बुलंद है। मेधावीं युवाओं का दोहन किया जाता है। उनकी क्षमता को निचोड़ा जाता है। कंपनी का 'आउटपुट' बढ़ाने के लिए तन-तोड़ मेहनत करने वाला अरुण सोचने लगा, आज तक जान-बूझकर मैंने एक क्षण भी नहीं गँवाया। शाम के छह बजे से दूसरे दिन सवेरे सात तक का समय काम करने का है। कभी-कभी 'शिफ़्ट चेंज' भी होती है, काम के बीच रात के वक़्त आँख मींचने का मौक़ा तक नहीं रहता। कंपनी में आने-जाने के लिए कंपनी की गाड़ियाँ हैं। गाड़ी में बैठते वक़्त ही मित्रों से बातें करने का मौक़ा रहता है। कभी-कभी ठंडा पानी पीने के लिए वॉटर कूलर के पास जाते दूसरों से मिलने का अवसर हाथ आता। ऐसी मुलाक़ातों को 'वॉटर कूलर चाट्' कह देते थे हम। लेकिन, आजकल हर कमरे में वॉटर कूलर रखकर नये सी. ई.ओ. ने यह सुविधा भी हमेशा के लिए हमसे छीन ली है''। (पृ. 42) यहाँ सब कर्मचारी कंपनी के गिरमिटिया मज़दूर हैं। 'यंत्र और शासन-तंत्र' कहानी में सिद्धार्थ और देवदत्त का हंसवाली के ज़रिये संकेत है कि वर्तमान में न्यायाधीश तक रिश्वतखोरी और पैसे के लालच से नहीं बचते हैं। अदालत में पैरवी करने वाले वकीलों की पूरी फ़ीस मंत्री ने दी थी। इसलिए, राजा शुद्धोधन ने फ़ैसला मंत्री पुत्र देवदत्त के पक्ष में सुनाया था। ''सारे प्रश्नों के जवाब दोनों वकील ख़ूब जानते हैं। जब दूर सड़क पर मंत्री की गाड़ी दीख पड़ी। जब वकीलों की गाड़ी पुलिस चौकी के सामने पहुँची, सफ़ेद रंग के हंस की लाश सामने गिर पड़ी। दोनों चेहरों पर मुस्कुराहट फैल गयी।'' (बरसात में आग, पृ. 49)। इस कलियुग में आम आदमी की हालत इस हंस की हालत से क़तई भिन्न नहीं है। इन सारी कहानियाँ से कहानीकार डॉ. बाबू की अंतर्दृष्टि के प्रति सहृदय पाठक आकृष्ट हो जाते हैं।

पाठकों के दिल-दिमाग़ को छूने वाली कहानियाँ और लघुकथाएँ केरल के हिन्दी कथाकार लिख रहे हैं। 'केरल ज्योति', 'संग्रथन', 'साहित्य-मंडल पत्रिका' जैसी पत्रिकाओं में केरलीयों की हिन्दी कहानियाँ निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। हिन्दी कहानी-संसार में इन कहानियों पर चर्चा और मूल्यांकन अभी होना है।

सौपर्णिका
(पी.ओ.) कुलक्काटचार्ली,
(वाया) चेलेम्ब्रा, केरल
पिन-673634

कविता

मेरा जीवन

कृष्ण 'सौमित्र'

मिटे बने विचार
यूँ मन में
घने मेघ ज्यों
नील गगन में
प्रिय वियोग में
विचलित मनवा
सूनापन उतरे
नयनों में
हर उसांस से
जलता तनमन
तीखी जैसे गंध
पवन में
डरे-डरे नयन
तकते हैं
बाधा बनता
जगत मिलन में
पतझरित विटप बसंत आने पर
पुनः हरित हो जाते
लेकिन ठूँठ जो रहे बसंत में
ठूँठ बने रह जाते
मेरा जीवन ऐसा
ठूँठ बने जो तरुवर का
एक था झोंका पतझर का
क्या-क्या भूलूँ, कैसे भूलूँ
पगलाया सा रहता मन
तुम तो सदा कहा करती थी
तन दो हैं पर एक है मन
तन से मन का, मन से तन का
होता है गहरा संबंध
जाने फिर क्यों तुमने
तोड़ दिये मन के बंधन

13/157, गली बंबे वाली
नजदीक जैन आटा चक्की
बहादुरगढ़-124507
जिला-झज्जर (हरियाणा)

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में भाषायी अस्मिता

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी

'भाषा' मानव की अमूल्य सम्पत्ति है, यह कभी मानव के मुख से उच्चरित होकर उसके मनोभावों को अभिव्यक्त करती है, तो कभी स्वयं तटस्थ रहकर अपने समग्र समाज को अभिव्यक्त करती है, अभिव्यक्ति इसके मूल में होती है, यह चाहे अंतर्वैयक्तिक हो या फिर अंतर-सामाजिक। हाँ, इसमें यह ज़रूर कहा जा सकता है कि जब यह अंतर्वैयक्तिक भूमिका में होती है, तो किसी समाज का निर्माण कर रही होती है और जब अंतर-सामाजिक होती है, तो व्यापक संदर्भों में किसी अस्मिता का। यद्यपि भाषा और समाज के अन्योन्याश्रयी संबंधों की स्थिति में भाषा एक ऐसे माध्यम के रूप में परिलक्षित होती है, जो अस्मिता-निर्माण के अद्वितीय साधन के रूप में प्रयुक्त हो जाती है। यूँ तो 'स्व' को अभिव्यक्त करना ही अस्मिता-बोध का प्राथमिक चरण होता है, लेकिन इसके अगले चरणों में एक समाज और फिर एक ऐसे बोध का भी निर्माण होता है, जिसमें भाषा जीवन-मरण का प्रश्न बन जाती है एवं इसी प्रक्रिया में भाषा का सर्वाधिक मुखरित स्वरूप सामने आता है और इसी बोध का प्राणी-जगत के सबसे बुद्धिमान जीव अर्थात् 'मानव' गाहे-ब-गाहे अपने स्वार्थों और कुंठाओं के अनुरूप किसी भाषा को पुरस्कृत या बहिष्कृत करने का उपक्रम शुरू कर देता है। तब तक भाषा सिर्फ़ अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि अस्मिता- निर्माण का माध्यम बन चुकी होती है, जिसकी पूरी परिधि कहीं-न-कहीं किसी 'स्व' की अभिव्यक्ति के इर्द-गिर्द मँडरा रही होती है।

भारत एक बहुभाषिक देश है। इसमें सामान्यतः चार भाषा-परिवारों,—भारोपीय, द्रविड, तिब्बती-बर्मी और एस्ट्रो-एशियाटिक—ने इस बहुभाषिकता को एक अलग तरह की जटिलता प्रदान की है। इसके साथ ही भारत की बहुसांस्कृतिक प्रांतीय एवं स्थानीय बहुलता एक ऐसी कड़ी है, जिसको इस बहस से अलगाया नहीं जा सकता। बहरहाल अस्मिता-निर्माण के जो तत्त्व बन सकते हैं या बनाये जाते हैं, उसमें भाषा सबसे संवेदनशील कारक है, यह सीधे समाज के मन-मस्तिष्क पर अपना असर छोड़ती है, जिससे किसी समुदाय का संगठित या विघटित होना एक साधारण -सी परिघटना होता है। आज कोई समुदाय किसी भी रूप में एकत्रित क्यों न हुआ हो, भाषायी लगाव के नाम पर या संप्रेषण की अपरिहार्यता के कारण तत्समुदाय के भीतर कुछ और समुदायों के रूप में विभक्त हो सकता है, बावजूद इसके कि उस समुदाय के हित समान हो, उद्देश्य समान हों। बहुभाषिक भारत में यह कई अधिक्रमित स्तरों पर देखने को मिलता है। पूर्वोत्तर राज्यों में एक भाषा-भाषी क्षेत्र के रूप में चिह्नांकित क्षेत्रों के भीतर भी एक पहाड़ी से घिरे क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र के बीच भाषिक भिन्नता पायी जाती है। कई क्षेत्रों में यह भिन्नता भाषा-संपर्क के अभाव के फलस्वरूप भी होती है। ज़ाहिर है, पूर्वोत्तर की इन छोटी-छोटी राज्य-स्तरीय अस्मिताओं के बावजूद छोटी-छोटी भाषिक अस्मिताएँ भी हैं। कमोबेश यह स्थिति द्रविड भाषाओं में भी है। इसके अतिरिक्त भारत में हिन्दी के नाम पर जिस राजभाषा को चिह्नांकित किया गया है, वह अपने आप में बहुभाषिक भाषा है। हिन्दी के इस बहुभाषिक स्वरूप को प्रायः इनकी बोली कहकर यह मान लिया जाता है कि इन छोटी-छोटी बोलियों का समन्वित रूप हिन्दी है, ग्रियर्सन ने जिसे 'तथाकथित हिन्दी की बोलियाँ' कहा था। यहाँ भाषा और बोली के भेद की विभिन्न व्याख्याओं को इस स्तर पर बहुत ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि कोई ऐसा भाषावैज्ञानिक अकाट्य तर्क नहीं है, जिससे वह हिन्दी को भाषा और अवधी तथा भोजपुरी आदि की बोली सिद्ध कर सके। यदि ऐसा है, तो मैथिली, जो कल तक इसी हिन्दी की एक बोली थी, अचानक ऐसा क्या हुआ कि एक स्वतंत्र भाषा बन गयी। न इसमें अचानक शब्दों की कोई बाढ़ आयी है और न ही व्याकरण के नियमों में कोई निर्णायक परिवर्तन हुआ है। इसके साथ ही मैथिली में निहित साहित्य की प्रचुरता में भी ऐसा कोई निर्णायक बदलाव नहीं आया है, जिससे इस बोली को भाषा बना दिया गया। ध्यान रहे किसी भाषा में साहित्य-सर्जन की प्रक्रिया की तारतम्यता की अपनी गति हो सकती है, लेकिन इसका प्रभाव मैथिली, डोगरी और संथाली आदि को बोली से भाषा बनाने में कोई कारक नहीं है और यदि साहित्य की प्रचुरता ही किसी बोली के भाषा बनने का तर्क हो सकता है, तो इस क्रम में अपनी साहित्य-समृद्धि के बल पर अवधी का स्थान प्रथम होना चाहिए था। बहरहाल, यदि भविष्य में भोजपुरी और राजस्थानी इस क्रम में भाषा बन जाएँगी, जैसाकि इनके शुभचिंतक इसके विकास के लिए भी इसका श्रेय लेने का अवसर खोना नहीं पसंद करेंगे, तो फिर कुछ नये समीकरणों के साथ ये दोनों बोलियाँ भी भाषा बनकर स्वतंत्र रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज कराएँगी। तब यह प्रश्न उठता है कि हिन्दी क्या है? क्या सिर्फ़ खड़ी बोली, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आप में एक व्यापक संकल्पना है; हिन्दी है? यदि खड़ी बोली, जिसकी भौगोलिक सीमा मेरठ और दिल्ली के आस-पास का परिक्षेत्र है; के बोलने वालों की संख्या हिन्दी बोलने वालों की समग्र संख्या है, तो आज बड़े-बड़े आँकड़े क्यों दिखाये जा रहे हैं? वह कौन-सी मानसिकता है, जो इन हवाओं को प्रश्रय दे रही है, जिनकी मूल चिंता अब भाषा के क्षेत्रीय स्वरूप को केंद्रीय बनाने के नाम पर उस क्षेत्रीयता को स्थायित्व देना बन चुकी है, जो अब तक बिना संवैधानिक पुष्टि के अपने-आप को इसी केंद्रीयता में तलाशती रही है। दरअसल, यहाँ मुद्दा सिर्फ़ बोली से भाषा बनने का नहीं है, बल्कि भाषा के आधार पर अलग राज्य बनने का भी है, क्योंकि जो मैथिली कल तक सिर्फ़ हिन्दी की उपभाषा कही जाती थी, वह आज स्वतंत्र भाषा है और मिथिलांचल राज्य की माँग की पृष्ठभूमि भी है। अब इसी तर्क पर राज्यों की माँग को जायज़ ठहराया जाएगा, तो पूर्वोत्तर राज्यों में कई स्थानों पर एक-एक गांव अलग राज्य बनने की योग्यता रखता है।

कोई भी भाषा लोक में पैदा होती है और वहीं जीवित रह सकती है, जैसे-जैसे भाषा लोक से दूर होती जाती है, वैसे-वैसे वह उस सहज संप्रेषण की प्रक्रिया से दूर हो जाती है, जिसमें रहने पर ही भाषा का विकास होता है, इसका उदाहरण संस्कृत और फ़ारसी आदि भाषाओं के रूप में देखा जा सकता है, ये भाषाएँ कभी काफ़ी समृद्ध हुआ करती थीं और इन्हें न तो किसी संविधान की आठवीं अनुसूची की पुष्टि की आवश्यकता पड़ी और न ही किसी मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा शास्त्रीयता के दर्जे के प्रमाण-पत्र की। यदि इन भाषाओं को आज भी सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, तो इसका कारण इनमें निहित विपुल साहित्य और ज्ञान की परंपरा होना है, न कि किसी अधिरचना में इनकी स्वीकृति, लेकिन यह भी ध्यान रहे कि यदि आज ये भाषाएँ पूरे संदर्भों से विलुप्त-सी दिख रही हैं, तो वह सिर्फ़ इनके क्रमशः आमजन से दूर होने के कारण ही, जिसमें समय-सापेक्ष सरलीकरण को उसके मूल स्वरूप में स्वीकार नहीं किया गया है। इस पूरे प्रकरण में यह देखना काफ़ी दिलचस्प होगा, कि जो वर्ग हिन्दी की विभिन्न बोलियों को भाषा बनाने पर ज़ोर दे रहे हैं, समान्तरतः वे हिन्दी को विश्वभाषा बनाने के किसी प्रस्ताव का भी बढ-चढकर समर्थन करते हैं। यह द्विस्तरीय भूमिका परस्पर विरोधी है, क्योंकि जब हिन्दी की बोलियाँ भाषा बन जाएँगी, तो हिन्दी स्वयं भारत की अपनी भाषा होने की भूमिका में प्रश्नांकित होगी, तब यह विश्व भाषा कैसे बनेगी? अब इन दोनों पर एक साथ विचार करने की ज़रूरत है।

दरअसल, यह सब कुछ सत्ता से पोषित एवं संरक्षित प्रक्रिया में कहीं-न-कहीं स्वतंत्र अस्मिता की स्थापना का सुनियोजित उपक्रम है, जो सिर्फ़ किसी बोली को भाषा बनवाने तक सीमित रहने वाली नहीं है, बल्कि भाषा को शास्त्रीयता का दर्जा भी दिलवाने के लिए प्रयत्नशील दिखने लगी है, जैसाकि तमिल के संदर्भ में देखा जा सकता है। यह भी स्वीकारना होगा कि भाषा के अपने अस्मितायी गठबंधन का ज्वलंत उदाहरण 'तमिलनाडु' शुरू से रहा है, यहाँ एक तरफ़ हिन्दी का विरोध, तो दूसरी तरफ़ हिन्दी और इसके उत्स के केंद्र में रही संस्कृत के बरअक्स तमिल की प्राचीनता को हमेशा से दिखाया गया है, लेकिन यह सिर्फ़ संयोग नहीं है कि जब भारत सरकार ने तमिल को सर्वोच्च शास्त्रीय भाषा का दर्जा दे दिया और इस परं कार्य करने के लिए भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर को अधिकृत कर दिया, तब इसको एक स्वतंत्र संस्था का दर्जा दिलवाने की क्या आवश्यकता थी? वास्तव में यही इस पूरे घटना-चक्र की अंतिम परिणति थी और इस तमिल का विकास कर्नाटक स्थित मैसूर में संभव नहीं था, इसे तो तमिलनाडु में एक स्वतंत्र अस्मिता की स्थापना के रूप में स्थानांतरित होना ही था, क्योंकि यही इसकी नियति थी। बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती, इसी तर्ज पर अब स्वयं कर्नाटक में भी 'कन्नड' को सर्वोच्च शास्त्रीय भाषा का दर्जा दिलवाने के लिए इसके कथित शुभचिंतक प्रयत्नशील हैं और इसे जनांदोलन का स्वरूप देने में लगे हैं। इस चरण में यदि कल मलयालम और तेलुगु को भी इस शास्त्रीयता की होड़ में देखा जाए, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए, क्योंकि कम से कम तेलुगु को इतिहास के आईने में देखा जाए, तो स्पष्ट होगा कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् राज्यों के पुनर्गठन के समय भाषा के आधार पर राज्य की माँग कर रहे रामुल्लू की 56 दिन तक चले आमरण अनशन के बाद मृत्यु हो गयी थी, जिसके बाद 1953 में ही आंध्र प्रदेश का आविर्भाव हुआ, जो भाषा के आधार पर गठित होने वाला पहला राज्य था। ध्यान रहे कि यह आमरण अनशन की घटना ऐसे समय हुई थी, जब भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की प्रारंभिक माँग न्यायमूर्ति एस.के. धर की अध्यक्षता वाले चार सदस्यीय आयोग ने ख़ारिज़ कर दी थी। उसके बाद इस फ़ैसले की समीक्षा के लिए जवाहरलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और पट्टाभि सीतारमैया की एक समिति ने भी न्यायमूर्ति एस.के. धर की अध्यक्षता वाले आयोग के फ़ैसले को उचित ठहराते हुए भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन को अस्वीकार किया था। तत्पश्चात्, मद्रास राज्य के तेलुगु भाषियों ने रामुल्लू के नेतृत्व में पृथक आंध्र प्रदेश की माँग को लेकर आंदोलन आरंभ किया था और इसका परिणाम आज हम सबके सामने है। द्रविड भाषाओं एवं दक्षिण की राजनीति का यह पूरा प्रकरण कमोबेश ऐसे ही है, जैसे उत्तर भारत में हिन्दी-प्रदेश का है, इसमें अंतर सिर्फ़ यह है कि दक्षिण का आग्रह अब संबंधित भाषाओं को शास्त्रीयता प्राप्त करवाना है और उत्तर भारत में लोकातुरता का हवाला देकर हिन्दी की बोलियों को भाषा का दर्ज़ा दिलवाने का है। इस कुचक्र में लगे इन महानुभावों को संभवतः यह नहीं पता कि आमजन की अभिव्यक्ति पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि वह शास्त्रीय भाषा में बोल रहा है या संविधान से उपेक्षित किसी बोली में। यदि कुछ फ़र्क़ पड़ता है, तो इस प्रक्रिया में लगे इन भाषा के शुभचिंतकों और इनके बहुस्तरीय परस्पर हितों को। इस प्राथमिक चरण के

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपन्न होने के बाद शुरू होता अस्मिता-निर्माण का दूसरा चरण, जिसमें इन भाषाओं के बोलने वालों के भौगोलिक सीमांकन के आधार पर राजनीतिक सीमांकन किया जाता है। भारत में भाषाओं के नाम पर विभिन्न राज्यों के बँटवारे का उदाहरण हम सबके सामने है, जो आंध्र प्रदेश से शुरू होकर कहाँ रुकेगा यह कहना मुश्किल है और कितने क्षेत्रीय नेताओं की महत्त्वाकांक्षा पूर्ण होगी, यह भी भविष्य के गर्त में है। इसके साथ ही, इस राजनीति का एक घृणित रूप-भाषा के आधार पर हिंसा को बढ़ावा देने को भी देखा जा सकता है, जिसमें पूर्वोत्तर में हिन्दीभाषियों का विरोध हो, द्रविड़ राजनीति का अपना एजेंडा या महाराष्ट्र में अपने खोये जनाधार को हासिल करने या स्वयं को नये सिरे से स्थापित करने की चाचा-भतीजे की नूरा-कुश्ती। अब सवाल यह उठाता है कि एक तरफ़ भारत का अपना संघीय ढाँचा है, तो दूसरी तरफ़ बड़ी तेज़ी से उभर रही क्षेत्रीय अस्मिताएँ, जिनका आधार भाषाएँ बड़े स्वाभाविक ढंग से बनती जा रही हैं। यह स्पष्ट है कि अस्मिता-निर्माण की प्रक्रिया में भाषा सबसे संवेदनशील मुद्दा होता है, इसका उदाहरण पाकिस्तान से बांग्ला देश के रूप में देखा जा सकता है, जो धर्म के नाम पर तो भारत से विघटित हुआ, लेकिन भाषा के कारण अपने आप में संगठित नहीं रह सका।

भाषाओं के नाम पर स्थापित हो रही विभिन्न संस्थाओं को अस्मिता-निर्माण की परिणति के रूप में देखा जा सकता है। इनमें संस्कृत, उर्दू और हिन्दी आदि के नाम पर स्थापित विश्वविद्यालय और अन्य तरह की संस्थाएँ उल्लेखनीय हैं। गौरतलब है कि भारतीय भाषा संस्थान और भारतीय भाषा परिषद जैसे नाम तो एक सामूहिकता को द्योतित करते हैं और सैद्धांतिक रूप में किसी व्यापक परिप्रेक्ष्य का निर्माण करते हैं, लेकिन बात इतने पर कैसे रुक सकती थी, इसका हिन्दी विश्वविद्यालय, उर्दू विश्वविद्यालय और तमिल संस्थान के रूप में परिणित होना, दरअसल इसी केंद्रीयता को ख़ारिज़ करना है, जिसे कभी स्वतंत्रता-प्राप्ति के चरण में सामूहिकता में बाँधने की कोशिश की गयी थी और संभवतः इसकी शुरूआत महात्मा गांधी ने की थी, जिनकी मातृभाषा गुजराती थी और शिक्षा अंग्रेजी में संपन्न हुई थी। यही नहीं, अपने आरंभिक दिनों में गांधी जी अंग्रेज़ी की ट्यूशन पढ़ाते थे, लेकिन उनको जब एक राष्ट्र-निर्माण के लिए किसी एक भाषा की आवश्यकता समझ में आयी, तो गांधी जी ने 'हिन्दुस्तानी' पर जोर दिया। ध्यान रहे, यहाँ भी सीधे हिन्दी की बात नहीं की थी, क्योंकि तत्कालीन भारतीय परिस्थितियाँ इसके लिए सीधे तैयार नहीं थीं। इसके वर्षों बाद भी, ऐसे समय, जब देश स्वतंत्र हो चुका था और एक राष्ट्र-राज्य के रूप में प्रौढ़ता की ओर अग्रसर था, तब भी हिन्दी के रूप में राजभाषा की स्वीकार्यता प्रश्नांकित रही। यही नहीं, इसके बरअक्स तैयार अस्मिता को अंग्रेज़ी को बनाये रखकर तुष्ट किया गया। लेकिन, एक दौर के बाद जब स्वतंत्रता-आंदोलन के समग्र परिप्रेक्ष्य से अंग्रेज़ी की आवश्यकता जाती रही, अर्थात् अंग्रेज़ों से देश मुक्त हो गया तब गांधी जी यह कहना भी नहीं भूले कि "दुनिया से कह दो, गांधी अंग्रेज़ी भूल गया।" वस्तुतः, गांधी जी एक चतुर राजनीतिज्ञ थे और किस चीज़ की कब आवश्यकता होनी चाहिए और कब उससे मुक्ति पा लेनी चाहिए, यह वे भली-भाँति समझते थे और अंततः भारतीय भाषाओं के नाम पर एक समन्वय की दृष्टि रखते थे। लेकिन, इस समग्र प्रक्रिया में भाषा को राजनीति का एक माध्यम बनाना, चिंताजनक होना चाहिए, क्योंकि आज के राजनीतिज्ञ यदि भाषा को राजनीति का साधन बना रहे हैं, तो यह सिर्फ़ निहित स्वार्थ के वशीभूत होकर, न कि गांधी जी की तरह एक व्यापक समन्वयवादी उद्देश्य की पूर्ति के लिए। लेकिन यह दुर्योग ही है कि इस प्रवृत्ति का विस्तार वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में बड़ी तेज़ी से हो रहा है। आज की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में निहित सत्ता-लोलुपता ने भाषा को एक ऐसा माध्यम बना दिया है, जो तुष्टिकरण का एक प्रभावी साधन बन चुकी है। 'भाषा' एक ऐसा संवेदनशील मुद्दा है, जो आज की भड़काऊ राजनीति के लिए उर्वर भूमि का काम कर रही है। इसे बुनियादी भूल कहें या तत्कालीन राजनीतिक विवशता,जो नेहरू ने किया था, जिसमें भाषाधारित क्षेत्रीय विभाजन को अंततः स्वीकार किया गया। वास्तव में, यह प्रकरण वर्तमान राजनीति के लिए कुछ भाषाओं के संदर्भ में आदर्श का कार्य कर रहा है, हो सकता है। आज भोजपुरी को भाषा का दर्जा दिलाने की माँग और अलग से पूर्वांचल राज्य की माँग प्रायः समानांतर है, दरअसल यह एक ही बात को रखने के दो आधार हैं, क्योंकि भोजपुरी की भौगोलिक सीमा भी प्रायः वही है, जो अभीष्ट पूर्वांचल की हो सकती है।

भाषा का उद्देश्य परस्पर मनोभावों, विचारों और समाजों को जोड़ने का होता है। इसमें यह अभिव्यक्ति का साधन होती है लेकिन वर्तमान राजनीतिक संदर्भों में इसकी यह भूमिका कदाचित परिवर्तित होती जा रही है। ऐसा नहीं है कि भाषा इस भूमिका में पहले कभी नहीं रही है और भविष्य में नहीं होगी, लेकिन तब इसका उद्देश्य सकारात्मक था और अब इसका झुकाव नकारात्मकता की तरफ़ अधिक है। ऐसे में यह सहज अभिव्यक्ति का साधन बनने के बजाय किसी 'स्व' की अभिव्यक्ति का हथियार बनती जा रही है। अब यह बताने की आवश्यकता नहीं कि हथियार कभी सकारात्मक उद्देश्यों के लिए नहीं हो सकता। किसी हथियार का सिर्फ़ एक लक्ष्य होता है—'हिंसा'। अब हमें स्वयं को मूल्यांकित करने की आवश्यकता है कि हम स्वयं इस हथियार का लक्ष्य बन रहे हैं या इस हथियार को पाना हमारा ही लक्ष्य है?

शोध-छात्र एवं संपादक वेब-पत्रिका
भाषा-प्रौद्योगिकी विभाग,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र-442001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न और संघर्ष के बीच एक ईमानदार पहल

संजीव कौशल

आज जब कविताएँ छोटी और छोटी होती जा रही हैं एकांत श्रीवास्तव की लंबी कविता को देखना, उसे पढ़ना किसी सुख से कम नहीं। कुछ ऐसा जैसे जमाने के बाद मिला हो कोई दोस्त पुराना। एकांत की साधना, उनका एक विचार में लंबे गुंथे रहने का जज्बा काबिले तारीफ़ है। कवि का कहना कि लंबी कविता एक देश के भीतर यायावर के देशाटन की तरह होती है–जैसे लंबी गहरी साँस हो यह, इस बात से बात पूरी नहीं बनती, कम से कम इस कविता के साथ तो नहीं। मैं इसे यूँ कहता हूँ कि लंबी कविता ज़िंदा रहने की ज़िद है, लड़ने का जज्बा है अपनी साँसों के लिये अंतिम साँस तक। ऐसे में जब हर तरफ़ शोर है, चीखों और वहशियाना हँसी का, कविता दिल की धड़कन और आती जाती साँसों को सुनने की चाहत है, कोशिश है उन्हें बचाये रखने की। इसी कोशिश यें एकांत भी लगे हैं, हाथ कान सबसे सुनने की कोशिश में धड़कनों को ताकि पेश किये जा सकें सबूत हमारे ज़िंदा होने के हमारी इस सभ्यता में।

एकांत ने इस संग्रह में तमाम ख़्वाब बुन डाले हैं, बेहद खूबसूरत। ऐसे में एक ज़िम्मेदारी हमारी भी बनती है कि वो जो झाड़ उग आये हैं हर तरफ़ नुकीले-कँटीले उनसे बचाना होगा इन ख़्वाबों को हमें, जिन्हें बचाये बचाये सदियों से फिर रही है हमारी सभ्यता गाँवों और जंगलों में। ये जो शहर बनाये हैं हमने और जो बनाये है आलीशान घर, उनमें कुछ जगह उनको भी दें जो नहीं ठहर पाये हैं, सदियों से भागते फिर रहे हैं डरे सहमे इधर से उधर। कुछ थोड़ा सा उन्हें भी दें चरणामृत अपनी सभ्यता का:

कभी देवारों की बस्ती में जाना/ देखना पुरानी साड़ियों/ और पुरानी चादरों से बने/ उनके तंबुओं को / एल्युमीनियम की डेकचियों में /जहाँ खदबदाता रहता है अन्न/ तीन पत्थरों के चूल्हों पर/ नहीं है इनका घर/ये घरों में नहीं रहते/ घर इनमें रहता है।

देवार जो सांपों से खेलते हैं, खुद सांपों से बिलबिलाते रहते हैं। वो देखते हैं सपने कि प्रेम है उनके भी जीवन में।

ये शहद लेकर आते हैं
शुद्ध और मीठा
सुदूर जंगलों से
.....
इनका जीवन खुद एक छत्ता है
जिसमें पकता है
मेहनत और प्यार का शहद

बड़ा साहस झलकता है इस कहने में कि 'वो भी हमारे से हैं कि वो भी कर सकते हैं प्रेम हमारी ही तरह। हालाँकि हम इसे सिर्फ़ अपने लिये सुरक्षित रखना चाहते हैं और छीन लेना चाहते हैं ये शहद भी उनके हाथों से अपनी सभ्यता की कुछ चवन्नियाँ देकर।

जैसे जैसे एकांत ज़िंदगी की गहराइयों में उतरते हैं, एक एक क़दम, हमें भी साथ लिये चलते हैं हमारी उंगली पकड़कर। ये साथ साथ चलना इतना सहज है, एकांत के साथ, कि पता ही नहीं चलता दूरी का, कि इतनी दूर निकल आये हैं हम। मगर मुश्किल इस बात की है कि हमारे साथ जो तीसरा आदमी चल रहा है, सबसे आगे ठोकरें खाता हुआ, रास्ते बनाता हुआ, उसका रास्ता कभी ख़त्म ही नहीं होता, यूँही चलता रहता है ज़िंदगी भर :

इनकी यात्राएँ/ कभी ख़त्म नहीं होती/ काँटे इनके पाँव में गड़कर/ टूट जाते हैं/ और धीरे धीरे/ बदल जाते हैं गुखरू में/गुखरू जो दुखता रहता है/ उम्र भर/ गुखरू जैसा/ दुःखता रहता है जीवन/ दुःखते पाँव में

ये गुखरू हमारी सभ्यता के पाँव में भी दुःख रहे हैं कबसे चलते हुए यूँ सदियों से लगातार। मगर हम हैं कि अपने अहंकार में भूल गये हैं इन्हें। कवि बड़े सपाट लहज़े में कहता है ताकि सुन सकें हम साफ़-साफ़ बिना किसी ख्वाब में खोये और सुन सकें भविष्य की चेतावनी साफ़-साफ़ :

ये बिना अस्पतालों के गाँव हैं
यहाँ लोग बीमार पड़ते हैं
और मर जाते हैं

ये एक बड़ा सवाल है हमारी सभ्यता पर। और भी हैं ऐसे कई सवाल जिनके जवाब देने होंगे हमें पूरी ईमानदारी से अगर बचाये रखना चाहते हैं हम सम्मान अपने होने का :

और ये बच्चे
केवल लंगोट पहनकर
नदी में मछलियाँ पकड़ते हुये
कुपोषण से

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकले हुये हैं इनके पेट
किसी किताब के
पन्ने नहीं फड़फड़ाते इनके जीवन में
नही बजती किसी स्कूल की घंटी
कोई शब्द
कोई वाक्य इन्हें रास्ता
नहीं दिखाता
ये कल के नागरिक
आज ही
कर दिये गये हैं अपदस्थ
अपनी नागरिकता से

हमारी अनदेखी पर कवि नाराज़ हो उठता है और उसकी भाषा तल्ख होने लगती हैं। ऐसा लगता है कि सब्र का बाँध टूट गया अब। अब मुश्किल है कवि के लिये यह देखपाना कि लोग मर रहे हैं। सुख जैसा कुछ छोड़िये रोटियों का जुगाड़ हो जाये इसी में पिस रहते हैं रात दिन। इतने टूट गये हैं इस सबसे कि बासी रोटियों जैसे टूटने लगे हैं अब। और हम और हमारे नेता भरोसा दिलाने निकल पड़े हैं अनगिनत कारों का काफिला लिये। सिर्फ़ चुनावों के वक़्त दिखती हैं जिनकी सूरतें और ख़त्म होते ही चुनाव लौट जाते हैं वो धूल उड़ाते हुये और किरकिराने लगती हैं आँखें कुछ भी दिखता नहीं फिर, कोई राह, कोई मंजिल सिवाय उस खटने के जो चल रहा है एक जमाने से। लाज़मी है इस पर कवि की प्रतिक्रिया और कब तक कोई चुप रहे कुछ न कहे आखिर कब तक :

शर्म करो/भूखी, शोषित, असहाय/ और पराजित जनता की/ छाती पर सवार/ विजेताओं शर्म करो

ज़मीन से उगने वाले पेड़-पौधे ही नहीं बल्कि वो लोग जो एक ख़ास जगह में पलते हैं बड़े होते हैं उनका भी एक रिश्ता उस ज़मीन, उस प्रकृति से बनता है, उनमें भी वही जिजीविषा देखने को मिलती है जो उन पेड़-पौधों में मिलती है जो हर तरह के मौसमों को झेलते हुये बढ़ते हैं। 'नागकेसर का देश यह' में कवि यही दिखाना चाहता है। नागकेसर एक सशक्त मैटाफ़र के रूप में सामने आता है और उन लोगों का प्रतिनिधित्त्व करता है तो उसी की तरह बिना पानी, विपरीत मौसम में फलता फूलता है।

एकांत की भाषा में वो महक, वो आवाज़ें साफ़ सुनी जा सकती हैं जहाँ से यह कविता चलकर हमारे पास आयी है। रास्ते की धूल, थकान, भूख, प्यास सब हैं इस भाषा में "लुवाई का बखत", "वह गैंती साहस की", "डोंगियों में मछलियाँ-रहलू, चंदवा, काना, कर्तुल", "पहिये हमारे मितान पुराने", "पैरों की रस्सी से बने सींके पर" आदि बहुत सारी आवाज़ें अचानक पुरानी जड़ों सी सूखी ज़मीन से निकल पड़ती हैं और घेर लेती हैं हमें हर तरफ़ से। हम तो शहरों में ऐसे बसे हैं कि भूल गये हैं अपने पुराने सब पते। ज़रूरत इस बात की है इन रिश्तों को हम फिर से ताजा करें और परिधियों पर रह गये हमारे भाईयों को चलकर लेकर आये। अपनी सफलता में भगीदार बनाये इन्हें।

कहीं-कहीं एक बात जो थोड़ी सी अटपटी लगती है वो यह कि कई बार उनकी भाषा अचानक ही परिष्कृत हो जाती है वो महक छूट जाती है उसमें जैसे "कोहरीली है साँस। दिया-बाती के बेर" अगली ही पंक्ति में कुछ इस तरह आती है "दिन का अंत हो जाता है। प्रतीक्षा का अन्त नहीं होता।" बाद की पक्तियाँ पहली पंक्तियों से बिलकुल मेल नहीं खातीं और यह बेमेल कई स्तरों पर है। ऐसा और भी कई जगहों पर मिलता है। लेकिन यह सब एकांत के जोश के आगे इतना छोटा है कि वो बह जाता है ठहरता नहीं।

मैं कवि को उनके इस कविता संग्रह पर बधाई देता हूँ।

पुस्तक का नाम	: नागकेसर का देश यह
लेखक	: एकांत श्रीवास्तव
प्रकाशक	: प्रकाशन संस्थान, दिल्ली
मूल्य	: 125.00
वर्ष	: 2009

प्रवक्ता, अंग्रेजी, इंदिरा गांधी शारीरिक शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, मो0 9958596170

कहानियाँ : वक़्त को आईना दिखाने की कोशिश

राजीवलोचन नाथ शुक्ल

हिन्दी-कहानी का विगत् जितना वैभवशाली है उसका वर्तमान उतना ही समृद्ध। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में 'निष्कर्ष' पत्रिका के संपादक गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव ने पत्रिका का कहानी विशेषांक-2009 प्रकाशित किया है। अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं—"यह कहानियाँ आज के बदले हुए यथार्थ से हमारा साक्षात्कार कराती हैं... रचना की सार्थकता की कसौटी यह है कि वह किस हद तक अपने समय से मुठभेड़ करती है। इसे हम संघर्षशील रचनाधर्मिता भी कह सकते हैं। कहना न होगा कि रचनाधर्मिता के इन्हीं तकाज़ों के तहत हमने इस कहानी विशेषांक की बीस सशक्त कहानियों का चयन किया है (कहानीकारों का नहीं)।" यानि संपादक ने कहानी के कथ्य और शिल्प को दृष्टि में रखकर कहानियों का चयन किया है। कथाकार के चयन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार भी कहानियाँ निश्चित करती हैं।

विशेषांक की पहली कहानी 'समर्पण' आज के ज्वलंत प्रश्न नक्सली आंदोलन का दूसरा चेहरा उजागर करती है। देश की राजनीति, सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार युवा वर्ग में असुरक्षा और असंतोष का भाव भर रही है। देश का शिक्षित और जागृत युवा वर्ग नपुंसक व्यवस्था को चुनौती देने और सर्वहारा के रक्षार्थ एक समानान्तर व्यवस्था के लिए विवश है। कथाकार नक्सली संगठन का, संगठन के ध्वंसात्मक स्वरूप का औचित्य सिद्ध करता है, "इस इलाके के थानों का रिकॉर्ड देखिये। एक भी रेप, लूट, डकैती, चोरी का केस नहीं मिलेगा। खेतों पर खेतिहर मजदूरों का कब्जा है। एक भी शराब की भट्टी नहीं मिलेगी। किसी तस्कर की मजाल नहीं कि जंगल की एक डाल भी काट गिराये। थाना, अदालतें और वी.डी.ओ. से डी.एम. तक एक भी फरियाद नहीं पहुँचायी जाती. .. क्यों ? क्योंकि यहाँ सरकारी दखलंदाजी की कोई गुंजाइश ही नहीं। यहाँ तो अमन-चैन है, खुशहाली है।" यानि नक्सली आंदोलन है जहाँ, अमन-चैन और खुशहाली है वहाँ। कथाकार विजय कांत की यह कहानी राजनीतिक चेतना से भरपूर है जो उनके राजनीतिक दर्शन को अधिक अभिव्यक्त करती है।

अंक में रमेश उपाध्याय की कहानी 'अंधा कुँआ', नमिता सिंह की 'कोचिंग', रामदेव शुक्ल की 'आचार्य की मुश्किल' और सोहन शर्मा की 'चक्रव्यूह' कहानियाँ अध्यापक-जीवन के प्रसंगों को चित्रित करती हैं और अध्यापकों के सामाजिक वैयक्तिक जीवन के आदर्शों और यथार्थ का बोध कराती हैं। 'अंधा कुँआ' के रामदयाल अध्यापक हैं। ईमानदार और स्वाभिमानी। शहर से गाँव तबादला हो जाने पर वे गाँव जाने के लिए तैयार हैं। यही पुरस्कार मिला है उन्हें, ईमानदारी निभाने और स्वाभिमान बनाये रखने का। मास्टर रामदयाल उस सुदूर गाँव में अपने व्यवहार और श्रमशील व्यक्तित्व से गाँव वालों के जीवन में सामूहिक चेतना और गुलामी से मुक्ति की छटपटाहट भरने का प्रयास करते हैं। अपने अध्यापकीय दायित्व का निर्वाह करते हुए वे गौरव का अनुभव करते हैं। पत्नी के द्वारा गाँव से तबादला करा लेने का मशविरा सुनकर वे कहते हैं—"सोचूँगा, लेकिन कुछ समय बाद जब यहाँ के लोग अपनी सहकारी समिति बना लेंगे और मालिकों की गुलामी से मुक्त हो जायेंगे।"

नमिता सिंह की 'कोचिंग' कहानी व्यक्त करती है कि स्त्री शिक्षा और सामाजिक जीवन में दलित स्त्री की अस्मिता और सम्मान के लिए एक अध्यापक की क्या सकारात्मक भूमिका हो सकती है और एक अध्यापक के लिए उसके सकारात्मक प्रयासों का छात्र जीवन पर प्रभाव कितना प्रेरणादायी और उत्साह वर्धक हो सकता है।

कथाकार को एक पूर्व छात्रा का कार्ड किताबों के बीच अनायास मिलता है, जिस पर लिखा है—"अपनी टीचर को जिसने मुझे रास्ता दिखाया-रीता।" अध्यापिका इसे लाइफ़ टाइम एचीवमेन्ट अवार्ड की तरह सहेजकर रखे हुए है। अध्यापिका के लिए इससे सार्थक और कोई संबोधन हो ही नहीं सकता। अध्यापकीय गरिमा को अभिव्यक्त करती यह कहानी पाठकों को, छात्रअध्यापक संबंधों के आयामों से परिचित कराती है। अध्यापन कार्य कोरी आजीविका का साधन नहीं, जीवन पद्धति है, जीवनदर्शन है यही कहानी का संदेश भी है।

'आचार्य की मुश्किल' रामदेव शुक्ल की कहानी अध्यापक जीवन में आने वाले अनुभवों के एक पक्ष को व्यक्त करती है। आचार्य जी गहन संकट के क्षणों में यथासंभव विवेक का हाथ पकड़े रहना चाहते हैं। सेवानिवृत्त आचार्य को प्रायः अर्थ संकट कष्ट देता है। शोषण का माध्यम बन जाता है। कहानी का अंत "आचार्य हाथ में रिसीवर पकड़े खड़े रह गये वाक्य से होता है।" कथाकार जीवन के यथार्थ को तो व्यक्त करता है दृढ़तापूर्वक अध्यापन करूँ कि गरिमा की रक्षा नहीं कर सकता।

सोहन शर्मा की 'चक्रव्यूह' कहानी अध्यापक जीवन की त्रासदी व्यक्त करती है। सुदीप अध्यापक है, कथाकार है, साहित्यिक सभा-गोष्ठियों का सिरमौर। जीवन में श्यामला का आगमन होता है। सुदीप के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित है वह। एक दिन घर आ जाती है। सुदीप के एक कमरे वाले फ्लैट पर। सुदीप याद करता है—"दो साल पहले श्यामला जब पहली बार यहाँ आयी थी तो आते ही सकपका गयी थी।..... कॉलिज की टीचरी और दो कहानी संग्रह वाला आदमी श्यामला को जँचा नहीं, वह किसी और की हो गयी।" जीवन स्तर सुधारने और रेगिस्तानी जीवन को हरा-भरा बनाने के लिए सुदीप लॉन लेने का प्रयास करता है। री-पेमेन्ट को लेकर दिक्कत होती है सुदीप विचार त्याग देता है, आर्थिक विवशता के चलते।

कहानी का एक रोचक पात्र है—जयंतीलाल। सुदीप, आक्रांत है उस जैसे 'चुगद' और 'बेवकूफ़' किस्म का समझे जाने वाले व्यक्तित्व से जो मित्रों में अचानक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट बन जाता है। जयंतीलाल मित्रों की आवभगत, सिनेमा, पार्टी और घेरेबंदी में घुटन अनुभव करता है क्योंकि उसके पास एक बंगला है जो दस हज़ार रुपये मासिक पर किराये पर दिया जाना है। सभी मित्र जयंतीलाल के पीछे पड़ जाते हैं। जयंतीलाल छिपता भागता सुदीप के घर शरण लेता है। सुदीप उसके लिए सिनेमा, होटल में डिनर आदि का प्रस्ताव करता है। सुदीप से भी वह अन्य मित्रों जैसा व्यवहार पाकर पस्त हो जाता है। कहता है "सुदीप भाई... . आप भी...." कहानी अध्यापक जीवन का दूसरा चेहरा उजागर करती है जहाँ बाजारवाद, भोगवादी संस्कृति, अर्थ कार्ष से उत्पन्न अवसाद, हताशा-निराशा और ज़िंदगी की न्यूनतम जरूरतों के लिए जूझते मध्यवर्ग के आदमी की विवशता/ विडंबना का मार्मिक चित्रण है। सुदीप अध्यापक है जिसे वह क्षुब्ध होकर 'कालेज की टीचरी' कहता है। श्यामला का वियोग उसे आत्महीनता का बोध कराता है यह बोध ही उसकी कमजोरी है और जीने की ताकत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी। विशेषांक की अन्य कहानियाँ वर्तमान राजनीतिक उठापटक, छलप्रपंच, बेरोजगारी और आतंकवाद जैसे विषयों पर एक नया नजरिया पेश करती है। वैश्वीकरण ने बाजार को किस कद्र जकड़ रखा है और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने उत्पादों द्वारा स्थानीय उत्पादों और उद्योगों की किस तरह योजनाबद्ध रूप से नष्ट कर रही हैं राकेश भारतीय की कहानी 'टेरेटरी' उसका पूरा ख़ाका बयान करती है। यहाँ सब जायज है अनिल सिन्हा की कहानी दलित-मुस्लिम समाज की स्थिति और सवर्ण मानसिकता को बयान करती है।

शिवपूजन दलित है, दलितों के मनोविज्ञान को समझता है। सजग है।

"मैंने उत्सुकता से पूछा कि कल्लू नहीं दिखायी दिया ? शिवपूजन बेचैन-सा दिखा था।... मुसलमान है न, कल्लू। हमारे यहाँ लोग बर्दाश्त करेंगे? अपने तो खुद नीच हैं दूसरे को म्लेच्छ मानते हैं। तुम्हें भी वे अछूत मान रहे थे। उन्हें पता है अछूत वे खुद हैं.... बाहर छाती पीटेंगे, हाहाकार करेंगे, अंदर दूसरों को अछूत मानेंगे।"

दलित-मुस्लिम-सवर्ण अंतर्संबंधों की यह कहानी अंततः सवर्ण मानसिकता को ही व्यक्त करती है।

विशेषांक में हुस्न तब्बसुम निहा, रंजना जायसवाल, भरत प्रसाद, शैलेय, अजय श्रीवास्तव, आर.के. पालीवाल, राजेन्द्र वर्मा, राजेश जैन, राजेन्द्र लहरिया की कहानियाँ भी युगीन राजनीतिक, सामाजिक परिदृश्य को अभिव्यक्त करती हैं। कहानियों का स्वर व्यवस्था समाज और तंत्र को बे-नकाब करता है किन्तु कोई समाधान दिशा अथवा समस्याओं का निराकरण नहीं सुझाती। हिन्दी कहानी का वर्तमान परिदृश्य समस्याओं से मुठभेड़ की मुद्रा तो अख्तियार करता है पर किसी निर्णयात्मक दिशा की ओर संकेत नहीं करता। कथाकार पात्रों के हाथों में डंडे-भाले और तलवार तो थमाते हैं लेकिन कोई पात्र मशाल लेकर नहीं चलता। शिवपूजन जैसे पात्र मशाल थामते भी हैं तो वे मारे जाते हैं रूपांतर से रचनाकार हताशा निराशा को ही अंततः सत्य मानते हैं। संपादक श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव ने अत्यंत मनोयोग पूर्वक कहानियों का चयन किया है जो पाठकों का केवल मनोरंजन करने या काल यापन के लिए नहीं है। वे उनकी मानसिक और बौद्धिक आवश्यकताओं को भी पूरा करती हैं।

पत्रिका का नाम	:	निष्कर्ष
संपादक का नाम	:	गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव
वर्ष	:	2009

रीडर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी, अलीगढ़

गढ़वाली का गढ़वाल

सुरेश पंडित

जिस भौतिक विकास और आर्थिक समृद्धि ने भारत के कुछ नगरों, महानगरों को 'शाइनिंग इंडिया' के जगमगाते टापुओं में बदल दिया है, उसी की चकाचौंध के सामने भारत के शेष इलाके जुगनू जितनी चमक तक पा लेने के लिए जद्दोज़हद कर रहे हैं। सारा देश एक साथ पिछली कई सदियों में जी रहा है। इस तेज़ रफ़्तार वाले दौर में लोगों को सुबह प्यार करते, दोपहर में विवाह और शाम को तलाक लेते-देते देखा जा सकता है। उनके सामने कैरियर पहले है; प्यार, शादी और बच्चे बाद की बातें हैं। वे बिना विवाह के भी एक साथ रह सकते हैं। जाति, धर्म और संप्रदाय की सीमाओं को तोड़कर वैवाहिक संबंध स्थापित कर सकते हैं। उन पर समाज का कोई अंकुश नहीं है। क़ानून भी इनके प्रति उदार है। आर्थिक उदारीकरण ने उन्हें पारंपरिक संबंधों की अनिवार्यता से मुक्त कर दिया है। उनके विपरीत मूल भारत के निवासियों की वह प्रजाति भी है, जिनमें बहुत बड़ी संख्या में ऐसे लोग शामिल हैं, जिनके लिए प्यार आज भी संबंधों की उस गहराई का नाम है, जिसके लिए कैरियर तो क्या, अपना अमूल्य जीवन तक कुर्बान किया जा सकता है। एक दूसरे की ख़ुशी के लिए निजी स्वार्थों की बलि दे देना ही उनके प्यार की खरी कसौटी है। जाति, धर्म और संप्रदाय उनके मुक्त प्यार को अवैध करार देकर उन्हें मरणांतक यातना देते हैं, फिर भी देश का संविधान; स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्त्व का नारा लगाने वाले सामाजिक न्याय के पक्षधर और मानवाधिकारवादी उन्हें स्वेच्छा से सुरक्षित जीवन जीने का अधिकार नहीं दिला पाते। उनके पक्ष में मीडिया ज़रूर शोर मचाता है, लेकिन उसके लिए भीं ऐसी घटना एक चटपटे समाचार से अधिक कुछ नहीं होती। इससे अधिक मसालेदार ख़बर मिलने पर वह भी इसे बीच में छोड़कर उस तरफ़ रुख़ कर लेता है।

ऐसी विपरीत स्थितियों में भी कुछ लेखक ऐसे ज़रूर हैं जो उनके प्यार की पवित्रता, उनकी प्रतिबद्धता की गहराई, एक दूसरे के लिए मर-मिटने के जज़्बे और उन पर सामाजिक मर्यादा के नाम पर होते अत्याचारों को पूरी संवेदनशीलता के साथ देखते-महसूसते हैं और उनकी मूक पीड़ा को सुर में बाँधने की कोशिश में लगे रहते हैं। ऐसे लोगों में एक नाम रणीराम गढ़वाली का भी हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने बहुत अधिक तो नहीं लिखा है, लेकिन जितना भी लिखा है, उसमें प्यार की उस निस्स्वार्थता को साफ़ देखा जा सकता है, जो साधारण मनुष्यों को उदात्त में रूपांतरित कर देती है। यह ज़रूरी नहीं कि वह प्यार प्रेमी-प्रेमिका के बीच पैदा होने वाला ही हो। वह माँ-बेटे, पति-पत्नी या औरत-औरत के बीच का भी हो सकता है। यही प्रेम इनकी कहानियों का केंद्रीय भाव है। पिछले दिनों प्यार को लेकर जितनी कहानियाँ विभिन्न पत्रिकाओं में छपी हैं, उनमें कम ही ऐसी हैं जिनमें जज़्बात की उद्दामता की जगह एक दूसरे के प्रति वह निःशब्द समर्पण हो, जो व्यक्ति को आत्मनेपद से निकालकर परस्मैपद में संल्लीन कर देता है।

इसी साल प्रकाशित रणीराम गढ़वाली का नौ कहानियों का यह संग्रह 'शिखरों के बीच' इसलिए सुधी पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है, क्योंकि इसमें वे ही कहानियाँ शामिल हैं, जिनमें प्रदर्शित प्रेम पर बाज़ारवाद या यौन -स्वच्छंदतावाद का असर कहीं दिखायी नहीं देता। इनकी पृष्ठभूमि उत्तराखंड का वह पिछड़ा क्षेत्र है, जहाँ के निवासी जीविकोपार्जन के लिए बाहर जाकर जब लौटते हैं, तो वहाँ से मिली विकृतियों को वहीं छोड़कर अपने गृह-नगर में प्रवेश करते हैं। संग्रह की कहानी 'फ़ैसला' यों तो उस रामप्यारी की कहानी है, जो गाँव के मास्टर की कुत्सित इच्छा पूरी करने से न केवल इन्कार कर देती है बल्कि उसे चेता भी देती है, कि फिर कभी उसने ऐसी ग़लत हरकत करने की बात सोची भी, तो उसे वह ऐसी सज़ा देगी कि मास्टर किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहेगा। लेकिन, वह नहीं जानती कि उसने अनायास एक साँप को छेड़ दिया है। वह एक झूठा आरोप लगा रामप्यारी को ग्राम-पंचायत के सामने खड़ा कर देता है। रामप्यारी की एक भी सफ़ाई नहीं सुनी जाती और उसे गाँव से बहिष्कृत कर दिया जाता है। लेकिन, गाँव का ही घनानंद, जिसे लोग घना पागल कहते हैं, क्योंकि वह सच बोलने से कभी नहीं चूकता, उसके साथ बिना किसी स्वार्थ के खड़ा हो जाता है। उसकी दृढ़ता अंततः उस कलुवा को भी रामप्यारी की ओर झुका देती है जिसकी घरवाली को भगाने में उसका हाथ होने का झूठा आरोप लगाया गया था। इन दोनों को न्याय के पक्ष में खड़े होते देख अन्य गाँववाले भी पंचायत के फ़ैसले को दरकिनार कर उसके साथ खड़े हो जाते हैं। सत्य और न्याय का समर्थन व्यक्ति के कष्ट सहने की परीक्षा तो लेता है, लेकिन आखिर में जीत उसकी ही होती है।

एक अन्य कहानी 'सौ वर्षों का प्रेम' उस किशोरावस्था के प्रेम से विकसित होती है, जिसमें पूजा-सी पवित्रता है और समुद्र सी गहराई है। प्रेमिका 'रूपम' अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाती। फिर भी उसके प्रति नायक का प्रेम मरता नहीं है। काफ़ी लंबे समय तक जीविका के लिए बाहर रहकर जब वह गाँव लौटता है, तो इस संकल्प के साथ कि वह अब गाँव के बच्चों के लिए स्कूल खोलने की प्रेमिका की अंतिम इच्छा को पूरा करने में शेष जीवन लगा देगा। अपने प्रेम को इसी तरह अमर बनाने के प्रयास में जुट जाता है और इसी से उसे कभी ख़त्म न होने वाली राहत मिलती है। लेकिन, उसी गाँव का एक और युवक लोकेश भी है, वह भी रूपम को मन ही मन चाहता है और अपने प्यार का इज़हार नहीं कर पाता। प्रेमिका के जाने के बाद उसकी स्मृति में वह दिन-रात अपना अस्तित्त्व मिटाने में लगा रहता है। नेपाली बहादुर और उसकी पत्नी गमछी की कहानी भी कुछ इनसे मिलती-जुलती-सी है। वह कमाने भारत आ जाता है। पत्नी नेपाल में रहकर उसका इंतज़ार करती है। इसी इंतज़ार में वह आख़िरी साँस छोड़ देती है, क्योंकि बहादुर इतना कमा ही नहीं पाता, जिसे लेकर वह वापिस लौट सके और अपनी पत्नी के साथ चैन से रह सके।

'ग्यारह जूते' कहानी काफ़ी हद तक पहली कहानी से मिलती-जुलती है। इसमें भी फ़ौज की नौकरी करने परदेस गये पति की अनुपस्थिति में गाँव का गुंडा पंछू उसकी असहायावस्था का नाजायज़ फ़ायदा उठाने की कोशिश करता है, लेकिन भदुली न केवल उसका सख़्त प्रतिरोध ही करती है, बल्कि उसे पहले खेत में और फिर पंचायत के सामने ग्यारह जूते भी रसीद कर देती है। पंचायत को उसकी यह हरकत पुरुष जाति का अपमान लगती है। वह भदुली के सामाजिक बहिष्कार का हुक्म सुना देती है। अंत में उसका पति पंचायत में आकर अपनी पत्नी के साथ हुए अन्याय का विरोध करता है, लेकिन पंचायत इसी शर्त पर अपना हुक्म वापिस लेने पर तैयार होती है कि वह माफ़ी माँग ले। पर, फ़ौजी ऐसा करने से साफ़ मना कर देता है और बीमार भदुली को स्वयं उठाकर गाँव के 'बैद' के पास इलाज के लिए ले जाता है। उसे इस स्थिति में देखकर 'बैद' तो पिघल ही जाता है, गाँव की औरतें भी उसकी मदद के लिए आगे आ जाती हैं। इस तरह पुरुष-प्रधान पंचायत का भेदभाव भरा फ़ैसला एक बार फिर नाकाम हो जाता है।

'माँ' कहानी गाँवों में संक्रमित होती उन शहरी विकृतियों को उजागर करती है, जिनके चलते सौजन्य, भाईचारा और नाते-रिश्ते ख़तरे में पड़ते जा रहे हैं। बुजुर्ग औरतें जी-जान से उन पारंपरिक मूल्यों को बनाये रखने रखने की कोशिश में जुटी हैं, जिनसे ग्राम संस्कृति बची रह सकती है। 'शिखरों के बीच' एक असफल प्रेम की कहानी है। इसमें नायक अपनी प्रेमिका सुशीला से विवाह नहीं कर पाता, लेकिन दोनों एक-दूसरे के प्रेम को कोशिशों के बावजूद भुला नहीं पाते। 'कलंकित पहाड़' फिर एक ऐसी युवती की कहानी है, जो गाँव के तीन गुंडों की हवस का शिकार होती है। वे उसे ब्लैकमेल तो करते ही हैं उसके खेत को भी अपने कब्ज़े में कर लेने के लिए जुगत भिड़ाते हैं, पर पंचायत उन्हें अपराधी मान गाँव से बाहर चले जाने का हुक्म सुना देती है। कई कहानियों में यह पहली ऐसी कहानी है, जिसमें पंचायत पीड़ित के पक्ष में न्याय करती है।

रणीराम गढ़वाली की कहानियाँ गढ़वाल अंचल के उस सामाजिक परिवेश को चित्रांकित करती हैं, जिसमें स्त्रियाँ अभी तक उत्पीड़न की शिकार है, सामंती व पुरुष-वर्चस्व वाली मानसिकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जड़ जमाये हुए हैं और आर्थिक असमानताजनित अभावों को भोगते लोग हैं। लेकिन, अच्छी बात यह है कि ये कहानियाँ सामंती व्यवस्था के धीरे-धीरे दरकने, पुरुष-वर्चस्व के खिसकने, स्त्रियों को अपने लिए न्याय माँगने का साहस जुटाने और हर तरह की ग़ैर-बराबरी को दूर करने के लिए जूझते लोगों की कोशिशों को भी उजागर करती है। उम्मीद की जा सकती है कि गढ़वाली का अगला कथा-संग्रह नये उभरते उत्तराखंड को भी इतनी ही जीवंतता के साथ दिखाएगा, जितनी जीवंतता के साथ गढ़वाल को उसने प्रदर्शित किया है।

पुस्तक का नाम	:	शिखरों के बीच
लेखक	:	रणीराम गढ़वाली
प्रकाशन	:	अंतरा प्रकाशन
		7-36, प्रथम तल, दरियागंज, नई दिल्ली
मूल्य	:	200/-

383, स्कीम नं0 2, ल.जपत नगर, अलवर-301001

समकालीन कथा साहित्य पर कुछ नोट्स

कमलानन्द झा

हिन्दी आलोचना में पुस्तक समीक्षाओं के संकलन बहुत कम प्रकाशित हो पाते हैं। इसके अन्य कारण जो भी हों एक महत्वपूर्ण कारण तो यह है कि हिन्दी में पुस्तक समीक्षाएं अत्यंत चलताऊ ढंग से लिखे जाने का रिवाज़ रहा है। विशेषकर अखबारी समीक्षाओं ने इस विधा को बहुत नुकसान पहुंचाया है। वगैर पुस्तक पढ़े सिर्फ फ्लैप और भूमिका पढ़कर हिंदी में खूब समीक्षाएं लिखी जी रही हैं। परमानंद श्रीवास्तव उन आलोचकों में है जो पुस्तक समीक्षा को अत्यंत महत्त्वपूर्ण आलोचना-कर्म मानते हैं। 'अंधेरे समय में शब्द' मूलतः श्रीवास्तव जी की पुस्तक समीक्षाओं का संकलन है। कुल तेइस निबंधों में उक्त पुस्तक में बारह पुस्तक समीक्षाएं हैं। इसके अतिरिक्त समकालीन कविता पर दो, समकालीन कहानी पर एक, प्रेमचंद पर दो, आलोचना पर तीन तथा मीडिया पर दो निबंध संकलित हैं। पुस्तक समीक्षा को हम दोयम दर्जे का काम नहीं मान सकते, बावजूद इसके आश्चर्यजनक है कि पुस्तक के फ्लैप या भूमिका में कहीं भी इस बात का ज़िक्र नहीं किया गया है कि इसमें अधिकांश निबंध पुस्तक समीक्षाएं है। पता नहीं ऐसा बाज़ार के दबाव के कारण हुआ है या इस विधा की लघुता की स्वीकृति के कारण।

आंरभ पुस्तक की भूमिका से ही की जाए। 'अंधेरे समय में शब्द' शीर्षक भूमिका में परमानंद श्रीवास्तव ने समकालीन हिंदी कथा साहित्य की छानबीन की है। आलोचक एक साँस में चन्द्रध ार शर्मा गुलेरी से लेकर चंदन पांडे जैसे युवा कथाकारों पर अकुंठ भाव से अपने विचार व्यक्त करते हैं। भूमिका में कहानी-उपन्यास के क्रमिक विकास जैसी रूढ़ियों को तोड़ते हुए लेखक पुराने और समकालीन कथाकारों को बिल्कुल आमने-सामने रखकर समानता का दर्जा देते हए, उन पर विचार करते है।

भूमिका में हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं की कहानियों/उपन्यासों का हवाला भारतीय साहित्य की अवधारणा को पुष्ट करता है। भूमिका की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इसमें कविता और आलोचना पर एक भी वाक्य नहीं लिखा गया है जबकि पुस्तक में पांच निबंध कविता पर और तीन निबंध आलोचना पर केन्द्रित हैं। भूमिका की सामग्री की गुणवत्ता पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है किंतु पुस्तक की सामग्रियों के साथ उसका बहुत तालमेल नहीं बैठ पाता है।ऐसा लगता है कि 'भूमिका' हिंदी कथा सहित्य पर लिखा गया उनका प्रकाशित/अप्रकाशित निबंध है, जिसे पुस्तक की भूमिका के लिए उचित मान चस्पां कर दिया गया है।

पुस्तक में कविता पर पांच संकलित निबंधों में दो निबंध समकालीन हिंदी कविता पर और तीन क्रमशः अनामिका, एकांत श्रीवास्तव और नीलेश रघुवंशी की कविताओं पर केंद्रित हैं। 'कविता में हाट बाजार' में आलोचक समकालीन हिंदी कविता में भूमंडलीकरण और बाजारवाद के प्रति आक्रोश और कठोर रवैये को लक्षित करना चाहता है किंतु उन लक्षणों और प्रतिमानों को ठोस रूप में नहीं रखा गया है। कुछ कवियों की अच्छी कविताओं को जरूर उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है किंतु बाजार की वैचारिक और पृष्ठभूमि पर गहराई से विचार नहीं हो पाया है। समकालीन युवा कवियों से पूर्व के वरिष्ठ कवियों में भी बाजार के प्रति नकार भाव है किंतु उनके नकार और आज के कवियों के नकार में कहां, कैसा और कितना अंतर आया है, इसको देखने-समझने की जरूरत है। वर्षों पूर्व केदारनाथ सिंह की एक कविता में बाजार कुछ इस रूप में आया है-

उचित यही होगा/कि हम शुरू में ही
आमने-सामने/बिना दुभाषिये के
सीधे इस सुगंध से बातचीत करें
बाजार न आए बीच में
और हम एक बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुपके से मिल आएं चावल से
मिल आएं नमक से/पुदीने से
कैसा रहे/एक बार/सिर्फ एक बार..

केदारजी की इस कविता का काव्य-तनाव हमें बिचौलियों की विद्रूप क्रीड़ा और तद्जन्य किसानों की आत्महत्या तक ले जाता है। क्या आज की कविता बाजार के प्रति इस चुनौती को स्वीकार करने का साहस जुटा पाती है? इसमें दो राय नहीं कि अनामिका, एकांत श्रीवास्तव और नीलेश रघुवंशी की कविताओं में उनके निजी वैशिष्ट्य को उभारने में आलोचक सफल रहे हैं।

पुस्तक मे काशीनाथ सिंह के चर्चित उपन्यास 'रेहन पर रग्घू', अलका सरावगी का ताजा उपन्यास एक ब्रेक के बाद, मैत्रयी पुष्पा का नया आत्मकथात्मक उपन्यास गुड़िया भीतर गुड़िया, महुआ मांझी का बहुपठित उपन्यास मैं बोरिशाइल्ला, रजनी गुप्त का उपन्यास एक न एक दिन तथा अनामिका के उपन्यास 'तिनका तिनके पास' आदि पर आलोचक ने अलग-अलग विस्तार से चर्चा की है। इन उपन्यासों के अतिरिक्त आलोचक का ध्यान समकालीन कहानियों पर भी गया है। कहानी के अन्तर्गत प्रत्यक्षा का कथा-संग्रह 'जंगल का जादू तिल तिल', अल्पना मिश्र के दो कथा-संग्रह 'भीतर का वक्त' और 'छावनी में बेघर', उड़िया कथाकार परिमिता का कथा संग्रह 'दूर के पहाड़' के साथ-साथ युवा कहानियों को परमानंद श्रीवास्तव ने समकालीन सरोकारों के संदर्भ में 'लोकेट' करने की चेष्टा की है।

पुस्तक की सार्थकता इस अर्थ में है कि जिन पाठकों ने रेहन पर रग्घू (काशीनाथ सिंह), एक ब्रेक के बाद (अलका सरावगी) या मैं बोरिशइल्ला (महुआ मांझी) आदि रचनाएँ न पढ़ी हों परमानंद श्रीवास्तव की आलोचना उन्हें उक्त रचनाएं पढ़ने के लिए विवश करती हैं। रचना की शक्ति और सामर्थ्य को उकरने में आलोचक पूर्ण सफल रहे है। नम्रतापूर्वक कहना है कि समकालीन कविता की तरह समकालीन युवा कहानी की सैद्धांतिकी और प्रतिमान गढ़ने में आलोचक ने कोताही बरती है। वरिष्ठ आलोचक परमानंद श्रीवास्तव से उम्मीद थी कि वे समकालीन कथा साहित्य के कुछ ठोस मानदंड और टूल्स को रेखांकित करते किंतु कुछ आकर्षक सूत्र वाक्य के सहारे उन्होंने समकालीन युवा कहानी को निपटा दिया है।

समकालीन कहानी के महाकाव्यात्मक विन्यास ने आलोचकों का ध्यान अपनी ओर खींचा है। जिस तरह द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता के विरूद्ध छायावाद का पदार्पण हुआ उसी तरह पूर्व की कहानियों के इकहरेपन के विरूद्ध युवा कहानी ने जटिल और विशाल पंख फैलाये हैं। इन कहानियों का खिलंदडापन देखते ही बनता है। आलोचक परमानंदजी को युवा कहानीकारों में 'बेपरवाह शिल्प के भीतर नए-नए प्रयोग सूझ रहे हैं', उन्हें 'युवा कहानी का सफरनामा अतिरंजना और मामूलीपन का मिलाजुला खेल' प्रतीत हो रहा है किंतु युवा कथाकारों का शिल्प कलावाद न होकर रचना को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करने की बेचैनी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कहानी मे प्रतीकों, संकेतों, विडंबनाओं, तनावों, संघर्षों को कलात्मक रूप से रखना कलावादी होना नहीं है। कलावाद तो रचनाकार की वैचारिकी और जीवन-दृष्टि में होती है जो रचना में साफ-साफ नजर आ जाती है।

पुस्तक में हुई छोटी-मोटी भूलों से बचा जा सकता था। जैसे फ्लैप पर लिखा हुआ है "जैसे यहाँ एक निबंध है 'अंधेरे समय की चुनौतियां और प्रेमचंद' किंतु पूरी किताब में इस नाम से कोई निबंध नहीं है। कुल मिलाकर यह पुस्तक समीक्षा की समझ विकसित करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

पुस्तक का नाम	: अंधेरे समय में शब्द
लेखक का नाम	: परमानंद श्रीवास्तव
प्रकाशक	: सामयिक बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली-2
मूल्य	: 250 रुपये
संस्करण	: 2009

हिंदी विभाग, सी0एम0 कॉलेज, दरभंगा।

सुलगती नदी : आतंकवाद का कुचक्र

अनुपाल

पंजाब के हिन्दी साहित्य में सुरेश सेठ का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं। कहानी के क्षेत्र में उनकी महत्त्वपूर्ण पहचान है। एक सजगता और प्रतिबद्धता इनके साहित्य में लक्षित होती है। सजगता समाज में घट रही प्रत्येक घटना के लिए और प्रतिबद्धता उसे अपनी लेखनी के माध्यम से समाज तक पहुँचाना।

इसी क्रम में उनका उपन्यास 'सुलगती नदी' चर्चा में है। विश्वव्यापी समस्या आतंकवाद का पंजाब के संदर्भ में बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र खींचा गया है। उपन्यास में पंजाब में बसाए गए प्रीतलड़ी नगर को केन्द्र बनाया गया है जहाँ की सारी साहित्यिक गतिविधियाँ आतंकवाद के कारण स्थगित हो गईं। साहित्य की बगिया उजड़ गई नवीन जैसे लोग दोबारा उसे खिलाने का प्रयास कर रहे थे। यह उन दिनों की बात है जब आतंकवाद अपने चरम पर था। निर्दोष लोगों की हत्याएँ हर जगह हो रही थीं। कभी धर्म में नाम पर, कहीं दहशत फैलाने के नाम पर, कहीं खबरें बनाने के नाम पर। पंजाब भारत का सिंह-द्वार रहा है। अंग्रेजों के अतिरिक्त प्रायः सभी आक्रमणकारी, व्यापारी पंजाब के रास्ते ही भारत आए।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाबियों की ज़िंदगी संघर्ष प्रधान ही रही। अपनी जीवटता, बहादुरी के कारण पंजाबी पूरे विश्व में जाने जाते हैं। देशभक्ति पंजाबियों की नस-नस में भरी हुई है परंतु भ्रष्ट राजनीति के कारण धर्म के नाम पर 1947 में यहाँ पंजाब का विभाजन हुआ, फिर भाषा के नाम पर 1966 में। सरहद पार के दुश्मन जब प्रत्यक्ष युद्धों में न जीत सके तो उन्होंने परोक्ष रूप से देश को खोखला करना शुरू किया। आतंकवाद का दरिया बहाना आरंभ कर दिया। 90 के दशक में पंजाब में जो आतंकवाद की चिंगारी भड़की वह कब सुलगती नदी बन गई पता ही नहीं चला। पहले तो सरकार चेती नहीं बाद में चंद भटके हुए लोगों को मोहरा बनाकर पंजाब की खुशहाली को तहस-नहस करने की चेष्टा की जाने लगी। 'सुलगती नदी' इन्ही सब घटनाओं, संघर्षों, आदर्शों, षड्यंत्रों की मर्मस्पर्शी चित्रण है। प्रश्न यह है कि यह आतंकवाद क्यों? उपन्यास में एक जगह तेजपाल पूछता है कि किसके खिलाफ लड़ाई है? किससे बदला लेना है?

उत्तर मिलता है—'इस देश से जिसने कुछ नहीं दिया अपना मुल्क बसाएँगे। दूसरे मुल्क में ऐसी ट्रेनिंग दी जाती है हथियार चलाना, इमारतें, पुल उड़ाना सिखया जाएगा। दहशत के बल ए पर लोगों के दिलों में जगह बनाओगे।'

उपन्यास में लोकतंत्र के चौथे स्तंभ पत्रकारिता, सरकारी तंत्र, अफसरशाही, भ्रष्ट राजनीति को मचान की संज्ञा दी गई है। आम आदमी बड़े लोगों के लिए केवल एक वोट है। संपादक त्रिभुवन अपने संवाददाता को डाँटता है कि धार्मिक समारोह की ख़बर ठीक से क्यों नहीं बनाई। किसी शॉप कीपर्स ऐसोसिएशन के प्रधान का नाम न आने से वह रुष्ट है। उसी की वजह से उन्हें सौ वोट मिले थे। संवाददाता बताता है। कि कहीं और विस्फोट हो गया था। इसलिए ख़बर लेने के लिए उधर चला गया। इस पर संपादक कहता है—'आपके इलाके में तो रोज बम फटते हैं। घायलों की संख्या तो आप पुलिस थाने से भी जान सकते थे। बल्कि एक दो घायलों की संख्या अधिक भी चली जाती तो कया हर्ज़। आजकल तो इसका खंडन भी नहीं करना पड़ता। लोग सब कुछ मान लेते हैं। पर हमारे समारोह से भागकर तो आपने हमारे सौ वोट मरवा दिए।"

पुलिस वाले को सब पता होता था। कमाइयों भी मिल बाँट कर खाई जातीं। जनता में विश्वास बना रहे तो किसी न किसी को हलाक भी कर दिया जाता। पत्रकारों के लिए यह सिर्फ खबर होती कि फलाँ जगह इतने आदमी मेरे लेकिन उसका भी एक अपना एक अंदाज होना चाहिए तभी बात बनती है।

राजनेता भी आतंकवाद के नाम पर रोटियाँ सेक रहे हैं। सिर्फ लोगों की हत्याओं पर घड़ियाली आँसू बहाए जा रहे हैं। जिस आदर्शों की नींव पर आज़ादी प्राप्त की गई थी वो जाने कब से खोखली हो गई हैं। आज तो अर्थ प्रधान युग में सिर्फ सिद्धांतों के बल पर लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती परंतु इन अविश्वासों के झंझावातों के बीच भी एक ऐसा दीपक टिम-टिमा रहा था कि जब इसके प्रकाश से अविश्वास, षड़यंत्रों का अँधेरा मिटेगा। हर हाथ को काम और हर पेट को रोटी मिलेगी। आम आदमी की आवाज़ ऊपर तक पहुँचाएगी। अपने बाबा के सपने को ज़िंदा रखने की ही कोशिश की नवीन ने आखिरी दम तक सपना था—एक दैनिक अख़बार निकालना जहाँ आम आदमी को भी स्थान मिले। वह इसके लिए जी-तोड़ परिश्रम कर रहा था। उसके बाबा की बसाई बस्ती फिर आबाद हो यही उसकी इच्छा थी। उसकी कलम में जान थी। समाचार पत्रों में उसकी पत्रिका से उद्धृत लेख छपते थे। ढेरों उसके प्रशंसक थे। उसकी लोकप्रियता से समाज के ठेकेदार भयभीत थे। उसके बाबा की बसाई बस्ती उजड़ चुकी थी पर नवीन अपनी पत्नी कविता के साथ, अपने बच्चे के साथ वहीं रह रहा है। उस पर साम-दाम-दंड भेद हर तरह से प्रयोग किया गया। धमकियाँ उसे रोज मिलती है। यह जगह छोड़कर चले जाओ। उसके घर के बाहर इन्सान की खोपड़ी तक लटकाकर उसका वैसा हश्र करने की बात कही गई। बड़े अख़बारों के संपादक उसके अख़बार निकालने की योजना से भयभीत थे।

एक दिन आतंकवादी उसकी हत्याकार देते हैं दो घंटे तक लाश सड़क पर पड़ी रहती है परंतु पुलिसवाले कहते हैं कि उसे बचाने उग्रवादियों के साथ हमारा दो घंटे मुकाबला हुआ। वह भाग निकले तोहम एक घंटा उनके पीछे-पीछे जंगलों की खाक छानते रहे।"

नवीन की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी कविता अख़बार निकालने का उत्तरदायित्त्व अपने ऊपर लेती है। नवीन मरा नहीं। आदमी मर सकता है, विचार नहीं कविता उसे हमेशा अपने साथ अनुभव करती। कविता के लिए नवीन ज़िंदा था। उसके साथ था। उसी की प्रेरणा से वह उसका सपना पूरा करेगी। मुख्यमंत्री तक का प्रस्ताव वह ठुकरा देती है। कविता के लिए नवीन ज़िंदा था। उसके साथ था। उसी की प्रेरणा से वह उसका सपना पूरा करेगी। मुख्यमंत्री तक का प्रस्ताव वह ठुकरा देती है। नवीन के दोस्त तेजपाल की सहायता से नवीन का दैनिक बाज़ार में आ गया और नवीन ज़िंदा हो गया। बस्ती के चंद दरवाजे और खुल गए हैं। दरवाजे खुले हैं तो लोग भी आएँगे।

बकौल लेखक आज आतंकवाद का तरीका बदल गया है। बंदूक उठाकर कत्लेआम करना ही अब महज अतंकवाद नहीं रहा बल्कि हर तरफ मुखौटा लगाए लोग अपने शिकार की तलाश में घूम रहे हैं। इस आतंकवाद का कैसें मुकाबला किया जाए। कभी धर्म के नाम पर, कभी जाति के नाम पर, कभी किसी व्यक्ति के नाम समाज के ठेकेदार आम आदमी का शिकार कर रहे हैं। अराजकता का ही माहौल हर तरफ बना हुआ है। आतंकवाद का कोई धर्म नहीं होता। शिक्षा, ज्ञान से इसका कोई संबंध नहीं, बल्कि शिक्षा, तकनीक के बल पर तो और भी ख़तरनाक बनकर सामने प्रस्तुत हुआ है, सबको एकजुट होकर पहले अपने घर के अंदर के आतंकवाद को ख़त्म करना होगा तभी इस वैश्विक संकट का सामना शांति की कामना करने वाले कर पाएँगे।

दुष्यन्त कुमार की अंत में पंक्तियाँ

सिर्फ हँगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि यह सूरत बदलनी चाहिए
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में ही सही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो कहीं भी आग लेकिन
आग जलनी चाहिए।

इन्हीं भावों की तर्जुमानी करता है यह उपन्यास 'सुलगती नदी'।

पुस्तक का नाम : सुलगती नदी
लेखक : सुरेश सेठ
प्रकाशक : प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण : 2009

1864, विकास नगर (नजदीक बाबा बेरशाह) पी0ओ0-रेयन एंड सिल्क मिल्स, अमृतसर

जीवन दारिद्रय को बूझती कहानियाँ

विवेक तिवारी

'ब्राह्मणवाद वास्तव में एक मनः प्रवृत्ति है, जो हर मन-मस्तिष्क में पायी जाती है। ब्राह्मण श्रेष्ठता, सवर्णता-बोधक शब्द के रूप में किसी व्यक्ति को जातिवादी समाज-व्यवस्था में दूसरे के सापेक्ष निश्चित करता है। स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ, महान, उच्चतम मानकर, दूसरों को निम्नतम, मामूली और नीच-अस्पृश्य मानना ही ब्राह्मणवाद है। यह मनः प्रवृत्ति अपनी स्वयंभू श्रेष्ठता को मनवाने या सिद्ध करने के लिए मनुष्य को अमानवीय बना देती है। दरअसल ब्राह्मणवाद एक भयावह दुष्प्रवृत्ति है.... ।' मरी खालः आखिरी ताल-शीर्षक से हाल ही में देवेन्द्र कुमार पाठक का नया कहानी संग्रह 'अयन प्रकाशन' से छपकर आया है। 9 कहानियों का यह संग्रह दलित कहानियों के परंपरागत कहन, सोच और आग्रह से हटकर, एक व्यापक समाजशास्त्रीय जाँच-पड़ताल करता है।

इस संग्रह की पहली कहानी 'कथा नहीं... ।' मानवीय समाज और सभ्यता के विकासक्रम को एक सूरदास की झोपड़ी के बहाने कहती चलती है। सूरदास की झोपड़ी को प्रतीक बनाकर उसके आजू-बाजू स्थित दो बंगलों की ओर पूर्वाह्न और अपराह्न में लंबी होकर बढ़ती छाया के माध्यम से कहानीकार संसार के बहुसंख्यक मेहनतकश, ग़रीब, शोषित, पीड़ित दलितजनों के पिछड़ेपन और जीवन दारिद्रय की पड़ताल करता है। स्पष्टतः पूँजीवादी शोषक दुःशक्तियों के प्रतीक दो बंगले जो पूँजीपतियों के हैं, झोंपड़ी के सूरदास को इसलिए मरवा देते हैं कि वहाँ 'गैराज' बनवाना है। सूरदास अपनी भूमि नहीं बेचता। आज भूमाफिया का यही रूप ग्रामीण खेतिहर भुगत रहे हैं। संतुलित किस्सागोई और कथ्य में भाषायी फंतासी का मेल इस कहानी को विशिष्ट बनाता है।

दूसरी कहानी 'और उसका मज़हब', एक मुस्लिम खेतिहर और ब्राह्मण वृद्ध खेतिहर की साझी खेती का ऐसा कथानक रचती है, जो आदमी नहीं कृषियंत्र के रूप में बैलों की उपादेयता को दर्शाती, दो भिन्न मजहबियों के बीच मानवीय संवेदना, मैत्री और भाईचारे की सार्थकता प्रमाणित करती है। 'ज़मीन की जात' कहानी भारतीय समाज व्यवस्था को नियंत्रक-संचालन पुरुषसत्ता और स्त्री की उस सामाजिक स्थिति के विरोध में फुल्लो के जरिए विद्रोह दिखाती है, जिसमें स्त्री की जाति-पांति पुरुष से निर्धारित होती है।

'फोल्डू कथा' कहानी गाँवों में आई औद्योगिक तरक्की और व्यावसायिक कृषि के बीच पिसती, अंतिम साँस गिनती परंपरागत जातीय जमानी कर्म-कौशल की प्रथा का भयावह सच है। तेल पेरने वाली बिजली की मशीन के मुकाबिल कोल्हू चलाने वाले पंचू तेली की यह कहानी एक बार फिर भारतीय कृषि परंपरा में पशुधन की शक्ति, महत्ता को रेखांकित करती है। 'पुनर्मूषकोभव' उसी पुरुषसत्तात्मक जातिवादी समाज व्यवस्था को नए कथानक में विश्लेषित करती है, जिसमें प्रतिभा, विद्या, कला-कौशल के होते भी जाति का भयावह वर्चस्व जीतता है। तमाम ब्राह्मण कर्मों-संस्कारों से युक्त दलित का पुत्र अंततः अपनी ही जाति में विवाह करने को विवश है।

'कांछ' साहबों के बंगलों में झाड़ू-पोंछा करने वाली एक विधवा के पुत्र और उसकी पुत्रवधू की तीन पीढ़ियों की कहानी है, जिसमें एक पिछड़ी जाति की स्त्री की 'मरजाद' के लिए कहानीकार ने कांछदार साड़ी के परंपरागत पहनावे को आधार बनाकर अनोखी कहानी रची है। यहाँ 'काँछ' अनेक स्थलों पर माँ-पुत्र, पति-पत्नी और स्त्री-पुरुष के अवैध रिश्तों की व्याख्या का उपादान बनती है।

'ब्राह्मणवाद' इस लेख की शुरूआत में दिए गए कहानीकार के आत्मकथ्य का कथा सत्य है। इस कहानी में ब्राह्मणवादी दुष्प्रवृत्ति के कितने रूप-प्रतिरूप, रंग-ढंग पात्रों के सोच-विचार, व्यवहार, घटनाओं की नाटकीयता में मुखर होते हैं, और वह अविदित सच सामने लाते हैं जो एक वृहद सामाजिक व्यवस्था में दलित जातियों में व्याप्त है। जहाँ हर जाति ब्राह्मणवाद की शिकार है। एक दूसरे को अछूत-नीच मानते हैं लोग। निश्चय ही ये कहानियाँ दलित-विमर्श के लिए कुछ नए प्रसंग देती है, भले प्रामाणिकता की कसौटी के तर्क से इन कहानियों को खारिज़ कर दिया जाए।

पुस्तक का नाम : मरी खाल : आख़िरी ताल', लेखक-देवेन्द्र कुमार पाठक, प्रकाशन-अयन प्रकाशन

द्वारा-आनंद तिवारी, छोटी खिरहनी, साइंस कॉलेज, डाकघर-कटनी-483501 (म.प्र.)

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले से तजबीज कर नहीं बनती कोई कला : दूधनाथ सिंह

कोई भी रचना हर बार विस्फोटक और क्लासिकल कहानियाँ नहीं लिख सकता तथा सिर्फ़ कुछ तत्वों के शामिल कर देने भर से कहानी नहीं बनती। आदि और अंत का फैसला करके भी कहानी नहीं लिखी जाती तथा कहानी अपनी शुरूआत के बाद अपना अंत स्वयं तक नहीं करती है। उक्त बातें वरिष्ठ कथाकार दूधनाथ सिंह ने नीलम शंकर के पहले कहानी संग्रह 'सरकती रेत' पर महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के इलाहाबाद स्थित क्षेत्रीय विस्तार केन्द्र द्वारा आयोजित पुस्तक चर्चा कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए कहीं। नीलम शंकर की कहानियाँ विस्फोट नहीं करती पर उनमें कहानी तत्व मौजूद हैं। हिन्दी विश्वविद्यालय के कुलपति एवं वरिष्ठ कथाकार विभूति नारायण राय ने कहा कि यह लेखिका का पहला संग्रह है इसका स्वागत किया जाना चाहिए। कथाकार अनीता गोपेश के अलावा, प्रो0 ए.ए. फातमी, रमाकांत राय ने भी विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम का संयोजन संतोष भदौरिया ने तथा संचालन सुरेन्द्र राही द्वारा किया गया।

प्रस्तुति : निधि सिंह, इलहाबाद

वंचितों की संघर्ष गाथा का आख्यान

महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय विस्तार केन्द्र ने अपने आयोजनों की कड़ी में वंचितों की संघर्षगाथा को बयां करती तीन डाक्यूमेंट्री का प्रदर्शन केन्द्र के सत्यप्रकाश मिश्र सभागार में किया। परिवेश, इलाहाबाद एवं संजय जोशी के सहयोग से प्रदर्शित इन वृत्त चित्रों के नाम थे—गांव छोड़ब नाहीं, टू डाइ फॉर लैण्ड : द अल्टीमेट सेक्रीफाइस एवं 1000 डेज एण्ड ए ड्रीम। इन वृत्त चित्रों में ग्रामीण पलायन, अति पिछड़ों का दर्द, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते दखल के कारण गहराती पानी की किल्लत, आदिवासियों का शोषण और विस्थापन आदि पर जमकर प्रहार किया गया जिससे उदारवाद और बाज़ारवाद का घिनौना चेहरा बखूबी मुखरित हुआ।

इलाहाबाद के इस अनूठे आयोजन में प्रो0 राजेन्द्र कुमार, अजीत पुष्कल, रामजी राय, अनीता गोपेश, ज़ियाउलहक, के.के. पांडेय, अनुपम आनंद सहित बड़ी संख्या में समाजकर्मी एवं शोध छात्र उपस्थित रहे। कार्यक्रम का आयोजन एवं संचालन क्षेत्रीय केन्द्र के निदेशक संतोष भदौरिया द्वारा किया गया।

प्रस्तुति : निधि सिंह, इलाहाबाद

जनवादी लेखक संघ, राज्य इकाई, बिहार

जनवादी लेखक संघ, राज्य इकाई बिहार का 7वाँ-8वाँ संयुक्त सम्मेलन दिनांक 8-9 मई, 2010 को कथाकार वी.एम. मध्य विद्यालय सीवान में संपन्न हुआ।

जनवादी लेखक संघ के तीन वरिष्ठ उपाध्यक्ष लब्ध प्रतिष्ठ कथाकार मार्कण्डेय, प्रसिद्ध गीतकार हरीश भादानी एवं ख्यातिप्राप्त मार्क्सवादी आलोचक कुँवरपाल सिंह, जिनका निधन विगत अवधि में हो गया, की स्मृति को सादर समर्पित क्रमश : सम्मेलन स्थल, मंच एवं सभागार का नाम रखा गया।

जनवादी लेखक संघ के राष्ट्रीय महासचिव चंचल चौहान ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि आज का समय बहुत ही विकट है। पूँजीवादी व्यवस्था ने समाज के हर हिस्से से प्रभावित किया है। वित्तीय पूँजी विशेषकर मध्यवर्ग पर हावी हो गयी है। आज के इस वित्तीय पूँजी के हावी होने के दौर में भी हिन्दी और उर्दू में इसके विरुद्ध लेखन जारी है।

उद्घाटन सत्र के बाद साहित्यिक विमर्श शुरू हुआ जिसका विषय था—ग्रामीण जीवन की समस्याएँ और आज का सृजन। सीवान के अरुण कुमार सिंह और बलरामपुर (उत्तर प्रदेश) के डा0 चन्द्रेश्वर ने आलेख-पाठ किया।

प्रगतिशील लेखक संघ के राज्य सचिव राजेन्द्र राजन ने अपने संगठन की ओर से सम्मेलन का अभिनंदन करते हुए विषय केंद्रित विचार व्यक्त किया। सम्मेलन में मुख्य अतिथि एवं वक्ता के रूप में उपस्थित जनवादी लेखक संघ के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष डा0 विजेन्द्र नारायण सिंह ने आज के दौर में ग्रामीण जीवन की समस्याओं से जूझती कहानियों की विस्तारपूर्वक चर्चा की।

अध्यक्षमंडल की ओर से वंशीधर सिंह ने केदारनाथ अग्रवाल, जनकवि शील आदि की रचनाओं की चर्चा करते हुए ग्रामीण जीवन पर केंद्रित इनकी रचनाओं का उल्लेख किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनांक 9 मई, 2010 को सुबह 9 बजे से सांगठनिक प्रतिनिधि सत्र शुरू हुआ। कार्यकारी अध्यक्ष वंशीधर सिंह, उपाध्यक्ष रामजनक सिंह एवं अनंत कुमार सिंह के अध्यक्ष-मंडल ने इस सत्र की अध्यक्षता की। राज्य सचिव डा0 नीरज सिंह ने प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए कहा कि आज हमारे समक्ष प्रतिगामी शक्तियों की साम्राज्यवादी चुनौतियाँ हैं। सुखद यह है कि जनवादी एवं प्रगतिशील मूल्यों में विश्वास करने वाले लोग इस साजिश के विरुद्ध सजग और सक्रिय है।

सर्वसम्मति से 29 सदस्यीय राज्य कार्यकारिणी का गठन किया गया। प्रख्यात आलोचक-साहित्यकार डा0 विजेन्द्र नारायण सिंह को सर्वसम्मति से राज्याध्यक्ष वंशीधर सिंह को कार्यकारी अध्यक्ष तथा शैवाल, अनंत कुमार सिंह, कमर सिवानी, शाह जफ़र इमाम, अलखदेव प्रसाद 'अचल', प्रभुनाथ सिंह एवं अशोक गुप्त को उपाध्यक्ष बनाया गया। प्रख्यात कथाकार डा0 नीरज सिंह को पुनः राज्य सचिव सर्वसम्मति से निर्वाचित किया गया। विनीताभ, मार्कण्डेय, कृष्णचन्द्र चौधरी, घमण्डी राम, सत्येन्द्र कुमार, कुमार वीरेन्द्र और गुलरेज शहजाद को उपसचिव तथा विजय कुमार सिंह को कोषाध्यक्ष निर्वाचित किया गया।

प्रस्तुति : विनीताभ, बेगूसराय

श्रीकांत व्यास की एक उत्कृष्ट कृति है "परम तत्त्व अहिंसा"

पटना। हिन्दी एवं अंगिका के विख्यात साहित्यकार, व्यंग्य कथा लेखक एवं नाटककार श्रीकांत व्यास की सद्यः प्रकाशित आध्यात्मिक पुस्तक "परम तत्त्व अहिंसा" का लोकार्पण विगत 15 जून, 2010 को राजधानी पटना के केऊर स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ एजुकेशन एंड रिसर्च के सभागार में त्रिपुरा के पूर्व राज्यपाल प्रो0 सिद्धेश्वर प्रसाद ने किया। अध्यक्षता समाजसेवी श्री अनिल सुलभ ने की।

प्रस्तुति : आदित्य प्रकाश सिंह, पटना

रमेश उपाध्याय का कहानी पाठ

ललित कलाओं के लिए समर्पित संस्था 'स्पंदन' द्वारा हिन्दी के वरिष्ठ कथाकार, नाटककार, चिंतन, संपादक की रमेश उपाध्याय के कहानी पाठ का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता सुविख्यात व्यंग्यकार डा0 ज्ञान चतुर्वेदी ने की। इस अवसर पर रमेश उपाध्याय के रचनाकर्म पर बोलते हुए लेखक रामप्रकाश त्रिपाठी ने कहा कि रमेश उपाध्याय पिछले कई दशकों में जो सामाजिक और विषय रहे हैं, उनका चित्रण वे अपनी रचनाओं में करते रहे हैं। उनका संपूर्ण लेखन पानी में भीगी ईंट की तरह सीचे जाने का काम करता है। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए डा0 ज्ञान चतुर्वेदी ने कहा कि स्थापित लेखक होने के बाद रमेश उपाध्याय का विकास निरंतर होता रहा है।

इससे पूर्व स्पंदन की संयोजक कथाकार उर्मिला शिरीष ने रमेश उपाध्याय का परिचय विस्तार से दिया। रमेश उपाध्याय की कहानियों-ग्लोबल गांव के अकेले, रुदाला तथा कछुए और खरगोश' कहानियाँ सुनने के लिए आलोचक डा0 कमला प्रसाद, लज्जा शंकर हरदेनिया, महेन्द्र गगन, सविता भार्गव, मुकेश शर्मा, वीरेन्द्र जैन, गायत्री गौड़ सहित बड़ी संख्या में साहित्य प्रेमी उपस्थित थे। संस्था के अध्यक्ष डा0 शिरीष, सचिव गायत्री गौड़ तथा लेखक वीरेन्द्र जैन ने अतिथियों का स्वागत किया।

प्रस्तुति : उर्मिला शिरीष, भोपाल

आवां की नाट्य प्रस्तुति

गतदिनों कलकत्ता के 'शिशिर मंच' प्रेक्षागृह में दर्शकों के समक्ष आवां की प्रथम प्रस्तुति की गई। 'आवां' के नाट्य रूपांतरण की कथा वस्तु, लकवे के शिकार, बिस्तर बंद मज़दूर संगठन के सक्रिय कार्यकर्ता रहे देवी शंकर की बेटी नमिता के इर्द-गिर्द घूमती है जो परिवार की मुफलिसी का मुकाबला करने के लिए नौकरी की तलाश में है। मज़दूर संगठन के नेता तथा पिता के मित्र अन्ना साहब द्वारा नौकरी दिए जाने के बाद उसका शारीरिक शोषण किया जाना उन सफ़ेद पोश मर्द दरिंदों को बेनकाब करता है जो समाज के सामने आदर्श व्यक्ति की प्रतिमूर्ति बने खड़े हैं और जिन्हें ऊर्जा प्राप्ति के लिए औरत की देह में दौड़ती बिजली चाहिए। दूसरी नौकरी की तलाश में उसकी मुलाकात कॉरपोरेट वर्ल्ड की अंजना वासवानी से होती है जिसका आदर्श है कि औरत की मज़बूती का आधार बड़ा नोट है तथा वहीं उसे मिलती है गौतमी जिसके अनुसार 'औरत के अस्तित्व का तिलिस्म उसकी देह से ही उपजता है। अंजना की दुनिया की चकाचौंध नमिता को उसके वर्ग से तोड़कर उस उपभोक्तावादी संस्कृति से जोड़ता जाता है जो उदारवादी छद्म वेश में उसका भरपूर शोषण करता है। अंजना वासवानी एवं गौतमी द्वारा दौलत और स्त्री देह के महिमा मंत्र से से दीक्षित नमिता अपने से उम्र में काफी बड़े विवाहित उद्योगपति संजय कनोई के बाहुपाश में जा पड़ती है।

संजय को नमिता की पवित्र और गैर पेशेवर कोख से अपने औरस का संतान चाहिए, अपना पुंसत्व साबित करने के लिए। सदमे से हुए नमिता के गर्भपात के बाद संजय का खूंखार चेहरा सामने आता है। पुरुष द्वारा स्त्री शोषण के लिए स्वयं स्त्री का ही माध्यम बनना तथा अंधी महत्वाकांक्षा के मोह में स्त्री की नैतिकता की दहलीज़ लांघने की त्रासद स्थिति दर्शाता यह नाटक निर्देशक प्रताप जायसवाल की निर्देशकीय सूझ बूझ एवं पकड़ का परिचय देती है। कलाकारों का सजीव अभिनय नाटक को समृद्धि देता है।

'आवां' का नाट्य स्वरूप रंगमंच की विशिष्ट उपलब्धि कही जानी चाहिए।

प्रस्तुति : नीता खुवा, कोलकाता

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचंद की कहानियाँ : दलित सरोकार

'मुंशी प्रेमचंद स्मारक शोध एवं अध्ययन केन्द्र' लमही, वाराणसी के तत्वावधान में 'प्रेमचंद की कहानियाँ : दलित सरोकार' विषय पर एक संगोष्ठी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित भारत कला भवन में आयोजित हुई। इस अवसर पर प्रख्यात आलोचक निर्मला जैन ने कहा कि प्रेमचंद की रचनाओं का संघर्ष उपनिवेशवाद के खिलाफ़ है। यह संघर्ष किसी जाति विशेष के खिलाफ़ नहीं बल्कि वृत्ति के खिलाफ़ था। उन्होंने प्रेमचंद की 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ', 'दूध का दाम' और 'कफ़न' कहानी का संदर्भ लेते हुए बदलते दलित चेतना के सरोकारों का उल्लेख किया। प्रेमचंद द्वारा घीसू, माधव जैसे निकृष्ट कोटि के दलित पात्र सृजित करने के आरोप पर विराम लगाते हुए उन्होंने बताया कि उनके साहित्य में सनातनी ब्राह्मणवादी मानसिकता के निकृष्ट स्वरूप भी परिलक्षित हुए हैं।

'मुंशी प्रेमचंद स्मारक शोध एवं अध्ययन केन्द्र' लमही, वाराणसी के सदस्य सचिव प्रो0 कुमार पंकज और संयोजक प्रो0 विजय बहादुर सिंह ने भी अपने विचार व्यक्त किये। अध्यक्षता बी0एच0यू0 के कुलपति प्रो0 धीरेन्द्रपाल सिंह तथा धन्यवाद ज्ञापन प्रो0 रंगनाथ पाठक ने किया। इस अवसर पर प्रो0 राजकुमार, आशीष त्रिपाठी, श्रीप्रकाश शुक्ल, प्रगतिशील लेखक संघ उ0प्र0 इकाई के महासचिव संजय श्रीवास्तव, शशि कुमार सिंह, डा0 चन्द्रशेखर सिंह आदि उपस्थित थे।

प्रस्तुति : रिपुंजय कुमार सिंह
बी0एच0यू0, वाराणसी

गांधीवाद की एक सीमा है

बाँदा, नागरी प्रचारक पुस्तकालय के हाल में देवेन्द्र नाथ स्मृति शोध संस्थान के तत्वावधान में महात्मा गांधी द्वारा लिखित पुस्तक 'हिन्द स्वराज' के सौ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में चर्चित कथाकार अखिलेश द्वारा 'हिन्द स्वराज' पर विशेष व्याख्यान दिया गया। इस व्याख्यान आयोजन की अध्यक्षता प्रख्यात समाजवादी नेता पूर्व ग्राम विकास मंत्री श्रीजमुना प्रसाद बोस ने की जिन्हें आदर से लोग बांदा का गांधी कहते हैं।

'हिन्द स्वराज' पर बोलते हुये कथाकार अखिलेश ने कहा कि—आदमी द्वारा निर्मित मशीनें आदमी को बेकार कर रही हैं। विश्व के एक तिहाई लोग बेरोजगार हो रहे हैं। बाजार में पूँजी के आगे आदमी की कोई कीमत नहीं है। इस पुस्तक के प्रकाशन के सौ वर्ष पूरे होने पर भूमंडलीकृत समाज के आर्थिक परिवेश के पुर्नमूल्यांकन में गांधी जी की भूमिका तथा उनके प्रभामण्डल में पनपे प्रभावों का भी अध्ययन है। अध्यक्ष पद से बोलते हुए श्री जमुना प्रसाद बोस ने कहा कि गांधी जी व्यक्तिगत जीवन को लेकर उसकी अस्मिता को लेकर संकट पैदा होंगे। ज्यों-ज्यों संकट बढ़ेगा, गांधी जी हमारे लिए ज़रूरी होते जायेंगे। कार्यक्रम के संपादक नरेन्द्र पुण्डरीक ने कहा व्यक्ति के हित और अहित को लेकर जिस तरह से वैज्ञानिक विकास की सीमा है उसी तरह व्यक्ति के हित-अहित को लेकर गांधीवाद की भी सीमा है। कार्यक्रम में अतिथियों के प्रति आभार एवं स्वागत अमिताभ खेर ने व्यक्त किया।

प्रस्तुति : नरेंद्र पुंडरीक, डी0एम0 कॉलोनी, बांदा

आज के समय में नौटंकी

साहित्य से संबंध रखने वाली, लेकिन धीरे-धीरे गायब हो रही विभिन्न प्रदर्शनकारी कलाओं को मंच प्रदान करने के उद्देश्य से शुरू किए कार्यक्रमों की शृंखला में हिन्दी एवं मैथिली-भोजपुरी अकादमी, दिल्ली ने हाथरस शैली की नौटंकी का मंचन त्रिवेणी सभागार में किया गया। शिकोहाबाद उत्तर-प्रदेश से आई श्रीमती कृणा माथुर और उनके साथियों ने 'इंदल हरण' नौटंकी की प्रस्तुति दी। पंडित नत्था राम गौड़ अखाड़े की इस नौटंकी का विषय था-आल्हा-उदल की वीरता, उनसे उनके मामा माहिल द्वारा छल पूर्वक बदला लेने की कुटिल चालों, आल्हा के बेटे का अपहरण करा कर उदल और उसकी भाभी मछला के साथ गंदे संबंधों का हवाला देकर उदल को मरवाने की चेष्टा। नौटंकी की शुरुआत परंपरा के अनुसार 'भेंट' गायन से हुई। बीच में गाए गए विभिन्न गीतों को भोजपुरी भाषा में गाया गया।

कुटिल मामा माहिल के रूप में 76 वर्षीय बुजुर्ग कलाकार श्री छज्जन सिंह, आल्हा की पत्नी के रूप में श्रीमती कृणा माथुर का अभिनव बेहद प्रभावी था। बालकिशन और देवीराम द्वारा बजाए गए नगाड़े और हारमोनियम का भी खचाखच भरे हॉल और फर्श बैठे दर्शकों ने भरपूर आनंद लिया।

नौटंकी आरम्भ होने से पहले मैथिली भोजपुरी अकादमी के उपाध्यक्ष डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव ने सभी कलाकारों का पुष्प गुच्छ से स्वागत किया। डॉ. मुकेश गर्ग ने नौटंकी की प्राचीन परंपरा और उसकी वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालते हुए बताया कि धीरे-धीरे खत्म होने के कगार पर पहुंच रही इस विधा को बचाना बेहद जरूरी है। श्रीमती कृणा माथुर जैसी विदुषी और प्रख्यात कलाकार का अकेले इसे बचा पाना बेहद मुश्किल होगा। हिन्दी और मैथिली-भोजपुरी अकादमी के सचिव डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास' ने पिछले कार्यक्रमों में दर्शकों की बढ़ती जा रही भागेदारी पर धन्यवाद देते हुए आश्वासन दिया कि अकादमी आगे भी ऐसे कार्यक्रम करती रहेगी। उन्होंने कहा- "मुकेश गर्ग नौटंकी की पृष्ठभूमि पर श्रेष्ठ बोले। उनमें लोक नाट्य परम्परा के तन्तुओं की अन्तर्समझ है। कृष्णा माथुर के अभिनय व गायन में गहन लालित्य की प्रतिष्ठा थी। भाषा के रूप में भोजपुरी, ब्रज तथा खड़ी बोली के मिश्रण से एक अलग आभा दिखाई दे रही थी।" स्वयं परिचय दास ने कार्यक्रम के आरंभ में दोहा व बहर-ए-तबील में गायन करके कार्यक्रम को सांगीतिक गति दी।

प्रस्तुति : डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

55वाँ ओएनजीसी दिवस

अन्वेषण की नई सोच ने दिया है हमें सफलता का नया स्वाद

अन्वेषण के जोश ने 54 वर्षों के हमारे सफ़र को वाकई यादगार बना दिया है। हमारे निरंतर प्रयासों ने हमें कामयाबी की नयी बुलंदियों तक पहुंचाया है। अपने इन्ही प्रयासों के चलते आज हम तेल के 1.2 मिलियन बैरल्स प्रतिदिन के उत्पादन के साथ, दुनियाभर की अन्वेषण एवं उत्पादन कंपनियों के बीच तीसरे स्थान पर विराजमान हैं। भारत के प्रति हमारा योगदान देश के कुल तेल उत्पादन का 79% और गैस उत्पादन का 54% है। समय के साथ–साथ, कंपनी ने ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की खोज की ओर भी कदम बढ़ाया है। हम गुजरात में 51MW की विंड पावर का उत्पादन करते हैं और राजस्थान में हमारा लक्ष्य 100MW का है। 2007–12 के दौरान हमारा लक्ष्य 1.24 बिलियन क्यूबिक मीटर्स कोल बेड मीथेन और अंडरग्राउंड कोल गैसिफिकेशन से 2.99 बिलियन क्यूबिक मीटर्स के उत्पादन का है। इसमें कोई शक नहीं, कि अपने 55वें ओएनजीसी दिवस पर हमारे पास खुशियां मनाने के कुछ नए कारण होंगे।

ओएनजीसी ONGC

सहायक कंपनी

संयुक्त उपक्रम

- खोज के लिए साहस
- श्रेष्ठता के लिए ज्ञान
- उत्कृष्टता के लिए तकनीक

पंजीकृत कार्यालय : 'जीवन भारती', टॉवर–II, 8वाँ तल, 124–इन्दिरा चौक, नई दिल्ली–110001 www.ongcindia.com

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृजन स्मरण

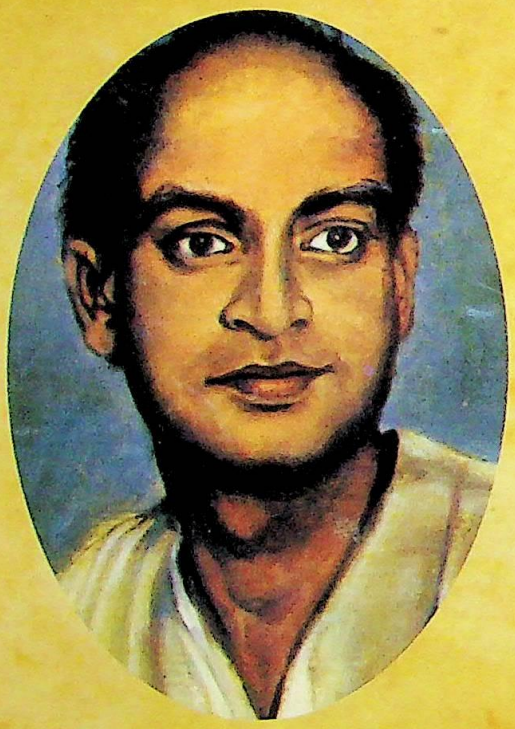

पहला डडा आदमी ने जानवर मारने को उठाया था, जिससे उसने दूसरे कबीले के आदमी का सिर तोड़ा और तब से तलवार, बन्दूक, तोप होता हुआ वह उद्जन बम तक आ गया है। बम बनाने की तुक ही क्या है! दोनों तरफ से आत्मरक्षा। और इसका नतीजा?

रांगेय राघव
(1923 - 1962)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार
सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित तथा 28, एम.आई.जी., अवन्तिका-।, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल सिंह
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनमाली सृजन पीठ

श्री जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' स्मृति ग्रंथ के प्रकाशन के लिए रचनाएँ आमंत्रित

श्री जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' अविभाजित मध्यप्रदेश के प्रमुख शिक्षाविद् एवं कथाकार रहे हैं और उन्होंने प्रमुखता से बिलासपुर, खंडवा तथा भोपाल में रहते हुए रचनाकर्म किया। उनकी स्मृति में भोपाल में वनमाली सृजन पीठ की स्थापना की गई है।

वनमाली सृजन पीठ की आगामी योजनाओं में से एक है- श्री जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' के रचनाकर्म पर केन्द्रित स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन। उनके सभी छात्रों, समकालीन शिक्षकों, मित्रों एवं परिचितों से अनुरोध है कि वे उनके पास उपलब्ध कोई भी जानकारी, संस्मरण, चित्र, आलोचनात्मक टिप्पणी या उनकी उपलब्ध रचना, **30 अक्टूबर 2010** तक वनमाली सृजन पीठ के कार्यालय भेजने का कष्ट करें।

सभी सहभागियों की सृजन पीठ आभारी रहेगी।

संतोष चौबे
अध्यक्ष
09826256733

***

विनय उपाध्याय
संयोजक
09826392428

***

संपर्क का पता
वनमाली सृजन पीठ
ई-7/22, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
विभूति नारायण राय

सम्पादक
नमिता सिंह

सह-सम्पादक
अजय बिसारिया ❑ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

विशेष संपादकीय सहयोग : प्रदीप सक्सेना

प्रबन्ध सम्पादक : राजीव श्रीवास्तव
आवरण : बिसारत अली
रेखांकन एवं मुखपृष्ठ : सुभाष केकरे, कोटा

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

वर्ष 26 ❑ अक्टूबर, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय
28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com
Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; ❑ वार्षिक : 230/-; ❑ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 300/- ❑ आजीवन : 2000/- ❑ विदेशों में साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। केवल लोकल चैक ही स्वीकार किये जायेंगे।)

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

इस अंक में

पाठक मंच/2
अपनी बात/5

स्मरण : जन्मशताब्दी वर्ष के अवसर पर
शमशेर की कविता क्लासिकल ऊँचाई.../शैलेन्द्र चौहान/8
मिलने आना शमशेर का एक कॉमरेड से/शकील सिद्दीकी/11

लेख
लोक संस्कृति, बाज़ारवाद और निराला/अजय तिवारी/17
स्त्री-कोख हथियाने की बेहयाई..../रवीन्द्र कुमार पाठक/59

कहानी
घर लौटने का समय/सनत कुमार/25
आत्महत्या/शिव प्रताप पाल/28
एडीमेन्ट/चंद्र भान 'राही'/30
नेवर व्यू/रजनी गुप्त/34
फ़ेयरडील/गजेंद्र रावत/39

कहानी : देश-देशांतर
किलिमंजारो की बर्फ़/लेखक : अर्नेस्ट हेमिंग्वे/अनु0 सुशांत सुप्रिय/45

चार कविताएँ/बलदेव वंशी/13
तीन कविताएँ/डॉ0 सुभाष राय/15
दो कविताएँ/पद्मा मिश्रा/24
कविता/पिता/सी. भास्कर राव/29
कविता/बोन्साई/डॉ0 उत्तिमा केशरी/43

तीन कविताएँ/श्रीराम दवे/58
कविता/अपनी चाल/भूपिन्द्र कौर प्रीत/74

ग़ज़लें/महेश अग्रवाल/23
तीन ग़ज़लें/सुधेश/44

दृष्टिकोण-मुस्लिम बुद्धिजीवियों की ऐतिहासिक भूलें/ मुशर्रफ़ अली/62

आखिरी पन्ना
देवता के बाने में शैतान/ गिरीश मिश्र/79

पुस्तक समीक्षा
पानी सबका है, सिर्फ़ हमारा नहीं/(विद्या सागर नौटियाल) /अरुण होता/67
संस्कृतियों के अंतर्द्वद्व का विस्फोट/ (सुदर्शन प्रियदर्शिनी) /एम.हनीफ़ मदार/68
समझौतावादी स्त्रियों की कहानियाँ/(मैत्रेयी पुष्पा) /हरपाल सिंह अरुष/70
हिन्दी व्यंग्य और शरद जोशी/(डा0 कमलेश सिंह) /डा0 रामपाल गंगवार/72
पिछड़े वर्ग की नयी स्थापनाओं का दस्तावेज़/(संजीव खुदशाह) /राजेश कुमार सिंह/73

सांस्कृतिक समाचार/75

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.A.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वर्तमान साहित्य' सितंबर, 2010 के संपादकीय-अपनी बात-के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें कि आपने बड़े साहस से एक स्त्री होने के बावजूद सत्य के दोनों पक्षों को सामने रख दिया। विभूति नारायण राय जी के द्वारा प्रयुक्त एक शब्द विशेष को लेकर जिस तरह का हंगामा खड़ा किया गया, उसके पीछे संवेदनशीलता की संस्कृति से ज़्यादा 'स्कोर सेटिल' करने की नीयत ज़्यादा दिखलाई दी। निस्संदेह, विभूति जी से निंदनीय गलती हुई जिसका अहसास भी उनको हुआ। किन्तु इसके पीछे जो लोग पड़े, उनकी नीयत भी उतनी ही 'स्वच्छ' है जितनी की बगुले की पाँखें होती हैं। इनमें से राजस्थान के एक साहित्यकार का तो मुझे पता है, जिसने विभूति-विरोध को अभियान की तरह चलाने का प्रयास किया। विभूति जी का सबसे बड़ा दोष यह है कि उन्होंने अंगद के पाँव की तरह वर्धा में जमे लोगों को जड़ सहित उखाड़ फेंका। अभी 'लोकायत' के 1 सितंबर से 15 सितंबर, 2010 अंक में उनकी बातचीत पढ़कर कहीं से भी वह बातचीत फूहड़ और अगंभीर नहीं लगती-सिवाय उस एक शब्द को छोड़कर।

'स्त्री विमर्श' के नाम पर पिछले दिनों स्त्री देह का अनावरण किया गया है वह कौन-सा सराहनीय साहित्य कर्म है। अतिरिक्त पूँजी के बढ़ते आवारा खेल में यह सब उसकी ज़रूरतों के अनुसार होता है। पूँजी केवल पुरुष को ही लिबरेट नहीं करती, स्त्री को भी करती है। किन्तु यह खेल वहीं चलता है जहाँ अतिरिक्त और आवारा पूँजी के अवसर होते हैं। स्त्री देह को भी वैसी ही आज़ादी मिले, जितनी पुरुष देह को रही है, इसमें कोई ग़लत बात नहीं है। अब स्त्री देह पर सामंती रिश्ते ज़्यादा दिनों तक नहीं चल सकते। पुरुष की सत्ता को चुनौती मिल रही है, यह शुभ संकेत है। किन्तु देह तक ही बात सीमित नहीं रहनी चाहिए-वह 'आत्मा' तक भी जानी चाहिए। स्त्री का मन भी होता है, हृदय, बुद्धि और विवेक भी होता है, और फिर स्त्रियाँ केवल उच्चवर्गीय ही नहीं होती। मध्य और निम्न वर्गीय स्त्रियों की तादाद कम नहीं है। देश के किसान, मजदूरों-सैनिकों की स्त्रियों के भी अपने विमर्श हैं। देह विमर्श तक ही बातें सीमित रहेंगी, तो खण्ड के पाखण्ड भी होंगे।

'नया ज्ञानोदय' के बारे में हमें नहीं भूलना चाहिए कि वह एक पूँजी-प्रतिष्ठान की पत्रिका है, जिसके लिए साहित्य-कर्म से ज़्यादा पूँजी-कर्म वरेण्य रहा है। साहित्य उनके लिए गौण है। जो साहित्यकार पूँजी-प्रतिष्ठानों को महत्व देगा, पूँजी के संपादक उसकी वैसी ही हालत करा देंगे, जैसी विभूति जी की करा दी गयी है। विभूति जी ने 'साहित्य' में जो काम किया है और सांप्रदायिकता-विरोध में अपनी नौकरी को दाव पर लगाकर जो कुछ किया है तथा वर्धा में कुलपति-दायित्व का जिस तरह निर्वहन कर रहे हैं, उसको भी देखा जाना चाहिए।

जीवन सिंह, अलवर

'वर्तमान साहित्य' का अगस्त 2010 का अंक मिला। मुखपृष्ठ को देखता ही रहा, देखता ही रहा, पृष्ठ पलटकर रचनाकार का नाम जानने की जिज्ञासा रही, पर उनका नाम नहीं मिला। दुख हुआ। विषय वस्तु, बैक ग्राउण्ड, रंग संयोजन सब कुछ अद्भुत था। अनाम फोटोग्राफर को हार्दिक आभार। क्योंकि मुझे (मैं भी मुखपृष्ठ बनाता हूँ) सीखने को मिला। आर्टिस्ट का परिचय नहीं दिया गया, शायद उनकी उपेक्षा की गयी है। ये 'खत देखकर मजमून भांपने' की बात आर्टिस्ट पर निर्भर होती है।

(बंधु, वह चित्र नेट से लिया गया था। जो आर्टिस्ट अपने चित्रों के साथ परिचय भेजते हैं हम उसे अवश्य प्रकाशित करते हैं-संपादक)

बंशीलाल परमार, सुवासरा

'वर्तमान साहित्य' संप्रति बिना नागा प्राप्त हो रही है। प्रो0 के0पी0 सिंह साहब ने जो बिरवा लगाया था, उसकी वैचारिक छाया तले सभी को सुकून है। उनके न रहने पर भी हमारे बीच लगातार वर्तमान साहित्य की मौजूदगी प्रो0 सिंह साहब की ही मौजूदगी का पर्याय है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का लेख अच्छा लगा। ऐसे ही लेख हमारा विवेक जाग्रत करते हैं। यह पत्रिका हिन्दी की शक्ति बनकर उभरी है। इसी तरह वर्तमान बनी रहे हम सबकी 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका।

प्रो0 कालाचरण 'स्नेही', लखनऊ

'वर्तमान साहित्य' के अगस्त अंक का मुखपृष्ठ बहुत ही प्रतीकात्मक है, बल्कि स्वयं में एक कवि भाषा में अपना रोष, अपना आक्रोश व्यक्त कर जाता है। उसके बाद बचा-खुचा आपका संपादकीय। 'भाषा, संस्कृति...' पर भाई अब्दुल बिस्मिल्लाह का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ बहुत ही तर्कसंगत और सूचनात्मक है। मैं ने कई भ्रांतियाँ दूर होंगी। श्री विनोद शाही का लेख इतिहास के मंतव्यों को प्रकट करता है, जो समकालीन इतिहास को समझने के लिए उपयुक्त है। उन की कहानियाँ और यशः के नवगीत उल्लेखनीय हैं।

अंतिम पृष्ठों पर जो समाचार दिए गए हैं, उनमें स्थान और तारीख गायब रहने से कुछ पता नहीं चलता कि आयोजन कहाँ हुआ। आगे से इसका ख़याल रखना सामान्य पाठकों को सुख देगा।

बुद्धिनाथ मिश्र, देहरादून

'वर्तमान साहित्य' का अगस्त अंक। संपादकीय में प्रतिष्ठा के नाम पर की जा रही पारिवारिक सदस्यों की हत्या की बढ़ती वारदातों की समीक्षा करते हुई कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। निःसंदेह आम जनता अपने नागरिक कर्त्तव्यों व सामाजिक दायित्वों से विमुख होती जा रही है। समाप्त होता 'पड़ोस कल्चर' भी चिंता का विषय है। आज गाँवों तक में बदलती संस्कृति के पद चिह्न देखे जा सकते हैं—खान-पान, रहन-सहन के तौर-तरीके बदल रहे हैं, नवीन जीवन-शैली दस्तक दे रही है पर सोच व मानसिकता वही पुरानी है, चाहे कोई गाँव में रहे या शहर में। अब हमें इस सत्य को स्वीकार कर ही लेना चाहिए कि जातीय भिन्नता मनुष्य के स्वार्थ का परिणाम है। 'आखिरी पन्ना' स्तंभ के अंतर्गत विनोद मिश्र जी का लेख पढ़ा तो विचार आया कि भारत में प्रतिभा की कमी नहीं है, कमी है तो साफ़ नीयत की। आज देश को आज़ाद हुए तिरसठ वर्ष हो चुके हैं, पर यदि हम पीछे मुड़कर देखें तो पाएँगे कि इतने जटिल प्रयासों से प्राप्त की गई आज़ादी का किस प्रकार दुरुपयोग किया है। हमारी लड़ाई है निर्धनता, असमानता के साथ-साथ भ्रष्टाचार के खिलाफ़। यदि हम इन बुराइयों पर जीत प्राप्त कर लेते हैं, तभी भारतीय मेधा का परचम विश्व-पटल पर लहरा सकेगा तथा भारत की धमक पूरे विश्व में सुनाई देगी। अनुपमा जी की लघुकथा, 'मोल-भाव' ने जगदीश चंद्र माथुर के एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' की याद दिला दी, जिसमें विवाह को 'बिजनेस' कहा गया है। चमन जी की कहानी 'जेबकतरा' अच्छी लगी जिसमें गंगादीन यादव भारत की आम जनता का प्रतिनिधित्व कर रहा है। 'डाली' कहानी का उत्तरार्द्ध चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'गिलिगडु' की याद दिलाता है। 'खिरसू' कहानी बहुत अच्छी लगी। 'अप्रत्याशित' कहानी में बेटी के लिए जीवन-साथी चयन में काशी को अपने मन की बात कहने की छूट थी। यह एक आदर्श स्थिति है। डॉक्टर साहब उन युवाओं का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, जिनकी सोच बदल रही है। उनका फैसला उचित था परिस्थितियों से टक्कर लेने के लिए हिम्मत व हौसले का अभाव है। कविताएँ भी अच्छी लगी।

आस्ती त्रिपाठी, कानपुर

'वर्तमान साहित्य' का अगस्त 2010 का अंक देखा। बहुत अच्छा लगा। आपके संपादकीय सामयिक और मन को झकझोरने वाले हैं। विचारों की एक सतत शृंखला है। विषय विवेचन बहुत अच्छा है।

बचपन में हम नहीं जानते थे कि हमारे साथ पढ़ने वाले रमेश, सुरेश, उमेश, अबरार किस जाति या समुदाय के हैं। किन्तु आज स्कूल जाने वाले बच्चे भी जानते हैं कि कौन अनुसूचित जाति का है, कौन ओबीसी है। वोटों की राजनीति ने यह जातिगत घृणा लोगों के मन में भरकर अपनी स्वार्थसिद्धि की है। खाप पंचायतें क़ानून का मखौल उड़ा रही हैं। भाई, पिता अपनी ही बेटी, बहन के दुश्मन बने हुए हैं किन्तु कोई राजनीतिक दल इसके विरोध में बोलने को तैयार नहीं। करोड़पति और भ्रष्ट सांसद केवल अपनी 'सेलेरी' बढ़वाने की फिक्र में हैं। आपने सही लिखा कि क़ानून व्यक्ति, समाज या समुदाय को कड़ी से कड़ी सजा दे। किन्तु क्या राजनीति कभी इस सजा को अमल में लाने देगी ?

वर्तमान साहित्य के अगस्त अंक की कहानियाँ, कविताएँ अच्छी लगीं। विशेषकर सुषमा मुनीन्द्र की कहानी 'अप्रत्याशित' और आलोक श्रीवास्तव की कविताएँ। अंक पठनीय है। सामग्री चयन उत्कृष्ट है। पत्रिका के सफल संपादन के लिए मेरी हार्दिक बधाई।

डा0 निशिकांत कोचकर, खण्डवा

अगस्त 2010 अंक पढ़ा। अपनी बात 'सदी की गहरी बात।' 'जगदीश चंद्र... के बहाने विनोद शाही की 'टीस'। अगर देश का बँटबारा न हुआ होता तो पंजाबी साहित्य और उर्दू साहित्य की कोई विभाजक रेखा नहीं होती। 45 प्रतिशत ग़ैर सिक्खों के दर्द और साहित्यिक पहचान को 55 प्रतिशत सिखों के साथ जोड़ना और पूरी आबादी की साहित्यिक शून्यता। यही है संपादकीय सूझ की पराकाष्ठा कि क्या हो रहा है।

नहले पर दहला अब्दुल बिस्मिल्लाह का लेख/ मुस्लिम संस्कृति/ जैन संस्कृति/ सिख संस्कृति के खांचों में भारतीय संस्कृति को नहीं बाँटा जा सकता।

अन्य रचनाएँ एवं समीक्षाएँ भी स्तरीय हैं।

जितेन्द्र जितांशु, पश्चिम बंगाल

समाजवादी प्रगतिशीलता वैचारिकता का पलायन होने से गेहूँ की बोरी में तब्दील हो गई। कानून विशेषज्ञ शिक्षामंत्री बन कानून के आँकड़ों में शिक्षा जमाने लगे हैं। गंभीरता से हँसी आना जायज, जबकि हँसी में ही गंभीरता होती है। जो खिरसू में छुपा बैठा है वह गंभीर परिहास उसका जीवन रक्षक बन जाता है। मृतकों में प्राणवायु चली तो पत्थर भी फूल में तब्दील हो जाते हैं। 'जेबकतरा' का शोषण काम के बाद सही वक़्त पर मज़दूरी नहीं मिलना दर्शाता है। इंदु श्रीवास्तव की ग़ज़लों में, दुनियादारी, अध्यात्मदारी पाँखे फैलाकर उड़ रही है। चंद्रशेखर की कविताएँ तब्दील होते जीवों का टापू बनाती हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह का लेख अगस्त 2010 में सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भारी है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने तो कहा– इस्लाम जिसे इस्लाम मानता है, पर इस्लाम की अरबी व्याख्या करने से चूक गए। वर्तमान साहित्य के एक अंक में पढ़ा था जर्मनी भाषा बिस्मार्क के कठोर फैसले से उस देश में स्थापित हो सकी। क्या हमारे देशीय कर्णधारों में बिस्मार्क जैसा भाषा-जज्बा है। सुभाष गाताड़े ने विलुप्त हो रही भाषाओं का नाम लेख में क्यों नहीं दिया ? यदि गिरीश मिश्र अंग्रेज़ी स्पेलिंग 'कामंस' की देते तो बेहतर होता? आलेख जानदार है और दमदारी से लिखा गया। पूरनचंद जोशी की पुस्तक चर्चा सभीवादों/ पार्टियों की खिंचाई करती है।

यशवंत, राजनांदगांव-491441

'वर्तमान साहित्य' का अगस्त अंक। अंक में शामिल सामग्री पत्रिका की सोच को प्रतिबिंबित करती है।

सभी रचनाएँ स्तरीय हैं और अंक संग्रहणीय है।

डा0 प्रद्युम्न भल्ला, कैथल

'वर्तमान साहित्य' का अगस्त, 2010 अंक। अब्दुल बिस्मिल्लाह जी का लेख 'भाषा और संस्कृति' पर बहुत अच्छा लगा। मानवता के दायरे में हर संस्कृति अपनी-अपनी जगह पर उपयुक्त है। सुषमा मुनींद्र की कहानी अप्रत्याशित और रणीराम गढ़वाली की 'खिरसू' बहुत अच्छी लगीं।

कविताओं के तेवर कटाक्ष करते हुए एक अमिट बिंब सामने लाते हैं। टीकेन्द्र शाह की 'कैसा उदास मंजर है' वक्त की सही तस्वीर है। 'आंसू' नगमा जावेद की आत्मीयता की गुफ्तगू रही!! समाज और परिवार की त्रासदी शब्दों के आकर में ढल रही है। बेहतरीन संपादन के लिये तमाम टीम को मेरी बधाई।

देवी नागरानी, मुंबई

'वर्तमान साहित्य' का जुलाई अंक मिला। 'खाप पंचायत' पर संपादकीय के लिये बधाई। कभी औरतों को 'डायन' बताकर की जाने वाली हत्याओं पर भी लिखें। झारखंड, आंध्र आदि प्रदेशों सहित देश में 150-200 महिलाएँ प्रतिवर्ष मार दी जाती हैं। पुस्तक चर्चा में डा0 प्रदीप सक्सेना का लेख पढ़कर ज्ञान वृद्धि हुई।

कैलाश चंद्र भाटिया, भारती नगर, अलीगढ़

'वर्तमान साहित्य' का जुलाई अंक। संपादकीय में अनेक मुद्दे उठाये गये हैं जिनका संबंध हमारे राजनैतिक व लोकतंत्र की व्यवस्था से है। कुँवरपाल सिंह का लेख अत्यधिक प्रभावी है क्योंकि प्रेमचंद सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टिकोण से संवेदनशील रचनाकार थे। जिन्होंने ग़रीब किसानों, दलितों व स्त्रियों की समस्याओं को अपने साहित्य में जगह दी। इस अंक की सभी कहानियाँ आज की स्थिति से जूझती व समाधान की तलाश करती हुई प्रतीत हो रही हैं। संकल्प की स्त्री संघर्षशील है। डा0 निहारिका की कहानी स्त्री चेतना को जाग्रत करती है। जाफ़र मेहदी जाफ़री की कहानी 'तन्हा-तन्हा ज़िंदगी' व राजेश झुरपुरे की कहानी 'लंगड़े पिता' युवा वर्ग पर प्रहार है जिसका दंश बुजुर्गों को झेलना पड़ता है। कमला सतपथी की कहानी में आधुनिकता का सैलाब है जो न सिर्फ़ एक ज़िंदगी को तबाह करता है बल्कि कई घरों को शमशान बना देता है। डा0 ऋतु वार्ष्णेय का लेख पर्यावरण को बचाने की ओर संकेत करता है। लघुकथायें व्यंग्यात्मक हैं और ग़ज़लें प्रेरक हैं। त्रेपनसिंह चौहान की कविता असहजता से भरी स्त्री की आत्मीयता की छटपटाहट से लवरेज़ है।

बीना सिंह, कानपुर

भूल सुधार

'वर्तमान साहित्य' अगस्त, 2010 अंक में ओड़िया के शीर्ष कवि सीताकांत महापात्र की कविता 'भिखारी बच्चे की मृत्यु' के अनुवादक श्री महेन्द्र शर्मा (एन-6/503, आई.आर.सी. विलेज़, भुवनेश्वर-15) हैं। इनका नाम अनुवादक के रूप में नहीं जा सका, इसका खेद है।

0 0 0

रचनाकारों से निवेदन है कि हर रचना के नीचे (मौलिक/अनुवाद) अपना नाम और पता अवश्य लिखें। अक्सर हमारे लेखक बंधु केवल रचना के साथ संलग्न पत्र में ही अपना नाम और पता लिखते हैं। इस स्थिति में रचना के साथ नाम अथवा पता नहीं जा पाता है—संपादक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

भारतीय समाज में विद्यमान भीषण विषमताएँ फिर सतह पर उठती दिखायी दे रही हैं। दुनिया के सबसे अमीर यहाँ बसते हैं और सबसे ग़रीब भी यहीं रहते हैं। किसान अपना पसीना बहाकर इतना गेहूँ-चावल यहाँ पैदा करता है कि कोई भूखा न सोये, लेकिन दुनिया के भूखों में ख़ासा अच्छा स्थान हमारा भी है। दुनिया के बुद्धिजीवी, ज्ञानी समुदाय में बड़ी संख्या में यहाँ के लोग शामिल हैं; अन्वेषक, बौद्धिक नेतृत्व देने वाले शामिल हैं और बड़ी संख्या में (लगभग पैंतीस प्रतिशत) निरक्षर भट्टाचार्य भी हमारे यहाँ मिलते हैं।

इस प्रकार की बहुत सारी सामाजिक विषमताएँ नज़रअंदाज़ की जा सकती हैं, जब हम वर्ल्ड क्लास बनने की कोशिश में हज़ारों करोड़ रुपये की क़ीमत पर कॉमनवेल्थ खेल जैसे आयोजन कराने के लिए तैयार होते हैं; लेकिन इस पूरे खज़ाने की एक अत्यंत छोटी, नामालूम-सी लगने वाली धनराशि लगाकर अनाज-भंडारण के लिए कोई इंतज़ाम नहीं करते। न केंद्र और न ही राज्य... किसी को इसकी सुध नहीं आती। 'आम आदमी का कल्याण', 'ग़रीबों में भी ग़रीब की हितैषी', 'वंचित, दलित समाज की पक्षधर, उनकी अपनी' इन जैसे विशेषणों से सज्जित किसी भी सरकार के एजेंडे में करोड़ों टन सड़ रहे अनाज को सहेजना और बचाना नहीं है। क्या हो गया है हमारी इस व्यवस्था को और इसके कर्णधारों को? एक समय पढ़ा था कि अमेरिका जैसे संपन्न देश अतिरिक्त अनाज को जहाज़ों में भरकर समुद्र में डुबा देते हैं, ताकि बाज़ार-भाव गिरने न पाए। उस समय लगातार इसकी आलोचना होती रही कि यह समुद्र में डुबोया गया अनाज अफ्रीका के कई मुल्कों में अकाल और भुखमरी से मरने वाले लोगों की जान बचाने के काम आ सकता है, जिसे बेदर्दी से नष्ट किया जाता है। यह प्रक्रिया विशुद्ध पूँजीवादी व्यवस्था के समाज का चित्र प्रस्तुत करती है, जहाँ पूँजी का विनिमय और व्यापार सर्वोपरि होता है। आज हमारा देश, जो दुनिया की नज़रों में मंडी बना हुआ है, वह भी इसी बाज़ार के नियमों से संचालित हो रहा है। बाज़ार और बाज़ारवादी राजनीति संवेदनहीन होती है। इतिहास में फ्रांस की महारानी का यह वाक्य अमर हो गया कि 'अगर रोटी नहीं तो केक क्यों नहीं खाते।' एक और वाक्य (हमारे खाद्य मंत्री का) इसी रूप में अमर होने जा रहा है कि 'किसानों ने इतना गेहूँ पैदा ही क्यों किया?' एक ओर बुंदेलखंड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़ आदि के आदिवासी इलाकों में भूख का प्रकोप... घास की रोटी पकाती औरतें... दूसरी ओर विषम परिस्थितियों के बावजूद अनाज पैदा करते किसानों को गरियाते हमारे देश के कर्णधार! विचित्र स्थिति है!

राजनीति इसी तरह से मानव-मूल्यों पर हावी होती है। राजनीति और सत्ता के निहित स्वार्थ हमेशा मानव-विरोधी रहे हैं और इतिहास इसी तरह अपने को दुहराता रहा है। भूख की राजनीति घर, समाज से लेकर विश्व-स्तर तक फैली रही है। शायद इसीलिए हमारे यहाँ अन्न को देवता कहा गया है। इसी भूख ने गुफा-कंदराओं में रहने वाले आदिमानव को बाहर निकाला और न जाने कहाँ-कहाँ भटकाया। उसकी प्रगति का साधन बनी और आज के स्वरूप तक पहुँचाया। सभ्यताओं के संघर्ष में भूख बहुत बड़ा हथियार रहा है! वामिक जौनपुरी की कालजयी कविता 'भूखा है बंगाल साथी भूखा है बंगाल' की पंक्तियाँ याद आती हैं। बीसवीं सदी के चौथे दशक में भी गुलाम भारत में ऐसी ही भूख की राजनीति इतिहास का हिस्सा बनी है। इससे पहले ऐसी ही अकाल की स्थिति में कहते हैं कि अवध के नवाब आसिफ़उद्दौला ने इमामबाड़ा तुड़वाया और बनवाया था और बहाने इस अनाज बाँटा था। दिन में मज़दूर इमामबाड़ा बनाते और रात के अँधेरे में कुलीन घरों के पुरुष उसे तोड़ते थे और मज़दूरी के बदले अनाज पाते थे। यह जनता के पक्ष में खड़े शासक की व्यवस्था थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी कुछ दिन पहले 'संवाद' प्रकाशन, मेरठ से प्रकाशित एक किताब हाथ में आयी—हावर्ड फास्ट के प्रसिद्ध उपन्यास 'प्लेज' का हिन्दी में बेहतरीन अनुवाद मुकेश कुमार ने किया है। मैंने यह उपन्यास पहले नहीं पढ़ा था। संवाद प्रकाशन की यह महत्त्वपूर्ण योजना है कि वे उत्कृष्ट और क्लासिक कृतियों के अनुवाद पेपरबैक में सस्ते दामों में उपलब्ध करा रहे हैं। उपन्यास की भूमिका में मुकेश कुमार ने लिखा है कि किसी पुस्तक मेले में यह किताब उनके हाथ लगी थी। उलटते-पुलटते उपन्यास के आरंभ में ही कलकत्ते का ज़िक्र आने पर स्वाभाविक रूप से दिलचस्पी हुई और ज्यों-ज्यों आगे पढ़ते गये दिलचस्पी बढ़ती गयी और अंततः यहीं से इस उपन्यास के अनुवाद की योजना बनी।

यह उपन्यास एक अमरीकी पत्रकार ब्रूसबेकन के अनुभवों का लेखा-जोखा है, जो 'न्यूयार्क टाइम्स' के लिए काम कर रहा था और 'द न्यूयॉर्कर' और 'द सैटरडे ईवनिंग पोस्ट' के लिए भी लिखा करता था। ब्रूस दूसरे विश्वयुद्ध के समय से ही, जब संयुक्त सेनाओं ने नारमंडी पर आक्रमण किया था, 'न्यूयॉर्क टाइम्स' के लिए काम कर रहा था और जर्मनी, फ्रांस जैसे देशों में मोर्चे पर तैनात था। 1945 का समय था। उसके एक पत्रकार मित्र ने, जो हाल-फिलहाल में भारत से वापिस फ्रांस आया था, उसे आसाम और बंगाल के अकाल के बारे में बताया था कि लाखों लोग इस अकाल से मर चुके हैं और उतने ही मरने की प्रतीक्षा में हैं। ब्रूस बेकन को लगा कि कलकत्ते के इस अकाल पर एक 'अत्यंत रोचक और महत्त्वपूर्ण स्टोरी' बनेगी। वह तुरंत दिल्ली आ गया और फिर वहाँ से कलकत्ता। उसकी दिलचस्पी का कारण यह भी था कि उस पत्रकार ने बातों-बातों में यह भी बताया कि जापानी सेनाएँ, जो आसाम की ओर बढ़ रही थीं कहीं, भारत में अपनी जगह न बना लें और भारत की गुलाम जनता जापानी सेना को अपने मुक्तिदाता के रूप में न देखने लगे, इससे आशंकित ब्रिटिश सरकार ने चावल की आपूर्ति रोक दी और भारत में, विशेषकर आसाम और बंगाल में, अकाल की स्थिति पैदा कर दी।

बंगाल आकर पत्रकार ब्रूस बेकन ने इस अकाल की सच्चाई जानने के लिए प्रयास करते हुए इसकी तह तक जाने का निश्चय किया। अकाल तो कलकत्ता की सड़कों पर प्रत्यक्ष था। कंकाल में तब्दील मानव-देहें सड़कों पर चलती दिखायी देतीं। कोई अगर इस पंक्ति से निकलकर गिर पड़ता, तो वहीं ढेर हो जाता और उसके साथ चल रहे अन्य लोगों पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था। रात में जहाँ-तहाँ ये कंकालों के समूह सड़कों पर ही पसर जाते। सुबह होने पर कुछ वहीं पड़े रह जाते और बचे हुए आगे सफ़र पर निकल पड़ते। सफ़र भी कैसा... अंतहीन... दो मुट्ठी चावल के लिए।

यही वह समय था जब दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था। करोड़ों लोगों की बलि चढ़ चुकी थी। हिटलर का अंत हो चुका था। यातना-शिविरों की सच्चाई लोगों के सामने खुल चुकी थी और समूचा विश्व स्तब्ध था, सदमे में था। जापान बर्बाद हो चुका था और अणुबम की ज़हरीली राख के ढेर से उठकर अपनी साँसें बटोर रहा था। मित्र देशों की मित्रता बिखरने लगी थी। अमरीका और सोवियत यूनियन दो ध्रुवों पर फिर अवस्थित थे। सोवियत रूस फिर अमरीका का दुश्मन नंबर एक बन चुका था और अमरीकी प्रशासन किसी भी, कहीं भी मौजूद लालरंग के कम्युनिस्ट फ़ोबिया से ग्रस्त 'विच हंट' में लग चुका था।

इस पृष्ठभूमि में ब्रूस बेकन अकाल जैसी आपदा की खोजबीन में लग गया। इस अकाल में भुखमरी से मरे लाखों लोग दूसरे विश्वयुद्ध में मरने वाले की लोगों की कतार में दिखायी देने लगे। अगर यह अकाल राजनीति-निर्मित था और ब्रिटिश हुकूमत की घिनौनी साजिश के तहत था। कलकत्ते में ब्रूस की मुलाकात लेज़रमान नाम के अमरीकी एजेंसी से हुई, जिसने उसे बताया कि अकाल में मरने वालों की संख्या पचास लाख पहुँच चुकी है, आशंका है, स्थिति बनते-बनते आँकड़ा साठ लाख तक पहुँच जाएगा। लेज़रमान, जो खुद को भी कम्युनिस्ट मानता था उसकी मुलाकात प्रो. चटर्जी और मजूमदार जैसे पात्रों से कराता है। मजूमदार पत्रकार है और गाँव-गाँव साइकिल से घूमता है, ब्रिटिश हुकूमत के रवैये और नीतियों के बारे में बताता है, अख़बार की ख़बरें पढ़कर सुनाता है और बदले में एक घर से एक चावल का दाना लेता है। यही उसका मेहनताना और भोजन है। तमाम तथ्यों को इकट्ठा करते हुए ब्रूस ने जो स्टोरी तैयार की, उसके अनुसार हुकूमत ने इस अकाल को निर्मित किया, ताकि हिन्दुस्तानी ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ जापानियों का साथ न देने लगें। ब्रूस का कहना था कि बड़े-बड़े व्यापारियों के गोदाम चावल से भरे हैं। सरकार चाहती, तो उस चावल को निकलवा सकती थी। व्यापारियों को उचित कीमत देकर भूख से मरते लोगों को चावल बँटवा सकती थी। जब कुछ लोगों ने चावल के गोदामों पर हमला किया, तो सरकार ने गोली चलवा दी और उसमें भी लोग मारे गये। ब्रूस ब्रिटिश शासन के इस रवैये की तुलना नाज़ी हिटलर से करने लगा।

भारत में मौजूद अमरीकी सैन्य अधिकारी और गुप्तचरों की कार्रवाई के कारण और उसके ब्रिटिश हुक्मरानों के प्रति विनम्र रवैये के कारण उसे तुरंत भारत छोड़ने के आदेश मिले।

अमरीका में भी अब उसके लिए वातावरण सहज नहीं था। अमरीका और ब्रिटेन के बीच मित्रवत संबंध तथा ब्रूसबेकन के ऊपर लगा कम्युनिस्ट होने का ठप्पा। भारत के अकाल और उसके कारणों पर उसकी अपनी निश्चित राय के कारण उसका कम्युनिस्ट होने का अंदेशा पूरे विश्वास में बदला। इत्तेफ़ाक से उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रकार मित्र, जो फिर उसकी प्रेमिका और पत्नी तक भी बनी, उसका कम्युनिस्ट होना भी इस धारणा की पुष्टि करता था, जबकि बेकन हमेशा अपने स्वयं के कम्युनिस्ट होने से इन्कार करता रहा, लेकिन वह पत्रकारिता के धर्म में ईमानदारी और तथ्यों की सत्यता को नहीं नकार सकता था। इसकी उसे भारी क़ीमत चुकानी पड़ी। उसे तत्कालीन अमरीकी शासन की 'बेवकूफ़ियों' और उनके 'रूसी फ़ोबिया' का शिकार होना पड़ा। सीनेटर मैकार्थी के 'विच हंट' से जूझते हुए अन्य अनेक लेखक, कलाकार, बुद्धिजीवी, पत्रकार आदि की तरह 'हाउस कमेटी ऑन अन-अमरीकन एक्टीविटीज़' के सामने सफ़ाई देनी पड़ी और अंततः जेल जाना पड़ा। स्वयं हावर्ड फ़ास्ट भी 'विच हंट' के शिकार बने थे और हाउस कमेटी के सामने प्रस्तुत होने की बजाय उन्होंने जेल जाना ज़्यादा पसंद किया।

उपन्यास में एक और प्रसंग है। अपने भारत के अकाल-अनुभवों के अलावा विश्वयुद्ध के दौरान् फ़्रांस समेत अन्य देशों में उपस्थित रहकर ब्रूस ने जो देखा था और रिपोर्टिंग की थी... उसके साथ ही उसके जो अनुभव थे, उन पर उसने एक पुस्तक तैयार की। पुस्तक बहुत महत्त्वपूर्ण थी। बड़े-बड़े प्रकाशकों ने अग्रिम स्वीकृति दे रखी थी, लेकिन हाउस कमेटी के मुक़द्दमे और ब्रूस के कम्युनिस्ट घोषित होकर जेल जाने के बाद कोई भी प्रकाशक उसे छापने के लिए तैयार नहीं हुआ। एफ0बी0आई0 जैसी गुप्तचर संस्था का प्रकाशकों पर इतना ख़ौफ़ था! एक तो यह पुस्तक युद्ध के विरोध में लिखी गयी थी। जर्मनी, फ़्रांस जैसी जगहों पर युद्ध की विभीषिका और फिर बंगाल का अकाल। ब्रूस ने लिखा कि 'कोई युद्ध अच्छा नहीं होता। कोई युद्ध न्यायसंगत नहीं होता। कोई युद्ध धार्मिक नहीं होता। हमारे साथ, पूरी मानवता के साथ कपटपूर्ण बकवास की गयी है ?...'' युद्ध की विभीषिका के साथ उसके दिमाग़ में मरने वाले दो करोड़ रूसियों, साठ लाख यहूदियों के साथ साठ लाख भारतीयों का आँकड़ा भी घूमता। चावल-व्यापारियों के साथ ब्रिटिश हुकूमत के षडयंत्र को वह परोक्ष रूप से अकाल का और भूख से होने वाली साठ लाख मौतों का ज़िम्मेदार समझता था।

यह मानवीय संवेदना और युद्ध-विरोधी भावना पर्याप्त थी उसे एक 'कम्युनिस्ट' साबित करने के लिए और जेल में डालने के लिए।

अंततः एक प्रकाशक ने जो गुप्त रूप से उसकी पुस्तक छाप रहा था, ब्रूस की अवधारणा की पुष्टि के लिए 'पाँच बंगाली लोगों को पांडुलिपि दिखायी। उनमें से दो राजनयिक थे और सभी ने अकाल-संबंधी ब्रूस के निष्कर्षों का समर्थन किया, लेकिन सार्वजनिक वक्तव्य कोई भी नहीं देना चाहता था। राजनयिक नहीं चाहते थे कि वे इस समय (आज़ादी के बाद) अंग्रेज़ों से कोई टकराव मोल लें। उन्हें उस समय ब्रिटिश मदद की ज़रूरत थी। बाक़ी लोग इसलिए डर गये कि वे बाहरी व्यक्ति थे और उनके द्वारा की गयी ऐसी कोई टिप्पणी उनके देशनिकाले का कारण बन सकती थी।' अमरीका के साथ ब्रिटेन के बेहद सहयोगपूर्ण मित्रवत संबंध थे।

बीसवीं सदी के ऐतिहासिक परिदृश्य पर आधारित इस उपन्यास को पढ़ते हुये दिमाग में कौंधता है कि इतिहास कैसे अपने को समय-समय पर दुहराता है। मानव-समाज की त्रासदियाँ सत्ता पर बैठे लोगों की संवेदनहीनता और मानव-विरोधी प्रवृत्तियों का ही नतीजा रही हैं। करोड़ों की संपत्तियों के मालिक हमारे देश के कर्णधार कितनी आसानी से कह देते हैं कि यह सड़ रहा अनाज (भी) ग़रीबों को नहीं बाँटा जा सकता क्योंकि, इस अनाज के दाम से ज़्यादा धन बाँटने में खर्च हो जाएगा। उनका गुस्सा ख़ून-पसीना एक करके अन्न उगाने वाले किसानों पर जायज़ है। अन्न नहीं होगा, तो फिर नयी भुखमरी पैदा होगी... फिर विदेशों से अनाज खरीदा जाएगा। शायद यही विदेश नीति की सफलता है और सार्थक आर्थिक समीकरण है।

यह भूख की ही राजनीति है। एक ओर लहलहाती फ़सलों पर बुलडोज़र चलाकर ज़मीनें अधिग्रहीत की जा रही हैं, ताकि वहाँ नयी टाउनशिप बन सके... शानदार मकान बनें... मॉल्स बनें। किसान मुआवज़ा लेकर गाड़ी ख़रीदें, मोटरसाइकिल खरीदें, शराब पिएँ, मौजमस्ती करें और फिर एक दिन अन्न उगाने वाले हाथ अपनी नयी भूख की कहानी लिखने को तैयार हों।

आज किसान-आंदोलन के नाम पर दलाल नेता हैं, जो जाति-समुदाय के आधार पर अपने हित साधने में लगे हैं। संसदीय प्रणाली में क्या बुजुर्आ और और क्या क्रांतिकारी कही जाने वाली पार्टियाँ, समाजवाद और जनता के हक़ की बात कहने वाली पार्टियाँ सब एक बराबर हो गयी हैं। भूमंडलीकरण ने सबको गोल-गोल घुमाकर एक जैसा बना दिया है। अब कोई जनता के साथ खड़े होने वाला नहीं है। इसलिए, भूख का दर्शन भी अध्यात्मवादी और नियतिवादी होकर सबको अपराध-बोध से मुक्त कर रहा है!!

नीलिता सिंह

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शमशेर की कविता क्लासिकल ऊँचाई की कविता है

शैलेन्द्र चौहान

कला, विशेषकर कविता की कला, कलाकार को; कवि को नितांत व्यक्तिगत, निजी मानवीय स्थितियों और संवेगों से परिचित कराती है। फिर भी कविता एकालाप नहीं, वरन अत्यंत अंतरंग किंतु सक्रिय संवाद है। शमशेर का निज उन्हें एकाकी नहीं बनाता। कविता के निजी पलों में कवि के साथ संपूर्ण संसार भी श्वाँस लेने लगता है और इसी से हरियाती है शमशेर की कविताई। उनके पास कवि की आँखें, शिल्प का विवेक, मनुष्य होने की प्रतिबद्धता तथा रचनाकार के स्पष्ट सिद्धांत भी हैं—"एक अच्छे कवि के लिए यह ज़रूरी है कि वह अपने देश की और भाषा की काव्य-परंपरा से अच्छी तरह परिचित हो और इस परंपरा में आने वाले श्रेष्ठ कवियों का उसने बार-बार अध्ययन किया हो।" (शमशेर : कुछ और गद्य रचनाएँ)

युवाकाल में शमशेर वामपंथी विचारधारा और प्रगतिशील साहित्य से प्रभावित हुए। उन्होंने स्वाधीनता और क्रांति को अपने निज में आत्मसात कर लिया था । इंद्रिय-सौंदर्य के सबसे संवेदनापूर्ण चित्र देकर भी वे अज्ञेय की तरह सौंदर्यवादी नहीं हैं। उनमें एक ऐसा कड़ियलपन है, जो उनकी विनम्रता को दुलमुल नहीं बनने देता, साथ ही किसी एक चौखटे में बँधने भी नहीं देता। वे खुद मानते हैं कि इलियट-एज़रा पाउंड और उर्दू दरबारी कविता का रुग्ण प्रभाव उन पर है, लेकिन उनका स्वस्थ सौंदर्य-बोध इस प्रभाव से ग्रस्त नहीं है। वे सौंदर्य के अनूठे चित्रों के स्रष्टा के रूप में हिन्दी में सर्वमान्य हैं:

मोटी धुली लॉन की दूब,
साफ़ मखमल-सी कालीन।
ठंडी धुली सुनहली धूप।
बादलों के मौन गेरू-पंख, संन्यासी,
खुले हैं/ श्याम पथ पर/ स्थिर हुए-से, चल।

आश्चर्य नहीं कि शमशेर के मौलिक कवित्व ने अपने स्वयं के शिल्प का निर्माण किया है। उनकी कविताई व्यक्तित्व-विकास से जुड़ी हुई है। उनकी कविता में भाव, शिल्प, भाषा, बौद्धिकता का अनुपम संयोग है, जीवन के सुलझे-अनसुलझे, कहे-अनकहे पहलुओं से कोई परहेज़ नहीं। वहाँ सारा का सारा आवश्यक है, चुपचाप ही सही, ज़रूरी है। शमशेर के शिल्प की विशेषता को बारीकी से रेखांकित करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा—"अपने स्वयं के शिल्प का विकास केवल वही कवि कर सकता है, जिसके पास अपने निज का कोई मौलिक विशेष हो, जो यह चाहता हो कि उसकी अभिव्यक्ति उसी के मनस्तत्त्वों के आकार की, उन्हीं मनस्तत्त्वों के रंग की, उन्हीं के स्पर्श और गंध की हो।" (शमशेर : मेरी दृष्टि में)

शमशेर सन् 1945 में कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बने। उनकी कविताओं में मार्क्सवादी आग्रहों को लेकर अटकलें लगायी जाती रही हैं, जबकि सचाई यह है कि शमशेर मानव-जीवन-सत्यों, सुख-दुख, सौंदर्य, प्रेम से जुड़े कवि हैं और निरंतर कष्टसाध्य सर्जन उनका कर्म है। उनकी कविताई ह्यूमैनाइज़िंग इफ़ेक्ट से भरपूर है। (मुक्तिबोध)

विजयदेव नारायण साही ने शमशेर की काव्य -कला का विश्लेषण करते हुए लिखा है—"तात्त्विक दृष्टि से शमशेर की काव्यानुभूति सौंदर्य की ही अनुभूति है। शमशेर की प्रवृत्ति सदा वस्तुपरकता को उसके शुद्ध और मार्मिक रूप में ग्रहण करने में रही है। वे वस्तुपरकता का आत्मपरकता में और आत्मपरकता का वस्तुपरकता में आविष्कार करने वाले कवि हैं, जिनकी काव्यानुभूति बिंब की नहीं बिंब-लोक की है।" वे शमशेर को विचारधारा के प्रचारात्मक प्रभाव से इतर मानते हैं—"आरंभ में जिसे शमशेर मार्क्सवाद कहते थे, उसके लिए दस वर्ष बाद कुछ अधिक ढीली शब्दावली समाज-सत्य या उससे भी अधिक ढीली शब्दावली समाज-सत्य का मर्म, इतिहास की धड़कन आदि का प्रयोग करते हैं। यह हाशिए की लिखावट को सूक्ष्म या धुँधला बनाने की कोशिश है।" वस्तुतः शमशेर ने मार्क्सवादी दर्शन को पूर्णतः आत्मसात कर लिया था, इसीलिए उनमें अपने को मार्क्सवादी कहलाने का प्रचारात्मक आग्रह नहीं पाया जाता। शमशेर की कविता मूल्यों, जन-पक्षधरता तथा संघर्ष की बातें करती है :

एक ! जनता का
दुःख : एक।
हवा में उड़ती पताकाएँ
अनेक।
दैत्य दानव। क्रूर
कंगाल बुद्धि : मजूर घर-भर।
एक जनता का अमर वर
एक का स्वर
-अन्यथा स्वातंत्र्य-इति (बात बोलेगी)

शमशेर 'दूसरा सप्तक' की कविताओं के आतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उदिता', 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ', 'चुका भी नहीं हूँ मैं', 'इतने पास अपने', 'काल तुझसे होड़ है मेरी' उसके काव्य-संग्रह हैं। इनके काव्य के प्रथम चरण में एक ओर छायावाद का प्रभाव और दूसरी ओर छायावाद से हटकर नये भाव, विषयों और शिल्प के निर्माण की कोशिश दिखायी देती है। आगे वामपंथ में पूरी आस्था के साथ उन्होंने सृजन-कर्म के प्रति गहरे सरोकारों को व्यक्त किया। इसके बाद के चरण में शमशेर की काव्य-कला का सर्वोत्तम रूप दिखता है, जहाँ उनकी गहरी दृष्टि, समृद्ध भाव-बोध, प्रखर संवेदनशीलता, शिल्प एवं भाषा-सौंदर्य स्वतः आकर्षित कर लेते हैं। इसी काल में लिखी कविता 'अमन का राग' बकौल मुक्तिबोध क्लासिकल ऊँचाई की कविता है :

सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर हैं
क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख-शांति का राग हूँ
बहुत आदिम, बहुत अभिनव

शमशेर बहादुर सिंह प्रगतिशील और प्रयोगशील कवि हैं। बौद्धिक स्तर पर वे मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित हैं तथा अनुभवों में वे रूमानी एवं व्यक्तिवादी जान पड़ते हैं। उनकी काव्य-दृष्टि सुदीर्घ एवं बहुआयामी है, किंतु उनमें एक तरह का अंतर्द्वंद विद्यमान है, इसीलिए उनका काव्य-जगत बहुत ही असुखर और शांत है।

सूरजपाल चौहान ने इस संबंध में संगत बात कही है—"शमशेर में वस्तुतः रोमांटिक विदग्धता के सूत्र जब तक हमारे हाथ में नहीं आते, कवि की काव्यानुभूति तक किसी भी स्थिति में हमारी पहुँच संभव नहीं। शमशेर की पहचान कवि रूप में है और कवि भी सामान्य नहीं, दुरूह कवि, जिसे उनकी कविताओं में आये शब्दों से नहीं, शब्दों के पीछे कवि की संवेदना और उसके सहज जीवनानुभवों की अनुभूति के साथ ही समझा जा सकता है।"

शमशेर की रचनात्मकता का लक्ष्य है—अपने आपको देख पाना। इनकी 'बात बोलेगी' कविता इस तथ्य का उदाहरण है :

बात बोलेगी हम नहीं
भेद खोलेगी बात ही।
सत्य कहा क्या रंग
पूछो एक रंग, एक जनता का दुख एक
हवा में उड़ती पताकायें अनेक।

अज्ञेय कहते हैं कि शमशेर की सबसे बड़ी खूबी उनकी ग्रहण-शक्ति है, जो सभी प्रभावों, प्रक्रियाओं को हजम कर उसे पुनर्सृजित कर अभिनव रूप में कविता के माध्यम से सामने लाती है। उनकी कविताई में छायावादी काव्य-परंपरा की झलक है, तो उर्दू शायरी, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी साहित्य का गंभीर अध्ययन; समकालीन भाषा के साथ-ही-साथ यूरोपीय परंपरा का ज्ञान भी परिलक्षित होता है। उन्होंने अपने कई पसंदीदा रचनाकारों से भी प्रभाव ग्रहण किया, जिनमें कबीर, शेक्सपीयर, मीर, ग़ालिब, नज़ीर, फ़ानी, इक़बाल, निराला के नाम प्रमुख हैं। निराला को महत्त्वपूर्ण मानने के कारणों को रेखांकित करते हुए शमशेर कहते हैं—एक बड़े कवि में जिस गुण को मैं महत्त्व देता हूँ, वह है एक आंतरिक फोर्स, एक तरह का फोर्स, ऊर्जा, जो कि निराला में है। फोर्स और एक सेल्फ कॉनफीडेन्स, जो उनकी कविता में बोलता है।

शमशेर की कविताएँ यथार्थ के धरातल पर मनोभावों के तारों से बुनी गयी हैं जिनकी मनोवैज्ञानिकता उन्हें कहीं अधिक गहन, संश्लिष्ट बना देती है, कई बार दुरूह भी। उनकी कविताएँ सहज कथन मात्र न होकर तीव्र प्रतिक्रियाएँ हैं, जीने, सोचने और लड़ने को मजबूर करती हुई। शमशेर बहादुर उन कवियों में रहे, जो लगातार अपनी कविता के प्रति सजग और समर्पित रहे। राजनीति की दृष्टि से बहुत ज्यादा सक्रिय तो वे नहीं रहे और उनकी कविता में निहित मूल्य-दृष्टि में और उनकी घोषित राजनीति में, राजनीतिक दृष्टि में, लगातार एक विरोध भी रहा। वे प्रगतिवादी आंदोलन के साथ रहे, लेकिन उनके सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाले कभी नहीं रहे। उन सिद्धांतों में उनका पूरा विश्वास भी कभी नहीं रहा। उन्होंने मान लिया कि हम इस आंदोलन के साथ हैं और स्वयं उनकी कविता है, उसका जो बुनियादी संवेदन है, वह लगातार उसके बाहर और उसके विरुद्ध भी जाता रहा।

उपधारा के रूप में तो नहीं कह सकता, क्योंकि वे शायद एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, उनके जीवन का, उनके कवि का, विकास इस तरह से हुआ। पहले वे चित्रकार थे या उन्होंने दीक्षा चित्र-कर्म में ली। उसमें भी लगातार उनकी दृष्टि बिंबवादी दृष्टि रही और काव्य में भी उनका बल इस पक्ष पर रहा। उनके प्रिय कवि भी ऐसे ही रहे हैं। इससे कभी मुक्त होना न उन्होंने चाहा है, न वे हुए हैं। वैसी प्रवृत्ति ही नहीं तो मुक्त होने का सवाल भी नहीं था। (अज्ञेय)

प्रकृति के विविध शेड्स, बिंब, चित्र शमशेर के काव्य में प्रमुखता से लक्षित किये जा सकते हैं। भोर, शाम, पर्वत, बारिश, बादल कई बार कवि की इम्प्रेशनिस्ट कला में घुलकर महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर मुखर, तो अन्य बिन्दुओं पर धुँधले आकारों में सामने आते हैं। कहीं वाचाल प्रकृति है, तो कहीं मूक; किंतु सजीव प्रकृति आँखों के सामने तैरने लगती है। पाठकों की संवेदनाओं को ललचाती, उद्दीप्त करती हुई :

जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वो पत्थर
सजग-सा होकर पसरने लगा
आप से आप।

शमशेर की कविता के संगीत के बारे में हिन्दी कविता के संदर्भ में ज़्यादा कहना मुश्किल है, वह इतना अलग है। वह उनकी कविता में नहीं है, वह उस कविता से पैदा होता है-ऐसा भी नहीं है। जब आप उनकी पंक्तियाँ पढ़ते हैं, वह अलग कहीं पैदा होता है, समानांतर, हाँ पर इसी संसार की ध्वनियों और गतियों से। आप उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी संसार के पदार्थों में चलता भी देख सकते हैं, वह कोई चीज़ है। कई साज़ों के अनमेल से पैदा एक हाहाकार-सी कोई चीज़, एक पवित्र हृदय से मुस्कराता और कुछ न माँगता चेहरा-न दया-न देह, यहाँ तक कि प्रशंसा भी नहीं। (रघुवीर सहाय)

छायावादी कवियों से इतर शमशेर प्रेम में शरीर के आकर्षण को नैतिकता के बाड़ों से मुक्त कर सहर्ष स्वीकारते हैं। यह प्रेम का कुंठित और अमर्यादित रूप नहीं है, बल्कि मनुष्य की कामुक वृत्तियों की निर्द्वंद्व, सुंदर, आवश्यक अभिव्यक्ति है। प्रिय के सौंदर्य और प्रेम में डूबा कवि अपराध-बोध और झूठी नैतिकता का बोझ नहीं उठाता। वायवीय फ़ंतासियों से अलग मन और शरीर की इच्छा, कामना व तृप्ति की बात करता है। यहाँ ग़ौरतलब है कि शमशेर तथाकथित पुंसवादी मानसिकता से ग्रस्त होकर सतही चित्रण नहीं करते, वरन् प्रेम की दृष्टि से सौंदर्य की छवि अंकित करते हैं। वे कहीं भी निरंकुश नहीं होते, वरन् स्वतः निर्मित सेंसर के साथ सक्रिय होते हैं। कहते हुए भी एक अनकहापन, गोपन रखने या मूक हो जाने की प्रवृत्ति वस्तुतः कवि की सचेत दृष्टि है, जो भाव, अनुभूतियों को उनके संपूर्ण आरोहों-अवरोहों के साथ स्पेस देती है। जहाँ केवल प्रेम महत्त्वपूर्ण रह जाता है। इस प्रकार देखा जाए, तो नयी कविता को छायावादी काव्य-परंपरा का नवीन विकास माना जा सकता है :

ऐसा लगता है जैसे
तुम चारों तरफ़ से मुझसे लिपटी हुई हो
मैं तुम्हारे व्यक्तित्त्व के मुख में
आनंद का स्थायी ग्रास हूँ मूक।

शमशेर की कविता में वे सारे गुण एवं लक्षण हैं, जो प्रगतिशील कविता में उपलब्ध होते हैं, जैसे—लोकमंगल की भावना, जनतांत्रिकता, प्रेम और सौंदर्य, मानवीय करुणा एवं संवेदना आदि, किंतु उसे व्यक्त करने का उनका जो ढंग है, शैली है, उस कारण उनकी कविता सामान्य पाठकों के लिए ही नहीं, विशिष्ट पाठकों के लिए भी दुरूह हो जाती है। वास्तव में, इनकी कविता के दो छोर हैं—कुछ बोधगम्य सरल कविताएँ और कुछ नितांत जटिल कविताएँ। जटिल कविताएँ इनकी अवचेतन मन की सृष्टियाँ है। बिंब चित्रों, प्रतीकों और अत्यंत असंबद्ध स्थितियों के चित्रण से इनकी कविता साधारण पाठक की समझ एवं पकड़ से बहुत दूर चली जाती है। कुछ विद्वानों ने इन्हें भले ही कवियों का कवि कहा हो, इसका कारण यह भी हो सकता है कि कवि-हृदय मनीषी वर्ग भी शमशेर को समझ पाने में अपने आपको असमर्थ पाता है। एक उदाहरण देखिए :

सींग और नाख़ून
लोहे के बख़्तर कंधों पर।
सीने में सुराख हड्डी का।
आँखों में घास काई की नमी ।
एक मुर्दा हाथ
पाँव पर टिका
उलटी कलम थामे
तीन तसली में कमर का घाव सड़ चुका है।
जड़ों का भी कड़ा जाल
हो चुका पत्थर ।

प्रश्न यह है कि शमशेर की प्रधान उपलब्धियाँ कौन-सी हैं? मेरे मत से, प्रायः जीवन के जितने विविध और कोमल चित्र वे प्रस्तुत करते हैं, उतने चित्र शायद और किसी नये कवि में दिखायी नहीं देते। उनकी भावना अत्यंत स्पर्श-कोमल है। प्रायः जीवन में भाव-प्रसंगों के अभ्यंतर की विधि, सूक्ष्म संवेदनाओं के जो गुणचित्र वे प्रस्तुत करते हैं, वे न केवल अनूठे हैं, वरन् अपने वास्तविक खरेपन के कारण प्रभावशाली हो उठे हैं।

सूक्ष्म संवेदनाओं के गुणचित्र उपस्थित करना बड़ा ही दुष्कर कार्य है, किंतु शमशेर उसे अपनी सहानुभूति से संपन्न कर जाते हैं। विशिष्ट भाव-प्रसंगों की मौलिक विशिष्टता के अंतर्गत इन सूक्ष्म, कोमल किंतु महत्त्वपूर्ण संवेदनाओं के ये वास्तवचित्र कहीं ढूँढने पर भी नहीं मिलेंगे। बाख़ के संगीत की स्वर-लहरियों द्वारा उत्तेजित संवेदनाओं का चित्रण जो शमशेर ने किया है, वह उनके अनुपम काव्य-सामर्थ्य तथा वास्तवोन्मुख भावना का एक श्रेष्ठ उदाहरण है। शमशेर ने संवेदनाओं के गुणचित्र उपस्थित करने के क्षेत्र में जो महान सफलताएँ प्राप्त की हैं, वे उस क्षेत्र में अन्यत्र दुर्लभ हैं।

हम चाहें, तो उन्हें रूमानी और बिंबवादी कवि भी कह सकते हैं। अभी तक और कभी इसके बाहर वे नहीं गये। लेकिन, अगर उनसे पूछा जाता कि आप राजनीति में किस दल के साथ हैं, तो वे कहते हैं कि मैं प्रगतिवादियों के साथ हूँ। अब इसका आप जो चाहे अर्थ लगा सकते हैं। इसे विभाजित व्यक्तित्व मैं तब कहता, जबकि उनकी चेतना में उसका असर होता, उसमें भी दो खंड हो जाते। वैसा शायद नहीं हुआ। उस स्तर पर वे अब भी रूमानी बिंबवादी संवेदन के कवि हैं। (गजानन माधव मुक्तिबोध)

शमशेर उन कवियों में हैं, जिनके लिए मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आस्था और भारत की सुदीर्घ सांस्कृतिक परंपरा में विरोध नहीं था। 'प्रातः नभ था बहुत नीला शंख जैसे'—भोर के नभ को नीले शंख की तरह वही देख सकता है, जो भारतीय परंपरा से ओत-प्रोत है। शमशेर सूर्योदय से डरने वालों में नहीं हैं, न सूर्यास्त से कतराने वालों में हैं। वैदिक कवियों की तरह वे प्रकृति की लीला को पूरी तन्मयता से अपनाते हैं :

जागरण की चेतना से मैं नहा उट्ठा।
सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता
केश-तन में झिलमिलाकर डूब जाता।

34/242, प्रतापनगर, सेक्टर-3
जयपुर (राजस्थान)-303033

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलने आना शमशेर का एक कॉमरेड से

शकील सिद्दीक़ी

हिन्दी कविता के विविधतापूर्ण उत्तेजक इतिहास में अपनी तरह के अकेले कवि शमशेर बहादुर सिंह अब कविताएँ नहीं लिखते, कविता उन्हें अवश्य लिख रही है, उनकी छवियाँ उभार रही है, उनकी संवेदना को स्वर दे रही है। अब वह कहीं आते-जाते भी नहीं, कहीं कविताएँ भी नहीं सुनाते, बेलाग टिप्पणियाँ भी नहीं करते, किसी पीठ के आचार्य-अध्यक्ष भी नहीं। वे तो सुनायी पड़ते हैं, उनकी आवाज़ कहीं सुनायी नहीं पड़ती। कहीं गहरे से आती हुई, भावों से भरी आवाज़, विनम्रता जिसमें कूट-कूट कर समायी होती थी। अस्वस्थ नहीं है वे, फिर भी। कारण बहुत स्पष्ट है, उन्हें हमसे चिर विदा लिये हुए पूरे सत्रह वर्ष हो रहे हैं। साल 93 की 12 मई को उनकी यह लीला समाप्त हुई थी। साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में यह ख़बर किसी घने दुख-सी प्रसारित हुई थी। उनके न रहने पर उनकी उपस्थिति को बहुत शिद्दत से महसूस किया गया। इतनी निःस्वरता के बावजूद बहुत कम लोग इतनी जीवंतता से रह पाते हैं। शमशेर जी को कई बार देखने-सुनने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ था, बहुत निकट से उनके रू-ब-रू होते हुए, उन्हें बोलते-कविता सुनाते देखने-महसूस करने के बहुमूल्य क्षण भी मेरे जीवन में आये। दरअसल, उनके व्यक्तित्व, बाहरी व भीतरी दोनों, को संवेदना के धरातल पर अनुभव करने के लिए उन्हें निकट से देखना-सुनना ज़रूरी था। सरलता की केंद्रीयता तथा जनवादी छटपटाहट के बावजूद जटिल संरचनात्मकता व कठिन बिंबों की, कभी-कभी वैचारिक उलझावों की कविताएँ लिखने वाला कवि इतना सहज बोधगम्य हो सकता है, यह जानना बहुतों के लिए किसी आश्चर्य से कम नहीं। वह भी तब, जब अक्खड़ माने जाने वाले जातीय परिवेश से निकलकर आये हों! परंतु, मेरे लिए अधिक विस्मयकारी था उनका कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) के एक पुराने कार्यकर्ता कॉ0 नईम खाँ से मिलने के उद्देश्य से पार्टी के लखनऊ कार्यालय में आना।

यह नवें दशक के शुरूआती वर्षों की घटना है। कम्युनिस्ट पार्टी का वह कमरा, जिसमें कॉ0 नईम खाँ थे, खचाखच भरा हुआ था। शमशेर जी के निकट संबंधी अजय सिंह और शोभा सिंह भी थे। वीरेन्द्र यादव भी रहे ही होंगे। कॉ0 नईम पार्टी के बड़े नेता नहीं थे, बड़े इन्सान ज़रूर थे। उनके भीतर व्याप्त ख़ास तरह के बड़प्पन ने उनके व्यक्तित्त्व में एक आकर्षण भर दिया था कि उनसे जो एकबार भी मिल लेता, वह उन्हें आसानी से भूल नहीं पाता था। भारतीय राजनीति तथा साहित्य की कई बड़ी हस्तियों से उनका घनिष्ठ परिचय था और ये सब था—कम्युनिस्ट आंदोलन में उनकी सक्रिय शिरकत के कारण। संकट में लोगों की मदद करना उनके व्यक्तित्व का विशेष पक्ष था। शमशेर जी जब भी लखनऊ आते, नईम खाँ से मिलना चाहते। अजय सिंह बताते हैं कि नईम खाँ से मिलने वे कई बार कम्युनिस्ट पार्टी के दफ़्तर गये, संभव है घर भी गये हों। नईम खाँ को दिवंगत हुए अरसा गुज़र गया है। पत्नी भी लखनऊ में नहीं रहतीं कि ठीक-ठीक कुछ पता लग पाता। विचारधारा के स्तर पर शमशेर की साम्यवाद से निकटता अपनी जगह। एक ज़माने में उनकी कविता 'समय साम्यवादी' बहुत मशहूर हुई थी जनाधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले एक संगठन के तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी से उनका गहरा लगाव था। बंबई में वे कई वर्षों तक पार्टी कम्यून (1945-46) में रहे। 'नया साहित्य' का संपादन भी किया।

"मैं जो हूँ
मैं कि जिसमें सब कुछ है
क्रांतियाँ, कम्यून
कम्युनिस्ट समाज के नाना कला, विज्ञान और दर्शन के
जीवंत वैभव से समन्वित
व्यक्ति मैं
मैं, जो वह हरेक हूँ
जो तुझसे, ओ! काल परे है।

बंबई में पार्टी कम्यून तथा पार्टी नेताओं के संपर्क में रहते हुए वे मार्क्सवाद के अधिक निकट आये। वे 'नया पथ' के संपादक-मंडल में भी शामिल रहे। यों गहरे आर्थिक दबावों से ग्रस्त उनके जीवन का बड़ा भाग सर्वहारा का जीवन था, जहाँ भूख किसी मारक अनुभव के समान उनके पीछे लगी हुई थी। आँतें छील देने वाली भूख, एकाकीपन और साधनहीनता।

"उस ज़माने में (1941 से 47 के बीच) मैंने अपनी घोर अतार्किक भावुकता, रूमानी आदर्शवाद आदि से रचनात्मक संघर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू कर दिया था और मार्क्सवादी मॉडल प्रबल रूप से मुझे अपनी ओर खींच रहे थें। उर्दू कविता का शानदार प्रगतिशील उभार भी प्रभावित कर रहा था...''

प्रगतिशील आंदोलन को वे जीवन की सच्ची परख का आंदोलन मानते थे।

यह सही है कि उनके यहाँ विचारधारा व जीवन के प्रति दृष्टिकोण को लेकर विचलन भी दिखायी पड़ा। एक ही समय में वे कई-कई विचार-लोकों में जाते दिखायी दिये। स्वीकार व निषेध के उदाहरण भी सामने आये, प्रबल मानवतावाद का प्रभाव भी ध्वनित होता महसूस हुआ।

मुझे अमेरिका का लिबर्टी स्टैच्यू उतना ही प्यारा है, जितना मास्को का लाल तारा। इसके बावजूद इसके कम्युनिस्ट पार्टी तथा समानता के संघर्ष के प्रति शिथिलता का भाव उन पर कभी हावी नहीं हुआ। 'अगर मेरी वाणी में इन्सान का दर्द है—छोटा-सा ही दर्द सही, मगर सच्चा दर्द... भावुकता, ललक, आकांक्षा, तड़प और आशा, कभी घोर रूप से निराशा भी लिये हुए, कभी उदासी कभी-कभी उल्लास भी... एक प्रेमी, कवि, कलाकार, एक मध्यवर्गीय भावुक नागरिक का, जो मार्क्सवाद से रोशनी भी ले रहा है और ऊर्जा के स्रोत भी (अपनी सीमा में अपनी शक्ति भर) तलाश कर रहा है। एक ऐसा व्यक्ति, जिसको सभी देशों और सभी धर्मों और सभी भाषाओं और साहित्य से प्यार है और सबसे अपने दिल को जोड़ता है (प्रेम की भावुकता ने जो बीज बोया, वह मैं देखता हूँ कि अकारथ नहीं गया, क्योंकि पूरी मनुष्य जाति से प्रेम, युद्ध से नफ़रत और शांति की समस्याओं में दिलचस्पी—ये सब बातें उसी से धीरे-धीरे मेरे अंदर पैदा हुईं...) तो उपर्युक्त तमाम सूत्रों से मैं इन्सान के साथ जुड़ता हूँ, तो मेरे लिए फ़िलहाल इतना ही काफ़ी है। (उदिता 1980)

इस दृष्टिकोण तथा कम्युनिस्ट पार्टी से आत्मीयता में कहीं विरोधाभास नहीं है, बल्कि जीवन के प्रति एक कम्युनिस्ट का ऐसा दृष्टिकोण होना चाहिए।

अवश्य ही उनके व्यक्तित्व में विरोधाभास भी थे, लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यालय आते हुए उसके साथ पुराने रिश्तों की बातें करते हुए वे सभी तरह के अंतर्विरोधों, विरोधाभासों से मुक्त होते थे। उनकी एक-एक गतिविधि से पार्टी और उसके लोगों के प्रति प्यार झलकता था। नईम खाँ के प्रति यह प्यार अधिक आवेगमय होता था। बहुत संभव है कि कॉ0 नईम ने संकट के किन्हीं क्षणों में शमशेर जी की मदद की हो, जैसाकि उनका स्वभाव था और काल विशेष तक शमशेर जी पर संकट आते ही रहते थे। वे ग़ज़ब के स्वाभिमानी थे, फिर भी अभाव के अपने दबाव होते हैं।

मेरे लिए उन क्षणों को भुला पाना संभव नहीं, जब मैंने अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा व भारतीय उपमहाद्वीप के अत्यंत लोकप्रिय शायर फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ को क़ैसरबाग कोतवाली के पीछे स्थित संकरी गलियों को पार करते हुए कॉ0 नईम से मिलने उनके घर जाते देखा था। सांस्कृतिक व मानवीय रिश्तों के इतिहास के वे यादगार क्षण थे, ठीक उसी तरह, जैसे शमशेर बहादुर सिंह का कॉ0 नईम से मिलने आना। उस समय उनका घर भी खचाखच भरा हुआ था। मुहल्ले की औरतों, बच्चों, पुरुषों तथा पार्टी कार्यकर्ताओं से। कॉ0 नईम ने बहुत कठिन समय में फ़ैज़ का साथ निभाया था। राजा हरि सिंह के महल में संपन्न हुई फ़ैज़ की शादी में वे अकेले बराती थे। दो बड़े कवियों, दो बड़े इन्सानों का पुराने रिश्तों का सम्मान करना देखिए। मानवीय संवेदना कविता में ही नहीं जीवन में भी बिंबित होती है। 'चुका भी नहीं हूँ मैं' में शमशेर के शब्दों को कविता से इतर चरितार्थ होते देखना हो, तो उनका कम्युनिस्ट पार्टी के दफ़्तर आना देखिए :

प्रेम का कंवल कितना विशाल हो जाता है
आकाश जितना
और केवल उसी के दूसरे अर्थ
सौंदर्य हो जाते हैं
मनुष्य की आत्मा में।
(कला इतने पास अपने)

कम्युनिस्ट पार्टी के दफ़्तर में उन्हें अपने इतने क़रीब पाकर मेरा ध्यान बार-बार वर्षों पूर्व सँजोये हुए उनके चित्र की तरफ़ चला जाता है, जिसे मैंने उनके किसी कविता-संग्रह से काटकर सुरक्षित कर लिया था। प्रगतिशील आंदोलन की स्वर्ण जयंती आयोजन के अवसर पर (अप्रैल, 1986) रवींद्रालय, लखनऊ में प्रगतिशील रचनाकारों के चित्रों की जो प्रदर्शनी लगायी गयी थी, उसमें शमशेर जी का वही चित्र इन्लार्ज कराकर प्रदर्शित किया गया था। मैं ही उस प्रदर्शनी का संयोजक था। मैं इस शमशेर में उस शमशेर को ढूँढ रहा था। शमशेर जी के चित्र की सबसे बड़ी विशेषता है, उसमें एक बहुत संवेदनशील कवि का समूची जीवंतता में ध्वनित होना। जहाँ तक मुझे याद आता है, वे बंद कॉलर का कोट पहने हुए थे या काली शेरवानी, मोटे शीशे का चश्मा, उसके पीछे सोच में डूबी हुई चमक भरी आँखें—आकुल-सी, कुछ कहने को व्याकुल होंठ। एक बेचैन आदमी का समूचापन उनमें झलकता था, संघर्षजनित अनुभवों का पकापन लिये हुए।

MIG-317, Phase-2
टिकैतराय योजना, मोहान रोड
लखनऊ-17

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार कविताएँ

बलदेव वंशी

कैसे-कैसे अँधेरे !

अभी तक पहचान में नहीं आये
कैसे अँधेरे हैं तहाये रखे आदिम
कि चुकने का नाम नहीं लेते
उछल कर आ जाते सामने बार-बार
निकल मानवी किन्हीं कंदराओं से
खोहों-खाईयों से

सभ्यताएँ दंग हैं
या खुदा ! ये कैसे अँधेरे लिख दिये
पाप-सने। आँख फूटे। अँधे।

कुछ पहचान में आते हैं कभी मिटाने को होवो
तो रूप बदल फिर आ धमकते हैं
मानवी बस्तियों में
नए सिरे से होने लगती है ढूँढ
इनके ठिकानों की...

भीतर ही भीतर सेंध लगाते रहते
बनाते रहते हैं नए-नए रास्ते
गहरी सुरंगे
थाह नहीं मिल पाती
इनके असली सुहानों की...
कौंधकर आ जाते हैं समक्ष
न चाहने पर भी अधिक
भयावने। पहले से भी अधिक छद्म
हुँकार। जैसे अफ्रीकी भूख।
जैसे अफगानी उजाड़
जैसे इराकी लाशों का अंबार...
कभी आतंक। कभी बमबारी
कभी...
इन्हें कब से मिटाने को लगे हैं वेद, बाईबिल,
कुरान। पर...! पर....! भीतर ही भीतर
न जाने कौन सींच रहा
कि बार-बार लहलहा आती है घृणा की अनंत बेलें
दुश्मनी की गहरी रंगतें। विनाश की विषैली गंध
फैल जाती हैं। धरती पर
लग जाते हैं मृतकों के अंबार

मौत मारते नहीं थकती

मौत मारते नहीं थकती
जीवन जीते नहीं हारता

तो!
तो अँधेरा दो मुखा है
एक मुख मृत्यु
एक मुख जीवन
यह अँधेरा दो रुखा है।
मृत्यु मारती चली जाती है बे-रोक
जीवन रचता चलता है खामोश

कि बमों-पटी
बारुदों-फटी धरती अपने घाव समेट
मुस्कराने लगती है हरियालियों में
कुछ काल बाद। ध्वस्त हुई बस्तियाँ
उजाड़ हुए नगर
नए सिरे से होने लगते हैं आबाद...

वही खिलखिल किलकारियाँ
वही हरी-सुनहरी बालियाँ
महकती हँसती कोंपलें...

शायद
सृष्टि का यही स्व-भाव है
उसी में ब्रह्मांड है। धरती है।
धरती के लोग हैं। लय है। वि-लय है।
अनंत जीवन है। महा-लय है।
यही महा-भाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मौन भी मौन कहाँ

तनाव और भय के
मंथर मंथर हिलते
तालाब के बंधे जल के
नीचे
युगों-युगों से
एक चीत्कार
मौन में थमा हुआ है !

शिव
और विष
और गंगावतरण का मिथक
तब से संगत बना हुआ है!....

गंध सूर्य !

फूल खिले। पौधे पर
गंध इसकी
शून्य को गुनगुनाती
पहुँचे तुम तक...

पूरी इयत्ता मेरी ऐसे ही
तुम तक आये
महकाती
मध्य में फैले विस्तार को
जैसे देश को। काल को....

अभी तो
कांटों के झाड़ पर
मात्र एक कली है
मिट्टी में रोपे पौधे पर
पली है
पंखुड़ियों में बंद है बास
अँधेरे में सिमटी
उजास
पानी के पर्दो के पार
गतिमान है सूर्य
सदियों के अंतराल में
अभी कोई रंग नहीं
कहीं
तो भी
अभी थोड़ी देर और
प्रतीक्षा
थोड़ी और...!

अधूरा है : सुंदर है

अधूरा है!
इसीलिए सुंदर है!
दूधिया दाँतों तोतला बोल
बुनाई में हाथों के स्पर्श का अहसास!
ऊनी धागों में लगी अनजानी गांठें, उचटनें
सिलाई के टूटे-छूटे धागे
चित्र में उभरी, बे-तरतीब रंगतें-रेखाएँ

शायद इसीलिए
अभावों में भाव अधिक खिलते हैं,
चुभते सालते और खलते हैं

एक टीस की अबूझ स्मृति
जीवनभर सालने वाली
आकाश को दो फाँक करती तड़ित रेखा
और ऐसा ही और भी बहुत कुछ
जिसे लोग अधूरा या अबूझ मानते आये हैं
उसे ही सयाने लोग
पूरा और सुंदर बखानते गये हैं

चाहे हुए रास्ते, जीवन और पूरे व्यक्ति
कहाँ मिलते हैं !
नियति के हाथों
औचक मिले
मानसिक घाव
पूरे कहाँ सिलते हैं!...

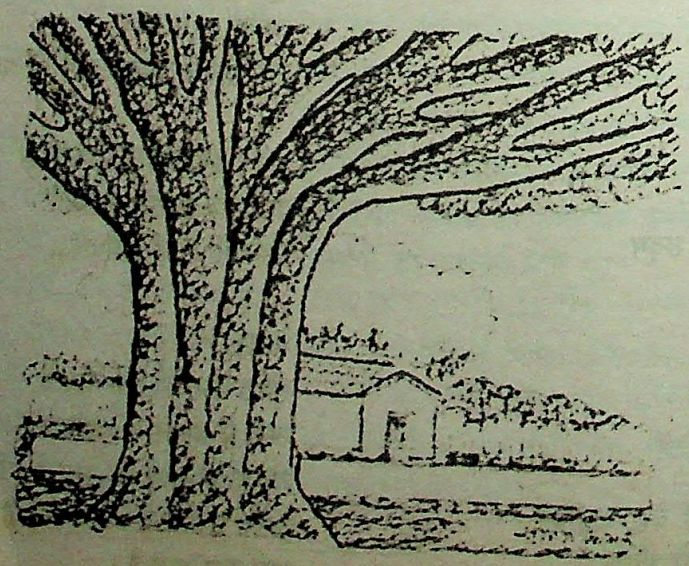

बी-684, सैक्टर-49,
सैनिक कॉलोनी,
फरीदाबाद-121001
मोबा-09810749703

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन कविताएँ

डा0 सुभाष राय

उड़ान

जब भी मैं आसमान की ओर देखता हूँ
चिड़ियों की उड़ान उदास कर देती है
अपने कंधों पर महसूस करता हूँ
झड़ गए पंखों के निशान
गहरे घाव की तरह
दर्द उभरता है और निगल जाता है मुझे
नहीं, अब उड़ नहीं सकता मैं
आसमान से धरती को नहीं देख सकता
एक साथ, एक नज़र में
गोते नहीं लगा सकता
सितारों के नीचे, जमीन के ऊपर
खुद को समेटकर
चिड़ियों के पीछे नहीं भाग सकता
उनके घोंसलों तक
उनके बच्चों को माँ की तरह
स्पर्श नहीं कर सकता
मुझे याद है धरती पर बिखरे
सुख-सौंदर्य के लालच में
मैंने ही अपने पंख कतर डाले
बाँध लिया अपने आपको
मुरझा जाने वाले फूलों की पंखड़ियों से
समय के साथ खत्म हो जाने वाली
खुशबू की बेड़ियों से
मेरे मन में धरती पर उगने की
ऐसी आकांक्षा जगी
मैं रोक नहीं सका अपने आपको
उगा तो पर अब उड़ान कहाँ
पेड़ हो गया जब से
सोचता हूँ उड़ान से लौटकर
चिड़ियों का झुंड
मेरी हज़ार बाँहों पर
बैठा करे आपस में बतियाते हुए
मेरी पत्तियों की आड़ में घोंसले बनाए
सो जाए रोज सुबह होने तक
ताकि मैं भी थोड़ी देर के लिए ही सही
पेड़ से चिड़िया में बदल सकूँ।

शब्द

शब्द हँसते नहीं
शब्द रोते भी नहीं
उनकी दहाड़
कहीं गुम हो गई है
धार कुंद हो गई है
मैंने शब्दों से कहा,
चल कर दिखाओ
वे लड़खड़ा गए
उनकी साँस उखड़ने लगी
वे जमीन पर पसर गए
मैंने शब्दों से पूछा,
पंख का मतलब
बता सकते हो
वे फड़फड़ा कर गिर पड़े
घिसटने लगे
मैंने पूरी ताकत से
बोलना चाहा
पर वे जुबान पर नहीं आए
हिम्मत नहीं रही उनमें
मैंने शब्दों को तलवार
के रूप में ढालना चाहा
वे बह गए पिघलकर
बदशक्ल हो गए
मैंने उन्हें बजाना चाहा
ताकि कर सकूं मुनादी
जगा सकूँ सबको
उन संदिग्ध लोगों के खिलाफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कई बार रात में
देखे गए अपने शिकार तलाशते
पर काम नहीं आ सके शब्द
एक ही बार में फट गए
ढोल की तरह बेकार गए
मैं फिर भी हताश नहीं हुआ
मैंने शब्दों को गिटार
बनाने की कोशिश की
सोचा शायद संगीत पैदा हो
और मैं सब कुछ भूल जाऊँ
याद न रहे ठंडी पड़ती
दिलों की आग, बेचैनी, हताशा
याद न रहे जूलुस, नारे और
लाठीचार्ज के हालात
पर शब्दों ने साथ नहीं दिया
मात्राएँ बिखर गईं
ऊँगली फिरते ही
टूट गए गिटार के तार
मैं हैरान हूँ, परेशान नहीं
मैं जानता हूँ शब्दों के खिलाफ़
हुई हैं साजिशें
उनके अर्थों से
की गई है लगातार छेड़छाड़
मैं जानता हूँ उन्हें भी
जो शब्दों को कमज़ोर, कायर
डरपोक बनाने में जुटे हैं
जो शब्दों को गुलाम
बनाना चाहते हैं
उन्हें पालतू जानवरों की तरह
बाँधकर रखना चाहते हैं
मुझे शब्दों के चुप हो जाने की
वजह पता है
मैं चुप नहीं रह सकता
मुझे अपनी पहचान खो चुके
शब्दों को नया अर्थ देना है
जो भी बोलना चाहते हैं
उन सबको आना होगा सड़क पर
अपने समूचे दर्द के साथ
निर्मम यातना के बावजूद
निकलना होगा दहकते रास्तों पर
शब्दों की ज़िंदगी खतरे में है
हम सबको खतरे
बाँटने ही होंगे।

मेरा परिचय

मेरा परिचय
उन सबका परिचय है
जो सोये नहीं हैं जन्म के बाद
लपट है जिनके भीतर

जिसे छू दें भस्म कर दें
जिस पर हाथ रख दें
वह पिघलकर बहने लगे
चल पड़ें तो
ज़मीन अगिया जाए
रास्ते की धूल
धुआँ बन जाए

बोलें तो बिजलियाँ कड़क उट्ठें
लिखें तो शब्द-शब्द
सोये दिमागों पर
अग्निबाण की तरह बरसें
जो खुद से टकरा रहे हों
टुकड़े-टुकड़े हो रहे हों
जो धधकते रहते हों
पृथ्वी के गर्भ की तरह
ज्वालामुखी बनने को आतुर
लावा से नया रचने को बेचैन
सूर्य को अपने भीतर समेटे
खौलते हुए

मेरा परिचय
उन अनगिनत लोगों
का परिचय है
जो मेरी ही तरह
उबल रहे हैं लगातार
जो दीवारों में
चुन जाने से खुश हैं
उनसे मुझे कुछ नहीं कहना
जो मुर्दों की मानिंद
घर से निकलते हैं
बाज़ार में खरीदारी करते हैं
और खुद खरीदे हुए
सामान में बदल जाते हैं
वापस घर लौटकर
सजी हुई काफिन में
कैद हो जाते हैं चुपचाप

जो सिक्कों की खनक
पर बिक जाते हैं
चुरायी हुई खुशी में
खो जाते हैं

वे टूट सकते हैं आसानी से
उनकी उँगलियाँ
कटार नहीं बन सकतीं
उनके हाथ लाठियों पर
नहीं बदल सकते
वे रोटियाँ नहीं खाते
रोटियाँ उन्हें खाती हैं
ऐसे मुर्दों पर गँवाने के लिए
वक्त नहीं है मेरे पास

मैं अपने जैसे गिने-चुने
लोगों को ढूँढ रहा हूँ
मुझे आग बोनी है
और अंगारे उगाने हैं

मेरा परिचय
उन सबका परिचय है
जो एक दूसरे को जाने बिना
आग के इस खेल में शरीक हैं
लुकाठी लिए
बाज़ार में खड़ा हूँ
जो अपना घर
फूँक सकते हों
भीड़ से अलग हट जाएँ
मेरे साथ आ जाएँ

ए-158, एम0आई0जी0
शास्त्रीपुरम, बोदला रोड
आगरा (उ0प्र0)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-संस्कृति, बाज़ारवाद और निराला

अजय तिवारी

खेलत रहलीं अँगनवाँ, सखी संग साथी हो।
आइ गवन निगचाई, भवन निगचाई, बदन भैले धूमिल हो।

ये पंक्तियाँ किसी अवधी या भोजपुरी लोकगीत की जान पड़ती हैं, लेकिन, इनके रचयिता सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' हैं। 1959-61 के बीच का यह गीत अलक्षित ही रहा है। 'निराला रचनावली' में भी वह परिशिष्ट में दिया गया है। (2/491) स्वभावतः निराला के संदर्भ में लोक-संस्कृति की चर्चा तो कुछ समझ में आती है, लेकिन बाज़ारवाद? कहाँ छायावादी निराला और कहाँ उत्तर-आधुनिक बाज़ारवाद। एक उदीयमान पूँजीवाद की संस्कृति, दूसरी वृद्ध पूँजीवाद की। लोक-संस्कृति का विकास आधुनिकता से भी पहले का है। उत्तर-आधुनिकता ने बहुत-से प्राक्-आधुनिक मूल्यों की तरह लोक-संस्कृति के प्रति भी आकर्षण पैदा किया है, लेकिन आधुनिकता तो सभी 'मध्यकालीन' प्रवृत्तियों का बहिष्कार करती रही है।

छायावादी निराला 'आधुनिक' थे, उनके साहित्य से लोक-संस्कृति का संबंध समस्याजनक ही होगा! फिर बाज़ारवाद के दिनों में तो लोक-संस्कृति की जगह समूह संस्कृति आ विराजी है। निराला के साहित्य में समूह संस्कृति (मास कल्चर) के चिह्न खोजना कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर जोड़ने के समान है। (कुकुरमुत्ता उप0, 2/49) समूह संस्कृति का दूसरा नाम लोकप्रिय संस्कृति (पॉपूलर कल्चर) है। ड्वाइट मैकडोनाल्ड उसे किश्च-कहते हैं और 'उच्च संस्कृति का फूहड़ प्रतिबिंब' मानते हैं। (Cultural Theory and Popular Culture) 1994 Ed. Jon Story, हार्वेस्ट हवीटशेक, पृ. 31) निराला के साहित्य में उच्च संस्कृति का अच्छा या बुरा कोई प्रतिबिंब खोजना तो बिलकुल हास्यास्पद कहा जाएगा। वे शुरू से अंत तक शोषकों का विरोध करते हैं, उनकी संस्कृति का भी विरोध करते हैं। इस विरोध का एक माध्यम जन-संस्कृति (पीपुल्स कल्चर) ज़रूर बनती है।

आधुनिक समाज की जन-संस्कृति वास्तव में खेतिहर समाज की लोक-संस्कृति का विकास है। ग्रामीण समाज से आकर जो लोग औद्योगिक या नागरिक केंद्रों में श्रमिक वर्ग और मध्यवर्ग का गठन करते हैं, वे अपने साथ लोक-संस्कृति और उसका आकर्षण भी लाते हैं। मज़दूर बस्तियों में आपसदारी बढ़ने पर बिरहा-आल्हा-चैती के भीतर से नयी अभिव्यक्तियाँ जन्म लेती हैं। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी भी अपने जो नये अभिव्यक्ति-रूप विकसित करता है, उनमें लोक-संस्कृति के प्रति उसका लगाव रूपांतरित होकर मौजूद रहता है। निराला के काव्य में लोकगीत के प्रभाव खोजने नहीं पड़ते, वे बहुत साफ़-साफ़ दिखायी देते हैं। साहित्य-जीवन के पूर्वार्ध में 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली' (1932, 1/212) और उत्तरार्ध में 'खेलूँगी कभी न होली, उससे जो नहीं हमजोली', (1952, 2/351)। निराला की कला में एक विशेष चमत्कार लोकगीतों से पैदा होता है।

यह सही है कि अपने प्रारंभिक जीवन में, जब निराला 'महाप्राण' थे, तब उनका उदात्त भाव काफ़ी ऊँचाई से समाज को देखता था। उनकी करुणा तब छोटों में घुल-मिलकर एक होने के बजाय छोटों के प्रति सहानुभूति का भाव रखती थी—विप्लव-रव में छोटे ही हैं शोभा पाते। (1924, 1/123) यों तो निराला विद्रोही थे, विप्लवी, क्रांतिकारी। उस विप्लव में छोटे शोभा पाते हैं, निराला उन छोटों का अंग नहीं हैं, उनकी पुकार सुनने वाले सहृदय बुद्धिजीवी हैं। इस मध्यवर्ग को लोक-जीवन से सहानुभूति है, तादात्म्य नहीं। लोकगीत में ऐसा तादात्म्य अनिवार्य है। निराला अतीतराग (नॉस्टैल्जिया) के रूप में लोक-संस्कृति का उपयोग नहीं करते, यह उनकी शक्ति है। फिर भी, उनका 'मैं' दुखी भाई की वेदना को अपने हृदय में उमड़ते हुए अनुभव करने के बावजूद उससे अलग बना रहता है। (1/35) जीवन के थपेड़ों में जैसे-जैसे निराला का महाप्राणत्व खंडित हुआ, साधारणत्व आया, वैसे-वैसे उनकी संवेदना का इन छोटों से फ़ासला भी मिटा और उनके तत्सम-प्रेमी काव्य-संस्कार को शिथिल करते हुए लोक-साहित्य का स्तर प्रकट और पुष्ट होता गया।

लोक-संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति के बीच न 'लोक' की अवधारणा में समानता है, न संस्कृति की। लोक-संस्कृति के निर्माता (उत्पादक) और गृहीता (उपभोक्ता) अलग-अलग नहीं होते। वे सचमुच समूह होते हैं। उस समूह में व्यक्ति का समुदाय से अलग (स्वतंत्र) महत्त्व नहीं होता, इसलिए उसकी सर्जनात्मकता

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतःस्फूर्त और तन्मयतापूर्ण होती है। जहाँ कोई व्यक्ति सर्जक होता है, वहाँ भी उसके अनुभव सामुदायिक जीवन का अभिन्न अंग होते हैं, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति की मौलिकता भी सामूहिक रूपों के सधे हुए उपयोग में होती है। लोकप्रिय संस्कृति का निर्माण भी सामूहिक सर्जनात्मकता से होता है, लेकिन उसमें स्वयंस्फूर्तता का नहीं, संयोजन का गुण होता है। वह नैसर्गिकता पर नहीं, प्रौद्योगिकी पर निर्भर होती है। उसका स्रोत सामाजिक अनुभव में नहीं है। स्टुअर्ट मिल के शब्दों में, उसे "श्रमिक वर्गों के लिए पूँजी द्वारा संगठित किया जाता है। (Cultural Theory) पूर्वोक्त, (1994, पृ. 458) इसलिए, उसके निर्माता (उत्पादक) और गृहीता (उपभोक्ता) एक नहीं होते। परिणामस्वरूप, 'वन-बेला' कविता से संदर्भ बदलकर निराला के मुहावरे में कहें, तो लोक-संस्कृति 'आत्मा की निधि' है और लोकप्रिय संस्कृति उस निधि को पत्थर बनाकर 'कौड़ी के मोल' बेचने का बाज़ार (1937, 1/330)।

छायावादी कवि के रूप में निराला भी सोचते थे कि 'हमें जाना है जग के पार' (1929, 1/287) इन दिनों भी 'ग़रीबों की पुकार' (1/57) वे सुनते थे, लेकिन पूँजीवादी संसार के क्रूर हिसाब-किताब की दुनिया उनके स्वप्नलोक से बाहर रहती थी। स्वभावतः उनकी छायावादी अंतर्रचना में एक द्वैध है। सामुदायिक खेतिहर जीवन से स्वतंत्र हुआ व्यक्ति अपना वैशिष्ट्य (मैं) बनाये रखना चाहता है, दूसरी तरफ़ अपने आदर्शों के कारण अपनी 'आत्मा की निधि' को बाज़ार के स्वार्थ-संबंधों से बचाकर रखना चाहता है। पहली चीज़ उसे लोक-संवेदना में पृथक् करती है, दूसरी चीज़ संयुक्त। लोक के प्रति सहानुभूति के बावजूद छायावादी निराला की श्रेष्ठ उपलब्धियाँ लोक-संस्कृति की छाया लेकर नहीं चली हैं, लेकिन छायावाद जिस औद्योगिक पूँजीवाद के साथ विकसित हुआ, वह समाज की विषमता ही नहीं बढ़ाता, व्यक्ति की आतंरिकता को भी विघटित करता है। ख़ुद ब्रिटिश साम्राज्य का मूल 'पूँजीवाद' है और पूँजीवाद 'हृदयहीन' है, यह निराला समझते थे। (1932, 6/365) छायावादी सहृदयता से पूँजीवादी हृदयहीनता टकराती है। भावना पर समाज के नियम भारी पड़ते हैं। जल्द ही निराला को इस बात का कड़वा अनुभव हुआ :

लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर। (1935, 1/297)

सरोज की मृत्यु ने निराला को ज्ञान करा दिया कि संसार उनकी करुणा और आदर्श से परिचालित नहीं होता; इसके विपरीत, हृदयहीन पूँजीवाद के आर्थिक नियमों ने निराला के आदर्शों को ही छिन्न-भिन्न कर दिया है, आर्थिक जीवन स्वार्थों का समर है, जिसमें हारे हुए निराला की स्थिति उन्हीं भिक्षुओं, विधवाओं और दुखी भाइयों जैसी हो गयी है, कल तक निराला जिनके प्रवक्ता थे। यह नये प्रकार का साधारण समीकरण था, जिसमें निराला अधिकाधिक लोक-संवेदना और लोक-संस्कृति के निकट पहुँचते गये :

कौन गुमान करो ज़िंदगी का
जो कुछ है कुल मान उन्हीं का।(2/371)

इस विनय और सहजता को—

तुम तुंग हिमालय शृंग और
मैं चंचल गति सुर-सरिता। (1/37)

इस आग्रहपूर्ण स्वाभिमान से मिलाइए, महाप्राण निराला से साधारणीकृत निराला का अंतर स्पष्ट हो जाएगा। यह उनकी अभिव्यक्ति का ऐसा दौर है, जब उनका स्वत्व विलीन-जैसा हो गया है और वे कहीं विनय-पद में और कहीं लोक-छंद में अपनी आत्मा ढालकर पेश करते हैं।

साधारणतः इसे निराला की विक्षिप्तता का दौर समझा जाता है। रामविलास शर्मा उसे 'नरकयात्रा' कहते हैं। मिशेल फूको की यह बात अर्थपूर्ण है कि पागलपन भी उसी तरह सामाजिक निर्मिति है, जिस तरह सांस्कृतिक अस्मिताएँ। निराला इस दौर में अपनी स्थिति के प्रति और उस स्थिति के लिए ज़िम्मेदार परिस्थितियों के प्रति बेहद सजग हैं। अपनी नियति को वे उन लोगों से जोड़कर भी देखते हैं, जो उन्हीं की तरह स्वार्थ- समर हारते रहे हैं। इसलिए, लोक-संवेदना का स्तर उन्हें सहज ही नहीं प्राप्त हुआ है, उन्हें 'हज़ार मरण' मरना पड़ा है, तब यह साधारणत्व मिला है। (1952, 2/403) स्पष्टतः यह साधारणत्व आत्म-संघर्ष से अर्जित विवेक है। प्रसंगवश उल्लेख किया जा सकता है कि सर्जनात्मकता विवेकरहित नहीं हो सकती, चाहे शिष्ट साहित्य की हो या लोक-साहित्य की।

निराला यह समझ चुके थे कि पूँजीवादी समाज ने जीवन के आर्थिक युद्ध में नैतिकता-सहृदयता जैसे मूल्यों को व्यर्थ कर दिया है। उनकी अपनी असफलता का कारण उनकी अयोग्यता अक्षमता नहीं थी—'जाना तो अर्थागमोपाय'; पार्श्व में अन्य रख कुशल हस्त'। (1/297) —समस्या दूसरी थी :

क्षीण का न छीना कभी अन्न,
मैं लख न सका वे दृग विपन्न। (उप0)

जो क्षीण का अन्न छीन सकते थे, उनकी कायर आँखें देखकर विचलित नहीं होते थे, वही स्वार्थ-समर जीत सकते थे। निराला के मानववादी आदर्श इस दुनिया में बेमेल होते जा रहे थे। अपने छायावादी स्वभाव के कारण वे अपनी पराजय का उदात्तीकरण भी करते थे—'यह हिंदी का स्नेहोपहार, यह नहीं हार मेरी।' (उप0) जबकि वे अनुभव कर रहे थे कि उनका व्यक्तित्त्व 'कवि जीवन' और 'जीवित कविता' के दोहरे कर्तव्य में विभाजित और विघटित हो गया है। वे सफलता और नैतिकता के बीच गहरी खाई से त्रस्त हो रहे थे। पुरानी आदर्शवादी दुनिया छिन्न-भिन्न हो रही थी, फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी वे उस ढाँचे को बाँधने की अंतिम कोशिश पूरी ताक़त बटोरकर कर रहे थे। 'राम की शक्ति-पूजा' उस कोशिश का परिणाम है। लेकिन, उनका अंतर्द्वंद्व कम होने के बजाय बढ़ता जा रहा था। वह एक व्यक्तित्त्व के भीतर सभी तत्त्वों को विभाजित कर रहा था। 'शक्तिपूजा' में राम और रावण का ही नहीं, सृष्टि के तत्त्वों का विभाजन-आकाश और पृथ्वी का, वायु और जल का—तथा दैवी शक्ति (दुर्गा और महावीर) एवं छल (मित्रता का छल विभीषण और विश्वास का छल अंजनारूपी दुर्गा) का विभाजन—यह व्यापक विभाजन निराला के अंतर्लोक में आने वाले परिवर्तन का भी द्योतक है।

जल्दी ही निराला उदात्तीकरण और आंतरिक विघटन की मनोभूमि से बाहर आते हैं। वन-बेला में लगभग शमशेर जैसी सादगी से स्वीकार करते हैं :

हो गया व्यर्थ जीवन,
मैं रण में गया हार। (1/327)

'मरण-दृश्य' कविता में मुक्ति का रूप लेकर मृत्यु तो आती ही है, लेकिन :

मुक्त अंबर गया अब हो
जलधि जीवन को! (1/339)

दूसरे छायावादी कवि आकाश से धरती पर उतरे थे, निराला धरती पर थे, वहाँ से अब आकाश में उड़ान भरने की जगह जलधि में पैठना आवश्यक हुआ। जीवन की गहराई में वे जितना पैठते गये, उतना ही 'अप्सरा' की ज़मीन से 'देवी' के निकट आते गये, उनका महाप्राणत्व उतना ही साधारणत्व में बदलता गया। बेशक, वह महाप्राणत्व भी निराला का था और यह साधारणत्व भी निराला का था। दोनों की उपलब्धियाँ भव्य और अतुलनीय हैं।

साधारणत्व का परिणाम यह हुआ कि जो आर्थिक शक्तियाँ मनुष्य का भाग्य लिखती थीं, उनके सामाजिक प्रभाव पर निराला ने ध्यान केंद्रित किया। 'चतुरी चमार' (1933) से 'बिल्लेसुर बकरिहा' (1941) तक गद्य में और,

यह है बाज़ार
सौदा करते हैं सब यार (1942, 2/87)

से लेकर—

'स्वत्व बेचकर विदेशी माल बेचने वाले। (1946, 2/198)

तक कविता में, निराला ने न केवल आर्थिक संघर्षों का, बल्कि बाज़ारवादी व्यवस्था का भी चित्रण किया है। भूमंडलीकरण बहुत दूर था, संस्कृति को बाज़ार में बदल देने वाला व्यावसायिक प्रभुत्व भी दूर था, फिर भी, निराला सौदेबाज़ी की प्रवृत्ति का इतना व्यापक प्रभाव देख रहे थे कि निजी संबंधों से लेकर राष्ट्रीय आंदोलन तक हर तरफ़ लोग मुनाफ़े (स्वार्थ) के लिए स्वत्व बेचने को तैयार हैं। वास्तव में, यह स्वाधीनता-संघर्ष के दौर में भारत की दूसरी तस्वीर है, जो आदर्शवाद और जुझारूपन के विपरीत चलने वाली प्रक्रियाओं को सामने लाती है। उसे हम तथाकथित 'मुख्यधारा' के परिचय की आलोचना कह सकते हैं। इसी आलोचना के भीतर से विकल्प का वह रूप भी उभरता है, जो निराला अपनी अनेक कविताओं में सुझाते हैं। जो अर्थिक शक्तियाँ मनुष्य का भाग्य लिखती थीं, जो स्वार्थ के लिए स्वत्व तक बेच देती थीं, उनका भाग्य लिखने के लिए निराला श्रमिक जनता के जागरण, संगठन और संघर्ष का आह्वान करते हैं। नयी बात यह थी कि 'विप्लव के बादल किसान की अधीरता नहीं मिटा पाये थे', 'किसान और श्रमिक खुद एकजुट होकर अमीरों की हवेली में किसानों की पाठशाला खोलेंगे', 'मिलों की पूँजी देश को देंगे।' (1/124, 2/116, 161) यह परिवर्तन चमत्कार-प्रेमी छायावादी मन का टूटना और नयी मौलिक शक्ति की कल्पना का साकार होना है।

सुखद आश्चर्य की बात यह है कि जिस तरह छायावादी निराला उदात्त की उस भूमि पर थे कि 'महाप्राण' बन गये, उसी तरह जनवादी निराला यथार्थ के उस धरातल पर थे कि पूँजीवाद के आरंभिक दिनों में ही बाज़ारवादी व्यवस्था की अनेक ख़ूबियाँ पहचान सके। इस दृष्टि से 'वन-बेला' और 'मास्को डायलॉग्स' कविताओं को पढ़ा जाना आवश्यक है। 1937 में निराला देख रहे थे :

यह जीवन का मेला।
चमकता सुघर बाहरी वस्तुओं को लेकर,
त्यों-त्यों आत्मा की निधि पावन बनती पत्थर।
बिकी जो कौड़ी मोल... (1/330)

आत्मा की निधि को बाहरी चमक-दमक से पत्थर बनाने वाला बाज़ारवाद है। आत्मा और पत्थर की प्रतीक-व्यंजना अत्यंत सार्थक है। यह पत्थर आत्मा का रूपांतरण और स्थापन है। एक बाज़ारवादी चिंतक ने 'बिल्लो रानी कहो तो मैं जान दे दूँ' गीत के माध्यम से यह सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि "आत्मा की बात साहित्य में ज़्यादा होती रही। होनी चाहिए थी आइटम की। सदियों से हिंदी साहित्य जिस एक शब्द की खोज में भटक रहा था, वह था—'आइटम', जिसकी जगह आत्मा को चलाया जाता रहा। 'आइटम' ही आत्मा का असली रिप्लेसमेन्ट है।" (हिंदुस्तान, रविवार, 4 मई, 2008) साहित्य-परंपरा में समाहत 'आत्मा' का बाज़ारवादी स्थानापन्न आइटम है। निराला इसे विडंबना की तरह देख रहे थे। उत्तर आधुनिक (लोकप्रिय संस्कृति-वादी) सिद्धांतकार उसे उत्सव की तरह अपना रहे हैं।

'स्वत्व बेचकर विदेशी माल बेचने वाले'—निराला देख रहे थे कि विदेशी माल बेचने से पहले स्वत्व बेचना पड़ता है। विदेशी माल केवल कपड़ा और टेलीविज़न (उपभोक्ता वस्तु) नहीं है, वह विचार और संगीत (संस्कृति) भी है। अपनी सजग संवेदनशीलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से निराला ने भूमंडलीकरण के बहुत पहले, स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में ही इसकी झलक देख ली थी। साम्राज्यविरोधी संघर्षों की परंपरा ने 'स्वदेशी' और 'स्वत्व' का मूल्य दिया था। भारतेंदु उसके आदि-प्रणेता थे। 'स्वत्व निज भारत गहे'—अपने ही इस राष्ट्रवादी आदर्श को खुद पूँजीवाद के प्रतिनिधि व्यवहार में झुठला रहे थे। उनके इस व्यवहार को निराला अपने व्यंग्य का निशाना बना रहे थे—'स्वत्व बेचकर विदेशी माल बेचने वाले!'

निराला की असफलता के सामने बाज़ारवादी सफलता का यह चरित्र कैसा है? 'आत्मा' और 'आइटम' की टक्कर में 'आइटम' की विजय निश्चित थी। पूँजीवादी बाज़ारतंत्र का नियम है कि खोटा सिक्का खरे सिक्के को खदेड़ बाहर करता है।

निराला कभी-कभी पछताते थे कि—'सोचा न कभी-/ अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी' (1/327), लेकिन उनकी ताक़त इस बात में थी कि पश्चाताप को नियंत्रित रखकर वे काफ़ी वस्तुनिष्ठ दृष्टि से साहित्य, राजनीति और बाज़ार के अंदरूनी ताने-बाने को पहचान रहे थे। 'वन-बेला' से एक विस्तृत अंश देखना आवश्यक है :

इतना ही नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
होता मैं, शिक्षा पाता अरब-समुद्र-पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पंडित
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल-चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार,
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार,
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ-मर्दन स्वर,
हिंदी सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
रखता कि अटल सहित्य कहीं यह हो डगमग..

(1/327-328)

धन का एकाधिकार राजनीतिक सफलता की गारंटी है, साहित्यिक प्रेरणा का स्रोत भी है—यह बात इक्कीसवीं सदी के प्रारंभिक दशक का बाज़ारवादी माहौल देखकर नहीं, बीसवीं सदी के चौथे दशक का राष्ट्रवादी उभार देख कर कही गयी थी। संपत्ति, शिक्षा, राजनीति, साहित्य मिलकर जो लीला आज कर रहे हैं, यानी जो विमर्श निर्मित कर रहे हैं, इसे निराला की तरह देखने वाले कितने कवि हैं? ऐसा नहीं है कि निराला राष्ट्रवाद की विडंबना से अनभिज्ञ थे—'लार्ड के लाड़लों को देता दावत—विहार। राष्ट्रवादी मंच पर 'राष्ट्रपति' चुना जाना, लोक-हृदय में 'उग्रतर साम्यवादी' के रूप में बैठना और 'लार्ड के लाड़लों' से भी दावत-विहार करना मानो 'गोदान' के राय अमरपाल सिंह का ही और निखरा हुआ रूप है! 'कौन तम के पार?-(रे, कह)' में निराला का दार्शनिक रहस्यवाद होगा (1/240), लेकिन 'धन का एकाधिकार' और 'उग्रतर साम्यवादी' का एक ही में, संयोग सामाजिक रहस्यवाद से कम नहीं है। ऐसे बहुत से लोग होंगे। 'मॉस्को डायलॉग्स' के गिडवानी जी भी 'बहुत बड़े सोश्यलिस्ट' हैं। वे फ़रमाते हैं :

मेरे समाज में बड़े-बड़े आदमी हैं,
एक-से हैं एक मूर्ख;
उनको फँसाना है,
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का।
उपन्यास लिखा है,
ज़रा देख दीजिए।
अगर कहीं छप जाय
तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर;
मनमाना रुपया फिर ले लूँ इन लोगों से;

(1940, 2/36-37)

पैसा राजनीति और साहित्य—कॉर्पोरेट संस्कृति का गठबंधन, भले ही आदिम रूप में, निराला के सामने स्पष्ट है। दिलचस्प बात यह है कि अभिजात वर्ग रूस और साम्यवाद का विरोध करने के बजाय उसका नाम जपता है। इससे भारतीय जीवन में राष्ट्रवादी लहर का और जनसाधारण में वामपंथ की लोकप्रियता का पता चलता है। अभिजात वर्ग अपने राजनीतिक प्रभाव और आर्थिक लाभ के लिए अपनी विरोधी विचारधारा का—अपना विनाश करने वाले मार्क्सवाद तक का—इस्तेमाल करने से नहीं हिचकता। निराला इस विडंबना को देख रहे थे। बहुत से मार्क्सवादी विचारकों को यह बात अच्छी नहीं लगती थी। इसलिए प्रगतिशील साहित्य में भी दूसरे, सुकुमार, छायावादी अधिक समादृत थे; निराला पहले रूढ़िवादियों के कोपभाजन थे, बाद को क्रांतिकारियों के कोपभाजन बने। (अब वे अस्मितावादियों के कोपभाजन हैं!)

निराला की सूझ-बूझ दूरदर्शिता से भरी थी, यह टेरी लोवेल के कथन से स्वयं स्पष्ट हो जाता है—"अगर ऐसे सांस्कृतिक उत्पादन से अतिरिक्त मूल्य कमाया जा सकता है, जो प्रभुत्वशाली विचारधारा को चुनौती देता है या उसे ध्वस्त भी करता है, तो बाकी बातें ज्यों ही त्यों रहने पर, इस तरह के माल के उत्पादन में निवेश करना उस विशेष पूँजी के हित में हैं।" (Cultural theory, 1944, पूर्वोक्त पृ. 471) ऊपर उद्धृत 'वन-बेला' और 'मास्को डॉयलॉग्स' के अंश यह संकेत करते हैं कि निराला तथाकथित लोकप्रिय संस्कृति के चरित्र को समझ रहे थे। सांसारिक दृष्टि से उनका होश-हवास दुरुस्त होता, तो शायद वे भी दूसरों की तरह हो गये होते। बिना उत्तर-आधुनिक संस्कृति विमर्श से परिचय के ही निराला यह देख रहे थे कि संस्कृति में निवेश भविष्य में निवेश है और अपेक्षाकृत सुरक्षित निवेश है। इसके लिए विरोधी वर्ग-विचार ारा का उपयोग भी किया जा सकता है और अपने वर्ग की भीतरी प्रतिस्पर्धा में 'उल्लू के पट्ठों' से मनमाना रुपया भी वसूला जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। प्रेम और युद्ध में भी जो कुछ नाजायज़ रह गया होगा, व्यापारिक स्वार्थ-समर में वह सब भी जायज़ हो गया है। संस्कृति में निवेश से एक साथ दो काम होते हैं। मनोनुकूल ढंग से जनता का परिसंस्कार-पुनर्निर्माण, दूसरे, मुनाफ़ा और पूँजी-निर्माण। गिडवानी जी अपने ही समाज के 'मूर्खों' से वसूली करके यह चाहते हैं कि नये किसी बंगले में एक प्रेस खोल दूँ। यानी पुनः पूँजी निवेश।

जहाँ गिडवानी जैसे सोशलिस्ट हैं, वहीं 'कुकुरमुत्ता' जैसे सर्वहारा भी हैं। गिडवानी जिस संस्कृति का उत्पादन करते हैं, उसके उपभोक्ता वर्ग का तलछट है—कुकुरमुत्ता। गिडवानी अपने वर्ग का सच्चा प्रतिनिधि है। धनी मूर्खों से रुपये ऐंठते हुए भी उसी वर्ग की संस्कृति का पालन करता है। लेकिन, कुकुरमुत्ते के पास अपने समुदाय की चेतना नहीं है। वह जिस 'गंदे में उगा' था (2/45), उस गंदे में अपसंस्कृति ही पनप सकती है :

पर हैं प्रोलेटेरियन झगड़े यहाँ
मियाँ-बीवी के, क्या कहना यहाँ। (2/48)

समूह संस्कृति तब तक नहीं पनपी थी, लेकिन उस समूह में अपसंस्कृति पनप रही थी। निराला उसकी आलोचना करने में नहीं चूकते। जिन्हें 'कुकुरमुत्ता' ही सर्वहारा का प्रतीक लगता है, वे 'राम की शक्ति-पूजा' के विभीषण को भी राम का मित्र और वीर पुरुष समझते हैं। निराला के समय में संस्कृति का लोकतंत्रीकरण शुरू हो गया था। वे खुद लोक-संस्कृति के सृजनात्मक और लोकप्रिय तत्त्व लेकर, उच्च कला के सौंदर्य-मूल्य और सांस्कृतिक बोध लेकर एक नये प्रकार की जन-संस्कृति के निर्माण का प्रयास करते हैं। 'बेला', 'नये पत्ते' और 'अर्चना' में इसकी झलक मिलती है। प्रगतिशील आंदोलन ने उसमें पूरी मदद की; लेकिन व्यावसायिक शक्तियाँ इस सारे प्रयत्न को उन्मुक्त कर रही थीं, ताकि भविष्य में उन्हें अपनाकर नये ज़माने की समूह संस्कृति तैयार की जा सके।

समूह संस्कृति (किश्च) का पूँजीवादी सारतत्त्व बहुत बाद में सामने आया। निराला में उसके प्रारंभिक संकेत मौजूद हैं। आर्थिक शक्तियों की सांस्कृतिक भूमिका का इतना गहरा विश्लेषण उस समय तक किसी दूसरे कवि में नहीं था। शास्त्रीय मार्क्सवादी भी इस बात को समझने में असमर्थ थे। उनके पास 'उत्पादन के सिद्धांत' तो हैं, 'उपयोग के सिद्धांत' नहीं हैं। खुद मार्क्स में ऐसी जड़ता नहीं थी। वे उत्पादन को उपभोग से अभिन्न मानते थे। पूँजीवादी बाज़ारतंत्र में जो बिकता है, वह बनता है—उपभोग के बिना उत्पादन नहीं हो सकता। उपभोग सुनिश्चित करने के लिए बाज़ारवादी शक्तियाँ आक्रामक प्रचार और विज्ञापन का सहारा लेती हैं, विशेष उत्पादों को प्रतिबंधित और बहिष्कृत भी करती हैं। सांस्कृतिक उत्पादन में यह बात और साफ़ उभरती है। पूँजी के हित राजनीति और संस्कृति हर जगह हैं। राजपुत्रों और लक्ष्मीपुत्रों का साम्यवादी और साहित्यिक प्रेरणा के रूप में दिखायी देना वृद्ध पूँजीवाद की समूह संस्कृति की आलोचना के लिए प्राथमिक, लेकिन विश्वसनीय आधार प्रस्तुत करता है।

निराला के सामने समूह संस्कृति के रूपों का ऐसा विकास नहीं हुआ था। संस्कृति-उपभोग का जन्म यूरोप और अमरीका में भी बाद की चीज़ है। भारत में केवल फ़िल्म और रेडियो आये थे। उनसे भी निराला का कोई संबंध नहीं था। शायद एक बार किसी रेडियो कार्यक्रम में वे गये थे, जिसकी रिकॉर्डिंग भी अब सुरक्षित नहीं हैं। तब तक समूह संस्कृति के जिन रूपों का विकास हुआ था, उनसे अछूते रहकर, ऐसे सांस्कृतिक उत्पादों के निर्माण, वितरण, उपभोग की पूरी प्रक्रिया से बाहर रहकर, अपनी अस्त-व्यस्त चेतना के बावजूद निराला जिस गहराई से यथार्थ को देख रहे थे, वह आश्चर्य में डालता है। उसका महत्त्व तब और ज़्यादा पता चलता है, जब हम यह देखते हैं कि स्वाधीनता-आंदोलन के तूफानी दिनों में व्यापारियों का प्रमुख मोर्चा संस्कृति नहीं था। तब तक गंभीर विचारों को वहन करने वाली कलात्मक संस्कृति और व्यावसायिक फ़ॉर्मूलों पर चलने वाली समूह संस्कृति की प्रतिस्पर्धा भी शुरू नहीं हुई थी। कवि-सम्मेलन के मंच साहित्य-सम्मेलन से ज़्यादा साहित्यिक थे। सांस्कृतिक क्षेत्र में मध्य वर्ग की भूमिका निर्णायक थी। रेडियो, फ़िल्म, साहित्य—सभी जगह नव शिक्षित मध्य वर्ग सक्रिय और प्रभावकारी था। स्टारडम का अभ्युदय नहीं हुआ था। मध्य वर्ग में वामपंथी प्रभाव काफ़ी था।

मध्यवर्गीय प्रभुत्व वाली जनवादी संस्कृति से उच्चवर्गीय प्रभुत्व वाली समूह संस्कृति में पदार्पण बहुत सी बातों पर निर्भर है—मिशनरी प्रेस की जगह व्यावसायिक प्रेस का विकास, विराट पूँजी पर आधारित विराट-उत्पादन-वितरण-उपभोग वाले संस्कृति उद्योग का विकास, विराट संस्कृति उद्योग के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी का विकास, श्रम की परंपरागत भूमिका का ह्रास, प्रभुत्व और अधीनता के नये रूपों का आविर्भाव, जो देशी-विदेशी स्वामी-सेवक के प्रत्यक्ष और पारंपरिक संबंधों को संदिग्ध बना दे। लेकिन, तत्कालीन भारतीय समाज में उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष की परिस्थितियों के नाते एक सामान्य शत्रु सामने था। प्रभुत्वशाली समुदाय श्रमिकों और किसानों से भी सीधा विरोध नहीं लेता था। संस्कृति में भी प्रभुत्वशाली वर्ग जन-संस्कृति और लोक-संस्कृति के मूल्यों को हनन करता था, उसे प्रोत्साहित कभी-कभार ही करता था। उसका व्यावसायिक उपयोग तो समूह संस्कृति की ही विशेषता है, उपनिवेश-विरोधी परिस्थिति में व्यावसायिक तबकों को फ़िल्म और रेडियो जैसे माध्यमों के लिए प्रगतिशील आंदोलन—भारतीय जननाट्य संघ और प्रगतिशील लेखक संघ—से अपनी खुराक मिल रही थी। स्वाधीनता के बाद व्यावसायिक प्रतिष्ठानों ने संस्कृति में निवेश आरंभ किया। अख़बार पहले भी 'व्यापारियों की ही संपत्ति'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे (2/198) अब तो यह हाल हो गया है, जिसका पूर्वाभास निराला को हो चुका था, कि 'बानिज के राज ने लक्ष्मी को (सरस्वती को भी) हर लिया।' (2/177)

निराला सजग होकर यह सब देख रह थे, फिर भी अपने 'भग्न तन, रुग्न मन' (1952, 2/432) के कारण सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के उस विराट परिवर्तन का विश्लेषण और प्रतिरोध करने में समर्थ नहीं रह गये थे। शक्ति बटोरकर बार-बार लड़ने की कोशिश करना और असमर्थ होकर प्रार्थना में डूब जाना—यह वस्तुस्थिति चाहे जितनी कारुणिक हो, लेकिन वह नयी ऊर्जा से संचालित नहीं है :

आग सारी बुझ चुकी है,
रागिनी वह रुक चुकी है,
स्मरण में है आज जीवन,
मृत्यु की है रेख नीली। (1958, 2/467)

इन परिस्थितियों में भक्ति-पद और लोक-संगीत निराला को शक्ति देते हैं। अपनी व्यथा को वे इतनी सचाई से कहते हैं कि उसमें टूटते-फूटते समुदाय की व्यापक व्यथा झलक उठती है:

दे न गये बचने की
साँस, आस ले गये। (2/349)

कभी-कभी पुरानी पदावली का रूपक भी बाँधते हैं :

गत शत पथ पर
निर्जर रथ पर
तिमिर तीर हर तरुणे! (1950, 2/338)

लेकिन इन प्रयोगों में वैसा प्रभाव नहीं है। इसके विपरीत, लोक-छंदों में ढले हुए नये अनुभव अधिक प्रामाणिक लगते हैं:

आज मन पावन हुआ है,
जेठ में सावन हुआ है। (1952, 2/405)

अथवा, लगभग अंतिम समय का भक्ति-पद :

हाथ वीणा, समासीना,
विशद-वादन-रत प्रवीणा। (2/483)

निराला का आनंद और विषाद लोक-छंद और भक्ति-पदों में अधिक विश्वसनीय ढंग से व्यक्त हो रहा था। पुराने ऊर्जस्वित प्रयोगों का संबंध जिस आग से था, वह बुझ चुकी थी। 'कौन गुमान करो ज़िंदगी का,जो कुछ है सब मान उन्हीं का।' (2/371) —यह भावभूमि लोक-छंद और भक्ति-पद के स्तर को एक समान छूती है। यह आग बुझने के बाद के निराला हैं। तेज घट जाने पर भी उनमें वैसी ही भव्यता है, जैसी सांध्यकालीन सूर्य में होती है। इसीलिए, यहाँ भी निराला उपलब्धियाँ प्रदर्शित करते हैं, वे लोक-संगीत का अनुकरण नहीं करते, उसे (या भक्ति-भाव को) शरणस्थली नहीं बनाते, बल्कि उसका सर्जनात्मक उपयोग करते हैं। आगे चलकर हम देखते हैं कि समूह संस्कृति अपनी नीरसता मिटाने के लिए लोक-स्रोतों को बराबर खँगालती है। अकेले फ़िल्म संगीत को ही लें, तो पिछले एक दशक में सबसे लोकप्रिय और लाभकर प्रयोग या तो पुराने सूफ़ी-भक्ति संगीत पर आधारित हैं या लोक-संगीत पर। इस दौर की हिंदी कविता में भी बाज़ारवादी प्रभुत्व और उत्तर-सोवियत हताशा का प्रतिकार करने के लिए जो सबसे सर्जनात्मक प्रयोग हुए हैं, वे लोक-स्रोतों से संबद्ध हैं। इस दृष्टि से, राजेश जोशी-नवनेंद्र पति-अरुण कमल के बाद की कवि-पीढ़ी में एक ख़ास अंतस्सूत्रता दिखती है, वह है-लोक-संस्कृति का सर्जनात्मक उपयोग। बद्री नारायण, लीलाधर मंडलोई, एकांत श्रीवास्तव और नवल शुक्ल अपनी जो सबसे महत्त्वपूर्ण रचनाएं लेकर आये हैं, उनमें न अंधलोकवाद है, न राजनीति-विरोध। उन सबकी अपनी विशेषताएँ हैं, जिन्हें लोक-संस्कृति का स्पर्श निखार देता है। यदि इनमें समूह संस्कृति की निराला जैसी आलोचना भी हो, तो उन सबका योगदान और महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। निराला ने आग बुझ जाने के बाद भी इतिहास के मर्म को स्पर्श किया, राजनीतिक अवसरवाद, सामाजिक क्रूरता और अपसांस्कृतिक प्रभाव को प्रतिरोध किया। ऐसा किसी दूसरे छायावादी कवि में नहीं है। उनकी इस उपलब्धि का महत्त्वपूर्ण कारण बाज़ारवाद का विरोध और लोक-संस्कृति से तादात्म्य भी है।

बी-30, श्रीराम अपार्टमेंट्स
32/4 द्वारका, नयी दिल्ली-110078

सुभाष केकरे

इस अंक के मुख पृष्ठ और रेखांकन के चित्रकार श्री 'सुभाष केकरे' हैं।

इनका पता है :

आशीर्वाद, रंगपुर रोड नं0 4
डडवाडा, कोटा-324002 (राजस्थान)

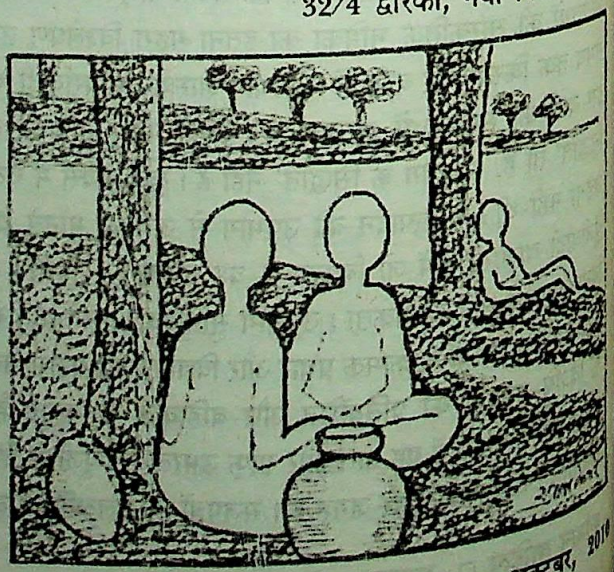

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

महेश अग्रवाल

यहाँ गीता तलाशेंगे वहाँ कुरआन ढूँढ़ेंगे
फरिश्तों का शहर है हम यहाँ इन्सान ढूँढ़ेंगे।

चले आये यहाँ अमृत-कलश को लूटने वाले
मगर कुछ हैं यहाँ शिव जो वही विषपान ढूँढ़ेंगे।

यहाँ धोखाधड़ी है, झूठ है, छल, बेईमानी है
इन्हीं की मुट्ठियों में कैद हम ईमान ढूँढ़ेंगे।

हुआ इन्सानियत का कत्ल जिनके हाथ से लोगों
वही श्रद्धा सुमन देंगे वही शमशान ढूँढ़ेंगे।

यहाँ हम पत्थरों में भी तलाशें साँस जीवन की
वहाँ हर साँस में वो मौत का सामान ढूँढ़ेंगे।

मसल दें मुट्ठियों के बीच जो सारे गुलिस्तां को
वही फिर खार के घर मेज़ पर गुलदान ढूँढ़ेंगे।

खड़ी की जा रही चारों तरफ हर रोज़ दीवारें
इन्हीं के बीच में हम एक रोशनदान ढूँढ़ेंगे।

हमारे कारनामे रोज़ खुद हमने खंगाले हैं
हमारे इस तरीके ने कई अच्छाइयाँ देखीं।

उधर तन्हाइयों के घर गमों की भीड़ देखी है
इधर तो भीड़ में हमने बहुत तन्हाइयाँ देखीं।

जमीं को छोड़कर ऊँचे उठे यह पाँव तो अपने
मगर ऊँचाइयों ने और गहरी खाइयाँ देखीं।

उड़ी है नींद आँखों से यहाँ सरमायेदारों की
उन्होंने जब मुकाबिल पर्वतों के राइयाँ देखीं।

71, लक्ष्मी नगर, रायसेन रोड
भोपाल-462021 (म.प्र.)

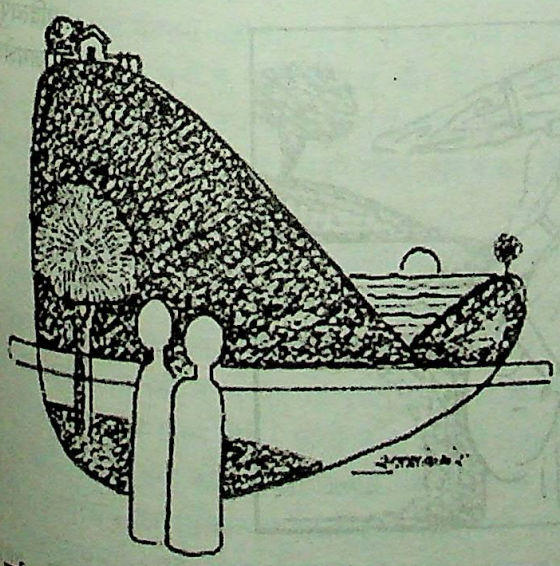

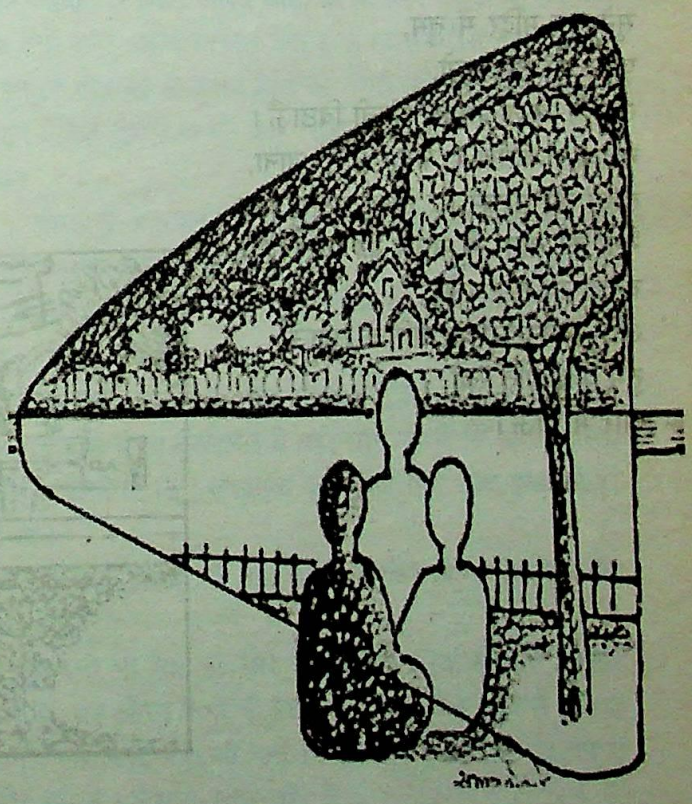

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो कविताएँ

पद्मा मिश्रा

तुम कोई गीत लिखो

तुम कोई गीत लिखो
और मैं गाऊँ।
गीत माटी के, गीत फ़सलों के,
गीत सुबह-शाम, गोधूलि-विहान के।
तुम कोई सूरज गढ़ो, और मैं
किरणों का परचम सजाऊँ।
मन की मंजूषा में,
यादों के साये हैं,
भूले बिसरे नगमे बादल बन छाये हैं,
जीवन के आँगन में तुम,
सावन की पहली फुहार बन बरसो,
और मैं बूदों की पालकी उठाऊँ।
भावना के मंदिर में देवता विराजे हैं,
प्रिय की अभ्यर्थना में,
साज सभी साजे हैं,
सूने मन मंदिर में तुम,
पूनम का चाँद बनो,
और मैं आशाओं की चांदनी बिछाऊँ।
नदिया ने सीखा है केवल बहते जाना,
लहरों की सरगम पर सपने बुनते जाना,
नैनों की गागर में सागर का प्यार लिये,
बादल सा राग बनो,
और मैं मनुहारों की रागिनी सुनाऊँ
तुम कोई गीत रचो
और मैं गाऊँ।

कैसे कह दूँ आया बसंत

सौरभ की सूनी साँझ ढले,
मुरझाई आशा की कलियाँ,
आतंक बिछाती रातों की,
अब तक जागी हैं स्मृतियाँ,
बेरंगे सपनों ने देखा जीवन का इतना करुण अंत !
कैसे कह दूँ आया बसंत।
अध नंगे, भूखे चेहरों की,
सहमी सहमी सी आवाज़ें,
ममता की प्यास लिये प्रतिपल,
नन्हीं आँखों की फ़रियादें।
आँसू के झिलमिल दर्पण से शबनम में डूबे दिग दिगंत!,
कैसे कह दूँ आया बसंत!
हर गाँव, गली, हर डगर, डगर,
हर डाल-डाल बिखरा बसंत,
पर जिनकी खुशियाँ रूठी हैं,
उनके आँगन कैसा बसंत ?
यह एकाकी मन साथ लिये कैसे कह दूँ 'आया बसंत'।

एल.आई.जी.-114 (रो हाउस)
आदित्यपुर-2
जमशेदपुर

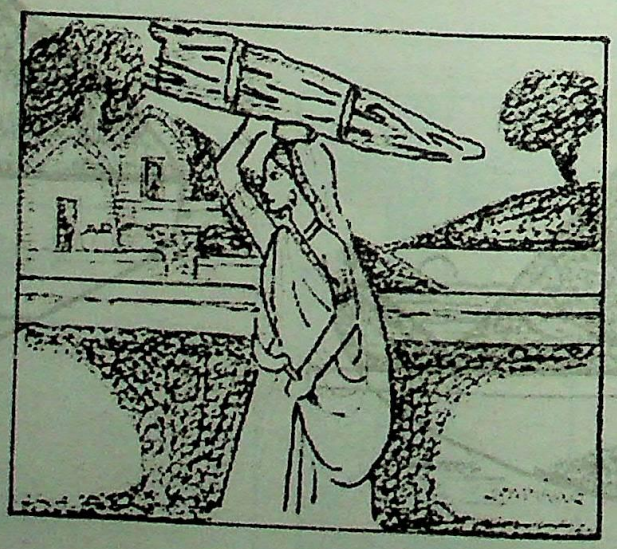

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर लौटने का समय

सनत कुमार

"ठीक है, आप को कहीं नहीं जाना है, तो कोई बात नहीं. मेरा मतलब था, खैर... मैं आपके लिए पानी लाया", वह जल्दी से घर की ओर मुड़ा। चबूतरे पर बैठी हुई औरत की आँखो में सवाल पूछने वाले के प्रति खीझ है, जो आदमी की प्रतिक्रिया को देखकर पिघलने लगी है। आदमी को अपनी बेवकूफ़ी पर शर्म आ रही है। सड़क के किनारे खड़े बरगद के चबूतरे पर कोई भी आने-जाने वाला बैठ सकता है। यह संयोग है कि बरगद उसके चार कमरों के घर से चार क़दम की दूरी पर है।

"तुम घबरा क्यों रहे हो?" औरत के सामने कमज़ोर आदमी घबरा जाता है। याद आया, उसका आदमी भी ऐसा ही था।

आदमी खिसियासी हँसी हँसा और जल्दी से घर में घुस गया।

"आप थकी हैं, साँस फूल रही है, इसीलिए पूछा", कहना चाहता था, परंतु कह नहीं पाया। पानी लाते हुए ध्यान आया कि उसकी पत्नी हड़बड़ाहट पर हमेशा झल्लाती थी। पत्नी की याद उसके होंठों पर खिलकर आँखों में चमक के साथ बैठ गयी।

पानी पीने के बाद शरीर में तृप्ति के आह्लाद का अनुभव हुआ। ध्यान आया कि पानी की सचमुच ज़रूरत थी।

लगा, जैसे वर्षों बाद उसने पानी पिया हो। चलते-चलते वह कितना आगे निकल आयी। आदमी को देखकर मुस्करायी।

यह मुस्कराना आभार जताने के संकोच से बचा रहा है। आदमी को ध्यान आया कि वह औरत के सामने बेवकूफ़ की तरह खड़ा है। वही पुरानी बीमारी—जो सोचता है, वह कह नहीं सकता। सोच रहा है, 'यह थक गयी है, अंदर बुला लूँ और चाय बनाकर'. लेकिन कह नहीं सकता। अहमक सा खड़ा हूँ, बस। औरत उठी, तो जाकर मुँह खुला—"आप घर में चलकर थोड़ा आराम कर लें, मैं चाय बना लेता हूँ।"

औरत ने आदमी की तरफ़ देखा। अब की बार, जाँचने-परखने की नज़र से। बड़ी उमर की उस भेदिया नज़र से। वो थोड़ी देर के लिए सहम गया। औरत की आँखें फिर पहले जैसी चमकीं। वह घर में आ गयी। आदमी ने औरत को पुराने सोफ़े पर बैठाकर, दरवाज़े-खिड़कियाँ पूरे खोल दिये। सालों बाद, उसकी पत्नी की मृत्यु के बाद, पहली बार कोई औरत अकेले उसके घर के अंदर आयी है। अपरिचय का अतिक्रमण करती हुई। अतिरिक्त रूप से सतर्क और सावधान, वह अंदर के कमरे में जाकर चाय बनाने लगा। उसके होंठ से सीटी-सी ध्वनि निकल रही है क्या? उसने घबराकर होंठ को हथेली से बंद करने की कोशिश की, तो होंठ उसके चेहरे से अलग छिटककर खिड़की पर बैठ गये। उसने घबराकर किचिन और बैठक के बीच का दरवाज़ा अंदर से बंद कर लिया। खिड़की के पीछे नीम पर बैठी चिड़िया एक डाल से दूसरी डाल पर फुदक-फुदककर खेल रही थी और बहुत मधुर स्वर में गा रही थी। इधर होंठ भी सीटी-सी बजा रहे थे। वह पकड़ने जाता, तो उछल जाते, हाथ न आते। उसे खुशी हुई कि जो होंठ दुख के आवेग में कभी-कभी फड़फड़ाते थे और नीचे लटके रहते थे, वे अब इतने खिल रहे हैं। उसमें डर भरा गुस्सा भी था कि न होंठ बंद हो रहे हैं, न चिड़िया चुप हो रही है। दोनों में फ़र्क़ करना मुश्किल है और वह औरत ऐसे में, उसे कहीं शोहदा न मान ले। जैसे-तैसे उसने चाय बना ली। तभी उसे ध्यान आया कि बैठक में टेबिल पर किताबें, पेन, डायरी, अख़बार-सब बिखरे पड़े हैं। रैक भी बेतरतीब है। यह ख़्याल परेशान करने वाला था, लेकिन फिर एक दूसरा विचार आया। अनजान औरत थोड़ी देर के लिए घर आयी है। फिर फ़िक्र क्यों करे? आत्मविश्वास पैदा हुआ। उसने जैसे-तैसे खिड़की पर उछलते होंठ को सँभाला। बीच का दरवाज़ा खोला और चाय ले आया। टेबिल पर चाय के कप रखकर, किचिन से बिस्किट ले आया।

औरत ने अख़बार एक तरफ़ रख दिया और चाय का कप उठा लिया। चाय पीते हुए उसने कमरे में नज़र डाली। दीवार पर एक अधेड़ दंपति का चित्र लगा है, क़रीब 10-15 वर्ष पूर्व का रहा होगा।

"आदमी तो यही है, और औरत?" दोनों चुपचाप चाय पीते रहे। चाय पीते समय दरअसल वे यही सोच रहे थे कि क्या बोलना चाहिए? बोलने के लिए एकाएक कई चीज़ें एक साथ इकट्ठी हो गयी थीं।

मुश्किल यही थी कि क्या बोलें? हारकर औरत रैक की ओर देखने लगी।

आदमी भी रैक की ओर देखने लगा। रैक कितना बिखरा हुआ है।... यह औरत कभी भी उठकर जा सकती है। घर में बुलाया मैंने और अब कोई बात भी नहीं निकल रही है होंठ से। बुढ़ापे में सठिया रहा हूँ। दिमाग सुन्न पड़ा है...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह आदमी इतना चुप्पा क्यों है, चुप्पे लोग ख़तरनाक हो सकते हैं, पर यह ख़तरनाक नहीं दिखता। घुन्ना भी नहीं है...

"घर में और कौन है?" औरत ने ही मौन भंग किया।

"अकेला ही हूँ! एक लड़का है, अमेरिका में है।"

"आप उसके पास जाते होंगे?"

ऐसे सवाल का जवाब वह पहले से ही जानती है। इन सवालों का एक ही जवाब होता है। तो फिर इसका घाव क्यों कुरेदा? उसे अपने सवाल पर शर्म आयी।

"एक बार जब वो दिल्ली में था, हम दोनों उसके पास गये थे। 10 वर्ष पहले की बात है", उसने फ़ोटो की स्त्री की ओर देखकर कहा।

आज फिर छाती के अंदर खालीपन का इतना दबाव महसूस हो रहा है। छाती के अंदर खोल है और छाती खोल में धँस रही है। इस तरह की पूछताछ कितनी तकलीफ़देह है, रंग-रग छलनी हो जाती है।

"मेरा भी एक लड़का कनाडा में बस गया है और दूसरा बेंगलूर में...

—वहाँ एक बार गयी थी। पोते के जन्म के वक़्त। पराये शहर में मन भी नहीं लगता है। अपनी गली, मौहल्ला, अड़ोस-पड़ोस, जान-पहचान, नाते-रिश्ते—सब छूट जाते हैं... बच्चे तो बहुत ज़िद करते हैं", उसने सफ़ाई देने की कोशिश की। उसे महसूस हुआ कि वह झूठ बोलते पकड़ा गयी है। वह उसकी ओर इस तरह क्यों देख रहा है?... वह सच जानता है। ज़िंदगी और परिवार से रिटायर कर दिये गये सभी लोग सच जानते हैं।

"और फिर, बच्चे सुबह घर से निकलते हैं, तो फिर देर शाम तक लौटते हैं। शनि-रवि को उनके अपने काम, शौक, क्लब-लाइफ़... हम दिन भर क्या करें," आदमी ने औरत की बात को सँभालते हुए कहा। मन में कहा—'बच्चों से अलग अकेलेपन की दयनीय घुटन-भरी ज़िंदगी काटने की सफ़ाई में ये ही चुक गये बहाने हैं... ख़ुद को दया से भी बचाना है, अपने बच्चों को भी... आख़िर हमारे बच्चे हैं!'

"बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप", औरत को पहली बार आदमी से अपनापा लगा। इसका झूठ भी प्यारा है। झूठ बोलते समय भी आदमी इतना प्यारा लग सकता है!

"हमारे परिवार में अभी संबंध इतने कड़वे नहीं हुए हैं, लेकिन"... आदमी बोलते-बोलते अटक गया। पछताने लगा। उसने अनजाने ही दुखती रग को छेड़ दिया था।

"अकेलापन... यही न... मेरे पति पैंतालीस की उम्र में ही चले गये थे", औरत आवेग में बोल गयी।

ध्यान आने पर वह अतीत में डूब गयी। अब दोनों के बीच मौन रँभा रहा था, बछड़े के वात्सल्य में अधीर गाय की तरह। इस मौन में ही कोई उनके अंदर से बच्चों को, पोते-पोतियों, नाती, नातिनों को बेहद दर्द से पुकार रहा था। मौन के अंदर की भेदक चीख़ें बहुत डराती हैं!

आदमी ने औरत की ओर देखा है। इस देखने में बूझना है। अपने अंदर के शोर की प्रतिध्वनि है। वर्तमान के भाव-संसार का यह अभाव। सब कुछ है, हमारे पास और कुछ भी नहीं है... यह औरत 15 वर्षों से वैधव्य झेल रही है और मैं 6-7 वर्षों में टूट गया हूँ। वह कान लगाकर शरीर के अंदर की आवाज़ें सुनने की कोशिश करने लगा... जो सुनायी दे रही थीं, वे विचित्र थीं... अंदर आरामशीन चल रही थी। इसके पहले केवल सुतार की आरी की आवाज़ ही आती थी। वह बहुत घबरा गया। दो जनों के दुख जब आमने-सामने मिल जाते हैं, तो शायद टूटन ज़्यादा बढ़ जाती है और आरामशीन चलने लगती है। औरत की ओर ध्यान गया—'यह औरत आयी कहाँ से? भटकी हुई है या इसका दिमाग़... दिमाग़ तो ठीक है। इतना बोल गयी। समझदार है, मुझसे ज़्यादा ही, लेकिन घाव है इसके अंदर, जो रिस रहा है!

औरत की आँखें नम हो आयी हैं। सारे बोले गये झूठ नंगे होकर आँखों और चेहरे पर बैठ गये हैं।

"आप तो बहुत समझदार और साहसी हैं... अच्छे दिनों का इंतज़ार करना चाहिए।"

'मेरी आख़िरी इच्छा है, इन सबके सामने कह रहा हूँ।... मेरे मर जाने के बाद का तुम्हारा अकेलापन... आप लोग भी मेरी बात समझें... एक आदमी की ज़रूरतें होती हैं, वैसे औरत की भी होती... परिवार पर कलंक नहीं लग जाएगा। मेरे मरने के साल भर बाद... किसी के साथ फिर से ज़िंदगी शुरू करनी चाहिए....'

"आप क्या सोच रही हैं?"

"पिछले जनम के बारे में... मैं जब मर रही थी... पति के साथ के अंतिम दिनों में... मौत औरत की हो या आदमी की, मरती है औरत ही।"

लंबा मौन गूँज रहा है।

"मरते हुए आदमी ने लाख कहा हो पूरे घर को... इसको ज़िंदा रखना... चालीस साल की औरत को... लेकिन, हमारे यहाँ की परंपरा है, ज़िंदा या मुर्दा... ऊपर से जेठ धर्म रक्षा समिति के स्तंभ। कभी धर्म की हानि होती दिखती है, कभी बच्चों की दुर्दशा की तस्वीर गढ़ी जाती है," औरत इतना कहकर बरगद की सूनी डाल को देखने लगी।

आदमी यह सब सुनकर करुणा से भर उठा। वह हमदर्दी के दो बोल बोले, इसके पूर्व वह स्वयं एक नयी मुसीबत में फँस गया। उसका हाथ औरत की ओर उठने लगा था। उसने हाथ को पैंट की जेब में रख लिया तो हाथ उछलकर उसके शरीर से अलग हो गया। वह निःसहाय हाथ की ओर देख रहा था और हाथ औरत की पीठ पर हल्के से बैठ गया। बरगद की डाल पर चिड़ा-चिड़िया जाते हुए सूरज की रोशनी में नहा रहे थे और हवाओं में ठंडक घुलने लगी। औरत उस खेल को एकटक देख रही थी। दुख की अभिव्यक्ति से वह हल्की हो गयी। बरगद पर चल रहे चिड़िया के खेल को देखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मशगूल थी कि तभी उसने आदमी के हाथ की गर्मी को महसूस किया। उसने मुस्कराकर आदमी की ओर देखा। आदमी ने सोचा कि हाथ के कारण कभी भी संकट में फँस सकता हूँ। उसने मुश्किल से हाथ को उठाकर कंधे से लगाया। आसमान में बादल छाने लगे। ठंडी हवा बहने लगी। आदमी देख रहा है कि औरत फिर सोच में डूब गयी। इसका वहाँ जाना फिर टल जाएगा, जहाँ के लिए निकली है।

"मैं आपको वहाँ छोड़ दूँ, जहाँ के लिए आप निकली हैं?"

"कहाँ जाना है? बस चल रही हूँ, सदियों से।"

आदमी के अचरज में थोड़ी चिंता, थोड़ा डर मिलने लगा।

"आज मेरे पति नहीं रहे थे। हर वर्ष आज के दिन अपने घर में नहीं रह सकती। घर से निकलकर यहाँ आ जाती हूँ। महाकाल के मंदिर में थोड़ा समय गुज़ारकर यहाँ के मंदिरों में घूमती रहती हूँ। अब लौटने का समय है। ट्रेन से इंदौर लौट जाऊँगी।

बूँदाबाँदी शुरू हो गयी और देखते-देखते भादों जैसा पानी बरसने लगा।

"पानी कमरे में आ रहा है, खिड़कियाँ लगा लीजिए।"

आदमी ने सकुचाते हुए खिड़कियाँ बंद कीं, लेकिन दरवाज़ा खुला ही रखा।

"इस तरह दिनों को बिताना डराने वाला है। केवल आज के दिन की बात नहीं, साल में कई बार... तीर्थ के बहाने, यात्रा के बहाने या यूँ ही... किसी को जवाब देना नहीं है।"

पानी और ज़ोर से बरसने लगा। औरत चलने के लिए उठी।

"थोड़ा ठहर जाएँ, मैं स्टेशन तक छोड़ दूँगा।"

वह बैठ गयी, लेकिन पानी थम नहीं रहा। आदमी फिर असमंजस में है, औरत खड़ी हो गयी।

"आप बुरा न मानें, तो एक... एक बात..."

इस अधूरे वाक्य ने आदमी और औरत दोनों को चौंका दिया। होंठ बोल रहे हैं। औरत पूरी बात सुनना चाहती है। आदमी कभी औरत को देखता है—संकोच, भय और अपरिचय-बोध से, कभी कंधे पर बैठे अपने होंठों को। इंतज़ार लंबा हो रहा है। आदमी शाश्वत मूर्ख की तरह खड़ा है। औरत की नज़र बायीं दीवार पर टँगे क्रास और ईसा मसीह पर पड़ी।... यह ईसाई है, लेकिन दुष्ट, अधमी आदमी नहीं दिखता, जैसा धर्म रक्षा वाले बताते हैं।... जेठ तो उड़ीसा का दौरा भी कर आये हैं। धर्म-युद्ध चल रहा है। उसका लड़का केनेडा से अपने ताऊ जी को डोनेशन भिजवाता है।

वहाँ धर्म-रक्षा के लिए समय निकलता है, माँ के लिए ही समय नहीं है... यह आदमी कुछ बोलेगा भी... आदमी को सूझ नहीं रहा था कि क्या करे! वह जो बोलना नहीं चाहता है, वह भी होंठ बोल रहा है।

"बेहद ग़लत लगे यह बात आपको, तो माफ़ करना। आप इस घर में आज रुक सकती हैं। इस बारिश में आप का जाना ठीक नहीं।"

होंठ बोल रहे हैं। इतना बोलकर होंठ फिर आदमी की नाक के नीचे आ गये।

"पड़ोसी की लड़की आपके पास सो जाएगी। महावट की बारिश के बाद ठंड ख़ूब बढ़ जाती है। मैं पिछले कमरे में सो जाऊँगा," उसने सोच-सोचकर कहा।

औरत फिर से बैठ गयी। यह आदमी अहमक है। शायद उसके पति से ज़्यादा भोला और मूर्ख, लेकिन दुष्ट नहीं है।

बाहर झुंड के झुंड पखेरू बेहद के मैदानों से उड़कर बरगद के अपने घरों की ओर लौट रहे हैं। अंदर कमरे में मौन फैला है... बाहर खड़े बरगद की तरह चहचहाता, संवाद से भरा मौन...

95-ए, बृजेश्वरी एनेक्स
बंगाली चौराहे के पास, इंदौर-16 (म.प्र.)

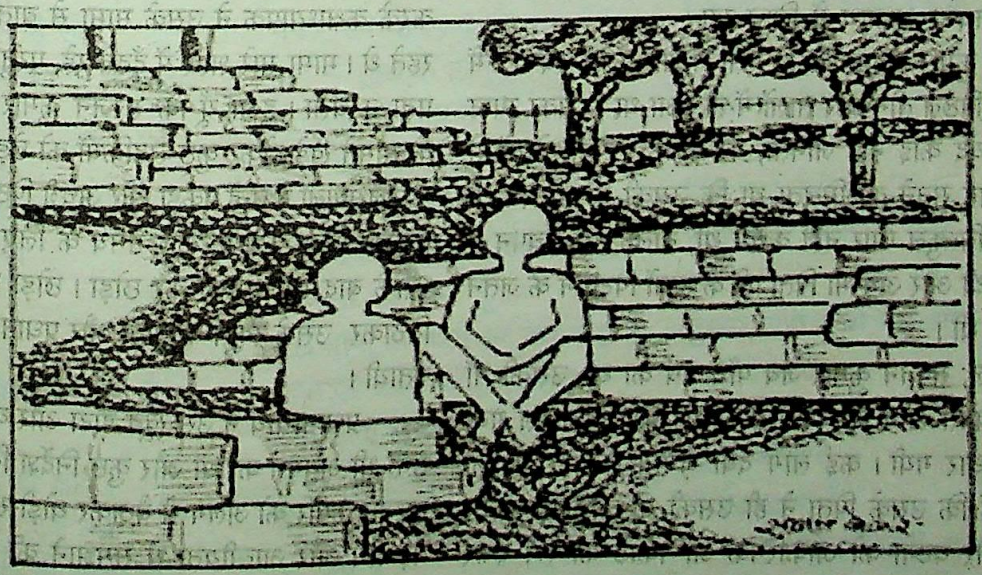

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्महत्या

शिव प्रताप पाल

(इस कहानी की सभी घटनाएँ व पात्र काल्पनिक हैं, इसका किसी जीवित या मृत व्यक्ति से कोई संबंध नहीं है। यदि कोई समानता पायी जाती है, तो यह मात्र संयोग हो सकता है—लेखक)

'सज्जन कुमार', जी हाँ, यही उसका वास्तविक नाम था, परंतु उसका आचार, व्यवहार, कर्म और आदतें—सभी उसके नाम के पूर्णतया विपरीत थीं। वैसे तो वह बारहवीं कक्षा का छात्र था, उम्र भी यही कोई सत्रह वर्ष के क़रीब, पर उसे विद्यार्थी कहना शायद विद्यार्थियों का अपमान करना होगा। पढ़ाई-लिखाई से उसे कोई सरोकार न था। वह तो जैसे समय बिताने के लिए स्कूल आता था।

उद्दंड प्रकृति का तो वह था ही, साथ ही साथ, बुरी संगत के कारण उसके दुर्गुण बढ़ते जा रहे थे, अब तो सिगरेट का शौक भी पाल लिया था उसने। यही नहीं, राह चलती लड़कियों को छेड़ना और फब्तियाँ कसना भी उसकी आदतों में शुमार हो गया था। अपना रौब गाँठने व दूसरे सीधे-सादे बच्चों को छोटी-छोटी बातों पर धमकाने के लिए अब वह अक्सर देसी पिस्तौल(कट्टा) भी अपने स्कूल बैग में लेकर चलने लगा था। कभी-कभी वह अपने पिता जी की लाइसेंसी रिवॉल्वर भी चुपके से निकाल लाता था। मगर इतना होते हुए भी वह कभी जघन्य अपराधियों की संगत में नहीं पड़ा और न ही किसी जघन्य अपराध में लिप्त रहा।

सज्जन कुमार बचपन से ही ऐसा न था, उसके स्वभाव में यह परिवर्तन, पिछले तीन-चार सालों में ही हुआ था। इसका स्पष्ट कारण तो शायद कोई नहीं जानता, पर उसके क़रीबी दोस्तों से कभी-कभार यह सुनने को मिलता था कि उसकी माँ सौतेली थी और वह उसे बिल्कुल प्यार नहीं करती थी, बल्कि उसे बचपन में काफ़ी पीटती थी और अब भी पिता जी के हाथों पिटवाने के जतन में लगी रहती थी।

दरअसल, सज्जन कुमार जब पाँच वर्ष का था, उसकी माँ खाना बनाते वक़्त आग लग जाने के कारण बुरी तरह जल गयी और स्वर्ग सिधार गयी। कई लोग दबी ज़बान से यह आंशका व्यक्त करते हैं कि उसके पिता ने ही उसकी माँ को जानबूझकर जलाया था और घटना को आकस्मिक अग्निकांड का रूप देकर दुर्घटना साबित कर दिया था।

इस घटना के एक वर्ष के भीतर ही उसके पिता ने एक अमीरज़ादी (सज्जन कुमार की सौतेली माँ) से शादी कर ली। वैसे तो सज्जन कुमार के पिता इस दूसरे विवाह के पूर्व ही पर्याप्त धन-दौलत के मालिक थे, दूसरी शादी करते ही यह धन-संपदा दुगनी हो गयी।

सज्जन कुमार के पिता अपने व्यवसाय के सिलसिले में अक्सर बाहर रहा करते थे और सौतेली माँ अपने बनाव-शृंगार और सहेलियों में ही व्यस्त रहती थी। बेचारे सज्जन का मन पढ़ने-लिखने में तो लगता न था, वह रोज़ बस्ता लेकर घर से निकलता था, पर कभी-कभार विद्यालय न जाकर दिन भर घूमता रहता। कभी बाज़ार की सैर करता, कभी पार्कों में समय व्यतीत करता; कभी कुछ तो, कभी कुछ। स्कूल में कभी किसी को शक भी नहीं होता था, क्योंकि वह पिता जी द्वारा हस्ताक्षरित छुट्टी का प्रार्थना-पत्र स्कूल में जमा करता था, जो ज़ाहिर है, जाली हुआ करता था।

आज से ठीक एक माह पहले की बात है, वह स्कूल नहीं पहुँचा। कक्षा के अन्य बच्चों ने कक्षाध्यापक को बताया कि उन्होंने उसे सुबह यूनिफॉर्म में स्कूल के पास ही स्कूल की ओर आते हुए देखा था, परंतु वह स्कूल नहीं आया।

कक्षाध्यापक ने घर फ़ोन किया, परंतु उसके माँ-बाप घर पर मौजूद नहीं थे। कक्षा के अन्य बच्चों से उसके मामा का नंबर प्राप्त करके कक्षाध्यापक ने उसके मामा से बात की, जो उसी शहर में रहते थे। मामा सारे शहर में ढूँढते रहे, परंतु सज्जन कुमार का कहीं पता न चला। हुआ यूँ कि सज्जन कुमार लड़कियों के विद्यालय के सामने खड़े होकर कुछ लड़कियों को छेड़ रहे थे, तभी सादी वर्दी में पुलिसवालों ने उन्हें पकड़ा और अच्छी पिटाई की, कान पकड़वाकर उट्ठक-बैठक करायी, कुछ समय के लिए मुर्गा बनाया और फिर उसके बाद डरा-धमका कर छोड़ा। छोड़ा क्या, पुलिस जीप में बिठाकर उसके स्कूल पहुँचाया और प्रधानाचार्य को उसकी करतूत बतायी।

प्रधानाचार्य ने उसे ख़ूब डाँटा और कक्षाध्यापक को बुलाकर उन्हें भी अवगत कराया और कुछ निर्देश दिये। कक्षाध्यापक ने भी सज्जन कुमार को अलग से बैठाकर थोड़ी-सी डाँट लगायी और फिर बड़े प्रेम और आत्मीयता से समझाने की कोशिश की।

कक्षाध्यापक ने उसके घर दोबारा फ़ोन किया और उसकी माँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से संपर्क करने में कामयाब रहे। उन्होंने उसकी माँ को इस घटना की जानकारी दी। कहते हैं कि जब वह घर जा रहा था, तो बीच रास्ते में उसकी कुछ आवारा लड़कों से कहा-सुनी हो गयी, जो तुरंत ही मारपीट और हाथापाई में बदल गयी, और इस तरह वह पूरे दिन पिटने-पिटाने और डाँट खाने के बाद घर पहुँचा।

घर पहुँचकर उसे ज्ञात हुआ कि उसके पिता दिल्ली से वापस नहीं लौटे हैं और उसकी माँ अपनी सहेलियों के घर गयी हैं। कहते हैं कि वह सीधे अपने कमरे में गया और फाँसी लगा ली और उसकी मौत हो गयी।

देर रात जब उसकी माँ घर पहुँची और कई बार आवाज़ देने पर भी जब सज्जन कुमार अपने कमरे से बाहर नहीं आया, तो वह उसके कमरे में गयी और उसी ने सबसे पहले फाँसी पर लटके सज्जन कुमार को देखा और पुलिस को फ़ोन किया।

आत्महत्या का सही कारण शायद कोई नहीं जानता, या फिर संभव है, कोई जानता भी हो, परंतु वास्तविक कारण चाहे जो भी रहा हो, अगले दिन प्रमुख अख़बारों में इस ख़बर की सुर्ख़ियाँ इस प्रकार थीं :

1. "पढ़ाई के दबाव के चलते एक और छात्र ने आत्महत्या की"
2. "शिक्षक की डाँट से क्षुब्ध बालक ने की आत्महत्या"
3. "बच्चों को मौत के मुँह में धकेलते शिक्षक"
4. "छात्र ने आत्महत्या की-प्राधानाचार्य और शिक्षक के निलंबन की माँग"
5. "शिक्षा का बढ़ता बोझ : आत्महत्या का कारण"

टीवी पर भी दिन भर इसी प्रकार की सुर्ख़ियाँ छायी रहीं। इस मुद्दे पर विशेषज्ञों और प्रख्यात शिक्षाविदों, मनोचिकित्सकों की राय ली जाती रही। शिक्षा-प्रणाली पर खुली बहस होती रहीं। परिचर्चाएँ चलती रहीं।

घटना के अगले दिन सज्जन कुमार का दाह-संस्कार किया गया और उसके पश्चात् उसके माता-पिता की ओर से स्कूल के शिक्षकों के ख़िलाफ़ रिपोर्ट लिखायी गयी और उसमें प्रधानाचार्य व शिक्षकों पर यह आरोप लगाया गया कि उन्हीं की डाँट-डपट के कारण उनके सुपुत्र ने आत्महत्या की, और साथ ही साथ कड़ी सज़ा की माँग भी की।

इसके पश्चात् तो मीडिया इस ख़बर को पर्याप्त कवरेज देता रहा। विभागीय उच्चाधिकारियों ने भी रिपोर्ट और मीडिया की ख़बरों को आधार बनाते हुए कक्षाध्यापक को तत्काल प्रभाव से निलंबित कर दिया और एक विभागीय जाँच-समिति बैठा दी। इस विभागीय जाँच में अंततः कक्षाध्यापक को दोषी पाया गया और उसे कार्यमुक्त किये जाने की संस्तुति कर दी गयी, जिसके आधार पर आज कक्षाध्यापक को कार्यमुक्त कर दिया गया।

इतना तो तय है कि अब शिक्षक समुदाय इस घटना से सबक लेगा और बच्चों को आत्महत्या के लिए प्रेरित करने से बाज़ आएगा।

द्वारा
रणवीर इलेक्ट्रीकल्स
बी.एस.एन.एल. टेलीफ़ोन एक्सचेंज के सामने
अखनूर (जम्मू)

कविता

पिता

सी. भास्कर राव

उसके पिता कारखाने से लौटे
उनके साथ उनका कारखाना भी आया
जैसे पिता और कारखाना
एक दूसरे में रहते हों
जैसे उन्हें अलग पहचानना भी
लगभग नामुमकिन हो

सुबह
एक जीवित पिता कारखाने गये थे
शाम
एक मृतप्रायः पिता को लाकर
कारखाना उनके घर पटक गया
फिर भी वह तो छोटी थी बच्ची थी
मचल रही थी पिता की
गोद में जाने के लिए
माँ-पापा की गोद में चढ़ूँ
नहीं पापा के कपड़े चीकट हैं
माँ-पापा का हाथ पकड़ूँ
नहीं पापा के हाथ में दर्द है
माँ-पापा को चुम्मा दूँ
नहीं पापा के गालों पर तेल लगा है
पापा की छाती पर सिर रखूँ
नहीं छाती में जलन है
अच्छा सिर दबा दूँ
सिर में तो सायरन बज रहा है
पैर दबा दूँ
पैरों की चमड़ी छिली हुई है
पानी दूँ
आँतों में मरोड़ है

फिर क्या करूँ माँ
न देखो, न छुओ, न सुनो, न बोलो
क्यों
तुम्हारे पापा अभी नहीं आये हैं
कहाँ हैं पापा ?
कारखाने में
तो ये कौन है ?
ये कारखाना है!

एयरबेस कॉलोनी, कदमा, जमशेदपुर-5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एग्रीमेन्ट

चंद्र भान "राही"

कौशल्या अपने पति को पास की बैंच पर बिठाकर डॉक्टर के कमरे के पास गयी और वहाँ खड़े चपरासी से पूछा—"क्यों भैया, शर्मा साहब कब लौटेंगे?"

"माता जी, शर्मा साहब का ट्रांसफ़र दूसरे अस्पताल में हो गया है।"

"अच्छा, कब आएँगे?"

"बस, आते ही होंगे।"

कौशल्या के पति को शादी के कुछ दिनों बाद ही लकवा मार गया था, तब से वह इसी अस्पताल में इलाज करा रही है। आज उसकी हालत काफ़ी अच्छी है। कौशल्या को कोई संतान न थी। उसके पति की उम्र लगभग 60 वर्ष की होगी। कौशल्या के चेहरे पर भी उम्र की रेखाएँ उभर आयी थीं। बाल सफ़ेद हो गये थे।

वहाँ रखी बैंचों पर मरीज़ आकर बैठते जा रहे थे। भीड़ बढ़ती जा रही थी। चपरासी ने टोकन बाँटना शुरू कर दिया। कौशल्या का दूसरा नंबर आया। तभी वहाँ उपस्थित मरीज़ों के बीच हलचल हुई, किसी ने कहा- "अरे, डॉक्टर साहब आ गये।"

मरीज़ सतर्क हो गये। कुछ मरीज़ों के चेहरों पर उम्मीद की रोशनी नज़र आने लगी। चपरासी ने फ़ौरन डॉक्टर साहब की टेबल-कुर्सी को पोंछ डाला।

एक 25-26 वर्ष का आकर्षक युवक अपने गले में आला लटकाये एक निश्चित गति से कमरे की तरफ़ चला आ रहा था। लोग उसको झुक-झुककर सलाम कर रहे थे। कमरे के पास आते ही चपरासी ने सलाम ठोंका और दरवाज़ा खोल दिया। डॉ. राजीव मित्तल अपने कमरे में चले गये।

अभी एक मरीज़ को देखा था। दूसरे नंबर पर कौशल्या को बुलाया गया। कौशल्या ने अपने पति को पकड़े धीरे- धीरे कमरे में प्रवेश किया। डॉक्टर ने उससे पास की बैंच पर बैठने को कहा, फिर उसके पति का चेकअप किया और कौशल्या से पूछा—"इनको कब से यह बीमारी है?"

"डॉक्टर साहब 30-40 साल हो गये।"

"अब कैसी हालत है?"

अभी डॉ. मित्तल कुछ और पूछते कि एक 50-60 वर्ष का व्यक्ति, अपने हाथ में ब्रीफ़केस लिये कमरे में आया। उसने अपने शरीर को इस तरह का बना रखा था कि वह ज़्यादा उम्र का नहीं लग रहा था। डॉ. मित्तल उस व्यक्ति को देखते ही उठे-"अरे पापा आप!"

"हाँ, मैंने सोचा, चलो तुम्हारे काम का पहला दिन देखें, कैसे गुज़र रहा है।"

उस आदमी को देखकर कौशल्या के चेहरे पर कई भाव उभर आये। उसने अपने आँचल से मुँह को छुपा लिया। वह व्यक्ति कुछ देर बाद डॉ. मित्तल से मिलकर चला गया। उसके जाने के बाद कौशल्या ने पूछा—"डॉक्टर साहब एक बात पूछूँ?"

"हाँ-हाँ बोलो।"

"अभी जो सज्जन आये थे, वे आर.के. मित्तल साहब हैं क्या?"

"हाँ, ये मेरे पापा हैं। मैंने आज से अपना कैरियर शुरू किया है, तो पापा मुझे देखने आये थे। पापा मुझे बहुत चाहते हैं।"

"और आपकी माता जी?"

"वे घर पर हैं। वे भी मुझे बहुत चाहती हैं, लेकिन, आप पापा को कैसे जानती हैं?"

"एक मोड़ पर जान-पहचान हो गयी थी... अच्छा, अब हमें कब आना है?"

"हाँ, ये जो दवाइयाँ हैं, एक माह की हैं। एक माह के बाद फिर मुझे दिखाने आ जाना।"

कौशल्या की आँखें भर आयी। कमरे से बाहर निकलते समय आँसू छलक उठे थे।

शाम होते ही ज़िंदगियाँ अपने-अपने रंगों में रँगने लग जाती है। प्रत्येक व्यक्ति के जीने के अपने-अपने तरीक़े होते हैं। कौशल्या की अपनी कोई संतान न थी क्योंकि उसके पति को लकवा मार जाने के कारण, वे शारीरिक दृष्टि से कमज़ोर थे। वे पहले शासकीय स्कूल में सेवारत थे। उनकी बीमारी के कारण शासन ने अब उनके स्थान पर कौशल्या को सर्विस दे दी थी।

आज कौशल्या की आँखों से नींद कोसों दूर थी। उसकी आँखें नम हो जा रही थीं। आज वह सोच रही थी कि उसने अपना आँगन सूना करके दूसरे का आँगन सजाया है। कभी-कभी उसके अपने द्वारा किये गये एग्रीमेंट पर स्वयं को पछतावा होता था। काश कि मैंने ऐसा एग्रीमेंट न किया होता। कौशल्या पलंग पर करवटें बदल रही थी। सहसा वह उठी और एक संदूक से एक काग़ज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकालकर पलंग पर बैठे-बैठे देखने लगी। उसकी आँखों के सामने 30 वर्ष पूर्व की घटना ताज़ा हो गयी।

कौशल्या की शादी को दो या तीन वर्ष हुए थे। रामकुमार स्कूल से पढ़ाने के बाद शाम को जब घर आते थे, तो एक गजरा अपने साथ अवश्य लाते थे। उनको मालूम था कि कौशल्या को गजरा पसंद है। कौशल्या को यह मालूम रहता था कि रामकुमार शाम को मेरे लिए गजरा लाएँगे, इसलिए वह शाम को अक्सर तैयार रहती थी और गजरे को अपने बालों में लगाते ही अति आकर्षक, मनमोहक लगने लगती थी।

ठंड का समय था। एक दिन प्रातः ही रामकुमार प्रतिदिन की भाँति टहलने निकले। वापस आने पर ठंड लगी और बिस्तर पर लेट गये। उनका उस दिन का बिस्तर पर लेटना था कि आज तक न उठ पाये। उसी दिन उनको अस्पताल ले जाया गया, जहाँ डॉक्टर ने लकवा मार जाने की बात कही।

रामकुमार को लकवे ने इतना जकड़ लिया कि वे बिस्तर से उठने में भी असमर्थ हो गये। उनके इलाज के लिए पैसों की कमी होने लगी। भाई, रिश्तेदार, मित्र आदि लोगों ने जितनी मदद हो सकती थी की, लेकिन व्यक्ति पर जब मुसीबत आती है, तो चारों ओर से रास्ते स्वतः ही बंद हो जाते हैं। कौशल्या चूँकि पढ़ी-लिखी थी, इसलिए रामकुमार की जगह उसे शासकीय स्कूल में नौकरी मिल गयी। लेकिन, उसका सारा पैसा रामकुमार के इलाज में लग जाता था।

एक बार पैसों की कमी के कारण रामकुमार की दवा समय पर न आयी, जिसके कारण रामकुमार की बीमारी बढ़ गयी और उन्हें अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। कौशल्या अस्पताल की बैंच पर बैठी रो रही थी। अपने भाग्य को कोस रही थी। मन-ही-मन वह जाने कैसे-कैसे निर्णय लेने लगी। एक युवक काफ़ी देर से कौशल्या को देखे जा रहा था। हालाँकि कौशल्या ने भी एक-दो बार उस युवक को देखा था। वह व्यक्ति धीरे-धीरे कौशल्या के पास उसकी बैंच पर आकर बैठ गया और बोला—"देखिए, मेरा नाम आर.के. मित्तल है। मैं काफ़ी देर से आपको देख रहा हूँ कि आप रोती जा रही हैं। क्या मैं आपकी परेशानी जान सकता हूँ?"

कौशल्या ने मन-ही-मन सोचा, शायद यह मानवता के नाते पूछ रहा हो! क्या आज के इस युग में भी मानवता बाक़ी है? ख़ैर, जब पूछ ही रहा है, तो बताने में भी कुछ नुकसान नहीं है। कहा—"मेरे पति को लकवा मार गया है और मेरे पास उनके इलाज के लिए पैसा नहीं है। मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ।"

"कितने पैसों की आवश्यकता होगी?"

"जी," कौशल्या चौंकी।

"देखिए, आप मुझे ग़लत मत समझिए। मैं अपने बारे में आपको बताता हूँ, उसके बाद यदि आप चाहें, तो मैं आपकी मदद करने को तैयार हूँ। आप जितना पैसा चाहेंगी, मैं आपको उतना पैसा दे दूँगा।"

कौशल्या के मन में नाना प्रकार के ख़्याल आने लगे। वह सोचने लगी कि आख़िर यह इतना मेहरबान क्यों हैं? फिर उसको अपने पति के इलाज के लिए पैसों की आवश्यकता थी। उसने सोचा कि बेहतर है कि इस आदमी की बात को सुना जाए।

कौशल्या को ख़ामोश देखकर मित्तल ने कहा—"देखिए, आप पहले मेरी पूरी बात सुनें। उसके बाद यदि आपको अच्छा लगे, तो मेरी बात मानना, वरना मत मानना। मुझे कोई ऐतराज़ नहीं।"

तभी अस्पताल में चाय वाला आया। आर.के मित्तल ने दो प्याली चाय ली। दोनों चाय पीने लगे। तभी धीरे से कौशल्या ने पूछा—"कहिए, क्या कहना चाहते हैं आप?"

"यहीं कहूँ या आपके घर....?"

"ठीक है, कल सुबह आप मेरे घर आ जाइए। वहीं पर बात करेंगे।"

कौशल्या ने एक पर्चे पर अपने घर का पता दे दिया। मि. मित्तल के जाने के बाद कौशल्या सोचने लगी कि आख़िर कौन-सी बात वह कहने वाला है, जो मेरे मानने पर कहेगा। समाज मजबूर स्त्रियों का सिवा फ़ायदा उठाने के कुछ नहीं करता। शायद यह मुझसे कोई ग़ैर-कानूनी काम कराने वाला है। कौशल्या की रात इन्हीं उलझनों में उलझ के रह गयी।

अभी कौशल्या ने अपने लिए सुबह का नाश्ता तैयार किया ही था कि मित्तल ने उसका दरवाज़ा खटखटाया। कौशल्या ने उन्हें अंदर आने के लिए कहा। कमरा ज़्यादा सजा-सँवरा न था, लेकिन फिर भी ठीक था। मित्तल पलंग पर बैठ गया। कौशल्या ने चाय-नाश्ता लाकर दिया। उसके बाद कौशल्या सामने रखी कुर्सी पर बैठ गयी और बोली—"जी कहिए..."

"कौशल्या जी..."

"आपको मेरा नाम कैसे मालूम?"

"मैंने डॉक्टर से आपके बारे में सब-कुछ मालूम कर लिया है। मैं बॉम्बे का एक व्यापारी हूँ। मेरे परिवार में मेरी वृद्ध माता जी हैं। मेरी पत्नी है और मैं। हमारी शादी को 7 वर्ष हो गये, लेकिन हमारे कोई संतान नहीं है। मेरी माता जी की इच्छा है कि वे अपने पोते का मुँह देखें। उनके पास काफ़ी जायदाद है, जिसे वे अपने पोते के नाम लिखना चाहती हैं। वरना वे अपनी जायदाद अनाथ आश्रम को दे देंगी और डॉक्टर ने कहा है कि मेरी पत्नी कभी माँ नहीं बन सकती। मैं दूसरी शादी इसलिए नहीं कर सकता कि दो नावों पर सवार व्यक्ति कभी पार नहीं लगा है। मेरी पत्नी को कोई ऐतराज़ नहीं, यदि मैं किसी बच्चे को अपना लूँ तो।"

"तो आप कोई बच्चा गोद क्यों नहीं ले लेते?" कौशल्या ने धीरे से कहा।

"मैं यह जानता हूँ कि मैं किसी का भी बच्चा गोद ले सकता हूँ, लेकिन गोद लिया बच्चा फिर भी पराया ही रहेगा और पराये बच्चे से वंश नहीं चल पाता। वंश चलाने के लिए पितृ-गुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यमान बच्चा ही आवश्यक है, जिसे आप चाहें, तो पूरा कर सकती हैं।"

"वह कैसे?" कौशल्या ने पूछा।

"वह ऐसे कि आप मेरे बच्चे के पैदा होने तक अपनी बच्चेदानी को मुझे किराये पर दे दीजिए। इस पर आने वाला सारा ख़र्च मैं उठाऊँगा। आपकी डिलेवरी से लेकर आपके परिवार की आवश्यकता तक को पूरा करूँगा और आपको किराये स्वरूप 50 हज़ार रुपये एडवांस दूँगा। साथ ही, आपके पति का इलाज अच्छे से अच्छे अस्पताल में कराऊँगा।"

कौशल्या के चेहरे पर कई भाव उभर आये। एक बार मन हुआ कि उससे कमरे से बाहर निकल जाने को कहे। मन करता था कि उसे एक तमाचा मार दे, लेकिन कौशल्या ने कुछ न किया, सिर्फ़ शांत बैठी रही। उसको मौन देखकर मित्तल ने कहा—"देखिए, कौशल्या जी! यदि आप मेरी बात मानें, तो अपने पति से एक बार पूछ लें। उसके बाद मुझे जवाब दें। मैं बस आपकी बच्चेदानी को तब तक किराये पर लेना चाहता हूँ जब तक कि मुझे मेरा बच्चा नहीं मिल जाता। उसके बाद आप स्वतंत्र हो जाएँगी। आप चाहें, तो मैं एग्रीमेंट करने को तैयार हूँ।... अच्छा, मैं चलता हूँ। कल पुनः आऊँगा। आप सोच-समझकर जवाब देना। 50 हज़ार रुपये एडवांस जब चाहेंगे, तब दे दूँगा।"

आर.के. मित्तल चला गया। कौशल्या के सामने छोड़ गया अपना प्रस्ताव। ऐसा प्रस्ताव, जिसको अपनाती है, तो बदनामी तथा कलंक माथे पर लगता है और नहीं मानती है, तो माथे की बिंदिया मिटने का डर है। कौशल्या ऐसे भँवर में फँस गयी कि वो आगे जाए तो मरना, पीछे जाए तो मरना।

कौशल्या दिन-भर अस्पताल में रामकुमार के पास रही। रामकुमार की हालत गंभीर होती जा रही थी। डॉक्टरों ने कौशल्या को बॉम्बे जाने की सलाह दी। कौशल्या ने रामकुमार पर आने वाले ख़र्च के बारे में एक डॉक्टर से पूछा था। उसने लगभग 20-30 हज़ार रुपये ख़र्च बताया था।

शाम रात में बदल चुकी थी। चाँद न जाने क्यों समय से पूर्व ही आसमान पर आ गया था। तारे भी एक-एक करके निकल रहे थे, लेकिन कौशल्या की आँखों के आगे अँधेरा छा गया था। उसको अपने आगे अंतहीन गर्त नज़र आ रहा था, जिसमें दिल दहलाने वाला अँधेरा था। उसको ऐसा महसूस हो रहा था कि वह उस गर्त में डूबी चली जा रही है और उसकी साँसें उसका साथ छोड़ रही हैं। कौशल्या किसी छोटे बच्चे की भाँति डर से चौंक गयी। उसने अपने माथे को पकड़ लिया।

कौशल्या के सामने एक प्रश्न था कि वह हर हालत में अपने पति का इलाज कराये। पति जीवित रहेगा, तो उसके हाथों में चूड़ी, माथे पर बिंदिया बरकरार रहेगी।

पति के बिना तो जीवन सूना। पति के इलाज में इतना ख़र्च हो चुका है कि क़र्ज़दारों की भीड़ महीने की पहली तारीख़ को घर के सामने खड़ी है। कौशल्या को इस समय पैसों की सख़्त ज़रूरत थी। ऐसे समय पर मित्तल किसी फ़रिश्ते से कम नज़र न आ रहा था लेकिन मित्तल का प्रस्ताव! कौशल्या यदि मित्तल के प्रस्ताव को मानती है, तो समाज क्या कहेगा। समाज उसे कुलक्षणी-कुलटा, .. जितने मुँह, उतनी बातें। पति बिस्तर पर उठ नहीं पाता और पत्नी बच्चे की माँ! यह बात शायद कोई व्यक्ति पचा नहीं पाएगा।

कौशल्या ने एक निर्णयात्मक साँस खींची और उठकर किचिन में चली गयी।

सुबह मित्तल ने दरवाज़ा खटखटाया। कौशल्या पहले से ही तैयार थी। शायद कौशल्या को मित्तल का इंतज़ार था। चाय-नाश्ते के बाद मित्तल ने कहा—"तो आपने क्या सोचा?"

कौशल्या कुछ गंभीर स्थिति में नज़र आ रही थी।

"जी! मैं तैयार हूँ, लेकिन..."

"लेकिन, लेकिन क्या?" मित्तल ने उत्सुकता से पूछा।

"मैं आपके बच्चे की माँ बनूँगी, ऐसी स्थिति में समाज मुझे बदचलनी का लिबास तो पहनाएगा। समाज मुझे बदचलनी लिबास का न पहनाए और मेरे बच्चे को हरामी न कहे, इसके लिए मैं चाहती हूँ कि हमारे बीच होने वाला एग्रीमेन्ट कोर्ट के माध्यम से हो, ताकि मेरे बच्चे को क़ानूनी अधिकार मिल सके और वो समाज में इज़्ज़त से रह सके।"

चूँकि मित्तल एक व्यापारी था, इसलिए वो हर पहलू को अच्छी तरह से तौलकर देखता था। कुछ देर तक मित्तल ने अपनी नज़रों के तराज़ू से कौशल्या को तौला, शायद कौशल्या की बात वज़नदार निकली और मित्तल ने 'हाँ' में स्वीकृति दे दी।

अगले दिन मित्तल अपने साथ वकील को लेकर कौशल्या के पास गया। वकील ने कौशल्या को एग्रीमेन्ट के पेपर दिखाए। उसमें एग्रीमेन्ट की निम्नानुसार शर्तें थीं :

- यह कि मेरी कोख को एक बच्चे के होने तक मित्तल रु. 50,000/- में किराए पर लेते हैं, जिसे मैं स्वेच्छा से मंज़ूर करती हूँ।

- यह कि बच्चे के होने तक एवं पैदा होने के एक वर्ष तक आने वाला सारा ख़र्च मित्तल के द्वारा देय होगा और बच्चे के माँ का दूध छोड़ते ही कौशल्या के द्वारा बच्चा मित्तल को सौंप दिया जाएगा, जिस पर कौशल्या का कोई अधिकार न होगा और बच्चा मित्तल का पुत्र/पुत्री कहलाएगा।

इसी तरह के और भी कई ठोस बिंदुओं को वकील ने कौशल्या को पढ़कर सुनाया। जिस पर कौशल्या और मित्तल ने हस्ताक्षर किये।

अगले दिन वकील ने याचिका कोर्ट में लगायी। अदालत में इस तरह का यह पहला व अनोखा केस था कि कोई व्यक्ति बच्चेदानी को किराये पर ले रहा है और कोई औरत बच्चेदानी को किराये पर दे रही है।

अदालत में इस याचिका पर काफ़ी बहस हुई और अख़बारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी यह केस ख़ूब उछला। अंत में निर्णय हुआ कि जिस तरह वकील, रिक्शेवाला, मज़दूर आदि लोग अपने अंग, दिमाग़, श्रम के बदले पैसा लेते हैं, उसी तरह औरत (कौशल्या) भी अपने एक अंग को कुछ दिनों के लिए किराये पर दे रही है।

कौशल्या और मित्तल के बीच हुए एग्रीमेन्ट को अदालत ने मंज़ूरी दे दी और कौशल्या मित्तल के बच्चे की माँ बन गई।

मित्तल ने भी अपना वायदा निभाया। रामकुमार को बॉम्बे ले जाकर एक अच्छे से अस्पताल में इलाज शुरू करा दिया। रामकुमार की स्थिति में बदलाव आने लगा। रामकुमार धीरे-धीरे ठीक होने लगा। इधर कौशल्या ने मित्तल के बच्चे को जन्म दिया।

कभी-कभी कुछ बातें ऐसा बाँध बनकर सामने आती हैं, जिन्हें तोड़ पाना तूफ़ानों के बस में भी नहीं होता। कौशल्या और मित्तल के बीच हुए एग्रीमेन्ट के मुताबिक एक वर्ष बीत चुका था और बच्चे को मित्तल के हवाले करने का वक़्त आ गया था।

आज कौशल्या को मित्तल किसी यमदूत से कम नज़र नहीं आ रहा था। मित्तल एग्रीमेन्ट के मुताबिक अपने बच्चे को लेने आ गया था और कौशल्या अपनी कोख से जने बच्चे को किस तरह से मित्तल को दे, कुछ समझ में न आ रहा था।

रामकुमार की हालत में अब संतोषजनक सुधार हो चुका था। रामकुमार ने कौशल्या को समझाया—"मनुष्य को अपनी जुबान की लाज रखनी चाहिए। इसलिए, कभी भी किसी को जुबान देने से पहले ठंडे दिल-दिमाग़ से सोच लेना चाहिए।"

अंततः कौशल्या ने अपने कलेजे पर पत्थर रखकर मित्तल को उसका बच्चा दे दिया।

आज अचानक जब डॉ. राजीव मित्तल के रूप में उसका अपना बेटा सामने आया, तो कौशल्या का ममत्व ज़ोर मारने लगा, लेकिन कौशल्या चाहकर भी राजीव को अपना बेटा नहीं कह सकती थी।

कौशल्या अब प्रतिमाह रामकुमार का चेकअप कराने अस्पताल में आती है और अपने बेटे को नज़र-भर देखकर जी को संतुष्ट कर लेती है।

आज अदालत द्वारा किये गये एग्रीमेन्ट को कौशल्या पलंग पर बैठी देख रही थी। कौशल्या को इस एग्रीमेन्ट रूपी बंधन ने ऐसा बाँध बना रखा था, जिसे तोड़ना संभव न था। लेकिन कौशल्या की आँखों का भ्रम दूर हो चुका था, उसकी आँखों से पछतावे के आँसू एग्रीमेन्ट के काग़ज़ पर गिरते जा रहे थे, जिससे काग़ज़ पर लिखे अक्षर धुलते जा रहे थे।

"भूमिका निवास", 136, शिर्डी पुरम
कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.)

वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010

वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार-2010 के लिए मौलिक, अप्रकाशित कहानियाँ आमंत्रित हैं। पुरस्कार राशि रु0 11,000.00 है, जो कमलेश्वर जी के परिवार ने इस प्रयोजन हेतु 'वर्तमान साहित्य' को प्रदान की है।

कहानियाँ साफ़ टाइप की हुई हों तथा तीन प्रतियों में हों। कहानी की हर प्रति पर लेखक का नाम व पता अवश्य हो। कहानी भेजने की **अंतिम तिथि 15 अक्टूबर, 2010** है। लिफाफे पर **'वर्तमान साहित्य-कमलेश्वर कहानी पुरस्कार'** अवश्य लिखें।

कहानियों का चयन एक निर्णायक-मंडल द्वारा किया जायेगा। चयनित कहानी पर पुरस्कार जनवरी, 2011 में प्रदान किया जाएगा।

कहानियाँ संपादक, वर्तमान साहित्य को निम्नलिखित पते पर भेजें।

संपादक

वर्तमान साहित्य

28-एम0आई0जी0, अवन्तिका-1, रामघाट रोड़, अलीगढ़

ई-मेल से भेजी कहानी प्रतियोगिता में स्वीकार नहीं की जायेगी।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रियर व्यू

रजनी गुप्त

'अरुषि बेटी, कैसी दिख रही हूँ मैं?' आइने में हर कोण से खुद को बड़े जतन से निहारती माँ को आजकल सजने सँवरने का शौक चर्राने लगा।

'माँ, आप नरेंद्र अंकल के पीछे क्यों पड़ी रहती हो? क्या लगते हैं वो हमारे'—इस बार उसने मन कड़ा करके दोटूक लहज़े में पूछने का मन बना ही लिया।

"बेटा, तुम्हारे बाप इस उम्र में उस कलमुँही के संग रंगरेलियाँ मनाते रहें और मैं उसकी याद में घुलती रहूँ, रो-धोकर अपनी ज़िंदगी तबाह कर लूँ तो... तो ऐसा क़तई नहीं कर सकती मैं। साफ़ बात है।' भवें काली करती माँ अब भी आइने में अपने शरीर की नाप जोख करने में जुटी हुई थी।

'आप मेरी बात को टाल क्यों रही हैं? मैं कुछ पूछ रही हूँ आपसे। मुझे वो आदमी क़तई नहीं सुहाता। नंबर एक का काइयाँ और खुदगर्ज़'-गुस्से से थरथराती आवाज़ काँपने लगी अनायास।

'बेटा, तुम इन बातों में माथापच्ची क्यों करती हो? तुम तो बस इतना समझ लो कि वो मेरे अच्छे दोस्त हैं।' बेटी के मन को पढ़ने की हल्की-सी कोशिश करते हुए अनमनेपन से जवाब दिया उन्होंने और पूर्ववत अपने सिंगार में लगी रहीं।

"ही इज नॉट जस्ट ए फ्रेण्ड ... यू विहेव विद हिम सच ए वे, आई कॉन्ट से...' भीतर खौलता लावा यकायक बरसने को बेताब दिखा सो वह बेशर्मी से पूछने के लिए मजबूर हो गई थी शायद।

"माँ, बिल्कुल साफ़-साफ़ बताओ? कहीं आप दूसरी शादी के चक्कर में तो नहीं पड़ गयीं?' महीनों से जमा आक्रोश अचानक फूटते ज्वालामुखी की शक्ल में फट पड़ा।

"अरुषि!" अचानक माँ की पुचकारती आवाज़ सुनाई पड़ी-'बेटी ये सब सोचने की उम्र नहीं है तेरी। खामखाँ ऊटपटाँग सोचकर टेंस मत हुआ कर। देखो, हर संबंध के पकने में थोड़ा वक्त तो लगता है सो अभी से कैसे कहा जा सकता है आने वाले कल के बारे में?" थोड़ी देर तक वे बेटी का प्यार से मुँह जोहती रहीं, फिर सिर पर हाथ फेरते हुए बोलीं—'अरे! तुमने अभी तक नाश्ता नहीं किया? कॉलेज नहीं जाना क्या? देखो तो, कितनी देर हो गई?'

उनके इस बनावटी प्रेम पर खिसिया गई वह और तुनक कर बोली—'क्या माँ, आपको इतना भी याद नहीं रहता कि आज संडे है? आपको कहीं जाना है क्या? या किसी को आना है यहाँ? न चाहते हुए भी आवाज़ में कड़वाहट घुली थी।

'नहीं, कहीं नहीं जाना.... बोलते हुए उनके चेहरे पर तनाव पुत गया। फिर भी नरमी बरतते हुए बोलीं—'अच्छा चलो, उठो, थोड़ा-सा कुछ खा लो बेटा।'

'मुझे भूख नहीं है...' कहते हुए वह वहाँ से उठ गई मगर सोच रही थी कि इन्हें देखकर साफ़ पता चल रहा है कि कहीं जाना है या किसी को आना है, वरना सुबह-सुबह ये पर्पल कलर की शिफॉन की साड़ी भला क्यों पहनेंगी। अचानक उसके दिमाग में एक बात कौंधी। कल रात जब नरेंद्र अंकल यहाँ से गए थे तो-तो उनकी शर्ट पर लिपिस्टिक के निशान कैसे आ गए?

'तुम्हें क्या हो गया अरुषि, ठीक से क्यों नहीं खाती-पीती?' सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते माँ की आवाज़ सुनकर अनायास कदम लड़खड़ाने लगे। उफ! फिर वही खौफ़नाक सीन क्यों नहीं भूल पाती मैं? सब सोचते हुए गुस्से से थरथराती कड़वी ज़हर घुली आवाज़ गले से बाहर आ ही गयी-'माँ, नरेंद्र अंकल शादीशुदा, दो बच्चों के बाप भी हैं। याद रहता है न, आपको?'

'तू एक ही बात की माला क्यों फेरती रहती है?' तैश खायी माँ अचानक हुए हमले में बौखलाई आवाज़ में उबल पड़ी—'नाव गो एंड स्टडी।' उखड़ती आवाज धीरे-धीरे डिफेंसिव होने लगी थी।

एकांत कमरे में घड़ी की टिक्-टिक् सुनते हुए वह ज़ोर-ज़ोर से चीखना चाहती थी—आप लोग इस उम्र में रासलीलाएँ रचाते फिरें और मुझसे उम्मीदें बाँधें कि मैं पढ़ाई मे मन लगाऊँ सो कैसे मुमकिन है? हुंह पढ़ाई? कैसे, किसको, कब तक समझाती रहूँ कि किताबें खोलते ही पन्नों पर आप दोनों के अक्स छपने लगते हैं। न जाने कैसे-कैसे सीन फीड रहते हैं मेरे दिमाग में। इसके प्रिंटआउट किस किसको दिखाती फिरू मैं?

जितनी ताकत से मैं सोचती कि ये सब न सोचूँ, उतने वेग से उतना ही ज़्यादा सोचती रहती। सोच के ज़बरदस्त दौरे से पड़ते कि बौखलाहट बढ़ जाती। साँप जैसे संबंधों की पिटारी का मुँह जितनी ताकत से बंद करना चाहती, वे दुगुने वेग से फन काढ़ने लगते और मुँह बाए साँप फन फैलाकर घेर लेते मेरे वजूद को। इस घर में सबको अपनी अपनी ज़िंदगी जीने की पड़ी है। क्या वाकई कोई किसी का नहीं होता? किसी के पास मेरे लिए वक़्त नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचता। खासा मतलबपरस्त रवैया है यहाँ का।

अब पापा को ही देखो। माँ के रोने धोने, चीखने चिल्लाने और डाँटने फटकारने या ब्लैकमेलिंग की धमकियों का कोई असर नहीं पड़ा उन पर और मेधा से उनके संबंध बदस्तूर चलते रहे। नौबत तो यहाँ तक आन पड़ी कि उसके बच्चा रह गया और इसी बात को उसने हथियार की तरह इस्तेमाल भी किया। बच्चे के लिए तालायित थी वह सो पापा को खुलकर साथ देना पड़ा उसका।

न, यह भी पूरा सच नहीं है। पापा भी उसके बग़ैर कहाँ चैन से रह पाते थे? आख़िरकार वही हुआ जो वे चाहते थे। बड़बड़ाती, चीखती-चिल्लाती, रोती-झींकती और आँसू टपकाती माँ की एक न चली और हम दोनों यहाँ अकेले रह गए।

पापा खुल्लमखुल्ला उसके साथ रहने लगे थे और दुनियाँ का कोई भी क़ानून उनका कुछ नही बिगाड़ पाया। आफ्टर ऑल ये उनका आपसी मामला है.... कहकर हर आदमी पल्ला झाड़ लेता। सचमुच! किसी पर कोई वश नहीं चलता और ज़िंदगी यूँ ही चलती रहती है। खरामा खरामा....।

ये लो, फिर वही रोमांटिक सीन धड़धड़ाकर दिमाग में रिवाइंड होने लगते ? वे आवाज़ें दिन-रात कानों में शंखनाद बनकर गूँजती रहतीं। कहाँ जाऊँ ? कितनी साफ़-साफ़ सुनाई पड़ रही हैं वे आवाज़ें.... सुनो तो ज़रा....

ऐ नरेंद्र, क्या सोचने लगे? मैं बेइंतहा प्यार करती हूँ तुमसे। तुम्हारे बिना अब और नहीं रहा जाता। बताओ, शादी तो करोगे न मुझसे ?'

'क्या पागलों जैसी बातें करने लगती हो रीना? जानती हो, स्कूल जाते दो छोटे-छोटे बच्चे हैं मेरे। फिर तुम्हारी बच्ची भी तो सयानी हो रही है। क्या सोचती होगी वह हमारे रिश्तों को लेकर?

'उसे तो मैं कैसे भी तरह कन्विंस कर लूँगी, पर तुम अपनी बात करो...'

सुनते ही लगा जैसे धरती घूमने लगी आसपास। धौंकनी की तरह साँसें तेज़-तेज़ चलने लगीं। बगल के कमरे में बोला जा रहा एक-एक लफ़्ज हथौड़ा बनकर सीधे सिर पर पड़ने लगा था। अचानक लगा कोई कनपटी पर पिस्तौल ताने खड़ा हो।

'ऐ, तुमने तो वाकई अपना वजन घटा लिया? खासी स्मार्ट लगने लगी हो और पहले से ज़्यादा दिलकश भी।' अपने में मसरूफ़ उन्हें पता नही हिमांगी के जगे होने का अहसास था भी या नहीं लेकिन घुप्प अँधेरे में हिमांगी बगैर आँखों के भी उनकी तस्वीरें बखूबी देख सकती थी, उनकी आवाजें साफ़-साफ़ सुन सकती थी। प्रेमालाप में डूबे उस जोड़े को इतना भी होश नहीं कि एक कमरे की आवाजें कितनी आसानी से दूसरे कमरे तक का सफर तय कर सकती हैं। ऐसे में भला क्या हालात होती होगी उसकी? कोई भी ऐसे में भला चैन की साँसें ले सकता है, पढ़ना और सोना तो बहुत दूर की बात है। वे आवाज़ें हथगोला बनकर जलाने लगीं उसे।

बेशर्मी से हँसने की समवेत आवाज़ें हिमांगी के सीने पर साँप

लगातार बोले जाने के बाद पर कल्पना के एक-एक सीन साकार होकर नमूदार होने लगे और नफ़रत की आग सुलगकर लपट में तब्दील होने लगती। मन में आया-इसी वक़्त उठकर साले के कान उमेठकर भगा दूँ अपने घर से। जोरों से जड़ दूँ दो थप्पड़ कमीने को। उस दिन अनावश्यक लाड़ जताने का नाटक करते हुए कैसे बेहूदे तरीके से कंधे पर हाथ रखने की जुर्रत की थी मगर उसी वक़्त हाथ झटकते हुए तेज़ आवाज़ में कैसे तो झाड़ दिया था उसे-

'मिस्टर वर्मा, विहेव योरसैल्फ! आई नीड नो सिंम्पैथी एंड माइंड योर ऑन बिजनिस... समझे आप?'

उसके बाद से तो उसकी बोलती ही बंद हो गई। पाजी कहीं का... मुँह में भर आई गालियों को परे थूकते हुए फेंक दिया था उसने...।

0 0 0

'ऐ रीना, नरेंद्र तो आजकल किसी दुबली पतली कमसिन-सी नलिनी के चक्कर में है। सच सच बताओ, आखिर ऐसा हुआ क्या कि वह तुम्हारे पास से दूर छिटककर उस पुलिस वाली के चक्कर में आ गया?'

'मेरी खुद समझ में नहीं आ रहा कि ऐसा क्यों हुआ? कैसे हुआ ये सब? नहीं पता। तुम्हीं तो कहती हो कि मेरा फिगर अच्छा है, मैं अच्छी दिखती हूँ फिर भी...' उनकी रुआँसी आवाज़ में रोष के साथ-साथ पछतावा भी शुमार हो गया।

हिमांगी के मन में आया, क्यों न इसी वक़्त ममा से तपाक से पूछूँ कि नरेंद्र से अलग हो जाने के बाद वे न जाने किस किसके पास सांत्वना का लेप लगवाने जाती रहीं। नरेंद्र के बाद आया ब्रजेश। फिर आया वो कस्टम इंस्पैक्टर सतेंद्र। फिर कोई लड़का जैसा नया बंदा। कहीं मतिभ्रम तो नहीं हो गया था उसे?

अरे! आज क्या हो गया इन्हें? अपनी बेटी के बारे में कब से फिक्रमंद होना सीख लिया इन्होंने? अपनी राज़दार सहेलियों से क्यों बार-बार हिमांगी का नाम लेती रहीं? अरे! पब्लिक सिम्पैथी बटोरने की ऐसी भी क्या ज़रूरत आन पड़ी इन्हें? ओफ! ये बेशर्म कान भी तो न चाहते हुए भी उनकी चर्चा का रसपान करने के लिए लार टपकाते रहते? चर्चा के चक्रव्यूह मे गोता खाती क्यूँकर फँसी फड़फड़ाती रहती हैं ये ज्ञानेन्द्रियाँ?

'सुनो, मेरी बच्ची कैसी कुम्हला गई है। वक्त-बेवक्त खोयी-खोयी-सी रहने लगी। कोई भी बात करो तो चिड़चिड़ाने लगती और किसी भी बात पर उखड़ने लगती। एक साधारण सवाल पूछो तो मुझ ही से सौ सवाल दाग देती। अभी कल ही तो कह रही थी-

"आजकल खामहखां ब्यूटी पार्लर के चक्कर लगा रही हैं आप। घंटों मसाज कराने से क्या बीस साल की हो जाओगी? साफ़ बात कान खोलकर सुन लो, हाँ, शादी के झमेले में फँसोगी तो फजीहत कराओगी अपनी, समझ लेना।"

सोचो ज़रा, कितनी बेशर्मी से और कितने कटखन्ने तरीके से बोलने लगी है वह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, हाँ, मेरा बेटा भी तो ऐसा ही मुहफट हो गया है। एक बार किसी तरह कोई मामूली-सा मॉडलिंग कांटेस्ट क्या जीत गया कि हर वक़्त आइने से ही चिपका रहता है। जब भी कैरियर की बात करने के लिए कुछ कहो तो तड़-से झपट्टा मारकर जबाव देगा-

'स्टडी.. फॉर व्हाट? पढ़ाई मींस नौकरी, यानी पैसा और इस प्रोफ़ेशन में पैसा तो यूँ चुटकियों में ढेर सारा कमा लूँगा। तुम्हारी सो कॉल्ड किसी भी नौकरी से ज़्यादा कमा लूँगा और वह भी एक ही झटके में, अंडरस्टैंड माई मॉम।'

'वो सब कैसे होगा? ये सब भी जानना ज़रूरी है। फिर हम हैं मिडिलक्लास लोग... ज़्यादा किसी से जान-पहचान भी तो नहीं है।'

'दिन रात किताबें घोंटकर पढ़ने से कोई फ़ायदा नहीं। बस, एक बार, टी. वी. में काम करने को मौक़ा तो मिलने दो फिर देखना, क्या झमाझम पैसा बरसने लगेगा। इस लाइन में सब कुछ है-बेशुमार दौलत, शौहरत और न जाने क्या, क्या?' बोलते-बोलते वह दूर कहीं खो गया था जैसे लेकिन मेरी बोलती बंद करा दी थी उसने।

गुस्से में एक दिन जब जेबखर्च के पैसे बंद करने की धमकी दी तो बीयर एंड बार में नौकरी करने की धौंस जमाने लगा। कल रीबॉक के जूते के लिए देर तक झगड़ता रहा। तैश में आकर ज़ोर से झापड़ मारा तो पलटकर मारने के लिए हाथ तक उठा लिया था उसने। अब क्या-क्या बताएँ? उसे तो हर हफ़्ते एक नई ड्रेस चाहिए ही चाहिए। क्या करें रीना? लड़के की बेहिसाब फ़रमाइशें सुन सुनकर कान पक गए। मैं सचमुच परेशान हूँ उससे, मगर समझ नहीं पाती, करूँ तो क्या करूँ?'

'बिल्कुल सही कह रही हो तुम। हमने इन बच्चों की परवरिश में कोई कमी, कोई कसर नही छोड़ी मगर आज तो उस पर इतना भी अख़्तियार नहीं रहा कि उसे किसी ग़लत काम से रोकने के लिए मना कर सकूँ। सुनना ही नहीं चाहते कोई बात। मानना तो दूर की बात है। बेबस और लाचार हो गई हूँ मैं तो। यही सब सोचती रहती हूँ। किसी काम में मन नहीं लगता।'

'अरे हाँ! तुम्हें एक ख़ास बात बताने आई थी। सोचा, आगाह कर दूँ तुम्हें। सुना है, तुम्हारी लड़की कहीं मॉडलिंग करने जाती है? ज़रा चौकस रहो। कोई तो यह भी कह रहा था कि उससे बीयर एंड बार कॉर्नर में बैठकर कई पैग भी लिए। न जाने किस किसके हाथ में हाथ डाले घूमती फिरती है। वैसे ये बातें आधी अधूरी सच या कोरी अफवाहें भी हो सकती हैं, लेकिन चौकन्नी रहो ओर सावधान भी। कभी कभार उसका बैग चैक कर लिया करो। सुना है, आजकल की लड़कियाँ एंटी बेबी पिल्स साथ लेकर चलती हैं।' वे अटक-अटकर धीमी आवाज़ में बोलती फुसफुसाती रहीं।

'क्या-क्या बके जा रही हो मीता? होश में तो हो? सच, इससे बड़ा दुर्भाग्य और भला क्या होगा कि मुझे अपनी ही बेटी के बारे में तुमसे जानकारी मिल रही है। ओफ्फो! इस सूरतेहाल में क्या पुलिसमैन का रोल करना पड़ेगा मुझे? वैसे एक दिन उसकी बढ़ती फ़रमाइशों पर लगाम ज़रूर लगाई थी, तब से दो तीन महीने हो गए होंगे उसने पैसे माँगने एकदम से बंद कर दिए और शायद तभी से बाहर काम करना शुरू किया होगा'। उसकी घबड़ायी आवाज़ में कभी बौखलाहट तो कभी अधीरता तो कभी चिंतातुर होना साफ़-साफ़ दिख रहा था।

'क्यों नहीं उसके पापा से कुछ कहती? शायद उनके कहने से संभल जाए वह।'

'खाक सुनेगी वह उनकी बात? बाप का नाम सुनकर सनक जाती है। बुरी तरह नफ़रत करती है। सूरत से चिढ़ती है। वैसे एक बार फ़ोन किया था तो उल्टा मुझे ही ज़लील करने लगा। बेसिर-पैर के लाँछन लगाने शुरू कर दिए। उस कलमुँही के बारे में सोच-सोचकर ही झार झार जलने लगता तन मन। अब तुम्हीं बताओ, आखिर कैसे काटूँ अकेले इतनी बड़ी ज़िंदगानी? किसके सहारे?' बोलते बोलते वे रुआँसी हो उठी।

'बच्ची को प्यार से समझाओ। प्यार से हाथ में लो। उसके साथ ज़्यादा से ज़्यादा वक्त बिताओ। शायद इससे तुम दोनों के बीच समझदारी पनपे और दोस्ती बढ़े। एक राज़ की बात बताऊँ, बगल वाले पांडेय की लड़की किसी शॉपिंगमॉल से चोरी करते हुए पकड़ी गई। उसी ने पुलिस को बयान दिया कि अनामिका कोचिंग सेंटर एंड ब्यूटी सैलून वाली लड़कियों से धंधा कराती है। आजकल के बच्चों में पैसे की हवस दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। ये बच्चे शॉर्टकट से पैसे कमाने के फेर में कुछ भी करने को उतावले हो जाते हैं। हे भगवान!''

बड़बड़ाते हुए दोनों एक दूसरे की आँखों मे असहायता से देखती रहीं। ऐसा लग रहा था जैसे इस वक्त वहाँ घुटन, कातरता और बेबसी का धुआँ भर गया हो। बाहर के बासंती मौसम के बावजूद सिर पर लटकते पंखे से अनायास लू जैसी गर्म हवा फिंकने लगी। रीना का चिंतातुर चेहरा देखकर लग रहा था जैसे उसके भीतर से सब कुछ निचुड़ गया हो। बातों की अनसुनी करती वह गुमसुम मूर्ति में तब्दील होती गई।

'अच्छा।' वह जाने लगी।

'ठीक है।' भीतर से बमुश्किल आवाज निकल पाई।....

अगली सुबह अपनी टोन में अतिरिक्त मिठास और लचीलापन घोलते हुए माँ बेटी से रू-ब-रू थीं।

'पढ़ाई कैसी चल रही है तुम्हारी? इस बार तो बी. कॉम फाइनल ईयर है तुम्हारा?'

पढ़ाई? वह तो कब की छोड़ दी मैंने? आपको नहीं पता? कैसे पता चलेगा, चेहरा चमकाने वाली क्रीमों और झुर्रियाँ मिटाने वाली तरकीबों से फुर्सत मिले, तब न?' बगैर लागलपेट के उसके मुँह से अपने आप सब कुछ सर्र सर्र फिसलता गया गोया हाथ में आया साँप फिसल रहा हो।

'यस ममा, वैसे आपका सुंदर दिखना भी तो ज़रूरी है न। अभी शादी लायक उम्र है आपकी, सच्ची में।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अरुषि प्लीज, इतनी जहरीली मत बनो। आखिर मॉ हूं तेरी, तेरा बुरा तो नही चाहूँगी। तेरे प्रति अपनी ज़िम्मेदारी का अहसास रहता है मुझे।'

मीठी आवाज़ में सतर्कता को पढ़ते हुए वह बिफर पड़ी 'ज़िम्मेदारी! हुंह ! आप जैसी यंग पर्सनैल्टी के मुँह से ऐसी आउटडेटेड बातें कतई नही जँचती। यू प्लीज गो एंड टेक केयर ऑफ योर फिटनैस। खामखाँ का ड्रामा करने की क्या ज़रूरत है?'' वितृष्णा भरी जुबान से पलटवार करने से कोई गुरेज़ नहीं था उसे।

खुद को संयत करके एक शांत और सधी आवाज़ निकाली उन्होंने-

'बेटी, इन छोटी मोटी नौकरियों से कितना कमा लोगी? नाइटक्लब में मॉडलिंग जैसे ओछे काम करना कितने शर्म की बात है। कोई सुनेगा तो क्या सोचेगा हमारे बारे में? बोलो, आखिर क्या जरूरत है तुम्हें यह सब करने की? और वह भी बिना मुझे बताए. ... ताकत से साधी आवाज अचानक जोर की आवाज़ करके फट पड़ी। बेटी के ताने माँ के सीने पर मुक्के की तरह बरस पड़े। गुस्से से तमतमाया चेहरा भट्टी की तरह दहकने लगा। भरे आँसू गले को बंद करने लगे। बमुश्किल खुद को जज़्ब करने की जद्दोजहद करती रहीं। थोड़ी देर बाद एक मरियल-सी पस्त आवाज़ निकल पाई-'बेटी, तुम्हारे भविष्य को लेकर फ़िक्रमंद रहती हूँ। अभी भी सुधर जाओ वरना सारी ज़िंदगी हाथ मलती रह जाओगी। जिन आवारा लड़कों के साथ घूमती हो, वे सब तुम्हें बर्वाद करके छोड़ देंगे फिर खाक हो जाएगी पूरी ज़िंदगी। बोलो, गलत तो नहीं कह रही?'

'आई डैम केयर। बाइ द वे, आपको मेरी लाइफ़ से क्या लेना देना? ऐं, ममा, यू प्लीज गो एंड इंजॉय विद योरसैल्फ, ओके?' उसने वही रटारटाया पाठ फिर से दुहरा दिया ।

अनायास आए भूकंप से थर्रा उठीं वे। चारों तरफ हड़कंप-सा मच गया। गुस्से की ज़्यादती से चेहरे से आग के गोले बरसने लगे। थर-थर काँपती बेकाबू होती जुबान से अंटशंट बोल फिंकने लगे—'अरे ओ चुड़ैल, चार पैसे क्या कमाने लगी, बदतमीज़ी से बोलना सीख लिया है तूने। हे भगवान! क्या यही दिन देखने बदे थे मेरी तकदीर मे,' बोलने की कोशिश में अचानक उसकी हिचकी बँध गई और वे फूटफूटकर रो पड़ीं। भीतर बाहर सब तरफ से चुभन ही चुभन महसूस होने लगी, जैसे किसी बिच्छू ने काट लिया हो।

''आपको जो करना है बेरोकटोक करिए। हू केयर्स?'' एक झटके से बोलते हुए वह तुरंत खड़ी हो गई। फिर एक पैर से कुर्सी को परे धकेल फर्श पर रिमोट को पैर से दबाकर टी.वी. ऑन कर दिया। जोर जोर से आती आवाजों के बीच अब वह किसी और की आवाज़ कतई नहीं सुनना चाहती थी। न चाहते हुए भी वह अनायास पहुँच गई अपनी रचाई दुनियाँ के आर पार। अपने ही अक्स के बरक्स होकर देखने लगी थी खुद को।

'अच्छा, सच सच बताओ, कैसी लगी तुम्हें यहाँ की चकाचौंध दुनिया?'

तस्वीर से निकलती एक लड़की दूसरे के पास जाकर अपना खटराग अलापने लगी- 'हाँ, अब तो एक एक लफ्ज रट गया है। यहाँ के माहौल की आदी जो हो गई हूँ। कब, किस तरह आश्चर्य से भवें उठाकर आँखें चौड़ी करनी हैं? चेहरे की बदलती भावभंगिमा के साथ संगति मिलाते हुए गर्दन को एक खास अंदाज में झटके में यूँ मोड़ना है। खुमारी और मदहोशी से भरी आँखों में कब कैसे एक विशेष चमक भरनी है। जानबूझकर गिराई लटों को बेवजह पीछे करती उंगलियों को कितनी देर बालों में घुमाते रहना है। अपने एक्शन में गुरूर और दंभ की झलक देनी है लेकिन चेहरे पर अगले ही पल मासूमियत बिछानी पड़ सकती है, इस सबक को हमेशा गुरूमंत्र की तरह रट डालो। यूँ टर्न दो कमर को कि देखने वालों की टँगी तस्वीरें देखो। दांतों को ओठों से ढाँक लो फिर आहिस्ते से जीभ को होठों के एक सिरे से दूसरे तक फिराती रहो। इशारा मिलते ही छातियों की तरफ अधमुँदी पलकों से अपने हाव-भाव ऐसे दर्शाने हैं कि... पोज़ देते वक़्त अचानक एक कड़क आवाज सुनाई पड़ी-'ऐ स्टुपिड गर्ल, बचपना और फूहड़पन में फ़र्क़ करना जानती है न? मासूमियत लाओ बट नो फूहड़पन। खुली शर्ट के बटन को मुँह में चबाते हुए टेढ़ी मुस्कान, लांइक मधुबाला, यस दिस द राइट वे।' अजीबोगरीब किस्म के हाव-भाव दर्शाती इन तस्वीरों के बीच तुम खुद भी तो एक तस्वीर बन गई हो, क्यों? देखते देखते यही ज़िंदा चेहरे धीरे धीरे फोटो में तब्दील हो जाएँगे। फिर इनकी एक झलक पाने के लिए लोग टूट पडेंगे। यस, इन्हें देखने की तलब ही तो जगानी है पब्लिक में, तभी तो वे खरीदेंगे और तभी तो हम प्रॉफिट कमाएंगे। बस यही तो है हमारा एकमात्र मकसद।'

पिछली बार का किस्सा याद आ गया अनायास। तंग जींस में पोज देते वक्त ऐन मौके पर स्वतः स्फूर्त आवेग में आकर लड़की ने खुद ही ज़िप खोल दी थी। क्या पोज दिया था उसने जिसे देखने के लिए कितने लोग कौओं की तरह झुण्ड में इकट्ठे होकर टूट पड़े थे गोया तस्वीर को ही समूचा निगल लेना चाहते हों। रिकॉर्डतोड़ बिक्री हुई थी उस पोज़ की। हाथों-हाथ हज़ारों कॉपियाँ बिक गई थी। कितना खुश था मैनेजर। मोर सेल मींस मोर प्रॉफ़िट-यही है हमारे धंधे का एकमात्र उसूल। हमारी कामयाबी का मूलमंत्र। हमारे धंधे के हिसाब से ये नई लड़कियाँ ही ठीक रहती हैं। कैसा भी पोज देने से गुरेज़ नहीं इन्हें लेकिन जो पुरानी मॉडल्स यहाँ आकर थोड़ी बहुत जम जाती हैं उनके दिमाग फिर जाते। बड़े नखरे करती हैं वे। एक तो मुँहमाँगी क़ीमत दो उन्हें, ऊपर से चोंचलेबाजी भी झेलो। अभी क़ल की ही बात है। लड़के ने लड़की की जांघ पर जैसे ही हाथ धरा, अचानक हंगामा मचा दिया उसने।

अरुषि के अंदर उल्टा पहिया घूमने लगा। कितनों से दोस्ती थी माँ की मगर कहीं बात नही जमी। फिर न जाने कहाँ से टपक पड़ा ये तोंदुल? सुना है विधुर है और बाल बच्चेदार भी। ओफ! माँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देखते ही उबकाई-सी आने लगती। शादी करेंगी, हुंह! सुहागजोड़ा पहने कैसी बेशर्मी से खड़ी होंगी उस मोटू के बगल में। फूलों और रंगबिरंगे बल्बों से सजाया होगा बैड रूम जिसमें अभी अभी नए पर्दे लटकवाए गए है। अरे! आज मेरी माँ की गोल्डन नाइट है और मैं यहाँ सिगरेट पर सिगरेट फूँकती जा रही हूँ। मेज़ पर शराब की बोतलें खुली हैं और तेज़ गानों के बीच कैसे मदमस्त होकर नाच रहे हैं ये सब जोड़े। यहाँ खुमारी और बेहोशी की नदी में डूबती पलकों के बीच जाने अनजाने सीन साकार होते जा रहे है।

माँ की गोल्डन नाइट या बेटी की? किसकी? ऐसी तो न जाने कितनी रातें मना चुकी हूँ। हिसाब लगाना मुश्किल होगा। अरे भई शर्माना किससे? है ही कौन मेरी परवा करने वाला? खुद कमाती हूँ सो अपनी शर्तो पर जिऊं या मरूं, किसी से मतलब.. तनाव की अतिशयता में खुद से बड़बड़ाती रही। वह फिर उंगलियाँ चटकातेहुए अगला पैग उठा लिया।

"बस भी करो अब, बहुत पी चुकी।" माथ का लड़का उसका हाथ पकड़ रोकना चाहता लेकिन उसकी बुदबुदाहट बदस्तूर चलती रही-'मेरी जिंदगी में सब कुछ खल्लास। सब खेल खत्म। इधर का बाप नकली तो उधर की माँ नकली। यहाँ की असली माँ तो बाप नकली। नहीं, नहीं, नकली माँ असली बाप के संग और असली माँ इधर के नकली बाप के संग.. ये हिसाब क्यूँकर गड़बड़ा जाता है हर बार? वह जितना ज़्यादा सोचती, दिमाग ही नसें चटचटाने लगतीं। वह अब तक घटा सब कुछ भूल जाना चाहती मगर कुछ भी तो नहीं भूल पा रही। विचित्र बिडंबना है कि भूलने की कोशिश में और ज़्यादा धर दबोचती हैं यादें। रह-रहकर वही पूरी रील के सीन रिवाइंड होते रहे।

पार्टी में बातों का सिलसिला कैसे भी रुकता नहीं। इस वक्त पार्टी पूरे जोश, उमंग और उठान पर थी। शराब का रंग नसों में घुलकर लोगों के सिर जादू बनकर नाच रहा था। बतरस के मानसरोवर में सभी गोते लगा रहे थे।

'इनकी बच्ची दिख नहीं रही। सुना है, उसकी ऐसी वैसी तस्वीरें छपती हैं किसी गंदी मैगज़ीन में... नाइट क्लब में काम करती है।' बाइ द वे, मुझे गहरी सहानुभूति है उससे। बेचारी अरुषि! कहीं की नहीं रही। च्चचच च्चचचच।'

'कुछ भी कहो यार, दो-दो शादियों के अलग मज़े। क्यों जानेमन, क्या इरादा है?'

'कैसी बेढंगी बात करते हो, शादी और वह भी इस उम्र में। जानते हो, पूरे पचास पार कर चुके।'

"तो क्या हुआ? दम खम है अभी, आज़माओगी? प्रेम की भी कोई उम्र होती है भला?'

'लगता है, ज़्यादा चढ़ गई ? सबको अपने अपने ढंग से अपना जीवन बिताने का हक तो है ही। इसमें भला बुरा मानने जैसी तो कोई बात नहीं। यू नो, कितना तेज़ी से बदल रहा है ज़माना?'

'धक्का लगा है उस बेचारी को। कहीं जानबूझकर चली गई है।'

कनफुसिया बातें, कानफोडू संगीत और हँसी के रंगीन गुब्बारों के बीच प्लेटों और गिलास चम्मचों की खनखनाहट धीरे धीरे कम पड़ती गई।

0 0 0

'अब एकदम छूना भी मत, गिलास को हाथ मत लगाना।' लड़के ने उसके हाथ से गिलास छीनकर कही दूर फेंक दिया। फिर उसकी कमर में हाथ डाल बाहर की तरफ खींचकर ले जाने लगा।

'लिसन यार, रात के दो बज चुके है। अब घर चलो भी।'

अधमुँदी पलकों के भीतर माँ—बाप के चेहरे एक-एक करके कौंधते फिर गड्डमड्ड हो जाते। अरे! आज तो उन्हें विश करना चाहिए था मुझे। हैप्पी मैरिड डे फॉर यू..' नशे मे लिथड़ती आवाज़ से गों-गों करके निकल रही थी।

'इतनी तकलीफ़ क्यों पहुँचा रही हो खुद को? बताओ, किससे बदला ले रही हो? ऐ सँभालो खुद को वरना... होश में तो हो न?'

नशे में धुत लड़की की डगमगाती देह को दाएँ हाथ से सँभाले लड़का सड़क पर बमुश्किल दो कदम ही बढ़ पाया कि लड़की की लड़खड़ाती आवाज़ जमीन पर टूटकर गिरते पत्तों की तरह बेआवाज़ झड़ने लगी- 'नाव आई एम ए फ्री बर्ड... फ्री बर्ड. . फ्री ...' बेतरतीबी से बिखरे बाल आँसुओं में लिथड़ाकर उसके चेहरे को ढके हुए थे। अचानक उसके मुँह से बुदबुदाने और फिर फफक फफक रोने की आवाज़ें रात के सन्नाटे को भंग करने लगीं जिसे सुनकर रात के काले धब्बों के बीच खड़े पेड़ के हिलते डुलते पत्ते भी सहमकर शाखाओं के बीच दुबक गए।

थोड़ी दूर चलने पर सड़क की दूधिया रोशनी में लड़की को देखते हुए लड़का सोचने लगा- इसे यूँ अकेला छोड़ना ठीक नहीं। चलो, इसे गाड़ी में डालकर ले चलता हूँ, होश में आने पर देखा जाएगा।' सोचकर उसने उसकी चलती साँसों को टटोला फिर उसे गाड़ी में डालते वक्त न जाने क्यों उसे ऐसा लगा जैसे वह किसी मुर्दे को ढो रहा हो। चारों तरफ़ पसरे रात के धुप्प अंधेरे को आँखों में भरते हुए वह पूरे इत्मीनान से जैसे ही ड्राइविंग सीट पर बैठा, उसने सबसे पहले कार के रियर व्यू से बाहर का जायज़ा लिया। फिर पुरसुकून से अक्स के बरक्स देखने लगा- 'अरे! अभी अभी तो यहीं थी वो, आखिर इतनी जल्दी कहाँ चली गई? कहाँ जा सकती है भला?

अंधेरे को गुटकते वह न जाने कहाँ किस दिशा की तरफ अंधी दौड़ लगाने लगी थी।

18 अधिकारी आवास
3, पी. एन. रोड, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ेयरडील

गजेंद्र रावत

दुकान में घुसते ही अमन कुर्सी खींचकर चुप-चाप बैठ गया। सामने की रिवॉल्विंग कुर्सी पर बैठा विलायती गर्दन झुकाये अभी सारा पेमेंट गिन रहा था। उसके हाथ और होंठ एक ही गति से हिल रहे थे, परंतु किसी तरह की कोई ध्वनि नहीं पैदा हो रही थी। विलायती के हाथों की दसों उगलियाँ चाँदी की पत्थर-जड़ी अँगूठियों से भरी थीं। दाहिनी कलाई पर कलावा लिपटा हुआ था। माथे पर लाल टीका लगा था, जो अभी-अभी लगाया प्रतीत होता था।

जब देखो नोट ही गिनता रहता है... इतना लेन-देन रहता है क्या?... कब उठाएगा बेसिर, नोटों का पीर.... अमन ने उसकी तरफ़ देखते हुए सोचा और गिनती ख़त्म होने की प्रतीक्षा में इध-उधर देखने लगा। रिवॉल्विंग कुर्सी के दाहिनी ओर लकड़ी की मंदिरनुमा आकृति दीवार पर लगी थी। उसी के ठीक ऊपर एक बड़े फ्रेम में लंबी सफ़ेद दाढ़ी में एक संत की बड़ी-सी तस्वीर लटकी हुई थी। टेबिल के इर्द-गिर्द चार कुर्सियाँ तथा दीवार की एक तरफ़ की पूरी लंबाई तक सेटी बिछी हुई थी। शटर के साथ की दीवार पर शुभ-लाभ लिखा था, उसी के नीचे रोली के रंग से स्वस्तिक निशान बना हुआ था। दरवाज़े के बीचों बीच धागे में पिरोये नीबू और हरी मिर्च लटक रहे थे।

विलायती ने नोटों की आख़िरी गड्डी गिनकर मंदिर से छुआकर ड्रॉअर में डाली और एक लंबी साँस लेकर भीतर की ओर सरका दी। सिर उठाकर अमन को देखकर बोला—"आओ पेंटर ! कैसे हो, ग़रीबखाने में कैसे आना हुआ?"

"वो बार-बार खाली करने को कह रहा है .... अब तो यार कोई दूसरा ठिकाना ढूँढना ही पड़ेगा," अमन उसके माथे पर लगे लाल टीके को देखते हुए बोला, "देख! है कोई निगाह में?"

"बत्ती जला देता हूँ," इधर-उधर अँधेरे की आमद देखकर विलायती फुसफुसाया। उठकर लाइट जला दी और हाथ जोड़कर दोनों कान छूते हुए बोला, "कैसा चाहिए?"

"कोई किराये का... थोड़ा मार्किट के आस-पास... मेन मार्किट में तो महँगा पड़ेगा। अच्छा-ख़ासा पाँव पड़ा था, लोग बाग आने भी लगे थे... महीने में तीन-चार आर्टपीस भी निकल जाते थे... नयी जगह में जमने में टाइम लगेगा।"

"किराये के मकान में तो ऐसा ही होगा। जब तक जमेगा तब तक बदलने का टाइम आ जाएगा," वह कान में माचिस की तीली डालते हुए बोला, "मैं तो कहता हूँ कि हिम्मत करके छोटा-मोटा ख़रीद ही डाल... भई अपना अपना ही होता है।"

वह लगातार तीली से कान कुरेदता रहा। अमन भी शून्य में आँखें टिकाये अपने स्टूडियो के सुखदायी सोच में खो गया... अपना-अपना ही होता है... एक पेंटिग बनाते-बनाते अगर बीच में छोड़ना चाहो, तो छोड़ दो, समेटने की क्या ज़रूरत... और चाहे तो दूसरा कैनवास शुरू कर दो... और स्टूडियो तो लगना ही चाहिए... बाहर के लोग भी आते हैं... वहीं बिस्तर, वहीं किचन... क्या असर पड़ता होगा...

अमर की आँखों में उमड़ते सपने की वजह से कुछ देर चुप्पी लगी रही, गति ठहर-सी गयी। बस, बाहर से इक्का-दुक्का वाहनों का शोर कभी-कभी भीतर तक सुनायी दे जाता था।

अपनी विशेष मनःस्थिति से बाहर निकलकर अमन गंभीरता से बोला, "पर ख़रीदने जितना बजट तो है ही नहीं। अगर उधार..."

"हर जगह ऐसा ही होता है... अरे टाटा-बिरला भी बैंकों से उधार लेते हैं.... पता नहीं, वापस भी देते हैं या नहीं? पर, तुझे देने पड़ेंगे," विलायती थोड़ा-सा मुस्कराते हुए बोला, "देखता हूँ? रब चाहेगा तो हफ़्ते भर में अच्छा सौदा मिल जाएगा...", इतना कहते-कहते वह गंभीर हो गया और आँखें मूँदकर दोनो हाथों से मंदिर छूकर माथे से लगा लिया।

हफ़्ते भर बाद... बाज़ार के नुक्कड़ पर अमन को देखते ही विलायती अत्यधिक उत्तेजना में बोला, "मैं कह रहा था न... रब देता है...ऐसा सौदा है कि पहली नज़र में भा जाए... क्या लोकेशन है यार! मेन रोड से चार मकान छोड़कर, न मार्किट से दूर, न सड़क का शोर... मैं कहता हूँ—स्वर्ग है स्वर्ग... नीचे स्टूडियो कर लेना, ऊपर रिहाइश... बस मज़े आ जाएँगे गुरु," वह अमन के कंधे पर हाथ रखकर बोला, "चल दिखाता हूँ मकान।"

"चल... देखकर ही पता चलेगा स्वर्ग है या नरक ?" वह बस इतना ही बोला।

वे मार्केट से निकलकर गलियों की कतार से जुड़ी सड़क पर पहुँच गये।

"कितने मिनट चले होंगे हम?" विलायती का हाथ अभी भी उसके कंधे पर ही था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पाँच-सात मिनट तो हो ही गये होंगे," अमन कुछ रुककर बोला।

"अरे कहाँ! दो मिनट भी नहीं हुए... अब यहाँ से मुड़कर बस चार मकान गिन। एक... दो... तीन... चार... यह रहा महल। देख मत्था देख कितना बड़ा है, डब्बल है डब्बल और ये गली देख, इतनी चौड़ी पूरे इलाके में कहीं नहीं होगी... हाँ?" ताला खोलते हुए वह बिल्कुल झुक गया। दरवाज़ों को भीतर की ओर धकेलते सीधे खड़े होते हुए बोला—"ये लो बादशाहो, हवेली ये है। ज़मीन पर जन्नत..., फ़र्श देखो, फ़र्श... शुद्ध पत्थर का काम हैं। कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं, बस सामान रखो और मज़े लूटो ज़िंदगी के।"

फ़र्श पर खड़े होकर वे ऊपर चारों तरफ़ दीवारों को देखते रहे, फिर बीच का दरवाज़ा खोलकर दूसरे कमरे में आ गये, "ये हैं दो कमरे, ये लॉबी, टॉयलेट नमूना है आर्किटेक्ट का।"

"कमरे छोटे- छोटे हैं," अमन उस कमरे से बाहर आकर फिर बोला, "ये दरवाज़ा कहाँ खुल रहा है ?"

"यही तो है दोहरा मज़ा... खोल इसे," विलायती बोला और स्वयं ही कुंडी खोलकर दरवाज़ों को अपनी तरफ़ खींचते हुए फिर बोला, "ये एक और सेम सेट। जगह की कमी नहीं है...वही कमरे, लॉबी, टॉयलेट..."

"यार पर पड़ेगा कितने में?"वह धीरे से बोला। उसकी आवाज़ में घबराहट और अनिश्चितता थी,"बजट भी तो बड़ा होगा?"

"अरे नहीं भई! वैसे तो मौक़े का मकान है! वो तो बूढ़े की ही गरज़ है, नहीं तो यह चालीस लाख से कम का नहीं है, तेरे लिए सिर्फ़ तीस लाख, "विलायती धीरे-धीरे बोल रहा था। उसके चेहरे पर एक लकीर-सी मुस्कान दौड़ रही थी।

अमन ने अपने साथ की दीवार पकड़ ली और वहीं स्थिर हो गया। उसके पाँव काँपने लगे। पसीने के छोटे-छोटे बिंदु उसके माथे और नाक की नोंक पर इकट्ठे हो गये। उसका रंग फ़क़ पड़ गया। पिछले हफ़्ते शुरू किये कैनवास पर बैसाखियों के मध्य लटकते आधे-अधूरे चेहरे उसकी आँखों के आगे तैरने लगे।

"क्या हो गया ?"विलायती चकित-सा बोला,"यार तू तो ऐसे घबरा गया जैसे...."

"घबराने की बात नहीं है...." इतना कहकर वो ख़ामोश हो गया और आँखें मूद लीं, पर कुछ ही क्षणों में आँखें थोड़ी-सी खोलकर धीमे से बोला,"मेरे बस की बात नहीं... मैं तो सपना भी नहीं देख सकता... छोड़ यार... किराये के मकान पर ही गुज़ारा कर लूँगा," उसके चेहरे पर धूल-से रंग की एक परत चढ़ गयी। वह मुँह फेरकर बाहर की ओर बढ़ने लगा।

"अरे रुक तो यार ! जब रुपये सामने रखेंगे, तो एक-डेढ़ लाख तो गिर ही जाएगा।" विलायती उसे बाजू से पकड़कर रोकते हुए बोला।

"एक-डेढ़ कम करने से क्या होगा? मैं तो इसके आधे भी नहीं दे पाऊँगा," वह आँखें बंद किये सिर हिलाते हुए बोल रहा था।

"चल कोई नहीं, इतनी जल्दबाज़ी नहीं करते, चीज़ भी देखा करते हैं। तुझे दूसरा कुछ दिखाऊँगा", फिर आँखें पलटकर बोला,"वैसे तेरा बजट कितने का है ?"

"बजट। मेरा मतलब उधार कर-कराके बारह-पंद्रह तक जा सकता हूँ... बस ! "वह झल्लाकर बोला।

वे रास्ते भर ख़ामोशी से चलते रहे। गली के नुक्कड़ पर थोड़ा रुककर दोनों ने सिर हिलाया और विपरीत दिशाओं में चल दिये।

पाँच दिन के बाद विलायती उसके स्टूडियो पर पहुँचा। अमन एक पेंटिग फ़िनिश कर रहा था।

"यह क्या सूरज उग रहा है... लाल ही लाल", विलायती उसके साथ खड़ा होकर कुछ जिज्ञासावश बोला।

"यह रंग बदलाव का है.... इसे सूर्योदय भी कह सकते हैं, पर चेहरों पर पड़ता इसका प्रभाव उस चेतना से संबधित है, जो पुराना छोड़ नये को पाने के लिए तत्पर है, इसीलिए पेंटिग का नाम 'चेहरे' है," अमन उसकी आँखों में देखते हुए बोल रहा था।

"यार, ये चीज़ें मेरी समझ से बाहर हैं... क्या-क्या करता रहता है तू। इसे कोई ख़रीदेगा क्या?" विलायती कुर्सी खींचकर बैठते हुए बोला।

"कला के पारखी ही ख़रीदते हैं...", वह विलायती के सामने वाली कुर्सी पर बैठते हुए बोला।

"कितने में बिकेगी यह ?"

"इसका मोल तो ख़रीदने वाला ही लगाएगा," अमन उसकी अरुचि को देखकर बोला,"तू दिखायी नहीं दिया... इतने दिन कहाँ था ?"

"मैं वैष्णो देवी गया था। जिस दिन तुझे मकान दिखाया था, उसी रात मुझे सपना आया। माँ ने मुझे दर्शन दिये और कहा कि आजा मेरे लाल... मेरे मंदिर आजा।"

"बिल्कुल ऐसे ही बोली माँ ? या फिर कोई तगड़ा सौदा हाथ लग गया।"

"हाँ, हाँ... ऐसे ही बोली थी माँ। और फिर माँ का बुलावा, कुछ भी हो मैं नहीं टाल सकता," विलायती ने दोनों बाँहें सिर तक उठा लीं।

"डीलरों का यही तो है, दस-बीस हज़ार कमाये नहीं कि माता के दर्शन ज़रूरी हो जाते हैं। सारे रास्ते पीते चलते हैं स्सालें", अमन ने सोचा।

"सुन, एक अचंभे की बात है; जब मैं माँ के दरबार में खड़ा था, तो एक आइडिया आया... वो जो मकान तुझे दिखाया था, उसका आधा तू ले ले और आधा मैं", यह कहते हुए विलायती की आँखों में न जाने कहाँ से चमक भर गयी।

"क्या मतलब ?" वह चौंककर बोला।

"जो मकान तुझे दिखाया था, वे दो सैट थे, उनमें से एक तेरा, दूसरा मैं खरीद लूँगा," विलायती उसके कुछ और पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरककर बोला।

"वे अलग कैसे होंगे ?" अमन ने आश्चर्य से पूछा।

"अरे वो तो बने ही अलग-अलग हैं। उस बूढ़े ने बनवाये ही दो थे, लेकिन हुआ यह कि उसके दोनों लड़के विदेश सैटल हो गये और खुद बूढ़ा गाँव चला गया।"

"तू तो कह रहा था कि वो मकान तेरे ही पास है।"

"मेरा मतलब बेचने के लिए..."

"क्या यार, यह अब..."

"सच यार, बच्चों की कसम! यकीन कर मेरा।"

"कसम-वसम मत खा..."

"भई मैं भी ख़रीदूँगा बूढ़े से... और क्या!"

"दो सैट बनेंगे कैसे ?"

"बीच के दरवाज़े की चौखट उतारकर दीवार चिन देंगे। बस हो गये दो सैट। ऊपर वाला फ़्लोर तो पहले ही अलग है।"

"कितने का पड़ जाएगा एक सैट ?"

"सीधा हिसाब है—पंद्रह का!"

"कुछ कम नहीं होगा ?"

"कम क्या, तीस से पंद्रह हो गया और क्या कम होगा? मैं भी तो पंद्रह दूँगा," यह कहते हुए विलायती के चेहरे पर चमक-सी उभर आयी। वो कनखियों से अमन के चेहरे के रंग को देखता रहा।

"बूढ़े को कह कम करने के लिए!"

"चल, यह कोशिश कर लेंगे... ऐसा कर, तू कल ही बयाना दे दे... एक लाख।"

"कल ही?... इतनी जल्दी? कम से कम हफ़्ता तो दे।"

"चल ठीक है... पर बात पक्की। मैं बूढ़े को सेट कर लेता हूँ," यह कहते-कहते वो स्टूडियो से बाहर हो गया।

दो महीनों में यहाँ-वहाँ से पकड़-पकड़ाकर रुपये का इंतज़ाम हो गया। रजिस्ट्री से एक दिन पहले वे मकान में गये। पहले दरवाज़े के सामने खड़े होकर विलायती बोला, "तू पहले वाला हिस्सा ले ले। मैं दूसरा ले लेता हूँ।"

"क्या... क्या... नहीं यार, यह देख दरवाज़े के ठीक सामने ही बिजली का खंबा खड़ा है," वह हड़बड़ी में बोला, "मुझे स्टूडियो चलाना है, लोगों का आना- जाना रहेगा। नहीं... नहीं... मैं दूसरा वाला ही लूँगा।"

"यार यह गली में पहले पड़ता है, फिर तू अपने स्टूडियो का नाम खंबे पर चिपका देना—'अमन आर्ट्स'। वो दूर सड़क से भी दिखायी देगा। मैं सही राय दे रहा हूँ," विलायती कुछ गंभीरता से बोल रहा था।

"नहीं भई, तुझे तो रिहाइश ही करनी है। तुझे प्रॉब्लम नहीं होगी... मेरा तो काम है न... दस लोगों का आना-जाना है।"

"देख, खंबे वाले मकान के साथ मोटर भी लगी है। रात दिन पानी रहेगा। मैं अपनी अलग लगवा लूँगा, " विलायती उसकी आँखों पर नज़रें टिकाये था।

"मुझे नहीं चाहिए पानी। तू ले ले मोटर । मै नही लूँगा यह. .. बस," वो सिर हिलाता हुआ घर से बाहर आकर खड़ा हो गया।

थोड़ी ही देर में विलायती भी बाहर निकल आया और ताला बंद करते हुए बोला, "चल, दुकान में बैठकर डिसाइड करते हैं।"

अमन विलायती के पीछे-पीछे खिन्न-सा चुपचाप पैर घिसते हुए चला जा रहा था।

विलायती सामने की रिवाल्विंग कुर्सी पर बैठ गया। टेबिल के दूसरी तरफ़ अमन एक कुर्सी खींचकर बैठ गया और आँखें लगभग मूंद-सी लीं।

विलायती ने एक लंबी उबासी लेते हुए रिमोट से टी0वी0 ऑन कर दिया। कुछ देर तक चैनल बदलता रहा, फिर अचानक उछल पड़ा और बोला," ओह, आज तो इन्डिया-पाकिस्तान का मैच है। एक आइडिया है, बोलूँ?"

"हाँ, बोल।"

"अगर इन्डिया जीती तो मैं लूँगा मर्ज़ी का मकान और पाकिस्तान जीता, तो तू मर्ज़ी का ले लेना।" वो कभी टी0वी0 की तरफ़ तो कभी अमन के चेहरे को देखते हुए बोल रहा था। वो जानता था कि पाकिस्तान के दो फ़ास्ट बॉलर चोट की वजह से नहीं खेल पा रहे।

"यह क्या बात हुई ? मुझे कमज़ोर टीम।"

"कमज़ोर कहाँ है, वर्ल्ड क्लास टीम है पाकिस्तान की," वो अप्राकृतिक-सी हैरानी से बोला,"तेरे तो घर से पाकिस्तानी गानों की आवाज़ें आती हैं... तुझे तो गली वाले आधा मुसलमान ही समझते हैं।"

"वे पाकिस्तानी गाने नहीं हैं। गाने भी कभी हिन्दुस्तानी-पाकिस्तानी होते हैं? वह ग़ालिब-मीर की शायरी है..."

"जो भी है, मैं नहीं हो सकता पाकिस्तान की तरफ़... मुझे तो..." वो कहते-कहते रुक गया और अज़ीब सा मुँह बना लिया।

"चल ठीक है... मैं पाकिस्तान की तरफ़..."

आधे से ज़्यादा मैच निकल चुका था। वे टी0वी0 पर नज़रें गड़ाये बैठे रह। बाहर शटर पर एक छोटी-सी चिड़िया नीबू-मिर्च पिरोये धागे को छोड़कर चली गयी। मैच में हार-जीत भी नीबू और मिर्चों की तरह दोनों के बीच झूल रही थी।

नतीजे के वक़्त इन्डिया की हार से विलायती माथा पकड़कर सिर झुकाये बड़ी देर तक बैठा रहा। फिर बड़े ही दुखी मन से उसकी तरफ़ देखकर बोला, "यार, आज तो अँधेरा हो गया है, कल बात करते हैं... ठीक है न।"

अमन देर तक उसके शून्य होते चेहरे को देखकर कुछ न बोला, बस उठकर छोटे-छोटे क़दमों से बाहर सड़क तक आ गया।

दुकान में तीन लोग मैच के दौरान ही आ चुके थे। अमन के बाहर जाते ही विलायती ने एक व्यक्ति से गिलास लाने को कहा और स्वयं खड़े होकर दीवार पर जड़ी अलमारी से दारू की बोतल निकालकर टेबिल पर रख दी।

"खिसक ही नहीं रहा था..." विलायती बोला।

"था कौन ?" बड़ी मूछों वाला आदमी बोला, जो सोफ़े से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठकर कुर्सी पर आ गया था।

"ऐसे ही यार... मक्खी था... रखना पड़ता है ऐसे लोगों से भी..."

विलायती को अचानक याद आया, उसने कुर्सी पर खड़े होकर दीवार पर लगी तस्वीर को उलटा कर दिया, फिर बैठते हुए बोला," मैंने नाम ले रखा है न; मैं गुरुजी के सामने नहीं पीता।"

वे चारों मुस्कुराये। मूँछों वाला व्यक्ति रुककर बोला, "और मंदिर तो..."

"वैसे भगवान तो खुद ही समझदार है, वो थककर सो गया होगा, मैंने आज बहुत कसमें खायी थीं बेचारे की।"

वे ठहाके लगाते रहे, फिर चारों एक साथ भरे गिलास उठाकर टकराते हुए चिल्लाये," चियर्स।"

वे देर रात तक शराब पीते रहे... बोतलों पर बोतलें चलती रहीं। जाम से जाम टकराते रहे।

अगले दिन अमन दो चक्कर लगा गया, पर दुकान खुली नहीं। तीसरी बार जब आया, तो विलायती धूपबत्ती लगाये छोटे से मंदिर के आगे हाथ जोड़े खड़ा था। दीवार पर लगी गुरुजी की तस्वीर अब सीधी थी, पहली-सी प्रतिष्ठा के साथ।

अमन भीतर आकर कुर्सी खींचकर बैठ गया; कनखियों से उसे हाथ जोड़े देखता रहा। पंद्रह-बीस मिनट तक विलायती आँखें मूँदे दम साधे वहीं खड़ा रहा—फिर उसके होंठ हिलने लगे और कानों को न सुनायी देने वाली ध्वनि सि-सि निकलने लगी। अंत में... "सच्चे दरबार ..." के स्पष्ट शब्दों पर... प्रक्रिया समाप्त हो गयी। वह कानों को छूकर, मंदिर पर माथा टेककर कुर्सी पर बैठ गया। पूजा के वक़्त ही उसे अमन के आने का पता लग गया था।

"आज दुकान खोलने में देर कर दी," अमन झिझकते हुए बोला।

"क्या बताऊँ... कल व्रत था। रात को पूजा में देर हो गयी... सुबह बस... ऐसे ही..." विलायती गहन गंभीरता से बोल रहा था।

कुछ देर तक चुप रहने के बाद अमन बोला," वो चाबी दे दे।"

"कौन-सी चाबी ?"

"कल वो मैच जो जीता था।"

"अच्छा वो! यार, मैंने कल बहुत सोचा; मैच किसी दूसरे के बीच और हार-जीत तेरी-मेरी।... यह कैसे हो सकता है ?"

"तू हार गया है न, इसलिए कह रहा है..."

"नहीं यह बात नहीं है, अगर तेरी क़िस्मत होगी, तो तू ले जाएगा और मेरी होगी, तो मैं ले जाऊँगा। कोई मैच किसी का नसीब थोड़े ही बाँट सकता है। भई, मुझे तो भगवान पर भरोसा है... माता रानी जो चाहेगी, वही होगा..." उसने जल्दी से मंदिर को हाथ से छूकर सिर पर लगा लिया।

"भरोसा तो..."

"देख, ऐसा करते हैं... पर्ची डाल लेते हैं, जिसकी जो खुलेगी तो वही ले जाएगा। न तेरी, न मेरी।"

अमन कुछ देर चुप बैठा रहा, फिर धीरे से बोला, "चल डाल पर्ची।"

"यहाँ नहीं... चाय की दुकान में चलेंगे, ज़रा यहाँ कोई आ जाए।"

क़रीब दो घंटे बाद वे चाय की दुकान में पहुँचे। एक छोटी-सी टेबिल को घेरते हुए दोनों आमने-सामने बैठ गये।

"भूरे, अरे भूरे। दो चाय बना... पेशल।" विलायती बोला।

"पर्चियाँ बना लेते हैं," अमन उसकी ओर देखते हुए बोला।

"मैंने पूरी तैयारी कर ली है। तू चाय तो आने दे।"

थोड़ी ही देर में भूरा दो प्याली चाय रख गया। विलायती मुँह से चाय की प्याली लगाते हुए बोला, "मैंने बना रखी हैं पर्चियाँ... चाय पीकर तू अपने हाथों से फेंकना... सामने।"

चाय पीकर अमन ने एक लंबी साँस ली और उसकी ओर देखा।

जेब से दो फोल्ड की हुई पर्चियाँ निकालते हुए विलायती बोला, "ये ले... फेंक..."

अमन थोड़ी देर तक काग़ज़ की मुड़ी पर्चियों को दोनों हथेलियों के बीच हिलाता रहा और फिर एक झटके से टेबिल पर बिखेर दीं।

"रुक, पहले मैं उठाऊँगा," विलायती बोला।

"क्या-क्या लिखा है?"

"खंबा और बग़ैर खंबा," यह कहते हुए विलायती ने झट-से एक पर्ची उठा ली और माथे से लगाकर मन-ही-मन मंत्र-सा जपने लगा, फिर अचानक पर्ची खोलकर बोला, "ये देख -बग़ैर खंबा।"

पर्ची पर सचमुच बग़ैर खंबा ही लिखा था।

विलायती ने खड़े होकर एक चाबी उसकी तरफ़ सरकाते हुए कहा, "ये ले चाबी खंबे वाले मकान की... मैं चला।"

अमन भौंचक्का-सा उसे जाते देखता रहा और चुपचाप, बिना हिले-डुले बैठा रहा।

कुछ देर बाद उसने भूरे से सिगरेट मँगवाकर सुलगा ली। फिर अपनी ऊपर की जेब से एक-एक कर चीज़ें निकालने लगा -चाबी, पर्चियाँ, चश्मा और एक पेंसिल अब टेबिल पर फैले हुए थे। वहीं दो खाली प्यालियाँ भी एक कोने में रखी थीं। खुली पर्ची पर लिखे शब्द उसने दोबारा पढ़े—बग़ैर खंबा"। फिर साथ रखी बंद पर्ची को खोलकर टेबिल पर फैला दिया।

पल भर में वो चौंककर उठ खड़ा हुआ। दूसरी पर्ची पर भी 'बग़ैर खंबा' लिखा था। उसके मुँह से बरबस निकला," दोनों में एक ही।"

उसने उदासी से छत की ओर देखते हुए आँखें मूँद लीं। एक धीमी ध्वनि उसके मुँह से बाहर निकल आयी,"स्साला... चला गया होगा वैष्णो देवी।"

डब्ल्यू0पी0-33 सी,
प्रीतमपुरा, दिल्ली - 110034

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोन्साई

डॉ0 उत्तिमा केशरी

प्रिय कनक !
यद्यपि कि मैं जानती हूँ
तुम इस दुनिया में नहीं हो,
तथापि
लिखना चाहती हूँ तुम्हें
एक खत,
उन पुरुषों के लिए
जो इस्तेमाल करते रहे
नारी को
डोर-मैट की तरह।
वे रोपते हैं वट-वृक्ष
गमले में,
क्या वे नहीं समझते ?
नारी में भी
खुले वट-वृक्ष होने की
क्षमता है।
बावजूद वे
कतरते रहते हैं
गमले में लगे
वट-वृक्ष की
सारी संभावनाओं
और
उनके
विस्तृत-आकाश को।
वही तो हुआ कनक
तुम्हारे साथ,
तुम जीती रही सदा
एक बोन्साई की तरह।
अहिल्या की तरह
अभिशप्त रही
एक संत्रस्त जीवन
जीने के लिए।
कनक !
तुम चिड़ियों की तरह
आकाश में उड़ते
उसकी ऊँचाइयों में
आनंद विभोर हो, खो जाना
चाहती थी
और
नदी की तरह
लहरों में संगीत भर कर
जीना चाहती थी।
कनक तुम
मन के उजले कैनवास पर
फूलों में सुगंध
और
इंद्रधनुष में रंग
भरना चाहती थी।
तुम कोई और ऋतु नहीं
सिर्फ़
वसंत-ऋतु बनना चाहती थी
और
समुद्र की मछली की तरह
गहराइयों में उतर कर
रमना चाहती थी।
जानती हूँ, कनक!
तुम एक कथाकार, चित्रकार
और
कवि बनना चाहती थी।
लेकिन
क्या कभी तुम्हें सराहा गया ?
तुम्हारे पिता और भाईयों के द्वारा
तुम्हारी कविता और चित्रकला को।
क्या तुम्हारा फेनिल पहाड़ी नदी सा
कल-कल बहना
कभी भाया उन्हें ?
तुम्हें तो बारबार
एहसास कराया जाता था
आश्रित रहना है
पुरुष पर।
याद है, कनक!
जब तुमने छोड़ दी थी
कविता लिखना, पेंटिंग करना।
तब कैसे!
बुझ गयी थी
भीतर से तुम।
कहाँ समझा किसी ने
कि
तुम्हें प्रकृति से
असीम प्यार है।
तुम तो खुश होती थी
लहराता समुद्र, घनघोर घटाएँ
सिंदूरी सुबह और
नारंगी शाम को देखकर।
नियति तो देखो
सपनों का
कोई राजकुमार नहीं आया
तुम्हारे जीवन में,
आया भी तो एक विधुर
जिसे तुम्हारे पिता
और भाई ने
थक-हार कर
पहना दिया था
खुशी का सेहरा
उस विधुर के माथे पर।

अंतिम समय
जब मिली थी तुमसे
तो लगा था कि
कई नदियों के
सूख जाने का दर्द
समाया है
तुम्हारी हिरणी-सी आँखों में।
उस सुबह
हवा भी ठिठक गई थी
भीगी बारिश की
बूंदों में।

भट्टा दुर्गा बाड़ी, पूर्णियाँ-854301 (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन ग़ज़लें

सुधेश

चलें काली आँधियां चलते चलो,
वक्त लेगा इम्तिहाँ चले चलो।

अगर दिल की आग यों जलती रहे,
कुल जहाँ हो कहकशां चलते चलो।

अगर यों ही रहे आवारा कदम
मिल ही जाएगा मकाँ चलते चलो।

अगर ऊँची ख्वाब की परवाज़ हो
सारी दुनिया गुलिस्ताँ चलते चलो।

अगर शिकवा शामिले आदत हुआ
बदगुमाँ होगी ज़बाँ चलते चलो।

जहाँ कोई सुनने वाला ही न हो
दर्द रहने दो निहाँ चलते चलो।

ख़ल्क़ से हो मुहब्बत क्या बात है
रहने दो इश्के बुताँ चलते चलो।

अगर दिल में प्यार की है रोशनी
चश्म कर देंगे बयाँ चलते चलो।

प्यार के दो चार अक्षर सीख लो
आँख बन जाये ज़बाँ चलते चलो।

000

अच्छी बातें कर रहे हैं लोग
फिर भी खुद से डर रहे हैं लोग।

बड़ी बातें हैं बड़े सिद्धांत
देखिये क्या कर रहे हैं लोग।

नहीं जारी है यहाँ कोई जंग
फिर भी इतने मर रहे हैं लोग।

गली में आग फैली है मगर
अपने अपने घर रहे हैं लोग।

पुलिस अपनी और अपनी फौज
फिर क्यों थरथरा रहे हैं लोग।

वजह बेहतर नहीं पाये ढूँढ
लड़ते-लड़ते मर रहे हैं लोग।

000

सारा जगत अब ग्राम है,
बस आदमी इक नाम है।

भाषा कला सब वस्तुएँ
बस बेचना ही काम है।

जो वाम दक्षिण हो गया
जो दाहिना था वाम है।

वह रूप हो या प्यार हो
अब तो सभी कुछ चाम है।

इन्सानियत अनमोल थी
हर चीज़ का अब दाम है।

तब गाँव मानो स्वर्ग था,
अब नरक सारा ग्राम है।

सब पुण्य लूटो तीर्थ का
बाज़ार चारों धाम है।

दिखता नहीं है राम तो
आराम में ही राम है।

मंज़िल मरुस्थल की नहर
पग चल रहा अविराम है।

तन भ्रमर कालिका से लगा
रस भोग मन निष्काम है।

ए-34, न्यू इंडिया अपार्टमेन्ट्स
रोहिणी सैक्टर-9, दिल्ली-110085

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किलिमंजारो की बर्फ़

लेखक : अर्नेस्ट हेमिंग्वे

किलिमंजारो 19,710 फीट ऊँचा एक बर्फ़ से ढँका पहाड़ है, और वह अफ़्रीका का सबसे ऊँचा पहाड़ माना जाता है। उसकी पश्चिमी चोटी का नाम मसाई 'नगाजे नगाई' है, जिसका अर्थ है-ईश्वर का घर। पश्चिमी चोटी के पास ही एक तेंदुए का सूखा और जमा हुआ शव पड़ा है। कोई नहीं बता पाया है कि उतनी ऊँचाई पर वह तेंदुआ क्या खोज रहा था।

"आश्चर्यजनक बात यह है कि यह दर्द-रहित है",उसने कहा, "इसलिए आप इसके शुरू होने पर इसे जान पाते हैं।"

"क्या वाकई यह ऐसा है?"

"बिल्कुल, हालाँकि इसकी गंध के बारे में मुझे बेहद खेद है। यह तुम्हें परेशान कर रहा होगा।"

"नहीं, मेहरबानी करके ऐसा मत कहो।"

"इन पक्षियों की ओर देखो", उसने कहा, "वह क्या दृश्य है या गंध है, जो उन्हें इस तरह यहाँ लाती है?"

जिस खाट पर वह आदमी लेटा था, वह मिमोसा वृक्ष की घनी छाया के नीचे थी और जब उसने छाया के पार मैदान की चौंध की ओर देखा तो वहाँ तीन बड़े पक्षी थे जो बेहद फूहड़ ढंग से सटकर बैठे थे, जबकि आकाश में दर्जन भर और मँडरा रहे थे और उड़ते हुए तेज़ी से भागने वाली परछाइँया बना रहे थे।

"जिस दिन ट्रक ख़राब हुआ था, वे तब से वहाँ हैं" उसने कहा, "आज पहली बार वे ज़मीन पर भी उतर आये हैं। मैंने उनका पंख फैलाकर उड़ने का तरीका बड़े ध्यान से देखा, ताकि अगर कभी चाहूँ तो उनका इस्तेमाल अपनी कहानी में कर सकूँ। यह बात अब हास्यजनक है।"

"मै चाहती हूँ, तुम ऐसी बातें न करो", उसने कहा।

"मैं तो केवल बात कर रहा हूँ,"उसने कहा, "अगर मैं बात करूँ तो ज़्यादा आसानी रहती है; लेकिन मैं तुम्हें परेशान नहीं करना चाहता।"

"तुम जानते हो कि मुझे इससे परेशानी नहीं होती", उसने कहा, "बस मैं केवल कुछ नहीं कर पाने के कारण बेहद अधीर हो गयी हूँ। मुझे लगता है कि हवाई जहाज़ के आ जाने तक हम इसे जितना, हो सके आसान बनाने का प्रयास करें।"

"या हवाई जहाज़ के नहीं आने तक।"

"मेहरबानी करके मुझे बताओ कि मैं क्या कर सकती हूँ। कुछ तो होगा जो मैं कर सकती हूँ?"

"तुम मेरी टाँग काट दो और तब शायद यह बंद हो जाए, हालाँकि मुझे शक है। या, तुम मुझे मार सकती हो। मैंने तुम्हें गोली चलाना भी सिखा दिया है। है कि नहीं?"

"मेहरबानी करके इस ढंग से बात मत करो। क्या मैं तुम्हारे लिए पढ़ नहीं सकती?"

"क्या पढ़ सकती हो?"

"पुस्तकों के थैले में पड़ी कोई भी किताब, जो हमने नहीं पढ़ी है।"

"मै उसे सुन नहीं सकता", उसने कहा, "बात करना सबसे ज़्यादा आसान है। हम झगड़ते हैं और इससे समय जल्दी बीत जाता है।"

"मैं झगड़ा नहीं करती। मैं कभी झगड़ा करना नहीं चाहती। आओ, अब हम दोबारा कभी झगड़ा न करें, चाहे हम कितने भी अधीर क्यों न हो जाएँ! शायद, वे दूसरा ट्रक लेकर आज ही वापस आ जाएँ... शायद हवाई जहाज़ आ जाए।"

"मैं कहीं नहीं जाना चाहता", आदमी ने कहा, "अब कहीं जाने का कोई मतलब नहीं, पर मैं इसे तुम्हारे लिए आसान बनाना चाहता हूँ।"

"यह कायरतापूर्ण है।"

"क्या तुम एक आदमी को बिना गाली दिये चैन से मरने भी नहीं दे सकतीं ? अब मुझे गाली देने का क्या फ़ायदा ?"

"तुम मरने नहीं जा रहे।"

"बेवकूफ़ मत बनो। मैं अब मर रहा हूँ। उन हरामज़ादों से पूछो," उसने उस ओर देखा जहाँ वे विशालकाय गंदे पक्षी बैठे थे। उन गिद्धों के नंगे सिर उनके झुके हुए पंखों में धँसे हुए थे। एक चौथा पक्षी तैरता हुआ नीचे उतरा, अपनी टाँगों पर कुछ दूर तेज़ी से दौड़ा, और फिर धीरे - धीरे बतख की तरह चलता हुआ दूसरे पक्षियों की ओर चला गया।

"वे सभी शिविरों के इर्द - गिर्द होते हैं। तुम कभी उनकी ओर ध्यान भी नहीं देते। यदि तुम हिम्मत नहीं हारो, तो तुम नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर सकते।''

''यह तुमने कहाँ पढ़ा ? तुम भी कितनी बेवकूफ़ हो।''

''तुम किसी और के बारे में सोच सकते हो!''

''भगवान के लिए'',उसने कहा,''यह मेरा शगल रहा है।''

फिर वह लेट गया और कुछ देर तक शांत पड़ा रहा और मैदान की गर्म चौंध के पार झाड़ियों के किनारों की ओर देखता रहा। वहाँ कुछ भेड़ें थीं जो पीली पृष्ठभूमि में सफ़ेद और बेहद छोटी नज़र आ रही थीं और, काफी दूरी पर, उसने ज़ेब्रों के एक झुंड को देखा,जो झाड़ियों की हरी पृष्ठभूमि में उजले दिख रहे थे। यह एक मनोहर शिविर था जो एक पहाड़ की ओट में, घने वृक्षों की छाया में था, जहाँ पानी की अच्छी व्यवस्था थी और पास ही एक लगभग सूखा हुआ तालाब था, जहाँ तीतर सुबह के समय उड़ान भरते थे।

''क्या तुम नहीं चाहोगे कि मैं पढ़ूँ ?'' उसने पूछा। वह उसकी खाट की बगल में एक कैनवस की कुर्सी पर बैठी थी।

''अब हवा बहने लगी है।''

''नहीं, शुक्रिया।''

''शायद ट्रक आ जाए।''

''ट्रक आए, चाहे नहीं, मुझे उससे कोई मतलब नहीं।''

''मुझे है।''

''तुम्हें बहुत सारी बेहूदा चीज़ों से मतलब होता है, जिनसे मुझे नहीं होता।''

''बहुत सारी से नहीं, हैरी।''

''थोड़ी शराब हो जाए।''

''वह तुम्हारी सेहत के लिए अच्छी नहीं। मैंने कहीं पढ़ा था कि ऐसी हालत में शराब से परहेज़ करना चाहिए। तुम्हें पीना नहीं चाहिए।''

''मोलो!'' वह चिल्लाया।

''हाँ, साहब।''

''व्हिस्की-सोडा लेकर आओ।''

''तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए'', उसने कहा, ''हिम्मत न हारने से मेरा यही मतलब है। यह तुम्हारी सेहत के लिए अच्छा नहीं। मैं जानती हूँ, यह तुम्हारी सेहत के लिए अच्छा नहीं।''

''नहीं'', उसने कहा, ''यह मेरी सेहत के लिए अच्छा है।''

तो अब सब कुछ ख़त्म हो गया था, उसने सोचा। तो अब उसे इसको पूरा करने का मौक़ा कभी नहीं मिलेगा। तो इस तरह से इसे ख़त्म होना था, थोड़ी शराब के लिए झगड़े के रूप में। जब से उसकी दायीं टाँग में गैंग्रीन शुरू हुआ था, उसका दर्द जाता रहा था और दर्द के साथ ही भय भी चला गया था और अब उसे केवल एक गहरी थकान महसूस हो रही थी और साथ ही गुस्सा भी आ रहा था कि इन सबका अंत यह था। जो अब आ रहा था, उसके लिए उसके मन में कोई उत्सुकता नहीं थी। बरसों तक इसने उसे सताया था, पर अब अपने आप में इसका कोई मतलब नहीं था। यह अजीब था कि गहरी थकान ने इसे इतना आसान बना दिया था। अब वह उन चीज़ों के बारे में कभी नहीं लिखेगा, जिन्हें उसने तब लिखने के लिए बचाकर रखा था जब वह उनके बारे में अच्छी तरह जानकर लिख पाता। ख़ैर, अब कम से कम उन्हें लिखने की कोशिश में उसे असफल तो नहीं होना पड़ेगा। शायद वह उन्हें कभी लिख पाता और इसीलिए वह उन्हें लिखना टालता रहा और शुरूआत करने में देरी करता रहा। खैर, अब वह कभी नहीं जान पाएगा।

''काश, हम यहाँ कभी न आये होते'', औरत ने कहा। वह गिलास उठाये हुए उसे देख रही थी और दाँतों से अपने होंठों को काट रही थी, ''पेरिस में तुम्हें कभी ऐसा कुछ भी हुआ होता। तुम हमेशा कहते थे कि तुम्हें पेरिस से प्यार था। हम पेरिस में ही रह सकते थे या कहीं और चले गये होते। मैं कहीं भी जाने को तैयार थी। मैंने कहा था कि मैं कहीं भी जाऊँगी, जहाँ तुम जाना चाहते थे। यदि तुम शिकार करना चाहते थे, तो हम शिकार करने हंगरी जा सकते थे और वहाँ हम आराम से रहे होते।''

''तुम्हारा वाहियात रुपया'', उसने कहा।

''तुम ज़्यादती कर रहे हो'', उसने कहा, ''यह रुपया हमेशा से तुम्हारा भी उतना था, जितना मेरा था। मैंने सब कुछ छोड़ दिया और मैं वहाँ गयी जहाँ, कहीं भी तुम जाना चाहते थे और मैंने वह किया, जो तुम करना चाहते थे। लेकिन काश, हम यहाँ कभी न आये होते।''

''तुमने कहा था कि तुम्हें इस जगह से प्यार था।''

''मैंने तब कहा था जब तुम भले-चंगे थे। पर, अब मुझे इस जगह से नफ़रत है। मुझे कोई कारण नहीं दिखता कि क्यों तुम्हारी टाँग के साथ ही ऐसा होना था? हमने ऐसा क्या किया है, जो हमारे साथ ऐसा हुआ?''

''मेरे ख़्याल से मैंने जो किया, वो यह कि मैं उस पर आयोडीन लगाना भूल गया, जब मैंने उसे पहली बार खरोंचा। फिर मैंने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि मुझे कभी संक्रमण नहीं होता था। फिर, बाद में जब घाव बढ़ने लगा तो दूसरे रोगाणुरोधकों के ख़त्म हो जाने के कारण, शायद मैंने प्रभावहीन कार्बोलिक घोल का इस्तेमाल किया, जिसके कारण सूक्ष्म रक्त नलिकाएँ लकवा-ग्रस्त हो गयीं और गैंग्रीन शुरू हो गया,'' उसने औरत की ओर देखा, ''और क्या?''

''मेरा मतलब वह नहीं है।''

''अगर तुमने अपने लोगों को छोड़ा नहीं होता, अपने स्साले उन लोगों छोड़कर मेरे पास नहीं आयी होतीं तो...''

''क्यों... मैं तुमसे प्यार करती थी... तुम ज़्यादती कर रहे हो, मैं तुमसे अब भी प्यार करती हूँ। मैं तुम से हमेशा प्यार करती रहूँगी। क्या तुम मुझसे प्यार नहीं करते?''

''नहीं'', आदमी ने कहा, ''मुझे नहीं लगता। मैंने तुमसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी प्यार नहीं किया।''

''हैरी, तुम क्या कह रहे हो? तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है।''

''नहीं, ख़राब होने के लिए मेरे पास कोई दिमाग़ है ही नहीं।''

''शराब मत पियो'', उसने कहा, ''प्रिय, मेहरबानी करके शराब मत पियो। हमें वह सब कुछ करना चाहिए, जो हम कर सकते हैं।''

''तुम करो'', उसने कहा, ''मैं थक गया हूँ।''

अब अपने दिमाग़ में उसने कैरागाच का एक रेलवे स्टेशन देखा और वह अपना बस्ता लिए खड़ा था और वह ओरिएन्ट एक्सप्रेस की हेडलाइट थी जो अब अँधेरे को चीर रही थी और फिर वह पीछे हटते सैनिकों के साथ थ्रेस छोड़कर जा रहा था। वह उन चीज़ों में से एक थी, जिसे उसने लिखने के लिए बचा कर रखा था। जब, सुबह नाश्ते के समय उसने खिड़की से बाहर देखा था और बुल्गारिया में पहाड़ियों पर बर्फ़ जमी हुई थी और नैन्सेन के सचिव ने बूढ़े आदमी से पूछा था कि क्या वह बर्फ़ थी और बूढ़े आदमी ने उस ओर देखा था और कहा था, नहीं वह बर्फ़ नहीं है। बर्फ़ पड़ने में अभी देरी है और सचिव ने दूसरी लड़कियों के लिए दोहराया था, नहीं, देखा तुमने, वह बर्फ़ नहीं है और उन सबने कहा था कि वह बर्फ़ नहीं है, हम ग़लत थे। पर, वह वाकई बर्फ़ थी और उसने उन सबको उस बर्फ़ में भेज दिया था, जब उसने आबादी की अदला-बदली की थी। और वह बर्फ़ थी, जिस पर वे चलते चले गये थे, जब तक कि उस सर्दी में वे मर नहीं गये थे।

और वह बर्फ़ थी, जो उस साल क्रिसमस के पूरे हफ़्ते गौअरटल में गिरती रही थी। उस साल वे लकड़हारे के मकान में रहे थे, जहाँ एक बड़ा चौकोर चीनी - मिट्टी का स्टोव था, जो आधा कमरा घेरे हुए था और वे बीच के वृक्ष के पत्तों से भरे गद्दों पर सोये थे, जिस समय एक भगोड़ा फ़ौजी अपने लहूलुहान पैर लिए बर्फ़ में चलकर आया था। उसने कहा था कि पुलिस उसके ठीक पीछे लगी है और उन्होंने उसे ऊनी जुराबें दी थीं और पुलिसवालों को तब तक बातों में उलझाये रखा था, जब तक कि उसके आने के निशान गिरती बर्फ़ में मिट नहीं गये।

क्रिसमस के दिन श्रुंज में बर्फ़ इतनी चमकीली थी कि वह आँखों में चुभती थी, जब आप घर से बाहर देखते थे और सबको गिरजाघर से वापस अपने घरों की ओर लौटता हुआ पाते थे। यही वह जगह थी, जहाँ वे पेशाब से पीली हुई उस चिकनी सड़क पर चलते गये थे, जो नदी के बगल से होकर चीड़ और देवदार से भरी खड़ी ढलान वाली पहाड़ियों की ओर जाती थी। उनके कंधों पर भारी स्कीज टँगे थे और यहाँ वे तेज़ी से दौड़ते हुए ग्लेशियर के नीचे की ओर उतरते चले गये थे। वहाँ बर्फ़ पाले की टिकिया की तरह चिकनी थी और चूरे की तरह हल्की थी और उसे वह शोरहीन तेज़ी याद थी जो एक रफ़्तार बनाती थी, जब आप किसी चिड़िया की तरह नीचे की ओर गिरते थे।

वे उस समय एक हफ़्ते तक मेडलेनर हाउस में बर्फ़ से घिरे रहे थे और बाहर बर्फ़ानी तूफ़ान चलता रहा था, जबकि भीतर वे धुंए वाली लालटेन की रोशनी में पत्ते खेलते रहे थे और हर बार बाज़ी की रक़म और ऊँची होती गयी थी, जबकि हेर्र लेंट और ज़्यादा हारता गया था। अंत में वह सब हार गया था—सब कुछ, सारा रुपया और उस मौसम में कमाया गया सारा लाभ और फिर अपना मूलधन भी। वह उसकी लंबी नाक को देख सकता था, जब वह ताश के पत्ते उठाता और रखता था। तब हमेशा जुआ खेला जाता था। जब बर्फ़बारी नहीं होती थी, तब भी आप जुआ खेलते थे और जब बहुत ज़्यादा बर्फ़ पड़ती थी, तब भी आप जुआ खेलते थे। उसने अपने जीवन के उस सारे समय के बारे में सोचा, जो उसने जुआ खेलते हुए बिताया था।

पर, उसने उसके बारे में एक पंक्ति भी नहीं लिखी थी, न ही उस ठंडे, चमकीले क्रिसमस के दिन के बारे में जहाँ मैदान के पार पहाड़ियाँ दिखती थीं और बार्कर अपने बमवर्षक विमान में बैठकर सीमा के उस पार छुट्टी पर जा रहे आस्ट्रियाई अफसरों की रेलगाड़ी पर बम गिराने आया था और रेलगाड़ी से कूदकर इधर-उधर भाग रहे सैनिकों को उसने मशीनगन की गोलियों से भून डाला था। उसे बाद में बार्कर का मेस में आकर पूरी घटना बताना याद था। वहाँ कितनी चुप्पी छा गयी थी और तब किसी ने कहा था, ''कमीने, हरामज़ादे क़ातिल।''

ये वे ही ऑस्ट्रियन थे, जिन्हें उन्होंने तब मार डाला था और जिनके साथ उसने बाद में स्कीइंग की थी। नहीं, ये ऑस्ट्रियन वे नहीं थे। हान्स, जिसके साथ वह सारे साल स्कीइंग करता रहा था, कैसर जागर्स में रह चुका था और जब वे खरगोशों का शिकार करने उस छोटी वादी के पार आरा मिल के ऊपर गये थे, तो उन्होंने पासूबियो में होने वाली लड़ाई और पर्टीका पर होने वाले हमले के बारे में बातें की थीं और उसने उन सबके बारे में कभी एक शब्द भी नहीं लिखा था—न ही मोंटे कौर्नो या सिएटे कौमम या आर्सिएडों के बारे में।

वह कितनी सर्दियों तक वौरलबर्ग या अर्लबर्ग में रहा था? चार साल तक, और तब उसे वह आदमी याद आया, जो एक लोमड़ी बेचना चाहता था, जब वे ब्लुदेंज पहुँचे थे। वे उस समय कुछ तोहफ़े ख़रीदना चाहते थे और उनके मुँह में जामुन का स्वाद था और चूरे जैसी बर्फ़ रास्ते में तेज़ी से फिसलती थी और वे सब गाना गाते हुए उस खड़ी ढलान की ओर जाने वाले अंतिम हिस्से की ओर दौड़ते चले गये थे। फिर वे तेज़ी से नीचे गिरे थे और उठकर दौड़ते हुए बगीचे में से निकलकर गड्ढे के पार सराय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे बर्फ़ानी सड़क पर पहुँच गये थे। उन्होंने पीठ पर लदे बस्ते उतार दिये थे, स्कीज खोल दिये थे और सराय की लकड़ी की दीवार के सहारे टिककर खड़े हो गये थे। खिड़की से लालटेन की रोशनी बाहर आ रही थी, जबकि भीतर धुएँ और नयी शराब की गर्माहट में अकॉर्डियन बजाया जा रहा था।

"पेरिस में हम कहाँ रुके थे?" उसने उस औरत से पूछा, जो अब, अफ्रीका में, उसके बगल में कैन्वस की कुर्सी पर बैठी थी।

"क्रिलोन में, तुम यह जानते हो।"

"मैं यह क्यों जानता हूँ?"

"यही वह जगह थी, जहाँ हम हमेशा ठहरते थे।"

"नहीं, हमेशा नहीं।"

"वहाँ और सेंट जरमेन में पविलियन हेनरी क्वात्र, तुम कहते थे कि तुम्हें उन जगहों से प्यार था।"

"प्यार एक घूरे का ढेर है", हैरी ने कहा, "और मैं वह मुर्गा हूँ, जो उस पर चढ़कर बाँग देता है।"

"अगर तुम्हें चले जाना है", उसने कहा, "तो क्या यह वाकई ज़रूरी है कि तुम पीछे छूट जाने वाली सभी चीज़ों को मार डालो? मेरा मतलब है, क्या तुम्हें सब कुछ ले जाना चाहिए? क्या तुम्हारे लिए अपने घोड़े और अपनी पत्नी को मार डालना और अपनी काठी और कवच को जला डालना ज़रूरी है?"

"हां", उसने कहा, "तुम्हारा वाहियात रुपया मेरा कवच था। मेरा अटेरन और मेरा कवच।"

"ऐसा मत कहो।"

"ठीक है, अब मैं ऐसा नहीं कहूँगा। मैं तुम्हें ठेस पहुँचाना नहीं चाहता।"

"इसके लिए अब काफ़ी देर हो चुकी है।"

"तो ठीक है, मैं तुम्हें ठेस पहुँचाता रहूँगा। यह ज़्यादा मनोरंजक है। मुझे तुम्हारे साथ जो एकमात्र चीज़ करनी अच्छी लगती थी, वह अब मैं नहीं कर सकता।"

"ओह, भगवान के लिए शेखी मारना बंद करो, समझे?"

उसने औरत की ओर देखा और उसे रोते हुआ पाया।

"सुनो", उसने कहा, "क्या तुम सोचती हो कि मुझे यह सब करने में मज़ा आ रहा है? मुझे नहीं पता, मैं यह सब क्यों कर रहा हूँ। मुझे लगता है, खुद को ज़िंदा रखने के लिए मारने की कोशिश करनी पड़ती है। जब हमने बात करनी शुरू की थी, तब मैं ठीक-ठाक था। मैं यह सब शुरू करना नहीं चाहता था। और, अब मैं टिकरी की तरह सनकी हूँ और तुम्हारे प्रति क्रूर हो सकता हूँ, हो रहा हूँ। प्रिये, मैं जो कहता हूँ, उस पर कोई ध्यान मत दो। मैं तुमसे वाकई प्यार करता हूँ। तुम जानती हो, मैं तुमसे प्यार करता हूँ। मैंने किसी और से ऐसे प्यार नहीं किया, जिस तरह मैं तुमसे प्यार करता हूँ।" वह फिर से अपनी पुरानी झूठ बोलने वाली भूमिका में आ गया।

"तुम मुझे वाकई प्यार करते हो?"

"कुतिया कहीं की," उसने कहा, "अमीर कुतिया। यह तो कविता हो गयी। अब मैं कविता से ओतप्रोत हूँ। सड़न और कविता। सड़ी हुई कविता।"

"बंद करो। हैरी, अब तुम शैतान में क्यों बदलना चाहते हो?"

"मैं कुछ भी छोड़ना नहीं चाहता", आदमी ने कहा, "मैं कुछ भी पीछे छोड़ना नहीं चाहता।"

अब शाम हो गयी थी और वह काफ़ी देर तक सो चुका था। सूरज पहाड़ों के पीछे चला गया था और समूचे मैदान पर परछाईं पड़ गयी थी और छोटे जानवर शिविर के पास ही घास चर रहे थे, तेज़ी से नीचे झुकते सिर और हिलती पूँछें। वह अब उन्हें झाड़ियों से दूरी बनाये चरते हुए देखता रहा। पक्षी अब ज़मीन पर प्रतीक्षा नहीं कर रहे थे। वे सब एक पेड़ पर लदे हुए थे। पक्षियों की संख्या अब पहले से ज़्यादा हो गयी थी। उसका नौकर बिस्तर के किनारे बैठा हुआ था।

" मेमसाहब शिकार करने गया", लड़के ने कहा, "क्या साहब कुछ माँगता?"

"कुछ नहीं।"

वह शिकार करने गयी थी और यह जानते हुए कि उसे शिकार करना कितना अच्छा लगता था, वह काफ़ी दूर चली गयी थी, ताकि वह उस छोटे से मैदान की शांति भंग न करे, जिसे वह देख सकता था। वह हमेशा उसका कितना ख़्याल रखती थी, उसने सोचा। कोई भी चीज़ जिसके बारे में वह जानती थी या जिसके बारे में पढ़ा था या जिसके बारे में कभी सुना था, वह उसे ज़रूर बताती।

यह उसकी ग़लती नहीं थी कि जब वह उसके पास गया, तब तक वह खोली हो चुका था। एक औरत यह कैसे जान सकती थी कि आप जो कुछ कहते थे, उसका कोई मतलब नहीं था, कि आप केवल आदत के कारण और आराम महसूस करने के लिए बोलते थे? जब उसके कुछ भी कहने का कोई मतलब नहीं रह गया, तब उसके झूठ भी औरतों के सामने ज़्यादा कारगर सिद्ध होते थे, उन लमहों की अपेक्षा जब वह उनसे सच बोलता था।

उसका झूठ बोलना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, जितना यह कि बोलने के लिए कोई सच था ही नहीं। वह अपना जीवन जी चुका था और अब उसका जीवन ख़त्म हो गया था और फिर वह अपना जीवन अलग-अलग लोगों और ज़्यादा रुपये के साथ दोबारा जीता रहा, उन्हीं जानी-पहचानी जगहों में से सर्वोत्तम जगहों पर और कुछ नयी जगहों पर।

आप सोचने से बचे रहते थे और यह सुविधाजनक था। आप भीतर से किसी ठोस चीज़ के बने होते थे, ताकि उस तरह चूर-चूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हो जाएँ, जैसे ज़्यादातर लोग टूट जाते थे और आप ऐसी रचना बना लेते थे, जैसे आपको इसकी कोई परवाह नहीं थी कि आप क्या काम किया करते थे, अब जबकि आप वह काम नहीं कर सकते थे। लेकिन, आप ख़ुद से कहा करते थे कि आप इन लोगों के बारे में लिखेंगे; उन लोगों के बारे में, जो बेहद अमीर थे, कि आप उनमें से एक नहीं थे, बल्कि उनके देश में एक जासूस थे; कि आप उन्हें छोड़ देंगे और उनके बारे में लिखेंगे और कम से कम पहली बार किसी ऐसे आदमी के द्वारा कुछ लिखा जाता, जो जानता था कि वह क्या लिख रहा था। पर, वह अब ऐसा कभी कहीं कर पाएगा, क्योंकि नहीं लिखने वाला हर दिन, आराम का हर दिन, वह बने रहने का हर दिन, जिससे उसे नफ़रत थी, उसकी क्षमता को भोथरा बनाता गया था और काम करने की उसकी संकल्प-शक्ति को कुंद करता गया था, जिससे कि अंततः वह कोई काम नहीं कर पाया था। जिन लोगों को अब वह जानता था, वे उसके काम नहीं करने पर ज़्यादा आराम महसूस करते थे। अफ़्रीका वह जगह थी, जहाँ वह अपने जीवन के अच्छे दिनों में सबसे ज़्यादा ख़ुश रहा था इसलिए वह यहाँ लौट आया था, ताकि दोबारा शुरूआत कर सके। उन्होंने यह शिकार-अभियान न्यूनतम आराम के साथ बिताया था। कोई तक़लीफ़ नहीं थी, पर कोई विलासिता भी नहीं थी और उसने सोचा था कि वह इसी तरह वापस प्रशिक्षित हो सकेगा, कि वह भी अपनी आत्मा पर पड़ी चर्बी कुछ उसी तरह दूर कर सकेगा, जैसे एक योद्धा पहाड़ियों में मेहनत और प्रशिक्षण के लिए जाता है, ताकि वह अपने शरीर की चर्बी कम कर सके।

उसे यह अच्छा लगा था। उसने कहा था कि वह इस सबसे प्यार करती थी। वह ऐसी किसी भी चीज़ से प्यार करती थी, जो उत्तेजक थी, जिससे दृश्य में बदलाव आता था, जहाँ नये लोग होते थे और जहाँ चीजें सुखद थीं। और, उसे काम करने की इच्छा-शक्ति के वापस लौटने का भ्रम महसूस हुआ था। अब यदि इसी तरह से इसका अंत होना था और वह जानता था कि ऐसा ही है, तो उसे ऐसा साँप क़तई नहीं बनना चाहिए, जो ख़ुद को ही काटता है, क्योंकि उसकी पीठ जख़्मी है। यह इस औरत की ग़लती नहीं थी। अगर यह औरत नहीं होती, तो कोई और औरत होती। यदि वह एक झूठ के सहारे जिया था, तो उसे उसी के सहारे मरने का प्रयास करना चाहिए। पहाड़ी के पार उसने बंदूक की गोली चलने की आवाज़ सुनी।

यह शिकार करने में बहुत माहिर थी। यह अमीर कुतिया, उसकी देखभाल करने वाली यह दयालु औरत और उसकी क्षमता को नष्ट करने वाली यह औरत। बकवास, उसने अपनी क्षमता को स्वयं नष्ट किया। वह इस औरत को क्यों दोष दे, क्योंकि वह उसे ठीक से रखती थी। उसने अपनी क्षमता का उपयोग न करके उसे नष्ट किया। ख़ुद को और जिन में उसे विश्वास था, उन्हें धोखा देकर उसे नष्ट किया। इतना ज़्यादा पीकर कि उसकी अनुभूति क्षमता भोथरी हो जाए, उसे नष्ट किया। अपने आलस्य से, काहिली से, वर्ग दंभ से, गर्व और पूर्वाग्रहों से और हर जायज़- नाजायज़ तरीक़े से उसे नष्ट किया। यह क्या थी? पुरानी किताबों की एक सूची? उसकी क्षमता आख़िर थी ही क्या? क्षमता तो वाकई थी, पर उसका उपयोग करने के बजाय उसने उसका सौदा किया था। उसने क्या किया था, यह कभी महत्त्वपूर्ण नहीं था, बल्कि यही महत्त्वपूर्ण रहा कि वह क्या कर सकता था। और, उसने क़लम या पेंसिल से अपनी आजीविका चलाने के बजाये किसी और चीज़ को चुना। यह अजीब था, था कि नहीं, कि जब भी वह किसी दूसरी औरत के प्यार में फँसा, तो उस औरत के पास हमेशा पिछली औरत से ज़्यादा रुपया होता था? लेकिन वह औरतों से बिल्कुल प्यार नहीं करता था, वह केवल झूठ बोलता था, जैसाकि इस औरत से भी, अब जिसके पास उन सब में सबसे ज़्यादा रुपया था, जिसके पास उतना रुपया था, जितना हो सकता था, जिसका कभी पति रहा था, जिसके बच्चे रहे थे, जिसके कई आशिक़ रहे थे, जिनसे वह असंतुष्ट रही थी, और जो एक लेखक, आदमी, साथी और शानदार संपत्ति के रूप में उससे बेहद प्यार करती थी। यह अजीब था कि जब वह उससे बिल्कुल प्यार नहीं करता था और झूठ बोलता था, तो वह उस औरत को उसके रुपये के बदले पूरी तृप्ति देता था-उन औरतों की तुलना में, जिन्हें उसने वाकई प्यार किया था।

हम सब जो करते हैं, शायद उसी के लिए बने होते हैं, उसने सोचा। जिस तरह आप अपनी आजीविका चलाते हैं, उसी में आपकी क्षमता होती है। उसने जीवन भर एक या दूसरे रूप में ओजस्विता को बेचा था और जब आपका अनुराग शामिल नहीं होता, तो आप रुपये के बदले कहीं ज़्यादा क़ीमत देते हैं; उसने इस सत्य को जान लिया था, पर वह अब इसके बारे में भी कभी नहीं लिखेगा। नहीं, वह इसके बारे में नहीं लिखेगा, हालाँकि यह लिखने योग्य था।

अब वह नज़र आयी, मैदान के बीच से होकर शिविर की ओर आती हुई। उसने जैकेट पहनी थी और उसके कंधे से राइफ़ल टँगी हुई थी। दो लड़के एक भेड़ा लादे हुए उसके पीछे-पीछे आ रहे थे। वह अब भी एक ख़ूबसूरत लगने वाली महिला थी, उसने सोचा। उसका शरीर प्रीतिकर था। बिस्तर के लिए उसमें बहुत क्षमता थी और सम्मान था। वह जन्नत की हूर तो नहीं थी। पर उसे उसका चेहरा पसंद था। वह बहुत सारी किताबें पढ़ती थी, घुड़सवारी करना और शिकार करना पसंद करती थी और वाकई बहुत ज़्यादा शराब पीती थी। जब वह काफ़ी युवा थी, तभी उसके पति की मृत्यु हो गयी थी और कुछ समय के लिए उसने ख़ुद को अपने हाल ही में बड़े हुए दो बच्चों के प्रति समर्पित कर दिया, जिन्हें उसकी ज़रूरत नहीं थी और वे उसके पास होने पर उलझन में पड़ जाते थे। फिर, उसने अपना ध्यान अपने अस्तबल के घोड़ों, अपनी किताबों और अपनी शराब की बोतलों की ओर लगाया। वह

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात का खाना खाने से पहले शाम को कुछ पढ़ना चाहती थी और पढ़ते हुए वह स्कॉच और सोडा लेती थी। रात के खाने के समय तक वह नशे में आ जाती थी और खाने के समय एक बोतल शराब पी लेने के बाद उसे आम तौर पर इतना नशा हो जाता था कि वह सो जाती थी।

यह आशिक़ों के आने से पहले की बात थी। जब उसके जीवन में आशिक़ आने लगे, तो उसने ज़्यादा पीना छोड़ दिया, क्योंकि तब उसे नींद के लिए नशे की आवश्यकता नहीं रही। लेकिन, सभी आशिक़ उसे उबा देते थे। उसका ब्याह एक ऐसे आदमी से हुआ था, जिसने उसे कभी उबाया नहीं था और ये आशिक़ उसे बेहद उबा देते थे।

फिर उसके दो बच्चों में से एक की विमान दुर्घटना में मौत हो गयी और फिर जब वह इस सदमे से उबरी, तो उसने आशिक़ों के लिए अपना दरवाज़ा बंद कर दिया और चूँकि शराब भी दर्द कम नहीं कर पाती थी, इसलिए उसे एक दूसरे ही जीवन की ज़रूरत थी। अचानक वह अकेलेपन से बेहद घबरा गयी थी, लेकिन वह किसी ऐसे व्यक्ति का साथ चाहती थी, जिसकी वह इज़्ज़त कर सके।

इसकी शुरूआत बहुत सादगी से हुई थी। वह जो लिखता था, उसे वह पसंद करती थी और उसने हमेशा उसके जीवन जीने की शैली को चाहा था। वह सोचती थी कि वह ठीक वही करता है, जो वह करना चाहता है। जिन तरीकों से उसने उसे पाया था और जिस तरीके से अंत में वह उससे प्यार करने लगी थी, वे सब एक क्रमिक विकास का हिस्सा थे, जिसमें उसने अपने लिए एक नया जीवन बना लिया था और अपने पुराने बचे जीवन का सौदा कर लिया था।

उसने अपने पुराने बचे जीवन को सुरक्षा और आराम के लिए बेच डाला था, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता था। न जाने और किसी चीज के लिए, उसे कुछ पता नहीं था। वह उसे उसकी इच्छा की कोई भी चीज़ ख़रीदकर दे सकती थी, वह इसे जानता था। वह स्साली एक बहुत अच्छी औरत थी। वह किसी और औरत की अपेक्षा जितनी जल्दी हो, उसके साथ बिस्तर में जाना चाहता था, बल्कि केवल उसे साथ ही, क्योंकि वह ज़्यादा अमीर थी, क्योंकि वह बहुत प्रीतिकर और गुणज्ञ थी और क्योंकि वह कभी नखरे नहीं करती थी। और, अब वह जीवन, जो उसने दोबारा बनाया था, ख़त्म हो रहा था, क्योंकि उसने दो हफ़्ते पहले अपने घुटने पर लगे काँटे की खरोंच पर आयोडीन नहीं लगाया था, जब वे हरिणों के एक झुंड का फ़ोटो लेने की कोशिश में आगे बढ़ रहे थे। वे हरिण सामने देखते हुए सिर उठाये खड़े थे, जबकि उनके नथुने हवा का जायज़ा ले रहे थे और उनके कान उस पहली आवाज़ को पकड़ने के लिए फड़फड़ा रहे थे, जो उन्हें झाड़ियों की दिशा में दौड़ा देती। और, इससे पहले कि वह फ़ोटो ले पाता, वे भाग खड़े हुए थे।

अब वह यहाँ पहुँच चुकी थी।

उसने खाट पर करवट बदली, ताकि वह उसकी ओर देख सके।

"हलो", उसने कहा।

"मैंने एक भेड़े का शिकार किया है", उसने उसे बताया, "मैं तुम्हें उसका बढ़िया शोरबा पिलाऊँगी और मैं नौकरों से कुछ आलुओं का भरता भी बनवाती हूँ... अब तुम कैसा महसूस कर रहे हो?"

"काफ़ी बेहतर।"

"कितनी अच्छी बात है। जानते हो, मुझे लगा था कि शायद तुम बेहतर महसूस करोगे। जब मैं शिकार के लिए निकली थी, तो तुम सो रहे थे।"

"मुझे अच्छी नींद आयी। क्या तुम दूर चली गयी थीं?"

"नहीं, उस पहाड़ के पीछे की ओर। मैंने भेड़े पर बहुत बढ़िया निशाना लगाया था।"

"तुम जानती हो, तुम कितना शानदार निशाना लगाती हो।"

"मुझे यह पसंद है। मैं अफ़्रीका से प्यार करती हूँ। अगर तुम ठीक हो जाओ, तो मुझे यहाँ इतना मज़ा आये, जितना पहले कभी नहीं आया। तुम्हें मालूम नहीं है, मुझे तुम्हारे साथ शिकार करने में कितना मज़ा आता है। मैं इस इलाके से प्यार करती हूँ।"

"मैं भी इससे प्यार करता हूँ।"

"प्रिये, तुम्हें मालूम नहीं, तुम्हें बेहतर देखकर मुझे कितना अच्छा लग रहा है। जब तुम बुरा महसूस कर रहे थे, तो मुझसे बर्दाश्त नहीं हो रहा था। तुम उस ढंग से मुझसे दोबारा बात नहीं करोगे, ठीक है?, वादा करो?"

"नहीं", उसने कहा। "मुझे याद नहीं, मैंने क्या कहा था।"

"तुम्हें मुझे बरबाद करने की ज़रूरत नहीं, समझे? मैं केवल एक अधेड़ औरत हूँ और वह करना चाहती हूँ, जो तुम करना चाहते हो। मैं पहले ही दो-तीन बार बरबाद हो चुकी हूँ। तुम मुझे दोबारा बरबाद नहीं करना चाहोगे, है न?"

"मैं तुम्हें बिस्तर में कुछ बार बरबाद करना चाहूँगा", उसने कहा।

"हाँ, वह बरबाद करने का अच्छा तरीका है। हम इसी तरह बरबाद किये जाने के लिए बने हैं। कल हवाई जहाज़ यहाँ आ जाएगा।"

"तुम कैसे जानती हो?"

"मुझे यकीन है, उसे आना ही है। लड़कों ने लकड़ियाँ और घास तैयार रखी हैं, ताकि ख़ूब धुएँ वाली आग जलायी जा सके। मैं वहाँ गयी थी और आज उसे दोबारा देखा। यहाँ उतरने के लिए काफ़ी जगह है और दोनों ओर हमने धुएँ वाली आग जलाने की तैयारी कर रखी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम्हें यह कैसे लगता है कि हवाई जहाज़ कल आ ही जाएगा?"

"मुझे यकीन है, वह कल आएगा। पहले ही उसके आने में देर हो चुकी है। तब, शहर में, वे तुम्हारी टाँग को ठीक कर देंगे और उसके बाद हम लोग एक दूसरे को बिस्तर में अच्छी तरह बरबाद करेंगे। उस तरह डरावनी बातें कर के नहीं।"

"क्या हम थोड़ी शराब पिएँ?... सूरज डूब चुका है।"

"क्या तुम्हें लगता है कि तुम्हें पीना चाहिए?"

"हाँ, मैं थोड़ी शराब पीना चाहता हूँ"

"ठीक है, इकट्ठे थोड़ी शराब पिएँगे... मोलो, व्हिस्की-सोडा लेकर आओ!" उसने आवाज़ लगायी।

"बेहतर होगा कि मच्छरों से बचने के लिए तुम अपने चमडे के जूते पहन लो", उसने उससे कहा।

"मैं नहाने तक रुकूँगी...."

अँधेरा घिरने तक वे पीते रहे और ठीक उस समय, जब पूरा अँधेरा छा गया और गोली मारने के लिए उतनी रोशनी नहीं थी, एक लकड़बग्घा खुले में से होते हुए पहाड़ की ओर गया।

"वह हरामज़ादा हर रात यहाँ से गुज़रता है", आदमी ने कहा।

"पिछले दो हफ़्तों से हर रात।"

"यह वही है, जो रात में शोर मचाता है। मुझे इसकी परवाह नहीं। हालाँकि, ये गंदे जानवर होते हैं।"

साथ-साथ पीते हुए अब कोई दर्द नहीं था, केवल एक ही स्थिति में पड़े रहने की परेशानी थी। लड़के आग जला रहे थे, उसकी परछाइयाँ शिविरों पर उछल रही थीं। उसे इस सुखद आत्म-समर्पण के जीवन में मौन-स्वीकृति वापस लौटती लगी। वह उसके प्रति कितनी अच्छी थी। दोपहर में वह क्रूर और अन्यायी हो गया था। वह एक बहुत अच्छी महिला थी, वाकई बढ़िया। और, ठीक तभी उसे लगा था कि वह मरने जा रहा है।

यह ख़्याल एक तेज़ी के साथ आया, यह पानी के आवेग की तरह नहीं था, न हवा के, बल्कि एक अचानक आये बुरी गंध वाले खालीपन का था और अजीब बात यह थी कि लकड़बग्घा किनारे पर दबे पाँव चलता नज़र आ रहा था।

"क्या बात है, हैरी?" उसने उससे पूछा।

"कुछ नहीं, "तुम बिस्तर के दूसरी ओर चली जाओ। उधर से हवा बह रही है।"

"क्या मोलो ने तुम्हारी पट्टी बदली?"

"हाँ, अब मैं बोरिक का इस्तेमाल कर रहा हूँ।"

"अब तुम कैसा महसूस कर रहे हो?"

"थोड़ा अस्थिर।"

"मैं स्नान करने भीतर जा रही हूँ", उसने कहा, "नहाकर मैं यहीं बाहर आ जाऊँगी। मैं तुम्हारे साथ ही खाना खाऊँगी और फिर हम तुम्हारी खाट अंदर ले चलेंगे।"

तो उसने खुद से कहा, हमने झगड़ना बंद करके अच्छा ही किया। उसने इस औरत से कभी ज़्यादा झगड़ा नहीं किया, जबकि जिन औरतों से उसने प्यार किया था, उनसे उसने इतना ज़्यादा झगड़ा किया था कि अंत में, हमेशा झगड़ते रहने के कारण उन्होंने उस सब को मार डाला था, जो उन्हें आपस में जोड़ता था। उसने बेहद प्यार किया था, बहुत ज़्यादा माँग की थी और अंततः उन सबको घिसकर ख़त्म कर डाला था।

उसे उस बार कौस्टैंटिनोपल में अपने अकेले होने का ख़्याल आया, जब बाहर जाने से पहले पेरिस में उनका झगड़ा हो गया था। सारा समय वह वेश्याओं के पास जाकर बिताता रहा था और तब, जब वह ख़त्म हो गया था और अपने अकेलेपन को मारने में असफल रहा था, बल्कि उसका अकेलापन और बढ़ गया था, तब उसने उसे पत्र लिखा था—पहले वाली लड़की को, बताया था कि कैसे वह अपने आपसी संबंधों को कभी नहीं भूल पाया... कि कैसे जब उसने उसे एक बार रीजेंस के बाहर देखा, तो वह बिल्कुल अशक्त और भीतर से बीमार महसूस करने लगा और यह कि वह कुछ-कुछ उसके जैसी दिखने वाली एक औरत का बुलवार्ड के पास पीछा करता रहा, यह देखने से डरते हुए कि ये औरत वह नहीं थी। यह जानने से डरते हुए कि जो अहसास यह उसे दे रहा था, वह उसे छिन जाएगा। कि कैसे उसने उसके साथ जो किया था, उसका कोई मतलब नहीं था, क्योंकि वह जानता था कि उसको चाहने से वह खुद को नहीं रोक सकता था। उसने यह चिट्ठी क्लब में लिखी थी, बिल्कुल शांत और मर्यादित ढंग से और उसे न्यूयॉर्क के पते पर भेज दिया था, जिसमें उसने उससे कहा था कि वह पेरिस में उसके दफ़्तर के पते पर उसे लिखे। उसे यह सुरक्षित लगा था। और, उस रात उसने उसकी कमी इतनी शिद्दत से महसूस की थी कि इसके कारण उसने खुद को भीतर से बेहद खाली और बीमार महसूस किया था और वह टैक्सिम तक यूँ ही टहलते हुए चला गया था। उसने सड़क के किनारे खड़ी एक वेश्या से बात की थी और उसे रात के खाने पर साथ ले गया था। वह उसे एक जगह ले गया था, ताकि बाद में उसके साथ नाच सके। वह बुरी तरह नाची थी। फिर वह उसे छोड़कर एक उत्तेजित आर्मेनियाई वेश्या के साथ हो लिया, जिसने अपना पेट उसके साथ ऐसे रगड़ा था कि उसका बदन बेहद उत्तेजित हो उठा था। उसने उसे एक ब्रिटिश फ़ौजी से झगड़ा करने के बाद हासिल किया था। फ़ौजी ने उसे ललकारा था कि बाहर आ जा, देखता हूँ और वे अँधेरे में गली में कंकड़, पत्थरों पर लड़े थे। उसने उसे जबड़े के बगल में दो बार ज़ोर से मारा था और जब वह फिर भी नीचे नहीं गिरा था, तो वह समझ गया था कि इस बार किसी तगड़े आदमी से पाला पड़ा है। फ़ौजी ने उसे पेट में मारा था, फिर उसकी आँख के बगल में मारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उसने अपना बायाँ घूँसा मारा था और वह निशाने पर लगा था और फ़ौजी उसके ऊपर गिरा था। फौजी ने उसका कोट पकड़कर उसकी आस्तीन फाड़ दी थी और उसके कान के पीछ दो ज़ोरदार घूँसे लगाये थे। जब फ़ौजी नीचे गिरा तो उसका सिर ज़मीन से टकराया था और वह उस लड़की के साथ भाग खड़ा हुआ था, क्योंकि उन्होंने घुड़सवार पुलिस के आने की आवाज़ सुनी थी। वे एक टैक्सी में घुसे और बौस्फ़ोरस से होते हुए रिमिली-हिस्सा पहुँचे थे और वापस उस ठंडी रात में बिस्तर पर गये थे और वह उतनी ही पूर्ण-विकसित महसूस हुई थी, जितनी दिखी थी; लेकिन साथ ही वह चिकनी, गुलाब की पंखुडी-सी, चाशनी-सी, चिकने पेट वाली और भारी स्तनों वाली थी और उसके नितंबों के नीचे किसी तकिए की ज़रूरत महसूस नहीं हुई थी। सूरज उगने और उसके जागने से पहले ही वह उसे छोड़कर चल दिया था और वह आँख के नीचे चोट का निशान लिये पेरा महल पहुँचा था और उसने अपना कोट कंधे पर डाला हुआ था, क्योंकि उसकी एक आस्तीन ग़ायब थी।

उसी रात वह ऐनेतोलिया के लिए रवाना हो गया था और उस यात्रा पर, वे उस पूरे दिन पोस्त के खेतों के बीच चलते रहे थे, जिन्हें अफ़ीम के लिए उगाया जाता था। यह सब आपको कितना अजीब लगता था, जब सभी दिशाएँ ग़लत लगती थीं। अंत में, वे वहाँ पहुँचे थे, जहाँ उनको कौस्टैंटीन से नये आये अफ़सरों के साथ हमला करना था। वे स्साले अफ़सर कुछ भी नहीं जानते थे और तोपखाने ने फ़ौजियों के बीच में गोला दाग दिया था और ब्रिटिश पर्यवेक्षक बच्चे की तरह रोया था।

यह वह दिन था, जब उसने सफ़ेद वर्दी पहने मरे हुए लोगों की ऐसी दुर्दशा देखी थी। तुर्क फ़ौजी लगातार आगे बढ़ते गये थे और उसने सफ़ेद वर्दी पहने लोगों को पलटकर भागते हुए और अफ़सरों को भगोड़े सैनिकों पर गोली चलाते देखा था और फिर खुद अफ़सरों को भी भागते देखा था। वह तथा ब्रिटिश पर्यवेक्षक भी तब तक भागे थे, जब तक कि उसके फेफड़े दर्द नहीं करने लगे और उसका मुँह सूख नहीं गया। वे कुछ चट्टानों के पीछे रुके थे और उन्होंने तुर्क फ़ौजियों को पहले की तरह लगातार आगे बढ़ते हुए देखा। बाद में, उसने वे चीज़ें देखी थीं, जिनकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था और उसके बाद उसने उनसे भी बुरी चीज़ें देखी थीं। इसलिए, जब वह उस बार वापस पेरिस लौटा, तो वह उनके बारे में बात नहीं कर सका और किसी के द्वारा उनका ज़िक्र किया जाना भी नहीं सह सका। वहाँ कॉफ़ी हाउस के बगल से जब वह गुज़रा, तो उसने उस अमेरिकी कवि को देखा, जिसके सामने तश्तरियों का ढेर लगा था और जिसके आलू-नुमा चेहरे पर एक बेवकूफ़ाना भाव था और जो 'दादा आंदोलन' के बारे में एक रोमानियाई आदमी को बता रहा था, जो अपना नाम त्रिस्तन जारा बताता था और जो हमेशा चश्मा पहनता था और जिसे हमेशा सिरदर्द रहता था। वह वापस अपने आवास पर अपनी पत्नी के पास आ गया, जिसे वह फिर से प्यार करने लगा था। उनका झगड़ा ख़त्म हो चुका था, पागलपन चला गया था। वह घर आकर खुश था। उसके दफ़्तर ने उसकी चिट्ठियाँ उसके फ़्लैट पर भेज दी थीं। और तब, एक सुबह उसकी लिखी चिट्ठी के जवाब में वह चिट्ठी आ गयी। जब उसने लिखावट देखी, तो वह निरुत्साह हो गया और उसने उस चिट्ठी को एक और चिट्ठी के नीचे छिपाने की कोशिश की, पर उसकी पत्नी ने पूछा, "वह चिट्ठी किसने लिखी है, प्रिय ?" और वह उनके संबंधों के अंत की शुरुआत थी।

उसने उन सभी औरतों के साथ बिताये अच्छे पलों को याद किया और आपसी झगड़ों को भी। वे सब झगड़ा करने के लिए सबसे बढ़िया जगहें चुनती थीं। और, जब वह सबसे अच्छा महसूस कर रहा होता, तभी वे झगड़ा क्यों करती थीं ? उसने उन सब के बारे में कभी नहीं लिखा, क्योंकि अव्वल तो वह किसी को ठेस पहुँचाना नहीं चाहता था और फिर यह लगा था कि इन सब के अलावा भी लिखने के लिए काफ़ी कुछ था। लेकिन, उसने हमेशा सोचा था कि अंत में वह इन सब के बारे में लिखेगा। लिखने के लिए इतना कुछ था। उसने दुनिया को बदलते हुए देखा था; केवल घटनाएँ ही नहीं। हालाँकि उसने काफ़ी घटनाएँ भी देखी थीं और लोगों को भी देखा था, लेकिन उसने सूक्ष्म बदलाव देखे थे और वह याद रख सकता था कि लोग अलग-अलग समय पर कैसे थे। वह इन सबसे गुज़रा था और उसने यह सब देखा था और इनके बारे में लिखना उसका कर्तव्य था; लेकिन अब वह इनके बारे में कभी नहीं लिख पाएगा।

"तुम कैसा महसूस कर रहे हो ?" उसने पूछा।

वह स्नान करने के बाद शिविर से बाहर आ गयी थी।

"बिल्कुल ठीक।"

"क्या तुम अब खा सकते हो ?" उसने उसके पीछे मेज़ उठाये हुए मोलो को देखा और दूसरा लड़का तश्तरियाँ लिये था।

"मैं लिखना चाहता हूँ", उसने कहा।

"तुम्हें थोड़ा शोरबा लेना चाहिए, ताकि तुम्हारी ताक़त बरकरार रहे।"

"मैं आज रात मरने वाला हूँ", उसने कहा, "मुझे अपनी ताक़त बरबकरार रखने की ज़रूरत नहीं है।"

"हैरी, मेहरबानी करके अतिनाटकीय मत बनो", उसने कहा।

"तुम अपनी नाक का इस्तेमाल क्यों नहीं करतीं? अब मैं अपनी आधी जाँघ से ऊपर तक सड़ चुका हूँ। यह शोरबा लेकर मैं किसे बेवकूफ़ बनाऊँ?... मोलो, व्हिस्की - सोडा लाओ।"

"मेहरबानी करके शोरबा ले लो", उसने नरमी से कहा।

"ठीक है।"

शोरबा बहुत गरम था। उसने उसे कप में तब तक पकड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा, जब तक वह पीने लायक ठंडा नहीं हो गया और फिर उसने बिना बोले उसे एक बार में गले से नीचे उतार लिया।

"तुम एक बहुत अच्छी औरत हो", उसने कहा, "मेरी ओर कोई ध्यान मत दो।"

उसने उसकी ओर उस सुपरिचित, प्यारे चेहरे से देखा, जो कि 'स्पर' और 'टाउन ऐंड कंट्री' पत्रिकाओं में छपे चेहरों जैसा था, केवल शराब पीते रहने के कारण चेहरा थोड़ा ढल गया था। केवल बिस्तर में जाते रहने के कारण चेहरा थोड़ा ख़राब हो गया था, लेकिन 'टाउन ऐंड कंट्री' कभी भी वे बढ़िया स्तन और वे उपयोगी जाँघें और वे पीठ पर हल्के - हल्के सहलाने वाले हाथ नहीं दिखाता था। और, जब उसने उसकी सुपरिचित, ख़ुशनुमा मुस्कान देखी, तभी उसने मौत को दोबारा आते हुए महसूस किया। इस बार उसके आने में कोई आवेग नहीं था। वह एक झोंका था, जैसे हवा का झोंका हो, जिससे मोमबत्ती की लौ थरथरा कर कुछ ऊँची हो जाती है।

"वे बाद में मेरी मच्छरदानी बाहर लाकर पेड़ से टाँग सकते हैं और आग जला सकते हैं। मैं आज रात शिविर में नहीं जा रहा। भीतर जाने से कोई फ़ायदा नहीं। आज रात आसमान साफ़ है, कोई बारिश नहीं होगी।"

तो इस तरह से आप मरते थे, फुसफुसाहटों में, जिन्हें आप नहीं सुन सकते। ख़ैर, अब कोई झगड़ा नहीं होगा, वह इसका वादा कर सकता था। एक अनुभव, जो उसे कभी नहीं हुआ, वह उसे ख़राब नहीं करना चाहता था। शायद वह कर ही डाले। आप सब कुछ ख़राब कर देते, पर शायद वह ऐसा न करे।

"तुम डिक्टेशन तो नहीं ले सकतीं... ले सकती हो क्या?"

"मैंने कभी सीखा नहीं"।

"ठीक ही है।"

अब समय भी तो नहीं था, हालाँकि लगता था, जैसे सब कुछ थोड़े में ही समेटा जा सकता था, ताकि आप सब कुछ एक ही परिच्छेद में व्यक्त कर सकते, अगर आप उसे सही ढंग से कर पाते।

एक पहाड़ी पर, झील के ऊपर एक लकड़ी का बना मकान था, जिसे गारे से सफ़ेद रंग में रंग दिया गया था। दरवाज़े के बगल में एक खंभे पर घंटी बँधी थी, जिससे लोगों को खाना खाने के लिए भीतर बुलाया जाता था। घर के पीछे खेत थे और खेतों के पीछे जंगल था। घर से गोदी तक पहाड़ी पीपल के पेड़ों की एक कतार थी। दूसरे पीपल के पेड़ भी उस जगह से आगे तक लगे हुए थे। जंगल के किनारे से होकर एक सड़क पहाड़ो तक जाती थी और उस सड़क के किनारे वह काली अंचियाँ तोड़ता था। फिर वह लकड़ी का बना मकान आग से जल गया और खुले अलाव के पास रैक पर रखी सारी बंदूकें भी जल गयीं। बाद में उनकी नलियाँ, जिनका सीसा मैगज़ीनों में पिघल गया था, राख के ढेर पर पड़ी रहती थीं और उन्हें लोहे की बड़ी केतलियों के लिए सज्जीदार पानी बनाने के काम में लाया जाता था। आप दादाजी से पूछते कि क्या आप उन्हें खेलने के लिए ले सकते हैं, और वे कहते—नहीं। आप समझ सकते हैं कि वे अब भी उन्हीं की बंदूकें थीं और उन्होंने कोई और बंदूक कभी नहीं ख़रीदी। न ही वे फिर कभी शिकार पर गये। घर को अब दोबारा उसी जगह पर इमारती लकड़ी से बनाया गया और सफ़ेद रंग से रँग दिया गया और उसकी ड्योढ़ी से आप पहाड़ी पीपल और उसके आगे झील को देख सकते थे; लेकिन बंदूकें दोबारा कभी नहीं आयीं। बंदूकों की नलियाँ, जोकि लकड़ी के मकान की दीवार पर टँगी रहती थीं, बाहर राख के ढेर पर पड़ी रहीं और किसी ने भी उन्हें कभी नहीं छुआ।

युद्ध के बाद ब्लैक फ़ॉरेस्ट नामक जंगल में हमने एक मछलियों से भरी नदी किराये पर ले ली और वहाँ तक पहुँचने के दो रास्ते थे। एक रास्ता ट्रिबर्ग की घाटी से नीचे की ओर जाता था, जोकि पेड़ों की छाया में घाटी से होकर गुज़रने वाली सफ़ेद सड़क के किनारे-किनारे था, जो फिर बगल वाली सड़क से होकर ऊपर पहाड़ों के बीच से होता हुआ कई छोटे फ़ार्मों के बगल से गुज़रता था, जहाँ बड़े-बड़े घर थे। वहाँ वह सड़क अंत में उस नदी को पार करती थी। यही वह जगह थी, जहाँ हमने मछली पकड़ना शुरू किया था।

दूसरे रास्ते के लिए हमें जंगल के किनारे-किनारे खड़ी ढलान पर चढ़ना पड़ता था और फिर पहाड़ों के ऊपर से होकर चीड़-देवदार के जंगल के बीच से गुज़रना पड़ता था और फिर एक घास के मैदान के किनारे पहुँचकर नीचे पुल तक जाना पड़ता था। नदी के किनारे-किनारे पेड़ लगे हुए थे और नदी ज़्यादा चौड़ी नहीं थी, बल्कि सँकरी, साफ़ और तेज़ बहने वाली थी। जहाँ पेड़ों की जड़ों की मिट्टी पानी ने खोद डाली थी, वहाँ गड्ढे बन गये थे। ट्रिबर्ग में होटल के मालिक के लिए यह समय बड़ा अच्छा था। मौसम बेहद मनोरम था और हम सभी बहुत अच्छे दोस्त थे। अगले साल मुद्रा-स्फीति का सामना करना पड़ा और उसने पिछले साल जो रुपया कमाया था, वह होटल चलाने के लिए ज़रूरी रसद ख़रीदने के लिए काफ़ी नहीं था और उसने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली।

आप इसे लिखा सकते थे, पर आप कांट्रेस्कॉर्प को नहीं लिखवा सकते थे, जहाँ फूल बेचने वाले गली में अपने फूलों को रँगते थे और रंग वहाँ खड़ंजे पर बहता रहता था। जहाँ से बसें शुरू होती थीं और बूढ़े आदमी और औरतें हमेशा शराब के नशे में धुत रहते थे। ठंड से बच्चों की नाक बहती रहती थी और कॉफ़ी हाउस में गंदे पसीने की गंध रहती थी और वहाँ ग़रीबी थी और नशे में धुत लोग भरे रहते थे। बल् मुसेट की ऊपरी मंज़िल पर वेश्याएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती थीं। द्वारपाल किसी फ़ौजी का मनोरंजन कर रहा होता था, जिसका घोड़े के बालों वाला हेल्मेट कुर्सी पर पड़ा रहता था। हॉल के दूसरे छोर पर एक महिला बैठी होती थी, जिसका पति साइकिल रेस में भाग लेता था और उस सुबह क्रेमरी में उसकी खुशी का ठिकाना न रहा, जब उसने ला-ऑटो नामक अख़बार खोला और पाया कि उसका पति पेरिस रेस में, जो उसकी पहली बड़ी प्रतियोगिता थी, तीसरे स्थान पर रहा था। वह शरमा गयी थी और फिर हँसने लगी थी और फिर हाथ में खेल की ख़बरों वाला पीला अख़बार लिए खुशी से रोती हुई सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर चली गयी थी। जो औरत ब्लू मुसेट काफ़ी हाउस चलाती थी, उसका पति टैक्सी-ड्राइवर था। जब हैरी को कॉफ़ी सुबह हवाई जहाज़ पकड़ना था, तो उस औरत के पति ने उसे उठाने के लिए उसके दरवाज़े पर दस्तक दी और उन दोनों ने चलने से पहले शराबख़ाने में जाकर एक-एक गिलास शराब पी। वह उस इलाके में अपने पड़ोसियों को जानता था, क्योंकि वे सभी ग़रीब थे।

उस जगह पर दो तरह के लोग रहते थे—शराबी और खेल-प्रेमी। शराबी अपनी ग़रीबी को शराब पी-पी कर मारते थे, खेल प्रेमी उसे कसरत कर-कर के भुलाते थे। वे सब कम्यूनार्डों के वंशज थे और उन्हें अपनी राजनीति जानने के लिए कोई संघर्ष करने की ज़रूरत नहीं थी। वे जानते थे कि किन लोगों ने उनके पिता, रिश्तेदारों, भाइयों और दोस्तों को मारा था, जब वर्सेल्स के सैनिक आये थे और कम्यून के बाद शहर पर कब्ज़ा कर लिया था और हर उस व्यक्ति को पकड़कर मार डाला था, जो कठोर हाथों वाला था या जो टोपी पहनता था या जिसके पास ऐसी कोई भी निशानी थी कि वह मज़दूर-वर्ग का था। उस ग़रीबी में और सड़क के पार उस इलाके में जहाँ शराब की सहकारिता थी, उसने उस सब की शुरूआत करने की बात लिखी थी, जो उसे करना था। पेरिस का कोई और भाग नहीं था, जिसे वह इतना चाहता था। फैले हुए पेड़, सफ़ेद प्लास्टर वाले पुराने घर, जिन्हें नीचे से भूरे रंग में रँग दिया गया था। गोल चौराहे पर हरे रंग की लंबी बसें, खड़ंजे पर बिखरे फूल के जामुनी रंग, कार्डिनल लेमोएन की पहाड़ी से नदी की ओर जाती हुई गहरी ढलान और दूसरी ओर मुफ़ेतार्द की सँकरी भीड़ भरी दुनियाँ। वह सड़क, जो पैंथअन की ओर जाती थी और दूसरी सड़क जिस पर वह हमेशा साइकिल चलाता था, उस पूरे इलाके में एकमात्र पक्की सड़क थी, पहियों के नीचे चिकनी थी। वहाँ ऊँचे और सँकरे मकान थे और एक ऊँचा, सस्ता होटल था, जहाँ पॉल वेरलेन की मृत्यु हुई थी। जिस मकान में वे रहते थे, उसमें केवल दो कमरे थे और उसका कमरा उस होटल की ऊपरी मंज़िल पर था, जिसके लिए उसे हर महीने साठ फ्रांक देने पड़ते थे और वहीं वह अपना लेखन-कार्य करता था। वहाँ से वह दूसरे मकानों की छतें और चिमनियाँ और पेरिस की सभी पहाड़ियाँ देख सकता था।

उस कमरे से आप केवल लकड़ी और कोयला बेचने वाले की जगह देख सकते थे। वह शराब भी बेचता था, घटिया शराब। बुशेरी शेवलीन के बाहर सुनहरे घोड़े का सिर लटका था, जहाँ पीली, सुनहरी और लाल खालें खुली खिड़की के भीतर लटकी दिखती थीं। वहाँ हरे रंग में रँगी सहकारी दुकान थी, जहाँ वे शराब ख़रीदते थे, अच्छी और सस्ती शराब। वहाँ प्लास्टर की दीवारें और पड़ोसियों की खिड़कियाँ थीं। वे पड़ोसी, जो खिड़कियाँ खोल कर बातें करते रहते थे, जब रात में कोई नशे में धुत होकर एक ख़ास फ्रांसीसी अंदाज़ में कराहता हुआ गली में पड़ा रहता। "पुलिस वाला कहाँ है? जब आप नहीं चाहते, तब वह स्साला हमेशा मौजूद रहता है। ज़रूर वह किसी द्वारपालिन के साथ सो रहा होगा। एजेंट को बुलाओ"... तब कोई किसी खिड़की से एक बाल्टी पानी नीचे फेंकता और कराहना बंद हो जाता। "वह क्या है, पानी? अहा, क्या बुद्धिमत्ता है।" और खिड़कियाँ बंद हो जातीं। मैरी आठ घंटे काम करने के विरुद्ध आवाज़ उठाते हुए कहती, "अगर एक पति छह बजे तक काम करता है, तो वह घर आते-आते केवल थोड़ी शराब पीता है और ज़्यादा पैसा बरबाद नहीं करता। अगर वह केवल पाँच बजे तक काम करता है, तो वह हर रात नशे में धुत होकर लौटता है और उसके पास कोई पैसा नहीं बचता। वह आख़िर मज़दूर की पत्नी होती है, जिसे काम करने के घंटों में कमी होने के कारण दुख झेलना पड़ता है।"

"क्या तुम्हें कुछ और शोरबा नहीं चाहिए ?" औरत ने अब उससे पूछा।

"नहीं, शुक्रिया। यह काफ़ी अच्छा है।"

"थोड़ा-सा और ले लो।"

"मैं एक व्हिस्की-सोडा लेना चाहूँगा।"

"वह तुम्हारी सेहत के लिए ठीक नहीं।"

"नहीं, वह मेरी सेहत के लिए बुरा है। कोल पोर्टर ने ये शब्द लिखकर इसे संगीतबद्ध किया था। यह जानकारी भी दी थी कि तुम मेरे लिए बेहद चिंतित हो।"

"तुम जानते हो कि मुझे तुम्हारा शराब पीना पंसद है।"

"हाँ, हाँ, बिल्कुल। केवल यह मेरी सेहत के लिए बुरा है।"

जब वह चली जाएगी, उसने सोचा, तो मुझे जितनी शराब चाहिए होगी, मैं पिऊँगा। मुझे जितनी चाहिए होगी उतनी नहीं, बल्कि जितनी होगी, उतनी। ओह, वह थक गया था। बेहद थक गया था। अब वह कुछ देर के लिए सोने जा रहा था। वह चुपचाप पड़ा रहा और मौत वहाँ नहीं थी। वह शायद दूसरी गली में चली गयी होगी। वह जोड़ों में जाती थी, साइकिलों पर और खड़ंजे पर बिल्कुल चुपचाप चलती थी।

नहीं, उसने पेरिस के बारे में कभी नहीं लिखा था। उस पेरिस के बारे में कभी नहीं, जिसकी वह चिंता करता था। पर, उन बाकी चीज़ों का क्या किया जाए, जिनके बारे में उसने कभी नहीं लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था ?

उस पशु-फ़ार्म और उस चाँदी-सी धूसर कपूर की झाड़ी का क्या किया जाए, जहाँ नहरों में साफ़ पानी तेज़ी से बहता था और चारों ओर लसुनघास की घनी हरियाली थी। एक पगडंडी ऊपर पहाड़ों तक जाती थी और गर्मियों में पशु हरिणों की तरह शर्मीले थे। वे चीख़ते-चिल्लाते थे और लगातार शोर मचाते थे और झुंड में धूल उड़ाते हुए धीरे-धीरे चलते थे, जब आप पतझड़ में उन्हें पहाड़ों से नीचे लाते। पहाड़ों के पीछे, शाम की रोशनी में चोटी बिल्कुल स्पष्ट दिखती थी और चाँदनी में नहायी पगडंडी पर चलते हुए आप नीचे की ओर उतरते, उस पगडंडी पर, जो घाटी में चमक रही होती। अब उसे अँधेरे में घोड़े की पूँछ पकड़े अपना नीचे उतरना याद आया, जब उसे कुछ भी नहीं दीख पाता था और उसे वे सब कहानियाँ याद आयीं, जिन्हें वह लिखना चाहता था।

उसे वह बुद्धू छोकरा नौकर याद आया, जिसे उस बार पीछे पशु फ़ार्म पर छोड़ दिया गया था और निर्देश दिया गया था कि वह किसी को भी सूखी घास नहीं ले जाने दे, और फोर्क्स का वह हरामी बूढ़ा याद आया, जिसने अपने लिए काम करने वाले उस छोकरे को पीटा था, जब उसने कुछ खाने के लिए काम करना बंद किया था। फिर बुड्ढे ने भुसौरे में आने की कोशिश की थी, तो उसने उसे गोली मार दी थी और जब वे वापस पशु फ़ार्म पर लौटे, तो वह एक हफ़्ते से मरा बाड़े में दबा पड़ा था और कुत्तों ने लाश का एक हिस्सा नोच खाया था। पर, जितनी लाश बची थी, उसे एक कंबल में लपेटकर रस्सी से स्लेज पर बाँध दिया था और उसे खींचने में उस छोकरे से मदद ली थी और दोनों उसे स्कीज़ पर डालकर सड़क पर खींचते गये थे, और साठ मील दूर शहर ले गये थे, जहाँ छोकरे को पुलिस के हवाले कर दिया था। उसे बिल्कुल नहीं पता था कि उसे गिरफ़्तार कर लिया जाएगा। उसने सोचा था कि उसने अपना कर्तव्य निभाया था और आप उसके दोस्त थे और उसे ईनाम दिया जाएगा। उसने बुड्ढे की लाश को शहर पहुँचाने में मदद की थी, ताकि सब लोग जान जाते कि वह बुड्ढा कितना घटिया आदमी था और कैसे उसने कुछ चारा चुराने की कोशिश की थी, जोकि उसका नहीं था। जब, पुलिस अफ़सर ने छोकरे को हथकड़ियाँ पहनायीं, तो उसे यकीन नहीं हुआ। वह एक कहानी थी, जो उसने लिखने के लिए बचाकर रखी थी। वह वहाँ से संबंधित कम से कम बीस बढ़िया कहानियाँ जानता था और उसने कभी एक भी कहानी नहीं लिखी थी, क्यों?

जब से वह उसे मिल गया था, वह उतना ज़्यादा नहीं पीती थी। पर, यदि वह जीवित बचा रहा, तो वह उसके बारे में कभी नहीं लिखेगा, वह अब यह जानता था। न ही उनमें से किसी के बारे में लिखेगा। अमीर लोग उबाने वाले थे और वे बहुत ज़्यादा शराब पीते थे और वे बहुत ज़्यादा बैकगैमन खेलते थे। वे नीरस थे और खुद को दोहराने वाले थे। उसे बेचारा जूलियन और अमीरों के प्रति उसका रोमानी भय याद आया और याद आया कि कैसे एक बार उसने एक कहानी शुरू की थी, जिसकी शुरूआत ऐसे होती थी—"बेहद अमीर लोग आपसे और हमसे अलग क़िस्म के होते हैं।" और कैसे किसी ने जूलियन से कहा था कि हाँ, उनके पास ज़्यादा पैसा होता है। लेकिन, जूलियन को यह हास्यकर नहीं लगा। वह सोचता था कि उनकी एक विशेष मोहक प्रजाति होती है और जब उसे पता चला कि वे ऐसे नहीं थे, तो वह उतना ज़्यादा तबाह हो गया, जितना और कोई चीज़ उसे तबाह करती।

वह उन लोगों से नफ़रत करता था, जो तबाह हो जाते थे। आपको उसे चाहना नहीं पड़ता, क्योंकि आप उस चीज़ को समझ सकते थे। उसने सोचा था कि वह किसी भी चीज़ को हरा सकता था, क्योंकि यदि वह परवाह नहीं करे, तो कोई भी चीज़ उसे चोट नहीं पहुँचा सकती।

ठीक है, अब वह मौत की परवाह नहीं करेगा। एक चीज़, जिससे वह हमेशा डरता था, वह दर्द था। वह किसी भी आदमी की तरह तब तक दर्द को सह सकता था, जब तक वह काफ़ी देर तक नहीं होता और उसे थका नहीं देता। लेकिन यहाँ उसके साथ ऐसा कुछ हुआ था, जिससे उसे भयंकर पीड़ा हुई थी और ठीक उस समय, जब उसे लगा था कि टूट जाएगा, दर्द बंद हो गया था।

उसे काफ़ी समय पहले की बात याद आयी, जब बम बरसाने वाले, अफ़सर विलियमसन पर एक जर्मन गश्ती दल ने एक बम फेंककर उसे घायल कर दिया था, जब वह उस रात कँटीले तारों के बीच से लौट रहा था और दर्द से चीख़ते हुए उसने सबसे याचना की थी कि वे उसे मार डालें। वह एक मोटा आदमी था, बेहद बहादुर और एक बढ़िया अफ़सर था, हालाँकि उसे अनोखे दिखावे करने की लत थी। लेकिन, उस रात वह कँटीले तारों में फँस गया था। एक भभूके की रोशनी में वह दिख रहा था और उसकी अंतड़ियाँ कँटीले तारों में फँसकर बाहर निकल आयी थीं। इसलिए, जब वे उसे वहाँ से निकालकर भीतर लाने गये, तो उन्हें उसकी फँसी हुई आँतों को काटकर उसे तारों से छुड़ाना पड़ा। "मुझे गोली मार दो, हैरी! भगवान के लिए मुझे गोली मार दो।" एक बार उनमें बहस हो गयी थी कि भगवान आप के पास कभी कोई ऐसी चीज़ नहीं भेजता, जिसे आप नहीं सह सकते और किसी का मत यह था कि इसका मतलब था कि एक समय ऐसा आता है, जब आप दर्द से ऊपर उठ जाते हैं। लेकिन, उसने हमेशा विलियमसन की वह रात याद रखी थी। विलियमसन किसी भी चीज़ से ऊपर नहीं उठ सका था, जब तक कि उसने अपनी सभी मार्फ़िया की गोलियाँ, जो उसने अपने लिए बचाकर रखी थीं, उसे नहीं दे दी थीं और फिर भी उनका कोई असर नहीं हुआ था।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी, अब उसके साथ जो कुछ हो रहा था, वह बेहद आसान था और अगर समय बीतने के साथ उसकी हालत और ख़राब नहीं होने वाली थी, तो चिंता करने की कोई बात नहीं थी, सिवाय इसके कि वह इससे बेहतर साथ चाहता था।

उसने थोड़ी देर उस व्यक्ति के बारे में सोचा, जिसके साथ वह रहना चाहेगा।

नहीं, उसने सोचा, जब हर काम, जो आप करते हैं, वह काफ़ी अरसे तक करते हैं, और काफ़ी देर बाद करते हैं, तो आप इस बात की उम्मीद नहीं कर सकते कि आपको वे लोग अब भी वहीं मिलेंगे। लोग जा चुके हैं। पार्टी ख़त्म हो चुकी है और अब आप अपनी मेज़बान के साथ हैं।

मैं मरने से भी उतना ही ऊब रहा हूँ, जितना और सभी चीज़ों से, उसने सोचा।

"यह उबाऊ है", उसने ज़ोर से कहा।

"क्या उबाऊ है, प्रिय?"

"कोई भी चीज़, जो आप स्साली बहुत देर तक करते हैं।"

उसने अपने और आग के बीच उसके चेहरे को देखा। वह एक कुर्सी पर पीछे की ओर झुकी हुई थी और आग की रोशनी उसके चेहरे के सुखद आकार पर चमक रही थी और वह देख सकता था कि वह उनींदी थी। उसने आग की पहुँच के ठीक बाहर लकड़बग्घे की आवाज़ सुनी।

"मैं लिख रहा था", उसने कहा, "लेकिन मैं थक गया।"

"क्या तुम्हें लगता है कि तुम सो सकोगे?"

"बिल्कुल यकीन है। तुम भी सोने क्यों नहीं चली जाती हो?"

"मुझे यहाँ तुम्हारे साथ बैठना अच्छा लगता है।"

"क्या तुम्हें कुछ अजीब महसूस हो रहा है?" उसने उससे पूछा।

"नहीं, केवल थोड़ी नींद-सी आ रही है।"

"मुझे कुछ अजीब लग रहा है", उसने कहा।

उसने उसी समय मौत का क़रीब आना महसूस किया।

"तुम जानती हो, एक चीज़, जो मैंने कभी नहीं खोयी, वह जिज्ञासा है", उसने उससे कहा।

"तुमने कभी कुछ नहीं खोया है। मैंने आज तक जितने लोगों को जाना है, उनमें तुम सबसे संपूर्ण आदमी हो।"

"हे भगवान", उसने कहा, "एक औरत कितना कम जानती है। यह क्या है? तुम्हारा अंतर्बोध?"

क्योंकि, ठीक तभी, मौत आयी थी और अपना सिर खाट के पैताने पर टिका दिया था और वह उसकी साँसों की गंध सूँघ सकता था।

"एक दराँती और खोपड़ी के बारे में जो कहा जाता है, उस पर कभी विश्वास मत करना", उसने उससे कहा।

"वह उतनी ही आसानी से साइकिल पर सवार दो पुलिसवाले हो सकती है या एक चिड़िया हो सकती है या लकड़बग्घे की तरह उसका एक चौड़ा थूथन हो सकता है।"

अब वह उसके ऊपर सवार हो गयी थी, पर अब उसका कोई आकार नहीं था। वह केवल जगह घेरे हुई थी।

"उसे चले ज़ाने के लिए कहो।"

वह कहीं नहीं गयी, बल्कि और क़रीब आ गयी।

"तुम्हारी साँस कितनी बदबूदार है", उसने कहा, "बदबूदार हरामी कहीं की।"

वह उसके पास आ गयी और अब वह उससे बात नहीं कर सकता था। जब उसने देखा कि वह बोल नहीं पा रहा, तो वह थोड़ा और क़रीब आ गयी और अब उसने बिना बोले हुए उसे वहाँ से दूर भेज देने की कोशिश की, पर वह उस पर सवार हो गयी, जिससे उसका पूरा भार उसकी छाती पर आ गया और उस समय, जब वह वहाँ दुबककर बैठी थी और वह न हिल सकता था, न बोल सकता था। उसने औरत को यह कहते सुना, "साहब अब सो गये हैं। बहुत धीरे से खाट उठाओ और शिविर में ले चलो।"

वह औरत को यह बताने के लिए बोल नहीं सका कि उसे यहाँ से दूर भगाया जा सके। वह अब दुबककर बैठी थी, और भारी होकर, जिससे कि वह साँस भी नहीं ले पा रहा था। और तब, जब कि वे खाट उठा रहे थे, अचानक सब कुछ ठीक हो गया और उसकी छाती पर से भार चला गया।

वह सुबह का समय था और कुछ देर से सुबह ही चल रही थीं, उसने हवाई जहाज़ की आवाज़ सुनी। वह बेहद छोटा-सा दिखा और फिर उसने एक चौड़ा चक्कर लिया और लड़के बाहर भागे और केरोसिन तेल की मदद से आग जलायी और घास डालते गये, जिससे कि उस जगह के दोनों ओर दो बड़ी धुएँ वाली आग जलने लगी और सुबह चलने वाली हवा उन्हें शिविर की ओर बढ़ाने लगी और हवाई जहाज़ ने दो चक्कर और लगाये। इस बार काफ़ी नीचे और फिर सीधे होकर तैरते हुए आराम से नीचे उतर आया। बूढ़ा कौम्पटन पाजामा, ऊनी जैकेट और भूरी टोपी पहने हुए उसकी ओर आ रहा था।

"बूढ़े शेर, क्या बात हो गयी?" कौम्पटन ने कहा।

"टाँग में जख़्म है", उसने उसे बताया, "क्या तुम नाश्ता करोगे?"

"धन्यवाद, मैं केवल थोड़ी चाय लूँगा। तुम जानते हो, यह मवाद का मामला है। मैं मेम साहब को नहीं ले जा सकूँगा। हवाई जहाज़ में केवल एक आदमी के लिए जगह है। तुम्हारा ट्रक आ रहा है।"

हेलेन कौमप्टन को एक ओर ले गयी थी और उससे बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रही थी। कौम्पटन और भी ज़्यादा हँसता हुआ वापस आया।

"हम तुम्हें अभी ही विमान में ले चलेंगे", उसने कहा।

"मैं मेम साहब के लिए वापस आऊँगा। शायद, मुझे ईंधन भरने के लिए अरूशा में रुकना पड़ेगा। अब हमें चलना चाहिए।"

"चाय नहीं पियोगे?"

"तुम जानते हो असल में मैं चाय-वाय की कोई परवाह नहीं करता।"

लड़कों ने खाट उठा ली थी और उसे हरे तंबुओं के बगल से लेकर नीचे चट्टान की ओर ले गये, और वहाँ से मैदान में धुएँ वाली आग के बगल से गुज़रे और छोटे हवाई जहाज़ तक ले गये। आग अब तेज़ी से जल रही थी और सारी घास जल चुकी थी, और हवा आग को भड़का रही थी। उसे भीतर हवाई जहाज़ में ले जाने में दिक़्क़त हुई, लेकिन एक बार जब वह भीतर आ गया, तो वह चमड़े की सीट पर लेट गया। उसकी टाँग सीट के एक ओर निकली हुई थी, जहाँ कौम्पटन बैठा था। कौम्पटन ने इंजन चालू किया और भीतर आ गया। उसने हेलेन और लड़कों की ओर हाथ हिलाया और जब इंजन की आवाज़ पुराने परिचित शोर में बदल गयी, तो वे तेज़ी से मुड़े, जबकि कौम्पी सूअरों के लोटने वाले गड्ढों को देखकर ठठाकर हँसा, और हवाई जहाज़ दोनों ओर जलती हुए आग के बीच बची खाली जगह में उछलता हुआ आगे बढ़ा और अंतिम झटके के साथ ऊपर उठ गया और उसने उन सबको नीचे खड़े देखा। वे हाथ हिला रहे थे। शिविर के दूसरी ओर पहाड़ थे, जो अब चपटे लग रहे थे। नीचे मैदान फैला हुआ था, पेड़ों के झुरमुट थे और झाड़ियाँ चपटी लग रही थीं, जबकि शिकार की चिकनी पगडंडियाँ अब सूखे तालाबों की ओर जाती थीं। उसे एक नया तालाब दिखा, जिसके बारे में उसे बिल्कुल पता नहीं था। नीचे ज़ेबरा की पीठ अब गोल दिखायी दे रही थी और दूसरे जानवरों के सिर बड़े बिंदुओं की तरह लग रहे थे। हवाई जहाज़ अब और ऊपर चढ़ रहा था और वे मैदान पार कर रहे थे। नीचे जानवरों के झुंड हवाई जहाज़ की परछाईं देखकर बिखर रहे थे। वे अब बेहद छोटे नज़र आ रहे थे और उनकी चाल में कोई तेज़ी नहीं दिख रही थी और जहाँ तक आपकी निगाह जाती थी, भूरे-पीले रंग का मैदान फैला हुआ था और आगे बूढ़े कौम्पी की ऊनी पीठ थी और भूरी टोपी थी। फिर वे पहले पहाड़ों के ऊपर से उड़े और जंगली जानवर पीछे छूट गये। फिर वे ऊँची पहाड़ियों के ऊपर थे, जिनके बहुत नीचे अचानक हरे जंगल और बाँस के वृक्षों से भरी ढलान थी, और फिर और भी घने जंगल, कुछ चोटियाँ और कुछ घाटियाँ थीं, जब तक कि वे पहाड़ों को पार नहीं कर गये। फिर एक और मैदान आया—तपता हुआ और बैंगनी-भूरा, गरम और ऊबड़-खाबड़ और कौम्पी ने पीछे मुड़कर देखा कि वे कैसे उड़ रहे थे। फिर ठीक आगे और भी काले पहाड़ थे।

और तब अरूशा जाने के बजाय वे बायें मुड़ गये। उसने यह अंदाज़ा लगाया कि उनके पास ईंधन था और नीचे देखने पर उसे गुलाबी रंग के बादल ज़मीन पर आगे बढ़ते नज़र आये और हवा में वैसा ही कुछ था, जैसे बर्फ़ानी तूफ़ान में बर्फ़ की पहली बौछार न जाने कहाँ से आ जाती है। वह जान गया कि दक्षिण से टिड्डियाँ आ रही थीं। फिर हवाई जहाज़ और ऊपर उठने लगा और लगा जैसे वे पूरब की ओर जा रहे थे और फिर अँधेरा हो गया और वे एक तूफ़ान मे फँस गये थे। बारिश इतनी तेज़ थी कि लगता था जैसे वे एक झरने के बीच से उड़ रहे हों। फिर वे बाहर निकल आये और कौम्पी ने अपना सिर पीछे मोड़ा और मुस्कुराया और इशारा किया। वहाँ, आगे, वह उसे देख सकता था। पूरी दुनिया जितना चौड़ा, महान, ऊँचा और सूरज की रोशनी में अविश्वसनीय रूप से सफ़ेद किलिमंजारो पर्वत का चौड़ा शिखर चमक रहा था। और, तब वह जान गया कि यही वह जगह थी, जहाँ वह जा रहा था।

ठीक तभी लकड़बग्घे ने रात में पिनपिनाना बंद कर दिया, और एक अजीब, लगभग आदमी के रोने जैसी आवाज़ निकालने लगा। औरत ने वह आवाज़ सुनी और बेचैनी से हिलने-डुलने लगी। वह जगी नहीं। अपने सपने में वह लौंग द्वीप पर अपने घर में थी और वह उसकी बेटी के सामाजिक जीवन में प्रवेश से पहले की रात थी। किसी तरह उसका पिता भी वहाँ था और वह बेहद रूखा था। फिर लकड़बग्घे द्वारा किया जाने वाला शोर इतना ज़्यादा बढ़ गया कि वह जाग गयी और एक पल के लिए वह यह नहीं जान पायी कि वह कहाँ थी और वह बेहद डर गयी। फिर उसने फ़्लैश-लाइट उठायी और उसकी रोशनी खाट पर डाली, जिसे वे हैरी के सोने के बाद उठाकर भीतर ले आये थे। वह मच्छरदानी के भीतर उसके शरीर को देख सकती थी, लेकिन किसी तरह से उसकी टाँग बाहर निकल आयी थी और खाट के एक ओर लटकी हुई थी। जख़्म पर बँधी सारी पट्टियाँ खुल गयी थीं और वह उसे देख नहीं सकी।

"मोलो",, वह चिल्लाई, "मोलो... मोलो!"

फिर उसने कहा, "हैरी, हैरी!", फिर तेज़ आवाज़ में पुकारा, "हैरी! भगवान के लिए ओ हैरी!"

कोई उत्तर नहीं आया और वह उसकी साँसों के चलने की आवाज़ नहीं सुन सकी। शिविर के बाहर वही लकड़बग्घा वैसी ही अजीब आवाज़ें निकाल रहा था, जिन्हें सुनकर उसकी नींद खुल गयी थी, लेकिन अपने दिल के तेज़ी से धड़कने के कारण वह उसकी आवाज़ नहीं सुन पा रही थी।

अनुवाद : सुशांत सुप्रिय
द्वारा—श्री एच.बी. सिन्हा
5174, श्यामलाल बिल्डिंग
बसंत रोड, नई दिल्ली-110055

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन कविताएँ

श्रीराम दवे

बबलू माँग रहा नया खिलौना

बबलू बड़ा हो रहा है या
खिलौने की अर्थवत्ता बदल रही है
नहीं समझ पा रही है बूढ़ी दादी

उसके काँपते हाथों ने
रुई और पुराने कपड़ों से
बनाया था जो गुड्डा
कोने में पड़ा बिसूर रहा है
जिसके आँसू पोंछते-पोंछते
थक गयी है बूढ़ी दादी

उधर बबलू बार-बार माँग रहा है
नया खिलौना
जिसके हाथों में हो ए.के. 47
या ऐसी कोई गुड़िया
जिसने कम कपड़े पहने हों और
जिसकी आँख का कोना
बार-बार दब जाता हो

बहलाने और बदलने की
बदलती परिभाषाएँ
दादी को और बुढ़ा जाती हैं
नए खिलौने के लिए मचल रहा बबलू
गुस्सा हो रहा है दादी पर
दादी नहीं जानती
ए.के. 47 के क़ायदे क़ानून और
कम कपड़े पहनी गुड़िया के प्रति
छोटे बबलू के आकर्षण का मतलब।

पिता की उदास आँखों में

बहुत कुछ देखा जा सकता है
पिता की उदास आँखों में
बशर्ते वे एकांत में हों

राई-नमक के भाव से लेकर
सोने की पीली चमक और
हाथ आये किसी रिश्ते के
कपूर की तरह अनंत में
विलीन हो जाने के दृश्य

सिर के ऊपर छत और
पाँवों के नीचे उतनी ही ज़मीन
होने के सनातन प्रश्न किंवा
सामने दिख रही अनहोनी के
नरम दिखते वज़नदार पाँव

सच, वह सब है उन आँखों में
नहीं पाया जा सकता है जो
किसी फ़िल्म के पारिवारिक फुटेज़ में
किसी कहानी के नाजुक मोड़ में या
किसी कविता की ताब में, और
नहीं पाया जा सकता है जो
किसी माँ के बार-बार के
रोने के अहसास में...

डरते-डरते ही सही

मैंने तितलियों से कहा
मत डरो मुझसे
मैं कोई बच्चा नहीं, जो
तुम्हारे पंख नोंच लूँगा और
खुश हो जाऊँगा

मैंने खरगोश से कहा
दुबके क्यों बैठे हो
उठो और फुदको
मैं कोई बहेलिया नहीं, जो
तुम्हें पकड़कर बाज़ार में बेच दूँगा

हरे पंखों और लालकंठी तोते से कहा मैंने
उड़ते रहो इसी तरह और
चखते रहो स्वाद मौसमी फलों का
ललचायी निगाह से मत देखना
हरी मिर्च खाते
राम-राम बोलते दूसरे तोते को

मौसमी और
बारहमासी फूलों से कहा मैंने
खिलते रहो-महकते रहो इसी तरह
लुभाते रहो सबको कि
तुम्हारी उम्र कुछ ज़्यादा नहीं

उम्र भला किसकी ज़्यादा होती है
उम्र पर कहीं पहरे लगे हैं, जो
तितलियों को उड़ने की
खरगोशों को फुदकने की
हरे-पीले तोतों को स्वाद चखने की
रंग-बिरंगे फूलों को
खिलने और महकने की फ़िक्र लगे और
अल्पायु का पांडु रोग उन्हें
वह सब नहीं करने दे,
जो उन्हें करना है—
डरते-डरते ही सही....

जी-5, सिंचाई कॉलोनी
दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री-कोख हथियाने की बेहयाई बेटेवादी धर्मशास्त्र ने सिखायी

रवीन्द्र कुमार पाठक

स्त्री का बिना विवाह किये रहना (मर्दवादी) धर्मशास्त्र को अखरता रहा है। विवाहित करके उसने उसके दो लक्ष्य निर्धारित किये :

(प) सौभाग्यवती बने रहना (यानी, पति की छत्र-छाया या बरगद-छाया आजीवन पाते रहना)

(पप) पुत्रवती होना।

'महाभारत' के 'आदिपर्व' (74/96-97) में कहा गया है कि वंश- संचालन, कुल-पालन आदि मात्र पुत्र के माध्यम से होता है, अतः पुत्र-जन्म से बढ़कर पुनीत कार्य संसार में कोई दूसरा नहीं है। 'अत्रि-संहिता' (53) में कहा गया है कि पुत्र के जन्मने पर जीवित पुत्र का मुख देखते ही पिता पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है और मरने पर स्वर्ग जाता है। यही बात 'वसिष्ठ स्मृति' (17-1), 'बृहत् पाराशर' (6/185), 'विष्णु स्मृति' (15/42) आदि में भी प्रतिपादित है। बेटावाद की निर्लज्ज दुहाई देने में कोई पीछे नहीं है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' का स्पष्ट स्टेटमेन्ट है कि "कृपणं हि दुहिता ज्योतिर्हि पुत्रः-" यानी, पुत्री दुख की खान है और पुत्र प्रकाश (आह्लाद) का रूप है। इसी तरह, 'ऐतरेय ब्राह्मण' के 'हरिश्चंद्रोपाख्यान' में कहा गया है कि पत्नी एक साथी है, पुत्री एक विपदा है तथा पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का प्रकाश है। (3-3-1) हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि सभी धर्मशास्त्र पुरुष की महत्ता स्त्री के ऊपर बतलाते रहे हैं, जिनसे 'पुत्र' की अनिवार्यता स्थापित हुई। 'अपुतस्य गतिर्नास्ति' (बिना पुत्र के मुक्ति नहीं होती किसी पुरुष की), 'पुत्रार्थे क्रियते भार्या, (बेटे की प्राप्ति हो, इसके लिए पत्नी बनायी जाती है), 'आत्मा वै जायते पुत्रः' ('महाभारत' के यक्ष को युधिष्ठिर का उत्तर) आदि कथित सूक्तियाँ, 'पुंसवन संस्कार' (गर्भस्थ संतान के पुत्र होने की कामना से किया जाने वाला संस्कार), 'पुत्रेष्टि यज्ञ' (पुत्र पैदा करने हेतु किया जा रहा यज्ञ) आदि के साथ हर धार्मिक-सामाजिक कर्मकांड (चाहे जीवन का हो या मरण का) में पुत्र को अधिकार देने एवं पुत्रवाली स्त्री व पुरुष की धार्मिक महत्ता बनाये रखने का कार्य शास्त्रीय परंपरा ने किया है। उपनिषद् का उच्चतर चिंतन भी मनुष्य-जीवन की तीन एषणाओं (इच्छाओं) में से एक 'पुत्रेषणा' (बेटे की चाह) को रखने हेतु बाध्य हुआ है। माफ़ कीजिए! इस व्याख्या से अब आप हमें बरगला नहीं सकते कि 'पुत्र' शब्द 'पुत्री' को भी समेटता है। शास्त्रों ने न केवल बेटे के जन्म की निर्लज्ज तरफ़दारी की है, बल्कि बेटी के जन्म को निंदित करने के साथ उसका दंड स्त्री को देने के विधान के द्वारा बेटी पैदा होने की संभावना के द्वार पर ही लौह-कपाट लगा दिया है। ईसाइयत तो खैर मातृत्व (प्रसव) को ही पाप ठहराती है, पर वहाँ भी बच्ची के जन्म को विशेष गंदा कहती है। 'बाइबिल की 'लैव्यवस्था' (12/1-5) के अनुसार स्त्री लड़का होने पर 7 दिन, पर लड़की होने पर 14 दिन अशुद्ध रहती है। ईसाइयत का घोर पितृसत्तावाद उसके मूल-दर्शन 'पिता-पुत्र-पवित्र आत्मा' के त्रैत और 'पुरुष के शरीर से स्त्री के जन्म की बात' ('बाइबिल', 'उत्पत्ति' खंड) से ही टपक पड़ती है। ज़्यादा खोजने की ज़रूरत ही क्या है? 'कात्यायन स्मृति' (3/13) का कहना है कि पत्नी को मार डालने वाला मर्द दंडस्वरूप तीन जन्मों तक पुरुष से स्त्री बनने का डिमोशन (पदावनति) पाता है, वहीं स्त्री हर्ज़ाने के रूप में तीन जन्मों तक स्त्री से पुरुष बनने का प्रमोशन (पदोन्नति) पाती है। इस तरह, धर्मशास्त्रों ने बेटे की महिमा में बीभत्स नाच ही नहीं किया, बल्कि बेटी के जन्म को पाप-फल के रूप में बखान कर डराया भी है। कई ने इसके लिए कन्या-प्रसविनी माँ को दंडित करने की व्यवस्था भी की है, जैसे—चाणक्य या कौटिल्य का कहना था कि यदि कोई स्त्री पुत्री पर पुत्री पैदा करती जाए, तो 12 वर्ष प्रतीक्षा करके पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है। 'मनुस्मृति' (1-80) भी कहती है कि स्त्री के केवल पुत्री जनने पर पुरुष दूसरा ब्याह कर सकता है। 'बौधायन धर्मसूत्र' ने कहा कि निस्संतान पत्नी को दस वर्ष बाद, कन्या-प्रसव करने वाली को बारह वर्ष बाद तथा जिसके बच्चे नहीं टिकते, उसे 15 वर्ष बाद त्यागा जा सकता है। चीन में इसी तरह कनफ़्यूशियन सोच मौजूद रही कि स्त्री पुरुष से हेय है। इस तरह प्रलोभन व भय के दो छोरों के बीच निर्मित धर्मशास्त्र की पुत्रवादी परंपरा है, जो पुरुष ही नहीं, स्त्री तक का मन पुत्रांध बनाये हुए है।

पुरुषवादी अध्यात्मवाद, जो स्त्री की सहज दैहिकता (मासिकधर्म, यौनिकता) आदि को न समझ कर 'गंदा' ठहराता है तथा स्त्री को 'नर्क का द्वार' कहता है। परंतु, स्त्री के बिना उसका काम भी नहीं चलता। चाहे भोगवाद हो या मोक्ष वाद, पुरुष के लिए स्त्री-देह को साधन बनाया गया है। मोक्षवाद की भ्रांति या 'वंश' चलने की मूढ़ता में पड़े हर मर्द को एक 'बेटे' की ज़रूरत तो है ही। (ज़्यादा हों, तो और अच्छा!) उसका यही विश्वास है। फिर, 'मनुष्य की आत्मा पुत्र' होने से बिना बेटे के वंश कैसे चलेगा? वंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न चलेगा, तो मोक्ष कैसे मिलेगा? इस बेटे के लिए किसी औरत की कोख चाहिए और उस कोख से उत्पन्न बेटा ('मेरे ही शुक्राणु से है' की जगह) 'मेरा ही है'- यह कैसे तय हो पाएगा? इसकी निश्चितता के लिए उस स्त्री को 'विवाह' की कोठरी में बंदिनी बनाकर उसकी चाबी उस मर्द को दे दी जाती है। विवाह-संस्था के पीछे का एक तर्क यह भी है। 'मेरा वंश चले, मेरे ख़ून का अंश चले'-यह मर्दवादी दुराग्रह रहा है और 'बेटे के ज़रिये ही वंश चलता है' यह मूढ़ता उस पर 'करेले के नीम पर चढ़ने' की मसल बनाता है। जनसंख्या-वृद्धि और स्त्री को इसके तहत क़ारखाना व कसाईघर बना देने के पीछे का मूलभूत विचार यही रहा है। बेटेवादी धर्मशास्त्रों ने ही स्त्री की कोख पर पुरुष के कब्ज़े की व्यवस्था कर रखी है, उस पर जब चाहा, कुछ लाद दिया; जब चाहा, उसकी सफ़ाई करा डाली। बेशुमार जनसंख्या के रहते भी अपना वंश चलाने की यह सनक! वाह रे आत्मवादी देश! वाह रे धर्मगुरु! शारीरिक वंशवाद की इतनी चिंता! काश! दैहिक वंशवाद की इतनी फिक्र न करके आत्मिक या वैचारिक वंशवाद पर ध्यान दिया जाता, तो स्त्री बेचारी त्रस्त होने से—बच्चे जनते-जनते पस्त होने से—तो बची रहती। साथ ही, दुनिया भर की सड़कों पर लाखों-करोड़ों की तादाद में भूख से बिलबिलाते अनाथ बच्चों को कहीं न कहीं पनाह तो मिल जाती, अपराध के अंधलोक में जाने की जगह वे उचित विकास-अवसर तो पा जाते। वे बच्चे, जो प्राकृतिक आपदा से भी ज़्यादा मर्दों की ग़ैर ज़िम्मेदार हवस के कारण अनाथ बने फिरते हैं, उनको कोई-न-कोई थाम तो लेता! यह कितना बड़ा पाखंड है कि बेटे के बिना किसी मर्द का वंश ही नहीं चलता, पर 'नेहरू जी का वंश आज भी चल रहा है।'- ऐसा मानना और फूले न समाना! बेटे से वंश चलने की बात प्रकृति की वैज्ञानिक दृष्टि से कितनी अस्तित्त्वहीन है—यह हम आगे स्पष्ट करेंगे। यहाँ इस ढकोसले पर ध्यान दे लीजिए कि औरत के वंश चलने की कोई धारणा की पितृसत्ता में कहीं नहीं है। औरत तो वंश-वृद्धि की मशीन भर है; उस का क्या वंश चलेगा!

बेटेवाद की जय-जयकार हर नीति ग्रंथ में सुनायी दे जाएगी। 'सुपुत्र : कुलदीपकः (अच्छा बेटा ही कुल का दीपक है), 'वरमेको गुणी पुत्रो' (सौ मूर्ख पुत्रों की अपेक्षा एक गुणी पुत्र भी श्रेष्ठ है), 'एकेनापि सुपुत्रेण... आह्लादितं तथा सर्वं' (एक भी अच्छे पुत्र से सब कुछ उसी तरह प्रकाशित-आनंदित होता है, जैसे चंद्रमा से रात) आदि सैकड़ों पंक्तियाँ मिल जाएँगी। कुछ विचारक ऐसी पंक्तियों को प्राचीन युगीन जनसंख्या-विमर्श एवं परिवार-नियोजन की भावना के उदाहरण रूप में पेश करते हैं, लेकिन उनके मन में यह प्रत्यक्ष प्रश्न ज़रा-सा भी नहीं जगता कि वह विमर्श इतने मूढ़ अधूरेपन का शिकार क्यों है कि 50 प्रतिशत जनसंख्या (यानी बेटी) पूरी तरह से ग़ायब है उससे। जनगणना के लिए प्रयुक्त फ़ारसी शब्द है—'मर्दुमशुमारी' (मर्दों की गणना)। लगता है, स्त्री को मनुष्य में गिना तक न गया (क्योंकि 'मनुष्य की आत्मा' पुत्र होने से स्त्री आत्माहीन मांस खंड मात्र है, जिसकी रचना परमेश्वर ने पुरुष की देह से एक पसली निकालकर की बाइबिल के अनुसार, इसीलिए स्त्री को गिनने की क्या ज़रूरत है जनगणना में? भाषा एवं व्याकरण में भी ढेर सारे ऐसे शब्द व नियम हैं, जो स्त्रीलिंग पर पुंलिंग की सत्ता को सिद्ध ही नहीं करते, बल्कि स्त्रीलिंग को पुंलिंग में समाहित भी कर देते हैं। खुद 'लिंग' शब्द इसका प्रमाण है। पुंसत्व व स्त्रीत्व की भेदकता को शब्दों में खोजने-दिखलाने के लिए (यदि ऐसा करना ज़रूरी ही था तो) व्यापकतर शब्द 'योनि' को न रखकर संकुचित शब्द 'लिंग' को क्यों रखा गया? पुरुष को महत्त्व देना ही कारण रूप में है।

धर्मशास्त्र में बेटेवाद का चरम रूप 'नियोग प्रथा' में मिलता है। एक तरफ़ स्त्री को सतीत्व (यानी, पुरुष-विशेष के प्रति यौन-प्रतिबद्धता) के फंदे में कस देना, फिर ऊपर से अपना स्वार्थ देखकर, उस बंधन की अभ्यस्त हो चुकी स्त्री पर नियोग की तलवार लटकाना—अमुक 'पर-पुरुष' को अपनी देह पर चढ़ाने हेतु तैयार हो जा! स्त्री के हिचकने पर धर्मशास्त्र का एटमी भय दिखलाना कि "पत्या नियुक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेव च। न करिष्यति तस्याश्च भविता पातकं भुवि।।" (महाभारत, आदि पर्व) यानी, पति के कहने पर भी जो स्त्री पुत्र-प्राप्त्यर्थ पर-पुरुष के साथ समागम नहीं करती, वह पाप -भागिनी होती है। 'मेरा वंश चले, इसलिए बेटा चाहिए—इस सोच के तहत पत्नी को मजबूर करना किस तर्क पर था? यदि मर्दवादी तर्क से ही चलें, तो पुरुष-बीज का महत्त्व बखाना गया है। जिसका बीज, उसकी संतान पर, स्वार्थ आड़े आया, तो इस परिभाषा में भी ढील देकर नयी परिभाषा गढ़ डाली कि क्षेत्र (स्त्री) जिसके कब्ज़े में है, फ़सल (संतान) उसी की मानी जाती है। (मनु- स्मृति 8/43)। प्राचीन आख्यानों में आये नियोग-प्रसंग भी इतनी मर्दवादी गढ़न के शिकार हैं कि हर बार 'पुत्र' ही पैदा हुआ लिखा जाता है। यहाँ तक तो लिखना ठीक था कि पुत्र-कामना में स्त्री नियुक्त की गयी (मानो स्त्री जड़ वस्तु है, जिसका धर्म है, चाहे कहीं से बेटा ला के दे पति को—चाहे जिससे अपना यौन-दलन करवाए उसके लिए—पर, एक बेटा दिये बिना उसे न छोड़ना)—परंतु यह कौन-सी बात हुई कि बेटा या बेटी होने की 50-50 प्रतिशत संभावना जहाँ है, वहाँ पलड़ा हर बार प्रथम 50 प्रतिशत (यानी, बेटे) की ओर ही झुके! क्या 'सेक्स-सेलेक्शन प्रेगनेंसी' की इतनी विराट् जैव प्रौद्योगिकी उस काल में खोज ली गयी थी? लगता है, कुछ ऐसी ही खोज हमारे फ़िल्मकारों ने कर ली है, तभी तो इक्का-दुक्का फ़िल्मों को छोड़कर हर बार वे किसी जोड़े को बेटे का ही सपना-'नन्हा राजदुलारा होगा'—आदि दिखालाते हैं। दिखालते ही नहीं, बल्कि उसे साकार भी करवाते हैं- 'मेरा नाम करेगा रौशन, जग में मेरा राजदुलारा' गवाते हुए।

पुत्र-कामना नियोग-प्रथा का मूल है, यह तो स्पष्ट है; पर, पुत्र-कामना केवल वंश चलाने की चिंता या 'पुत्र से पिता को सद्गति मिलती है' जैसी बातों के अलावा "मेरे बाद यह धन कौन भोगेगा?" की शुद्ध भौतिक चिंता भी थी। इस मर्दवादी चिंता का आधार भी पितृस्थानीय विवाह- व्यवस्था है, जो लड़की को परायी बनाकर उससे सारे नाते तोड़ लेती है। 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में कालिदास की नैतिकता देखिए—'अर्थो हि कन्या परकीय एव,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तामद्य संप्रेष्य परीग्रहीतुः जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवांतरात्मा' (चतुर्थ अंक) यानी बेटी पराया धन है। उसे आज परिग्रहीता (पति) के पास भेजकर मेरी अंतरात्मा उसी प्रकार कृतार्थ हो गयी, जैसे किसी की धरोहर को उसे लौटा देने पर मन में चैन आता है। वाह रे कालिदास के कण्व ऋषि! तभी तो 'शाकुंतलम्!' पितृसत्तात्मक व्यवस्था के मुरीद पंडितों में सर्वश्रेष्ठ संस्कृत-नाट्य बनकर प्रतिष्ठित है। अस्तु! 'कौन भोगेगा?' यह मर्दानी चिंता हुई, पर बेटी को उत्तराधिकार देने की सोच भूलकर भी न जगी। क्यों? इसीलिए न कि वह यहाँ रहेगी नहीं, ब्याह-बाद पराये घर चली जाएगी। लेकिन, यह व्यवस्था भी बनायी किसने? किसके लिए? मर्द के सुखार्थ मर्द ने ही । इन सब धार्मिक-सामाजिक वास्तविकताओं ने आर्थिक स्तर पर इस मिथ को जन्म दिया कि 'बेटी माइनस है–कुर्की कराने वाली; बेटा प्लस है–दहेज लाने वाला।' याद कीजिए, 'शुभकामना' फ़िल्म में उत्पल दत्त का गुणा-गणित। पुत्र महिमा के धार्मिक विश्वास और इस आर्थिक-सामाजिक मिथ में से किसने किसको पैदा किया–इस बहस को लंबा खींचने की जगह, आज हमें यह देखना होगा कि दोनों 'चोर-चोर मौसेरे भाई' एक दूसरे को टिकाये रखने में मददगार हैं तथा दोनों ही कमबख़्त मिलकर सदियों से स्त्री के अस्तित्त्व के कट्टर विरोधी बने हुए हैं।

बात आगे बढ़ाने के पहले, 'नियोग' पर एक-दो विचारदृष्टियों से सोचते चलें। पीछे हमने देखा कि जिसकी पत्नी पर पुत्र-जनन में अक्षमता का संदेह हो जाता था, उस मर्द को इस संदेह का लाभ उठाकर धर्म के खोल में दूसरा, तीसरा व चौथा विवाह करने, यानी विवाह द्वारा तथाकथित व्यभिचार करने की खुली छूट दे दी जाती थी। परंतु, जब पुरुष में अक्षमता साफ़ दिखती थी या पति मर जाता था, तब नियोग-प्रथा का पाखंड रचकर स्त्री को इस बलात्कार के लिए मजबूर किया जाता था। धर्मशास्त्रीय आदेश था कि केवल पुत्रोत्पत्ति नियोग का उद्देश्य हो, न कि रति-सुख लेना। तभी, लिंग सहित पूरे शरीर पर घी घिसकर पुरुष के काम-क्रिया में उतरने का विधान था, पर 'महाभारत' के आदिपर्व, के 'संभव' उपपर्व में आयी दीर्घतमा की कथा के अनुसार, अंधे दीर्घतमा मुनि काशिराज की पत्नी से नियोग करते समय उसके अंग छूकर आह्लादित होते दिखे। क्या यह कामुकता नहीं ? व्यास ने वंश चलाने के नाम पर तीन बार यौन-क्रिया की। माना कि अंबिका व अंबालिका तक ठीक था–एक हद तक वंश चलता, पर दासी के साथ यौन-क्रिया की क्या तुक थी? दासी से वंश चलता?

नियोग का विधान था कि स्त्री के पति का भाई (देवर), उसके अभाव में सपिंड (यानी वंश-परंपरा का कोई भी), उसके अभाव में स्वजाति का और उसके भी अभाव में कोई द्विज पुरुष नियुक्त हो। यहाँ 'द्विज' का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में से ब्राह्मण ही ग्रहणीय है, क्योंकि अपनी जाति के अभाव में क्षत्रिया किसे द्विज मानकर नियोग करती? वैश्य को; तब तो 'प्रतिलोम' संयोग से संतानोत्पत्ति होती, जो धर्मशास्त्र निंदित है। दूसरी बात, ध्यातव्य है कि उक्त विधान के बाद भी नियोग में अक्सर ब्राह्मण पुरुष ही नियुक्त हुआ, जोकि 'अभाव में' था। क्या ऐसा भी हो सकता है कि किसी स्त्री को सपिंड या जाति में भी कोई पुरुष न मिले? 'अभाव में' की आड़ ही ब्राह्मण को मौक़ा देने के लिए बनायी गयी लगती है। तो क्या 'नियोग' ब्राह्मण पुरुष को यौनानंद देने हेतु, दक्षिणा के साथ पर-स्त्रियाँ उपलब्ध कराने हेतु भी रचा गया था? इसी गंदी प्रथा का विकास साधुओं, पादरियों, मुल्लाओं, ओझाओं द्वारा स्त्रियों को पुत्रार्थ आशीर्वाद (?) का इंजेक्शन देने के रूप में हुआ लगता है। पुराण-प्रसिद्ध कथा है कि परशुराम के द्वारा क्षत्रिय पुरुषों के संहार के बाद उनकी स्त्रियों को ब्राह्मण पुरुषों से नियोग हेतु विवश होना पड़ा था। इस पुत्रवादी नियोग-प्रथा से बेहतर है, आज की वैज्ञानिक रीति-टेस्टट्यूब बेबी, क्लोनिंग व सेरोगेट मदर बनने की रीति। कारण कि :

(1) क्लोनिंग परखनली शिशु या सेरोगेट मदर बनने की धारणा पुत्रार्थ ही नहीं है। पुत्री के अर्थ भी उतनी ही है।
(2) स्त्री की स्वेच्छा है इसमें, न कि पहले की तरह पुरुष को बलात्कार का लाइसेन्स मिला हुआ है। वीर्य-बैंक से शुक्राणु लेने में तो स्त्री को पुरुष-संयोग करने की बाध्यता भी नहीं है।
(3) इसमें जातिगत भेदभावों की कल्पना भी नहीं है कि ब्राह्मण पुरुष का वीर्य/शुक्राणु लिया जाए, शूद्र पुरुष का नहीं। 'वीर्य बैंक' में जाति की जाँच करने का विज्ञान है कहाँ? जाति-भेद ख़ुद अवैज्ञानिक चीज़ है। (वैसे यह भी ख़बर है कि कुछ कूढ़मगज़ शुक्राणु की भी जात पूछते फिरते हैं)

बेटेवादी अर्थ में सिकुड़ चुके सामाजिक मन का परिवार-नियोजन का अर्थ भी यही लग सकता है कि बेटियों की हत्या करके, दो बेटे रखकर परिवार नियोजित कर लें। विनोबा भावे ने परिवार-नियोजन की महत्ता बतलाते हुए राम को उद्धृत कर कहा है कि उनके दो ही संतानें (लव-कुश) थीं। ('स्त्री शक्ति', 'सर्व सेवा संघ,' राजघाट, वाराणसी से) स्पष्ट है कि उदाहरण देते समय उन्हें सावधानी बरतनी चाहिए थी। लव-कुश दोनों पुत्र हैं। इससे बेटेवाद से घायल हुए भारतीय मन में बेटी-विरोधी परिवार-नियोजन प्रवृत्ति पुष्ट धार्मिक आधार ले कर बैठ जाएगी। 'पंचायतीराज संस्थाओं के सदस्य दो संतानों से ज़्यादा वाले न होंगे'–यह संवैधानिक नियम मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, आंध्र प्रदेश एवं हरियाणा में एक अजीब त्रासदी में प्रतिफलित हुआ है–सरपंची बचाने हेतु गर्भपात, पति द्वारा पत्नी का त्याग, अपना बच्चा अन्य को गोद दे देना आदि हो रहा है।

धर्मशास्त्र की एक निकट संबंधी 'मुहूर्तविद्या' बेटा पाने हेतु ख़ास तिथि-नक्षत्रों में सहवास का भी विधान करती है। भले ही ऐसा होना संभव नहीं, यानी बेटे की गारन्टी नहीं हो सकती, परंतु ऐसे घृणित विधान के रचयिता ख़ुराफ़ाती भी इस देश में हो चुके हैं, जो कन्या भ्रूण-हत्याओं के पूर्वज थे।

('राजकमल प्रकाशन समूह' से शीघ्र प्रकाश्य लेखक की पुस्तक 'जनसंख्या-समस्या के स्त्री-पाठ के रास्ते...' का अंश)

ग्राम-पाठक विगहा, पोस्ट-जम्होर, ज़िला-औरंगाबाद (बिहार)

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुस्लिम बुद्धिजीवियों की ऐतिहासिक भूलें

मुशर्रफ़ अली

आज पूरी दुनिया में मुस्लिम समुदाय के जो सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक हालात हैं, उनके लिए सामान्य जनता को उतना ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता, जितना मुस्लिम समाज के शिक्षित और बुद्धिजीवी तबके को। किसी भी समाज के पिछड़ेपन की ज़िम्मेदारी उस समाज के बुद्धिजीवी वर्ग पर ही आती है। परिस्थितियाँ कितनी भी विपरीत क्यों न हों, यह उनका काम होता है कि वे उन परिस्थितियों को बदलने का रास्ता निकालें व इसके लिए अपने समाज के लोगों को शिक्षित व तैयार करके खुद उस लड़ाई का नेतृत्व करें। उनका यह काम नहीं होता है कि लोगों की बदहाली का फ़ायदा सत्ता के गलियारों तक पहुँचने के लिए खुद उठाने लगें या हालात बदलने के लिए आने वाली व्यावहारिक परेशानी से हताश होकर क़ौम को ही दोषी ठहराते हुए कोशिशें बंद करके मायूस होकर बैठ जाएँ।

मैं कुछ मिसालें देना चाहूँगा कि विपरीत परिस्थितियों में भी मुस्लिम समाज के बुद्धिजीवियों ने कौन-सा सही रास्ता चुना और कौन-सा ग़लत? ज़्यादा पीछे न जाते हुए हम सर सैयद अहमद ख़ाँ की मिसाल लेते हैं। 1857 की जंग में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने के जुर्म में अंग्रेज़ों ने मुसलमानों के ख़िलाफ़ जो नीतियाँ अपनायीं, उनके तहत उन्हें रोज़गार के सभी अवसरों से वंचित कर दिया गया। उधर लड़ाई की असफलता ने भी मुसलमानों को गहरी निराशा से भर दिया। उन्हें अंग्रेज़ों की भाषा व संस्कृति तक से नफ़रत हो गयी और उन्होंने भाषा के साथ-साथ पश्चिमी संस्कृति के बेहतरीन पक्षों को भी नकार दिया। वे हालात का मुक़ाबला करने के स्थान पर उससे भागने लगे। उनके इस पलायनवादी रुख़ ने ही उन्हें अध्यात्म में डुबो दिया, लेकिन उनके इस क़दम ने समस्या को और गहरा कर दिया। उस समय सर सैयद अहमद ख़ाँ ने हालात का गहरा अध्ययन किया और जड़ता की इस स्थिति को तोड़ने का रास्ता खोज निकाला। अंग्रेज़ी भाषा और पश्चिमी ज्ञान को मुसलमानों तक ले जाने के लिए वे शिक्षा के क्षेत्र में कूद पड़े। यह अलग बात है कि अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी की स्थापना के पीछे उनका वर्गीय व जातीय सोच भी काम कर रहा था। वे मुस्लिम समुदाय के केवल उच्चजाति के संपन्न वर्ग के बच्चों को ही उच्च शिक्षा में पारंगत करना चाहते थे, लेकिन उनके इस काम का कालांतर में सभी वर्गों, धर्मों, जातियों को फ़ायदा पहुँचा। इस मिसाल में हम देखते हैं कि उस ज़माने के मुस्लिम समाज के बुद्धिजीवियों की एक जमात ने तो क़ौम के अध्यात्म में डूब जाने के पलायनवादी रुख़ अपनाने के काम में उनकी मदद की, लेकिन दूसरे बुद्धिजीवियों ने जड़ता को तोड़ने के सर सैयद अहमद ख़ाँ के इस काम में सहयोग किया।

अब हम दूसरा उदाहरण लेते हैं। यह उदाहरण मुस्लिम समाज के धार्मिक बुद्धिजीवियों या उलेमाओं से जुड़ा हुआ है। आज़ादी की लड़ाई का दूसरा दौर जारी था। अंग्रेज़ 1857 की जंग से सतर्क हो चुके थे। वे समझ चुके थे कि इस दूसरे दौर की लड़ाई को सांप्रदायिक आधार पर फूट डालकर ही नाकाम किया जा सकता है, इसलिए उन्होंने दोनों समुदायों के सांप्रदायिक मानसिकता वाले लोगों व संगठनों के कंधों पर हाथ रख दिया। हम देखते हैं कि उस दौर में सांप्रदायिक आधार पर जन्म लेने वाले सभी संगठन, आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लेने के स्थान पर हिन्दू-मुस्लिम को आपस में लड़ाने तथा उनके बीच नफ़रत के बीज बोने के काम में लगे हुए थे। लेकिन, उस समय भारत में हिन्दुओं की ही तरह मुस्लिम बुद्धिजीवियों का एक तबका ऐसा भी मौजूद था, जो अंग्रेज़ों की इस चाल को भाँप चुका था और उसने आपस में लड़ने की जगह अंग्रेज़ों से लड़ने का रास्ता अपना लिया था। जमीयत-ए-उलेमा-ए-हिन्द को हम उसी तबके में शामिल कर सकते हैं, जिसने हालात का जायज़ा लेते हुए सही नीति को अपनाया, जबकि ज़मींदारों का नेतृत्व करने वाली राजनैतिक पार्टी मुस्लिम लीग ने ऐसा रास्ता चुना, जो अंग्रेज़ों को लाभ पहुँचाने वाला था। रास्ता ग़लत था, यह बाद को साबित हो गया, जब नये बने पाकिस्तान में आयी सरकार ने न तो ज़मींदारी-प्रथा ख़त्म की और न ही स्वतंत्र आर्थिक नीतियाँ बनायीं जिससे पाकिस्तान अपना आत्मनिर्भर औद्योगिक विकास कर सके। लेकिन, जमीयत-ए-उलेमा-ए-हिन्द ने उस समय सही रास्ता अपनाया। उसने भारत-पाक बँटवारे का कड़ा विरोध किया और आज़ादी की लड़ाई में अपनी साम्राज्यवाद विरोधी विचारधारा पर खड़े रहकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी जानों की कुर्बानियाँ दीं।

मौलाना आज़ाद सहित सभी उलेमाओं ने उस समय मुस्लिम समुदाय को सचेत किया। उन्होंने कहा कि यह जो आपको इस्लामी मुल्क बनाने का सपना दिखाया जा रहा है, यह अंग्रेज़ों की चाल है, जिसमें शिक्षित मध्य वर्ग को फँसाया जा रहा है। लेकिन, लोग अंग्रेज़ों और उनसे जुड़े सामंती बुद्धिजीवियों के बहकावे में आ गये और बँटवारा हो गया, जिसका नतीजा आज पाकिस्तान के रूप में हमारे सामने है। इस्लामी हुकूमत, जो मसावात (समानता) पर होगी, का ख़्वाब, जो उस समय के सामंती बुद्धिजीवियों ने दिखाया था, शीघ्र ही टूट गया। क्षेत्रीय व सांस्कृतिक भेदभाव ने बंगला देश को जन्म दे दिया और धर्म के आधार पर बना देश अपनी एकता कायम नहीं रख पाया और दो टुकड़े हो गया।

अब एक तीसरा दौर अफ़ग़ानिस्तान के रूप में सामने आया। क़बीलाई आधार पर खड़ा वह देश अपने सरदारों के जुल्म तले कराह रहा था। वहाँ की सारी उपजाऊ ज़मीनों पर क़बीलों के सरदारों का कब्ज़ा था। आम अफ़ग़ानी किसान या तो बंजर ज़मीनों का मालिक था या उन सरदारों की ज़मीनों पर बँधुआ मज़दूरों की तरह कष्ट भरी ज़िंदगी बिताने पर मज़बूर था। ऐसे में बिल्कुल अपने से सटे सोवियत संघ के मुस्लिमबहुल देशों में अफ़ग़ानी जनता एक अचंभे को देख रही थी। वह अपने और अपने पड़ोस में रह रहे लोगों के जीवन-स्तर में ज़मीन-आसमान का अंतर देख रही थी। वहाँ के लोगों की काफ़ी ख़ुशहाल ज़िंदगी ने अफ़ग़ानियों में उन देशों की राजनैतिक व आर्थिक व्यवस्था को जानने और समझने की जिज्ञासा पैदा की, और तब उन्हें लगा कि अगर यही व्यवस्था अफ़ग़ानिस्तान में आ जाए, तो उनको सरदारों के जुल्म व क़बीलाई समाज के कष्टों से छुटकारा मिल जाएगा; ऐसा ही उन्होने किया भी। क़बीलों के सरदारों को हटाकर नयी बनी सरकार ने सबसे पहला काम ज़मीनों का बँटवारा करके किया। क़बीलाई सरदारों की ज़ब्त की गयी ज़मीनों के लाखों पट्टे भूमिहीन अफ़ग़ानियो में बाँट दिये गये। शिक्षा का काम युद्धस्तर पर शुरू किया गया, लेकिन जिन सरदारों की ज़मीनें ज़ब्त की गयी थीं, वे इससे बौखला उठे। ऐसे में वहाँ कायम हुई ग़रीबों की हुकूमत से चिंतित अमरीका व जनरल ज़िया उल हक़ जैसे उसके पिट्ठू इसी मौक़े का इन्तज़ार कर रहे थे। उन्होंने क़बीलाई सरदारों की मदद करना शुरू किया और क़बीलाई सरदारों ने अपनी ज़मीनों के छिनने को इस्लाम पर हुए हमले के रूप में प्रचारित करना शुरू कर दिया। बहुत से अशिक्षित अफ़ग़ानियों के साथ-साथ मुस्लिम बुद्धिजीवी भी उनके बहकावे में आ गये। उधर अमरीका के दुनिया भर में फैले प्रचार माध्यम इस झूठ को फैलाने में लग गये कि अफ़ग़ानिस्तान में इस्लाम ख़तरे में है। यह वैसा ही झूठ था, जो आज मुस्लिमों के बारे मे अमरीकी प्रचार-माध्यम फैलाने में लगे हुए हैं। हॉलीवुड में ऐसी फ़िल्मों की बाढ़ आ गयी, जिसमे नयी अफ़ग़ानी सरकार को खलनायक के रूप में दिखाया गया था और अमरीका व अफ़ग़ानी भूस्वामियों के बहकावे में आये लोग स्वतंत्रता-सेनानी थे। यही वह दौर था, जिसमें मुस्लिम बुद्धिजीवियों को अपनी भूमिका निभानी थी। उन्हें मुस्लिम समुदाय को इस अमरीकी दुष्प्रचार से सचेत करना था, लेकिन तब वे न केवल उस प्रचार-मनोविज्ञान का ख़ुद शिकार हो गये, बल्कि वे भी उन गढ़ी गयी कहानियों को फैलाकर अमरीका की साजिश में मदद करने लगे। उधर नयी बनी अफ़ग़ान सरकार की मदद में आया सोवियत संघ भारी नुकसान उठाने के बाद वापस हो गया, लेकिन उसके जाने के बाद भी जिस लड़ाई को धार्मिक जेहाद बताया गया था, शांत नहीं हुई। अमरीका के बहकावे में आकर सोवियत संघ का विरोध करना मुस्लिम बुद्धिजीवियों की वह ऐतिहासिक ग़लती साबित हुआ, जिसका नतीजा आज हम वहाँ अमरीका की मौजूदगी और उसके बेलगाम हो जाने के रूप में भुगत रहे हैं। उस ग़लती ने ही अफ़ग़ानिस्तान व इराक को पत्थर युग में पहुँचा दिया और फ़िलीस्तीन को हम अमरीकी पिट्ठू इज़राइल के बर्बर जुल्म के नीचे आज कराहता देख रहे हैं। हॉलीवुड में आज भी फ़िल्में बन रही हैं, लेकिन अब उन फ़िल्मों में जेहाद करने वाले अफ़ग़ानी स्वतंत्रता-सेनानी न होकर बर्बर आतंकवादी हैं और नायक हैं अमरीकी नेतृत्व में मासूम बच्चों और महिलाओं पर बमबारी कर रहे नाटो के सैनिक।

आज तीसरा दौर आ चुका है, जिसमें मुस्लिम बुद्धिजीवियों को अपनी भूमिका तय करनी है; लेकिन लगता है, आज फिर वे इतिहास की ग़लती को दोहरा रहे हैं, क्योंकि कल तक जो जमीयत-ए-उलेमा ए हिन्द साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त लड़ाई लड़ रही थी, आज बंगाल में उसी साम्राज्यवादी अमरीका का मोहरा बनी हुई है। यह सच है कि आज की जमीयत कांग्रेस की ही तरह वह पुरानी जमीयत नहीं है, लेकिन इस मुल्क में और भी तो मुस्लिम बुद्धिजीवी और उनके संगठन मौजूद हैं, जिन्हें आगे आकर लोगों को सचेत करना चाहिए। नंदीग्राम मुस्लिम बहुल इलाका है, जहाँ बंगाल की वाममोर्चा सरकार ने कैमीकल उद्योग लगाने का फ़ैसला अपनी शर्तों पर किया था। ज़ाहिर है कि उसका लाभ निकट के ग़रीब हिन्दू और मुस्लिम दोनों मिलता, लेकिन तृणमूल कांग्रेस, नक्सलवादियों व स्वयं को भारत की एकमात्र कम्यूनिस्ट पार्टी बताने वाली सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर ऑफ़ इंडिया ने मिलकर इस स्थिति का अपने-अपने हित में फ़ायदा उठाना चाहा। उधर अमरीकी राजदूत और हाईकमीशन के अधिकारी जमीयत के नंदीग्राम स्थित दफ़्तर में बैठकर 30 साल से जमी हुई वामपंथी सरकार को उखाड़ फेंकने के मंसूबे बनाने लगे। वे एक साथ कई औज़ारों को इस्तेमाल कर रहे थे। काँटे से काँटा निकालने के तहत वाममोर्चे के विरोधी नक्सलवादियों का इस्तेमाल, सांप्रदायिक भेदभाव पैदा करने के तहत मुस्लिम संगठनों का इस्तेमाल, साम्राज्यवादी देशों के फन्ड से चलने वाले स्वयंसेवी संगठनों व ख़ुद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ग़ैर-राजनीतिक के तौर पर स्थापित करने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं का इस्तेमाल वे बेहद चालाकी से कर रहे थे। उधर अमरीकी दिशा-निर्देशन में जमीयत-ए-उलेमा-ए- हिन्द के बंगाल के नेता श्री सिद्दीकुल्ला चौधरी आगामी विधान सभा चुनाव के मद्देनज़र माहौल को सांप्रदायिक बनाने में लग गये और कम्युनिस्टविरोधी सभी राजनैतिक पार्टियाँ व विदेशी फ्न्ड से संचालित स्वयंसेवी संगठन व बुद्धिजीवी भी उनकी मदद में जुट गये। प्रगतिशील कहलायी जाने वाली जमीयत के इस ग़लत क़दम का खुलासा, भारत में कट्टरपंथी के रूप में मशहूर बुखारी ने किया। जमीयत की असलियत मुसलमानों के सामने उजागर न हो जाए, इस डर से श्री सिद्दीकुल्ला चौधरी ने मौलाना बुखारी की मीटिंग तक नंदीग्राम में नहीं होने दी और उनको अपमानित करके वहाँ से भगा दिया गया। यह सभी जानते हैं कि नौआखाली जैसे सांप्रदायिक दंगे के लिए मशहूर बंगाल में तमाम कोशिशों के बावजूद पिछले तीस सालों में सांप्रदायिक ताक़तें दंगा नहीं करा पायी हैं। अंतर्धार्मिक व अंतर्जातीय विवाह करने के कारण किसी युवक या युवती की हत्या उनके अभिभावकों द्वारा किये जाने की घटनाएँ बंगाल से ज़्यादा दूसरे प्रदेशों में आये दिन होती रहती हैं, लेकिन बंगाल में एक मुस्लिम युवक की हत्या को इस तरह प्रचारित किया जाने लगा कि जैसे बंगाल सरकार मुसलमानों के ख़िलाफ़ है और उसी ने रिज़वानुर नामक युवक की हत्या करायी है। राशन की दुकानों पर सोची समझी साजिश के तहत मीडिया को बुलाने के बाद हमले किये गये, ताकि वाम मोर्चे की सरकार को बदनाम किया जा सके। सेज के मामले में वाम मोर्चे की क्या नीति है, इस पहलू को मीडिया ने पूरी तरह नज़रअंदाज किया। आज मुस्लिम बुद्धिजीवियों को जान लेना चाहिए कि बंगाल में वामपंथियों को अगर कोई भी नुकसान होता है या उन्हें सत्ता से बेदख़ल होना पड़ता है, तो उससे सिद्दीकुल्ला चौधरी जैसे लोगों को ज़रूर कुछ निजी लाभ पहुँच सकता है, लेकिन उसका सबसे ज़्यादा नुकसान वहाँ ही नहीं, पूरे देश के मेहनतकश लोगों और ख़ासतौर पर मुसलमानों को ही उठाना पड़ेगा। इज़राइल ने फ़िलीस्तीन में हमाज के चुनाव में जीतने के बाद से ही गाजापट्टी में रह रहे फ़िलीस्तीनियों की बिजली पानी की सप्लाई काट दी है और आज भी इस अमानवीय काम को जारी रखे हुए हैं। ऐसे में, केवल वामपंथियों ने न केवल उनके हक़ में आवाज़ बुलंद की है, बल्कि चंदा इकट्ठा करके उन्हें भिजवाया भी है। भारत के किसी मुस्लिम संगठन ने यह काम नहीं किया है, इसलिए मुस्लिम बुद्धिजीवियों का यह ऐतिहासिक दायित्व बनता है कि वे जमीयत की इस ऐतिहासिक ग़लती को रोकें और उसे इससे बाज आने के लिए कहें। नंदीग्राम में बंगाल सरकार ने कैमिकल हब बनाने और उसके लिए ज़मीन अधिग्रहण करने का निर्णय 3 फ़रवरी, 2007 को लिया जिसे वापस लिये लंबा समय बीत चुका है, लेकिन ममता बनर्जी, जमीयत-ए-उलेमा-ए- हिन्द व रोमांचकारी दुनिया में रह रहे नक्सलवादियों ने वहाँ की जनता को अभी भी बहका रखा है कि बंगाल सरकार उनकी ज़मीनें अभी भी अधिग्रहण करना चाहती है। वाममोर्चे के समर्थक जिन लोगों को ममता बनर्जी व नक्सलवादियों ने मारकर उनके घरों से बाहर निकाल दिया था, वे तभी से कैंपों में रह रहे हैं। अपने घरों से विस्थापित कर दिये गये उन साढ़े तीन हज़ार से ज़्यादा लोगों के पक्ष में न तो मेधा पाटेकर आ रही हैं और न ही कोई अरुंधती राय। मेधा आती भी हैं, तो उनके पक्ष में, जो सारे विवाद की जड़ हैं। ऐसा लगता है कि जैसे विदेशी फ्न्ड से चलने वाले एन.जी.ओ. की नज़र में अपने घरों से उजाड़ दिये गये लोग इंसान हैं ही नहीं। अब जब ज़मीन-अधिग्रहण का फ़ैसला वापस ले लिया गया है, तब बंगाल सरकार कैंपों में रह रहे लोगों को वापस उनके घरों में ले जाने का जब भी प्रयास करती है, तभी उन पर हमला कर दिया जाता है और सारे पूँजीवादी प्रचार-माध्यम, जो साम्राज्यवाद की सेवा में लगे हुए हैं, हालात की सच्चाई को बताने के स्थान पर बंगाल सरकार की ग़लती को ही प्रचारित करने में लग जाते हैं। आज जब न्यूक्लियर डील पर वाम मोर्चा राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐतिहासिक लड़ाई लड़ रहा है, उस समय नंदीग्राम में बंगाल सरकार को उलझाये रखना यही बताता है कि उसके पीछे साम्राज्यवादी साजिश काम कर रही है क्योंकि जेएसडब्ल्यू, स्टल नामक कंपनी ने हल्दिया ज़िले में नंदीग्राम के निकट ही तीन लाख रुपये एकड़ की दर से साढ़े चार सौ एकड़ ज़मीन किसानों से ख़रीद ली है, लेकिन न तो उस कंपनी के ख़िलाफ़ सिद्दीकुल्ला चौधरी जैसे लोग सामने आये हैं और न ही ममता या नक्सलवादियों ने कोई आंदोलन छेड़ा है। मीडिया तो इसके बारे में बताएगा ही क्यों? जहाँ तक नक्सलवादियों का ताल्लुक है, तो बिहार में लालू का विरोध करके भाजपा की सरकार बनवाकर और अपनी सभी सीटें गँवाकर वे अपनी समझदारी दिखा ही चुके हैं, लेकिन हम यहाँ बात मुस्लिम बद्धिजीवियों की कर रहे हैं। उन्हें इसके पीछे छिपी साम्राज्यवादी साजिश को समझना चाहिए। अगर सिद्दीकुल्ला चौधरी जैसे लोग अमरीकी बहकावे में आ गये हैं और उनके निजी स्वार्थ उन्हें वाममोर्चे का विरोध करने के लिए मजबूर कर रहे हैं, तब ऐसे समय में मुस्लिम बुद्धिजीवियों की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वे अपने समाज के सामने हक़ीक़त को रखें।

मुस्लिम बुद्धिजीवियों की ऐतिहासिक जिम्मेदारी बनती है कि वे जमीयत सहित वाम मोर्चे का विरोध कर रहे सभी संगठनों व पार्टियों के विरोध में खुलकर सामने आएँ। उनकी इस समय की खामोशी मुस्लिम हितों को नुकसान पहुँचाने वाली ही साबित होगी। अब देखना यह है कि वे फिर उसी ऐतिहासिक ग़लती को दोहराते हैं, जो उनके पूर्व के बुद्धिजीवियों ने अतीत में की थी या इस समय सही फ़ैसला लेते हैं।

संपर्क-09897023750

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभरान : भारतीय समाज-व्यवस्था का राजवस्त्र

काकडे गोरख प्रभाकर

भारतीय संस्कृति एवं समाज-संरचना को 'आभरान' के माध्यम से "आभरान" पहनकर दी हुई यह आवाज़ है, जो भारतीय संस्कृति में पोतराज की गुलामगीरी को स्पष्ट करती है। 'आभरान' मराठी दलित लेखक पार्थ पोळके की आत्मकथा है, जो सन् 1984 में ग्रंथाली प्रकाशन, मुंबई से प्रकाशित है।

"यह आत्मकथा भारतीय संस्कृति के चिथड़ों को सर एवं कमर पर बाँधकर भीख माँगने वाले पोतराज के मर्मांतक जीवन की व्यथा-कथा है। साथ ही, पोतराज के वंश में जन्मे ऐसे एक संघर्षशील 'पार्थ' की भी कथा है, जो भारतीय जाति-व्यवस्था के कुरुक्षेत्र में योद्धा के साथ सारथी भी है।

लेखक ने महार समाज में व्याप्त अंधश्रद्धा के शिकार बने पिता मरिबा पोतराज को प्रतिनिधि स्वरूप में सामने रखकर समग्र महार मांगों की रूढ़ि परंपराओं को एक प्रेषक के रूप में पाठकों तक प्रेषित किया है।

महार समाज की धारणा है कि जब इन पर मरिमाता का प्रकोप होता है, तो घर-परिवार में दारिद्र्य, दुख, बीमारी आदि अनिष्टों की छाया रहती है। उसे दूर करने और देवी मरिमाता को खुश करने के लिए सबसे बड़े बेटे को पोतराज बनाकर देवी मरिमाता की सेवा करने के लिए छोड़ देना पड़ता है और फिर उसके बड़े बेटे को परंपरागत इस प्रथा का पालन करना पड़ता है और यह शृंखला अनवरत चलती रहती है, जिसे आत्मकथाकार ने आत्मकथा एवं सामाजिक कार्य से खंडित करने का प्रयास किया है। पर इसे प्रयास ही रहने का बोध आत्मकथा का अंतिम छोर भी कराता है। इस परंपरा के विरोध में भले ही आत्मकथा में आवाज़ उठायी हो, आक्रोश व्यक्त किया गया हो, पर इस व्यवस्था से पिता को मुक्त करने में लेखक असफल दिखायी देता है।

पोतराज, जो रंग-बेरंग टुकड़ों को अपनी कमर पर चारों ओर से लटकाता है, उसे 'आभरान' (आभूषण) कहा जाता है, जिसे पहन माथे पर बड़ा तिलक, पैरों में घुँघरू बाँधकर घर-घर जाकर भीख माँगता है; मुँह से—"आई मरीमाता एक के इक्कीस, पाँच के पचास बेल मंडप तक जाने दे, छाज-अमृत से डेर घूमने दे। माथे का कुमकुम, हाथ का चूड़ा पैरों के बिचूवे की रक्षा करो माँ लकसीमी" की दुआ देता है। इस व्यवस्था एवं सामाजिक मानसिकता पर रोष व्यक्त करते हुए आत्मकथा में लेखक कहता है—"आभरान यानी यहाँ की समाज-व्यवस्था ने पोतराज को दिये हुए राजवस्त्र पूरे आयुष्य के टुकड़े-टुकड़े करने वाले।"

आत्मकथा में एक ओर रोष एवं खिन्नता भरे उद्‌गार हैं; तो दूसरी ओर, इस व्यवस्था के मायाजाल से बचाने वाले शिक्षा, संगठन एवं संघर्ष का महायंत्र देने वाले बौधिसत्व महामानव डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर एवं उनके विचारों से प्रेरित होकर अपने बेटे पार्थ को शिक्षा देने वाले पिता मरिबा एवं मेहनत करने वाली माता के प्रति कृतज्ञता व्यक्त हुई है। लेखक लिखता है—"अगर आबा ने उस समय मुझे स्कूल नहीं डाला होता और बाई ने दोनों भाईयों के लिए छाती फटने तक कष्ट नहीं उठाये होते, तो आज आबा के आभरान के टुकड़े पूरे शरीर पर लपेटकर कोड़े के फटके लगाता। मैं भी दरवाज़े-दरवाज़े भीख माँगता। दूसरों के बासी टुकड़ों पर जीता और अपने बच्चों के लिए आभरान के टुकड़े ओढ़ने के लिए रखकर मर जाता।" इस सामाजिक रूढ़ि-परंपरा से पार्थ पोळके का चिर परिचय था। पिता ही पोतराज होने के कारण उन्होंने यह जीवन स्वयं भी जिया था। वे भी कमर पर आभरान लपेटकर पिता के साथ गाँव में भीख माँगने गये थे। यही भीख माँगने वाला आगे कोल्हापुर विश्वविद्यालय से एम.ए. (इतिहास) एवं बी.एड. की उपाधि लेकर सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में समाजवादी युवक संगठन में कार्य करता है, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय नामांतर आंदोलन के लाँग मार्च में समता ज्योति लेकर निकलता है और अन्य सहयोगियों के साथ जेल में जाता है। लेखक "अपने लगभग पैंतीस वर्ष के जीवन में शिक्षा पूरी करते हुए आस-पास के जीवन को देखकर अपनी नौकरी सँभालते हुए समाज-कार्य की ओर अग्रसर हुआ है।" एक ओर यह आत्मकथा एक सामाजिक कार्यकर्ता की है, तो दूसरी ओर लेखक के परिवार एवं समाज की भी है, जो परंपरागत समाज-व्यवस्था के शिकार बने हैं। इसी व्यवस्था को उखाड़ने के लिए लेखक ने अपने मनोजगत में साहित्यिक लेखन के तूफ़ान की अपेक्षा रखी है, जो यौग्य प्रतीत होती है। इसी का एक प्रयोग यह आत्मकथा मानें, तो असंगत न होगा।

'आभरान' लेखक के व्यक्तिगत जीवन के साथ सामाजिक जीवन की विसंगतियों, भूख, दारिद्र्य, अस्पृश्यता, अंधश्रद्धा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूढ़ि-परंपरा एवं ग्राम-जीवन-ग्राम-संस्कृति को अभिव्यक्त करती है, आत्मकथा का आरंभ ही भूख की वेदना से होता है। धर्मभीरू मरिबा आषाढ-श्रावण में भीख माँगने नहीं जाता। परिणामस्वरूप, परिवार को भूख की वेदना सहनी पड़ती है। इस भूख को मिटाने के लिए वह रोग से मरी मुर्गियों, जानवरों को भी खाने के लिए विवश है। इन अघोरी स्थितियों से यह आत्मकथा सफ़ेदपोश वर्ग को परिचित कराती है। यह जीवन लगभग सभी अस्पृश्यों के हिस्से आया है, जो विभिन्न अस्पृश्यों द्वारा लिखी आत्मकथाओं में दिखायी देता है जो इनके जीवन का अभिन्न अंग था।

यह आत्मकथा दैववादी दलित समाज में व्याप्त अंधश्रद्धा एवं अज्ञान को भी उजागर करती है। घर में साँप निकलने की बात सुनकर मरिबा उसे मारने की बजाय देवमूर्तियों को धोकर पानी सारे घर में छिड़कता है और 'नातसायेब का चांगभंल' का जयघोष करता है। उसकी यह धारणा है कि उससे कुछ ग़लती हो गयी है, परिणामस्वरूप नातसाब ने उसे चमत्कार दिखाया है। यही भूमिका लेखक की माँ की भी है। वह कहती है, "नाताबा का नाम लो, डर नहीं लगेगा।" माँ काशीबाई पतिपरायण थी। नातसायेब, कुकणी मरीमाता, चांगभलं-चांगभलं कहते हुए बाई मेरे पास लेटी। हड्डियों की दुर्गंध छुटी थी, मैंने कहा, "क्या दुर्गंध छूटी है इन हड्डियों की। किसलिए चूल्हे में डाली हैं। हड्डियों की दुर्गंध से जानवर रहता नहीं।"

आत्मकथा में शोषित, दलित, पीड़ित, प्रताड़ित जीवन के साथ ग्राम-संस्कृति में व्याप्त लोक-विश्वास, लोक-रूढ़ि एवं लोक-संस्कृति का चित्रण है। पोतराज गाँव में भीख माँगते वक़्त भीख देने वाली स्त्रियों के सामने भंडारा (भभूत) रखता है, वह लगाकर स्त्रियाँ पोतराज के पाँव छूँ लेती हैं। पोतराज उनकी पीठ पर हाथ रखकर आशीर्वाद देता है। अपने पास का चाबुक उनके माथे पर लगाता है। ऐसे ही पारधी समाज की यात्रा का वर्णन भी हमें ग्रामीण लोक-संस्कृति से परिचित कराता है। 'आभरान' में बलि-प्रथा का जो चित्रण हुआ है, वह काफ़ी यथार्थवादी होने के कारण वीभत्स बना है। साथ ही 'आभरान' हमें ग्रामीण उत्सव, पर्व, त्योहार, अंत्यविधि आदि से भी परिचित कराती है।

आत्मकथा में चित्रित व्यक्तिरेखाएँ पीड़ित-शोषित होने के साथ-साथ संघर्षशीलता एवं प्रगतिशीलता का भी परिचय देती हैं। लेखक के पिता दैववादी होने के साथ अपनी दयनीय परिस्थिति के कारणों से भी परिचित हैं। वे डॉ. बाबा साहेब के विचारों से भी परिचित हैं। इसी कारण वे अपेक्षा रखते हैं कि जो जीवन उनके हिस्से आया, वह उनके बेटे के हिस्से में न आये। इसलिए, वे अपने दोनों बेटों को स्कूल भेजते हैं। यहाँ डॉ. बाबा साहेब के विचारों एवं कार्य का मरिबा पर प्रभाव स्पष्ट होता है। मरिबा की दृष्टि में बाबा साहेब का स्थान देवता के रूप में है। बाबा साहेब के निर्वाण की बात सुनते हीं मरिबा शोकाकुल होकर "बाबा गये पायित्रे, अपना देव गया। अब कुछ भी नहीं बचा" कहते हुए कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

लेखक की माँ पवित्रा भी एक श्रमशील, वात्सल्यमयी, सहनशील नारी के रूप में है, जो अपने परिवेश की दलित स्त्रियों की प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने है। लेखक पार्थ का सदृढ़ कुश्तियाँ करने वाला; सामाजिक अन्याय का विरोध करने वाला, मार्क्स, एंगेल्स रसेल, शाहू महाराज, डॉ. आंबेडकर के विचारों से परिचित संघर्षशील व्यक्तित्त्व पाठक के मन पर एक अलग छाप छोड़ता है। साथ ही, ब्राह्मण होकर अंतरजातीय प्रेम-विवाह करने वाली लेखक की पत्नी जाह्नवी भी आत्मकथा में विशिष्ट छाप छोडती है। इनके अलावा लेखक का भाई नातबाबा एवं उसकी पत्नी और लेखक की अंतरंग मित्र कृपा भी पाठक के सामने अपने गुण विशेष के साथ प्रस्तुत होते हैं। "स्वयं को रेखांकित करते वक़्त लेखक ने अपने आस-पास के माँ-बाप, भाई, भाभी-कृपा, पत्नी-जान्हवी इनकी रेखाओं का रेखाटन करके योग्य न्याय किया है।" जिस कारण आत्मकथा में चेतना आयी है।

आत्मकथा में आत्म-प्रशंसा एवं प्रसंगों की सजावट में अतिशयता दिखायी देती हैं। भाषा में सहजता, सरलता एवं पात्रानुकूलता है। आरंभ में जो भाषा संवादों के लिए अपनायी गयी है, वह आत्मकथा के उत्तरार्ध में अपना रूप बदलती हुई दिखायी देती हैं। वाक्य छोटे-छोटे एवं प्रभावपूर्ण हैं। साथ ही, लोक-जीवन में व्याप्त लोकोक्तियों एवं मुहावरों के साथ आम बोलचाल में आने वाले अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है।

आत्मकथा की भाषा कहीं-कहीं विद्रोह एवं टीकात्मक रूप अपनाती है और यह होना लाज़मी है, क्योंकि यह आत्मकथा एक शोषित समाज का शोषण पाठकों के सामने पहुँचाने के उद्देश्य से लिखी गयी है, जो स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है—"आभरान के टुकड़ों के समान यह समाज आँखें खुली रखकर देखता रहा। हर एक टुकड़ा ज्वलनशील, पर मन जलता नहीं था, तो उलटे इस व्यवस्था के विरोध में लड़ने के लिए ताक़त इकट्ठा करता था। मुझे लगता है, यहीं पर मुझे मेरे जीने का अर्थ मिला।" तो अन्य जगह पार्थ पोलके लिखते हैं—"इस आभरान के टुकड़ों की उष्णता पाठकों तक पहुँची, तो भी मेरा काम हुआ।" जो उद्देश्य आत्मकथाकार ने रखा है, वह काफ़ी हद तक सफल हुआ दिखायी देता है, पर खेद की बात तो यह है कि जितने ज़ोर-शोर से अन्य दलित आत्मकथाओं की समीक्षा एवं चर्चा हुई, उतनी 'आभरान' की नहीं, जो होनी आवश्यक थी।

हिन्दी विभाग,
डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर मराठवाड़ा
विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी सबका है, सिर्फ़ हमारा नहीं

अरुण होता

प्रेमचंद के कथा-साहित्य की प्रशंसा में एक कथन प्रचलित है–"अगर आप उत्तर भारत के लोगों के आचार-विचार, रीति-नीति, चाल-चलन आदि के बारे में जानना चाहते हैं, तो प्रेमचंद से अच्छा परिचायक आपको नहीं मिल सकता।" ठीक उसी प्रकार वरिष्ठ हिंदी कथाकार विद्यासागर नौटियाल (1993) के छठे उपन्यास 'स्वर्ग दद्दा! पाणि, पाणि' (2010) पढ़ने के बाद ऐसा कहा जा सकता है कि अगर आप पार्वत्य अंचल, विशेषतया टिहरी गढ़वाल, देहरादून, उत्तरांचल के लोगों के जीवन-यथार्थ, इतिहास-संस्कृति, रीति-नीति, चाल-चलन आदि की जानकारी हासिल करना चाहते हैं, तो नौटियाल जी की रचनाएँ सही मार्गदर्शन करने में पूर्णतया समर्थ हैं। नौटियाल पहाड़ी अंचल के लोगों की आशा-आकांक्षाओं के ही नहीं, उनके गर्व और गौरव, उनकी पीड़ा एवं संघर्ष के भी सफल चितेरे हैं।

'स्वर्ग दद्दा! पाणि, पाणि' महज़ एक उपन्यास नहीं है। यह एक अलिखित इतिहास का साहित्यिक दस्तावेज़ है। आज के समय की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या को कलात्मक अभिव्यक्ति है। उदारीकरण, औद्योगीकरण, निजीकरण की झूठी हवा से अपना पर्यावरण सर्वाधिक प्रभावित हो रहा है। विकास के नाम पर विनाश-लीला जारी है। जंगल अंधाधुंध साफ़ किये जा रहे हैं। प्रकृति का संतुलन दिनों दिन बिगड़ता जा रहा है, ऊपर से कंक्रीट का जंगल बनाया जा रहा है। ऐसे में जंगल के प्रेमियों को किन मुसीबतों से गुज़रना पड़ता है, सत्ता और पूँजी की साँठ-गाँठ उन्हें किस क़दर शोचनीय बना देती; ऐसी तमाम स्थितियों से रू-ब-रू कराने वाला उपन्यास है–'स्वर्ग दद्दा! पाणि, पाणि। सबसे उल्लेखनीय बात है कि आम आदमी अपनी तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अनवरत संघर्ष जारी रखता है। विजय उसे भले न मिले, परंतु पराजय कबूलता नहीं। जंगल के कण-कण से प्रेम करने वाले मेहनतकश लोगों को अपनी ही ज़मीन से बेदखल किया जा रहा है। जंगल उनके लिए माँ है, साथी है, सर्वस्व है। परंतु, उन्हें विस्थापित होना पड़ता है। सोते, झरने उनके जीवन-प्रवाह के अंग हैं, पर उसके पानी से उन्हें वंचित होना पड़ता है। इन स्थितियों का सफल रूपायन समीक्ष्य उपन्यास में हुआ है। आने वाले दिनों में पानी की समस्या सबसे अधिक विकट होगी। कुछ लोगों का तो यहाँ तक मानना है कि अगले विश्वयुद्ध के मूल में पानी होगा। उक्त उपन्यास की शुरूआत पानी की समस्या से हुई है–"पलास के अलावा दूसरे गाँवों के निवासी पीने के पानी की बूँद-बूँद के लिए तरसते हैं। पानी के मामले में वे अपना काम चला लेते हैं, बस।" (पृ07) यह प्रसंग प्रेमचंद की 'ठाकुर का कुआँ' शीर्षक कहानी का परिवर्द्धित एवं मार्जित रूप है। प्रेमचंद का जोखू सड़ा हुआ गंदा पानी पीने के लिए विवश था, तो आलोच्य उपन्यास का केंद्रीय पात्र सितानू भागीरथ बनकर पहाड़ से सोता प्रवाहित करने के लिए बरसों की अनथक मेहनत करता है। उसकी संघर्ष-गाथा को कहानी के रूप में कथाकार ने दादी के मुँह से सुनाया है। यहाँ उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि उपन्यासकार में एक अद्भुत कथावाचक समाहित है। लेकिन, यह कहानी केवल कहानी नहीं है। इसमें हरिजनों, दलितों एवं पीड़ितों की आर्थिक दशा, उनके लोक-विश्वास, उनकी संघर्षशीलता, सच्चाई, ईमानदारी, भोलापन और जीवन के अन्य पहलू जीवंत रूप से चित्रित हैं। अपने पिता से संस्कार पाने के पश्चात सितानू ने प्रतिज्ञा की कि वह अपने लिए नहीं, गाँव वालों के लिए कुछ करेगा। वह तिकोन्या धार के फटऊ पिठवाण (स्फटिक पृष्ठवान) के तल पर खड़े होकर उसकी शिला पर हौले-हौले हाथ फेरता रहा। उसे लगा कि कोई फिसलन भरा शीशा है। उसकी दृष्टि में वह शिला केवल पत्थर न थी बल्कि पूरे गाँव में खुशहाली लाने का साधन थी। इसलिए, उसका एक टुकड़ा पाने के लिए वह वर्षों तक अनथक प्रयास करता रहा। उसका कर्म, धर्म व उद्देश्य बना–फटक पिठवाण का एक टुकड़ा। छेणी-हथौड़े और पोटली लिए प्रत्यूष से प्रदोष तक वहीं जुटा रहा। जिस प्रकार सितानू के लिए पत्थर केवल पत्थर न था, उसी प्रकार पहाड़ महज़ पहाड़ न था उसके लिए। "पहाड़ मात्र पत्थर या पत्थरों का ढेर नहीं होता। अगर पत्थर होता है, तो वह बेजान, मुर्दा नहीं होता। पहाड़ एक ज़िंदा काया का नाम है। ख़ामोश दिखायी देने वाले उन पत्थरों के भीतर भी एक जीवन धड़कता है।" (पृ0 21)

सितानू ने 'कोड हीरो' की तरह असंभव को संभव बनाया। उसने जल का सोता निकालने में कामयाबी हासिल की। फटक पिठवाण से लाये पत्थर तराशकर गोमुख से गिरता पानी सबको सुलभ कराया। इस प्रक्रिया में गाँव के आबाल वृद्ध वनिता एकजुट हो जाते हैं; कुत्ते, खच्चर भी। सारा भेदभाव मिट जाता है, परंतु कुछ ही दिनों की खुशहाली के बाद पानी भरने के सिलसिले में सवर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृतियों के अंतर्द्वन्द्व का विस्फोट

एम0 हनीफ मदार

खौलते तेल में पानी के छींटे पड़ जाने पर तेल और पानी में जो विस्फोट-विचलन की स्थिति उत्पन्न होती है, ठीक ऐसी ही जलती हवाओं के तूफान से लबरेज़ है—सुदर्शन प्रियदर्शनी का लघु उपन्यास 'जलाक'। भारत के पंजाब प्रांत में पली-बढ़ी डॉ0 प्रियदर्शनी उपन्यास के शुरू में ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक ताने-बाने और रिश्तों की अनगढ़ता में माता-पिता की भूमिका पर बेबाक स्त्रियों का जातिगत वर्चस्व सिर चढ़कर बोलने लगता है। जिस दलित नायक के भागीरथ प्रयास से सोता बहाया गया था, उसकी जाति की स्त्रियों के लिए पानी तक भरना कठिन हो जाता है। पानी को लेकर राजनीति शुरू हो गयी। तय किया गया कि धार से नल की सहायता से पानी दलित बस्ती में लाया जाएगा। दलित उन्नयन किया जाएगा। ऐसे मौके को राजनेता अपने हाथ से जाने नहीं देना चाहते। फिर चुनाव का जो वक़्त था। मुख्यमंत्री के कर कमलों से गोमुख-हरिजन-पेयजल योजना का विधिवत् उद्घाटन कराया गया। यह समारोह धारा के पास नहीं, बल्कि सामयिक रूप से बने हवाई अड्डे पर ही हुआ। अमला-तंत्र पूरी तरह से 'चमचा-तंत्र' में तब्दील हो जाता है। इस समारोह के बहाने उसका नकाब उतर जाता है। असली चरित्र सामने आ जाता है। भ्रष्टाचार में लिप्त इस वर्ग के लिए दलित मनुष्य पदवाच्य नहीं है। शोषण की पराकाष्ठा का चित्रण किया है उपन्यासकार ने। सितानू की घास सूखने लगती है। टिहरी बाँध परियोजना शुरू होती है। अपनी माँ, मिट्टी तथा जंगल से प्रेम करने वाले उसका विरोध करते हैं। इस विरोध का दमन भी करवाया जाता है। अधिकारी-वर्ग आपादमस्तक विलासी, भ्रष्ट और शोषक बन चुका था। बस, अपवाद निकला दलित डी.एम. रामदीन। उसने पदोन्नति को अस्वीकार कर दिया और नौकरी से त्यागपत्र देकर बाँध-विरोधियों को नेतृत्व प्रदान किया।

हिंदी काव्य-जगत में पर्यावरणीय चिंता को लेकर अच्छी कविताएँ ज़रूर हैं, परंतु उपन्यास के क्षेत्र में इसका अभाव-सा पाया जाता है। समीक्ष्य उपन्यास उपर्युक्त अभाव को काफ़ी हद तक पूरा करता है। समीक्ष्य उपन्यास में कथाकार ने लोक-कथा के माध्यम से समकालीन जीवन की प्रमुख समस्याओं को पेश किया है। पार्वत्य अंचल का लोक-जीवन बखूबी चित्रित हुआ है। उक्त उपन्यास में ढोल-नगाड़े बजाते हुए न तो नारी-विमर्श आता है और न दलित-विमर्श। उपन्यास के शुरू से अंत तक दलितों की पीड़ा मुखर हुई है। दलित-विमर्श के लिए दलितों की पीड़ा, उनका विरोध व प्रतिरोध नहीं दिखाया गया है। यह आरोपित नहीं, स्वाभाविक प्रतीत होता है। नारी-विमर्श की अंतर्धारा संपूर्ण उपन्यास में प्रवाहित है, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसमें कहीं नारीवाद (रेडिकल फ़ेमिनिज़्म) नहीं है। दलित स्त्री पुरुषवादी वर्चस्व एवं सवर्णों की मनमानी पर प्रतिक्रिया करती है। मार-पीट, ख़ून-ख़राबा भले न करे, परंतु वह अपने ढंग से अपनी जीत मनवा ही लेती है।

'स्वर्ग दद्दा! पाणि,पाणि' में विद्यासागर नौटियाल ने आदिवासियों एवं दलितों पर शताब्दियों से हो रहे शोषणों एवं अत्याचारों का वर्णन ही नहीं किया है, बल्कि उन्होंने अत्याचारों के तरीकों का भी उजागर किया है। इस उपन्यास का एक और वैशिष्ट्य है कि दुख, कष्ट, निराशा, यंत्रणा, संत्रास से पीड़ित जन टूटकर हार नहीं मानते, हमें उदास नहीं करते, बल्कि हमें आस्थावान बनाते हैं। डी.एम. रामदीन के चरित्र-चित्रण में कथाकार ने कुछ ज़्यादा ही आदर्शवाद का चित्रण किया है। सितानू के पेत्थर तसाशकों द्वारा प्रवाहित करने में जो समयावधि बतायी गयी है, उसमें सामंजस्य का अभाव है। तथ्यात्मक च्युति का नमूना इस प्रकार है—छह बरस (पृ0 33), आठ वर्षों तक लगातार कठोर तपस्या (98) एवं नौ बरस (पृ0 118) इससे पाठकों के मन में भ्रम उत्पन्न होता है। आलोच्य उपन्यास में प्रूफ की भूलें काफ़ी मात्रा में हैं जो आँखों में गड़ती हैं।

टिहरी की दशा भारत के किसी भी अंचल में घटित हो सकती है। इसलिए जन-चेतना की आवश्यकता है। जनांदोलनों की ज़रूरत है। इन्हीं कारणों से 'स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि' आज के समय की एक महत्त्वपूर्ण कथाकृति है। अतः पठनीय है। एक अत्यंत विचारोत्तेजक उपन्यास-सृजन हेतु हिंदी पाठक समाज विद्यासागर नौटियाल जी के प्रति आभारी है।

समीक्षित पुस्तक : स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि (उपन्यास)
लेखक : विद्यासागर नौटियाल
प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद (उ0प्र0)
मूल्य : 100 रुपये
पहला पेपर बैक सं0 : 2010

प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पश्चिम बंग राज्य वि.वि., बारासात, कोलकाता- 700126

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणी करती हैं, जोकि भारतीय समाज-व्यवस्था में गहराई तक पैठ चुके उस तथ्य का संप्रेषण है, जहाँ माता-पिता अपनी अधूरी और अतृप्त इच्छाओं को ही बच्चों में साकार होते देखना चाहते हैं और इसी उल्लसित कामना के वशीभूत वे अपनी तमाम इच्छाएँ पूर्ण होने की आशा के साथ बच्चों पर थोपते हैं; फिर चाहे जीवन जीने की घटना हो या अपने भारतीय आदर्श और मान्यताओं की।

कई बार माता-पिता दोनों की अलग-अलग इच्छापूर्ति का द्वंद्व उनमें आपसी तनाव भी पैदा कर देता है और इस तनाव में वे यह भूल जाते हैं कि बच्चे उनसे दूर होते जा रहे हैं। तब बच्चे केवल दूर ही नहीं होते जाते बल्कि अनन्य निष्ठात्मक मानवीय प्रेम की आकांक्षा में भटकाव की स्थिति में चले जाते हैं। उन्हें मरज़ी का मालिक एवं सामाजिक तौर पर बिगड़ैल कह दिया जाता है और इसी कारण उन्हें जीवन-भर कहीं भी कोई स्थायी किनारा नहीं मिल पाता। ख़ासकर लड़कियों के लिए सामाजिक मानदंड इतने बड़े हो जाते हैं कि वे बार-बार टूटकर सोचने पर मजबूर होती हैं कि "क्यों हमारे समाज में नियम बनते हैं? क्यों नैतिक मानदंड या चारित्रिक मान्यताएँ या सीमाएँ निर्धारित की जाती हैं?... आज समझ गयी हूँ कि बेलाग नदी की उछलती लहरों का कोई किनारा नहीं होता. और किनारों में रहने वाली नदी उम्र भर खेत-खलिहानों को लेकर अंत में वहीं अपनी सीमा में समाप्त हो जाती है और उस सीमा में ही उसकी गरिमा को लोग नहीं भूल पाते...।"

उपन्यास की नायिका मीनल इन्हीं सवालों के अंतर्द्वंद्व में कितनी ही बार जीवन जीने को खड़ी होती है और फिर टूटकर बिखरती रहती है। उपन्यास से पृष्ठ-दर-पृष्ठ गुज़रते हुए पुरुषवादी समाज-व्यवस्था का सच परत-दर-परत उद्घाटित होता जाता है, जहाँ सामाजिक मान्यताओं के बड़े-बड़े क़िले स्त्री के प्रति पुरुषवादी सामंती सोच के प्रतीक के रूप में नज़र आते हैं।

डॉ0 प्रियदर्शनी जहाँ मीनल की नानी के रूप में एक ऐसे स्त्री चरित्र को गढ़ती हैं, जो बाल-विवाह से लेकर बाल-विधवा होने तक के सफ़र में कितनी बार पिटती-कुटती है। 'छिनाल' जैसे शब्दों से सामाजिक रूप से बहिष्कृत होती है, वह भी तब, जब वह इन शब्दों का या शादी का या अच्छे-बुरे का भेद ही नहीं जान पाती। किंतु नानी जब अपने जीवन को पंजाबी अल्हड़ता के साथ मीनल में जीने का प्रयास करती है, जब वह मीनल को लड़कों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर समाज से बराबर नज़रें मिलाने के सपने को साकार होता देखती है, तब नानी द्वारा ही मीनल को सामाजिक स्त्री चरित्र के मानदंडों पर रखकर तौलना और उसके लिए दोषी ठहराना लेखिका के अमेरिका में रहते हुए भी स्त्री के प्रति भारतीय सामंती नज़रिये एवं चारित्रिक मान्यताओं के बोझ तले दबे होने का अहसास कराता है—"तुम्हें क्या मालूम मीनल कि लड़की के लिए स्वतंत्रता उसी की अपनी क़ुर्बानी माँगती है और उसे ही तोड़कर रख देती है।...आज तुम देख रही हो।"

मीनल की नानी के द्वारा कहा गया यह वाक्य लेखिका को एक ऐसी अदालत का पंगु जज बना देता है, जो यह फ़ैसला नहीं दे पाती कि इस व्यवस्था में स्त्री को किस ओर जाना चाहिए। उसके लिए क्या सही है या क्या ग़लत। "दुनिया दोमुँही चालें चलती है। उसके दोनों मुँह एक-दूसरे से भिन्न बातें करते हैं, इसलिए जो दुनिया का मुँह जोहकर जीते हैं, वे कभी सुखी नहीं रह सकते... लेकिन, न जोहकर भी कितना सुख मिल पाता है, यह मैं स्वयं आज तक नहीं समझ पायी..." नानी का यह वाक्य यही प्रतिबिंबित करता है।

मीनल के परिवार का अमेरिका जाना उसी भारतीय त्रासदी का नंगा सच है, जहाँ किसी भी हुनर या कला की क़ीमत नहीं समझी जा सकती या कहा जाए कि राजनैतिक शक्तियों का वह दिवालियापन, जो आज तक ऐसी व्यवस्था नहीं दे सका कि हमारे भारतीय हुनरमंद कलाकार विदेश जाकर पेट भरने को विवश न हो सकें। किंतु, डॉ0 प्रियदर्शनी अपनी औपन्यासिकता के बाने में इस तथ्य को सहजता व बारीकी से पिरोते हुए निकल जाती हैं कि कथा का तारतम्य नहीं टूट पाता, बल्कि एक गहरा लगाव ही रचना के प्रति उभरता है, जो लेखकीय प्रौढ़ता एवं अनुभव को प्रतिस्थापित करता है।

कितनी भी बुरी चीज़ यदि पर्दे में हो, तो उसके प्रति देखने-जानने की लालसा या उत्सुकता उतनी ही ज़्यादा बनी रहती है और यह मानव-व्यवहार का अकाट्य सच भी है। फिर चाहे संस्कृतियों की बात ही क्यों न हो, बस यही एक बिंदु है, जिसके चलते हम उस पश्चिमी संस्कृति के ग्राहक आसानी से बनते जाते हैं, जबकि मीनल का परिवार तो अमेरिका में ही जा बसा होता है। तब साक्षात् उन दृश्यों या चीज़ों को होते देखना या करना, जो भारतीय समाज में पर्दे के भीतर की जाती हैं और खुलने पर पाप मानी जाती हैं।

"हमारे देश में जो अँधेरे में होता है, वह सब यहाँ मुक्त होकर उजाले में होता है। यहाँ छिपाव-दुराव, धोखा और भ्रम नहीं था। यहाँ पिछले दरवाज़े से किसी को बाहों में छुपकर नहीं भरा जाता था, मन चाहा तो खुलेआम उसे बाँहों में भरकर प्यार किया जा सकता था"—मीनल का यह कहना इस तथ्य को उजागर करता है कि भारतीय मानव-अधिकारों की ये सीमाएँ आख़िर क्यों? जब हम ग्लोबल हो ही गये तो फिर क्यों इतनी हाय-तौबा? मीनल के इस वाक्य में—"वही खुलापन और मेरी स्वच्छंदता मेरी नियति के कोढ़ बनकर आज तक मुझे साल रहे हैं, कहीं पृथ्वी के एक कोने में वह सब व्यक्ति का अधिकार है, कहीं वही स्वच्छंदता चरित्र का मानदंड बन जाती है।"

मीनल के शब्दों में केवल दर्द ही अभिव्यक्त नहीं होता, बल्कि उपन्यास के अंत तक भारतीय सामंती समाज के प्रति स्त्री की कुंठा भी शब्दों का रूप ले लेती है जब मीनल भारतीय आदर्शों की प्रतिमूर्ति बहन शोभना के शादी-शुदा जीवन की टूटती कड़ियों को देखती है, तब एक स्वतंत्र भारतीय स्त्री बनकर उसे यह कहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में गुरेज़ नहीं होता—"मैं नहीं जानती कि वह कौन-सी शक्ति थी जो मुझे इस राह पर कोड़े मार-मारकर अपने जीने के ढंग से चलाती रही... । इतना ज़रूर जानती हूँ मैं कि असामाजिक रहकर जो मैंने जिया है... उससे आज कहीं मन में एक तृप्ति का भाव है... । फिर जीवन-भर जो कुछ और लड़कियों के जीवन में घटता देखा है, उससे यह तृप्ति का भाव बढ़ गया है।" वहीं "भारत में तो बड़े-बूढ़ों के पैर छूते ही जवानों की आधी ज़िंदगी निकल जाती है और अंदर बंद लडकियाँ कैसे सीधे ही भागती हैं घरों से... खुलेआम रहने वाली लड़कियाँ लड़कों के साथ जब बराबरी से रहती हैं, तो उनमें आँख खोलकर देखने की तमीज़ आती है। ऐसी लड़कियों को दहेज़ कम मिलने पर आत्महत्याएँ नहीं करनी पड़तीं... स्वयं अपना रास्ता बनाकर वे जीना सीख लेती हैं।"

और अंत में 'जलाक' का यह चरम वाक्य लेखिका के प्रगतिकामी सोच और उनके भीतर के विचलन के ज्वालामुखी के फट पड़ने और उसके तपते गर्म लावे के बाहर आने के रूप में देखा जा सकता है—"मुझे विश्वास है, सबके हाथ मचलते हैं— खिड़कियों की सलाखें तोड़ देने को, घर की चौखटों को पार करने के लिए सबके पंख फड़फड़ाते हैं... लेकिन... समाज द्वारा बनाये गये नैतिक सीखचों को लाँघने की सज़ा भुगतने का दम सब में कहाँ होता है... इसीलिए, अपने-अपने दड़बे में पड़े लोग सड़ते रहते हैं, और एक दिन खतम हो जाते हैं... ।"

भाषायी दृष्टिकोण से बेहद सरल एवं सहज और व्यावहारिक घटनाक्रम के साथ क़िस्सागोई शैली में गढ़ा यह उपन्यास पाठक को पूरी तरह अपने से जोड़े रखने की क्षमता रखता है। बात भले ही ख़ास और नयी न हो, किंतु एक ऐसे विषय पर, जिसे बोल्ड कह दिया जाता है, अत्यंत रोचकता से अपनी बात कहने में पूर्ण सफल डॉ0 सुदर्शन प्रियदर्शनी का यह उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य के लिए एक सार्थक पहल है।

पुस्तक : जलाक (उपन्यास)
लेखिका : डॉ0 सुदर्शन प्रियदर्शनी
प्रकाशक : आधारशिला प्रकाशन, हल्द्वानी, नैनीताल
मूल्य : 180 /- रुपये

हाइब्रिड पब्लिक स्कूल, यमुनापार, मथुरा-281001

समझौतावादी स्त्रियों की कहानियाँ

हरपाल सिंह 'अरुष'

कई बार साहित्यकार पुराने समय में या आसन्न भूतकाल में जीता है। जिस समाज का वह चित्रण करता है, वह उसने दस-बीस या तीस-चालीस साल पहले देखा होता है। स्मृति के सहारे उसका चित्रण करके शायद साहित्यकार को संतोष होता हो या कि साहित्यकार उस समय की सामाजिक स्थिति को बाद वाले समय पर घटा कर देखता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने नये कहानी-संग्रह 'फिर का सपना' में ऐसी कई कहानियाँ संकलित की हैं, जिनके स्त्री पात्र संघर्ष करते हुए दिखयी पड़ते हैं। 'आवारा बन', 'जवाबी कागज़' 'मैंने महाभारत देखा था', कुछ इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। लड़कियाँ पुलिस में नौकरी पाने की ज़िद पर अड़ी हैं। केवल पुलिस की नौकरी पाने के लिए परिवार के भीतर संघर्ष कर रही लड़कियों को लेकर तीन-तीन कहानियाँ। क्या एक ही कहानी को इस स्तर तक विकसित करना संभव नहीं था कि वह एक मुकम्मल कहानी बन जाए। दूसरी बात यह कि जिस क्षेत्र की भाषा का प्रयोग-संकेत इन कहानियों में है, वे हरियाणा और हरियाणा से लगे पश्चिमी उत्तर प्रदेश की ओर इंगित करती हैं। पिछले पंद्रह-बीस वर्षों से इस भाषायी क्षेत्र की स्थिति यह है कि जिला-स्तर पर पुलिस (महिला) भरती हेतु यदि पचास पदों की रिक्ति निकलती है, तो हज़ारों की संख्या में लड़कियाँ प्रत्याशी के रूप में पहुँचती हैं। प्रायः सभी के अभिभावक साथ-साथ पहुँचते हैं। ऐसी लड़कियों में से कितनी ऐसी होंगी जो परिवार के भीतर संघर्ष करके आती हैं। अनुमान लगाने पर भी यथार्थ का प्रतिनिधित्व हो सकेगा, कहा नहीं जा सकता। हाँ, नौकरी पाने के लिए लड़कियों को कई बार अलग ही प्रकार की जद्दोज़हद करनी पड़ जाती है। इस बात को दृष्टि में रखते हुए इन कहानियों पर सोचा जा सकता है।

स्त्री की जद्दोज़हद का क्रम कहीं भी समाप्त होने का नाम नहीं लेता—नौकरी पाने से पहले और नौकरी प्राप्त करने के बाद भी। 'मुस्कुराती औरतें' की फूलकली को भी कुछ इसी प्रकार की जद्दोज़हद का सामना करना पड़ता है। स्त्री-मन की जटिलता को दर्शाने वाली यह कहानी स्वयं जटिल होकर रह गयी लगती है। मैत्रेयी पुष्पा जैसी नामचीन लेखिका इस कहानी को ठीक से क्यों नहीं सँभाल पायी, समझ में नहीं आता। पति के शक्की स्वभाव का होने, घरेलू हिंसा पर उतर आने के कारणों और स्थितियों के गंभीर विश्लेषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवश्यकता थी। हाँ, स्त्री की एक दुर्बलता यहाँ पर दिखलायी पड़ी है। वह यह कि अपना वर्चस्व और रुतबा बनाकर रहने वाली नौकरीपेशा स्त्री अपने से एक पद नीचे काम करने वाले पुरुष से शादी करती है। इसको दुर्बलता न कहा जाए, तो और क्या कहा जाए जबकि शादी करने जैसे मामले में पुरुष के व्यक्ति. विचारध धरा, मानवीय गुणों और प्यार को ध्यान में रखना अनिवार्य होता है। वर्चस्व से वर्चस्व को ढहाने की इच्छा को सकारात्मक नहीं कहा जा सकता। इस कहानी में जिस संतुलन की आवश्यकता थी, वह बन नहीं पड़ा। यातनाओं और प्रतिबंधों को अतिरेक पर ले जाने से कहानी नियंत्रण में नहीं रह पायी। इस कहानी में फूलकली के माध्यम से स्त्री के मनोविज्ञान का चित्रण करने का प्रयास किया गया है, जिसमें मान्यताओं को ही अधिक स्पेस दिया गया है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि इस कहानी में स्त्री के सामाजिक भय, अकेलेपन के सामने आने वाली कठिनाइयों, स्वतंत्रता की आकांक्षा, पति के पुरुष व्यवहार और उसकी स्वीकार्यता, नियति, और गृहणी के दायित्व में दासता के भाव को साधने का प्रयास किया गया है। इसी कारण यह दो ध्रुवों के बीच फैल गयी है।

यदि सामाजिक यथार्थ को अतियों का चित्रण किये बिना सामने नहीं लाया जा सकता, तो कहानी 'गुल्लू' को देखा जा सकता है। यह कहानी दायित्व और आकांक्षाओं में से आकांक्षा को चुनने वाली स्त्री की है जो अपने पिता (पुरुष) के दरोग़ा होने का अहंकार पाले हुए है। उसने घोषणा कर दी कि वह आगे पढ़ाई करेगी, रोटी नहीं बनाएगी, बच्चा नहीं ठहराएगी। अधिक तंग किया, तो पुलिस में रपट लिखा देगी। पति को कार में से बाहर निकाल कर स्वयं कार लेकर चलती बनती है। कहाँ दहेज़ न लाने वाली महिला का उत्पीड़न एक समस्या है, कहाँ इस दहेज़ लाने वाली महिला का यह व्यवहार है।

स्त्री ही स्त्री का उत्पीड़न करती है—बहुत से लोग ऐसा भी मानते हैं। पुरुष द्वारा पुरुष के उत्पीड़न को आधार बनाकर साहित्य लिखा गया है। स्त्री द्वारा स्त्री के उत्पीड़न को चित्रित करने में यह कहानी सफल हुई है। इस में गौरी के संघर्ष और उसकी सोच के तीखे, तेज़-तर्रार, कुटिल षड़यंत्रों की कहानी है।

इस संकलन की सबसे अच्छी कहानी 'छुटकारा' है, जो सशक्त बनते-बनते रह गयी है। छन्नो जमादारिन है। संडास साफ़ करने आती है। उसके ठिकाने वाले परिवार उससे घुल-मिलकर रहते हैं। यह घुलना-मिलना छुआछूत का अतिक्रमण करके नहीं है। होली-त्योहार पर छन्नो के घर पर भेंट लेकर पहुँचने वाले 'भाई' मात्र भेंट देने वाले भाई हैं। वे छन्नों को सफ़ाईकर्मी से ऊपर मानने वाले नहीं हैं। इस बात का भेद तब खुलता है, जब छन्नो अपनी बेटी के लिए उसी बस्ती (मुहल्ले) में मकान लेकर रहने लगती है। कौन नहीं चाहता है, जिसको छन्नो का ऐसा करना नहीं खटका हो। इस व्यवहार से तंग आकर छन्नो ठिकाने कमाना बंद कर देती है। वह झाड़ू, टोकरा और खपरा एक ओर डाल देती है। अपमान, भूख और असमता के मध्य चलने वाला संघर्ष और परिवेश एक कुशल साहित्यकार की तरह रचा गया है। कहानी का अंत होने में चूक यह रह गयी है कि समझौतावादी चरित्र को रचने के लिए छन्नो को भावुकतावश दुबारा झाड़ू, टोकरा और खपरा पकड़ा दिया गया।

'रिश्ते का नक्शा' और 'बहुत पहले का चलन' कहानियों में भी स्त्री की दुर्बलता का चित्रण किया गया है। एक औरत अपनी भूमि के लिए संघर्ष करती है। बाद में उसका संघर्ष भावुकता, आदर्श, धर्म-भीरुता और षडयंत्रों की भेंट चढ़ जाता है। वह समझौते और समस्या-समाधान के रास्ते को अपना लेती है। दूसरी ऐसी स्त्री रज्जो है, जो एक रूढ़ परंपरा को, जो दहेज के रूप में विद्यमान है, साहस होते हुए भी स्वभाव के विपरीत स्वीकार कर लेती है।

कुछ लोगों को 'गुनहगार' और 'आरक्षण' कहानियाँ अतिरंजित लग सकती हैं। इनमें दो हत्याएँ दिखायी गयी हैं, एक स्त्री द्वारा अपने देवर की, दूसरी पुत्र द्वारा अपने पिता की। ऐसा इस क्षेत्र में प्रतिदिन घट रहा है। स्त्री द्वारा अपने पति तक की हत्याएँ समाचारपत्रों की सुर्खियों में आये दिन पढ़ने को मिल रही हैं। इतना ही नहीं, माँ व पिता द्वारा अपने बेटों की हत्याएँ भी सामने आ जाती हैं। ऐसी कहानियों में साहित्यकार को अधिक सजगता से काम लेना पड़ता है। कहानी अतिरंजित न लगे, इसके लिए क्षेत्र-विशेष का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक अध्ययन और समाजार्थिक परिस्थितियों के कारणों को जानने की आवश्यकता है।

'पियरी का सपना' एक भावना-प्रधान कहानी है। कैशोर्य के प्रेम और उसकी स्मृतियाँ और उस काल के प्रेमाधार के परिवार से मिलना एक प्रकार से शांति प्रदान कर सकता है। इस कहानी में मानसिक धरातलों और घटनाओं का संतुलन साधा गया है। प्रेमी से विवाह करने से इन्कार कर देना और बाद में उसी को दिल के एक कोने में बिठाये रखने का कारण भले ही स्पष्ट न हो पाता हो, पर कहानी में स्त्री के कोमल पक्ष को चित्रित करके पठनीय बनाया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा के नाम के स्तर तक इस संग्रह की कहानियाँ भले ही न पहुँच पायी हों, भले ही कहानियों में संघर्ष अधिक किंतु गौण तथा समझौता अप्रत्याशित और परिणामी हो, ये कहानियाँ पठनीय बन पड़ी हैं। जिस क्षेत्र की भाषा और जहाँ का समाज-चित्रण इन कहानियों में है, उसके विषय में नवीनतम या अद्यतन जानकारी होनी चाहिए थी। जो नाम इन कहानियों में दिये गये हैं, वे युवा हो चुकी पीढ़ी में सुनने को नहीं मिलते या अभिजात सोच वाले लोग किसानों, मज़दूरों, पिछड़े और दलितों के नाम हज़ारों साल से चली आ रही परंपरा के अनुसार ही रखा जाना पसंद करते हैं। ऐसा नहीं कि संघर्ष का महत्त्व न होता हो, पर संघर्ष की दिशा और परिणाम पाठक को प्रेरणा दे सकें, तभी संघर्ष भी सार्थकता हो सकती है।

कहानियों में प्रवाह है, तल्लीन होने को बाध्य करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी व्यंग्य और शरद जोशी

डॉ. रामपाल गंगवार

विमल कुंज, आदर्श कॉलोनी, मुज़फ़्फ़रनगर-251001

व्यंग्य विधा के रूप में साहित्य समाज के दर्पण वाली परिभाषा के ज़्यादा क़रीब पड़ता है। जिस प्रकार दर्पण अपने सामने वाले की तस्वीर यथावत प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार व्यंग्य भी। किंतु दर्पण की सीमा है, उसे भरमाया जा सकता है-उसकी जड़ता के कारण मगर, व्यंग्यकार की तीक्ष्ण पर्यवेक्षण शक्ति के सामने यथार्थ की बखिया ही नहीं उधड़ती, बखिया की चिंदियाँ भी अलग हो जाती हैं। सवाल उठता है कि यह काम तो साहित्य की अन्य विधाएँ भी कर सकती हैं, व्यंग्य ही को क्यों इसका श्रेय दिया जाए? दरअसल व्यंग्यकार ज़्यादा विवेकीय बुद्धि-तत्त्व का प्रयोग करता है, जिससे कल्पना का आदर्श यथार्थ से आँखें नहीं चुरा पाता। एक प्रकार से व्यंग्यकार कहीं ज़्यादा ईमानदारी एवं निर्भीकता का परिचय देता है। हर बड़ा आदमी, विद्रोही या क्रांतिकारी, इसी धारदार हथियार का प्रयोग करता है, विसंगतियों, शोषण और अन्याय, असमानता एवं पक्षपात के ख़िलाफ़। कबीर से लेकर निराला, प्रेमचंद, परसाई और शरद जोशी (जिनके व्यंग्य-वैशिष्ट्य पर पुस्तक आधारित है) तथा अद्यावधि स्वनामधन्य साहित्यकारों ने इसका सफल-सार्थक प्रयोग मनुष्यता को जगाने के लिए। निर्भीकता से किया। किंतु आज हिन्दी का दुर्भाग्य ही है कि इतनी सशक्त व्यंग्य विधा को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा है।

ऐसे में डॉ. कमलेश सिंह की पुस्तक 'हिन्दी व्यंग्य और शरद जोशी' एक महत्त्वपूर्ण अभाव की पूर्ति तो करती ही है, साथ ही व्यंग्य के महत्त्व को भी स्थापित करती है। यह पुस्तक छह अध्यायों में विभक्त है। पुस्तक में विद्वान लेखक ने व्यंग्य का विद्वतापूर्ण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भी प्रस्तुत किया है और कबीर से लेकर आज तक के प्रमुख, परंतु गुमनाम व्यंग्य-लेखकों से भी हिन्दी पाठकों को परिचित कराया है। व्यंग्य की परिभाषा, व्यंग्य के भेद, व्यंग्य की आवश्यकता, व्यंग्य का विषय-क्षेत्र और उसकी प्रासंगिकता पर अत्यंत गंभीरतापूर्ण अध्ययन इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने जोशी जी के व्यक्तित्त्व-विश्लेषण द्वारा उनके विद्रोही, स्वाभिमानी, अक्खड़, निडर एवं निःस्वार्थ समाजसेवी गुणों को हमारे सामने रखा है। ब्राह्मण परिवार में पैदा होकर भी परिवार के ख़िलाफ़ एक मुस्लिम युवती से विवाह और स्वाभिमान पर आँच आने पर नौकरी को लात मार देना—तब जबकि उनके पास ज़िम्मेदारियों के रूप में तीन बेटियाँ हों और बैंक में कुल जमापूँजी न्यूनतम मज़दूरी के बराबर हो। ऐसा व्यक्ति साहित्य को समाजसेवा का माध्यम बनाए रहा हो, निश्चित ही बेहद जोख़िमपूर्ण एवं साहस का काम था। लेखक ने इस पुस्तक में यह निष्कर्ष भी निकाला है कि परसाई जी के यहाँ यदि विषय-वैविध्य है, तो जोशी जी के यहाँ यह सब होते हुए भी धारदार, वैविध्यपूर्ण, शालीनतापूर्ण भाषा-शैली है। वे परसाई जी से भी आगे बढ़कर अन्यान्य क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों, भ्रष्टाचारों का उद्घाटन करते हैं। ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं बचा, जिसे जोशी जी ने अपने व्यंग्य-लेखन का विषय न बनाया हो। 'विदेशी सहायतार्थ कटोरा लेकर फिरना' सरकार पर व्यंग्य है। नेता और अफ़सरशाही के भ्रष्टाचार तथा लोकतंत्र में नेताओं द्वारा चुनाव के समय के वायदे और जीतने पर उन्हें दफ़न कर देना, साहित्यकारों द्वारा जोड़-तोड़, फूट और पुरस्कार पाने की जोड़-तोड़, अपने एवं अपने मित्रों को ही साहित्यकार सिद्ध करना आदि उनके विषय हैं।

विद्वान लेखक द्वारा प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी व्यंग्य और शरद जोशी के व्यंग्य कौशल को बहुत ही सहज-सरल रूप में प्रांजल भाषा-शैली में प्रस्तुत किया गया है, जो लेखक की अन्य पुस्तकों में भी देखने को मिलता है। पुस्तक बेहद पठनीय एवं रुचिकर है। आज के सूचना-क्रांति के दौर में, जब दृश्य-श्रव्य माध्यम हमारी पढ़ने की सामर्थ्य को क्षरित कर रहे हैं, संक्षेप में सहजग्राह्य रूप में अपनी बात कहकर ही हम पाठक तक पहुँच सकते हैं। ज़ाहिर है कि यह पुस्तक इस कार्य में सफल कही जा सकती है।

पुस्तक का नाम : हिन्दी व्यंग्य और शरद जोशी लेखक : डा० कमलेश सिंह
प्रकाशक : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, 12-डी, कमला नेहरू रोड, इलाहाबाद संस्करण : प्रथम (2010)

रीडर-हिन्दी, सी.एम.पी. कॉलेज, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछड़े वर्ग की नयी स्थापनाओं का दस्तावेज़

राजेश कुमार चौहान

"पिछड़ा वर्ग की सभी जातियाँ चाहे वह कायस्थ हों या तेली या भूमिहार या खत्री सभी जातियाँ अपने आपको ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य होने का दावा करती हैं।... हालाँकि ये दावे उच्च जातियों द्वारा कभी भी स्वीकार नहीं किये गये। बल्कि ये पिछड़े वर्ग की जातियाँ जिन धर्म ग्रंथों पर अकाट्य श्रद्धा रखती हैं, जिनकी दिन-रात स्तुति करती हैं, वे ही इन्हें उन्हीं सवर्णों की नाजायज़ संतान ठहराते हैं।"

उपरोक्त उद्धरण संजीव खुदशाह की हालिया प्रकाशित पुस्तक 'आधुनिक भारत में पिछड़ा वर्ग' से है। लगभग इसी आशय का एक सूक्त वाक्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी कहा है—"भारत में छोटी से छोटी जाति भी अपने से नीचे की जाति तलाश लेती है।" यहाँ संजीव खुदशाह और हजारीप्रसाद द्विवेदी दोनों का साथ उल्लेख करने का प्रयोजन यह रेखांकित करना है कि जिस टिप्पणी के लिए किसी सवर्ण को आला दर्जे का विद्वान, दार्शनिक, चिंतक अथवा समाजशास्त्री मान लिया जाता है, उसी अभिव्यक्ति के लिए किसी दलित लेखक पर संकीर्ण मानसिकता और जातिवादी होने का आरोप लगाया जाता है। अर्थात्, जब हजारीप्रसाद द्विवेदी जाति पर लिखते हैं, तो वे आला दर्जे के आचार्य मान लिये जाते हैं और यदि संजीव खुदशाह जातियों के इतिहास को खँगालें, तो उन्हें संकीर्ण दायरों से घिरा हुआ, आत्मवृत्त में घिरा हुआ अथवा जातिवादी कहा जाएगा।

अभी तक तमाम स्वीकृतियों के बावजूद दलित-लेखन विवादास्पद बना हुआ है। इसे खारिज़ करने के लिए इस पर तमाम तरह के आरोप लगाये जाते हैं। लेकिन, प्रतिबद्ध दलित लेखकों ने इस सबकी परवाह किये बिना अपना कार्य जारी रखा है। इसी क्रम में एक महत्त्वपूर्ण नाम और जुड़ता है—संजीव खुदशाह। संजीव खुदशाह ने 'आधुनिक भारत में पिछड़ा वर्ग' पुस्तक लिखकर यह सिद्ध कर दिया है कि दलित लेखक मात्र आत्मकथाओं और ब्राह्मणवाद के प्रति घृणा के दायरों में ही घिरे हुए नहीं हैं, वे अतीत के प्रति घृणा का पोषण ही नहीं करते हैं, अपितु अपने समाज और विश्व के समाजों के अतीत, वर्तमान और भविष्य का तटस्थ भाव से मूल्यांकन भी करते हैं।

इस पुस्तक में उन्होंने पिछड़े वर्ग से संबंधित जातियों के इतिहास और वर्तमान का मूल्याँकन पूरी तटस्थता के साथ किया है। यही कारण है कि उनके निष्कर्ष किसी अतिवाद के शिकार नहीं होते। कहीं-कहीं तो वे निष्कर्ष देने से भी बचते हैं, केवल तथ्य पाठक के समक्ष रख देते हैं। इस सब में वे कितने सचेत हैं, यह पुस्तक की भूमिका से भी पता चलता है—"मैंने आम भाषा तथा सरल तरीके से अपनी बात कहने की कोशिश की है, ताकि आम आदमी को तथ्य समझने में दिक़्क़त न हो। जो नयी स्थापनाएँ तैयार हुई हैं, उसके पक्ष-विपक्ष में तर्क भी दिये गये हैं। निर्णय पर ज़्यादा ज़ोर नहीं दिया, बल्कि उसे पाठकों पर छोड़ दिया गया है।"

तथ्यों को इस तरह पाठक के समक्ष रख देना निश्चित रूप से लेखक की वस्तुनिष्ठता का परिचायक है, लेकिन इसी आधार पर कुछ बड़े आलोचकों और विमर्शकारों ने पुस्तक का अवमूल्यन भी किया है। उनका कहना है कि पुस्तक में इधर-उधर बिखरे हुए और कुछ पुराने तथ्यों को सिलसिलेवार ढंग से रखा गया है, कोई मौलिक स्थापना नहीं दी गयी। पुस्तक में मौलिक स्थापनाएँ न होने की शिकायत करने वाले विमर्शकार पुस्तक के संदर्भ में यह ग़लतफहमी पैदा कर देते हैं कि पुस्तक में पिछड़े वर्ग से संबंधित तथ्य और आँकड़े बाजी ही है, मूल्यांकन का अभाव है। वास्तव में, पुस्तक में मूल्याकंन का कोई अभाव नहीं है। लेखक ने पुस्तक की वस्तुनिष्ठता को बचाये रखने के लिए कहीं-कहीं निर्णय से परहेज़ किया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पूरी पुस्तक में कहीं कोई स्थापना नहीं मिलती हाँ इतना ज़रूर है कि पुस्तक में कोई सनसनीखेज स्थापना नहीं है।

इस पुस्तक के लेखक ने पिछड़े वर्ग पर कोई टीका-टिप्पणी करने के बजाय उसकी वास्तविक स्थिति को समझने-समझाने का प्रयास किया है—"पिछड़ा वर्ग एक ऐसा कामगार वर्ग है, जो न तो सवर्ण है, न ही अस्पृश्य या आदिवासी। इसी बीच की स्थिति के कारण न तो इसे सवर्ण होने का लाभ मिल सका, न ही निम्नतम होने का फ़ायदा मिला।" यहाँ लेखक यदि वस्तुनिष्ठता का ध्यान न रखता, तो आरोपों की भाषा में टीका-टिप्पणी करने की पूरी संभावना बनती है; उदाहरणार्थ—कहा जा सकता था कि पिछड़े वर्ग की जातियाँ सवर्णों की लठैत बनी रहीं। इन जातियों ने दलितों के साथ मिलकर ब्राह्मणवाद के विरुद्ध कोई लड़ाई नहीं लड़ी, उल्टे दलितों का उत्पीड़न किया। इनका ब्राह्मणों से संघर्ष स्वयं ब्राह्मण बनने की होड़ में हुआ। लेखक पिछड़े वर्ग की स्थिति का मूल्यांकन करते समय ऐसी सभी प्रतिक्रियाओं से ऊपर उठ जाता है, अन्यथा स्वयं लेखक ने भी पिछड़े वर्ग को पूरी तरह बरी नहीं कर दिया है।

लेखक ने पुस्तक के पहले ही अध्याय में मंडल आयोग लागू होने के समय आरक्षण-विरोधियों द्वारा मचाये गये उपद्रव और

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखों देखी घटना का जिक्र करते हुए पिछड़ा वर्ग की भूमिका पर सवाल उठाया है। लेखक का मानना है कि पिछड़े वर्ग में चेतना का अभाव होने के कारण वह अपनी सही भूमिका निश्चित ही नहीं कर पाता और अपने विरोधियों को ही मज़बूत करता है। लेखक ने पुस्तक में बार-बार यह प्रश्न भी उठाया है– "जबकि पिछड़ा वर्ग से कई समाज सुधारक और क्रांतिकारी सामने आये लेकिन पिछड़ा वर्ग में चेतना का विकास क्यों नहीं हुआ?"

लेखक ने ऐसे ही कुछ और प्रश्नों के उत्तर भी पुस्तक के अंतिम अध्याय के अंतिम खंड (समाधान) में दिये हैं। पिछड़े वर्ग में चेतना का विकास क्यों नहीं हुआ, इस संदर्भ में लेखक की मान्यता है कि पिछड़ा वर्ग जाति-व्यवस्था में अपने जाति-क्रम को लेकर हमेशा उहापोह की स्थिति में रहा है। उसे एक तरफ़ ब्राह्मण न हो पाने का हीनता-बोध है, तो दूसरी तरफ़ दलित जातियों से ऊपर होने का श्रेष्ठता-बोध उसकी चेतना के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। वह यदि एक तरफ़ सवर्णों से थप्पड़ खाता है, तो दूसरी तरफ़ दलितों को थप्पड़ लगाकर तुष्टि पा लेता है। यानी, थप्पड़ का जवाब थप्पड़ से देने में कतराता रहा और उससे किसी बड़े सामाजिक बदलाव के लिये संघर्ष नहीं किया।

पुस्तक के अंतिम अध्याय के इसी अंतिम खंड(समाधान) में लेखक ने ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने के साथ-साथ कुछ बहुप्रचारित मान्यताओं का पुरज़ोर खंडन भी किया है और अपनी कुछ मौलिक स्थापनाएँ भी दी हैं।

पुस्तक का पहला अध्याय पिछड़े वर्ग की उत्पति और स्थिति से संबंधित हैं। दूसरे अध्याय में, जाति और गोत्र के विवाद को तथ्यों और तर्कों के आलोक में सुलझाने का प्रयास किया गया है, साथ ही हिन्दूवाद की पोल खोली गयी है।

तीसरे अध्याय में, आरक्षण-व्यवस्था का मूल्यांकन करते हुए लेखक इस निष्कर्ष तक पहुँचा है कि आरक्षण-विरोधी सवर्ण इस बात पर ध्यान नहीं देते कि वे स्वयं सदियों से आरक्षण पाते आये हैं। सारे हिन्दू ग्रंथ इन सवर्णों को आरक्षण देते हैं। इसके अलावा पूँजी का आरक्षण भी इन्हीं सवर्णों को मिला है। सवर्णों को मिले इस आरक्षण के चलते पैदा हुई सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए दलितों और पिछड़ों को आरक्षण देना ज़रूरी हो जाता है। इसी अध्याय में लेखक ने पिछड़े वर्ग के कुछ संतों और समाज-सुधारकों का परिचय भी दिया है।

अंतिम अध्याय में, पिछड़े वर्ग की जातियों का विवेचन उनके पेशों के आधार पर किया गया है और मंडल कमीशन की रिपोर्ट का मूल्यांकन करते हुए एक प्रश्नोत्तरी भी दी है और अंत में कुछ समाधान भी प्रस्तुत किये हैं। ये समाधान इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि ये लेखक की वस्तुपरकता के साथ-साथ उसकी पक्षधरता भी सुनिश्चित करते हैं। स्पष्ट है कि लेखक ब्राह्मणवाद-विरोधी मुहिम और समतामूलक संघर्ष की अगली कतार में है।

पुस्तक	: आधुनिक भारत में पिछड़ा वर्ग
लेखक	: संजीव खुदशाह
प्रकाशक	: शिल्पायन 10295, लेन नं0 1, वैस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-32

5बी/ 16 एफ़, गली नं0-16, गुरुद्वारा मौहल्ला, मौजपुर, दिल्ली-110053

कविता

अपनी चाल

भूपिन्द्र कौर प्रीत

अपने पाँवों से बड़ी
तुम्हारे पाँवों की महँगी जूती
नहीं डालूँगी अब–
अपने पाँवों में,
बच तो जाती हूँ काँटों से
पर!
मेरी अपनी चाल बदल जाती है
एड़ियाँ तो नहीं रिसतीं मेरी
पर-आँखें रिस-रिस जाती हैं

तुम्हारे पाँवों की महँगी जूती
पहन सकता वही
जो कल से डरता–
हताश ! पल-पल मरता

मुझमें अभी
अपनी राहों को
अपनी ही चाल में
ढूँढने की ख़्वाहिश रोज़
सुबह ही सर उठाने लगती है।

बाबा मार्केट, गली हकीमां वाली, मुक्तसर (पंजाब)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला राही मासूम रज़ा साहित्य सम्मान कथाकार नमिता सिंह को

प्रेस क्लब, लखनऊ में आयोजित समारोह में 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका की संपादक और कथाकार डॉ0 नमिता सिंह को 'डॉ0 राही मासूम रज़ा साहित्य सम्मान' से सम्मानित किया गया। सामाजिक सरोकारों के प्रति संवेदनशील, प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ0 राही मासूम रज़ा की जयंती पर 1 सितंबर, 2010 बुधवार को उनके मूल्यों और चिंताओं को सही परिप्रेक्ष्य में पहचानने और भविष्य की चुनौतियों का सामना करने का आह्वान किया गया।

'डॉ0 राही मासूम रज़ा साहित्य अकादमी' की ओर से आयोजित इस कार्यक्रम में शहर के वरिष्ठ साहित्यकार जुटे। अध्यक्षता करते हुए सुप्रसिद्ध साहित्यकार मुद्राराक्षस ने कहा कि हिन्दी हिन्दुत्व की भाषा बना दी गई है। राही ने दलित पक्ष को बारीकी से उठाया और समाज के ज्वलंत मुद्दों की आलोचनात्मक विवेचना प्रस्तुत की। प्रो0 नदीम हसनैन, पूर्व उपकुलपति वर्धा हिन्दी विश्वविद्यालय ने राही की कविता 'कोई जो ज़िन्दाँ मिले, रुक कर इबादत करिए और तो कोई जगह सज्दे के काबिल ही नहीं' पढ़ी। आलोचक वीरेन्द्र यादव ने राही लिखित 'टोपी शुक्ला', 'आधा गाँव' आदि राही के उपन्यासों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि राही ने अपने सिद्धांतों, मूल्यों और चिंताओं के लिए परिवार से ही संघर्ष शुरू किया। डॉ0 रजनी गुप्त ने नमिता सिंह के साहित्यिक-सामाजिक अवदान पर प्रकाश डाला।

लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रो0 रमेश दीक्षित ने कहा कि राही सांप्रदायिकता को कोढ़ मानते थे। उनके लिए हिन्दू, मुस्लिम, सिख संप्रदाय में कोई भेद नहीं था। उन्होंने राष्ट्रीयता के आधार पर भाषा और संस्कृति को माना है धर्म को नहीं। लखनऊ विश्वविद्यालय की पूर्व कुलपति और प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता प्रो0 रूपरेखा वर्मा ने राही को खालिस इंसानियत का लेखक करार दिया। लेखक, आलोचक शकील सिद्दीकी ने कहा कि राही ने 'यह मत समझो कि हम तुमसे अलग हैं' का संदेश दिया।

समारोह में सम्मानित नमिता सिंह ने कहा कि यह सम्मान प्रायोजित सम्मानों की परंपरा से अलग है। बड़े उद्देश्यों के लिए यह संस्था बनी है इसलिए मैंने यह सम्मान स्वीकार किया है जो मेरे जीवन का पहला ऐसा सम्मान है। उन्होंने कहा कि राही की तरह सभी कालजयी रचनाकारों को समय की धारा के खिलाफ़ लड़ना होता है। यह सम्मान सांप्रदायिकता, जातिवाद और संकीर्णता के विरुद्ध मेरे रचनाकर्म और सामाजिक कार्यों की स्वीकार्यता है। 'आग' के संपादक अहमद इब्राहिम अलवी ने भी अपनी बात रखी। समापन करते हुए पत्रकार वन्दना मिश्र ने कहा कि डॉ0 राही मासूम रज़ा को उचित सम्मान दिलाने का प्रयास अकादमी करती रहेगी। कई लोकप्रिय हिन्दी फिल्मों और धारावाहिक 'महाभारत' के संवाद लिखने वाले राही मासूम रज़ा ने एक आम हिन्दुस्तानी की बात की। संचालन डॉ0 ऊषा राय ने किया। इससे पहले अकादमी ने सचिव रामकिशोर ने संस्था के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। मीडिया से जुड़े श्री शन्ने साहब ने राही की ग़ज़ल और नज़्मों का सस्वर पाठ किया। समारोह में बड़ी संख्या में लेखक, बुद्धिजीवी और पत्रकार उपस्थित थे।

प्रस्तुति : आदित्य प्रकाश मिश्रा, लखनऊ

गाँव कमासिन के कवि केदार

जनकवि केदारनाथ अग्रवाल की शताब्दी वर्ष के क्रम में प्रलेस इकाई द्वारा केदार जी की पुण्यतिथि का आयोजन उनके जन्म गाँव कमासिन के वासियों के द्वारा किया गया। इस अवसर पर बाहर से आये रचनाकारों के अलावा बड़ी संख्या में गाँव के लोगों ने भाग लिया। इस अवसर पर गाँव के लोगों का उत्साह देखने बनता था। केदार जी के पिता श्री हनुमान प्रसाद गाँव वालों के बीच मुनि बाबू या वैद्य जी के नाम से जाने जाते थे। केदार जी का बचपन इसी गाँव की गलियों में गुजरा था। केदार जी के पढ़-लिखकर वकील बन जाने के बाद भी कमांसिन लगातार आना जाना बना रहा था।

इस अवसर पर बोलते हुये डॉ0 रामचंद्र सरस ने कहा कि केदार जी मेरे घर गाँव के हैं। केदार जी के सृजन में जो कुछ भी है उसमें मुझे कमासिन की छायायें स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। चाहे वह बसंती हवा हो, गाँव का महाजन हो, पैतृक सम्पत्ति हो, मजदूर का जन्म हो, या हम न रहेंगे तब भी तो यह खेत रहेंगे, जैसी कवितायें हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अवसर पर बोलते हुये चन्द्रपाल कश्यप ने कहा केदार की कविताओं की उद्यमता, उन्मुकता और सौंदर्य की अप्रतिमता, जीवन के रंगों की विविधता की छवियाँ उनके जीवन के 20 साल की अवधि के भीतर रच-बस गयी थीं। उसमें ही इनके जीवन के कृतित्व का सब कुछ निहित है। हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा के शोध छात्र श्री कालूराम कुलमी ने कहा केदार नाथ अग्रवाल ने बहुत बड़ी मात्रा में आदमी के पौरुष को जगाने और ललकारने वाली कविताएँ लिखी हैं। कविता में गतिशील बिंबों के केदार जी बेजोड़ कवि हैं।

प्रवक्ता आनंद यादव ने कहा केदार बुंदेल खंड की धरती के अद्‌भुत चितेरे कवि थे। उनके प्राकृतिक सौंदर्य बिंबों का हिन्दी कविता में जोड़ नहीं है। डॉ0 ज्योति किरण ने कहा केदार नाथ अग्रवाल की एक कविता है "कंचन सुमेरु का प्रतियोगी। द्वारे का पर्वत घूरे का/ बनिये के रुपयों का कर्ज़ा/ जो नहीं चुकाने पर चुकता।" यह केदार का परिवेश था जहाँ केदार पैदा हुये थे। परिवार में विद्या की नहीं अर्थ की उपासना होती थी। लेकिन केदार ने डाड़ी कर बड़ा होने की बजाय डाड़ी खींचकर बड़ा होना स्वीकार किया।

इस अवसर पर अध्यक्षता करते हुये केदार श्रेष्ठ शोध पीठ के सचिव नरेन्द्र पुण्डरीक ने कहा केदार नाथ अग्रवाल की शताब्दी मनायी जा रही है, उनकी पुण्यतिथि के अवसर पर दूर-दूर से आकर केदार जी के गाँव में एकजुट हैं। केदार नाथ अग्रवाल की यादें इस धुंधलके में रोशनी की किरणों की तरह प्रवेश कर चीजों को अपने प्रकाश से रोशन करेंगी।

1857 की गदर में अंग्रेज़ों द्वारा बेरहमी से कुचले इस गाँव में केदार नाथ अग्रवाल का जन्म ज्योर्ति स्तंभ की तरह हुआ था।

प्रस्तुति : अशोक यादव

द्वितीय प्रमोद वर्मा स्मृति समारोह

रायपुर। प्रमोद वर्मा स्मृति संस्थान द्वारा हिन्दी आलोचना में उल्लेखनीय योगदान के लिए 2010 का प्रमोद वर्मा सम्मान प्रख्यात कथा-आलोचक मधुरेश और युवा आलोचक ज्योतिष जोशी को प्रदान किया गया। इसके अलावा प्रमोद वर्मा रचना सम्मान से वरिष्ठ ललित निबंधकार डॉ. शोभाकांत झा को अलंकृत किया गया तथा वाणी परमार को एक वर्ष की शोधवृत्ति प्रदान की गई। आलोचना कर्म में सक्रिय श्री मधुरेश ने कहा कि उनकी सोच साहित्य में सकारात्मकता से है। रचना और आलोचना में ईमानदारी पर बल दिये बग़ैर जो कार्य होता है वह स्थायी नहीं होता। युवा आलोचक श्री ज्योतिष जोशी ने अपने वक्तव्य में कहा कि संस्कृति आलोचना-साहित्य तक ही सीमित नहीं होती। रचना की समीक्षा भावप्रक्रिया की उपज है। आलोचना पाठक को मार्ग दिखाती है।

अलंकरण समारोह के पश्चात अज्ञेय और शमशेर की जन्मशताब्दी के परिप्रेक्ष्य में 'अज्ञेय की शास्त्रीयता' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में डॉ. कमल कुमार, डा0 आनंद प्रकाश त्रिपाठी, डा. देवेन्द्र दीपक, डा. रति सक्सेना, डा. सुशील त्रिवेदी, बुद्धिनाथ मिश्र, महेन्द्र गगन, श्री प्रकाश मिश्र, माताचरण मिश्र, श्री संतोष श्रेयांस आदि ने अपने आलेखों का पाठ किया। संगोष्ठी के अध्यक्ष मंडल में थे नंदकिशोर आचार्य, डा. धनंजय वर्मा व श्री मधुरेश। द्वितीय सत्र केंद्रित था-'शमशेर का कविता संसार' विषय पर। वक्ता थे डा. रोहिताश्व, प्रभुनाथ आजमी, ज्योतिष जोशी, नरेन्द्र पुंडरीक, संतोष श्रीवास्तव, दिवाकर भट्ट, मुकेश वर्मा, कुमार नयन तथा डा. सुधीर सक्सेना। सत्र को अपनी अध्यक्षीय गरिमा प्रदान की दिविक रमेश, डा. त्रिभुवन नाथ शुक्ल, डा. धनंजय वर्मा ने।

प्रस्तुति : राम पटवा

'बस! एक बार सोचो' एवं 'अंधेरे में कंदील' पुस्तकों का लोकार्पण

रमणिका फांउडेशन द्वारा साहित्य आकदेमी सभागार में दिनांक 11 अगस्त को आयोजित डा. सुधीर सागर का कविता संग्रह 'बस! एब बार सोचो' तथा श्रीमती कुंती के 'अंधेरे में कंदील' का लोकार्पण रमणिका फाउंडेशन की अध्यक्ष सुश्री रमणिका गुप्ता, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली के उपाध्यक्ष श्री एस. एस. नूर एवं वरिष्ठ कवयित्री सुश्री अनामिका के मुख्य आतिथ्य में संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि श्री एस. एस. नूर ने अपने वक्तव्य में कहा कि काव्य भाषा दोनों कवियों के पास है। मुख्य अतिथि अनामिका ने कहा कि परंपरा ने कभी सोचा नहीं है। कुंती की कविता उजाले की किरण का विमर्शात्मक लेखन है। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रही सुश्री रमणिका गुप्ता ने कहा 'ठाकुर का कुआँ' कविता छोटी ज़रूर है लेकिन ये गहरी तथा लंबी बात कहती है। अजय नावरिया ने कहा डा0 सागर की कविताओं में चित्रात्मकता बहुत है। विशिष्ट अतिथि निधि मेल के संपादक योगेन्द्र कुमार शर्मा ने कहा, दोनों ही बुंदेली भाषा के चर्चित साहित्यकार है। कवि विवेक मिश्र ने कहा डा0 सुधीर सागर की कविता संग्रह 'बस! एक बार सोचो की कविताएँ, एक संकटग्रस्त समाज के भीतर निरंतर संघर्षरत को स्वर देती कविताएँ हैं। कवयित्री कुंती के कविता संग्रह 'अंधेरे में कंदील' में स्त्री विमर्श के घेरे में आती तमाम चिंताओं को रेखांकित करती, दोहराती, उनका पुनर्पाठ करती हैं। कार्यक्रम का संचालन संजीव खुदशाह ने किया। अंत में साहित्यकार श्री रूपनारायण सोनकर ने धन्यवाद ज्ञापन दिया। कार्यक्रम में मैत्रेयी पुष्पा, असगर वज़ाहत, सुधा अरोड़ा, अनिता भारती, मदन कश्यप, उमराव सिंह जाटव, दिनेश बैस, कामिनी बघेल सहित अनेक हिन्दी साहित्यकारों के साथ बुंदेली साहित्यकारों ने शिरकत की।

प्रस्तुति : रमणिका फाउंडेशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रभुनाथ सिंह आज़मी का कथा-पाठ

भोपाल। समय की आहट और बदलती फ़ितरत के बीच कहानी मनुष्य के शारीरिक व मानसिक व्यवहार में सूक्ष्म परिवर्तनों का मार्मिक खुलासा करती है। इसी सगेपन के कारण कहानी सफल होती है। बाज़ारवाद और सूचनाजनति कहानियों के इस रूखे घने दौर में निश्चित ही भावुक कहानियाँ भी लिखी जा रही हैं, जिनका रेखांकित होना बहुत जरूरी है।

म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भवन में यशस्वी कथाशिल्पी और सिने-पटकथा लेखक प्रभुनाथ सिंह आज़मी प्रगतिशील लेखक संघ के बुलावे पर बेहद मर्मस्पर्शी कहानी 'वे तीन' को लेकर साहित्यप्रेमियों से रू-ब-रू हुए। सुप्रसिद्ध कहानीकार रमाकांत श्रीवास्तव की अध्यक्षता में आयोजित इस कथापाठ कार्यक्रम में स्वनामधन्य आलोचकद्वय डा0 धनंजय वर्मा तथा प्रो0 कमला प्रसाद के अलावा कवि लीलाधर मंडलोई ने 'वे तीन' के मर्म को हमारे आसपास और खुद का भोगा हुआ यथार्थ बताया।

वरिष्ठ आलोचक प्रो0 कमलाप्रसाद ने कहानी के बहाने ब्यूरोक्रेसी कल्चर और उससे आहत परिस्थितियों का ज़िक्र करते हुए व्यवस्था बदलने की बात कही।

कवि लीलाधर मंडलोई ने कहा, कि कहानी का शिल्प डाक्यूमेंट्री का शिल्प है जिसमें लाँग शॉट नहीं है। असुरक्षा के बोध के कारण मुख्यपात्र के स्वाभिमान की परतें कई सूक्ष्मताओं का दिलचस्प प्रतिनिधित्व करती है।

कार्यक्रम का संचालन कवि साहित्यकार पूर्णचंद रथ ने किया।

प्रस्तुति : वसंत सकरगाए

शेखर जोशी को अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति-सम्मान

मुजफ़्फरनगर। नई कहानी आंदोलन के महत्त्वपूर्ण कथाकार शेखर जोशी को वर्ष 2010 के 'अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति-सम्मान' से सम्मानित किया गया। शेखर जोशी को शॉल, स्मृति-चिह्न, प्रशस्ति-पत्र व ग्यारह हज़ार एक सौ ग्यारह रुपये की राशि मंच पर उपस्थित डा0 विजेन्द्र नारायण सिंह, प्रो0 वीरभारत तलवार एवं आलोचक डा0 राजकुमार की उपस्थिति में डा0 रवीन्द्र कुमार रवि, वीरेन नंदा एवं सीमा नंदा ने संयुक्त रूप से भेंट की।

सम्मानित अतिथि शेखर जोशी ने अपनी रचना विकास-यात्रा का भावपूर्ण उल्लेख किया। समारोह के दूसरे सत्र में सीमा नंदा निर्मित फिल्म 'खड़ी बोली का चाणक्य' का प्रदर्शन किया गया। दूसरे दिन 'नई कहानी और मार्कण्डेय' विषय पर संगोष्ठी हुई जिसकी अध्यक्षता शेखर जोशी ने की और मुख्य व्याख्यान प्रो0 वीर भारत तलवार ने दिया। धन्यवाद ज्ञापन डा0 रवीन्द्र रवि ने किया।

प्रस्तुति : पंकज कर्ण

कविताओं में गूँजा समय की आहट

भोपाल। 'स्पंदन' संस्था द्वारा आयोजित रचना पाठ की पाँचवी कड़ी में सुप्रसिद्ध कवि तथा इंदौर के जानेमाने हृदय रोग विशेषज्ञ डा0 शिरीष ढोबले खासतौर पर तशरीफ लाए।

कथापुरस्कार, रजा पुरस्कार और भारत भूषण जैसे प्रतिष्ठित सम्मानों से विभूषित डा0 शिरीष ढोबले की कविताएँ कहीं-कहीं पौराणिक पात्रों को प्रतीक बनाकर समय के मौजूदा संदर्भों से कितना आत्मीय व सार्थक संवाद करती है, इसकी बानगी प्रस्तुत कविताओं में बखूबी देखने मिली। डा0 शिरीष ने काव्य पाठ की शुरूआत 'देवी' शीर्षक रचना से की। बाद में प्रस्तुत 'अनुष्ठान' 'राधा' आदि शीर्षक कविताओं के अलग-अलग बिंबों में भी हमारे मौजूदा समय की दिलचस्प छवियाँ उजागर होती रहीं।

रचना पाठ के पूर्व स्पंदन के अध्यक्ष डा0 शिरीष शर्मा तथा सचिव गायत्री गौड़ ने डा. ढोबले का स्वागत किया। संचालन कथाकार डा0 उर्मिला शिरीष ने किया।

प्रस्तुति : बसंत संकरगाय

उत्तराखंड का बालप्रहरी

उत्तराखंड से प्रकाशित बच्चों की पत्रिका बालप्रहरी द्वारा बालसाहित्य एवं बच्चों के बीच अनूठे प्रयोग किये जा रहे हैं। पत्रिका ने प्रकाशन के प्रारंभ यानी 2004 से ही पत्रिका में बच्चों की रचनाओं के लिए 10 पेज आरक्षित किए हैं। पत्रिका में वग़ैर सरकारी ग़ैर सरकारी अनुदान के उत्तराखंड के लगभग हर जनपद में बच्चों की लेखन कार्यशालाएँ जन सहयोग से आयोजित की है। उत्तराखंड से बाहर मुरादाबाद, देवरिया एवं भागलपुर (बिहार) में भी बालप्रहरी ने बच्चों की लेखन कार्यशालाएँ जन सहयोग से आयोजित की हैं।

बालसाहित्य पर व्यापक चर्चा के लिए दिल्ली, लखनऊ, भागलपुर, मुरादाबाद, देवरिया, नैनीताल, देहरादून, चमोली, पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, उत्तरकाशी आदि स्थानों पर स्थानीय स्तर की छोटी-छोटी संगोष्ठियाँ बाल साहित्यकारों को जोड़ते हुए भी गई हैं।

बाल प्रहरी द्वारा इस वर्ष बालप्रहरी ने जून में तीन दिवसीय मसूरी वी सिद्ध संस्कार के साथ मिलकर पांचवी राष्ट्रीय बाल साहित्य संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें उत्तराखंड, उ0प्र0, मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, दिल्ली, कर्नाटक आदि राज्यों के 130 साहित्यकारों ने सहभागिता की। संगोष्ठी का प्रारंभ बच्चों की काव्य गोष्ठी से हुआ। जिसमें देश के प्रसिद्ध साहित्यकारों ने बच्चों को बैज लगाकर मंच पर बैठाया। बच्चों की इस काव्य गोष्ठी की अध्यक्षता व संचालन बच्चों द्वारा किया गया।

बाल प्रहरी द्वारा कैम्पटी (मसूरी) में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में बड़ों द्वारा लिखे जा रहे बाल साहित्य की समीक्षा बच्चों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कराई गई। संगोष्ठी के अंत में देश के 10 युनिवर्सिटी साहित्य कारों को जन सहयोग से सम्मानित करके बाल साहित्य लेखन को प्रोत्साहित करने की दिशा में भी यह संगोष्ठी महत्वपूर्ण रही। संगोष्ठी में बाल साहित्य के उन्नयन एवं इलैक्ट्रानिक मीडिया में बच्चों के लिए तर्क संगत सामग्री देने के लिए एक हस्ताक्षर युक्त ज्ञापन भी तैयार किया गया। संगोष्ठी में बाल साहित्य की 20 पुस्तकों का लोकार्पण भी हुआ।

प्रस्तुति : प्रमोद काण्डपाल, अल्मोड़ा-263601

प्रगतिशील लेखक संघ राजनांदगांव इकाई

प्रगतिशील लेखक संघ राजनांदगांव इकाई के तत्वावधान में श्री नंदूलाल चोटिया की स्मृति में काव्यगोष्ठी का आयोजन हुआ। चोटिया जी के व्यक्तित्व और रचनाकर्म पर जयप्रकाश साव ने प्रकाश डाला।

संचालनकर्ता रवि श्रीवास्तव में कहा कि चोटिया जी हमारे भीतर मौजूद हैं। चोटिया ने कविता को बचाने की कोशिश की और फूहड़पन से दूर रहे। आज कहीं विरोध का स्तर नहीं है। संघर्ष समाप्त हो गया है।

काव्य पाठ में शरद कोकास ने कहा कि कविता से कुछ बदले ऐसा नहीं होता। एक चेतना का निर्माण होता है। संकेत यदु, नसीम आलम नारवी, शंकर सक्सेना, जीवन यदु ने काव्य पाठ किया। रवि श्रीवास्तव और जैतराम साहू ने भी संबोधित किया।

प्रस्तुति :यशवंत मेश्राम, राजनांदगांव (छ.ग.)

प्रगतिशील लेखक संघ सतना में संगोष्ठी

सतना। म.प्र. प्रगतिशील लेखक संघ की सतना इकाई द्वारा सुप्रसिद्ध कवि बाबा नागार्जुन को याद करते हुए उनके शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में एक विशेष संगोष्ठी आयोजित की जिसकी अध्यक्षता राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव प्रो. कमला प्रसाद ने की। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में बाबा नागार्जुन के परिवार से जुड़े हुये श्री राकेश चौधरी उपस्थित रहे।

प्रो. कमला प्रसाद ने कहा कि बाबा नागार्जुन मुक्ति की बात करते थे और घर गृहस्थी से दूर अपने खोल से बाहर निकल कर संसार में जीने वाले व्यक्ति थे। उन्हें लोक कवि के रूप में पूरा देश जानता-मानता है। वे जनजीवन की बात करते थे और शोषण समाप्त करने के संबंध में पूरी बेबाकी के साथ लिखते थे।

डा0 आत्माराम तिवारी ने कहा कि बाबा की कविताएँ गंभीर, संवेदनात्मक और कलात्मक कविताएँ हैं जिनमें मनुष्य की मानवीय संभावनाओं के प्रति आस्था व्यक्त की गई है। गांधी, मार्क्स, विनोबा, जयप्रकाश नारायण अलग-अलग समय पर उनके नायक रहे हैं।

वरिष्ठ लेखक देवीशरण ग्रामीण ने कहा कि नागार्जुन स्वभाव से मक्कड़ और अभिव्यक्ति में अक्खड़ व्यवहारों वाले कवि रहे। डा0 अजय तिवारी ने कहा कि बाबा नागार्जुन किसी एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे तथापि वे मार्क्सवादी विचारधारा के रचनाकार थे। उनमें कबीर का औघड़पन मिलता है। चिंतामणि मिश्र ने कहा कि बाबा ने व्यवस्था, शासन, राजनीति, पूँजीवाद, साम्यवाद और समाजवाद के पाखंड पर भरपूर लिखा है। विनोद पयासी ने कहा कि नागार्जुन ने संस्कृत, बंगाली, मैथिली तथा हिन्दी भाषाओं में लिखा है। गोरखनाथ अग्रवाल ने कहा कि बाबा नागार्जुन ने अपने लेखन की स्वतंत्रता को बरकरार रखने के लिये सरकारी नौकरी को भी ठुकरा दिया था और कभी अपने विचारों से समझौता नहीं किया।

प्रगतिशील लेखक संघ के संभागीय अध्यक्ष संतोष खरे ने बाबा नागार्जुन के सतना प्रवास के समय के कई रोचक और आत्मीय संस्मरण सुनाये। उन्होंने बताया कि बाबा जिसके यहाँ ठहरते थे उसी के परिवार के सदस्य की तरह व्यवहार करते थे।

बाबा नागार्जुन के रिश्ते में भतीजे लगने वाले गोष्ठी के विशिष्ट अतिथि राकेश चौधरी ने उनके आत्मीय संस्मरण सुनाते हुये कहा कि बाबा सदैव परिवर्तन चाहने वालों के साथ रहने वाले व्यक्ति थे। वे सदैव युवा मानसिकता के लोगों के साथ रहना पसंद करते थे। गोष्ठी में उपरोक्त के अलावा बाबूलाल दाहिया, अनिल अयान, एम.एल. रैकवार एवं प्रहलाद अग्रवाल ने भी संक्षेप में अपने विचार व्यक्त किये। इस अवसर पर मुकुल दुबे, आर.के. श्रीवास्तव उपस्थित रहे। गोष्ठी का संचालन रामशैल गर्ग ने किया।

प्रस्तुति : संतोष खरे, अध्यक्ष प्रलेस, सतना

संतोष चतुर्वेदी का एकल काव्य पाठ

भैरव प्रसाद गुप्त साहित्यिक मंच बलिया, उ.प्र. ने संतोष कुमार चतुर्वेदी के एकल काव्य पाठ का आयोजन किया।

काव्य पाठ से पूर्व युवा साहित्यकार राम जी तिवारी ने अपने आलेख के माध्यम से "संतोष चतुर्वेदी के पहले कविता संग्रह के सरोकार और संवेदना पर आलेख प्रस्तुत किया। काव्य पाठ की शुरूआत श्री चतुर्वेदी ने चित्र में दुख, सच्चाई, चींटियां, बहुत परेशान हूँ मैं, अकेले कहीं नहीं, दुनिया के चलते, भगदड़ में, भवकना, जीवन का राग और पानी का रंग आदि पंद्रह कविताओं के पाठ से किया। दूसरे सत्र में संतोष चतुर्वेदी की पढ़ी गई कविताओं पर डा0 अखिलेश राय, डा0 अमलदार निहार, प्राध्यापक जैनेन्द्र पांडेय ने चर्चा की। डा0 के0के0 सिंह ने समकालीन कविताओं को लेकर उनकी पठनीयता और सम्प्रेषणीयता पर चर्चा की। अधिवक्ता राकेश कुमार वर्मा ने भी चर्चा में भाग लिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता डा0 जनार्दन राय तथा संचालन साहित्यिक मंच के संयोजक अजय कुमार पांडेय ने किया।

प्रस्तुति : अजय कुमार पांडेय, बलिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता के बाने में शैतान

गिरीश मिश्र

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

देवत्व की चादर ओढ़े शैतान भारत के लिए नई चीज़ नहीं है। राहु, रावण और कालनेमि पौराणिक ग्रंथों में मिलते हैं। 'हितोपदेश' में एक बूढ़े बाघ और एक लोभी ब्राह्मण की कथा आती है। बाघ घोषणा करता है कि वह नखदंत विहीन वृद्ध है और अपना हिंसक स्वभाव त्यागकर पूर्व दुष्कर्मों के लिए प्रायश्चित कर रहा है। वह सोने का कंगन दान देना चाहता है। लोभी ब्राह्मण जैसे ही उसके पास जाता है, वह उसे दबोच लेता है।

तुलसीदास ने, जिनकी मानव चरित्र की समझदारी बड़ी ग़ज़ब थी, इस परिघटना का विस्तृत वर्णन किया है। वे बतलाते हैं कि सच्चे साधु का चरित्र कपास के समान उज्ज्वल होता है। उसमें कोई छल कपट नहीं होता। वह दूसरों की कमियों से फ़ायदा उठाने की कोशिश नहीं करता। उनके ही शब्दों में, 'साधुचरित सुभ चरित कपासू। निरस विसद गुनमय फल जासू।। जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहि जग जसु पावा।' उनके अनुसार कई ठग भलेमानुषों जैसा वेश और आचरण अपनाकर लोगों को ठगने की कोशिश करते हैं किंतु अंततः उनकी पोल खुल जाती है। इसके विपरीत अनेक साधु पुरुष अपने साधारण पहनावे और रंग ढंग के कारण हो सकता है, कुछ समय तक उपेक्षित रहें मगर देर-सबेर उनको सम्मान मिल ही जाता है।

'लखि सुवेष जग बंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ।
उघरि अंत न होई निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।
कियहु कुवेष साधु सनमाना। जिमि जग जामवंत हुनमाना।'

राहु एक राक्षस था जिसने देवताओं का चोला पहन अमृत चुराने की कोशिश की। रावण ने साधु बन सीता का हरण किया। कालनेमि ने संत बन हनुमान को तब जहर देने का प्रयास किया जब वे संजीवनी लाने जा रहे थे।

तुलसीदास के अनुसार वर्तमान युग में जटा तथा नाखून बढ़ाए अनेक लोग तपस्वी होने का दावा कर धन-संपत्ति इकट्ठा करते हैं। आकर्षक साज-सज्जा के कारण मूर्ख ही नहीं बल्कि होशियार लोग भी उनके जाल में फंस जाते हैं। 'तुलसी देखि सुबेखु भूलहि मूढ़ न चतुर नर।' ऐसे ठगों से बचना आसान नहीं होता। अनेक लोग वेष तो हंस का धारण किए हुए हैं मगर उनकी करनी कौओं की है। वे रामभक्त होने का नाटक कर भोले-भाले लोगों को ठगते हैं :

'जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस वेष मराला।
चलत कुपंथ वेद मग छाड़े। कपट कलेवर कलिमल भांडे।
बंचक भगत कहाई राम के। किंकर कंचन कोह काम के।'

उन्होंने आध्यात्मिक योगी बन घूम रहे धूर्तों की कटु आलोचना करते हुए कहा कि डींग हांकने वाला, आडंबरी और दंभी अक्सर संत कहलाने लगते हैं। वे दूसरों की स्त्रियों और धन पर नज़र गड़ाए रहते हैं। वस्तुतः वे अज्ञानी, हिसंक और परम स्वार्थी होते हैं।

आज भारत के हर छोटे-बड़े शहर में आश्रमों, मठों और मंदिरों की विपुल संपदा के इस्तेमाल को देखें तो पाएँगे कि तथाकथित देवपुरुष अपने चेले-चांटों के साथ ऐश करते हैं। अच्छा खाते, बढ़िया पहनते और ज़िंदगी का भरपूर मज़ा उठाते हैं। वे अपने भ्रामक अध्यात्म और जादुई बाजीगरी के बिना पर मासूम, जीवन से निराश तथा दिलासे के लिए तरस रहे लोगों को ठगते हैं।

इन तथाकथित देव पुरुषों को सार्वजनिक भूमि हथियाने से कोई गुरेज नहीं होता। उदाहरण के तौर पर नई दिल्ली की लोदी कॉलोनी में बने मंदिर समूह को देखें, खासकर वृहस्पतिवार को। फुटपाथ ही नहीं बल्कि सड़क को काफी कुछ हथिया लिया जाता है। मंदिर-निर्माण में कानून-कायदे की धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं। अधिकारी मूक दर्शक बने रहते है। भले ही बाधित यातायात से दुर्घटनाओं में लोग मरें।

इसी तरह मस्जिद और गुरुद्वारा बना सरकारी ज़मीन पर क़ब्जा जमा लिया जाता है। कोई भी धर्म लें, हर जगह ऐसे देवपुरुष मिलेंगे जो ईश्वर के साथ हॉट लाइन होने का दावा कर भोले-भाले लोगों को ठगते हैं। इन धार्मिक परिसरों में बेहिचक व्यावसायिक कारोबार चला भारी कमाई की जाती है।

बिहार (झारखंड समेत) में ज़मींदारी उन्मूलन के प्रावधानों से बचने के लिए बड़े पैमाने पर देवी-देवताओं का सहारा लिया गया। राम, जानकी, कृष्ण, हनुमान, शिव, पार्वती, गणेश आदि के नाम पर लगानमुक्त भूमि पहले किसी वर्ष में दिखलाकर हड़प ली गई। राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनेक मठों और मंदिरों के ज़मींदार साधु-संत पर ज़मींदारी उन्मूलन के कानून को ठेंगा दिखाया। इनमें से कई राजनीति में भी आए और फले-फूले। वस्तुतः धर्म एक बड़ा ही फायदेमंद कारोबार है बशर्ते अपेक्षित चतुराई और धूर्तता हासिल हो, जिससे लक्षित जनसमुदाय को फंसाया जा सके। हर स्वयंभू देवपुरुष का अपना विस्तृत तंत्र होता है। उसके भरोसेमंद एजेंट, वित्त पोषक और संरक्षक होते हैं। उसे स्वयं अपेक्षित हाव-भाव, लहजा और तौर-तरीका अपनाना होता है जिससे लोगों को प्रभावित किया जा सके। आरंभिक काल संघर्षपूर्ण होता है। उस दौरान सफलता मिलने पर कारोबार की गाड़ी तब तक सरपट भागती जाती है जब तक कोई बड़ा घोटाला उसे अपनी गिरफ़्त में न ले ले।

हस्तरेखा शास्त्र और फलित ज्योतिष तथाकथित देवपुरुषों द्वारा उन भ्रष्ट एवं निराश राजनेताओं, अफ़सरों और व्यवसायियों को फंसाने के लिए औजार हैं, जिनमें तनिक भी आत्मविश्वास नहीं रह जाता। एक अन्य तरीका तांत्रिक यज्ञों का है जिनके जरिए उन देवी-देवताओं को प्रसन्न करने की कोशिश की जाती है जिनकी नाराजगी 'देवपुरुषों' की शरण में आए भक्त झेलते दिखते हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि भक्त अपनी विवेकबुद्धि इस कदर खो चुके होते हैं कि वे यह जानने की कोशिश नहीं करते कि हस्तरेखा शास्त्र और फलित ज्योतिष का क्या कोई वैज्ञानिक आधार है?

यह भी ग़लत धारणा है कि स्वयंभू देवपुरुष धर्मशास्त्र और दर्शन में पारंगत होते हैं। वस्तुतः उनमें से अधिकतर अज्ञानी होते हैं। दक्षिण भारत के एक बड़े देवपुरुष के विषय में श्रीलंका के प्रो0 कोवर, कर्नाटक के प्रो0 नरसिहैया तथा जादूगर पीसी सरकार जूनियर, ने जो कुछ कहा है वह चौंकाने वाला है।

हमारे देश में नेहरू काल समाप्त होने के बाद तथाकथित देवपुरुषों और संदिग्ध चरित्र वाले फलित ज्योतिषियों के परस्पर गठजोड़ तेज़ी से उभरे हैं। इस गठजोड़ ने उद्योग-व्यवसाय और राजनैतिक सत्ता के बीच दलाली के धंधे को बढ़ावा दिया है। इस गठजोड़ द्वारा भ्रष्ट राजनेताओं को आश्वस्त किया जाता है कि वे बेधड़क होकर निर्णय लें क्योंकि वह उन्हें कानून की गिरफ़्त में नहीं आने देगा। वह ईश्वर को मेहरबान बनाए रखेगा। पिछली सदी के आख़िरी दशक के दौरान पटना का एक अर्धसाक्षर समाचार पत्र विक्रेता शिवाजी सिंह मार्गदर्शी उर्फ सैटलाइट बाबा स्वयंभू देवपुरुष बन कई बड़े राजनेताओं को घोटालों से बचाने के लिए यज्ञ कराने के नाम पर भारी रकम ऐंठने में सफल हो गया।

उत्तर नेहरू काल में विवेक बुद्धि और वैज्ञानिक दृष्टिकोण में काफ़ी गिरावट आई है जिससे लालच और आपराधिक प्रवृत्तियाँ बढ़ी हैं और स्वयंभू देवपुरुषों, तांत्रिकों और ज्योतिषियों की बन आई है। राजग शासनकाल के दौरान डा0 मुरली मनोहर जोशी ने इन छद्म विज्ञानों को बढ़ावा देने की भरसक कोशिश की। धर्म और ईश्वर का इस्तेमाल उन लोगों को ठगने के लिए किया जाता है जो भ्रष्ट कृत्यों द्वारा धन बटोरते हैं और अपने भविष्य को लेकर चिंतित रहते हैं। यह अनायास नहीं है कि बापुओं और अम्माओं के प्रवचन महानगरों के संभ्रांत इलाकों के सुसज्जित और सुप्रकाशित मंचों से आए दिन होते हैं। विडंबना यह है कि वहाँ बैठे काली आय और काली संपदा वालों को कहा जाता है कि वे माया के पीछे न भागें। अगर गहराई में जाकर देखें तो पाएँगे कि श्रोता और वक्ता, दोनों ही, माया के पीछे पागल हैं। बापू और अम्मा को आलीशान भवनों में ठाट-बाट से रहने की आदत है। वे अपनी आय के परिमाण और स्रोत को गुप्त रखते हैं और करवंचना करते हैं। भौतिक वस्तुओं के उत्पादन में कोई योगदान न करने के कारण परजीवी होते हैं। ज़मीन-जायदाद के प्रति भारी आकर्षण के चलते मठमंदिरों में आए दिन उसके स्वामित्व को लेकर मारपीट और हत्याएँ की या कराई जाती हैं। कई पीठों के शंकराचार्य के पद को लेकर वर्षों मुकदमे न्यायालयों में चले हैं। हमारे जैसे ग़रीब देश में अनेक क्विंटल दूध और दुग्ध उत्पाद तथा अनाज हवनकुंड में डालना आपराधिक कृत्य से कम नहीं है जबकि लोगों को खाने के लिए अनाज और हज़ारों-लाखों बच्चों को दूध, दही और घी मयस्सर नहीं होता। इसके अलावा अनेक संत-महात्मा और स्वयंभू देवपुरुष धर्म के नाम पर जनता को बांटने तथा लड़ाने की मुहिम में जुटे हैं। वे सांप्रदायिकता के बीज बोते और पनपाते हैं। अयोध्या में बाबरी विध्वंस से जुड़े आंदोलन में इनका भारी हाथ रहा है। राम और कृष्ण का नाम लेकर राष्ट्र की एकता और सांप्रदायिक सौहार्द्र को छिन्न-भिन्न करना आपराधिक कृत्य ही है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के नवअवसरवादी भूमंडलीकरण के युग में प्रवेश करने के बाद अनिश्चितता बढ़ी है तथा मंदी एवं तेज़ी से जनजीवन प्रभावित होने लगा है। ग्राम समुदाय के पतन और संयुक्त परिवार के बिखरने से आम आदमी अपने को एकाकी और बेसहारा महसूस करने लगा है। उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि, बैंक में ज़मा की गई राशि पर ब्याज़ में कमी, बचत की राशि के वास्तविक मूल्य में ह्रास, छटनी आदि का डर बना रहता है। शहरों में रहने वाले दुर्घटनाओं से भयभीत रहते हैं। भ्रष्ट अफ़सर और राजनेता छापों और अपराधिक गिरोहों से सशंकित रहते हैं। राजनेता चुनाव-परिणामों की अनिश्चितता को लेकर डरे रहते हैं। इसीलिए वे नियमित रूप से तांत्रिकों, ज्योतिषियों तथा साधु-महात्माओं की शरण में जाते तथा यज्ञ वग़ैरह करवाते हैं, जिससे उनका भविष्य निरापद रहे। कहना न होगा कि ईश्वर और याचक के बीच 'देवपुरुष' बिचौलिए का काम करते हैं, बेशक उचित दक्षिणा लेकर। यह अलग बात है कि हिन्दू धर्म में आत्मा को ब्रह्म का अंग माना गया है और बिचौलिए की कोई गुंजाइश नहीं है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के आने के बाद वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बदले 'टॉक्सिक नॉनसेंस' यानी नशीले बकवास को बढ़ावा मिलना काफ़ी चिंताजनक है।

एम-112, सार्केत
नदई छिलली-110017

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सृजन स्मरण

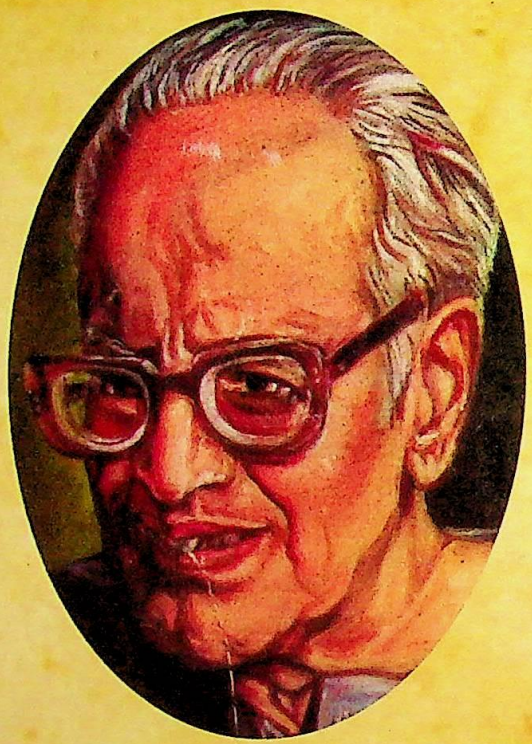

भाव थे जो शक्ति-साधन के लिए, लुट गए किस आंदोलन के लिए!
यह सलामी दोस्तों को है, मगर मुट्ठियाँ तनती हैं दुश्मन के लिए!
धूल में हमको मिला दो, किंतु, आह, चालते हैं धूल कन-कन के लिए
तन ढँका जाएगा धागों से, परंतु लाज भी तो चाहिए तन के लिए।
नाज पकने पर खुले आकाश से बिजलियाँ गिरती हैं निर्धन के लिए।
संकुचित है आज जीवन का हृदय, व्यक्ति-मन रोता है जन-मन के लि

शमशेर बहादुर सिंह
(1911 - 1993)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार
सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित तथा 28, एम.आई.जी., अवन्तिका-।, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल सिं
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम्बर, 2010 ■ बीस रुपये

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

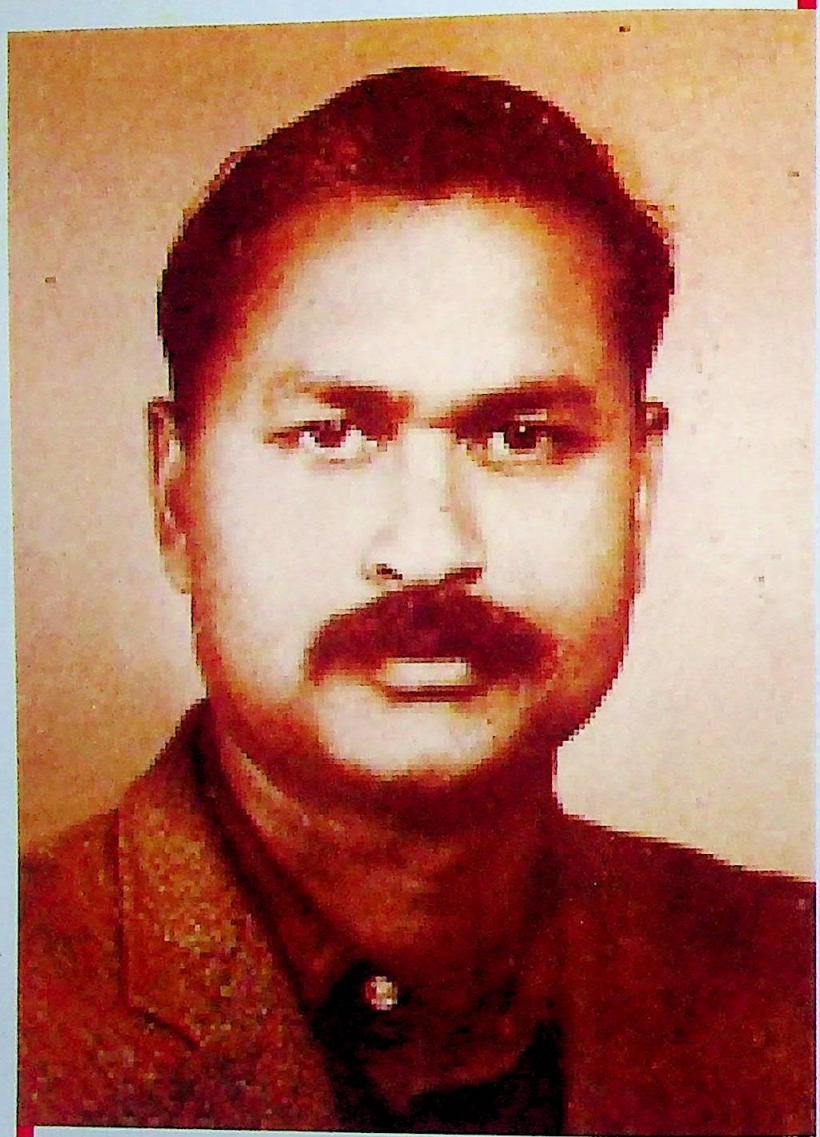

(7 नवम्बर, 1936–10 फरवरी, 1975)

एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
वो सिर्फ़ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ
ये तीसरा आदमी कौन है ?
मेरे देश की संसद मौन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
विभूति नारायण राय

सम्पादक
नमिता सिंह

सह-सम्पादक
□ अजय बिसारिया □ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

विशेष संपादकीय सहयोग : प्रदीप सक्सेना

प्रबन्ध सम्पादक : राजीव श्रीवास्तव

शब्दांकन : बिसारत अली

रेखांकन : विवेक कुमार मिश्र, झालावाड़

मुख पृष्ठ : रावण दहन-हिण्डालको रेनुकूट

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

वर्ष 26 □ नवंबर, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय
28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com
Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; □ वार्षिक : 230/-; □ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 300/- □ आजीवन : 2000/- □ विदेशों में साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। केवल लोकल चैक ही स्वीकार किये जायेंगे।)

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404 (U.K.)

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

इस अंक में

पाठक मंच/2
अपनी बात/5
स्मरण : कुँवरपाल सिंह 'भुलाये न बने...'/दामोदर दत्त दीक्षित/8

बाल दिवस के अवसर पर
हिन्दी बाल उपन्यास : संभावनाएँ अभी हैं/प्रकाश मनु/12
मटिल्डा : बचपन का करिश्मा/विजय शर्मा/18

संस्मरण
गृह कारज नाना जंजाला/सूर्यनाथ पाण्डेय/65

लेख
पंजाब का हिन्दी और उर्दू साहित्य.../विनोद शाही/52

आखिरी पन्ना
फिर उभरा परिवारवाद/डा0 गिरीश मिश्र/78

कहानी
रास्ते और भी हैं/शशि गोयल/24
हाशिए पर धूप/शशि जैन/28
नटुआरा/श्यामल बिहारी महतो/32
साजिश/पूरन सिंह/40
वर्दी में भिखारी/जमुना बीनी/48

पास-पड़ोस : उड़िया कहानी
काँच का पुतला/गौर हरिदास/43

देश-देशांतर : बलूची कहानी
क्या यही ज़िंदगी है/डा0 नइमत गुलची/अनुवाद-देवी नागरानी/50

कविताएँ
प्रेमशंकर रघुवंशी की आठ कविताएँ/10
श्रीप्रकाश शुक्ल की कविताएँ/22
घनश्याम कुमार 'देवांश' की कविताएँ/57
अनवर शमीम की कविताएँ/58
संदीप जायसवाल की कविताएँ/59
कुमार विश्वबंधु की कविता-'मंडीनामा'/61
लालित्य ललित की कविताएँ/62
केशव शरण की कविताएँ/63
चंद्रकांत सिंह की कविता-'बातचीत'/64
कविताएँ/डॉ0 कुलदीप सिंह ढाका 'भारत'/60

दो गीत/रजनी मोरवाल/17

लघु कथाएँ
बदला-21/काम-56/अर्पिता शर्मा
परीक्षा/हरीश कुमार शर्मा/27
समाधान/दुर्गाशंकर राय/31
श्रद्धा/पंकज शर्मा/47

पुस्तक समीक्षा
भक्ति साहित्य में सामाजिक.../(सावित्री चंद्र 'शोभा')/देवेन्द्र गुप्ता/69
मलमूत्र ढोता भारत : दंश का दस्तावेज/(सं0 रमणिका गुप्ता)/रत्न कुमार सांभरिया/70
लोक भाषा : बृज.../(डा0 कैलाश चन्द्र भाटिया)/डा0 प्रेम कुमार/72
उपन्यास 'डंक' की शुरूआत.../(रूप नारायण सोनकर)/प्रेमशशांक/73
कहानी की नई रंगत/(सूर्यनाथ सिंह)/निरंजन देव शर्मा/74
सांस्कृतिक समाचार/76

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठक मंच

सितंबर का 'वर्तमान साहित्य' प्राप्त हुआ। सदा की भाँति आपका संपादकीय बहुत प्रभावशाली रहा। इस बार के संपादकीय में आपने नया ज्ञानोदय में प्रकाशित विभूति नारायण राय के साक्षात्कार का संदर्भ लिया है। विभूति जी ने साक्षात्कार में कुछ अभद्र शब्दों का प्रयोग किया है जो वास्तव में निंदनीय है। आपने यह भी कहा है कि साक्षात्कार को उसकी पूर्णता में परखना चाहिए। लोगों ने वे दो शब्द तो ले लिए किन्तु साक्षात्कार में जो अन्य महत्त्वपूर्ण बातें हैं उन्हें छोड़ दिया गया। आपने सही कहा है कि विभूति जी के केन्द्रीय चरित्र को परखने के लिए उनके उन तमाम कार्यों को देखना चाहिए जो उन्होंने समाज के हित में किये हैं और नौकरी जाने का खतरा उठा कर किये हैं। उन्होंने अपने गाँव में एक पुस्तकालय की स्थापना की है और उसके लिए उन्होंने कहाँ-कहाँ से पुस्तकें एकत्र कीं। मेरे यहाँ से भी कुछ पुस्तकें ले गये थे। वहाँ हर वर्ष सार्थक साहित्य-संवाद आयोजित होता है। 'वर्तमान साहित्य' जैसी स्तरीय पत्रिका उन्हीं की देन है।

यह, भी सोचने की बात है कि विभूति जी को ऐसे शब्दों के प्रयोग के लिए उत्तेजना कहाँ से मिली? देह-मुक्ति के नाम पर जो नंगापन परोसा जा रहा है वह शोभन और श्लील है क्या? विभूति नारायण ने तो मुखर होकर कह दिया, बाकी तमाम लोग आपस में चर्चा करते रहते हैं। नारी-विमर्श क्या देह-मुक्ति तक सीमित है? शहर से लेकर गाँव तक, उच्चवर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक, स्त्रियों की न जाने कितनी समस्याएँ हैं, उनकी कितनी-कितनी तकलीफें हैं। हम सब की मुख्य चिंता होनी चाहिए कि उन तकलीफों से उन्हें मुक्ति मिले, उनकी अस्मिता को सम्मान मिले। ये हर क्षेत्र में बराबरी की हैसियत से पुरुषों के साथ खड़ी हों। आर्थिक स्रोतों (जो हर तरह से जीवन का एक बड़ा आधार है) पर उनका वही अधिकार हो जो पुरुषों का होता है। वे स्वावलंबी बनें ताकि पुरुष-पीड़न को वे ललकार सकें। अपनी प्रेम-गाथाओं या अपने साथ हुए यौन दुराचारों की कथा कहने में लिप्त रहकर लेखक रूप में नाम कमाना नारी-विमर्श नहीं है। हर तरह की नारी को उसके विविध अधिकार दिलाने की रचना माध्यम से जद्दोजहद करना सही नारी-विमर्श है।

रामदरश मिश्र, नई दिल्ली

विभूति नारायण राय द्वारा प्रयुक्त 'त्रिअक्षरीय' शब्द से हिन्दी साहित्यिक जगत में खड़े हुए तूफ़ान पर आपका संपादकीय (सितंबर 2010) संतुलित, संयमित और सही दिशा वाला लगा। आपने प्रकरण को समग्रता से लेते हुए श्री राय द्वारा उठाए गए मुद्दे की भी चर्चा की है। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द निंदनीय है, परंतु माफी बहुत बड़ी चीज़ होती है। जुनूनी लोग 'माफी' शब्द का अर्थ भूल गए हैं शायद। टी0वी0 चैनलों और वोटधर्मी नेताओं की तरह 'भाँय-भाँय' करना छोड़ नहीं रहे। नेतागीरी चमकायी जा रही है, लामबंदी की जा रही है, पिछले हिसाब-किताब बराबर किए जा रहे हैं। मुद्रा ऐसी जैसी सदियों से इस अक्सर की तलाश में हों। फोहश शब्द का विरोध उससे भी ज़्यादा गंदी गलीज़ भाषा में ?

दामोदर दत्त दीक्षित, लखनऊ

'वर्तमान साहित्य' सितंबर 2010 अंक। 'अपनी बात' के साथ, विचारकों के मध्य 'हमारी बातें' हैं। निश्चय ही साहित्य की संवेदनाएँ मानवीय उष्मा को व्यक्त करती हैं, सहिष्णुता जिसकी पहली शर्त है। लिहाजा सहमति/ असहमति के मध्य विमर्श हो, लेकिन अभिव्यक्ति अप-संस्कृति को जन्म न दे। अतएव साहित्य की यह सहिष्णुता उसके व्यापक चरित्र को व्यक्त करती है। तब विभूति नारायण राय के संदर्भ में कथित 'अशोभनीय' शब्द को मीडिया के माध्यम से तिल से ताड़ करने का कोई कारण नहीं बनता है। अगर जरूरी है तो हमें शालीनता से विरोध करना है, वरना मानवीय और अमानवीयता या फिर वैचारिक संस्कृति और अपसंस्कृति का हम फर्क कहाँ पायेंगे? नमिता जी इस पर जमकर विमर्श करती हैं।

प्रस्तुत अंक में हिन्दी दिवस के अवसर पर कई महत्त्वपूर्ण आलेख प्रकाशित किये हैं जो मनन योग्य हैं। खासकर रहीम मिर्जा और अब्दुल लतीफ का लेख। नताशा अरोड़ा की कहानी अच्छी लगी। रवि श्रीवास्तव का लेख 'लुकाच एवं ब्रेख्त : यथार्थवाद की समस्या' एक खोजपूर्ण गंभीर लेख है। लेखक के उक्त दृष्टियों के हम कायल हैं।

समीक्षा स्तंभ की सामग्री भी भरपूर है। समीक्षात्मक रचनाओं पर भी पुस्तक आ सकती है, यह जानकर अच्छा लगा। यानि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमानंद श्रीवास्तव की पुस्तक 'अँधेरे समय में शब्द' जिस पर कमलानंद झा ने गहराई और शालीनता से समीक्षा की है।

उत्तिमा केशरी, पूर्णिया

'वर्तमान साहित्य' के सितंबर अंक के संपादकीय में आपने स्वीकार किया है कि जो दबी-दबी जवानों में कहा जा रहा था उसके पर्दे विभूति नारायण राय ने उघाड़े। उन्होंने सच्चाई को ही सामने लाया है। रही बात तूफान की तो यह कोई तूफान नहीं है, सच सामने आने वालों का विलाप है क्योंकि इससे उन संपादकों का चेहरा भी उघड़ गया जो स्त्री देह की दलाली कर अपनी पत्रिका की बिक्री बढ़ाने में लगे हैं। आप भी इस सच को जानती हैं कि साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंधों की अंतरंगता को चटखारेदार बनाने वाले सृजन से कोई महान मकसद पूरा नहीं होता, न ही कोई सामाजिक सरोकार ही रेखांकित होता है।

विभूति नारायण राय ने ऐसे सृजन को लेकर ही सृजनकर्ता पर प्रश्न उठाते हुए टिप्पणी की है। साहित्य का कार्य केवल यथार्थ का चित्रण ही नही बल्कि उसका समाधान भी देना है।

राजेन्द्र परदेसी, लखनऊ

सितंबर के 'वर्तमान साहित्य' में स्मरण-मार्कण्डेय' के अंतर्गत यादें : एक श्रद्धांजलि' (अरविन्द बिन्दु)-पृष्ठ 6 अब तीसरी बार पढ़ रहा हूँ अर्थात्- एक ही लेख तीसरी पत्रिका में छपा है। जाहिर है लेखक अपने लेख को लेखकीय नैतिकता भूलकर ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को पढ़वाना चाहता है, पर दुबारा-तिबारा इस उस पत्रिका में इस तरह किसी रचना को क्यों पढ़ने को विवश हुआ जाय।

बन्धु कुशावर्ती, लखनऊ

सितंबर अंक में जयश्रीराय की कहानी ने विस्मित किया। जनक से बलकृत युवती का अंतर्द्वंद्व कथा में ढंग से निर्वहित है। सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी तो खूब-खूब उत्तम है मगर दो पेजों तक लंबी प्रस्तावना से कहानी ढिल्लड़ हो गई है। आँगन का मिट्ठू लाल तो करुणावतार बन गया है।

'छिनरपने' पर मचा शोर-शराबा थम तो गया मगर छिनरपना थमे तब कुछ राह बने। मगर एक बात सच है पुरुष स्त्री को क्या समझ पाएगा, स्त्री देह भी समझातीत है। वर्तमान साहित्य पहले की बजाय ज़्यादा सुंदर-श्रेष्ठ छप रहा है।

सलीम खाँ फ़रीद, हसामपुर, सीकर

सितंबर, 2010 वर्तमान साहित्य। मेरे छत्तीसगढ़ के गाँवों में ये विवादास्पद शब्द पढ़े-लिखे लोगों से लेकर असाऊर, अनपढ़ अशिक्षितों में तथा कुआँ, ताल, हैंडपम्प वगैरह परिस्थानों में देखा जा सकता है। लेखकों-पाठकों संपादकों को संवाद चाहिए। पर लोग हैं कि केले के छिलके पर फिसल जाते हैं।

कहानियाँ सभी अच्छी लगीं। राष्ट्रभाषा पर जो अखिल भारतीय सामग्री व लेख संजोये गए वे प्रत्येक मायने में अर्थवान हैं। ग़ैर हिन्दी भाषी का हिन्दी लेखन-बाल शौरी रेड्डी पर लेख अच्छा लगा। कर्ज़ा वसूली का अंतिम चक्र ब्याज का मुद्दल और मुद्दल का ब्याज समीकरण बन गया। अच्छे अंक हेतु बधाई।

यशवंत, राजनांदगांव

नमिता सिंह जी का संपादकीय बेहतर है। उन्होंने तत्कालीन विषय (ज्ञानोदय प्रकरण) पर अपनी राय रखी, अच्छी लगी उनकी राय। आज का स्त्री विमर्श देह पर आ कर सिमट जाता है, यह सही नहीं है क्योंकि देह के अलावा और न जाने कितने विषय हैं नारी मुक्ति के। देह से स्वतंत्र होने के अलावा और भी बहुत सारी जंजीरें हैं जिनसे मुक्त होना है स्त्री को। फिर स्त्री अपनी देह के प्रदर्शन के द्वारा ही ख्याति प्राप्त नहीं कर सकती। और भी बहुत सारे क्षेत्रों में वह अपने करिश्मे दिखा रही है तथा दिखा सकती है। स्त्री ने आज सामाजिक, नैतिक, परंपरा प्रदत्त बंधनों की पहचान कर ली है लेकिन भी बहुत सारे ऐसे बंधन हैं जिनसे अभी मुक्ति के लिए संघर्ष बाकी है। भारत के गाँव-गाँव, घर-घर में न जाने अभी कितनी स्त्रियाँ बंधुवा मजदूर की तरह हैं जिन्हें अभी मुक्त होना है।

मनीषा जैन, नई दिल्ली

नग़मा जी की कविता वर्तमान साहित्य में अगस्त अंक में पढ़ी। बहुत सशक्तता से क़लम चलाकर अपने उद्गारों को अभिव्यक्त किया गया है।

स्नेह के तमाम सिलसिले क्या वक्त के पानियों पर लिखी तहरीरें हैं ?

देवी नागरानी, मुंबई

अगस्त अंक मिला। सामग्री संतोषजनक है। कहानियों में सुषमा मुनीन्द्र की कहानी 'अप्रत्याशित' विशेष अच्छी लगी। कुछ कवितायें भी संतोषजनक हैं। समीक्षायें अच्छी हैं। डा0 प्रदीप सक्सेना का लेख विषय के साथ न्याय करता है। संपादकीय में आपने वर्तमान काल में विवाह और प्रेम में होने वाली हिंसा का विवेचन किया है जो अब अधिक हो रही है।

कृष्ण बिहारी मिश्र, नई दिल्ली

'वर्तमान साहित्य' का अगस्त अंक। इसमें अब्दुल बिस्मिल्लाह के लेख की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। सुभाष गाताड़े ने भी सामयिक प्रसंग को पूरी शिद्दत के साथ उठाया है। 'अपनी बात' में आपने खाप पंचायतों के मनमाने रवैये तथा सत्ता-शासन द्वारा चुप्पी साधे रहने के प्रति आगाह किया है जो आवश्यक था और संपादकीय दायित्व भी। अमर गोस्वामी की लघुकथाएँ पठनीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें कुछ ख़ास असर नहीं पैदा कर सकीं। नये शिल्प में ढली कहानी 'अप्रत्याशित' (सुषमा मुनीन्द्र) प्रभावित करती है। यश मालवीय के नवगीत पुनः पुनः पठनीय हैं। कविताओं में भरत प्रसाद तथा चन्द्रेश्वर उल्लेखनीय हैं। समीक्षाओं में भी उद्धरण ऐसे हैं कि काव्यानन्द की प्राप्ति होती है, यथा-ज़हीर कुरेशी की ग़ज़लों के कुछ शेर, निदा फाज़ली के कुछ शेर तथा दोहे समीक्षकों क्रमशः राजेश जोशी तथा राजीव लोचन नाथ शुक्ल को धन्यवाद!

कुल मिलाकर अंक पठनीय तथा संग्रहणीय है।

राजेन्द्र वर्मा, लखनऊ

'वर्तमान साहित्य' का अगस्त 2010 का अंक मिला। समूचा अंक अच्छा लगा, विशेषकर इसमें प्रकाशित कहानियाँ अप्रत्याशित (सुषमा मुनीन्द्र) डॉली (अनवर सुहेल) एवं जेबकतरा (अखिलेश श्रीवास्तव) सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं। जेबकतरा कहानी मन को छू गई। किस तरह वकील और पुलिस मिलकर एक निर्दोष को सजा दिला देते हैं। इसका चिट्ठा इस कहानी में स्पष्ट है। राजेश रेड्डी, इन्दु श्रीवास्तव की ग़ज़लें भी मन से छू गईं। वहीं पुस्तकों की समीक्षाएँ भी सार्थक हैं। कृपया लघुकथाओं की संख्या अधिक दें-यूँ तो आपकी पत्रिका नई कविता के साथ गीत, ग़ज़ल, नवगीत, दोहे सभी प्रकाशित करती है। यह एक अच्छी बात है। वर्ना इन दिनों अधिकांश लघु पत्रिकाएँ सिर्फ मुक्तछंद कविता के नाम पर कोरा गद्य प्रकाशित करती हैं।

रमेश मनोहरा, जावरा (म.प्र.)

'वर्तमान साहित्य' को लगातार देख रहा हूँ। लगभग हर अंक भरपूर व ज्ञानवर्धक लगता रहा। आपके निरंतर कुशल संपादन का परिचय मिलता है और अतिरिक्त संतोष भी।

मोहन सपरा, जालंधर

सुप्रसिद्ध रसवादी-मनोवैज्ञानिक हिन्दी समीक्षक डॉ0 छैलबिहारीलाल गुप्त का निधन दिनांक 04 अक्टूबर, 2010 को सासनी गेट, अलीगढ़ स्थित उनके आवास पर हो गया। वे 91 वर्ष के थे। डॉ0 गुप्त कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा से समन्वित तत्त्वाभिनिवेषी समीक्षक थे। डी0एस0बी0 कॉलेज, नैनीताल में वे प्राचार्य रहे। कुमाऊँ विश्वविद्यालय में आर्ट फैकल्टी के वे डीन रहे। कविता-आलोचना की उन्होंने कुल दस पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'सायकलॉजीकल स्टडीज़ इन रस', 'स्टडीज़ इन नायक-नायिका भेद' हिन्दी जगत् में प्रशंसित हुईं। डॉ0 गुप्त का लेखन नाम डॉ0 राकेशगुप्त था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद वे ऐसे पहले काव्यशास्त्रीय समीक्षक थे, जिनकी प्रतिभा का लोहा उनके समकालीन आचार्यों ने स्वीकार किया था। दो वर्ष पूर्व डॉ0 राकेशगुप्त को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने 'साहित्य-भूषण' पुरस्कार से सम्मानित किया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में वे सात वर्ष सहायक प्रोफ़ेसर के पद पर रहे।

'वर्तमान साहित्य' की ओर से उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि।

0 0 0

प्रतिबद्ध क्रांतिकारी कवि, नाटककार और एक्टिविस्ट शिवराम का पिछले दिनों निधन हो गया। अभी हाल में उनके तीन कविता संग्रह प्रकाशित हुए थे जो बहुत चर्चा में रहे। उनके नुक्कड़ नाटक बहुत लोकप्रिय रहे हैं और जनसंगठनों द्वारा खेले जाते रहे हैं।

'वर्तमान साहित्य' परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

हमारे घर के पास एक बड़ा पार्क है जो सुनियोजित, सुव्यवस्थित है। उसकी देखभाल नगर निगम द्वारा होती रहती है। वहाँ सवेरे आसपास के लोग टहलने, व्यायाम करने आते हैं। वैसे एक छोटा पार्क हमारे घर के ठीक सामने भी है। वह बड़ा पार्क (अब) एक भूतपूर्व सांसद के घर के सामने है इसलिये उसका निर्माण और निरंतर रखरखाव नगर निगम के द्वारा किया जाता है। हमारे घर के सामने का पार्क बहुत बाद में बना। जब हम इस मकान में लगभग सोलह वर्ष पहले रहने आये थे उस समय यह खुला मैदान था जहाँ मुहल्ले का कूड़ा और निर्माणाधीन घरों का मलबा फेंका जाता था और उसमें कुत्ते, गधे, सूअर लोटा करते थे। मालिकों द्वारा दूध दुह लेने के बाद अपने भोजन की व्यवस्था में निकली गायों के पसरने की जगह भी वहाँ हुआ करती थी। कुँवरपाल ने यह स्थिति देखी तो जुट गये उस जगह की साफ़-सफ़ाई में। अलीगढ़ विकास-प्राधिकरण और नगर निगम के प्रशासनिक अधिकारियों को लगातार लिखने का और स्वयं जाकर उनसे मिलने का सिलसिला चल निकला। एक अर्से बाद विकास-प्राधिकरण के कागजों में दर्ज तथ्यों से पता चला कि यह जगह भी पार्क के निर्माण के लिये तय है। फिर नये सिरे से भागदौड़ शुरू हुई और एक साल बाद विकास-प्राधिकरण ने पार्क निर्माण की मंजूरी दी और अंततः वह पार्क भी बना। अब उस स्थान को पार्क की शक्ल देने, घास, पेड़-पौधे, फूल-पत्ती युक्त हरा भरा बनाने का काम था। उसे कौन करे? एक माली चाहिये था। मामला खर्चे का भी था। मुहल्ले वालों ने हाथ खड़े कर दिये। फिर कुँवरपाल आगे बढ़े और उन्होंने उस पार्क के संरक्षण का प्रस्ताव रखा। उनके इस प्रस्ताव को ज़बानी स्वीकृति मिली, इस शर्त पर कि उसका पूरा खर्च वे स्वयम् उठायेंगे। ज़ाहिर है वह पार्क किसी नेता या सांसद के घर के सामने नहीं था, इसलिये ऐसा होना ही था। बहरहाल हरी-भरी धरती और सुरक्षित पर्यावरण कुँवरपाल के अपने सरोकारों में शामिल था अतः उन्होंने अपनी ओर से एक माली रखा, पानी की व्यवस्था कराई। फिर घास लगवाई। तरह-तरह के फूलों वाले पौधे लगवाये। हरसिंगार, रात की रानी, जैसे खुशबू देने वाले पौधे, कि रात में चारों ओर सुगंध फैलेगी। बड़े-बड़े छायादार सुबबूल, नीम और पाकड़ ताकि आने-जाने वाले लोगों को ठंडी छाया मिलेगी। आज भी ठेलेवाले, रिक्शेवाले वहाँ पेड़ों के नीचे बैठे सुस्ताते हुए दिख जाते हैं। उसके बाद बारी आई मौलश्री और कदंब जैसे पेड़ों की जिसे उन्होंने खोजकर इधर-उधर से मँगवाये। जब यह सब वृक्षारोपण का काम वे अपने माली से करा रहे थे तो पास-पड़ोस की कुछ महिलाओं ने कहा कि—'भाई साहब, हमारा वृहस्पतिवार को व्रत रहता है। अच्छा होगा अगर आप यहाँ केले के पेड़ लगवा दें...'' और उनकी माँग पर एक कोने में तीन-चार केले की गाछ भी तैयार हो गयीं, जहाँ अब मुहल्ले की महिलाएँ वृहस्पतिवार को पूजा करती दिखाई देती हैं।

अब इसके बाद सबसे बड़ी समस्या थी, पार्क को दावतों के आयोजनों से बचाना। हमारे यहाँ लोग शादी-ब्याह या परिवार के ऐसे ही अन्य मांगलिक अवसरों पर हज़ारों-लाखों खर्च कर देते हैं लेकिन आयोजन स्थल के लिये सार्वजनिक जगह या सड़क को ही घेरना ठीक समझते हैं। सारी बचत इसी पर होती है। शुरू-शुरू में दो-तीन ऐसे अवसरों पर कुँवरपाल ने आयोजनकर्ताओं को पार्क के गेट की चाबी दे दी, इस हिदायत के साथ कि घी-तेल वाला पानी पार्क में, पेड़- पौधों के ढालों में नहीं फैलायेंगे, और दावत के बाद पूरे पार्क की सफाई करा कर पहले की तरह साफ़-सुथरा रखेंगे। हर बार होता यह था कि सारे वायदे और आश्वासनों के बाद भी दूसरे दिन जब तंबू-कनात उखड़ते तो भयानक दृश्य होता। घी, तेल युक्त और बर्तनों की धुलाई का साबुन युक्त गंदापानी क्यारियों में और नये बढ़ रहे पेड़ों के गड्ढों में भरा रहता। चारों ओर कागज़ और प्लास्टिक व थर्मोकोल की प्लेटें, गिलासों के अलावा भोजन सामग्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिखरी रहती। तंबू-कनात को बाँधते और उतारते समय छोटे-कोमल पौधों की बलि चढ़ती वह अलग। अब कौन-सी सफ़ाई-कहाँ की सफाई! पूरे खर्चीले उत्सव के बाद फिर सफाईकर्मी को दिये जाने वाले बमुश्किल सौ-दो सौ रुपये की 'बड़ी' बचत। रोते-झींकते अक्सर वह सफाई भी फिर अपने ही मत्थे पड़ती।

तंग आकर अंततः कुँवरपाल ने तय किया कि अब ये पार्क दावतों के लिये नहीं दिया जायेगा। लोग रख-रखाव के लिये झूठा आश्वासन देते हैं और फिर काम निकल जाने के बाद ये जा... वो जा.... और फिर दिखाई नहीं देते। उनके घर जाकर अगर उन्हें इस काम के लिये याद दिलाओ तो अभद्रता करते। इसी बीच जानकारी हुई कि सार्वजनिक स्थलों, पार्कों आदि को पारिवारिक उत्सव और दावतों के लिये उपयोग में नहीं लाया जा सकता और इसके लिये कानून के अंतर्गत सज़ा का प्रावधान है।

अब जो लोग पार्क को शादी-ब्याह जैसे अवसरों पर होने वाली दावतों के लिये इस्तेमाल करना चाहते थे उन्हें सख्ती से मना करना पड़ा। इससे एक और मुसीबत खड़ी होने लगी। अपने में पड़ोसियों से संबंध बिगड़ने लगे। कुछ लोग लड़ाई-झगड़े पर भी उतर आये। कुँवरपाल ने समझाने की कोशिश की कि इतनी मेहनत से ये पेड़-पौधे लगाये हैं, ये सब बर्बाद हो जाते हैं। इस पर जवाब मिला—"आपसे कहा किसने था कि पेड़-पौधे लगायें। हम तो सब उखाड़ फेंकेंगे... बहरहाल वे पेड़-पौधे तो नहीं नष्ट कर पाये, हाँ पानी के लिये जो नल लगवाया था उसे उन्होंने जरूर उखाड़ फेंका गया। एक बार उसे उखाड़कर उसमें लकड़ी ठुकवा दी। इस क्रम में तीन बार उन्होंने नल उखाड़ा और तीन बार कुँवरपाल ने नल लगवाया। हमारे एक पड़ोसी दरोगा थे। उन्होंने कहा कि क्योंकि मैं दलित हूँ इसीलिये मुझे पार्क में आयोजन नहीं करने दे रहे। दिलचस्प बात यह है कि लगभग तीस साल पहले उन्हीं दरोगा साहब के एक निकटतम रिश्तेदार, जब अपने गाँव के हाई स्कूल से पढ़कर मुस्लिम विश्वविद्यालय में दाखिला लेने के लिये आये तो कुँवरपाल ने उनकी बहुत मदद की थी और उनके स्थानीय संरक्षक के रूप में कुँवरपाल का ही नाम लिखा था। बहरहाल, दारोगा साहब ने और कुँवरपाल से लंबे समय से जुड़े उनके रिश्तेदार ने जो हमारा बायकॉट किया वह आज भी बरकरार है। मैं कहा करती थी कि इस पार्क के पीछे पूरा मुहल्ला हमारा दुश्मन हो रहा है। लोगों के घरों में काम करने वाली सेविकाएँ और सफाईकर्मी चुपके-चुपके पार्क में कूड़ा फेंक देते। इसके लिये भी उनके मालिकों से शिकायत करनी पड़ती। अपने घर को साफ़ करने के बाद कूड़ा घर के सामने या पड़ोसी के घर के पास डालने की पुरानी परंपरा है और किसी को अटपटा भी नहीं लगता। साफ़ सफाई और शुद्ध पर्यावरण के लिये मानसिकता में बदलाव लाने के लिए आदतों में बदलाव लाना बेहद ज़रूरी होता है।

कुँवरपाल की प्रथम पुण्यतिथि के अवसर पर पार्क की सफाई, रखरखाव और पार्क के लिये उनकी चौकीदारी के प्रसंग भी याद आते हैं। वे सामाजिक पर्यावरण के साथ-साथ प्राकृतिक पर्यावरण के लिये भी समान रूप से चिंतित और संवेदनशील थे। वे इन सरोकारों के लिये भी हर स्तर पर खतरे मोल लेते थे और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये पूरी निष्ठा के साथ लगे रहते थे। कोई मदद नहीं करेगा तो अकेले ही जूझने के लिये वह तैयार रहते।

0 0 0

भूतपूर्व सांसद के घर के सामने स्थित बड़े पार्क की बात तो रह गई। वहाँ चारों ओर सवेरे टहलने वालों के लिये पट्टी बनी है। किनारे-किनारे कुछेक पेड़ हैं। पार्क के दोनों ओर पानी के नल लगे हैं। रोशनी के लिये और बैठने के लिय बेंचों की पर्याप्त व्यवस्था है। कुछ दिन पहले वहाँ कई तरह के झूले भी लगा दिये गये हैं।

उस दिन कुछ बच्चे वहाँ झूले लगे देखकर आ गये। वे उन घरों के बच्चे थे जिनको अपने माँ-बाप के साथ रोज़ी-रोटी की जुगाड़ में लगना होता है। शाम के समय पार्क में घूमना, खेलना और झूलों का आनंद लेना उनके लिये सपने जैसा है। दरअसल हमारा ये अति विकसित, पॉश कहा जाने वाला इलाका, यहाँ के पुराने गाँव का हिस्सा है। लगभग बीस-बाइस साल पहले तक ये गाँव था और यहाँ खेत थे। भूमि अधिग्रहण कर इसे शहर के सबसे संभ्रांत इलाके के रूप में विकसित किया गया। फिर गाँव पिछड़ता, सिकुड़ता अंदर की ओर धँसता गया। पॉश इलाके में काम करने वाली सेविकाएँ और सेवक इसी घँसे-सिकुड़े भीतरी इलाके से आते हैं। बड़े घरों के संपर्क में आने से इनके रहन-सहन में भी बदलाव आ रहा है। उनके बिना इस पॉश कालोनी के लोगों का जीवन भी लगभग असंभव है। दोनों ही एक दूसरे के लिये अनिवार्य वर्ग के रूप में हैं। इनके कुछ बच्चे पढ़ते हैं, कुछ नहीं पढ़ते, कुछ ड्रॉप आउट्स हैं और माँ-बाप के कामों में हाथ बँटाते हैं, यानि कमाऊ हाथ भी हैं।

उस दिन ऐसा हुआ कि उधर के कुछ बच्चे, जिनकी उम्र आठ से दस-बारह साल रही होगी, नहा-धोकर सभ्य लगने की चेष्टा करते हुये वहाँ पार्क में झूला झूलने आये। पार्क में घूम रहे, स्वास्थ्य के प्रति सजग विशिष्ट जनों ने तुरंत उन्हें पहचाना और पकड़ कर बाहर कर दिया। खिसियाये से बच्चे वापिस चले गये। पाँच-छह दिन बाद एक बार फिर वे बच्चे सवेरे-सवेरे वहाँ दिखाई दिये। वे दुबारा धकियाये जाने वाले थे कि एक अन्य बुजुर्ग जो वहाँ पार्क में घूमते कम हैं, लेकिन धर्म और नैतिकता पर प्रवचन देते रहते हैं, उन्हें समझाने लगे कि श्रमदान कितनी अच्छी चीज है। उन बच्चों को श्रमदान करना चाहिये और पार्क में पॉलीथिन और चिप्स के, बिस्कुट के खाली पड़े रैपर उठाकर दूर जाकर कूड़ाघर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाल, पार्क को साफ रखने में सहयोग करना चाहिये। बच्चे इस उम्मीद में थे कि वे बुजुर्ग शायद यह आश्वासन दें कि पार्क की सफाई करने के बाद उन्हें झूलों के पास जाने की मंजूरी मिलेगी।

जब उनको गेट के बाहर ले जाया जा रहा था तो मुझसे नहीं रहा गया। मैंने उन्हें टोका और कहा कि वे इन बच्चों को क्यों नहीं झूलने देते। आखिर बच्चे ही तो इनका उपयोग करेंगे....।

वे नाराज़ हो गये। शायद टोके जाने से आहत हुये थे। वे चुपचाप जाकर बेंच पर बैठ गये और आँख बंद करके शायद ध्यान करने लगे।

नतीजा... फिर एक बार बायकॉट। उन्होंने दुआ-सलाम बंद कर दी है।

इस वर्ग विभाजित और वर्णविभाजित समाज में संवेदनहीनता और उपेक्षा का सबसे आसान शिकार बच्चे ही होते हैं। बाल दिवस के अवसर पर हम बाल-अधिकारों के अंतर्गत उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन और आगे बढ़ने के लिये आवश्यक अवसरों की चर्चा तो कर ही सकते हैं।

नमिता सिंह

प्रथम सीता स्मृति सम्मान कवि दिनेश कुमार शुक्ल को

स्वर्गीय डॉ. सीता श्रीवास्तवजी एक प्रख्यात शिक्षाविद् और राजनीतिशास्त्र की विद्वान थीं। वह दिल्ली विश्वविद्यालय से संबद्ध मैत्रेयी कॉलेज की 15 वर्ष से ज्यादा समय तक प्रधानाचार्य रहीं। वह वॉशिंगटन डी.सी. स्थित अमेरिकन युनिवर्सिटी में वरिष्ठ फुलब्राइट स्कॉलर और लिंचबर्ग के रांडोल्फ मेकन वीमेन कॉलेज में विजिटिंग प्रोफेसर भी थीं। इससे पहले वह बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में राजनीतिशास्त्र पढ़ाती थीं और वहाँ के महिला महाविद्यालय में राजनीतिशास्त्र की विभागाध्यक्ष थीं। एक सच्चा राष्ट्रवादी कार्यकर्ता होने के नाते उन्होंने अपने छात्र जीवन में ही लखनऊ में रहते हुए आजादी के आंदोलन में हिस्सा लिया और जेल गईं। उनका शोध राज्यसभा पर था जो बाद में पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुआ और काफी लोकप्रिय हुआ। उन्होंने दिल्ली की झुग्गियों में रहने वाली गरीब महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण और बेहतरी के लिए पेशेवर प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के माध्यम से कई विकास कार्यक्रम आयोजित किए।

वह एक कवियत्री भी थीं और हिंदी साहित्य से उनका गहरा जुड़ाव था। मैत्रेयी कॉलेज के प्रधानाचार्य के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद उन्होंने हिंदी गद्य और कविता दोनों में गंभीर लेखन किया। उनकी 23 पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें गंभीर और प्रासंगिक विषयों पर कई कविता संग्रह भी शामिल हैं। उन्होंने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और लोकनायक जयप्रकाश नारायण की जीवनी भी लिखी। उन्हें कई पुस्तकों के लिए पुरस्कार और प्रशस्ति मिले। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने कुछ बहुत महत्वपूर्ण प्रासंगिक मसलों पर सहज लेकिन प्रभावशाली तरीके से अपनी भावनाओं, जीवनानुभवों और विचारों को अभिव्यक्त किया था।

हिंदी लेखन के प्रति उनके लगाव और उनकी स्मृति के सम्मान में स्वर्गीय डॉ. सीता श्रीवास्तव के परिवार ने हिंदी लेखन के लिए एक सालाना पुरस्कार की घोषणा की है। प्रशस्ति पत्र और 51,000/– रुपए का यह सम्मान किसी भी हिंदी लेखक को गद्य या कविता के लिए दिया जाएगा। पुरस्कार के लिए प्रमुख हिंदी अखबारों और पत्रिकाओं में विज्ञापन देकर प्रविष्टियाँ आमंत्रित की गई थीं। हिंदी के लेखकों/ प्रकाशकों की ओर से 77 प्रविष्टियाँ आईं। **वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह और कथाकार श्रीमती ममता कालिया** के एक प्रतिष्ठित निर्णायक मंडल ने 2009–10 के सीता स्मृति पुरस्कार विजेता का चयन करने के लिए एक विस्तृत प्रक्रिया अपनाई। कई दौर की परिचर्चा एवं व्यापक कसौटियों पर प्रविष्टियों के सतर्क मूल्यांकन, परीक्षण तथा छंटनी के बाद प्रतिष्ठित निर्णायक मंडल ने **श्री दिनेश कुमार शुक्ल** के काव्य–संग्रह **'ललमुनियाँ की दुनिया'** को **प्रथम सीता–स्मृति सम्मान** के लिए चुना है।

श्री दिनेश कुमार शुक्ल जाने–माने समकालीन हिंदी कवि हैं। इनकी कविताएँ और आलेख तकरीबन सभी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं और पत्रों में प्रकाशित हुए हैं। इनकी अद्‌भुत शैली ने समकालीन कविता के साहित्यिक मानकों से समझौता किए बगैर कविता को जन के और करीब लाने का काम किया है। नए काव्यात्मक उपकरणों के साथ पारंपरिक साहित्यिक व लोक रूपों के प्रयोग ने इनकी कविताओं को एक नई धार दी है। इन्हें यह पुरस्कार नई दिल्ली में 2010 के अंत में दिया जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुलाए न बने....

दामोदर दत्त दीक्षित

उनकी भौतिक अनुपस्थिति को साल भर होने को है।

9 नवम्बर 2009 के अखबारों से निधन का समाचार सुनकर नमिता सिंह जी को फोन करने की हिम्मत नहीं जुट रही थी। क्या कहूँगा, कैसे कहूँगा, कितनी देर तक कहूँगा.....? दुःख फिर ताजा नहीं हो जाएगा....? आखिर हिम्मत जुटाकर संक्षेप में शोक संवेदना व्यक्त की थी। जैसा कि पहले ही निश्चय कर चुका था, 16 नवम्बर को अलीगढ़ जाकर नमिता जी और उनकी सुपुत्री से मिला। स्थितियाँ सामान्य हो रही थीं। जनवादी लेखक संघ मेरठ के तत्वावधान में लेखकों-बुद्धिजीवियों की शोकसभा हुई थी जिसका समाचार, समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ था। समाचार-पत्र नमिता जी को दिए। सब कुछ था, बस वह नहीं थे।

जी हाँ, में प्रख्यात आलोचक, जनवादी विचारक, ऐक्टिविस्ट, संवदेनशील और उदारमना डॉ0 कुँवरपाल सिंह की ही बात कर रहा हूँ। उनके औदार्य और सहायभाव का जवाब नहीं था। वह जरूरतमन्दों की सहायता करना अपना धर्म समझते थे। दूसरे के कार्यों, उनकी चिन्ताओं को अपना समझने लगते थे। इस स्वार्थी जगत् में यह विरल और उच्च स्तर की सन्तई है। वह दोस्तों के दोस्त और सम्बन्धों को निभाने में निपुण थे। कहते थे, दुश्मन बनकर तो कतई नहीं, हाँ दोस्त बनकर जरूर मुझसे छल किया जा सकता है। गृहस्थ जीवन से पहले जब अकेले रहे, उस समय दोस्त उनके टिफिन बाक्स का भोजन चट कर जाते थे। जब विश्वविद्यालय से लौटते, तो घर में जो रूखा-सूखा होता, उसे खाकर संतोष करते। कुछ न होता, तो पेटपूजा के लिए साइकिल से बाजार की ओर निकल पड़ते। चेहरे पर न खीज, न गुस्सा। मन में भाव-दोस्त हैं, बेचारे भूखे रहे होंगे! उनकी दोस्ती और दोस्तनवाजी के ढ़ेरों किस्से हैं।

जनसामान्य से उनका गहरा जुड़ाव था। जनवादी चेतना को उन्होंने नारों में नहीं, जीवन में उतारा था। 2 अक्टूबर 1936 को कैलोरा (जिला हाथरस) के सामान्य किसान परिवार में उनका जन्म हुआ था। किसानों की समस्याओं से सुपरिचित होने के कारण उनकी किसानों से गहरी हमदर्दी थी। वह अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से छात्र, शोधकर्ता, अध्यापक, हिन्दी विभागाध्यक्ष और कला संकाय के अधिष्ठाता के रूप में जुड़े रहे। वह विश्वविद्यालय की एकेडेमिक काउन्सिल, एक्जीक्यूटिव काउन्सिल और कोर्ट के सदस्य निर्वाचित हुए जो उनकी लोकप्रियता को दर्शाता है। वह साधनहीन, समस्याग्रस्त छात्रों के लिए मसीहा सरीखे थे। वह अध्यापक संघ, कर्मचारी संघ और छात्र संगठनों की भी यथावश्यक सहायता करते थे। स्त्रियों की दयनीय स्थिति, उनकी प्रतारणा, शोषण और उनके साथ होने वाले भेदभाव उनकी गहरी चिंता के विषय थे और इस नाते भी मैं उनका सम्मान करता था।

वह अपनी वैचारिक दृढ़ता, निष्ठा और प्रतिबद्धता के लिए भी प्रसिद्ध थे। जातिवाद, सम्प्रदायवाद और क्षेत्रवाद से ऊपर उठे व्यक्ति थे। बातें तो बहुत लोग करते हैं, पर व्यवहार में उन पर खरे उतरना आज दुर्लभ हो गया है। कुँवरपाल सिंह जी की कथनी-करनी में अन्तर न था। साम्प्रदायिकता के विरूद्ध वह जीवन भर लड़ते रहे और कई बार अपनी जान जोखिम में डालने से भी नहीं हिचके। सामाजिक समरसता, समतामूलक समाज और श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्ष करने में वह कभी पीछे नहीं हटे। वह ऐसे योद्धा थे जो कभी हार नहीं मानते थे। उनके ऊर्ध्वगामी कार्यों में पत्नी नमिता जी का भरपूर सहयोग मिलता रहा।

जहाँ तक लेखकीय पक्ष की बात है, वह अपने आलोचनात्मक अवदान के लिए भी जाने और माने जाएँगे। उन्होंने 'भारतीय नवजागरण और उन्नीसवीं शताब्दी का हिन्दी गद्य', 'प्रेमचंद और समसामयिक हिन्दी कथा साहित्य', 'हिन्दी उपन्यासः सामाजिक चेतना', 'मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी उपन्यास' आदि 6 आलोचनात्मक पुस्तकें लिखीं और 9 पुस्तकों का सम्पादन किया। प्रख्यात कथाकार, कवि और संवाद-लेखक राही मासूम रजा और उनका लम्बा साथ रहा। उन्होने अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'आधा गाँव' कुँवरपाल सिंह जी को समर्पित किया है। राही के निधन के बाद उनकी कई अप्रकाशित पुस्तकों का सम्पादन कुँवरपाल सिंह जी ने किया और साहित्य अकादमी के लिए उन पर एक मोनोग्राफ भी लिखा। अपने अन्तिम समय में वह 'राही समग्र' का सम्पादन कर रहे थे।

जब उन्होंने 'वर्तमान साहित्य' के सम्पादन का दायित्व सँभाला तो उसकी निरन्तरता को लेकर शुभचिन्तक भी शंकालु थे। परंतु उन्होंने अपनी मजबूत टीम के सहयोग से सफलतापूर्वक पत्रिका सम्पादित की जो आज भी नमिता जी के सम्पादकत्व में नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है। 'वर्तमान साहित्य' में अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तम्भ 'समय संवाद' के माध्यम से और रचना-चयन के रूप में उन्होंने अपनी छाप छोड़ी। वह दुराग्रहों से दूर थे और लेखक से ज्यादा रचना को महत्व देते थे। 'वर्तमान साहित्य' के माध्यम से बहुत-से अज्ञात-अल्पज्ञात लेखकों को प्रकाश में लाए। वह मजबूत कलेजे के थे, उनके अन्दर बगैर किसी भेदभाव के, परिचय-अपरिचय की परवाह किए बिना, रचना को सराहने और उसे प्रकाशित करने का माद्दा था।

कुँवरपाल सिंह जी-नमिता सिंह जी से मेरी पहली, संक्षिप्त और औपचारिक मुलाकात वर्ष 2003 में विभूति नारायण राय की सुपुत्री के विवाह के अवसर पर हुई थी। से0रा0 यात्री जी ने परिचय कराया था। मैं कुँवरपाल सिंह जी और नमिता जी को अर्से से पढ़ता आया था। वे भी शायद मेरे नाम से परिचित थे।

वर्ष 2005 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित अपने उपन्यास 'धुआँ और चीखें' की दो प्रतियाँ 'वर्तमान साहित्य' में समीक्षार्थ कुँवरपाल सिंह जी के पास भेज दीं। कुछ समय बाद फोन पर बात हुई, तो अपने से बोल पड़े, "आपका उपन्यास बहुत अच्छा है, इसलिये मैंने इसे बड़े आलोचक...के पास भेज दिया है और कहा कि यह उपन्यास मुझे बहुत अच्छा लगा है, इसलिए इसकी समीक्षा आप जैसे वरिष्ठ आलोचक द्वारा होनी चाहिए।"

कुँवरपाल सिंह जी द्वारा स्मरण कराए जाने के बावजूद उक्त बड़े आलोचक मेरे उपन्यास पर घास उगाते रहे। आखिर में उन्होंने कह दिया, "यह उपन्यास मेरी प्रायारिटी' में नहीं आता।"

यही बात वह पहले कह सकते थे।

कुँवरपाल सिंह जी ने मुझसे उपन्यास की एक अन्य प्रति मँगवाकर कथाकार-आलोचक हरियश राय से बहुत जल्द समीक्षा करवाकर 'वर्तमान साहित्य' में प्रकाशित करवायी। वही हाल 'मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त।' मेरे उपन्यास की समीक्षा करवाने को वह मुझसे कहीं ज़्यादा उत्सुक और प्रयासरत। आज ऐसे सम्पादक कितने हैं? बस, कनिष्ठिका में गिनने भर के!

यहाँ यह बताना समीचीन होगा कि उक्त बड़े आलोचक के शहर में जब मेरी नियुक्ति थी, तो मिलना-जुलना, एक दूसरे के घर आना-जाना तक था। पर वह शायद समीक्षा हेतु मेरे फोन-निवेदन की प्रतीक्षा में थे। इधर मेरा मानना है कि आलोचक परिचित है, तो समीक्षा हेतु पैरवी करने की क्या जरूरत है और यह ज़्यादा 'एप्रैरिसिंग' है। अन्य कई आलोचकों के अलावा प्रख्यात आलोचक निर्मला जैन ने बिना किसी पैरवी के, आत्मप्रेरणा से इसी उपन्यास की (पूर्वग्रह में) समीक्षा की और भूरि-भूरि प्रशंसा कर मुझे विस्मित कर दिया।

अगस्त या सितम्बर 2006 में सरकारी कार्य से मेरा अलीगढ़ जाना हुआ। तभी कुँवरपाल सिंह जी- नमिता सिंह जी से उनके अवन्तिका वाले घर पर पहली अनौपचारिक मुलाकात हुई। काफी देर तक बातें होती रहीं-नितांत सहज और दोस्ताना माहौल में। कोई दिखावा नहीं, कोई आडम्बर नहीं। हम साहित्य के बारे में और उससे कहीं ज्यादा सामाजिक समस्याओं के बारे में बात करते रहे। उनकी आत्मीयता और गर्मजोशी ऐसी रही जैसे हम बरसों पुराने दोस्त हैं। कहीं से भी उन्होंने मुझे अपने से कनिष्ठ लेखक होने का आभास नहीं करवाया।

इसके बाद जब भी अलीगढ़ जाना हुआ, कुँवरपाल सिंह जी से मिलकर ही आया। वह गम्भीर चर्चाएँ तो करते ही थे, अपने अनुभव बेलौसी से, किस्सागोई अंदाज में बयान करते। वह जब जनजागरण हेतु अपने 'ऐक्टिविस्ट' अवतार में अलीगढ़ के आस-पास के गाँवों में घूमते थे, जब चिकित्सा शिविर लगवाते थे, उस समय के प्रसंग सुनाते। एक बार उनके घर पर प्रख्यात उर्दू शायर शहरयार और लेखक काजी अब्दुल सत्तार से मिलने का अवसर भी मिला।

उनके पैर में तकलीफ रहती थी, चलने में बहुत परेशानी थी। इसके बावजूद वह पूरी गर्मजोशी से मिलते, पूरी सक्रियता और सहभागिता से बात करते। बातों में इतना खो जाते कि लगता पीड़ा कोने-अंतरे में जाकर दुबक गयी है। बीमारी ने उनकी परवाह नहीं की, तो उन्होंने भी बीमारी की परवाह नहीं की।

कुँवरपाल सिंह जी सरल, अभिमानरहित, संवेदनशील, भरोसेमंद, सम्बन्धों को निभाने वाले, दोस्तों के दोस्त, जरूरतमंदों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहने वाले, निर्भीक, संघर्षशील, समाज के प्रति प्रतिबद्ध और जातिवाद-सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद से ऊपर उठे व्यक्ति थे। संवेदनशीलता, बौद्धिकता, साहस और कर्मठता का ऐसा अद्भुत सहमेल विरल है। उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के जवाहरलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज के छात्रों के अध्ययन के लिए मृत्योपरान्त देहदान की पूर्व घोषणा कर दी थी। इसे मैं त्याग और सामाजिक प्रतिबद्धता की चरम स्थिति कहूँगा। वह सचमुच विलक्षण थे। बहुविध गुणों के कारण मेरा उनके प्रति सम्मानभाव था। मैं उनके साथ गहरा मानसिक जुड़ाव महसूस करता था। हम बहुत बाद में मिले, पर ऐसा मिले कि लगता था बचपन से मिलते आए हैं।

वह उन लोगों में थे जो अपने जीवनकाल में ही स्वयं में संस्था बन जाते हैं। उनसे मिल सका, यह मेरे लिए गौरव की बात है। वह अपने पीछे दोस्तों, चाहने वालों और प्रशंसकों की बड़ी फ़ौज छोड़ गए हैं। एक पालि उक्ति स्मृतिपटल पर आ रही है--रूपं जीरति मच्चनं, नाम गोत्तं न जीरति'। भौतिक स्वरूप नष्ट हो जाता है, परन्तु मनुष्य के सद्गुण जीवित रहते हैं। कुँवरपाल सिंह जी आज भी जीवित हैं-इतिहास बनकर।

अगर भगवान नहीं है, तो कोई बात नहीं। पर अगर है, तो निश्चित तौर पर कह सकता हूँ कि भगवान ने बाहें फैलाकर स्वागत किया होगा, भले ही कुँवरपाल सिंह जी को भगवान पर भरोसा नहीं था। नेक व्यक्ति की पूछ हर जगह होती है!

1/35 विश्वास खण्ड
गोमती नगर, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमशंकर रघुवंशी की आठ कविताएँ

कटा आदमी

मेरे पास
कहने को कुछ नहीं
उनके पास सुनने को

मेरे पास
दिखाने को कुछ नहीं–
उनके पास देखने को

मेरे पास
खिलाने को कुछ नहीं
उनके पास खाने को
मुख्य धारा से कटा आदमी
खण्डहरों में रहता है

और उन्हें भी पड़ोस में बसाता है
जो उसके हालचाल पूछने
उसके द्वार तक जाते हैं

आसान

सब कुछ
हो जाता
आसान
तुम्हारी हाँ के बाद!

और नहीं होता
कुछ भी
सुलभ
तुम्हारी ना के बाद !

वे खुश हैं

वे भाषा के बंधन को
भाषा के माध्यम से
समझते हुए खुश हैं
वे खुश हैं
देह-भंगिमा से
शून्य पर बोलते हुए
ऐसा करते हुए
उनका शब्दकोश
पहले से ज़्यादा बढ़ गया है

और वे
पहले से ज़्यादा
तगड़े हो गये हैं

मैं तुम्हारे साथ हूँ

तुम जिन मूर्खता के खिलाफ सक्रिय हो
मैं तुम्हारे साथ हूँ इस ज्ञान युद्ध में

यह एक ऐसी चौकस लड़ाई है
जो खुद से शुरू होना चाहिए पहले
और अंत भी खुद पर हो इसका

जो लोग किसी खास प्रतिज्ञा के तहत लड़े
वे मानव संस्कृति के मूल स्वभाव से अनभिज्ञ रहे
और जिन्होंने चंद मुहावरों के खातिर
सिर्फ़ शरीर के बल पर युद्ध किये
वे लोकोक्तियाँ भी नहीं बन सके
जबकि लड़ाई का सारा वजूद
मन से वास्ता रखता है

संस्कृति को बनाये-बचाये रखने तक
जिस बात की सबसे ज़्यादा ज़रूरत होती
वह संघर्ष से ही संभव है

समर और शांति पर्याय हैं मित्र की तरह
और मैं तुम्हारे साथ-
इन दोनों में दोनों की तरह शरीक हूँ प्यारे !!

अब भी

हमें अब भी
चिंता है
आसमान पर बढ़ते जा रहे
छेद की
धरती पर
निर्जीव होते जा रहे
वनों-जल स्रोतों
पशु-पक्षियों की
चींटियों, हाथियों की
सबकी भूख प्यास की

हमें अब भी प्रकाशपर्व-सा लगता
चाँद-सूरज-सितारों से बरसता किरणों का प्रवाह

जलधारों की किलकती तरंग
कोयल की नकल उतारते बच्चे
और प्रेम पर बिना गोष्ठियाँ किये
दीवालों पर
छिपकलियों की प्रणय केलियाँ

हममें अब भी
आग है सृजन की!!

ऐसा कुछ करने से

देखता हूँ–
चिड़ियों को दाना पानी कराती
पत्नी की मुक्तावस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जिसके छत पर जाते ही
नाचते फुदकते आ जाते कबूतर
पंखों से पानी उछालती
गुत्थमगुत्था होने लगती गौरैया
और छिड़ जाती छिपकलियों में
धींगामस्ती की होड़

अलसाये घर में भर जाती
उबलते दूध की गंध

पहले से ज़्यादा बढ़ जाता
दादी के प्याले में चाय का स्वाद

परिवार में किसी का भी
ऐसा कुछ करते रहने से
कितना खुशनसीब हो उठता घर
और बासी होती दिनचर्या में
भर जाती ढेर सारी स्फूर्ति
ओस से नहाये पेड़-पौधों की तरह !!

कल्लो की हँसी

जब भी
काम करती कल्लो हँसती
अरमानों का अवतरण होने लगता फिज़ा में
जिसमें गोते लगाते
खेत-खलिहान, गैल-गली-गेंवड़ो तक
महक उठता गाँव
कल्लो की हँसी
पलेवा देती नहर है
जो माटी की कोख में
ऐसे बीज धरती
कि हरी भरी लहरों की
ओढ़नी फहराती नाच उठती फसलें

जब भी
मशक्कत की मस्ती में
हँसती कल्लो
धरती का सौन्दर्य
कुछ और गाढ़ा हो जाता है
और आकाश में भी
उतनी ही श्यामवर्णी हो जाती घटाएँ!!

ग़ज़ब

शिव प्रतिमा को
बाघाम्बर पहनाकर
ग़ज़ब किया कलाकार।

कि कमर से घुटने तक की
उत्कीर्णन कला से ही
वंचित कर लिया खुद को
और एक और परोक्ष अवसर दे दिया
शिकारियों को बाघों के विनाश का

गढ़ो !
अवश्य गढ़ो ऐसी प्रतिमा
कि सिंह और मृग
कार्तिकय और गणेश की तरह
बैठे दिखें शिव की गोद में

और पार्वती के
दोनों हाथ
दोनों के सिर पर
ममता का
मानसरोवर उकेरता दिखे दर्शकों को!!

प्रताप कॉलोनी
(बाफना चाल के पीछे)
हरदा-461331

केदारनाथ अग्रवाल न्यास, बांदा द्वारा हिन्दी के विशिष्ट आलोचक प्रोफ़ेसर सूरजपालीवाल को 'रामविलास शर्मा आलोचना सम्मान' दिया गया है। प्रोफ़ेसर पालीवाल महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा में हिन्दी विभागाध्यक्ष और डीन, कला संकाय हैं। इस सम्मान के लिए 'वर्तमान साहित्य' परिवार की ओर से प्रोफ़ेसर सूरज पालीपाल को हार्दिक बधाई!

इस अंक के रेखांकनकार **'विवेक कुमार मिश्र'** हैं।
उनका पता इस प्रकार है :
टाइप-।।।, भूतल-2 सिविल लाइन्स, झालावाड़ (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी बाल उपन्यास-संभावनाएँ अभी हैं

प्रकाश मनु

बाल उपन्यास माने बच्चों के दिल में छिपी तमाम कही-अनकही बातों का खज़ाना। बाल साहित्य की जितनी भी विधाएँ हैं, उनमें बाल उपन्यास में बच्चों का जितना मन खुलता है और जितनी देर तक बच्चा उसके प्रभाव से बिंधा हुआ, उसमें रमा रहता है, उतना किसी और विधा में नहीं। निस्संदेह बच्चों को अपने लिए लिखी गई कविताएँ और कहानियाँ पढ़ना पसंद हैं, पर बाल उपन्यास पढ़कर किसी बच्चे को जिस ढंग की तृप्ति मिलती है और वह देर तक उसी प्रभाव में बहता है, वैसा असर न बच्चों के लिए लिखी कई कहानियों का होता है, न कविताओं का। इसलिए कि बाल उपन्यास का मतलब ही, बच्चों के लिए दुर्गम और मनोहारी रास्तों पर सैर करना, जी भरकर घूमने-घामने, यहाँ तक कि उड़ने और उछलने-कूदने के लिए एक और भरी-पूरी दुनिया रच देना। यह दुनिया अगर सचमुच सलीके से रची गई है, तो बच्चों पर उसका सम्मोहन इस कदर तारी हो जाता है कि कई दिनों या महीनों नहीं, बरसों तक उसका प्रभाव मन से नहीं उतरता। और कई बार तो हम जीवन के आख़िरी छोर पर बैठे लोगों को बचपन में पढ़े हुए उपन्यास में 'थ्रिल' की चर्चा इस कदर शिद्दत से करते देखते हैं कि चकित रह जाना पड़ता है।

मुझे याद पड़ता है, बचपन में 'चंदा मामा' पत्रिका में पढ़े कुछेक उपन्यासों के अलावा 'गुलीवर की यात्राएँ' वह पहला अविस्मरणीय उपन्यास था, जिसने मानो पहली बार मुझे भीतर से छुआ और जगा दिया था। पहली बार जीवन में कल्पनाओं और बिंबों, चरित्रों और कथानकों का ऐसा पिटारा खुला कि उसका रंग और आकर्षण आज तक फीका नहीं हुआ। लिलिपुट जिस बौनों के देश की यात्रा करता है, वे बौने असल में थे कि नहीं ? और उपन्यास में जिन महाकार दैत्य जैसे प्राणियों का वर्णन है, वे सचमुच इतने विशाल लोग पृथ्वी पर कहीं थे या नहीं थे—यह सब कुछ मायने नहीं रखता। बच्चों की कल्पना के लिये तो वे थे। और हमेशा-हमेशा के लिए इस दुनिया के किसी अज्ञात या अल्पज्ञात देश में बस गए थे, इस दुनिया को कहीं अधिक खूबसूरत और रँगारंग बनाने के लिए। बस, इतना ही काफ़ी है। यानी उपन्यास जिस कल्पना की दुनिया को रचता है या मोटे शब्दों में कहें तो जिस 'झूठ' को रचता है, अगर वह बच्चों के मन को रिझाने और सुकून देने वाला हुआ तो झूठ नहीं रह जाता और कल्पना असली जामा पहनकर एक रंग-बिरंगा खूबसूरत संसार बसा देती है। यह है बच्चे के दिल पर उपन्यास का असर!

:: 2 ::

हिन्दी बाल साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में बाल उपन्यास की विकास-यात्रा थोड़ी भिन्न है। इसलिए कि बाल साहित्य के पहले चरण यानी बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में कविता, कहानी, नाटक आदि की तुलना में बाल उपन्यास अपेक्षाकृत कम लिखे गये हैं। हाँ, प्रेमचंद का 'कुत्ते की कहानी' (1936) इस दौर में लिखा गया पहला जोरदार और सफल बाल उपन्यास है। दूसरे चरण में बहुत से लेखकों का ध्यान इधर गया और स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर सन् 1980 तक का कालखंड हिन्दी बाल उपन्यास का स्वर्णकाल है। उसके बाद दुर्भाग्य से हिन्दी बाल उपन्यासों की धारा में वह क्षिप्रता और समृद्धि नज़र नहीं आती। हालाँकि पिछले एक डेढ़ दशक से बाल साहित्य के लेखकों का ध्यान फिर से इधर गया है तथा अच्छी और कलात्मक औपन्यासिक कृतियाँ नज़र आने लगी हैं।

इस कालखंड के बाल उपन्यासों और उनके लेखकों पर एक नज़र डालें, तो कम से कम यह चीज़ आश्वस्त करती है कि पहले की तरह इस दौर में भी एक साथ कई पीढ़ियों के लेखक बाल उपन्यासों की रचना में सक्रिय रहे हैं। खासकर गुलज़ार का तिलिस्मी 'बोसकी का कौआनामा' खासा रोचक उपन्यास है। इसके अलावा इस दौर में बाल उपन्यास लिखने वाले अन्य लेखक हैं—हरिकृष्ण देवसरे, राधेश्याम प्रगल्भ, हरिपाल त्यागी, अमर गोस्वामी, चिरंजीत, मुद्गल, सूर्यबाला, पंकज बिष्ट, बल्लभ डोभाल, रतन शर्मा, मनोहर वर्मा, रत्न प्रकाश शील, हिमांशु जोशी, चंद्रदत्त इंदु, रमेश थानवी, देवेंद्र कुमार, शकुंतला वर्मा, क्षमा शर्मा, उषा यादव, इरा सक्सेना, अलका पाठक, प्रकाश मनु, हरीश तिवारी, विनायक, भगवतीशरण मिश्र, क्षितिज शर्मा, बलवीर त्यागी, यादराम रसेंद्र, अभिलाष वर्मा, योगेंद्रदत्त शर्मा, रमेश आज़ाद, कुसुम गुप्ता, गीता पुष्प शॉ, संजीव जायसवाल 'संजय', दिनेश चमोला 'शैलेश' तथा पी.आर. शुक्ल।

इस दौर के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रतिनिधि बाल उपन्यासकार देवेंद्रकुमार के बाल उपन्यासों में 'एक छोटी बाँसुरी' (2003) की सबसे पहले चर्चा की जानी चाहिए। इस मार्मिक बाल उपन्यास में एक छोटे बच्चे अमर की कथा है, जो इस बात को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दुखी है कि सबके पिता हैं, लेकिन उसके पिता कहीं नहीं नजर आते। पिता की तलाश अमर को घर से बाहर ले जाती है। कुछ समय वह एक बूढ़े भिखारी के साथ रहा। उसकी मौत के बाद सदमे से बेहोश अमर आखिर डॉक्टर रायज़ादा के क्लीनिक में पहुँच जाता है। डॉक्टर रायज़ादा यहाँ-वहाँ खोजते हुए उसके गाँव पहुँचते हैं। वहाँ अमर के पिता तो नहीं मिलते, लेकिन रोती-बिलखती माँ जरूर मिलती है, जो अमर को देखते ही छाती से चिपका लेती है और तब अमर को लगता है कि घर से भागकर उसने माँ को कितना संतप्त किया है। देवेंद्रकुमार की भाषा और शिल्प में एक लाजवाब कलात्मक संपूर्णता है। इस लिहाज से 'एक छोटी बाँसुरी' की गिनती बेशक हिन्दी के कुछ अच्छे मार्मिक बाल उपन्यासों में होनी चाहिए। देवेंद्र के 'पेड़ नहीं कट रहे हैं', 'बिल्लौने' और 'नीलकान' उपन्यास भी ध्यान खींचते हैं, पर उनका सबसे सशक्त उपन्यास है 'चिड़िया और चिमनी', जो आज की पर्यावरण की समस्या को इतनी संजीदगी से उठाता है कि उससे यह उपन्यास को एक नई शक्ति ही नहीं, बल्कि एक अलग पहचान और अर्थवत्ता भी मिल जाती है। 'चिड़िया और चिमनी' में एक फैक्टरी है, जिसकी चिमनी से रात-दिन काला धुआँ निकलता रहता है। यह धुआँ इतना खराब और प्रदूषणकारी है कि इससे चिड़िया का गला ख़राब हो जाता है और खाँसी के कारण हालत लगातार बिगड़ती जाती है। आखिर जंगल के सारे जानवर मिलकर उस फैक्टरी को घेर लेते हैं और चिमनी को तोड़ देना चाहते हैं। मगर फिर समझ में आया कि फैक्टरी के बंद हो जाने पर सैकड़ों लोग बेरोज़गार हो जायेंगे। तब उस समस्या का एक अलग ही समाधान खोजा जाता है। बाल उपन्यास होते हुए भी 'चिड़िया और चिमनी' की रेंज बड़ी है।

इस चरण में उषा यादव और क्षमा शर्मा ने निरंतर बाल उपन्यास लिखकर अपनी पहचान बनायी। हालाँकि उषा यादव के कुछ उपन्यास लगता है आदर्शवादी अधिक हो गये हैं। उनके 'कुहासा दधीचि' उपन्यास में धनी परिवार के एक संवेदनशील बच्चे अनीक की कहानी है, जो किसी का भी दुख-दर्द देखकर व्याकुल हो जाता है और उसे दूर करने के लिए कोई भी खतरा उठाने के लिए तैयार रहता है। इसी तरह स्कूल में लोगों की सेवा के लिए जो काम किए जाते हैं, उनमें दीपक आगे बढ़कर हिस्सा लेता है। पर पीड़ितों की मदद का सवाल आता है तो हर काम में सबसे आगे दौड़कर आगे रहने वाला यह बच्चा एकाएक सभी का आदर्श बन जाता है। उपन्यास का अंत बेहद करुण है और सचमुच रुला देनेवाला है। हाँ, अगर यह उपन्यास अति आदर्शवाद का शिकार होता, तो इसका असर गहरा होता। 'हीरे का मोल', 'सबक' और 'लाखों में एक' (1992) भी उषा यादव के पारंपरिक बाल उपन्यास हैं। इनमें 'लाखों में एक' निस्संदेह अधिक प्रभावशाली हैं। कुछ बरस पहले छपे उषा यादव के 'सोना की आँखें' बाल उपन्यास में भी हिरनी की कथा बड़े मार्मिक अंदाज में सामने आती हैं।

समर्थ कथाकार क्षमा शर्मा ने भी पशु-पक्षियों को लेकर सुंदर उपन्यास लिखे हैं। उनमें 'मिट्ठू का घर' (1998) एक तोते से जुड़ा बड़ा सुंदर भावनात्मक सुंदर उपन्यास है, तो 'पीलू' में बतख के नन्हें, नटखट बच्चे की अदाएँ और चंचलता मन मोह लेती है। उनका 'शिब्बू पहलवान' (1992) भी खासा दिलचस्प उपन्यास है, जिसके नायक हैं शिब्बू पहलवान। लेकिन शिब्बू पहलवान सिर्फ़ पहलवान ही नहीं, वे और भी बहुत कुछ हैं। उपन्यास में शिब्बू पहलवान की बहादुरी और पहलवानी दाँव-पेच के अलावा उनकी दयालुता, सरलता, खुद्दारी और स्वाभिमान की भी एक से बढ़कर एक ऐसी झाँकियाँ हैं, जो मोह लेती हैं। क्षमा शर्मा के 'इंजन चले साथ-साथ' और 'होमवर्क' सरीखे बाल उपन्यास आज के बच्चों के मिजाज से जुड़ते हैं। इनमें 'इंजन चले साथ-साथ' (1998) बच्चों के अंदर छिपी कलात्मकता और कुछ नया रचने-गढ़ने की संभावनाओं की अपने ढंग से खोज करता है। इसी तरह 'होमवर्क' (2000) काफ़ी अलग ढंग का उपन्यास है जिसमें 'होमवर्क' के कुछ नए ही अर्थ खुलते हैं।

रमेश थानवी और हरिपाल त्यागी ने भी इस दौर में बड़े विलक्षण और कलात्मक संपूर्णता लिए उपन्यास लिखे। इनमें रमेश थानवी का उपन्यास 'घड़ियों की हड़ताल' (1989) सही मायने में एक प्रयोगधर्मी उपन्यास है, जिसमें हमारा समय और सच्चाइयाँ खुलकर सामने आती हैं। उपन्यास की कथा बहुत संक्षिप्त सी है। पर उसे इस ज़िंदादिली से कहा गया है—कि 'घड़ियों की हड़ताल' इधर के बाल उपन्यासों में एक यादगार उपन्यास बन गया है। उपन्यास की शुरूआत में ही घड़ियों की इस अनोखी हड़ताल का ज़िक्र है जिससे सब जगह हड़कंप मच जाता है और सारे काम रुक जाते हैं। फिर एक बच्चा इस मुश्किल को हल करने के लिए आगे आता है। वह समस्या की तह तक पहुँचता है और बमुश्किल घड़ियों की यह हड़ताल ख़त्म होती है, जिसने जीवन के पहियों की गति को ही रोक दिया था और पूरा देश जैसे थम सा गया था। रमेश थानवी का बच्चों के लिए लिखा गया यह अकेला उपन्यास है, पर बेशक बाल पाठकों के मन में गहरी छाप छोड़ता है। इसी तरह अपने ही अंदाज के लेखक-चित्रकार हरिपाल त्यागी का 'ननकू का पाजामा' (2003) बच्चों के लिए लिखा गया उनका एकमात्र उपन्यास है, पर इसके ज़िक्र के बग़ैर नई काट के बाल उपन्यासों की चर्चा पूरी नहीं हो सकती। हरिपाल त्यागी की कथा-शैली बहुत प्रभावशाली है, जिसमें कहीं-कहीं तीखा व्यंग्य और तल्खी भी शामिल है। इसके जरिए वे अपने समय की विडंबनाओं और अंतर्विरोधों को भी अपने नायाब अंदाज में उजागर करते चलते हैं। हिन्दी में गाँव की जमीन पर लिखे गये इतने सच्चे और खरे बाल उपन्यास बहुत कम हैं।

योगेंद्रदत्त शर्मा का 'रेगिस्तान में खरगोश', अलका पाठक का 'इनसान का बेटा' तथा हरीश तिवारी का 'मैली मुंबई का छोक्रा लोग' भी कुछ अलग ढंग के बाल उपन्यास हैं। योगेंद्रदत्त शर्मा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रेगिस्तान में खरगोश' (2007) उपन्यास में एक छोटे बच्चे की कहानी है जिसके मन में हमेशा आसपास की दुनिया को देखकर नए-नए सवाल और जिज्ञासाएँ उठती रहती हैं। उसके सवालों के जवाब देनेवाला कोई नहीं है। लेकिन जब वह एक बार घूमने के लिए अपनी मौसी के पास देहरादून गया तो उसे मौसी में एक ऐसी मित्र दिखाई पड़ी, जो शायद उसकी बाल कल्पनाओं को समझ सकती थी और उससे अनोखे ढंग से बात कर सकती थी। बच्चे के मन की कई उलझनें सुलझती हैं और जब वह लौटकर घर जाता है तो वह एक बदला हुआ बच्चा होता है। उसकी दोस्ती तब एक खरगोश से होती है। योगेन्द्रदत्त शर्मा ने इतनी मासूमियत से इस उपन्यास का ताना-बाना बुना है कि हर बच्चे को यह एकदम अपना सा उपन्यास लगेगा।

अलका पाठक का 'इनसान का बेटा' भी छोटे बच्चों के लिए लिखा गया अपने ढंग का अद्भुत बाल उपन्यास है। अलका पाठक समर्थ कहानीकार और व्यंगकार हैं, पर इधर बच्चों के लिए भी उन्होंने कुछ अच्छी कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। इनमें 'इनसान का बेटा' (1998) तो इतना रोचक और बाँध देनेवाला उपन्यास है कि इसका एक-एक शब्द बच्चों के मन में उतरता जाता है। उपन्यास का नायक है बाबू। यानी कथावाचिका का अपना बेटा। बाबू थोड़ा नटखट, थोड़ा चंचल है लेकिन समझदार भी तो कम नहीं है। फिर भी रोज उसकी एक से एक नई शरारतें सामने आती हैं और ममतामयी कथाकार माँ किस लाड़ से उसकी उलझनों को सुलझाती और उसे भला बच्चा बनने की राह दिखाती है, यह सब इतने मजेदार ढंग से इस उपन्यास में वर्णित है कि बच्चे इसे पढ़ते-पढ़ते लोटपोट हो जाएँगे। साथ ही खुद उन्हें अपनी छोटी-छोटी शरारतें याद न आएँ, ऐसा हो भी नहीं सकता। हिन्दी में छोटे बच्चों के लिए लिखे गए उपन्यास अधिक नहीं है। इस लिहाज से 'इनसान का बेटा' सचमुच एक अनोखा और यादगार बाल उपन्यास है, जिसे बार-बार पढ़ा जाएगा और वर्षों तक याद रखा जाएगा।

अभी हाल में, अरसे से बच्चों के लिए लिखते आ रहे एक बड़े ही समर्थ और प्रतिभाशाली लेखक हरीश तिवारी का नया बाल उपन्यास प्रकाशित हुआ है 'मैली मुंबई के छोक्रा लोग' (2006)। यह सचमुच हिन्दी बाल उपन्यासों के इतिहास में बहुत कुछ नया जोड़नेवाला एक अद्भुत बाल उपन्यास है, जिसमें मुंबई की ज़िंदगी के सच्चे अक्स हैं। 'मैली मुंबई के छोक्रा लोग' उपन्यास का नायक रोज़-रोज़ दुःख और अपमान के धक्के खाता झोंपड़पट्टी का एक लड़का है, जिसके भीतर आखिर पढ़ने और कुछ कर दिखाने की लौ पैदा हो जाती है। उसके सामने दुःख ही दुःख, अभाव ही अभाव हैं और कल की रोटी तक का ठिकाना नहीं है, लेकिन किताबों के लिए उसका प्यार बढ़ता ही जाता है और आख़िर जब वह अपने जीवन की इस कठिन परीक्षा से गुज़रकर, अपनी प्रतिभा की धाक जमा लेता है, तो लोग भौचक्के रह जाते हैं कि झोंपड़पट्टी की मैली ज़िंदगी के बीच भी क्या प्रतिभा के ऐसे अनोखे फूल खिल सकते हैं, जिनकी सुवास दूर तक फैलती जाती है।

इन पंक्तियों के लेखक के बाल उपन्यास 'गोलू भागा घर से' (2005), 'एक था ठुनठुनिया' (2006), 'चीनू का चिड़ियाघर' (2006), 'नन्हीं गोगो के कारनामे' (2007), और 'खुक्कन दादा का बचपन' (2008) भी इसी दौर में आए हैं। उनके बारे में बाल पाठकों और लेखकों की कुछ भली-भली सी और मूल्यवान प्रतिक्रियाएँ भी उसे मिलती रही हैं। पर उनकी यहाँ चर्चा करना ठीक नहीं लग रहा है।

परंपरागत ढंग की वर्णनात्मक कथा-शैली वाले बाल उपन्यास मौजूदा दौर में भी निरंतर लिखे जाते रहे हैं। इनमें कुछ उपन्यास तो एकदम बँधी-बँधाई या घिसी-पिटी कथा-शैली के कारण बासी और निष्प्रभावी लगते हैं। ऐसे उपन्यासों में कई बार आदर्श इतना अधिक हावी हो जाता है कि लगता है, बचपन का सहज कौतूहल, नटखटपन या शरारतीपन कुछ दब सा गया है। श्रीनिवास वत्स का 'माँ का स्वप्न', ब्रजभूषण का 'सोमू' और बानो सरताज का 'जंगल में मंगल' (1997) ऐसे ही उपन्यास हैं। डॉ0 श्रीप्रसाद का 'अंतू की आत्मकथा' भी पारंपरिक ढंग का लेकिन खासा पठनीय बाल उपन्यास है। इसी तरह मो. साजिद खान का 'गाँव की तसवीर' और रोहिताश्व अस्थाना का 'एक था रमुआ' पारंपरिक ढंग के कुछ ठीक-ठाक बाल उपन्यास हैं, जिनमें 'गाँव की तस्वीर' अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी है।

:: 3 ::

पशु-पक्षियों से बच्चों को स्वभाविक लगाव होता है। लिहाज़ा उनके स्वभाव और प्रेम को शुरू करने वाले कई नायाब उपन्यास गुज़रे कुछ वर्षों में लिखे गए। इनमें बल्लभ डोभाल का 'उस्ताद भूरेलाल' (1996) थोड़ा पारंपरिक ढंग का उपन्यास होने पर भी बड़े रोचक और चटकीले अंदाज में लिखा गया है। उपन्यास एक सहृदय, उदार किस्म के बाबाजी और भूरेलाल नाम के एक निहायत चंचल शरारती चूहे के बीच पनपी एक मजेदार कथा को आधार बनाकर चलता है। उपन्यास पढ़कर समझ में आता है कि आदमी और पशु-पक्षियों के जीवंत संसार का रिश्ता सीधा और एकरेखीय नहीं है, जैसा ऊपर से नज़र आता है।

पंकज बिष्ट के बाल उपन्यास 'भोलू और गोलू' (1994) में सरकस में काम करने वाले एक भालू के बच्चे भोलू और महावत के बच्चे गोलू की दोस्ती है। बड़ी ही प्यारी दोस्ती, जिससे दोनों को ही बड़ी खुशी मिलती है। खासकर भोलू तो गोलू से दोस्ती से पहले एकदम उदास और अनमना रहता है। इतना कि गोलू उसके निकट आया तो उसे देखकर उलटे खीज गया और उसे सबक सिखाने पर उतारू हो गया। पर आखिर भोलू ने गोलू के दिल से प्यार को पहचाना और फिर तो उसके जीवन में एक नया उत्साह और उमंग भर जाती है। सर्कस में अपनी बारी आने पर वह ऐसे-ऐसे कमाल के खेल दिखाता है कि क्या कहें ! अंत में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लू की कोशिशों का ही नतीजा है कि भोलू सर्कस से छूटकर जंगल में जा पहुँचता है। उस जंगल में जो सचमुच उसका अपना और बड़ा घर है। वहाँ चिड़ियों, पेड़ों और हवा से उसकी दोस्ती हो जाती है और अंदाजा लगाया जा सकता है कि अब अपने घर में आ जाने पर, अपनी मस्ती से जीते हुए भोलू कितना ख़ुश है !

दो गधों को केंद्र में रखकर लिखा गया हिमांशु जोशी का तीन तारे' (2000) भी बढ़िया उपन्यास है। उसमें तीन दोस्तों की कथा है। इनमें एक नटखट बच्चा है टिंकू और दो उसके प्यारे-प्यारे दोस्त हैं—गब्बू और नब्बू। चौंकिए नहीं, ये गब्बू और नब्बू गधे के बच्चे हैं। पर इतने प्यारे और मासूम कि इन पर सचमुच बड़ा प्यार आता है। हालाँकि उनके प्यार और दोस्ती की कद्र करने वाले हैं ही कहाँ! सभी तो 'गधे के बच्चे' कहकर उन्हें 'दुर-दुर' करके दूर भगाते हैं। पर टिंकू है कि उन पर जान छिड़कता है। उनके लिए घर में भी झगड़ता है और बाहर भी। फिर तीनों बिछुड़ते हैं, मिलते हैं और एक अज़ीब सी यात्रा पर चल पड़ते हैं, जिसमें कई तरह के कमाल होते हैं। प्रेम जनमेजय ने भी हास्य और व्यंग्य की छटाओं से भरपूर 'नल्लूराम' (1982) उपन्यास लिखा है। उपन्यास का नायक नल्लूराम एक चुस्त और दिलेर पिल्ला है, जो अपनी कमाल की अदाओं से मोहल्ले के बच्चों को छकाए रखता है।

पशु-पक्षियों की दुनिया के इर्द-गिर्द रचे गए बाल उपन्यासों में क्षितिज शर्मा के 'भवानी के गाँव का बाघ' तथा 'पामू का घर' भी बिलकुल अलग ढंग के उपन्यास है। 'पामू का घर' (1997) में पामू हिरन का एक छोटा-सा बच्चा है और पामू का घर है जंगल, जहाँ वह मस्त कुलाचें भरता है। पामू जब छोटा-सा था तो किस तरह उसकी माँ ने उसे जंगल और वहाँ के जानवरों के बारे में बताया, किस तरह उसे जंगल में शिकार करने आए आदमियों से बचना सिखाया, 'पामू का घर' में क्षितिज शर्मा ने सुंदर ढंग से इसका वर्णन किया है। क्षितिज का 'भवानी के गाँव का बाघ' (1994) भी अपने ढंग का अनूठा और बाँध लेने वाला उपन्यास है। क्षितिज ने पहाड़ के ग्राम्य जीवन की कई अनूठी और मनोहारी छवियाँ उपस्थित करने के साथ-साथ बड़ी बारीकी से इस ओर इशारा किया है कि पहाड़ पर बच्चे बाघ के आने के आतंक की छाया में बड़े होते हैं। यह बात उनके मन में बाघ के प्रति भय के साथ-साथ एक खास तरह का रोमांच भी पैदा करती है।

वन और वन्य पशुओं की सुंदरता और सम्मोहन से भरे उपन्यासों में विनायक के 'नदिया और जंगल', 'चाची और चुनौतियाँ' तथा 'चरखी का बेटा' का जिक्र भी जरूरी है। इनमें 'नदिया और जंगल' (2002) तो लाजवाब है। उपन्यास के शुरू में शेर-शेरनी के सौंदर्य और पारिवारिकता का बड़ा ही खूबसूरत चित्र है। शेर और भेड़ियाल की दोस्ती हो जाती है। फिर एक के बाद एक कई प्रसंग घटित होते हैं और घड़ी चाचा ऐसी आदर्श दोस्ती की मिसाल कायम करते हैं, जैसी शायद आदमियों की दुनिया में भी न हो। लेकिन उपन्यास का आखिरी हिस्सा बड़ा करुण है। एक शिकारी दल जंगल में शिकार के लिए आया। शेर-शेरनी का बेटा जंगल उनकी पकड़ में आ जाता है। उसे छुड़ाने के लिए गई शेरनी मारी जाती है। उपन्यास के अंत में बच्चों के साथ बैठा शेर आसमान की ओर मुँह उठाए दहाड़ता है, 'शेरनी तुम कहाँ हो?' तो पूरे जंगल में उसकी करुण पुकार छा जाती है। विनायक के 'चाची और चुनौतियाँ' (2004), 'चरखी का बेटा' (2006) तथा 'नदी किनारे वाली चिड़िया' भी पढ़ने लायक उपन्यास हैं।

कमलेश भट्ट 'कमल' और राकेश चक्र ने भी पशु-पक्षियों के जीवन में झाँकने वाले उपन्यास लिखे। इनमें कमलेश भट्ट 'कमल' के 'तुर्रम' (2006) में एक मेढक और बच्चे की दोस्ती की बड़ी रोचक कथा है। राकेश 'चक्र' ने अपने ढंग के बाल उपन्यास 'बर्फ में डी टू और मिस टी' (2005) में डी टू सुधीर जी के एक प्यारे कुत्ते का नाम है और मिस टी एक बिल्ली का बच्चा है। पुस्तक में न सिर्फ डी टू और मिस टी की प्यारी दोस्ती के नए-नए किस्से हैं, बल्कि पहाड़ों की बर्फ में रहने वाले लेखक सुधीर जी के निराले पशु-प्रेम की भी झलक है।

मौजूदा दौर में बनी-बनाई लीक को तोड़कर अभिव्यक्ति के नए-नए तेवर खोजने वाले उपन्यासों में हरिकृष्ण देवसरे के 'डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू.घना जंगल.कॉम' (2006) की खासकर चर्चा की जा सकती है। यह अपने ढंग का एक निराला बाल उपन्यास है जिसमें पशु-पक्षियों के जरिए कुछ ऐसी बातें कही गई हैं जिनसे आज का आदमी भी बहुत कुछ सीख सकता है। उपन्यास का राजा शेरसिंह हो, लुप्पो लोमड़ी, चीता चौधरी, पतलू हिरन और केशु भालू-ये सभी आधुनिक दुनिया की वैज्ञानिक तरक्की और इंटरनेट के राज से अच्छी तरह परिचित हैं। इसीलिए वे आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रयोग से हिचकते नहीं हैं, बल्कि उनके इस्तेमाल से अपने जंगल को एक आदर्श जंगल बनाने की कोशिश करते हैं। देवसरे जी का यह उपन्यास दिलचस्प है, पर कहीं-कहीं 'मानोटोनस' भी हो गया लगता है। नेशनल बुक ट्रस्ट ने इसे खूबसूरत ढंग से छापा है। इसी तरह देवसरे जी का 'एक और भूत' (2003) नई संवेदना और समकालीन बोध से जुड़ा रोचक उपन्यास है। इस कालखंड के मनोरम कल्पना और फंतासी से जुड़े बाल उपन्यासों में समर्थ कथाकार अमर गोस्वामी द्वारा एक छोटे से चूहे को नायक बनाकर लिखे गए 'शाबाश मुन्नू' (2003) की भी चर्चा की जानी चाहिए। उन्होंने इस उपन्यास में लोककथाओं वाली शैली को ही एक नया अंदाज देकर अपनाया गया है। इससे अमर गोस्वामी के इस छोटे-से बाल उपन्यास में अनूठा रस आ गया है।

हिन्दी उपन्यास के गौरव युग में विज्ञान फंतासी पर आधारित कई अच्छे बाल उपन्यास लिखे गए थे। इस युग में भी विज्ञान और कल्पना के ताने-बाने से बुने गये बाल उपन्यासों की समृद्ध परंपरा नज़र आती है। इरा सक्सेना, डॉ0 शोभनाथ लाल, डॉ0 जाकिर अली रजनीश, सूर्यनाथ सिंह, आर0पी0 सिंह, रमाशंकर आदि लेखकों ने कुछ नए ढंग से विज्ञान फंतासी उपन्यास लिखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इनमें इरा सक्सेना का वैज्ञानिक उपन्यास 'कम्प्यूटर के जाल में' खासी ताज़गी लिए हुए है। डॉ0 शोभनाथ लाल का विज्ञान फंतासी उपन्यास 'सीपियाडेला की सैर' भी बेशक एक अच्छी और याद रह जाने वाली कृति है। इस बाल उपन्यास में सीपियांडेला नाम के ग्रह से आए दो रहस्यपूर्ण लेकिन भोले बच्चों के साथ अंतरिक्ष-यात्रा पर गए राजू की कथा है।

नई पीढ़ी के लेखकों में सूर्यनाथ सिंह, रमाशंकर, ओमप्रकाश कश्यप और आर0पी0 सिंह के विज्ञान-फंतासी बाल उपन्यास भी कुछ अरसा पहले छपे हैं। इनमें सूर्यनाथ सिंह के विज्ञान फंतासी उपन्यास 'बर्फ के आदमी' (2007) में कल्पना की ताजगी और गुंफ कहीं अधिक हैं। उपन्यास में मम्मी पापा के साथ सरिस्का अभयारण्य में घूमने गया तनमय एक अनोखे ग्रह पर जा पहुँचता है, जहाँ बर्फीला मौसम और बर्फ के आदमी हैं। वहाँ के वैज्ञानिक विकास और वातावरण की बड़ी ही अनोखी कल्पना 'बर्फ के आदमी' में है।

:: 4 ::

बच्चे ऐसे उपन्यासों को बहुत पसंद करते हैं जिनके केंद्र में बच्चे हों। बच्चों की शरारतें, खेल-कूद और जमकर धमा-चौकड़ी हो या फिर किसी और तरह के मजेदार और हैरतअंगेज़ कारनामे हों। उन्हें पढ़कर बाल पाठकों को भी जैसे कुछ नया कर गुजरने की ऊर्जा और ताजगी मिलती है। कुछ और नहीं तो हँसाते-हँसाते लोटपोट कर देने का गुण तो ऐसे उपन्यासों में होता ही है, जिससे बच्चे अपनी बहुत-सी मुश्किलें और तनाव भूल जाते हैं और फिर से तरोताजा हो जाते हैं। विश्व की सभी भाषाओं में ऐसे बाल उपन्यास बहुत लिखे गए हैं और अब भी निरंतर लिखे जा रहे हैं। पर हिन्दी में जाने क्यों ऐसे उपन्यासों का टोटा है। फिर भी अभिलाष वर्मा का 'गोल्डी सिल्विया के कारनामे', रतन शर्मा का 'काजू और किशमिश', गुलजार का 'बोसकी के कप्तान चाचा' और 'बोसकी का कौआनामा', प्रदीप पंत का 'चंदू-नंदू की हैरानी वाली हरकतें', रमेश दवे का 'करतब लंबू द्वीप में', राकेश चक्र का 'कंजूस गोन्तालू' तथा रामनरेश उज्ज्वल का 'हाँकूजी' ऐसे उपन्यास हैं बच्चे जिनका भरपूर मजा लेंगे।

इनमें अभिलाष वर्मा का 'गोल्डी सिल्विया के कारनामे' (2000) खासा दिलचस्प है। इसलिए कि इसके किशोर पात्र गोल्डी और सिल्विया टाइप्ड नहीं, सचमुच बड़े जीवंत पात्र हैं। उनका वर्णन भी लेखक ने इतने दिलचस्प अंदाज में किया है कि बार-बार इन नटखट पात्रों की शरारती मुद्राएँ और शक्लें उपन्यास से निकालकर आँखों के आगे नाचने लगती हैं। रतन शर्मा के उपन्यास 'काजू और किशमिश' (2000) में भी दो शरारती बच्चों राजू और किशमिश की शरारतों का किस्सा ही है। राजू अपनी बहन किशमिश से कोई साल भर बड़ा है। पर शरारतों के मामले में दोनों में से कोई कम नहीं है। इस बाल उपन्यास की खासियत यह है कि काजू और किशमिश की ये शरारतें खुद उनकी माँ बड़े सहज आत्मकथात्मक लहजे से बयान करती हैं। इसलिए उसमें स्नेह और ममता का बल आ गया है। फिर काजू और किशमिश की मन को मोह लेने वाली तोतली बातें और सरल अदाएँ! भला उन्हें कौन भूलना चाहेगा? लिहाजा रतन शर्मा का 'काजू और किशमिश' बेशक याद रह जाने वाला एक बढ़िया बाल उपन्यास है।

पर गुलजार का 'बोसकी के कप्तान चाचा' (1986) इन सबसे अलग हटकर लिखा गया सचमुच निराला उपन्यास है। उपन्यास इतने जोरदार लहजे में लिखा गया है कि बच्चे इसके शब्द-शब्द का पूरा आनंद लेंगे। इस उपन्यास की भी कथा छोटी-सी है, पर बात कहने का अंदाज बड़ा गजब का है। जिस 'जयहिंद चाल' की यह कहानी है, उसी में ऊपर कप्तान चाचा रहते हैं जिनकी 'चाल' के बच्चों से गहरी दोस्ती है। हालत यह है कि न तो कप्तान चाचा बच्चों के बगैर रह पाते हैं और न बच्चों को ही कप्तान चाचा के बगैर चैन पड़ता है। एक कौए पर लिखा गया गुलजार का 'बोसकी का कौआनामा' (2003) भी उनके और बाल उपन्यासों की तरह ही एक अनोखी कथाकृति है।

प्रदीप पंत और रमेश दवे ने भी बच्चों के लिए लीक से हटकर उपन्यास लिखे। इनमें प्रदीप पंत का 'चंदू-नंदू की हैरानी वाली हरकतें' (2006) उनका पहला, लेकिन खासा दिलचस्प बाल उपन्यास है। रमेश दवे का 'करतब लंबू द्वीप में' (2000) फंतासी उपन्यास है, जिसमें सचमुच अनोखा रस और रोमांच है। हिन्दी में विशुद्ध हास्य की छटा वाले बाल उपन्यास बहुत कम हैं। यहाँ तक कि ऐसे बाल उपन्यास भी अधिक नहीं हैं जिनमें बीच-बीच में हास्य के मजेदार छींटे हों। इस लिहाज से रामनरेश उज्ज्वल का पहला बाल उपन्यास 'हाँकू बाबा' याद रह जाता है।

मौजूदा दौर में जासूसी बाल उपन्यासों की धारा उतनी समृद्ध नज़र नहीं आती, जितनी गौरव युग में थी। तो भी कई अच्छे बाल उपन्यास इस युग में भी दिखाई पड़ते हैं, जो विकास युग के उपन्यास-लेखन को निश्चय ही अधिक समृद्ध करते हैं। इनमें संजीव जायसवाल 'संजय', जाकिर अली रजनीश, कमला चमोला, शकुंतला वर्मा, पी0आर0 शुक्ल और रमाशंकर के बाल उपन्यास वाकई ध्यान आकर्षित करते हैं। बेशक जासूसी उपन्यास लिखने में संजीव जायसवाल 'संजय' को खासी महारत हासिल है। इधर काफ़ी सक्रियता से लिख रहे संजीव जायसवाल के 'हवेली', 'लाल बंगला' और 'आपरेशन डम-डम डिगा-डिगा' में जासूसी कारनामों का रोमांच है। पर संजीव का संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण जासूसी बाल उपन्यास 'हवेली' (2001) है, जिसमें एक के बाद एक अजीबोगरीब घटनाएँ घटती हैं। कभी-कभी अचानक घुँघरुओं की आवाज़ आती। एक काली बिल्ली उछलती और सब गड़बड़ हो जाता। अंत में बड़े कौतुकपूर्ण ढंग से सारा रहस्य खुलता है। ज़ाकिर अली 'रजनीश' का 'हम होंगे कामयाब', में भी बच्चों के साहस और सूझ-बूझ की अनूठी कथा है। पी0आर0 शुक्ल का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास 'जासूस परमचंद के कारनामे' भी पढ़ने लायक है। इसी तरह बच्चों की क्रियात्मक ऊर्जा से भरपूर इधर के जासूसी उपन्यासों में कमला चमोला के 'जासूसों की जासूस' और यादवेन्द्र शर्मा 'चंद्र' के 'चतुर चौकड़ी' का भी जिक्र किया जाना चाहिए। बच्चों की रचनात्मक ऊर्जा का जितना बढ़िया और मजेदार इस्तेमाल इन जासूसी बाल उपन्यास में हुआ है, वैसा अकसर कम ही नज़र आता है।

इधर हिन्दी बाल उपन्यासों के कुछ संचयन भी निकले हैं। वे बहुत अच्छे भले ही न हों, तो भी बाल उपन्यासों को लेकर हिन्दी में फिर से थोड़ा उत्साह और सक्रियता नज़र आने लगी है। बच्चों और बाल साहित्य की इस विपुल सर्जनात्मक शक्तियों से भरी विधा की वापसी हिन्दी बाल साहित्य के सेहतमंद होने की निशानी है। इसका निस्संदेह स्वागत किया जाना चाहिए।

545, सेक्टर-29
फरीदाबाद (हरियाणा) पिन-121008

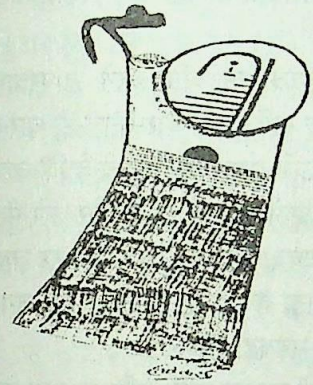

दो गीत

रजनी मोरवाल

पीड़ा का सहभागी कौन ?

सुख में साथी सब होते हैं पीड़ा का सहभागी कौन ?
सुख में हँसते साथ सभी हैं दुख में साथ निभाता कौन ?

लालच की जादूगरनी ने फैलाए है लंबे हाथ
माया की मारी दुनियाँ में छाया भी देती क्या साथ ?
नए दौर के नए चलन में दुनियाँ है भूतों का मौन।

शोरे-शराब, खून-खराबा चारों ओर मची है दौड़
पश्चिम की संस्कृति में फैली अंधे फैशन की है होड़
बाहर पसरी चकाचौंध है अंतर में धुधिंयाते मौन।

बचपन का आँगन

मैं इस आँगन बरसों खेली
यहीं रचा था बचपन मेरा
खेल-खिलौने पनघट-झूले
गुड़ियों की शादी का डेरा।

सखी-सहेली संग सजी थी
यौवन की मतवाली चूनर
अँखियों ने छुप के बाँधी थी
सपनों की कचनारी चादर।

पलकों ने अमराई जाकर
ढूँढ-ढूँढ सावन को हेरा।

बाबुल ने तोरण बँधवाये
सपनों की हो गई सगाई
सखियों ने मंगल गा-गाकर
हल्दी औ' मेंहदी लगवाई

इस द्वारे पर साधा मैंने
साजन संग पहला पग फेरा।

घर-चौखट का पाठ पढ़ाकर
भरे गले से अम्मा बोली
भैया तेरी बहना रानी
अपने ही घर पाहुन हो ली

लो कहार भी सिसक रहे हैं
आँगन छूटा बिटिया तेरा।

डी-301, पार्थ एवेन्यू
ओ.एन.जी.सी. अवनि भवन के पास
चाँदखेड़ा, अहमदाबाद-382424

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मटिल्डा : बचपन का करिश्मा

विजय शर्मा

बच्चे कई दुनिया में एक साथ रहते हैं या यूँ कहा जाए कि रहने को मजबूर होते हैं। एक ओर वे वयस्कों के साथ रहते हैं जिसमें क्रूरता, अत्याचार, धोखाधड़ी, चालबाजी होती है और होते हैं बच्चों को नियंत्रित करने के लिए नियम-कायदे तथा अनुशासन। दूसरी ओर बच्चे अपने हमजोलियों, अपने हमउम्र बच्चों के साथ रहते हैं, जहाँ मासूमियत, कल्पनाएँ और हँसी-खुशी होती है। वयस्कों की दुनिया से दूर और तीसरी दुनिया में बच्चे रहते हैं। यह है उनकी आंतरिक दुनिया जिसके विषय में वे स्वयं ज़्यादा नहीं जानते हुए भी उसकी विभिन्न संवेदनाओं और शक्तियों का अनुभव करते हैं। उनकी इस दुनिया में न तो वयस्कों की कोई रुचि होती है न ही वे इसके विषय में खास जानते-समझते हैं। मनोवैज्ञानिक भले ही उनकी इस दुनिया में सेंध लगाने का प्रयास कर रहे हों पर कुछ खास नहीं जान पाए हैं, क्योंकि हर बच्चे की यह दुनिया बिलकुल अलग है। ऐसी ही एक अनोखी दुनिया में जी रही है एक छोटी बच्ची मटिल्डा।

मटिल्टा एक छोटी-सी, प्यारी-सी और अति संवेदनशील एवं अति तीव्र बुद्धि की बच्ची है। दुर्भाग्य से उसका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ है जहाँ वह पूरे तौर पर मिसफिट है। घर में उसका भाई उसके ठीक विपरीत खाओ-पीओ और मस्त रहो का नमूना है। उसे बहन को तंग करने में खासा मज़ा आता है। माँ जिसे बच्चों की देखभाल करनी चाहिए और बच्चों में अच्छे संस्कार डालने चाहिए, वह अपने आप में एक और नमूना है। दिन-रात बिन्गो खेलने, टीवी पर बकवास सीरियल देखने और टेलीफोन पर गप्प मारने, गॉसिप करने से जीनिया वर्मबुड को फुरसत नहीं है। वह अपने और टीवी के परदे के बीच किसी तीसरे को सहन नहीं कर सकती है। मटिल्डा का पिता हैरी वर्मबुड भी है मगर वह भी नैतिक-अनैतिक की चिंता से ऊपर एक धूर्त व्यापारी है, जो पुरानी कार धोखे से अपने ग्राहकों को बेचता है उसका भेद प्रशासन को मिल चुका है और एफबीआई के जासूस उसकी निगरानी कर रहे हैं। पढ़ने-लिखने को बेकार का काम मानते हुए वह लाइब्रेरी से लार्ड मटिल्डा की एक किताब सिर्फ़ इसलिए नष्ट कर देता है क्योंकि इस किताब का नाम 'मोबी डिक' है। किताब प्रसिद्ध लेखक हरमन मेल्विल की है। इसका उसे भान नहीं है मगर शीर्षक का 'डिक' शब्द उसे अश्लील लगता है और वह उसे नष्ट कर देता है। मटिल्डा के माता-पिता वयस्क हैं मगर प्रौढ़ता के कोई लक्षण उनके अंदर नहीं हैं।

माता-पिता बच्चों के प्रति इतने लापरवाह हैं कि उन्हें मटिल्डा की उम्र याद नहीं है। वे बार-बार उसे चार साल की कहते हैं और वह हर बार उन्हें सुधार कर कहती है कि वह साढ़े छह साल की है। इस पर उसे झूठा कहा जाता है और उसे मुँह बंद रखने का आदेश मिलता है। चुपचाप अच्छे बच्चे की तरह जाकर टीवी देखने का आदेश दिया जाता है। माता-पिता सोचने लगते हैं कि ज़रूर इस लड़की में कुछ गड़बड़ी है।

ऐसे परिवार में कुशाग्र बुद्धि मटिल्डा क्या करे ? वह पढ़ना चाहती है। चुटकी बजाते गणित के भारी भरकम सवाल हल करने में उसे मज़ा आता है। वह मिन्नत करती है कि उसे स्कूल भेजा जाए। उसका पिता एक स्कूल की हेड मिस ट्रंचबुल को एक पुरानी कार बेचने में सफल हो जाता है। बदले में मटिल्डा का उस स्कूल में दाखिला करा देता है। इलाके का यह क्रंचमहाल एलीमेंट्री स्कूल भी अपने ढंग का अनोखा स्कूल है। हेड मिस्ट्रेस ओलंपिक की पूर्व खिलाड़ी है। उसे हैमर थ्रो में मेडल मिला है। वह इतनी क्रूर है कि हैमर की भाँति ही वह बच्चों को भी बाल से पकड़ कर घुमा कर खिड़की के बाहर फेंकती है। इस स्कूल में क्रूरतम सजा का प्रावधान है, बच्चों को एक संकरी अलमारी में सीधे खड़े करके बंद कर देना। इस अलमारी की भीतरी दीवालों पर नुकीली कीलें और काँच के तीखे टुकड़े लगे हुए हैं। बच्चे के जरा भी हिलने डुलने की गुंजाइश नहीं है। इसमें बंद होने की कल्पना मात्र से बच्चों के भीतर होने वाली दहशत की कल्पना कठिन नहीं है। वयस्कों की इसी क्रूर दुनिया के बरबक्स बच्चों की एक और दुनिया है। वे बड़ों से भयभीत हैं मगर उनमें आपस में भाईचारा है। वे एक दूसरे को बड़ों के अत्याचार से बचाने के लिए एकजुट हैं। सजा पाने की परवाह न करते हुए भी शरारत करने वाले अपने साथी का नाम बताने को राजी नहीं हैं। वे ज़िंदगी की छोटी-छोटी खुशियों का मज़ा उठाते हैं। बात-बात पर हँसते हैं। क्रूरता का सामना अपनी मासूमियत और शरारतों से करते हैं।

इसी स्कूल में मटिल्डा की क्लास टीचर मिस जेनीफर हनी है। यह प्यारी-सी टीचर बच्चों को बहुत प्यार करती है मगर बच्चों को हेड मिस्ट्रेस की क्रूरता से नहीं बचा पाती है। कारण वह स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे भयभीत है। वह बच्चों को समझती है। उसे ही सबसे पहले मटिल्डा की प्रतिभा का पता चलता है और वह हेड मिस्ट्रेस तथा मटिल्डा के माता-पिता से इसकी चर्चा करना चाहती है। मगर कोई उसकी बात नहीं सुनता है। आगे चलकर मटिल्डा की बहादुरी मिस हनी में भी साहस का संचार करती है। इसीलिए जब अंत में चबुल उसकी कलाई मरोड़ कर दोबारा उसका हाथ तोड़ने की बात ती है तो वह अपना हाथ छुड़ाकर कह पाती है, 'अब मैं सात ल की नहीं हूँ, ऑन्ट ट्रंचबुल'। मटिल्डा मिस हनी को उसका ायज़ प्राप्य दिलाने में में कामयाब रहती है।

हम सबके भीतर दुनिया बदलने की असीमित शक्ति है। र वयस्क होने पर हम उसे भुला बैठते हैं। ज़िंदगी में हार मान ते हैं। मिस हनी भी मान बैठी है कि उसे इसी तरह निरीह वन बिताना है। मटिल्डा के रूप में उसे एक प्यारा साथी मिलता जिससे वह अपनी ज़िंदगी के कई पहलू साझा करती है। इसी च मटिल्डा को अपनी टेलेकाइनेटिक (वह यह नाम नहीं जानती शक्ति का पता चलता है। पहले यह शक्ति आकस्मिक और टिल्डा के हाथ के बाहर होती है। शीघ्र ही वह अभ्यास और दृढ़ ा शक्ति से इसे वश में कर लेती है। अब वह अपनी इस तरिक शक्ति का मनचाहा उपयोग कर सकती है। अपनी, मिस नी तथा स्कूल के अन्य बच्चों की कई समस्याओं का चुटकी ाते समाधान कर देती है। मिस ट्रंचबुल को भी स्कूल से भागने र मजबूर कर देती है। इस तरह यह छोटी बच्ची अपनी सूझ-बूझ र विशिष्ट शक्ति से परिस्थितियों को मनचाहा मोड़ देने में ामयाब रहती है। वैसे बाद में इस शक्ति का उपयोग वह मात्र टे-मोटे कामों, जैसे अलमारी से किताब निकालने के लिए ही रती है।

नॉर्वेजियन माता-पिता की संतान रोअल डाल का जन्म 16 में हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध में घायल होने के बाद लीबिया फाइटर पायलेट के रूप में भी काम किया। विंग कमांडर के पद पहुँचने वाले रोअल डाल ने सेना में रहने हुए ही कहानियाँ खनी शुरू कर दीं। ये कहानियाँ पहले अमेरिका की विभिन्न ुख पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही थीं, बाद में किताब के रूप भी प्रकाशित होने लगीं। जल्द ही वे बेस्ट सेलर होने लगीं। कई हानियों का टेलीविजन पर नाट्य रूपांतरण भी हुआ। 'बॉय' तथा डंग सोलो' नाम से दो भागों में उसकी आत्मकथा भी उपलब्ध। उनके सत्तरवें जन्मदिन पर उनके सम्मान में 1986 में वाइकिंग शन ने 'टू फेबल्स' प्रकाशित की। उनकी मृत्यु 1990 में हुई ु अपनी कहानियों के साथ वे सदा पाठकों को याद रहेंगे।

इसी ब्रिटिश उपन्यासकार, कहानीकार तथा स्क्रीनप्ले लिखने रोअल डाल ने बच्चों के लिए बहुत सारी बेस्टसेलर किताबें हैं। 'जेम्स एंड द जायन्ट पीच', 'चार्ली एंड द चॉकलेट टरी', 'द विचेज', 'मटिल्डा' आदि बच्चों के लिए उनकी प्रसिद्ध तबें हैं। उनकी किताबें मनुष्य के श्यामपक्ष को बड़ी शिद्दत से उभारती हैं और हँसी-हँसी में बड़ा संदेश दे जाती हैं। वह अपने डार्क ह्यूमर के लिए जाने जाते हैं। 'चार्ली एंड द चॉकलेट फैक्टरी' तथा 'मटिल्डा' पर लोकप्रिय फिल्में बनीं जिन्हें दर्शकों के साथ-साथ फिल्म समीक्षकों ने भी सराहा। उन्हीं की किताब 'मटिल्डा' पर इसी नाम से डैनी डेविटो ने फिल्म बनाई है। डैनी डेविटो एक प्रतिभाशाली बहुगुण संपन्न कलाकार है। उनको न केवल उत्तम अभिनय के लिए जाना जाता है वरन एक कुशल फिल्म निर्देशक के रूप में भी उनकी ख्याति है। उन्होंने बड़ी खूबसूरती से मटिल्डा किताब को रूपहले पर्दे पर रूपांतरित किया है। पहली बार देखने पर यह भले ही एक सामान्य-सी फिल्म लगे। लेकिन दूसरी बार ध्यान से देखने पर मनोवैज्ञानिक सूझ और गहराई तथा खूबसूरती का अंदाजा होता है। एक क्लासिक की यही विशेषता होती है। उसे जितनी बार पढ़ा या देखा जाए उसमें निखार आता जाता है। नई-नई बातें दिखाई पड़ती हैं। इसीलिए इस किताब और फिल्म को क्लासिक का दर्जा दिया जा सकता है। मटिल्डा के किरदार में मारा विल्सन ने कमाल का अभिनय किया है। इसके लिए उसे यंग स्टार अवार्ड प्राप्त हुआ। बच्ची तथा अन्य बच्चों से इतना बेहतरीन अभिनय करा ले जाने के लिए डैनी डिविटो तारीफ़ के काबिल हैं। फिल्म में वे पिता हैरी तथा कथावाचक की भूमिका में भी सर्वोत्तम प्रभाव डालने में सफल हुए हैं। माँ जीनिया की भूमिका में रिया परमैन ने बहुत प्रामाणिक अभिनय किया है। भोली सुकुमार और सुंदर मिस हनी के लिए एम्बर्थ डेविट्ज का चुनाव सटीक है। मटिल्डा के भाई माइकेल 'मिकी' वर्म₃ड के लिए ब्रायन लेविनसन तथा अन्य चरित्रों के लिए भी अनुकूल अभिनेताओं का चुनाव इस फिल्म की विशेषता है।

मटिल्डा के आसपास के वयस्क हमें अपने जीवन में खूब देखने को मिलते हैं। हम स्वयं भी अक्सर जाने-अनजाने में वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा इस फिल्म के विभिन्न वयस्क किरदार करते हैं। यह बात दीगर है कि फिल्म में इसे फिल्म और हॉलीवुड की शैली म बढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शित किया गया है। साथ ही इसमें हास्य और व्यंग्य की चाशनी भी मिलाई गई है। यह हास्य व्यंग्य कहीं भी भोंडा, भदेस और फूहड़ नहीं होता है। हमारे आसपास ऐसे शिक्षक-शिक्षिकाओं की कमी नहीं है जो मिस ट्रंचबुल की भाँति छात्रों को मुसीबत मानते हैं। भले ही अपनी इस दिली भावना को वे सार्वजनिक रूप से उजागर न करते हों। ट्रंचबुल को वही स्कूल अच्छा लगता है जिसमें बच्चे न हों। वह न केवल देखने में भयानक और राक्षसी जैसी है वरन उसका एक एक काम-चलना, बोलना, खाना-पीना सब भयानक और राक्षसी जैसा है। उसका पक्का विश्वास है कि गुरु से ज़्यादा उसका सोटा पढ़ाता है। वह मानती है कि वह वयस्क है, बच्चे छोटे हैं अतः वह सही है, वे गलत हैं। उसे सजा देने का अधिकार है और सजा झेलना उनका कर्तव्य है। पाम फेरिस ने मिस ट्रंचबुल के चरित्र को किताब से निकाल कर पर्दे पर पूरी तौर से साकार कर दिया है। शूटिंग के बाद भी यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाम फेरिस काफ़ी समय तक अपना रूप नहीं बदलती थी और बच्चों को तंग किया करती ताकि वे उससे भयभीत रहें और जब अगली बार शूटिंग हो तो वे उसके संग वैसे भी डरता हुआ अभिनय करें।

इस फिल्म को मात्र मनोरंजन का नाम देकर नहीं छोड़ा जा सकता है। ऐसे माता-पिता की भी हमारे समाज में कमी नहीं है जिनके पास अपने बच्चों के लिए समय नहीं है और जो बच्चों के कौतूहल, उनकी जिज्ञासा से उकताए रहते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि सीखने की प्रक्रिया तभी तक चलती है जब तक कोई व्यक्ति जिज्ञासु है, प्रश्न पूछता है। जिस दिन आदमी प्रश्न पूछना बंद कर देता है उसका कौतूहल मर जाता है, उसी पल से उसका सीखना समाप्त हो जाता है। एक तरह से उसकी मृत्यु हो जाती है। हम वयस्क बच्चों की इस मृत्यु के जिम्मेदार हैं। कुछ समय न होने का बहाना और कुछ स्वयं की अज्ञानता हमें बच्चों के प्रश्न पूछने की आदत से खिजाती है। उनके मासूम प्रश्नों का उत्तर वयस्कों को मालूम नहीं होता है और वे चिढ़ कर या तो उनके प्रश्नों की उपेक्षा करते हैं या फिर प्रश्न पूछने से रोकते हैं। दोनों ही स्थितियों में बच्चे जल्द ही हताश हो जाते हैं और उनकी प्रश्न करने की इच्छा मर जाती है। उनका सीखना दम तोड़ देता है।

मटिल्डा भाग्यशाली है, उसे मिस हनी जैसी हमदर्द टीचर मिली है और वह किताबों से प्रेम करती है। उसके आसपास के वातावरण को देखकर आश्चर्य होता है कि वह किताबों की ओर कैसे मुड़ी। किताबों का चस्का बचपन में लगता है और ताउम्र साथ देता है। अक्सर किताबों में रुचि रखने वाले बच्चों को कोई गाइड करने वाला नहीं होता है कि वे क्या पढ़ें और क्या न पढ़ें। किताबों के जंगल में घुसकर राह बनाने का अपना सुख है मगर समय भी बरबाद होता है। जिन बच्चों को कोई सही दिशा निर्देश मिल जाता है वे कम समय में ज़्यादा अच्छी किताबों का आनंद उठा सकते हैं। मटिल्डा ने बहुत कम उम्र में वयस्कों की किताबें भी पढ़ डाली हैं लेकिन फिल्म के अंत में मिस हनी और वे मिल कर बच्चों की किताबें ही पढ़ते दिखाई देते हैं। इससे दोनों के मासूम होने को प्रतीकात्मक ढंग से दिखाया गया है। बड़े-बड़े काम करने वाली मटिल्डा अंततः छोटी बच्ची ही है। उसे लाड़-प्यार, दुलार की आवश्यकता है। उसे सही देखभाल चाहिए, उसे एक साथी की आवश्यकता है। कितने बच्चे ऐसे होते हैं जिन्हें यह सब मिल पाता है ?

फिल्म कटाक्ष करती है कि वयस्क चाहे वह अभिभावक हों अथवा स्कूल के लोग, वे बच्चों के संग कैसा व्यवहार करते हैं। यह शिक्षा विमर्श उत्पन्न करती है, शिक्षा के नाम पर बच्चों को क्या मिलता है, कैसे मिलता है, इस पर प्रकाश डालती है। पिता की ठगी की सजा बेटी को मिलती है। हेड मटिल्डा से बदला लेती है। क्या आये दिन हम ऐसी घटनाएँ देखते–सुनते, पढ़ते नहीं हैं ? क्या इसी डर से हमारे यहाँ पेरेंट-टीचर एसोसियेशन का बीज दिखावा मात्र बनकर नहीं रह जाते हैं। जो संस्था बच्चों के विकास और प्रगति के लिए कायम होनी चाहिए वह मात्र मखौल बनकर रह गई हैं। मटिल्डा फिल्म के कथ्य और संवाद दोनों जहाँ मनोरंजन करते हैं वहीं सोचने विचारने को प्रेरित भी करते हैं। फिल्म का संगीत पक्ष बड़ा मनोरम है। इसमें कॉमेडी के साथ-साथ एडवेंचर का भरपूर मसाला है। कल्पना की उड़ान है तो जादुई और करिश्माई तत्व भी है। इस साफ़ सुथरी फिल्म को परिवार की दो तीन पीढ़ियाँ एक साथ बैठकर देख सकती हैं और आनंद उठा सकती हैं।

निर्देशक फिल्म विधा की माँग के अनुसार कहीं-कहीं पर किताब से विचलित भी होता है। मगर मूल आत्मा को नहीं छेड़ता है। वह ज्यों कि त्यों सुरक्षित है। छोटे मोटे परिवर्तन हुए हैं जैसे किताब में मटिल्डा की जिस किताब को उसका पिता नष्ट करता है वह हरमन मेलविल की मोबी डिक न होकर जॉन स्टीनबेक की रेड पोनी है। इसी तरह मिस ट्रंचबुल के स्कूल से पलायन के बाद फिल्म में मिस हनी स्कूल की प्रमुख बनती है मगर किताब में ऐसा नहीं है। वहाँ एक अन्य शिक्षिका यह पद संभालती है। जब मिस ट्रंचबुल मिस हनी की क्लास खुद लेने का फैसला करती है तो जो सारा कुछ वहाँ बच्चों और उसके बीच होता है। वह किताब में इतने विस्तार से नहीं है। मगर यहाँ वह मिस ट्रंचबुल और मटिल्डा के बीच एक लंबी प्रतिद्वंद्विता बन जाता है। वह किताब में इतने विस्तार से नहीं है। मगर यहाँ वह मिस ट्रंचबुल और मटिल्डा के बीच एक लंबी प्रतिद्वंद्विता बन जाता है। इस द्वंद्विता में मिस ट्रंचबुल का शारीरिक बल और मटिल्डा की मानसिक शक्ति के बीच मानो प्रतियोगिता हो रही है, ऐसा लगता है। जब मिस ट्रंचबुल एक बच्ची को उसकी चोटी से उठाकर, नचाकर, फेंकती है तो वह किताब में जमीन पर गिरती है और उसे चोट लगती है जबकि फिल्म में उसे चोट नहीं लगती। वह फूलों पर गिरती है और फूल लाकर अपनी टीचर को देती है। किताब में नीग्रो बच्चों को नीग्रो नहीं कहा गया है। वहाँ वह एक मात्र एक छोटी सी बच्ची है। कथानक में हेरफेर फिल्म की माँग है। यह एक फंतासी फिल्म है अतः किताब की गरीब मिस हनी फिल्म में बहुत धनी न होते हुए गरीब भी नहीं हैं और भौतिक रूप से एक आरामदायक ज़िंदगी बिताती दिखायी गई है। मटिल्डा को जब मिस ट्रंचबुल सज़ा देने के लिए अलमारी में बंद होने का आदेश देती है तो मिस हनी उसे बचा लेती है मगर किताब में उसे बंद किया जाता है। किताब में मटिल्डा कई क्लासिक किताबें पढ़ती है और बहुत अच्छा खासा बनाती है। लिखित कहानी ब्रिटेन में घटित होती है जबकि फिल्म में अमेरिका की एफ.बी.आई. कई फ्रेम घेरतीं है। फिल्म चाक्षुष कला है अतः इसमें स्पेशल इफेक्ट का भरपूर उपयोग किया गया है। वह दृश्य मनमोहक है जब मटिल्डा अपनी शक्ति का उपयोग मनाती है और गाना गाकर नाचती हुई विभिन्न वस्तुओं को उनकी जगह से हटाती है।

1996 में बनी इस फिल्म ने जमकर पुरस्कार बटोरे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विल्सन को यंग स्टार अवार्ड, डेनी डिविटो को बेस्ट डायरेक्टर अवार्ड ऑडियंस अवार्ड, स्टारबॉय अवार्ड), डेनी डिविटो को सपोर्टिंग रोल अवार्ड आदि कई पुरस्कार मिले। इसे अन्य कई श्रेणियों में नामित किया गया था। रोअल डाल की किताब पर आधारित स्क्रीनप्ले निकोलस कज़ान ने तैयार किया है।

इस फिल्म के संवाद के क्या कहने। ट्रंचबुल का विचार स्कूल के विषय में बताया जा चुका है। जब जरा मटिल्डा की माँ की बात भी सुनें। जब मिस हनी उसे बताती है कि आपकी बेटी बहुत इंटेलीजेंट है तो वह कहती है, एक लड़की इंटेलीजेंट होकर कहीं नहीं पहुँच सकती है। फिर वह मिस हनी और अपनी तुलना करते हुए कहती है, "खुद पर और मुझ पर नज़र डालो। तुमने किताबें चुनी और मैंने सुंदरता। मेरे पास एक अच्छा घर, एक खूबसूरत पति है और तुम रेंटा बहाते बच्चों को ए0बी0सी0 पढ़ाने की गुलामी कर रही हो। तुम चाहती हो कि मटिल्डा कॉलेज जाए"–और हँसती है।

पिता पुत्री के संवाद का नमूना देखें,

हैरी : किताब ? तुम्हें किताब क्यों चाहिए ?

मटिल्डा : पढ़ने के लिए।

हैरी : पढ़ने के लिए ? तुम किताब क्यों पढ़ना चाहती हो तुम टीवी के सामने बैठी हो ? ऐसा कुछ नहीं है जो किताब में मिलता है और टीवी से नहीं मिल सकता है।

इसी तरह जब मटिल्डा पिता को ठगी करने से रोकना चाहती है, उसका पिता कहता है, 'मैं स्मार्ट हूँ, तुम डम हो, मैं बड़ा हूँ तुम छोटी हो, मैं सही हूँ, तुम गलत हो। और इसके विषय में तुम कुछ नहीं कर सकती हो। बस बात खतम, "ट्रंचबुल के लिए समस्या पैदा करना गलती है और उसने यह कभी नहीं किया। उसके अनुसार बच्चे गन्दी चीज़ हैं। स्कूल में क्लास के बोर्ड पर उसके द्वारा लिखा है : यदि तुम मज़े कर रहे हो तो तुम सीख नहीं रहे हो।' उसकी समझ में नहीं आता है कि बच्चे बड़े होने में इतना समय क्यों लगाते हैं। उसे लगता है कि शायद जानबूझ कर उसे तंग करने के लिए वे ऐसा करते हैं। वह मिस हनी को धमकी देते हुए कहती है–"तुम्हें बच्चों को स्पेलिंग सिखाने के लिए कहा गया है, कविता नहीं।" मिस ट्रंचबुल की भाषा सुनकर मुझे स्कूल टीचर्स के एक सेमीनार की याद आती है। इस सेमीनार के दौरान सेमीनार संचालक ने एक एक्टीविटी के दौरान टीचर्स से कहा कि वे ईमानदारी से उन शब्दों की लिस्ट बनाएँ जो वे बच्चों के साथ प्रयोग करते हैं। उन्हें यह भी कहा गया कि इस सूची को किसी से शेयर करने की बाध्यता नहीं है। लिस्ट बनाने के बाद कुछ शिक्षकों ने शेयर किया और करीब-करीब सब शर्मिन्दा थे कि वे इस तरह की शब्दावली का प्रयोग करते हैं जिन शब्दों का उच्चारण करने से आज उनका माथा झुक रहा है।

इस फिल्म से संबंधित कुछ बातें जानना मजेदार होगा। फिल्म में मिस हनी के पिता मैग्नस का फोटो असल में लेखक रोअल डाल का फोटो है। मिस हनी के बचपन की अपनी गुड़िया का नाम लिसी डॉल है। असल में यह नाम कहानीकार की पत्नी का नाम है। डाल ही डॉल बन गया है। मारा विल्सन जब मटिल्डा की भूमिका कर रही थी उसी दौरान उसकी असली माँ कैंसर से गुजर गई परंतु वह शूटिंग करती रही और इसे देखकर सब चकित थे। पहले केयली और ईटन टाईडॉल को मटिल्डा के रोल के लिए चुना गया था मगर दोनों को फ्लू और बुखार हो गया और यह भूमिका मारा विल्सन की झोली में आई। अगर किसी ने यह फिल्म अभी तक नहीं देखी है तो उसे मटिल्डा अवश्य देखनी चाहिए। खुद भी देखें, अपने बच्चों को दिखाएँ, अपने मित्रों को दिखायें। और तो और उनके बच्चों को भी दिखाएँ। सब स्कूलों और सब शिक्षक-शिक्षिकाओं और स्कूल प्रमुख को अवश्य देखनी चाहिए।

151, बाराद्वारी, जमशेदपुर-831001

कथा

बदला

अर्पिता श्रीवास्तव

मनुष्य की हैवानियत से चहुँ ओर हाहाकार मचा था। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-नाले, पहाड़-पर्वत और सागर सभी चिंतित थे। दिन-दिन स्थिति बिगड़ रही थी। जब-जब मनुष्य प्रकृति बचाने के लिए नए-नए देशों के साथ समूह बनाता, सम्मेलन करता, तब-तब कुदरत की हसरत भरी निगाहें इस प्रतीक्षा में रहती कि दुःस्वप्न के दिन बहुरेंगे, पर हर रोज़ उसके कंधे का बोझ बढ़ता चला जा रहा था। थक-हार कर प्रकृति सब के साथ पहुँची प्रकृति-नियंता के पास। वहाँ अपने दर्द और शोषण की अर्ज़ी डाली। काफ़ी सोच-विमर्श के बाद फैसला लिया गया कि जिस तेज़ी से मनुष्य प्रकृति का शोषण कर रहा है उस गति से प्रकृति सब के साथ मिलकर कहर बरपाए। मौसम-रूपी पहरेदार को आदेश मिला कि मौसम-चक्र के पहिये को ऐसा घुमाये कि आदमी हाय-हाय करने लगे.... जैसे मनुष्य ने अपने विकास के लिए जंगल में अनगिनत वृक्षबलि दी है, वैसे ही गाँव, शहर कस्बों में नरबलि दी जाने लगी।

एस.एफ.-3-141, बाराद्वारी सुपरवाइज़र फ्लैट्स,
साक्ची, जमशेदपुर-821001 (झारखंड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री प्रकाश शुक्ल की कविताएँ

(बनारस में प्रत्येक वर्ष 19 जनवरी को गंगा के बीचों-बीच उभरी रेत में शिल्पकारों द्वारा मूर्तियों का निर्माण किया जाता है। ये 'रेत शृंखला की कविताएँ' यहीं से प्रेरित हैं, लेकिन यहीं तक सीमित नहीं हैं। यहाँ रेत अपनी विविध छायाओं में मौजूद है, समूचे परिवेश के साथ-लेखक)

1. आज़ादी

यह नहीं है रेत
रेत आज़ादी है।

खदेड़ा गया था जिस दिन मधुवन से
देह के उपवन से उजाड़ दिये गये थे नन्हें नन्हें
अनगढ़ पौधे
त्रिशूल व गदा की गर्जन से शुद्ध की जा रही थी नागरिकता
कोमल कोमल हाथों को झुंड में बदलने को मजबूर किया जा रहा था
सड़कों पर चक्रवात की तरह घुमड़ रही थी परंपरा

यह रेत ही थी
जिसने नोक भर की जगह दी थी
देह की गोपनीयता में
सिकुड़ी हुयी राष्ट्रीयता के ख़िलाफ़ !

ये जो भारतीयता के रक्षक हैं
जो हर विहान के साथ रचते हैं एक नयी भाषा
जो घोड़ा घास की तरह अपनी जड़ों में अपनी आंत को सूंघते हुए
औरों की आँख का पानी चाटते हैं

जिस किसी से बेचैन होते हैं
तो यह रेत ही होती है
स्वाधीन रेत

आख़िरकार और कितना सोखेंगे
नदी को
उसकी पवित्रता के नाम पर !

2. रेत पसीना

पानी अपना रंग बदलता है
रेत नहीं

पानी में जो मिलता है
वह पानी पानी हो जाता है
पतनार
रेत में जो मिलता है
रत हो जाता है
रतनार !

रेत होना नम होना है
नम होना
अंकुरित होना है
अपनी शुष्कता के ख़िलाफ़

रेत एक व्याप्ति है
जिसके बगैर कुछ भी व्याप्त नहीं है
रेत भी नहीं।

खुद समुद्र को जब व्याप्त होना होता है
कुछ कुछ मानवीय होना होता है
तब रेत होता है

जिसे हम समुद्र कहते हैं
असल में वह रेत ही है
रेत पसीना
जैसे जिसे हम मनुष्य कहते हैं
वह असल में हमारा श्रम होना है
श्रम से थोड़ा ज़्यादा श्रम होते जाना !

3. एक विनम्र अभिवादन

रेत हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रतीली नहीं

मेरे ऊपर से बहते हैं नाले
मेरे सीने से चिपकी हैं लताएँ
मेरे कानों से गुजरती है ट्रेन
जर्जर नहीं
निर्झर हूँ!

प्यार देती हूँ सभी को
और दे जाती हूँ
सभी में प्यार

हवा में जितनी ही उड़ती हूँ
पानी में जितनी ही बहती हूँ
आग में जितनी ही जलती हूँ

भीतर भीतर गलती हूँ
अपनी धार।

धार मेरी
उधार नहीं
अपनी है

कम नहीं होती धार
पानी के सूखने से
यह कम होती है
यह मानने से
कि पानी उड़ रहा है

मैं रेत हूँ
अपनी तरलता में
एक विनम्र अभिवादन सा फैले
इस विराट में !

4. मोक्षदा ही नहीं

मत करो शहर को कैद नदियों में
नदियाँ जिस दिन शहर को कैद कर लेंगी
शहर कैद होगा कचरे में
कचरा होने तक

नदियाँ भी कभी-कभी विद्रोह करती हैं
न सिर्फ धार ही नहीं धूल भी देती हैं
और जब ऐसा करती हैं
लहूलुहान होती हैं

वे चीखती हैं
चिल्लाती हैं
और विसर्जन के सारे प्रतीकों से छिटक कर
मुक्ति का आवाहन करती हैं

वे सदियों की अवधारणा से मुक्त होना चाहती हैं
मोक्षदा ही नहीं -
सही

वे धरती पर फैल जाना चाहती हैं
उसको खुले में प्यार करती हैं
वे अपनी ही शिराओं को चूमना चाहती हैं
और घने बादलों के बीच
किलकते हुये शिशु से खेलना चाहती हैं
लुकाछिपी का खेल !

वे चाहती हैं कि वे कचरा बनकर नहीं
रेत बनकर बहें
और सागर की ओर लहराती हुयी
प्रकृति के खुले आँगन में
जीवन की तरह बहें ।

5. भाप

नदी
दूर दूर
अलग अलग तटों के साथ बह रही है

नदी का यह बहना
उपहास का नहीं
उपहार का विषय है

दूर तलक फैले
दूर दूर अपने तटों में
नदी अपने पानी को प्यार करती है

नदी अपने वियोग में भी हमारा योग करती है।

जब वह खुद ब खुद योग करने लगती है
भाप बनकर उड़ता हुआ पानी
हमारे आँसुओं के रूप में झरने लगता है
झहर झहर !

हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रास्ते और भी हैं ?

शशि गोयल

चिलचिलाती धूप में एक दफ़्तर से दूसरे दफ़्तर जाते कमल को सड़क के फ़ासले मीलों लंबे लगते। उसे लगता कि सड़क को खींचकर लंबा कर दिया गया है। माथे पर बार बार चुहचुहा आते पसीने को झटकते-झटकते एक ऊब होने लगी थी। पसीने से चिपकी कमीज़ को बार-बार खींचकर शरीर से अलग करता और गरदन झुकाकर फूँक मारकर उसे सुखाने की कोशिश करता। अप्रैल की धूप भी थकान और बेज़ारी से मई-जून की सी लग रही थी। प्यास से गला हलकान होने लगा था। थूक घुटक-घुटक कर और होठों पर जीभ फेर-फेरकर वह अपने को संयत बनाये हुए था। कई दिन से नौकरी की तलाश में भटक रहा था। पेट में अन्न का दाना भी नसीब नहीं हुआ था। जेब में पड़े कुछ पैसे बार-बार छनक जाते थे, पर वे एक चाय लायक भी नहीं थे। आठ आने का चबैना झिक-झिककर ही ठेलेवाले ने दिया, मानो भीख में दे रहा हो। एम्प्लायमेंट एक्सचेंज के दफ़्तर की सीढ़ियों पर बैठकर चबा गया, फिर सामने लगी टंकी पर पानी पी आया था। सामने ही पुराने सहपाठी अरुण को देख खिसियानी हँसी हँसकर बोला, "सुबह का निकला हूँ, बहुत भूख लगी थी, यहाँ कुछ ढंग का दिखायी भी नहीं दिया।"

अरुण ने इधर-उधर देखा, फिर कमल की ओर देखने लगा। कमल ने आँखें झुका लीं। आस-पास बिखरी बहुत-सी दुकानें और ठेले कुछ अधिक ही झूठ को व्यक्त कर गये।

"तुम यहाँ कैसे?" अपने को बातों में मोड़ते हुए कहा। हाथ गीले थे, लेकिन अरुण के सामने मैले-फटे रूमाल को निकालने में हिचक थी। जल्दी से उसके सामने से हट जाना चाहता था, लेकिन अरुण भी वहीं आया था—यह संभव न हो सका। अपनी बेकारी का रोना अरुण के सामने रोना उसे अच्छा नहीं लग रहा था। अरुण परिगणित जाति का था, परंतु फिर भी उसे अपने से बहुत ऊँचा लग रहा था। वहीं एम्प्लायमेंट एक्सचेंज में ही क्लर्क लग गया था। कम से कम निकम्मा तो नहीं है। एक वह है—वेदांतज्ञ प्रभुनारायण शास्त्री का पुत्र कमलनारायण शास्त्री निकम्मे-आवाराओं की तरह जूते की तलियाँ घिसटाता डोल रहा है। अरुण के कपड़ों से सस्ते ही सही, साबुन की सुगंध तो है। उसके कपड़े तो यूँ ही पानी से पीट-पीटकर धोये और तकिये के नीचे दबाकर सीधे किये गये हैं। पुराने चित्र उसकी आँखों के सामने घूम गये, वह और भी संकोच से भर उठा। कॉलेज के दिनों में महीन कपड़े की चुन्नटदार धोती और सिल्क के कुर्ते के खुले ऊपरी बटनों से झाँकती चौड़ी छाती को कॉलेज की किशोरियाँ तिरछे नयनों से घायल करतीं, तो उसके गोरे गाल रक्तिम हो उठते। परंतु, काले बालों के बीचे बँधी चोटी उसे पोंगा पंडित, पंडित की उपाधि दिलावाती रहती। फिर भी वह लड़कियों के आकर्षण का केंद्र है, यह वह अच्छी तरह जानता था।

"अरे रे सुधा, चोटी पर मत हँस, प्रसाद का नाटक पढ़ा नहीं है क्या? एक चोटी के कारण नंद वंश का नाश हो गया, हम किस खेत की मूली हैं?"

ठी-ठी हँसी के बीच उसे सुनायी देता, "पर क्या करूँ विनीता, एक बार इसे छूने की बड़ी तमन्ना है।"

इन ज़हर बुझे बाणों की चोट से दग्ध घंटों दरवाज़ा बंदकर सोने का अभिनय करता, पलंग पर करवटें बदलता रहता। कई बार शीशे के सामने खड़े हो चोटी पर कैंची चलाने की सोची, पर पिता का रौद्र रूप सामने आ थरथराकर कैंची रखवा देता। एक तो पिता की नज़रों में वह नालायक पुत्र था, क्योंकि न गुरुकुल की पढ़ाई की, न उनके साथ बैठकर पुरोहिताई की। जब कभी पिता से सामना होता, तो पिता का क्रोध से तमतमाता रूप ही सामने आता,

"बाबू साहब बनेंगे , बी0ए0, एम0ए0 की पढ़ाई करके कौन-सा तीर मार लेंगे? संस्कृत ही पढ़ ले, खानदानी धंधा कहीं तो काम आ जाएगा... इतने जिजमान बनाये हैं सब बेकार... कौन पूछेगा? कोई नहीं।"

उन्हें क्या मालूम था कि उन्हीं जिजमानों के घर जाने में उसे बहुत शरम महसूस होती है। छोटा-सा शहर... वे ही गिने-चुने घर.. अधिकांश में उसके दोस्त हैं या स्कूल में पड़ने वाले। वह देखता कि सब लोग बहुत श्रद्धा-आदर से उन्हें बैठाते, लेकिन दान-दक्षिणा लेते समय वह बड़ी दीनता का भाव महसूस करता। उसे लगता कि उसका हाथ नीचा है और देने वाले गर्व से गर्दन अकड़ाकर दे रहे हैं। वह अपने-आपको भिखारी समझने लगता। पिता से कुछ कहा तो नहीं, पर साथ जाने के नाम पर इधर-उधर ग़ायब हो जाता। वे कुछ देर उसका रास्ता देख बुदबुदाते अकेले ही निकल जाते, "बहुत आवारा हो गया है। खूँटे से बँधेगा तो ठीक हो जाएगा।" और उस आवारा खूँटे से एक गाय बाँध दी गयी। लेकिन, वह गाय भी घर का प्राणी ही बनी, उसके अफ़सर बनने के ख़्वाब को नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिगा पायी।

पिता की असमय मृत्यु के पश्चात् उसने सबसे पहले अपनी चोटी से निजात पायी। परंतु उसे तब ज्ञान नहीं था कि उसने किस-किस चीज़ से निजात पा ली है। सामने पैतृक कार्य के अलावा कोई काम-धंधा या आय का साधन नहीं था। घर-घर जाकर दान-दक्षिणा लेने के अलावा पिता कुंडली मिलाते। सारे ग्रहों की चालों को समझाते। कभी छब्बीस गुण, कभी बत्तीस गुण मिलाते, तो वह टेढ़ी निगाह से पिता को देखता रहता, क्योंकि कितने ही बाद में आकर पिता से ही कहते कि आपने तो कहा था कन्या बहुत मृदुभाषी है या जब से आयी है विपत्ति का पहाड़-सा टूट पड़ा है। तब फिर किसी न किसी ग्रह का फेर बता दस-पाँच झटक लेते थे। पर, उनका मुख्य स्रोत था—बलदेव जी के मंदिर में प्रवचन।

प्रातः ही बलदेव जी के मंदिर के नर-नारियों से खचाखच भरे प्रांगण में अपनी सुमधुर और मर्मस्पर्शी आवाज़ के माध्यम से 'श्रीमद्भागवत्' के प्रसंगों को रस से सराबोर कर देते, जैसे जादू-सा फेर दिया हो। मंत्रमुग्ध श्रोताओं के हृदय में जा बैठते। गोपी-विरह-प्रसंग में नारियों के आँसू टपक-टपक कर उनके आँचल भिगो जाते। अपनी वाणी के चातुर्य और ओज के श्रद्धा सुमनों से भरे चढ़ावे की गठरी बाँधकर घर लाते। उसी से हर तरह का नाज, धोती, कपड़ा-घर की हर आवश्यक वस्तु इकट्ठी होती जाती। कमल को कभी भी आवश्यकता ही नहीं रही कि जान पाए कि कैसे घर का खर्च चलता है!

पिता की मृत्यु के पश्चात् धीरे-धीरे माँ के पास जमा नाज, फिर दक्षिणा में आयी रेज़गारी और कपड़े ख़त्म होने लगे। बड़ी बहन तो ख़ैर पिता के सामने ही विदा हो गयी थी, पर छोटी बहन की उम्र की वृद्धि धीरे-धीरे होती जा रही थी। माँ के माथे की लकीरों ने उसके धोती-कुरते में सलवटें डाल दीं। और फिर, रोज़-रोज़ की कलफ़, प्रैस और धोबी की धुलाई से फटते धोती- कुर्ते की जगह दो जोड़ी टैरीकोट की पैन्ट और कमीज़ ने ले ली, चमचमाते पंप शू का स्थान हवाई चप्पलों ने लिया। कॉलेज की ओर जाने वाली सड़क का स्थान नौकरी की खोज ने ले लिया। माँ के बहुत कहने पर पिता के पोथी-पत्रा सँभाले, पर कुछ पल्ले नहीं पड़ा। कथा बाँचने भी गया, परंतु कहाँ था उसकी वाणी में वह रस, जो मंदिर में बैठे श्रद्धालुओं को भाव-विभोर कर दे, वहाँ पर उपस्थित नर-नारियों को कृष्ण की किलकारियों के साथ आह्लादित कर सके; पिता के समान शृंगार रस के वर्णन से समस्त वातावरण को रंगीन कर दे। वह तो कक्षा में पढ़ाते टीचर की तरह भृकुटि तानकर सरटि से एक-एक पंक्ति का अर्थ बताता चला गया था। आठ ही दिन में प्रांगण में दाने के लिए लपकते कबूतरों के अलावा कोई नहीं था। तब से 'श्रीमद्भागवत्' बँधी, तो उसके ऊपर धूल की परतें बनती चली गयीं।

पिता के सामने शुद्ध देशी घी की ख़ुशबू फैलकर आसपास के घरों को ईर्ष्यान्वित कर देती थी। मुहल्ले में और भी तो ब्राह्मणों के घर थे, परंतु किसी घर से इतने पकवानों की महक कभी नहीं आयी। अगर कुछ मुकाबला कर सकती थी, तो दो मकान छोड़कर सेठ जानकीदास की अट्टालिका ही, जिनके घर के नौकर-चाकर भी असली घी खा और तेल चुपड़, चिकनाये रहते थे। परंतु, उसके पिता को देखकर स्वयं जानकीदास भी अपनी गर्दन झुकाते जाते थे। उनके घर के सारे नियमनू-संस्कार प्रभुनारायण शास्त्री करवाते। कमल एक घर को भी न अपना सका। इतने महापंडित का पुत्र होकर भी उसने अफ़सर होने के चक्कर में बचपन में पढ़ी संस्कृत भी भुला दी। काम लायक मंत्रों को भी याद न रख सका, जो छोटी-मोटी पूजा ही करा सकता। पितृ-महाप्रयाण से अफ़सरी एक ओर खिसक गयी और शुरू हुआ दाल-रोटी के प्रबंध का प्रयास।

भन्नाते सिर से घर पहुँचकर उसने अपने को खटिया पर डाल दिया। मुन्ने का रोना और बहन का उसे खिजाते दौड़ना उसे वहशियाना बनाने लगा। उसने चीख़कर उन्हें चुप कराना चाहा—इतनी बड़ी हो गयी है, उजड्ड-सी भाग रही है, परंतु उसकी निगाहें ढीले कुर्ते में भागने से हिलते वक्षस्थल पर गयी, बेबस चुप रह गया। उसके उजड्डपन से ज़्यादा अपने निकम्मेपन का अहसास होने लगा। इतना भी तो नहीं कर पा रहा कि उसे पढ़ने भेज दे। दिन भर आख़िर करे तो क्या? आज अरुण को अपनी व्यथा-कथा कहनी पड़ी, कल विमल को और परसों किसी और को कहना पड़ेगा। सबके बीच वह कितना दीन-हीन हो उठेगा।

कॉलेज में तो नहीं, हाँ स्कूल के दिनों में यही लड़के उसके टिफ़िन को छीनकर चाट-चाट कर खा जाते थे। माँ भी जानती थीं, एकदम से भर देती थीं, "खाने दे लल्ला क्या हुआ?" टिफ़िन वापस लाता, तो माँ द्वार पर ही रखवा देतीं, "न बाबा, न जाने किस-किस का छुआ हुआ होगा।" लाल दहकते कोयले से तप कर ही टिफ़िन घर के अंदर प्रवेश पाता। माँ का संस्कारी मन अभी भी जूतों को स्वीकार नहीं कर पाता है, पर मजबूरी है। घर के बाहर ही जूते उतर जाते और खड़ाऊँ ही अंदर प्रवेश पाती थीं। उसके सहपाठी घर में आते, पर जमील कहीं स्थान नहीं पाता था। उसके लिए माँ अलग से काग़ज़ पर या दोने-पत्तल पर नाश्ता देतीं, तो वह स्वयं संकोच से गड़ जाता था। इस बात पर माँ से बहुत झगड़ा किया, तो उसकी एक अलग चीनी मिट्टी की रकाबी कर दी। अंत में उसने आना ही छोड़ दिया था, "न, तेरे घर नहीं आऊँगा... तुम पंडित आदमी... लगता है, मेरे कारण तेरे घर में झगड़ा हो जाता है।"

सुबह से शाम तक माँ न जाने कितने नियमों का पालन करती। सबसे पहले चूल्हे में रोटी डालतीं, फिर गो-ग्रास, खाने से पहले मंत्र, एक रोटी चील-कौए की, चींटी को आटा वही बुरकने जाता। कोई भिखारी खाली नहीं जाता था। परंतु, अब मुन्ने के लिए भी खाने के लाले पड़े हैं। यहीं उसका विचार-प्रवाह टूट गया। धम-धम की आवाज़ के साथ उसकी पत्नी सुनयना मुन्ने को पीटती जा रही थी और कहती जा रही थी, "न जाने कहाँ का भुक्खड़ पैदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया है।'' मुन्ने ने शायद चाय के लिए रखा दूध पी लिया था, तभी सुनयना खिसिया रही थी।

''पी लिया, तो क्या ग़ज़ब हो गया। एक दिन सब चाय नहीं पिएँगे, तो मर नहीं जाएँगे'' वह धीरे-से बोला। ज़ोर से बोलने का अधिकार वह खो चुका था। जो खुद पड़ा चारपाई तोड़ रहा हो, वह कैसे दखल दे सकता है?

''हम तो नहीं मरेंगे, दस दिन तक नहीं खाएँगे, तब भी नहीं मरेंगे—ऐसे बेशरम हैं; लेकिन अभी अम्मा जी आएँगी सौ-सौ सुनाएँगी कि सारा दिन इनके पेटों के लिए इंतज़ाम करते फिरो, आकर दो घूँट चाय भी नसीब नहीं होती।'' माँ ध्यान से सब तीज-त्योहारों पर, श्राद्ध आदि के दिनों में पुराने जिजमानों के घर चली जातीं। वहाँ से कुछ न कुछ मिल ही जाता था। कनागत के दिनों में कभी-कभी उसे भी खाने का न्योता मिल जाता था। माँ को फिर भी बहुत लोग जान गये थे, इसलिए पंडितानी का न्योता अधिकतर आ जाता, लेकिन विधवा के लेबल ने हर काम में पीछे भी कर दिया था। कहीं-कहीं से मिल जाता था, तो सौ-सौ आशीर्वाद देतीं पल्ला बढ़ाकर ले आती थीं, जबकि पिता के समय कभी माँ ने घर की देहरी पार नहीं की थी। सबसे पहले माँ सेठ जानकीदास की देहरी पर ही जाकर खड़ी हुई थीं। सकुचाई-सी माँ ने कहा था—''संक्रात पर मन्सा होगा न, अब पंडित जी तो रहे नहीं, जो लाते।''

''हाँ, क्यों नहीं'', ललाइन ने दरिद्र के हाथ जो कुछ भी थमाया, उसे पल्ले में समेटकर जल्दी से घर आ गयी थी। उसके बाद से हिम्मत कर सब जिजमानों के घर जाने लगीं। हँसकर सुनयना से कहा था, ''बहू, हम जैसों के लिए ही हिन्दू इतने त्योहार मनाते हैं, जिससे हमारा पेट कुछ तो पाता रहे।''

कुछ ही समय में सब संकोच भूल अब बेधड़क बँधे हुए घरों में चली जातीं और कुछ न कुछ लेकर ही उठतीं, चाहे रुपया-दो रुपया ही क्यों न हो। माँ के आने की आहट पा मसमसा कर कमल उठ बैठा। माँ का सामना करने की उसकी हिम्मत नहीं रह गयी थी। बुशर्ट उठा कमरे की ओर बढ़ गया। चीखते मुन्ने को माँ ने गोदी में उठा लिया, ''क्यों इसको धुने दे रही है?''

''धुने न, तो क्या करे कासगंज वाली, तुम्हारी चाय के लिए रक्खो दूध जा ढकोस गयो'', ऊपर से ताई जी की आवाज़ सुन वह चौंक पड़ा। ऊपर छज्जे पर ताई बैठी सब देख रही हैं, यह तो ध्यान ही नहीं रहा। कमल के कानों में ताई जी की आवाज़ पिघले सीसे की तरह पड़ रही थी, ''घर में मरद पड़ा-पड़ा खटिया तोड़तो रहे और बच्चे ज़रा-ज़रा से दूध के लिए तरस जाएँ... बहू ले, ऊपर ते ले जा... कैसो बाप है, ज़रा जो करेजा कसके, सात गैर भी तरस खा जायगौ।''

उसका जी चाहा कि ताई के चबड़-चबड़ करते थोबड़े पर एक घूँसा जड़ दे। कैसा दिखा रही हैं। पिता के समय कैसी निरीह बनी रहती थीं, क्योंकि चढ़ावे में कम नहीं मिलता था। हर वस्तु पिता ऊपर अवश्य देते थे, आज आधी कटोरी दूध देने के लिए उसकी सात पुश्त उधेड़ डालीं। ताई के दो बेटे घाट पर दौड़-दौड़कर एक-एक यात्री के पीछे जिजमान-जिजमान करते दस-बीस रुपये पीट लाते हैं, उसी के लिए इतना अभिमान? छिः, यह भी कोई धंधा है। पहले के लोग उसके पिता जैसे थे। साफ़-सुथरा धंधा करते थे, ठगी का जाल नहीं कि स्वाहा-स्वाहा करते, आचमन कराते अस्पष्ट भाषा में बुदबुदाते चाहे क्रिया-कर्म का ही मंत्र बोल जाएँ। भोले-भाले श्रद्धालु यात्रियों से किसी तरह झटक लिया जाए, बस यही उद्देश्य रहता है। उसने उन्हें यात्री की गाड़ियों के साथ-साथ दौड़ते, झिड़कियाँ खाते देखा है। उन्हें देख-देखकर उसे गुस्सा आता रहा है, जैसे खुद की कोई इज़्ज़त ही नहीं, पर आँख बचा इधर-उधर होता रहा है। पहले पिता का यश था, नाम था। पहले ही जब कुछ नहीं कह सकता था क्योंकि एक बार उसने कहने का प्रयास किया था, तो ताई की खरी-खरी सुनने को मिली थी कि बहुत रोटी लग रहीं हैं न, जो दूसरे की रोज़ी हेठी लग रही है। अब तो कहने का सवाल ही नहीं उठता, कैसे भी सही, घर में पैसे तो ला रहे हैं कम से कम। पेट पर पट्टी तो नहीं बँधी है। उसके सामने मुन्ने का चेहरा घूम-घूम जाता था।

अरुण के सामने वह गिड़गिड़ा ही उठा था—''कैसे भी कर, कुछ भी कर, मुझे तू नौकरी दिलवा दें। कोई भी हो, चपरासीगिरी भी कर लूँगा।''

अवश-सा अरुण लाचारी में सिर हिलाता रहा था, ''चपरासी की नौकरी तो कर लेगा पर उसके लिए भी देख कितनी लंबी लाइन है। इसके लिए चाहिए आठवीं पास, लेकिन देख फ़र्स्ट क्लास एम0ए0 तक के प्रार्थनापत्र लगे हैं।''

''कुछ नहीं हो सकता?'' उसकी आँखें पनिया गयीं। स्वयं के यात्रियों के पीछे दौड़ने की कल्पना कर वह सिहर उठा।

''यह सीट आरक्षित है, सबसे पहले किसी अनुसूचित जाति वाले को मिलेगी... पर तेरा क्या करूँ, तू है भी तो बड़ी जाति का, वह भी ब्राह्मण। अगर अनुसूचित या पिछड़े वर्ग का होता, तो कुछ कर भी पाता।''

निराश-सा उठ खड़ा हुआ—क्या करे? घूमता जमुना जी के घाट पर ही बैठा। उसका मन हुआ कि यहीं कूदकर प्राण दे दे। उसे मालूम था कि जहाँ वह बैठा है, उस घाट पर हार्थी डुबान पानी है। अँधेरे में पानी में पीछे के मकानों की रोशनी झिलमिला रही थी।

''का हो बाबू, आओ तुम्हें जमुना की सैर करा दें''।

सुवन माँझी के पीछे वह नाव में जा बैठा। सुवन माँझी को पिता ने तीन नावें दान में दिलवायी थीं। यात्री वैतरणी पार करने के लिए यमुना में नाव दान करते। मुंबई के, कोलकाता के सेठ लोग पिता के जिजमान थे। सुवन उसके पिता का अहसान मानता था। वह संतानहीन था, पिता से बहुत याचना करता रहा कि पिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई जंतर-मंतर दे दें, जिससे उसकी पत्नी की गोद हरी हो जाए।

पिता ने नाव दिलाते हुए उससे कहा था कि तुझे तीन-तीन पुत्र दे दिये। ये तेरे बुढ़ापे का सहारा बनेंगी।

वह उठा और सुवन माँझी के बिल्कुल पास जा बैठा, "बाबा तुम्हारे बेटा नहीं है न?"

सुवन सकपका उठा, "हाँ बाबू।"

"मुझे तुम अपना बेटा नहीं कह सकते?"

"अरे बाबू, कहा कहते हो... तुम हमार बिटवा हो। हमार बाबू हो, हम काहे न कहें, तुम हो ही हमार बिटवा।"

"देखो, अपनी बात से फिर मत जाना"

"का कहिहो बाबू, अवाक्-सा उसका मुँह देखने लगा सुवन।

"कोई पूछे, तो मुझे ही अपना बेटा बताओगे न?"

"हाँ बाबू", अबूझ-सा सुवन उसका मुँह देखने लगा।

"ठीक है", कुछ सोचता-सा वह उठ आया।

दूसरे दिन नौकरी के लिए फ़ॉर्म पर पिता के नाम के आगे नाम लिखते उसका हाथ काँप उठा। पिता का क्रोधित अंगारे-सा चेहरा घूम गया। एक क्षण के लिए आँखें बंद कर लीं। पिता से मन ही मन माफ़ी माँगी और लिख दिया, कमल राम, पुत्र-सुवन माँझी।

3/28 पी0/2 जवाहर नगर रोड
खंदारी चौराहा
आगरा-282002

लघुकथा

परीक्षा

हरीश कुमार शर्मा

परीक्षा झमाझम चल रही थी। घनघोर गाँव के इस उच्चतर माध्यमिक विद्यालय को कई सालों के बाद परीक्षा केन्द्र बनाया गया था, इसलिए स्वयमेव द्वार आयी भागीरथी में वर्तमान की मुक्ति की डुबकी लगाकर, भूत के पापों को बहाकर सभी भविष्य के लिये पुण्यार्जन कर लेना चाहते थे। विद्यालय के मुख्य द्वार पर दरोग़ा जी दो-तीन सिपाहियों के साथ कुर्सी डाले बैठे थे। एक होमगार्ड खड़ा हुआ गाँव की तरफ़ आती हुई अधकच्ची सड़क पर दूर-दृष्टि जमाये हुए था। दरअसल, वह बाहर थोड़ी दूरी पर इकट्ठे (प्रश्नपत्र हल करने और अंदर पहुँचाने में जुटे) लोगों से अधिक कभी-कभार आ धमकने वाली उड़नदस्ते की गाड़ी की तरफ़ अधिक ध्यान लगाये था, ताकि देखते ही तुरंत अंदर सावधान कर दे और समय रहते वहाँ 'सफ़ाई' हो जाए।

विद्यालय लंबा-लंबा बना हुआ था। अतः अधिकतर कमरों की पिछली खिड़कियाँ खेत की ओर खुलती थीं। इधर इकट्ठी भीड़ में पुलिस का एक जवान दो-तीन होमगार्डों के साथ पूरी वीरता के साथ मुक़ाबिल था। किसी को धमकाकर, तो किसी को समझाकर, किसी से घिघियाकर तो किसी को डराकर वे अपना कर्तव्य जैसे-तैसे निभा रहे थे। हालाँकि, खिड़की तक अपना हाथ या शब्द पहुँचाने वालों में बहुत से उनके मुवक्किल ही थे, जिनसे मिलने वाली भेंट और नज़राने के हिस्से की चमक बाहरी गेट पर बैठे स्टाफ़ की मूँछों पर भी मुस्कराहट बनकर निकल रही थी।

...और अंदर एकदम रामराज था। हर कमरे में परीक्षार्थियों के लोकतांत्रिक सर्वाधिकार सुरक्षित थे। देखने-दिखाने, बोलने-बतियाने, उठने-उठाने, आने-जाने, किबला धमकाने-गरियाने आदि तक का क्रम निर्भीकता से जारी था। ड्यूटी पर तैनात शिक्षक-शिक्षिका किसी सभा सदन के अध्यक्ष की भाँति व्यवस्था बनाये रखने का असफलप्राय प्रयत्न कर रहे थे। समय अब थोड़ा ही बचा था और इसीलिए ख़ैरातफ़री कुछ अधिक ही बढ़ गयी थी। कुछ छूट न जाए, यह हरेक सुनिश्चित कर लेना चाहता था।

इस परीक्षाकक्ष में ड्यूटी कर रहे एक मास्साब और एक दीदी जी अपने रामराज्यीय प्रजाजनों की सुख- सुविधा का हरसंभव ख़्याल रख रहे थे और इसी चक्कर में उन्हें अपने अंदर की नैतिकता रूपी सीता को बार-बार वनवास देना पड़ रहा था। अब मुश्किल से दस-पंद्रह मिनट का समय और बाक़ी था कि खेत की तरफ़ खुलने वाली परीक्षाकक्ष की खिड़की से एक चेहरा प्रकट हुआ, जो दिखने में तो किन्हीं सेवा निवृत्त गुरु जी जैसा लगता था और जिस पर अपने कुलदीपक सरवन कुमार को इस बार अवश्य पास करा लेने का संकल्प तारी था। अंदर लड़का पहले से ही बेकरार था और उसकी व्यग्र निगाहें खिड़की पर ही जमी हुई थीं। देखते ही लपककर आशामय हो खिड़की पर आया, लेकिन पिता ने निराशामय हो कहा—"बेटा, यह एक नहीं मिल रहा हैं, बहुतेरा ढूँढा, मिला ही नहीं। इसको छोड़ दो या और किसी के पास हो तो उससे देख लो।"

सुनते ही आग लग गयी लड़के को। भन्ना गया। गुस्से से हाथ झटका और हुंकार भरी—हूँ, इतना कहता रहा रात मैं कि बापू ले लो, पढ़ लो। तब तो पढ़ा नहीं, सो गये... अब मिलेगा कहाँ से?... अगर रात पढ़ लिया होता, तो मिल नहीं जाता?"

अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, दोन्यीपोलो गवर्नमेन्ट कॉलेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाशिए पर धूप

शशी जैन

विस्मृति में दफ़्न यादों पर से एक-एक कर परतें उतारती नीला सोचती रही—इन्हें कहाँ देखा है? देखा तो ज़रूर है, पर याद क्यों नहीं आता? सामने आता ऑटो पकड़ उसने सीधे घर की राह ली, याद तो करे कहाँ मिली है वह उनसे। इतनी भुलक्कड़ तो वह नहीं है। कमरे पर जा आँखें मूँद वह लेट गयी... सोचने का क्रम चला; याद का अंकुर उभरा... ओह इतना घिनौना प्रकरण, वितृष्णा से भर उठी नीला। काश, उस घटना को वह पूरी तरह भूल पाती... पर नहीं, जो घटना जितनी अप्रिय होती है, उसका दंश भी उतना ही स्थायी होता है शायद, तभी तो आज भी उसकी टीम पूरी शिद्दत के साथ महसूस कर रही है... बारह वर्ष से ऊपर हो रहा होगा, उस अपमानजक प्रसंग को बीते, पर यादों की पोटली में कहीं पूरी घटना सुरक्षित है... ओह, याद आया- ये थीं डॉ. प्राची कुमार।

"क्या नाम है तुम्हारा", डॉक्टर ने अपने व्यावसायिक लहज़े को थोड़ा आत्मीय बनाने की कोशिश की थी।

"नीलांशी..." ऐनेस्थीसिया की गिरफ़्त से छूटते-छूटते वह बमुश्किल बोल पायी थी। किंचित् भयभीत भी थी वह।

"वाह, अच्छा नाम है, एकदम अलग-सा। कोई और नाम भी है क्या?... मेरा मतलब है, अक्सर इस काम के लिए आयी लड़कियाँ अपना असली नाम नहीं बतातीं।"

'इस काम से' इन तीन शब्दों को डॉक्टर ने जैसे जलती तीली से रेखांकित कर दिया था। आपाद शर्म मे डूब गयी नीला, फिर भी साहस कर उसने कहा, "यही एक नाम है डॉक्टर मैडम। इस नाम से भी नफ़रत हो गयी है मुझे।"

"ओह, डोन्ट माइन्ड। तुम्हारी मजबूरी हो सकती है, पर आज-कल मौज-मस्ती और खुलेपन की जो हवा चल पड़ी है, उसमें लड़कियाँ शॉपिंग की तर्ज़ पर एबोर्शन करवाती हैं। अभी परसों भी एक लड़की स्कूल यूनीफ़ार्म में आयी थी। नाम पूछने पर भड़क उठी—'आप अपना काम करिए डॉक्टर... आई एम पेइंग यू फ़ार योर जॉब।' ऐनेस्थीसिया का असर ख़त्म होने से पहले ही वह निकलकर, अगले मोड़ पर खड़ी गाड़ी में बैठकर ओझल हो गयी।"

"आप मुझे इस तरह की लड़कियों में शुमार न करें। इतना ही कह सकती हूँ कि यदि यह न कराती, तो आत्महत्या करती। ज़िंदगी यूँ ही ख़त्म करने की चीज़ तो नहीं, यही सोचकर आप तक आ गयी," नीला कुछ स्थिर हो गयी थी।

"मुझसे अपना दर्द, चाहो तो शेयर कर सकती हो। मैं सच्चे को भी यहीं पर होती हूँ। फ़ोन नंबर कार्ड पर लिखा है। जाओ... चियर अप," माहौल को थोड़ा हल्का बनाते हुए डॉक्टर बोली-"नाम तो इसलिए पूछा कि यह तय हो जाए कि तुम पर बेहोशी का असर पूरी तरह ख़त्म हो चुका है या नहीं।"

उनकी धीमी हँसी की खनक से नीला को यह भरोसा हो गया कि वह अपना दर्द उनसे कह सकती है। डॉक्टर ने समझा था कि बात आयी-गयी हो गयी, पर एक माह बाद ही नीला ने डॉक्टर को फ़ोन मिलाया, समय लिया और पहुँच गयी-प्राची क्लीनिक। डॉ0 प्राची खुश हुई थीं—"स्वस्थ लग रही हो तुम, तरोताज़ा और खुश। कोई दिक़्क़त तो नहीं हुई बाद में।"

"नो डॉक्टर, मैं पूरी तरह ठीक हूँ, बस मन स्थिर नहीं हो पा रहा है। आज आप से बातें करके अपने मन का बोझ हलका कर लूँ, तो कुछ शांति मिले शायद। एक बर्फ़ की सिल्ली मेरे सीने पर बोझ की तरह रखी हुई है।"

"ज़रा रुको", डॉक्टर ने नर्स को दो कॉफ़ी लाने को कह कमरे के बाहर लगी लाल बत्ती जला दी। नीला की बात सुनने के लिए निश्चिंत एकांत चाहिए था।

"अब कहो।"

"डॉ0 दीदी... दीदी कह सकती हूँ न आपको?"

"क्यों नहीं, एक रिश्ता तो बना लिया है न तुमने," वही मीठी हँसी।

नीला का मनोबल बढ़ा—"मेरे मम्पी-पापा दोनों की एक दुर्घटना में, मृत्यु हो चुकी थी। मैं तब यही क़रीब अठारह वर्ष की थी। मुझसे बड़ा भाई विदेश जाकर पढ़ाई करने की तैयारी में व्यस्त था... मेरा क्या होगा, मैं कहाँ जाऊँ, यह सवाल सामने था। रिश्तेदारों ने सलाह दी कि भैया विदेश जाने का इरादा छोड़ दें भाई-बहन साथ ही रहें। शायद इसलिए कि मेरी ज़िम्मेदारी उन लोगों पर न आ जाए। मुसीबत की उस मुश्किल घड़ी में भी मैंने भाई की राह में बाधा न बनने का निर्णय लिया और हॉस्टल में रहकर पढ़ाई करने का मन बनाया। भाई विदेश चला गया और मैं हॉस्टल... एक दुर्घटना ने सब कुछ कैसे तय कर दिया सोचा था। मृत्यु एक कठोर सच्चाई है, पर ज़िंदगी भी एक बेशर्म ढीठ है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसी भी दुश्वार स्थितियाँ क्यों न हों, ज़िंदगी अपनी राह बना लेती है... ऐसा ही मेरे साथ भी हुआ। रिश्तेदार लोग मुझसे मिलने हॉस्टल आते रहे। ज़िंदगी चल निकली... दो बरस बाद, मैं अपनी चौथी बहन की शादी में शामिल होने गयी। भरे-पूरे परिवार की पहली शादी, सारे रस्मो-रिवाज़, नाच-गाने, ज़िंदगी एक जश्न-सी लग रही थी। मौसी ने मुझे गले लगा लिया—'अरी नीला, कितनी सुंदर हो गयी है तू। अब संध्या के बाद तेरी बारी है...' शादी की रात, रस्मों के बाद मेरा परिचय दीदी के ससुराल पक्ष से कराया गया। मैं लगातार महसूस कर रही थी कि मेरे नये जीजा जी मेरी ओर बड़ी हसरत से देख रहे थे और मेरी बातों में ज़रूरत से ज़्यादा दिलचस्पी भी ले रहे थे। दीदी की तुलना में मैं अधिक सुंदर जो थी। उनके दोस्तों ने छेड़ा, तो उन्होंने तपाक से उत्तर दिया—'अरे भई, साली है, तो आधी घरवाली भी हुई।' यह रस्मी मज़ाक है, सोचकर मैं सामान्य रही। शादी के दो चार-दिन बड़ी मौज-मस्ती, खाने-पीने में निकल गये। मेरे हॉस्टल लौटने का समय आ गया। दीदी ने बड़ी ज़िद की कि एक-दो दिन मेरे साथ भी रहो। मौसी की भी यही इच्छा थी, जिसे मैं टाल न सकी... बस दीदी के घर जाना ही भूल हो गयी। मुझे धोखे से, अँधेरे में रखकर जीजा जी ने अपनी हसरत पूरी कर ली। लुटी-पिटी-सी मैं रोकर रह गयी। उस जानवर से बदला लेने का ख़्याल आज तक मेरे दिल में है. . सोचती हूँ कि दीदी से सारी बातें बता दूँ।"

"न, ऐसा न करना," डॉ0 प्राची ने कहा, "ऐसा करने से तुम्हारी बदनामी होगी सो अलग, उस राक्षस का कुछ नहीं बिगड़ेगा। तुम्हारी दीदी का जीवन ज़रूर नरक हो जाएगा। वह बेचारी ऐसे नीच पति को न स्वीकार कर पाएगी, न ही छोड़ पाएगी। उसे तुम ऐसे गुनाह की सज़ा क्यों दो, जो उसने किया ही नहीं।"

"फिर मैं इसी आग में जलती रहूँ? मेरा दोष?" नीला का स्वर हारा हुआ था।

"भूल जाओ... कुछ बातों पर मनुष्य का नियंत्रण नहीं होता, उन्हें भूल जाना ही उचित होता है। तुम्हारे माता-पिता की कार दुर्घटनाग्रस्त हो गयी, उसमें किसका दोष था?"

नीला की आँखें नम हो आयीं—"कैसी तो हीनभावना भर गयी है मुझमें। मैं किसी अच्छे लड़के से शादी करने लायक भी नहीं रही।"

"ऐसी क्या बात हो गयी?" हँस पड़ीं डॉक्टर प्राची, "ऐसा कौन-सा खोट आ गया तुममें? पढ़ी-लिखी होकर भी ऐसा सोचती हो?"

"एक अपराध-बोध तो है न", नीला का स्वर उदास था।

"जो अपराध तुमने किया ही नहीं, उसका कैसा अपराध-बोध?"

"मैं शादी के पहले की अपने भावी पति को सब सच बता देती..."

"इस बेवजह ईमानदारी की कोई वजह?" डॉ0 प्राची हार मानने वाली नहीं थी, "आज के आधुनिक कहे जाने वाले लड़के इस सच को स्वीकार कर भी लें, किंतु पुरुष अवसरवादी होता है। अपने अवचेतन मन में इस घटना को सुरक्षित रखकर तुम्हारा पति भविष्य में इसे अस्त्र की तरह इस्तेमाल कर सकता है और तुम सारी ज़िंदगी इस अनदेखे अस्त्र के आतंक में जियोगी... इस घटना का किसी से ज़िक्र मत करना। अपना कैरियर सँभालो, वही तुममें आत्मविश्वास पैदा करेगा। समय के सच को स्वीकार करोगी, तभी आगे बढ़ सकोगी।"

कॉफ़ी ख़त्म हो चुकी थी। नीला ने घड़ी देखते हुए "अब चलूँगी डॉक्टर दीदी, देखिए फिर कब आपसे मिलना हो?"

नीला ने डॉक्टर प्राची के पैर छुए, उनकी आत्मीयता से अभिभूत थी वह। डॉक्टर ने उसे उठाया, आँसू पोंछे—"क्या पता?. .. छोटी-सी ये दुनिया पहचाने रास्ते..."

नीला हौले-हौले बाहर आयी, असमंजस की स्थिति ख़त्म हो चुकी थी, नयी ऊर्जा, नयी चेतना जैसे उसका इंतज़ार कर रही थी।

ऐसे मोड़ पर, इस रूप में डॉ0 प्राची उसे फिर मिल जाएँगी किसे पता था? झटके से उठी नीला, ठंडे पानी से मुँह धोया, फिर लेट गयी। आज वह बहुत-कुछ कहना-सुनना चाहती है. .. अपने आप से... एक अरसा हो गया है, ख़ुद से मुख़ातिब हुए. .. घंटे भर बाद अंबरीश से उसकी मुलाकात तय है। आज की मुलाक़ात एक निर्णायक बिंदु है उन दोनों के लिए... नहीं, वह नहीं मिलेगी उससे। मिल कर क्या बताएगी? मगर उसे फ़ोन तो कर दिया जाए... उसने मोबाइल ऑन किया, अंबर के दो फ़ोन दर्ज़ थे. .. उसने नंबर मिलाया... अंबरीश उतावली में था— "क्या यार, फ़ोन क्यों बंद कर के रखती हो?... क्या हुआ?... दीदी से मिलीं?. .. क्या बात हुई उनसे?"

नीला का गला रुँध आया, पर संयत होकर बोली—"हाँ दीदी से मिली, ख़ूब बातें हुईं, मिलने पर बताऊँगी, पर एक दिक़्क़त हो गयी है। आज यहाँ शाम को एक कार्यक्रम होना है, जिसकी एंकरिंग मुझे करनी है। एकदम फँस गयी हूँ, आज नहीं मिल पाऊँगी। कल मिलेंगे शाम को। तुम यहीं आ जाना, कहीं निकल लेंगे।"

मोबाइल ऑफ़ कर दिया उसने। काग़ज़ क़लम लेकर बैठी नीला सोच रही थी कि कैसे शुरूआत करे, क्या लिखे अंबर को; फिर भी लिखने के अतिरिक्त क्या विकल्प था? इकतरफ़ा सचबयानी के लिए पत्र से अच्छा माध्यम क्या हो सकता है! आँसू की दो बूँद गालों से ढुलक कर लेटर हैड पर गिरीं और लेखनी चल पड़ी :

मेरे अंबरीश,

मैंने कभी सोचा भी न था कि तुम्हें इस तरह पत्र लिखूँगी। आज की शाम मेरे जीवन का सबसे सुनहला पल सामने आने वाला था और उसी पल ने मेरे ख़त का मज़मून तय कर दिया। मैं जिस घटना का ज़िक्र करने जा रही हूँ, उसका तुमसे कोई संबंध ा नहीं है। उस प्रकरण को एक दुःस्वप्न की तरह मैंने भुला भी दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, किंतु तुम्हारी दीदी, जिन्होंने मुझे मेरे कठिन क्षणों में शारीरिक तौर पर ही नहीं, मानसिक पंगुता से भी उबारा था, जीने की नयी दिशा दी थी; आज मेरे रू-ब-रू थीं—डॉ0 प्राची कुमार। मुझे नहीं पता कि उन्होंने मुझे पहचाना भी या नहीं, पर मैं उन्हें कैसे भूल सकती थी? अंबरीश, मैं बारह बरस पहले एक वहशी की हवस का शिकार हो गयी थी। मुझे उस अनचाही स्थिति से डॉक्टर दीदी ने ही निजात दिलायी थी। इस कड़वे सच को तुमसे बताना मैं ज़रूरी नहीं समझती, पर तुम्हारी दीदी, जिन्होंने बच्चे की तरह तुम्हें परिवरिश दी, मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार कर सकेंगी, यह एक महत्त्वपूर्ण बिंदु है। मैं उन्हें अँधेरे में रखकर तुमसे विवाह की हामी नहीं भर सकती। मम्मी-पापा के मरने पर मुझे लगा कि मृत्यु का पल सब से कठिन होता है, पर उसके बाद मैंने जो जीवन जिया है, उसने मृत्यु की कठोरता को पीछे छोड़ दिया है। मृत्यु का एक पल, होने न होने के बीच, एक विभाजक रेखा खींच देता है, जैसेकि जगमगाते पंडाल में सहसा बिजली गुल हो जाए... पर ज़िंदगी एक-एक कर अपने पत्ते खोलती है, व्यंग्य से मुस्कुराती हुई आगे बढ़ती जाती है, क़दम दर क़दम एक चुनौती—कर लो, जो करना है... फिर भी कितना सम्मोहन है उसमें! छलावे से भरी अभिसारिका जैसी। आदमी उसकी ओर खिंचा चला जाता है—मात-दर-मात, घात-दर-घात झेलते हुए, पर जिजीविषा है कि ख़त्म नहीं होती... तभी तो मैं आज भी जीवित हूँ... परंतु, मैं ज़िंदगी को धन्यवाद भी दूँगी कि उसने मुझे तुम्हारे रूप में बहुत कुछ दिया... यूँ समझ लो, समय का एक मेहरबान टुकड़ा एक सुर्ख फूल-सा मेरे एकाकी जीवन में आ गिरा और मैंने उसे अपनी निर्जन मरुस्थली में सजा लिया। अब समय की आँधी उस फूल को उड़ा ले जाना चाहती है और मैंने उसे आज़ाद करने का मन बना लिया है... कितना कठिन है यह ख़याल कि अब हमारी शादी नहीं हो सकती, पर जीवन में सब कुछ सहज तो नहीं होता। कितनी हसरत से तुमने मुझे अपने घर छोड़ा था, दीदी से मिलवाने के लिए। तुम साथ नहीं गये थे कि दीदी के लिए एक सरप्राइज़ रहेगा, मेरा उनसे अकेले मिलना... मेरी उनसे ढेर-सी बातें भी हुईं, पर बराबर लगता रहा जैसे मैंने उन्हें कहीं देखा है। कमरे पर आकर, दिमाग़ पर बहुत ज़ोर डालने पर मैं याद कर पायी वह बीता हुआ दुःस्वप्न... और तभी, डॉक्टर दीदी से पहली मुलाकत। आज दीदी से मिलना मेरे लिए ज़रूर सरप्राइज़ रहा!... ख़ैर, अंबरीश तुमने मेरी आँखों की ख़ामोशी को पढ़ा है, धड़कनों को समझा है, इसी से विश्वास करती हूँ कि मुझे अन्यथा न लोगे। विडंबना ही है कि पढ़ाई के बाद मैंने यह शहर छोड़ दिया था, पर प्रवक्ता के पद पर मेरी नियुक्ति फिर यहीं हो गयी। यह सत्र तो मुझे पूरा करना ही पड़ेगा, फिर कहीं तबादला कराने का प्रयास करूँगी। दीदी को मैं पूरी श्रद्धा से प्रणाम करती हूँ। इति-नीलांशी।

पत्र पाकर अंबरीश बेचैन हो गया। यह कैसी गाज गिरी! क्या करे वह? दीदी से क्या कहेगा? वे नीला का निर्णय जानना चाहेंगी... नीला के बिना, किस जीवन की कल्पना करे वह? पत्र पर सिर रखे वह खाने की मेज़ पर ही सो गया। डॉ0 प्राची क्लीनिक से लौटीं... दरवाज़ा खुला हुआ है... अंबरीश इतना लापरवाह तो नहीं... अपने माथे पर दीदी का स्पर्श पाकर वह हड़बड़ा गया—"दीदी आ गयीं तुम... चाय पियोगी या खाना खाओगी?... थकीं हो, तो थोड़ा आराम कर लो। मुझे एक ज़रूरी बात करनी है तुमसे, ज़रा बैठ सकोगी?" उसने पत्र को छिपाने का प्रयास किया।

"ज़रूरी बात हो, तो पहले कर लो, मन निश्चिंत हो जाएगा," डॉ0 प्राची की अनुभवी आँखें समझ रही थीं कि उनका लाड़ला भाई बुरी तरह उद्विग्न है। इसे सँभालना होगा।

"दीदी, नीला तुमसे मिली थी, क्या बातें हुईं"

"हाँ, कल ही तो मुलाकात हुई थी उससे, ख़ूब बातें हुईं... उसके सबजेक्ट पर... राजनीति पर और किताबों पर... बहुत प्रभावित करती है लड़की... पर तू यह सब क्यों पूछा रहा है?" यह बताओ कि पहले भी वह तुमसे मिल चुकी है? दस-बारह बरस पहले?" अंबरीश सब कुछ जानने को बेचैन था।

अब डॉ0 प्राची के चौंकने की बारी थी—"सो तो याद नहीं... अब डॉक्टर हूँ, कभी मिली भी हो, तो क्या पता? हाँ उसका नाम सुनकर अजीब-सा लगा था... अलग तरह का, नया-सा नाम... नीलांशी... ज़रा याद करने दे रे, कब मिली हूँ उससे पहले।"

"यह लो, यह ख़त पढ़ लो, शायद कुछ याद आ जाए!"

पत्र दीदी को थमा अंबरीश उठने लगा—"मैं तब तक नहा लेता हूँ।"

"नहीं, यहीं बैठो तुम मेरे सामने," डॉक्टर के स्वर में आदेश था।

डॉ0 प्राची पत्र पढ़ती रहीं, अंबरीश उनके हाव-भाव। लग रहा था कि दीदी घृणा से मुँह फिरा लेंगी, पत्र को फेंक देंगी या फाड़ देंगी। पर पूरा पत्र पढ़ कर, लिफ़ाफ़े में रख डॉ0 प्राची ने उसे अंबरीश के हवाले किया... एकदम सामान्य, कहीं कुछ प्रतिक्रिया नहीं। अंबरीश से रहा न गया—"दीदी सब कुछ ख़त्म हो गया। मैं बहुत शर्मिंदा हूँ, तुम्हें कितना दुख दिया है मैंने... कुछ बोलो न"

दीदी मुस्करायीं—"क्या हो गया भाई, क्यों शर्मिंदा हो तुम? तुम्हारा क्या दोष? सच पूछो तो यह लड़की बड़ी भावुक है और बेवकूफ़ भी... इतना बड़ा खर्रा लिखने के बजाय चली आती मेरे पास... ख़ैर, उसे फ़ोन मिलाओ... बात करूँगी मैं उससे... अभी।"

"अब क्या बात करनी है... सब कुछ ख़त्म हो गया," अंबर की आवाज़ डूबी हुई थी।

"यह निर्णय लेने वाले तुम कौन होते हो? तुमने यह मामला मुझे सौंप दिया है। निर्णय मुझे लेना है, तुम दोनों को नहीं।"

"दीदी, तुम ऐसी लड़की को घर की बहू के रूप में कैसे स्वीकार कर सकोगी, जो बलात्कार का शिकार हो चुकी हो," घबराकर अंबरीश ने सीधा प्रश्न कर डाला।

"क्यों भाई, जीवन में क्या दुर्घटनाएँ नहीं घटतीं, हादसे नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते... तू अपनी बाइक से गिर कर तीन बार हाथ-पैर तोड़ चुका है, फिर, क्या बाइक चलाना छोड़ दिया तूने?''

''मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ,'' अंबरीश असमंजस में था।

''क्या नहीं समझ पा रहे हो? चार साल से तुम नीला से प्रेम कर रहे हो, क्या काफ़ी नहीं है... एक ऐसा हादसा, जिसके लिए नीला ज़िम्मेदार नहीं, तुम्हें पता चल गया, वह भी उसकी ईमानदारी की वजह से, तो क्या तुम्हारा प्रेम हार गया?... तुम्हारा भी एक अतीत हो सकता है, जो नीला को पता नहीं... न तुमने कहा न उसने पूछा... मेरे भाई, जीवन को आज के संदर्भ में जीना सीखो, तभी जी सकोगे...''

''फ़ोन मिलाऊँ क्या नीला को?'' अंबरीश दीदी का निर्णय जानना चाहता था।

''नहीं, ऐसा करो, ड्राइवर अभी रुका होगा। चलते हैं नीला के पास। उसे लेकर आते हैं, फिर तीनों खाना खाएँगे।''

''पहले फ़ोन कर लें उसे।''

अंबरीश का उतावलापन देख दीदी हँस पड़ीं-'नहीं, ऐसी ख़ुशख़बरी फ़ोन पर नहीं दी जाती... मुझे उसे भी अपना निर्णय सुनाना है न इसी खाने की मेज़ पर... हाँ, रास्ते में चॉकलेट और आइसक्रीम का ब्रिक लेना न भूलना... तू झट से नहा ले और मैं भी चेंज कर लेती हूँ।''

डॉ0 प्राची वार्डरोब से, अपनी मनपंसद साड़ी निकालने लगीं।

एम.एम.एस. 1/75 सेक्टर-ए
सीतापुर रोड योजना, अलीगंज विस्तार
लखनऊ-226021 (उ.प्र.)

लघुकथा

समाधान

दुर्गाशंकर राय

भिखरिया के घर करूण चीत्कार गूंज रहा था। गांव के एकमात्र मंदिर के बुर्ज की सफाई के दौरान सिर के बल गिरने से उसकी मौत हुई थी। अब क्या होगा?... मन्दिर समिति के अध्यक्ष बाबू नन्दन की ऑखों में खौफज़दा प्रश्न उभर रहे थे। अब जो होना था... सो हो गया। साले को कम से कम अपना खयाल तो रहता।... सुमेसर ने चोर नजर से सबकी ओर देखा। सभी ग्राम प्रधान के यहॉ जा रहे थे।

ग्राम प्रधान ने एक हल प्रस्तुत किया। समिति के दो-एक सदस्यों ने गिरगिट की तरह मुंडी हिलाई। सबके मन में आसन्न पुलिस कार्यवाही की तस्वीर रह-रहकर घूमे जा रही थी।

रोते-रोते बेहाल हो रही भिखरिया की औरत को पड़ोस की कई महिलायें संभाल रही थीं। 'अरे.... मइया हो मइया ऽऽ' की चीख रह-रह कर वातावरण को बोझिल बना रही थी। दोनों छोटे बच्चे रो-रोकर हलकान हुए जा रहे थे।

'चुप रह भिखरिया बो ऽऽ।' एक गंभीर आवाज उसकी मड़ई में गूंजी। ग्राम प्रधान के साथ गॉव के सम्भ्रान्त लोगों का दलं वहॉ उपस्थित था।

'...तेरे ही कारन भिखरिया की जान गई है...।' ग्राम प्रधान के इस रहस्योद्घाटन से सभी लोग चकित थे। आपस में खुसुर-फुसुर तेज होने लगी। भिखरिया बो तो जैसे रोना ही भूल गई...। ग्राम प्रधान फिर बोले-'आप सभन के विश्वास न हो, तो यहीं बाबू नन्दन जी खड़े हैं..... इन्हीं से पूछ लो'....।' सन्नाटा.....कौतूहल....। बाबूनन्दन उवाच- 'अरे! सुबह ही तो भिखरिया रो-रोकर मुझसे कह रहा था..... इस कलमुँही को कल रात किसी के साथ सोते हुए पकड़ा था....। अब आगे मेरा मुँह न खुलवाओं।'

भिखरिया बो को काटो तो खून नहीं.....आँखे अविश्वास व हैरत से फटी हुई थीं। 'अच्छा.... तो ये बात है..... सुमेसर बोला। 'यानि भिखरिया ने इसके कारन अपनी जान दे दी....।'

नहीं ई ऽबात झूठ बा ऽऽ। भिखरिया बो इतना ही बोल सकी। प्रत्युत्तर में ग्राम प्रधान गरजे.....'चुप रह छिनाल....। शर्म नहीं आती....।'

भिखरिया की औरत को संभाल रही पड़ोस की औरतें अब उसको छोड़ कर आपस में हाथ नचा-नचाकर भिखरिया बो को लगातार गालियाँ दिये जा रही थीं।

भिखरिया बो ग्राम प्रधान के इस सधे हुए प्रहार से कब की अचेत हो चुकी थी।

लौटते हुए ग्राम प्रधान का दल बेहद आश्वस्त व प्रफुल्लित नजर आ रहा था। ग्राम प्रधान ने आज एक तीर से कई शिकार किये थे।

ग्राम कोटवा नारायणपुर, बलिया-277501

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नटुआरा

श्यामल बिहारी महतो

मान-सम्मान की हदों को तोड़ती राजनीतिक लहरें पछाड़ खातीं और थैलीशाहों के आगे बिकाऊ नेता घुटने टेक जाते। मान-स्वाभिमान की एक भी सीमा साबित न बची थी और प्रतिकार के कहीं से स्वर भी सुनायी नहीं दे रहे थे। ऐसे में सिर्फ़ नेता ही नहीं चमक रहे थे, बल्कि उनके बंगले में रखी कुर्सियाँ, शीशे की खिड़कियों से झाँकते रंग-बिरंगे परदे, लॉन की घास, क्यारियों के फूल—सभी चमक रहे थे। इस चमक और राजधानी से कोसों दूर एक पुराने बंगले, जिसकी पुताई हुए कई साल गुज़र गये थे, में मुँह ढाँककर पड़े हुए शिवचरण दा बेचैनी से तिलमिला रहे थे। यह बात और थी कि भीतर की इस तिलमिलाहट के बावजूद ऊपरी तौर पर वे शांत, पर विचारमग्न थे। उनके चेहरे पर रखा कपड़ा हटाया जाता, तो वहाँ भी सब कुछ शांत मिलता। चाचा चौधरी सी वेश-भूषा, सफ़ेद हो चुके बाल, घनी मूँछे, तकरार करती आँखें और माथे पर हरी पगड़ी—यही वे चिह्न थे, जो उनकी पहचान को मिटने नहीं देते थे। फिर भी, शिवचरण दा अगिया बेताल बने हुए थे और वह अगिया बेताली उनके सिवाय कोई जान ही नहीं सकता था। जो उनके इस दर्द को जान सकते थे, अब वे इस दुनिया में जीवित न बचे थे। या तो उन्हें मार दिया गया था या फिर मर गये थे। यदि आज उनके राजनीतिक गुरु 'बाबू' होते, तो उन्हें हताश होने की ज़रूरत न पड़ती। उसी तरह, आज शक्ति, निर्मल, सदानंद होते तो वे अकेला महसूस नहीं करते। रामलाल मुंडा है और सतीश महतो भी है, लेकिन वे ख़ुद हलकान और हताश हैं। सोरेननाथ के आगे किसी की एक नहीं चल पा रही थी।

दरअसल, पिछले कुछ सालों से शिवचरण दा राजनीतिक हाशिये पर उतर आये थे। उतर क्या आये थे—उन्हें धकेल-सा दिया गया था। खरबूजों की तरह रंग बदलते राजनीतिक गलियारों में उनकी उपस्थिति गौण होती चली गयी थी। कभी वे सदन के एक सम्मानित नेता हुआ करते थे, तब सदन में मान- मर्यादा भी बची हुई थी। तब 'बिकाऊ' राज्य का कलंक भी नहीं लगा था, लेकिन अलग राज्य बनते ही समय ने करवट ली और राजनीति और राजनेता के मायने बदल गये। राजनीति में नेता के कपड़े कम होते गये और नोटों की संख्या बढ़ती चली गयी। लोहे की तरह सूत और इस्पात के अनुपात पर बात होने लगी। हिजड़े बच्चा पैदा करने लगे और राज्य के नेता उनके पालनहार होने की होड़ में शामिल होते चले गये। इस पर उल्लू हँसने लगे और सुअर मुस्कुराने लगे, यानी राजनीतिक सूरत ऐसी बदली कि सामंजस्य बिठाने में माहिर शिवचरण दा जैसे नेता समय के राजनीतिक शिखर से ही ग़ायब हो गये। राजनीतिक दुनिया में लंबे समय तक मानव-मूल्यों की राजनीति करने वाले शिवचरण दा के लिए यूँ यकायक उपेक्षित हो जाना-पचाये नहीं पच पा रहा था।

पहले जिन शिवचरण दा के भाषण-अभिभाषण से किसी सभा - संस्था की सफलता मानी जाती थी, आज उन्हीं शिवचरण दा को विधायक-सांसद चुना जाना ज़रूरी नहीं समझा जाने लगा था। जो शिवचरण दा पहले ख़ुद एक आंदोलन हुआ करते थे, अब वही शिवचरण दा राजनीतिक सभा-समाजों में अपनी उपस्थिति ढूँढ़ते नज़र आने लगे थे। पर, लाख कोशिश करके भी माहिर खिलाड़ी शिवचरण दा आज की उठा - पटक की राजनीति में कोई बड़ा स्ट्रोक नहीं लगा पा रहे थे, जो उन्हें हाशिये से उठाकर पुनः मुख्य धारा में ले आता।

बहरहाल, अपने पुश्तैनी मकान में पड़े-पड़े उन्होंने एक दिन यह तय किया कि वे अपने आपको, अपने विचारों, उसूलों को मरने नहीं देंगे और उन्हें फिर से राज्य-हित में लोगों के बीच लेकर जाएँगे। पहले भी अलग राज्य के लिए लड़ाई लड़ी थी, अब एक लड़ाई और लड़ें। यह राज्यहित और राज्य की जनता के मान-सम्मान की लड़ाई होगी। राज्य की अस्मिता की रक्षा के लिए लड़ेंगे, चाहे इस लड़ाई में उन्हें मिटना ही क्यों न पड़े, वे पीछे नहीं हटेंगे। उन्होंने तय किया कि अपने इस निर्णय की घोषणा करते हुए अपनी पार्टी के पुराने साथियों को पत्र लिखेंगे उस पार्टी के पुराने वफ़ादारों को, जिस पार्टी को सींचने-सँवारने में और उसे दूर देहातों की पार्टी बनाने में ख़ुद शिवचरण दा का एक जीवन बीत गया। लोग कहते हैं कि तब यह पार्टी महज़ एक पार्टी ही नहीं समाजिक-राजनीतिक आंदोलन का दूसरा नाम थी। उन दिनों हर गाँव-चौराहे पर ये नारे गूँजा करते हर ज़ोर-ज़ुल्म की टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है, 'कमाने वाला खाएगा... लूटनेवाला जाएगा'... तब ये नारे महज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारे न हुआ करते थे। इसके पीछे भूखे-नंगे, दबे-कुचले लोगों का एक जन-सैलाब सा बहा चलता था। भले उनके शरीर पर साफ़ कपड़े न होते, लेकिन मन साफ़ होता। आज न तो वे नारे रहे और न तब वाले नेता। सभी के जैसे मायने बदल गये थे। सभी के अर्थ जुदा- जुदा हो गये थे।

शिवचरण दा की इस घोषणा से कि 'राज्य को लूट का केंद्र और दलालों तथा थैलीशाहों की प्रयोगशाला' बनने नहीं देंगे, भ्रष्टाचार के खिलाफ़ इस लड़ाई को हम हर गली-कूचे तक ले जाएँगे' से अख़बार-जगत में एक आपाधापी और राजनीतिक गलियारों में जैसे खलबली-सी मच रही थी। राज्य की ढाई-तीन करोड़ जनता भी यह जानने को उतावली दिख रही थी कि आज के युवा-भी भ्रष्टाचार और लूट-खसोट के विरुद्ध उठ खड़े होने के बजाय उसे ही गले लगाने को आतुर दिख रहे हैं... हमारे जीवन का सिस्टम इतना गँदला क्यों गया है...

शिवचरण दा का पुराना मकान एक बार फिर सुर्ख़ियों में आ गया। अख़बार वाले, टी0 वी0 चैनल वाले सुबह-शाम उनके घर के सामने उनसे मिलने आते। शिवचरण दा इनके लिए भी समय निकालते और दिन भर के लिए बातों ही बातों में कार्यक्रम बना लेते थे। फिर तो सुबह से शाम इस गाँव से उस गाँव में बैठकें करते नज़र आते। एक बार फिर वे जैसे सो चुकी जनता को जगाने के वास्ते निकल पड़े थे। पार्टी नेता की तथाकथित नीतियों के ख़िलाफ़ विद्रोह का झंड़ा बुलंद करने चल पड़े थे।

कई वर्ष बाद शिवचरण दा आज मानगों पहुँचे थे। यह वही मानगों गाँव है, जहाँ से शिवचरण दा के राजनीतिक ग्राफ़ ने बुलंदी छुई थी। उन्होंने ज़मींदारों के ख़िलाफ़ कई मोर्चों का सफल नेतृत्व किया था। उनका विधायक बनने का रास्ता यहीं से खुला था। सुबह का सूरज पूरब में निकल चुका था। शिवचरण दा सोबरण महतो के घर में बैठे चाय की भाप में अपने पुराने दिनों को याद कर रहे हैं। सोबरण महतो ठीक उनके सामने बैठा है। गाँव के लोग अब उसे भी सोबरण दा के नाम से पुकारने लगे थे। यह वही सोबरण है, जो अलग राज्य की लड़ाई में अपना सब कुछ खो बैठा था। जिसकी टीस रह-रहकर आज भी उसके सीने में उठती रहती है। मानगों गाँव वालों को आज भी याद है वो दिन, जब सोबरण जवान था और अलग राज्य की लड़ाई हेतु आर्थिक नाकेबंदी के दौरान् एक सिपाही की तरह मोर्चे पर तैनात था। घर में उसकी पत्नी को बच्चा होने वाला था। इसकी ख़बर सोबरण को थी, फिर भी वह मोर्चे पर डटा रहा। दो दिनों बाद सोरेननाथ की अगुआई में नाकेबंदी वापस ले ली गयी थी और जब वह घर लौटा, तो देखा कि उसकी दुनिया उजड़ चुकी है। जिस चमारिन के ज़िम्मे उसने पत्नी को छोड़ रखा था, वह न तो उसकी पत्नी को बचा सकी और न बच्चे को...

शिवचरण दा के सामने कुछ भी कहने से सोबरण का मुँह काँप रहा था, फिर भी उसे अच्छा लग रहा था कि शिवचरण दा वर्षों बाद उसके घर आये हैं। वह उन्हें अपना गुरु मानता था। लेकिन, शिवचरण दा को कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। वे कहना चाह रहे थे कि देखो सोबरण हम क्या चाहते थे और हमें क्या मिला और क्या मिल रहा है! जिस हक़-हुकूक और अधिकार के लिए हमने लड़ाइयाँ लड़ीं, आज उसी की यह हालत देखो। राज्य अलग हुआ, हम भी अलग अलग खेमों में बँट गये। आज हमारे राज्य के नेता किस तरह पद और पैसों को लेकर लड़ रहे हैं। क्या इसीलिए हमने अलग राज्य की लड़ाई लड़ी थी? आज नेता अपना बैंक बैलेंस बढ़ाने को बेताब नज़र आते हैं, उन्हें भूख-ग़रीबी नज़र नहीं आती। कितने शर्म की बात है कि आज नेताओं की खुलेआम बोली लगायी जाती है। जितने बड़े नेता उतनी ही बड़ी उनकी क़ीमत। कल तक जो समाजवादी कहलाते थे, आज उनके सामने से शोषित समाज ही ग़ायब हो चुके हैं, सिर्फ़ वाद बचा रह गया है—नक्सलवाद, नस्लवाद, उग्रवाद और सबों का प्रियवाद-परिवारवाद। पहले पार्टी की नीतियाँ और सिद्धांत सब कुछ हुआ करते थे, आज नेता ही सब कुछ हो गये हैं।

"सोबरण नंगे हो गये हैं हमारे नेता सब," शिवचरण दा की आवाज़ आँगन में बड़ी देर तक गूँजती रही, इस कोने से उस कोने तक और सोबरण-शिवचरण दा के क्लांत चेहरे को देखता रहा था।

सोबरण को चालीस-पैंतालीस साल पहले का शिवचरण याद आ गया था। तब शिवचरण दा साढ़े पाँच फुट का गबरू जवान हुआ करता था। उस समय शिवाजी समाज का बड़ा ज़ोर था और ज़ोर था शिवचरण दा के पोर-पोर में। शिवाजी समाज का आंदोलन विशुद्ध रूप से एक समाजिक आंदोलन था और मक़सद भी साफ़ था—लोगों को सामाजिक बुराइयों के प्रति जागरूक करना और डायन-भूत तथा झाड़-फूँक के मकड़जाल से बाहर निकालना। ख़ासकर दहेज़ का लेन-देन करने वालों पर शिवाजी समाज वालों की कड़ी नज़र रहती थी। एक पत्नी के रहते दूसरी शादी करने वालों को पंचायत बुलाकर दूसरी शादी करने की वजह पूछी जाती थी। ठोस कारण नहीं बताने पर उसे लाठी से पीटा जाता था। दहेज़ को लेकर लड़कियों को छोड़ने वालों को समाज से बाहर कर दिया जाता था। दहेज़-प्रथा, जाति-प्रथा, बहुविवाह और महाजनी प्रथा के विरुद्ध एक मुहिम-सी चल पड़ी थी। और 'बाबू' इनके अगुआ थे। उनके बारे में कहा जाता था कि उनकी आवाज़ में जादू था। जो भी उनकी बातों को एक बार सुन लेता, वह उन्हीं का दीवाना होकर रह जाता। वे दबे-कुचले लोगों के बीच नायक की तरह थे। उनकी ललकार ऐसी कि वे किसी लड़ाई में या आंदोलन में असफल नहीं हुए थे। उनका कहा शब्द किसी बंदूक की गोली से कम नहीं होता था। उन्हीं का ज़ोर था कि धनबाद-झरिया के कोयला माफ़ियाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का एक समय सफ़ाया हो गया था। उन्हीं बाबू का शिष्य बनकर शिवचरण दा खुद को शेर जैसा महसूस करने लगा था।

और जब बाबू की अगुआई में महाजनों-सेठों के विरुद्ध लड़ाई तेज़ कर दी गयी थी, सेठ-साहूकारों और महाजनों के खेत - खलिहानों में काम करने से रोका जाने लगा, तो शिवाजी समाज और महाजनों के बीच ख़ूनी संघर्ष शुरू हो गया था। कहीं महाजनों के लोग संगठन पर भारी पड़ते, तो कहीं संगठन वाले सेठ-साहूकारों को लूट लेते। इस लड़ाई में पुलिस हमेशा सेठ-साहूकारों के साथ खड़ी नज़र आती थी। इस कारण अब तक शिवाजी समाज के कई कार्यकताओं की जान जा चुकी थी। लेकिन, इससे संगठन के जोश-ख़रोश पर कोई असर नहीं पड़ता था, बल्कि उत्साह और बढ़ जाता था। जब भी कहीं ख़ूनी संघर्ष होता बाबू पुलिस हिरासत में होते, लेकिन क़ानून के विद्वान बाबू हमेशा साफ़ बच निकल जाते और सेठ-महाजन डोंड साँप की तरह छटपटाकर रह जाते थे। उन दिनों संथाल के आदिवासी गाँवों से सोरेननाथ सही-ग़लत की लड़ाई लड़ रहा था। बाद में बाबू सोरेननाथ और शिवचरण दा ने मिलकर एक पार्टी बनायी—झारखंड आज़ाद पार्टी और उसके पहले महासचिव यही शिवचरण दा बने। तब शिवचरण दा की आवाज़ शेर की दहाड़ जैसी थी। उनकी शिराओं में बहता लहू शोषित समाज को देख गरम हो उठता था। बस रात-दिन पार्टी-समाज, शोषित लोग और अलग राज्य के लिए अलख जगाना—यही उनके मन में समाया रहता।

इस तरह, शिवचरण दा ने अपनी उम्र का एक बड़ा हिस्सा अपने 'गुरु' बाबू के साथ गाँव-गाँव, देहात-देहात, घर-घर घूमने में, लोगों के साथ मेल-जोल बढ़ाने में लगा दिया। बाबू के साथ घूमने के क्रम में गाँव-घरों के भीतर के अभावों को देखा, महसूस किया और उसके पीछे छिपे छटपटाहट भरे जीवन की कराह को सुना। तब बाबू उनसे कहा करते—"शिवचरण देखो, गाँव-घरों में जीवन कैसे गुज़र रहा है और सेठ- साहूकार लोग इन घरों में कैसे अपने लिए जगह बना लेते हैं, इसे समझो और समझाओ।" और, शिवचरण दा बार-बार ऐसे घरों में जाते और लोगों के दुख-दर्द को समझने का प्रयत्न करते। बैठकर उन्हें समझाते, उन्हें पार्टी से जोड़ने का काम करते। इस क्रम में नदी-पहाड़, जंगल-झरने और गुफा-कंदराओं में समय बिताने से डरते नहीं थे। बिना थके पैदल चलते-उतरते रहे। गाँव-टोले से लोग जुड़ते गये। कारवाँ बनता गया। कहीं कुछ खाने को मिलता, तो खा लेते, नहीं मिलता, तो भूखे सो जाते। महुआ की रोटी और गोंदली का भात भूख में भगवान के भोग की तरह लगता। बस, मन में संकल्प था कि किसी तरह लोगों को जुल्म और शोषण से मुक्ति मिले। काम करें, तो उसका पूरा दाम मिले।

इस बीच शिवचरण दा की शादी हुई, तो पत्नी अनपढ़ मिली। वे बाबू से मिले। गाँवों में शिक्षा विकास पर ज़ोर दिया। शिक्षा के साथ-साथ गाँव में पार्टी की पकड़ मज़बूत हो, इसके लिए शिवचरण दा ने अनोखा तरीका ढूँढ निकाला था। अब जिस गाँव में शिवचरण दा जाते, पार्टी की शाखा बनाने की सोचते, उसके पहले वे दस-बीस नौजवानों को नटुआ का खेल सिखाते। इस खेल के बारे में कहा जाता था कि जो कोई भी इस खेल में सिद्धि पा लेता था, वह दस-बीस दुश्मनों को अकेला परास्त कर साफ़ बच निकल सकता था। यह विशुद्ध रूप से एक दाँव-पेच वाला खेल था, जो ढाई-तीन हाथ के डंडे के सहारे खेला जाता था। वह डंडा ही उस खिलाड़ी का हाथ और हथियार होता था। शिवचरण दा खुद एक मँजे हुए नटुआरे थे। उनका गुरु एक गंझू था जिससे शिवचरण दा ने यह खेल सीखा था। बाद में, पार्टी संगठन को मजबूत करने में शिवचरण दा ने इस खेल को एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया। तब पार्टी में एक से बढ़कर एक नटुआरे मौजूद थे, जो किसी पहलवान से कम नहीं होते थे।

ऊपर से लगन ऐसी कि दिन-रात, सुबह-शाम शिवचरण दा पार्टी काम में जुटे रहते। जीवन को जैसे जनता जनार्दन के लिए समर्पित कर दिया हो। उनके सुख-दुख से अपना सुख-दुख जोड़कर देखते। शादी हो या भोज—सब में शामिल नज़र आते। इससे सेठ-साहूकार ही नहीं गाँव के ज़मींदार भी उनके ख़ून के प्यासे हो गये थे। तभी तो एक बार उन्होंने सेठ के लठैतों से खुद को घिरा पाया था। यह जेठ की दोपहर थी। प्रचंड गर्मी के बावजूद ज़मींदारों के ख़िलाफ़ एक सभा को संबोधित कर शिवचरण दा ज़मीन के एक झगड़े को निबटाने के वास्ते एक साथी के साथ दूसरे गांव जा रहे थे कि एक सुनसान जगह पर उन पर अचानक हमला कर दिया गया था। जिस आदमी के साथ वे जा रहे थे, जान का ख़तरा देख वह भाग निकला था। शिवचरण दा अकेले दो हाथ के डंडे के सहारे घंटे भर तक लड़ते रहे। पर, कब तक? लठैत थे छह और वे अकेले... एक ने बड़ी तेज़ी से उनके सर पर लाठी दे मारी थी...

"शिवचरण दा, बूढी हड्डियों में पहले जैसी ताक़त अब कहाँ रही—"सोबरण ने अपनी ख़ामोशी तोड़ी थी, "हम किनके लिए लड़ेंगे? पहले अलग राज्य के लिए लड़ रहे थे, अब अपने ही नेता अपने स्वार्थ के लिए लड़ रहे हैं, फिर हमारी कौन सुनेगा?"

"सुनेगा सोबरण, उन्हें हमारी बात सुननी पड़ेगी, बस हमें तुम जैसे साथियों की ज़रूरत है।"

"मैं तो हमेशा आपके साथ रहा हूँ। लेकिन, डरता हूँ। उस बार तो आप अपनी क़िस्मत से बच गये थे। इस बार लड़ाई सरकार से होगी। सीधे सीने पर गोली मरवा देगी," एक बार फिर सोबरण ने शिवरण दा को पुरानी यादों में धकेल दिया।

जब लठैतों की मार से शिवचरण दा मरा जा रहा था और मुँह से "पानी-पानी" निकल रहा था, तब एक लठैत क्रोध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उबलता हुआ पीछे पलटा था और बोला था—"तुम्हें पानी चाहिए. ..लो... लो... पानी..." और उसने शिवचरण दा के मुँह पर मूत दिया था। वही मूत बाद में शिवचरण दा के लिए अमृत और उन लठैतों के लिए विष बन गया था।

पाँच-छह माह के अंतराल में वे छह के छह इनके हाथों मारे गये। शक के आधार पर पुलिस ने इन्हें सेन्ट्रल जेल में डाल दिया, लेकिन बहुत दिन नहीं बीते और 'बाबू' के दाँव-पेच की लड़ाई में सरकार को उन्हें छोड़ना पड़ा। बाबू, जो पार्टी अध्यक्ष के साथ साथ खुद एक क़ानून थे और धनबाद कोर्ट में वकालत भी करतें थे, उन्होंने एक दिन पार्टी आम सभा में कहा था—"हम किसी के अधीन नहीं रहेंगे, हमें हमारी पहचान मिले, अलग राज्य लेकर रहेंगे।" इससे पूरे क्षेत्र में एक सनसनी सी फैल गयी।

उधर शिवचरण दा जेल से बाहर निकले। उनका छोटा क़द और बड़ा हो गया। अब तक पार्टी महाजनी प्रथा, ज़मींदारी प्रथा, दहेज-प्रथा और जाति-प्रथा के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ रही थी। अब पार्टी का मुख्य मुद्दा अलग राज्य बन गया था। इसको लेकर धरने-प्रदर्शन जगह-जगह होने लगे। तभी राज्य में चुनाव हुए। बाबू, जो कुछ महाने से 'मीसा' के तहत जेल में बंद थे, जेल से ही चुनाव लड़े और भारी मतों से जीतकर बाहर निकले। पार्टी के लिए यह बहुत बड़ी जीत थी। अलग राज्य की माँग ने और ज़ोर पकड़ा। हालाँकि चुनाव तो शिवचरण दा ने भी लड़े थे, लेकिन वे चुनाव हार गये थे। वह एक पिछड़ा क्षेत्र था, जहाँ जानवर और आदमियों में सिर्फ़ पैर का फ़र्क़ था। शिवचरण दा उस क्षेत्र से चुनाव आगे भी लड़े और हारते रहे। वे चुनाव लड़ते, प्रचार- प्रसार भी खूब करते, परंतु हार जाते। लेकिन, उनका मन कभी नहीं हारता और पूरे-पूरे साल लोगों के बीच जाकर काम करते बार-बार की हार और अपना-पराया न जान पाने वाली जनता की मति से अब शिवचरण दा भी कुछ निराश हो चले थे कि तभी एक गोलीकांड ने उन्हें राजनीति के उस शिखर पर पहुँचा दिया, जिसकी कल्पना भी उन्होंने न की होगी।

घटना सोबरण के गाँव मानगो की है। यह गाँव आज भी शिवचरण दा की यादों में बसा हुआ है। बात तब की है, जब इस गाँव में सेठ मँगनीलाल की हुकूमत चलती थी और उनके मूत से गाँव के सारे घरों में दीये जलते थे। और, सेठ अपनी लाठी की ताक़त पर सारे गाँव वालों को हाँका करता था। एक दौर ऐसा भी आया था, जब लगान-बझान के नाम पर गाँव की आबादी का तिहाई भाग सेठ के बही-खाते में दर्ज़ हो चुका था और इससे बचकर बाहर निकलने का दूर-दूर तक कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। खरगोश की भाँति उसके जाल में गाँव वाले फँस-फँस जा रहे थे। धीकल महतो भी अपने ही कारणों से सेठ के जाल में फँसा था। वह गाँव का एक नामी किसान था। उसके पास सब कुछ था। हल-बैल तो उसका अपना था ही, बीज धान भी वह अपने पास का ही इस्तेमाल किया करता था। लेकिन, वह एक नंबर का गँजेड़ी भी था। फिर नचनिया नचाने की बीमारी ने उसे अलग से पकड़ लिया और-यह बीमारी उसके जीवन के लिए बड़ी घातक सिद्ध हुई। चोरी-छिपके वह सेठ से पैसा लेता रहा। सेठ के जाल में वह फँसता चला गया। भेद खुला भी तो कैसे...

अगहन माह का दिन था। धोकल महतो उस दिन अपने बड़े बेटे और एक अन्य मोदी लड़के को साथ लेकर एक बहियार खेत में धान काट रहा था। तभी ख़बर पाकर सेठ मँगनीलाल अपने दो लठैतों के साथ पहुँचा और गरजते हुए बोला—"धोकल, इस बहियार खेत का धान काटना छोड़ दो। तुम पर मेरा क़र्ज़ा इतना बढ़ चुका है कि इससे शायद ही सोधाय।"

इस पर धोकल का बेटा उछलकर खेत से बाहर आ गया और गुर्राते हुए बोला—" कैसा क़र्ज़, कौन-से उधार की बात कर रहा है?"

"तुम अपने बाप से पूछो, वही बताएगा तुम्हें," सेठ का सधा जवाब था।

धोकल अपने बेटे को कुछ नहीं बता सका। वैसे धोकल का नचनिया नचाने का क़िस्सा गाँव से बाहर मशहूर था। घर वालों को भी पता था, लेकिन यह पता नहीं था कि इसके लिए सेठ से पैसा लिया जा रहा है। सेठ के फलने-फूलने का यही तो राज़ था! ख़ैर, सेठ उस दिन मना कर के चला गया, लेकिन धोकल का बेटा सेठ की बात को अनसुना कर दूसरे दिन भी उसी खेत में धान काटने चला गया और बाप को भी साथ लेता गया। गुप्तचरों से सेठ को जब ख़बर मिली, तो इस बार लठैत की जगह पुलिस थी उसके साथ। थाने की पुलिस को गाँव वाले सेठ की रखैल कहते थे, इसीलिए सेठ से पंगा लेने के लिए कोई भी गाँव वाला सौ बार सोचता था। धोकल के बहाने पुलिस ने दोनों बाप बेटे को गोली मार दी। रिपोर्ट में लिखा कि सेठ को बचाने के क्रम में गोली चल गयी। सेठ की ओर से कहा गया था कि धोकल ने बहुत पहले यह खेत उसके नाम लिख दिया था, पर उसका बेटा ज़बरदस्ती कर रहा था। उसने अपने नाम से उस खेत की माल-गुज़ारी वाली रसीद भी थाने में जमा कर दी थी।

पुलिस के हाथों उन बाप-बेटों की मौत ने नाटे क़द के शिवचरण दा का राजनीतिक क़द यकायक ऊँचा कर दिया। उनके नेतृत्व में लोगों ने थाने को घेर लिया और नाकेबंदी कर दी। उग्र भीड़ को संबोधित करते हुए शिवचरण दा ने कहा, "हत्यारे हवलदार को हमारे हवाले करो, नहीं तो थाने में आग लगा दी जाएगी। कितनी गोलियाँ हैं... चलाते रहना हम पर... "इन्कलाब ज़िंदाबाद... पुलिस जुल्म नहीं चलेगा... ज़ोर-जुल्म की टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है..." दो दिनों तक भीड़ थाने को घेरे रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरे दिन ज़िले के बड़े अफ़सरों के सामने हवलदार तथा एक सिपाही जिसने गोली चलायी थी, को जेल भेजने के बाद लाशें उठायी गयीं तो क्षेत्र में शिवचरण दा की जय-जयकार हो उठी। आँखों में अंगारे लिए शिवचरण दा ने जैसे अखबार ही हथिया लिये थे। अख़बारों ने ऐसा रंग दिया कि शिवचरण दा क्षेत्र में कुछ इस तरह रच-बस गये कि 'यही तो अपना नेता है।'

उनका नटुआ का खेल और झूमर का नाच भी गाँव-गाँव में काफ़ी लोकप्रिय हो चुका था। कहते हैं, नाटे क़द के शिवचरण दा जब नटुआ खेलने उतर जाते, तो अच्छे-अच्छों की धोती फट जाती थी और जब माँदर की ताल में वे झूमर नाचते और कलाबाज़ियों के बीच माँदर बजाने वाले के चूतड़ पर लात मार देते, तो लोग हँसते-हँसते पेट पकड़ लेते। और, जब वही शिवचरण दा बहुमत के साथ एक बार क्षेत्र के विधायक बने, तो उतरने में पंद्रह साल निकल गये। इस बीच बहुत कुछ बदल गया था। अपना अलग राज्य बन गया था। पर, अपनी पहचान बननी अभी भी बाक़ी था। लेकिन शिवचरण दा जब तक विधायक रहे, राजनीतिक मर्यादा में रहे। कभी उन्होंने अपने और अपने बाल-बच्चों के लिए अलग से नहीं सोचा। उनके लिए क्षेत्र की जनता और उनके परिवार में कोई फ़र्क़ नहीं था। सब उनके अपने थे, एक परिवार की तरह।

हमेशा मानव-मूल्यों की राजनीति करने वाले वही शिवचरण दा एक बार फिर उसी राज्य की जनता के सामने 'जागो फिर एक बार' कहने को आ गये थे।

'बाबू' का आकस्मिक निधन हो जाना, सोरेननाथ का पार्टी अध्यक्ष बन जाना, राजनीति का अपराधीकरण हो जाना, थैलीशाहों के आगे नेताओं का घुटने टेक नतमस्तक हो जाना, कुछ ऐसी घटनाएँ थीं, जिन्हें लेकर शिवचरण दा बहुत बेचैनी महसूस कर रहे थे। बाहरी नेताओं से ज्यादा कुरूप चेहरा उनके अपने ही नेताओं में देखने को मिल रहा था। अगर लूट-खसोट और थैलीशाहों के आगे हमारे नेता इसी तरह नंगे होते रहे और आगे भी ऐसा ही होता रहा, तो इस राज्य की लाज बचाना भी मुश्किल हो जाएगा। उधर जबसे सोरेननाथ पार्टी अध्यक्ष बने थे, पार्टी की विचारधारा ही बदल गयी थी। पार्टी में पारदर्शिता की जगह परिवारवाद ने ले ली थी। बड़े नेता छोटे नेताओं को अपना गुलाम समझने लगे थे। पद के लालच में उनका शोषण हो रहा था। नीयत और नीति-सब कचरे के ढेर में तब्दील होते चले गये थे। स्वयं सोरेननाथ रँगा सियार बन चुका था और उसका आख़िरी सपना 'सी.एम.' बनना था, ताकि सियार की सच्चाई को सब जान न सकें।

समय के साथ शिवचरण दा ने अपनी मुहिम तेज़ कर दी थी। वे सोरेननाथ की नीयत पर सवाल खड़े करते और पार्टी के जन-मुद्दे को हाशिये पर डालने को लेकर कभी-कभी सोरेननाथ पर ही हल्लाबोल देते। पर, सोरेननाथ हर बार शिवचरण दा की पीठ थपथपाकर पार्टी हित में 'लगे रहो शिवचरण दा' का भाषण पिला आगे बढ़ जाता। एक तरह से यह शिवचरण दा का उपहास करना ही कहा जाता। इतना ही नहीं, चुनाव के वक़्त वे लोग टिकट ले जाते, जो न जाने सोरेननाथ से कब और कहाँ मिला करते थे और ज़मीन से जुड़े कार्यकर्ता और नेता टिकट की आस में पार्टी हित में साल-साल भर गाँव-गलियों में जाकर जनाधार बढ़ाने का काम किया करते। अलबता, 'आओ, टिकट-टिकट खेलें' खेल जारी था। अब शिवचरण दा का सब्र टूट चुका था, क्योंकि इन तीन-चार सालों में दो-तीन चुनाव भी हो चुके थे। पहले लोकसभा चुनाव, फिर विधानसभा। दोनों ही चुनावों में सोरेननाथ ने घोर मनमानी की थी और थैली के वजन के हिसाब से थोक में उम्मीदवार खड़े किये, जिसको लेकर पार्टी के अंदर ही मत-विरोध चरम पर था। लेकिन, सामने शिवचरण दा के सिवाय कोई नहीं आ रहा था। अब राज्य से तीन राज्यसभा सदस्यों का चुनाव होना था। 'थैली लाओ, टिकट ले जाओ' के इस खेल में शिवचरण दा यह जान चुके थे कि सिद्धांत जैसी अब कोई बात नहीं है। सत्ता के गलियारे में कौन रंडी और कौन रंडुआ है—कहना ही बेमानी है। कभी किसी की प्रेमिका और कभी किसी के धर्मपुत्र के सिर पर सेहरा बँध जाता है। फिर कौन किसका इजारबंद खोल रहा है, कौन ब्रेज़ियर-अंडर यह शिवचरण दा से छिपा नहीं था। लिहाज़ा, टिकट फिर कोई थैली वाले न ले उड़ें, इसके होने वाली पार्टी मीटिंग से ठीक एक दिन पहले शिवचरण दा सोरेननाथ के घर पहुँच गये। तब सुबह के सात बज रहे थे और सोरेननाथ अभी-अभी सोकर उठा था और शौचालय जाने की सोच रहा था। तभी कमरे में शिवचरण दा दाख़िल हुए। सोरेननाथ ने आश्चर्य से उन्हें देखा और देह अकड़ गयी उसकी। शिवचरण दा ने न तो 'सलाम कॉमरेड' कहा, जैसे पहले कहा करते थे और न ही हाथ जोड़कर अभिवादन किया, बस हाथ में पकड़े हुए जार को एक झटके से अपने ऊपर उलट दिया। सारा कमरा पेट्रोल की तीख़ी गंध से भर गया। सोरेननाथ कुछ समझते, उसके पहले ही शिवचरण दा ने माचिस जला ली। हड़बड़ाये-बौखलाये हुए सोरेननाथ ने घबराकर कमरे से बाहर भागने की कोशिश की, उधर बाँह फैलाये शिवचरण दा सामने खड़े कह रहे थे—"अगर इस बार भी सौदेबाज़ी कर किसी बाहरी को टिकट दिया आपने, तो आप भी नहीं बच सकेंगे। इस पार्टी को यहाँ तक पहुँचाने के लिए हमने मूत को अमृत समझ कर पिया है और हड्डियाँ तुड़वायी हैं और आज हम पर ही बेलना चला रहे हो। अपने हित की खातिर गोबर को भी गुड़ बंताते हो और यहाँ के लोगों की दावेदारी पुख़्ता बालू का ढेर लगती है।" तमतमाये हुए शिवचरण दा ने जलती हुई तीली कमरे से बाहर फेंकी और तेज़ क़दमों के साथ बाहर निकल गये। सोरेननाथ उस मदारी की तरह भक खड़े रह गया, जिसका बंदर हत्थी छुड़ा उछलकर पेड़ पर चढ़ गया हो।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोरेननाथ ने शाम को पार्टी की आपात बैठक बुलायी और शिवचरण दा को इस उद्दंडता के लिए 'कारण बताओ' नोटिस जारी कर दिया—"पंद्रह दिनों के भीतर जबाब दो।" उधर शिवचरण दा संघर्ष के दिनों के साथी सोबरण से कह रहे थे— "इतना सब कुछ करने के बाद भी सोरेननाथ अपनी हथकंडों से बाज़ नहीं आया, तो इसका मतलब है कि अपनी मनमानी आगे भी करता रहेगा। किसी लोकल को राज्यसभा उम्मीदवार न बनाया जाना और आँख मूँदकर सब कुछ सहते जाना हमें बर्दाश्त नहीं हो रहा है। कुछ तो करना होगा।" शिवचरण दा फनियर साँप की भाँति फुफकार रहे थे—"अरे सतीश महतो यदि इसके योग्य नहीं था, तो रामलाल को बना देते। जिस सतीश महतो ने अलग राज्य की लड़ाई में अपना भाई खो दिया, 'जंगल बचाओ अभियान' में अपनी हड्डियाँ तुड़वायीं और जंगल-लुटेरों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए जान की परवाह तक नहीं की; दो-दो बार विधायक बनने का गौरव हासिल हुआ—वही आज राज्यसभा के योग्य नहीं समझा जा रहा है... चलो इसकी बात छोडते हैं! रामलाल मुंडा, जो जिनेवा जैसे अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में अलग राज्य हेतु आवाज़ बुलंद करता है, उसे क्यों नहीं इस लायक समझा गया। रघुवीर धवन जैसे लोग कब से इस राज्य के हितैषी बन गये, जो टिकट ले उड़े... सब पैसे का खेल है सोबरण... इस सोरना को तो सबक सिखाना होगा..."

"परंतु, हम कर ही क्या सकते हैं? सोरेननाथ सौदेबाज़ी का एक माहिर खिलाड़ी बन चुका है। भ्रष्टाचार का प्रतीक बन चुका है। फिर भी लोग उसकी चालाकी को नहीं समझ पाते।"

"लेकिन सोबरण, हम लोगों को बताएँगे कि यदि सोरेननाथ जैसे धूर्त नेताओं से नहीं चेते, तो आने वाला दिन उनका नहीं, फिर से बाहरी लोंगों की हुकूमत चलने लगेगी। इन नेताओं के बेटी-बेटों के लिए जगह की कमी नहीं होगी, लेकिन आपकी कहीं नहीं सुनी जाएगी।"

"लेकिन हम करेंगे क्या...?" सोबरण अब भी भकुआया हुआ था जैसे।

"हम एक बार फिर अपना संदेश लेकर लोगों के बीच जाएँगे", और इसके साथ ही शिवचरण दा पुरानी कुर्सी पर बैठे-बैठे झूलने लगे थे। उनके चेहरे पर गहरी वेदना थी। उधर राज्य भर में कार्यरत कई समाजिक संगठन अपने हक-हुकूक और अधिकार को लेकर आंदोलनरत थे। बीच-बीच में धरना-प्रदर्शन करते रहे थे। आज राज्यसभा सदस्यों का चुनाव होना है। बाहरी लोगों को उम्मीदवार बनाये जाने पर एक समाजिक संगठन 'आजसा' का विरोध-प्रदर्शन था। झंडा-बैनर लिये विधान-सभा की ओर बढ़ रहे हजारों की भीड़ वाले उस जुलूस में एक ज्वार-सा उमड़ रहा था। जैसे मन के अँधेरे में किसी ने मशाल जला दी हो—"बाहरी उम्मीदवार बाहर जाओ, हमारा नेता हमारे बीच का हो।" नारों और शब्दों के भावों से प्रतीत होता था कि उनमें अपने-पराये की समझ आने लगी है।

विधानसभा के बाहर मुख्य गेट पर तैनात पुलिसकर्मियों के बीच एक बहस-सी छिड़ी हुई थी—"जिनमें सदैव माँगने की प्रवृत्ति रही हो-वे लड़ने का हौसला कहाँ से पैदा करेंगे।"

"सिंह जी, आपको क्या लगता है, ऐसे जुलूस-प्रदर्शन कर ये लोग जाग रहे हैं या माँग रहे हैं?"

"सिन्हा जी, ये लोग न तो जाग रहे हैं और न माँग रहे है, बस चिल्ला रहे हैं, जिनकी आवाज़ कोई नहीं सुनता।"

"बात तो आप ठीक कह रहे है सिंह जी, लेकिन कभी-कभी हमें बेहद गुस्सा आता है जब यहाँ के युवा अपने हक़ और अधिकार की बात करने लगते हैं। युवाओं में बड़ी ताक़त होती है, चाहें तो ज़लज़ला ला दें।"

"पर हमने तो आज तक यहाँ ऐसे किसी ज़लज़ले को आते नहीं देखा। अरे, कुछ भी करें, परंतु हमारा ये क्या बिगाड़ लेगा सिन्हा जी, अभी भी यहाँ हमारे लोगों का ही राज चलता है। कुछ चरवाहे से चपरासी ज़रूर बन गये हैं, लेकिन साहब तो हमारे अपने ही हैं..."

"अरे लकड़ा, तुम उधर क्या कर रहे हो?" सिन्हा ने सावन लकड़ा नामक जवान से कहा—"देख, उधर से कुछ जंगली-भूचड़ बढ़ते चले आ रहे हैं-साले क़ानून-अमन के दुश्मन..."

सारे विरोधों-धरना-प्रदर्शन के बावजूद चार बजे के करीब राज्यसभा सदस्य के रूप में चुने गये ऐसे लोगों का चेहरा टी0 वी0 पर आने लगा था, जिनका इस राज्य से कोई लेना-देना नहीं था। कोई दिल्ली से, कोई गुजरात से तो कोई औरंगाबाद से था। देखकर सब ठगे रह गये थे। किसी ने कहा-"यह राज्य कभी विकास की गति नहीं पकड़ सकेगा।"

और दूसरे दिन ही राज्य के राजनीतिक गलियारों में जैसे भूचाल-सा आ गया था। अभी तक थैली के बल पर जीते सांसदों के चेहरे को राज्य की तीन करोड़ जनता पहचानने में ही लगी हुई थी कि सोरेननाथ की इस पैंतरेबाज़ी कि "वर्तमान रंडुए राजा को अब और आगे नहीं ढोया जाएगा," सभी सकते में आ गये और सोरेननाथ की घोषणा के अर्थ में स्वार्थ ढूँढने लगे।

सोरेननाथ की इस पैंतरेबाज़ी से ऐसा राजनीतिक तूफ़ान उठा कि नेताओं के रंग-ढ़ंग के साथ उनकी बयानबाज़ी भी हवा में उड़ने लगी, जो किसी बवंडर से कम नहीं था। फिर तो प्रदेश से देश की राजधानी तक एक खेल-सा शुरू हो गया और जनता अपने नेताओं की नीति और नीयत को बड़े ग़ौर से देखने लगी। शह और मात के इस खेल में रास्ता निकला सत्ता के फेर-बदल के साथ।

साल भर से राजसत्ता सुख भोग रहे रंडुए राजा को अपदस्थ कर सोरेननाथ ने सत्ता पर कब्ज़ा कर लिया। यह विशुद्ध रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जैसे को तैसा' वाली घटना थी। साल भर पहले जोड़-तोड़ घात-प्रतिघात और चालाकी से जिस तरह एक रंडुए ने राज की बाग़डोर हथिया कर-'गिनीज़ बुक ऑफ़ वर्ल्ड रिकॉर्ड' में अपने नाम का डंका बजवाया था और जिस तरह मधु की छत पर बैठ साथियों को मधुरमय जीवन जीने का अवसर दिया था, ज़ाहिर था कि सोरेननाथ जैसे गुरु, जो अब तक गुरुघंटाल बन चुका था; को कभी नहीं सुहाता। वही हुआ भी, सोरेननाथ ने उस रंडुए राजा को सत्ता से ही बेदख़ल कर दिया, लेकिन सोरेननाथ को पता था कि वह भी संविधान से बड़ा नहीं है और न प्रजातंत्र की प्रजा से। जनता चाहे, तो सर पर बिठा ले और न चाहे तो सर छिपाने की भी जगह न मिले। फिर भी सत्ता पर काबिज़ होने के बाद सोरेननाथ को लगा कि सब कुछ उसके बस में हो गया है। पद, पावर और पैसा-सब कुछ उसमें शामिल था, परंतु शायद वह यह भूल रहा था कि सत्ता की कुर्सी पर बने रहने के लिए एक निश्चित समयावधि में सदन का नेता होना उतना ही ज़रूरी है जितनी जीवन के लिए साँस। सेटल-मेटल में उसके दो माह बीत गये। तभी एक दिन उसके खास किसिम के सहयोगियों ने उसे सलाह दी और साथ में बिरसा की याद दिलायी-उस बिरसा की नहीं, जिसे राज्य का आदिवासी समाज आज भी अपना भगवान मानता है। उसके त्याग और बलिदान को याद कर रोता है। बल्कि, सोरेननाथ को याद दिलायी गयी उस–'बिरसा विधानसभा सीट' की जहाँ दो माह बाद उपचुनाव होना है। कई माह पहले एक स्कूली सभा में हमला कर नक्सलियों ने क्षेत्र के जुझारू और युवा नेता सह विधायक की (जो क्षेत्र की विकास गति में नक्सली संगठनों को सबसे बड़ा बाधक मानना था की हत्या कर दी थी। तब से यह सीट खाली थी और तब से ही शिवचरण दा और सतीश महतो यहाँ से उपचुनाव में किसी तेज़-तर्रार युवक को उतारने की मुहिम चला रहे थे। इनमें रामलाल मुंडा के बेटे गोपाल कृष्ण का नाम सबसे उपर था। उनको लेकर शिवचरण दा बिरसा भगवान की खोयी विरासत को पुनः वापस दिलाने की बात लोगों से उनके घरों में जा-जाकर कर रहे थे और लोग उनकी बातों को बडी गंभीरता से सुनते भी थे।

लेकिन राजनीति के इस ताज़ा घटनाक्रम ने शिवचरण दा जैसे माहिर राजनीतिक नटुआरे को भी सकते में डाल दिया था। ऊपर से मुख्यमंत्री के इस ऐलान ने कि 'चुनाव मैं बिरसा विधानसभा सीट से ही लड़ूँगा,' ने शिवचरण दा की नींद हराम कर रखी थी। कई दिनों तक वे क्षेत्र में नहीं निकले और रामलाल मुंडा के घर में बैठे-बैठे आगे की रणनीति पर सोचते-विचारते रहे। एक मँजे हुए रणनीतिकार की तरह, जैसा कि वे जाने जाते रहे हैं, आज भी वे गहन चिंतन में डूबे नज़र आये, तो सतीश महतो ने मौन तोड़ते हुए कहा–"शिवचरण दा, अब क्या होगा, चार माह से जिस मिशन को लेकर हम लोगों के बीच जाते रहे हैं, लोगों से कहते रहे हैं कि 'बिरसा भगवान का वंशज' ही तुम्हारा नेता होगा' उस पर तो जैसे पानी फिरने की नौबत आ गयी है।"

"मुख्यमंत्री के ऐलान से भी लोगों के बीच ज़बरदस्त ऊहा-पोह की स्थिति पैदा हो गयी है।"

"हाँ, सोबरण ठीक कह रहा है," सतीश ने आगे कहा-"सब हमारी ओर नज़रें उठाकर देख रहे हैं। उन्हें जबाव चाहिए-वह भी आपके मुँह से।"

तब भी शिवचरण दा गहरी ख़ामोशी में डूबे हुए थे। लेकिन, यह उनका पुराना अंदाज़ था। असल में यह निर्णय के द्वार पर पहुँचने की खामोशी थी। अब भी सभी की नज़रें उन्हीं पर टिकी हुई थीं। रामलाल मुंडा तक उन्हें समझने का प्रयास करते देखे जा रहे थे। इसी बीच दो पत्रकार भी सूँघते-साँघते वहाँ आ पहुँचे थे। वे भी किसी धमाके जैसी ख़बर की आस में थे। गोपाल कृष्ण के साथ नौजवानों का एक दल भी तब तक आ पहुँचा था। हरी पगड़ी बाँधें शिवचरण दा ने सबों को बारी-बारी से एक नज़र देखा और फिर सधे स्वर में बोले–"अब चाहे जो कुछ भी हो, हम चुनाव ज़रूर लड़ेंगे। गोपाल कृष्ण ही हमारा उम्मीदवार होगा। आज से ही आप सब चुनाव की तैयारी में लग जाएँ। बाक़ी सब हम पर छोड़ दो।"

"पार्टी से बग़ावत कर चुनाव लड़ना ठीक होगा शिवचरण दा?" रामलाल मुंडा के लिए शिवचरण दा की यह घोषणा किसी युद्ध-घोषणा से कम नहीं थी-"ख़ासकर ऐसे हालात में जब पार्टी अध्यक्ष और राज्य का मुख्यमंत्री उसी सीट से चुनाव लड़ने की घोषणा कर चुका हो... और, हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि आज सोरेननाथ के हाथ सत्ता है, पावर है, सारा तंत्र उसके साथ है. .. नक्सली संगठनों के प्रति उसकी सहानूभूति सब जानते हैं फिर भी आप....।"

"रामलाल जी, आपको महाभारत की लड़ाई याद है न," शिवचरण दा ने उतने ही सहज भाव से कहा, "दुर्योधन के साथ सब कुछ था-सिवाय जनता को छोड़कर। परिणाम क्या हुआ कौरव वंश का सर्वनाश हो गया! हम प्रजातंत्र में जी रहे हैं, तो कभी-कभी प्रजा की भी परीक्षा लेनी चाहिए। यही तो जानना है कि जनता क्या चाहती है–लूट-खसोट या विकास।"

"तो क्या हमारा गोपाल कृष्ण स्वतंत्र उम्मीदवार होगा?" सतीश महतो फिर बोल पड़ा।

"ज़ाहिर है, सोरेननाथ अपना चुनाव चिह्न हमें नहीं देगा। देगा, तो चुनाव लड़ने के लिए उसके पास बचेगा क्या? हाँ, इतना जान लीजिए, इस बार वह मुझे नोटिस नहीं देगा, सीधे पार्टी से बाहर कर देगा... बर्ख़ास्त करेगा... करे।"

"मै एक बार फिर कहता हूँ शिवचरण दा, इस पर पुनः सोच लिया जाए। सोरेननाथ के पास सब कुछ है, जो चाहेगा कर लेगा. .. करवा सकता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"रामलाल जी, शिवचरण जब एक बार सोच लेता है, उस पर दुबारा नहीं सोचता। मैं आपकी बात को मानता हूँ कि आज की तारीख़ में सोरेननाथ के पास सत्ता की पावर है, लेकिन हमें जनता पर पूरा भरोसा है। जनता का फ़ैसला ही प्रजातंत्र में अंतिम फ़ैसला माना जाता है और देखना, यह चुनाव इतिहास बनेगा-इतिहास।"

दूसरे दिन अख़बारों की सुर्खियाँ बनीं–"सोरेननाथ के विरुद्ध शिवचरण दा ने उम्मीदवार उतारा, कहा-बिरसा विधानसभा का उपचुनाव इतिहास बनेगा।" इसके साथ ही वे तमाम ख़बरें थीं जिन्हें लेकर सोरेननाथ और शिवचरण दा के बीच एक युद्ध-सा चल रहा था, जिनमें राज्यसभा टिकट बँटवारे में घोर धाँधली से लेकर कई ज्वलंत मुद्दे शामिल थे। गोपाल कृष्ण को लेकर अलग से एक आलेख छपा था कि 'बिरसा' विधानसभा सीट के चुनाव का वह अर्जुन है।

जैसी कि अपेक्षा की जा रही थी। सोरेननाथ ने एक आपात बैठक बुलायी और पार्टी सांसदों तथा विधायकों के बीच कहा-पार्टी के विरुद्ध इस उप चुनाव में जो काम करेगा, उसके लिए पार्टी में कोई जगह नहीं है। विरोधियों को आज से ही पार्टी से बाहर किया जाता है। और सभी सुन लो, अगले चुनाव में टिकट पाना चाहते हो, तो यह चुनाव जीतना होगा। यह चुनाव सिर्फ़ मैं नहीं, आप सभी लड़ रहे हैं।" फिर अगले दिन उसने प्रशासनिक तंत्र को कहा–"नक्सली एरिया में जाने से बचना चाहते हो, तो चुनाव जिताओ।"

सोरननाथ के जीवन का यह एक अहम पड़ाव साबित होने जा रहा था, जिसमें लोगों उसके जीवन का भूत-वर्तमान-भविष्य के साथ उसकी करतूतों को आँकने का सुनहरा मौक़ा होगा। वहीं शिवचरण दा को यह साबित करना था कि अभी वे चुके नहीं हैं।

यकायक, बल्कि रातों रात बिरसा विधान सभा सीट का यह उपचुनाव 'हाई-प्रोफाइल' में बदलता चला गया। यूँ तो यह एक उपचुनाव था, लेकिन यह सीट चर्चा में आ गयी थी, तो इसे एक पार्टी के दो नेताओं की वर्चस्व की लड़ाई के रूप में भी देखा जा रहा था। एक ओर सोरेननाथ अपने 'तंत्र' बल के सहारे चुनाव जीत कर पार्टी में बरकरार बने रहने की जद्दोज़हद में था, वहीं दूसरी तरफ़ शिवचरण दा का राजनीतिक कैरियर ही जैसे दाँव पर लगा हुआ था। नक्सली भी वोट-बहिष्कार का ऐलान कर अपनी मॉद में 'परिणाम' के इंतज़ार में बैठे हुए थे। परंतु जनता ख़ामोश थी। वह समझ रही थी कि सोरेननाथ की हार का मतलब राजनीतिक संकट का उत्पन्न होना होगा। इसका दूसरा रूप राज्य में राष्ट्रपति शासन के रूप में देखा जा रहा था। प्रचार-प्रसार के दौरान् शिवचरण दा का यही भाषण होता–"अगर आप भ्रष्टाचार और लूट-खसोट को मिटाना चाहते हैं, तो सोरेननाथ जैसे नेताओं को चुनाव जीतने से रोकना होगा। जनम देने वाला जनक कहलाता है। सोरेननाथ ही भ्रष्टाचार का जनक है।"

गोपाल कृष्ण मुंडा को लेकर युवाओं में काफ़ी उत्साह और जोश था। उसकी टोली जिधर से निकल जाती, लोग ढोल, माँदर और नाच से उसका स्वागत करते, पर जैसे ही सोरेननाथ का चुनाव काफ़िला क्षेत्र में घुसता लोग घरों में घुस जाते, जैसे सोरेननाथ नहीं, गाँव में कोई फनियर साँप घुस आया हो।

इधर अभी से ही सोरेननाथ की हार-जीत को लेकर राजनीतिक अटकलबाज़ियाँ काफ़ी तेज़ हो गयी थीं। जगह-जगह सोरेननाथ के पोस्टर- बेनर के साथ बड़े-बड़े कट आउटों से छोटी बिरसा विधानसभा सीट बड़ी हो गयी थी। उसके बनिस्पत गोपाल कृष्ण मुंडा का नाम मुश्किल से कहीं-कहीं लिखा-छपा नजर आ जाता था।

उधर नक्सली संगठनों की वोट-बहिष्कार पोस्टरबाजी और उनका धमकी भरे फ़रमान 'पहला वोट-पहली गोली' से भी मतदाताओं का मन काफ़ी डरा, डरा सहमा-सहमा था। अब देखना यह था कि मतदाता किसकी सुनते हैं? दो सौ में सत्तर मतदान केंद्र ऐसे थे जहाँ नक्सली संगठनों का ख़ासा प्रभाव था, लेकिन चुनाव-प्रचार के दौरान् इन क्षेत्रों में युवा मतदाताओं के मन में बैठे विचार भी सामने आये कि "नक्सली संगठन वाले हमें यह बताएँ कि वो हमारा विकास किस तरह करना चाहते हैं? उनके पास विकास का मॉडल क्या है? विचार क्या है? स्कूल भवनों को ध्वस्त कर, सड़क-पुल-पुलिया न बनने देने से या बिजली का काम गाँवों में न होने देने से गाँवों में बिजली नहीं आएगी। स्कूल नहीं होंगे, तो हमारे बच्चे पढ़ेंगे-लिखेंगे कैसे? फिर हमारा विकास होगा कैसे? नक्सली भाई हमें बताएँ तो सही..... कौन नहीं जानता कि वोट-बहिष्कार की आड़ में नोटों का धंधा होता है।"

इस तरह युवाओं का ग़ुस्सा न सिर्फ़ नक्सली संगठनों के प्रति देखा गया, बल्कि सोरेननाथ पर तो जैसे बम ही फट गया, जिसमें उनकी राजनीति के परखचे उड़ गये। कल मतदान हुआ था और आज दोपहर को जैसे ही चुनाव परिणाम की घोषणा हुई, वह 'हार' के साथ ही इतिहास के पन्नों में मुँह छिपाने जा छुपा था।

शिवचरण दा गमछी झाड़ते हुए उठ खड़े हुए, पर जाने से पहले भीड़ से यह कहना नहीं भूले–"चुनाव जीतना या जितवाना ही सिर्फ़ हमारा मक़सद नहीं था, बल्कि राज्य में व्याप्त भ्रष्टाचार, लूट-खसोट, परिवारवाद, उग्रवाद और वोट-बहिष्कार की आड़ में सौदेबाज़ी के प्रति भी लोगों को जागरूक करना था। हमें ख़ुशी है कि हम अपने मक़सद में कामयाब रहे। आगे हमें इसी तरह सजग रहना होगा। अच्छा, तो हम चलते हैं। आप सबों को मेरी हार्दिक बधाई..."

इसके साथ ही शिवचरण दा सतीश महतो और सोबरण को साथ लेकर आगे बढ़ गये। उनके माथे पर बँधी हरी पगड़ी और हरी नज़र आने लगी थी।

संपादक-'महुआ त्रैमासिकी'
तारमी कोलियरी, बोकारो–829132 (झारखंड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साजिश

पूरन सिंह

रामपाल सभी किसानों से अलग था। वह अन्य किसानों की तरह गेहूँ, ज्वार, बाजरा या मक्का की खेती नहीं करता था। वह तो सब्ज़ियाँ और तरकारियाँ ही उगाता था अपने खेत में। खेत भी कोई ज़्यादा थोड़े ही था उसके पास, मात्र पाँच बीघा ज़मीन थी, उस में ही वह सोना उगाता था। खेत वही था—उसी बरगद के पेड़ के दांयीं ओर बिल्कुल सत्यव्रत पंडित जी के खेत से लगा हुआ। मेंड़ से मेंड़ जुड़ी थी पंडित के खेत की। पंडित जी का खेत बीस बीघा का था, लेकिन रामपाल की मेहनत और ईमानदारी, सूझ-बूझ और कार्य-प्रणाली के अन्य सभी किसान कायल थे।

परिवार भी कोई बड़ा थोड़े ही था उसका वह, उसकी पत्नी मालती और एक प्यारी-सी बेटी बीना। पलकों पर रखता था बेटी को—लाड़-प्यार उतना ही, जितना अपने पाँच बीघा खेत से था। नहीं-नहीं, खेत और बेटा-बेटी में फ़र्क़ होता है। ये भी कोई बात हुई। मैं कहाँ कह रहा हूँ, यह तो रामपाल कहता था कि उसका खेत उसकी औलाद है—औलाद धोखा दे जाए, लेकिन खेती कभी धोखा नहीं देती।

तीसरी कक्षा में पढ़ती थी उसकी बेटी। पत्नी... पत्नी तो साक्षात् सीता है। गाँव के सभी लोग कहते थे कि रामपाल के एक अच्छे किसान होने में उसकी मालती का बहुत बड़ा हाथ है और स्वयं रामपाल, वह तो उसे सिर्फ़ इतना ही कहता था, "ए मल्तिया, तू मेरी औरत थोड़े ही है, तू तो मेरो बड़ो भइया है।" कभी-कभी आल्हा की ये पंक्ति कहने लगता—"घर में भइया बैरी लागे, रण में लागे दाहिने हाथ...। इससे आगे उसे याद ही नहीं था। कई-बार मालती नाराज़ भी हो जाती थी और कहने लगती थी, "घर में बैरी क्यों...घर में दाहिनो हाथ क्यों नाँय।"

"अच्छा घर में भी और बाहर भी", और इतना कहने के बाद अपनी मल्तिया को चूम-चूम लेता था रामपाल।

उस दिन खेत में घास-फूस साफ़ कर रहा था। आलू उगाये थे। पांच बीघा खेत हरियाली से पटा पड़ा था। अन्य किसानों के पास बीसों बीघा ज़मीन थी, लेकिन इतना अच्छा आलू किसी के पास नहीं था। हो क्यों न , समय पर खाद-पानी, निराई, गुड़ाई करता था रामपाल और साथ देती थी उसकी मल्तिया।

"मल्तिया, इस बार बारे के न्यारे होइगें... देखिए तू खूब सारा पैसा आएगा और फिर तेरे लिए....," इसके आगे कुछ और बोलता कि बीच में ही रोक दिया था मालती ने, "रहने देओ, रहने देओ... तुमने लाइ दए और हमने पैन लए।"

मालती जानती थी रामपाल को, जब उससे कोई बड़ा काम करवाना होता, तो इसी तरह मीठी-मीठी बातों का शहद चटाता था। घास निकालती खुरपी रोक दी थी रामपाल ने। पास आ गया था अपनी मल्तिया के।

"हे मालती, ऐसे मति कहो", भावनाओं के आलोड़न में चारों ओर फैली हरियाली पर पड़ रही सूर्य की किरणें सतरंगी हुआ चाहती थीं। बाँहों में भर लिया था अपनी मल्तिया को रामपाल ने। मालती भी कहाँ उसे ताने देना चाहती थी। यह तो उसका स्त्री-रूप था, जो रुक नहीं पाया था। अपने पति को इस तरह देख खुरपी एक तरफ़ फेंक उसी के आगोश में समा जाना चाहती थी मालती। दोनों ने काम बंद कर दिया। एक-दूसरे को देखे चले जा रहे थे, मानो दो हंसों का जोड़ा आश्रय पाकर निढाल हुआ चाह रहा हो।

"मालती", आज मल्तिया नहीं कहा था रामपाल ने, "तुम तो अच्छी तरह जानती हो कि हममें कोई अवगुण नाहिं है... अभई से चार पैसा जोड़िये तभही तो अपनी लली की शादी के लै पैसा इकट्ठा हुइए। अब तुम देखो हमाई बिटिया पढ़ रही है, तो बाके लैं कोई हमाए जैसो किसान थोड़े ही लाइए, वह तो काऊ खूब पढ़े-लिखे ते शादी करेगी... है नॉय....और तुम...तो मेरी..."

इसके आगे कहाँ बोल पाया था रामपाल। और मालती...वह तो पागल हुई जा रही थी। पछता रही थी कि उसके मुँह से निकल कैसे गई यह ताने भरी बात। 'दइया रे दइया, मैंने कैसे कह दई इनसे', मन ही मन सोच रही थी। छलकते रामपाल को अपने आँचल का सहारा देकर बैठा लिया अपने पास... अपने पास क्यों.. अपनी ही गोद में, मानो कोई अबोध बालक हो, जो परियों की कहानी सुनने की ज़िद पर उतावला हो।

भावनाओं के सैलाब में सब कुछ बह जाना चाह रहा था कि मालती के होंठ काँपे थे, "तुमाए सिवाए मेरो कोई और...।" काँपते होठों ने आँखों के साथ हाथ मिला लिया था। आसुओं का सैलाब आने ही वाला था। आँखों पर हाथ रख दिया था रामपाल ने। बड़ी देर तक दोनों शांत बैठे रहे थे—निश्चल।

"मालती मेरे पास कछु था थोड़ा ही," कुछ शब्द हवा में तैरने लगे।

"तो का भयो। आदिमी के पास हिम्मत और लगनि होनी चाहिए" मालती को देखकर लग रहा था मानो अरस्तू बोल रहा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम ठीक कहती हो मालती... पिता कुछ कमाते-धमाते नाँहि थे," रामपाल ने इतिहास को कुरेदा, तो मालती ने इतिहास से कुरेदी गयी मिट्टी को अपनी अंजुली में भरने की अनथक कोशिश की।

"अम्मा ही मेहनत करती थीं.. जेई खेत थो, जामें अम्मा जितनों कर लेती वाही से घर की गुजर... बसर चलती थी। पिता तो बस जो पैसा अम्मा से मिलते उनसे जायेके अपने यार-दोस्तन के संग चढ़ाए आते थे। अम्मा रात-दिन मेहनत करतीं और लोगन के खेतन में काम करतीं। कछु पैसा, गेहूँ-चावल और तरकारी मिल जाती, वाही से घर की गुजर-बसर चलती थी.... एक दिन, अम्मा बताती थीं पिता को उल्टी होने लगी—ख़ून की उल्टी और वह पूरो दिन नाँहि कटो उन्हें... माँ ने रोइ-रोइ के बुरो हाल कर लओ। तब मैं सात साल को ई तो हतो। तीसरी में जात थी इस्कूल... पिता के मरने के बाद....अम्मा ने पूरी जिंदगी एक मरद की तरह काटी. ...मैं अम्मा को काम करत देखतो, तो तड़पि-तड़पि जातो। मैंने पढ़ाई छोड़ि दई... अम्मा बहुत खिसियाई, लेकिन मैं नाँहि मानो. ..मेरी अम्मा खेतन में काम करे और मैं... नाँहि... नाँहि...। धीरे-धीरे मैं खूब ज्वान हुए गओ और अम्मा ने एक दिन मोते कई—लला, अब तू बहू लाई दे....। अम्मा की कही बात मेरे लै भगवान की बात. .. मैंने हाँ कर दई और तुम्हारे संग हमरो रिश्ता पक्को होई गओ।"

रामपाल एकटक कहीं दूर क्षितिज में देखता ऐसे बोल रहा था, मानो सब कुछ वहाँ लिखा हो और मालती, वह तो सिर्फ़ उसकी आँखों में उसके सपनों को तैरते देख रही थी।

"तुम्हारे संग रिश्ता पक्को भयौ और अम्मा ने बियाह की तैयारी शुरू कर दई। हमाओ कोई हतो तो है नाँहि... सो अम्मा और मैं दोनों जने सामान लाते थे बाजार से। घर मैं धरनो सहेजनो भौत कम थो... एक दिन अम्मा बाजार से हमाए बियाह के ले साड़ियाँ लाय रही थी। मैं अम्मा के संग ही हतो। अम्मा खुशी में पागल भई जाय रही थी कि... कि सामने से आइ रही कार ने टक्कर मार दई और अम्मा... अम्मा...", बताते-बताते रोने लगा था रामपाल। उसके मुँह से अब सिर्फ़ 'अम्मा-अम्मा' ही निकल पा रहा था। सकपका गयी थी मालती और अपने पति की आँखों में आये तूफ़ान को मुट्ठी में भर लेना चाह रही थी। "नाँहि... नाँहिं... न... नाँहिं. .. बिल्कुल नाँहिं... कतई नाँहिं, सिर्फ़ इतना ही निकल पा रहा था उसके मुँह से। पति की व्यथा में तड़पने लगी थी मालती। कभी उसके आँसू पोंछती, तो कभी उसे अपने आँचल से सहलाती। रामपाल पत्नी का प्यार पा चुप होने लगा था।

"माँ के जाने के बाद मना कर दिया था मैंने शादी के लिए। आगे बताने लगा था, तभी एक दिन मन्नी चाचा ने कहा था—बेटा, अपनी माँ की इच्छा तो पूरी करनी पड़ेगी तोइ—माँ की इच्छा , मैं तड़प गया था और मैंने शादी के लिए हाँ कर दी थी। तुम आइ गई, तुममें माँ, पत्नी, भैन और बेटी सब कछु दिखाई देन लगो थो मोइ। उस दिन से आज तक तुम मेरी ज़िंदगी बन गईं माल्ती।" फिर मालती की तरफ़ देखने लगा था, "माल्ती तुम्हारे सिवाय मेरो और कोई..."

मालती कुछ नहीं बोली। वह तो पगली सी अपने पति को देखे चली जा रही थी—कितना सच्चा, कितना प्यारा।

जीवन-गाथा कहें या जीवन-व्यथा, रामपाल ने मालती के समक्ष सारे पृष्ठ खोलकर रख दिये थे। पृष्ठ फड़फड़ा रहे थे कि. .. कि न जाने कहाँ से पंडित सत्यव्रत अपने खेत की मेंड़ पर खड़े उन दोनों के प्यार को देख रहे थे या यह कहें कि सूर्य को ग्रहण लग गया था। इतना प्यार इस उम्र में भी! आँखों में विध्वंस की लपटें उठने लगी थीं। उन दोनों के प्यार से शायद इतने नाराज़ नहीं थे। वे तो इस बात से पिछले कई वर्षों से अपन अंदर एक आग लिये बैठे थे कि उनकी बीस बीघा खेती में कुछ नहीं उग रहा था, वहीं रामपाल का पाँच बीघा खेत सोना उगल रहा था।

पंडित जी ने अपनी ओर कभी नहीं देखा था, सिर्फ़ जलते थे रामपाल से। पंडित जी खेती नहीं करते थे, सर्दी गर्मी, बरसात कथा बाँचते थे। बड़े-बड़े लोगों के यहाँ सत्ता (सात दिन तक चलने वाला कथा-पाठ) बैठती, कहीं महीनों-महीनों पाठ होता। पंडितजी को अन्न-खील-बताशा मिलता। धन-धान्य दक्षिणा में मिलता। कपड़ों से लदी रहतीं पंडिताइन। बच्चा कोई पैदा नहीं हुआ था। कोई कहता पंडित जी के पास पंडिताइन के साथ सोने का समय ही नहीं था, कोई कहता पंडित जी में जान नहीं है, तो कोई पंडिताइन में दोष निहारता था। ख़ैर!

पंडित जी के पास खेती-बाड़ी के लिए समय ही नहीं था। खेत को कई बार बटाई पर उठा देते थे और बटाईवाला बटाई की लुटाई कर लेता। कथा-पाठ कई बार नहीं भी हो पाता, तो इकट्ठा किया गया अन्न-जल ही काम आता। स्थिति कई-बार विपरीत होने लगती, लेकिन, रामपाल हमेशा एक-सा ही रहता, मेहनती, उद्यमी और दृढ़ निश्चयी। हमेशा ख़ुश रहने वाला। लेकिन, आज तो उन दोनों का प्यार देखकर बिलबिलाने लगे थे पंडित सत्यव्रत, क्योंकि स्वयं तो घर में कम ही रहते थे, पंडिताइन तड़पती रहती थी और उनके घर आने पर गुस्सा निकालती थी।

"बहुत प्यार है तुम दोनों में रामपाल", राख में दबी चिनगारी दहकने लगी।

"अरे नाँहि पंडित जी... आ... हाँ... नाँहिं... आ हाँ... थोड़ी देर आराम करने लगे थे..." हकलाते हुए बोला था रामपाल।

"कोई बात नहीं... कोई बात नहीं," कहते हुए चलने लगे पंडित जी। अब तो सिर्फ़ उनका मस्तिष्क काम कर रहा था।

मालती और रामपाल फिर उठकर अपने आलुओं की निराई करने लगे। सुबह से दोपहर, दोपहर से शाम होने लगी। दोनों घर चले आये। दोपहर को ही स्कूल से बेटी आ गयी थी घर पर। रात को खाना बनाया मालती ने और तीनों ने प्यार से खाया। फिर अपनी बेटी और पति के साथ सो गयी मालती।

अगली सुबह सूर्य अभी नहीं निकला था। निकलने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकुल था, लेकिन निकल नहीं पा रहा था कि....मालती के कानों में मंदिर की घंटियों की आवाज़ें सुनायी देने लगीं। आवाज़ें मंदिर से नहीं आ रही थीं। आवाज़ें तो उसके खेत की तरफ़ से आ रही थीं। नहीं... नहीं भ्रम हो रहा था उसे। लेकिन, भ्रम कब तक रहता आवाज़ें धीरे धीरे और तेज़ होने लगीं। मालती ने राजपाल को जगाया—"ए... सुनो... तो..." का है मल्तिया, सोन दे नाँहि", अँगड़ाई ली थी रामपाल ने।

"सुनो तो, अपने खेत की ओर से ऐसी आवाज़ें आई रही हैं, जैसे मंदिर में घंटी बजि रही होइ," एक ही साँस में कह गयी मालती।

"तुम पगलाइ गई हो", इतना कहकर रामपाल ने अपनी मल्तिया की कलाई पकड़कर चारपाई पर खींच लिया।

"पागल मति बनो। मोई तो कछु ग... ड़... ब... ड़...", शंकाओं ने फन उठा लिये थे और इस बार तो रामपाल भी विचलित होने लगा।

चारपाई से उठा और अपने खेत की ओर भागने लगा। पीछे - पीछे मालती और उसकी बेटी। थोडी ही देर में तीनों अपने खेत पर थे।

पंडित सत्यव्रत सिर से पाँव तक नंगे थे, सिर्फ़ एक बित्ता भर के कपड़े से अपने लिंग को ढका हुआ था उन्होंने। सारे शरीर पर राख लपेटी हुई थी। उनके चारों ओर बहुत सारे साधु-संत थे। पंडित जी चीमटा बजा रहे थे और कुछ साधु-महात्मा घंटा बजा रहे थे, तो कई बेला, तो खड़ताल चटका रहे थे।"

"जय सिया राम बोलो....जय सिया राम....," तो कभी "जय भोले...", तो कभी "राम राम बोलो..प्रभु....राम राम बोलो।" बीच-बीच में 'जय श्रीराम...' के नारों से आकाश गूँज रहा था।

यह सारा भजन-कीर्तन रामपाल के पाँच बीघा खेत में ही हो रहा था।

जिस खेत को एक दिन पहले उसने सजाया-सँवारा था, आज बुरी तरह कुचला जा रहा था। खेत के बीचों बीच शिवलिंग था, जो ज़मीन से अचानक फूट पड़ा था; जिस पर बेल, आम्रपत्र, गंगाजल और न जाने क्या-क्या चढ़ाया जा रहा था। सुगंधित अगरबत्तियों से संपूर्ण वातावरण सुवासित था।

"मेरे खेत में क्या हुआ है?" अबोध बच्चे की तरह बोला था रामपाल।

"तुम्हारे खेत में भगवान शिव प्रकट हुए हैं। तुम बड़े भाग्यवान हो, जो तुम्हारे खेत में भगवान ने अवतार लिया", एक महात्मा बोले।

"लेकिन मेरो खेत... मेरे आलू की खेती... मेरी लली की पढ़ाई... मेरी बीना की शादी... मेरी मल्तिया...", एक ही साँस में बोलना चाह रहा था, लेकिन जीभ कहाँ साथ दे रही थी!

"मूर्ख, सांसारिक चीज़ें नश्वर हैं... भगवान शिव ने तेरा ही खेत क्यों चुना... क्योंकि तू सच्चा इन्सान है... भगवान हमेशा सच्चों के साथ रहते हैं... तू धन्य हुआ...", बड़ी-बड़ी जटाओं वाले त्रिशूल धारी महात्मा जी ने अभी की बात जान ली थी, जो देखने में भी भगवान शिव ही लग रहे थे।

रामपाल की आँखो आगे चिनगारियाँ उड़ने लगी थी कि मालती भागती हुई शिवलिंग के पास पहुँच गयी। वह कुछ देर तो रुकी, फिर पंडित सत्यव्रत का गला पकड़कर चीखी, "हरामी, मैं कल ही समझ गई थी, तोसे मेई खुशियाँ देखी नाँहिं गईं... तेई चालि मे समझि गई कुत्ता... तेरी तो जानि ले लिए ढोंगी..."

"बच्चा, भगवान शिव का अपमान... भगवान... शिव का तांडव... बचो, उससे बचो...," मानो कोई विरक्त भाव से बोल रहा हो। फिर उसका सिर अपने दोनों हाथों से पकड़कर उसके कान में फुसफुसाये थे पंडित जी, "बहुत घमंड था इस खेत पर तुझे.. . अब... अब... जो बने सो कर ले तू और तेरा खसम....।" और फिर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। वहाँ खड़े अन्य साधु-महात्मा कुछ नहीं समझ पाये, वे तो सिर्फ़ इतना जान पाये कि पंडित जी ने मालती के कान में ज्ञान फूँक दिया है और बाद में आशीर्वाद दिया है।

मालती बेहोश हो गयी। रामपाल ने भागकर अपनी मल्तिया को सँभाल लिया। बेटी रो रही थी। पवित्र मंत्रों और भागवान शिव के भजन-कीर्तन से दसों दिशाएँ गूँज रही थीं। मालती को अपनी बाँहों का सहारा देकर उठाया रामपाल ने और अपने घर की ओर चलने लगा।

देखते ही देखते भीड़ इकट्ठी हो गयी। भीड़ में से कोई कोई कह रहा था, "बहुत बड़ा मंदिर बनेगा भगवान शिव का.... धन्य हो गया रामपाल... ठाकुर साहब ने ईंटों के लिये बोल दिया है भट्टेवाले गुप्ता जी को।"

शब्द मानो ज़हर घोल रहे थे रामपाल के कानों में।

घर आकर उसने अपनी पत्नी को चारपाई पर लिटाया। बेटी अपनी माँ के सिर को सहला रही थी। रामपाल अपनी मल्तिया को होश में लाने की कोशिश कर रहा था कि न जाने उसे कुछ याद आने लगा।

हाँ-हाँ, पिछले साल मेले में से भगवान शिव की मूर्ति लाया था वह। उस तिखाल में रखी है। रोज़ पूजा करता है उसकी... हाँ-हाँ, बिल्कुल ठीक', अपने आप से बातें करने लगा और तिखाल के पास गया रामपाल। कुछ देर सोचता रहा, फिर उसने भगवान शिव की मूर्ति उठायी और ज़मीन पर पटक दी, टुकड़े-टुकड़े बिखर गयी भगवान शिव की मूर्ति।

मूर्ति के बिखरने की आवाज़ से मालती के अवचेतन मस्तिष्क में हलचल हुई और वह उठने का प्रयास करने लगी। रामपाल अपनी मल्तिया को अच्छा होते देख रहा था।

240, फरीदपुरी,
वेस्ट पेटल नगर
नई दिल्ली-110008

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काँच का पुतला

गौरहरि दास

जब पके आम और कटहल की मीठी सुगंध से घंटेश्वर हाट पट्टी का खुला मलिन धूसर चेहरा मह मह बासे, उस समय 'पहली रज' आये हमारे गाँव को। काजू वन में मधुमक्खियों की भीड़ ख़त्म न हुई होती जब, इमली के पेड़ की डाल पर कौओं की मूड़ की तरह मंतेई नदी के माथे पर झूलें काले मेघ, उस समय पहली रज के आने के रास्ते में गाँव का पवन बिछा दे करंज के नन्हे-नन्हे फूल! बड़े पोखर के गँदले पानी में लड़कियाँ अपनी उजली देह माँजें-रगड़ें, रसोईघर से 'पोड़ पीठा' की महक छूटे, स्कूल के मैदान में घास, नये पत्ते अँखुआते बढ़ चलें और हमारे गाँव के रास्तों पर चूड़ियाँ, आलता और रिबन बेचने वालों की भीड़ बढ़ जाए।

और उस समय आते बट चाचा। उनका बगुले-सा सफ़ेद फर्-फर् कुर्त्ता दिख जाए। नये पोखर की मेंड़ से ही कंधे पर नीला गमछा, पाँव में नीली चप्पल और दोनों हाथों में दो जादुई झोले। और एक कोई बट चाचा के उस एक बड़े झोले को कभी हाथ में झुलाये, तो कभी कंधे पे झुलाये पीछे-पीछे चलता रहे—जिसमें होते थे गुच्छे-गुच्छे सपने, बीड़े-बीड़े विस्मय।

हमारे घटनाहीन कैशोर्य की शाखा में, आम की शाखाओं में बौर की तरह घटनाएँ गुँथी होतीं। हम लोग बट चाचा के आसपास होने के लिए आपस में प्रतियोगिता करते। चिड़ियों के डैनों की तरह अपने दोनों हाथ फैलाये हम लोग 'कितकित' खेल शुरू कर देते। उस नये पोखर की मेंड़ के पास से बट चाचा को स्वागत जताते ले आते।

मैं चट् से बट चाचा के हाथ से झोली ले आने को हाथ बढ़ा देता। मेरे मन के रहस्य-भेदन में असमर्थ बट चाचा मेरी आज्ञाकारिता और भक्ति से मुग्ध होते। मेरी ओर हाथ की झोली बढ़ाते कहते, "होशियारी से पकड़, गिर जाएगी।"

बट चाचा की वह भरी झोली मुझे फूलों से भरी डलिया-सी लगती। बट चाचा पूछते, "स्कूल की छुट्टी हो गयी क्या रे?" और किसी के कुछ उत्तर देने से पहले मैं कहता-"हाँ, किस दिन से।"

बट चाचा बड़े पोखर की पत्थर की सीढ़ी पर हाथ-मुँह धोते, फिर चंद्रशेखर महादेव को सिर नवाते। वहाँ से फिर दूसरी झोली को और किसी के हाथ की ओर बढ़ाकर वे गुरुजन को प्रणाम और दंडवत जता घर को आते।

उनका घर में इंतज़ार कर रही होती एक छोटी 'मंगला यात्रा'। माँ बरामदे में एक चटाई बिछा देती, गेल्हादाई एक पानी का लोटा लाकर रख देती। चाची एक हाथ-पंखा लाकर बट चाचा के हाथ में थमातीं। पिताजी बट चाचा को आशीर्वाद देते, हमें भी ताक़ीद करते,"अरे आदमी को ज़रा हवा भी खाने दो। चारों ओर घेरकर क्या देख रहे हो?"

लेकिन, हम लोग पिता की ताक़ीद को शरीर से मैल की तरह झाड़ देते। हमारी नज़र टिकी होती बट चाचा के बैग और बड़ी गठरी पर। बट चाचा घर-भीतर की ओर देखते कहते, "पहले बच्चों की बात ज़रा समझ लें।"

फिर चाची हमें लाई-उखरा बाँटने-सा एक चौथाई संदेश देतीं। बट चाचा की अन्य चीज़ों पर डाइन की सहेलियों की नज़र पड़ने की आशंका से अपने को स्वेच्छासेवी की भूमिका में बिठाकर मैं चिल्लाता, "चलो-चलो, संदेश तो खा लिये, और क्या ? साँझ को कलकत्ते की कहानी सुनना।"

साथी मेरे सौभाग्य से ईर्ष्या करते और मन ही मन मेरे दुर्व्यवहार को गालियाँ देते जाते। उसके बाद मैं फिर सीधे बट चाचा की गठरी के पास जाकर बैठ जाता-मछली मारते समय पोखर मेंड़ पर बैठे बगुले की तरह।

बट चाचा थक चुके होते। कहते, "दूसरी बेर बैग वगैरह खोलेंगे।"

उनके इस प्रस्ताव पर राज़ी होने के सिवाय कोई चारा न होता। लेकिन, मैं उनकी नज़दीकी नहीं छोड़ता। काया निकट छाया की तरह मैं उनके पास ही रहता।

बट चाचा अपने हाथबैग से चकचकिया खोल भीतर घुसे टुथपेस्ट निकालते। ब्रश पर पेस्ट लगाकर बाड़ी वाले बरामदे में दाँत माँजते। मैं उनके मुँह की ओर ताकता रहता। साबुन फेन जैसे बुलबुलों से भरे उनके मुँह को देखकर सहड़ा, नीम, करंज के दातून पर मुझे दया आती। पिता जी के इस्तेमाल किये गुड़ाखू से घृणा होती। मैं सोचता रहता कि बड़े होने पर बट चाचा की तरह मैं भी ब्रश पर टूथपेस्ट लगाकर दाँत-माजूँगा। उस समय बाड़ी बरामदे पर दाँत साफ़ न कर मैं बड़े पोखर तक जाऊँगा। लिटू, चुंई, बगुलि और नंड़ा सबको दिखा-दिखा दाँत माँजूँगा।

लेकिन, बट चाचा की कौन-सी चीज़ भला मैं संग्रह कर सकूँगा! उनकी जादुई झोली में अद्भुत-अद्भुत चीज़ों की भीड़। बट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाचा दाँत साफ़ करने के बाद नहाने को निकलते। बैग से निकलता खोल में यत्न से घुसा दक्-दक् साबुन। बट चाचा के उस खोल को फेंकते ही मैं लपककर उसे उठाकर अपनी पाकेट में छिपा लेता। आसपास कोई न होते वक़्त उसको नाक से लगाकर सूँघता—बाप रे, क्या सुगंध है खोल की!

बट चाचा उसके बाद एक छोटी शीशी निकालते। उसकी ठीपी खोलते ही उसकी मह-मह महक से हमारे घर की फूहड़ गंध कहीं ग़ायब हो जाती। मैं और ज्यादा देर अपने विस्मय को न सँभाल पा बट चाचा से पूछता—"ये क्या सुंगधित तेल है।"

"हाँ, इसका नाम केओ कॉर्पिन है। तू इसको लेकर चल। सिर धोने के बाद इसे लगाएँगे। मैं ट्यूबवेल का हैडंल दबाने को जाने किस समय से प्रस्तुत रहता। मेरी बटन टूटी पैंट से कहीं असहयोग न हो जाए, इस आशंका से उस पर पिता जी का नीला गमछा कमरपट्टी की तरह कस लेता।

बट चाचा ट्यूबवेल के पास पहुँचकर पूछते, "और कोई तो नहीं है रे यहाँ?"

मैं छिपकली-सा इधर-उधर देखता; कहता, "नहीं, तुम नहा लो।"

बट चाचा अपनी कमर से एक सिगरेट का पैकेट बाहर निकालते। खस के झुरमुट में जाकर रुकी हवा वाली जगह पैकेट खोलते और उसके भीतर से एक जरी निकाल फेंकते। हमारे गाँव की डाइन हवा उस जरी को उड़ा ले, इसके पहले मैं उसे दौड़कर लाता और जेब में भर लेता। बट चाचा माचिस की तीली लगाकर सिगरेट का धुआँ निकाल गोल-गोल छल्ले छोड़ते। उस समय बट चाचा दिखते दादी की कहानी के राजकुमार की तरह।

मैं परम उत्साह से ट्यूबवेल का हेंडल दबाता। बट चाचा महकते साबुन से नहाते। पोंछ-पाँछ हो चुकने पर सिर में सुंगधित तेल लगाते। फिर मुझसे कहते, "बैठ, मैं हेंडल मारता हूँ, तू भी नहा ले।"

गीला गमछा पहनकर बट चाचा के आगे-आगे गाँव की सड़क पर चलते समय मेरे दोनों गोड़ों के फ़ासले अनजाने बढ़ते जाते। मेरे शरीर और सिर से मह-मह महक निकलकर सड़क भर में फैल जाती। मैं उस समय मन ही मन सोचता, "काश, बट चाचा गाँव में हमेशा रहते।"

बट चाचा खाने के बाद ज़रा सोते। चाची मुझे बट चाचा के पास से उठाकर किवाड़ उढ़का देतीं, "रेलगाड़ी का कष्ट तुझे नहीं मालूम। कलकत्ता क्या कम रास्ता है ? फिर दमदम के पास से हावड़ा... बाप रे, वह बहुत लंबा रास्ता है। तू अब धूप ढलने पर आना।"

कलकत्ता, हावड़ा, दमदम—ये सब कहाँ हैं, मुझे मालूम न था। उस समय ले देकर घंटेश्वर तक पहुँचता। घंटेश्वर की कालीपूजा, दुर्गापूजा हमारे अंचल में प्रसिद्ध थी। पिता जी कभी-कभी चाँदबाली जाते और श्रीधर भाई कटक में रहते थे। लेकिन, बट चाचा रहते थे दमदम में।

बगुलि पूछता, "तेरे बट चाचा आलूदम में रहते हैं न.?"

मैं उसे जबाब देता, "तेरे चाचा पखाल झोल में रहते होंगे।"

बगुलि कुछ कह नहीं पाता। बट चाचा के लाये संदेश का मीठा स्वाद उसका मुँह बाँध देता। और साथ में मैं अपनी दोनों जेबों में पड़े सिगरेट, साबुन और टूथपेस्ट की चिक्चिक् जरी सब निकालकर दिखाता और भविष्य में मैं एक या दो जरी दे सकता हूँ, ऐसा वादा करके उसे आगे झुलाये रखता। बगुलि ऐसी अमूल्य चीज़ों का लोभ छोड़ मेरे संग शत्रुता करने का साहस कदापि नहीं करता।

दोपहर भर मैं अकेले डाहुक की तरह इधर-उधर घूमते बट चाचा की किवाड़ खुलने का इंतज़ार करता। एक-एक पल मुझे एक-एक दिन-सा लगता। उस समय चाची पर गुस्सा आता। माँ और चाची रसोईघर में बासन सजाती रखतीं। मैं जाकर बट चाचा की उढ़की किवाड़ ज़रा खोलता, "अब झोली खोलें चाचा?"

बट चाचा आख़िर राज़ी होते। मैं उनके पास पालथी मारे बैठता।

बट चाचा एक-एक पुड़िया खोलते। अरे बाप रे, कितनी चीज़ें रहती हैं पोटली में!

पिता जी के लिए धोती; माँ और चाची के लिए साड़ियाँ; छोटे के लिए वाश एन वियर कपड़े का जगदीश ड्रेस; बड़ी बहन के लिए लंबा फ्रॉक; घर के लिए प्लास्टिक के ग्लास, कप और प्लेट; भगवान के लिए चंदन-पेड़ी, अगरबत्ती; दादी के लिए कंबल। दूसरे बैग में जीरा, सरसों, गरम मसाले, सुंगधित तेल, चूड़ियाँ, रिबन, कुंकुम और कितना कुछ। हाथ बैग में रज खेल के लिए नया ताश का बंडल; मोहन सीरी का जासूसी उपन्यास; कपड़े साफ़ करने, शरीर के लिए साबुन, पिता जी के लिए कमर दर्द की दवा, पाउडर डिब्बा और लाइटर, जिसको दबा देने पर आग निकलती।

मै फिर भी इंतज़ार करता। ये सब तो घर के लिए। मेरे लिए बट चाचा क्या कुछ नहीं लाये?

मेरे मुँह को देखकर बट चाचा सारी बातें समझ जाते। वे उठकर घर के कोने से एक कवर लगी चीज़ मेरी ओर बढ़ा देते। मै हड़बड़ी में खोलता—कभी रबर जोकर, किसी बार मोटर कार, हवाई जहाज। आख़िरी बार था—अद्भुत काँच का पुतला। पुतला एक महापराक्रमी राजा का। मेरे नंगे साँवले हाथ में वह पुतला बंदर के हाथ हीरे की अँगूठी-सा दमक उठा था। मैंने अपने घर के अँधेरे में पुतले को ले जाकर माँ से पूछा था, "अँधेरे में भी यह पुतला दिख रहा है न ? दिखता नहीं!"

माँ की आँखें ख़राब। वे बोलीं—'ज़रा-ज़रा दिख रहा है।"

मैं चिढ़ गया, बोला—"मुझको तो साफ़ दिख रहा है।"

बट चाचा उसके बाद मुझे काँच की गोलियाँ और लजेंस देते। मैं मन ही मन बट चाचा को सौ-सौ बार प्रशंसा करता। हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बट चाचा जैसा अच्छा आदमी इस संसार में कहीं नहीं है।

बट चाचा जैसा आदमी सचमुच गाँव में कोई नहीं था, इसलिए उनके गाँव में पाँव पड़ते ही हम सब चंचल हो जाते। तुरत-फुरत नयी-नयी योजनाएँ तैयार हो जाती थीं। बड़े पोखर में मछली मारने, रज की 'कबड्डी' प्रतियोगिता, मुहल्ले के बच्चों को लेकर आपेरा के दूसरे रोज़ भोज। इस सबके बीच में कोई-कोई अष्टप्रहरी और कीर्तन का प्रस्ताव भी रखते थे, पर 'सब कुछ एक समय में नहीं हो सकता' कहकर बट चाचा प्रस्ताव ख़ारिज करते।

दिन भर परब-सा चलता हमारे गाँव में। हमारे पाँव तितलियों के डैने से अस्थिर और मन रुई-सा हल्का हो जाता। हम लोगों में बट चाचा के हुकुम की तामील करने को परस्पर प्रतियोगिता चलती। बट चाचा के लिए एक काम कर देना हमारे लिए सौभाग्य होता।

देखते-देखते बट चाचा की छुट्टी ख़त्म होती। बट चाचा कलकत्ते जाने को निकलते। उस समय तक हावड़ा के झूलते पुल, विक्टोरिया म्यूज़ियम के अद्‌भुत दृश्य, दमदम में घड़ी-घड़ी आते-जाते विराट हवाई जहाज़ों की बातें ख़त्म नहीं हुई होतीं। फिर भी बट चाचा के जाने का समय आ जाता। मैं उदास हो जाता। बट चाचा के जाने के बाद मेरे दिन फिर से घिसे-सड़े हुए क्षुब्ध दिनों में बदल जाते।

जैसे एक दिन बट चाचा पोखर के रास्ते से होते हुए आते, वैसे एक दिन चल जाते। माँ के आँचल तले आँसुओं को छिपाते मैं चाचा के जाने के रास्ते को देखता रह जाता। क्रमशः उनका बगुले-सा फर्‌-फर्‌ कुर्ता और नीला गमछा खेतों के बीच कहीं गुम हो जाता। बाक़ी बची रह जातीं बट चाचा से जुड़ी यादें—कबड्डी खेलना और मछली मारना, रज झूलन, ताश खेलाई और आपेरा आयोजन के रोमांचक अनुभव। उन्हीं यादों को लिए मन ही मन झूमते हम समय बिताते।

लेकिन, बट चाचा के कलकत्ते लौट जाने के बहुत दिनों बाद तक भी हमारे घर के आँगन में तेल और साबुन की ख़ुशबू। घूमती रहती। अन्य घरों की तुलना में हमारा घर अधिक संभ्रांत और आधुनिक है—इस बात का प्रचार करती रहती वह ख़ुशबू क्रमशः वह ख़ुशबू भी महीन होती जाती और एक दिन सुबह उठते वक़्त उसकी जगह हमारे घर के आँगन में पुरानी और परिचित गोबर लिपी फूहड़ गंध लौट आती।

उस समय मैं घर के कोने में स्कूल बैग भीतर सहेजे उस अपूर्व पुतले को खोजता। काँच का महाराजा बड़ी-बड़ी मूँछें फुलाये मेरी ओर ताकता। मैं उसे संदूक के ऊपर रखकर ज़रा दूर से देखता। फिर उसे घुमाते हुए उठाता। आश्चर्यजनक रूप से महाराजा का चेहरा इस बार बदल जाता। देखते-देखते ख़ुद महाराजा में बदल जाता एक रोन्हा बनमानुस। मैं अपने नये आविष्कार से पागल हो जाता, लेकिन पुतले को स्कूल तक ले जाने की बेवकूफ़ी न करता। नंडा और बगुलि पर भरोसा नहीं—जल्लू लोग हैं, नीचे गिराकर तोड़ देंगे।

लेकिन, बहुत कोशिशों के बाद भी अपने भीतर इस आविष्कार की पुलक को अधिक समय तक छिपाकर रख नहीं पाया। एक दिन ऐसे ही दोस्तों के बीच गप्प मारते-मारते किसी के पूछने से पहले मैं ख़ुद ही अद्‌भुत पुतले की बात कह गया। उसके बाद से बगुलि, नंडा और मेरे सब दोस्त मेरे पीछे लग गये। आचार, काँच की गोली, सिगरेट के खोल, खड़िया और कागज से बना 'दिन रात' का खेल मुझे याचते। मैं उनको समय देता—छुट्टी के दिन दुपहर को आना। मैं तुम लोगों को अपना पुतला दिखाऊँगा।

लेकिन, घर लौटकर ख़ूब पछताया। क्यों मैंने इनको अपने पुतले की बात बतायी। फिर, मन ही मन कई तरह की योजनाएँ बनाने लगा। कह दूँगा कि मेरी माँ ने कहीं छिपा दिया है, मिल नहीं रहा। नहीं तो कह दूँगा कि गेल्हादाई के हाथ से गिरकर मेरा पुतला टूट गया है।

लेकिन टूट जाने की बात मन में आते ही मैं दुख से टूट जाता। नहीं-नहीं, सपने में भी ऐसी बात मैं नहीं सोच सकता।

उस समय इस एक काँच पुतले के सिवाय बट चाचा की दी और कोई चीज़ मेरे पास न होती। अति जतन से सहेजा बिल्कुल नया एक का नोट भी कब एक मिश्री डली के विनिमय में काशी भाई की दुकान के किसी बिल में घुस चुका होता।

जो बचता, वह केवल चकचक करता मेरा काँच पुतला—एक तरफ़ से महाराजा, दूसरी तरफ़ बनमानुस।

(दो)

अलका ने पुकारा, "वहाँ बैठकर क्या सोच रहे हो? बच्चा है, क्या जान-बूझकर ये काम किया है?"

अलका लूना की बेवकूफ़ी की बातें बता रही थी। पूछ रही थी कि रज में तुम गाँव जाओगे या नहीं?

मै काँच पुतले के टुकड़ों को देख रहा था।

हर टुकड़े के भीतर मुझे दिख रहे थे, दो चेहरे—राजा और बनमानुस, बनमानुस और राजा।

और बट चाचा के साथ आख़िरी भेंट की यादें।

मैट्रिक परीक्षा ख़त्म हो चुकी थी। सिर्फ़ पिताजी और माँ 'बट चाचा आएँगे' कहकर बात को टाल रहे थे।

उसी समय सनातन सर कलकत्ता जाने को निकले। माँ से कहा, "मैं भी सर के साथ कलकत्ता घूम आऊँगा। बट चाचा से अपनी पैंट शर्ट लेता आऊँगा।"

बहुत युक्ति, तर्क, राग, रोष और आख़िर में सनातन सर के हस्तक्षेप के बाद माँ मेरी बात पर राज़ी हुई। बट चाचा का ठिकाना लिखा एक पोस्टकार्ड सर के हाथ में थमाया, जिसमें पहला वाक्य था—हमारी कुशलता के लिए माँ दक्षिण काली सहाय, तुम्हारे कुशल क्षेम को बाबा चंद्रशेखर महादेव सहाय रहें।

सनातन सर के साथ हावड़ा में उतरते समय पौ फट रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सनातन सर बोले, "पहले हम श्याम बाज़ार जाएँगे, बाद में बारासात।"

कलकत्ते के बारे में सब कुछ जानने जैसा मैं बोला, "दमदम के रास्ते जाएँगे तो?"

"हाँ-हाँ, लेकिन दमदम बायें किनारे रह जाएगा।

दूसरे जून हम दोनों दब दुबाकर एक बस में चढ़े। बट चाचा की कंपनी के पास पहुँचते वक़्त दिन ढल रहा था। सनातन सर ने मुझे होशियार किया, "होशियारी से उतरना, उतरते वक़्त इनको दया माया नहीं।"

बारासात आने के पंद्रह मिनट पहले मैंने अपने को बस से उतरने के लिए सावधान कर रखा था। सनातन सर बोले, "शाबाश, इतने दिनों की उछल-कूद तेरे काम आयी।"

बट चाचा के हाथ लिखे पोस्टकार्ड का पता पढ़कर उनकी कंपनी को खोज निकालने में हमें बहुत समय लगा था। रास्ते भर गाड़ी-मोटर का यातायात। घड़ी-घड़ी में एक-एक जहाज़ देह से लगते से सिर पर से उड़े जा रहे थे। इतने पास से कभी हवाई जहाज़ को न देखने के कारण मैं बार-बार नीचे न देख, ऊपर को देख रहा था। बट चाचा सच बोले थे, "हमारे गाँव की बैलगाड़ी की संख्या से दमदम के हवाई जहाज़ों की संख्या अधिक है।"

सनातन सर मुझसे कड़ाई से बोले, "नीचे देखकर चल, नहीं तो गिरेगा। यहाँ की गाड़ी-मोटर की भीड़ तो देख रहा है!"

सर ठीक कह रहे थे। उस समय हमारे घंटेश्वर इलाके में एक बस का आना-जाना भी सपना था। भद्रक-चाँदबाली रास्ते में आना-जाना करती बसें गदि चौक पर ही हमारे गाँव के लोगों को उतार देती थीं। वहीं से लोग आठ मील का रास्ता साइकिल या साइकिल रिक्शे से तय करते थे।

आख़िर हमें 'टी.के.पाल एम.एफ.को.' का ऑफ़िस मिल गया। सनातन सर ने समझाया था—एम.एफ. यानी मैनुफेक्चरिंग यानी तैयार : समझ रहा है तो ? "सर का समझाने का ढ़ंग हमेशा से ऐसा ही था। इस तरह के आग्रह के सामने स्थान, काल, पात्र, विवेचना अप्रांसगिक।

पर कंपनी ऑफ़िस में बट चाचा नहीं थे।

"ओइ काजेर जागा रे थाकबे", एक बूढ़े ने चाँय-चाँय स्वर में और बांग्ला भाषा में हमें बताया।

"आमि नूतन मानुस...,"

सनातन सर का स्वर सुनकर मैं विस्मित हुआ था और वहीं मुझे सर के बांग्ला बोलने की दक्षता का साक्षात् सबूत मिला।

भद्रलोक बोले थे, "एइ जे पाशेइ। एक टू आगे बाएँर दिके जावेन। तार पर डान दिके खूब बड़ एक टा लोहार गेट। सेटाइ आमार फ़ैक्टारी।"

बाँयें दायें, दायें, बायें होते बट चाचा की फैक्टरी के पास पहुँचते वक़्त शाम होती आ रही थी, लेकिन रास्ता घाट साफ़ दिख रहा था। भद्रलोक ने ठीक बात कही थी। टी.के.पाल ब्रिक एम. एफ.को. के कारखाने के सामने दिख रहा था एक बहुत बड़ा फ़ाटक। लेकिन, इतने बड़े अहाते भीतर बट चाचा कहाँ होंगे? मैं जैसे उस नयी जगह में गुम हो रहा था। उस समय मेरी माँ की आशंका मुझे याद आयी। कलकत्ता इतनी बड़ी जगह है कि वहाँ हाथी भी गुम हो जाएगा, मेरी बात कौन पूछे!

बट चाचा को ठाँव करने में ख़ूब समय लगा था। समय जितना अधिक हो रहा था, मेरे मन का उद्वेग और उत्तेजना उतनी अधिक बढ़ रही थी।

बट चाचा मुझको देख कैसे आश्चर्य से ताकेंगे, फिर मुझे बाँहों में समेट लेंगे और यही सुयोग देख मैं अपने सूट-बूट की बात कहूँगा—यही सोचता मैं परेशान हो रहा था।

बट चाचा मुझे रेडीमेड पोशाक ख़रीद देने को कहेंगे, तो मैं राज़ी नहीं होऊँगा। मैं नाप देकर 'कलकत्ता टेलरिंग शॉप' में सूट बनवाऊँगा। नहीं तो मैं कलकत्ता आया ही क्यों?

और संभव हुआ, तो गेल्हादेइ की माँग की बात भी उठाऊँगा। उसे भी मेरी तरह का एक काँच पुतला चाहिए। लेकिन, वह राजा और बनमानुस पुतला नहीं लेगी। रानी और खरगोश वाली पुतली लेगी, क्योंकि मूँछों वाले राजा और बनमानुस दोनों ही उसको डरा देते हैं।

गेल्हादेइ की बात सुनकर मैं चिढ़ा था—"हे, डरपोक जी, पुतला किसी को काटता है क्या?"

लेकिन, यह बात उनसे बाद में कहूँगा। हुआ तो ठीक, न हुआ तो ठीक। गेल्हादेइ की पुतली की बात पहले कहकर मै अपने सूट-बूट की बात को हल्का नहीं करना चाहता था।

"एइ जे वटकृष्ण!" बांग्ला में इतना कहकर सामने के एक अद्भुत जंतु से जैसे सनातन सर ने पहचान कर दी। मैंने हक्का-बक्का चारों ओर देखते ढूँढा—कहाँ है बट चाचा ?

देह-हाथ कादों से बलबल, मुँह तमाम धूल, सिर पर गंदा गमछा, देह में घुटने भी छिपा न पा रहा एक पटरिया गमछा, पाँव मे किस ज़माने की फटी चप्पल और हाथ में एक झूड़ी लिये ये कौन खड़ा है? मैं स्तब्ध हो विस्मय से युगपत उस आदमी को आँख मिटमिट करते देख रहा था। नहीं पता कितना वक़्त बीत गया। सनातन सर मेरा सिर हिलाकर बोले, "क्यों रे, तू अपने बट चाचा को पहचान नहीं पा रहा है क्या? नमस्कार नहीं करता!"

फिर भी बट चाचा को मैं पहचान नहीं पा रहा था। मेरी आँखों सामने एक सफ़ेद फर्-फर् धोती और कुर्ता पहने युवक का चेहरा नाच रहा था, जिसके कंधे पर नीला गमछा पड़ा है। उसके माथे से सुगंधित तेल की खुशबू धीमे-धीमे चारों तरफ़ फैल रही है। शर्ट की जेब में चक्चक् सिगरेट खोल, बायें पाकेट में लाइटर। जो रास्ते पर चले, तो हमारे गाँव की बेवकूफ़ तितलियाँ फूल को छोड़ उसके पीछे दौड़ें। ये क्या वही जादूगर मनुष्य... बट चाचा?

बट चाचा पास के पानीकल में गोड़-हाथ धोने जा रहे थे। उनके आगे और पीछे उन्हीं की तरह माटी सने मनुष्य खड़े थे। बट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाचा सिर का टोपा उतार तरबतर रोम सिलबिल हाथ-मुँह पोंछ रहे थे। देह भर में धूल और कादों। किस काल से दाढ़ी न बनाये मुँह में दाढ़ी सिलबिल। उसी वेश में बट चाचा दिख रहे थे आपेरा पांडाल के राजा नहीं, 'छबिबही' के बनमानुस की तरह।

दूसरे दिन सुबह उनके बासा घर से विदा लेकर आते समय बट चाचा मुझसे कितना कुछ पूछे थे, लेकिन बहुत कोशिशों के बावजूद मैं उनके आगे अपनी पैंट-शर्ट, सूट-बूट की बात कह नहीं पाया था। उनके सभी प्रश्नों का सिर्फ़ हाँ, न में उत्तर देकर लौट आया था। सनातन सर श्याम बाज़ार में उतरकर ख़ुद को उत्तर देते-से कह रहे थे, "यही तो सुभाष चौक है। हावड़ा की ओर की बस दूसरी तरफ़ मिलेगी।"

लेकिन, मैं चुपचाप था। मेरे सिर के भीतर मेरे काँच पुतले को कोई बार-बार इधर-उधर, इधर उधर करते घुमा रहा था। एक पर एक राजा और बनमानुस का चेहरा मेरी आँखों के सामने नाच रहा था।

सनातन सर ने पूछा था, "शरीर ठीक नहीं क्या रे, यूँ चुपचाप है?"

लेकिन, मैं कुछ बोला नहीं। जेब के भीतर हाथ डालकर लायी हुई माँगों की लिस्ट को मसलकर फाड़ देने की तरह कोई मेरे सपनों और कल्पनाओं को मसलकर फाड़ रहा था।

घर आते समय सनातन सर अपने गाँव में रह गये थे। मैं लौट आया था अपने घर। माँ दौड़कर मुझसे लिपट गयीं। इसलिए, कि इससे पहले मैं कभी उनको छोड़कर इतनी दूर नहीं गया था। चाची दौड़कर मेरे पीछे खड़ी थीं। गेल्हादेइ हड़बड़ाकर मेरे बैग की छानबीन कर रही थी।

सिर्फ़ मेरे भीतर कोई उत्तेजना न थी।

माँ ने पूछा था, "क्यों रे, बट चाचा से भेंट नहीं हुई क्या? क्या कह रहे थे? कब आएँगे?"

मैं चिढ़ गया, "तू तो जल्दी लौट आने को बोली थी। मुझसे काहे को पूछ रही हो ? सनातन सर से पूछ लेना।"

अलका काँच पुतले के टुकड़ों को कचरा ढेर में डाल देने के लिए बीने जा रही थी। मुझे देख कर पूछा, "पुतली टूटी इसलिए परेशान हो....नहीं क्या ? पुरानी चीज़ टूट जाने पर सचमुच कष्ट होता है।"

मैं उससे कुछ नहीं बोला। मेरा पुतला तो उसी दिन उसी बारासात में टूट गया था। अलका से यह बात कहने का क्या फ़ायदा?

संपादक, 'संवाद' दैनिक
भुवनेश्वर (उड़ीसा)

लघुकथा

श्रद्धा

पंकज शर्मा

"आओ मनोज बाबू, कैसे हो? बैठो, बैठो", प्रधान कार्यालय के बड़े बाबू सुभाष ने कहा।

"बस ठीक हूँ, आप सुनाएं", मनोज बाबू ने, जो शाखा कार्यालय में थे और किसी काम से प्रधान कार्यालय में आए थे, बैठते हुए कहा।

"अपनी तो भई मजे में कट रही है। अच्छा एक काम था आपसे। वो आपके पास स्टोर में मिट्टी का तेल आता है न, वह चाहिए था थोड़ा सा", बड़े बाबू सुभाष बोले।

"कितना? किसलिए?" मनोज बाबू के मुंह से निकला।

"यही कोई 15-20 लिटर। वो क्या है कि हमारे गुरु जी महाराज आ रहे हैं 26 तारीख को सत्संग के लिए। बहुत बड़ा सत्संग है, बहुत बड़े-बड़े लोग उनके शिष्य हैं, तो लंगर वगैरह भी चलेगा। बस उसी में अपना कुछ योगदान देने के लिए मैंने सोचा कि जो कुछ हो सके उसका जुगाड़ तो करूं, बस इसलिए आपको कष्ट दे रहा हूं। मेरी बड़ी श्रद्धा है गुरू जी में, आ हा हा..... क्या प्रवचन करते है। आप भी आइयेगा न बच्चों के साथ, मैं कार्ड भेजूगा आपके लिए। आप बस मिट्टी का तेल जो मैंने कहा, भिजवा दीजिए किसी के हाथ.... और..... चाय लेंगे", सुभाष बाबू ने कहा।

"जी बस शुक्रिया, मैं भिजवा दूंगा..... अच्छा चलता हूं, नमस्ते", कह कर मनोज बाबू उठ खड़े हुए। वे जानते थे कि तेल न भिजवाने की सूरत में वे उनका प्रमोशन रूकवा देंगे। मजबूरी थी, परन्तु उनका मन ऐसी भ्रष्टता से भरी श्रद्धा के लिए घृणा से भर गया।

प्लाट नं.-19 सैनिक विहार
सामने विकास पब्लिक स्कूल
जण्डली, अम्बाला शहर (हरि.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्दी में भिखारी

जमुना बीनी

जब यातर को टाटा सूमो में 2 नम्बर की सीट मिली तो उसका मुँह लटक गया। 2 नम्बर की सीट यानि ड्राइवर के बिल्कुल करीब और बगल वाली। कुछ बदमाश किस्म के ड्राईवर अक्सर गियर बदलने के बहाने महिला पैसेंजर की जाँघ को जान बूझकर हौले से दबा देते हैं। इसी बात पर यातर की दो-तीन ड्राइवरों से लड़ाई भी हो चुकी है मगर वे ये कहकर साफ बच जाते है कि गियर बदल रहा था, गलती से लग गया।

यातर के विनती करने पर कांउटर वाले ने उसे 6 नम्बर की सीट दी। यातर ने राहत की साँस ली और टाटा सूमो में चढ़कर अपनी सीट पर बैठ गई। पूरी रात सफर करना है, कल ईटानगर सुबह के साढ़े तीन बजे या चार बजे पहुँचेंगे, यह ख्याल आते ही यातर ने थोड़ा सुस्ताने के लिए आँखें मूँदकर सीट पर सिर टिका लिया।

यातर आज बेहद खुश है और हो भी क्यों न! आखिर इतनें दिनों बाद अपने घर जो जा रही है। जिंदाबाद। सर्व शिक्षा अभियान! इसने कितने लोगों को काम दिया है। कॉलेज ख़त्म करते ही यातर को इसमें काम लग गयी और उसकी अधिकांश साथियों को भी। यहाँ आलो के एक मिडिल स्कूल में पोस्टिंग थी सो अपना कुछ साजो-सामान लेकर यहॉ आ पहुँची। जब से आई है पूरा मन लगाकर बच्चों को पढ़ा रही है। इस बीच एक बार भी घर नहीं गई। बीच-बीच में माँ की स्मृति बदलियों में बिजली की तरह कौंध जाती थी। वैसे यातर के पिता यही आलो के ही हैं। ईटानगर में उनका बिजनेस फायदा न सही किंतु घाटे में भी नहीं चल रहा था। अतः उनके पिता ने ईटानगर को ही अपना स्थाई बसेरा बना लिया। यातर भी वहीं पली-बढ़ी है। यहॉ आलो में यातर के कई रिश्तेदार हैं। यातर को याद है बचपन में इन्हीं रिश्तेदारों से मिलने अपने माता-पिता के साथ केवल एक ही बार यहॉ आलो आई थी। ईटानगर का शहरीकरण बहुत तेजी से हो रहा है और शहरीकरण का एक लक्षण है व्यस्तता। इसी व्यस्तता ने यातर के माता-पिता को इस कदर जकड़ लिया कि रिश्तेदारी निभाने के लिए कहीं आ-जा नहीं पाते।

'अरे कोई मेरी सहायता करो'—आवाज़ यातर की कानों में पड़ी। यातर ने आँखें खोलकर देखा, एक बूढ़ा 3 नम्बर सीट के दरवाजे से चढ़ने की असफल कोशिश कर रहा था।

"आबो (पिताजी) अपना हाथ दीजिए।' बूढ़े की तरफ़ सरकती हुई यातर ने कहा। उस बूढ़े ने यातर के हाथ को तुंरत पकड़ लिया मानो गाड़ी छूट रही हो। यातर ने पूरी शक्ति के साथ उसे गाड़ी के अंदर खींचा, भारी शरीर वाला था बूढ़ा।

'आपी (बेटी) बुढ़ापा बहुत तकलीफदायक होता है।' बूढ़े ने सीट पर बैठते हुए कहा। प्रतिक्रिया में केवल मुस्कुरा दी यातर ने।

देखते ही देखते गाड़ी की सारी खाली सीटें भर गईं। और दिनों में एक-दो सीटें खाली रहती हैं। बस की सीटें तो कभी भरती ही नहीं, आधी भरी ही जाया करती हैं। टाटा सूमो के पैसेंजर गाड़ी बनकर सड़को पर दौड़ने से बस मालिको को बहुत नुकसान हुआ। डे सूमो, नाईट सूमो, डे बस, नाईट बस—इन्हीं गाड़ियों की अधिकता के कारण टाटा सूमो को भी एक-दो खाली सीटों का नुकसान उठाना पड़ता है। किन्तु आज सारी सीटें भरी हुई हैं। कारण लिकाबाली तीन दिन तक बंद था। यह बंद आज खुला था।

सीमांत क्षेत्र होने के कारण आए दिन लिकाबाली में सीमा-विवाद होता रहता है। कभी-कभार विवाद खूनी रंग भी धारण कर लेता है। अमूमन अरुणाचल के सभी सीमावर्ती इलाकों की यहीं स्थिति है, चाहे वह पापुम पारे में गुमतो हो या लोऊर सुबनसिरी में दोलूङमूख। अरुणाचल और असम सरकार आज तक इस सीमा-विवाद का कोई स्थाई हल नहीं ढूंढ पाये।

'थड़ाम'—ड्राइवर ने जोर से अपनी सीट का दरवाजा बंद किया। उसने एक बार पीछे मुड़कर सवारियों पर उडती हुई दृष्टि डाली यह पता करने के लिए कि सारी सवारियाँ बैठ गई हैं कि नहीं। निश्चिंत होते ही गाड़ी को तेज़ी से स्टार्ट कर सड़क पर दौड़ा दिया। अभी बागरा पहुँचे ही नहीं कि यातर को नींद आने लगी। दरअसल आज सवेरे से ही वह व्यस्त थी। सुबह उठकर क्लास जाने के लिए तैयार हुई और क्लास के ख़त्म होते ही सामान की पैकिंग करके टाटा सूमो काउंटर पहुँच गई।

गाड़ी के अंदर मद्धिम रोमांटिक संगीत बज रहा था और बाहर हल्की बूँदाबाँदी। यातर की पलकें धीरे-धीरे बंद होने लगीं। उसे भी अहसास हुआ कि अब पलकें इतनी भारी हो चुकी हैं कि इन्हें चुपचाप बंद कर नींद के आगोश में जाना बेहतर है।

अरुणाचल में ऐसे स्थान हैं जहाँ पहुँचने का रास्ता दूसरे राज्य से होकर गुजरता है। गाड़ी असम के धेमाजी से गुजर रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात के सन्नाटे में गूंजती हुई ऊँची आवाजों से यातर और अन्य सवारियों की नींद खुल गई। छह पुलिसजनों ने गाड़ी को रोक लिया।

अधेड़ पुलिस वाला हाथ में छड़ी हिलाते हुए ड्राईवर की खिड़की पर आकर बोला,

'लाइसेंस आसे (लाइसेंस है)?'

'हेतु आसे (यह है)।' ड्राइवर ने झट् से शर्ट की जेब से लाइसेंस निकाला।

पहले से ही लाल हुये होठों पर तम्बाकू-पान डालते हुए अधेड़ पुलिस वाले ने कहा-

'ओरिजिनल नोहोय नि की (ओरिजिनल नहीं है क्या)?'

'ओरिजिनल आसे, बालके साओक (ओरिजिनल है, ठीक से देखिए)।'

अधेड़ पुलिस ने ड्राइविंग लाइसेंस वापस करते हुए कहा-

'आर.सी.आसे (आर.सी.है) ?' इस बार ड्राइवर ने कुछ नहीं कहा, चुपचाप आर.सी. निकालकर दिखाया।

अधेड़ पुलिस वाला बोला-

'पाह खो टोका दे (पाँच सौ रुपये देना)?'

अब ड्राइवर ने कहा-

'पाह खो टोका केले (पाँच सौ रुपये क्यों)?'

'ओय सुपसाप दे, तोय पुलिसोक दोम दिखाय? साला! राती यात काटी पैलाम, कुनु नाय हुदै।

(ओय चुपचाप दो, तुम पुलिस को दम दिखाते हो? साला! रात को यहाँ काट के फेंक दूँ, कोई नहीं पूछने वाला।)'

उस अधेड़ के साथ में खड़े एक और पुलिस वाले ने कहा-

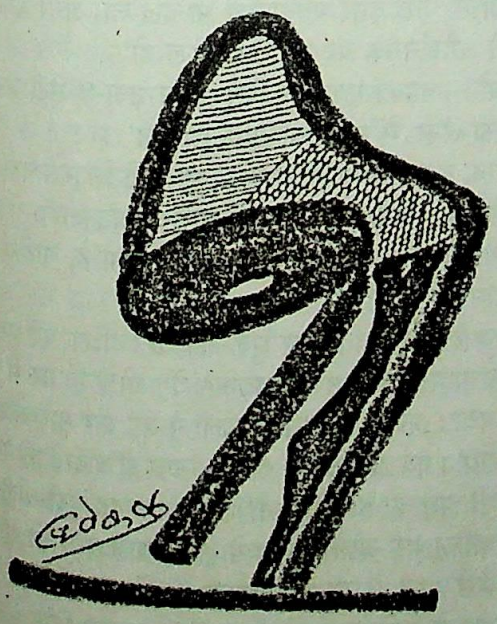

'तुमी साली अरुणाचली आसाम रोडोर ऐने जाबो? अमाक खुआय जाबो लागे। (तुम साल अरुणाचली असम के रोड से ऐसे ही जाओगे? हमें खिलाके जाना पड़ेगा)।

ड्राइवर ताड़ गया कि ये लोग ऐसे जाने नहीं देंगे। होठों पर थोड़ा मुस्कान लाते हुए कहा-

'पाह खो टोका एकदोम नाय (पॉच सौ रुपये एकदम नहीं है)।

'तेने होले तीन खो दे (तब तो तीन सौ दो)। वहीं अधेड़ पुलिस ने कहा।

'आमार ऊसोरोत एक खो टोकाऊ नाय आरु आपुनि तीन खो खुजी आसे (हमारे पास एक सौ रुपया भी नहीं है और आप तीन सौ रुपये मॉग रहे है)। ड्राइवर ने जोर से मुस्कुराते हुए कहा।

अधेड़ पुलिस लाठी दिखाते हुए बोली-'ओय बेसी सालाकी नोहोय! हेतु दीम साला (ओय ज्यादा चालाकी नहीं! यह दूँगा साला)।

गाड़ी से उतरकर ड्राइवर ने शर्ट का पॉकेट टटोलकर दिखाया। फिर पैंट के पॉकेट से पर्स निकाला और पर्स के अन्दर से पुराना फटा हुआ पचास का नोट निकाला और अधेड़ पुलिस के हाथ में थमा कर कहा-

'आमार गाड़ी मालिक बेसी टाइट। सा-पानी खा-बोल एक टोकाऊ नी दिए (हमारी गाड़ी का मालिक बहुत टाइट हैं चाय-पानी के लिए एक रुपया भी नहीं देता)।'

उसने पान की पीक को जल्दी-जल्दी निगला और पचास का नोट जेब में डालकर बोला-

'साला भिखारी, फौला! (साला भिखारी भाग)।

ड्राइवर गाड़ी पर चढ़ा और स्टेयरिंग सम्भाला। फिर गाड़ी हवा से बातें करने लगी। जम्हाई लेकर दस नम्बर सीट वाली सवारी बोली-

'हः, असम पुलिस एक तामूल-पान पर ही बिक जाती है।'

ड्राइवर अब खुलकर हँसा और कहा-

'पैसा होता तो भी क्यों देता उन बदमाशों को। पता नहीं कितना ऐंठ चुके होंगे। हमेशा तंग करता है गुज़रने वालों को। मुझे लगता है इनके बीवी-बच्चों को हमीं पालते होंगे।'

यातर ने एक भरपूर अंगड़ाई ली। फिर सोने के प्रयास किया... नींद की परी अब कोसों दूर जा चुकी थी। वह सोचने लगी, असल में भिखारी कौन है-यह ड्राइवर या वह पुलिस। अचानक मुँह से निकला- 'वर्दी में भिखारी।' होठों पर घृणा की हल्की हँसी तैर गई।

सहायक प्रोफ़ेसर
हिन्दी विभाग
राजीव गाँधी विश्वविधालय
रोनो हील्स, ईटानगर-791110 (अरुणाचल प्रदेश)

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या यही ज़िंदगी है!

डॉ. नइमत गुलची

हवाएँ तलवार की तरह काट पैदा कर रही थीं, तेज झोंकों ने तूफ़ान बरपा कर रखा था। दरख़्तों ने ख़िज़ां की काली चादर ओढ़ ली थी। ये लगता जैसे गए मौसमों का सोग मना रहे हैं। कोई क्या जाने ये क्यों दुखी हैं? रातों की स्याही अब दिन में भी नज़र आती है। परिन्दे, हवाओं की उड़ती तमाम खलकत अपने घोंसले में पनाह लिए हुए अपनी जमा की हुई पूंजी पर ज़िंदगी बसर कर रहे थे।

बूढ़ी दादी अम्माँ ने अपने जर्जर लिहाफ़ से झाँकते हुए आवाज़ दी,"गुलो जान, देखना तो सात(सदा, आवाज़) अगर पलट पड़े हों। कहीं ऐसा न हो मेरी नमाज़ सर्दी की भेंट चढ़ जाए"।

गुलो जान ने जवाब दिया,

"बडी अम्माँ साए लौट रहे है, हवा का रुख़ भी टूट रहा है, आप की नमाज़ का वक़्त हो चुका है"।

हाँ बेटे, जाड़े की शिद्दत घटने लगी है तो बादलों ने सर उठा लिया है। खुदा हम बेघरों, कपड़े लत्तों से महरूम इन्सानों पर रहम फरमाए। कुटिया की टूटी फूटी छत तो अभी से डराने लगी है,"-दादी अम्मां ने ग़म से लथपथ लहज़े में कहा। पोते ने एक ज़ोरदार कहकहा बुलंद करते हुए बताया—"दादी जान, आपकी ऐड़ी तो लिहाफ़ से बाहर झाँक रही है, आपने यह लिहाफ़ कब बनाया?"

उफ़्... चंदा तुम क्यों ऐसी बातें पूछते रहते हो। मेरा दिल ऐसी बातों से दुखता है। यह मेरी पुरानी सहेली जैसा है। तेरे दादा ने अपने ब्याह के दिनों में बनवाया था। हम दोनों ने अपनी जवानियाँ इसी की ओट में बसर कीं। वह तो अपनी राह चल दिया। सोचती हूँ यह मुझे भी कब्र तक पहुँचाने में साथ देगा। तेरे बाबा के पास ऐसी हैसियत नहीं कि नया बनवा दे। दिन भर भाग-दौड़ करता है। जान पर बन आती है तो कहीं जाकर रूखी-रूखी से बच्चों का पेट पालता है। ऐसे में भला मेरे लिहाफ़ की किस्मत कैसे जाग सकती है। उसकी कमाई तो इस-उस की भलाई में खर्च हो जाती है। कभी किसी की भाँग, किसी की बीड़ी। कितने हैं जो अपने आराम के लिऐ उसे पीड़ा की सेज पर लिटा देते है—"एक साँस में दादी अम्मां कह गईं।

दादी ने फटे पुराने लिहाफ़ को ख़ैरबाद कहा (वह कलमा जो बिदाई के वक्त कहते हैं)। साथ ही उसे भूख का अहसास हुआ

"सदो जा, देखना तो, रोटियों के कपड़े में बची खुची रोटी पड़ी हो, शायद मेरे दिल को कुछ तो करार आ जाए"।

दादी जान वो तो पहले ही मैंने आपके सामने झाड़ दिया था। थोड़ा सा चूरा झड़ा था। मैंने जो दो-तीन चपातियाँ पकाई थीं, गुलोजान ने तोड़-तोड़कर खा लीं। दो-एक निवाले मैंने भी लिये और बस... हाँ एक रोटी तह कर रखी है, गुलो जान के वालिद के लिये। वो काम पर गए हुए हैं, भूखे होंगे"—सदो ने जवाब दिया

"अरी रहने दे, मुझ चंडाल की बजाए वह आकर खा ले तो बहतर है"

थोड़ा समय गुज़रा था कि गुलोजान का बाबा इश्रक सर्दी और भूख से निढाल लौट आया। धूप में बैठते ही सदो को आवाज दी..."सदो अगर खाने को कुछ है तो ले आओ। यहाँ बैठ कर कुछ साँस लूँ, खजूर के अगर कुछ दाने हों तो लेती आना"।

"आप से कहा था कि खजूरें ख़त्म हो गई हैं। अखरोट, नेजे का बचा हुआ हिस्सा जो मैंने सर्दियों के लिये बचा रखा था वह कर्ज़दारों को दे दिया"—सदो ने आफ़सरों जैसे रुख में कहा।

उनका छः साल का बेटा बाहर से दौड़ता हुआ आया, "अम्मां मैने आज छोटे जानवर का शिकार किया है। वहीं उसके पर नोच डाले। नमक कहाँ है? मैं उसे आग पर भूनना चाहता हूँ"

"वहीं नमकदानी में देख, अंदर पड़ी है, मेरा दिमाग मत चाटो", सदो ने झाड़ पिला दी

"अम्मां उस में तो नमक नहीं है"-लड़के ने बड़बड़ातें हुए, कहा।

"अच्छा ज़रा दूसरे मर्तबान में भी देख लो, अगर उसमें भी नहीं है तो बगैर नमक के अंगारो पर रख दो"।

"माँ"—लड़का एक बार फिर पुकार उठा-" रोटी का एक निवाला रख लेना, मैं गोश्त के साथ खाऊंगा"।

ईश्रक ने सदो से कहा "हवा में पहले-सी शिद्दत नहीं रही। तुम मेरी चादर ओढ़कर मीर के यहाँ चली जाओ, थोड़ी-सी खजूर माँग लाओ। आज रात मुझे लकड़ी काटने जाना है, मीर के यहाँ लकड़ी ख़त्म हो गई है।"

सूरज ढलकर क्षितिज पर झुक रहा था। दक्षिण की तरफ़ से काले-काले बादल झूम-झूम कर बढ़ रहे थे। थोड़ी ही देर में सूरज गायब हो गया। अँधेरा बढ़ गया, बादलों ने बढ़ कर सारे आसमान को ढाँक लिया। एक तो रात का अंधेरा, ऊपर से बादलों की स्याही, घोर अंधेरे में हाथ को हाथ सूझ नहीं रहा था। खूब बूँदा-बाँदी और जल-चल बारिश हुई ओले तड़तड़ाने लगे। बारिश ने तो यूँ समाँ बाँधा कि जैसे आज ही टूट कर बरसना है। भेड़-बकरियों ने सहम कर ज़ोर-ज़ोर से मिमियाना और डकराना शुरू कर दिया। अमीर अपने पक्के घरों में और गरीब अपने बेहाल झोपड़ों में फटे-पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपड़ों में दाँत बजा रहे थे। फिर बारिश रुक गई। जानवरों की आवाज़ें आनी बंद हो गईं मगर अब भी कहीं-कहीं से अभी पैदा हुए बच्चों के कराहने की आवाज़ आती जो अपनी गिरी हुई झोपड़ियों में आग की तमन्ना लिये दाँत बजाते, बगलों में हाथ दे, सहमे हुए सर्दी का दुख झेल रहे थे। यूँ लगता था कि ये कहावत सही है कि-गुलाबी जाड़ा भूखे-नंगे लोगों की रजाई है।''

रात टूटती रही, दूसरा पहर गुज़रा। मुर्गों ने अज़ानें देना शुरू कीं। सदो रात भर मारे सर्दी के सो न सकी। मुर्गों की अज़ानें सुन कर उठी, इसलिये कि अमीरों के घर का उसे अनाज पीसना था। वह ज़रूरत से फ़ारिग होने के लिये बाहर निकली। ईश्रक अभी सर्दी के मारे सिकुड़ा हुआ था। उस की आँख लगी ही थी कि बाहर से एक दिल दहलानें वाली चीख़ ने उसे झँझोड़ डाला। वह हड़बड़ाकर उठा और दौड़ कर बाहर आया। देखा तो सदो मिट्टी में लोट रही है। ईश्रक ने अपने दुखों के साथी को सहारा देकर उठाया और घसीटता हुआ झोंपड़े में ले आया

''तुझे क्या हुआ,?'' ईश्रक ने सदो से बेताबी से पूछा-''क्यों, इतने जोर से चीखी है?''

''क्या बताऊँ, सर्द हवा के एक थप्पड़ ने मेरे होश उड़ा दिये। मेरे हाथ-पांव जम गए हैं''—सदो ने अपना सुन्न पड़ा हाथ फैलाया। ईश्रक झोंपड़े के एक कोने की तरफ़ गया जहाँ बच्चे खुद में सिमटे, लिपटे हुए सो रहे थे। वहाँ कुछ टहनियाँ पड़ी थीं, मगर झोंपड़े में बारिश का पानी भर आया था और वह सब की सब भीग चुकी थीं। उसने इधर उधर तलाश किया और खजूर के फूस का बना हुआ एक थैला उठा लाया और सदो से पूछने लगा, ''माचिस कहाँ रखी है?''

''माचिस में एक तीली रह गई थी। कल लड़कों ने आग जलाकर एक परिंदे को पकाया। मैंने आग सुलगाए रखने के लिये गोबर के उपले सुलगाए थे मगर बारिश ने बुझा डाले।''- सदो का यह दुख भरा जबाव सुनकर ईश्रक की ऑखें भर आईं। मजबूर हो उसने सदो पर फटी पुरानी रजाइयाँ डाल दीं वह अपने ओढ़ने का बिछौना सदो पर डाल कर बोला—''अच्छा अब मैं चलता हूँ। जब तेरे बदन में कुछ जान पड़े तो उठ कर मीर के घर अनाज पीस डालना। सुबह अगर वक़्त मिले तो मीर के घर से लाया हुआ वह धान भी कूट कर साफ़ कर लेना जो उसने कल भिजवाया है। मैं शायद देर से लौटूं, वह खामख्वाह ख़फा होगा''

बारिश थम चुकी थी मगर हवा गुस्से में भरी हुई थी। ईश्रक ने गध े पर झोला कसा। अपने भारी जूते पहने, पुराना कंबल खींच लिया ताकि उसे ओढ़ लें, मगर छोटा चीख-चीख कर रोने लगा। बाप ने पूछा ''बेटे क्या बात है, क्यों रोते हो। कुछ तकलीफ तो नहीं?''

वह बोला ''नहीं बाबा मुझे तो सर्दी ने मार ही डाला है। मुझे कँपकँपी हो रही है, कुछ ओढ़ा दो।''

उस के दाँत बज रहे थे। ईश्रक निहायत परेशान था। एक तरफ बच्चे के रोने और बिलबिलाने की आवाज़, बाहर हवा का दिल में उतरता शोर। औलाद का प्यार अपनी राहत पर हावी रहा। फटा पुराना कंबल बच्चे को अच्छी तरह ओढ़ा कर, आरी कमर-बंद में ठूँस कर वह बाहर आया। दो-एक कदम चलकर वह रुका और अपनी बीवी को आवाज़ देकर पूछने लगा—''अरे सदो! कल जो मैंने तुझे मीर के यहाँ से खजूर माँग लाने को कहा था, कुछ दिया उसने ?''

भाई, मैं तो मुँह खोल कर पशेमान हो गई थी। खजूर उसने क्या देना था, भाईचारे की बातें सुनकर मेरी सात पुश्तों की जन्म पत्री उधेड़ डाली''—सदो ने रजाई के अंदर से बड़बड़ाकर कहा।

ईश्रक गधे पर बैठा और जंगल की राह ली। जिस्म पर सिर्फ मीर का दिया हुआ एक फटा पुराना पहनावा, हवा के बुलंद तेज थपेड़े... उस की जान पर बन आई थी। वह हमेशा जिस तरफ़ जाया करता था उसी तरफ हो लिया। सुबह का गया हमेशा शाम को लौट आता, मगर अब की बार वह गया तो लौट कर नहीं आया।

सुबह हुई, सदो ने चक्की पीस कर एक तरफ़ ढकेल डाली। अपनी धंसी हुई आँखें दादी अम्मां के लिहाफ़ पर जमाई। बुढ़िया अभी तक सिमटी सिमटाई पड़ी हुई थी। उसे ताज्जुब हो रहा था कि वह इतनी देर तक कभी भी नहीं सोई। वह अपनी सास के सिरहाने जा खड़ी हुई। उसे झिझोड़-झिझोड़ कर जगाने लगी मगर वह तो ऐसी सोई थी कि जागने से रही। वह अपने फटे पुराने लिहाफ़ में कंब की दूसरी दुनिया को सिधार चुकी थी। सदो की आँखों में अंधेरा छा गया। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। उसकी होश उड़ा देने वाली चीख फिज़ा में गूँजने लगी। पास-पड़ोस के लोग सिमट कर आ गए,

''अरे, अब के बुढ़िया को क्या हुआ? क्या हुआ?'' के शोर में सदो को कहते हुए सुना गया, ''बहनो, होना क्या था। वही हुआ जो ग़रीबों का मुकद्दर है। गर्दिश का दुख कोई कब तक बर्दाश्त करे। उसे सर्दी ने हम से छीन लिया।''

ईश्रक कितना बदनसीब था कि उसे माँ का आख़िरी दीदार भी नहीं मिल सका। खुदा-का खौफ़ रखने वाले लोगों ने बुढिया का कफ़न-दफ़न किया और अपने-अपने घरों को हो लिये। सदो सर पर हाथ रखे मातम मनाती रही। अभी सास की मौत का गुबार कम नहीं हुआ था कि एक पड़ोसन दौड़ती हुई आई और चीख कर कहने लगी ''बदकिस्मत सदो! अफसोस तेरी हालत पर। तू बुढ़िया के लिये मातम कर रही है और मौत ने तुझसे तेरे बच्चों के सर का साया भी छीन लिया है। ईश्रक शदीद सर्दी में सिकुड़ कर भरी दुनिया में तुझे अकेला छोड़ गया। एक काफ़िले को गुज़रते हुए रास्ते में उस की लाश पड़ी मिली है, वह उसे उठा लाए है''—यह सुनना था कि सदो पर गोया बिजली गिरी। उसका गला रुँध गया और उस की आँखें धुँधला गईं। हाथ-पाँव शिथिल होकर रह गए। करीब बैठी हुई औरतों ने उसे उठाकर एक कोने में लिटा दिया।

हर साल इसी तरह सर्दियों का बेरहम मौसम आता है। इसी तरह हवा तबाही का शोर मचाती रह जाती है। ओले तड़-तड़ बरसते हैं और इसी तरह दरख़्तों में सनसनाती हवाएँ ईश्रक का शोक मनाती हैं और इसी तरह न जाने कितनी सदो बेवा हो जाती हैं; हज़ारों मासूम बच्चे गुरबत का दुख सहने के लिये यतीम हो जाते है

उर्दू में अनुवाद : अफ़ज़ल मुराद
उर्दू से अनुवाद : देवी नागरानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब का हिन्दी और उर्दू साहित्य एवं पंजाबी भाव-बोध

विनोद शाही

जब हम हिन्दी-उर्दू साहित्य की मार्फ़त पंजाबी भाव-बोध के रूप और अर्थ की तलाश में निकलते हैं, तो हम ठीक से 'पंजाबी भाव-बोध' पर ही केंद्रित नहीं हो पाते। ऐसा करते हुए हम 'फ़ोकस' की बजाय 'परिप्रेक्ष्य' को ज़्यादा अहमियत देते हैं और सच पूछा जाए, तो सही अर्थों तक पहुँचने के लिए जिस दिशा-बोध की ज़रूरत होती है, वह हमें परिप्रेक्ष्य से ही मिलता है। यानी, हम अचानक उस सवाल के रूबरू जा खड़े होते हैं, जिसे दरअसल सबसे पहले और सबसे अंत में पूछा जाना चाहिए—कि पंजाबी भाव-बोध के अर्थों की तलाश या उसके स्वरूप की पहचान आख़िर क्यों सार्थक और मौजूं है; कि हम इस खोज-पड़ताल के फेर में आख़िर पड़े ही क्यों हैं; कि इसके महत्त्वपूर्ण होने के असल आधार क्या हैं; कि इसका यों पूरी दुनियाँ में फैलते जाना मानव-जाति के विकास के लिए कौन-सी नयी या ग़ौरतलब संभावनाएँ खोलता है? चूँकि, सवाल गहरे और बड़े हैं, इसलिए हिन्दी-उर्दू साहित्य पर चर्चा आरंभ करने से पहले हमें उर्दू-हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास के हालात व वजूहात पर ध्यान देना होगा, ताकि इस साहित्य के साहित्य होने की भाषागत ज़मीन की प्रकृति को समझा जा सके, यानी यह समझा जा सके कि जिसे हम पंजाब और उसकी संस्कृति या भाव-बोध के नाम से यह जानते हैं, उसे विकसित करने में पंजाबी के साथ - साथ उर्दू और हिन्दी आख़िर क्यों और कैसे बराबर की सखी-सहेलियों की तरह इस भूखंड में गलबहियाँ डाले इतने अर्से तक घूमती-विचरती दिखायी देती रही हैं ? और यह सवाल इसलिए इतना महत्त्वपूर्ण है कि यह न तो भाषाई धर्म-निरपेक्षता भर से ताल्लुक रखता है और न किसी बहुलतावादी प्रजांतात्रिकता से, जैसाकि एजाज़ अहमद (इनक्यारी) ने इसे ऐसा समझा है, अपितु यह गहरे में एक पूरे देश के आधुनिक राष्ट्र के रूप में जन्म लेने और विकास की दिशाएँ खोजने से जुड़ा मामला है। पंजाबी संस्कृति की बात इसी महा प्रश्न के एक हिस्से की तरह उठीं हुई एक बात है। इन तमाम सवालों में बहुत विस्तार से जाने की गुंजाइश यहाँ नहीं है, अतः इनकी बाबत सूत्र रूप में कुछ बातें उठा कर मैं मूल विषय पर, यानी हिन्दी-उर्दू साहित्य वाले परिदृश्य पर पहुँचना चाहूँगा। ये सूत्र इस प्रकार हैं :-

एक : पंजाबी को उर्दू-हिन्दी के विकास में पूरक-सहयोगी की भूमिका निभाने वाले विविध अन्य अंचलों की विविध भाषाओं में से एक ही तरह देखा जाना चाहिए।

दो : उर्दू - हिन्दी का जो अखिल भारतीय क़िस्म का अंतर्गठन है, उसके तहत ये भाषाएँ दो अलग-अलग भाषाओं की तरह विकास नहीं करतीं, अपितु एक ही भाषा के दो रूपों की तरह-जिनका ताल्लुक अरबी-फ़ारसी व संस्कृत की प्रधानता मात्र से है-विकास करती हैं और इसीलिए इनकी संरचनागत बुनावट में कोई बड़ा गुणात्मक फ़र्क़ दिखायी नहीं देता।

तीन : उर्दू - हिन्दी का अखिल-भारतीय अंतर्गठन, पंजाबी जैसी विविध आंचलिक भाषाओं के विकास के समानांतर होता है तथा वह बड़े पैमाने पर आंचलिक भाव-बोधों को अपने में जज़्ब करता दिखायी देता है।

चार : उर्दू - हिन्दी का विकास मुख्यतः व्यापारी वर्ग के द्वारा, काफ़ी हद तक शहर-केंद्रित रूप में होता है, जबकि पंजाबी जैसी विविध आंचलिक भाषाएँ मुख्यतः ग्राम - केंद्रित रूप में विकास करती हुई शहरों की ओर फैलती हैं; इस तरह, उदाहरण के रूप में, पंजाब के गाँवों व शहरों की आम बोलचाल की भाषा हो जाने के बावजूद पंजाबी के सह और समानान्तर शहरी मध्यवर्ग का एक अल्प हिस्सा सांस्कृतिक व शैक्षणिक व्यवहारों के लिए उर्दू-हिन्दी का बराबर के अधिकार से प्रयोग करता रहता है। व्यापारिक कारणों से इन शहरी तबकों में आधुनिक काल में उर्दू - हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेज़ी के प्रयोग की प्रवृत्ति भी तेज़ी से बढ़ी है।

पाँच : हालाँकि, उर्दू-हिन्दी के आधुनिक रूपों के विकास में मध्य भारत की आंचलिक भाषाओं-यानी ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली व बुंदेलखंडी—के पूरक-प्रभाव का महत्त्व इस भाषा के स्वरूप को गढ़ने के लिहाज़ से बहुत ज़्यादा रहा है, परंतु इसे जीवंतता, व्यापकता व गतिशीलता प्रदान करने के लिहाज़ से इसके पंजाबी आँचलिकता के रिश्ते को सर्वाधिक सम्मान देने की ज़रूरत दिखायी देती है। इस संदर्भ में देखा जाए, तो पंजाबी इस अंचल की अन्य भाषाओं यानी हरियाणवी और हिमाचली भाषाओं के मुक़ाबले में ज़्यादा गहरा व वर्चस्वी प्रभाव छोड़ती हैं। इसके कारण, भारत के व्यापारिक इतिहास में छिपे हैं, जिसके तहत मध्य एशिया के साथ भारत के व्यापारिक इतिहास-संबंधों के रास्ते में पाकिस्तान के बड़े इलाके तक का पंजाबी-भाषी होना आ जाता है। समृद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारी-वर्ग की मध्यस्थता इस व्यापार-मार्ग पर मौजूद बड़े पंजाबी-भाषी तबकों की मार्फ़त होती रही है। इस लिहाज़ से उर्दू-हिन्दी के लिए सबसे बड़ी मध्यस्थता की भूमिका निभाने वाली भाषा के रूप में पंजाबी की जगह किसी और को नहीं दी जा सकती।

छह : उपुर्यक्त सूत्रों को ध्यान में रखते हुए अब हम समझ सकते हैं कि जिसे ऊपर उर्दू-हिन्दी भाषा के रूप में देखा गया है, वह दरअसल ऐतिहासिक रूप में फ़ारसी मिश्रित ब्रज है, जो उन्नीसवीं सदी के आरंभकाल तक फ़ारसी मिश्रित पंजाबी के साथ गलबहियाँ डाले विकास करती है। सन् 1800 में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पहले तक उर्दू का हिन्दी से स्वतंत्र रूप नुमायाँ होकर नहीं उभरता, ख़ासतौर पर उर्दू साहित्य के विकास को ध्यान में रखते हुए पर फ़ारसी मिश्रित ब्रज के रूप में जो हिन्दी इससे पहले विकास करती रही है, उसका साहित्य तेरहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो जैसे लेखकों के द्वारा बड़े समृद्ध रूप में रचा जाने लगता है। यह हिन्दी की वह परंपरा है, जिसे इससे पूर्व सरहपा और गोरखनाथ जैसे बड़े साहित्यकार गढ़ रहे थे। यही हिन्दी आगे चलकर कबीर और खुसरो के हाथों में पड़ कर उस हिन्दी का रूप लेती है, जिसका झुकाव फ़ारसी की ओर हो जाता है और दूसरी तरफ़ फ़रीद व बुल्लेशाह जैसे लेखकों के द्वारा हमें इसी का समांतर पंजाबी आंचलिक रूप विकसित होता दिखायी देता है। परंतु, यहाँ देखने लायक बात यह है कि उस दौर तक की हिन्दी व पंजाबी में बहुत बड़ा फ़ासला नहीं है। यही वजह है कि बाद में 'गुरुग्रंथ साहिब' में संकलित कवियों में ये सभी हिन्दी और पंजाबी कवि एक साथ एक मंच पर खड़े नज़र आते हैं। यहाँ तक कि गुरु नानक, गुरुतेग बहादुर और गुरु गोविंद सिंह की वाणी को अभी तक हिन्दी और पंजाबी दोनों की साझी विरासत की तरह देखा जाता है। साझी सांस्कृतिक विरासत के परिप्रेक्ष्य में देखने पर हिन्दी का पंजाबी संस्कृतिमूलक अंतर्गठन एक ऐसी आधारभूमि बन जाता है, जो उपर्युक्त व्यापारिक मध्यस्थता वाली भूमिका से कहीं ज़्यादा बुनियादी व गहरा मालूम पड़ता है।

ऊपर के विवेचन से हम इस नतीजे पर सहज ही पहुँच सकते हैं कि हिन्दी और पंजाबी दो जुदा भाषाएँ ज़रूर हैं, परंतु सांस्कृतिक अंतर्गठन के लिहाज़ से ये दोनों एक जैसी अंतर्वस्तु वाली भाषाएँ हैं और सन् 1800 के बाद के औपनिवेशिक दौर में उर्दू का हिन्दी व पंजाबी से अलहदा भाषा के तौर पर विकास सांस्कृतिक अंतर्वस्तु की भिन्नता की वजह से नहीं होता, अपितु उस दौर की औपनिवेशिक सियासत के कारण होता है।

हिन्दी और उर्दू का उन्नीसवीं शती में एक-दूसरे से अलहदा विकास सांप्रदायिक एवं राजनैतिक कारणों से होता है। इस अलहदगी में जो चीज़ बँटती है, वह वही सांस्कृतिक अंतर्वस्तु है, जिसकी जड़ें पंजाबियत में हैं या ब्रज और अवधी की ज़मीनी संस्कार-भूमियों में हैं। यहाँ यह बात भले ही बड़ी विवादास्पद मालूम हो सकती है, पर इस पर परदा डाले रखना किसी के हित में नहीं है कि जिसे हम मौजूदा हिन्दी यानी खड़ी बोली और उर्दू के रूप में देखते और जानते हैं—उनकी अपनी कोई सांस्कृतिक ज़मीन नहीं है और इस ज़मीन के लिए इन भाषाओं को गंगा-जमुनी जीवन-शैलियों की ओर या सप्तसिंधु के थोड़े सीमित रूप पाँच नदियों वाली पंजाबी सभ्यता की ओर देखना पड़ता है।

हिन्दी और उर्दू भाषाओं का सांस्कृतिक उत्खनन हमें कहाँ ले जाता है? अगर इस रास्ते पर आगे बढ़ते हुए हम गंगा-जमुनी तहज़ीब तक और पंजाबी भाव-बोध तक जा पहुँचते हैं, तो पहला सवाल यही उठता है कि इस रास्ते से और इससे उपजे परिप्रेक्ष्य से हम जिस पंजाबियत तक पहुँचते हैं, वह क्या है और किन कारणों से व किन रूपों में इन दोनों के बीच वह साझापन दिखायी देता है कि तत्त्वतः वे एक मालूम पड़ते हैं? और क्यों इन्हें ही हिन्दी व उर्दू की मार्फ़त अखिल भारतीय व्यापकता मिलती है? ये सवाल इसलिए भी पूछने लायक हो जाते हैं, कि फ़ोर्ट विलियम कॉलेज कोलकाता में स्थापित होता है। अंग्रेज़ अपनी औपनिवेशिक सत्ता को वहीं से आगे बाक़ी तक ले आते हैं। पर बंगाल और बंगाली भाव-बोध भारत का केंद्रीय या अखिल भारतीय भाव-बोध नहीं बनता, हालाँकि आधुनिकता का परचम पहले-पहल वहीं फहराया जाता है। पर, जिसे भारत की आत्मा कहते हैं, उसका प्रतिनिधित्व यह औपनिवेशिक आधुनिकता नहीं कर पाती है। यही स्थिति दक्षिण की भी होती है। ज्ञान-विज्ञान के विकास में दक्षिण की बड़ी गहरी व नुमायाँ भूमिका अवश्य दर्ज होती है, पर भारत को भारत बनाने वाले सूत्र मूलतः गंगा-जमुनी प्रदेशों से लेकर पंजाब की भूमि तक फैले दिखायी देते हैं। अतः प्रतीत होता है कि पंजाबी संस्कृति के अर्थों को इन्हीं संदर्भों में खोलना-समझना चाहिए।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंजाबी भाव-बोध, संस्कृति या पंजाबियत जैसे शब्दों से जो अर्थ ग्रहण होते हैं, वे पंजाब और पंजाबियों की अस्मिता को तलाश करने वाले अर्थ नहीं हैं। जीवंतता, उत्साह, तेजस्विता या आक्रामकता आदि से जुड़े मुक्त निर्कुठ हास्य व करुणा के भावों वाले व्यवहारों को या सेवा-भाव एवं शहादत जैसी चीज़ों को मिथक बना डालने की मानसिकता को अथवा सांस्कृतिक आत्म-गौरव को आत्म-वर्चस्व की हद तक ले जाने की आकांक्षाओं जैसी बातों को जब कोई पंजाबियत या पंजाबी संस्कृति के पर्याय की तरह देखता है, तो यह 'परिप्रेक्ष्य' के अभाव में सत्य को टटोल-टटोलकर देखने जैसा कुछ हो जाता है, जैसे अंधों का हाथी को छू-छू कर अंदाजा लगाना कि हाथी कैसा होता है? इसलिए पंजाबी भाव-बोध या संस्कृति के यथार्थ को पकड़ने से पहले यही ऐसे अस्मितामूलक अर्थों की समालोचना कर लेना ज़रूरी प्रतीत होता है। पंजाब और पंजाबियों की पहचान को रेखांकित करने वाले ये तमाम अर्थ आधुनिक काल में पैदा हुए क़ौमियतों के सवाल व अस्मिताओं के संकट की उपज हैं। अबः ये अर्थ 'आत्म' की 'पर' से अलहदगी, एक तरह के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्ता-वर्चस्व व अन्य से दुश्मनी की हद तक चले जाते हैं-गोकि हमेशा ऐसा नहीं होता। पंजाबियत के ये अर्थ गहरे में बसी औपनिवेशिक आधुनिकता की उपज हैं, जिसने इसे आत्म-रक्षात्मक (सेल्फ़ डिफ़ेंसिव) बनाया है और इसीलिए आक्रामक भी; परंतु ये अर्थ असल अर्थों को विकृत करके प्रकट होते हैं।

पंजाबियत या पंजाबी संस्कृति के असल अर्थ ग्राम एवं कृषि केंद्रित उत्पादन-संबंधों के ख़ास रूपाकार की उपज हैं। यहाँ प्राकृतिक परिवेश-ख़ासतौर पर नहरों व मौसमों पर बहुत दूर तक निर्भर करने वाली चेतना दिखायी देती है, जिसने अपने इस आत्मनिर्भर संसार के पहले की क़बीलाई संस्कृति से जुड़े जनसमूहों को आत्मसात करने लायक बनाया है। इससे यहाँ 'अन्य' के प्रति एक गहरा व बेहद उदार आत्म-स्वीकार नज़र आता है और वह जो आक्रामकता है, उसका ताल्लुक उन तत्त्वों व प्रवृत्तियों से है, जो इस आत्मनिर्भर प्राकृतिक संसार का हिस्सा न बनती हुई, इसे विनष्ट करना चाहती हैं और जिन्हें हम आत्म-गौरव के रूप में देखते-पहचानते हैं, वह इसी प्राकृतिक आत्म-निर्भरता की अधि ारचना है।

दूसरी बात प्रवास की है, जिसे यहाँ के व्यापारिक यथार्थ की उपज की तरह देखा जा सकता है। पंजाब के व्यापारिक मार्ग पर होने की वजह से जो बात पंजाबी भाव-बोध का गहरा हिस्सा हो गयी, वह थी सीमाओं के पार जाने की प्रवृत्ति। कुछ भी हद में बँध ा नहीं है। सत्य की परिभाषा ही इसीलिए 'बेहद' की तरह प्रकट होती है। परंतु, वह 'अपरंपार' होते हुए भी 'स्वैयम्' है। वह हदें लाँघता है, पर पैदा अपने ही आप से होता है। यानी, प्रवास का यथार्थ आत्म-संभावना या आत्मनिर्भरता है, पर जाना उसे 'अपरंपार' दुनिया की ओर है। इस तरह, प्रवास और वैश्विकता के बहुत अलग तरह के अर्थ उभरते हैं। वैश्विक होकर भी यह संस्कृति आत्माधारित रहती है—जाना दूर-दूर तक है, पर लौटना यहीं है और उससे जो पाया जाता है—उसे 'गुरप्रसाद' की तरह ग्रहण करना है। इस रहस्य को अभी समझना बाक़ी है, पर इससे पहले यह टिप्पणी यहाँ ज़रूरी पालूम पड़ती है कि यह अकारण या यथार्थविहीन बात नहीं है कि 'जपुजी साहिब' का मूल-मंत्र पंजाबियत की मूल प्रकृति को इतनी स्पष्टता व व्यापकता से व्यंजित करता है।

तो, उस 'गुरप्रसादि' वाली पंजाबी मानसिकता के अर्थ समझते हैं : वह आचरणमूलक यथार्थ से ताल्लुक रखने वाली यहाँ की सच्चाई है, जिसे गुरुनानक ने 'सच्चा सौदा' कहा। वह मूलतः व्यापारिक आचरण - पद्धति है, जो व्यापार व प्रवास को यहाँ की प्राकृतिक आत्मनिर्भर उत्पादकशीलता का हिस्सा बनाती है। इसकी बुनियाद इसी सप्तसिंधु प्रदेश में लड़े गये 'महाभारत' के युद्ध के दौरान् कृष्ण के अर्जुन को दिये उपदेश में है कि 'कर्म पर तुम्हारा अधिकार है, फल पर नहीं'; व्यापारिक संदर्भ में इसके अर्थों का विकास पहले बौद्धों-जैनों ने किया। जैन यहाँ के बड़े व्यापारी थे और बौद्ध उनके पूरक। बौद्धों ने अपने संस्कृति-कर्म को एशिया के महानतम व्यापार का रूप दे दिया। सांस्कृतिक आदान-प्रदान ने वह ज़मीन तैयार की, जो हमारे व्यापार को वैश्विक रूप दे सकी। बौद्ध महायानियों की महासभाएँ इधर पंजाब में, जालंधर जैसे शहरों में भी हुईं, फिर यहाँ के टीलों पर छप्पर डाल पर रहने वाले गोरख यहाँ से बंगाल व आसाम तक गये। इसी सांस्कृतिक प्रवास-व्यापार को गुरु नानक ने अपनी 'उदासियों' की तरह जीकर दिखाया और हरिद्वार से लेकर काबे तक की यात्राएँ कीं। व्यापार को संस्कृति की शक्ल देते हुए नानक ने सदाचरण को सत्य से भी ऊपर ले जाकर बिठा दिया। आचरण को केंद्र में रखने की बात अगर हम पकड़ पाएँ, तो आसानी से देख सकेंगे कि ठीक इसी में पंजाबियत की मूल संवेदना—सांस्कृतिक यथार्थ का सार छिपा है। यही हमारे भक्ति-आंदोलन की मूल संवेदना भी है। इसी की बदौलत पंजाबी भाव-बोध और गंगा-जमुनी मध्यभारतीय संस्कृति का 'राम- भरोसे' वाला जीवन एकदम एक साझे मंच पर बजने वाला राग हो जाता है। राम को ठीक से समझना हो, तो वह भी मूलतः एक आचरण केंद्रित सत्य का चरितार्थ है। 'गुरुग्रंथ साहिब' में संकलित वाणियाँ इसी आचरण-भूमि पर भाव और ज्ञानमूलक व्यवहार-पद्धतियों को आत्मसात कर रूपांतरित करती हैं। पीछे पूर्वी समाज की (बंगाल-आसाम) चर्चा की गयी थी। ये प्रदेश भाव-केंद्रित व्यवहार-पद्धतियों की बुनियाद पर खड़े हैं, तो दक्षिण भारत ज्ञान-केंद्रित व्यवहार-रूपों पर। आचरण इन दोनों के संतुलन की तलाश है। वही पंजाबियत का मूल-स्वर या आत्मा है।

0 0 0

अब इस परिदृश्य से पंजाब के हिन्दी व उर्दू साहित्य में मौजूद पंजाबी भाव-बोध की पहचान व उसके अर्थों की तलाश की ओर कुछ कड़वी सच्चाइयों से मुख़ातिब होते हैं।

यहाँ पहली सच्चाई यह है कि पंजाबी भाव-बोध या संस्कृति इन दोनों भाषाओं के पंजाब में रचित साहित्य की व्यंजना में तो ज़रूर मौजूद है, परंतु अंतर्गठन में है—उसका औपनिवेशिक आध ुनिकता द्वारा गढ़ा गया वह विकृत रूप, जो अस्मिताओं के संकट, कौमियतों की ज़रूरतों व 'अन्य' के प्रति दुश्मनी के भावों को नुमायाँ बना देता है।

जैसाकि हमने ऊपर रेखांकित किया है, पंजाब में भी बाक़ी भारत के पैटर्न पर उन्नीसवीं सदी के आरंभकाल से ही हिन्दी और उर्दू के रूप में दो अलग भाषाओं के विकास को दर्ज करते हुए साहित्य की रचना आरंभ हो जाती है। सन् 1800 से लेकर सन् 1907 तक (जो बंग-भंग की घटनाओं से जुड़ा है) हिन्दी व उर्दू के लेखक भी ज़बानों के आधार पर बँटे नज़र आते हैं; कुछ एक अपवादों को छोड़कर, जैसे फ़ोर्ट विलियम कॉलेज से जुड़े अध्यापक इंशा अल्ला ख़ां का गद्य है, जिसे फ़ारसी-मिश्रित हिन्दी की तरह भी स्वीकार किया जाता है और उर्दू की तरह भी। पर, बहुतायत में ऐसे ही लेखक भरे, जो या तो हिन्दी में लिखते थे या उर्दू में।

परंतु, 1907 के बाद 1947 तक का ऐसा दौर आता है, जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत से साहित्यकारों ने हिन्दी व उर्दू दोनों ज़बानों में लिखा और दोनों में अपनी जगह बनायी। पंजाब के संदर्भ में यह बात ख़ासतौर पर उल्लेखनीय हो जाती है कि ऐसे अधिकांश लेखक पंजाब से ताल्लुक रखते थे और ग़ौरतलब बात यह भी है कि इसी दौर में कुछ ऐसे लेखक भी सामने आये, जो हिन्दी व पंजाबी दोनों भाषाओं में अपनी पहचान बना सके।

आज़ादी से पहले के हिन्दी और उर्दू के पंजाब में रचे साहित्य को उपर्युक्त दो कालखंडों में विभाजित करने के पीछे वही परिप्रेक्ष्य है, जो इस साहित्य में पंजाबी भाव-बोध को ख़ास शक्ल प्रदान करता है।

उन्नीसवीं सदी में औपनिवेशिक आधुनिकता से जन्म लेने वाली जो अस्मिताधर्मी प्रवृत्तियाँ हैं, उनका ज़्यादा असर पंजाब में दिखायी नहीं देता। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की मार्फ़त हुआ कार्य पूर्वी भारत में केंद्रित रहा, जो 1857 के बाद मध्य भारत को अपनी गिरफ़्त में लेता है। इसके असर में जो उर्दू साहित्य लिखा गया, वह फ़ारसी की क्लासिकी परंपरा के उर्दू में ज़बरदस्त पुनरुत्थान की सूचना देता है। इस पुनरुत्थान ने उर्दू के महान कवि पैदा किये, जिनमें बहादुर शाह ज़फ़र, मीर तकी मीर, ग़ालिब और ज़ौक जैसे नाम शामिल हैं। यह पूरा दौर उर्दू व हिन्दी-दोनों के संदर्भ में सांस्कृतिक पुनरुत्थान की ओर इशारा करता है।

पंजाब में इस सांस्कृतिक पुनरुत्थान की पहली बड़ी-लहर स्वामी दयानंद सरस्वती से जुड़े आर्य समाज के आंदोलन के रूप में आयी जिसमें वैदिक परंपरा को फिर से स्थापित करने की कोशिश की गयी। इसने हिन्दी का बड़ा समृद्ध गद्य पैदा किया। पीछे-पीछे सिंघ सभा लहर, अकाली लहर, कूका लहर और सनातन धर्म की लहरें उठ खड़ी हुईं। आदधर्म, भगत-समुदाय व रैदासी पंथ में भी उभार आया। यह सब औपनिवेशिक आधुनिकता के द्वारा खड़े किये गये अस्मिता धर्म संकट की वजह से उठ खड़ा होता है। इस काल में हिन्दी व उर्दू में ज़्यादातर गद्य की रचना होती है और वह भी सांस्कृतिक व पुनरुत्थानवादी होने की वजह से रचनात्मक साहित्य में शुमार होने से छूट जाता है।

तथापि बीसवीं सदी में पंजाब के हिन्दी व उर्दू के साहित्यकार बेहद अहम रचनात्मक काम करते हुए, एक तरह से पूरे भारत की नुमायंदगी सी करते दिखायी देते हैं। पुनरुत्थान का असर कम होता है और हिन्दी व उर्दू के लेखक दोनों जुबानों में लिखते हुए उस साझेपन की तलाश करते नज़र आने लगते हैं, जो राष्ट्रीय भावबोध के लिये ज़रूरी समन्वयात्मकता की तलाश की ओर मुड़ता है। यहाँ पंजाब बाकी भारत से कुछ अलहदा जान पड़ता है और यहीं हम पीछे छिपे उस पंजाबी भाव-बोध की अनुगूंजों की व्यंजनाओं को पकड़ सकते हैं, जो हमारे मौजूदा दौर में भी मौजूं मालूम पड़ती हैं।

यह उसी पंजाबी भाव-बोध का नतीजा हो सकता है कि पंजाब में जो पुनरुत्थानवादी साहित्य आया, उसमें सांप्रदायिक कट्टरता की मात्रा इतनी नहीं थी कि सांझेपन व समन्वय के लिये रास्ते बंद हो जाते। संभवतः इसीलिये बंगभंग के रद्द होते ही भारत की जो आबोहवा बदलती है, उसका सहारा लेकर पंजाब अपने इसी खास भाव-बोध के सहारे एक ऐसी महान रचनात्मक लहर पैदा करता है, जो पूरे भारत के हिन्दी साहित्य के नये दौर की शुरूआत करती है और हिन्दी व उर्दू दोनों भाषाओं में सांझे लेखन की प्रवृत्ति को जन्म देती है।

जहाँ तक उर्दू का सवाल है, बीसवीं सदी के महानतम कवियों का ताल्लुक पंजाब से दिखायी देता है। पहले हाली, फिर इक़बाल और फिर फ़ैज़। इनकी शायरी में जो समाज-राजनैतिक चेतना नज़र आती है, वह धीरे-धीरे अस्मिता के सवालों से यथार्थ की पहचान की ओर रुख करती है। हाली और इक़बाल में अतीत के गौरव का कुछ हद तक पुनरुत्थान है, पर केंद्र में मध्य एशिया की शास्त्रीय विरासत की बजाय हिंदोस्तान चला आता है। 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी'-में हिन्दोस्तान के अर्थ-खोजने को लेकर यथार्थ की ओर रुख करने की प्रवृत्ति है, जो फ़ैज़ में प्रगतिशील रूप पा लेती है। पंजाबी भावबोध को यहाँ हम तहज़ीब या सभ्यता के सवालों की केंद्रीयता में मौजूद देख सकते हैं। वह सप्तसिंधु की सांस्कृतिक विरासत की फिर से खोज है पर जैसाकि ऊपर कहा गया है-यह सब नुमायां न होकर व्यंजना में है।

व्यंजना यह है कि पंजाबी भाव-बोध के असर में यहाँ के साहित्य का सांस्कृतिक पुनरुत्थान एक तहज़ीबी या सभ्यता-मूलक वस्तु बन जाता है। इसी आधार पर यह समझा जा सकता है कि आर्य समाज पंजाब में ही अपनी जड़ें क्यों और कैसे जमाता है? वैदिक बहुदेववादी विरासत सप्त सिंधु की सभ्यता की ख़ास पहचान है, जो पंजाबी भाव-बोध की बुनियादों में घुली-मिली है। सभ्यता की बात के केंद्र में आने से ही वह संभावना पैदा होती है, जिसे केवल और केवल कथा के द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है। कथा से ज़्यादा धर्मनिरपेक्ष सामाजिक इतिहास दूसरा नहीं होता। सांस्कृतिक पुनरुत्थान जब तक भारत पर हावी रहता है, आधुनिक कथा जन्म नहीं लेती। उपन्यास और कहानी का विकास इसीलिए सभ्यतामूलक चेतना की ओर रुख़ करने वाले पंजाब में दिखायी देता है।

श्रद्धाराम फिल्लौरी के रूप में हिन्दी के पहले उपन्यास भाग्यवती की रचना का हेतु प्रकट होता है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी हिन्दी की पहली विधिवत कहानी 'उसने कहा था' लेकर आते हैं। पहले विश्वयुद्ध के हालात को अमृतसर के परिवेश की मार्फ़त पकड़ती यह कहानी पंजाबी भाव-बोध के स्थानीय, प्रवासगत व वैश्विक-तीनों आयामों को छूती जान पड़ती है। पीछे-पीछे उर्दू-हिन्दी के साझे बड़े कथाकारों का एक हुजूम-सा आकर पूरे रचना-परिदृश्य को घेर लेता है। कृश्न चंदर, राजेन्द्र सिंह बेदी, उपेन्द्रनाथ अश्क, हंसराज रहबर, बलवंत सिंह, विमल कुमार जैसे दर्जनों कथाकार हिन्दी व उर्दू दोनों के इतिहास को एक साथ समृद्ध करते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे जो उर्दू के कथाकार हैं—सआदत हसन, मंटो, अहमद नदीम कासमी, जगन्नाथ आज़ाद, अली सरदार जाफ़री या कुर्तुल-एन-हैदर—वे ऐसे नाम बन जाते हैं, जिनकी रचनाएँ हिन्दी में लगातार यों छपती हैं, जैसे वे उर्दू के नहीं, मूल हिन्दी के लोग हों। पंजाब में कथा के फ़लक पर यह जो इतनी ज़बरदस्त आपसदारी व सांस्कृतिक आवाजाही हुई है, उसे पंजाबी भाव-बोध की मूल अंतर्वस्तु बन सकने लायक बहुलतावाद के रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

वैदिक बहुदेववाद की ज़मीन से जुड़े पंजाबी भाव-बोध की वह जो सभ्यतामूलक अंतर्वस्तु है, वही हमारे समय तक आते-आते, सांस्कृतिक बहुलतावाद में बदल जाती है। यही पंजाब के हिन्दी व उर्दू साहित्य की पंजाबी भाव-बोधक अंतर्वस्तु की व्यंजना है, परंतु यह सन् 1947 तक आते-आते सांप्रदायिक पुनरुत्थान के विभाजनकारी व अस्मितामूलक रूपों से टक्कर लेने और उसे पराजित करने में कामयाब नहीं हो पाती है।

विभाजन अस्मिता और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सवालों को फिर से केंद्र में ला खड़ा करता है। नतीजतन, जिसे हम पंजाबी भाव-बोध कहते हैं, वह कुंठित होकर विखंडित होने के रास्ते पर निकल पड़ता है। ऐसा भारत और पाकिस्तान—दोनों ओर के पंजाब में होता है। इधर के पंजाब में यशपाल का 'झूठा सच', भीष्म साहनी का 'तमस' और कृष्णा सोबती का 'ज़िंदगीनामा' इसी विखंडन को पहचानने-पकड़ने भी कोशिश है और उधर से इसी की उत्तरकथा के रूप में 'उदास नस्लें' जैसा शाहकार आता है। मंटो की कहानी 'टोबा टेक सिंह' तो इस संदर्भ में एक कालजयी रचना हो जाती है। वह गोया इस विभाजन की त्रासदी का एक समग्र-विंब पेश करती है। समझदार लोग पागलपन के शिकार हैं और पागल समझदारी की बातें कर रहे हैं। गोया, अब केवल एक पागल से ही यह उम्मीद जागती है कि उसका 'टोबा टेक सिंह' अभी तक अविभाजित है।

यह 'टोबा टेक सिंह' प्रतीकार्थ में पंजाबी भाव-बोध है। यह अविभाज्य है। विभाजन के बाद का पंजाब का पूरा हिन्दी व उर्दू साहित्य अभी तक गोया उसी खो गये अविभाजित 'टोबा टेक सिंह' को खोजने में लगा है। यह एक बड़ा सभ्यतामूलक विमर्श है। इसे राजनैतिक विभाजनों के द्वारा न तो बाँटा जा सकता है, न रद्द किया जा सकता है। यहीं पंजाब की स्वातंत्र्योत्तर रचनाशीलता वैश्विक संदर्भों से आ जुड़ती है। विभाजनकारी नवसाम्राज्यवादी प्रवृत्तियों से जूझने-लड़ने के लिए हिम्मत जुटाता हुआ यह पंजाबी भाव-बोध अगर एक नया विमर्श लेकर दोबारा उठ खड़ा हुआ, तो अवश्य ही इस क्षेत्र में रचनाशीलता का एक नया विस्फोट-सा हो जाएगा। इस स्वातंत्र्योत्तर दौर में हिन्दी के जगदीश चन्द्र ने अवश्य पंजाबी भाव-बोध के ज़मीनी यथार्थ से जुड़ने की कोशिश की है, परंतु अभी बहुत दूर तक जाना है। गहरी वैश्विक चुनौतियों के बरअक्स अभी बहुत काम करना बाक़ी है।

9, चीमानगर एक्स., मिट्ठापुर रोड
पो.ऑ. टावर टाउन कॉलोनी, जालंधर

लघुकथा

काम

अर्पिता श्रीवास्तव

शाम के धुंधलके ने उजाले पर अपने पंजे फैला दिए थे। पुतली और उसका छोटा भाई कल्लू बस्ती के कबाड़ से खेल कर आ रहे थे। रोज़ शाम वहाँ बस्ती के सारे बच्चे पहुँचते और गुल्ली-डंडा खेलते, बेकार पड़े टायरों को अपनी साइकिल समझ चलाते। आज दोनों भाई-बहिन को घर लौटने में देर हो गयी थी। जैसे ही वे दोनों अपनी झोपड़ी का दरवाज़ा धकेल अंदर घुसे माँ ने बिना कुछ सवाल-जवाब किये दोनों की खूब पिटाई की क्योंकि उनकी माँ रोज़ शाम ढलने के बाद काम पर जाती थी और देर रात घर लौटती। जाने से पहले वो उन दोनों को खाना खिलाकर सुला देती थी पर आज वो काम पर नहीं जा सकी, ये बात पुतली और कल्लू समझ रहे थे सो धीरे से रोते-रोते कल्लू ने माँ से कहा—"माँ, तू परेशान न हो, मैं कल तुझसे खाने के लिए कुछ नहीं माँगूँगा।" पुतली भी हिचकियों से भरी बोली, "माँ, तू हम लोगों का कितना ध्यान रखती है, देख अब तेरी बेटी बड़ी हो गयी है। अब तेरी जगह रात में काम करने मैं चली जाया करूँगी, तू घर में आराम से सोया करना। पुतली का ये कहना था और माँ चक्कर खाकर वहीं गिर पड़ी। दोनों भाई बहिन माँ की बेहोशी की वजह से अनजान रात के अँधेरे में सिसक रहे थे।

.एस.एफ.-3-141
बाराद्वारी सुपरवाइज़र फ्लैट्स,
सावची, जमशेदपुर-821001
झारखंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घनश्याम कुमार 'देवांश' की कविताएँ

जुगनू
तुम्हारी आँखों के जुगनू
एक दिन
मैंने अपनी पलकों में
कैद कर लिए
उस दिन से
रात कभी हुई ही नहीं....

एकाकी
जब मैं
तुम्हारा साथ पाने के लिए
कह रहा था
कि मैं अकेला हूँ
अकेला नहीं था शायद
उस वक़्त भी,
मेरी दो बाजुओं पर
पुरवइया और पछियाव
आसमान में उड़ते
सुग्गों की तरह
आकर सुस्ताते थे,
सिर पर ठुड्डी
टिकाता था सूरज
और पृथ्वी चलती थी
अपनी धुरी पर फुदकती हुई
मेरे साथ
लेकिन तुम्हारे जाते ही
भौंचक्का रह गया मैं
जब मेरी परछाईं तक
इठलाती हुई
तुम्हारे पीछे-पीछे चली गई।

इससे पहले कि
सूरज के डूबने
और उगने के बीच,

मैं तैयार कर लेना चाहता हूँ
रौशनी के मुट्ठी भर बीज
जिन्हें सवेरा होते ही
दफ़ना सकूँ मैं
धरती के सबसे उर्वर हिस्से में

गोद लेना चाहता हूँ
कविता के कुछ नए शब्द
उम्मीद और ताकत से भरे हुए
जिन्हें आने वाली पीढ़ी
की नर्म हथेली पर
छोड़ सकूँ कंचन पाँख की तरह

रो लेना चाहता हूँ
कुछ और गर्म आँसू
इससे पहले कि
दुनिया के सारे दुख,
सारी चिंताएँ
और
कविताओं के लिए
सारे विषय समाप्त हो जायँ...

जब तुम चली जाओगी
जब तुम चली जाओगी
तुम्हारी गली में
सूरज तब भी उगेगा
यथावत,
चाँद सही समय पर
दस्तक देना नहीं भूलेगा,
फूल खिलना नहीं
छोड़ देंगे
हवाओं में ताजगी
फिर भी बनी रहेगी,
बच्चे तुम्हारे घर के नीचे
वैसे तो खेलते
मिला करेंगे,
पड़ोस के अंकल आंटी
ठीक पहले की तरह
झगड़ते रहेंगे
अखबार वाला बिना नागा किए
दुनिया के
न रुकने की खबरें
बालकनी में फेंकता रहेगा
फिर भी मैं
अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी को
खुजलाता हुआ
अपने अंतर में
तुम्हारे सूखते अस्तित्व को
सींचने की कोशिश में
सालों साल बराबर लगा रहूँगा।

431, डाकतार कॉलोनी
रामकृष्णपुरम, सेक्टर-VI
नई दिल्ली-110022

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनवर शमीम की कविताएँ

'माँ और परिन्दे'

(1)
माँ से
पूछ-ताछ कर
ढेर सारे परिन्दों को
मैं उनके नाम से
जानने-पहचानने लगा था
उड़ने लगा था
उतना ही
उन्हीं की तरह...!

(2)
परिन्दों की
उड़ान के आगे
छोटा
पड़ता जा रहा है आसमान
एक दम छोटा
चौदह इंच का

यह कैसा
आसमान है
जहाँ
उड़ते हुए
परिन्दों के रंग
बदलने लगे हैं

इन रंग बदलते
परिन्दों को देखकर
बहुत उदास हैं
माँ की आँखें...!

(3)
सालिम अली तो
नहीं थी मेरी माँ
फिर भी

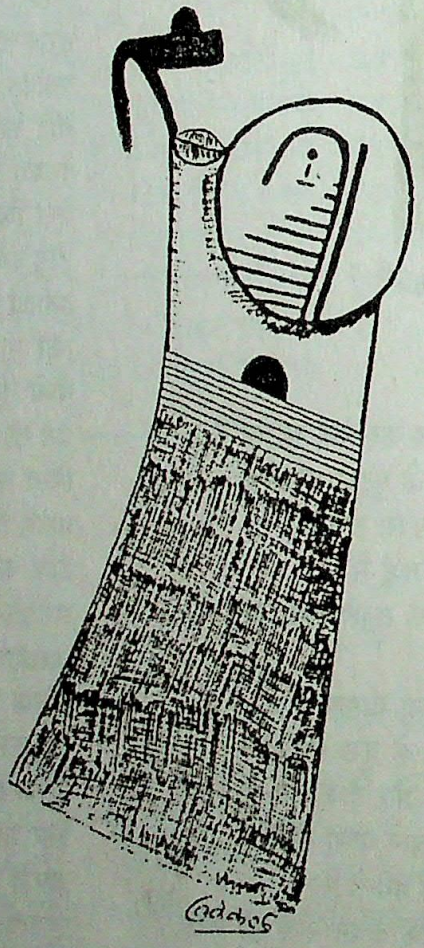

ढेर सारे परिन्दों को
पहचानती थीं
अच्छी तरह
करती थीं
उनसे प्यार
परिन्दों से
इतनी हिल-मिल गई थीं
कि उनकी जाति-बिरादरी
गोतिया-नईया
खर-खानदान तक की
ख़ैर-ख़बर रखती थीं

जब कभी माँ
परिन्दों की पोथी-पतरी
बाँचने बैठतीं
तो परिन्दे हैरत से
बस माँ का चेहरा देखते रह जाते
उड़ान भरने लगते
माँ की आँखों में

रही चुनमुन चिड़ई की बात
वह तो माँ की दुम थी
आखिरी दमतक रही उनके साथ

कहाँ खो गई चुनमुन चिड़ई...?

याद आ रही हैं
माँ की लोरियाँ
जिनमें
हर-हमेशा
शामिल रही हैं
पंखों की फड़-फड़ाहटें...।

इज़हार कंपाउंड, मिल्लत कॉलोनी
वासेपुर, धनबाद-826001 (झारखंड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदीप जायसवाल की कविताएँ

'उनकी मूंछें'

काश 'लादेन' को किसी हिन्दुस्तानी लड़की से इश्क हो जाता
वह भी खालिस उत्तर भारतीय लड़की से
फिर तो 'वे' उसे पाताल से भी ढूँढ निकालते
जिसकी फ़िराक में अमेरिका छान रहा है दर-दर की धूल
'वे' उसे बादलों के पार से भी ढूँढ निकालते
जैसे ढूँढ निकालते हैं प्यार करके भागने वालों को
'वे' इस मुल्क के मासूम बेटे-बेटियों के पिता, चाचा, दादा
उनके मालिक, ऑनर, खुदा, अन्नदाता
पंचायतों के मुखिया, पंच परमेश्वर
जो कर नहीं सकते बर्दाश्त
इश्क करने की जुर्रत
उस इश्क को जिसके आगे खुदा भी सजदा करता है
उस मासूम मुहब्बत को
जो खरगोश के रोयों से भी ज्यादा मुलायम है
जो तितली के परों से भी ज़्यादा नाजुक है
उस मुहब्बत करने के गुनाह पर
जो तुम्हारे गुनाहों से भी ज़्यादा बड़ा है लादेन
'वे' तुम्हारे ज़िस्म की चमड़ी-चमड़ी उधेड़ देते
'वे' तुम्हारी साँस टूटने तक तड़पा-तड़पा कर मारते
पी जाते तुम्हारे ख़ून के आखिरी क़तरे तक को
जैसे पी जाते हैं अपने ही बेटे-बेटियों का खून
अपने ही जिगर के टुकड़े का ख़ून
'वे' खुश होते हैं कि हमने समाज की इज़्जत बचा ली
कि अपने मूंछों की शान बचा ली
'वे' ऐंठ रहे हैं अपनी मूंछों को
अपनी बड़ी-बड़ी घनी मूँछों को
वे अपने आदि देवता मनु को
चढ़ायेंगे पतीला भर ख़ून
और देवता ख़ून पीकर इतरायेंगे
उनकी इस कातिल अदा पर
अपने द्वारा बोये गये जाति-गोत्र की फसल पर

मनु के इस देश में
प्यार आँखों के रास्ते दिल में नहीं उतरता
वह जाति-गोत्र की सीढ़ियों से होकर है गुजरता
मासूम प्रेमी इस शाश्वत नियम से अनजान
खोये रहते हैं एक दूसरे की आँखों में
उनमें तैर रही चाँद-तारों की दुनिया में
और 'वे' मनुपुत्र, उनके 'ऑनर', 'मालिक'
उनकी इस गुस्ताखी पर
खींचकर ले जाते हैं उन्हें उस सपनीली दुनिया से
अपनी कत्लगाहों में
उनकी मुहब्बत को जिबह करने

यह देखकर मुहब्बत सिसकती है
और उनकी मूँछें भीगती हैं
अपने ही बेटे-बेटियों के ख़ून से

कत्ल की यह रात बहुत भारी है
फिर भी, फिर भी सुबह होती है
बेलें फिर भी उगती हैं
फूल फिर भी खिलते हैं

ज़िंदा रहेंगी वह मासूम मुहब्बतें
हमेशा-हमेशा
सुना मनुपुत्रो ?

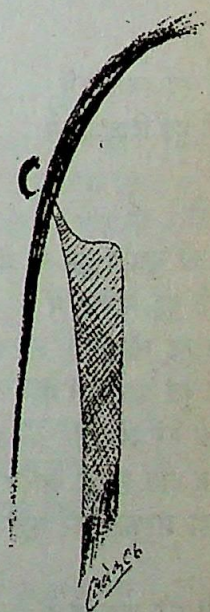

'ऐसा देश है मेरा'

तोते ने कहा मैना से
पता है मेरे देश के
हर पत्थर में भगवान है
यहाँ हर बंदर में हनुमान हैं
जिसे निराला के पड़ोस के सज्जन
रोज खिलाते हैं मालपुए
और साँप को पिलाते हैं दूध
ऐसा देश है मेरा
मैना ने कहा, अच्छा
और कैसा देश है तेरा ?
यहाँ चंदा भी अपना 'मामा' है
यहाँ बिल्ली भी सबकी 'मौसी' है
गाय तो हमारी 'माँ' है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पूरी धरती ही अपना 'परिवार' है
ऐसा देश है मेरा
मैना ने आँखें फैलाकर कहा, अच्छा !
फिर कुछ सोचकर बोली
और वो ?
वो कौन ?
वे सदियों के सताये, इसी धरती के लोग
तुम्हारी बस्ती के आखिरी छोर पर रहने वाले
जिनका संबोधन अछूत है
वे क्यों नहीं इंसान हैं ?
क्यों नहीं उनमें भगवान हैं ?
कैसा देश है तेरा ?
कैसा देश है तेरा ?
तोते ने आँखें फैलाकर कहा, आंय !
यह कैसा देश है मेरा....

'तुम हो'

तुम हो
इन ओझल होते जाते चेहरों में
मंद पड़ती जाती झंकारो में
समंदर की जाती हुई लहरों में

तुम हो
ठहरी हुई हवाओं में
खोयी हुई दिशाओं में

तुम हो
दीये की बुझती हुई लौ में
सूखती हुई नदियों में
टूटती हुई साँसों में
झरती हुई पंखुड़ियों में
तुम हो हर अंत में
क्योंकि अंत ही तो आरंभ है
फूल ही झरकर फिर फूल बनता है

तुम हो मेरे अनकहे में
क्योंकि अनकहनी भी तो कहनी है।

कविताएँ

डॉ0 कुलदीप सिंह ढाका 'भारत'

हम दोनों का प्रेम

जब भी मैं तुम्हारी आँखों को देखता हूँ
उस समय मैं एक अदृश्य मार्ग पर चल पड़ता हूँ
उस मार्ग के अंतिम पड़ाव पर
तुम्हारी आत्मा से साक्षात्कार होता है
यही साक्षात्कार
हम दोनों का प्रेम है।

मंज़िल मुझे कभी न मिले

आज मैं भी इस राह पर चल पड़ा हूँ
उस मंजिल की तलाश में
लेकिन मैं चाहता हूँ
कि वह मंजिल मुझे कभी न मिले
बस ! मुझे यही आभास होता रहे
कि मैं उस मंज़िल के पास पहुँचने वाला हूँ
क्योंकि यह राह प्रेम की राह है
और मंजिल के पास पहुँचने का यह आभास ही प्रेम है
मंज़िल तक पहुँचकर
मैं अपना प्रेम कम नहीं करना चाहता

224, सतलज हॉस्टल
जे.एन.यू.
नई दिल्ली-110067

मकान सं0 9
भक्त फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय
खानपुर कलाँ, जिला-सोनीपत (हरियाणा)-131305

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार विश्वबंधु की कविता

'मंडीनामा'

(एक)

मरते दिल का हाल बेचो
बिकता है अकाल बेचो
भूत-प्रेत-बेताल बेचो
पश्चिम का जंजाल बेचो
अपने हर सवाल बेचो
सब कुछ है अब माल, बेचो
अपनी रोटी-दाल बेचो
बेचो अपनी खाल बेचो
दुनिया यह कमाल बेचो
कच्चे-पक्के बाल बेचो
फूले-पिचके गाल बेचो
जो चाहोगे बिक जाएगा
हफ़्ते, महीने, साल बेचो
मोज़े और रूमाल बेचो
मिक्सी के सुर-ताल बेचो
सेक्सी-सेक्सी चाल बेचो
होंगे मालामाल, बेचो

(दो)

आओ अपना गला बेच लो
यह भी है एक कला बेच लो
कान बेच लो सस्ते-सस्ते
नाक बेच लो रस्ते-रस्ते
भाव जीभ का बढ़ा हुआ है
अभी बेच लो हँसते-हँसते
करम बेच दो, भरम बेच दो
नरम बेच दो, गरम बेच दो
अपनी सारी शरम बेच दो
बेच सको तो धरम बेच दो
आँत बिक रही
दाँत बिक रहे
मंडी के दिन-रात बिक रहे
हाथ-हाथ सब हाथ बिक रहे
रुपये में छह-सात बिक रहे
चटपट जाओ वोट बेच लो
दादाजी का कोट बेच लो
फेंको यह आदर्श की गठरी
मिल जाएँगे नोट, बेच लो
नोट मिले तो गोली बेचो
नोट मिले तो चोली बेचो
उल्टी-सीधी बोली बेचो
बचपन के हमजोली बेचो
लाओ अपनी मूँछ बेच दो
और अगर है पूँछ बेच दो
दाढ़ी है तो दाढ़ी बेचो
अपनी यह बेकारी बेचो
इस मंडी में क्या नहीं बिकता
अपनी सब लाचारी बेचो
अच्छे हो
अच्छाई बेचो
सच्चे हो
सच्चाई बेचो
लुच्चे हो
तो और भी अच्छा
बेचो लुंगी, गंजी, कच्छा...

(तीन)

कहीं की मिट्टी
कहीं का पानी
लिखो वही जो बिके कहानी
कविता को कूड़े में डालो
बेचो बचपन और जवानी
अंतर-मंतर, जादू-टोना
बरसे रुपया, चाँदी-सोना
बरतन-बासन, खाट-बिछौना
बेचो घर का ओना-कोना
बेचो बाहर
बेचो अंदर
बेचो गांधी, चर्खा-खद्दर
कुत्ता, बिल्ली, चिड़िया, बंदर
बेचो चूहे, साँप, छछूंदर...
जो है खेती-पत्ती बेचो
देश की रत्ती-रत्ती बेचो
गाँव बेच दो
छाँव बेच दो
हाथ बेच दो
पाँव बेच दो
जो मिल जाए दाँव बेच दो
सूरज बेचो
चंदा बेचो
मधु बेचो
मधुछंदा बेचो
इसको बेचो, उसको बेचो
जो मन आए उसको बेचो
आगे बेचो, पीछे बेचो
ऊपर बेचो, नीचे बेचो
दायें बेचो, बायें बेचो
भाई-बहनें-माएँ बेचो
अहरी बेचो
बहरी बेचो
औरत सुंदर-सँवरी बेचो
कानी बेचो
कुबड़ी बेचो
अंधी, लूली, लंगड़ी बेचो
जहाँ कहीं जो ठहरी बेचो
झबरी झक चितकबरी बेचो
अगर बेच लो
मगर बेच लो
सेंतमेंत में सगर बेच लो
ताल-तलैया, नहर बेच लो
गली-मुहल्ला, शहर बेच लो
सुबह, शाम, दोपहर बेच लो
बेचो दक्षिण
वाम बेचो
घर-घर में कुहराम बेचो
लीची-कटहल-आम बेचो
गुल, गुलशन, गुलफ़ाम बेचो
उसको राधेश्याम बेचो
इसको सीताराम बेचो

बेमतलब का हल्ला-गुल्ला
मूल्य-वूल्य से झाड़ो पल्ला
बेचो कि बिकती है लल्ली
बेचो कि बिकता है लल्ला
मंदिर, मस्जिद, ईश्वर, अल्ला...
बेचो सब कुछ खुल्लम-खुल्ला!

388/8, बेहाला एयरपोर्ट रोड
मेन गेट, पो-पर्णश्री
कोलकाता-700060श्रम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालित्य ललित की कविताएँ

वस्तुस्थिति

बड़ा अफ़सर
छोटे अफ़सर को डाँटता है
छोटे अफ़सर
बाबू को
बाबू चपरासी को
चपरासी डाँटता है घर में
अपनी पत्नी को
पत्नी बच्चों की पिटाई करती है
बच्चे
चुपचाप बाबूजी की साइकिल के
साथ सटी खड़ी
रामखिलावन पहलवान
चाय वाले की साइकिल की
हवा निकाल देते हैं
और
पीपल के चबूतरे पर बैठ
रंग-बिरंगी गोलियाँ
खाते हुए खीं-खीं
करते हैं
माँ सब जानती है
मुस्कुराती है
और भीतर जाकर
चपरासी पति को
रिझाने लगती है
उसको आज दिवाली पर
बोनस जो मिला है।

èlप-छाँव

क्या किसी ने पूछा है
कभी दुख से
कि भाई तू कौन है

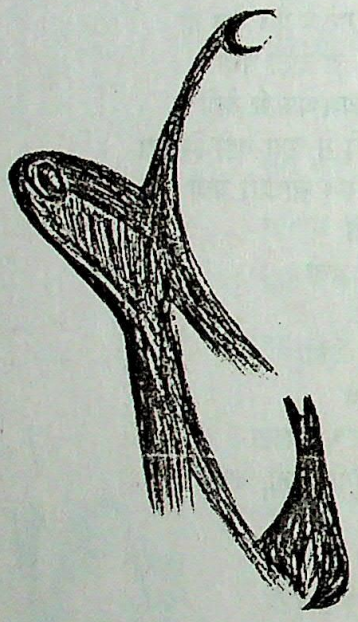

कहाँ रहता है
क्यों आता है
कहाँ जाता है
तेरी मियाद कितनी है
क्या तू क़िस्तों में आता है
वग़ैरह इत्यादि आदि
-किसी को नहीं पता
सब कतराते हैं
दुख से
और 'सुख'
हर कोई चाहता है
लूला, लंगड़ा, अंèाा, कोढ़ी सब
टपोरी, नेता सब
सुख चाहते हैं
आपका नाम क्या है
जी मेरा नाम 'दुख' है
लोग मुँह सिकोड़ लेंगे
कन्नी काट लेंगे
कहेंगे-बंèाु, पहले आता तो-
मदद कर देता अभी तो दिए हैं
और 'सुख' आ जाए तो
आइए बैठिए
अरी सुनती हो !
श्रीमान 'सुख' आए हैं
जरा 'ठंडई' और काजू ले आओ
और आगरे का पेठा और
इंदौर का पोहा ज़रूर लाना
परिभाषा आपके सामने है
बात स्थिति की है
कि आप का 'वजूद' कितना है
और आप का 'तौल'
कितना भारी है ?
ईश्वर सब जानता है
लोगों की रग-रग पहचानता है
उसी ने बनाए हैं
èlर्त, पाखंडी, शिक्षक, नशेड़ी
वाक़ई बड़ा बलवान है
रमई काका ने सुपारी चबाते
हुए बात पूरी की
अरे का भाई !
ससुर सारा दिन चबाते रहते हो
जल्दी जाना है का ?
जहाँ तेरी काकी गई है
वो तो है
आख़िर सबने जाना है
ईश्वर ने मुस्कराते हुए
बात पूरी की।

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
5, इंस्टीयूशन एरिया, फेज-II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केशव शरण की कविताएँ

यह मैंने आज जाना

काव्य कुछ और है इनका
और जीवन भाष्य कुछ और

संघर्ष के काँटे बदन पर उगाये
जीवटता से भरे, सूखे, भाग्यहीन हेय
चित्रित प्रायः खल के रूप में
जो लगता
आरोपण मनमाना

सूखे सीवान की
जलती धूप में
लू की लपटों के बीच
क्या होती है
एक बबूल की छाँव
और नागफनी की आड़
यह मैंने आज जाना

हम देखने नहीं जा रहे हैं

वे
छा रहे हैं
लेकिन देखने
हम नहीं जा रहे हैं

वे
बिजलियाँ चमका रहे हैं
लेकिन उनकी तरफ़
हम नज़र नहीं उठा रहे हैं

हमें अब वे नहीं लुभा रहे हैं
जो एक बूँद पानी नहीं बरसा रहे हैं।

क्यों नहीं आद्यंत आया

जड़ों का
रसोद्गार
हरियाली बनकर
नीले आसमान में छाया
साथ लाल-पीले फूलों को भी लाया

जग ने कहा—
लो, मधुमय बसंत आया

लेकिन जो
हम दोनों के दिल में था
हमारी जुबान पर
क्यों नहीं
आद्यंत आया ?

क्या दुख मनाना

क्या दुख मनाना
उन बाँहों का
जो काट दी गयीं
या टूट गयीं आँधियों में

और ग़म क्या करना पतझर का
जो आता रहता है
जाता रहता है

कभी कोई नहीं उसके उत्साह में

वह उसी अकेली बाँह में
हरी कमीज़ डालकर
बसंतोत्सव मना रहा है
नाच-गा रहा है
जैसे दूसरे

सावनोत्सव की योजनाएँ भी
अभी से
बनानी शुरू कर दी हैं उसने

एस-2/564 सिकरौल
वाराणसी-221002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रकांत सिंह की कविता

'बातचीत'

बातचीत होती है हमेशा
आए दिन फोन करके हाल-चाल पूछ लेता हूँ
माँ फफक कर रोने लगती है
कहती है हर बखत तेरी याद आती है
शहर जाकर तू तो भूल ही बैठा है
कैसे उसे बताऊँ कि गाँव को भूलना मेरे बस का नहीं
नहीं भूल सकता मैं भी नीम की छाँव
सोना उगलती मेरे गाँव की माटी जब तक
सोते में याद आ जाती है
नाच जाता है पोखर
दिख जाती है कीचड़ हलकोड़ती मेरी अधेड़ भैंस
और उसके थन में मुँह सटाए उसका पड़वा
अक्सर बात करने से डरता हूँ
डरता हूँ कि बाबू जी पूछ बैठेंगे
आगे की योजना
फिर बात ही बात में निकल जाएगी ब्याह की बात
गाँव वाले यह कहते हैं
गाँव वाले वह कहते हैं
आखिर शादी ब्याह की भी उमर होती है
कब तक कुँवारे बैठोगे
नौकरी नहीं मिलेगी तो ब्याह नहीं करोगे क्या ?
अभी कितना समय लगेगा ?
वगैरह-वगैरह
काँप जाता है मन यह सोचकर
कि कब तक धोखा देता रहूँगा घर वालों को
जानता हूँ कि हिन्दी पढ़कर नौकरी नहीं मिलने वाली
अंगरेजी दा और कान्वेन्ट के पढ़े लिखों के बीच
कहाँ अपनी हैसियत
ऊपर से न कोई पैरवी कि कॉलेज में लेक्चरार भी बन सकूँ
दोस्तों यारों ने काट दी पूरी उम्र मसखरी में
अब बड़े बुद्धिजीवी बनकर कर रहे हैं देशसेवा
मैंने काट दी सारी उम्र पढ़ाई में
फिर भी रहा निठल्ला
आजकल बेकारी सिल रहा हूँ
कुछ सीनियर मित्र बताते हैं गुरु मंत्र
इस काले समय से निकलने का
नहीं सीख पाता उनका सिखाया सबक
खुद्दारी आ खड़ी होती है राह में
दूर दूर तक
अपने दम पर खड़े हो पाने की
नहीं दिख रही कूवत
अब लगता है
इस घोर व्यावसायिक समय में रह जाऊँगा
बेहद अकेला
बुला रही है अपनी धरती
बुला रहे हैं अपने लोग
आखिर कब तक उन्हें मना करुँगा
लगता है अब जाना ही होगा
अब फोन करने तक को नहीं हैं पैसे
अब भला कैसे मैं
अकेले रह पाऊँगा।

रूम नं. 106, लोहित छात्रावास
तृतीय विंग, जे.एन.यू.
नई दिल्ली-110067

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृह कारज नाना जंजाला

सूर्यनाथ पांडेय

1950 के दशक में जब मैं प्रारंभिक कक्षाओं में पढ़ता था, हम लोगों से श्रमदान कराया जाता था। सड़कों और गलियों के रख-रखाव के सफ़ाई के कार्यक्रम होते थे (इनका अधिक व्यवस्थित रूप आज विश्वविद्यालयों में चलने वाला 'राष्ट्रीय सेवा योजना' कार्यक्रम है)। उस समय खाँचियों में मिट्टी भरते और सिर पर उठाते हुए समवेत स्वरों में हम लोग एक गीत गाया करते थे–"रोटी, कपड़ा और मकान, देगा हमें सभी श्रमदान।" हँसी-हँसी में गायी जाने वाली इस पंक्ति के महत्त्व को थोड़ा और बड़ा होने पर समझ सका, जब मार्क्सवादी चिंतन से कुछ परिचय हुआ। जिसमें 'रोटी, कपड़ा और मकान' को आदमी की न्यूनतम आवश्यकताएँ माना गया है। जुलाई, 1967 में नौकरी मिलने के साथ 'रोटी और कपड़े' की मेरी समस्या तो हल हो गयी, परंतु 'मकान' के लिए अगले बीस वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। कहते हैं, सामान्य मध्यम वर्ग के जीवन की उच्चतम महत्त्वाकांक्षा अपनी एक अदद छत होने की होती है। आपने सुना ही होगा कि नोबेल पुरस्कार विजेता सर वी0 एस0 नायपाल ने एक संवेदनशील पुत्र के रूप में अपने पिताश्री की मकान बनवाने की हसरत को अपनी प्रधान कृति का प्रतिपाद्य बना डाला। सुधी पाठकों ने एक मत से माना है कि 'ए हाउस फ़ॉर मि0 बिस्वास' नायपाल की परोक्ष आत्मकथा है। लगता है, व्यक्ति चाहे अपनी जन्मभूमि में हो या 'डायस्पोरा' (प्रवास) में, मकान की कसक सबमें एक तरह की होती है। मेरे गृहपति बनने की कहानी की भी अपनी रोचकता और संघर्षशीलता है। इस मुकाम को हासिल करने के पीछे तमाम कुंठाएँ, अनेक अतृप्त भाव और अन्यान्य ग्रंथियाँ थीं। इन सबका स्मरण मेरे लिए उन क्षणों के साथ संवाद स्थापित करने जैसा है और यह मोह मैं संवरण नहीं कर सकता।

वास्तव में, बचपन से ही अपने परिवार का एक समुचित मकान न होने की हीन-भावना के साथ में बड़ा हुआ था। आर्थिक स्थिति तो भयावह थी ही, परिस्थितियों की प्रतिकूलता भी अजीब थी। कई पट्टीदारों के साझे में मिली डिही की एक बिस्वा ज़मीन का ठीक से बँटवारा न होना समस्या का मूल कारण था। अतः हम लोग मिट्टी के बने दो सामान्य कमरों के सामने खड़ी झोंपड़ी को बरामदा मानकर नियति से समझौता करने को बाध्य थे। सामने बनी एक अस्थायी चहारदीवारी हमारी व्यक्तिगत ज़िंदगी को 'मैकमोहन लाइन' की तरह बाहरी दुनिया से अलग करती थी। हेरिटेज़ बिल्डिंग के रूप में खड़े वे दो कमरे अभी भी लाचारी के मूक गवाह हैं। जब मेरी बहुएँ गाँव जाती हैं और उस पुरातात्त्विक भवन में कुछ क्षण गुज़ारती हैं, तो मुझे बड़ी झेंप मालूम होती है। अपने अंकिचन अतीत से मुझे तो कोई शिकायत नहीं है, परंतु उसे देखकर किसी स्वजन को मेरे प्रति सहानभुति का भाव पैदा हो, इसमें असुविधा होना लाज़मी है। दोनों बच्चे तो बचपन से ही गाँव आते-जाते मेरी परिस्थिति से वाकिफ़ और अभ्यस्त हैं, परंतु बहुओं के सामने, कुछ भी हो, थोड़ा औपचारिक तो होना ही पड़ता है। मुझे बरसात के वे दिन याद हैं, जब तेज बारिश के कारण हमारी झोंपड़ी में पानी टपकने लगता था। सुना था, 'भगवान् देते हैं, तो छप्पर फाड़कर देते हैं।' हमें छप्पर फाड़कर मिल तो रहा था, परंतु वह शुद्ध जल था। मुद्रा जैसी कोई चीज़ नहीं, जिसे लक्ष्य कर यह उक्ति प्रचलित है। ख़ैर, ऐसी स्थिति में हमें बेचारेपन की मुद्रा में रात में घंटों जागकर इंद्रदेव के रोष का प्रतिरोध करना पड़ता था। लगता था, जैसे कोई बाँध टूटने वाला हो और हम अहर्निश उसकी सुरक्षा का बीड़ा उठाये हों। इसी संदर्भ में एक घटना बेहद दिलचस्प है। पिछले दिनों मेरे एक पड़ोसी के रिश्तेदार मुझसे मिलने के लिए बनारस आये। वे मेरे गाँव होकर आ रहे थे। थोड़ी देर की बातचीत के बाद उन्होंने जाते समय एक टिप्पणी की–"आपने गाँव में भी अच्छा घर बनवाया है और उसी तरह का यहाँ भी।" वे अपने एक कार्यवश पधारे थे। अतः उनकी बात को प्रशंसा के रूप में लेना ही उचित होगा (वैसे उनका काम नहीं हो पाया)। उनके जाने पर मैंने यह सोचना शुरू किया कि क्या साकेत नगर के इस मकान को भी हमारी बचपन की विवशता का ही विस्तार मानना अनुचित होगा? वैसे, अपनी बेढंगी वास्तुकला में यह अद्वितीय है भी।

नौकरी मिलने के साथ ही मैंने मकान बनाने की दिशा में प्रयास शुरू कर दिये थे। यह अत्यंत व्ययसाध्य परियोजना थी, अतः बूँद-बूँद कर धन-संग्रह का कार्यक्रम बनाना पड़ा। यह भी क़रीब-क़रीब पक्का था कि अब भोलेनाथ की नगरी में ही बसने का उपक्रम करना है। सबसे पहले मैंने दूर के उन खेतों को बेचने का निर्णय लिया, जिनमें उपज बहुत कम होती थी। कैसी विडंबना थी कि मेरे पढ़ते समय खेतों को इसलिए नहीं बेचा गया कि इससे समाज में बेइज़्ज़ती होगी, भले ही उसका काफ़ी हिस्सा रेहन करना पड़ा था और आज, जब मैं नौकरीशुदा हो गया, तो उन्हीं खेतों को बेचने में मुझे कोई संकोच नहीं था, क्योंकि समाज की निगाह में अब मैं अपने ओहदे से आदर का पात्र बन गया था और 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं'। पूँजी की कमी के चलते शुरू से ही

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूँक-फूँककर पैर रखने की योजना थी। प्लॉट खरीदने की बात पर ही मेरी पूरी तरह से तौला जाने की हैसियत थी, ब्रह्मानंद नगर में एक प्लॉट की बात लगभग पक्की हो चुकी थी, परंतु उसमें नुस्ख यह निकला कि उसके एक भाग में पुराने पटे हुए किसी कुएँ का हिस्सा पड़ता था। लोगों ने उस स्थान के अशुभ होने की आंशका जतायी। अगला प्रयास ब्रिज इन्क्लेव कॉलोनी स्थित दूसरे प्लॉट के लिए किया गया, जो एक डॉक्टर मित्र का था, परंतु वह भी कुछ कारणों से नहीं लिया जा सका। इसी बीच उ0 प्र0 आवास विकास परिषद ने भी वाराणसी में नयी कॉलोनियों के निर्माण की योजना विज्ञापित की। मैंने उसमें भी पंजीकरण कराया, परंतु बाद में हो रहे अत्यधिक विलंब के कारण उससे भी अपना नाता तोड़ लिया। एक जगह कैवल्यधाम एक्सटेंशन में भी प्लॉट के लिए कुछ मामूली ध नराशि पेशगी स्वरूप दी, परंतु वह प्रयास भी आगे नहीं बढ़ पाया। उसी समय दुर्गाकुंड पुल के निकट एक गड्ढेवाली खाली ज़मीन थी, जिसे कॉलोनाइजर बाबू अंबिका सिंह मुझे लेने का सुझाव दे रहे थे। वह पूरा भूखंड नगरपालिका में ग्रीनलैंड के रूप में दर्ज़ था। चूँकि मकान बनवाना मेरी प्राथमिकता थी, मैं किसी पचड़े में नहीं फँसना चाहता था। आज उसी भूखंड पर एक पेट्रोल पंप चल रहा है। इस दिशा में एक और प्रयास महमूरगंज में 'आशीर्वाद क्लीनिक' के पीछे तथाकथित रूप से निर्माण की जाने वाली एक कॉलोनी में भी हुआ। उसमें भी सूत्रधार एक परिचित थे और कुछ गँवा देने के बाद वहाँ से भी मन उचट गया। ये सभी छह प्रयास 1957 से 1985 के बीच किये गये। आप अनुमान लगा सकते हैं कि मैं मकान बनवाने के पीछे किस तरह हाथ धोकर पड़ा था। कहते हैं, शैतान ने केवल तीन बार ही प्रयास किया था, परंतु मेरा अपनी छठी हार के बावजूद हौसला पस्त नहीं हुआ।

इसी बीच एक और घटना घटी, जिसने मेरे मकान मालिक बनने के प्रयास में उत्प्रेरक का काम किया। वास्तव में, छात्रावास छोड़ने के बाद, 1970 से ही मैं अस्सी मुहल्ले में उसी मकान में रहता चला आ रहा था। मकान मालिक थे तो बड़े भले और समझदार आदमी, लेकिन मेरे इतने दिनों से उन्हीं के मकान में रहते रहने से उनके मन में यह संशय पैदा हो गया था कि कहीं मैं बाद में मकान खाली ही न करूँ। उन्होंने यह कहकर मकान छोड़ने का संकेत दिया कि उनके भतीजे अब कलकते से बनारस आकर अपना व्यवसाय शुरू करेंगे। उस दिन मुझे लगा कि किरायेदार होने का मतलब है कि कभी भी आपको मकान खाली कर सड़क पर आना पड़ सकता है। मेरी समझ में आ गया कि किरायेदार नाम का जीव कितना वलनरेबुल (निरीह) होता है। अंग्रेज़ी के जाने-माने निबंधकार एडिसन की सोच पर एक तरह से सवालिया निशान लग गया, जिसने बड़े धड़ल्ले से कहा है, "फूल्स बिल्ड हाउसेज़ एन्ड वाइज़ मैन लिव इन देम" (मूर्ख लोग मकान बनवाते हैं और बुद्धिमान लोग उसमें रहते हैं)। संभव है, इस कथन से एडिसन ने खुद मकान न बनवा सकने की अपनी नाकामी को ढँकने की कोशिश की हो। बहरहाल, मेरी बुद्धिमानी का कबाड़ा हो गया था। बाण से बिधे जयंत की तरह छटपटाते हुए मैं दूसरा कूँआ खूँदने निकल पड़ा। विश्वविद्यालय परिसर में केंद्रीय विद्यालय के पीछे की कालोनी में एक मकान आवंटित भी कराया, लेकिन उसकी डिब्बेनुमा बनावट के कारण वहाँ जाने का विचार आगे नहीं बढ़ पाया। इस बीच मकान मालिक को मेरे घर खोजने के प्रयासों की जानकारी मिल गयी और शायद उनका संशय ख़तम हो गया, क्योंकि बाद में उनकी ओर से कोई जल्दबाज़ी नहीं दिखी। ख़ैर, अब क़रीब-क़रीब यह निश्चित कर लिया कि यदि ईश्वर की कृपा रही, तो यहाँ से अपने तथाकथित मकान में ही जाने ही सोचना है।

मुझे इस सेक्टर का दूर-दूर तक कोई अनुभव नहीं था। दूसरे मित्रों के अनुभव की पूँजी से मैंने अपना व्यापार शुरू किया। ज़मीन ख़रीदने के उतावलेपन के साथ इस योजना ने टेकऑफ़ किया। पता नहीं क्यों, साकेत नगर में ही बसने की मेरी इंट्यूशन थी। मुझे जानकारी मिली कि वहाँ दो प्लॉट अगल-बगल खाली हैं और कोई महिला उनकी मालिक है। मेरे एक मित्र भी प्लॉट लेना चाहते थे। सोचा गया, पड़ोस में रहना सुखद रहेगा। अब उस महिला की चौखट पर मेरा आना-जाना शुरू हुआ। बड़े मान-मनौव्वल के बाद वह मुँहमाँगी रकम पर बेचने को तैयार हुई और हमारा काफ़िला वरुणा पार कचहरी पहुँचा। अभी रजिस्ट्री के काग़ज़ात तैयार ही हो रहे थे कि एक विघ्न उपस्थित हो गया। वहाँ रजिस्ट्रेशन शुल्क को लेकर उस महिला और मेरे मित्र में मामूली तकरार हो गयी और उन्होंने प्लॉट न खरीदने का निश्चय कर लिया। 'मरता क्या न करता' वाली मेरी स्थिति थी और उस महिला की हर शर्त मुझे शिरोधार्य थी। मैं अपने प्लॉट की रजिस्ट्री करा सकता था, परंतु इस संकोच के कारण मैंने ऐसा नहीं किया कि लोग यही कहेंगे कि बड़ा मित्र बनते थे, अपना तो करा लिया और दूसरे को ठेंगा दिखा दिया। कोई इस बात को जानने की ज़हमत नहीं उठाता कि वहाँ परिस्थितियाँ कैसी थीं। ख़ैर, अपना-सा मुँह लेकर मैं घर लौट आया। प्रयास मैंने बड़ा ज़बरदस्त किया था और इसमें चार-पाँच महीने का श्रम लगा था। निराश और व्यथित होने के बावजूद मैंने फिर उस महिला के घर के चक्कर लगाने शुरू किये। अत्यंत अपमानजनक तरीके से उसनें कहा कि मैं प्लॉट नहीं बेचूँगी। मैंने सुना था—'रसरी आवत जात से सिल पर होत निसान' और उसी उक्ति को चरितार्थ करने की मुझे चुनौती मिल रही थी। मैंने भी उसे स्वीकार किया (करता भी क्या?) और दिन-रात एक कर दिये। अंततः वह मेरे आग्रह पर राज़ी तो हुई, परंतु क़ीमत दस हज़ार बढ़ा दी। फिर, वह दिन आ ही गया, जब 22 अगस्त, 1986 को बनारस शहर की खतौनी में मेरा नाम भी दर्ज़ हो गया। पूरा प्रकरण उस कथा की तरह था, जिसमें पंडित जी ने शंख तो बजा दिया परंतु उसके साथ वह लाख कोशिशों के बावजूद अपनी कमज़ोरी नहीं छिपा पाये (उन्हें अपान वायु निस्सरण के उपरांत ही यह कमाल हासिल हो पाया)।

अपना प्लॉट हो जाने के बाद मित्रों में से किसी ने कहना शुरू किया कि 'आधी जंग तो आपने जीत ही ली है', तो कोई थोड़ा और आगे बढ़ा 'अब तो हाथी निकल गया है, केवल पूँछ बाकी है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहावरे और उक्तियाँ जीवन की नीरसता को परोसने लायक बनाते हैं और वही हो रहा था। मेरी पूरी जमा पूँजी प्लॉट में खप चुकी थी और उस पर ढाँचा खड़ा करने के लिए अब क़र्ज़ लेने की बारी थी। उस समय विश्वविद्यालय से भवन-निर्माण हेतु ऊँट के मुँह में जीरे जैसी (अधिकतम सवा लाख रुपये) राशि मिलती थी। अतः पूरा दारोमदार भविष्यनिधि और परिचितों के कंधों पर डालने की विवशता थी और वही हुआ। इसी बीच एक अनुभवी सज्जन ने बड़े पते की बात कही कि कुछ भी हो मकान और लड़की को हमेशा कुछ न कुछ देना ही पड़ता है और वह कभी पूरा नहीं होता। उनके कहने का मतलब था कि जो कुछ भी है, उससे श्रीगणेश कीजिए। पंडित जी ने 19 नवंबर को शुभ लग्न बताया और हम लोग बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे। यह भूखंड मेरे आवास से दो किलोमीटर दूर था, अतः निर्माण शुरू करने से पहले मैं वहीं क़रीब में किराये के मकान में चले जाना चाहता था। संयोगवश, सामने ही एक अच्छा मकान निर्मित था और उसमें आवास भी उपलब्ध था। प्रयास शुरू हुआ, लेकिन शुरूआती दौर में सफलता मिलने की आशा क्षीण दिखी। मकान मालिक को किरायेदारों से भय था और मेरी स्थिति उनकी दृष्टि में एक छोटे-मोटे आतंकवादी जैसी थी। उन्होंने तो अपना न-नुकर जारी ही रखा, परंतु उनके बड़े बेटे को मेरी नेकनीयती पर विश्वास झलका। चूँकि मालिक इलाहाबाद में रहते थे और बेटा बनारस में, अंततः बेटे की कृपा से मुझे उनके यहाँ शरण मिल गयी। इस प्रकार, मकान बनवाने में मुझे बड़ी सुविधा हुई।

कुछ काम आदमी जीवन में एक ही बार करता है, जैसे मड़वे में शादी के लिए प्रवेश करना (मैं उन लोगों से क्षमा चाहूँगा, जिन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों या अन्य कारणों से एकाधिक बार सप्तपदी के चक्कर मारने पड़ते हैं) और मकान बनवाना। अतः इसमें उत्साह और एडवेन्चर का तत्त्व कुछ ज़्यादा ही होता है। परमात्मा की कृपा से वह दिन आया, जब भूमि-पूजन के साथ गृह निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई। यह भी एक विडंबना ही है कि हमारा जीवन तो यहाँ क्षणभंगुर या कालसीमित है, परंतु हम जो सौदा करते हैं, उसे ठोस और दीर्घजीवी बनाना चाहते हैं। मैंने सुन रखा था कि ठेकेदारी में बना मकान कमज़ोर होता है, क्योंकि उसमें फ़ायदे के लिए घटिया माल इस्तेमाल होता है। चूँकि ले-देकर किसी तरह एक मकान बनवाने की घड़ी आ ही गयी थी, तो उसमें मुझे कोई कोताही बरदाश्त कैसे होती? मैंने रोजहाई पर कार्य करना शुरू किया, परंतु कुछ ही दिनों में पता चल गया कि ठोस मकान बनते-बनते मैं ख़ुद खोखला हो जाऊँगा। क्या राज मिस्त्री, क्या लेबर, क्या प्लंबर, क्या ईंटवाला, क्या बालूवाला, क्या ग्रिल बनाने वाला लोहार, सभी के अपने-अपने लटके-झटके थे और उनसे कभी रूठना, कभी दूसरे विकल्प को मानना मेरी दिनचर्या का अंग बन गया। दिसंबर की कड़कड़ाती सर्दी में सबेरे चार बजे ही शिवपुर पहुँचकर कभी बैलगाड़ियों में धरन, फर्रा लदवाना पड़ा था; तो कभी लाल बालू के लिए राजघाट स्थित मंडी में ठेकेदारों से मोलभाव करने की नियति रही। लकड़ी का काम, सीवर की व्यवस्था और बिजली की फ़िटिंग तो अंतिम स्टेज के उपक्रम होते हैं। छत की ढलाई होते-होते मैं पूरी तरह होर हो गया था और काम पूरा होने की कोई उम्मीद नहीं दिख रही थी। सामने का मकान किराये पर लेते समय मैंने उन लोगों से एक तरह से यह वादा किया था कि अगले जून तक मैं वह फ़्लैट छोड़ दूँगा। मेरा यह संकल्प भी एक तरह से दबाव बनाये हुए था। आधा-तीहा होते ही मैंने गृह-प्रवेश का निश्चय कर लिया, क्योंकि अब श्रम-शक्ति (और वित्तीय शक्ति भी) जवाब दे रही थी। सुना था, मकान बनवाने में आदमी की उम्र दस वर्ष कम हो जाती है। मेरा अभिलेख क्या कहता है, यह तो चित्रगुप्त जानें, परंतु मैं किसी दोस्त को रोजहाई पर मकान बनवाने के दुष्प्रयास के प्रति अगाह करना अपना धर्म समझता हूँ।

गृहप्रवेश 11 मई 1987 को संपन्न हुआ और उसी दिन से हम लोगों ने अपने मकान में कम से कम औपचारिक रूप से रहना शुरू कर दिया। फ़र्श आदि का बचा-खुचा काम वहाँ रहने के दौरान् ही पूरा हुआ। अभी भी कई सरकारी विभागों में चक्कर लगाने बाक़ी थे। पहला काम नगर महापालिका से पीला कार्ड प्राप्त करना था, जिसमें मकान का नंबर विधिवत आवंटित होता है। हर सरकारी महकमे की तरह यहाँ की प्रक्रिया भी शिकार को मनुष्य-निर्मित जटिलताओं के ताने-बाने में उलझा देती हैं। उसमें से निकलने की युक्ति आपको स्वयं करनी पड़ती है। मैंने भी अपने सभी संपर्कों को एक-एक कर झोंक दिया और फिर भी जहाँ गाड़ी रुकी, अवरोधों को पिघलाना ही पड़ा। थोड़े विलंब से ही सही, मैंने भी पीला कार्ड प्राप्त कर लिया। खारिज-दाख़िल (म्यूटेशन) के लिए भी आवेदन दिया गया और पैंतीस दिन की विधाता द्वारा निश्चित अवधि बीतने पर इसका इंतख़ाब भी मिल गया। अब महीने की पहली तारीख़ को मकान-मालिक का दर्शन करने और उन्हें प्रसन्न मुद्रा में रखने की मेरी कलाबाज़ी को विराम लगा। कुछ शुभैषियों, यथा ग़ाज़ीपुर के प्रतिष्ठित नागरिक बाबू राजेश्वर प्रसाद सिंह ने अपने पत्र (7 मई, 1987) में मेरे पराक्रम की चर्चा खुले दिल से की :

आपने आवास हेतु भवन बना लिया, यह बड़ी ख़ुशी की बात है। आप ऐसे कर्मठ व्यक्ति के लिए सब कुछ संभव है। अपना आवास तो चाहिए ही। मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है कि आप अपने जीवन के हर क्षेत्र में सफल होंगे। कृपया इस अवसर पर मेरी शुभकामना स्वीकार करें।

संकटमोचन जी की कृपा से साकेत नगर में भूखंड मिला और आशियाना भी बन गया। कम से कम भगवान राम के नाम से जुड़ी इस कॉलोनी का बाशिंदा होना मेरे लिए बड़े संतोष की बात है। वैसे असली 'साकेत' (अयोध्या) में होने पर इस बात की आशंका बराबर बनी रहती कि पता नहीं कब विकिट गिर जाए और आवागमन से मुक्ति मिल जाए ("यह यहीं से जीवितों को तारती"- मैथिलीशरण गुप्त)। अस्सी के दक्षिण में अवस्थित होने से मेरी कॉलोनी बाबा विश्वनाथ के साम्राज्य (काशी) से बाहर है, जहाँ उनका सिक्का ("काश्यां मरणाद्मुक्ति") नहीं चलता है। वास्तविकता यह है कि अपनी योजना में मैंने बंधन-मुक्ति का कार्यक्रम जान-बूझकर स्थगित कर दिया है, जिससे अपने कुकृत्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पूरी भरपाई होने तक इस दुनिया में आता-जाता रहूँ। इस राम द्वारा केवट को दिये गये अनुग्रह ("रह्यो तात पुर आवत जाता") के प्रकाश में देखना अनुचित एवं असंगत होगा। आने-जाने का भी अपना सुख है। निरंतरता की एक लय होती है, जिसमें उबाऊपन या बसियाने का कोई ख़तरा नहीं होता। वैसे, इस बात का मलाल ज़रूर बना रहता है कि भोलेनाथ की नगरी काशी में ठाँव नहीं मिल पाया। पिता जी ने भी एक बार दबे ज़ुबान कह ही दिया—"का यार, काशी में घर नहिंअय बन पउलस।" संयोग से, जिस दिन वे गाँव से मेरे आवास पर आये थे, तब तक एक पंडित जी आ गये। उन्होंने भी भगवानपुर में एक प्लॉट लिया था, जो काशी की सीमा से थोड़ा और दूर है। बात चली तो कहने लगे, "सब काशी है।" उनका तर्क था—"काश्यां समीपे उपकाशी।" काशी से जुड़ना महत्त्वपूर्ण है, भले ही उसके पूर्व कोई उपसर्ग लगा हो। संतोष करने के भी अपने तरीके हैं। उनकी बात सुनकर लगा टी0 एस0 इलियट के 'आब्जेक्टिव कोरिलेटिव' का इससे बढ़िया उदाहरण कम ही मिलेगा।

काशी या उपकाशी में अपनी छत के नीचे रहने के सुख के साथ नये परिवेश में अपने को ढालने की आवश्यकता थी। पिछले सोलह सालों से जिस आटे-चक्की, ग्वाले के अड़ार और जनरल स्टोर से रिश्ते बने थे, उनके विकल्प ढूँढने थे। इन सबसे ऊपर अपने अवचेतन में घर कर गये प्रवासीपन से भी उबरना था। कन्नू सरदार का स्थान यदि पुत्तन सरदार ने लिया, तो बद्री की चक्की का विकल्प राजेंद्र पटेल के यहाँ नसीब हुआ। हर ज़रूरत के लिए उचित स्थान चिह्नित किये गये। वैसे अस्सी से फुटकल सामानों का लिया जाना, कई वर्षों तक चलता रहा। शुरू-शुरू में साकेत नगर की मलीनता से घबराहट होना स्वाभाविक था, क्योंकि रवींद्रपुरी और अस्सी की स्वच्छता अपना मानक बनी हुई थी। अब तो माहौल बिल्कुल बदल गया है। कॉलोनी की मुख्य सड़क ने बाइपास का दर्जा हासिल कर लिया है, जिसमें भीड़-भाड़ बहुत बढ़ गयी है। आज से बीस वर्ष पहले रिन की एक मामूली टिकिया के लिए भी पंचकोशी रोड (नरिया) दौड़ना पड़ता था। अब आसपास में ही चार-पाँच स्टोर खुल गये हैं। यदि किसी स्टोर पर जाना कुछ दिनों बाद होता है, तो मालिक बतौर तगादे पूछ लेता है—"गुरु जी, कहीं बाहर गये थे क्या?" अनायास 'हाँ' कहना पड़ता है। अप्रिय सत्य बोलें भी तो कैसे, "न ब्रूयात् सत्यमप्रियम" का पाठ पढ़ रखा है। ज़िंदगी में झूठ-सच इसी तरह चलता रहता है।

विडंबना देखिए कि मेरे पढ़ते समय दादा जी को अपने खेत रेहन रखकर साहूकारों से पैसा उधार लेना पड़ता था, जिसे सूद सहित बाद में लौटाने पर खेत वापस मिलता था। एक तरह से वही काम मुझे भी करना पड़ा। कहने के लिए मेरा मकान तो हो गया, लेकिन सेल-डीड (बैनामे का काग़ज़) विश्वविद्यालय ने अपने पास रखकर ही उधार दिया। इसे मैं 22 वर्ष बाद ही वापस पा सका हूँ, रत्ती-रत्ती चुका देने के बाद। पढ़ते समय और पढ़ाते समय की मेरी स्थितियों में कोई मूलभूत अंतर नहीं हुआ। मॉर्गेज (रेहन) रखने का जो सूत्र दादा जी से (वाया पिता जी) उत्तराधिकार में मिला, वही बच्चों को ज्यों का त्यों सौंपने की मेरी भी बारी है। केवल साहूकार का स्वरूप बदलता है (कभी गाँव का धनी किसान या बनियाँ और कभी विश्वविद्यालय जैसी संस्थाएँ), उसकी जाति नहीं। यह दूसरी बात है कि कुछ लोग काले-सफ़ेद के चक्कर में भी क़र्ज़ लेने का नाटक करते हैं।

अब मेरा दुकान बढ़ाने का समय आ गया है। इसी प्रकरण में जब एक दिन हल्के मूड में मैंने इस मकान को बेचने की बात की, तो मेरा छोटा बेटा मनोज उखड़ गया—"क्या आप अंड-बंड बोलते रहते हैं? हम लोगों ने इसमें लगे आपके श्रम और लगन को देखा है। यह मकान केवल ईंट और सीमेन्ट का एक इन्क्लोजर मात्र नहीं है। हमने इसके लिए आपको तपते देखा है और इससे हमारा भावनात्मक लगाव है।" उसकी बात स्वाभाविक रूप से मुझे अच्छी लगी। परमात्मा ने आदम को श्राप देते हुए कहा था—"दाऊ शैल अर्न दाई ब्रेड विद द स्वेट्स ऑफ़ दाई ब्रो" (तुम अपनी भौहों के पसीने से जीविका कमाओगे)। अपने विषय में सोचता हूँ, तो लगता है कि जीविका के लिए तो बहुत पसीना नहीं, परंतु हाँ, मकान में भौहें ही नहीं; शरीर का हर अंग, जो पसीना बहा सकता था, अपने फ़र्ज़ से पीछे नहीं हटा। बेटे की बात का तुरंत जवाब तो मैंने नहीं दिया, परंतु मन ही मन ज़रूर सोचा, 'अच्छा बच्चू, देखता हूँ, इस 'भावनात्मक लगाव' की आयु कितनी लंबी ठहरती है। तुम अहमदाबाद में बसने की सोच रहे हो और एक साहब पुणे में फ़्लैट ले चुके हैं और लखनऊ में अंसल प्लाजा में भी बुकिंग करा चुके हैं। आधुनिक जीवन की अपनी बाध्यताएँ हैं और यह मकान कोई 'व्हाइट हाउस' नहीं है कि हमारे बच्चों को इससे बिछुड़ने में परेशानी होगी।

इस संस्मरण के प्रारंभ में मैंने एक सज्जन का ज़िक्र किया था, जिन्होंने मेरी कोठी की वास्तुकला की भरसक प्रशंसा की थी। यह मेरा फ़र्ज़ बनता है कि सच्चाई से आपको रूबरू करा दूँ। मेरा एकमंज़िला मकान बायीं ओर तिमंज़िले और दायीं ओर दोमंज़िले भवनों के बीच दबा हुआ (सैंडविच्ड) है। मकान के पिछले भाग पर बनी पहली मंज़िल आगे से खुली होने के कारण इसे एक पिरामिडीय शक्ल प्रदान करती है। 'सुरक्षा पहले और केवल सुरक्षा' के सिद्धांत के प्रतिपालन में बना ग्रिल-सुसज्जित आगे का बरामदा एक छोटे जेल का दृश्य उपस्थित करता है। सामने के सहन का भी अपना परिदृश्य है, जो चतुर्भुजी तो है, लेकिन आयताकार नहीं। वास्तव में जब प्लॉट ही बदगुनियाँ था, तो उस पर अष्टावक्रीय ढाँचा ही खड़ा हो सकता था। संक्षेप में, यह है 'शांति निलयम्' का आकार-प्रकार, जो उक्त भले आदमी की नज़र में मैंने 'बड़ी रुचि' से बनवाया है। अपनी रुचि पर तरस खाऊँ या उस आगंतुक की संक्रमित दृष्टि पर या दोनों पर—'साहू को सराहौं, कि सराहौं छत्रसाल को।'

'पैबंद : एक संस्मरण' का अंश

207, साकेत नगर, बी0 एच0 यू0,
वाराणसी - 221005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ति-साहित्य में सामाजिक मूल्यों का लेखा-जोखा

देवेन्द्र गुप्ता

हिन्दी भक्ति साहित्य के मूल्यांकन की जिस परंपरा का प्रारंभ आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया वह, आज भी जारी है। इस मूल्यांकन यात्रा में प्रतिष्ठित विद्वानों ने भागीदारी की है और भक्ति साहित्य के महत्व को निरूपित किया; इनमें कुछ प्रमुख नाम हैं–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र तिवारी, रामविलास शर्मा, प्रेमशंकर, कुँवर पाल सिंह, मैनेजर पांडेय। इसी कड़ी में सावित्री चन्द्र 'शोभा' का नाम आता है। भक्ति साहित्य उनके अध्ययन का प्रमुख क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में 'सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में समाज और संस्कृति : सूर, तुलसी, दादू के संदर्भ में', 'हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य व अवधारणाएँ' उनकी महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। इसी क्रम में उनकी एक पुस्तक 'हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद' प्रकाशित हुई है।

सावित्री चन्द 'शोभा' की ऐतिहासिक दृष्टि बहुत पैनी है। इस पुस्तक में भी उन्होंने भक्ति साहित्य को ऐतिहासिक संदर्भों एवं तथ्यों के साथ परखा है। प्रस्तुत पुस्तक नौ अध्यायों में विभक्त है–'निर्गुण संत कवि : कबीर, रैदास इत्यादि', 'प्रेमाख्यान और सूफ़ी काव्य परंपरा : मुल्ला दाऊद', 'सूफ़ी प्रेमाख्यान कवि : कुतबन, जायसी तथा मंझन के जीवन-वृत्त और धार्मिक विचार', सूफ़ी कवियों की कृतियों में सामाजिक मूल्य और जीवन', 'मीरा और सूरदास', 'नानक और दादू', 'तुलसीदास : सामाजिक मूल्य और मानवतावाद', 'सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में निर्गुण व सगुण भक्ति और सूफ़ी प्रेमाख्यान', 'रीतिकालीन और नीतिकाव्यों में उदार और सहिष्णुतावादी तत्व।' इन अध्यायों में जहाँ साहित्य के सामाजिक स्वरूप को स्पष्ट किया गया है वहीं कवियों को ऐतिहासिक कालक्रम के अनुसार प्रस्तुत किया गया है जिसके परिणामस्वरूप यह पुस्तक संक्षिप्त इतिहास ग्रंथ का आभास भी कराती है। यही नहीं, एक शोधपरक अनुशासन पुस्तक में सर्वत्र रहा है जिसकी पुष्टि भूमिका ही कर देती है। पुस्तक की भूमिका ही मूल्यांकन का संक्षेप में दिग्दर्शन करा देती है।

कबीर संत काव्य के प्रमुख कवि हैं, डॉ0 सावित्री चन्द्र शोभा ने कबीर एवं रैदास के साहित्य एवं तद्युगीन परिवेश का सटीक मूल्यांकन किया है। कबीर के संदर्भ में वे लिखती हैं, ''कबीर काशी में रहते थे, जो प्राचीनकाल से विद्वानों का केंद्र था। 15वीं शताब्दी में जौनपुर भी काशी के निकट सूफ़ी संतों का केंद्र था जिसके निकट गोरखपुर बसा हुआ था। सब भली-भांति जानते हैं कि कबीर के अनुसार उन्होंने कभी 'मसि कागद छुओ नहीं' अर्थात वे अनपढ़ थे किंतु वे अशिक्षित नहीं थे। कबीर पर इन तीनों केंद्रों में रहने वाले विद्वानों, उनके उपदेशों और परंपरा का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा।'' लेखिका ने ऐतिहासिक एवं साहित्यिक तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष दिया है कि ''कबीर से पूर्व हिन्दू-मुसलमानों में भाईचारे तथा एक दूसरे के आचारों-विचारों को समझने का सूत्रपात हो चुका था।'' उन्होंने कबीर के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक विसंगतियों का भी उद्घाटन किया है। वास्तव में इन्हीं विसंगतियों ने कबीर को आक्रोश से भर दिया जो व्यंग्य का सहारा लेकर तीखा बनकर उनकी रचनाओं में फूट पड़ा। लेकिन लेखिका ने यहाँ स्पष्ट किया है कि–''कबीर धन या धनवानों और अमीरों के खिलाफ़ नहीं थे। वे धन के दुरुपयोग और उसके कारण अभिमान या घमंड और उसके प्रति लोलुपता रखने के लिए अपनी वेदना जताते हैं।'' वास्तव में कबीर एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें अमीर और ग़रीब में असमानता की खाई गहरी न हो।

सूफ़ी-काव्य प्रेम और सद्भाव की झाँकियाँ प्रस्तुत करता है। यह भारत की साझी संस्कृति के विकास में प्रमुख स्थान रखता है। मुल्ला दाऊद से लेकर कुतुबन, जायसी, मंझन और उस्मान जैसे प्रतिभाशाली कवियों ने इसे समृद्ध किया। लेखिका ने मुल्ला दाऊद, कुतुबन, जायसी एवं मंझन के प्रामाणिक जीवन-परिचय के साथ इनके साहित्य पर प्रकाश डाला है। नारी के संबंध में इनके उदात्त दृष्टिकोण की ओर संकेत करती हुई वे लिखती हैं कि ''जायसी ने पद्मावती को प्रेम, भक्ति और सौंदर्य का प्रतीक बनाकर समाज में नारी का स्थान ऊँचा ही नहीं माना वरन उसे उठाया है।'' सूफ़ी काव्य समाज एवं लोक की जीवंत तस्वीरें भी प्रस्तुत करता है। समाज में काव्य परंपराओं, उत्सवों एवं त्यौहारों से साक्षात्कार कराता है। लेखिका ने उचित ही लिखा है कि ''सूफ़ी कवि पूरी तरह भारतीय जीवन और संस्कृति में घुल-मिल गए थे।''

भक्तिकाल के कृष्ण-काव्य में मीरा और सूरदास का महत्वपूर्ण स्थान है। मीरा ने मध्यकाल के सामंती वातावरण में नारी के स्वतंत्र अस्तित्व का उद्घोष किया और इसके लिए परिवार एवं राज्य-दोनों से विरोध प्रकट किया। मीरा के जीवन-दर्शन को स्पष्ट करते हुए शोभा जी ने लिखा है कि–''घर-परिवार छोड़कर मीरा ने नारी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्रता की घोषणा ही नहीं की, बल्कि यह भी दिखाया कि वह परिवार को त्यागकर संतों की जमात में शामिल हो सकती है। यद्यपि मीरा ने राजा के महलों का त्याग अपने विरोध को प्रकट करने के लिए किया, पर मीरा ने कहीं भी नारी-भक्तों को चाहे वे कुमारी हों या ब्याहता, गृहस्थाश्रम को छोड़ सन्यास लेने की मंत्रणा नहीं दी। मीरा कर्मकांड, तीर्थयात्रा, व्रत-उपवास और जोगिया वस्त्र पहनने के भी घोर विरोध में थी।'' लेखिका ने सूर के काव्य में प्रतिफलित ब्रज के सामाजिक जीवन का सूक्ष्म विवेचन किया है। साथ ही, स्पष्ट किया है कि ब्रज की नारियों की स्वतंत्रता आर्थिक व्यवस्था में सक्रिय योगदान के कारण थी।

कबीर की तरह नानक ने छुआछूत एवं पाखंडों का विरोध किया। उन्होंने अन्याय और अत्याचार पर आधारित शासन-व्यवस्था की भर्त्सना की। जहाँ नानक का प्रभाव क्षेत्र पंजाब रहा, वहीं दादू का राजस्थान। दोनों ही संतों ने सहिष्णुवादी निर्गुण भक्ति का प्रसार किया।

तुलसी भक्तिकाव्य के प्रमुख रचनाकार हैं। उन्होंने न केवल रामभक्ति का प्रसार किया बल्कि एक आदर्श सामाजिक- राजनीतिक व्यवस्था का खाका भी प्रस्तुत किया। उनके काव्य का फलक बहुत व्यापक और समन्वय की भावना से ओत-प्रोत है। लेखिका ने तुलसी के राम-राज्य की परिकल्पना के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि—''तुलसी केवल राम-राज्य की परिकल्पना मात्र से ही संतुष्ट नहीं हो जाते, वे साधुओं, भक्तों, श्रेष्ठ राजाओं अथवा उच्चविचारों वाले सज्जनों का होना आवश्यक मानते हैं जो अपने सद्प्रयासों और सद्प्रभावों से जात-पाँत तथा धार्मिक विरोध से अलग रहकर नैतिक मूल्यों के पालन पर बल देने वाले समाज का निर्माण करें।''

पुस्तक में संत्रहवीं सदी की निर्गुण व सगुण भक्ति और सूफ़ी प्रेमाख्यान परंपरा की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है। इसके साथ ही रीतिकालीन और नीतिकाव्यों में मौजूद उदार और सहिष्णुवादी तत्वों को रेखांकित किया है। वास्तव में यह पुस्तक भक्ति साहित्य के गहरे सामाजिक सरोकारों और उसके महत्व को उजागर करती है। सहिष्णुतावादी सोच की आज नितांत आवश्यकता है जो भक्ति साहित्य में प्रचुर मात्रा में दिखायी पड़ती है।

पुस्तक का नाम	:	हिन्दी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्य एवं सहिष्णुतावाद
लेखिका	:	सावित्री चंद्र 'शोभा'
प्रकाशक	:	नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
मूल्य	:	45/- रुपये

हिन्दी-विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ (उ.प्र.)

मल-मूत्र ढोता भारत : दंश का दस्तावेज़

रत्न कुमार सांभरिया

यह कल्पनातीत नहीं कि भारतवर्ष एक मात्र ऐसा देश है, जहाँ एक ही देश में दो देश बसते हैं। एक देश दूसरे देश की चारदीवारी को स्पर्श न करना या उसके आँगन तक में कदम नहीं रखने को अपना धर्म मानता है। दूसरा देश उसे घृणा की दृष्टि से देखता है, उसे अस्पृश्य मानता है और उससे दूरी बनाये रखने में ही अपनी धर्मपरायणता समझता है। सामाजिक व्यवस्था में एक सवर्ण देश है, दूसरा अवर्ण। यहाँ जिस देश की चर्चा की जा रही है, वह अस्पृश्यों में अस्पृश्य और दलितों में दलित है। यानी अंत्यज है। उस देश का नाम है मेहतर।

'मेहतर' की सामाजिक, शैक्षणिक, राजनीतिक और आर्थिक दुर्दशा के मद्देनज़र रमणिका फांउडेशन की ओर से प्रकाशित 'युद्धरत आम आदमी' त्रैमासिकी के 'मलमूत्र ढोता भारत : विचार की कसौटी पर' तथा 'मलमूत्र ढोता भारत-सृजन के आईने में' दो वृहद् विशेषांकों का प्रकाशन किया गया है।

'सृजन के आईने में' विशेषांक में मराठी, तेलुगु, गुजराती और हिन्दी की 23 कहानियाँ; हिन्दी, गुजराती, पंजाबी की 37 कविताएँ; तीन नाटक; 5 पुस्तक अंश; 6 समीक्षा लेख, 7 मूल्यांकन और 10-12 लघुकथाएँ हैं। रचनाकारों ने मेहतरों के मलमूत्र ढोने, उन्हें नफ़रतभरी नज़रों से देखने, आदमी से न्यून आँकने, अमानवीय व्यवहार होने तथा उन पर होते अत्याचारों का अपनी-अपनी दृष्टि से मूल्यांकन किया है। मूल मुद्दे तक कुछ लेखक पहुँचे हैं, जिन्होंने मेहतर नामक इस देश को मलमूत्र ढोने की ज़्यादती से निजात दिलाने की बात कही है।

मैंने अपने नाटक 'उजास' में झाड़ू, पंजा और परात तीनों का दहन कराया है और जीने की नयी राह दिखायी है। इस जाति के साहित्यकार, जो मूलतः आत्मकथाकार ही हैं, वे इस तथ्य को भूल बैठे हैं कि सवर्णों के साथ मंच पर बैठने और उनकी जात-बिरादरी द्वारा गाँवों में जात की जाजम पर बैठने में कितना अंतर है। कटु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य है कि जिसके हाथ में झाड़ू होगी, वह दूर बैठेगा ही और जिसके हाथ में क़लम होगी, उससे नज़दीकियाँ बनेंगी ही। आज ज़रूरत इस बात की है कि झाड़ू छुड़ाकर क़लम पकड़वाने का आगाज़ हो।

अब सवाल खड़ा हो सकता है कि मैला ढोना या सफ़ाई कर्म मेहतरों का जीवनयापन है। इसे छोड़ने पर रोटी के लाले पड़ जाएँगे। इसका समाधान डॉ. अंबेडकर द्वारा येवला कॉन्फ्रेंस में किये गये इस आह्वान में निहित है कि अगर दलितों को बेहतर ज़िंदगी बसर करनी है, तो उन्हें मुर्दा पशु उठाना, मृत पशुओं की खाल उतारना, मुर्दा मांस खाना छोड़ देना चाहिए तथा शिक्षा की ओर उन्मुख होना चाहिए।

डॉ. अंबेडकर के इस आह्वान का अनुसरण उत्तर भारत के चमारों ने किया। वे चमार से जाटव, मेघवाल, मेघ, बैरवा, बलाई, भांभी बन गये। चर्मकारी का अपना पैतृक धंधा तो छोड़ ही दिया और चमार जात से भी निजात पा ली।

बैरवा जाति का उदाहरण तो अनुपम और अनुकरणीय है। यह जाति सन् 1948 में चमार से बैरवा बनी। बैरवा यानी चमड़े से वैर रखने वाला। धंधा छोड़ने के बाद इस जाति को सीधे वर्ण-व्यवस्था का कोपभाजन बनना पडा। गाँवों से बहिष्कार हुआ। दुकानदारों ने अपनी दुकानों से सामान नहीं दिया, ज़मींदारों ने अपने खेतों से निकलने नहीं दिया और भी तरह-तरह के अमानवीय अत्याचार इस जाति ने सहे, लेकिन अपने दृढ निश्चय से टस से मस नहीं हुई। अपना धंधा छोड़ने के बाद इस जाति का सीधा ध्यान बाबा साहब के 'शिक्षित बनो' की ओर गया। आज इस जाति के जितने अफ़सर भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अधीनस्थ सेवाओं और राज्य प्रशासनिक सेवा तथा अधीनस्थ सेवाओं में है, उतने अन्य अनुसूचित जातियों में नहीं हैं। ठीक ऐसा ही उदाहरण बैरवा की सहोर मेघवाल जाति का है। आज राजस्थान के राजनीतिक परिदृश्य पर एक नज़र डालें, तो अनुसूचित जाति के 34 विधायकों में से 25 विधायक इन्हीं दो जातियों के हैं, जबकि मेहतर जाति का एक भी विधायक राजस्थान में नहीं है।

रोटी बंदी, बेटी बंदी, जाति बंदी और व्यवसाय बंदी के चलते मेहतर नामक इस देश के लिये शेष सभी जातियाँ ब्राह्मण हैं। जो वर्जनाएँ ब्राह्मण की चमार जाति के साथ हैं, वही वर्जनाएँ चमार की मेहतर के साथ हैं। आज चमार भी मेहतर को न अपने यहाँ किराये पर मकान देता है और न ही अपने घर के भीतर आने देता है। ऐसा मैला ढोने के कारण है। घर को गेट तक साफ़ करके फेंका गया कूड़ा-कर्कट, गंदगी उठाना और रूखी-सूखी रोटी पा लेना ही इसकी नियति हो गयी है। विशेषांक की अधिकांश रचनाओं की थीम इसी चिंता पर केंद्रित है।

'नाच्यो बहुत गोपाल' अमृतलाल नागर का एक बहुत चर्चित उपन्यास है, जिसकी चर्चा विशेषांक में प्रमुखता से हुई है। माना यह जाता है कि यह उपन्यास मेहतर समाज की पृष्ठभूमि पर है, लेकिन इसके अंतरंग और ही हैं। उपन्यास की नायिका निर्गुण बनाम निर्गुणिया ब्राह्मणी है और नायक मोहन बनाम मोहन सिंह मेहतरानी की कोख से जन्मा ठाकुर का अंश है। निर्गुणिया अपनी भरी जवानी लिये ठाकुर अंश इसी मोहनसिंह के साथ भाग खड़ी होती है। खेली-खायी-अघायी निर्गुणिया को शायद यह मालूम हो कि मोहन सिंह मेह्तर नहीं, ठाकुर का अंश है। कोई बताए यह उपन्यास मेहतर समाज पर कैसे हुआ?

विशेषांक में जो सबसे बड़ा मुद्दा उभरकर सामने आया है, वह यह है कि हिन्दू धर्म जातियों की सीढ़ी है। जिसकी जाति जितनी बड़ी होती जाती है, वह उतना ही ऊँचा होता जाता है और जाति उसके लिए वरदान हो जाती है। और, जिसकी जाति जितनी नीची होती जाती है, वह उतना ही नीचा होता जाता है और जाति उसके लिए अभिशाप होती जाती है। बड़ी जाति का आदमी चंदन-तिलक की भाँति अपनी जाति का प्रदर्शन करने को उत्साहित रहता है। छोटी जाति का आदमी कोढ़ के दाग की भाँति अपनी जाति को छिपाये रखने का प्रयास करता है। मल-मूत्र ढोते अपने जातीय कर्म के कारण मेहतर जाति आज सबसे नीचे के पायदान पर है। मल-मूत्र ढोते व्यक्ति को हिन्दू 'चलते-फिरते नरक' की संज्ञा देता आया है।

इन दो विशेषांकों ने समाज के सीने पर दो बड़ी दस्तकें दी हैं। ऐसी दस्तकें, जिनसे समाज गूँगा-बहरा बना हुआ है। उससे न उगलते बनता है, न निगलते बनता है। वह एक बड़े प्रश्न के बीच आ गया है। विशेषांकों की विज्ञ संपादिका श्रीमती रमणिका गुप्ता ने 'मल-मूत्र ढोता भारत' शीर्षक से कहना चाहा है कि यदि भारत में एक भी व्यक्ति मैला ढोता है, तो समूचा भारत मैला ढोता है।

इन दोनों ही विशेषांकों की अतिथि संपादक डॉ. सुशीला टाकभौरे हैं। सवर्ण हो या ग़ैर-सवर्ण दोनों के लिए ही यह विशेषांक संग्रहणीय और पठनीय है।

समीक्षित कृति : मल-मूत्र ढोता भारत
(युद्धरत आम आदमी के विशेषांक)
अतिथि संपादक : डा0 सुशीला टाकभौरे

भाड़ावास हाउस, सी-137, महेश नगर, जयपुर-15

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-भाषा : ब्रज की भाषा, संस्कृति और उसके साहित्य की संरक्षा-सुरक्षा का संकल्प

डॉ0 प्रेम कुमार

लोक-भाषा-साहित्य अथवा भाषा-विज्ञान और अलीगढ़ की जब भी कहीं कोई चर्चा चलेगी, ज़ेहन में दो नाम खुद-ब-खुद आएँगे—स्मृतिशेष डॉ0 अम्बा प्रसाद 'सुमन' और डॉ0 कैलाश चन्द्र भाटिया। यह संयोग हो या सुयोग कि दोनों एक दूसरे के निकट और मित्र रहे हैं, सहयोगी और प्रशंसक भी। जब कभी भी मैं डॉ0 भाटिया दम्पत्ति के बारे में कुछ भी सुनता, पढ़ता, सोचता हूँ या उन्हें देखता हूँ तो सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक इस युग के रोम-रोम से एक दूसरे के लिए व्यक्त होते लगाव, सम्मान, सहयोग और समझदारी के प्रति आकर्षण और आदर का भाव जागता है। फिर इन दोनों की दुर्लभ, सरल, तरल-सी सहजता.... दिन के पल-प्रतिपल को दोह सकने-लेने की लालसा, क्षमता, कर्मठता.... उम्र की बात न भी करें-तो भी इस उम्र में, इतने रोगों को साथ लिए ऐसे इस शरीर के साथ भी पढ़ने-लिखने की यह धुन.... ऐसा जुनून..... दुर्लभ.... दुर्लभतम! एक उस्ताद नरजी की तरह पासंग के साथ भी तौला जाए.... जब भी अपने निर्धारित क्षेत्र और दिशा में इन दोनों में से किसने कम-अधिक दिया अथवा देना चाहा... यह कह पाना मुश्किल है। को घटि वे वृष भानुजा....। घट-बढ़ के बारे में कुछ भी कहपाना इसलिए और भी मुश्किल कि.... इन दोनों के किस-दिए में एक-दूसरा बेहद पास-साथ, संबद्ध, रला-मिला रहा है। इसलिए फिलहाल यह कि... चिरजीवौ जोरी जुरै....।

डॉ0 कैलाश चन्द्र भाटिया जितनी उम्र में अक्सर लोग अपने सब कुछ को समेट-बटोर लेने की हड़बड़ी में दिखते हैं। 'लोक-भाषा' में पूर्व लिखित के अब तक अप्रकाशित को प्रस्तुत-प्रकाशित करने की चाह तो दिखती है—पर हड़बड़ी दूर-दूर तक नहीं है। अपने शीर्षक से ही इस पुस्तक ने ध्यान खींचा। लोक और भाषा के बीच लगे योजक/ विभाजक चिह्न पर ध्यान गया तो श्लेष उत्पन्न हो गया। श्लेष-शब्द में नहीं-चिह्न में भी श्लेष। संयोजन और विभाजन के अतिरिक्त कई और कारक चिह्नों के अर्थ को व्यक्त करता यह चिह्न।

निश्चित-व्यवस्थित क्रम में, ढंग से साफ.-सुथरे कागज़ पर अच्छी-सी छपाई। लोक की ही तरह की प्रकृत, आकर्षक, मनोहर। 'लोक-भाषा' में भिन्न-भिन्न विषयों-शीर्षकों से अलग-अलग समय पर लिखी गयीं डॉ0 भाटिया की तेईस लघ्वाकार रचनाएँ संकलित हैं। रचनाओं को पढ़ते-पढ़ते लेखक के सान्निध्य-सामीप्य के क्षण फिर-फिर याद आते हैं। वे इसलिए कि यह सर्वज्ञात है कि डॉ0 भाटिया जब भी किसी से बोल-बतिया रहे होते हैं तो रोज़मर्रा की आम बातों में भी अनेक ऐसी अनजानी-कीमती जानकारियाँ देते चले जाते हैं-जिन्हें दर्जनों-दर्जनों ग्रंथों को पलट-खंगालकर भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

पुस्तक भाटिया जी के निज और उनकी जीवन-संगिनी के साहित्य व संस्कृति-प्रेम और लेखन के बारे में कई उपयोगी जानकारियाँ देती है।.... पर यह 'लोक-भाषा' का परम या चरम मंतव्य नहीं है। पुस्तंक के उद्देश्य की सफलता का ठीक और ढंग से पाठक को अहसास तब तक नहीं हो सकता, जब तक इसमें संकलित सभी रचनाओं में से होकर गुज़र नहीं लेता। पढ़ चुकने के साथ ही अचानक ऐसा अनुभव होता है कि पुस्तक को पढ़कर हम अनेक समीक्षाओं-खोजों, विश्लेषणों, मूल्यांकनों के मंथन से प्राप्त ऐसी अनेक सूचनाओं-जानकारियों से संपन्न हुए हैं-जिनके बारे में काफ़ी पढ़-घूम-भटककर भी जान पाना आसानी से संभव और उपलब्ध नहीं हो पाता। इन रचनाओं में लोक, ब्रज, संस्कृति और भाषा से संबंधित ऐसी-ऐसी जानकारियाँ कुछ इस तरह प्रस्तुत की गई हैं कि इस क्षेत्र में प्रवेश करने का इच्छुक विद्यार्थी भी सरलता से समझ-जान ले-और इस क्षेत्र के अनुभवी अध्ययेताओं, शोधार्थियों तथा विशेषज्ञों को भी यह महसूस हो कि उन्होंने इस बारे में इससे पहले इस तरह नहीं सोचा-देखा था। ये रचनाएँ समवेत रूप से डॉ0 भाटिया के श्रम, संघर्ष, अध्ययन-मनन और शोधशीलता को तो प्रमाणित करती ही हैं-ब्रज साहित्य और संस्कृति को अनवरत प्रचारित-प्रसारित करते रहने की उनकी इस इच्छा एवं उद्देश्य की पूर्ति में भी सहायक होती हैं-जिसके लिए पूरी ज़िंदगी को एकाग्रभाव से तन्मय तल्लीन और सुरत रहे हैं।

पुस्तक में लोक, भाषा एवं ब्रज के सैद्धांतिक, भौगोलिक, भाषिक एवं साहित्यिक महत्व को स्थापित-प्रतिपादित करने की कोशिश प्रायः और स्पष्ट दिखायी देती है। लोक की भाषा और बोलियों की प्रकृति-प्रवृत्ति उसकी शब्दावली की अर्थवत्ता, अर्थगर्भिता, सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता, व्यंजनात्मकता आदि के विषय में पुस्तक की रचनाएँ समझाने-पढ़ाने के अंदाज़ में काफी कुछ बताने-प्रमाणित कर सकने में समर्थ-सक्षम हैं। ब्रज की बोलियों, अनेक शब्दों, ब्रज भाषा के प्रख्यात-अल्पज्ञात कवियों-लेखकों एवं व्याकरणाचार्यों को आधार बनाकर लिखी गयी इन रचनाओं का स्थान और प्रदेय इसलिए अलग और विशिष्ट है कि उनमें लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार, विश्लेषण, प्रस्तुति और दृष्टि के स्तर पर नव्य और मौलिक को ढूँढ-कह पाने की कोशिश में संलग्न-तत्पर रहा है। ब्रज-भूभाग से दूरस्थ भिन्न क्षेत्रों-हिस्सों की ब्रजाधारित बोलियों एवं उनके साहित्य के अध्ययन को दी गई प्रमुखता और उसकी उपादेयता के मूल्यांकन में ली गई रुचि का यह परिणाम सुखद रहा है कि पाठक देश के अलग-अलग हिस्सों में प्रयुक्त होने वाली इन बोलियों की तुलना कर खुद भी किसी निष्कर्ष या परिणाम तक पहुँच सकता है। वे रचनाएँ जिनमें डॉ0 भाटिया ने कुछ पुस्तकों की समीक्षाएँ की हैं, इन अर्थों में खास हैं कि उसमें लेखक के भाषा-वैज्ञानिक और शोधक रूप के साथ-साथ समीक्षक रूप से भी साक्षात्कार हो जाता है। समीक्षा-जगत की अनेक अतिवादिताओं से अलग डॉ0 भाटिया का समीक्षक विद्वता-प्रदर्शन या आक्रामक बने रहने की अपेक्षा पुस्तक के गुण-दोष विवेचन—दोष प्रायः नगण्य, गुण ही गुण.... वे भी अधिकतर भाषाई दृष्टि से—के साथ साथ पुस्तक के वैशिष्ट्य और प्रदेय को ही रेखांकित करने के प्रति अधिक सचेष्ट-सक्रिय रहा / दिखता है। यूँ पुस्तक में संकलित सभी रचनाओं का अपनी-अपनी तरह और जगह से अपना महत्व और अवदान है-किन्तु लोक भाषा, लोक साहित्य में भाषा का महत्व, ब्रज तथा ब्रज भाषा, ब्रजभाषा कौ जीवनी साहित्य, किशोरी दास वाजपेयी एवं डॉ0 दीन दयाल गुप्त से संबंधित दोनों रचनाएँ, ब्रज का गौरव 'भारतेन्दु' पत्र तथा आंचलिक उपन्यासों की भाषा-शैली शीर्षक रचनाएँ अपने कथ्य, नावीन्य, अनूठेपन और भाषिक समृद्धि के चलते प्रथकृतः पठनीय और उल्लेख्य हैं।

वैश्वीकरण और बाज़ारवाद की आँधी में जब बड़े-बड़े, ऊँचे-लंबे शोभावान और महिमा मंडित प्रकाश-स्तंभ हिल उड़ और धराशाही हो चुके हों-तब यह सुनना, जानना, पढ़ना-देखना बेहद प्रेरक और आश्वस्तकर है कि डा0 भाटिया के रूप में सुनिश्चित दिशा में अपनी तयशुदा ऊँचाई पर स्थित-शोभित एक कंदील खुद तो अनबुझ रहा-बना आया ही है, औरों को भी रौशनी दे रहा है—रास्ता सुझा रहा है। डॉ0 भाटिया ने अध्यापक, भाषाविद्, लोक-साहित्य एवं संस्कृति के मर्मज्ञ-प्रसारक के रूप में जो ख्याति अर्जित की है, वह अनेक श्रम, अध्ययन, समर्पण और जीवट का ही परिणाम है। लोक-समाज-देश में आर्थिक-अभाव या संकट ही उसे विपन्न-निर्धन नहीं बनाते.... बल्कि भाषा के स्तर की आपाधापी- खींचतान और अराजकता उसे अधिक और अंदर तक दरिद्र बनाती है। सही मायने में डॉ0 भाटिया के 'शब्द-साधक' होने का यह प्रबल-प्रमुख प्रमाण है कि उन्होंने 'लोक-भाषा' में ब्रज के अनगिनत ऐसे शब्दों को बचाने- संभालने-पुनर्जीवन देने का प्रयत्न किया है जिन्हें धीरे-धीरे अज्ञानवश भी और इरादतन भी-बुलाने-बिसराने, गुमनामी के अँधेरे में धकेल देने या दफ़न कर दिए जाने की निर्मम-निरिंग-सी असंख्य कोशिशें जारी हैं। पुस्तक ने जिन विषयों पर जो जैसे कहा है—वह सब वैसे-वैसे कह सकने की सामर्थ्य, योग्यता, अधिकार, इरादे, तर्क और प्रमाण आदि की उसके लेखक के पास कमी नहीं है। वर्णसंकरता, फ़्यूजन, मिलावट और प्रदूषण की धमाचौकड़ी के इस दौर में अपने शब्द, अपनी व्याकरण, अपनी भाषा और बोली आदि के प्रति 'लोक-भाषा' के माध्यम से इस 'शब्द-साधक' के व्यक्त ये भाव, यह सोच, यह प्रयत्न तथा निश्च्छल-निर्लोभ-सी उसकी यह साधना-उसका यह शोध स्वागतेय है—प्रशंस्य है।

पुस्तक का नाम	: लोक-भाषा
लेखक	: डा0 कैलाश चन्द्र भाटिया
प्रकाशक	: कुसुम प्रकाशन, 186, इंजीनियर्स कॉलोनी, क्वार्सी बाईपास रोड, अलीगढ़
प्रथम संस्करण	: 2009
मूल्य	: 150/- रुपये

कृष्णाधाम कॉलोनी, आगरा रोड, अलीगढ़

उपन्यास 'डंक' की शुरूआत कुछ यूँ होती है

प्रेम शशांक

'मध्यप्रदेश में एक आदिवासी दलित गाँव है/जहाँ दो औरतों के बीच मात्र एक साड़ी होती है। जब बहू घर से बाहर जाती है/तब सास घर में नंगी रहती है। ऐ! मेरे देश के महान कर्णधारों इन अभागी माताओं-बहिनों पर/तरस खाओ/इन्हें सजीव चलती फिरती/खजुराहो की मूर्तियाँ/ मत बनाओ।'

मैं विराट अपनी प्रेमिका संध्या के साथ भ्रमण पर निकला हूँ। बिल्कुल उसी तरह जैसे विदेशी अपनी-अपनी प्रेमिकाओं के साथ भारत भ्रमण पर आते हैं।' उपन्यास के इस शुरूआती अंश से ही लचर शिल्प का अहसास हो जाता है। इसे लेखकीय भूमिका के सत्योदघाटन से जोड़कर देखा जा सकता है। अंतिम दो पंक्तियों से उन पर जो भी नारेनुमा ढंग से कहा गया है और जिनसे कहा गया है उनसे लेखक के सरोकार बाहर हैं। यह अंतिम पंक्तियों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न केवल स्पष्ट हो जाता है बल्कि यथार्थ की जो छवि छनकर आती है उसे अंतिम पंक्तियाँ अर्थहीन कर देती हैं। लेखकीय परिचय और नायक के रूप में उसकी भूमिका में साम्य भी जल्द ही मिल जाता है और इस साम्यनुमा द्वंद्व के रचनात्मक स्तर पर उपन्यास की वाट लगा दी है। यह सत्य है कि कथानायक का वर्गांतरण हो चुका है और न तो छूटे को पूरी तरह छोड़ पा रहा है और न पकड़े को ही पूरी तरह पकड़ पा रहा है। खोने और पाने के संघर्ष में यह यात्रा रचनात्मक रूप ले लेती है। रचनात्मक स्तर पर अलग तरह की चुनौतियाँ हैं। संवेदना को बाजार के नज़रिये से देखना और रूपायित करना आत्म-हनन की तरह है। यह जोखिम शुरू से लेकर अंत तक तलवार की तरह लटकता रहा है। कहना न होगा कि रचनात्मक कसौटी पर जिस धैर्य की जरूरत होती है उसका सर्वथा अभाव इसके शिल्प में खटकता है। मैंने प्रायः लिखा है कि इधर कुछ भी लिखो, बन उपन्यास ही जाता है क्योंकि यह सबसे ज़्यादा बिकाऊ विधा है। रचनाकारों में इसका मोह ही अलग है। लगता है सोनकर जी बस लिखना शुरू कर देते हैं, वह भी कैमरे की आँख से। संवेदनात्मक सजगता भी उतनी ही है जितनी फ्रेम में नज़र आती हे। फिर रचनाकार उस यथार्थ का हिस्सा कहीं भी नज़र नहीं आता जिसे वह चित्रित करता है। यह रचनात्मक फाँक शुरू से आखिर तक साफ़ नज़र आती है। कभी यात्रा विवरण का बोध होता है तो कभी संस्मरण का लेकिन यथार्थ से उत्पन्न रचनात्मक संवेदना लेखकीय दूरी नुमा फाँक के कारण वर्क दर वर्क भोतरी होती गयी है। कई बार आत्मकथांशों से गुजरने का अनुभव होता है। कुछ हिस्से अच्छी कहानियों में तब्दील हो सकते थे। लेकिन कुछ हिस्सों पर लेखकीय व्यक्तित्व इतना हावी हो गया है कि महत्वपूर्ण हिस्से व्यक्तिगत लेखकीय रूचि के आगे बौने हो गये हैं।

पुस्तक	:	डंक
लेखक	:	रूपनारायण सोनकर
प्रकाशक	:	अनिरूद्ध बुक्स, नयी दिल्ली
संस्करण	:	2009
मूल्य	:	200 रुपये

किसान सहकारी चीनी मिल्स लि0, सेमीखेड़ा बरेली, उ.प्र. - 243203

कहानी की नयी रंगत

निरंजन देव शर्मा

हिन्दी कहानी का गुज़रा दौर विमर्शवादी कहानी का दौर कहा जा सकता है। गुज़रे ज़माने में उस तरह के विमर्श के दबाव में लिखी-लिखवायी जा रही कहानी का उफ़ान अब उतार पर है। कहानी अपना सही रास्ता तलाश रही है। इस विमर्शवादी दौर में जो रचनाकार विमर्श के दबाव से मुक्त कहानी रचने में लगे रहे, सूर्यनाथ सिंह उनमें एक हैं। उनकी कहानियों का विमर्श ओढ़ा हुआ विमर्श नहीं, बल्कि कथा में घुला हुआ है। कथा की मूल प्रकृति यहाँ मौजूद है। आख्यान-परंपरा के मूल तंतु, 'सुनने-सुनाने' के शिल्प में गढ़ा गया ढाँचा। रचनाकार की प्रकृति को भ्रमित करने वाले इस दौर में ऐसी कहानियाँ रचने का हुनर विकसित करने के सूत्र संग्रह की 'कहानी से पहले' शीर्षक से लिखी गयी भूमिका में पकड़े जा सकते हैं। ईमानदारी से लिखी गयी 'कुछ रंग बेनूर' की इस भूमिका से स्पष्ट होता है कि किस तरह से कवि-मन बाल-साहित्यकार हो गया और कैसे बाल कहानियाँ लिखते-लिखते अपने समय के दबाबों और तनावों को व्यक्त करने वाली कहानी का रोचक ढाँचा गढ़े जाने की प्रक्रिया शुरू हुई।

सूर्यनाथ के कहानी-संग्रह 'कुछ रंग बेनूर' में कुल सात कहानियाँ है, जिनका परिवेश हमारे आस-पास का ही है। स्त्री-पुरुष संबंधों को पूर्वग्रह-मुक्त होकर देखने का प्रयास उनके यहाँ है, तो बाज़ारवादी प्रवृत्तियों को भी वे कहानी के ठाठ में पकड़ते हैं। यानी, कथा-रस और कहानी कहने का उनका देसी मुहावरा भूमंडलीय समय का नक़्शा कुछ अलग ही तरह से खींचता है। संग्रह की पहली कहानी है—'ठठेरे की मशीन'। क़िस्सागोई शैली में लिखी गयी यह प्रतीकात्मक कहानी भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को समझने-समझाने, उसका विकराल रूप दिखाने का क़िस्सा है। कहानी विधा का मूल प्रश्न कहानी के अंत में मौजूद है—'फिर क्या हुआ?' की ध्वनि के साथ। कहानी की इस मूल ध्वनि के साथ सूर्यनाथ की कहानी जारी रहती है—संग्रह की अंतिम कहानी 'नचनिया राजा' के रूप में। यह कहानी भी प्रतीकात्मक है और इसी शैली में लिखी गयी है। 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी—टका सेर खाजा' वाली उक्ति किस तरह से प्रजातंत्र में चरितार्थ होती है, यही कहानी में दिखाया गया है। कहानी की अंतिम पंक्तियाँ हैं :

"तो फिर अब क्या होगा?"

"होगा क्या, ये तो ऊपर वाला ही जाने। कहानी ख़त्म, अब जाओ सब अपने - अपने घर और मुँह ढँक के सो जाओ।"

यानी समस्या मौजूद है और जिज्ञासा भी। कहानी के इन महत्त्वपूर्ण तंतुओं को सूर्यनाथ ने शुरू से अंत तक पकड़े रखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रह की एक लंबी कहानी 'गंध' है। ट्रेन में सफ़र करते जानकी प्रसाद शर्मा को घर के-से अचार की गंध आती है और इस गंध के माध्यम से वे बार-बार स्मृतियों में खो जाते हैं। बर्थ पर बैठे-बैठे सह यात्रियों का आचरण देखते-समझते वे अपने समय को पढ़ने का प्रयास करते हैं। बाज़ारवाद के साये में मनुष्यों के आपसी संबंध तथा स्त्री-पुरुष के रिश्ते अपने-आप व्याख्यायित होते चले जाते हैं।

'चकरी' कहानी स्त्री-पुरुष संबंधों को अलग कोण से परखती है। स्त्री का अपने पति को शक से देखना, एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक बीमारी में बदल जाता है। पति-पत्नी के बीच इस तनाव की परिणति पति द्वारा आवेश में पत्नी को पीट देने और, स्वयं जेल की सलाखों के पीछे पहुँच जाने में होती है। कहानी की शुरूआत एक शोधकर्ता द्वारा मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों का अध्ययन करने के दौरान् जेल में पुरुष से मुलाकात से होती है। केस-स्टडी के दौरान् स्त्री-पुरुष संबंधों और देश की 'परिवार' नामक संस्था में मौजूद ग्रंथियों की परतें खुलती चली जाती हैं। कहानी के अंत में शोधकर्ता पुरुष से कहता है :

"शायद आप अपने-आप को सँभाल लेते, तो आज घर नहीं टूटता।"

यहाँ पुरुष का बयान तमाम विमर्शवादी बयानों को खोखला साबित करता है। वह कहता है :

"मुक़दमा मेरी वाइफ़ ने नहीं, उसकी माँ ने किया है। आप देखिएगा, मेरी वाइफ़ जैसे ही हॉस्पीटल से बाहर निकलेगी, वह मुझे ज़मानत पर घर ले जाएगी।"

यही शायद भारतीय मध्यवर्ग का सच भी है। तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद संबंध परिवार की धुरी के गुरुत्वाकर्षण में बँधे रहते हैं। तमाम ऊँच-नीच तथा ढकोसलों के बावजूद परिवार का संस्थागत ढाँचा इसलिए मज़बूत है कि सामाजिकता को बनाये रखने वाला इसका विकल्प संभव नहीं।

'आधा कीच तिहाव जल' यूँ तो पुरुष द्वारा स्त्री के शोषण की कहानी है, पर साथ ही यह भी कहती है कि किसी स्त्री द्वारा जानते-बूझते एक विवाहित पुरुष के जाल में फँसते चले जाना कहीं की समझदारी नहीं है। यहाँ भाईजी का चरित्र तो उद्घाटित होता हीं है, भाभीजी के प्रति भी सहानुभूति नहीं होती, क्योंकि लेखक बहुत ही तटस्थ भाव से घटनाक्रम को आगे बढ़ाता है।

'दिशाभ्रम' कहानी के माध्यम से संभवतः पहली बार नयी पीढ़ी के किशोरों के मनोविज्ञान, उनकी प्राथमिकताओं और नैतिकताओं को समाझने की कोशिश की गयी है। अपनी ही दुनिया में जीने वाली इस पीढ़ी का तालमेल अपने से पहले वाली पीढ़ी से नहीं बैठता। तकनीकी युग में यह अंतर वहीं से नज़र आने लगता है, जहाँ से हमारी पीढ़ी मोबाइल फ़ोन और कम्प्यूटर की बारीकियाँ नयी पीढ़ी से सीखती है।

इस कहानी में कथानायक की बेटी अनुष्का आगे की पढ़ाई के लिए ऑस्ट्रेलिया जाना चाहती है, लोन लेकर। उधर मूल्यों और नैतिकता को लेकर जो सवाल खड़े हुए हैं, वे कथानायक को भ्रमित करते हैं।

'कुछ रंग बेनूर' दलित बनाम सवर्ण के मामले को जातिवादी ज़मीन पर निष्पक्ष भाव से परखती है। कहानी किसी पक्ष या विपक्ष में फ़तवा जारी नहीं करती, बल्कि सवर्ण मानसिकता के दंभ तथा वर्चस्व के तड़कने और दलित उभार द्वारा उसे चुनौती देने के द्वंद्व से उभरे प्रश्नों से जूझती है। जातीय हिंसा और हिंसा की जड़ों में मौजूद राजनीति की हक़ीक़त कहानी में खुलती चली जाती है। पूरी व्यवस्था में राजनीति की घुसपैठ इतनी बढ़ गयी है कि न्याय की संभावना धूमिल होती नज़र आती है। कहानी में थानेदार सोचता है :

"...ये लोग नेता हैं। क्रिमिनल्स को सर्पोट करते हैं, क्राइम के लिए लोगों को उकसाते हैं और हमें सिखाते हैं कि क्या सही है क्या ग़लत है।"

संग्रह की सातों कहानियाँ पढ़ने के बाद यह उभर कर सामने आता है कि सूर्यनाथ एक सजग कहानीकार की आँख से अपने परिवेश को देखते हैं, पीढ़ियों के द्वंद्व को परखते हैं और तटस्थ भाव से घटनाओं को कहानी में गूँथते चले जाते हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों और दलित-सवर्ण मानसिकता पर लिखी गयी इनकी कहानियाँ निश्चित रूप से ओढ़े गये विमर्शवादी दौर की कहानियों से पैदा हुए भ्रम के विरोध में लिखी गयी हैं।

सूर्यनाथ की कहानियों का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है—उन कहानियों का भाषागत ढाँचा। भाषा पर लेखक की पकड़ सहज और मज़बूत है। लोकेल से इन्होंने अपनी कहानियों का भाषिक मुहावरा गढ़ा है। भाषा का यही प्रवाह इनकी लंबी कहानियों को भी रोचक बनाता है। यद्यपि, 'ठठेरे की मशीन' और 'राजा नचनियाँ' एक ही शिल्प में लिखी गयी दो अलग कहानियाँ हैं, पर एकरूपता के लिए स्पष्टीकरण कहानी की भूमिका में मौजूद है, फिर भी 'ठठेरे की मशीन' ज़्यादा मज़बूती से अपने समय को संप्रेषित कर पाती है। कवि होने की प्रक्रिया में सूर्यनाथ का कहानीकार के तौर पर उभरना सुखद अहसास है। पेशे से पत्रकार होना भी घटनाओं के विश्लेषण में पैनेपन के लिए इनके पक्ष में जाता है।

पुस्तक का नाम	: कुछ रंग बेनूर कहानी संग्रह
लेखक	: सूर्यनाथ सिंह
प्रकाशक	: इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली-51
मूल्य	: 175/- रुपये

भारत भारती स्कूल, ढालपुर, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री रामलीला परिषद, हिण्डाल्को द्वारा श्री रामलीला का भव्य मंचन

इस वर्ष दिनांक 8 अक्टूबर से 17 अक्टूबर तक विश्व की अग्रणी एल्यूमिनियम उत्पादक संस्थान "हिण्डालको" की श्री रामलीला परिषद द्वारा विजयदशमी के पावन पर्व पर दस दिवसीय श्री रामलीला का भव्य मंचन रेणुकूट, उत्तर प्रदेश में किया गया।

हिण्डाल्को संस्थान द्वारा सन् 1965 में स्थापित श्री रामलीला परिषद ने अपने अब तक के 45 वर्षों के गौरवशाली इतिहास में सामाजिक-सास्कृतिक समरसता की अद्भुत मिसाल पेश की है। देश की कुछ गिनी-चुनी संस्थाओं में श्री रामलीला परिषद, रेणुकूट द्वारा मंचित श्रीराम लीला में सभी धर्म, जाति एवं समुदायों के लोग पिछले साढ़े चार दशक से सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई कलाकारों द्वारा "रामायण" के विभिन्न पात्रों की भूमिका जिस सद्भावना से यहाँ प्रस्तुत की जाती है वह राष्ट्रीय सौहार्द, प्रेम एवं भाई-चारे की एक उत्कृष्ट मिसाल है।

इस वर्ष की श्री रामलीला के अपने उद्घाटन संबोधन में हिण्डाल्को संस्थान के प्रमुख श्री डी0 के0 कोहली ने देश के विकास में अपने संस्थान की भागीदारी की चर्चा करते हुये सामाजिक एवं सास्कृतिक जनजागरण के महत्व पर बल दिया। उन्होनें जनसमुदाय से श्री राम के आदर्शों को अपने जीवन में उतारने का आग्रह किया। अभिनय, नृत्य एवं गायन द्वारा जिस सहजता एवं सरलता से रामायण के विभिन्न प्रसंगो को प्रस्तुत किया गया वह कला की दृष्टि से बेहद उत्कृष्ट प्रस्तुति सिद्ध हुआ। यह हिण्डाल्को की विगत कई वर्षों से अर्जित श्री राम लीला की प्रसिद्धि का ही परिणाम था कि इस साल की श्री रामलीला का प्रसारण "सुदर्शन" टी0वी0 चैनल द्वारा पूरे दस दिनों तक किया गया जिसे रेणुकूट से बाहर देश- विदेश के लाखों लोगों ने देखा एवं सराहा।

श्री राम लीला परिषद के इस भव्य आयोजन में परिषद् के अध्यक्ष श्री रतन सोमानी, सलाहकार कर्नल आर0 के0 श्री खंडे, श्री हजारी लाल शाह, निर्देशक श्री सुनील परवाल, हिण्डाल्को के संयुक्त अध्यक्ष-मानव संसाधन एवं मुख्य सलाहकार श्री अरूण कुमार, संयुक्त अध्यक्ष श्री अशोक माछर, श्री आई0 जे0 जोशी, उपाध्यक्ष श्री अजय जोशी, महाप्रबंधक-जनसंपर्क श्री तेज बहादुर माथुर तथा विभिन्न विभागों के प्रबंधकों का विशेष सहयोग रहा। दशहरे के दिन स्थानीय रामलीला मैदान में रावण के 90 फीट ऊँचे विशाल पुतले का दहन तथा आतिशबाजी का रंगा-रंग नज़ारा देखने के लिये एक लाख से ज़्यादा लोगों का विशाल जनसैलाब उमड़ पड़ा था। राष्ट्रीय सौहार्द, भाईचारे एवं मेल-मिलाप के इस तरह के आयोजन द्वारा हिण्डाल्को के सांस्कृतिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वहन अन्य संस्थानों, संगठनों तथा प्रतिष्ठानों के लिये एक अनुकरणीय उदाहरण है।

प्रस्तुतिः- राजीव श्रीवास्तव

श्री आलोक श्रीवास्तव का ग़ज़ल-पाठ 17 जुलाई 2010, नई दिल्ली

साहित्य अकादेमी के 'राजभाषा मंच' कार्यक्रम के अंतर्गत सुपरिचित गजलकार श्री आलोक श्रीवास्तव के ग़ज़ल-पाठ का आयोजन साहित्य अकादेमी के सभाकक्ष में किया गया। अकादेमी के उपसचिव श्री ब्रजेन्द्र त्रिपाठी ने श्री आलोक श्रीवास्तव का औपचारिक परिचय देते हुए कहा कि आलोक ग़ज़लें, नज्में, दोहे और गीत लिखते हैं: साथ ही कथा-लेखन और समीक्षा के क्षेत्र में भी सक्रिय हैं। उनका पहला कविता-संग्रह 'अमीन' 2007 में प्रकाशित हुआ और उसकी खूब चर्चा हुई। उन्हें कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है जिसमें अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान, भगवत शरण चतुर्वेदी पुरस्कार, हेमंत स्मृति कविता सम्मान, मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी का दुष्यंत कुमार तथा 'परंपरा ऋतुराज सम्मान 2009 शामिल हैं।

श्री आलोक श्रीवास्तव ने अपनी ग़ज़लें प्रस्तुत कीं। उन्होंने अपनी गजलों में फैज़ और गलिब को भी यह कहकर याद किया- आए थे मीर ख्वाब में कल डाँटकर गए, क्या शायरी के नाम पर कुछ भी नहीं रहा। उन्होंने पत्नी को सबोधित एक ग़ज़ल पेश की--मुझे सिरे पकड़कर उधेड़ देती है, मैं एक झूठ वह सच्चे सबूत जैसी है...। कार्यक्रम में बाल स्वरूप राही, श्री लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, पद्मा सचदेव, हेमंत शर्मा आदि साहित्य और मीडिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत के चर्चित लोग उपस्थित हुए। कार्यक्रम के अंत में साहित्य अकादेमी के उपसचिव श्री ब्रजेन्द्र त्रिपाठी ने धन्यवाद दिया।

साहित्य मंच 28 जुलाई 2010, नई दिल्ली

साहित्य अकादेमी द्वारा साहित्य मंच कार्यक्रम के अंतर्गत रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 150वीं जयंती के उपलक्ष्य में उनके बांग्ला गीतों के प्रयाग शुक्ल द्वारा किये गए हिन्दी अनुवाद की प्रस्तुति का एक कार्यक्रम अकादेमी सभागार नई दिल्ली में 28 जुलाई 2010 को आयोजित किया गया। कार्यक्रम के आरंभ में साहित्य अकादेमी के उपसंपादक देवेन्द्र कुमार देवेश ने उपस्थिति लेखकों और साहित्य प्रेमियों का औपचारिक स्वागत करते हुए रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आरंभिक हिन्दी अनुवादकों का उल्लेख किया और बताया कि उनकी नोबेल पुरस्कार प्राप्त 'गीतांजलि' के 38 हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। श्री प्रयाग शुक्ल का संक्षिप्त परिचय देते हुए उन्होने बताया कि प्रयाग शुक्ल भी 'गीतांजलि' के एक समर्थ अनुवादक हैं

श्री प्रयाग शुक्ल ने इस अवसर पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीत पंचशती और अन्य कृतियों से कई गीतों के हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किए। अवसर पर उन्हेंने बताया कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के काव्य संसार का काफी सारा हिस्सा अभी तक हिन्दी में अनूदित नहीं हुआ है।

कार्यक्रम के अंत में अकादेमी के सचिव श्री अग्रहार कृष्णमूर्ति ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के इतने सहज और ग्राह्य हिन्दी अनुवार के लिए प्रयाग शुक्ल को बधाई देते हुए औपचारिक ध न्यवाद ज्ञापन किया।

नव साम्राज्यवाद और प्रेमचन्द

नव साम्राज्यवाद के खिलाफ आज राष्ट्रीय स्तर पर कोई आंदोलन नहीं लड़ा जा सकता है। उसके लिए नए तरीके से तैयारी कर नए औजारों के साथ लड़ना होगा। नव साम्राज्यवाद के दौर में राष्ट्र की सत्ता खतरे में है। मानव सभ्यता संक्रमण के दौर से गुजर रही है। चुनौतियाँ अधिक है, हमारा समाज तात्कालिकाताग्रस्त है। आत्मकेन्द्रित होना आज के समय का मुख्य स्वर है। देखना यह होगा कि नव साम्राज्यवाद को समझने के लिए प्रेमचन्द हमारी कितनी मदद करते हैं। क्योंकि नव साम्राज्यवाद पूँजीवाद का चरम उत्कर्ष हैं। निश्चित तौर पर लेखन के स्तर पर प्रेमचन्द बहुमुखी है, किन्तु उनके बाद दुनिया बहुत बदली है। प्रेमचन्द के साहित्य में कर्ज एक बड़ा फैक्टर है, जो आज की सबसे बड़ी समस्या है। प्रेमचन्द हमें नव साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रतिरोध की शक्ति देते हैं। उक्त बातें प्रसिद्ध इतिहासकार और चिन्तक **लालबहादुर वर्मा** ने **महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के इलाहाबाद स्थित क्षेत्रीय विस्तार केन्द्र** के सत्यप्रकाश मिश्र सभागार में **'नव साम्राज्यवाद और प्रेमचन्द'** विषय पर आयोजित गोष्ठी में कहीं।

कार्यक्रम के अध्यक्ष वरिष्ठ कथाकार **दूधनाथ सिंह** ने कहा कि प्रेमचन्द राष्ट्रीय आंदोलन के साथ तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को लेकर भी काफी सजग थे और उन्हें अपनी रचनाओं एवं पात्रों के माध्यम से सामने ला रहे थे। गोष्ठी में दूसरे वक्ता **प्रो0 राजेन्द्र कुमार** ने अपने वक्तव्य में कहा कि आज लोकतंत्र में सत्ता का चरित्र जनता पर भरोसा करना नहीं रहा। नव साम्राज्यवाद का विरोध आज के साहित्य के लिए कसौटी है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जमींदार सा व्यवहार कर रही है। गोष्ठी के अन्य वक्ता प्रो.ए.ए. फातमी ने कहा कि प्रेमचन्द अपनी रचनाओं में स्वस्थ सामाजिक संबंधों और साझा संस्कृति की वकालत करते है। सामाजिक रिश्तों की पहचान हमें प्रेमचन्द के पात्रों से होती है।

प्रलेस इलाहाबाद के सहयोग से आयोजित गोष्ठी का संयोजन एवं संचालन क्षेत्रीय विस्तार केन्द्र इलाहाबाद के निदेशक **संतोष भदौरिया** ने किया। अतिथियों का स्वागत सुरेन्द्र राही ने और आभार एहतराम इस्लाम ने व्यक्त किया।

प्रस्तुति : निधि सिंह, इलाहाबाद

ढलता सूरज : ढलती शाम का लोकार्पण

सिद्धेश्वर में लेखन का जुनून है। उनका लेखन लोगों को प्रभावित करता है। वे एक सशक्त चित्रकार भी हैं। कथाकार सिद्धेश्वर के कहानी संग्रह 'ढलता सूरज : ढलती शाम' का लोकार्पण करते हुए उषा किरण खान ने उक्त विचार रखे।

'वातायन' के तत्वावधान में आयोजित इस लोकार्पण समारोह के विशिष्ट अतिथि डा. शांति जैन एवं चर्चित कथाकार भगवती प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि इस पुस्तक की भूमिका अपने आप में एक कहानी है।

सिद्धेश्वर के लेखन की सराहना करते हुए, इस संगोष्ठी के अध्यक्ष प्रसिद्ध व्यंग्य लेखक पद्मश्री रवीन्द्र राजहंस ने कहा कि भौतिकवादी समाज पर लेखक की पैनी दृष्टि है। संचालन के क्रम में कमला प्रसाद ने कहा कि 'ढलता सूरज : ढलती शाम' में शामिल सिद्धेश्वर की कहानियों की, देश के ख्यातिप्राप्त कथाकारों कमलेश्वर, मिथिलेश्वर, मधुकर सिंह, सियाराम तिवारी, इब्राहिम अश्क ने भी सराहना की है।

इस यादगार समारोह में पचास से अधिक कवि कथाकार ने अपनी भागीदारी निभायी।

प्रस्तुति- जया अग्निहोत्री
अवसर प्रकाशन, पोस्ट बॉक्स नं.-205
करबिगहिया, पटना-800001 (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर उभरा परिवारवाद

डॉ0 गिरीश मिश्र

देश के एक बड़े राज्य बिहार में चुनावी गहमागहमी के बीच परिवारवाद ने एक नया आयाम जोड़ दिया है। लालू यादव अपने क्रिकेट खिलाड़ी बेटे और रामविलास पासवान ने अपने अभिनेता पुत्र को अपने अनौपचारिक उत्तराधिकारियों के तौर पर पेश किया है। पहले से ही यादव की पत्नी और साले तथा पासवान के भाई अनेक दलों में शीर्ष स्थानों पर रहे हैं।

कहना न होगा कि दुनिया में हर जगह कोई व्यक्ति सत्तारूढ़ हो या सर्वसाधारण, परिवारवाद उसके आचरण को निर्धारित और नियंत्रित करने वाला बहुत बड़ा कारक होता है। हम अपने पड़ोसी देश श्रीलंका को ही लें, वहाँ पिछली प्रधानमंत्री के माँ-बाप दोनों प्रधानमंत्री रह चुके थे। बांग्लादेश में वर्तमान प्रधानमंत्री के पिता और पिछली प्रधानमंत्री के पति देश के शासक थे। पाकिस्तान के वर्तमान राष्ट्रपति की पत्नी और ससुर सत्तारूढ़ रहे। अमेरिका के पिछले राष्ट्रपति के पिता और भाई क्रमशः राष्ट्रपति और गर्वनर के पद पर आसीन रह चुके थे। उनका परिवार व्यवसाय और राजनीति में कई पीढ़ियों से प्रभावशाली रहा है जिसका विवरण केविन फिलिप्स की पुस्तक 'अमेरिकन डायनेस्टी' में दर्ज़ है।

हमारे यहाँ पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी के कई रिश्तेदार मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में मंत्री रहे हैं। चौधरी चरण सिंह के पुत्र और पौत्र सांसद हैं। शेख अब्दुल्ला का खानदान तीन पीढ़ियों से राज कर रहा है। भैरोसिंह शेखावत, वसुंधरा राजे, देवगौड़ा, करुणानिधि, जसवंत सिंह आदि के पुत्र भी राजनीति में हैं। कल्याण सिंह के बेटे सक्रिय राजनीति में सफलता पूर्वक उतरे हैं तो मुलायम सिंह, उनके पुत्र, पुत्रवधु, भाई, भतीजे आदि सांसद और विधायक हैं। मगर अजीब बात है कि परिवारवाद को लेकर दोषारोपण नेहरू और इंदिरा गांधी पर ही होना है। गलत और ओछी बातें प्रचारित की जाती हैं। यह कोई नहीं कहता है कि पं0 मोतीलाल नेहरू के बाद पं0 जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस अध्यक्ष अपनी योग्यता और राष्ट्रनिष्ठा के कारण हुए। इसी तरह की बात हम डा0 अमरनाथ झा द्वारा अपने पिता महामहोपाध्याय पं0 गंगानाथ झा के बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनने के संबंध में भी कह सकते हैं। क्या हम ऐसा कुछ वरुण गांधी और मेनका गांधी या मुलायम सिंह और उनके रिश्तेदार या चौटाला परिवार को लेकर कह सकते हैं ?

याद रहे कि परिवारवाद के नाम पर नेहरू, गांधी परिवार को गाली बकने वालों में भाजपा और लोहियावादी आगे रहे हैं। यद्यपि हमारे यहाँ परिवारवाद को लेकर चर्चाएँ और दुष्प्रचार जारी है, फिर भी न कोई समाज शास्त्रीय अध्ययन उपलब्ध है और न कोई साहित्य कृति आई है जबकि पश्चिमी देशों में इसके विभिन्न आयामों पर दोनों तरह की रचनाएँ हैं। इस सिलसिले में सबसे महत्त्वपूर्ण अध्ययन 'इन प्रेज़ ऑफ नेपोटिज़्म, ए नेचुरल हिस्ट्री' वर्ष 2003 में डबलडे नामक अमेरिकी प्रकाशन गृह से आया। लगभग पौने छः सौ पृष्ठों के इस ग्रंथ के लेखक हैं एडम बेल्लो जिनके पिता सौल बेल्लो को साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था और उनका निधन कुछ साल पहले ही हुआ है।

एडम बेल्लो के अनुसार 'नेपोटिज़्म' शब्द अंग्रेज़ी भाषा में सत्रहवीं सदी में प्रचलन में आया। इसका अर्थ होता है : भाई भतीजावाद, कुनबापरस्ती या परिवारवाद। इसका उद्भव लातिनी शब्द 'नोपॉज' से हुआ है जिसका अर्थ भतीजा या पोता है। कुछ लोग इसका उद्भव इतावली शब्द 'नैपॅट' से मानते हैं जिसका तात्पर्य परिवार के किसी भी सदस्य से हो सकता है। कहा जाता है कि ग्यारहवीं सदी में पोप के लिए ब्रह्मचर्य का व्रत अनिवार्य बना दिया गया, फिर भी उनके बाल-बच्चे होते रहे जिन्हें भतीजा बताकर उच्च पदों पर बैठाया जाता रहा। लंदन से प्रकाशित होने वाले 'दी इकॉनमिस्ट' (24 दिसंबर, 1994) ने पंद्रहवीं-सोलहवीं सदी के दौरान इस व्रत के खुल्लम खुल्ला उल्लंघन के अनेक उदाहरण गिनाए हैं। जब भी कोई नया पोप आता, तब वह पिछले पोप के सगे-संबंधियों को हटा अपने भाई-भतीजों को उच्च पदों पर बैठाता था, क्योंकि वह वैचारिक, राजनीतिक तथा अन्य दृष्टियों से उन पर कहीं अधिक भरोसा कर सकता था। कालक्रम में परिवारवाद की परिभाषा हो गई है: रिश्तेदारी पर आधारित पक्षपात। कई लोग इसको काफी संकुचित रूप में लेते हैं। उनके अनुसार न केवल रिश्तेदारों को जिम्मेदारी के पद पर बिठाया जाता है, बल्कि ऐसा करते समय उनकी अयोग्यता और अक्षमता को नज़रअंदाज कर दिया जाता है। अगर हम इस संकुचित परिभाषा को लेकर चलें तो बेशक परिवारवाद भर्त्सनायोग्य और देश एवं समाज के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खतरनाक है। कहना न होगा कि अयोग्य और अक्षम सगे-संबंधियों को उच्च पदों पर बिठाने की परंपरा विचारधारा से जुड़ाव और संगठित ढाँचे के कमजोर होने के कारण ही जनतांत्रिक व्यवस्था वाले देशों में पनपी है। किसी शासक या नेता के समर्थन का आधार वैचारिक कम, रिश्तेदारी और जातिवाद कहीं अधिक होता है। अगर हम थोड़ा आगे बढ़कर देखें तो सांप्रदायिकता, क्षेत्रीयता आदि भी इस दायरे में आ जाएंगे। शासन व्यवस्था हो या कोई राजनीतिक दल या जैसे कोई व्यावसायिक संस्थान या धार्मिक प्रतिष्ठान-जैसे मठ हो, सर्वोच्च पदस्थ व्यक्ति के पुत्र, पुत्री या दामाद, भतीजा या किसी अन्य रिश्तेदार और मित्र को अपेक्षाकृत योग्य एवं सक्षम लोगों को दरकिनार कर आगे बढ़ाना निष्पक्षता और न्याय के खिलाफ है। इससे अन्य लोगों में असंतोष और निराशा की भावना आती है। इसके बावजूद हमारे देश में राजनीति हो, मठ हो या व्यावसायिक जगत, सब जगह परिवारवाद हावी है। आप प्रमुख भारतीय व्यावसायिक समूहों को ही नहीं मंझोले और छोटे व्यापारिक और औद्योगिक संगठनों को देखें तो पाएंगे कि उच्च प्रबंधकीय और हिसाब-किताब से जुड़ी ज़िम्मेदारियाँ आमतौर से सगे-संबंधियों को दी जाती हैं क्योंकि विश्वास और निष्ठा का सबसे बड़ा आधार योग्यता और क्षमता नहीं, रिश्ता माना जाता है। यह बात विकसित देशों के व्यावसायिक और औद्योगिक समूहों पर भी लागू होती है।

यह चलन जनतांत्रिक समाज की उस मूल धारणा के विपरीत है, जहाँ किसी व्यक्ति की योग्यता और क्षमता ही उसकी तरक्की और नियुक्ति का आधार होना चाहिए। उसके संबंधों और शक्तिशाली व्यक्तियों के समर्थन को दूर रखना चाहिए। वस्तुपरक कायदे-कानूनों के आधार पर ही नौकरियों, शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश, पदोन्नतियों आदि का फैसला होना चाहिए। राजनीति में देर-सबेर जनता की राय लेकर विधानसभाओं और लोकसभा में लोगों को प्रवेश मिलता है। मगर व्यावसायिक जगत और गैरसरकारी संस्थाओं और हर प्रकार के मीडिया प्रबंधन से जुड़े लोग न तो जनता द्वारा चुने जाते हैं और न ही उसके प्रति जवाबदेह होते हैं। फिर भी उनके निर्णयों, कार्यों और विचारों से समाज प्रभावित होता है। कहना न होगा कि उनकी वहाँ के उच्च पदों पर पहुँच काफी हद तक रिश्तेदारी और 'कनेक्शन' के कारण होती है। वस्तुतः यह प्रवृत्ति प्रायः हर जगह हावी होती जा रही है। नियम-कायदों की अनुकूल व्याख्या या उनमें चोर दरवाजे ढूंढकर अपने लोगों को आगे बढ़ाया जाता है और उनके माध्यम से मन-मुताबिक निर्णय और कार्य करवाए जाते हैं। स्पष्ट है कि परिवारवाद जनतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत भी नागरिक-नागरिक के बीच अंतर पैदा करता है और इस प्रकार समानता और निष्पक्षता के मूलभूत सिद्धांतों को धता बताया जाता है। एडम बेल्लो का कहना है कि आडंबर या पाखंड को छोड़ यथार्थ को स्वीकार करना चाहिए। चूंकि हम पशु-प्रवृत्ति से अब भी ग्रसित हैं, इसलिए हमारे आचरण के कई आयाम उनका हित साधते हैं जो अनुवांशिक रूप से हमारे साथ जुड़े होते हैं। इस पशु-प्रवृत्ति से छुटकारा पाना आसान नहीं है। फलस्वरूप हम समानता के सिद्धांत को ठुकरा देते हैं। बेल्लो इसको रेखांकित करने के लिए पूरे मानव इतिहास का पूरा विस्तृत सर्वेक्षण प्रस्तुत कर कहते हैं कि हर युग में परिवारवाद हावी रहा है। नेपोलियन बोनापार्त हों या रोथ्साचाइल्ड, परिवारवाद का दबदबा स्पष्ट दिखता है। अमेरिका के केनेडी, बुश या फिर अलगोर परिवारों का अध्ययन भी इसकी पुष्टि करता है। वे बताते हैं कि जॉर्ज वाशिंगटन, जेफरसन और एडम्स को बड़े ही कठिन अंतर्द्वंद से गुज़रना पड़ा क्योंकि एक ओर सगे-संबंधियों का दबदबा था तो दूसरी ओर नवजात गणतंत्र के आधारभूत सिद्धांत थे।

बेल्लो ने पारिवारिक रिश्तों के फैलाव को 'नव भाई-भतीजावाद' या 'नव परिवारवाद' का नाम दिया है। राजनीति और व्यवस्था ही नहीं बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी इसका दबदबा बढ़ता जा रहा है। मनोरंजन, कला और खेलकूद के क्षेत्र में भी इसका वर्चस्व दिखता है। 1920 और 1930 के दशक के दौरान जिन लोगों ने अमरीकी सिने उद्योग का निर्माण किया उन्होंने पारिवारिक संबंधों को अहमियत दी। 1960 और 1970 के दशक में जेन और पीटर फोंडा, तामुम ओनील, माइकेल डुग्लस, सैल्ली फिल्ड और सिस्सी स्पैसेक जैसे कलाकार अपने पारिवारिक संबंधों के कारण ही चमके। अमेरीकी टेलिविजन और संगीत में बहुत कुछ यही बात देखने में आती है।

भारत के कपूर परिवार और बच्चन परिवार के विषय में सब जानते हैं। पारिवारिक संबंधों के कारण न सिर्फ उचित माहौल मिलता है, बल्कि पनपने के लिए सही परिस्थितियाँ प्राप्त होती हैं। अमेरिका हो या भारत या कोई अन्य देश, साहित्य, अध्यापन, वकालत और डॉक्टरी के क्षेत्र में हम परिवारवाद का दबदबा देख सकते हैं। उत्तर कोरिया जैसे देश के 'महान नेता' और 'प्रिय नेता' के रिश्तों को सब जानते हैं। जहाँ कुछ अर्थशास्त्री परिवारवाद को व्यावसायिक अकुशलता के लिए जिम्मेदार बताते हैं, वहीं कई अन्य लोग उसे फायदेमंद मानते हैं क्योंकि वेतन भोगी प्रबंधकों की तुलना में परिवार से जुड़े प्रबंधक आमतौर से फर्म के प्रति अधिक समर्पित होते हैं। इतना ही नहीं, संतान या परिवार का मोह बचत करने और अपने बाद उनको सुखी बनाने की लालसा अधिक जायदाद अर्जित करने के लिए प्रेरित करती है। बेल्लो का मानना है कि परिवारवाद रहे मगर उसे जनतांत्रिक व्यवस्था के घेरे में रखा जाए। उसकी खूबियों के कारण ही अमेरिका के 95 प्रतिशत व्यवसाय परिवारवाद पद आधारित हैं। बेल्लो की पुस्तक पर इस संदर्भ में चर्चा होनी चाहिए। इस विषय पर शोध कार्य आवश्यक है।

एम-112, साकेत, नई दिल्ली-17

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

With Best Complements From :

Hindalco Industries Ltd.

(India's Largest Producer of Quality Aluminium)

ADITYA BIRLA
HINDALCO

P.O. Renukoot, Distt. Sonbhadra, U.P., Pin–231 217, Ph. : 91–5446–52077–80,
Fax : 52427, 52107, E-Mail : hindalco.rkt@adityabirla.com

KarmAA CONSULTANTS

Architects ■ Consulting Engineers ■ Project Managers

We Provide following Engineering Services:

1. Architectural
2. Civil Engineering
3. Structural Engineering
4. Plumbing engineering
5. Electrical Engineering
6. Mechanical Utilities, Piping and Processing engineering
7. HVAC Engineering
8. Fire Protection, Safety and Security Systems
9. Project Management

We Offer Complete Consultancy Services under one roof in the fields of;

Architectural,
Civil & Structural Engineering,
Planning,
Process,
Utilities,
Electrical,
Mechanical,
Refrigeration,
Air-conditioning,
Piping,
Telecommunication,
Fire Alarm System &
Environmental Systems

Office: 601-A, Sixth Floor, Neelyog Square, Opp. Ghatkopar Rly. Station, R.B. Mehta Marg, Ghatkopar (East),
Mumbai - 400 077: Tel. No.: 022 - 21025352
Email : info@karmaaconsultants.com Website : www.karmaaconsultants.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे ऊपर हिमाचल

बी.पी.एल परिवारों की स्वास्थ्य सुरक्षा

हिमाचल प्रदेश सरकार की महत्वपूर्ण योजनाएं

1. अप्रैल 2010 से सभी 12 जिलों में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना कार्यन्वित।
2. 2 लाख 98 हजार बी.पी.एल परिवारों का प्रतिवर्ष 30 हजार रुपये का स्वास्थ्य बीमा। कोई प्रीमियम देय नहीं।
3. गम्भीर बीमारी के उपचार के लिए 1.75 लाख रुपये तक की स्वास्थ्य बीमा सुरक्षा।
4. ऐसे सभी परिवारों को 38 प्रकार की दवाइयों का मुफ्त वितरण ।
5. राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अन्तर्गत सर्वाधिक पंजीकरण के लिए हिमाचल को राष्ट्रीय पुरस्कार।
6. 2 अक्तूबर, 2010 से ऐसे परिवारों के लिए 'अटल स्वास्थ्य सेवा' के अन्तर्गत मुफ्त एम्बुलेंस सेवा मिलेगी।

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सृजन स्मरण

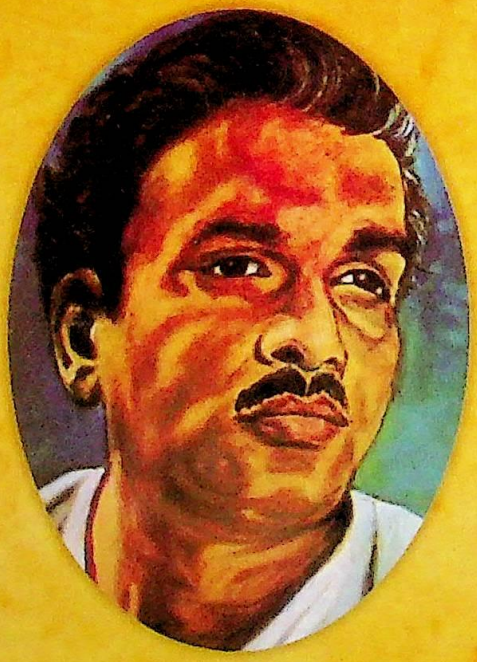

शक्ति अगर सीमित है तो हर चीज़ अशक्त भी है,
भुजाएँ अगर छोटी हैं, तो सागर भी सिमटा हुआ है,
सामर्थ्य केवल इच्छा का दूसरा नाम है,
जीवन और मृत्यु के बीच जो भूमि है
वह नियति की नहीं मेरी है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
(1927-1983)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित तथा 28, एम.आई.जी., अवन्तिका-।, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुँवरपाल सिंह
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिसम्बर, 2010 ■ बीस रुपये

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

मजाज़ 'लखनवी' पर विशेष सामग्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

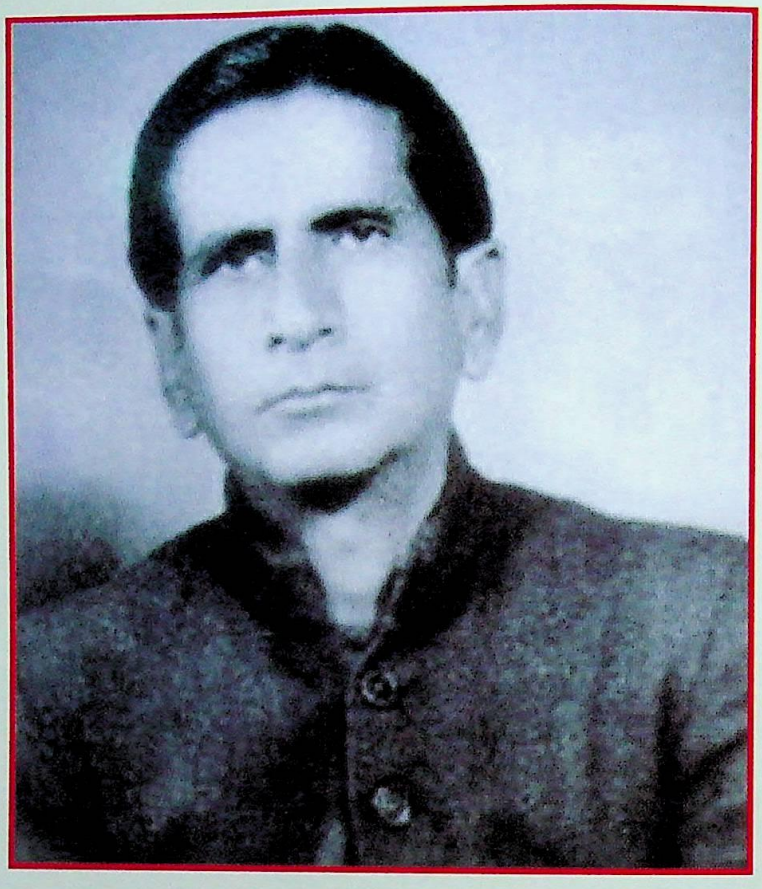

मजाज़ 'लखनवी'

19 अक्टूबर, 1911–5 दिसम्बर, 1955

हुस्न को बेहिजाब होना था
शौक़ को कामयाब होना था

हिज्र में कैफ़-ए-इज़्तिराब न पूछो
ख़ून-ए-दिल भी शराब होना था।

तेरे जलवों में घिर गया आख़िर
ज़र्रे को आफ़ताब होना था।

कुछ तुम्हारी निगाह काफ़िर थी
कुछ मुझे भी ख़राब होना था।

रात तारों का टूटना भी मजाज़
बाइ'स - ए - इज़्तिराब होना था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
विभूति नारायण राय

सम्पादक
नमिता सिंह

सह-सम्पादक
□ अजय बिसारिया □ राजीवलोचन नाथ शुक्ल

विशेष संपादकीय सहयोग : प्रदीप सक्सेना

प्रबन्ध सम्पादक : राजीव श्रीवास्तव
शब्दांकन : बिसारत अली
रेखांकन : राजेन्द्र परदेसी, लखनऊ
मुख पृष्ठ : इंसेट चित्र : मजाज़ 'लखनवी'

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

वर्ष 26 □ दिसंबर, 2010

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 • डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63

सम्पादकीय कार्यालय
28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001
टैलीफैक्स : 0571-2742038, 94122-72762, 9412501114

Web. : www.khabarexpress.com
Email : vartmansahitya@yahoo.com / vartmansahitya@gmail.com

सहयोग राशि : साधारण अंक : 20/-; □ वार्षिक : 230/-; □ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 300/- □ आजीवन : 2000/- □ विदेशों में साधारण अंक : 4 डॉलर; वार्षिक : 60 डॉलर।

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/ड्राफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से किए जाएँगे तथा सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँगे। केवल लोकल चैक ही स्वीकार किये जायेंगे।)

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एमआईजी, अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

इस अंक में

Central Library Gurukul Kangri University Haridwar-249404

पाठक मंच/2
अपनी बात/5
स्मरण : कन्हैया लाल नंदन /यश मालवीय/7

मजाज़ : जन्म शताब्दी के अवसर पर
मजाज़ /सिराज अजमली/9
प्रगतिशील शायर : मजाज़/विश्वनाथ त्रिपाठी/13
मजाज़ की ज़िंदगी का एक वरक/मुईन अहसन जज़्बी/17
मजाज़ : रूमानियत का शहीद /प्रो0 आले अहमद सुरूर/22
मजाज़ की नज़्म 'आवारा' : एक विश्लेषण/अली अहमद फातमी/26
मजाज़ की शायरी : चयन/30
मजाज़ : फ़ासीवाद के विरुद्ध एक बयान/34

आख़िरी पन्ना
बाज़ार और स्वतंत्रता एवं शांति/डा0 गिरीश मिश्र/79

कहानी
हरिचरन की माया/रूप लाल बेदिया/35
सूर्या/इंदु बाली/42
इन्कलाब/शेली खत्री/47
अन्धी दौड़/डा0 गोपाल नारायण आवटे/52
कठोर स्वप्न/सनत कुमार जैन/54
नव जीवन/एहसान हसन/57

उपन्यास अंश : बसेरा/इंदिरा राय/66

कविताएँ
कविताएँ : हरमहेन्द्र सिंह बेदी/16
राजकुमार कुंभज की आठ कविताएँ/59
कविताएँ सुरेश नारायण कुसूंबीवाल/61
दूर्वा पर ओस/राजेन्द्र वर्मा/63
कविताएँ : राकेश कुमार 'दिवाकर'/64
कविताएँ : किरण अग्रवाल/65
कविता : औरत /सुरैया खान/68

गज़लें :
नित्यानंद तिवारी की दो ग़ज़लें/8
ज़हीर कुरेशी की दो ग़ज़लें/12
राम मेश्राम की चार ग़ज़लें/69
अशोक अंजुम की चार ग़ज़लें/70
भगवानदास जैन की ग़ज़लें/71

लघु कथाएँ
जनहित / दूनी हैसियत/आलोक कुमार सातपुते/41
टैलेण्ट हन्ट/आलोक कुमार सातपुते/62

पुस्तक समीक्षा
सर सय्यद अहमद खाँ की ज़िंदगी..../(तस्नीम सुहेल)/ पंकज पराशर/72
कैलाश झा 'किंकर' का ग़ज़ल संग्रह/शब्बीर हसन/73
असुंदर यात्रा के सुंदर संस्मरण/(जितेन्द्र श्रीवास्तव)/ अश्विनी कुमार शुक्ल/74

सांस्कृतिक समाचार/76

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठक मंच

अब आपको क्या लिखूँ, क्या न लिखूँ ? बात ये है कि 76 वर्षों की आयु में मैं पुनः युवा हो गया। कारण कि वर्तमान साहित्य-सित0 10 के अंतिम पृष्ठ के अंतिम भाग में पूज्य डा0 रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव 'परिचयदास' द्वारा लिखित 'आज के समय की नौटंकी'-अंश पढ़ा। म0प्र0 के इन्दौर ज़िले की सैन्य छावनी महू में मैं बाल्य व युवा काल में नौटंकी में भाग लेता था। पूज्य पंडित जी, नत्थाराम जी गौड़ की शैली में ही यहाँ नौटंकी होती थी। पीरू उस्ताद नगाड़ा बजाते-बजाते हाथों की डंडी हवा में उछालते व सम आते ही पकड़कर नगाड़े पर चोट करते। क्लारनट मोईउद्दीन खाँ बजाते, बहरे-तब्बील की लंबी, लंबी ताने लेकर गाते। विद्युन के अभाव में पेक्ट्रोमैक्स जलाकर उनके सामने रंगीन जेलेटिन पेपर लगाकर रंगों का प्रभाव उत्पन्न करते, ध्वनि विस्तारक यंत्र के बिना भी अंतिम छोर के व्यक्ति के कानों तक अपनी गायकी पहुँचाते थे। भगत पूरनमल की राजा हरिश्चन्द्र, लैला-मजनू आदि नौटंकी सारी रात चलती थीं। आप इस विधा पर एक पृथक से विशेषांक प्रकाशित करने की कृपा करें तो मुझ जैसे पर आपकी कृपा होगी, जो आज जीवित है। आने वाली पीढ़ी भी आपकी आभारी रहेगी। आगे आपकी व्यवस्था जैसी भी हो। वर्तमान साहित्य का प्रत्येक अंक पढ़ता हूँ। साथ ही शताब्दी विशेषांक भी पढ़े हैं। आजकल राजस्थान की यात्रा पर हूँ। सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित श्री शंकर महाविद्यालय में निःशुल्क शिक्षा दे रहा हूँ। पुनः नौटंकी विधा के पुनरुत्थान के लिए आपको व प्रिय भाई डा0 रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव जी को बधाई।

पंडित ओमप्रकाश शर्मा भारद्वाज, सीकर

...और फिर एक दिन अन्न उगाने वाले हाथ अपनी नयी भूख की कहानी लिखने को तैयार हों... वर्तमान साहित्य अक्टूबर, 2010 अंक में बंगाल के भीषण अकाल से जोड़ते हुए आपका मर्म स्पर्शी संपादकीय पढ़ा। इतिहास के काले पन्नों को स्मरण करने के लिए साधुवाद। आज यही चरित्र दुहराया जा रहा है, पूरे देश में। छत्तीसगढ़ इससे अछूता नहीं है। राजधानी रायपुर के पास नया रायपुर बनकर तैयार हो रहा है। जिनकी जमीन जा चुकी है, वे भूख की कहानी लिखने को तैयार हो रहे हैं। कहानी लिखेंगे या फिर आत्महत्या...। कामनवेल्थ गेम्स के बहाने अरबों का खेल हो चुका है। सारी दुनिया के सामने हमारे भ्रष्ट आचरण का जो पवित्र संदेश गया, उसकी अलग कहानी है। अत्यंत शर्म की बात तो यह है कि मात्र 60-65 वर्षों के अंतराल में ही हम अपने इतिहास की उस शर्मनाक घटना को भुला बैठे, जिसमें चावल-व्यापारियों के साथ ब्रिटिश हुकूमत के षड़यंत्र से बंगाल के साठ लाख नागरिक काल के गाल में समा गए। आज हम पदकों के पीछे दीवाने बने बैठे हैं। साठ लाख मौतों पर एक सौ एक पाठकों का वजन भारी पड़ रहा है।

अनुवादक मुकेश जी को बधाई, जिनके माध्यम से हावर्ड फास्ट के प्रसिद्ध उपन्यास 'प्लेज' का हिन्दी अनुवाद आपको उपलब्ध हुआ और आपने अपने दुख-दर्द को सजग पाठकों तक पहुँचाया। रवीन्द्र कुमार पाठक, मुशर्रफ अली व गिरीश मिश्र का आखिरी पन्ना, 'देवता के बाने में शैतान' सोच को दिशा देते हैं। इन लेखों के निहितार्थ को समझना जरूरी है। आम पाठक इन क्रूर सच्चाईयों को पढ़े जरूर, तभी एक मुकम्मल तस्वीर सामने आएगी। समीक्षा से अच्छी पुस्तकों की जानकारी मिल जाती है। कविता में जो पढ़ पाया उनमें सी-भास्कर राव, डा0 सुभाषराय व डा0 उत्तिमा केशरी ने प्रभावित किया। पत्रिका का मुखपृष्ठ आकर्षक है।

रवि श्रीवास्तव, भिलाईनगर-490006

पत्रिका का अक्टूबर अंक हाथ लगते ही, हमेशा की तरह संपादकीय पढ़ डाला। राजनीति-प्रायोजित बंगाल के अकाल का 'प्लेज' उपन्यास के माध्यम से विस्तृत विवरण पढ़कर शासन की संवेदनहीनता की पराकाष्ठा का बोध हुआ। अंग्रेज़ तो फिर भी विदेशी थे, लाभ कमाना उनका उद्देश्य था, परंतु उपभोक्तावाद ने हमारे राजनेताओं की जनपक्षधरता को भी कुंद कर दिया है। बूस बेकन जैसा व्यक्ति सच्चाई उजागर करने के अपराध में जेल में डाल दिया जाता है। यही राजनीति है। सनत कुमार की कहानी 'घर लौटने का समय' अत्यंत मनोवैज्ञानिक ढंग से, एकाकी जीवन जीने को अभिशप्त, एक-दूसरे से नितांत अपरिचित स्त्री और पुरुष के मनोभावों का चित्रण, सच्चाई को सतर्कता से छिपा ले जाने की चेष्टा का वर्णन अत्यंत सांकेतिक किन्तु स्पष्ट है। 'आत्महत्या', 'एग्रीमेन्ट', 'रियरव्यू', कहानियाँ अपने समय के दबाव में लिखी गई कहानियाँ हैं तथा बदलते सामाजिक परिदृश्य का बखूबी अंकन करती हैं। कविताएँ भी प्रभावी हैं। रवीन्द्र कुमार पाठक तथा मुशर्रफ अली क्रमशः हिन्दू एवं इस्लाम धर्म की विसंगतियों की पड़ताल मौलिक ढंग से करते हैं। शमशेर सिंह पर लिखे आलेख उनकी कवि दृष्टि पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। 'आभरानः भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज-व्यवस्था का राजवस्त्र' पढ़कर एक नई परंपरा से परिचित होने का अवसर मिला। अपने देश की सांस्कृतिक विविधता अद्भुत है। पुस्तक समीक्षा के अंतर्गत पुस्तकों का चयन महत्त्वपूर्ण है। अंत में 'डॉ0 राही मासूम रज़ा साहित्य सम्मान' से आपको सम्मानित कर संस्था ने स्वयं के प्रति आस्था जगाई है। वृहत्तर जन समुदाय के संघर्षों को सक्रियता प्रदान करने की आपकी नेतृत्वकारी भूमिका की स्वीकृति सम्मान के रूप में स्वागत योग्य है।... हेमिंग्वे को पढ़ने की इच्छा है।

विद्या सिंह, देहरादून-248001

'वर्तमान साहित्य' अक्टूबर, 2010। शैलेन्द्र चौहान का 'स्मरण' गहरे उतरा। शमशेर को जानने की वैचारिक-दृष्टि को और बल मिला। शमशेर के लेखन की सबसे बड़ी यह खासियत थी कि वे भारतीय मानसिकता के तहत सांस्कृतिक परंपरा और उनके निवेशों पर गंभीरता से विमर्श करते हैं जहाँ उन्हें मार्क्सवाद कदापि बाधित नहीं करता। मसलन शमशेर मार्क्सवाद की रटंतू प्रवृत्तियों से काफी दूर रहे क्योंकि उनकी चेतना जन से जुड़ी रही। वे इसके साथ ही प्रकृति की अद्भुत सृजन प्रक्रिया से प्रतिबद्ध थे। शकील साहेब का 'स्मरण' भी गौरतलब है। खासकर, शमशेर के कॉमरेड होने को लेकर और उन अनुभवों से जुटे जीवंत चरित्रों का जिक्र।

अजय तिवारी का लेख, इन विचारों की बुनियाद पर है कि आधुनिक समाज की जन-संस्कृति वास्तव में खेतिहर समाज की लोक-संस्कृति है। वे इस तथ्य पर विस्तार से विमर्श करते हैं।

अंक की कहानियाँ अच्छी लगीं। खासकर रजनीगुप्त और हेमिंग्वे की। अंक की प्रकाशित कविताएँ भी अपना प्रभाव बनाये रखती हैं। उनमें बलदेव वंशी की कविताएँ तो अनुकूल से प्रतिकूल होते बिंबों के साथ-साथ सहमति और असहमति की रेखाएँ खींचती हैं। डा0 उत्तिमा केशरी की कविता 'वोन्साई' जीवन से चूकी स्त्री-अस्तित्व को बड़े ही तीखे स्वरों में दर्ज करती है। तब सवाल उठता है—क्या स्त्री अस्तित्व का संकट अब भी जारी है?

स्त्री-विमर्श की रचनाएँ, विमर्श को विस्तार देते हैं जहाँ अलक दृष्टियों से वैचारिकता में शामिल होते हैं।

अरुण अभिषेक, पूर्णियाँ-854301

'वर्तमान साहित्य' के अंक बहुत अच्छे निकल रहे हैं। इस बार रवि श्रीवास्तव का आलेख बहुत अच्छा है। प्रत्येक अंक में एक-आध ही कोई वैचारिक लेख अवश्य दें। राजकिशोर राजन की कविता 'नीलकंठ' ने भी प्रभावित किया।

एकांत श्रीवास्तव, कोलकाता

'वर्तमान साहित्य' का सितंबर 2010 अंक बहुत अच्छा लगा। विशेष रूप से संपादकीय में डा0 विभूति नारायण राय के 'नया ज्ञानोदय' में प्रकाशित साक्षात्कार को विश्लेषित करते हुए उन्होंने जिस सार्थक बहस की संभावना उपलब्ध कराई है और स्त्री-विमर्श की दिशा पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए नारी आंदोलनों के भटकाव को जिस बेबाकी और समझदारी से रेखांकित किया है, वह इस अंक को नारी-सरोकारों के संदर्भ में ऐतिहासिक महत्व प्रदान कर गया। वस्तुस्थिति यही है कि यौन-संबंधों की स्वतंत्रता के संघर्ष तक स्त्री-मुक्ति के मुद्दे को सीमित कर देना, केवल और केवल मुक्त यौनाचार में नारी-स्वतंत्रता को खोजना और स्थापित कर देना है। यह असल में औरत को देह की हदबंदियों में रखने की ऐसी साजिश है जिसके तहत कोई भी, कभी भी उसकी देह का उपभोग कर सकता है। इन्कार पर उसे डरपोक, पुरानी व ख़ालिस घरेलू औरत कह कर, उस पर तरस-खाते हुए उसे हाशिए में धकेल कर स्वयं सुर्खियों में आ सकता है। वास्तव में पुरुष और महिला के बीच विशुद्ध मैत्री व बौद्धिक आदान-प्रदान की स्थिति कभी बनी ही नहीं।... पर उसका इससे भी घिनौना इस्तेमाल बाज़ार कर रहा है।... उसकी तस्वीर इत्र-फुलेल, तेल पर, गंदगी के ढेर पर, बिस्तर पर...। अदृश्य हाथ कठपुतलियों को नचा रहे हैं और भोली कठपुतलियाँ समझती हैं कि बाज़ार उन पर टिका है। योग्य समझी व मानी जानी औरत जब इस होने पर इतराते हुए इसका बखान करने लगे तो उसकी आँख में अँगुली डाल कर उसे चेता देना, उसके विरोध में होना कतई नहीं है।... 'भाषायी अस्मिता' लेख प्रभावी है। 'सावित्री नं0 3' तथा पापा मर चुके, कहानियाँ अच्छी लगीं। सलीम खाँ फरीद की ग़ज़लें बढ़िया हैं। 'पहाड़' तथा 'कविराज' कविताएँ बहुत अच्छी हैं। रचनाओं के सही चयन व समसामयिक विषयों पर आप के सटीक संपादकीयों से वर्तमान साहित्य पत्रिका, जन जागरण का सेतु भी बन रही है।

चन्द्ररेखा ढडवाल, धर्मशाला

'वर्तमान साहित्य' का सितंबर, 2010 अंक। पूरे अंक में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लेख डा0 रवि श्रीवास्तव का 'लुकाच एवं ब्रेख़्त : यथार्थवाद की समस्या' है। अब तक मैं रवि श्रीवास्तव के लेख डा0 शंभु गुप्त की तरह सुदीर्घ और जटिल समझकर छोड़ देता था। लेकिन इस बार मुझे अपनी राय बदलने के लिए मजबूर होना पड़ा। रवि श्रीवास्तव ने पहले लुकाच के तर्क बड़ी पुख्तगी से रखे। फिर उसी मजबूती से ब्रेख़्त का खंडन रखा। अंत में दोनों को अलगाने की बजाय एक दूसरे का पूरक व अविरोधी सिद्ध किया। प्रो0 रवि तक मेरी बधाई संप्रेषित करें।

हितेश व्यास, कोटा

'वर्तमान साहित्य' का सितंबर, 2010 अंक। प्रस्तुत अंक में दोनों संस्मरण रोचक एवं प्रासंगिक हैं। पाश्चात्य चिंतकों लूकाच एवं ब्रेख़्त पर केन्द्रित रवि श्रीवास्तव का सारगर्भित लेख अच्छा लगा। लेखक ने कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों को उद्घाटित किया है। राष्ट्रभाषा हिन्दी की गरिमा बढ़ाने वाले क्रमशः रहीम मियाँ, अब्दुल लतीफ एवं अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी के लेख विचारोत्तेजक एवं ज्ञानवर्धक हैं। यह अंक दो अहिन्दी भाषी साहित्यकारों अरविन्दाक्षन एवं बालशौरि रेड्डी के हिन्दी प्रेम एवं साहित्यिक योगदान को प्रस्तुत करने के लिए महत्वपूर्ण है। दोनों साहित्यकारों पर श्रमपूर्वक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख तैयार किया गया है। वह श्रम सार्थक है। राकेश भारतीय जी की कविता 'दिल्ली दर्शन' अच्छी लगी। समाज सेविका इरोम शर्मिला को समर्पित अंशु मालवीय की कविता प्रेरणास्पद है।

डा0 कृष्णगोपाल सिंह,
संविदा प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
अ0प्र0 सिंह वि0वि0, रीवा (म0प्र0)

'वर्तमान साहित्य' अंक अगस्त-2010 मिला। प्रभावी कलेवर से संपृक्त यह अंक भी चिंतनपरक रचनाओं से परिपूर्ण है। आपके संपादकीय का ज्वलंत मुद्दा 'खाप पंचायतों का कहर' पाठकों को विशेषतः उद्वेलित करता है। आपने विषय को वाजिब तरीके से ही सुलझाने का प्रयास किया है। आपके तर्क सर्वमान्य सार्थक हैं।

श्री विनोद शाही का श्रद्धेय जगदीशचन्द्र जी विषयक संस्मरण चिंतनीय है। सर्व श्री अब्दुल बिस्मिल्लाह, सुभाष गाताड़े एवं डा0 प्रभा दीक्षित के आलेख भी पठनीय एवं मननीय हैं। सुषमा मुनीन्द्र, अनवर सुहैल एवं अखिलेश श्रीवास्तव की कहानियां संवेदना एवं शिल्पकथ्य की दृष्टि से पाठकों को प्रभावित करने में सक्षम हैं।

समग्र अंक का संपादन लगन एवं निष्ठा का परिचायक है।

मदनमोहन उपेन्द्र, मथुरा

'वर्तमान साहित्य' से जुड़ना मेरे जीवन की उपलब्धि सा है, जिससे अपने आस-पास की घुटन में हरारत भरने की सोच को बल मिलता है। बहुत तमन्ना थी रू-ब-रू होकर आपकी वैचारिकता एवं व्यावहारिकता की तासीर से सराबोर हुआ जाए पर अचानक प्रो0 कुँवरपाल सिंह की अंतिम विदाई के दुखद समाचार ने पस्त कर दिया, लेकिन ऐसी शख्सियतें मर कर भी जीवंत रहती हैं।

'अपनी बात' निरंतर अपनी आवाज़ में 'समय संवाद' की आग भी समेटे हुए है। अगस्त, 2010 अंक की 'अपनी बात' में आपने खाप पंचायतों की तालिबानी प्रवृत्ति के ज्वलंत विषय को लिया। थोथी परंपराओं के नाम पर समाज में नारी जाति के प्रति अमानवीय व्यवहार पर बड़ी बेबाकी से सवाल उठाए हैं, कि किस तरह शासन तंत्र का लिजलिजापन भी इनके स्वरूप को दृढ़ता प्रदान करता है।

मई अंक में आपका संपादकीय पूर्णतः महिला आरक्षण बिल पर केन्द्रित था, जिसमें आपने वर्तमान संसद में महिलाओं की महज 10 प्रतिशत उपस्थिति के कारण 33 प्रतिशत महिला आरक्षण के पक्ष में आवाज़ बुलंद की थी और इस पर उठते विवाद में मुख्यतः उन दलों को दोषी करार दिया जो जाति आरक्षित क्षेत्रों से आए हैं। इस बिल के 14 सालों के लटकते इतिहास पर विचार विहंगम करे तो 1996 में देवीगौड़ा सरकार द्वारा इस प्रस्तुत बिल का प्रथम बार विरोध कांग्रेस-पार्टी द्वारा स्वयं ही किया गया था जबकि आज जाति आरक्षित दलों द्वारा विरोध महिला आरक्षण पर नहीं बल्कि इस महिला आरक्षण में जाति आधारित महिला आरक्षण की माँग का था। पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता के रहते आप महिला आरक्षण बिल की सार्थकता की पक्षधर हैं और इसमें जाति आधारित महिला आरक्षण का विरोध इसलिए जताया है कि संसद की कुल सीटों की 131 सीटें पहले से ही आरक्षित हैं। आपका अगस्त संपादकीय स्वयं उद्घाटित करता है कि आरक्षित जाति विशेष की महिलाएँ पुरुष वर्चस्व मानसिकता के साथ-साथ जाति वर्चस्व मानसिकता की दोहरी मार से उत्पीड़ित होती है। क्या उनका दोहन अब समानलिंगी (महिलाएँ) भी करेंगी।

अगर संसद की सीटों के आबंटन के अनुपात पर जाएँ तो 131 सीटें कहीं नहीं ठहरती। कुल जनसंख्या का 52 प्रतिशत ओबीसी, अनुसूचित जाति 15 प्रतिशत, जनजाति लगभग 7.5 प्रतिशत और अल्पसंख्यक लगभग 12 प्रतिशत यानि कुल जनसंख्या की लगभग 86 प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करने के लिए केवल 131 सीटें और 15 प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करने वालों के लिए कुल सीटें (यानि 542)-131 की सीटें।

इसी घपले को छुपाने के लिए वही लोग जाति आधारित जनगणना का विरोध कर रहे हैं जिन्होंने सदियों से इन्हें जातियों में बाँटा भी और इनकी भर्त्सना भी की। जाति आधारित महिला आरक्षण उनकी इसी भर्त्सनागत मनःस्थिति की द्योतक है। जाति विशेष के लोगों ने अपने विगत इतिहास के आधार पर जान लिया है कि चाहे वे किसी भी धर्म में परिवर्तित हो जाएँ, उनकी पहचान उनके पहले विशेष धर्म द्वारा स्थापित जाति से ही होगी। इसलिए आज वे जाति विषमता को ही हथियार स्वरूप प्रयोग कर अपने अधिकारों को पाना चाहते हैं तो विषमतारोपण करने वाले ही विरोध में सबसे आगे आ रहे हैं क्योंकि जनसंख्या के अनुपात के आधार पर न्याय की संभावनाएँ बनेंगी, जिसे वे अब स्वयं असमानता का प्रतीक बनाकर आड़े लाना चाहते हैं। आप क्या सोचती हैं? आपकी पैनी नज़र से मिर्चपुर का अति संवेदनशील मुद्दा भला कैसे छूट गया?

विनोद शाही द्वारा लिखित संस्मरण 'जगदीशचन्द्र और इतिहास के भीतर का सच' उनके लेखों की तरह विचारगर्भित और संश्लिष्ट है लेकिन लेखक संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराने के लिए बेहद शुक्रिया। इनके द्वारा संपादित पुस्तक 'जगदीशचन्द्र : एक रचनात्मक सफ़र' से हिन्दी साहित्य जगत में लेखक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझने की रिक्तता को विराम मिलेगा।

अब्दुल बिस्मिल्लाह जी के ज्ञानवर्धक लेख ने विशेष रूप से प्रभावित किया। टीकेन्द्र 'शाद' की कविता-'क़दमबोसी को मुंतज़िर है घाट के पत्थर, मगर आती नहीं यहाँ कोई पनिहारी' समाज के प्रत्येक क्षेत्र की अवस्था को उद्घाटित करती है। एक जागरुक नागरिक के मन को सुगबुगाती है और आग से लड़ने का मनोबल संजोने को उकसाती है।

'आखिरी पन्ना' आज के सफ़ेदपोशों का सच, सच्चाई से उगलता हुआ झूठ, को बेनकाब करता है।

डॉ0 नविला, पटियाला (पंजाब)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

अमरीकी राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा भारत आये और धूम मचाकर चले गये। लोगों को बहुत अच्छा लगा, जब उन्होंने 'नमस्ते' कहा, संसद के दोनों सदनों को संबोधित करते हुए 'बहुत धन्यवाद' कहा और अपने भाषण के अंत में 'जयहिन्द' भी कहा। उन्होंने पंचतंत्र का संदर्भ दिया, विवेकानंद और टैगोर का नाम लिया और कोलकाता, चाँदनी चौक और धरावी का ज़िक्र किया। हमारे कुछ लेखक और पत्रकार तीन दिवसीय अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की इस भारत यात्रा को भारत-अमरीकी शताब्दी की नयी शुरूआत कह रहे हैं।

सामान्य भारतीय जन विशेषकर नौजवानों का मानो अनिवार्य लक्ष्य बनता जा रहा है, अमरीका-प्रवास। उनको सपनों में अमरीका लुभाता है, ललचाता है, अपने पास बुलाता है। साहित्य, संगीत, कला, फैशन, शिक्षा और विचार, सभी क्षेत्रों में अमरीका उपस्थित है। अमरीकी संस्कृति धीरे-धीरे भारतीय विचार, जीवन पद्धति और जीवन-दर्शन को अपना स्वरूप प्रदान कर रही है। कुछ लोगों का सोचना है कि बड़ी संख्या में अमरीकी हिन्दुस्तानी भी वहाँ के लोगों की सोच, जीवन-पद्धति और वैचारिक दर्शन को प्रभावित कर रहे हैं। अमरीका में भारतीय योग-पद्धति की, खानपान और व्यंजनों की चर्चा आमतौर पर की जाती है। अमरीकी साहित्य में हिन्दुस्तानी चरित्र भी पात्रों के रूप में कहानी, उपन्यासों में दिखाई देते हैं। कहानी, उपन्यास में वातावरण निर्माण हेतु अपने आसपास से ही लेखक अपने पात्र और घटनाएँ उठाता है। देखना यह है कि इन हिन्दुस्तानी पात्रों की प्रस्तुति और उनका चरित्र-चित्रण किस रूप में होता है।

इसमें दो राय नहीं कि अमरीका और भारत के रिश्तों की कई पर्तें हैं। अमरीका-प्रवास सामान्य भारतीय जन का सपना है, विशेष रूप से मध्यवर्ग का। उच्च-वर्ग या विशिष्ट वर्ग जैसे अभिनेता, राजनेता, व्यापारी, उद्योगपति आदि जब कोई काम हुआ, कोई चांस बना, उठकर चले जाते हैं। वैसे ही जैसे काम पड़ने पर दिल्ली, मुंबई अथवा कलकत्ता जाते हैं। इस विशिष्ट वर्ग की छुट्टियाँ और सैर-सपाटे भी दुनिया के दूसरे शहरों में होते हैं। मध्यवर्ग का नौजवान अपनी योग्यता, अपनी शिक्षा के बलबूते अमरीका जाने का रास्ता टटोलता है। वह मेहनत करता है, व्यापार प्रबंधन, चिकित्सा, इंजीनियरिंग अथवा सूचना टैक्नोलॉजी की उसकी उच्च शिक्षा उसे सपने देती है और सपने साकार करने के लिये उसको हौसला अपनी योग्यता के बल पर मिलता है। हमारे मध्यवर्ग के ये नौजवान कड़ी मेहनत करते हैं, अमरीका जाकर भी वहाँ के लोगों के मुकाबिले कहीं कम वेतनमान पर काम करते हैं। विज्ञान और टेक्नोलॉजी के क्षेत्र हों, चिकित्सा हो, प्रबंधन हो, भारत के मध्य वर्गीय नौजवान अमरीकी व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं और अमरीकी राष्ट्र के विकास में भारी योगदान दे रहे हैं।

अमरीकी अर्थ व्यवस्था आज भी संकट के दौर से गुज़र रही है। एक रिपोर्ट के अनुसार 2009 में 14.7 प्रतिशत परिवार खाद्य असुरक्षा से जूझते हुए भुखमरी की कगार पर चिन्हित किये गये। इसी तारतम्य में बढ़ती बेरोज़गारी गंभीर समस्या के रूप में वहाँ व्यवस्था में संकट पैदा कर रही है। बेरोजगारी के चलते बराक ओबामा बड़ी कंपनियों को, जो सेवा क्षेत्र में विकासशील देशों में आउटसोर्सिंग करती हैं, कई बार चेतावनी दे चुके हैं। उन्होंने इन कंपनियों को ये सेवाएँ अपने देश में लाने के लिये और आउटसोर्सिंग बंद करने के लिये करों में बड़ी राहत देने का भी ऐलान किया है। देखना यह है कि इन ऐलानों का कितना असर होता है। व्यापारी, कहीं का भी हो, व्यापार करता है, धर्मखाता नहीं खोलता। उसे जहाँ सस्ता श्रम मिलेगा, वहाँ जायेगा।

इसीलिये राष्ट्रपति ओबामा, इन समस्याओं के चलते अपने मुल्क में संकट का सामना कर रहे हैं। हाल ही हुए उपचुनावों में रिपब्लिकन पार्टी की ताकत बढ़ी है और बराक ओबामा की लोकप्रियता का ग्राफ़ नीचे आया है। उनकी भारत यात्रा का मुख्य एजेंडा नये व्यापारिक रिश्ते बनाना तो था, साथ ही अमरीकियों के लिये पचास हज़ार नौकरियों को सुनिश्चित करना उनकी बड़ी सफलता रही।

उनके साथ आये ढाई सौ व्यापारिक और औद्योगिक संस्थाओं के लोगों के व्यापारिक हित भी इसी भारतीय जनता के बीच से पूरे होने हैं। भारतीय मध्यवर्ग एक चरागाह के रूप में देशी, विदेशी कंपनियों को ललचाता है, जहाँ उपभोक्तावादी उत्पादों की बड़ी खपत है। आज कई बड़ी एजेंसियां और संस्थान बड़े पैमाने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मध्यवर्ग पर शोधपूर्ण सर्वे करा रही हैं और न केवल शहरी मध्यवर्ग बल्कि ग्रामीण क्षेत्र में भी विभिन्न उपभोक्ता उत्पादों की खपत और उपयोग के लिये सामाजिक, आर्थिक और परंपरागत प्रवृत्तियों की पड़ताल कर रही हैं। दिलचस्प है कि भारतीय मध्यवर्ग के वर्तमान आकार और विस्तार पर अलग-अलग माध्यमों से हुए सर्वे के आंकड़े अलग-अलग हैं। लेकिन यह भी सच है कि भारतीय जनसंख्या का सबसे बड़ा हिस्सा मध्यवर्ग नहीं है, जैसा अक्सर कहा जाता है। आज की स्थितियों में मध्यवर्ग कुल जनसंख्या के तीस प्रतिशत से ज़्यादा नहीं है। इसके साथ ही ग़रीबी की रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या भी याद आती है जिसका प्रतिशत (तेंदुलकर कमेटी की गणना के अनुसार) 36-37 प्रतिशत आंका गया है।

आज उपभोक्ता बाज़ार केवल शहरी मध्यवर्ग ही नहीं बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी अपनी पैठ सफलतापूर्वक बना रहा है। शहरी मध्यवर्ग आज बेहद सुविधाजनक स्थितियों में है। उसका आर्थिक विकास तेजी से हुआ है और 1985 से अब तक औसत आमदनी दुगनी हो गई और अगले बीस सालों में तीन गुना बढ़ने की राह पर है। मुझे याद है, 1970 में हमारे कॉलेज में एक वरिष्ठ प्रवक्ता ने हसरत भरे शब्दों में कहा था कि क्या हमारे जीते जी कभी हमारा वेतनमान तीन अंकों से बढ़कर चार अंकों तक जा पायेगा ? उनकी मित्र ने तपाक से जवाव दिया था—अगले जनम में। अब इसी जनम में कॉलेज और विश्वविद्यालय के अध्यापक 40-50 हज़ार से शुरू करके लाख-सवा लाख तक वेतन ले रहे हैं। वेतनवृद्धि का यही नमूना दूसरे क्षेत्रों में भी है। इसलिये अनुमान है कि 2025 तक भारत दुनिया का पांचवा सबसे बड़ा उपभोक्ता बाजार बनेगा। ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता बाज़ार उतना विकसित नहीं है लेकिन तेज़ी से होते शहरीकरण से इस ओर भी आगे बढ़ने की प्रवृत्ति है।

आज के वैश्विक परिदृश्य में, जहाँ अब अमरीका का आर्थिक आधिपत्य समाप्त हो रहा है, वहीं अनेक नये राष्ट्र नेतृत्व के लिये अगली पंक्ति में हैं। तेजी से फैलते भारतीय मध्य वर्ग के बलबूते उपभोक्ता बाज़ार का भी उसी अनुपात में विस्तार बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिये जगह बना रहा है और साथ ही साथ अमरीका यहाँ अपने नौजवानों के लिये रोज़गार तलाश रहा है।

इस फलते-फूलते मध्यवर्ग में अगर हम ग़रीबी की रेखा से नीचे बसर करने वाले समाज के लिये, ज़िंदगी के लिये जद्दोज़हद करती भूखी जनसंख्या के लिये संवेदना की तलाश करें तो यह आज की परिस्थितियों में बेमानी होगा। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह गहरा अंतर्विरोध है। वर्ल्ड बैंक के अनुसार दुनिया के कुल विपन्नों का एक तिहाई हिन्दुस्तान में वास करता है। कुल ग़रीबी की रेखा से नीचे रहने वाली आबादी का 75 प्रतिशत गाँवों में है। इनकी आमदनी का अधिकतर हिस्सा भोजन में ही चला जाता है। इसके बावजूद मोबाइल, टेलीविजन जैसी चीजें अब ग्रामीण मध्यवर्ग में भी उसी प्रकार मौजूद हैं जैसी शहरों में हैं। निकट भविष्य में दूर संचार माध्यमों से संबंधित उपकरण, विशेष रूप से टेलीकम्युनिकेशन, स्वास्थ्य, मनोरंजन और सर्विस सेक्टर इसी रूप में फलेंगे-फूलेंगे।

यह अपने आप में सुखद है कि मध्यवर्ग की तनख़्वाहें बेतहाशा बढ़ी हैं। लेकिन मध्यवर्ग की संवेदना भोथरी हो रही है। उसके अब कोई काम नहीं रुकेंगे। जिस उच्च वर्गीय जीवन की उन्होंने कल्पना की थी, वह उनके जीवन काल में ही साकार हो गयी। इसलिये सामूहिकता नष्ट हो रही है। सामाजिक मूल्य और विचारों में खोखलापन है। मुहल्ले पड़ोस में अब अजनबीपन का माहौल पसर रहा है। अब साहित्यिक-सांस्कृतिक स्तर पर कोई आन्दोलन, कोई मुहिम नहीं। अब कोई सामाजिक चिंताएँ सार्वजनिक नहीं होतीं।

0 0 0

जन्म शती के अवसर पर प्रगतिशील परंपरा के एक प्रमुख शायर मजाज़ लखनवी पर केंद्रित सामग्री इस अंक में दे रहे हैं। मजाज़ ने शायरी में क्रांतिकारी तेवरों को नये सौंदर्य के साथ प्रस्तुत किया। भाषा और भाव दोनों स्तरों पर उर्दू काव्य को उन्होंने नया स्वरूप दिया, नई ऊँचाइयां प्रदान कीं। अफ़सोस है तो यह कि संभावनापूर्ण, बेहद प्रतिभाशाली, यह शायर बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सका। ऐसे में लगता है कि गहन वैचारिकता और भरपूर रचनात्मकता के होते हुए भी अनुशासनहीन जीवन पद्धति और संकल्पहीनता सारी प्रतिभा को नष्ट कर डालती है। मजाज़ ने अपनी अल्प आयु में जो भी लिखा वह भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है।

मजाज़ पर केंद्रित खंड हमारे सहयोगी प्रो0 अली अहमद फातमी (विभागाध्यक्ष, उर्दू विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) की मदद के बिना तैयार नहीं हो सकता था। हम प्रो0 फ़ातमी के अमूल्य और सदैव तत्पर सहयोग के लिये बहुत आभारी हैं। अपरिहार्य कारणों से उनके द्वारा प्रदत्त कुछ अन्य सामग्री का हम उपयोग नहीं कर पाये, जिसका हमें खेद है। इसके अतिरिक्त डा0 महताब हैदर नक़वी, डा0 परवेज़ फातिमा और डा0 नाज़िश बेगम के अतिरिक्त फ़ातिमा ज़ेहरा और गुलाम फ़रीद साबरी ने भी हमेशा की तरह हमें सहयोग दिया। उनका भी संपादक मंडल आभारी है। प्रो0 विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रो0 अली अहमद फातमी और डा0 सिराज़ अजमली के अतिरिक्त प्रगतिशील लेखन परंपरा के सुप्रसिद्ध शायर मुइन अहसन जज़्बी और आलोचक प्रो0 आले अहमद सुरूर के लेख हमें असरारुल हक़ मजाज़ 'लखनवी' के व्यक्तित्व और काव्य की ऊँचाइयों को समझने में मदद करते हैं।

नीलाभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बहुमुखी रचनात्मकता का नेपथ्य में जाना

यश मालवीय

जानता हूँ कि पूजा बस पूजा होती है
खण्डित अस्तित्व की हो
या समूचे व्यक्तित्व की
वह निश्चय ही होगी कुबूल।
लेकिन इसे आप चाहे मानें मेरी भूल
यह ज़रूर पूछ लेना चाहूँगा मूर्ति से,
कि कैसा महसूस होता है देखकर
मेरे कटे हुए हाथों में पूजा का फूल

भरी इमरजेन्सी में मेरे किशोर मन ने फूलबाग कानपुर के एक कवि सम्मेलन में नंदन जी को पहली बार सुना था। आज उनके न रहने पर सबसे पहले उनकी वही छवि सामने आयी, मंच से संवाद करती हुई सी। मंच संचालन कर रहे थे कवि पिता उमाकांत मालवीय। वाचिक परंपरा की कविताओं और कवियों से सजा अद्‌भुत मंच था वह। भवानी प्रसाद मिश्र, मुकुट बिहारी सरोज, रमेश रंजक, श्याम नारायण पांडेय, बाबा नागार्जुन और रामस्वरूप सिंदूर जैसे कवि मंच पर थे। वहीं नंदन जी ने नया-नया छपकर आया अपना कविता संग्रह 'मुझे मालूम है', पिता जी को दिया था। वह संग्रह इस वक़्त मेरे सामने है, उनका लिखा हुआ जैसे बोल रहा है, एक इलाहाबादी चौचक को, दूसरे इलाहाबादी चौचक की ओर से। सचमुच! इलाहाबाद उनकी साँसों में अंत तक रचा-बसा रहा।

अभी लाल किले वाले कवि सम्मेलन में जनवरी में उनसे अंतिम बार भेंट हुई थी। सम्मेलन की अध्यक्षता वही कर रहे थे। बड़े प्यार से पूछा था, 'मेरा इलाहाबाद कैसा है?' इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ज्ञानरंजन और दूधनाथ सिंह उनके सहपाठी थे, पर इनका साहित्यिक आतंक उन्होंने कभी अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया, अलबत्ता रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी और जगदीश गुप्त को आजीवन वह अपना गुरु मानते रहे।

'मुझे मालूम है' की समीक्षा लिखते हुए जब पिता जी ने लिख दिया था कि नंदन को कुछ नहीं मालूम, तब भी वह नाराज़ नहीं हुए थे और मिलने पर ठहाका लगाते हुए बोले थे, 'भाई! मुझे कुछ नहीं मालूम, पर तुम तो सर्वज्ञ हो।'

'गुजरा कहाँ कहाँ से', उनकी आत्म कथात्मक पुस्तक है जिसमें वह पुराने दिनों को याद करते हुए परिमल की उठापटक वाली गोष्ठियों को भी बड़े मन से रेखांकित करते हैं। कहते थे कि 'परिमल' ने ही असहमतियाँ सिर माथे लेने के साहित्यिक संस्कार दिए थे, अन्यथा मैं कानपुर से आया था और आलोचना सुनकर हत्थे से ही उखड़ जाया करता था।

उन पर एक मूल्यांकनपरक और संस्मरणात्मक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, 'बैचेन रूह का परिन्दा'। मैंने उसमें एक संस्मरण लिखा था। आख़िरी पैराग्राफ़ में प्रवाह में लिखते-लिखते यह भी लिख दिया था कि उन्हें राम की नहीं रामकथा की आयु मिले, यही मेरी कामना है। यह पढ़कर उन्होंने जब फ़ोन किया तो फ़ोन पर ही उनका स्वर डबडबा गया था, कंठावरोध हो गया था। नंदन जी संबंधों को जीते थे। कह सकता हूँ कि भारती जी के बाद वह मेरे सबसे प्रिय संपादक रहे। 'पराग' के उनके संपादन काल के दिनों में जब उन्हें अपनी बाल कविताएँ भेजा करता था तो हफ़्ते भर के भीतर ही उनका अस्वीकृति पत्र आ जाया करता था। अस्वीकृति पत्र पर लाल रंग की पट्‌टी बनी रहती थी जबकि स्वीकृति पत्र पर हरे रंग की पट्‌टी झिलमिलाती थी। एक बार हरे रंग की पट्‌टी वाला पत्र जब मिला तो मैं झूम उठा था। मार्जिन पर उन्होंने लिखा था, 'मैं अभी तक तुम्हारी कविताएँ इसीलिए अस्वीकृत कर दिया करता था क्योंकि उन पर तुम्हारे पिता की छाया हुआ करती थी। यह कविता इस तरह की किसी भी छाया से मुक्त है, इसलिए स्वीकृत कर रहा हूँ।'

एक बार जब वह 'पराग' और 'सारिका' के एक साथ संपादक थे, तो संचालन के क्रम में काव्य पाठ के लिए आमंत्रित करते हुए संचालक ने कह दिया था, ''मैं अब एक ऐसे कवि को रचना-पाठ के लिए आवाज़ दे रहा हूँ, पत्रिकाएँ ही जिसका जीवन हैं। दो पत्रिकाओं का संपादक होते हुए भी एक पत्रिका 'नंदन' का नाम ही उसका अपना नाम भी है।'' पत्रिकाओं से जुड़े रहने की उनमें हमेशा ललक थी।

वास्तव में साहित्यिक पत्रकारिता को उन्होंने एक नया आयाम दिया। यह सब शायद 'धर्मयुग' और धर्मवीर भारती के संस्कार के कारण संभव हो पाया। 'सारिका' के उनके संपादन में निकले 'चेखव', 'गोर्की', 'हेमिंग्वे', 'दोस्तोव्यस्की', 'मंटो', 'यशपाल', 'ताल्स्ताय', 'प्रेमचंद' वाले यादगार अंक आज भी मेरी व्यक्तिगत लाइब्रेरी की धरोहर हैं। प्रेमकथा वाले उपहार अंक हों या स्त्री-पुरुष

In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंधों वाली कहानियों पर केंद्रित अंक, आज भी अपठनीय पत्रिकाओं के प्रकाशन वाले दौर में प्रासंगिक लगते हैं। 'सण्डे मेल' को तो उन्होंने ऐतिहासिक ऊँचाइयाँ दी थीं। 'ज़रिया-नज़रिया' शीर्षक से प्रकाशित उनका नियमित स्तंभ भी हर सहृदय पाठक के मन को छूता था। वह हर बार 'मेरी पसंद' शीर्षक से अपने मन की एक कविता दिया करते थे, कालांतर में 'बंजर में फूल' शीर्षक से उसका एक संचयन भी प्रकाशित हुआ। जिस कठिन समय में हिन्दी की गीत विधा लगभग हाशिए पर जा चुकी थी, उन्होंने साहित्य एकेडमी से 'श्रेष्ठ हिन्दी गीत संचयन' के संपादन की पहल की।

बच्चन जी की तरह वो भी मानते थे कि वो पहली कविता लिखे जिसे दस हज़ार काव्य पंक्तियां याद हों। गुलज़ार, निदा फाज़ली, बशीर बद्र आदि शायरों का सर्वोत्कृष्ट उन्होंने संयोजित, संपादित किया। हर विचारधारा का वह सम्मान करते थे। 'नवभारत टाइम्स' के संपादन काल में अटल बिहारी वाजपेयी, चन्द्रशेखर और विश्वनाथ प्रताप सिंह के विचारोत्तेजक इंटरव्यू आज भी याद आते हैं, पर वह प्रेमचंद पर यकीन करते थे और इसी आलोक में कि साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है, वह संपादन कर्म को सकारात्मक दिशाएँ देने का प्रयास करते थे। 'दिनमान' में राजनीति और समाज के साथ कला-संस्कृति का जो अप्रतिम समन्वयन उन्होंने किया था, वह लगभग चमत्कृत कर देने वाला है। 'गगनांचल' में आकर तो वह विशुद्ध साहित्यिक चेतना से लैस हो गए थे।

उनका न रहना एक बहुरंगी रचनात्मकता के नेपथ्य में जाने जैसा है। वह कभी-कभी तो पूरा का पूरा इन्द्रधनुष ही कागज पर उतार दिया करते थे। बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकारों के साथ प्रायः अन्याय हो जाया करता है, उनका कोई एक ज़रूरी पक्ष कम चर्चित हो पाता है। नंदन जी के साथ भी यही हुआ। उनका कवि, उनके संपादक की छाया में ही खोया सा रहा। वह बहुत अच्छे कवि थे, यह बात कवि सम्मेलनों में उन्हें सीधे सामने से सुनने वाले अच्छी तरह से जानते हैं। शायद इसी सार्थक काव्य दृष्टि के होने के कारण भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित 'अज्ञेय' संचयन का कुशल संपादन कर सके। वह अपने स्वास्थ्य और ज़िंदगी को लगातार चुनौती देते रहे और डायलिसिस पर होते हुए भी विश्व हिन्दी सम्मेलन में अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा आए थे। कविता, हिन्दी और साहित्य को प्यार करने वाले ऐसे अपने नंदन जी बहुत याद आएँगे।

'रामेश्वरम्'
ए-111 मेंहदौरी कालोनी, इलाहाबाद-211004

ग़ज़लें

नित्यानंद तिवारी

1

मुस्कुराहट लबों से जुदा हो गई
इस क़दर हो ख़फ़ा क्या ख़ता हो गई।

हम अँधेरों के जंगल में हैं आजकल
इन दिनों रोशनी लापता हो गई।

शर्म आती नहीं है किसी को यहाँ
अब की पीढ़ी बड़ी बेहया हो गई।

कुछ विदूषक सभाओं की रौनक हैं अब
शायरों की ज़रूरत हवा हो गई।

जिससे मतलब न था जिसको सोचा न था
देखते-देखते वो सदा हो गई।

कल मुझे उसकी यादों ने फिर से छुआ
और फिर रात भी ख़ुशनुमा हो गई।

उम्र भर हर तरह से सँभाला उसे
एक दिन ज़िंदगी बेवफ़ा हो गई।

2

जो सोच रहे हैं हम वो करके दिखाना है
अँधियार मिटे जिससे वो दीप जलाना है।

इक आग है सीने में तस्वीर बदलने की
तुम साथ ज़रा दे दो ये मुल्क सजाना है।

शौहरत के लिये यारो हम शे'र नहीं कहते
जो नींद में डूबे हैं उनको ही जगाना है।

उस मोड़ पे हैं अब हम कोई राह न सूझे है
ख़ुद को भी बचाना है रिश्ता भी निभाना है।

अहसास भुलाने में दो पल भी न लगते हैं
उम्मीद न रक्खो तुम ख़ुदगर्ज़ ज़माना है।

आर-64, सैक्टर-12
प्रताप विहार
ग़ाज़ियाबाद-201009

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मजाज़

सिराज अजमली

प्रगतिशील लेखक संघ पिछली शताब्दी का सबसे ताक़तवर साहित्यिक आंदोलन था। उस ने हिन्दुस्तानी समाज और हिन्दुस्तानी भाषाओं में साहित्य के माध्यम से इन्क़लाब लाने की कोशिश की। आज 2010 में हम इस आंदोलन के बारे में वस्तुपरक दृष्टिकोण अपना कर उसका जो भी मूल्याँकन करें लेकिन इस बात से तो इस आंदोलन का कड़ा से कड़ा आलोचक भी इन्कार नहीं करेगा कि स्वतंत्रता संग्राम के उत्कर्ष के दिनों में इस आंदोलन की भूमिका साहित्य और समाज में ग़ैर मामूली रही है।

इस साहित्यिक आंदोलन की सबसे बड़ी ख़ूबी यह थी कि इस से जुड़े हुए रचनाकार समाज के हीरो के तौर पर देखे जाते थे, उनके साथ मुहब्बत और इज़्ज़त का व्यवहार पूरा समाज करता था और जनता से उन साहित्यकारों का सीधा रिश्ता क़ायम था। ये प्रगतिशील आंदोलन का ऐसा कारनामा है कि जिसकी मिसाल न इससे पहले के दौर के साहित्यकारों के यहाँ मिलती है और न ही इसके बाद। प्रगतिशील आंदोलन से जुड़े साहित्यकारों का रिश्ता ख़ास और आम हर तरह के लोगों से था। वो एक ही समय में ग़रीबों, मज़दूरों और किसानों में पसंद किए जाते थे तो दूसरी तरफ़ आला तबक़ों और साहित्यिक व सामाजिक लिहाज़ से बड़े तबक़ों में भी पसंद किये जाते थे।

प्रगतिशील लेखक बड़ी साहित्यिक सभाओं और मुशायरों के साथ-साथ मज़दूरों और ट्रेड यूनियनों में भी सरगर्म होते थे। ऐसे नाम जो आज हमारे साहित्यिक इतिहास के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर हैं, उनमें शामिल थे जैसे सज्जाद ज़हीर, मुल्कराज आनंद, ज्योतिघोष, हीरेन मुखर्जी, सरदार जाफ़री, कृष्ण चन्द्र, मख़दूम मुहीउद्दीन, फ़ैज़, ज़ब्बी, मजाज़, मजरूह सुल्तानपुरी वग़ैरह। इनमें कोई बड़ा नाविल निगार है तो कोई शायर, कोई आलोचक है तो कोई मुक़र्रिर लेकिन सब आम हिन्दुस्तानी समाज और ज़िंदगी से इस तरह जुड़े हुए हैं कि जनता उन्हें अपने आपसे बहुत क़रीब महसूस करती है। पिछली दो तीन शताब्दियों में हिन्दुस्तान और ख़ासतौर पर उत्तरी हिन्दुस्तान में साहित्यकारों और शायरों की इतनी बड़ी तादाद का जनता से ऐसा संबंध प्रगतिशील आंदोलन के अलावा और कहीं नज़र नहीं आता।

ऐसे ही एक हरदिल अज़ीज़ शायर का नाम है असरारूल हक़ मजाज़। मजाज़ 19 अक्तूबर 1911 में रूदौली, ज़िला बाराबंकी में पैदा हुए। मजाज़ ने जिस ख़ानदान और जिस माहौल में आँख खोली वे अवध के चौधरियों का ख़ानदान और जागीरदारों का माहौल था। इस ख़ानदान की ज़मींदारियाँ रूदौली के आस पास के देहात में दूर-दूर तक फैली हुई थीं, जहाँ से इन घरानों के कारिन्दे धन वसूल करके लाते और चौधरियों के महलनुमा घरों में दौलत की रेल-पेल की वजह से ऐश के सामान उपलब्ध कराते। रूदौली क़स्बे के अधिकतर घरों में इन ज़मींदारों की वजह से ही ज़िंदगी की बहारें देखने को मिलतीं। तमाम मज़हबी रस्में और शादी-ग़मी के मौक़े पर सारे कार्यक्रम बड़ी धूमधाम से होते।

रूदौली के चौधरियों की जीवन शैली मजाज़ के बचपन में कैसी थी, इसका वर्णन रूदौली के ही एक चौधरी और उर्दू के अदीब मुहम्मद अली रूदौलवी के ख़ाके (रेखाचित्र) में उनकी बेटी ग़म अख़लाक़ ने 'चौधरी मुहम्मद अली रूदौलवी की ज़िंदगी' में ही लिखकर किया था। बेगम अख़लाक़ ने चौधरी साहब की जवानी का, जो मजाज़ का बचपन था, नक़्शा इस तरह खींचा है,

"जवानी में फूलों का, उम्दा कपड़ों का, बेहतरीन इत्र का बड़ा शौक़, जामेदार जामदानी की शेरवानी और अंगरखे पहनते थे। मुश्क और अगर वग़ैरह के क़ीमती इत्र इस्तेमाल करते थे। बेले-चमेली के फूलों का पूरा बिस्तर लगता था, जिस पर आराम फ़रमाते थे। हुक़्क़ा ऐसा पीते थे कि उसका मिस्ल शायद ही कहीं दिखाई दे।" (नुकूश-शख़्सियात नम्बर)

ऐसे माहौल में बचपन गुज़ारने वाला और बेहद लाड़-प्यार में परवरिश पाने वाला कितना नाजुक मिजाज़ और कितना हस्सास (संवेदनशील) हो जाएगा, इस का बस अंदाज़ा ही किया जा सकता है। इतने ज़्यादा लाड़-प्यार की एक वजह भी थी, वो ये कि मजाज़ से बड़ा एक बच्चा दो ढाई साल की उम्र में ख़त्म हो चुका था। दूसरी बात ये कि उस ज़माने की रस्में और ज़मींदारों के घरानों के अपने संस्कार ने भी मजाज़ की ज़िंदगी पर असर डाला। मजाज़ की बहन हमीदा सालिम लिखती हैं,

"मुहर्रम की सातवीं को फ़क़ीर बनते, दसवीं को पायक बनाए जाते, एक कान में बुंदा पड़ा हुआ था जो छः साल की उम्र में अजमेर ले जाकर उतारा गया। हर दुख बीमारी पर सदक़े उतरते, ख़ैरातें होतीं। नौ-दस साल के थे कि आरह सालह (18 वर्षीय) बड़े भाई का दरख़्त से गिरकर इन्तक़ाल हो गया। फिर क्या था, माँ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नानी दीवानावार उन को तमाम हवादिस व ख़तरात से बचाने की हर मुम्किन कोशिश में लग गईं। मजाल न थी कि अकेले घर से बाहर क़दम निकालें। हर वक़्त एक नौकर उनके साथ रहता था।... अब से कुछ ही साल पहले तक रोज़ाना रात को उनके सिरहाने दो आने रखे जाते जो सुबह ख़ैरात कर दिये जाते।" ("जग्गन भय्या")

इतना ख़याल, इतना लाड़ और इस दर्ज़ा प्यार जिसे मिलेगा उसकी मनोवृत्ति क्या होगी इसका अंदाज़ा लगाया जा सकता है। बचपन से मजाज़ ने जो चाहा उन्हें मिला, जिस चीज़ की ख़्वाहिश की, हाज़िर कर दी गई। कोई खूबसूरत चेहरा देखा तो उसी के हो रहे, खाना पीना और आराम सब छोड़ दिया। हमीदा सालिम ने लिखा है कि,

"मेरा नाम हमीदा उन्हीं का रखा हुआ है। मैं पैदा हुई तो नाम ज़किया रखा गया, लेकिन उन्हीं दिनों लखनऊ से रूदौली में एक दुल्हन ब्याह कर आईं, बहुत खूबसूरत थीं। नाम हमीदा था। जग्गन भय्या उससे इतने मुतआस्सिर हुए कि उनके नाम पर मेरा नाम हमीदा रख दिया"। ("जग्गन भय्या")

इस से दो बातें बहुत साफ़ समझ में आ जाती हैं। एक तो मजाज़ की हुस्न परस्ती और दूसरे हर हाल में अपनी ख़्वाहिश को मनवा लेने की आदत। इन दोनों आदतों ने बचपन से ही इस शायर को एक ख़ास अंदाज़ में ज़िंदगी गुज़ारने का आदी बना दिया।

बचपन से आख़िरी उम्र (कुल उम्र 44 साल) तक ये दोनों बाते मजाज़ के साथ लगी रहीं। जो चाहा वो मिल गया और लोगों ने बेतहाशा प्यार दिया। घर से निकले तो आगरा, अलीगढ़, दिल्ली और लखनऊ में शायर और एक ज़हीन और हाज़िर जवाब दोस्त की हैसियत से पसंद किये जाते रहे और हर उम्र व हर तबक़े का प्यार पाते रहे। इस बीच कई बार दीवानगी के दौरे भी पड़े। कारण, "जो चाहा वो पाया" वाला सिलसिला हर जगह तो नहीं चल सकता। इश्क़ में नाकामी और हुस्न परस्ती के जज़्बे को उनकी तबीअत के मुताबिक़ तस्कीन नहीं मिली और मिल भी नहीं सकती थी कि रूमानी बातें, रूमानी ख़्वाब, ख़याली मामलात और ज़िंदगी की कठोर सच्चाइयाँ कभी एक साथ नहीं आ पातीं। नतीजा दिमाग़ी ख़लल और दीवानगी। खाने-पीने का होश नहीं, शराब की ख़्वाहिश इस क़दर कि जोश मलीहाबादी ने समझाया,

"मजाज़! मेरी जान!! शराब हिसाब से पिया करो, ऐसा करो कि घड़ी सामने रख लो, फिर पियो"। जवाब दिया, "जोश साहब! मेरा बस चले तो घड़ा सामने रख कर पियूँ।"

मुद्दआ यह कि ज़िंदगी में तरतीब की कोई सूरत नहीं। पढ़ाई के ज़माने में शायरी की वजह से इतने पसंद किये जाते कि बी. ए. करते करते ही अलीगढ़ की अहम शख़्सियत बन गए। 1931 में अलीगढ़ आए थे। वो ज़माना सोशलिज़्म और प्रगतिशील आंदोलन के शुरू का था। अलीगढ़ में अख़्तर हुसैन रायपुरी, हयातुल्लाह अन्सारी, आले अहमद सुरूर, सिब्तेहसन मौजूद थे। बाद में जज़्बी, सरदार जाफ़री, इस्मत चुग़ताई और मन्टो भी आ गए। उन दिनों मजाज़ ने अपनी कई बहुत कामयाब नज़्में लिखीं।

सरदार जाफ़री ने लिखा है कि "जोश की रिन्दी और बेबाकी, अख़्तर शीरानी की मासूमियत और रंगीनी और हफ़ीज़ (जालंधरी) की नग़मगी ने उसे मुतअस्सिर किया, और जब उस रिन्दी और बेबाकी मासूमियत और रंगीनी और नग़मगी ने मजाज़ की शायरी में तहलील हो कर (धुलकर) एक नया रूप अख़्तियार किया तो तरक़्क़ी पसंद तहरीक के इब्तिदाई दौर की सबसे हसीन शायरी पैदा हुई"।

1935 में बी0ए0 किया, और एम0ए0 में दाख़िला लिया। तभी आल इन्डिया रेडियो में नौकरी मिल गई जो एक साल जारी रही। मजाज़ रेडियो की उर्दू मैगज़ीन आवाज़ के सब एडीटर हो गए। इस मैगज़ीन का नाम 'आवाज़' मजाज़ ने ही रखा था।

उन दिनों रेडियो पर उर्दू के कई अदीबों को नौकरी मिली जिनमें मजाज़ के अलावा नून0 मीम0 राशिद, सआदत हसन मन्टो, उपेन्द्र नाथ अश्क, कृष्ण चन्द्र और राजेन्द्र सिंह बेदी शामिल थे। अलीगढ़ में और ख़ासतौर पर गर्ल्स कॉलेज में मजाज़ की पसंदीदगी का ज़िक्र इस्मत चुग़ताई ने अपने मज़मून में अपने ख़ास अंदाज़ में किया है। इस्मत चुग़ताई ने लिखा है कि,

"यहाँ से जाने के बाद भी मजाज़ अक्सर अलीगढ़ आते और यहाँ की लड़कियों को रेडियो में प्रोग्राम दिलाने के लिए दिल्ली ले जाया करते थे।"

1936 में दिल्ली की नौकरी ख़त्म होने के बाद अलीगढ़ में उर्दू कांफ्रेन्स के मौक़े पर मजाज़ को बड़ी कामयाबी मिली जिसका ज़िक्र आले अहमद सुरूर ने अपने मज़मून में किया है।

"इस कांफ्रेन्स के दौरान यूनियन में प्रतिष्ठित अतिथियों का स्वागत था। मुअज़्ज़िज़ मेहमानों का ख़ैर मक़्दम था, पंडित (बृजमोहन दत्तात्रेय) कैफ़ी ने "उर्दू हमारी ज़बान" के नाम से एक मक़ाला (लेख) पढ़ा। पंडित कैफ़ी की आवाज़ पस्त थी, माइक का रवाज उस वक्त न था, हाल में खूब शोर हुआ। ग़रज़ जूँ तूँ करके मक़ाला ख़त्म हुआ तो सद्र ने एलान किया कि अब "असरारूल हक़ मजाज़ एक नज़्म सुनाएंगे। मजाज़ ने अपने दिल नशीं पुर सोज़ आवाज़ में "नज़्रे अलीगढ़" (यही नज़्म अलीगढ़ विश्वविद्यालय के तराने की हैसियत से सारी दुनिया में मशहूर है) शुरू की। मजमे पर एक बेखुदी छा गई, लोग झूम झूम उठे।

रेडियो की नौकरी के दौरान दिल्ली में मजाज़ जिस फ्लैट में रहते थे, उनके निचले वाले हिस्से में एक नर्स—"मिस नूरा सिंह" रहती थीं। ये किसी अस्पताल में मुलाज़िम नहीं थीं बल्कि निजी तौर पर नर्स का काम करती थीं। मजाज़ की मशहूर नज़्म 'नर्स की चारागरी' उन्हीं से मुतआल्लिक़ मालूम होती है। मिस नूरा सिंह ने उस ज़माने में मजाज़ की शराब नोशी रोकने की कोशिश की और कहा कि 6 बोतलें व्हिस्की की तुम्हारे लिए हैं लेकिन इसका अहद (वादा) करो कि हमारे ही घर पर पियोगे बाहर कहीं नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पियोगे।'' (मुहम्मद हसन की डायरी से)

उन्हीं दिनों मजाज़ को दिल्ली की एक अहम औरत से इश्क़ हो गया जो हमीदा सालिम के शब्दों में

''दिल्ली के चोटी के ख़ानदान की इकलौती बेटी, चंचल, अलबेली, खूबसूरत, लाड़-प्यार में पली हुई, ऐश व इशरत की आदी, एक अदद भारी भरकम शौहर की मिल्कियत या मालिक जो समझ लीजिये, ये बेल मुंढे चढ़ती तो क्यों कर''? (जग्गन भय्या)

इश्क़ की इस नाकामी ने मजाज़ के दिल पर बक़ौल आले अहमद सुरूर ''ऐसा कारी (गहरा) ज़ख़्म लगाया कि उसकी चोट सारी उम्र न गई''।

मजाज़ की नज़्म ''आवारा'' उनके इश्क़ की नाकामी और दिल्ली के उन्हीं दिनों की यादगार है जब 'शराब' और ''शबिस्तानों'' में मजाज़ अपने ग़म को भुलाने की कोशिश कर रहे थे।

मन्ज़र सलीम ने लिखा है कि ''शराब'' ''शबिस्ताँ'' और ''दिल्ली के चोटी के घराने'' की शादी शुदा ख़ातून से इश्क़ो-मुहब्बत तीनों चीज़ें बयक वक़्त खुश अस्लूबी से (भली भाँति) न चल सकती थीं, न चलीं। अब इस सूरतेहाल की ज़िम्मेदारी चाहे समाज पर डाली जाए चाहे उस ज़हीन, हस्सास और होनहार नौजवान शायर पर''। (मजाज़-हयात और शायरी)

दिल्ली की नौकरी ख़त्म होने और नाकामियों के बाद मजाज़ फिर लखनऊ चले गए जहाँ सिब्ते हसन, सरदार जाफ़री, जज़्बी, हयातुल्लाह अन्सारी, सज्जाद ज़हीर और एहतेशाम हुसैन मौजूद थे। सिब्तेहसन अन्जुमन तरक्की उर्दू में, सरदार जाफ़री लखनऊ यूनिवर्सिटी में पढ़ने के लिए, जज़्बी नौकरी करने के लिए आए थे। हयातुल्लाह अन्सारी 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' निकाल रहे थे। अब्दुल अलीम, अहमद अली और एहतेशाम हुसैन युनिवर्सिटी में पढ़ रहे थे। सज्जाद ज़हीर और रशीद जहाँ भी लखनऊ में थे।

1939 में मजाज़, सिब्तेहसन और सरदार जाफ़री ने लखनऊ से 'नया अदब' निकाला। उस ज़माने में मजाज़ लखनऊ में उसी तरह पसंद किये जाने लगे जैसे अलीगढ़ और दिल्ली में इससे पहले। सरदार जाफ़री ने लिखा है कि ''हमारे हल्क़े के चार मशग़ले थे, तालीम, अदब, सियासत और आवारागर्दी, ये हल्क़ा 'नव उम्र' (नए) तरक़्क़ी पसंदों पर मुश्तमिल था''।

1940 में मजाज़ पर दीवानगी का पहला दौरा पड़ा, जिसकी वजह हमीदा सालिम दिल्ली के इश्क़ की नाकामी बताती हैं।

1943 में मजाज़ को हार्डिंग लाइब्रेरी दिल्ली में नौकरी मिली और वो फिर दिल्ली पहुँचे। ये नौकरी 1945 तक चली। 1945 में मजाज़ पर फिर दीवानगी का दौरा पड़ा जिसकी वजह ज़िंदगी का वो दोहरापन था जिसमें हार्डिंग लाइब्रेरी की क्लर्की और मुशायरों की इज़्ज़त और ऊँचे से ऊँचे घरानों की वाह वाह के बावजूद शादी के सिलसिले में लड़की के बाप का इन्कार शामिल था। उन्हीं दिनों उनकी महबूबा दिल्ली से लखनऊ आई जिस पर मजाज़ ने अपनी मशहूर नज़्म 'एतराफ़' लिखी–

''जब मेरे पास तुम आई हो तो क्या आई''

1945 में पागलपन के दूसरे हमले का इलाज लखनऊ में हुआ और धीरे धीरे तबीअत संभल गई तो मजाज़ ने बंबई का सफ़र किया। 1947 में मुल्क आज़ाद हुआ तो मजाज़ बंबई में ही थे। सरदार जाफ़री ने लिखा है कि ''हमने आज़ादी का जश्न साथ-साथ मनाया, मजाज़ ने नाच-नाच कर अपनी मशहूर नज़्म पढ़ी,

बोल अरी ओ धरती बोल
राज सिंहासन डाँवाडोल

1952 में पागलपन का तीसरा दौरा पड़ा और मजाज़ राँची ले जाए गए। उन दिनों जोश मलीहाबादी सरकारी पर्चे 'आजकल' (उर्दू) के एडीटर थे जो प्रगतिशील आंदोलन को पसंद नहीं था, जोश शायरे इन्क़लाब कहे जाते थे और मजाज़ के ख़याल में उन्होंने समझौता करके सरकारी नौकरी करली थी। जोश पर मजाज़ ने इस क़तए में तन्ज़ किया है।

परि जोशे शबाब क्या जाने
शोरिशे इज़्तराब क्या जाने
सीन ए इन्क़लाब छलनी है
शाएरे इन्क़लाब क्या जाने

सरदार जाफ़री ने लिखा है कि मजाज़ ने राँची में अपनी दीवानगी में जो मिसरे (लाइनें) लिखे उनमें एक मिसरा ये भी था,

''फ़िराक़ हूँ और न जोश हूँ मैं मजाज़ हूँ सरफ़रोश हूँ मैं''

राँची में जिन दिनों मजाज़ का इलाज हो रहा था उन दिनों मशहूर बंगाली शायर क़ाज़ी नज़रूल इस्लाम का भी इलाज वहीं हो रहा था।

राँची से मजाज़ ठीक होकर लौटे। शराब भी छोड़ दी थी, लेकिन फिर कुछ लोगों ने शुरू करा दी। इसी शराब की मुहब्बत में 5 दिसंबर 1955 को उर्दू का यह अलबेला शायर हमेशा के लिए गहरी नींद सो गया।

मजाज़ के बारे में सरदार जाफ़री, हमीदा सालिम, मुहम्मद हसन, रज़िया सज्जाद ज़हीर, फ़िराक़ गोरखपुरी, एहतेशाम हुसैन, मुहम्मद हसन अस्करी, और इस्मत चुग़ताई समेत उर्दू के अदीबों ने जो कुछ लिखा है उसका खुलासा (सार) ये है कि मजाज़ की रूमानियत, उसका जज़्बाए मासूम, उसकी हुस्नपरस्ती, उसकी शख़्सियत की महबूबियत और उसका भरी जवानी में मर जाना उसे एक अफ़सानवी शख़्सियत बना गया।

मजाज़ की शायरी को हमेशा उपरोक्त ख़यालात की रौशनी में ही पढ़ा गया है जिससे एक ख़ास क़िस्म का लगाव उसकी शख़्सियत और शायरी दोनों से पैदा हो जाता है। उसकी शायरी आज भी नौजवानों, ज़िंदगी में कुछ कर गुज़रने का जज़्बा लेकर बढ़ने वालों, प्रगतिशील सोच रखने वालों, और प्यार करने वालों को उतनी ही पसंद आती है जितनी कल पसंद आती थी। कुछ मिसालें,

1. मैंने माना कि तुम इक पैकरे रानाई हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमने दह्र में रूहे चमन आराई हो
तलअते मेहर हो फ़िरदौस की बरनाई हो
बिन्ते महताब हो गरदूँ से उतर आई हो
अब मेरे पास तुम आई हो तो क्या आई हो

2. मुझे जाना है इक दिन तेरी बज़्मे नाज़ से आख़िर
अभी फिर दर्द टपकेगा मेरी आवाज़ से आख़िर
अभी फिर आग उठेगी शिकस्ते साज़ से आख़िर
मुझे जाना है इक दिन तेरी बज़्मे नाज़ से आख़िर

3. मेरी बरबादियों का हम नशीनों
तुम्हें क्या खुद मुझे भी ग़म नहीं है
बहुत मुश्किल है दुनिया का संवरना
तेरी जुल्फ़ों का पेचो ख़म नहीं है

4. और क्या चाहिये अब ऐ दिले मजरूह तुझे
उसने देखा तो ब अंदाज़े दिगर आज की रात
अल्लाह अल्लाह वो पेशानिये सीमीं का जमाल
रह गई जम के सितारों की नज़र आज की रात
न ग़म ओ मय का ये तूफ़ाने तरब क्या कहिये
घर मेरा बन गया ख़य्याम का घर आज की रात

ये सच है कि इस शायरे रूमान ने किसी पल में सर को झुकाना मंजूर न किया और सरदार जाफ़री के लफ़्ज़ों में, दूसरी तरफ़ सारी दुनिया को फ़ाशिज़्म (फ़ासीवाद) के ख़तरे से यह कहकर आगाह कर रहा था कि "पास नामूसे निगाराने जहाँ है तो उठो"। उस वक़्त मजाज़ अपने अह्द के तमाम अज़ीम शोअरा का हमनवा था—

"तुम तो तन्हा भी नहीं हो कई दमसाज़ भी हैं
रूसके मर्द भी हैं चीन के जाँबाज़ भी हैं
कुछ न कुछ साथ फ़िरंगीय फुसूँसाज़ भी हैं

और हम जैसे बहुत ज़मज़मा पर दाज़ भी हैं
दूर इन्सान के सर से ये मुसीबत कर दो
आग दोज़ख़ की बुझा दो उसे जन्नत कर दो"

उर्दू विभाग
अ0मु0वि0 अलीगढ़

दो ग़ज़लें

जहीर कुरेशी

(एक)

मुस्कुराने का अभ्यास करने लगे,
जिनको बिकना था, बनने-सँवरने लगे!

कुछ सकारात्मक याद करते हुए,
बूढ़े लोगों के जीवन गुज़रने लगे।

गाँव के लोग सुख-दुःख में रोते भी थे,
शहरी होते ही अहसास मरने लगे।

कितनी मुश्किल से हो पाये थे एकजुट,
एक अफवाह से सब बिखरने लगे!

उनकी दहशत बढ़ी खुद की पदचाप से,
अपनी परछाई से लोग डरने लगे।

घाव सागर के उनको ही आए नज़र,
जो समंदर की तह में उतरने लगे।

हम भी दीपावली को शगुन के लिए,
छत-मुँडेरों पे कुछ दीप धरने लगे।

(दो)

ग़रीब लोगों के कण्ठों में हैं जो लय की तरह,
ग़रीब, उनके लिये है महज विषय की तरह।

वो एक शब्द भी बोला नहीं प्रशंसा में,
वो नत खड़ा है मेरे सामने विनय की तरह।

प्रजा के तंत्र के 'राजा' के काफिले अक्सर,
सड़क के लोगों को लगने लगे हैं भय की तरह।

वो एक पंप, रुधिर शुद्ध करता रहता है,
धड़कता रहता है सीने में जो हृदय की तरह!

बहुत निकट है, मगर, हाथ भी नहीं आता,
ये मेरे पास भला कौन है समय की तरह ?

दवा पछाड़ती रहती है संक्रमण उसका,
जो फेफड़ों में समाया हुआ है क्षय की तरह।

प्रलय कभी नहीं देखा था, हमने जीवन में,
सुनामी लहरें ही लगने लगीं प्रलय की तरह!

समीर काटेज, बी-21, सूर्य नगर
शब्द-प्रताप आश्रम के पास
ग्वालियर-474012 (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगतिशील शायर : मजाज़

विश्वनाथ त्रिपाठी

मेरे छात्र-जीवन में मजाज़ का नाम चारों तरफ़ गूँजता था। उनका उल्लेख उर्दू के अन्य प्रसिद्ध कवियों से अलग तौर पर होता था। मैं बलरामपुर ज़िला-गोंडा में डी.ए.वी. हाईस्कूल में पढ़ता था। पाँचवे दशक की बात है। बलरामपुर लखनऊ से बहुत नज़दीक है। वहाँ साहित्य का वातावरण उर्वर था। ख़ास बात यह थी कि हिन्दी और उर्दू के साहित्यकारों में आत्मीयता थी। अधिकांश रचनाकार दोनों भाषाओं में लिखते-पढ़ते थे। विद्यार्थी आपस में बातें करते तो पंत, महादेवी, प्रसाद, निराला, बच्चन, जोश, जिगर, फ़ैज़, मख़दूम के शेर भी सुनाते और सुनते। मजाज़ का नाम आते ही गंभीर हो जाते और एक ख़ास तरह की आत्मीयता उनके व्यक्तित्त्व और रचनाओं से महसूस करते। अब मैं आपको एक ऐसी घटना सुनाने जा रहा हूँ कि आपको क्या, ख़ुद मुझे भी आश्चर्य होता है। मैं उन दिनों आर.एस.एस. का प्रतिबद्ध कार्यकर्ता था। शाम को शाखा अटेंड करता था। शाखा में कट्टर हिन्दूपंथी और मुस्लिम-विरोधी छात्र आते थे। एक बार स्वयंसेवकों से एक-एक कविता या गाना सुनाने को कहा गया। सभी सुनाने वालों ने हिन्दू राष्ट्र और धर्म से संबंधित उन्मादकारी पंक्तियाँ सुनायीं। एक लड़के का नंबर आया, तो वह सुनाने लगा :

वो इक नर्स थी चारागर जिसको कहिए
मदावा-ए-दर्द-ए-जिगर जिसको कहिए
जवानी से तिफ़्ली गले मिल रही थी
हवा चल रही थी कली खिल रही थी
मेरी हुक्मरानी है अह्ले ज़मीं पर
ये तहरीर था साफ़ उसकी ज़बीं पर

उसने कविता का अंत किया :

नहीं जानती है मेरा नाम तक वो
मगर भेज देती है पैग़ाम तक वो
ये पैग़ाम आते ही रहते हैं अक्सर
कि किस रोज़ आओगे बीमार होकर

मेरे पास 'आहंग' की जो प्रति है, उसमें इस कविता का रचनाकाल 1934 दिया हुआ है।

आर.एस.एस. की शाखा में इस कविता का तन्मय पाठ लोगों को अच्छा लगा। उस समय तो यह अच्छा लगना न आश्चर्यजनक था, न अस्वाभाविक। लेकिन, आज यह आश्चर्यजनक ही नहीं, अविश्वसनीय भी लग रहा है। इस घटना से अनेक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

एक तो यह कि कलात्मक सौंदर्य भिन्नताओं को एक तरफ़ रखकर सबको एक तार से जोड़ देता है। काव्यशास्त्र में इसी को सहृदयता कहते हैं। सहृदय का अर्थ हृदय वाला नहीं, बल्कि समान हृदय वाला होता है। संभवतः इसी अर्थ में जयशंकर प्रसाद ने सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है। दूसरी बात यह कि आर.एस.एस. की शाखा में आने वाले किशोर वस्तुतः मुस्लिम-द्वेषी, संकीर्ण या उन्मादी नहीं थे (नहीं होते)। संगठन की विचारधारा के बावजूद उनमें संकीर्णता से ऊपर उठने की क्षमता बनी हुई थी। (बनी रहती है अवसर पाकर)

मजाज़ की लोकप्रियता यूँ ही नहीं थी। उस समय स्वतंत्रता-आंदोलन चरम उत्कर्ष पर था। बयालीस के आंदोलन के बाद नेता रिहा किये जा रहे थे और प्रगतिशील चेतना की लहर चल रही थी। निस्संदेह सांप्रदायिकता का उन्माद भी बढ़ रहा था। सन् बयालीस में राष्ट्रवादी आंदोलन का साथ न देने के कारण वामपंथी पार्टी की निंदा भी हो रही थी, लेकिन इन सबके नीचे आम जनता में जनवादी प्रवृत्तियाँ और विचारधारा मज़बूत थी। प्रगतिशील लेखक संघ से हिन्दी और उर्दू के ही नहीं, सभी भारतीय भाषाओं के समर्थ रचनाकार जुड़े हुए थे और पराधीनता से मुक्ति के आकांक्षी थे। प्रगतिशील चेतना का सुनिश्चित सौंदर्य-बोध था, जिसमें हर प्रकार की भिन्नता और भेदभाव के विरुद्ध एकजुट होने की क्षमता थी। एक ओर यह चेतना धरा पर स्वर्ग उतार लेना चाहती थी और शोषण मुक्त ऐसे समाज की स्थापना करना चाहती थी, जिसमें मनुष्य की संभावनाएँ साकार हो सकें। दूसरी तरफ़, वह सभी प्रकार की विषमता और कुरूपता के प्रति बेचैनी और विद्रोह की भावना का भी प्रसार कर रही थी। इस यथार्थ और स्वप्न के बीच फँसे हुए अनेक संवेदनशील साहित्यकारों की स्थिति विचित्र थी, जिन पर विचार करने से हम मजाज़ की कविता और व्यक्तित्त्व का थोड़ा-बहुत पता पा सकते हैं।

असरारुल हक़ मजाज़ बाराबंकी के शिया मुसलमान थे। ज़मींदारी थी। परिवार संपन्न था। कई भाई-बहन थे। उन्हीं के समकालीन अवध के एक और कवि थे—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और उन्हीं के समकालीन बंगाली कवि नज़रुल इस्लाम थे। तेलुगु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी श्री श्री थे। ये कवि विद्रोही भावना और अग्निवर्षिणी वाणी के लिए अपने भाषा-साहित्य में अप्रतिम माने जाते हैं। एक बात और ध्यान देने की है, इन सभी कवियों ने उत्कृष्ट प्रेम कविताएँ भी लिखी हैं। नज़रुल के और निराला के गीत अभूतपूर्व हैं। श्री श्री के गीत फ़िल्मों में लिये गये हैं और मजाज़ की नूरा नर्स का उल्लेख तो प्रारंभ में ही हो चुका है। इन कवियों के व्यक्तित्त्व में सौंदर्य की, सुख-शांति की सच्ची ललक थी। कविताओं में वह अनेक बिंब-रूपों और भाषा की लय और संगीतात्मकता में व्यंजित हुई है। इस विषय में मैं मजाज़ की कविता 'रात और रेल' का उल्लेख करना चाहूँगा।

तेज़ झोंकों में वो छमछम का सरोदे दिलनशीं
आँधियों में जल बरसने की सदा आती हुई
जैसे मौजों का तरन्नुम, जैसे जल-परियों के गीत
इक-इक लय में हज़ारों ज़मज़में गाती हुई
ठोकरें खाकर लचकती गुनगुनाती झूमती
सरगुशी में घुँघरुओं की ताल पर गाती हुई।

नज़्म तवील है और मैंने रात में रेल का ऐसा रूप-रस और नाद भरा चित्र किसी और कवि की कविता में, मेरा मतलब है रेल पर लिखी हुई कविता में, नहीं पाया है। सौंदर्य, सुख और शांति की ललक ही इन कवियों को इतना उद्विग्न करती है कि उसकी अप्राप्ति और निराशा इन्हें असंतुलित बनाती है। इनकी दिक़्क़त यह है कि ये कवि समझौता कर नहीं पाते। दुनियादारी निभा नहीं पाते और विषमतायुक्त समाज में चल नहीं पाते। कबीर ने लिखा था—'राम वियोगी न जिये/ जिये तो बौरा होइ।'

मेरे स्वर्गीय मित्र डा. अजमल अजमली ने मुझे बताया कि जब वे मजाज़ की शोक-सभा में निराला को बुलाने दारागंज की कोठरी में पहुँचे और निराला को मजाज़ की मृत्यु की ख़बर दी, तो निराला बहुत देर तक अपनी सूनी आँखों से अजमल अजमली को देखते रहे। फिर बोले—'तो तुमने मजाज़ को भी मार डाला।' सौंदर्य-बोध का जो पक्ष विवादी होता है, वह कुरूपता से समझौता नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व को इतिहास का पर्याय बना ले और समझौता करना न आता हो, तो उसके साथ वह होना निश्चित हो जाता है, जो नज़रुल इस्लाम, निराला और मजाज़ के साथ हुआ। हम समझौतापरस्ती का पक्ष नहीं ले सकते, लेकिन समझौता न करने वालों के प्रति नतमस्तक ज़रूर होते हैं। वे असफल रहे, किंतु उनका जीवन सार्थक रहा। फिराक़ गोरखपुरी मजाज़ नहीं थे। वे संतुलित रहना भी जानते थे, लेकिन महसूस करते थे :

जो कामयाब हैं दुनिया में उनको क्या कहिए
है आदमी की इससे बढ़कर और क्या तौहीन

मजाज़ ने विषमताग्रस्त ऐतिहासिक दौर को अपने व्यक्तित्त्व में उतार लिया था—व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन दोनों में। कहते हैं कि असफल प्रेम ने उन्हें मानसिक रोगी बना दिया था। लेकिन, यह केवल व्यक्तिगत असफलता नहीं थी, जिसने उन्हें इस हालत में पहुँचा दिया दिया था। वह इतिहास का पागलपन था, जिसे इन कवियों ने झेला। और निष्कवच झेला। इसलिए अपनी सुरक्षा नहीं कर सके। नज़रुल इस्लाम, निराला, मजाज़ बहुत बड़े कवि थे, लेकिन उनकी निष्ठा की पूजा करते हुए भी हम उनके जीवन को अनुकरणीय नहीं कह सकते, क्योंकि हमारी समझ में ईमानदार आदमी का कर्तव्य है कि वह जीवित रहे और संघर्ष करे और हो सके, तो सफल हो। ईमानदार की सफलता इतिहास का कर्ज़ है, जिसे उतारने की कोशिश करनी चाहिए।

बहरहाल, हम अपने छात्र-जीवन में मजाज़ की 'आवारा' नज़्म पढ़ते थे। पुलकित होते थे। झूमते थे। माथा पीटते थे और प्रेरणा भी लेते थे। इस कविता में मानवीय भावना उन्माद की उस अवस्था में पहुँच गयी है, जहाँ वह बहुत देर तक सँभली रह नहीं सकती और उन्मादग्रस्त को तोड़ के दम लेना चाहती है। आप 'आवारा' नज़्म के इन बिंबों पर ध्यान दें :

झिलमिलाते कुमकुमों की राह में ज़ंजीर-सी
रात के हाथों में दिन की मोहिनी तस्वीर-सी
मेरे सीने पर मगर दहकी हुई शमशीर-सी

इक महल की आड़ से निकला वो पीला माहताब
जैसा मुल्ला का अमामा, जैसे बनिये की किताब
जैसे मुफ़लिस की जवानी, जैसे बेवा का शबाब।

याद रखिए कि ये बिंब उस नौजवान की मानसिकता में उभर रहे हैं, जो शहर की रात में नाशाद और नाकारा फिर रहा है। दर-ब-दर मारा फिर रहा है, क्योंकि यह बस्ती ग़ैर की है। यह ग़ैरियत सिर्फ़ एलियनेशल नहीं है। एलियनेशन में सत्ता से अलगाव होता है, लेकिन एलियनेट करने वाली यह सत्ता मजाज़ जैसे वामपंथी और एक्टिविस्ट शायर के लिए शोषक, साम्राज्यवादी और देश को गुलाम बनाने वाली भी है। इस सत्ता में हमारे देशी दलाल, सांप्रदायिक रजवाड़े, ज़मींदार और सामाजिक विषमता को बरकरार रखने और बढ़ाने वाली रूढ़ियाँ और परंपराएँ भी हैं। कवि का सौंदर्य-बोध और सौंदर्य से आकृष्ट होने की भावना अपार है। विडंबना यह है कि शोषक सत्ता ने सुंदरता पर भी कब्ज़ा कर रखा है। कवि के क्षुब्ध मानस को समझने वाला और उसे सहलाने वाला कोई नहीं है :

ये रुपहली छाँव ये आकाश पर तारों का जाल
जैसे सूफ़ी का तसव्वुर जैसे आशिक़ का ख़याल
आह लेकिन कौन जाने कौन समझे जी का हाल

इस कविता में बिंबों की ख़ास बात यह है कि वे चमकदार और आकर्षक हैं, मोहक हैं; लेकिन सब या तो टूट रहे हैं या बिखरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। आकाश पर तारों का जाल है। सितारे टूट रहे हैं। मुलाक़ात छूट रही है। कोई चीज़ ठहरी हुई या किसी सिस्टम में नहीं है। वहशत और आवारगी सिर्फ़ कवि की मानसिकता में ही नहीं है, वह समूचे परिदृश्य में है। लेकिन, इस रात के हाथों में दिन की मोहिनी तस्वीर भी है, जो भविष्य के प्रति कवि की विचाराधारात्मक आस्था का प्रतीक है। महादेवी वर्मा की पंक्ति याद आती है—'रात के डर में दिवस की चाह का शर हूँ।'

इस अलगाव, ग़ैरियत और विरोधी, बल्कि घृणास्पद सत्ता से लड़ने के लिए कवि के पास जो साधन हैं, वे हैं—दिल पर चोट-सी पड़ने वाली सीने में हूक और सीने पर रखी दहकी हुई शमशीर :

'मेरे सीने पर मगर दहकी हुई शमशीर-सी।'

यह आवारगी ग़म-ए-दिल और वहशत-ए-दिल के साथ है। जब ग़म-ए-दिल और वहशत-ए-दिल है, तो कोई स्वप्न भी होगा दिल में, कुछ आर्जुएँ भी होंगी। नौजवान और क्रांतिकारी कवि मजाज़ के मन में प्रेमिका और समाजवाद या शोषणमुक्त समाज का स्वप्न एक-दूसरे में घुल-मिल गये हैं। जो उनके प्रेम-मिलन में बाधक है, वही शोषणमुक्त समाज का भी विरोधी है। और फ़िलहाल यह संभव नहीं है, इसलिए—'यह नहीं मुमकिन तो फिर ऐ दोस्त वीराने में चल।'

वीराना ऐसी जगह और सच्चे अर्थ में निर्वासित स्थिति का प्रतीक है। यह निर्वासन, जैसाकि पहले कह आये हैं, शोषक सत्ता द्वारा निष्कासन का भी प्रतीक है। कवियों के यहाँ निर्वासन प्रायः निष्कासन के भाव को अपने में समोये रहता है। जिस 'दहकती हुई शमशीर' का उल्लेख अभी हुआ है, वह मजाज़ की कविता में कई संदर्भों में आती है। 'शमशीर' उनके यहाँ ज़ालिम से संघर्ष का प्रतीक है। उनका एक मशहूर शेर है :

देख शमशीर है ये साज़ है ये जाम है ये
तू जो शमशीर उठा ले तो बड़ा काम है ये।

यह शमशीर 'आवारा' कविता में भी आती है, खंजर के रूप में। मजाज़ ऊपर के शेर में नवयुवकों को शमशीर उठा लेने के लिए ललकारते हैं और 'आवारा' में वे खुद यह शमशीर उठा लेते हैं :

मुफ़लिसी और ये मज़ाहिर हैं नज़र के सामने
सैकड़ों सुल्तान जाबिर हैं नज़र के सामने
सैकड़ों चंगेज़ औ' नादिर हैं नज़र के सामने
ले के इक चंगेज़ के हाथों से ख़ंजर तोड़ दूँ
ताज पर उसके दमकता है जो पत्थर तोड़ दूँ
कोई तोड़े या न तोड़े मैं ही बढ़कर तोड़ दूँ।

यह रवीन्द्रनाथ का 'एकला चलो' ही नहीं है, यह भगतसिंह, चंद्रशेखर आज़ाद और अशफ़ाकुल्लाह का शहीदी जज़्बा है, जो जुल्म के ख़िलाफ़ लड़ने में अपनी जान की परवाह नही, करता दूसरे का मुँह नहीं देखता। एक तरह से यह ईसा मसीह और गांधी का भी जज़्बा है। हालाँकि अहिंसा का नहीं है। इस कविता में महल की आड़ से निकलने वाले पीले माहताब की उपमा, मुल्ला के अमामे और बनिये की किताब, मुफ़लिस की जवानी और बेवा के शबाब से दी गयी है। पीले चंद्रमा से विधवा के यौवन और निर्धन की जवानी समझ में आ जाती है। सौंदर्य अशक्त और पराधीन है। इनका कोई सादृश्य मुल्ला के अमामे और बनिये की किताब से नहीं मालूम पड़ता। लेकिन, ये सादृश्य रूपगत नहीं भावगत हैं और ज़रा-सा ध्यान देने पर सादृश्य-सूत्र मिल जाता है। हिन्दी कविता के पाठक मुक्तिबोध के प्रसिद्ध शब्द-संयोग 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' से परिचित हैं। मुल्ला का अमामा और बनिये की किताब मजाज़ के लिए विरक्ति नहीं, घृणा के प्रतीक हैं और आगे बढ़कर युवती-विधवा और जवान की मुफ़लिसी के ज़िम्मेदार भी हैं। युवती के वैधव्य का ज़िम्मेदार मुल्ला का अमामा, सामाजिक-धार्मिक रूढ़ि और नौजवान की मुफ़लिसी की ज़िम्मेदार बनिये की किताब है। यहाँ युवती के वैधव्य और युवक की ग़रीबी के प्रति मजाज़ का क्रोध उनके कारणों तक सीधे पहुँचकर सादृश्य वस्तु में रूपांतरित हो जाता है। मजाज़ और निराला में उन्माद और मानसिक विक्षेप बाह्य आचरण में तो दिखलायी पड़ता है, लेकिन कविता करते समय शब्द, रूप, रस, गंध, विवेक और काव्य-कौशल को क्षतिग्रस्त नहीं कर पाता, बल्कि उन्हें अधिक निखारता है। उनके काव्य-विवेक को और अधिक जाग्रत करता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण विडंबना है। इसी स्थिति के लिए निराला ने लिखा था—'हो इसी कर्म पर वज्रपात।'

मजाज़ ने अनेक ऐसी ग़ज़लें कही हैं, जिनके शेर लोगों की जुबान पर हैं और बहुत दिनों तक बने रहेंगे। वे सिद्धहस्त शिल्पी कवि हैं और उर्दू काव्य की काव्य-रूढ़ियों, परंपराओं में निष्णात हैं। मेरे ख़याल से मजाज़ प्रधानतः नज़्मों के कवि हैं। उनकी ज़्यादातर मशहूर कृतियाँ 'नज़्म' विधा में हैं। आवारा, नूरा नर्स, नन्हीं पुजारिन, रात में रेल, नौजवान ख़ातून से वग़ैरह। मजाज़ की नज़्में और उनकी भाषा उर्दू-हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। यह बात छिपी नहीं है और मान भी ली जाती है कि प्रगतिशील आंदोलन का प्रचार और प्रसार प्रधानतः उर्दू साहित्यकारों ने प्रारंभ किया। इस विषय में हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील विचार और भाव-बोध का विस्तार बाद में हुआ। यद्यपि, हिन्दी साहित्य पर प्रगतिशील भाव-बोध का वर्चस्व कई दशकों तक बना रहा और कमोबेश आज भी बना है, शायद समकालीन उर्दू साहित्य की अपेक्षा ज़्यादा। प्रगतिशील आंदोलन ने उर्दू-हिन्दी साहित्य की भाव-परिधि का विस्तार ही नहीं किया, अभूतपूर्व ऐतिहासिक भाव-संपदा ही नहीं प्रदान की, लोकोन्मुख और लोकवादी ही नहीं बनाया—रूप और शिल्प के क्षेत्र में भी युगांतर किया। वर्गीय दृष्टि ने कविता के रूप पक्ष को जैसे एक नया मिशन दिया—हिन्दी और उर्दू की मौलिक एकता का खुसरो, वली, कबीर, जायसी, तुलसी, प्रेमचंद, निराला, जोश, जिगर, फ़िराक़, फ़ैज़, मखदूम एक ही भाषा के रचनाकार हैं। उन्हें एक जातीयता में एकजुट करने की कुछ दिन के लिए ही सही कामयाब कोशिश की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी। हिन्दी-उर्दू साहित्य का इस दृष्टि से यह स्वर्णिम काल है। साहित्य का ऐसा युग कविता में शायद ही पहले कभी आया हो। इसके कई प्रमाण हैं, लेकिन उनकी यहाँ ज़रूरत नहीं है। कहना सिर्फ़ यह है कि मजाज़ प्रगतिशील आंदोलन के इसी उत्कर्ष काल के प्रसिद्ध और समर्पित कवि हैं। आप 'आहंग' (मजाज़ का काव्य-संकलन) के समर्पण पर ध्यान दें :

फ़ैज़ और जज़्बी के नाम जो मेरे दिल और जिगर हैं
सरदार और मख़दूम के नाम जो मेरे दस्त औ' बाज़ू हैं।

यह समर्पण इस भावना का द्योतक है कि काव्य-रचना एक सामूहिक प्रक्रिया है यानी वह एक आंदोलन का रूप है।

अनेक प्रगतिशील हिन्दी-उर्दू कवियों की तरह मजाज़ की नज़्मों में तत्सम हिन्दी की ध्वनियाँ ष, क्ष, त्र, ज्ञ और उर्दू कविता में प्रयुक्त तत्सम अरबी-फ़ारसी ध्वनियाँ क़, ख़, ग़, ज़, फ़ बहुत कम आती हैं। इसे आप मिली-जुली भाषा का रूप ही न समझें, यह एक वर्गीय दृष्टि से निर्मित है। तत्सम ध्वनियों का प्रयोग, भाषा की तथाकथित शुद्धता का रूप संपन्न, सवर्ण-लोगों के बीच ही व्यवहृत होता है। ग़रीब, मज़दूर, खेतिहर, किसान लोगों के बीच उन ध्वनियों का इस्तेमाल नहीं होता। जब जनांदोलन सक्रिय था, शक्तिशाली था, तब उनका संस्कृति-मंच भी आंदोलन के एक अमोघ अंग के रूप में अपना काम कर रहा था। मजाज़ चौथे और पाँचवे दशक में भारत की राजनीति और संस्कृति में जनांदोलन के उभार के प्रतिनिधि कवि हैं। मजाज़ अपने तीव्र भाव-बोध के कारण विषमता के प्रति उद्विग्नता और उन्माद, एक हद तक बिखर जाने वाली मानसिकता के वैसे ही कवि हैं, जैसे निराला और नज़रुल इस्लाम। निराला और नज़रुल इस्लाम की तरह वे उन्माद और बिखरन के साथ अपने तीव्र भाव-बोध को काव्य-शिल्प में बाँध लेने वाले सिद्ध कवि हैं। फ़ैज़ ने 'आहंग' की भूमिका में लिखा है कि 'मजाज़ की 'ख़्वाब-ए-सहर' और 'नौजवान ख़ातून से ख़िताब' इस दौर की सबसे मुकम्मिल और सबसे कामयाब तरक़्क़ीपसंद नज़्मों में से हैं। मजाज़ इन्कलाब का ढँढोरची नहीं, इन्क़लाब का मुतरिब है।''

फ़ैज़ का सम्मान करते हुए जोड़ा जा सकता है कि इन्क़लाब का ढँढोरची होना कोई कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। सौंदर्य के प्रति सचेत करने के लिए नारा भी लगाना पड़ता है।

बी-5/एफ़-2, दिलशाद गार्डन
दिल्ली-110095

कविताएँ

हरमहेन्द्र सिंह बेदी

त्रिवेणी घाट

खिड़की के पार
खड़ी है
इलाहाबाद की शाम।
अकेली।
लिए हथेली खाली।
माँग रही
कुछ तल्खी कुछ बेचैनी।
त्रिवेणी का घाट
उतर रहे अंधेरे में
धूल भरा
यात्रियों को नहीं देता
कोई निमंत्रण
थका-हारा घाट।
गंगा भी यमुना भी।
कोई नहीं ढूंढता सरस्वती को भी।
न दूर
न आसपास
यही कहीं उतरी होगी
निराला की 'सांध्य-वेला'
जिसे देखा होगा महाकवि ने
अदम्य साहस के साथ
उतरती होगी
रोज़ की संध्या
गली-गली घाट-घाट
खिड़कियों के पार
घरों की देहरियों पर।
इलाहाबाद की शाम
फिर पसरी है
सड़कों पर।
तोड़ने मौन
शहर भर का।

इलाहाबाद में पथ भूला

दारागंज में खड़ा मैं
देखता मूर्ति महाकवि निराला की।
ढूंढता विभूति मिश्र का निवास।
बातें करता निराला
राहगीरों से
फकीरों से
फकीरों से।
मूर्ति में प्राण फूंकता मैं
झुक जाता हूँ–
भूल जाता हूँ–
कवि ज़िंदा है।
बूढ़ा समय
युवा कवि
पुराना शहर।
भूलते पथ
आज भी
कई भिखारी
दिन भर बैठे रहते
बैठा है जहाँ कवि निराला।
नये घर में
चले गए विभूति मिश्र
निराला अब भी दारागंज में।
वैसे का वैसा
मैं पथ भूला
इलाहाबाद में।

125, कबीर पार्क, अमृतसर-143002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मजाज़ की ज़िंदगी का एक वरक

मुईनअहसन जज़्बी

1929 में मायूसकुन हालात के बावजूद न जाने किस तरह हाईस्कूल के इम्तिहान में कामयाब हो गया। मायूसकुन मैंने इसलिए कहा कि शेर व अदब के अलावा किसी चीज़ में दिलचस्पी नहीं रखता था। वालिद साहब ने मेरी मर्ज़ी के ख़िलाफ फ़ारसी के बजाय साइंस लेने पर मजबूर किया था और उसी वक्त जहाँ तक तालीम का ताल्लुक है, मैंने सोचना छोड़ दिया। अब अगर कुछ पढ़ता था तो सिर्फ़ वही किताबें पढ़ता जो शेर-ओ-शायरी से मुताल्लिफ़ होती थीं। सातवीं-आठवीं क्लास तक पहुँचते-पहुँचते मैंने अपने दादा की वो सब किताबे पढ़ लीं थीं जिनका शेर व अदब से कोई ताल्लुक था। इन्हीं में आबेहयात, मुकदमा शेर-ओ-शायरी और शेर-उल-अजम जैसी किताबें भी हाथ आयीं। ईमानदारी की बात यह है कि उस छोटी सी उम्र में उन बुजुर्गो को समझना आसान न था। कुछ समझ में आया और कुछ नहीं लेकिन जिस किताब ने सबसे ज़्यादा मुतास्सिर किया, आबेहयात थी।

शायरी का शौक जुनून की हद तक पहुँच चुका था। अब सिवाय शायरी के कोई चीज़ अच्छी न लगती थी। हर दर्जे में सालाना इम्तिहान से 15-20 दिन पहले किताबें उठाता और अपनी हम जमात अहबाब की मदद से न जाने किस तरह इम्तिहान में पास हो जाता। हाई स्कूल का इम्तिहान इसी तरह दिया, सच पूछो तो मुझे अपनी कामयाबी पर खुद हैरत थी और हैरत की सबसे बड़ी वजह यह थी कि इम्तिहान के दौरान रात भर पढ़ता, सुबह जाकर इम्तिहान देता। अनिवार्य पाँच सवाल करने के बजाय तीन ही सवाल कर पाता। बहरहाल यह कामयाबी एक अचंभा थी। अब एक बार फिर कोशिश की, साइंस के बदले आर्ट्स के विषय ले लूँ लेकिन वालिद साहब तो मुझे डॉक्टर बनाना चाहते थे, किसी तरह राज़ी न हुए। उस ज़माने में वालिद साहब झाँसी में थे, झाँसी गवर्नमेंट इण्टरमीडिएट कॉलेज में चूँकि बॉयलोजी के विषय नहीं थे इसलिए सेंटजोंस कॉलेज आगरा में मेरी तालीम का इन्तज़ाम हुआ।

सेंटजोन्स कॉलेज में दाखिल हुए कोई महीना भर गुज़रा था कि एक दिन क्लास में एक साहब से जो मेरे पास बैठे हुए थे, गुफ़्तगू के दौरान मालूम हुआ कि वे लखनऊ से तशरीफ लाये हैं। लखनऊ में उन्होंने अमीनाबाद हाईस्कूल में तालीम पायी थी और वहीं से हाईस्कूल किया था। मुझे याद आया कि झाँसी में मेरे एक दोस्त जो सातवीं क्लास में मेरे साथ थे, किसी वजह से लखनऊ चले गये थे और अमीनाबाद हाईस्कूल में दाखिला ले लिया था। मैंने उनसे उस वाकए का ज़िक्र किया। वो बोले कि वह तो मेरे अज़ीज़ दोस्तों में थे। बस यही वाक़या उनसे दोस्ती की बुनियाद बन गया। मालूम हुआ कि उनका नाम असरारूलहक़ है। रुदौली के रहने वाले हैं और एक शरीफ़ जमींदार ख़ानदान से ताल्लुक रखते हैं। असरारूलहक के वालिद रजिस्ट्रेशन डिपार्टमेंट से ताल्लुक रखते थे। हाल ही में उनका तबादला आगरा हुआ था और वो परिवार के साथ हींग की मण्डी के एक हिस्से में जो अहाता अहमदयार खाँ कहा जाता था, एक मकान में सुकून से रह रहे थे। मैं और असरारूल हक़ दोनों कॉलेज में एक साथ रहते। कॉलेज के बाद मैं कभी-कभी छुट्टी के दिन असरार के घर चला जाता। ग्यारहवीं पास करने के बाद जब मैं बारहवीं में आया तो खुद असरार भी उस हॉस्टल में जो हेली-बेरी कहलाता था, आ गये। हम दोनों के ताल्लुक़ात इतने बढ़ गये थे कि न सिर्फ़ कॉलेज में साथ-साथ रहते थे बल्कि हॉस्टल में भी हमें साथ-साथ देखा जाता। हम दोनों के कमरे अलग-अलग थे लेकिन मेरा कमरा आमतौर से बंद रहता था और मैं असरार के कमरे में ही ज़्यादा वक़्त गुज़ारता था। हम दोनों हमेशा एक साथ देखे जाते थे। यहाँ तक कि हमारे सहपाठी कहते थे कि तुम दोनों शादी कर लो। कभी सिनेमा की इजाज़त के लिए वार्डन (जो उस ज़माने में मिस्टर महाजन थे और जो बाद में आगरा यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर हुए) के पास जाता तो न सिर्फ़ मुझे इजाज़त देते बल्कि यह भी कहते कि असरार के आने की ज़रूरत नहीं, वो भी जा सकते हैं। बहरहाल हम दोनों की गहरी दोस्ती के बारे में सब जानते थे।

हाँ, मैं यह बताना भूल गया कि ग्यारहवीं में एक दिन असरार मेरे पास आये और चंद ग़ज़लें मुझे दिखायीं। उस वक्त यह मालूम हुआ कि यह भी शायर है। पहली ग़ज़ल मैंने पढ़ी। जब मक़्ते पर पहुँचा तो वो 'शहीदाब' इस तरह लिखा था कि 'अलिफ' दाल के ऊपर था और 'बे' दूर जा पड़ा था। चुनाचे मैं उसे 'शहीदा' पढ़ गया, मैंने असरार की तरफ़ देखा कि यह शहीदा क्या है तो वो कुछ झेंपकर कहने लगे कि शहीदाब है। मैंने कहा, यह तुम्हारा तख़ल्लुस है, तो मालूम हुआ कि यह उनका ही तख़ल्लुस है। इस शहीद पर मुझे साग़र की एक नज़्म याद आ गयी जो उसी ज़माने में किसी रिसाले में छपी थी और जिसमें बार-बार आह फ़क़ीरा, वाह फ़क़ीरा, देख इधर उल्ला फ़क़ीरा आता था। असरार उन दिनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लखनऊ के रंग में कहा करते थे। जनाज़ा, कफ़न वगैरह के मज़ामीन बाँधे गये थे। मैं कुछ देर तक मज़ाक करता रहा, फिर जब मुझे शरारत सूझी तो मैंने भी एक नज़्म कह डाली जिसमें साग़र की नज़्म की तरह आह शहीदा, वाह शहीदा, देख इधर उल्ला शहीदा आता था।

यह वो ज़माना है कि 'फ़ानी बदायूंनी' उरूज पर थे और वो आगरा ही में वकालत करते थे। मैं एक बार उनसे मिल चुका था। बड़ी मुहब्बत से मिले, मेरे शेर सुने, बड़ी हौसला बढ़ाने वाली बातें की, आख़िर में फरमाया कि देखिए मेरे पास बहुत से पढ़े-लिखे शायर आते हैं और मैं सबको यही राय देता हूँ कि अल्लाह शायरी पर रहम फ़रमाये। लेकिन मैं आपको यह राय दूँगा कि इस (ख़ालिश) तमन्ना को न छोड़िएगा। फ़ानी साहब की यह बातें आज तक याद हैं। क्या बुजुर्ग थे। यह बात बहुत कम लोगों को मालूम होगी कि फ़ानी जिस मकान में रहते थे उसे किसी वजह से छोड़ना पड़ा और अब वो जिस मकान में रहने के लिये आये, वो मजाज़ के मकान से मिला हुआ था। असरार कभी-कभी उनके पास जाते। यह बात भी मुमकिन है कि उन्होंने फ़ानी से तालीम हासिल की हो, मुझे ठीक तरह से मालूम नहीं है। लेकिन इतना ज़रूर जानता हूँ कि फ़ानी ने उनको तख़ल्लुस दिया और वो असरारूल हक से 'असरारूलहक मजाज़' हो गये। इसके बाद मजाज़ ने संजीदगी के साथ शेर-ओ-शायरी की दुनिया में क़दम रखा और देखते ही देखते एक-डेढ़ साल में वो काफ़ी अच्छे शेर कहने लगे।

ये मैं पहले ही बता चुका हूँ कि साइंस से न मजाज़ को दिलचस्पी थी, न मुझे। बारहवीं में न मजाज़ ने कोई किताब उठायी, न मैंने। इंटरवल तक हम लोग जैसे-तैसे कॉलेज में रहते, इसके बाद सैकिण्ड मीटिंग को अल्लाह हाफ़िज कहते और शहर चले जाते। कनारी बाज़ार पहुँचते-पहुँचते मुझे या मजाज़ को चाय पीने की ख़्वाहिश सताने लगती और हम वहाँ एक होटल (जिसका नाम सितारा था) में चाय जरूर पीते। वहाँ से तकरीबन सौ गज़ के फासले पर मयकश साहब (मयकश अकबराबादी) का मकान था, चुनाचे वक़्त-बेवक़्त आमतौर से शाम को उनके आराम में दखल डालते। मयकश साहब आँख मलते, हँसते हुये आते, दो-तीन घंटे अलग-

अलग मौजुआत पर बातें होती। हम लोग अपने शेर सुनाते और कुछ उनके सुनते। मयकश साहब हम लोगों से आठ-दस साल बड़े होंगे, बहुत अच्छा कहते थे और यह कहना ग़लत न होगा कि हमने उनसे बहुत कुछ सीखा। सिर्फ़ हमने अपनी परेशानियाँ ही दूर नहीं की बल्कि उनसे शराफ़त, मुहब्बत, इंसानियत का सबक़ सीखा। मजाज़ को मैंने मयकश साहब से मिलवाया था इसीलिए वे उनसे इतने बेतकल्लुफ न थे जितना में था। फिर भी मुझे यक़ीन है कि मजाज़ को उनकी मेहमान नवाज़ी और गुफ़्तगू से बहुत कुछ हासिल हुआ होगा। इस वक्त मयकश साहब के दो शेर याद आ रहे हैं—

हम पाशिकस्तगाने उल्फत का पूछना क्या,
उट्ठे तेरी गली से, बैठे तेरी गली में।

सब की नज़र बचाकर मैं उनको देखता हूँ,
मेरी नज़र बचाकर वो मुझको देखते हैं।।

एक दिन हम दोनों मयकश साहब से रुख़्सत हुए और न जाने किस तरह ताजमहल का प्रोग्राम बन गया। मजाज़ ने रास्ते में अपनी बड़ी बहन की बेवगी का वाक़या बड़े दुख के साथ सुनाया। कहने लगे कि बेवा होने के बाद पहली बार जब वो मायके आयीं तो वालिद साहब से लिपटकर चीखीं कि अब्बा मैं तो लुट गई। ये कहते-कहते मजाज़ खुद रोने लगे। हम लोग अभी बाज़ार ही से गुज़र रहे थे। रास्ता चलने वाले बड़ी हैरत से मजाज़ को देख रहे थे और मजाज़ थे कि सर झुकाये बुरी तरह रो रहे थे। मेरी अजीब हालत थी। ऐसा मालूम होता था कि साँप सूँघ गया हो। काफ़ी देर बाद मजाज़ ने तबियत पर क़ाबू पाया। रास्ता ज़्यादातर ख़ामोशी में कट गया, लेकिन उस दिन से मजाज़ मेरी नज़र में सिर्फ़ एक दोस्त ही नहीं, एक इन्तहाई दर्दमंद इंसान भी बन गये।

मैं मजाज़ के खुलूस व मुहब्बत का हमेशा क़ायल रहा। मजाज़ की हर दिल अज़ीज़ी में उनकी ज़हानत और मज़ाह का भी बहुत कुछ दख़ल था। एक वाक़या याद आ रहा है। ग्यारहवीं में मैं और मजाज़ दोनों एक विषय में फ़ेल थे लेकिन बारहवीं में दोनों को प्रमोशन मिल गया। परीक्षा परिणाम सुनाने के लिये प्रिंसीपल रेवरेंड हॉलैण्ड साहब एक दरबार लगाते थे जो कालेज के सारे स्टाफ पर मुशतमिल (लागू) होता था। जितने लड़कों को प्रमोशन मिलता वो सब एक-एक करके बुलाये जाते और प्रिंसीपल साहब उनका हौसला बढ़ाते। चुनाचे मुझे भी बुलाया गया और प्रिंसीपल साहब ने कुछ सख़्ती और नरमी से मुझे समझाने की कोशिश की। मेरे बाद मजाज़ का नंबर था। मजाज़ बुलाये गये। मजाज़ बेइन्तहा दुबले थे, दूसरे कुछ ख़ौफ़ज़दा भी थे कि मालूम नहीं क्या हश्र हो। बहरहाल वे पहुँचे, प्रिंसीपल ने उनका रिज़ल्ट देखा, मजाज़ फ़िजिक्स में फेल थे। उनसे कहा You are weak in Physics, मजाज़ ने बड़े अदब से जवाब दिया, Yes Sir I am weak in Physics। उस पर ज़बरदस्त क़हक़हा पड़ा। यहाँ तक कि प्रिंसीपल साहब भी हँसने लगे। बहरहाल मजाज़ की बेशतर बातों में उनका मज़ाह नमक का काम करता था। मजाज़ को फ़िकरे कसने में देर नहीं लगती थी। उधर किसी ने कुछ कहा, इधर तड़ से मजाज़ ने जवाब दिया जिसमें मज़ाह की कुछ बातें ज़रूर होती थीं। हॉस्टल में एक साहब थे फ़ारूक ज़मील। हम लोगों के क्लासफ़ैलो थे। उनके वालिद डिप्टी कलक्टर थे। हर छुट्टी पर जब वो घर जाते तो बहुत सी चीज़ें साथ लाते जिनमें सात-आठ नये सूट भी होते थे। आमतौर से उनका हॉस्टल का कमरा खुला रहता था। तीन-चार महीने में उनके सिर्फ़ सूट ही नहीं, और भी चीज़ें ग़ायब हो जाती थीं। उन्हें हम लोग लॉर्ड फ़ारूक कहते थे। एक बार मजाज़ उनके यहाँ किसी काम से आये। कमरा रोज़ की तरह खुला था, लॉर्ड फ़ारूक का कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता न था। वापसी पर इत्तफ़ाक से मजाज़ की मुलाकात उनसे हो गयी, फ़रमाया-भाई फ़ारूक, मैं तुम्हारे कमरे गया था, एक एक्टीविटी करके आया हूँ। लॉर्ड घबराये और पूछा, क्या किया तुमने? कहने लगे-एक पेड़ा रखा था, वो मैं खा गया। फ़ारूक कहने लगे, ऐसी एक्टीविटी तुम रोज़ कर जाया करो। ऐसी बातें दिन में बीसियों सुनने में आतीं। मजाज़ के लतीफ़े किताबी सूरत में शाये हो चुके हैं।

एक अर्से के बाद मजाज़ एक बार अलीगढ़ आये। मैं यहाँ उर्दू विभाग में लेक्चरर हो चुका था। रशीद अहमद साहब ने मजाज़ को विभाग में बुलाया। इत्तफ़ाक से रविश सिद्दीकी भी आ चुके थे। इन्हें भी दावत दी गई। शेर-ओ-शायरी की महफिल गर्म हुई। महफ़िल के ख़त्म होने पर मजाज़ और रविश साथ-साथ बाहर निकले। रविश हम लोगों से उम्र में काफ़ी बड़े थे, इसलिए हम लोग थोड़ा सा उनका एहतराम करते थे। रविश मजाज़ से कहने लगे कि, भाई मजाज़, तुमसे एक मशवरा करना है। मेरी उम्र अब चालीस से ज़्यादा हो चुकी है, अब तक मैंने शादी नहीं की। अब सोचता हूँ कि अगर इस उम्र में शादी करना ही है तो फिर किसी बेवा ही से शादी करना मुनासिब होगा। मजाज़ ने फ़ौरन मशवरा दिया, कि 'देखिये! आप कुंवारी या बेवा के चक्कर में ना पड़िये। आप तो शादी कर डालिये। बेवा तो वो हो ही जायेगी।' मजाज़ की एक खूबी ये भी थी कि अक्सर ट्रेजडी में भी मज़ाह का पहलू निकाल लेते थे।

हाँ, तो हम दोनों बारहवीं में फ़ेल हो गये। मैं झाँसी अपने वालिद साहब के पास चला गया। मजाज़ के वालिद का तबादला अलीगढ़ हो गया था इसलिये मजाज़ अलीगढ़ आ गये और यूनिवर्सिटी में बारहवीं साइंस में दाखिला ले लिया। मजाज़ जिस क्लास में थे उसमें लड़कियों की तादाद बहुत ज़्यादा थी और हाज़िरी के वक्त प्रोक्सी धड़ल्ले से चलती थी। एक दिन मजाज़ ने अपने किसी दोस्त से कहा कि यार मेरी हाज़िरी बोल देना, उस ग़रीब ने जब हाज़िरी बोली तो उसकी आवाज़ लैक्चरर साहब के कान तक ठीक से नहीं पहुँची। उन्होंने गर्दन उठाकर पूछा कि असरारुल हक़ कौन है? वो लड़का खड़ा हो गया और जब उसका नाम आया तो वो ख़ामोश रहा। दूसरे दिन भी मजाज़ नहीं गये और उस ग़रीब को ही मजाज़ की हाज़िरी बोलनी पड़ी और खुद ग़ैरहाज़िर बना। जब मजाज़ को ये मालूम हुआ तो उन्होंने मुस्तकिल तौर पर क्लास जाना ही छोड़ दिया और वो बेचारा रोज़ाना उनकी हाज़िरी बोलता रहा और खुद ग़ैरहाज़िर बना रहा। काफी दिनों के बाद उसने मजाज़ को तलाश किया और कहने लगा कि अब तो ख़ता माफ़ कर दो और क्लास में आ जाओ ना! मैं इम्तिहान में हाज़िरी कम होने की वजह से नहीं बैठ सकूँगा।

यूनिवर्सिटी में मजाज़ साल भर के अंदर ही अंदर एक उभरते हुए शायर की हैसियत से मशहूर हो गये। उस दौर में ऐसे लड़कों को जिनमें कुछ तख़लीकी सलाहियत होती, बड़ी क़द्र व इज़्ज़त की निगाह से देखा जाता। उन्हें हर तरह से रियायतें दी जाती और हर तरह से उनका ख़याल रखा जाता। 1935 में जब रेडियो का महकमा पहली बार दिल्ली में क़ायम हुआ तो उसमें कुछ लोग जो एक्सपर्ट की हैसियत रखते थे, उन्होंने मजाज़ को नियुक्त किया और उन्हें "आवाज़" की सब एडीटरी सुपुर्द हुई। इस तरह मजाज़ रेडियो की मुलाज़मत में आ गये। लेकिन अभी एक साल भी न गुज़रा था कि वो वहाँ की राजनीति का शिकार होकर मुलाज़मत से निकाल दिये गये और अलीगढ़ वापस आ गये। उन्हें चाहिए तो यह था कि यूनिवर्सिटी से फायदा उठाते और किसी विषय में एम0ए0 कर लेते लेकिन अब वो किसी तरह की पाबंदी बर्दाश्त करने के लिए अपने आप को तैयार न कर सके और एक भटके हुए राहगीर की तरह ज़िंदगी गुजारने लगे। ये कहना कि इसके बाद उन्हें कोई नौकरी नहीं मिली, ग़लत होगा। उनके बाज़ बुजुर्ग अहबाब ने कोशिश करके दिल्ली की हॉर्डिंग लाइब्रेरी में उन्हें नौकरी दिलवा दी। लाइब्रेरी चार-पाँच बजे शाम से रात के 9-10 बजे तक खुलती थी और यहीं वक़्त मजाज़ की तफ़रीह यानी पीने-पिलाने के होते थे। रेडियो की 10-11 महीने की ज़िंदगी में वो शराब के आदी हो चुके थे। मैं उस ज़माने में 'आजकल' में सबएडीटर था और कभी-कभी शाम को दफ़्तर से हॉर्डिंग लाइब्रेरी मजाज़ से मिलने जाता और उन्हें इन्तहाई बोर और ज़िंदगी से बेज़ार पाता। कुछ महीनों के बाद एक दिन उन्होंने लाइब्रेरियन को ख़त लिखकर नौकरी से किनाराकशी अख्तियार कर ली। उस ख़त में उन्होंने लिखा था "Kindly dismiss me"। बेचारे लाइब्रेरियन ने उसी को उनका इस्तीफा समझ लिया। बंबई के सेक्रेटरिएट में भी 2-4 महीने इन्हें ट्रांसलेशन डिपार्टमेंट में काम मिल गया था। वहाँ आपने "On foot" का तरजुमा "पैदल" के बजाय 'पैरों पर' किया था और वाकय यह हो गया कि "वो नमक का बोरा पैरों पर लिये जा रहा था।" उस नौकरी का भी बहुत जल्द ख़ात्मा हो गया। मजाज़ को इसके अलावा भी नौकरियाँ मिल सकती थीं लेकिन उसका क्या किया जाये कि वो ख़ुद ही नौकरियों से भागने लगे थे।

मजाज़ को रेडियो की नौकरी ख़त्म हो जाने का काफ़ी ग़म था जिसको वो आमतौर से ज़ाहिर नहीं करते थे। वो अक्सर अलीगढ़ से दिल्ली आते और दो-चार दिन शराब व कबाब की महफ़िलों में अपना ग़म ज़ाहिर करके अलीगढ़ लौट जाते। मैं उन दिनों दिल्ली में प्रोफ़ेसर था। प्रोफ़ेसर अहमद अली जो एक अफ़साना निगार की हैसियत से तरक्की पसंद तहरीक के बानियों में समझे जाते थे लखनऊ यूनिवर्सिटी की मुलाज़मत छोड़कर दिल्ली आ गये थे। यहीं उन्हें कोई अच्छी सी नौकरी मिल गयी थी। मैं कभी-कभी उनसे मिलने जाया करता था। एक दिन उनकी दावत पर शाम को पहुँचा तो देखा कि मजाज़ भी मौजूद हैं और एक ख़ातून भी उस महफिल में शरीक हैं। जब यह महफिल गर्म हुई तो मुझे अहमद अली ने बेझिझक शेर सुनाने की फरमाइश की। मैंने बहुत दिनों से कुछ नहीं कहा था, बड़ी बेदिली से एक पुरानी ग़ज़ल सुना दी। उसके बाद मजाज़ से अनुरोध किया गया। मैंने पूछा, इधर तुमने कुछ कहा। मजाज़ बोले कि हाँ! एक नज़्म कही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वही सुनाता हूँ। शीर्षक है 'आवारा'। नज़्म इस तरह शुरू हुई—

शहर की रात और मैं नाशादो-नकारा फिरूँ
जगमगाती जागती सड़कों पे आवारा फिरूँ
ग़ैर की बस्ती है कब तक दरबदर मारा फिरूँ
ए ग़मे-दिल क्या करूँ ए वहशते-दिल क्या करूँ

मजाज़ पढ़ रहे थे और हम सब एक ध्यान से उनको सुन रहे थे। नज़्म ख़त्म हुई, थोड़ी देर के बाद हम दोनों अहमद अली की महफ़िल से चल दिये, सड़क पर आये। मजाज़ ने पूछा, नज़्म के बारे में क्या ख्याल है। मैंने कहा, मजाज़। फर्स्टक्लास नज़्म है। मजाज़ चलते-चलते रुक गये। उनका चेहरा सड़क की धुँधली रोशनी में चमक रहा था। कहने लगे जज़्बी यह तुम कह रहे हो? मैंने कहा हाँ! मैं कह रहा हूँ। वो जानते थे कि मैं दाद उसी वक़्त देता हूँ जब कोई शेर मुझे वाक़ई पसंद आ जाये। वरना आमतौर से खामोश रहता हूँ। सच पूछिये तो ये नज़्म उन कैफियात की देन है जिनसे मजाज़ रेडियो की नौकरी से निकाले जाने के बाद गुजरे थे। उनके लिए दिल्ली एक ग़ैर की बस्ती होकर रह गयी थी।

मजाज़ किसी किस्म की पाबंदी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। मुझसे अक्सर कहते थे कि कोर्स में अगर कोई बहुत दिलचस्प नॉविल हो तो वो भी नहीं पढ़ा जाता। यह हाल सिर्फ़ मजाज़ का ही नहीं, हर उस शख़्स का होता है जिसको फितरत तख़्लीकी सलाहियत बख़्शती है। वह आम आदमियों से कहीं ज़्यादा पढ़ता है लेकिन पढ़ता वही है जो उसका दिल चाहता है। बहुत कम लोग जानते हैं कि एक शायर जिसे आमतौर से लोग बेपरवाह और ग़ैर जिम्मेदार समझते हैं, इसमें आम लोगों से कहीं ज्यादा इसांनियत होती है, वो बहुत बड़े दिल का मालिक और इंसानी जज़्बे से भरा होता है। यह कदरें उसके लिए ऐनक बन जाती हैं। इसी ऐनक से वो हर चीज देखता है, इसी कसौटी पर वह अपने अशआर कहता है लेकिन इन सब खूबियों को लोग देख और समझ नही पाते। मैं अलग-अलग शायरों से मिलता रहता हूँ लेकिन आज तक कोई ऐसा शायर नहीं मिला जिसे फ़ितरत ने (प्राकृतिक) तख़्लीकी सलाहीयत से नवाज़ा भी हो और जिसमें ख़ुलूस व मुहब्बत, हमदर्दी और कुर्बानी--जैसी खूबियाँ न पायी जाती हों, और यही खूबियाँ शेर की तासीर का सबब बन जाती हैं।

मजाज़ के वालिद ने रिटायर होने के बाद लखनऊ ही में मकान्न बनवा लिया था जहाँ मजाज़ को खाने-पीने और रहने की सहूलियत मयस्सर (मौजूद) थी लेकिन अब वो शराब के इतने आदी हो चुके थे कि इसके बग़ैर वो बुझे-बुझे रहते थे। दिन-दिन भर लखनऊ के कॉफी हाउस में बैठे रहते कि शायद उनका कोई दोस्त उन्हें शराब की दावत दे। अगर किसी ने उनको बुला लिया तो फिर न पूछिये, कि उनका क्या हाल हो जाता था। ऐसा मालूम होता कि उनके बेजान ज़िस्म में जान पड़ गयी। लेकिन जब पीने बैठते तो इतनी पी जाते कि पिलाने वाला परेशान हो जाता। मजाज़ यूँ ही लड़खड़ाते मारे-मारे फिरते और रात गये किसी तरह अपने घर पहुँचते जहाँ कमरे में उनका खाना रख दिया जाता था। ज़्यादातर यह खाना यूँ ही रखा रहता। लखनऊ से बाहर कहीं मुशायरे में जाते तो वहाँ भी ज़्यादातर शराब में डूबे रहते। लोग उनसे शेर सुनने के लिये उन्हें खूब पिलाते और जब वह बेहाल हो जाते तो उन्हें छोड़कर चल देते। मजाज़ को होश न रहता वो कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं। इसी आलम में उनकी अक्सर रातें गुजरतीं। आखिरकार ज़्यादा शराब पीने की वजह से मजाज़ की सेहत खराब रहने लगी। अब वो ज़िंदा थे तो बस शराब के लिये। शायरी उनके नजदीक एक सानवी दर्ज़ा रखती थी। इस आलम में मजाज़ होश व हवास, खो बैठते, जुनून की सी कैफियत रहती थी। राँची में उनका इलाज हुआ। ठीक होने के कुछ समय बाद वो अलीगढ़ आये और मेरे यहाँ ठहरे। मुझे मालूम था कि मजाज़ ने अब शराब छोड़ दी है। मैंने मज़ाक में पूछा कि—मजाज़, मँगाऊ शराब तुम्हारे लिये? मजाज़ एकदम खामोश हो गये, ''नहीं''। मैंने कहा ''क्यूँ'', कहने लगे कि, 'इसकी वजह से बहुत ज़लील हुआ हूँ।'' कुछ अरसे बाद दिल्ली में एक मुशायरा था। मैं भी वहाँ बुलाया गया था। एक महफिल में जहाँ शराब चल रही थी, किसी ने पूछा—मजाज़ साहब आपको भी कुछ दूँ? मजाज़ कहने लगे-''बियर दे दो, बियर शराब थोड़ी है।'' कुछ लोगों ने रोकना चाहा, मगर मजाज़ अपनी बात पर अड़े रहे और वेटर से माँगने लगे। इसके बाद धीरे-धीरे वो फिर पहले की तरह पीने लगे और इसी ने उनकी जान ले ली।

आमतौर से लोग यही समझते हैं कि शराब का शायरी से ख़ास ताल्लुक है, यानी शराब के नशे में शेर खुद मुँह से निकलने लगते हैं और वो बहुत अच्छे होते हैं। यह तसव्वुर यूँ पैदा हुआ कि हमारे सब बड़े शायर ग़ालिब आदि शराब पीते थे। मैं भी शुरू में यह समझता था कि शराब शेर कहने में मददगार होती है। लेकिन जब मैंने एक बार 'जिगर' साहब से पूछा कि क्या ऐसा होता है तो उन्होंने फरमाया-''नहीं भाई, शराब के नशे में मैंने आठ-दस शेर कहे होंगे। उनमें भी सात-आठ शेर भूल गया।'' कुछ अरसे बाद 'जिगर' साहब ने भी शराब छोड़ दी। 'जोश' साहब सिर्फ़ शाम के वक्त शराब पीते थे। मैंने उनसे पूछा, कि क्या आप शराब पीकर शेर कहते हैं। फ़रमाया-कि भाई, मैंने जब भी शेर कहे, सुबह या दोपहर को कहे, शाम को शराब पीने के बाद इतना होश कहाँ रहता है कि आदमी शेर कह सके। शराब का शेर से कोई ताल्लुक नहीं। शायरी होश व हवास चाहती है और वह शराब के नशे में मुमकिन नहीं।

लखनऊ में शाम के वक़्त अक्सर 'सलाम मछली शहरी' को मजाज़ के साथ देखा जाता था। यह हज़रत भी शराब के आदी हो चुके थे। शाम को जब कोई मजाज़ को शराब की दावत देता तो यह भी साथ हो लेते। एक दिन मजाज़ ने सलाम से कहा कि यार, बरसों से तुम हमारे साथ पी रहे हो लेकिन खुद तुमने आज तक कभी नहीं पिलाई। सलाम बोले, अच्छा पहली तारीख को (सलाम रेडियो में नौकरी करते थे) मेरी तनख्वाह मिलती है, उसी दिन पिलाऊँगा। अब मजाज़ बेचारे पहली तारीख का इन्तज़ार करने लगे। ख़ुदा-ख़ुदा करके पहली तारीख आयी, दोपहर को कॉफी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाउस गये। सलाम से इत्तेफाक से मुलाकात हो गयी। मजाज़ ने कहा "आज पहली तारीख है। तुम्हें अपना वादा याद है।" सलाम बोले-हाँ, शाम को पाँच बजे यहीं कॉफी हाउस में मिलना। मजाज़ की जान में जान आयी। चार-पाँच घंटे किसी तरह से काटे। सलाम हस्ब वादा शाम को तशरीफ लाये, मजाज़ के चेहरे पर रौनक आ गयी। मजाज़ ने पूछा—चलें भाई।" बोले-"चलो"। सलाम मजाज़ को लिये हुए एक बार (शराब खाने) में आये। सलाम मजाज़ से कहने लगे कि मेरी जेब में 12 आने पड़े हुए हैं। आधा-आधा पैग तो हो जायेगा। मजाज़ उनकी सूरत देखने लगे, फिर बोले-हो जायेगा। दो-चार लोगों को और बुलाओ। इस बात के बाद भी सलाम ने मजाज़ का पीछा नहीं छोड़ा। शाम को उनके साथ ही लगे रहते थे और जो भी मजाज़ को पिलाता था वो उसके साथ हो लेते थे। एक दिन मजाज़ को एक साहब ने बुलाया। सलाम भी थे। मजाज़ बहुत देर तक अपने दोस्त के साथ टहलते रहे कि सलाम किसी तरह से चले जायें तो यह इत्मीनान से पियें लेकिन सलाम ने कोई कच्ची गोलियाँ तो खेली नहीं थी, वो मजाज़ के साथ चिपके रहे। मजाज़ ने तंग आकर अपने दोस्त से पूछा कि तुमने एटमबम का नाम सुना है? उन्होंने हैरत से मजाज़ की तरफ देखा और पूछा—"क्यों, सुना तो है।" कहने लगे, "एटमबम तुम्हें मालूम होगा हीरोशिमा पर गिरा था लेकिन यह सलाम हमा-शुमा पर गिरता है। मजाज़ का यह लतीफ़ा बहुत मशहूर हुआ।

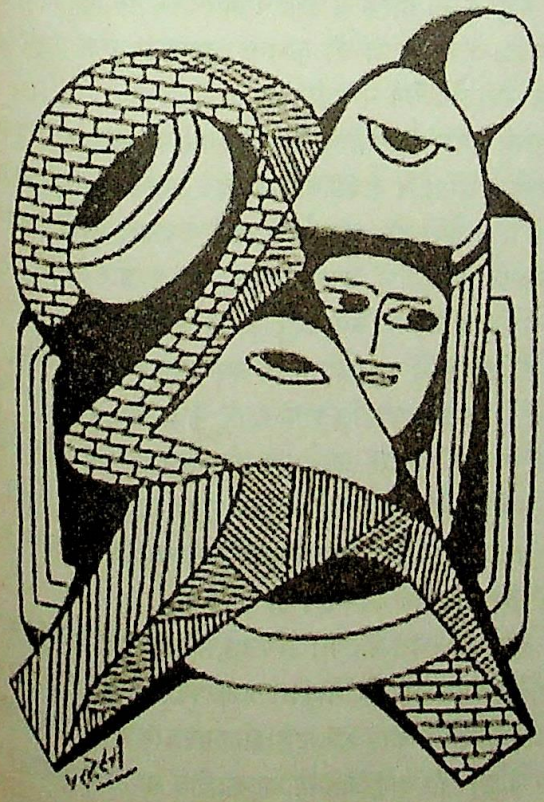

मैं पहले कहीं ज़िक्र कर चुका हूँ कि मजाज़ की नज़्म 'आवारा' जो उन्होंने 1937 में लिखी थी, बहुत मशहूर हुई। जहाँ जाते उस नज़्म की फरमाइश होती और यह उनकी शौहरत के उरूज का ज़माना है। लखनऊ में तो वो बहुत मशहूर थे। ख़ास कर तलबा (विद्यार्थियों) में। 1939 में सिब्ते हसन ने एक रिसाला 'नया अदब' निकाला जिसमें अली सरदार जाफ़री और मजाज़ भी शरीक थे, उसे काफ़ी शोहरत हासिल हुई। लोग आमतौर पर यह जानना चाहते थे कि आख़िर ये नया अदब है क्या और पुराने अदब से किस तरह से अलग है। उसके कर्ता- धर्ता सिब्ते हसन थे। अक्सर यह तीनों हज़रात नया अदब के दफ़्तर में देखे जाते। उस ज़माने में मुझे कुछ हालात की वजह से लखनऊ में फरहत उल्लाह अंसारी, फिरंगी महली के यहाँ रहना पड़ा। एक दिन रात को क्या देखता हूँ कि मजाज़ चले आ रहे हैं। कहने लगे, "जज़्बी, आज तुमसे कुछ बातें करने आया हूँ।" मैं सख़्त अज़ीयत में मुबतिला हूँ। समझ में नहीं आता क्या करूँ, क्या न करूँ। मेरे एक करीबी दोस्त मेरे हॉस्टल के एक कमरे में आकर मेरी शायरी पर रायजनी (राय देना) करते हैं और मुझे तीसरे दर्जे का शायर करार देते हैं... चार बजे रात तक मजाज़ यही बातें करते रहे। वो जानते थे कि उनके वो दोस्त जो कुछ कर रहे हैं, उसमें अहसासे कमतरी का काफ़ी दखल है। आखिर में कहने लगे, वो कितनी ही शायरी करें, जब भी मैं जरा हटकर कह दूँगा, ढेर हो जायेंगे।

मेरे और मजाज़ के ताल्लुकात बहुत ही अजीब थे, इतनी शदीद मुहब्बत शायद ही दो दोस्तों में होती हो। कभी-कभी यह भी होता कि किसी महफिल में मजाज़ से मेरी लड़ाई हो जाती और यह लड़ाई काफ़ी सख़्त हो जाती। यह लड़ाई आमतौर से रात को पीने पिलाने के बाद होती। लोग समझते कि अब हम दोनों एक दूसरे से कभी न मिलेंगे, लेकिन होता यह कि सुबह को हमें और मजाज़ को हाथ में हाथ डाले वे लोग देखते और हैरत में पड़ जाते। रात की बातें रात के साथ खत्म हो जातीं।

1955 में अलीगढ़ की एक मनहूस सुबह का ज़िक्र है कि मेरे एक शार्गिद मेरे यहाँ आये। कहने लगे-"जज़्बी साहब, आपको मालूम हुआ कि मजाज़ साहब का कल लखनऊ में इन्तक़ाल हो गया।" यह ख़बर तार के द्वारा घर वालों ने महमूद साहब को दी जो उस जमाने में रजिस्ट्रार थे और जिनसे मजाज़ के खुसूसी ताल्लुकात थे। न पूछिये, मेरा क्या हाल हुआ। इस ख़बर के ग़लत होने की दुआ माँगता हुआ महमूद साहब के घर पहुँचा तो मालूम हुआ कि यह ख़बर वाक़ई सच है। अब आप खुद समझ सकते हैं कि मेरा क्या हाल हुआ होगा—

ऐसे पैदा कहाँ हैं मस्तो-ख़राब
मैने माना के होशियार न था।

अनुवाद : फ़ातिमा ज़हरा
गुलाम फ़रीद साबरी
शोध छात्र, हिन्दी विभाग, अमुवि, अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मजाज़ : रूमानियत का शहीद

प्रो0 आले अहमद सुरूर

अपने समकालीन कवियों में जो लोकप्रियता मजाज़ को प्राप्त हुई वह कम लोगों के हिस्से में आयी है। मजाज़ ने लगभग पच्चीस साल शायरी की। इतने लंबे समय तक शायरी करने के बाद भी उनके काव्य संग्रह बहुत कम हैं। उनकी बेहतरीन नज़्में अधिकांशतः सन् 1935-45 के बीच की हैं। इतनी कम पूँजी लेकर बहुत कम लोग इतने लोकप्रिय और प्रसिद्ध हुए होंगे।

मजाज़ को शैक्षिक जगत में न तो कोई कमाल हासिल रहा और न ही उन्होंने किसी बड़े आंदोलन में कोई खास रुचि ली। मानसिक रूप से वे प्रगतिशील आंदोलन से जुड़े रहे। मजाज़ कोई असाधारण छात्र नहीं थे और न ही धार्मिक दृष्टि से सफल हुए। आने वाली नस्लों को शायद इस बात पर आश्चर्य हो कि मजाज़ अपने ज़माने में क्यों इतने लोकप्रिय हुए। शराब ने मजाज़ को कहीं का नहीं रखा। रेयाज़ ने तो रस्मी तौर से शराब से संबंधित यह शेर कहा था–

अच्छी पी ली ख़राब पी ली।
जैसी पायी शराब पी ली।।

मगर मजाज़ ने इस पर बराबर अमल किया। इसी कारण उनकी सेहत ख़राब हुई। उसी ने उनको दीवानगी की हद तक पहुँचा दिया। उसी ने अंत में उनकी जान ली। मृत्यु से पाँच महीने पहले मजाज़ मेरे साथ कश्मीर में थे। कश्मीर का प्राकृतिक सौंदर्य उस व्यक्ति को भी शायर बना देता है जो सौंदर्य शास्त्र से बिल्कुल अनभिज्ञ हो। मजाज़ उससे भी यूँ ही गुज़र गए।

मजाज़ की उम्र मृत्यु के समय पैंतालीस या छियालीस वर्ष की थी। मैं उन्हें सन् 1929 ई0 से जानता था जब वह और जज़्बी फर्स्ट ईयर साइंस में सेण्ट जांस कॉलेज आगरा में एडमिशन लेकर आये। मैं उनसे एक साल आगे था। कॉलेज के मुशायरे में दोनों सम्मिलित होते थे। शायद 1929 ई0 में मजाज़ को उस जमाने में टेनिस में विशेष रुचि थी। फ़ानी और मयकश अकबराबदी से उसी जमाने में उनका परिचय हुआ। फ़ानी ने उनकी कुछ ग़ज़लों पर इस्लाह भी दी थी। इसके बाद उन्होंने अपने शौक को ही अपना पथ-प्रदर्शक बनाया। मैं जब 1932 ई0 में एम.ए. करने अलीगढ़ आया, तब मजाज़ यहाँ सालभर पहले से मौजूद थे। साइंस उनसे नहीं चली इसलिए उन्होंने आर्ट में दाख़िला लिया और 1935 ई0 में बी0ए0 कर लिया। उस ज़माने में उनका अधिक समय दोस्तों के कमरों पर गुज़रता था। उनमें जॉनिसार अख्तर, अख्तर-उल-ईमान और हामिद जो टेनिस के अच्छे खिलाड़ी थे, याद आते हैं। दिसम्बर 1932 ई0 में अंजुमन हदीकतुशोरा का वार्षिक मुशायरा हुआ था, जिसकी अध्यक्षता सर रॉस मसूद, वाइस चांसलर ने की थी और जिसमें मौलाना हसरत, असग़र गोन्डवी और हफ़ीज जालंधरी भी सम्मिलित हुए थे। छात्रों के लिए उसमें नज्म का एक शीर्षक 'सुवहे बहार' रखा गया था। मजाज़ की नज्म पर उसकी रंगीनी और दिलकशी और पढ़ने वाले के पुरसोज़ तरन्नुम ने दाद भी प्राप्त की थी। ये मजाज़ का अलीगढ़ से पहला परिचय था।

जॉनिसार अख्तर से सबसे पहले मुझे मजाज़ ने ही मिलाया था। अलीगढ़ मैगजीन का संपादक बनने के लिए उसके प्रबंधक ख्वाजा मंजूर हुसैन साहब से उन्होंने ही मिलने पर जोर दिया था। मेरे संपादकत्व में मजाज़ की कविता 'नुमाइश', एक ग़ज़ल और इंकलाब उसी मैगज़ीन में छपी।

उसी ज़माने में अलीगढ़ में नये विचारों का ज़ोर आरंभ हुआ। डॉ0 अशरफ़ यूरोप से वापस आ गए थे। अख़्तर रायपुरी बी0ए0 करने के लिए आफ़ताब हास्टल में रहते थे। वहीं सिब्ते हसन भी थे। अख़्तर रायपुरी ने अपना निबंध 'अदब और ज़िंदगी' उसी जमाने में लिखा था, जब वह रशीद साहब के यहाँ रहते थे। सज्जाद ज़हीर ऑक्सफोर्ड में एक लंबे समय तक रहने के बाद अलीगढ़ भी आए थे। 'अंगारे' प्रकाशित होते ही जब्त हो चुकी थीं। मैंने मैगजीन में उसकी कठोर आलोचना की। ख्वाजा मंजूर हुसैन साहब उसके प्रबंधक थे। वह 'अंगारे' को कुछ साहित्यिक प्रयोग के कारण पसंद करते थे। मेरा निबंध उन्हें पसंद नहीं आया मगर उन्होंने उस पर कोई आपत्ति नहीं की।

जब 1935 ई0 में ऑल इण्डिया रेडियो की स्थापना हुई तब एक अंग्रेज़ फिलडन की नियुक्ति डायरेक्टर के पद पर हुई। वह असाधारण व्यक्ति था। सरकारी और दफ्तरी प्रबंध से वह बहुत अधिक बेज़ार और बुद्धिजीवियों का कद्रदान था। एक बार जब वह लाहौर में था, सूबे के गवर्नर से मिल चुका था और इकबाल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलने जा रहा था। अपने एक मिलने वाले से कहने लगा कि मैं लाहौर के सब से छोटे आदमी से मिल कर आ रहा हूँ और सबसे बड़े आदमी से मिलने जा रहा हूँ। उसने रेडियो में नियुक्ति के लिए अलीगढ़ से रशीद अहमद सिद्दीकी और लाहौर से प्रोफेसर बुखारी को आमंत्रित किया। आरंभ में जो नियुक्तियाँ हुई उनमें जेड.ए. बुखारी, आगा अशरफ और मजाज़ थे। मजाज़ के जिम्मे जो काम सौंपा गया वह रेडियो के रिसाले 'आवाज़' का संपादन करना था।

प्रो0 बुखारी कुछ समय बाद फिलडन के सहायक के रूप में दिल्ली आ गए। उनमें और दिल्ली वालों में विवाद आरंभ हो गया। आगा अशरफ ने मजाज़ को अपनी ओर कर लिया। आगा अशरफ का तो कुछ न बिगड़ा, बुखारी ने उन्हें पदच्युत कर दिया। मजाज़ को अलग कर दिया गया। रशीद साहब ने बुखारी को समझाया मगर उन्होंने एक न सुनी। उस ज़माने में मजाज़ साहित्यक वर्ग में बहुत लोकप्रिय हो चुके थे। उनकी मनोवृत्ति षड्यंत्र रचने वाली नहीं थी मगर उन्हें यह गलतफहमी हो चुकी थी कि साहित्यिक महत्व के कारण उनकी नौकरी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अशरफ साहब निकल गए। बेचारे मजाज़ अपने सीधेपन के शिकार हो गए।

1936 ई0 में अलीगढ़ में एक उर्दू कांफ्रेंस हुई। मौलवी अब्दुलहक साहब अन्जुमन का दफ़्तर दिल्ली में स्थानांतरित करना चाहते थे और अंजुमन के काम को फैलाना और बढ़ाना चाहते थे। यह बड़ा शानदार जलसा था। मुझे अच्छी तरह याद है कि मजाज़ आए तो दिल्ली की नौकरी खत्म हो चुकी थी। अपनी परिस्थितियों पर उन्होंने इकबाल का एक शेर पढ़ा—

अगर लुट गया एक नशेमन तो क्या गम।
मकामाते आहो-फुंगाँ और भी हैं।।

उस कांफ्रेन्स के दौरान यूनियन में विशिष्ट अतिथियों का स्वागत किया गया था। पंडित कैफ़ी ने 'उर्दू हमारी जुबान' के नाम से एक लेख पढ़ा। पंडित कैफ़ी का स्वर बहुत धीमा था। माइक का रिवाज उस समय नहीं था। हॉल में बहुत शोर हुआ। किसी तरह उनका भाषण समाप्त हुआ और संचालक ने ऐलान किया कि अब असरारूल हक मजाज़ एक कविता सुनाएँगे। मजाज़ ने अपनी दिलनशीं आवाज़ में 'नज़रे अलीगढ़' शुरू की। श्रोता आत्मविभोर हो गये। लोग झूम-झूम उठे, जब वह इस शेर पर पहुँचे—

आ-आ के हज़ारों बार यहाँ खुद आग भी हमने लगायी है।
फिर सारे जहाँ ने देखा है यह आग हमीं ने बुझाई है।।

तब हर ओर से उन्हें खूब दाद मिली। स्टेज पर डॉ0 ज़ाकिर हुसैन, अब्दुर्रहमान सिद्धीकी और मौलवी अब्दुलहक साहब विराजमान थे। ज़ाकिर साहब अचानक बोल उठे, मजाज़ साहब, फिर पढ़िए। उसी ज़माने में अलीगढ़ के कुछ लोग ओल्ड ब्वायज पर यह आरोप लगा रहे थे कि वे ख़िलाफत के जमाने की तरह फिर अलीगढ़ को हाँगे पहुँचाना चाहते हैं। मजाज़ के उस शेर में उसका जवाब भी था।

यह ज़माना मजाज़ की शायरी का बेहतरीन जमाना था। उनकी लोकप्रियता अपने शिखर पर थी। इस्मत चुगताई ने इसका उल्लेख अपने विशिष्ट अंदाज में किया है। मजाज़ में मानसिक दृढ़ता का अभाव आरंभ से था। दोस्तों की वाह! वाह!, सुंदर लड़कियों की दाद, मुशायरों में प्राप्त होने वाली प्रशंसा ने एक नशे की सी स्थिति पैदा कर दी। उसी ज़माने में शराब का भी शौक हो गया। मजाज़ अलीगढ़ से लखनऊ पहुँचे और कई साल वहाँ रहे। जोश से परिचय बढ़ा। वे अक्सर जोश के साथ दिखाई देने लगे। जोश का यह कर्तव्य था कि वे मजाज़ को बहकने न देते। मगर शराब का शौक रखने वाले जोश को अपनी ज़िम्मेदारी का कोई अहसास नहीं था। कुछ समय इसी तरह व्यतीत हुआ। अब तक दिल पर जो ज़ख्म आए थे वह जरा हल्के थे, मगर दिल्ली में एक घाव ऐसा गहरा लगा कि दर्द सारी उम्र न गया। आरंभ में उन्हें ढाढ़स बँधाने वाले और हमदर्दी करने वाले काफी लोग थे मगर मजाज़ इससे कुछ अधिक चाहते थे। अंत में निराशा हुई, मगर मजाज़ की ख़ूबी यह थी कि दुख के बावजूद उनके स्वर में कड़वाहट नहीं आयी। मजाज़ जब लखनऊ में थे तब जोश, सज्जाद ज़हीर, सरदार जाफरी, सिब्ते हसन, हयातुल्लाह अंसारी, डॉ0 अब्दुल अलीम, अहमद अली और एहतेशाम हुसैन का साथ रहा। उनमें जोश के अतिरिक्त शायरी किसी का ओढ़ना-बिछौना नहीं था। उन सबका एक गंभीर उद्देश्य था। 'नया अदब' के संपादक मण्डल में मजाज़ भी शरीक थे। यह पत्रिका प्रगतिशील आंदोलन का प्रचार-प्रसार करने वाली थी। फिर लखनऊ से 'हिन्दुस्तान' अखबार निकला। उसमें 'अंधेरी रात का मुसाफिर' और 'सरमायादारी' (पूँजीवाद) जैसी कविताएँ प्रकाशित हुईं। 'साकी' पत्रिका के वार्षिक अंक में 'आवारा' कविता प्रकाशित हुई। प्रगतिशील साहित्यकारों में उस समय विद्रोह की भावना जोश में थी। मजाज़ पर इन प्रगतिशील विचारों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। पुराने शायरों से परिचय और संबंध तथा आरंभिक शिक्षा संस्कारों ने उन्हें पूरी तरह विद्रोही होने से बचा लिया। नारेबाज़ी और राजनीतिक प्रोपगैंडा उनके यहाँ भी है मगर बहुत कम। जोश से वे प्रभावित जरूर हैं मगर उनके अंधभक्त नहीं थे। फैज़ ने ठीक कहा है कि वे इंकलाब के ढिंढोरची नहीं। उस दौर की सबसे अच्छी कविता 'आवारा' है। यह एक नस्ल के दर्द और दाग़ की कहानी है। उसकी आरजू और तलाश, उसकी महरूमी (वंचित होना) और खुशी का प्रतीक है। यहाँ व्यक्तिगत अनुभव एक दर्द की दास्तान बन गए हैं।

1942 ई0 तक मजाज़ की सरशारी (प्रसन्नता और संतुष्टि) का दौर रहा। उसके बाद ये नशा उतरने लगा। ज़िंदगी ने उनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदला लिया। वे दोस्त जो आरंभ में दिल खोलकर प्रशंसा करते थे, कन्नी काटने लगे। मजाज़ अब एक साधन थे। शायरी से मन की आग बुझे तो बुझे, पेट की आग तो नहीं बुझती। इसलिए तंग आकर नौकरी की तलाश शुरू की। अंत में हार्डिन्ग लाइब्रेरी दिल्ली में एक जगह मिल गयी। एक तरफ मुशायरे की लोकप्रियता और ऊँचे से ऊँचे घरानों की वाह! वाह! थी, दूसरी तरफ़ एक क्लर्क के जीवन की समस्याएँ। मजाज़ बेचारे का क्या कसूर। एक ही समय में आसमान पर उड़ान और वहाँ से फ़ौरन धरती पर पटक दिया जाना। फिर आसमान की सैर और फिर कठोर जिम्मेदारियों का बोझ। एक नाज़ुक तबियत का कमज़ोर दिल युवक जिसके दिल पर कितने ही ज़ख्म थे और जिसकी जेब खाली थी। मगर जो सभ्यता और संस्कार के स्तर को कभी विस्मृत नहीं कर सकता था, कैसे सहन करता। इस कारण दिमाग में खलल (विकार) शुरू हुआ। बातें और बेथकान बातें करने का मर्ज़ पैदा हो गया। उनमें कुछ अपनी तारीफ़ थी, कुछ लतीफे थे और कुछ शेरो अदब पर उलटी सीधी बातें थीं। कुछ दिन नैनीताल में रहने के बाद तबियत संभली। तबियत में एक ठहराव पैदा हुआ। बंबई का रुख़ किया। फिल्मी गानों से बहुत से शायर अच्छा खासा कमा लेते थे। मगर मजाज़ उस दुनिया की कारोबारी ज़िंदगी और अवसरवाद के लिए नहीं बने थे। इसलिए वहाँ भी नाकामी का मुँह देखना पड़ा। उस परिस्थिति में शराब एक पनाह बन गयी। अब मजाज़ एक पक्के शराबी बन चुके थे। मुशायरों में आते तो अक्सर नशे में चूर होते। जो लोग शेर सुनने आते थे, उन्हें मजाज़ की नशे में की जाने वाली हरकतें भी सहनी पड़ती थीं। मगर वह तबियत से इतने नेक, मुहब्बत करने वाले और संस्कारी थे कि उनकी नशे की आदत से उन्हीं को हानि पहुँची, किसी दूसरे को नहीं।

जुलाई 1955 ई0 में रेडियो श्रीनगर के एक मुशायरे में मैं भी गया और मजाज़ भी। दोस्तों ने मजाज़ की इस तरह देखभाल की जैसे किसी बहुत कीमती और नाजुक चीज की की जाती है। हम लोग उन्हें गुलमर्ग और श्रीनगर के शाही बाग़ात दिखाने ले गए। मजाज़ इतने बुझ गए थे कि उन पर किसी चीज का असर नहीं होता था। निशात और शालीमार में फव्वारे बहुत हैं। उन फव्वारों में पानी इतने जोर से चलता है कि अगर कोई नीबू फव्वारे के मुँह पर रख दिया जाय तो कुछ देर के लिए पानी की चोट से हवा में लटक जाता है। एक दोस्त यह खेल रहे थे कि एक पंजाबी औरत ने कहा "अल्लाह की कुदरत है"। मजाज़ को इस वाक्य ने बहुत प्रसन्नता दी। शालीमार और निशात के सौंदर्य से वे इतने खुश नहीं हुए जितना उस लतीफे जैसे वाक्य से हुए।

मजाज़ से आख़िरी मुलाकात नवंबर के आख़िरी हफ़्ते में हुई। मैं अलीगढ़ आने वाला था। एक दावत में मजाज़ भी थे। कहने लगे "सुरूर साहब यह बहुत अच्छा है कि आप अलीगढ़ जा रहे हैं। वहाँ जो बात है कहीं नहीं। मैं भी आऊँगा। मुझे 'नज़रे अलीगढ़' भी सुनना है जिसे यूनियन वालों ने अपना तराना बनाया हैं। जरा यह छात्रों का उर्दू कन्वेंशन हो जाय तो मैं भी अलीगढ़ का कार्यक्रम बनाऊँ"। छात्रों का कन्वेंशन हुआ। मुशायरे में मजाज़ ने बड़े जोश से अपना कलाम सुनाया। दूसरे दिन इतनी शराब पी ली कि उनके दिमाग की रगें फट गयीं। अलीगढ़ आने से पहले वे दूसरी दुनिया में पहुँच गए। यह है उर्दू के कीट्स का दुखांत।

मजाज़ के व्यक्तित्व के संबंध में भी अपने विचार व्यक्त कर दूँ। मजाज़ का पूरा जीवन शायरी में डूबा था। ख्वाबों की दुनियाँ का रहने वाला जीवन की कठोर समस्याओं का इलाज मजबूरन शराब में ढूँढता था। आरंभिक शिक्षा और संस्कार ने उसे शराफ़त, सभ्यता और सामाजिक सरोकार के उच्च रूप प्रदान किए। तबियत में इतनी मज़बूती नहीं थी कि उनकी ख़ातिर या उनके मेयारों की ख़ातिर जो एक शैक्षिक और साहित्यिक आंदोलन से संबंध के कारण उसने स्वीकार कर लिए थे, वह अभ्यास करता। वह मतवाला था। उसमें आशिक का जोश था। एक योद्धा के चरित्र की विशेषता नहीं थी। उसके आरंभिक संस्कारों ने जो स्वरूप उसके दिल पर अंकित कर दिए थे, उन्हें वह विस्मृत नहीं कर सका। नये रंग का जो नशा चढ़ गया था, वह उतर नहीं सका। इस कशमकश ने उसे जीवन के युद्ध में अपना रास्ता निकालने के बजाय नाकामी और नामुरादी के रास्ते पर लगा दिया। मगर उसके चरित्र की ख़ूबी यह है कि वह एकांतवासी, चिड़चिड़ा ओर निराश कभी न हुआ। हमेशा नाकामियों को झेलने या भुलाने की कोशिश करता रहा। कभी लतीफों में कभी शराब में।

मजाज़ के पास जीवन और साहित्य की एक स्पष्ट समझ थी। उसने न तो अध्ययन से उसे आगे बढ़ाया और न ही ज़िंदगी की आग में कूदकर उसे गुलज़ार बनाया। वह बड़े हसीन ख्वाब देखता था। कुछ परिस्थितियों का भी अहसास था मगर ख्वाबों के इस रसिक को जब परिस्थितियों ने चूर-चूर कर दिया तो उसने पलट कर कोई वार नहीं किया। खामोशी से हथियार डाल दिए। मैं इसी कारण उसे रूमानियत का शहीद कहता हूँ।

साधारणतया रूमानियत का अर्थ प्रेम से लगाया जाता है। वास्तव में यह कल्पनालोक में विचरण करना है। यूँ तो अदब ज़िंदगी का कल्पनात्मक चित्रण है, मगर जब कल्पना की लय इतनी बढ़ जाय कि यथार्थ या बुद्धि का दामन हाथ से छूट जाय तब रूमानियत का जनम होता है। यह लय सबसे पहले अदबे-लतीफ (स्वच्छंदतावादी साहित्य) में मिलती है। मजाज़ की रूमानियत में इंकलाब के स्वप्न भी शामिल हैं। मजाज़ के यहाँ रूमानियत कहीं-कहीं जोश की तरह विद्रोहात्मक घन गरज के रूप में अभिव्यक्त होती है, मगर उसमें भी वे अपने उद्देश्य से नहीं हटते। इसके अतिरिक्त वे कुछ सामाजिक समस्याओं का भी गहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहसास रखते हैं और उन्हें शेर में अभिव्यक्त करते हैं। मजाज़ के स्वर में अख़्तर शीरानी की सी आत्मसमर्पण की भावना के साथ-साथ काव्यात्मकता और सरसता कुछ अधिक है। जोश के काव्य में कठोरता और नीरसता का बोध होता है। असाधारण कल्पना शक्ति के होते हुए भी अतारतम्यता मिलती है जबकि मजाज़ के काव्य में तारतम्यता है जोश एकान्त मे भी बहुत ऊँची आवाज़ में बातें करते हैं लेकिन मजाज़ भरी महफिल में भी दिलनशीं नरमी से अपनी बात कह देता है।

अपने समकालीन शायरों में मजाज़ की शायरी में क्लासिकल शायरों की सी शालीनता और सादगी मिलती है। दूसरी विशेषता यह है कि उनके काव्य में शब्द का सौंदर्य और भाषा की नज़ाकत अन्य से बहुत अधिक मिलता है। मजाज़ ने रूदौली के वातावरण और फ़ानी की सोहबत से एक खामोश असर लिया है। यह प्रभाव उनके काव्य में बड़ी सुंदरता से अभिव्यक्त हुआ है। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके यहाँ रूपक और उपमा का जो प्रयोग मिलता है वह मजाज़ की अद्‌भुत कल्पना शक्ति का बोध कराते हैं। मजाज़ की आरंभिक नज्में जैसे-नुमाइश, नज़रे खालिदा, इंकलाब और रात और रेल इन्हीं विशेषताओं के कारण विशिष्ट बन जाती हैं। नुमाइश में एक रंगीन वातावरण का चित्र शब्दों द्वारा अंकित किया गया है। इंकलाब की शैली में एक ज़ोर है। 'रात और रेल' में एक अद्‌भुत सौंदर्य दिखायी देता है। रेल की गति और उसकी नित नयी फिज़ा का गत्यात्मक चित्रण किया गया है। नज़रे-खालिदा भी मजाज़ की प्रसिद्ध कविताओं में से एक है। इस में खालिदा खानम के व्यक्तित्व के समुद्र को मजाज़ ने एक मिसरे (पंक्ति) के गागर में बंद कर दिया है–

रूहे-इशरत-गाहे साहिल, जाने-तूफाने-अजीम।

इसी तरह 'रात और रेल' का यह शेर देखिए-

तेज झोंकों में वह छम-छम का सुरूदे दिलनशीं।
आँधियों में मेंह बरसने की सदा आती हुई।
नौनिहालों को सुनाती मीठी-मीठी लोरियाँ।
नाज़नीनों को सुनहरे ख्वाब दिखलाती हुई।
राशा बरअंदाम करती अंजुमे-शब ताब को।
आशियाँ में तायरे-वहशी को चौंकाती हुई।
डालती बेहिस चट्टानों पर हिक़ारत की नज़र।
कोह पर हँसती फ़लक को आँख दिखलाती हुई।

मजाज़ की चौथी विशेषता यह है कि उसने नौजवानों की दृढ़ता, सरफ़रोशी की भावना, जोश, फक्कड़ाना आन-बान, बेबाकी और स्वच्छंदता को केवल सौंदर्य उत्पन्न करने के लिए नहीं बल्कि जीवन को ओजपूर्ण बनाने के लिए अपने काव्य में प्रयुक्त किया है। एक तरफ़ वे नौजवानों में एक योद्धा का जोश उत्पन्न करना चाहते हैं तो दूसरी ओर स्त्रियों को भी जीवन के युद्ध में सम्मिलित होने का आह्वान करते हैं। वे नौजवानों से कहते हैं–

जो हो सके हमें पामाल करके आगे बढ़
न हो सके तो हमारा जवाब पैदा कर
बहे जमीं पे जो मेरा लहू तो गम मत कर
इसी जमीं से महकते गुलाब पैदा कर
तू इंकलाब की आमद का इंतजार न कर
जो हो सके तो अभी इंकलाब पैदा कर

मजाज़ युवतियों को संबोधित करते हुए कहते हैं-

तेरे माथे पे ये आँचल बहुत ही खूब है लेकिन
तू इस ऑचल से एक परचम बना लेती तो अच्छा था।

मजाज़ वास्तव में सौंदर्य के उपासक हैं। यूँ तो वह लैलाए इंकलाब का भी मजनूं है मगर सौंदर्य की हर अदा का इशारा समझने में निपुण हैं। उसकी सौंदर्य उपासना में प्रेमी का जुनून है। सौंदर्य उसके लिए सब कुछ है। उसने सौंदर्य को हर स्थिति में देखा ढूँढ़ा, चाहा और पाया है। इस दृष्टिकोण ने उनके अशआर में एक मस्ती भर दी है। शब्दों में जादू पैदा कर दिया है। अशआर को पिघला हुआ लावा बना दिया है।

मेरी दृष्टि में मजाज़ की श्रेष्ठ नज्में आवारा, ख्वाबेसहर और नजरे-अलीगढ़ हैं। आवारा में रूमानियत की पूरी दर्द की दास्तान समा गयी है और इस दास्तान में एक पूरी नस्ल के अफ़साने का दुख है।

मजाज़ की नज़्मों के मुकाबले में उनकी ग़ज़लों का महत्व कम है मगर उनकी ग़ज़लों में भी हमें सुरुचि प्रेमी का साहस अनुभूतियों का सरस चित्रण और दर्द की दास्तान बहुत कुछ देखने को मिलता है।

मजाज़ के जीवन और शायरी में रूमानियत की एक लहर दिखायी देती है। तिफ़्ली के ख्वाब से ऐतराफ तक एक विशेष क्रमबद्ध दास्तान है। मजाज़ की रूमानियत में जो जानदार, स्वस्थ और शालीन हिस्सा है उसका मूल्य रहेगा। लेकिन उनकी पूरी शायरी भी हमारे अनुभवों और हमारी दृष्टि को एक दिशा और सीख देने की योग्यता रखती है। वह एक चमकते सितारे की भाँति उर्दू साहित्य के आसमान पर उभरे। उसका प्रकाश लुभाने वाला था। देखते-देखते सस्ती प्रशंसा, मन का दृढ़ न होना और सपनों की इस व्यावसायिक दुनिया में कोई मूल्य न होने के कारण इस शोले को ज़माने की नज़र खा गयी। मगर उसने हमें दर्द व दाग़, आरजू और तलाश का जो ख़ज़ाना दिया है उससे हम कभी इंकार नहीं कर सकते।

अनुवादः डॉ0 तसनीम सुहेल
रीडर
हिन्दी विभाग
ए0एम0यू0 अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मजाज़ की नज़्म 'आवारा' : एक विश्लेषण

अली अहमद फ़ातमी

मजाज़ की नज़्म 'आवारा' प्रगतिशील कविताओं में ही नहीं, उर्दू की श्रेष्ठ नज़्मों में से एक है। इसके कई प्रमाण और साक्ष्य हैं। पहली नज़र में ही यह कविता एक ऐसे नाकाम इन्सान की आवारगी और मानसिक बिखराव की सर्जनात्मक प्रस्तुति है, जो अपने इश्क़ में नाकाम है, जिसे नौकरी से भी हटा दिया गया है और जो दिल्ली की सड़कों पर आवारागर्दी करने पर मजबूर है। दूसरा दृष्टिकोण रूमानी साम्यवाद या साम्यवादी रोमान का है, जिसका विधिवत् प्रारंभ इस कविता से होता है, जिसे उर्दू में रूमानी सरकशी या दृष्टिकोणात्मक विद्रोह का शुभारंभ समझा जा सकता है। इस कविता को अच्छी तरह समझने और किसी निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए दोनों परिदृश्यों को समझ लेना आवश्यक है।

1935 ई0 में मजाज़ अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी से बी0 ए0 करने के बाद दिल्ली के ऑल इंडिया रेडियो में नियुक्त हो गये। उस समय उर्दू के बड़े-बड़े कवि और साहित्यकार रेडियो से जुड़े हुए थे। मजाज़ को नौकरी तो मिली, साथ ही उन सब कवियों और साहित्यकारों का साथ भी मिला, दिल्ली जैसा बड़ा शहर मिला। अभी नौकरी को केवल एक ही वर्ष हुआ था कि रेडियो के साहित्यकारों के बीच पंजाबी और यू.पी. की सियासत और खींचातानी शुरू हो गयी। यह खींचातानी चश्मक बुख़ारी और आग़ा अशरफ़ के बीच हुई। अशरफ़ ने मजाज़ को अपना समर्थक बना लिया। आले अहमद सुरूर लिखते हैं : "आग़ा अशरफ़ का तो कुछ नहीं बिगड़ा, बुख़ारी ने उनका पतन कर दिया। मजाज़ को अलग कर दिया गया। रशीद साहब ने बुख़ारी को समझाया, मगर उन्होंने एक न सुनी।

अली सरदार जाफ़री ने भी 'लखनऊ की पाँच रातें' में लिखा है :

"हँसी-हँसी में पंजाबी और यू. पी. वालों की गुटबंदियाँ शुरू हो जाती हैं। हफ़ीज़ जालंधरी और मजाज़ में चोटें चलने लगती हैं। हफ़ीज़ ने मज़ाक़ में कोई कविता लिखी, मजाज़ ने उसी मूड में जवाब दिया। एक शेर (कविता की पंक्ति), जो हफ़ीज़ से संबंधित था, उसका सबने आनंद उठाया—

वहाँ का हुस्न तो सब कुछ है माना
मगर ख़ुद इश्क़ तो जालंधरी है।

लेकिन ये दोस्ताना बैठकें अधिक दिनों तक कायम न रह सकीं। मामलात न जाने कैसे बिगड़ गये। अंत में मजाज़ को रेडियो की नौकरी से इस्तीफ़ा देना पड़ा।"

नौकरी छोड़ना मजाज़ के मानसिक और सामाजिक जीवन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। उसी दिल्ली में एक भावनात्मक घटना भी घटित हुई। वे एक विवाहित स्त्री के प्रेम में गिरफ़्तार हो गये। इश्क़ जब तक ज़ाहिर नहीं हुआ था, मजाज़ की उस घर में बड़ी आव-भगत थी; लेकिन जैसे ही राज़ खुला, मजाज़ के लिए उस घर के दरवाज़े बंद हो गये। इस घटना ने मजाज़ के कोमल और संवेदनशील मानस पर गहरा प्रभाव डाला। आले अहमद सुरूर ने लिखा है-" अब तक जितने घाव मिले थे, वे हल्के थे; मगर दिल्ली में एक ऐसा गहरा घाव लगा कि उसकी कसक सारी उम्र नहीं गयी।" मजाज़ के एक और निकटतम मित्र फ़रहतुल्लाह अंसारी की बातें भी ग़ौरतलब हैं:

"...यह स्थिति थी कि मजाज़ के बिना चाँदनी रात भी अँधेरी रात थी। जब तक मजाज़ के क़दम विश्रामगाह (ऐवानेइशरत) तक न पहुँचते थे, वहाँ नींद नहीं आती थी। उसकी प्रतीक्षा में सारी-सारी रात आँखों में कट जाती थी। उसकी पंक्तियाँ गुनगुनायी जाती थीं, उसकी धुन उतारी जाती थी, उसके कंधे पर सिर रख दिया जाता था, या मजाज़ के समय की ग़ज़ल गायकी में रुस्वाइयाँ झलकने लगीं। उसे आवारा, मजनू जैसे नामों से संबोधित किया जाने लगा। नसीहतें की जाने लगीं।अंत में दरबान को यह आदेश हुआ कि मजाज़ फाटक में क़दम न रखने पाये।"

'आवारा' संबोधन ही 'आवारा' कविता का विषय और उसे लिखने का सबसे बड़ा कारण बना। वह दिल्ली, जिसकी रौनक़ और जगमगाहट में मजाज़ साँस लेते थे, कविता कहते थे, वही दिल्ली मजाज़ के लिए अचानक सुनसान होकर रह गयी और 'आवारा' कविता आत्मज्ञान की स्थिति से गुज़रते हुए सर्जनात्मक साँचे में ढल गयी, पहले सहज भाव से और फिर चिंतन के कोण से। सहज और चिंतन की बात इसलिए कह रहा हूँ कि मैं कविता को इन्हीं दो भागों में बँटा देखता हूँ। पहला भाग सहज भाव से, जो दिल के उन घावों से संबंधित है, जिसका नाम प्रेम है, दूसरा चिंतन, जो अलीगढ़ से दिल्ली तक फैला हुआ है, जिसका नाम साम्यवाद है। कविता का प्रारंभ शहर के अचानक अजनबी बन जाने और परायों की बस्ती लगने से होता है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहर की रात और मैं नाशाद-ओ-नाकारा फिरूँ
जगमगाती, जागती सड़कों पे आवारा फिरूँ
ग़ैर की बस्ती है, कब तक दर-बदर मारा फिरूँ
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ? ऐ वहशते-दिल क्या करूँ?

आवारगी आमतौर पर वीरानों में हुआ करती है। लेकिन, यहाँ स्थिति विपरीत है। जगमगाती, जागती सड़कों पर आवारा फिरना अधिक कष्टप्रद हुआ करता है। रोशनी की लकीर तीर बनकर दिल और जिगर में पेबस्त होती है और तीसरी पंक्ति में 'ग़ैर की बस्ती' का प्रयोग उजाड़ भावनाओं और अनुभूति की भरपूर अभिव्यक्ति करता है। फिर चौथी पंक्ति, जो प्रत्येक छंद की टीप की पंक्ति बन जाती है, प्रश्नवाचक भी है और विचलित भी। इस ढली हुई पंक्ति में प्रश्न, व्यथा और कसक है। उसने एक प्रकार का जादुई लोच और लयात्मकता भर दी है। दूसरे जो तड़प और छटपटाहट है, बेबसी और बेचैनी है, उसने उस जादुई लोच और लयात्मकता को सामाजिक पृष्ठभूमि और सार्थकता से भर दिया है। पूरा मिसरा (चरण) बेचैनी और विद्रोह का अर्थपूर्ण सर्जनात्मक आवरण बन गया है। दूसरे छंद में भी यही स्थिति है, जो परिस्थिति को गहराती है। मगर, तीसरा छन्द :

ये रुपहली छाँव, ये आकाश में तारों का जाल
जैसे सूफ़ी का तसव्वुर,जैसे आशिक़ का ख़याल
आह लेकिन कौन जाने, कौन समझे दिल का हाल
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ? ऐ वहशते-दिल क्या करूँ?

कविता एक नहीं, दो क़दम आगे बढ़ती है। 'सूफ़ी का तसव्वुर' और 'आशिक़ के ख़याल' से कविता की सुंदरता और अर्थवत्ता में बहुत अधिक वृद्धि होती है। कवि ने कल्पना और विचार—दोनों में जिस अंदाज़ से रुपहली छाँव और तारों के जाल का सर्जनात्मक पहलू से सामंजस्य स्थापित किया है, वह अत्यधिक प्रभावी है। और, उसके बाद यह पंक्ति—'आह लेकिन कौन जाने, कौन समझे दिल का हाल'—इश्क़ की असफलताओं, जुदाई के दर्द तथा बदनामी की तड़प—सबने मिलकर भीतर की तड़प को जटिल और टुकड़े-टुकड़े कर दिया है, जिसको न तो सूफ़ी की कल्पना समझ सकती है और न आशिक़ का मात्र सोच। यह वो स्थिति है जब तारों के टूटने, फुलझड़ियों के छूटने से भी सीने में हूक-सी उठने लगती है और दिल पर चोट लगती है। कवि के अनुसार :

मुहब्बत में इक ऐसा वक़्त भी आता है इन्सां पर
सितारों की चमक से चोट पड़ती है रगे-जाँ पर

मजाज़ इसी स्थिति से गुज़र रहे हैं। छटपटाहट और तड़प की इस गंभीर स्थिति में मजाज़ जैसा कवि ही मयख़ाने में पनाह ले सकता है, किसी दूसरी प्रेमिका की बाँहों का सहारा भी मिल सकता है। मगर, इस समय मजाज़ के लिए दोनों राहों के दरवाज़े बंद हैं। नीरवता ही पनाहगाह (शांति-स्थान) है। तभी तो कवि कहता है :

रात हँस-हँस के ये कहती है कि मयख़ाने में चल
फिर किसी शहनाज़े-लालारुख़ के काशाने में चल
ये नहीं मुम्किन तो फिर, ऐ दोस्त वीराने में चल
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ? ऐ वहशते-दिल क्या करूँ?

आले अहमद सुरूर ने एक लेख में बड़ा महत्त्वपूर्ण वाक्य लिखा है—"इन तमाम बेचैनीपूर्ण घटनाओं के बावजूद मजाज़ की विशेषता यह थी कि मायूसी के बाद भी शब्दों में कड़वाहट नहीं आयी। "यहाँ कड़वाहट से अभिप्राय मायूसी है—अन्यथा कड़वाहट तड़प और विद्रोह का अभिन्न अंश होती है और इस कविता के दूसरे भाग में जगह-जगह बिखरी हुई है। यह बिल्कुल सच है कि मजाज़ बुनियादी तौर पर रूमानी स्वभाव के कवि थे। एक विशेषता और थी, जो उन्होंने फ़ानी के व्यक्तित्त्व और उससे भी अधिक अख़्तर शीरानी की काव्य-कला से सीखी थी, वह है—ग़म को भी लोच और लयात्मकता में ढाल देना। यह उन्होंने उर्दू की क्लासिकी शायरी से भी सीखा होगा, जहाँ दुख आनंदमय स्थिति में बदल जाता है। यही कारण है कि दिल्ली की उन सभी दुखद घटनाओं के बाद भी 'आवारा' जैसे असाहित्यिक विषय से कही गयी कविता ने रूमानियत और लयात्मकता का दामन नहीं छोड़ा, बल्कि और आगे बढ़कर कविता में एक हल्का-सा मोड़ इस प्रकार आता है कि इतने दुख और कष्टप्रद स्थिति में भी वे इस प्रकार के छंद कहते हैं, जो लयात्मकता, साम्यवादी रूमानियत तक की यात्रा को रूपायित करते हैं, जो अलीगढ़ के आधुनिक और हक़ीक़ी वातावरण से मिला। वे यह कह उठते हैं :

रास्ते में रुक के दम लूँ, ये मेरी आदत नहीं
लौटकर वापस चला जाऊँ, मेरी फ़ितरत नहीं
और कोई हमनवा मिला जाए, ये क़िस्मत नहीं
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ? ऐ वहशते-दिल क्या करूँ?

मजाज़ का यह उत्साह जीवन और समाज के प्रति कुछ जाने-अनजाने संबंध का साक्षी है। मजाज़ के हवाले से यह बात अजीब-सी लगती है। तभी तो फ़िराक़ ने एक टिप्पणी में कहा था—"समकालीन कविता में मजाज़ एक आश्चर्यजनक प्रतीक की हैसियत रखता है।"

कविता की भाषा में इसे आप आदत, स्वभाव आदि कह सकते हैं। मजाज़ ने स्वयं इन शब्दों का प्रयोग किया है। मगर, वास्तव में यही रूमानियत है, जहाँ आशा और साहस का दामन नहीं छूटता; इसे मजाज़ का स्वभाव कम, उस समय की वास्तविकता या साम्यवादी रूमानियत का प्रादुर्भाव कह सकते हैं।

वैसे तो मजाज़ ने अपने काव्य का प्रारंभ ग़ज़ल से किया था। आगरा में रहते हुए जब उन्होंने अपनी कुछ ग़ज़लों को फ़ानी और मैकश को दिखाया, तो फ़ानी ने सुझाव दिया कि मेरे शिष्य मत बनो। तुम्हारा रुझान अलग है। इसी रुझान ने अलीगढ़ में एक नया रंग पाया। उस समय अलीगढ़ साहित्य और ज्ञान, तरक्क़ी और बदलाव का केंद्र बना हुआ था। कुर्रतुल-ऐन हैदर के अनुसार:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह वो ज़माना था, जब कलकत्ता, इलाहाबाद, लखनऊ और अलीगढ़ के विश्वविद्यालय देश के ज्ञान और साहित्य तथा सांस्कृतिक जीवन के केंद्र बने हुए थे। जब क़ाज़ी नज़रुल इस्लाम, हरेन्द्रनाथ चटर्जी और अमृता शेरगिल के नामों में अजीब तरह का आकर्षण मालूम होता था। जब देश में प्रतिदिन नित नये दीप जलते जा रहे थे।"

सज्जाद ज़हीर लिखते हैं :

"वो समय मानवीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण दौर में से है। समाज की सारी इमारत जर्जर है। रीति-रिवाज़, धर्म-मिल्लत, आर्थिक और राजनैतिक संस्थाएँ, संस्कृति और सभ्यता का संपूर्ण ढाँचा—यह सब इन्क़लाब के भंवर में फँस चुका था।"

आले अहमद सुरूर ने विशेष रूप से अलीगढ़ के विषय में लिखा है :

"उसी समय में अलीगढ़ में नयी विचारधारा प्रारंभ हुई। डॉ0 अशरफ़ यूरोप से वापस आ गये थे। अख़्तर रायपुरी 'आफ़ताब हॉस्टल' में रह रहे थे, वहीं सिब्ते हसन भी थे। अख़्तर रायपुरी ने अपना लेख 'अदब और ज़िंदगी' उन्हीं दिनों में लिखा। सिब्ते हसन के कुछ अनुवाद, हयातुल्लाह अंसारी की कहानियाँ भी अलीगढ़ मैगज़ीन में छपीं। सज्जाद ज़हीर ऑक्सफ़ोर्ड में रहने के बाद अलीगढ़ भी आये थे। 'अँगारे' छपते ही ज़ब्त हो चुकी थी। नई विचारधारा का प्रभाव मजाज़ पर भी पड़ा और 'नुमाइश' तथा 'सुब्हे-बहार' का लेखक क्रांति का अगुआ बन गया।"

'आवारा' दिल्ली की घटनाओं से प्रभावित होकर लिखी गयी, लेकिन वे मजाज़, जो परंपरागत ग़ज़लें कहते थे, उसी अलीगढ़ और देश के वातावरण से प्रभावित होकर 'आवारा' से पहले 'इन्क़लाब', 'नज़्रे ख़ालिदा', 'अँधेरी रात का मुसाफ़िर' और 'नन्ही पुजारन' जैसी कविताएँ कहकर अपनी दृष्टि और चिंतन की अभिव्यक्ति कर चुके थे। वे इन सब विचारों का प्रभाव अपने हिसाब से स्वीकार कर रहे थे। मंज़र सलीम ने लिखा है :

"मजाज़ अपने सारे लाउबालीपन और बेलगाम संकल्प के बावजूद, बल्कि शायद इसी कारण, उन सारी घटनाओं और बदलती हुई ज़िंदगी से प्रत्यक्ष प्रभावित होते रहे और चिंतन के दीवालियेपन के शिकार नहीं हुए। यह सच है कि उन्होंने कम लिखा, लेकिन जो कुछ लिखा, वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि मानसिक और वैचारिक विकास उनके काव्य के अंतिम दौर तक रहा।"

अपने प्रारंभिक परिचय में ही मजाज़ कहते हैं :

ख़ूब पहचान लो इसरार हूँ मैं
जिन्से-उल्फ़त का तलबगार हूँ मैं
ख़्वाबे-इशरत में हैं अरबाबे-ख़िरद
और इक शायरे-बेदार हूँ मैं
हूरो-ग़िल्मा का यहाँ ज़िक्र नहीं
नवा-ए-इंसाँ का परस्तार हूँ मैं

या यह भी देखिए :

जवानी की अँधेरी रात है, ज़ुल्मत का तूफ़ाँ है
मेरी राहों में नूर-ए-माह-ओ-अंजुम तक गुरेज़ाँ है
ख़ुदा सोया हुआ है, अह्-र-ए-मन महशर-ब-दामाँ है
मगर मैं अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ता ही जाता हूँ

'आवारा' कविता से पहले वे इस प्रकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति कर चुके थे। अब इस लक्ष्य की ओर बढ़ने के स्वभाव को वापस न जाने की प्रकृति से जोड़कर देखिए। एक क्रम और विकास की स्थिति दिखायी देगी। लेकिन, यही कविता और आगे बढ़कर सीधे तौर पर साम्यवाद का दामन थाम लेती है। जब वे पूरी तैयारी और नज़रियाती रचाव के साथ यह कहते हैं :

इक महल की आड़ से निकला वो पीला माहताब
जैसे मुल्ला का अमामा, जैसे बनिये की किताब
जैसे मुफ़्लिस की जवानी, जैसे बेवा का शबाब
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ? ऐ वह्शते-दिल क्या करूँ?

यहाँ बेचैनी विद्रोह में बदलने लगती है और इस विद्रोह में केवल रूमानियत नहीं है, बल्कि दृष्टिकोणात्मक लगाव है और एक एक सोचा-समझा संकेत है। प्रो0 सैयद मोहम्मद अक़ील के इस छंद से संबंधित विचार द्रष्टव्य हैं :

'महल' और उसकी 'आड़' से चाँद का निकलना, चाँद का पीलापन—सब ग़रीबं की स्थिति और उसकी ग़रीबी को सतह पर लाने में सहायक होते हैं।'महल' शब्द अमीर होने का प्रतीक है, जिसके आस-पास ऑटोक्रेसी रियाया और साधारण जनता की आर्थिक कमज़ोरी और हाकिम की ज़बरदस्तियाँ, ज़बरन किया जाने वाला अन्याय—सब दिखायी देने लगते हैं। चाँद का पीलापन मानो ग़रीब की ज़िंदगी और उसकी विवशता की ओर संकेत करता हुआ प्रतीत होता है। फिर शब्द 'आड़' एक प्रकार से ग़रीब वर्ग पर अत्याचार और ज़बरदस्ती का सहारा और आवरण बन जाता है; साथ ही, 'महलवालों' का मददगार भी। कोई चाहे, तो पीले चाँद को दौलत अर्थात् सोने-चाँदी का प्रतीक बना ले। फिर, रख-रखाव की व्यवस्था को 'मुल्ला का अमामा' और 'बनिये की किताब' जैसे मज़बूती भी देते हैं।"

छंद के माध्यम से उर्दू में पहली बार मार्क्सीय सौंदर्यबोध की झलक दिखायी देती है। मजाज़ ने इस उम्र तक रूमानियत और साम्यवाद के कलात्मक पहलुओं और सौंदर्य-तत्त्व को समझ लिया था या यह कि उनके स्वभाव की रूमानियत और लयात्मकता में ये विचार सहज रूप से पैवस्त हो गये थे और उन्होंने एक अलग रास्ता बना लिया था। जिस प्रकार अलीगढ़ का माहौल बदल रहा था और वहाँ नवजागरण और नयी क्रांति के आसार दिखायी दे रहे थे और नयी दुनिया, नये समाज के सपने देखे जा रहे थे, जिस प्रकार मजाज़, फ़ानी, मैकश आदि के प्रभाव से निकलकर जोश, अख़्तर शीरानी आदि से अत्यधिक प्रभावित हो रहे थे, उससे मजाज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सहज और स्वाभाविक व्यक्तित्व पूरी तरह आत्मसात हो रहा था या हो चुका था। इसका अनुमान इस समय नहीं, तो कुछ वर्ष बाद अर्थात् 1942 ई0 में फ़ासिज़्म से संबंधित मजाज़ के एक कथन से लगाया जा सकता है। विस्तृत कथन का यह अंश द्रष्टव्य है :

"हम अपने देश, संस्कृति और सभ्यता के सरमाये को, अपने साहित्य और कला को फ़ासिज़्म के हस्तक्षेप से बचा सकते हैं।"

उनका यह अडिग विश्वास है :

"वास्तविकता यह है कि हमारे अतिरिक्त कोई दूसरा बचा भी नहीं सकता... हमारे गीतों को दोबारा देश के वातावरण में गूँजना चाहिए, जिससे एकता, आत्मविश्वास, सरफ़रोशी और हैरत के जज़्बात से भरपूर होकर हम अपने रास्ते से हर उस रुकावट को हटा दें, जो अंधे साम्राज्यवाद की ओर से हमारे रास्ते में बाधा डाल रही हैं। सारी दुनिया के लोग मिलकर स्वतंत्रता की लड़ाई में इस तरह साथ हों, जो हमारे महान क़दम के अनुरूप है।" (नया अदब-1942)

मजाज़ के इस वक्तव्य में इन्सानियत के लिए जो पीड़ा है, प्रेम है और उसके दुश्मनों के लिए अत्यधिक घृणा, दुख और क्रोध ा की अभिव्यक्ति है, उसमें कवि के हृदय की छटपटाहट झलकती है और व्यावहारिक दिशा मिलती है।

मजाज़ का यह दुर्लभ वक्तव्य मैंने इसलिए भी प्रस्तुत किया कि इसके प्रकाश में 'आवारा' कविता के अंतिम छह छंद सुविध ापूर्वक समझे और महसूस किये जा सकते हैं, छटपटाहट विद्रोह में कैसे बदलती है, रूमानियत साम्यवाद में कैसे बदलती है, ये इसके अनूठे प्रमाण हैं—शोले का भड़कना, पैमाने का छलकना, सीने के घाव का महकना—उसके बाद नोंचने, तोड़ने और फूँकने की क्रिया, जहाँ छटपटाहट, विद्रोह और क्रांति आपस में दूध और चीनी की तरह घुल-मिल जाते हैं और कविता अपने इस छंद में क्रांति के अंतिम स्तर तक पहुँच जाती है :

ले के इक चंगेज़ के हाथों से ख़ंजर तोड़ दूँ
ताज पर उसके दमकता है जो पत्थर तोड़ दूँ
कोई तोड़े या न तोड़े, मैं ही बढ़कर तोड़ दूँ
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ? ऐ वहशते-दिल क्या करूँ?

बात सुलैमाँ के तख़्त से बढ़ते हुए सुल्तान के महल तक पहुँच जाती है और कविता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचकर दुख और क्रोध की इंतिहा को छूती हुई समस्त युवा-वर्ग की त्रासदी बन जाती है। पूरे दुख और क्रोध तथा क्रांति की घन-गरज के बावजूद एक क्रांतिकारी लयात्मकता, रूमानी विद्रोह, इन्सानी दुख-दर्द, नौजवानों की तड़प और छटपटाहट तथा व्याकुलता का सुंदर, स्तरीय, रचनात्मक संकेत बनकर मन और मस्तिष्क में पैवस्त हो जाती है।

सही अर्थों में उनकी कला यह है कि वे व्यक्तिगत दुख को रागात्मक काव्य के रूप में ढालते हुए इन्सानी नौहे (विलाप) में परिवर्तित कर देते हैं। इस परिवर्तन में एक विशेष प्रकार की रूमानियत और लयात्मकता होती है, जो मजाज़ की अपनी है। बिल्कुल अपनी। यही उनका अकेलापन है और अलग पहचान भी। मजाज़ का शराब पीना, इश्क़बाज़ी और चुटकुलों के चर्चे तो आम थे और चटख़ारे लेकर सुनाये भी गये, लेकिन काव्य-साहित्य के प्रति उनकी लगन, उनका जुड़ाव, इन्सानी दोस्ती और तरक्क़ीपसंदी के चर्चे बहुत कम रहे। मजाज़ के निकटतम मित्र प्रसिद्ध और प्रगतिशील कवि मुईन अहसन जज़्बी ने मजाज़ पर लेख लिखते हुए एक स्थान पर लिखा है :

"बहुत कम लोग जानते हैं कि एक कवि, जिसे सामान्य रूप से लोग लापरवाह और ग़ैर-ज़िम्मेदार समझते हैं, उसमें सामान्य लोगों से कहीं अधिक इन्सानियत होती है। वह बहुत बड़े दिल का मालिक और इन्सानी क़दूरों का मानने वाला होता है। ये क़दूरें उसके लिए ऐनक बन जाती हैं, इसी ऐनक से वह हर चीज़ को देखता है। उसी कसौटी पर वह अपने अशआर (कविता की पंक्तियाँ) परखता है।

मजाज़ में मानवता, प्रेम और विद्रोह के लक्षण पूरी तरह मौजूद थे। मजाज़ का कमाल यह है कि उसने विद्रोह की चीख़ को प्रेम के गीत में बदलकर रख दिया और पूरी की पूरी विद्रोही कविता की काव्य-कला ही बदलकर रख दी। यही कारण है कि फ़ैज़ ने मजाज़ को विद्रोह का ढिंढोरची नहीं, बल्कि गायक कहा है। ये सारी विशेषताएँ उनकी कविता 'आवारा' में सिमट आयी हैं। कविता का उठान नौकरी के छूटने और इश्क़ की बदनामी से बहुत ऊपर उठकर मानव की उस भावुकता और अहसास को छूने लगता हैं, जहाँ मनुष्य नरम-गरम साधारण घटनाओं से ऊपर उठकर आकाश की ऊँचाइयों को छूने लगता है। जहाँ सोच और कल्पना एक नये प्रकार की अँगड़ाई लेने लगती हैं और वास्तविकता तथा सच्चाई ज़मीन पर हाथ-पाँव फैलाने लगती हैं। इन्हीं विशेषताओं से प्रभावित होकर फ़िराक़, जो आसानी से किसी कवि की प्रशंसा नहीं करते, इस कविता के विषय में लिखते हैं:

"यह कविता बारूद पर चिनगारी के मँडराने का दृश्य प्रस्तुत कर रही थी। कविता में एक भयानक आकर्षण था। कँपकँपा देने वाली कसक थी। यह कविता मजाज़ के भीतर छिपी हुई आग का पता देती थी, जो कवि को एक दिन ख़ाक कर देगी।"

इसीलिए, मैंने प्रारंभ में ही कह दिया था कि 'आवारा' कविता प्रगतिशील काव्य की ही नहीं, उर्दू की कुछ श्रेष्ठ कविताओं में से एक है।

अनुवादः डा0 परवेज़ फ़ातिमा
हिन्दी विभाग, अमुवि, अलीगढ़

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चयन

: 1 :

हुस्न को बेहिजाब होना था
शौक़ को कामयाब होना था

हिज्र में कैफ़-ए-इज़्तिराब न पूछो
ख़ून-ए-दिल भी शराब होना था।

तेरे जलवों में घिर गया आख़िर
ज़र्रे को आफ़ताब होना था।

कुछ तुम्हारी निगाह काफ़िर थी
कुछ मुझे भी ख़राब होना था।

रात तारों का टूटना भी मजाज़
बाइ'स-ए-इज़्तिराब होना था।

: 2 :

कमाल-ए-इश्क़ है दीवानः हो गया हूँ मैं
ये किसके हाथ से दामन छुड़ा रहा हूँ मैं

तुम्हीं तो हो जिसे कहती है नाख़ुदा दुनिया
बचा सको तो बचा लो, कि डूबता हूँ मैं

ये मेरे इश्क़ मजबूरियाँ म'ाज़ अल्लाह
तुम्हारा राज़ तुम्हीं से छुपा रहा हूँ मैं

इस इक हिजाब पे सौ बेहिजाबियाँ सदके
जहाँ से चाहता हूँ तुमको देखता हूँ मैं

बनाने वाले वहीं पर बनाते हैं मंज़िल
हज़ार बार जहाँ से गुज़र चुका हूँ मैं

कभी ये ज़ौम कि तू मुझसे छिप नहीं सकता
कभी ये वहम कि ख़ुद भी छिपा हुआ हूँ मैं

मुझे सुने न कोई मस्त-ए-बादः ए-इशरत
मजाज़ टूटे हुए दिल की इक सदा हूँ मैं

: 3 :

हुस्न फिर फ़िल (तून):गर है क्या कहिए,
दिल की जानिब नज़र है क्या कहिए।

फिर वही रहगुज़र है क्या कहिए,
ज़िंदगी राह पर है क्या कहिए।

हुस्न ख़ुद पर्दादर है क्या कहिए,
ये हमारी नज़र है क्या कहिए।

आह तो बेअसर थी बरसों से,
नग़्मः भी बेअसर है क्या कहिए।

हुस्न है अब न हुस्न के जलवे,
अब नज़र ही नज़र है क्या कहिए।

आज भी है मजाज़ ख़ाकनशीन,
और नज़र अर्श पर है क्या कहिए।

: 4 :

कुछ तुझको ख़बर है हम क्या-क्या,
ऐ शोरिश-ए-दौरां भूल गये।

वो ज़ुल्फ़-ए-परीशां भूल गये,
वो दीदः-ए-गिरियां भूल गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐ शौक़-ए-नज़ारा क्या कहिए,
नज़रों में कोई सूरत ही नहीं।

ऐ ज़ौक़-ए-तसव्वुर क्या कहिए,
हम सूरत-ए-जानां भूल गये।

अब गुल से नज़र मिलती ही नहीं,
अब दिल की कली खिलती ही नहीं।

ऐ फ़स्ल-ए-बहारां रुख़सत हो,
हम लुत्फ़-ए-बहारां भूल गये।

सबका तो मदावा कर डाला,
अपना ही मदावा कर न सके।

सबके तो गरेबां सी डाले,
अपना ही गरेबां भूल गये।

ये अपनी वफ़ा का आलम है,
अब उनकी जफ़ा को क्या कहिए

इक नश्तर-ए-ज़हर आगीं रखकर
नज़दीक-ए-रग-ए-जां भूल गये।

तारुफ़

ख़ूब पहचान लो असरार हूँ मैं,
जिन्स-ए-उल्फ़त का तालबगार हूँ मैं

इश्क़ ही इश्क़ है दुनिया मेरी,
फ़ित्नः-ए-अक़्ल से बेज़ार हूँ मैं

ख़्वाब-ए-इशरत में है अरबाब-ए-ख़िरद,
और इक शायर-ए-बेदार हूँ मैं

छेड़ती हैं जिसे मिज़राब-ए-अलम,
साज़-ए-फ़ितरत वही तार हूँ मैं

रंग-ए-नज़ारा-ए-क़ुदरत मुझसे,
जान-ए-रंगीनी-ए-कुहसार हूँ मैं

नश्शः-ए-नरगिस-ए-ख़ूबां मुझसे,
ग़ाज़ः-ए-आरिज़-ओ-रुख़सार हूँ मैं

ऐब, जो हाफ़िज़-ओ-ख़य्याम में था,
हाँ कुछ उसका भी गुनहगार हूँ मैं

ज़िंदगी क्या है गुनाह-ए-आदम,
ज़िंदगी है तो गुनहगार हूँ मैं

रश्क-ए-सद होश है मस्ती मेरी,
ऐसी मस्ती है कि हुशियार हूँ मैं

लेके निकला हूँ गुहरहा-ए-सुख़न,
माह-ओ-अंजुम का ख़रीदार हूँ मैं

दैर-औ-काबः में मिरे ही चर्चे,
और रुसवा सर-ए-बाज़ार हूँ मैं

कुफ़्र-ओ-इलहाद से नफ़रत है मुझे,
और मज़हब से भी बेज़ार हूँ मैं

अहल-ए-दुनिया के लिए नंग सही,
रौनक-ए-अंजुमन-ए-यार हूँ मैं

ऐन इस बे सर-ओ-सामानी में,
क्या ये कम है कि गुहरबार हूँ मैं

मेरी बातों में बेहयाई है,
लोग कहते हैं कि बीमार हूँ मैं

मुझसे बरहम है मिज़ाज-ए-शेरी,
मुजरिम-ए-शोख़ी-ए-गुफ़्तार हूँ मैं

हूर-ओ-गिलमां का यहाँ ज़िक्र नहीं,
नवा-ए-इन्सां का परस्तार हूँ मैं

महफ़िल-ए-दहर पे तारी है जुमूद,
और वारफ़्ता-ए-रफ़्तार हूँ मैं

इक लपकता हुआ शोला हूँ मैं,
एक चलती हुई तलवार हूँ मैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौजवान ख़ातून से

हिजाब-ए-फित्नःपरवर अब उठा लेती तो अच्छा था
ख़ुद अपने हुस्न को परदा बना लेती तो अच्छा था।
तिरी नीची नज़र ख़ुद तेरी इस्मत की मुहाफ़िज़ है
तू उस नश्तर की तेज़ी आज़मा लेती तो अच्छा था।
तिरी चीन-ए-जबीं ख़ुद इक सज़ा क़ानून-ए-फ़ितरत में
इसी शमशीर से कार-ए-सज़ा तो अच्छा था
ये तेरा ज़र्द रुख़, ये ख़ुश्क लब, ये वहम, ये वहशत
तू अपने सर से ये बादल हटा लेती तो अच्छा था।
दिल-ए-मजरूह को मजरूहतर करने से क्या हासिल?
तू आँसू पोंछकर अब मुस्कुरा लेती तो अच्छा था।
तिरे ज़ेर-ए-नगीं घर हो, महल हो, कस्र हो, कुछ हो
मैं ये कहता हूँ तू अर्ज़-ओ-समा लेती तो अच्छा था।
अगर ख़िलवत में तूने सर उठाया था तो क्या हासिल?
भरी महफ़िल में आकर सर उठा लेती तो अच्छा था।
तिरे माथे का टीका मर्द की क़िस्मत का तारा है
अगर तू साज़-ए-बेदारी उठा लेती तो अच्छा था।
अयां हैं दुश्मनों के ख़जरों पर ख़ून के धब्बे
उन्हें तू रंग-ए-आरिज़ से मिला लेती तो अच्छा था।
सिनानें-खेंच ली हैं सरफिरे बाग़ी जवानों ने
तू सामान-ए-जराहत अब उठा लेती तो अच्छा था।
तेरे माथे पे ये आँचल बहुत ही ख़ूब है लेकिन
तू इस आँचल से इक परचम बना लेती तो अच्छा था।

बोल अरी ओ धरती बोल

बोल अरी ओ धरती बोल
राजसिंहासन डाँवाडोल
बादल बिजली रैन अँधियारी
दुख की मारी परजा सारी
बूढ़े बच्चे सब दुखिया हैं
दुखिया नर हैं दुखिया नारी
बस्ती-बस्ती लूट मची है
सब बनिये हैं सब ब्यौपारी
बोल अरी...
कलजुग में जग के रखवाले
चाँदी वाले सोने वाले
देसी हों या परदेसी हों
नीले पीले गोरे काले
मक्खी भुनगे भन-भन करते
ढूँढे हैं मकड़ी के जाले
बोल अरी...
क्या अफ़रंगी क्या तातारी
आँख बची और बरछी मारी
कब तक जनता की बेचैनी
कब तक जनता की बेज़ारी
कब तक सरमाये के धंधे
कब तक ये सरमायादारी
बोल अरी...
नामी और मशहूर नहीं हम
लेकिन क्या मज़दूर नहीं हम
धोका और मज़दूरों को दें
ऐसे तो मजबूर नहीं हम
मंज़िल अपने पाँव के नीचे
मंज़िल से अब दूर नहीं
बोल अरी...
बोल कि तेरी ख़िदमत की है
बोल कि तेरा काम किया है
बोल कि तेरे फल खाये हैं
बोल कि तेरा दूध पिया है
बोल कि हमने हश्र उठाया
बोल कि हमसे हश्र उठा है
बोल कि हमसे जागी दुनिया
बोल कि हमसे जागी धरती
बोल अरी....

नज़र-ए-अलीगढ़

सर शार-ए-निगाह-ऐ-नरिगस हूँ, पाबस्ता-ए-गेसू-ऐ सुंबुल हूँ।
ये मेरा चमन है मेरा चमन, मैं अपने चमन का बुलबुल हूँ।
हर आन यहाँ सहबा-ए-कुहन, इक सागर-ए-नौ में ढलती है।
कलियों से हुस्न टपकता है, फूलों से जवानी उबलती है।
जो ताक़-ए-हरम में रौशन है, वो शमआ यहाँ भी जलती है।
इस दश्त के गोशे-गोशे से, इक जू-ऐ-हयात उबलती है।
इस्लाम के इस बुत-ख़ाने में, अस्नाम भी है और आज़र भी।
तहज़ीब के इस मैख़ाने में, शमशीर भी है और साग़र भी।
याँ हुस्न की बर्क़ चमकती है, या नूर की बारिश होती है।
हर आह यहाँ एक नग़मा है, हर अश्क़ यहाँ इक मोती है।
हर शाम है, शाम-ए-मिस्र यहाँ, हर शब है, शब-ए-शीराज़ यहाँ।
है सारे जहाँ का सोज़ यहाँ, और सारे जहाँ का साज़ यहाँ।
ये दश्ते जुनूं दीवानों का, ये बज़्मे वफ़ा परवानों की।
ये शहर-ए-तरब रूमानों का, ये ख़ुल्द-ए-बरीं अरमानों की।
फ़ितरत ने सिखाई है हमको, उफ़्ताद यहाँ परवाज़ यहाँ।
गाए हैं वफ़ा के गीत यहाँ, छेड़ा है जुनूं का साज़ यहाँ।
इस फ़र्श से हमने उड़-उड़कर, अफ़लाक के तारे तोड़े हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाहीद से की है सरगोशी, गरबीन से रिश्ते जोड़े हैं।
इस बज़्म में तेगें खींची हैं, इस बज़्म में सागर तोड़े हैं।
इस बज़्म में आँख बिछाई है, इस बज़्म में दिल तक जोड़े हैं।
इस बज़्म में नेज़े फेंके हैं, इस बज़्म में ख़ंजर चूमे हैं।
इस बज़्म में गिरकर तड़पे हैं, इस बज़्म में पीकर झूमे हैं।
आ-आके हज़ारों बार यहाँ, खुद आग भी हमने लगाई है।
फिर सारे जहाँ ने देखा है ये आग हम ही ने बुझाई है।
याँ हमने कमंदें डाली हैं याँ हमने शबख़ूँ मारे हैं।
याँ हमने क़बाएँ नोची हैं, याँ हमने ताज उतारे हैं।
हर आह है ख़ुद तासीर यहाँ, हर ख़्वाब है ख़ुद ताबीर यहाँ।
तदबीर के पाए संगी पर, झुक जाती है तक़दीर यहाँ।
ज़र्रात का बोसा लेने को, सौ बार झुका आकाश यहाँ।
ख़ुद आँख से हमने देखी है, बातिल की शिकस्त-ए-फ़ाश यहाँ।
इस गुल कदा-ए-पारीना में फिर आग भड़कने वाली है।
फिर अब्र गरजने वाला है, फिर बर्क़ कड़कने वाली है।
जो अब्र यहाँ से उठेगा, वो सारे जहाँ पर बरसेगा।
हर जू-ऐ-रवां पर बरसेगा, हर कोहे गरां पर बरसेगा।
हर सर्व-ओ-समन पर बरसेगा, हर दश्त-ओ-दमन पर बरसेगा।
ख़ुद अपने चमन पर बरसेगा, ग़ैरों के चमन पर बरसेगा।
हर शहर-ए-तरब पर गरजेगा, हर क़स्रे तरब पर कड़केगा।
ये अब्र हमेशा बरसा है, ये अब्र हमेशा बरसेगा।

(1936)

आवारा

शहर की रात और मैं नाशाद-ओ-नाकारा फिरूँ
जगमगाती जागती सड़कों पे आवारा फिरूँ
ग़ैर की बस्ती है कब तलक मारा फिरूँ
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ ऐ वहशते दिल क्या करूँ

झिलमिलाते कुमकुमों की राह में ज़ंजीर सी
रात के हाथों में दिन की मोहनी तसवीर सी
मेरे सीने पर मगर चलती हुई शमशीर सी
ऐ ग़मे दिल...
ये रूपहली छाँव ये आकाश पर तारों का जाल
जैसे सूफ़ी का तसव्वुर जैसे आशिक़ का ख़याल
आह लेकिन कौन जाने कौन समझे जी का हाल
ऐ ग़मे दिल...
फिर वो टूटा एक सितारा, फिर वो छूटी फुलझड़ी
जाने किसकी गोद में आई ये मोती की लड़ी
हूक सी सीने में उठी, चोट सी दिल पर पड़ी
ऐ ग़मे दिल...
रात हँस-हँसकर ये कहती है के मैख़ाने में चल
फिर किसी शहनाज़े लालरुख़ के काशाने में चल
ये नहीं मुमकिन तो ऐ दोस्त वीराने में चल
ऐ ग़मे दिल...
हर तरफ़ बिखरी हुई रंगीनियाँ रानाइयाँ
हर क़दम पर इशरतें लेती हुई अंगड़ाइयाँ
बढ़ रही हैं गोद फैलाए हुए रुसवाइयाँ
ऐ ग़मे दिल...
रास्ते में रुकके दम ले लूँ, मेरी आदत नहीं
लौटकर वापस चला जाऊँ, मेरी फ़ितरत नहीं
और कोई हमनवा मिल जाए, ये क़िस्मत नहीं
ऐ ग़मे दिल...
मुंतज़िर है एक तूफ़ाने बला मेरे लिए
अब भी जाने कितने दरवाजे हैं वाँ मेरे लिए
पर मुसीबत है मेरा अहदे वफ़ा मेरे लिए
ऐ ग़मे दिल...
जी में आजा है कि अब अहदे वफ़ा भी तोड़ दूँ
उनको पा सकता हूँ मैं ये आसरा भी तोड़ दूँ
हाँ मुनासिब है ये ज़ंजीरे हवा भी तोड़ दूँ
ऐ ग़मे दिल...
इक महल की आड़ से निकला वो पीला माहताब
जैसे मुल्ला का अमामा, जैसे बनिये की किताब
जैसे मुफ़लिस की जवानी, जैसे बेवा का शबाब
ऐ ग़मे दिल...
दिल में एक शोला भड़क उठा है आख़िर क्या करूँ
मेरा पैमाना छलक उठा है आख़िर क्या करूँ
ज़ख़्म सीने का महक उठा है आख़िर क्या करूँ
ऐ ग़मे दिल...
जी में आता है ये मुर्दा चाँद-तारे नोच दूँ
इस किनारे नोच लूँ और उस किनारे नोच लूँ
इक दो का ज़िक्र क्यों, सारे के सारे नोच लूँ
ऐ ग़मे दिल...
मुफ़लिसी और ये मज़ाहिर है नज़र के सामने
सैकड़ों सुलताने जाबिर हैं नज़र के सामने
सैकड़ों चंगेज़ ओ नादिर है नज़र के सामने
ए ग़मे दिल...
ले के इक चंगेज़ के हाथों से ख़ंजर तोड़ दूँ
ताज पर उसके दमकता है जो पत्थर तोड़ दूँ
कोई तोड़े या न तोड़े मैं ही बढ़कर तोड़ दूँ
ऐ ग़मे दिल...
बढ़कर इस इंदरसभा का साज़ोसामां फूँक दूँ
इसका गुलशन फूँक दूँ उसका शबिस्तां फूँक दूँ
तख़्त-ए-सुलतां क्या है सारा क़स्र ए सुलतां फूँक दूँ
ऐ ग़मे दिल...

(1937)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मजाज़ : फ़ासीवाद के विरुद्ध एक बयान

इस खुली हुई हक़ीक़त से किस को इंकार हो सकता है कि हम अपनी आँखों से एक इतना बड़ा हंगामा देख रहे हैं जिसकी नज़ीर तारीख़े-इंसाफी में नहीं मिलती। एक ऐसा हंगामा जिसका अंजाम खुश आइंद भी है और हैबतनाक भी। इस क़दर खुश आइन्द कि यह दुनिया आज़ादी व उख़ूत व इम्बेसात व मर्सरत की एक जन्नत बन जाय और इस क़दर हैबतनाक कि हमारी यही दुनिया एक जहन्नम और नाक़ाबले बर्दाश्त जहन्नम बन जाय।

अभी हमारी सालेह और तन्दरुस्त कूवतों ने एक दुनिया, एक नये निज़ामे-आलम की तामीर के लिये क़दम उठाया ही था कि रजअत पसंद ताक़तें अपनी तमाम मेहरबानियों के साथ इख़लाक व तमद्दुन, शराफ़त व रवादारी के हर आईन व उसूल को पामाल करके पूरे जोर व शोर से हम पर टूट पड़े। तबाही व बर्बादी के गरजते व गूंजते बादल। मुल्कगीरी की हवस, ख़ून की प्यास, हौलनाक आतिशज़दगी और ग़ारतगरी। इन सबने मिलकर जर्मन, अतालवी और जापानी फ़ाशिज़्म की शक्ल अख़्तियार की है। फ़ाशिज़्म का यह तूफ़ान सारी दुनिया पर छा जाने के लिये पेच व ताब खा रहा है और यह मनहूस बला खुद हमसे क़रीबतर होती जा रही है। ख्वाह हम महसूस करें या न करें, इस हंगाम-ए-अज़ीन में हमारी हैसियत सबसे ज़्यादा इबरतनाक है। हमारी हैसियत तो शिकस्ता परिन्दे की सी है जो एक तरफ़ खुद पहले से शिकंजे में जकड़ा हुआ हो और दूसरी तरफ़ एक तेज़ मिन्क़ार और ख़ूनी पंजों बाला शाहीन दबोचने के लिये मंडला रहा है। एक तरफ़ अन्दरूनी, सामराजी दवाब से हमारे लिये आवाज़ बुलंद करना तो क्या साँस लेना मुश्किल दूसरी तरफ़ बेरूनी बला जापानी हमले की शक्ल में हर आन क़रीब तर... इस तरह हम बयक वक़्त दो मुसीवतों से दस्तो-गिरीबान हैं। हमें दोनों का बयक वक़्त मुक़ाबला करना है।

यह नाज़ुक और पेचीदा मसला क्यों कर हल करना चाहिये। हमारे सियासत दाँ रफ़ीक़ बता चुके हैं और बता रहे हैं। मैं तो शायर की हैसियत से नहीं अदब के तालिब इल्म की हैसियत से, एक राहनुमा की हैसियत से नहीं, एक मुसाफ़िर की हैसियत से अपने शायरों और अदीबों को सूरते-हाल की नज़ाकत बता देना चाहता हूँ। अगर यह हक़ीक़त है कि क़ौमी तख़रीबो-तामीर में शायरों और अदीबों का बड़ा हाथ रहा है तो यह भी एक साफ़ हक़ीक़त है कि इस नाज़ुक दौर में हर अदबी क़दम बड़ी ज़िम्मेदारी रखता है।

इस वक़्त बाज़ नौजवान शायर और अदीब को हम सख़्त सरासीमगी में देख रहे हैं। वह अपने आपको सख़्त अंधेरे में देख रहे हैं और कोई फ़ैसला नहीं कर सकते। इस सरासीगती से दो ख़तरनाक नतीजे बरामद हो सकते हैं। वह हस्सास फ़र्द जिसे अदीब या शायर कहा जाता है, इन हालात से परेशान हो कर सुकूत अख़्तयार कर ले और हाथ पे हाथ ग़ैब से किसी तबदीली का इन्तेज़ार करता रहता है या फिर हक़ायक़ को तलख़ियों से बेज़ार होकर खुद को जामो-सुबू की सरमस्तियों और जुल्फ़ो-आरिज़ की ताबनाकियों की नज़र कर दे। मुझे इस बात का ऐतराफ़ करने में कोई आर नहीं कि मैं इन दोनों का शिकार रह चुका हूँ और अब भी किसी हद तक हूँ मगर बंबई के चंद रोज़ क़याम और अपने सरफ़रोश दोस्तों की क़ुरबत ने जिन्हें मैंने हमेशा अपना दस्तो-बाज़ू समझा है, मेरे दिल व दिमाग़ को झंझोड़ दिया है। मैं अपने वीरान सीने में एक ताज़ा हरारत महसूस कर रहा हूँ। हम इतने बेबस नहीं हैं जितना समझते हैं। हम ऐसे पर शिकस्ता और बे दस्तो-पा नहीं हैं जैसा कि ग़लती से महसूस करते हैं। इस अपने मुल्क, अपने तहज़ीब व तमद्दुन के सरमाये को, अपने आर्ट और अदब को फ़ाशिज़्म की दस्त दराज़ियों से बचा सकते हैं और यह हक़ीक़त है कि हमारे सिवा दूसरा बचा भी नहीं सकता। आज हमारा काम यह है कि अपने अहले-वतन दिल में उम्मीद की रौशनी पैदा करें। इनकी थकी हुई रगों में हिम्मत का ख़ून दौड़ा दें। हम तरक्की पसंद अदीब अब तक अपने आर्ट से तलवार का काम लेते रहे हैं। हमने हर क़िस्म के जुल्म और नाइंसाफ़ी के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद की है। फिर कोई वजह नहीं है कि इंसानियत और तमद्दुन के सबसे बड़े दुश्मन फ़ाशिज़्म के मुक़ाबले में हम अपनी तलवार मियान में रख लें।

हमारे नग़मों को आज दोबारा वतन की फ़ज़ाओं में गूंजना चाहिये ताकि इत्तेहाद, खुद ऐतमादी, सरफ़रोशी और हैरत के जज़बात से मामूर होकर हम अपने रास्ते से हर उस रुकावट को हटा दें जो अंधे साम्राजी हमारी राह में हायल करते हैं और तमाम दुनिया के अवाम के साथ मिलकर इस जंगे-आज़ादी में इस तरह शरीक हों जो हमारी अज़ीम क़ौम के शायाने-शान हो।

नया अदब-1943, अंक-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिचरन की माया

रूपलाल बेदिया

आश्विन शुक्ल पक्ष की दशहरे के बाद की कोई रात। धवल चाँदनी पूरे यौवन के साथ इठलाती, मुस्कुराती, उल्लसित-सी सर्वत्र छिटकी हुई थी। माया चूल्हे के पास अस्त-व्यस्त सी बैठी हुई थी। वह बायीं टाँग को मोड़कर पहाड़ी की नुकीली चोटी के सदृश उभर आये घुटने पर बायीं कोहनी टिकाये हुए थी और उसका यह हाथ कोहनी से मुड़ते हुए उसके सिर के बायें हिस्से को छू रहा था। दायीं टाँग भी घुटने से मुड़ी हुई थी, पर वह ज़मीन से सटी हुई थी और उसका तलवा बायीं जाँघ के पास आ गया था। लेकिन, उसकी देह का दाहिना हिस्सा स्पष्ट नज़र नहीं आ रहा था। जब लकड़ियाँ जलते-जलते चूल्हे से बाहर आने लगतीं, वह उन्हें पुनः चूल्हे में ठेल देती। लपटें कम होने पर थोड़ा झुककर बाँस के फूकनार से फूँक मारकर उन्हें तेज़ करती और पुनः उसी लापरवाही से बैठ जाती। चूल्हे पर चढ़ी हाँडी में कुछ खदबदा रहा था। शायद चावल पक रहा था। बायीं तरफ़ कुछ दूरी पर एक पीढ़े पर रखी ढिबरी कभी सुखआ के कचरे की तरह सीधी, तो कभी मद्यपान किये-सी लड़खड़ाती लरजती लौ के साथ जल रही थी, जिससे माया की देह की बायीं ओर का हिस्सा साफ़-साफ़ दिखायी दे रहा था। कान के पास झूलती केशराशि को कुछ लटें, कान से लटक रही छोटी-सी कनौसी, कंधे से बेफ़िक्र-सा गिर चुका आँचल, बायीं टाँग पर घुटने के ऊपर से खिसककर आधी जाँघ तक आ चुकी साड़ी। खपरे के छप्पर के छोटे-छोटे झरोखों के से छिद्रों से आ रही चाँदनी माया की देह पर जहाँ-तहाँ भगजोगनी की तरह चमक रही थी। कुल मिलाकर एक लुभावना दृश्य और ख़ासकर तब, जब उस दृश्य को कोई पुरुष देख रहा हो।

जी हाँ, मुरली न जाने कबसे इस मनमोहक दृश्य से मोहित-सा दरवाज़े के पास खड़ा था। क्या औरतों की टाँगें और जंघाएँ इतनी सुंदर होती हैं? इतनी कोमल, इतनी माँसल कि देखते ही पुरुष का मन सूखे पत्ते की मानिंद डोलने लगता है। मुरली को लगने लगा, जैसे पहली बार किसी औरत की टाँग देख रहा हो! लेकिन, यह सच तो नहीं है। अपनी पत्नी की टाँगों-जाँघों को तो वह वर्षों से देखता आ रहा है। देखता ही नहीं आ रहा है, बल्कि उनसे खेलता भी आ रहा है। फिर, माया की दिख रही मात्र एक अधखुली जाँघ से वह विचलित-सा क्यों हो रहा है? उसके हृदय की धड़कने तेज़ क्यों हो रही हैं? साँसें तेज़ क्यों चलने लगी हैं? आख़िर औरतों में ऐसी कौन-सी जादुई ताक़त होती है कि पुरुष बरबस खिंचता चला जाता है?

ऐसे तो मुरली सालों से माया के सुख-दुख का साथी रहा है। उसकी खेती-बारी, खेत-खलिहान, गरू-डाँगर सारा कुछ सँभालता आया है। कितनी बार उसके खेतों-खलिहानों में माया के साथ-साथ काम किया था। कभी-कभी उसकी पत्नी भी साथ होती थी, पर कई-कई बार केवल वह और माया रहते थे। बिल्कुल सुनसान पहाड़ी खेतों में सिर्फ़ दो जन, एक स्त्री और दूसरा पुरुष। रोपनी, बुवाई, निकाई-गोड़ाई, पटवन-झटवन, कटाई-पिटाई-सब जगह साथ-साथ। कई क्षण ऐसे भी आते थे, जब दोनों बिल्कुल क़रीब होते थे। इतने क़रीब कि एक-दूसरे की साँसों को महसूस कर सकते थे। धनरोपनी-कटनी के दौरान् मुरली ने कितनी बार देखा था कि माया अपने साये (पेटीकोट) को सामने से उठाकर कमर में नाभि के पास खोंस लेती थी। शारीरिक मेहनत करने के वक़्त प्रायः सभी स्त्रियाँ ऐसा करती हैं। इससे काम करने में सहजता महसूस होती है। ऐसी स्थिति में माया की टाँगें घुटनों के ऊपर तक अनावृत्त हो जाती थीं, परंतु न माया को कोई झिझक होती थी और न मुरली के पुरुषत्व में किसी प्रकार की हलचल। यही वजह है कि राधा भी अपने पति पर कभी शक नहीं करती थी और न ही माया-मुरली के साथ-साथ रहने में किसी प्रकार की आपत्ति। राधा जानती थी कि बेचारी माया दीदी के घर में कोई पुरुष नहीं है, जो उनके सुख-दुख में मददगार हो, उनकी एवं उनके बच्चों की ज़रूरतों को पूरा करे। अतः मुरली का माया की सहायता करना ज़रूरी भी था और उसका कर्तव्य भी। फिर, वह यह भी अच्छी तरह जानती थी कि भले ही दिन भर खेत-खलिहानों में उसका पति माया दीदी के साथ रहता है, रात में वह सिर्फ़ उसका अपना है।

माया के खेत-खलिहानों में तो दोनों साथ-साथ होते ही, मुरली के अपने खेतों में भी माया बराबर की भूमिका निभाती। राधा जब खेतों में काम करने आती, तो अक्सर माया कहती—"तुम क्यों चली आती हो राधा? हम लोग हैं न। सारा काम हो जाएगा। जाओ, तुम घर का काम सँभालो और बच्चों का ख़्याल रखना।" कभी कहती—"आज थोड़ी देर हो सकती है। तुम मेरे यहाँ भी थोड़ा पानी भर देना।" राधा चार बजते-बजते वापस आ जाती और खाना बनाने की तैयारी में जुट जाती, जबकि माया देर शाम काम से आने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद भोजन तैयार करती। यों कहा जाए कि मुरली और माया के सारे काम संयुक्त रूप से होते थे, बस चूल्हे अलग-अलग जलते थे। कभी-कभार काम की अधिकता की वजह से माया के वापस आने में देर होने की संभावना पर राधा एक साथ सभी का खाना बना लेती। मुरली को याद है, एक बार खेत में धान का बोझा उठाने में सहायता कर माया के माथे पर रखने के क्रम में माया का पाँव फिसल गया था और बोझा उसके पीछे की ओर गिर गया था। उस वक़्त मुरली ने अपनी ओर न खींचा होता, तो माया गिर पड़ी होती और वह बोझा उस पर लद गया होता। इस हड़बड़ी में माया एकदम से मुरली की छाती से सट गयी थी। तब भी उन्हें ऐसा कुछ महसूस नहीं हुआ था, जैसा एकांत में दो स्त्री-पुरुष के बीच होता है।

फिर, आज मुरली का मन इतना बहका-बहका सा क्यों लग रहा है? साँसें क्यों तेज़ चलने लगी हैं? वह अब भी दरवाज़े के पास प्रस्तर-प्रतिमा की तरह खड़ा माया को, उसकी लटों को, कानों से झूलती कनौसी को, बायें घुटने से गलबहियाँ किये हुए उसकी बायीं भुजा को, घुटने से मुड़ी निर्वसन बायीं टाँग को अपलक निहारे जा रहा था। उसी समय हवा का एक हल्का झोंका आया, जिसमें ढिबरी की लौ लपलपाने लगी। माया ने गरदन को थोड़ा बायीं तरफ़ घुमाकर निर्विकार भाव से लौ को देखा। कुछ देर तक इसी मुद्रा में वह लौ को देखती रही। शायद सोच रही थी कि इस दुर्बल लौ और उसकी अबला ज़िंदगी में कितनी समानता है, कितनी एकरूपता है; कितनी कमज़ोर है दोनों की ज़िंदगी की डोर। ढिबरी बुझ जाने पर तो फिर भी कोई उसे दुबारा जला देगा, पर क्या उसकी ज़िंदगी की लौ एक बार बुझ जाने पर फिर कोई प्रज्ज्वलित कर पाएगा? नहीं, यह ताक़त धरती के किसी प्राणी में नहीं है। बस, बुझ गयी, तो बुझ गयी। इसीलिए, ज़िंदगी की लौ को तमाम झंझावातों से बचाने की ज़रूरत पड़ती है। लेकिन, अकेला जीवन कब तक आँधी-तूफ़ानों से लड़ पाएगा। कहा जाता है कि दुख बाँटने से कम होता है। माया सोचती है—कम होता है या नहीं, यह तो पता नहीं, किंतु थोड़ी देर के लिए कम महसूस अवश्य होता होगा। परंतु, दुख को बाँटा किससे जाए? पास में अपना कोई हो तब न।

माया के मस्तिष्क में अकस्मात मुरली की तस्वीर उभरती है। अपना ही तो है। मुरली और राधा ही तो अब तक उसके सुख-दुख के साथी रहे हैं। वह मन को मनाने की नाकाम कोशिश करती है, लेकिन मन उल्टे प्रश्न उछाल देता है। कब तक अपने को बहलाती रहेगी माया? ठीक है, मुरली और राधा तुम्हें घर-बाहर संभालने से लेकर सारे सुख-दुख में मदद करते रहे हैं, उन्हें भी तुमसे कोई शिकायत नहीं है। तुमसे उन्हें कोई अपेक्षा भी नहीं है, लेकिन क्या तुम अपने हृदय पर हाथ रखकर कह सकती हो कि वे तुम्हारे अपने हैं? एक स्त्री अपनी पीड़ा, अपनी कसक और खालीपन को दूसरी स्त्री के सम्मुख तो शायद व्यक्त कर भी ले, पर किसी पुरुष के सामने? उस स्त्री की पीड़ा की कोई तुलना नहीं, जिसे समझने वाला, महसूस करने वाला, अपना कहे जाने वाला कोई पुरुष न हो। पुरुषहीन स्त्री की देह को हर कोई अपनी ही समझता है, इसे तुमसे बेहतर कौन समझ सकता है?

तो क्या सचमुच अपनी पीड़ा मुरली को नहीं बता सकती? लेकिन बताने पर भी क्या वह उसे समझ पाएगा? कहीं ऐसा न हो कि बुरा मान जाए! और अगर बता सकती है, तो आज तक चुप क्यों थी? इतने सालों तक बताने का साहस क्यों नहीं जुटा पायी? परंतु, उसने मुरली को इस नज़र से देखा ही कहाँ था?

ढिबरी की लपलपाती लौ को निर्विकार भाव से देखती माया को देखकर मुरली को लगा, मानो वह किसी गहरी चिंता में आकंठ निमग्न हो। कोई बड़ी परेशानी तो नहीं है? अब माया की टाँग से उसका ध्यान हट चुका था। थोडी देर पश्चात वैसे ही खड़े-खड़े उसने धीरे से पूछा—"का राँध रही है भौजी?"

माया एकबारगी चौंक उठी, जैसे उसकी चोरी पकड़ी गयी हो और अपने कपड़े सँभालती हुई हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। उसकी छाती धौंकनी-सी उठने-बैठने लगी। उसने लगभग काँपती आवाज़ में पूछा—"तुम कब आये मुरली बाबू?" फिर जवाब सुने बिना आगे बोली—"तुम बहत बदमाश हो। मैं कितनी डर गयी... और, किसी के घर में ऐसे घुसा जाता है चोरों की तरह? पुकारना चाहिए था न?"

"किसी के घर में न, लेकिन यह तो अपना ही घर है। है कि नहीं, बोलिए? माया को लगा कि मुरली ठीक ही तो कह रहा है, यह उसका अपना ही तो घर है। मुरली कोई ग़ैर तो नहीं। उसका चचेरा देवर है और चचेरा तो अपना ही होता है। दोनों के घरों में दस-पंद्रह क़दम का फ़ासला था। एक अंतर यह कि दोनों के दरवाज़े विपरीत दिशा में थे। मुरली ने हँसते हुए कहना जारी रखा—"और फिर, इस तरह दरवाज़ा खुला रखिएगा, तो कोई तो घुसेगा ही न? अब इसमें घुसने वाले का क्या कसूर?"

अब माया को ध्यान आया कि उसने किवाड़ों को केवल सटाकर छोड़ दिया था। उसे अपनी ग़लती का अहसास हुआ। उसने एक पीढ़ा दीवार के किनारे रखते हुए मुरली से बैठने को कहा। मुरली ने दीवार से ओठंगकर बैठते हुए पूछा—"बच्चा लोग नहीं दिखायी दे रहा है, सो गया का?"

माया के दो बेटे क्रमशः ग्यारह और नौ साल के थे। गाय-गरुओं के पीछे चलते-चलते उनके नन्हें पाँव थक जाते थे, इसलिए शाम को जल्दी ही सो जाते थे। खाना बन जाने के बाद माया उन्हें उठाकर खिलाती। यह प्रायः रोज़ की बात थी।

माया भी मुरली के सामने थोड़ा तिरछी होकर बैठ गयी थी, लेकिन मुरली से नज़रें मिलाकर बात करने में उसे झिझक हो रही थी। आज उसे पहली बार लग रहा था कि सामने एक पुरुष बैठा है। वह पुरुष, जिसके बारे में कुछ देर पहले तक सोच रही थी कि उसे अपनी पीड़ा बताएगी। मुरली ने भी महसूस किया कि भौजी कुछ सकुचायी-सी लग रही है। उसने बात बदलते हुए पूछा—"कोई परेशानी है का भौजी? अगर ऐसा कुछ...!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अरे नहीं मुरली बाबू, कोई परेशानी नहीं है।"

"फिर चेहरा उतरा हुआ-सा काहे लग रहा है?"

माया के जवाब का इंतज़ार किये बिना किंचित मुस्कुराते हुए पुनः बोला "दादा की याद तो नहीं आ रही है?" "उस निर्मोहिया का तो नाम भी मेरे सामने मत लो..."

माया यह सुनकर कितनी खुश हुई थी कि लड़का अपने बाप का इकलौता वारिस है। ऊपर से नौकरी करता है, वह भी कलकत्ता (तब कोलकाता नाम नहीं हुआ था) शहर में। लोग कहते थे कि कलकत्ता बहुत बड़ा शहर है। वहाँ नौकरी मिलना और करना कोई खेल नहीं। वह दिन-रात सुनहरे सपनों में खोयी-सी रहने लगी थी। लड़का कैसा होगा, कैसा दिखता होगा! एक बार किसी तरह देख पाती, तो कितना सुख मिलता, कितनी खुशी मिलती। परंतु, उस समय गाँवों में लड़के-लड़कियों को विवाहपूर्व आपस में देखा-देखी की इज़ाजत नहीं थी। इसे सामाजिक मर्यादा के ख़िलाफ़ समझा जाता था। फिर सोचती कि लड़का अवश्य ही सुंदर होगा, तभी तो नौकरी मिली है। उस वक़्त कलकत्ता गाँवों की नज़र में केवल बहुत बड़ा ही नहीं, बल्कि अजूबा शहर भी था। सुना जाता था कि गाँव-देहात से जो भी लड़के वहाँ जाते हैं, वेश्याएँ उन्हें अपने वश में कर लेती हैं। वे जादू से दिन में उन लड़कों को बकरा बना देती हैं और पल्हा-पत्तर खाने को देती हैं। रात में पुनः आदमी बना देती हैं एवं अपने साथ सुलाती हैं। माया यह सोचकर काँप जाती। दिमाग़ में शंका की कई नागफनी उग आतीं कि कहीं हरिचरन भी तो नहीं...। लेकिन, ऐसा कैसे हो सकता है? वह तो नौकरी करता है। वह भी ऐसी-वैसी नहीं, समुंदर में जहाज़ चलाता है। रोज़ सैकडों आदमियों को इधर से उधर ले जाता है। अहा! क्या दृश्य होता होगा? जहाँ तक दृष्टि जाती होगी, पानी ही पानी पानी... पर पानी का जहाज़, जहाज़ का ड्राइवर हरिचरन, उसका पति। वह उससे एक बार ज़रूर समुंदर दिखाने के लिए कहेगी। माया मन ही मन मुस्कुरा उठती।

उस रात माया को ज़ोरदार झटका लगा। हरिचरन ने अंतरंगता के क्षणों के उपरांत माया से कहा कि कल वह वापस कलकत्ता चला जाएगा। माया के कलेजे में एक टीस हुई। उसने अचरज से पूछा—"लेकिन, इतनी जल्दी! अभी तो हमारी शादी हुए एक ही हफ़्ता बीता है!"

"नौकरी है माया और नौकरी करने वाले के वश में सब कुछ नहीं होता। एक ही हफ़्ते की छुट्टी बड़ी मुश्किल से मिली थी, जाना ही पड़ेगा। वैसे तुम चिंता मत करो। हफ़्ते-दो हफ़्ते में आता रहूँगा।"

माया कुछ नहीं बोल पायी थी। उसकी आँखों से अश्रु की अविरल धारा बह निकली थी। उस दिन नौकरी उसे सौतन से भी बड़ी बैरी लगी थी।

हरिचरन वापस कलकत्ता चला गया और माया अगला हफ़्ता बीतने की बेसब्री से प्रतीक्षा करने लगी। एक हफ़्ता बीता, दो हफ़्ते बीते... महीना बीत गया, पर हरिचरन नहीं आया। तो क्या हरिचरन को छुट्टी नहीं मिल रही? वह उसे भूल तो नहीं गया? इतने सालों से परदेस में रह रहा है, कहीं उसका मन भी परदेसी तो नहीं हो गया? हरदी का रंग और परदेसी का संग दोनों अनित्य होते हैं, क्षणिक होते हैं। सचमुच वह उसे छोड़कर किसी बंगालिन को रख तो नहीं लेगा? फिर उसे लगता, ऐसा तो नहीं कि जाते वक़्त ही रास्ते में गाड़ी-घोड़ा में कुछ... या समुंदर में कहीं जहाज़ तो नहीं डूब...। नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। भगवान इतना निर्दयी नहीं हो सकता।

वक़्त ने माया को अजीब परिस्थिति के सामने ला खड़ा कर दिया था। वह अपनी पीड़ा किसी के सामने बयान भी नहीं कर सकती थी। लोग क्या कहेंगे? अभी-अभी शादी हुई है और मरद के वियोग में मरी जा रही है। परंतु, इस बावले मन का क्या करे? दिल के वायुमंडल में उठ रहे तूफ़ानों-चक्रवातों का क्या करे?

इन्हीं तूफ़ानों और चक्रवातों के बीच पीपल के सूखे पत्ते की तरह गिरती, सँभलती, उठती, बलखाती माया ने नौ महीने गुज़ार दिये। दसवें माह में बड़ा बेटा पैदा हुआ। एक ओर पुत्र-सुख से वह फूले नहीं समा रही थी, तो दूसरी तरफ़ ऐसे मौक़े पर पति का साथ न होना किसी वेदना से कम नहीं था। उसी समय प्रथम बार माया ने मुरली से अपने पति को बुला लाने का आग्रह किया था। लेकिन, मुरली उसे कहाँ से बुला लाता! पहले तो यही पता नहीं कि कलकत्ता धरती के किस कोने में है और उतने बड़े शहर में कहाँ ढूँढेगा? किसी के पास कोई पता-ठिकाना भी तो तो नहीं कि एक चिट्ठी ही छुड़वा दी जाती।

एक तरह से माया की आस टूट चुकी थी, तब हरिचरन पूरे दो साल बाद आया। आते ही सबसे पहले उसे अपनी माँ के तीखे वाग्वाणों का सामना करना पड़ा, "का रे, तुम कौन नौकरी करता है? तुम कैसा बेहया हो गया कि अपनी बहुरिया का भी ख़्याल नहीं आता? तुमको एक बार भी नहीं लगा कि इतने दिनों माया कैसे रहती होगी? क्या खाती-पीती होगी, पहनती-ओढ़ती होगी? ज़िंदा भी है या नहीं? तुम कैसा बेदिल इन्सान है रे? तुमको लाज-शर्म कुछ नहीं लगता? तुम जहाँ रहता है, वहाँ पति-पत्नी का रिश्ता का ऐसा ही होता है? कब तुम अपनी जिम्मेदारी समझेगा रे निरबुद्धिया? परदेस की नौकरी बहुत हो गयी। अब तुम कहीं नहीं जाएगा। यहाँ अपने गाँव में अपने पुरखों की जगह-ज़मीन है। यहीं रहो और सबका ख्याल रखो, तुम सबसे बड़े हो।"

माँ की डाँट-फटकार का कितना असर हुआ, यह तो वही जाने, पर उसने बड़ी विनम्रता से माँ को समझाया—"ठीक है माँ, जब आप कहती हैं, तो अब नहीं जाऊँगा। नौकरी छोड़कर यहीं आप लोगों के साथ रहूँगा, सबका ख़्याल रखूँगा। लेकिन माँ, एक बार मुझे जाना होगा। बहुत-सा पैसा लेना बाकी है। बस, हिसाब-किताब कर अपना बकाया लेकर आ जाऊँगा। फिर कदापि नहीं जाऊँगा माँ, तेरी कसम!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और माँ मान गयी थी। जब बेटा, माँ की कसम खा रहा हो, तो इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है विश्वास दिलाने के लिए?

लेकिन, माया ने जैसे ठान ली थी उससे बात न करने की। बहुत समझाने-बुझाने पर वह नन्हें बच्चे की तरह सुबकती हुई बोली—"अगर अबकी बार ऐसा करिएगा, तो कुआँ में कूदकर मर जाऊँगी। फिर आप मज़े से नौकरी करते रहिएगा।"

और फिर उस अँधेरी रात की निस्तब्धता में पति-पत्नी के सारे गिले-शिकवे कपूर की भाँति उड़ गये एवं अंतरंगता के सुख-सागर में डुबकी लगाने लगे। मगर, सुख का यह सागर जल्दी ही सूख गया। एक हफ़्ता पश्चात हरिचरन कलकत्ता चला गया, सबको आश्वस्त करता हुआ कि सारा हिसाब-किताब कर चार-पाँच दिनों में लौट आएगा।

तब से अब तक वह सुख का सागर नहीं भर पाया। दस साल व्यतीत हो गये। हरिचरन नहीं आया। उसकी माया ठगी-सी रह गयी। उसके कलकत्ता शहर देखने, अथाह सागर की उफनती लहरों पर जहाज़ में बैठकर समुंदर की सैर करने के तमाम सपने ऐसी मिट्टी में तब्दील हो गये, जो न लीपने-पोतने के काम आती है और न खेती-बारी के लिए उपयुक्त होती है। सर्वत्र बंजर ही बंजर, जिस पर खाद-पानी का कोई असर नहीं होता। अब माया की आँखों में न कोई सपना था, न दिल में किसी अलौकिक-से सुख की लालसा। वह न किसी के सम्मुख हँसती थी और न एकांत में रोती थी। बिल्कुल निर्विकार-सी रहती, जैसे उसके हृदय के भावकुंड का स्रोत मुँद गया हो। बस, निर्लिप्त-सी अपने कामों में लगी रहती।

हरिचरन की माँ से माया का दुःख देखा नहीं गया। पीलिया की शिकार होकर दुनियाँ छोड़ गयी। माया अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ अकेली रह गयी। हरिचरन के पिता पहले ही उस राह पर चले गये थे, हरिचरन और माया की शादी के क़रीब दो साल पहले। अब घर में माया को ढाँढस बँधाने वाला भी कोई नहीं था। इस बात को हरिचरन की माँ अच्छी तरह समझती थी कि माया की वेदना को समझने वाला कोई नहीं है। इसलिए उन्होंने अंतिम साँस लेने के पूर्व अपनी देवरानी यानी मुरली की माँ से प्रण लिया था कि वह माया को अपनी बेटी की तरह रखे। उसके हर सुख-दुख का ख़्याल रखे। वास्तव में, हरिचरन की माँ के बाद माया की वेदना को सिर्फ़ मुरली की माँ ही समझ सकती थी। मुरली की माँ क़रीब पचास साल की रही होंगी, जब समय ने उन्हें विधवा का जीवन स्वीकार करने को बाध्य कर दिया गया था। उस समय मुरली पंद्रह साल का था। चार-भाई बहनों में वह सबसे छोटा था और वही एक रह गया था, बाक़ियों को समय ने असमय ही मृत्यु की गोद में सुला दिया था। हरिचरन मुरली से दो साल बड़ा था। उसकी दो बहनें थीं, जिनकी शादी हो चुकी थी। यद्यपि फूलमती देवी आधी से अधिक ज़िंदगी जी चुकी थीं, तथापि पति खोने के पहाड़ जैसे दुख को बड़ी मुश्किल से सह पायी थीं। माया की ज़िंदगी तो अभी शुरू ही हुई थी। कहा जाता है कि स्त्रियाँ ज़िंदगी का असल सुख एक-दो बच्चों के बाद ही उठा पाती हैं। इसके पूर्व पूरी तरह खुल नहीं पातीं। सामाजिक मर्यादाओं एवं कई तरह की वर्जनाओं के बीच पली-बढ़ी स्त्री अपनी यौनेच्छा को अपने पति के समक्ष भी प्रकट नहीं कर पाती। बस पति जैसा चाहता है, वैसे ही समर्पित हो जाती है। बच्चों को तो माया मुरली और राधा के साथ मिलकर किसी तरह पाल भी लेगी, पर ख़ुद का क्या? वह कब तक घुट-घुटकर मरती रहेगी? मुरली की माँ सोचती कि माया की फिर कहीं शादी करवा दे, लेकिन उससे शादी के लिए कौन तैयार होगा? और पिता का प्यार तो उन्हें मिला नहीं। ऐसी स्थिति में माँ से भी अलग कर देना... नहीं, यह ठीक नहीं होगा। तब फिर क्या विकल्प बचता है?

मुरली। वही अंतिम विकल्प है। उन्होंने उसे डाँटा—"का रे मुरली, इतना बड़ा हो गया, तीन-तीन बच्चों का बाप भी बन गया, तुमको दुनिया की समझ है कि नहीं?"

"क्या हुआ माँ?" मुरली विस्मय से भर गया था। माँ आज तक तो ऐसा नहीं बोली थी। इनका कहने का माने का है, उसने सोचा।

"अरे बुद्धू! तुम माया का ख्याल काहे नहीं रखता है?"

"ऐसा काहे बोलती है माँ? हम कौन-सा ख्याल भोजी का नहीं रखे हैं?"

"का खाक ख्याल रखता है! बेचारी कितनी गुमसुम रहती है। कभी-कभी उसके पास बैठा करो और उससे बातचीत करो, उसे अच्छा लगेगा।"

मुरली तब माँ का तात्पर्य नहीं समझ पाया था। अतः माँ की आज्ञा मानकर सारे कामों से फ़ुर्सत पाने के उपरांत शाम को वह माया के पास चला जाता तथा दस-पंद्रह मिनट तक इधर-उधर की बातें करके चला आता। किंतु, माँ की पैनी निगाहों ने देखा कि माया की उदासी अब भी जस की तस बनी हुई थी। इसलिए, उन्होंने माया को समझाना चाहा—"बेटी मुझको लगता है, अधिक दिन नहीं जी पाऊँगी।"

"ऐसा क्यों कहती हैं माँ जी? हम तो आपके ही भरोसे जी रहे हैं और आप ही...।"

यही तो कहती हूँ बेटी। मुझको सबसे अधिक फिकिर तुम्हारी ही है। तुम्हारे सामने पर्वत जैसी जिंदगी है। यों तो ज़िंदगी पर्वत के समान ही होती है, जिसके शिखर पर चढ़ने के सभी रास्ते दुर्गम होते हैं। इसीलिए, इस पर्वत पर चढ़ने के लिए सभी को एक-दूसरे के सहारे की जरूरत पड़ती है। इस रास्ते पर तुम अकेली कैसे चल पाओगी, सोचकर ही डर लगता है। मेरी तो अपनी ही काया साथ नहीं देती। और, मरना-जीना किसके वश में होता है! तुम्हारी (हरिचरन की) माँ भी तो मरने जैसी नहीं थी।"

"सब विधि का विधान है माँ जी। जब मेरे कपार में यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखा है, तो कौन मिटा सकता है?''

''विधि को काहे दोष देती हो पगली? भगवान ने मानुष को करम करने की शक्ति दी है। अपनी शक्ति और बुद्धि के बल पर वो अपना भाग्य बदल सकता है, अपनी खुशी हासिल कर सकता है... देखो बेटी, हरिया आएगा कि नहीं, ये न तुमको पता है, न हमको। कब तक घुटती रहोगी? जब तक साँसें हैं, तब तक तो जीना होगा। दोनों बच्चों का आसरा भी तो तुम्हीं हो। फिर क्यों नहीं खुश रहना सीख लेना चाहिए?''

''माँ जी, मैं अब भी आपका मतलब नहीं समझ पा रही हूँ. ..।''

''अरे बेटी, दिन भर खेतों में काम करके आने बाद साँझ को कितनी अकेली हो जाती हो। उस समय मुरली को बुला लिया करो। फुर्सत के छन में आपस में कुछ बातचीत हो जाएगी, तो तुम्हारा मन हल्का हो जाएगा।''

''लेकिन वो तो कभी-कभी आता ही है माँ जी।''

''अरे वो खुद पगला है, नासमझ है। आता है और तुरंत चला जाता है। उसे थोड़ी देर रोका करो, कुछ और बातचीत किया करो...।''

माया कई दिनों तक इसी सोच में डूबी रही कि माँ जी का तात्पर्य क्या था? मुरली से कुछ देर बातें कर लेने से कौन-सी खुशी मिल जाएगी, कौन-सा सुख प्राप्त हो जाएगा? बातों से यह सब मिलना होता, तो कब का मिल चुका होता। मुरली से तो वर्षों से बातें होती आ रही हैं। हम दोनों गूँगे-बहरे तो नहीं है। फिर माँ जी का इशारा किस ओर था? कहीं वो मेरे और मुरली के... नहीं-नहीं. ..। माँ जी का यह मतलब नहीं हो सकता। यह मर्यादा के प्रतिकूल है, सामाजिक नियमों के विरुद्ध है।

माया को याद है—क़रीब चार साल पहले जब वह अलस्सुबह खेत की तरफ़ शौच के लिए गयी थी, तो हरखू ने ज़बरदस्ती करने की कोशिश की थी। तब इन्हीं माँ जी ने सारे गाँव के सामने वह बेइज़्ज़ती की थी कि वह आज भी माया के सामने से सिर झुकाकर निकल जाता है। तब गाँव वालों ने भी माँ जी का पक्ष लिया था और हरखू पर पाँच सौ रुपये का दंड लगा दिया था... तो माँ जी तो ऐसी सलाह नहीं देंगी। फिर क्या था उनका मतलब?

''अच्छा छोड़िए उनका नाम नहीं लेता। बताइए, क्या सोच रही थीं?''

''बोली न, कुछ नहीं।''

''नहीं, कुछ बात तो है भौजी। तभी तो आज कुछ ज़्यादा ही उदास लग रही हैं खुलकर कहिए, मैं आपके लिए कुछ भी कर सकता हूँ।''

''माया ने गहरी साँस लेते हुए कहा—''सच कहूँ मुरली बाबू, तो अब जीने का मन नहीं करता है। अगर ये दोनों बच्चे नहीं होते तो...।''

''भौजी!'' मुरली तड़प उठा, ''मेरे सामने ऐसा मत कहिए। मैं जानता हूँ कि आपके सामने दुखों की थाह नहीं है। ऐसा दुख, जिसे आप प्रकट भी नहीं कर सकतीं। और, यह सब दादा के कारण है। यकीन मानिए भौजी, अबकी बार वो आएँगे, तो मैं घर में घुसने नहीं दूँगा, आँगने से धक्के मार के भगा दूँगा।''

''उससे क्या होगा मुरली बाबू। मेरा दुख कम तो नहीं हो जाएगा। अब तो लगता है...,'' माया का गला भर आया, आँखें भर आयीं और सुबक पड़ी।

वर्षों बाद माया की आँखों में आँसू देख मुरली अकबका गया—''नहीं भौजी, रोइए मत'' और वह अपनी दोनों हथेलियों में माया के गालों को लेकर उसके आँसू पोंछने लगा। माया की सिसकन और बढ़ गयी। सालों से सूख चुकी आंखों में मानो आँसुओं का समुद्र उमड़ पड़ा। अश्रुधारा अपने पूरे वेग से बहने लगी। उसकी देह जैसे शिथिल हो गयी और निढाल होकर उसने मुरली के सीने में अपना सिर छिपा लिया। मुरली ने अपनी बाँहों में माया को समेट लिया और उसकी पीठ हौले-हौले सहलाने लगा। फिर जैसे अपने आप मुरली की हथेलियाँ माया के अन्य अंगों पर सरकती चली गयीं। माया को उसकी हथेलियों की छुवन से असीम सुख की अनुभूति होने लगी।

अब माया को जैसे ज़िंदगी में आगे चलने की एक नयी राह मिल गयी थी, अँधेरे रास्ते में एक नयी रोशनी दिखायी दे गयी थी। नयी उमंग, नया उत्साह जीवन में भरने लगा था। पहले की तरह ही फिर से सजने-सँवरने लगी थी। छोटी-छोटी बातों में हँसने खिलखिलाने लगी थी। फूलमती देवी आश्वस्त हुईं कि माया ने खुश रहने की विद्या सीख ली है।

परंतु, गाँव के अन्य स्त्री-पुरुषों को माया का इस तरह सजना-सँवरना, हँसना-मुस्कुराना नागवार गुज़रने लगा। कानाफूसी में कई तरह की बातें होने लगीं। अचानक उसकी इस प्रसन्नता का रहस्य क्या है? किसी को फँसा तो नहीं लिया है? लेकिन किसे? क्या गाँव के ही किसी... या फिर मुरली को ही...? किंतु मुरली तो वैसा लड़का नहीं है और, उससे ऐसा होना होता तो कब का हो चुका होता! औरतें इस रहस्य को जानने के लिए कदाचित् अधिक व्यग्र थीं। अतः शाम को कोई न कोई अक्सर माया के पास आ जाती-कभी कुछ माँगने के बहाने, कभी देने के लिए, तो कभी यों ही गपशप करने की ख़ातिर। किंतु, ऐसा कोई सूत्र हाथ नहीं लग रहा था, जिससे माया की खुशी का राज़ जाना जा सके। कुछ औरतों ने राधा से इस बारे में बात की, तो वह सिरे से उखड़ गयी—''क्या आप लोग उल-जलूल सोचती रहती हैं! बेचारी माया दीदी कितना दुख सहती आयी हैं। अब अगर उन्होंने कर्म का लिखा समझकर खुश रहना शुरू कर दिया है, तो आप लोगों के दिमाग़ में कीड़े क्यों काटने लगे हैं? पेट में दर्द क्यों होने लगा है? क्या आप लोग चाहती हैं कि वे ज़िंदगी भर उदास निराश-हताश रहें? रोती-बिलखती रहें? जाइए, दुबारा ऐसी बात मेरे सामने मत कीजिएगा।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन राधा माया का सुख, उसकी ख़ुशी अधिक दिनों तक नहीं देख सकी। दो महीने बाद ही बुखार ने उसे पटक दिया। गाँवों में छोटे-मोटे ज्वर तो होते ही रहते हैं, इसलिए कोई ज़्यादा ध्यान नहीं देता। किंतु, राधा का शरीर बुरी तरह तपने लगा था, साँसें उखड़ती-सी लगने लगी थीं, इसलिए गाँव के ओझा, बुधू भगत को बुलाया गया। उसने बताया किसी गुनी ने भूत चढ़ा दिया है। उसे झाड-फूँक की, जड़ी-बूटी की कुछ दवाइयाँ दीं, पर कोई असर नहीं हुआ। गाँव की स्त्रियाँ आपस में बतियातीं कि किसी कुकर्म का फल बुखार के रूप में आया है। अंततः उसे शहर के एक अस्पताल में ले जाया गया, पर सारा प्रयास व्यर्थ! डॉक्टरों ने मृत घोषित कर दिया। डॉक्टरों से ही पहली बार मुरली ने जाना कि कोई दिमाग़ी बुखार भी होता है।

मुरली और माया दोनों के घरों में भयानक सन्नाटा पसर गया। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें। सबसे ज़्यादा धक्का फूलमती देवी को लगा। मुरली अकेले कैसे जी पाएगा? तीन छोटे-छोटे बच्चों का लालन-पालन कैसे हो सकेगा? औरतों में परिस्थिति का सामना करने की ताक़त पुरुषों से अधिक होती है। लाख परेशानियों के बावजूद वे अपने बच्चों को पाल-पोस लेती हैं, जैसे माया कर रही है, पर यह पुरुषों के बूते की बात नहीं है। उधर माया का सजना-सँवरना हँसना-खिलखिलाना पुनः बंद हो गया। वह फिर से गुमसुम रहने लगी।

परिस्थितियों से हारकर कोई कितने दिन बैठा रह सकता है? समय बीतने लगा और पुनः जीवन की सुगबुगाहट होने लगी। धीरे-धीरे सब कुछ अतीत-सा होने लगा और ज़िंदगी पटरी पर धीमी चाल से ही सही, रेंगने लगी। मुरली और माया में अघोषित समझौता हुआ कि दोनों मिलकर ज़िंदगी जी लेंगे, बच्चों को पाल-पोस लेंगे।

अभी कुछ ही महीने गुज़रे थे। माया और मुंरली के जीवन में हँसी-ख़ुशी पुनः प्रवेश कर ही रही थी कि चर्चा का विषय हवा में चारों तरफ़ किसी विषाणु की तरह फैल गया कि मुरली माया को बच्चा गिरवाने शहर ले गया था। फिर क्या था, गाँव के स्त्री-पुरुषों के तेवर कड़े हो गये। यह तो अपराध है, पाप है, सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन है। पंचायत बैठी और माया-मुरली को बुला लाया गया। मुरली ने सफ़ाई पेश करने की कोशिश की "आरोप निराधार है। भौजी की तबीयत ख़राब थी। आप लोग तो जानते ही हैं, लापरवाही के चलते ही मेरी राधा की जान चली गयी। इसलिए, इस बार मैं कोई जोख़म उठाना नहीं चाहता था....।"

उसकी सफ़ाई पर कोई कुछ कहता, उसके पूर्व ही फूलमती देवी बोल पड़ी—"नहीं मुरली झूठ बोल रहा है..."

सबकी अचरज भरी नज़रें फूलमती देवी की तरफ़ उठ गयीं। माया और मुरली ने भी आश्चर्य एवं भयमिश्रित नज़रों से उनकी ओर देखा। फूलमती देवी ने आगे कहा—"हाँ माया और मुरली के बीच संबंध हैं। पर, इसमें बुराई क्या है? हरिया का दस से अधिक सालों से अता-पता नहीं है। आएगा या नहीं, ज़िंदा भी है या नहीं? क्या किसी ने जानने का प्रयास किया? किसी ने बेचारी माया की पीड़ा को समझने की कोशिश की?"

"इसका मतलब है काकी कि आपको इनके संबंधों के बारे में पहले से पता था?" मुरली की ही वय के एक युवक ने जिज्ञासा प्रकट की।

फूलमती देवी ने कहा—"बेशक, जानती थी।"

"तब तो आप यह भी जानती होंगी कि इनका संबंध कब से है?" एक अन्य युवक ने जानना चाहा।

"हाँ, यह भी जानती हूँ। शायद तभी से, जब राधा जीवित थी।"

इस पर लोग और विस्मित हुए।

"क्या राधा इस बात को जानती थी?"

"शायद नहीं।"

"यह तो बहुत ग़लत बात है... उस आदमी को फँसाना, जिसकी पत्नी जीवित हो...", भीड़ से आवाज़ें आने लगीं।

किंतु, फूलमती देवी ने मानो हार न मानने की कसम खा ली थी—"ग़लत क्या है? कौन नहीं जानता कि ज़िंदगी में स्त्री-पुरुषों को एक-दूसरे की आवश्यकता होती है, साहचर्य की जरूरत पड़ती है? अगर मुरली ने माया को थोड़ी-सी ख़ुशी दे दी, तो कौन-सा गुनाह हो गया? माया जब ख़ुश रहने लगी, तो आप सब को पीड़ा होने लगी, समाज की मर्यादा भंग होने लगी, क्यों? मैं आप सब समाज के पहरेदारों, मर्यादा के रक्षकों से पूछना चाहती हूँ कि समाज क्या होता है? क्या वो जो किसी के दुख-तकलीफ़ों की ओर से मुँह मोड़ लेता है? क्या वो किसी की वेदना को समझना तक नहीं चाहता है?"

"तो आप समाज के अस्तित्त्व को नकार रही हैं? क्या आप यह कहना चाहती हैं कि सारे कायदे-कानून बेकार हैं?"

"मेरा यह मतलब नहीं है। मानती हूँ कि माया और मुरली का दैहिक संबंध सामाजिक मर्यादा के प्रतिकूल है, लेकिन यह प्रतिकूलता है क्यों? इसे अनुकूल बनाने का प्रयास क्यों नहीं किया जाता? मेरा मतलब यह नहीं कि सभी को किसी से भी यौनेच्छा-पूर्ति का अधिकार दे दिया जाए। लेकिन, क्या समाज का यह फर्ज़ नहीं बनता कि वह माया जैसी दुखियारी की पीड़ा को समझे और कुछ ऐसा उपाय करे, जिससे समाज की मर्यादा भी बची रहे और उसे जीवन की सारी ख़ुशियाँ भी मिल सकें?"

पचास-बावन साल के भादो ने अपना मुँह खोला—"मगर भाभी जी, इज्जत-पानी भी तो कोई चीज़ है! स्त्री की तो सबसे कीमती चीज उसकी इज्जत होती है और माया उसी को गँवा बैठी। मुरली तो लड़का है, लड़के की इज्जत थोड़े जाती है!"

नयी उम्र के कुछ लड़के फुसफुसा रहे थे कि बुढ़िया पगला गयी है। इसका भी मरद नहीं है न, इसीलिए ऐसा बोलती है।

भादो की बात पर पहली बार तीस-बत्तीस साल की एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी महिला प्रतिवाद करती हुई बोली—"नहीं काका, मैं आपकी बात से सहमत नहीं हूँ। अगर यह गुनाह है, तो माया-मुरली दोनों ने किया है। ऐसे में केवल माया को दोषी ठहराना ग़लत है और माया ने मुरली से ही तो संबंध जोड़ा है, किसी गैर से तो नहीं। घर की इज्जत घर में ही रह गयी, तो इसमें खराबी कहाँ है?"

"हाँ-हाँ, गुनिया ठीक कहती है। क्या केवल औरतों की इज्जत होती है, जो जाती है? क्या मर्द बेइज्जत रहते हैं? क्या औरतों ने ही समाज की इज्जत का ठेका ले रखा है कि किसी स्त्री की इज्जत जाने पर समाज की इज्जत चली जाती है?" एक और महिला स्वर उभरा, जैसे फूलमती देवी की बातों ने सभी में जोश भर दिया था, आँखों की ज्योति जगा दी थी।

हाँ मर्द लाख मुँह मारता फिरे, समाज का कुछ नहीं बिगड़ता, यह ग़लत है।"

"हाँ-हाँ ग़लत है, ग़लत है," महिलाओं का समवेत स्वर उभरा।

सबसे बुजुर्ग रोगन काका ने सभी को हाथ के इशारे से शांत रहने का आग्रह किया। एक गहरी ख़ामोशी छा गयी। सारे मर्द हतप्रभ थे। तत्पश्चात कुछ खुसर-फुसर होने लगी। रोगन काका ने आगे बात बढ़ायी—"देखिए हम लोग रास्ते से भटक रहे हैं। मुरली की माँ, आप प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने की बात कह रही थीं, इसका क्या आशय है? आपके विचार से ऐसी परिस्थिति में जब किसी का पति दस-बीस सालों से बिना किसी अते-पते के गायब हो, तो क्या किया जाना चाहिए?"

"जी, आप गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। मैं भी आपका पूरा सम्मान करती हूँ। मैं समझती हूँ कि वैसी स्त्री की, यदि उसकी मर्जी हो, पुनः शादी कर देनी चाहिए। इसके लिए समाज के नज़रिये में बदलाव लाने की जरूरत है। उसे ऐसी दुखियारी को पूरे सम्मान के साथ अपनाने के लिए तैयार रहना चाहिए। यदि बच्चे हों तो उन्हें भी माँ के साथ-साथ पूरे स्नेह से अपनाना चाहिए।"

एक अनुभवी सज्जन ने कहा—"मुरली की माँ की बातों में दम है, मगर यह सब इतना सरल नहीं, जितना प्रतीत होता है। ऐसे मुद्दों पर व्यापक चर्चा की ज़रूरत है। इसलिए, मेरा सुझाव है कि इस समय माया-मुरली के बारे में ही बात की जाए।"

सभी को सुझाव पसंद आया। विचार-विमर्श के उपरांत रोगन काका ने कहा, "अब चूँकि राधा रही नहीं, इसलिए माया-मुरली के संबंध पर उँगली उठाना ठीक नहीं होगा। किंतु, इन्हें पति-पत्नी के रूप में रहना होगा। माया बेटी, तुम्हें मंज़ूर है?"

माया कुछ बोल न सकी। आहिस्ता से नज़रें झुका लीं, मानो उसने मौन स्वीकृति दे दी हो। एक उत्साही युवक ने सवाल किया—"अगर बाद में हरिया दादा आ गये तो?"

"तो....तो....तो...?"

"तो वो मेरे पति होने का अधिकार खो चुके होंगे", माया ने जैसे अंतिम फ़ैसला सुना दिया। मुरली ने माया को देखा, माया ने मुरली को। फिर माया ने शरमाकर नज़रें झुका लीं। उसके अंदर का पक्षी हरिचरन के बंधन से मुक्त होकर निस्सीम आकाश में मुरली के साथ उड़ान भरने को फड़फड़ाने लगा।

585/बी डी.एस. कॉलोनी
हीरापुर, धनबाद-826001 (झारखंड)

लघु कथा

जनहित

आलोक कुमार सातपुते

एक लोकप्रिय समाचार-चैनल द्वारा स्ट्रिंग आपरेशन कर उसकी सी0डी0 तैयार कर ली गई। सत्तापक्ष का एक बड़ा लीडर दलालों से पैसे लेते हुए कैमरे में क़ैद था। सत्तापक्ष ने चैनल से सौदेबाजी की, और चैनल ने घोषणा कर दी कि जनहित में सी0डी0 प्रसारित नहीं की जा रही है। इलेक्शन नज़दीक ही थे, कि अचानक चैनल की विपक्ष के साथ सौदेबाजी हुई और सी0डी0 को जनहित में प्रसारित कर दिया गया।

दूनी हैसियत

उस आदमी ने पचास प्रतिशत डिस्काउण्ट वाली दुकान से आठ सौ रुपये के जूते खरीदे, जो पचास प्रतिशत डिसकाउण्ट के बाद उसे चार सौ के पड़े। वह जूते पहनकर घूमता रहा। लोगों के लाख टोकने पर भी उसने अपने जूतों से क़ीमत का टैग नहीं निकाला, जिसमें जूते की क़ीमत आठ सौ रुपये लिखी हुई थी। जूते को उसने उसके फटते तक पहना। और आख़िरी तक टैग नहीं निकाला।

...इस तरह वह आदमी अपनी हैसियत से दूनी हैसियत का आदमी बना रहा।

एलआईजी-832, सेक्टर-5
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, सड्डू रायपुर (छत्तीसगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्या

इंदु बाली

सूर्या की शादी शुभम् के साथ हो गयी थी। शुभम् उसके पिता जी की पसंद का लड़का था। सूर्या के लिए बिल्कुल अनजान। पर, उसे अपनी माँ और पिता पर बेहद भरोसा था। वह इकलौती संतान थी। उसे अपने घर से ऐसे संस्कार मिले थे, जो दृष्टि आधुनिक और जड़ें परंपरा, मूल्य और संस्कारों से जुड़ी होने के पक्ष में थे। संबंधों को लेकर कोई संदेह नहीं था, बस था, तो एक विश्वास। पिता साधारण परिवार से थे। कई साल पहले परिवार पर कोई मुसीबत आयी, तो उसकी माँ ने अपनी योग्यतानुसार हेल्पर का काम शुरू किया और अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आगे चलने लगी। दोनों ने दिन-रात मेहनत की और परिवार को मुसीबत से बाहर ले आये। माँ जिस सेठानी की देखभाल करती थी, वह माँ के काम से बहुत खुश थी। एक औरत ने दूसरी औरत को सेवा से नया जन्म दिया था और साथ ही सूर्या की माँ ने भी अपने पति के परिवार को सँभाल लिया था। शाम को सूर्या के पिता उसकी माँ को वापिस लेने आते थे। एक दिन जब वे सूर्या की माँ को लेने आये, तो सेठ जी ने पूछा "आप क्या काम करते हैं?"

"एक फ़ैक्ट्री में मेकेनिक का काम करता हूँ, सर।"

"कितना पढ़े हो?"

"जी, मेकेनिकल इंजीनियर हूँ।"

"फिर छोटे काम पर क्यों लगे हो?"

"सर, मेरे परिवार की स्थिति कुछ ठीक नहीं। नौकरी शहर के बाहर मिलती है, वहाँ जाना मेरे लिए संभव नहीं है। यहाँ अपना घर है और गाँव से थोड़ा दाना-पानी मिल जाता है। मेरी पत्नी आपके पास काम करती है। बस, सब बढ़िया हो जाता है।"

सेठ जी ने दो पल मौन रहकर कहा "क्या तुम मेरी फ़ैक्ट्री में मैनेजर पद पर आना चाहोगे? काफ़ी दिन से मैं एक योग्य व्यक्ति और ईमानदार संस्कारी व्यक्ति की खोज में था..."

"सर, आप चाहें तो क्यों नहीं। मै कल ही अपना 'रिज़ूम' और दूसरे सर्टीफ़िकेट्स लेकर आ जाऊँगा। आप देख लें। यदि आप योग्य समझेंगे, तो मैं अवश्य काम करूँगा।"

सेठ जी ने उसकी आँखों में सीधे देखकर कहा " पर मेरी एक शर्त है..."

"क्या सर ?"

"तुम्हारी पत्नी को इसी तरह सेठानी की देखभाल करनी होगी, जब तक वह पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो जाती।"

"सर, ऐसा ही होगा, आप चिंता न करें। मेरी पत्नी झूठे अहं या दिखावे में विश्वास नहीं करती। वह मेरे लिए और मेरे बूढ़े माँ-बाप के लिए कुछ भी कर सकती है। आप यह शर्त न भी रखते, तो वह अपना कर्तव्य निभाती। वह मानती है कि कोई भी काम छोटा नहीं होता और सेवा में लज्जा कैसी? सर, अगर उसका मन संस्कारी न होता, तो क्या वह एक पढ़े-लिखे इंजीनियर की पत्नी होते हुए उसे मेकेनिक का काम करने देती या उसकी मदद के लिए स्वयं एक हैल्पर का काम करती?"

"पर उसके माँ-बाप ?"

"वे सिर्फ़ इतना जानते हैं कि मै एक बड़ी फ़ैक्ट्री में काम करता हूँ। हम दोनों सपरिवार खुश हैं।"

सेठ जी ने उसके कंधे को थपथपाया और अंदर चले गये। अगले दिन सूर्या के पिता सब काग़ज़-पत्र लेकर सेठ जी के दफ़्तर में पहुँचे, तो वे बहुत प्रसन्न हुए। शुरू से आख़िर तक वह फ़र्स्ट क्लास फ़र्स्ट थे और सर्टीफ़िकेट्स में पढ़ाने और काम करने वालों ने जो तारीफ़ की थी, वह देखने योग्य थी। भाग्य का चक्र कुछ इस तेज़ी से बदला कि कुछ ही सालों में उन्होंने अपने काम के बल पर बहुत ऊँचा स्थान पा लिया। सूर्या का जन्म हुआ, तो सेठ जी ने उन्हें अपनी फैक्ट्री में चालीस प्रतिशत का हिस्सेदार बना लिया था। अब सूर्या के पिता नौकर नहीं, परिवार का हिस्सा हो गये थे। सेठानी अब चलने फिरने लगी थीं, पर सूर्या की माँ उनकी सेवा पहले से भी अधिक मन लगाकर करती थी। उनकी अपनी कोई संतान नहीं थी। वे सूर्या से बहुत प्यार करती और उसे गोद लेना चाहती थीं, पर सूर्या के पिता ने यह कहकर टाल दिया कि यह हमारी पहली संतान है और उस पर सिर्फ़ और सिर्फ़ उसके दादा-दादी का हक़ है। पर हाँ, मैं वायदा करता हूँ कि दूसरी संतान जो भी होगी, वह आपको दूँगा। बात यहाँ ख़त्म हो गई थी। समय बीतता गया, पर सूर्या को कोई बहन-भाई नहीं मिले। सेठ-सेठानी निस्संतान ही रहे।

बढ़िया माहौल में सूर्या पली-बढ़ी। ख़ूब पढ़ी-लिखी, पिता की तरह लायक तथा माँ की तरह कर्तव्यपरायण और संस्कारी थी। सौंदर्य में वह अपनी दादी से भी बढ़कर थी। दादी के सौंदर्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बखान हमेशा होता, पर जैसे-जैसे वह जवान हुई, उसका सौंदर्य सूर्य की तरह दमकने लगा। पर, सूर्या को इसे लेकर कोई अंतर नहीं पड़ता था। वह साधारण पहनावे, मौन और शांत व्यक्तित्त्व वाली थी। बस, अपनी पढ़ाई और काम से मतलब था। सीधे कॉलिज जाती और समय से घर लौट माँ का हाथ बँटाती और सेठानी से बातें करती। सूर्या के दादा-दादी अब नहीं रहे थे, पर उसे सारा दुलार उन्हीं से मिलता रहा था। सभी को उसकी विद्वत्ता और व्यक्तित्त्व पर मान था।

सूर्या के लिए यह लड़का उन्होंने ही सुझाया था। वह एक तरह से सेठ ही थे। थोड़ा उन से कम, पर लड़का लायक था। सूर्या की तरह ही एम.बी.ए. किये हुए था। छोटा परिवार था। बस एक बहन थी। सूर्या और शुभम् दोनों अच्छी बड़ी कंपनियों में कार्य कर रहे थे। माता-पिता और सेठ जी के कहने से सगाई हो गयी थी। दोनों एक-दूसरे के स्वभाव से अपरिचित थे। शादी से पूर्व दो महीने वे घूमते-फिरते रहे। शुभम् हर काम सूर्या से पूछ कर करता। होटल में जाता, तो खाना उसकी पसंद का होता और स्वयं कुर्सी खींचकर उसे बिठाता। पूरे सम्मान के साथ वह सिनेमा देखने या क्लब में जाता। व्यर्थ उसे छूने या नज़दीक आने की कोशिश कभी नहीं करता था। सूर्या को उसका यह सौम्य और भद्र व्यवहार अच्छा लगता था, क्योंकि संबंधों और मित्रता में किसी भी तरह की अभद्रता उसे पसंद नहीं थी। बहुत ओछा और दिखावटी व्यवहार उसे कभी भाता ही नहीं था। वह स्वयं बेहद गंभीर स्वभाव की थी। बस अपने काम से काम। वह अपूर्व सुंदरी है—इस बात का न तो उसे गर्व था और न ही वह किसी को यह दिखाती थी। अपने सौंदर्य को तो वह इतना ढँक कर रखती थी कि लोग उसे सुंदर होने पर भी साधारण 'बहन जी' तक कह देते थे। कॉलिज, यूनीवर्सिटी, लाइब्रेरी और घर-परिवार के अलावा कुछ नहीं। सूर्या के संस्कारों की जड़ें इतनी गहरी थीं कि कोई चाहने पर भी उन्हें हिला नहीं सकता था।

सूर्या की शादी हो गयी और वह खुशी-खुशी संतुष्ट शुभम् के साथ डोली में बैठ उसके घर आ गयी थी। शाम को रिसेप्शन था। दिन भर तो तरह-तरह के शगुन होते रहे और शाम को दुल्हन के रूप में जब उसने स्वयं को देखा, तो हैरान रह गयी। क्या वह सच में इतनी सुंदर है? जब लोग कहते थे कि वह अपूर्व सुंदरी है, बिल्कुल अप्सरा-सी, तो क्या वे सच कहते थे? उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह हीरे-सा उज्ज्वल और सूर्य-सा चमकता सौंदर्य उसका है। उसने फट से काला टीका कान के पीछे लगा लिया था। किसी की ही क्यों, कहीं उसे अपनी नज़र ही न लगा जाए। आज बाहर जाते हुए उसे पहली बार घबराहट हो रही थी। कैसे करेगी वह लोगों का सामना, जब वह स्वयं ही आईने में अपने को देख घबरा गयी थी। ढेरों प्रश्न उसके दिमाग़ में थे। हर तरह से तराशा हुआ रूप उसे डरा रहा था। पर, एक खुशी भी थी कि शुभम् उसकी सराहना करेगा, अपने भाग्य पर गर्व करेगा और वह उसके सीने पर सर रख सुरक्षित हो जाएगी। अपने सौंदर्य को तो स्वयं उसने भी आज पहली बार देखा था। सोच रही थी कि शाम को जब रिसेप्शन में उसके सहपाठी, साथ काम करने वाले, ढेरों अफ़सर उसे देखेंगे, तो हैरान रह जाएँगे—कहाँ छुपा रखा था यह दमकता सौंदर्य इस बहन जी जैसी लड़की ने? सच में वही हुआ, जो उसने सोचा था। जो भी आता, पल को चौंकता, निहारता और सौंदर्य को लेकर ढेरों उपमाएँ जड़ देता। उपहार देते समय उसे छूना, गले लगाना या हाथ मिलाना शायद ही कोई भूला होगा! आँखों में आँखें डाल उसके निकट के मित्र यह ज़रूर कहते—"कहाँ छुपा रखा था इतना सौंदर्य?" सूर्या को खुशी के स्थान पर डर लग रहा था। मित्रों द्वारा दी गयी जीवन की यह पहली छुअन उसे सिहरन से भर रही थी। साथ बैठे शुभम् के चेहरे पर एक रंग आ रहा था, एक जा रहा था। जो भी उससे हाथ मिलाता या गले लगाता, उसमें सिर्फ़ एक औपचारिकता भर थी। वह मेरा दूल्हा है, शायद एकाध शब्द उससे कहना आवश्यक-सा लग रहा है। उसके चेहरे पर कुछ पल पहले दिखायी देने वाली सारी खुशी और सूर्या को पाने का गर्व धुँधला- सा हो गया था। वह सोच रहा था कि वह भाग्यशाली है या अभागा? अजीब शंका उसके अंदर करवट लेने लगी थी। सब जानते हैं कि पृथ्वी के अंदर जब कंपन होता है, तो विनाशकारी भूचाल आता है, प्रलयंकारी बाढ़ भी।

सुहागरात के लिए कमरा बहुत सुंदर ढंग से सजाया गया था और पलंग तो स्वप्नलोक से आये लगे रहे थे। उस पर प्रतीक्षा करती सूर्या अप्सरा-सी लग रही थी। इतना सौंदर्य कण-कण में भरा था कि हैरानी होती थी। जो भी उस कमरे की सजावट को देखने आता, हैरान रह जाता; पर लौटते हुए यह भी कहता, "पर, दुल्हन बहुत ही सुंदर है, अपूर्व अप्सरा-सी। जैसे स्वर्ग से सीधी उतरकर आयी हो।" फिर वह घड़ी आयी, जब शुभम् अंदर आया। कुछ पल सूर्या के पास बैठा, संस्कारों ढ़ोंग, व्यवहार का ढोंग और उसके सौंदर्य का भी ढोंग-भरा वर्णन करता रहा। पर, यह ढोंग कब तक चलता? वह बोला, "सूर्या, तुम बहुत सुंदर हो। तुम्हारे सौंदर्य का तेज़ मैं सहन नहीं कर पा रहा। तुम इतनी सुंदर भला कैसे हो सकती हो? यदि हो भी, तो तुम्हें मुझसे पहले किसी ने देखा, छुआ और सराहा न हो, यह कभी हो ही नहीं सकता। आज शाम को ही ले लो, सब तुम्हें देखना या छूना चाहते थे।"

सूर्या ने हँसकर कहा, "मुझे तो स्वयं भी आज पता लगा कि मैं इतनी सुंदर हूँ।

"क्या कह रही हो?"

"वही, जो मैंने दुल्हन के रूप में पहली बार अपने को आईने में देखा और महसूस किया। सच, मैं तो स्वयं अपने सौंदर्य को देख डर गयी थी।"

"तुम झूठ बोल रही हो?"

"मैं कभी झूठ नहीं बोलती।"

"तुम्हें इस का प्रमाण देना होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कैसा प्रमाण?"

"यही कि तुम्हें शादी से पूर्व किसी ने छुआ नहीं, तुमने किसी के साथ सहवास नहीं किया। तुम्हारा तन, मन और यह सौंदर्य पवित्र है।"

"मेरा कोई अतीत नहीं। मुझे किसी ने देखा तक नहीं, छूने की बात तो दूर की है। तुम मेरे पति हो और यह पहला पुरुष स्पर्श होगा।"

"ये सब बाते हैं। तुम्हें इसका प्रमाण देना होगा। मेरे मन में शंकाएँ हैं कि तुम पवित्र हो ही नहीं सकतीं। तुम सच-सच बता दो... प्रमाण दो... मैं तुम्हें माफ़ कर सकता हूँ, पर जब तक तुम सच नहीं बोलतीं, मैं तुम्हें आज सुहागरात में छू नहीं सकता... मुझे लगता है कि तुम झूठ बोल रही हो। इतना अपार सौंदर्य कभी पवित्र हो ही नहीं सकता। दूसरों की नज़र और छुअन से कैसे बच सकती हो?"

"तुम पागल हो क्या? कैसी बातें कर रहे हो इस अविस्मरणीय पल में? सुहागरात तो शुभम् एक बार ही आती है। क्यों व्यर्थ की बातों में उलझे हो, ये शंकाएँ व्यर्थ हैं। संबंध तो सभी विश्वास पर टिके होते हैं, विशेष रूप से पति-पत्नी का... मेरा विश्वास करो... मैं सच कह रही हूँ... सच का कोई प्रमाण नहीं होता, बस महसूस किया जा सकता है।"

शुभम् के चेहरे पर एक कठोर-सा भाव उभरा। वह एक ज़हरीला नाग लग रहा था। स्वार्थी, क्रोधी, शंकालु। बदलना लेने के लिए तरह-तरह की शंकाएँ लपलपा रही थीं, बिल्कुल नाग की जिह्वा जैसी। बदला भी किस से? अपनी नव-विवाहिता पत्नी से। शंकाएँ किस पर? अपनी ही पत्नी के अपूर्व सौंदर्य पर। दो महीने वे आपस में मिलते रहे, तब ये प्रश्न और शंकाएँ कहाँ थीं? तब तो वह सिर्फ़ उसे पाना चाहता था। पर, आज विचारों में, सोच में व्यक्तित्त्व में, संस्कारों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ था। संपन्नता की झलक तो थी, पर दृष्टि आधुनिक न होकर आदिम या सामंती युग की थी। सूर्या जानती थी कि छोटी-छोटी बातों पर तकरार होना, रूठना-मनाना—यह सब विवाहित जीवन का अहम् हिस्सा है। बिना नोक-झोंक प्यार का अहसास ही नहीं होता। पर, आज सुहागरात के क्षण में यह सब क्यों? फिर उनका तो प्रेम-विवाह भी नहीं है। माँ-बाप की पसंद से हुई शादी में तो थोड़ा समय लगता है एक-दूसरे को समझने में। शुभम् को वह समझाना चाहती है। बार-बार कहती है कि वह सच कह रही है, वह उसका विश्वास करे।

पर, चेहरा एक आईना होता है, जिसमें अंदर-बाहर का सब प्रतिबिंबित होता है। शुभम् का चेहरा बेहद क्रूर हो गया था और उसे तो बस सौंदर्य की पवित्रता का प्रमाण चाहिए था। उसके चेहरे पर आते-जाते भाव उजागर हो रहे थे। अजीब-सी हीन ग्रंथियों में वह मकड़ी के जाले-सा उलझा था। दोनों अलग-अलग लाशों की तरह क़ब्रिस्तान में थककर सो गये थे। एक-दूसरे को देखे और छुए बिना।

प्रातः हुई, तो सूर्या मौन नहा-धोकर तैयार हो सास के पैर छूने गयी। सारे दिन लोग और रिश्तेदार आते-जाते रहे और शाम को फिर वही प्रश्न, वही शर्त और वही क़ब्रिस्तान का वातावरण... कुछ दिन इसी तरह चलता रहा। फिर सूर्या ने उसकी माँ से सीधा सवाल किया, तो वे हँसने लगीं, "अरे सूर्या, वह तो जनम से ही शक्की है, बात-बात पर शक करना उसका स्वभाव है। बड़ा हुआ तो बहन पर शक, माँ पर शक। यहाँ तक कि अपने पिता पर भी शक करता था, उनके पीछे जासूस छोड़ता था। अब पढ़-लिख कर बड़ी कंपनी में नौकरी करता है। सब संभल जाएगा और तुम्हें पाकर तो उसे अपने भाग्य पर गर्व होना चाहिए। शक के लिए कहाँ स्थान है? तुम चिंता मत करो, समय से सँभल जाएगा।"

माँ ने जिस सहजता से इस समस्या को लिया, उससे सूर्या को बेहद डर लगने लगा। रात को जब वह कमरे में गयी, तो शुभम् ने कहा, "फिर तुमने क्या सोचा? ऐसे कैसे चल सकता है? आख़िर हम पति-पत्नी हैं... दूसरी बात और भी कहना चाहता हूँ कि तुम नौकरी छोड़ दो। मुझे तुम्हारा बाहर काम करना पसंद नहीं।"

"शुभम्, यह सब तो तुम्हें शादी से पहले बताना चाहिए था।"

सूर्या रात भर सो नहीं पायी। शुभम् का मौन और शर्तें उसे भयभीत कर रही थीं। पहली ही रात में यह अजीब विस्फोट था, पर वह बार-बार चाह रही थी कि इसे वह अनकहा-अनसुना मान ले। पर, यह कैसे संभव था? वह यह भी जानती थी कि यह आरोप और यातना झूठ नहीं है, सुनते ही किसी की भी हृदय की धड़कने बंद हो सकती थीं। वह चाह रही थी कि शुभम् कोई झूठ बोल दे, उसका मन रखने के लिए ही सही। पर, वह कुछ न बोलता। सूर्या इन विस्फोटों से बच निकलना चाहती, पर वह बार-बार भँवर में फँस जाती। उसके मूल्य और संस्कार आपस में टकराने लगे थे। सूर्या बार-बार गहरी चेतना में उतरकर स्वयं को समझाना चाहती। इस भद्दे मज़ाक से वह बच निकलना चाहती, पर चारों तरफ़ प्रमाण माँगे जाने की दुर्गंध फैली है। एक प्रश्न था उसके मन में कि क्या सुंदर होना नारी के लिए पाप है? क्या सुंदर होना मात्र पति के हृदय में संदेह का बीज अंकुरित करता है और कुछ नहीं? यह बीज समय के साथ-साथ बढ़कर एक विशाल वट-वृक्ष बन जाता है? अभी तो उसने पति के घर में पहुँचकर दस्तक ही दी है और यह प्रश्नों का दैत्य भस्मासुर बनकर उसे निगलने लगा है। यह भी एक अजीब भ्रम होता है कि वह किसी के साथ जीना चाहता है या उसके बिना भी जी सकता है। पति-पत्नी के बीच एक पवित्र विश्वास और आस्था का बंधन होता है। सूर्या चारों तरफ़ देख रही थी कि वह सूत्र और बंधन कहीं खो गया था। फैला था संदेह का कोहरा, जिसका कोई क्रम नहीं था। एक प्रमाण चाहिए था। उसका मानना था कि सुंदरता बेदाग़ नहीं हो सकती। पर, सूर्या क्या करे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्या ने सुन रखा था कि समय के साथ ही कोई हर परिस्थिति में जीने का साहस जुटा लेता है, क्योंकि कोई भी भावना या पीड़ा दूर तक नहीं चलती। देर-सवेर सब अपने रुटीन में बँधने लगते हैं। पर, यहाँ तो आरंभ और अंत एक साथ आकर खड़े हो गये हैं। उसे निर्णय तो लेना ही होगा। पर, वह यह भी जानती है कि यह बदलाव की प्रक्रिया केवल ऊपरी सतह की होती है। अंदर तो पल-पल संदेह के भयंकर विस्फोट होते रहते हैं। फिर, इस परिस्थिति को स्वीकारा कैसे जा सकता है? मन के अंदर की स्थिति की परतों से बाहर आता-जाता रहता है। इस यात्रा को केवल महसूस किया जा सकता है, बताया नहीं जा सकता। संदेह न जीता है, न मरता है। शायद संदेह का अंत कभी होता ही नहीं। एक बार जो संदेह का कीड़ा पैदा हो जाता है, वह बढ़ता ही रहता है; लाख चाहने या समझाने पर भी विश्वास पैदा नहीं होता। सूर्या तरह-तरह के आतंक और विस्फोटों के बारे में पढ़ती-सुनती थी। मानव-बम के बारे में तो सोचते ही वह सिहर जाती थी। पर, आज उसे लगा कि शुभम् ने जो संदेह रूपी एटम-बम छोड़ा है, वह उनसे अधिक भयंकर और आक्रामक है; जो दिखायी नहीं देता, बस अंदर गहरे तक महसूस ही किया जा सकता है। इस यातना का न कोई अगला पड़ाव है, न प्रमाण।

रात भर उसे लगता रहा, जैसे उसके तन-मन पर इस विस्फोट का प्रभाव कीड़ों की तरह चिपक गया है। उसका तन-मन लहूलहान हो रहा है। यह दुर्गंध लाख चाहने पर भी न तो धोई जा सकती है, न ही किसी बढ़िया पर्फ़्यूम से भुलायी जा सकती है। एक पल को भी नहीं। उसका अछूता सौंदर्य, जिसे केवल अपने पति के लिए सँभाल कर रखा था, क्या प्रमाण दे...? दोषी न होने पर भी वह सतीत्व का प्रमाण क्यों दे? यदि कुछ होता भी, तो वह अतीत को वर्तमान पर कभी हावी न होने देती। इस स्थिति का दूसरा विकल्प ढूँढने का संकल्प तो सूर्या को लेना ही होगा।

सूर्या कब तक चुप रहती। विस्फोट तो होना ही था, फिर वह तो आज की औरत है, कल की नहीं। वह कोई मेज़-कुर्सी तो थी नहीं, जिसे जहाँ चाहो, जैसे चाहो रख लो। वह तो हाड़-माँस की भरी-पूरी औरत थी, जो चिंतन, मनन और मंथन करने में समर्थ थी। वह सोच रही थी यह शुभम् रूपी पुरुष उससे ही जन्म लेकर उसे ही आज संदेह के कटघरे में खड़ा कर रहा है, क्योंकि वह सुंदर है? क्या यह सब वह भी शुभम् से नहीं पूछ सकती थी? पर उसके लिए इन बातों और प्रश्नों का कोई महत्त्व नहीं था। सूर्या भी क्या कठपुतली है, जिसे वह डोर खींच-खींच कर जीवन भर नचाता और सताता रहेगा, जो एक आज्ञाकारी सेविका की तरह प्रमाण खोजती रहे।

सूर्या के लिए वह रात कभी न ख़त्म होने वाली रात बन गयी थी। अंदर की छटपटाहट से कभी वह चलने लगती, कभी बैठ जाती। उसका सारा शरीर पसीने से तरबतर हो गया था और पास पड़ा संदेह का कीड़ा और भी भयंकर लगने लगा था। शुभम् ने कहा था कि वह उसे तब छुएगा, जब वह सच बताएगी। पर कौन-सा सत्य बताये वह? किसी से संबंध होते, तो वह बता भी देती। वह डरपोक नहीं, बस संस्कारी थी। वह क्यों झूठ बोले? सपनों के टूटे खंडहर सामने फैले थे, विचारों के ज्वारभाटे में उसका संतुलन गड़बड़ा रहा था। बचपन में सुनी परी और राक्षस की कहानी याद आ रही थी। दादी होतीं, तो पूछती कि राक्षस के इस व्यवहार से तंग आ परी ने क्या किया था? पर, दादी तो थीं नहीं। उसका संस्कारी मन आज के युग में भी कच्ची-गीली लकड़ी की तरह सुलग रहा था; हाँ, बस उसी तरह, क्योंकि वहाँ आग नहीं धुआँ था। अजीब-सी दुर्गंध आने लगी थी। बिल्कुल श्मशान में सुलगती मानव-शरीर की गंध जैसी। सूर्या को लगा, जैसे अभी उसे जो उबकाई आ रही है, उल्टी में बदल जाएगी। उसका मन चाहने लगा था कि पूरी की पूरी उल्टी उस पर उगल दे। पर, क्या इससे उसके मन में फैली हीन-ग्रंथि धुल जाएगी? कोई प्रतिक्रिया नहीं होने वाली। उसे ही निर्णय और दूसरा विकल्प अपनाना होगा। आख़िर कब तक यूँ अपमानित होती रहेगी? उसे लगा, एक अजीब-सा वायरस उसके ख़ून में दौड़ने लगा है, जिस पर संदेह और शंकाओं के ज़हरीले कीड़े अपना-अपना घर बनाने लगे हैं। साक्षात् मौत सामने खड़ी थी। तभी सूर्या ने सोचा कि वह क्यों शुभम् के सोच का दंड अपने सारे परिवार, अपने अस्तित्त्व, अपने व्यक्तित्त्व और अस्मिता को दे? वह इन रेंगते कीड़ों को अपनी आत्मा का हिस्सा कभी नहीं बनाएगी। क्यों बनाये? पति परमेश्वर है, पति नारी के लिए कवच है, पति नारी के लिए छत है, पति नारी के लिए उसकी संतान के रूप में भविष्य है—इन सब उक्तियों को वह नकार देना चाहती है। दादी से एक और कहानी सुनी थी-बिच्छू और साधु की। पर, वह इन बिच्छुओं के दंश को अपने पर हावी नहीं होने देगी। नहीं बनना है उसे आज्ञाकारी पत्नी। इस बिच्छू को सबके सामने लाने की हिम्मत वह धीरे-धीरे बटोरने लगी। इन शब्दों और संबंधों के अर्थ आज बदलने लगे हैं। चेतन-अवचेतन में संघर्षण होने लगा है। पृथ्वी करवट लेना चाहती है। फिर, ईश्वर ने एक ही जीव और धातु से स्त्री और पुरुष की रचना की थी। दोनों को अलग-अलग व्यक्तित्त्व और विशेषताएँ देकर। शायद यही सृष्टि सृजन का आधार था, फिर ये दो अलग इकाइयाँ कैसे! एक ऊपर एक नीचे। ईश्वर ने दोनों को साथ-साथ पूर्ण अपने-अपने अधिकार देकर पैदा किया था। सूर्या मन और आत्मा के स्तर पर एक साथ व्याकुल है। बुद्धि, मन, मूल्य, संस्कार, मान्यताएँ परंपराएँ-सभी टकराने लगी हैं। पर, सूर्या भी आज प्रश्न कर रही है-पुरुषत्व और मनुष्यत्व पर।

प्रातः हो गयी है और कमरे में धूप के गोल-गोल आकार इधर-उधर मँडराने लगे हैं। वह उठती है और उनींदी आँखों को पूरा ज़ोर लगाकर खोलती है और भागकर एक टुकड़ा धूप अपनी मुट्ठी में बंद कर लेती है। एक अजीब विश्वास और गरमाहट उसे महसूस होती है। लगता है, जैसे इतने दिनों तक जिस शंका और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदेह के अजगर से वह जूझ रही थी, निढाल हो गयी थी, उससे वह बच निकली है। फिर से ताज़ा हवा और रोशनी में साँस लेने की हिम्मत आ गयी है। वह क्यों हारे? हार उसी का भाग्य कैसे हो सकती है, विजय पर भी उसका हक़ है। उसने सब सोच समझ कर अपने पिता जी को और सूर्या के पिता ने सेठ जी को बताया था। उन्होंने दो ही शब्द कहे—"सूर्या को वापिस ले आओ—फिर कभी न भेजने के लिए।" प्रातः उसके पिता उसे ले जाने के लिए आने वाले थे। वह ढेरों प्रश्नों के व्यूह में फँसी थी। वह सोच रही थी कि संस्कारों और मूल्यों की जड़ों से कोई पूछे कि ज़मीन में कैसे रहा जाता है और ज़मीन के नीचे के गहन अँधेरों में कैसे विकास पाया जा सकता है? कितना सिकुड़ना और कितना फैलना चाहिए? क्या लेना और क्या छोड़ देना चाहिए? यह भी कि कैसे पूर्ण अंकुरित होना चाहिए? कब दुर्गा और कब चंडी बनना चाहिए? जड़ों से कटते मानवीय संबंधों से वह काँपने लगी थी। वैसा कंपन, जो प्रलय से पूर्व होता है। धरती के गर्भ में बहुत कुछ होता रहता है—ढेरों परिवर्तन, उतार-चढ़ाव, आदान-प्रदान, पर कभी कभी धरती और आसमान आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। मन में फैलती बर्फ़, आँखों में बहता पानी, लगा सारा का सारा आकाश ठंडा हो गया है और सारी शंकाओं शर्तों की आग उसके पैरों में धरती को कुचलती-मसलती भड़कने लगी है। उसकी एक भी चीख़ शुभम् को सुनाई नहीं दे रही और वह यह भी नहीं जान पाया कि एक शानदार सुंदर इमारत कब खंडहर में बदल गयी।

इन्सानों से भरी इस दुनिया में वह बस एक मनुष्य खोजना चाहती थी, जो वासी हो केवल इस धरती का या इसी मृत्यु लोक का। बिल्कुल धरती पर आये पहले निस्वार्थ, शंकारहित, शर्तों के बिना—बस परिंदों की तरह भोली-भाली उड़ान भरता हुआ। अपनी साथी, जीवन-संगिनी के जीवन और आकांक्षाओं की हरियाली को बचाता हुआ। अपने संबंधों के बीच एक अनोखी ख़ुशबू महसूस करता हुआ। हर पल प्रेम और संरक्षण—बिना कोई प्रश्न पूछे, बस पूर्ण विश्वास पर टिका। प्रेम से भरे हाथ, अनछुए सौंदर्य की कुछ इस तरह सहलाता, जैसे पहले किसी ने न छुआ हो। बस नारी की तरह ही पूर्ण समर्पण हो जहाँ रातें भी दिन की तरह सूर्य के प्रकाश और अपनेपन से खिली हों संबंधों में प्रकाश कितना आवश्यक होता है, ऐसा सूर्या ने भी सोचा है।

जाने से पूर्व सूर्या ने अपने को समेट लिया था और कहा था—"शुभम्, तुम जानते हो मैं तुमसे अधिक पढ़ी-लिखी हूँ। बड़ी कंपनी में तुमसे ऊँचे पद पर हूँ। मेरे पिता की समृद्धि और ओहदा तुम्हारे पिता से बड़ा है। मेरा व्यक्तित्त्व तुमसे अधिक सशक्त है। फिर किस बात का गर्व है तुम्हें? समय बदला है, औरत अब किसी आदमी के नाम से जुड़ी इमारत नहीं है, उसकी अपनी ज़मीन है। वह कठपुतली नहीं, स्वतंत्र अस्तित्त्व की स्वामिनी है। उसकी ज़िंदगी सिर्फ़ उसकी है, कोई शर्तें नहीं, कोई प्रमाण नहीं। हर युग में पुरुष ने नारी की अग्निपरीक्षा ली। राम ने भी सीता की परीक्षा ली। सीता ने राम का सम्मान करते हुये परीक्षा दी। पर, धरती से जन्मी सीता धरती में समा गयी। फिर कभी राम को उसे छूने या पत्नी कहने का अधिकार नहीं दिया। पर, मैं तो आज इक्कीसवीं सदी की नारी हूँ। मैं न कोई अग्निपरीक्षा दूँगी, न प्रमाण, न शर्त स्वीकार करूँगी। बस, मैं तुम्हें पीछे छोड़ आगे बढ़ जाऊँगी, क्योंकि मेरे माता-पिता मेरे साथ हैं, दादा जैसे सेठ जी भी मेरे साथ हैं। ये सब पुरानी परंपराएँ हैं कि नारी का घर ससुराल में होता है, सम्मान पति के संरक्षण में होता है, डोली में बैठकर जाती है और अर्थी पर वापिस लौटती है। बस, अगली बार जब शादी करो, तो अपने चरित्र और पवित्रता का प्रमाणपत्र साथ ही ले जाना-यह मेरा सुझाव है।"

सूर्या ने लौटकर पीछे नहीं देखा, बस अपने पिता के साथ कार में बैठकर लौट गयी। शुभम् के लैपटाप पर काम करते हाथ रुक गये, लगा जैसे वह शापित पुतला हो गया हो।

154/18, बी0
चंडीगढ़-160018

'वर्तमान साहित्य मलखान सिंह सिसोदिया कविता-पुरस्कार—2010'

वर्ष-2010 के 'वर्तमान साहित्य मलखान सिंह सिसोदिया कविता-पुरस्कार' के लिए **प्रो0 दिनेश कुशवाह** के कविता-संग्रह **'इसी काया में मोक्ष'** को चुना गया है। इस वर्ष के निर्णायक-मंडल में डा0 विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रो0 वीरेन्द्र मोहन, और प्रो0 शहरयार शामिल थे। यह पुरस्कार जनवरी-2011 में अलीगढ़ में आयोजित कार्यक्रम में प्रदान किया जाएगा।

'वर्तमान साहित्य' परिवार की ओर से बधाई।

संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्कलाब

शेली खत्री

कॉलेज का समय हो चुका था पर श्रेय के पाँव अपनी जगह पर ही टिके थे। कुर्सी पर बैठे-बैठे वह दीवार पर नज़रें गड़ाए बैठा था। सामने की दीवार पर उसका पोस्टर साइज का फ़ोटो लगा था। आँखों में आत्मविश्वास की चमक, उल्लास से भरा चेहरा, और कुर्सी पर बैठे श्रेय का चेहरा पीड़ा से सिकुड़ा था। पापा की मार-कहीं भी पड़ जाता है उनका हाथ... सोचते ही नहीं कि कहाँ मारने से दर्द कम होगा और कहाँ अधिक। यह भी नहीं कि बच्चे को मारने से पहले एक बार सोच लें। बस आया और हो गये शुरू।

मेरी बात कोई समझता नहीं। यह तो मैं मान ही नहीं सकता कि मेरा रास्ता गलत है। इन्सान होने का हक तो मिलना ही चाहिए, फिर घर वाले-बाहर वाले कोई भी तो साथ नहीं दे रहे हैं। एकला चलो रे की लीक पर चल ही पड़ा हूँ तो किसी से मदद की अपेक्षा ही क्यों करूँ। वह कुर्सी से उठने ही वाला था कि माँ आ गई।

"श्रेय, अभी तक बैठा है बेटा। चोट ज़्यादा लग गई है क्या!" उन्होंने उनके माथे पर हाथ फिराते हुए पूछा।

"माँ आप चिंता मत कीजिए। आपके बहादुर बेटे को दुनिया के काँटे झेलने की आदत हो गई है", उसने माँ का हाथ सहलाते हुए कहा।

"चलो बेटा, पहले नाश्ता कर लो।" उन्होंने हाथ पकड़कर कहा।

"अभी रहने दो। देर हो चुकी है। पहला क्लास तो मिस हो गया है। मैं जाकर कम से कम दूसरा तो अटेंड कर लूँगा", उसने माँ का हाथ हटाते हुए कहा।

"तुम नहीं सुधरोगे बेटा, अपनी माँ के लिए भी नहीं। तुझे मार पड़ती है तो मुझे क्या अच्छा लगता है", उन्होंने सिसकते हुए कहा, फिर आँचल से मुँह ढँक लिया।

"मैंने तो सोचा था, कम से कम माँ ही मेरी बात समझेगी। पर शायद दुनिया में कोई मुझे समझना ही नहीं चाहता है माँ, मैं सचमुच ग़लत था जो उम्मीद लगा बैठा"—कहता हुआ वह कुर्सी छोड़ खड़ा हो गया। "माँ एक बात का जवाब दोगी"—फिर बिना रुके ही कहता गया—"जो बच्चे सड़कों पर भीख माँग रहे हैं। जो कूड़े पर जन्म लेकर वहीं मर जाते हैं, जिन माँओं के पास अपने बच्चे के पेट भरने के लिए रोटी न हो, जो औरतें या लड़कियाँ शिक्षा पाने को तरस रही हों, उनके लिए कुछ नहीं किया जाना चाहिए? क्या भगवान भरोसे सब कुछ छोड़ देने से अवतार लेकर कोई राम, कोई कृष्ण इनका उद्धार करने आ जायेगा।"

"देखो बेटा, यह तो ठीक है कि देश में बहुत से लोगों की स्थिति अच्छी नहीं है, पर हमारी स्थिति के बारे में भी तो सोच। कितने दुखी हैं पापा तेरे कारण। माँ की तो ख़ैर तुझे कोई चिंता ही नहीं"-वो फिर सुबकने लगीं।

"एक समय था जब कहा जाता था—कि बेटा हो तो भगत सिंह के जैसा और अब यह समय है जब लोग कहते है, भगत सिंह जब पैदा हो तो पड़ोसी के घर में। ऐसा ही सोचने लगी हैं न।"

"तू कैसी बहकी-बहकी बातें की रहा है श्रेय"—उन्होंने बीच में ही बात काटते हुए कहा।

"रहने दीजिए, मैं जा रहा हूँ" ...श्रेय ने कॉलेज बैग उठाया और माँ की ओर देखे बिना बाहर आ गया। अपनी साइकिल निकाली और कॉलेज की ओर चला।

आज उसकी चाल में मस्ती नहीं थी पर तेज़ी पहले से अधिक आ गई। वह बिना कुछ सोचे 50 की स्पीड से साइकिल चलाता जा रहा था।

"हाय सुधारक", रास्ते में उसे सुशांत ने टोका।

श्रेय आज किसी की सुनने वाला नहीं था, आगे बढ़ता ही गया।

"ओय मैं तुझसे ही बात कर रहा हूँ, मि0 समाज सुधारक।" उसने चिढ़ाया।

इसके बाद भी कोई जवाब नहीं मिला तो बोला "लगता है, आज तू फिर पिटा है। कोई बात नहीं, मैं चला... कोई पत्थर से न मारे मेरे दीवाने को", गाते हुए उसने बाइक की स्पीड बढ़ाई और आगे निकल गया।

दो क्लास करने के बाद श्रेय क्लास से बाहर आ गया और कैंपस की घास पर जाकर बैठ गया। कभी बैग खोलता, कभी बंद करता, वह अनमना-सा बैठा रहा। उसके बाद हाथ में उठायी किताब जोर से ज़मीन पर पटक डाली।

"पता नहीं मैं क्या चाहता हूँ, पता नहीं मैं क्या करुँगा। पता नहीं कैसे करुँगा... पता नहीं..."

बैग बंद करके उसने घुटनों में सिर छुपा लिया और घास के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिनके नोचता रहा।

फिर उठकर कैंपस से बाहर आ गया। थोड़ी देर निरुद्देश्य घूमने के बाद उसे पिंकी मैम की याद आई।... "मैं मैम को कैसे भूल गया। मुझे उनके पास ही जाना चाहिए। कोई ना कोई हल तो निकल ही आयेगा", उसने साइकिल निकाली और कैंपस के पास ही बने टीचर्स कॉलोनी की ओर चला।

लॉन में साइकिल टिका कर उसने बेल बजाई।

दरवाजा मैम ने ही बोला—"अरे श्रेय, आज इस समय? चलो अंदर आ जाओ", उन्होंने प्यार से कहा। श्रेय अंदर आकर चुपचाप सोफे पर बैठ गया।

"तुम पाँच मिनट रुको, मैं अभी आई"—इतना कह कर वो अंदर चली गईं।

लौटीं तो उनके हाथ में कॉफ़ी और पानी की ट्रे थी। "पहले कॉफ़ी पी लो, फिर बताओ, क्या परेशानी है", वे सोफे पर बैठ गईं।

श्रेय चुपचाप कॉफ़ी के घूँट भरता रहा। कमरे में पसरा मौन गाढ़ा होता रहा।

"ये तो बताओ, पापा ने किस बात पर डाँटा", उन्होंने मौन तोड़ा।

मैम, कोई नई बात नहीं हुई है। सुबह-सुबह पूछने लगे, तुम्हें एयर फोर्स ज़्वाइन करना है या नहीं। कल लास्ट डेट है।

मैंने कहा, पापा आपको तो पता है, वो मेरी लाइन नहीं है। उस जॉब में पता नहीं कहाँ-कहाँ पोस्टिंग होगी। मेरे सोशल वर्क का क्या होगा ?"

बस हो गया। उनके गुस्से के लिए इतना पर्याप्त था। बोले, "नौकरी के लिए लोग क्या-क्या करते हैं, घूस देने से लेकर सबके तलवे सहलाने तक और एक तुम हो। एक बार में चाँस मिल गया है, फिर भी तुम नाटक कर रहे हो। तुम्हारे समाज सुधार से काम चल जायेगा? तुम्हारा घर, तुम्हारे बीबी-बच्चों को क्या मैं खिलाता रहूँगा।

मैंने कह दिया, शादी तो मुझे करनी नहीं है। तब और गुस्सा आया उन्हें। पहले अपनी बेल्ट निकली, बोले-रुको, मैं अभी कर देता हूँ, समाज सुधार। बाद में मम्मी ने बेल्ट छीन लिया। फिर भी आखिर उनका हाथ भी तो एक फौजी का हाथ है।

मैम, मैं क्या करूँ, मुझे रात को नींद नहीं आती। सोता हूँ तो लगता है कितने सारे बच्चे स्टेशन के बाहर या सड़क के किनारे सो रहे होंगे। ख़ाना खाता हूँ तो भूख से तड़पते, दूसरों के आगे हाथ फैलाते बच्चे याद आते हैं। किताबें खोलता हूँ तो लगता मैं इंजीनियरिंग कर रहा हूँ और कितने बच्चे तो अक्षर भी नहीं पहचानते हैं। बस पढ़ने की इच्छा नहीं होती। इम महीने के पॉकेट खर्च से मिले पैसों से तीन बच्चों के लिए किताबें खरीदी हैं। कैसे हैं मैम, सरकारी स्कूल वाले। जुलाई आ गई है, अभी तक किताबें नहीं बंटी हैं बच्चों को। कब मिलेंगी, कब पढ़ेंगे बच्चे।

"तुमने उनके लिए किताबें खरीद लीं। इससे तो अच्छा था प्रिंसिपल के पास जाकर इस संबंध में पूछते"—पिंकी मैम ने कहा।

"वही किया। मैं तो सीधे प्रिंसिपल के रूम में गया और जोर से बोला"—पहचानती हैं आप मुझे? स्कूल में किताबें क्यों नहीं बटीं अभी तक।"

वो सकपका कर बोली, आज ही बंटने वाली हैं... और सचमुच उसी दिन बच्चों को किताबें मिलीं। इनके कोर्स में इंग्लिश भी है। मैंने ग्रामर, ट्रॉंसलेशन और ड्राइंग की बुक खुरीदी है बच्चों के लिए। बहुत कष्ट है इस दुनिया में कुछ लोगों को। मैं देख कर उन्हें छोड़ नहीं सकता। मेरी रूह काँपती है उनकी भूख याद कर", श्रेय की आँखें नम हो गईं।

इस बार पिंकी मैम ने कुछ नहीं कहा। सोचने लगीं, सच में कितने लोग होंगे जो पीड़ितों के बारे में इतना सोचते हैं। श्रेय तो अभी पढ़ाई ही कर रहा है।

"श्रेय बेटा, पापा की भी बात सही है। पहले तुम्हें अपना कैरियर बना लेना चाहिए"—उन्होंने समझाने के अंदाज़ में कहा। "डेढ़ साल के अंदर तुम्हें डिग्री मिल जायेगी और कोई न कोई जॉब भी।"

"मैम आप भी। मुझे आप से ये उम्मीद नहीं थी। मुझे तो लगा था-आप ही हैं जो रास्ता बताऐंगी। आप लोगों की बात मान भी लूँ तो आप बताइये, अब बीसीए की कोई कीमत है? पार्ट टाईम जॉब के साथ ही एमसीए तो करने को कहेंगी ही। दूसरी बात यह है कि कैरियर की तरफ मुड़ने के बाद आदमी की सोच बदलती है। उसी हिसाब की हो जाती हैं। मैं 9 से 9 की ड्यूटी करुँगा तो समाज और दुनिया को कब देखूँगा। इसलिए यह संभव नहीं है।

अभी से ही कुछ करना होगा। दस-दस साल घिसटने होते हैं, तब जाकर कहीं कुछ रिजल्ट मिलता है मैम। मैं समय कैसे बरबाद करूँ? मैं अकेला पड़ता हूँ तो क्या हुआ। कोशिश तो की न बहुतों से जुड़ने की। आपको मालूम ही हैं अधिकतर बातें। एन0जी0ओ0 के नाम पर कैसे पैसे खाते हैं लोग। उसके साथ मैं कैसे काम कर सकता हूँ। हर तरफ़ से तो कोशिश कर रहा हूँ। देखिए न कुछ लड़के मिले हैं, वे अपने पॉकेट मनी का दस प्रतिशत देने को तैयार हो गए है। हर महीने एक हज़ार रुपये आ जायेंगे। अभी तो मैं उसमें से 200 रुपये रख कर 800 ज़रूरत मंदों के ऊपर खर्च करता जाऊँगा..." श्रेय अब सीधा बैठ गया था—"मैं कुछ अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से बात-चीत कर रहा हूँ। शायद कुछ हो सके। अभी तो एक नया एन0जी0ओ0 भी है न। वही जिसे अभी कोई सरकारी सहायता नहीं मिलती है। इसलिए अभी वहाँ ठीक से काम होता है। पैसा नहीं, इसलिए करप्शन की पहुँच नहीं हुई है। पर दिक्कत तो है ही।"

पिंकी मैम की आँखों में चमक आ गई—"श्रेय तुम वही काम करो। उनका सेंटर है। तुम्हें इधर-इधर भटकना भी नहीं पड़ेगा।

"कैसे करूं, वहाँ अजीब महौल है। मैं उनका मेंबर बनना चाह रहा था ताकि लोगों को वहाँ के बारे में बता सकूँ। मैं भी फील्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में निकलता हूँ तो लोग पूछते हैं कि संगठन का है। अकेले होने के कारण विश्वास कम मिलता है। वहाँ मैंने ईमानदारी से यही बात कही तो कहने लगे, इसका मतलब तुम हमसे फायदा लेना चाहते हो।

एक समाजसेवी ऐसा कहेगा, बताइए मैम। दो-तीन बार ऐसा विहेव कर चुके हैं वे लोग। अब इच्छा नहीं होती है उनके यहाँ जाने की। पर हर बार वहाँ आए छोटे बच्चों को देख मन मचल जाता है।'' श्रेय ने निराशा में डूबते हुए कहा।

''मैंने तो बाहर की ऐसी दुनिया नहीं देखी है। तुम्हीं मुझे बताते रहते हो। किसी ने कहा है-इस रास्ते में काँटे बहुत हैं। पर लगातार चलने वाले को ही मंजिल मिलती है।''

''आप ठीक कह रही हैं, मैम। मैं ही गधा हूँ''-श्रेय ने हँसते हुए कहा। ''मुझे तो पता ही है, इस रास्ते में कोई साथ नहीं देगा। उसके बाद भी मुझे चलना होगा। आज की क्लास तो मिस हो गई। मैं शाम को वहाँ जाऊँगा। कितनी बार मेरा अपमान करेंगे वे लोग। मैं उनके काम भी करता हूँ तो मुझे स्वीकार कर ही लेंगे।''

''अब बताओ, खाने में क्या खाओगे, मैम ने पूछा तो श्रेय को याद आया कि उसने खाना नहीं खाया है और तुरंत भूख लग आई। ''कुछ भी''-उसने इतना ही कहा और टीवी ऑन करके डिसकवरी देखने लगा।

दाल-रोटी खाने के बाद श्रेय ने अपनी साइकिल उठाई और 11 किमी. 'दूर बचपन बचाओ' एन.जी.ओ. में आ गया।

''अरे श्रेय, आज इस समय।'' उसे देखते ही एन.जी.ओ. के संचालक गौरव कर्णिक ने कहा।

''बस सोचा आपसे मिलता आऊँ। कुछ नया हुआ हो तो बताइये।'' श्रेय ने सारे शिकवे भुला कर पूछा

''हे भाई। तुम तो मौके से आये हो। अपना एन.जी.ओ. चिल्ड्रेन डे सेलिब्रेट करने वाला है। कल ही सदस्यों की राय हुई है। अभी मैं बैठकर प्रोग्राम की रूप-रेखा ही बना रहा था। पता है'', वे थोड़ा नजदीक आकर बोले—''हम लोग शहर की प्रतिभाओं को सम्मानित करने जा रहे हैं। विधायक को भी ऐज़ ए गेस्ट बुलायेंगे। कलामंदिर बुक करेंगे। कुल 70 हज़ार का प्रोजेक्ट है।''

''70 हज़ार! आप कहाँ से खर्च करेंगे। इस प्रोग्राम से फ़ायदा क्या है। ये 70 हज़ार हम बच्चों के लिए खर्च करें तो कितने सारे काम हो जायेंगे।'' श्रेय ने अपनी आदत के अनुसार राय दी। हालाँकि वो अच्छी तरह जानता है उसकी राय की न किसी को जरूरत है और न ही उसकी कोई अहमियत।

''तुम्हारी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि तुम खुद को सबसे ज़्यादा होशियार समझते हो। हमारे एन0जी0ओ0 को शहर में जानता ही कौन है। एक बार खुद को प्रमोट तो करना ही पड़ेगा। लोग हमें जानेंगे, तब तो डोनेशन देंगे। इस कार्यक्रम में हम अपने बारे में, अपनी संस्था के क्रिया-कलाप के बारे में बतायेंगे।'' उन्होंने खीजते हुए कहा।

''ठीक है सर, मैं तो इसलिए बोल रहा था क्योंकि हमें फंड की दिक्कत आयेगी'', श्रेय ने लाचार होकर कहा।

''फंड तो नहीं है पर हम इकट्ठा करेंगे। इस बार सोचा है पब्लिक के पास माँगने जाएँ।'' गौरव ने रसीद बुक निकाल कर टेबल पर रखी और बोले-''तुम कितना जमा करा सकते हो।''

''सर, मैं तो कई बार कई काम के लिए कोशिश करके देख चुका हूँ। लोगों की जेब से पैसा निकलवाना बहुत मुश्किल हैं। पर मैं पूरी कोशिश करुँगा। सबसे पहले कला मंदिर की बुकिंग कर लीजिए। वह शायद ही कभी खाली रहता है। उस दिन की बुकिंग तो पहले से ही होगी।''

''हाँ, भाई, तू कह तो ठीक ही रहा है। अगले रविवार को चलेंगे।'' गौरव ने थोड़ी निश्चिंतता से कहा।

''सर, उसके लिए एप्लिकेशन लिखना होगा और जल्दी जाना होगा। ऐसा करता हूँ मैं पहले एप्लीकेशन लिख देता हूँ। जैसे ही मौका मिलेगा, वहाँ चले जायेंगे। आपके यहाँ तो किसी को हिंदी की टाइपिंग आती भी नहीं है।''

''तू हड़बड़ाता बहुत है। पर चलो, टाइप कर ही दो।''

श्रेय ने एप्लीकेशन लिखी। उसे सेव करके दो प्रिंट भी निकाल दिए। एक गौरव को दिया और दूसरा अपने पास रख लिया। ''और कोई काम है सर।'' उसने गौरव से पूछा।

''काम की कमी है? कल से थोड़ा समय निकाला करो न। हमें पैसे माँगने जाना है।'' उन्होंने खुशामद भरे लहज़े में कहा।

''सर, पहले तो हम लोग लिस्ट बना लेते हैं, किसके पास जाना है।'' उसने आइडिया दिया।

''ठीक है लिखना शुरू करो।''

श्रेय कलम संभाल कर बैठ गया।

''सभी बड़े विजनेस मैन के पास जाना है, प्राइवेट हॉस्पीटल, सरकारी कार्यालय।''

''सर, सरकारी कार्यालय में हमें कोई पैसे नहीं देगा।''

''तुम पहले लिखो ना।'' गौरव ने झल्लाते हुए कहा।

''जी!''

मीडिया वाले शायद एन्पॉनसरशिप के लिए तैयार हो जाएँ।

''ये जितनी टेलीकॉम कंपनियाँ हैं, सबके पास जाना पड़ेगा।''

''अब तुम बताओ, कहाँ-कहाँ जाओगे''—गौरव ने फिर पूछा। ''मैं टेलीकॉम कंपनीज़ और मीडिया वालों के पास चला जाऊँगा उसके बाद देखते हैं और क्या हो सकता है। सर, ग्रुप में जाना ज़्यादा सही लगता है। लोगों का भरोसा बनता है और अपनी यूनिटी दिखती है।'' श्रेय ने फिर सलाह दी।

''पर आदमी कहाँ हैं अपने पास। अभी जितने लोग जुड़े हैं, सब अपने-अपने काम में व्यस्त हैं।''

''ठीक है। मैं आपको प्रोग्रेस रिपोर्ट फ़ोन करके बताऊँगा।'' श्रेय ने अपना बैग साइकिल के कैरियर में फँसाया और लाइब्रेरी चला आया। दो घंटे तक बैठ कर किताबें पढ़ता रहा, फिर मीडिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ऑफ़िस में गया।

कार्यक्रम की सूचना तो उसने दे ही दी। 'बढ़ते क़दम' अख़बार वालों को एस्पॉन्सरशिप के लिए मना भी लिया। दो लोगों ने चंदा भी दिया। तीसरे दिन सुबह ही वह कला मंदिर गया और एप्लीकेशन जमा करके कंसेशन के लिए भी कह दिया। शाम को जब एन.जी.ओ. पहुँचा तो उसकी हड्डियों में ऐंठन हो रही थी।

"अरे श्रेय, अभी आये हो। दिन में आ जाते तो कहीं जाते चंदा माँगने। पर तुम रात को आ रहे हो। कहते हो, तुम्हें पूरे समाज को बदलना है। इंकलाब ला कर रहोगे। पर हम जैसे लोग जो सोसायटी में सक्रिय रूप से काम कर रहे हैं तुम क्या हमारी जरा भी मदद नहीं कर सकते?" गौरव सर के स्वर मे तीखापन था।

"आप लोग कहाँ गये थे?" कोई जवाब न देकर उसंने प्रतिप्रश्न किया।

"मैं क्या अकेले जाता? वैसे ही हेड का घूमना अच्छा नहीं लगता है। कार्यकर्ता जाएँ तो अलग बात होगी है।"

"तो शंभू और निशांत ही चले जाते। एक महीने बाद प्रोग्राम है, तैयारी तो करनी पड़ेगी।" उसने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

"कल कहीं जा सकते हो, इतना ही बता दो।" श्रेय की बातों गौरव को कड़वी लगीं।

"सर मैं तो आज भी गया था। 8 हज़ार कलेक्ट करके लाया हूँ। रसीद बुक खाली हो गई थी। नहीं तो एक दो जगह तो जाता ही।

कॉलेज के लड़कों को भी तैयार कर लिया है, वे लोग अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश करेंगे। कलामंदिर में एप्लीकेशन दे आया हूँ, वे कल जवाब देंगे।

"अरे तुमने पहले क्यों नहीं बताया। मैं जानता था जो कुछ करोगे, तुम ही करोगे। बाकी तो साले नाम के लिए हैं।" गौरव ने थोड़ा झेंपते हुए कहा।

"मैं कल शाम को आता हूँ सर, अभी चला।"

दूसरे दिन श्रेय सात बजे ही घर से निकला। कलामंदिर कमेटी को कंसेशन के लिए मना लिया। साधनहीन एन.जी.ओ. को कलामंदिर 25 की जगह 5 हजार में उपलब्ध हो गया। चंदा वाले पैसे से श्रेय ने पेमेंट भी कर दी। गौरव ने सुना तो आवाक् श्रेय का मुँह ताकता रहा गया।

"नहीं! जरूर उन लोगों ने तुम्हें नकली रसीद दी होगी। कलामंदिर इतनी कम राशि में?"

"सर आपको ऐसा लगता है तो आप फ़ोन करके बात कर लीजिए..." और सचमुच जब गौरव ने बात की तो पता चला 14 को कला मन्दिर उसके एन.जी.ओ. के नाम बुक है।

"आओ श्रेय चाय पिलाता हूँ"—उसने खुश होकर कहा।

अगला एक सप्ताह श्रेय ने दौड़-भाग में लगाया। 40 हज़ार रुपये इकट्ठा किया अकेले ही। अपनी टीम के साथ जाकर स्टॉल वालों से बात कर ली। आइसक्रीम और कॉफ़ी की उसने मुफ्त बुकिंग कराई।

10 नवंबर को वह रात को एन.जी.ओ. पहुँचा,

सर मैं। जितना कर सकता था, कर चुका हूँ। अब मेरी नज़र में ऐसा कोई नहीं है जहाँ चंदा माँगने जाऊँ। आपकी टीम ने भी कुछ पैसे इकट्ठा किए होंगे न।" उसने धीरे पूछा।

"अरे कहाँ! इन लोगों ने 17 हज़ार रुपये किसी तरह उखाड़े हैं बस। खैर ठीक है। किसी काम के नहीं है ये नाकारे। अब बोलो कल क्या करोगे । संडे को तो कभी-कभी घर पर रुक जाया करो," उसने हँसते हुए कहा।

"सर, थोड़ी देर रुकता तो हूँ। दिन भर घर में रह जाऊँगा तो काम कैसे करूँगा। आप ही बताइए।"

"चलो ठीक है। अब घर जाओ, रात हो रही है।" गौरव की बात सुनकर श्रेय बाहर निकल आया। भूख तो लगी ही थी।

दूसरे दिन सुबह ही मैम के घर गया। आठ दिन के काम की रिपोर्ट बताई। मैम ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, "पता है, तुम मदद नहीं करते तो ये सब तुम्हारे एन.जी.ओ. के बस का नहीं था।

शाम को वह एन.जी.ओ. पहुँचा।

श्रेय ये देखो लिस्ट, आज दिन में हमने सभी सदस्यों की मीटिंग बुलाई थी, उनसे कार्यक्रम के संबंध में सलाह ली गई है। आज ही सबके काम का बंटवारा भी कर दिया है।"

श्रेय ने लिस्ट ले ली। उसने मन ही मन सोचा, चंदा जमा करते समय श्रेय की महत्ता समझ में आ रही थी। पर मीटिंग में मेरी कोई जरूरत नहीं समझी गई।

"मैं सोच रहा था किराए के ड्रेस न लेकर ड्रेस खरीद ही लिए जाएं और बाहर की प्रतिभाओं के अलावा हमें अपने एन0जी0ओ0 के बच्चों को भी पुरस्कृत करना चाहिए। उनका भी उत्साह बढ़ेगा।"

"तुम भी श्रेय, बीच-बीच में पागलों जैसा विहेव करने लगते हो। बच्चों को पुरस्कार तो देना ही चाहिए, पर कहाँ हैं पैसे? किराए के ड्रेस खरीदने के लिए तो पैसा उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। मैंने बच्चों से ही दो-दो सौ रुपये मंगवाए हैं। उसमें भी खुद का पैसा लगेगा।"

श्रेय ने कुछ नहीं कहा, उसे लगा कुछ गलती हो गई है उससे। 60 हज़ार रुपये से ज़्यादा ही आए हैं। कला मंदिर तो मैंने ही बुक किया। कार्ड फ्री में छपवाया। प्रतिभा सम्मान के लिए तो ये लोग पाँच हजार का सामान लाए हैं। तो बच्चों को वहाँ ले जाने में बाकी के 50 हज़ार रुपये खर्च हो जायेंगे? ये साधनहीन बच्चे दौ सौ रुपये कहाँ से लायेंगे?

वह उठ कर चला आया। पैसे ये लोग क्यूं बचा रहे हैं। प्रोग्राम के दिन भी तो बहुत से लोग चंदा देंगे। उसे लगा उनकी मदद करके उसने बड़ी ग़लती कर दी है। 40 हज़ार रुपये से तो वह कितने ही बच्चों के घर खाना पहुँचा देता । कितनों के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपड़े खरीद देता और कितने ही बच्चों की तो किताबें मिल जातीं। बच्चों के कल्याण के लिए ही प्रोग्राम है, इस चक्कर में वह धोखा खा गया।

अगले दो दिन वह बहुत परेशान, उदास घूमता रहा। दो सौ कार्ड वह अपने साथ लेकर चला था। मैम के कहने पर उसे ही बाँट दिया। मैम ने कहा था, वह प्रोग्राम के दिन जरूर जाए और नार्मली वैसे ही काम करे जैसे वह करना चाहता था। सुबह उठा तो पापा जाने किस बात पर मम्मी पर गुस्सा हो रहे थे।

"पापा! आप हर बात पर मम्मी को क्यों डाँटते हैं।" उसने बीच में हस्तक्षेप किया।

"तुम्हें इसने ही तो शह दिया और तू इंकलाबी बन गया। आठ दिन से तेरा कोई पता नहीं है। चार दिन कॉलेज नहीं गया। इसने मुझे बताया नहीं।" वे गुस्से से दहाड़े।

"पापा वो एन.जी.ओ. में एक फंक्शन है आज। उसकी ही तैयारी करनी थी।" उसने कहा।

"तो तैयारी में क्या उखाड़ा मेरे लाल ने जो कॉलेज बंक करना पड़ा।" उनके स्वर में गुस्से के साथ ही व्यंग्य भी था।

"अभी कुछ नया नहीं पढ़ाया जा रहा है। इसलिए नहीं गया था। मैंने सोचा इस दौरान लाइब्रेरी में कुछ पढ़ लूँ। एन.जी.ओ. का कुछ ख़ास काम नहीं किया है। बस चंदा माँगने ही जाना रहता था। वो मैं शाम को जाता था।"

"नालायक, तो तू अब भिखारी बन गया है।" पापा ने उसकी धुनाई शुरू कर दी। मार कर थक जाने के बाद बोले—"जा, निकल जा, मेरे घर से। जब तुझे भीख ही माँगनी है तो जा, फिर भिखारियों के साथ ही रहना।"

वह डर कर बाहर निकल गया। अपने दोस्त के घर गया तो वे लोग भी नाराज होने लगे-"कैसे हैं तुम्हारे एन.जी.ओ. वाले। कल हमलोग गए थे तो बड़ा अजीब व्यवहार किया। ऐसे लोगों को हम पॉकेट मनी नहीं दे सकते हैं। तुम वापस ले आना।" श्रेय ने समझाने की कोशिश की, पर वहाँ कोई असर नहीं हुआ। "ठीक है, मैं तुम लोगों के पैसे ला दूँगा"-श्रेय ने लाचार होकर कहा। वहीं से चेहरा धोकर और कंघी करके वह कला भवन गया।

वहाँ आज एन.जी.ओ. के सारे सदस्य बन-ठन कर आये थे। पहचानते तो उसे सब थे पर उसने खुद को वहाँ बेगाना महसूस किया। आज की मार हर दिन से बुरी थी। उसका अंग-अंग टूट रहा था। ऐसे में सबका रूखा व्यवहार उसे बहुत दुख दे रहा था। जितनी कर सकता था, उसने उतनी मेहनत से सारे काम किए। कार्यक्रम का रंग जमा। विधायक आये, कई पार्षद, छोटे-मोटे नेता भी। एनजीओ के सारे सदस्यो को उनसे मिलवाया गया। पर श्रेय जैसे कोई था ही नहीं। मंच पर वे ही लोग छाये रहे। स्वागत, आभार ज्ञापन, किसी में उसकी जरूरत नहीं समझी गई। कई लोगों ने चेक और संस्था के नाम कैश दिए। वह बाहर निकला तो देखा-गेट के पास कूपन काटा जा रहा है। उसने पूछा—"ये किस बात के कूपन है"—तो जवाब मिला—मंचस्थ की के कॉफ़ी और आइसक्रीम के।"

"किसने कहा यह। उन्होंने तो हमें फ्री में पाँच सौ लोगों के लिए सारा सामान दिया। फिर पैसे लेने को किसने कहा।"

"हमें ये सब क्या मालूम। मुझे तो गौरव सर ने यही काम दिया। मैं 7-7 रूपये के कूपन काट रहा हूँ।"

"बेइमानी की भी हद होनी चाहिए।" श्रेय का मन कड़वाहट से भर गया। सोचा यहाँ रहूँगा तो शायद में अपना आपा खो बैठूँ। वह ग्रीनरूम में आ गया।

दो कार्यक्रम बचे थे। बच्चे मेकअप में व्यस्त थे।

"आख़िर तुम लोगों से किराए के दो सौ रुपये लिए ही गए न"—उसने एक बच्चे से पूछा।

"हाँ भइया, मुझे तो अपना गुल्लक फोड़ना पड़ा। पापा ने कहा, हम चार सौ रुपये नहीं दे पाएँगे।" उसने बड़ी लाचारी से कहा।

"चार सौ रुपये क्यों?"

"दो सौ रुपये कपड़ों के और दौ सौ रुपये कार्यक्रम में भाग लेने के।" उसने मासूमियत से जवाब दिया।

"कार्यक्रम में भाग लेने के भी पैसे? तुम लोगों ने मना नहीं किया।"

"किया था, पर कहने लगे, पैसे नहीं दोगे तो एन.जी.ओ. से निकाल देंगे। फिर जो कुछ भी सीखते हो, बंद हो जायेगा"-एक सांवला सा लड़का आगे आकर रोते हुए बोला।

"तुम रो क्यों रहे हो", श्रेय ने पास बुलाकर पूछा।

"मेरे पापा नहीं हैं न। मम्मी ने बर्तन रख कर पैसे दिए हैं। हमारे घर में एक भी थाली नहीं बची। मम्मी की पायल भी नहीं।"

श्रेय को लगा, ये सारी गलती उसकी है। न उसने चंदा इकट्ठा किया होता, न कार्यक्रम होता और न इन बच्चों को इतना परेशान होना पड़ता।

अब कहीं से भी इन बच्चों को पैसे लौटाने ही होंगे—वह बाहर निकला तो हॉल से आवाज आ रही थी, "गौरव कर्णिक जैसे समाज सेवी कम ही होते हैं जिन्हें बच्चों का इतना ख्याल हो। वे बच्चों को मुफ़्त खाना-पीना, शिक्षा सब कुछ अपनी तरफ से करते आ रहे हैं। ऐसे महापुरुष की मदद कर हमें भी गौरव हासिल करना चाहिए..."

श्रेय को लगा, उसके कान में शीशा पिघल रहा है। लगा वह यहाँ रहेगा तो मर जायेगा इस चुभन से। उससे नहीं संवरेगा किसी का भविष्य। वह दौड़ पड़ा-अनजान सड़क पर।

नई दुनिया नारथ चौक,
नार्थ सिविल लाइन्स,
जबलपुर, म.प्र.
मो. 09993599782

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्धी दौड़

डा0 गोपाल नारायण आवटे

मैं जब सुबह बाथरूम से बाहर निकली तो मम्मी सामने ही खड़ी थी। मैंने गीले बालों को तौलिये से पोंछा। मम्मी ने मुझसे कहा-''क्यों बुलबुल, तुम गा तो लेती हो...?''

-''क्या मतलब?'' मैं कुछ समझी नहीं थी। मुझे गाने का शौक ज़रूर है, लेकिन अपने स्वर को कभी बाथरूम के बाहर नहीं निकाला।

-''तुम जल्दी से कपड़े बदलो और टी.व्ही. वाले कमरे में आओ'', कहकर मम्मी नाश्ता तैयार करने के लिए किचन में चली गई।

मैं तैयार हो कर जब ड्रांइग रूम में आई तो पापा किसी कार्यक्रम की रिकार्डिंग देख रहे थे। थोड़ी देर बाद मम्मी भी आ गई। हाथों में नाश्ते की प्लेटें थीं। प्लेट टेबिल पर रखते हुए मम्मी ने कहा-''मैंने आज अभी बुलबुल का गाना सुना-अच्छा गा लेती है।'' पापा, मम्मी का चेहरा देखने लगे थे। मैं कुछ समझ नहीं पा रही थी। आखिर मम्मी क्या कहना चाह रही है ...। मम्मी ने अपनी रौ में ही कहना जारी रखा-''बुलबुल के लिए बेहतर होगा हम टी. व्ही. के कार्यक्रम के लिए ऑडीशन में भेज दें।'

-''क्या कह रही हो मम्मी...?'' मैंने चौंकते हुए पूछा।

-''बुलबुल, तुझ से बुरी-बुरी गाने वाली आती हैं और लाखों कमा कर आउट हो जाती हैं। हमें ट्राय करने में क्या जाता है... '' मम्मी ने पापा से सलाह लेते हुए पूछा।

-''कह तो ठीक रही हो, लेकिन संगीत के कार्यक्रम में जाने से पहले थोड़े सुर-राग बगैरह भी तो आना चाहिए। देखती नहीं, कितने बड़े बड़े संगीतकार बैठते हैं''—पापा ने अपनी राय देते हुए कहा।

-''तो क्या हो गया? अभी दो महिने की छुट्टी है। हम दो-तीन संगीत क्लास ज्वाइन करवा देंगे, कुछ तो परिणाम आयेंगे ही...'' मम्मी ने अपनी सलाह दे दी।

-''लेकिन मम्मी, मुझे इन दो महीनों में अगले क्लास की तैयारी भी तो करना है - मैं कैसे यह सा रे गा मा को कर पाऊँगी. .?' मैंने असमर्थता बताते हुए कहा।

-''जहाँ चाह-वहाँ राह। बेटी मेहनत की आवश्यक्ता है, फिर यदि तेरा चयन हो गया तो समझ पूरे शहर में तू छा जायेगी। तू जब हमें टी.व्ही. पर गाते हुए दिखेगी तो हम सब का सिर गर्व से ऊँचा हो जायेगा...।'' मम्मी ने मेरे फाइनल में आने तक के सपने पलभर में देख लिए थे।

-''लेकिन मैरी रूचि गाने में बिलकुल नहीं है।''

-''करत-करत अभ्यास के निगुण होत सुजान''—पापा का स्वर था। वह भी चाह रहे थे कि मैं इस गाने की प्रतियोगिता में सम्मिलित हो जाऊँ।

मैंने नाश्ता किया और बुझे मन से अपने कमरे में जाकर पुस्तक लेकर पढ़ने लगी। थोड़ी देर बाद मम्मी कमरे में आई और प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहने लगी-

-''कल अपने शहर में ऑडीशन टेस्ट है-तुम तैयार रहना। हम साथ चलेंगे।''

-''लेकिन मम्मी मुझे तो कुछ भी नहीं आता...'' मैंने झुंझला कर कहा-''मैंने कभी किसी के सामने कुछ गाया ही नहीं, क्यों मेरा मज़ाक उड़ा रही हो...?''

-''तुम चिंता मत करो''—पापा की आवाज़ थी। उनके हाथ में टेप रेकार्डर और एक दर्जन से अधिक कैसेट थे-''तू इन्हें सुन ले, एक गीत स्वर-लय के साथ तैयार कर ले। हम आगे की शिक्षा के लिए संगीत शाला ज्वाइन करवा देंगे'-पापा के स्वर में संगीत की खनक थी। मम्मी-पापा दोनों मुझे स्टेज पर गाते हुए देखने के लिए कटिबद्ध दिखलाई दिये।

मैंने कुछ नहीं कहा और टेप रख लिया। कुछ अच्छे कैसेट्स के विषय में मुझे बतला कर—''तैयारी कर लो''-कहकर मम्मी-पापा चले गए। मैंने इयर फ़ोन लगाया और कैसेट को सुना और कुछ गीतों को गाने की कोशिश करने लगी। मैं नहीं चाहती थी कि मम्मी-पापा का सिर नीचा हो। मैंने कड़ी मेहनत के बाद दो-तीन गीतों को तैयार कर लिया था। दोपहर के भोजन के समय मैंने दिल पक्का करके मम्मी पापा को सुना भी दिया। उन्होनें मेरा उत्साह बढ़ाया और कुछ कमियों की ओर ध्यान दिलाया। मैंने उन कमियों को भी दूर कर दिया। भोजन के बाद फिर मेहनत और सिर्फ मेहनत।

रात जब मैं सोने को लेटी तो कानों में तालियों की गड़गड़ाहट सुनाई दे रही थी। सब मेरी प्रशंसा कर रहे हैं - कोई मुझसे ऑटोग्राफ माँग रहा है-ऐसा सोचना मुझे बहुत अच्छा लगा। सुबह मम्मी ने सूरज निकलने से पहले मुझे जगा दिया और जो गीत मैंने तैयार किए थे, उसकी रिहर्सल करने के निर्देश दे दिये।

मैंने कानों में इयर फोन लगा कर उसी ताल-सुर में गीत गाने की पूरी तैयारी कर ली-मेरा हृदय जोरों से धक्-धक् कर रहा था लेकिन मैंने अपने स्वयम् पर काबू पा कर मन ही मन गीत को पुनः दोहरा लिया था। मम्मी-पापा के साथ जब मैं ऑटो रिक्शा में बैठकर हिन्दी भवन के विशाल परिसर में पहुँची तो देखकर दंग रह गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों ओर भीड़ ही भीड़ थी। कुछ युवक-युवतियाँ अपने अभिभावकों के साथ खड़ी थीं। अभी टेस्ट लेने वाले आये नहीं थे। पुलिस भी आ गई - ऐसा लग रहा था मानो मेला लगा हो।

थोड़ी देर बाद एक कार रुकी। उसमे से पाँच-छः व्यक्ति उतरे। अंदर मंच बना था। एक-एक करके सबको चिट दी गई। क्रम संख्या अनुसार मेरा नम्बर शाम तक आ पाया। मुझे और मम्मी को अन्दर ले जाया गया। मुझे सुनाने को कहा गया। मैं घबरा गई। आवाज गले में फंस गई। मम्मी का चेहरा बड़ा बेबस सा लग रहा था। सुनने वालों ने मुझे उत्साहित किया, मैंने मम्मी-पापा की सूरत को याद किया और आँख बंद करके रात में जो गीत तैयार किया था, उसे सुना दिया। जब गीत समाप्त हुआ तो मुझे बधाई दी गई।

मैं बाहर आ गई। मम्मी-पापा दोनों काफी उत्साहित थे। उन्हें लग रहा था मेरा चयन हो जायेगा। शायद 7-8 दिनों बाद परिणाम की सूचना आने वाली थी। सात-आठ दिन तक मैं सो नहीं पाई। पुस्तकें पढ़ने को खोलती और मुझे वही हिन्दी भवन दिखलाई देता, जहाँ मैं खड़ी हो कर गा रही हूँ।

एक दोपहर पापा ऑफिस से आ गए और मुझे गले से लगा कर कहने लगे-'तुम्हारा चयन हो गया है, हमें अगले महिने बम्बई जाना होगा। यदि वहाँ हम निकल गये तो प्रतियोगिता में सम्मिलित हो जायेंगे...।' सुनकर मम्मी और मैं चीख मारकर एक दूसरे से लिपट गये। मम्मी ने भगवान को प्रसाद चढ़ाया और सब काम छोड़ कर मुझे संगीत विद्यालय ले जाने को तैयार हो गई। मैं भी किसी चाबी की गुड़िया की तरह तैयार होने लगी। मम्मी-पापा मुझे लेकर संगीत विद्यालय गये। वहाँ एडमीशन के पहले मेरा चयन टी.व्ही. कार्यक्रम में हो गया, उन्होंने बताया।

वहाँ से फिर किसी संगीत घराने के उस्ताद के घर ले गए और वहाँ भी जाकर उनसे मान मनव्वल किया। उन्होंने बड़ी मुश्किल से सिखलाने के लिए सहमति दी।

अब मेरा एक ही लक्ष्य था-गीत और संगीत। इस मध्य एक दर्जन से अधिक फिल्मी गीतों को मैंने रट लिया। लय-ताल के अतिरिक्त श्वास कहाँ तोड़ना है, सब बारीकियाँ सीखने की कोशिश की। मेरे चयन की चर्चा शहर में होने लगी थी। निश्चित दिन मैं, मम्मी और पापा बम्बई के लिए रवाना हुए। स्टेशन पर काफी व्यक्ति मुझे छोड़ने भी आए। मुझे बहुत-बहुत अच्छा लग रहा था?

पूरे रास्ते पापा यात्रियों को बताते रहे कि मेरा चयन हो चुका है। मम्मी मुझे गीतों की रिहर्सल मन ही मन करने के लिए जोर देती रही। खिड़की के बाहर नजर डाली-कितनी हरियाली बिखरी पड़ी थी। इन सब का वर्णन मैंने पढ़ा था-आज सजीव मैं देख रही थी। मेरी कोर्स की पुस्तकें ना जाने कहाँ गुम हो गई थीं। गाड़ी तेज गति से चलती जा रही थी। जब बम्बई में नियत स्थान पर पहुँचे तो हमारे ठहरने की व्यवस्था कार्यक्रम वालों ने कर रखी थी। ऐसे शानदार होटल में ठहर कर बड़ा अच्छा लगा।

मैंने तो ठान ही लिया-आगे की पढ़ाई बंद। अब तो सिर्फ़ गाना ही गाना है। दो दिन बाद मेरा टेस्ट था। काफी घबराहट थी, लेकिन हिम्मत के साथ मैं गई। वहाँ मुझ जैसे दर्जनों युवक-युवतियाँ बैठे थे। सब एक दूसरे से अपरिचित, सब के नेत्रों में चयन हो जायेगा-सही उम्मीदें थीं। चार-पाँच व्यक्तियों के बाद मेरा नंबर भी आया। मैंने मम्मी-पापा के पाँव छुए और मंच पर गई। एक-दो-तीन गीतों को गाया।

सबने प्रशंसा की और तालियाँ बजाईं। इस बार भी मुझे कहा गया कि 10-15 दिनों में आपको सूचना मिल जायेगी।

हम सब खुशी-खुशी घर लौट आए। मेरा स्कूल भी खुल गया था। वहाँ मात्र मेरी चर्चा होती थी-ऐसा गीत गाया, ऐसा गीत सुनाया, बड़े-बड़े संगीतकार बैठे थे, बस आठ-दस दिनों बाद ही मुझे मुम्बई जाना है।... मैं सब सहेलियों में विशेष हो गई थी। टीचर ने मुझे चार-पांच बार पढ़ाई की ओर ध्यान देने को भी कहा। मैं बहुत पीछे रह गई थी। मेरा तो एक सपना था कि गाना गा कर लाखों रूपये जीत लेने का।

एक महीना बीत गया-और आखिर वह दिन भी आ गया। रजिस्ट्री से आये पत्र को पढ़ा और पापा को दे दिया। मम्मी जोरों से रो पड़ी-मेरा चयन नहीं हो पाया था। मम्मी-पापा का मुँह उतर गया था। वह चयन प्रक्रिया को दोषी बता रहे थे। मैं तीन-चार दिनों तक स्कूल नहीं जा पाई।

मम्मी-पापा का व्यवहार मेरे प्रति भी काफ़ी उदासीन हो गया था। एक संध्या को तो मम्मी ने मुझसे कह ही दिया-"तुमने अति उत्साह में बेसुरा गा दिया था। उच्चारण दोष भी स्पष्ट समझ में आ रहा था।" मैंने सुना तो सन्न रह गई। मम्मी यह सब क्या कह रही है। गीत गाने के बाद तो मम्मी आज तक मुझे देश की सर्वश्रेष्ठ गायिका साबित कर रही थी। यह सब अचानक क्या हो गया? मैं चुप रही। कहती भी क्या ? इस क्वार्टर के स्कूल परिणाम में मुझे तीसवां स्थान मिला। मैं बहुत पीछे जा पहुँची थी।

मैंने प्रोग्रेस रिपोर्ट जब पापा को दिखाई तो वह बहुत नाराज हुए-"यह क्या! तीसवां स्थान-शर्म करो बुलबुल...।" मुझे रोना आ गया था। पापा तब चुप हुए और कहने लगे-"अपनी आँखों में आँसू भर लेने से कुछ नहीं होगा-पढ़ाई कम की है, इस दोष को स्वीकार करो।"

मेरे लिए सब असहनीय हो गया था। मैंने अपने आँसुओं को पोछा और पापा से कहा-

-"पापा, मेरा चयन गाने में नहीं हुआ तो मुझे दोषी ठहरा दिया। पढ़ाई में पीछे चली गई तो मैं दोषी हो गई।"

-"और कौन है दोषी"? पापा ने नाराज़गी से पूछा।

-"आप हैं पापा-आपने मुझे बिना किसी कारण इस अंधी दौड़ में सम्मिलित कर दिया। मम्मी और आपने अपने सपने दाँव पर लगा दिये", मैंने एक ही श्वास में कह दिया।

-"यह क्या कह रही हो?" मम्मी ना जाने कब कमरे में आ गई थी। यह स्वर उन्हीं का था।

-"सच कह रही हूँ, मम्मी-मेरी असफलता के दोषी सिर्फ़ आप दोनों हैं। आप दोनों ने अपने लिए देखे गए सपने मुझ से इस उम्र में पूरा करा लेने का सोचा..." कहकर मैं दौड़ते हुए अपने कमरे में चली गई। मम्मी-पापा मुझे ठगे से देखते रह गये।

सोहागपुर-461771
जिला होशंगाबाद (म0प्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठोर-स्वप्न

सनत कुमार जैन

सन्निपात ही था। सारा घर स्तब्ध था। घर की दीवारें, छत, गमले में उगे पौधे और हवा भी। पहाड़-सी ज़िंदगी और सुनने-बोलने की क्षमता नहीं। सबके दिल की धड़कन चीख़-चीखकर कह रही थी—क्या होगा? क्या होगा? और नीरवता ऐसी मानो सुई भी गिरे, तो बम फटने का अंदेशा।

सांत्वना के स्वर ही नहीं फूट पा रहे थे। ऐसी अप्रत्याशित बात होने पर किसी को कुछ सूझ नहीं रहा। "कर क्या सकते हैं, हमारे पूर्वजन्मों के पापों का फल है, भुगतान तो पड़ेगा ही", पिताजी ने प्रत्यक्ष में स्वयं के आँसू पोंछते हुए अप्रत्यक्ष रूप से सबके आँसू पोंछने चाहे।

"चिंता मत कर भाई, आज की दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गयी है। कुछ दिन पहले न्यूजपेपर में ख़बर आयी थी कि विदेश में अंधे को भी देख सकने का अंग लगा दिया है, वो भी धुँधला सा देख पा रहा है। फिर चिंता क्यों करता है? हम सब मिलकर इस बहरेपन का इलाज करवाएँगे... सब ठीक हो जाएगा", बड़े भाई ने बड़ी-सी समझाइश दी थी, जिससे मन ज़रा हल्का हुआ।

एक महीना बीत गया बज्रपात हुए। घर के लोगों की आँखे रह-रह कर बरसती रहीं।

"सुनती—बोलती नहीं है और ऊपर से लड़की जात। क्या होगा मेरी फूल सी बच्ची का"—साड़ी के कोने से अपनी आँखों के कोने को पोछती माँ बोली। "कैसी विपत्ति है, और हमारे ऊपर ही क्यों आयी। क्या पाप किये होंगे इस मासूम बच्ची ने। फूलसी कोमल है देखो, कितनी मासूम है..." उंगलियों से छूते ही बच्ची हंस पड़ी, बिना आवाज़ के"। माँ के रुकते आँसू फिर बरस पड़े।

"क्या होगा रानो, मेरी बेटी का। कभी बोलगी कि नहीं।" सीने से लगकर ममता अपनी ममता के आँसू बहाने लगी। मैने स्वयं को भरसक सँभालते हुए कुछ कहना चाहा पर सँभाल न पाया। हिचकियों में भविष्य की चिंता व्यक्त करते-करते रात बीत गई। पल भर भी नहीं सो पाये। भारी मन और मन भर भारी कदमों से अपने ऑफिस पहुँच गया। जिसने भी सुना, वह सांत्वना देने पहुँचता गया।

"संतोष ये ले। मैं इंटरनेट से भारत के सारे अच्छे हॉस्पिटलों की लिस्ट निकाल कर लाया हूँ। पता लगा। आज से जुट जा, खोज में लग जा, हौसला रख। ऊपर वाला रहम दिल है। ज़रूर तेरी बिटिया टीक हो जायेगी।" प्रदीप भैया ने मुझे लिस्ट थमाई। लोगों को कितना दर्द है मेरे लिए, मेरी बेटी के लिए—दिल का कोना लरज गया। आँखें भर आईं।

माँ समझ नहीं पा रही है। बाप असहाय खड़ा है। लगा कि अपना सर दीवार में पटक कर फोड़ दूँ। माँ जो नौ माह पेट में संजोकर रखती है अपने बच्चे को और हर पल सपना देखती है कि उसका बच्चा बाहें फैलाये 'माँ' कहकर अपनी ओर बुला रहा है। असीम आनंद के रस में सरोबार हो जाती है माँ... यहाँ तो हर दिल पर चोट लगी है। दादी का सपना अधूरा रह गया अपनी कहानियाँ सुनाने का, जो उनके अकेलेपन को भरता है, सूनेपन को भरता। कहानियाँ उन के मन को घोंटकर उन्हें पगला रही थीं।

घुटन भरी ज़िंदगी। लगता मानो जीवन स्वर विहीन हो गया है। बड़ी ही उचाट मनः स्थिति हो जाती। भीड़ भरे बाजार सूने लगते। पक्षी का कलरव, कोलाहल लगता। भतीजे-भतीजिओं की धमाचौकड़ी यंत्रणा देती। जिस टेप रिकार्डर को मैं सीने से लगाकर रखता था, जिसमें बजने वाले गाने मेरी कविता-कहानियों के स्वर थे, वो भी मुझे कर्कश लगते। जब अपने जीवन का स्वर ही मौन हो गया हो तो कौन सा गीत मधुर लगेगा।

"पापा ये रेलगाड़ी चल रही है कि पेड़-पौधे चल रहे है!"

"रेलगाड़ी चल रही है। पेड़-पौधे कैसे चलेंगे मेरे बच्चे।"

"देखो न पापा, पेड़ गोल घूम कर हमारे आगे से निकल रहे हैं।"

"बेटा, दृष्टि भ्रम है। हम चलती चीज में बैठे हैं इसलिए हमें स्थिर चीजें चलती दिखाई दे रही हैं। जैसे हम स्टेशन पर खड़े रहते हैं तो रेलगाड़ी चलती दिखाई देती है..." बाल सुलभ प्रश्नों के उत्तर देती बाप-बेटे की जोड़ी मेरे सामने वाली सीट पर बैठी है। मेरी प्यारी बेटी शयन यान में ऊपर की सीट पर चढ़ने की सीढ़ी में बार-बार चढ़ उतर रही है। ममता की शून्य में ताकती पनियल आँखे सोच रही हैं कि क्या बच्ची भी अपने मन की जिज्ञासायें शांत कर रही है! पर हकीकत मन जान रहा है, इसलिए मन का दुःख आँखों में पानी बनकर बह रहा है।

"बहुत बोलता है! शांति से बैठ नही सकता। जा, अपनी माँ के प्राण खा"—अचानक बाप-बेटे की जोड़ी टूट गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन के किसी कोने में शांति-सी आई। ठंडी हवा का झोंका जैसा लगा। कितना स्वार्थी हो गया है मन। ये दिल दूसरों के दुःख में खुशी खोजता है। खिन्नता ने घेर लिया मन को, धिक्कार के स्वर गूंजने लगे-रे मन तू कितना नीच होता जा रहा है। स्वयं बच्ची नहीं बोल पा रही है तो दूसरों के बच्चे नहीं सुहा रहे हैं। छी, कितना गंदा हो गया है मेरा सोच। मेरी बच्ची के न बोलने में उस बच्चे का क्या दोष, उसका क्या अपराध।

"देखो भाई साहब, जरा ध्यान दो बच्ची पर। बार-बार चढ़ उतर रही है। कहीं गिर न जाये" उस बाप-बेटे की जोड़ी से बाप बोला।

मैं मानों सोते से जागा—"चिंता मत करिये। वे सुनती-बोलती जरूर नहीं है, पर उसका दिमाग बहुत तेज है। पकड़ मजबूत है और अपना ख्याल खुद रख लेती है।" पल भर में इतने सारे शब्द रूपी व्यंग्य बाण। सहयात्री कुछ समझ न पाया। कैसे समझता। जाके पांव न पड़ी बिवाई, वो का समझे पीर पराई। भड़ास मेरी मजबूरी थी।

"ममता, जरा ध्यान दो अपनी सेहत पर। चिंता करने से क्या अनहोनी होनी में बदल जायेगी।

"क्या मैं जानकर चिंता करती हूँ। मुझे शौक लगा है? खाती हूँ, पीती हूँ, सोती हूँ। सब तो कर रही हूँ। शरीर कमजोर हो रहा है तो क्या करूँ"—अचानक अप्रत्याशित फटकार से अचंभित हो गया। हमेशा डर को दबाकर और प्यार से जवाब देने वाली ममता का यह रूप आज पहली बार दिखा।

मेरे क्रोध की सीमा टूटती नजर आई। एक तो मैं ममता से हमदर्दी जता रहा हूँ और वो है कि उलटा जवाब दे रही है—क्रोध का घूँट पी गया मैं और उसे अपनी छाती से चिपटा लिया।

ममता तो ममता है, पल भर में ही छाती आँसुओं से भिगो दी।

"क्या करूँ मैं। अपनी बेटी के लिये सोचना नहीं भूल सकती। कैसे मैं भूल जाऊं। मेरे शरीर का टुकड़ा है। ज्यों भूलने की कोशिश करती हूँ, वो मेरे मन-मस्तिष्क पर छाने लगती है।"

इस बेवसी पर आँसुओं के अलावा किसी का सहारा नहीं होता है। वो ही हैं जो आँखो से बह दिलो-दिमाग को ठंडा करते हैं।

इंटरनेट में अस्पतालों की छानवीन के पश्चात् उम्मीद की किरण नज़र आई थी।

"इसके कानों में क्षमता है सुनने की पर वो आवाज़ कई गुना बढ़ाकर कानों में डाली जाये तो... यानि इस मशीन के द्वारा जो इस तरह कानों में लगानी है"—सारी जाँच के बाद डाक्टर ने एक चित्र पर समझाते हुए कहा। चित्र में एक छोटी सी मशीन कानों के पीछे एक प्लास्टिक पाइप के ज़रिये बँधी थी और एक रबर का टुकड़ा कानों के छेद में घुसा था।

दिल बल्लियों उछल रहा था।

तो क्या डाक्टर साहब, मेरी बच्ची सुन बोल सकेगी...

"बिल्कुल! क्यों नहीं, पर...

"पर क्या डाक्टर!" ममता ने अपने खुशी के आँसुओं को आँखों की पलकों में छुपाकर कहा,

"आँखों में लगने वाला चश्मा, आँखों में लगाते ही दुनियां साफ़-साफ़ दिखाता है पर कानों की मशीन वैसे काम नहीं करती। ये बच्चे को सब सुनाती है और बच्चा सब सुनता है। उसके लिए हर आवाज़ शोर की तरह होती है। उस शोर में उसे समझना होता है कि किस आवाज़ का मतलब क्या है जो कि बहुत मुश्किल काम है। ये काम बहुत ही श्रम साध्य है और समय लगने वाला भी है। अभी बच्चे का दिमाग कुम्हार के चाक की मिट्टी की तरह है। उस चाक की मिट्टी में कुछ गढ़ जाने से पहले ही सही गढ़ना है, वरना देर हो जाएगी।"

उत्साह और खुशी के रंग बिखेरने वाली बातों ने हृदय के बोझ को काफ़ी कम कर दिया।

"दामाद बाबू, एक मोती और चाहिए नातिन के साथ खेलने के लिए"—सास की आज्ञाभरी, प्यार भरी और समझ भरी सलाह थी जो मन को उद्वेलित कर रही थी। डाक्टर की सलाह के बाद उम्मीद की किरणें हमारे लिए प्रकाश पुंज थीं। इसके बाद दूसरे बच्चे का सोचा जा सकता था।

"चलो ममता कहीं घूम आयें। आज कितने दिनों बाद चैन महसूस हो रहा है।" मैंने गुनगुनाते हुए कहा।

ममता तुरंत ही बोली-'चौपाटी पर चाट जरूर खाएंगे।'

'जब यहां से जायेंगे तब तो चौपाटी पहुँचोगी'—पुराने स्कूटर को किक मारते हुए मैंने कहा। स्कूटर घर्र-घर्र करता स्टार्ट हो गया।

कुछ ही मिनटों में हम बाज़ार में थे। मैंने स्कूटर रोक कर एक जगह खड़ा किया और एक ओर बढ़ चला—'यहाँ-कहाँ चाट मिलेगी?'

ममता खोजती नजरों से बोली, "तुम चलो तो सही।"

"नई बाइक खरीदने वाले हो?" मुझे बाईक के शोरूम में घुसते देख ममता खुशी से पूछ बैठी।

'हाँ, और क्या! नई बाइक खरीदेंगे। आज मेरा मन खुशियों से लबालब है। कब तक इस खटारा को झेलेंगे'

'इसका क्या करोगे ?'

'पड़ी रहेगी किसी कोने में। कभी कभार इमरजेंसी में काम आएगी और क्या'—मैंने बेरुखी से कहा।

अगले ही पल ममता का चेहरा रंगहीन हो गया।

'क्या हुआ ममता, अचानक कैसे पीली पड़ गई?' मैने घबराकर पूछा।

"घर में नया मोती आने पर मेरी यह मौन बेटी भी किसी कोने में पड़ी रह जायेगी?" ममता के मुँह से तड़पकर ये शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकले।

काँप कर रह गया मेरा शरीर। वजूद ही हिल गया। मानव स्वभाव होता है कि वह अच्छी चीज ही पसंद करता है, बगैर नुक्स वाली चीजें। फिर मेरी नुक्स वाली मौन बेटी का भविष्य अंधकारमय हो ही जाएगा, वाचाल मोती के आने पर। न तो बाइक ली, ना ही चाट खायी। शाम यूँ ही गुज़र कर गहरी रात में बदल गई।

"ममता"

"हूँ।" अलसाती हुई बोली वह।

"हमें दूसरा मोती नहीं चाहिए जो हमें मजबूर करे इस मौन बेटी से दूर होने को। हमें तो इस अक्षम बेटी को हर तरह से सक्षम बनाना है। इस दुनिया में लाए हैं तो उसे यूँ ही नहीं छोड़ देंगे.. मन अपने विचारों को व्यवस्थित करते हुए कहा।

"मैं समझ गई।"

"क्या समझीं तुम!"

"यही कि दूसरा कभी नहीं!"

हम दोनों एक दूसरे के आगोश में समा गये और सुबह का पथ प्रदर्शक सूरज रात में ही आ कर राह दिखा गया।

सन्मति इलेक्ट्रिकल्स
सन्मति गली,दुर्गा चौक के पास
जगदलपुर,जिला-बस्तर
पिन कोड-494001

कविता

बारहमासा

कुमार विश्वबंधु

दिल्ली का दरबार देखो
रानी-राजकुमार देखो
गूँगे-बहरे राजसभासद
मंत्री अपना यार देखो

रंग-बिरंगी कार देखो
बदहवास नर-नार देखो
फटी जेब पर दिल चौराहा
फैशन सदाबहार देखो
बारिश तकिया, धूप बिछौना
मंहगाई की मार देखो
चौंसठवी बरसी आज़ादी
माया अपरमपार देखो

अंतर-मंतर काला जादू
चोर उचक्के डाकू साधु
नूराकुश्ती धींगामुस्ती
मिलीजुली सरकार देखो
भालू बंदर साँप छछूंदर
नवयुग के अवतार देखो

जात-जात बदजात देखो
मार रहे सब हाथ देखो
दिन अँधेरा, रात चाँदनी
रुपयों की बरसात देखो

तन में पैसा, मन में पैसा
पैसों के दिन-रात देखो

हाथ तिरंगा, भूखा नंगा
अड़ा राह में इक भिखमंगा

बात-बात पर दंगा देखो
खून भरी है गंगा देखो
मन में खौफ़, शहर में कर्फ्यू
घर-घर फटा लहंगा देखो
सारे ज्ञानी चुप बैठे हैं
देता सीख अधंगा देखो
हड्डी-हड्डी खेल कबड्डी
बिक गयी तन की गंजी-चड्डी

मरघट-मरघट गाँव देखो
इस पर उनके दाँव देखो
मर गये सारे मानुष-प्राणी
भूत के उल्टे पाँव देखो
खेत-खेत बस सन्नाटा है
कहीं नहीं अब ठाँव देखो

यहाँ-वहाँ हड़ताल देखो
बजता है करताल देखो
फटी लंगोटी, सिर पर टोपी
लीडर कौआ चाल देखो
नाच रहा बेताल देखो
मुँह में बोल न आँख में पानी
लेकिन बड़ा कव्वाल देखो

संसद सर्कस चिड़ियाखाना
जेल जुआघर पागलखाना

सच्चा पागल, अच्छा पागल
लुच्चा पागल, टुच्चा पागल
पक्का पागल, कच्चा पागल
बूढ़ा पागल, बच्चा पागल
चच्ची पागल, चच्चा पागल
पागल नोचे बाल देखो
पूछो नहीं सवाल देखो
पिचके-पिचके गाल देखो
उतरी सबकी खाल देखो
सवा लाख में एक कलंदर
बांकी सब बदहाल देखो
लूट तमासा बारहमासा
देश हुआ कंगाल देखो।

388/8, बेहाला एयरपोर्ट रोड
मेन गेट, पो0 पर्णश्री,
कोलकाता-700060

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवजीवन

एहसान हसन

वैकेन्सियों के फ़ॉर्म भरने, परीक्षाओं की तैयारी और उनके परिणामों के इंतज़ार में उसके दिन बीत रहे थे। वह दो बार पी0सी0एस0 और एक बार आई0ए0एस0 के इन्टरव्यू से लौट चुका था। रोज़गार के अवसरों में हो रही निरंतर कटौती, कड़ी प्रतियोगिता, परिणामों में विलंब, भर्तियों का प्रतिबंधित हो जाना और कभी किसी परीक्षा का निरस्त हो जाना आदि जटिलताओं के बीच सपनों को सँभालने का हुनर उसे आने लगा था। लंबी कतारों से वह घबराता नहीं था, धाँधलियों से वह डरता नहीं था। उसने अपने अंदर कई लोगों को बैठा रक्खा था, जिससे वह ख़ुद कभी बैठ नहीं पाता था और लगातार दौड़ता चला जा रहा था।

अभिभावक के नाम पर एक बूढ़े दादा थे, अवकाशप्राप्त अध्यापक। बचपन में माँ-बाप की मौत के बाद दादा ने ही उसकी परवरिश की और पढ़ाया-लिखाया। वह अक्सर कहता, "जिस आदमी ने मुझे पौधे से एक क़द्दावर दरख़्त बनाया, अगर वही मेरा फल न खा सका, तो मेरे लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है!" वह इस संभावित दुर्भाग्य से बहुत डरता था और इसीलिए उसे जल्दी थी अपने सौभाग्य तक पहुँचने की। वह एक आला अफ़सर! उसका शहर में एक ख़ूबसूरत-सा बँगला! बँगले में दादा का एअरकंडीशन्ड कमरा! दादा के कमरे के साथ एअरकंडीशन का विचार अनिवार्य रूप से आता, क्योंकि बूढ़े दादा के शेष दिनों को वह अपनी तरफ़ से ज़्यादा से ज़्यादा सुखमय बनाना चाहता था। दादा से बातचीत में जब कभी इन बातों का ज़िक्र करता, तो दादा बड़े कौतूहल से पूछते—"और बहू?" वह मुस्कुरा देता और फिर बड़े प्यार से कहता, "दादू, मैं अफ़सर बन जाऊँगा! बँगला होगा! गाड़ी होगी! हम-आप होंगे ख़ुश-ख़ुश! ऐसे में एक दिन हमारे घर नयी ख़ुशी आएगी। मैं शादी करूँगा, आप की बहू आएगी, आपकी ख़ूब सेवा करेगी!" बूढ़े दादा के दिल में एक गुदगुदी-सी होती और हँसने लगते। वह भी हँस पड़ता।

समय बीतने के साथ दायित्व-बोध लगातार उस पर हावी होता जा रहा था। एम0ए0 किये हुए पाँच बरस हो गये थे। पिछले दस बरसों से वह शहर में था, किराये के कमरे में। अब तो एक-एक दिन बोझिल लग रहा था। रोज़गार की अनिश्चितता, शहर का ख़र्च, अभिभावक की आशाएँ—इन सबसे वह ख़ुद को दबाव में महसूस करने लगा था। इतना वक़्त और पैसा खर्च हो गया! कभी-कभी उसे एक अपराध-बोध सा होता था।

ऐसे में एक दिन उसकी मुलाकात एक लड़की से हुई। सिटी बस में काफ़ी भीड़ थी। लड़की एक स्टॉप पर बस में सवार हुई थी, भीड़ में दबती हुई, लेकिन सहजता और आत्मविश्वास से लबरेज़। उसने अपनी सीट से उठते हुए लड़की को सीट पर बैठ जाने का इशारा किया। "थैंक्स!" कहते हुए लड़की सीट पर बैठ गयी। अगले स्टॉप पर वह उतर गया और एक ओर जाने लगा। थोड़ी दूर चलकर सड़क पार करने के लिए वह कुछ पल रुका था, तभी पीछे से वही लड़की आयी और "आओ न" कहकर बेधड़क सड़क पार करने लगी। वह लड़की के साथ सड़क पार कर गया। हाथ में लिये हुए उसके फ़ॉर्म को लड़की ने देख लिया था। वह कुछ बोलने ही वाला था कि लड़की ने अपने मिनी बैग से एक फ़ार्म निकाला।

"आज लास्ट डेट है, बहुत लंबी लाइन होगी... प्लीज़"

बिना कुछ बोले उसने हाथ बढ़ा दिया। लड़की ने उसको फ़ार्म पकड़ाया और "थैंक्स!" कहते हुए उससे हाथ मिलाया। फिर जल्दी से एक ऑटो में सवार हुई और निकल गयी।

दूसरी मुलाकात युनीवर्सिटी मार्केट की एक बुकशॉप पर हुई थी। लड़की बिल पर कुछ कन्सेशन को लेकर बहस कर रही थी और वह पहुँच गया। लड़की उसे देखकर चहकी, "अरे वावे! मैंने सोचा भी नहीं था कि इतनी जल्दी फिर हमारी मुलाकात हो जाएगी।"

वह बड़े भोलेपन से बोल पड़ा, "मैने भी नहीं सोचा था।"

लड़की ज़ोर से हँस पड़ी, वह भी हँसने लगा।

इसके बाद तो मुलाकातों का एक सिलसिला सा चल पड़ा। लड़की शहर में ही पेइंग गेस्ट के तौर पर रहती थी और किसी बड़ी पोस्ट पर पहुँचना चाह रही थी। सिविल सर्विसेज़ से लेकर मैनेजमेन्ट तक में ट्राई कर रही थी। समृद्ध परिवार से थी, लेकिन उसका अपना फ़ैसला था, "आख़िर कब तक घर से ख़र्च लेती रहूँगी, एक प्राइवेट कंपनी में छोटी-सी नौकरी कर ली है।" लफ़्ज 'छोटी' पर कुछ ज़्यादा ही ज़ोर देकर उसे और छोटा कर दिया था, जैसे जताना चाह रही थी कि मंज़िल तो कुछ और है।

वह लड़की से मिलकर ख़ुश था और लड़की भी उसमें दिलचस्पी लेने लगी थी। दोनों में समसामयिक मुद्दों से लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपसी व निजी बातों तक चर्चा होती। लड़की आधुनिक थी और बड़ी जागरूक भी। धीरे-धीरे वे एक-दूसरे के क़रीब आते गये और सब से बढ़कर दोनों एक-दूसरे को बहुत हद तक स्वीकार करने लगे थे। लड़की से ही प्रेरणा लेकर वह भी एक पब्लिशिंग कंपनी में 'छोटी-सी नौकरी' करने लगा। दोनों में लक्ष्य को लेकर प्रतिबद्धता कम न हुई थी। हाँ, इस दोस्ती से कुछ आसानियाँ ज़रूर पैदा हुई।

किसी परीक्षा से निपटकर एक दिन दोनों ने घूमने का मन बनाया। वे शहर की ख़ूबसूरत जगहों पर गये। खाते-पीते, मौज-मस्ती करते दोनों सरस्वती घाट निकल गये। वहाँ बोटिंग की, संगम तक गये, दो धाराओं का मिलना देखा; फिर किनारे जाकर कुछ देर रेती में खेलते रहे। शाम होने लगी, बातें करते हुए दोनों वापस सरस्वती घाट की ओर चल पड़े। किले की दीवार के नीचे-नीचे, ऊँची-नीची चट्टानों पर से होते हुए जमुना के किनारे-किनारे दोनों चले जा रहे थे। डूबते सूरज की लालिमा नदी के पानी पर छाने लगी थी। रह-रहकर पानी के थपेड़े चट्टानों पर पड़ रहे थे। किसी चट्टान पर चढ़ते हुए अचानक लड़की के पैर फिसलकर पानी में चले गये कि उसने बड़ी फुर्ती से लपककर लड़की की बाँह थाम ली। लड़की ने खुद को सँभालते हुए अपना हाथ उसकी गर्दन में डाल दिया और धीरे-धीरे अपने पैरों को उठाते हुए आगे बढ़ाया, जो पिंडलियों तक भीग गये थे। एक-दूसरे को वैसे ही थामे दोनों खड़े थे और उनके दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहे थे। सूरज डूब चुका था, सामने दिन-रात का संगम था,पीछे दो नदियों का संगम था... आरती की मधुर गूँज और पानी पर तैरते दीपों के प्रकाश ने मानो इस तीसरे संगम का उत्सव रच रखा था।

कुछ दिनों बाद दोनों ने कोर्ट मैरिज कर ली और एक किराये का फ़्लैट लेकर रहने लगे साथ-साथ। पति-पत्नी दोनों ने तय किया कि कैरियर बनाकर फिर से शादी करेंगे, पूरे सेलीब्रेशन के साथ और तब तक यह कोर्ट मैरिज छुपाये रखना है।

सब कुछ ठीक चल रहा था। दोनों अपने कैरियर के लिए जी-जान लगाये हुए थे और साथ ही अपनी 'छोटी-सी नौकरी' भी सँभाले हुए थे। उनके पास एक परिवार की तमाम सुविधाएँ भी हो गयी थीं। पर, जाने क्यूँ दोनों एक-दूसरे से खुल नहीं पा रहे थे, उदात्त प्रेम का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। यूँ तो सब हो रहा था, लेकिन वही नहीं हो पा रहा था, जो होना चाहिए था। सिमटा-सिमटा सा दोनों का मन अक्सर कचोट उठता, अज्ञात भविष्य का भय साहचर्य पर भारी पड़ जाता। लड़की, जो अब एक पत्नी थी, प्राइवेट कंपनी की उस 'छोटी-सी नौकरी' से प्रमोशन पा गयी थी, लेकिन ख़ुश न थी, "मैं कैरियर के मामले में कोई समझौता नहीं कर सकती। मैं वो सब कुछ हासिल करके रहूँगी, जो मैंने सोचा है, जो मेरा सपना है!" वह, जो अब एक पति था, पत्नी, दादू और स्वयं के त्रिकोण में फँस चुका था। समझ नहीं पा रहा था कि ज़िंदगी का सिरा जा किधर रहा है? अंदर ही अंदर एक जटिलता जड़ जमाये थी।

इसी बीच, एक दिन जब वह पब्लिशिंग कंपनी के दफ़्तर से लौट रहा था, उसका मोबाइल फ़ोन बजा। शहर के एक नर्सिंग होम से फ़ोन था। वह बदहवास-सी हालत में नर्सिंग होम पहुँचा। पत्नी 'कोमा' में चली गयी थी। बात दरअसल यह थी कि तीन महीने से प्रेगनेन्ट पत्नी ने जाकर 'एबॉर्शन' करा लिया था, जिससे हालत बिगड़ गयी। वह चकरा-सा गया, प्रेगनेन्सी के बारे में वह जानता था, लेकिन पत्नी के इस ख़तरनाक क़दम का उसे अंदेशा तक न था। "मैं पति हूँ, बच्चे का बाप। कुछ भी न पूछा, कोई राय-मशविरा, सहमति-असहमति न ली?" वह पसीने से भीग रहे अपने माथे को आस्तीन से रगड़ने लगा। फिर, अचानक 'कोर्ट मैरिज', 'कैरियर', 'शादी-सेलीब्रेशन'—ये शब्द उसके दिमाग़ में जैसे सूजा चुभोने लगे।

उसके शरीर का काफ़ी ख़ून अब पत्नी की रगों में दौड़ रहा था। पत्नी बच गयी। मौत के मुँह से वापस आयी थी, लेकिन "अब कभी माँ नहीं बन सकेगी"—ऐसा डाक्टरों ने कहा था और इस बात को उसने इतनी जल्दी पत्नी से बताना मुनासिब न समझा। इसलिए संकट की इस संपूर्ण भयावहता में अनायास ही एक सरलता आ गयी थी।

नर्सिंग होम से छूटकर आये दो दिन हुए थे और आज तीसरा दिन था। सुबह-सुबह ही एक फ़ोन आया और वह शाम तक वापस आने की कह कर चला गया। रात हो गयी, वह न आया। पत्नी, इंतज़ार करते-करते थककर सो गयी।

"जिस आदमी ने मुझे पौधे से एक क़द्दावर दरख़्त बनाया! वही मेरा फल न खा सका? एअरकंडीशनर नहीं, तो कूलर क्यों नहीं? अपना बँगला नहीं, तो किराये का फ़्लैट क्यों नहीं? हम खुश होने की तैयारी में ही खुशी के न जाने कितने अनमोल लम्हे बर्बाद कर बैठते हैं। और, बहू? और, बहू??"

ऐसे ही सवालों से सर टकराता, देर रात गये वह आया। उसको इतनी देर से पाने पर पत्नी बच्चों की तरह मचल उठी। उसने पत्नी को सीने से लगा लिया। कभी-कभी सब कुछ अकेले ही जानते रहना बड़ा घुटन भरा होता है। पत्नी का यह स्पर्श आज उसे बड़ा सुकून दे रहा था। उसके पहलू में दुबकी हुई पत्नी जैसे सब कुछ भूलकर उसी में लीन हो जाना चाह रही थी। वह भी सब कुछ छोड़कर पत्नी में ही एकाग्र होने लगा। प्रेम का यह एकात्म भाव प्रेम की संपूर्णता का शंखनाद कर रहा था। उसने हौले से पत्नी को गोद में उठा लिया और थिरकने लगा, नृत्य... तांडव नृत्य! क्योंकि अब जीवन-जगत् का नवनिर्माण करना था।

रात बीत चुकी थी, कलरव के संगीत में धुला उषा का प्रकाश मानो इस नवजीवन का अभिषेक कर रहा था।

शोध छात्र, उर्दू विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार कुंभज की आठ कविताएँ

1. फ़ासला बड़ा है

यहाँ से वहाँ तक
और वहाँ से यहाँ तक का फ़ासला
ख़त्म करना होगा
ख़त्म करना ही होंगे
इसके बीच से उसके बीच तक
और उसके बीच से इसके बीच तक के
फ़ासले सब
इस जगह से उस जगह तक
और उस जगह से इस जगह तक में
पैदा करना ही होंगी क्यारियां फूलों की
पैदा करना ही होंगी निर्मल नदियाँ
पैदा करना ही होंगी ताज़ा हवाएँ
तब, फ़ासले सब
मिट जाएँगे अपने आप
न कोई कहलाएगा सुल्तान
न कोई कहलाएगा ज़मींदार
और न कोई माई-बाप
ये था एक धुंधला-सा सपना
जो याद आता है अब भी
चतुर-सुजान डकैतों, लठैतों के बीच
बीच में बसी बस्तियाँ निर्बलों की
उजाड़ दी जाती है शॉपिंग-मॉल के लिए
रिश्वतख़ोर अधिकारी टेकते हैं मत्था
मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारों सहित
गुरु-घंटालों के दरबारों में गाजे-बाजे से
फ़ासला बड़ा है, जो हर दिन बढ़ता जाता है
यहाँ से वहाँ तक
और वहाँ से यहाँ तक का फ़ासला
ख़त्म करना ही होगा
एक न एक दिन।

2. भैंसा गाड़ी

किसी ज़माने में
शायद बचपन में पढ़ा करते थे हम
वह एक कविता 'भैंसा गाड़ी चर्र-चर्र, चर्र-चर्र'
आजकल देखा करते हैं बाखुशी
अपनी ही चुनी सकरार।

3. क्या दुःख हैं आपके

क्या दुःख हैं आपके ?
कुछ कहिए तो सही हमसे श्रीमान्
हम ही करेंगे आपके हितों की रक्षा
हम ही लोगों ने बनाई है
आपके हित-रक्षार्थ
एक नई हितकारी-पार्टी
वादा करते हैं कि हम आपको
इस तरह से मरने नहीं देंगे
जैसे मरते या मारे जाते हैं चूहे
उन्होंने भी यही कहा था, जो आए थे पहले
और करके हत्या सरेआम मेरी
भाग गए हत्यारे।

4. ज़िंदगी के क़िस्से

आउटर पर खड़ी ट्रेन की तरह
बिल्कुल-बिल्कुल आउटर पर ही खड़ा हूँ मैं
न भीतर हूँ, न बाहर
न तुममें शामिल मैं, न मुझमें शामिल तुम
कितना-कितना सुखदायी है इन दिनों में
आउटर पर खड़ी ट्रेन की तरह ?
शायद ये भी इस जीवन का एक हिस्सा है
और कोई ख़ूबसूरत-सा क़िस्सा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बात कह दूँ, बुरा मत मानना
ज़िंदगी के क़िस्से कभी ख़त्म नहीं होते हैं
जो भी होते हैं और फिर जब भी होते हैं
अपने-अपने हिस्से के ही होते हैं।

5. मेरी भूख बड़ी तेज़ थी उस वक़्त

दरवाज़ा खोलते ही
सबसे पहले घुसी घर में ताज़ा हवा
और फिर घुसी वह एक लड़की
जो भी ताज़ा हवा पर सवार ताज़ा रोटी की तरह
सच कहता हूँ मेरी भूख बड़ी तेज़ थी उस वक़्त

6. उनके नाम पर, अपने लिए

मुरदे नहीं देते हैं गवाही
मुरदे नहीं करते हैं कभी भी फ़रमाइशें
मुरदे नहीं चाहते हैं चिकन-चिल्ली
वे, हम ही होते हैं, जो चाहते वह सब छल
उनके नाम पर, अपने लिए।

7. खेल ख़त्म हुआ; ख़ुदा हाफ़िज़

खेल मत करो
खेल का मैदान नहीं होता है घर
और न ही जुए, सट्टे और बाज़ीगरी का खेल
यहाँ जी-जी कर मरना पड़ता है
और मर-मर कर जीना पड़ता है
मिलता नहीं है, मिलता ही नहीं है, वक़्त, कभी भी, तब भी
यहाँ तक का कि कर सकें अफ़सोस थोड़ा
घोड़ा वक़्त का नाप लेता है दूरियाँ सब
जैसे यही कि कब, किसने, क्या कहा था जैसा वह
सब कुछ भूलते हुए और याद रखते हुए
सिर्फ़ गुलमुहर की छाँव नीचे की वह एक शाम
जिसमें लड्डू-बर्फ़ के मीठे-मीठे
खेल मत करो
खेल का मैदान नहीं होता है घर
खेल ख़त्म हुआ, ख़ुदा हाफ़िज़
बदल गई है सरकार।

8. आख़िर तो मनुष्य हूँ मैं

पत्थर नहीं हूँ मैं
लेकिन, सिर्फ़ पत्थर ही जीते हैं

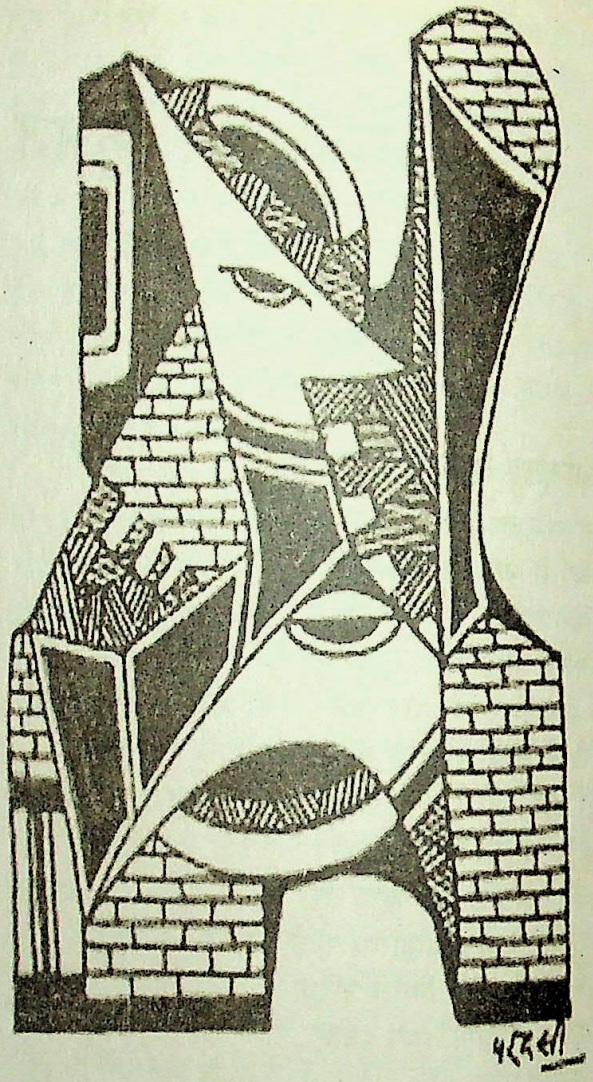

लेकिन, सिर्फ़ लोहा ही जीता है
सदियों-सदियों तक

जल-जाल नहीं हूँ मैं
लेकिन, सिर्फ़ जल-जाल ही जीते हैं
सदियों-सदियों तक

आकाश नहीं हूँ मैं
लेकिन, सिर्फ़ आकाश ही जीता है
सदियों-सदियों तक

क्या करूँगा मैं,
सदियों-सदियों तक जीकर आख़िर
आख़िर तो मनुष्य हूँ मैं।

331, जवाहर मार्ग
इन्दौर-452002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएं

सुरेश नारायण कुसूंबीवाल

प्रेम के बारे में

जब भी प्रेम के बारे में
लिखने बैठा
सामने कुंडी में फूल मुस्कराया

खिड़की में बैठकर
चहकी
एक चिड़िया

सूरज ने हटाया
बादलों को एक तरफ
और
मेरी ओर देखा

मेरी नन्हीं पिंकी
गोद में चढ़ आयी
और
संवारने लगी मेरे उलझे बाल

मेरी बिखरी चीजों को संभाला
मेरी टेबल को ठीक किया
कविता के कागज उठाकर एक जगह रखे
पत्नी ने।

लाक्षागृह

विरोध से मुक्ति पाने का
एक सीधा सा
शार्टकट

चक्रव्यूह के पहले रचा गया
एक चक्रव्यूह

हर राजा चाहता है
एक लाक्षागृह
अपने प्रतिस्पर्धी के लिये

हर तंत्र बनाता है
अपना एक लाक्षागृह, और
सोचता है
अब वह निर्बंध है

छोटी सी चिनगारी से
भभक उठने वाला
क्षणमात्र में
खाक होने वाला
अपने साथ
सब कुछ
शून्य में परिवर्तित करता

कहाँ जानता है
वह राजा,
वह तंत्र
लाक्षागृह भी नहीं जानता शायद
कि
एक गुप्त मार्ग होता है
हर लाक्षागृह के भीतर
दूर सुरक्षित जाने वाला

जानना चाहिए
सभी को
हम सभी हो सकते हैं
एक दूजे के बनाये
लाक्षागृह में
जो कभी भी सुलग सकता है

ज़रूरी नहीं कि
हर बार
पांडव ही हो भीतर

इस समय देश यह विश्व
बन रहा है एक लाक्षागृह
जो सुलग सकता है कभी भी
फिर भी
एक विश्वास है
मिल जायेगा कोई एक विदुर
जो निकाल ले जायेगा हमें
सुरक्षित।

काँच के घर में चिड़िया

काँच के घर में बंद है
एक चिड़िया
बर्फ़ सी सफ़ेद

इस बंद घर में
कैसे घुस आयी चिड़िया नन्हीं
किस खिड़की से ?
किस झरोखे से ?
किस भूल से आयी चिड़िया भोली

क्या सोचा था चिड़िया ने ?

अब बंद खिड़की की काँच पर
मार रही है चोंच
चिड़िया
लगातार

कैसे समझाऊ
इस चिड़िया को
इस काँच के घर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आना तुम्हारे बस में है
लौटना नहीं

वे भले आदमी हैं

वे हमेशा खुश रहते हैं
मुस्कान का डेरा रहता है
हमेशा
उनके चेहरे पर

वे किसी बात का बुरा नहीं मानते
चाहे आप उन्हें गालियाँ दे लीजिए

वे अपने रास्ते पर चलते हैं
बग्गी के घोड़े कई तरह
आँखों पर झापड़े लगाये हुए

कई बातों को वे
देखकर भी नहीं देखते

किसी भी स्थान पर
आप इन्हें नहीं पायेंगे
उपस्थित

आप कर दे क़त्ल
उनके सामने
फिर भी

नहीं देखेगी कुछ
उनकी आँखें

युगों से ठहरे पानी में
नहीं फेंकते
वे कभी
कंकड़, पत्थर

वे भले आदमी हैं

यह अच्छी ख़बर है
भविष्य के लिये कि
बढ़ रही है दिन-ब-दिन
भले लोगों की तादाद।

भुसावल-425201
(महाराष्ट्र)

लघु कथा

टैलेण्ट-हण्ट

आलोक कुमार सातपुते

उस देश के राजा के टी0वी0 देखने का बड़ा शौक था। एक दिन उसे सूझा कि टैलैण्ट-हण्ट कार्यक्रमों के माध्यम से प्रधानमंत्री एवम् अन्य मंत्रिगणों तथा दरबारियों का चयन किया जाये। इसके लिए टी0वी0 चैनलों एवं और विज्ञापन एजेन्सियों की मदद ली गयी। मंत्रीगणों के चयन के लिये 'लॉफ्टर चैलेंज' का आयोजन किया गया। क्योंकि यह माना गया कि उन्हें जोकर प्रवृत्ति का होना चाहिये, जो हँसा-हँसा कर लोगों को विभिन्न समस्याओं से दूर रख सकें। प्रधानमंत्री पद के लिये 'कॉमेडी का बाप' नामक कार्यक्रम रखा गया। दरबारियों के चयन के लिए 'सस्ती', म्यूजिक और झूम नामक कार्यक्रम रखा गया, तो पूरी तरह दरबारी और जैजैवन्ती राग पर आधारित था, क्योंकि दरबारी होने की पहली शर्त जी-हुजूरी मानी गयी। टी0वी0 क्रिकेट से प्रेरित होकर राज्यकर्मचारी बोली लगाकर खरीदे गये। सभी पदों पर बाक़ायदा महिलाओं के लिए आरक्षण भी रखा गया और उनके चयन के लिए 'स्मॉर्ट कुमारी' और 'स्मॉर्ट श्रीमती' जैसे कार्यक्रम रखे गये।

इस तरह उस देश के मंत्रिमंडल का गठन हो गया। अब इन प्रतिभावान लोगों ने यह सोचकर कि हम प्रतिभाशाली लोगों के बीच में इस प्रतिभाविहीन राजा का भला क्या काम हैं, उन्होंने राजा को हटा दिया। और उस पर महाभियोग लगाकर उसे फांसी दे दी गयी।

एलआईजी-832, सेक्टर-5
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, सड्डू रायपुर (छत्तीसगढ़)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर्वा पर ओस

राजेंद्र वर्मा

आ, चलें, देखें–

वसंत आया,
उदासी छँट गयी

सजी धरती :
हरी चूनर फ़सल गेहूँ की बनी,
लगी सरसों की छापी पीतवर्णी,
हुई अलसी किनारी नीलवर्णी,
खुसुर-पुसुर में लगीं किशोरी बालियाँ,
मौज लेता, करता पवन अठखेलियाँ,
जौ-मटर-अरहर पड़ी उमगी,
बर्र भी है नींद से जैसे जगी,
बन गया बूटा चना फूला,
है पड़ा फलियों का झूला,
चुप खड़ा गन्ना किनारे खेत में
बीज बनने की प्रतीक्षा में–
रस पिलाएगा वो अगले साल।

खुशी से कूकती कोयल
कि आया आम पर फिर बौर,
चुआ जाता है महुआ
सूझता उसको नहीं कुछ ठौर,
बिछा जाता है हरसिंगार
हुआ रंगीन है टेसू
सजा सेमल पहन कुंडल,
हज़ारों कोंपलों को
सिर चढ़ाये संत पीपल,
गमकती रात की रानी,
दहकते गुलमोहर का/ है कोई सानी ?

खिला है पुष्प उपवन में,
भ्रमर मचला, बजायी बीन
पसारे तितलिका ने पंख
पवन डोला, सुरभि बिखरी
दिशाएँ महमहा उट्ठीं।

गगन भी देख धरती की छटा को/ मुग्ध होता है,
वो अपनी नीली चादर तान देता है,
टँके जिसमें/ कई सूरज-सितारे,
कई बादल/ सुनहरे, श्वेत, भूरे और कजरारे,
हृदय/ आनंद की वर्षा छिपाये,
धरा के रूप का रसपान करने/ दौड़ते आये।

ठिठोली में दिवस बीता,
हुई संध्या
छलकती लालिमा नभ हो गया मधुपात्र जैसे,
जिसे देखो, वही नशे में दिखता
क्षितिज के अंक में है क्लांत दिनकर
तिमिर ने तान ली चादर
अनैतिकता हुई निश्चिंत
गगन उडुगण हुए चिन्तित
रुके कैसे अधोगति!
हुई तत्काल बैठक
बनाया चंद्र को प्रतिनिधि
उजाला सूर्य का लेकर
धरा का बन गया प्रहरी...

चतुर्दिक शांति का शासन,
प्रहर अष्टम अभी बस बीतने को है
कि देखो–
चंद्रिका पसरी धरा पर,
ओस बैठी दूर्वा पर,
भोर की करती प्रतीक्षा
सूर्य ज्यों निकले
चरण उसके पखारे
सकल सर्वस्व वारे।

प्राण दूँ मैं भी उसी पर वार
दीप्त कर दे जो सकल संसार !

3/29, विकास नगर
लखनऊ-226022

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

राकेश कुमार 'दिवाकर'

दुनिया

कभी-कभी
मैं सोचता हूँ।
यह पूरी दुनिया
एक कछुआ है।
जो मंथर गति से
चलती जाती है।
कभी-कभी लगता है
यह दुनिया बाबा की
नाद है।
जिसमें सभी बैल
चबाते हैं भूसा।
कभी-कभी लगता है
यह दुनिया एक जंगल है।
जहाँ हर आदमी लड़ रहा है,
हार रहा है, जीत रहा है।

आदमी लड़ता है जोर भर
और इस दुनिया को थोड़ा सा बदल देता है।
कभी-कभी लगता है
कि, आदमी सोचता है
खुराफात की बातें।
और ज़ोर आजमाइश करता है,
इस रस्सा-कशी में
थोड़ी बदल जाती है
यह दुनिया।

गाँव ने भागने से इंकार कर दिया

हालांकि मेरा मन तो
गाँव में ही बसता है,
पर मैं कोशिश कर रहा हूँ
शहर में एक घर बना लूँ।
खैर मेरे दोस्तो
यह कोई बड़ी बात
नहीं है।
नहीं है कोई महत्त्वपूर्ण बात,
क्योंकि क्या कभी मिला है,
किसी को अपनी मर्जी का शांत जीवन।

चूंकि दुनियादारी यह थी
कि हर गाँव भाग रहा था
शहर की ओर।
और सरकारें उजाड़ रही थी फुटपाथ
क्योंकि गाँव शहर में कूड़े की तरह आ रहा था।
गाँव फैल रहा था
शहर में बीमारी की तरह।
और फिर शहर से कुत्ते की तरह
भगाया जा रहा था,
खदेड़ा जा रहा था गाँव।
ग्रामीण विकास विभाग
दिन-रात लगा था
गाँव के विकास में,
पर गाँव उजड़ता जा रहा था
और सरकार चमकती जा रही थी।
खैर जनक्रांति के अंत की घोषणा हो चुकी थी
इस इक्कीसवीं सदी में
दुनिया ग्लोबल हो चुकी थी ।
और इस चमक में
चौंधिया गई थी पूरी दुनिया।
मगर मित्रो,
यह चमक अचानक
चूर-चूर हो गयी।
और तो और
एक गाँव ने अपने जगह से
भागने से इंकार कर दिया।
बस गजब हो गया मित्रो
इतिहास फिर से जी उठा
परवाज़ करने लगे लड़ाकू विमान।
दौड़ पड़ी सेना
कान खड़े हो गये प्रधानमंत्री के।
बात ठन गयी
यह ठनना जारी है,
इस देश के एक गाँव ने
भागने से इंकार कर दिया।

द्वारा-मिथलेश सिंह
कब्रिस्तान के पास,
धोबीघाट, अनाईठ, आरा बिहार-802301

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ

किरण अग्रवाल

अखबार

सुबह-सुबह ही अखबार वाला
सीढ़ियों पर फेंक जाता है अखबार
मैं झुकती हूँ अखबार उठाने के लिए
और डरकर दो क़दम पीछे हट जाती हूँ
अखबार में आग लगी हुई है
मैं फिर बढ़ती हूँ आगे
झुककर एक कोने से पकड़कर उठाती हूँ अखबार
सीढ़ियों पर पटक-पटककर बुझाती हूँ उसकी आग
और तब उसे ले जाती हूँ भीतर ड्राइंगरूम में
और चाय की चुस्कियों के साथ
देखती हूँ हेड लाइन्स
मैं चकित हूँ
कि कैसे जब गुजरात जलता है
या आसमान सुलगता है
या सीमा पर चलती हैं गोलियाँ
या बम के एक धमाके से चिथड़ों में बदल जाती हैं
खेलती-खाती ज़िंदगी
आग की लपटें तुरंत पहुँच जाती हैं अखबारों में
और अखबारों से मुझतक
लेकिन उतनी ही जल्दी
यूँ शांत हो जाती हैं वे लपटें
कि कोई कह भी नहीं सकता
कि अभी-अभी अखबार में लगी हुई थी आग
आदमी का दिल भी तो कहीं एक अखबार नहीं हो गया आज
जो हर सुबह भूल जाता है पहले दिन की इबारतें...!

निःसंगता

धीरे-धीरे उतरती है निःसंगता
मन की दरारों में
जैसे टार्टर दाँतों में

नींद के बारे में

मैं करवटें बदलती हूँ
और नींद मेरी ओर पीठ करके लेट जाती है
मैं उसे अपनी ओर खींचना चाहती हूँ
मैं उसका मुँह अपनी ओर कर लेना चाहती हूँ
और वह मेरा हाथ झटक दूर जा खड़ी होती है
साम-दाम-दंड-भेद सारे नुस्खे आजमा लिये हैं मैंने
उसे अपना बनाने के लिये
लेकिन नींद अब भी मुझसे कोसों दूर है

मैंने छोड़ दिया है नींद की चिरौरी करना
मैंने छोड़ दिया है नींद के पीछे भागना
मैं नहीं सोच रही हूँ नींद के बारे में अब

भरी हुई बस में

मेरा बच्चा
जिसने अभी आँखें भी नहीं खोली हैं/ इस दुनिया में
व्याकुल हो जाता है भरी हुई बस में
वह घुमाता है अपना सिर इधर से उधर
उधर से इधर
चुटकी भर साँस लेने के लिये

मेरा बच्चा
जो अभी से संघर्ष करना सीख रहा है ज़िंदगी से
भरी हुई बस में
कराह उठता है और भींच लेता है अपनी मुट्ठियाँ
जब कई अदद हाथ
मेरे ज़िस्म को नोचने के लिये बढ़ते हैं मेरी ओर

वह चाहता है
अभी निकल आए पेट से बाहर
और कुचल दे उन बढ़े हुए हाथों को
वह चाहता है
अभी निकल आए पेट से बाहर
और नोच ले उन धृष्ट आँखों को
वह चाहता है
अभी निकल आए पेट से बाहर
और ध्वस्त कर दे उनके नापाक इरादे

कल जन्म लेगा मेरा बच्चा
वह एक-एक अपराधी को ढूँढ निकालेगा
और मौत के घाट उतार देगा अपराध को

कल जन्म लेगा मेरा बच्चा
और बचाएगा अपनी माँ को आतंकियों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसेरा

इंदिरा राय

कमरा भरा था—पुरुषों से, स्त्रियों से। फ़र्श पर बिछी दरी अध मैली थी, बीच-बीच में तेल के धूमिल धब्बे भी थे—टेन्ट हाउस की हैसियत छोटी होगी। कम दाम से सप्लाई प्राप्त करने पर ग्राहक कुछ कह सकता है? वैसे यह अवसर यह सब देखने-परखने का न था। लोग आते, परमेश्वर वर्मा भी तस्वीर के समक्ष सिर झुकाते और बैठ जाते। उदासी का मुखौटा सबके चेहरे पर। पूरब की तरफ़ चौकी पर रखी थी तस्वीर-परमेश्वर वर्मा की युवावस्था की—फ्रेम नया था, चमचमा रहा था। तस्वीर में जो मुस्कुराते हुए परमेश्वर वर्मा थे, उनका रूप विगत कुछ वर्षों के परमेश्वर वर्मा से भिन्न था।

थालियों में पूजा का सामान—फूलमाला, अक्षत, चंदन, हल्दी, जनेऊ, धोतियों का जोड़ा, बिस्तर का सामान, बर्तन—सभी कुछ नया। बड़े से दीपदान में घी का दीपक जल रहा था। अगरबत्ती का धुआँ बल खाता कमरे की छत से टकराकर चारों तरफ़ घूमकर बाहर निकलने का रास्ता तलाश रहा था। एकाध खाँसी की आवाज़। आँगन से आती तेरहवीं के भोज की सुगंध, बीच-बीच में पंडित की आवाज़, "ऐसे पिंड बनाइए... अब इसे पत्तल पर रखिए... हाँ, ठीक है। अब हाथ में जल लें, फूल अक्षत भी। अब संकल्प करिए..."

प्रकाश ने फूल-अक्षत हाथ में ले लिये। पंडित ने लोटे से जल की कुछ बूँदे उनकी हथेली पर डालीं।

हाँ, अब संकल्प लें... अहम् प्रकाश वर्मा काश्यप गोत्रोत्पन्न अपने स्वर्गवासी पिता की आत्मा की शांति के लिए..." पंडित के शेष शब्द बुदबुदाहट में बदल गये। स्पष्ट हुए अंतिम कुछ शब्द—यहाँ एक सौ एक रुपये रखें।"

हल्दी, चंदन, जनेऊ, वस्त्र, बर्तन बारी-बारी से तस्वीर से छुलाकर पिंड पर रखवा रहे थे पंडित जी।

अनुष्ठान के शब्द अस्पष्ट थे... स्पष्ट होता था एक वाक्य—"यहाँ एक सौ एक रुपया चढ़ाइए।"

प्रकाश ने घुटने को सहलाया। याद नहीं आ रहा है, पिछली बार कब धरती पर बैठे थे। धोती पहली बार पहनी है। दसवें के दिन केशों को छँटवाया था, मुँडाया नहीं। किसी ने कुछ कहा भी नहीं। कुछ दिनों बाद अमेरिका वापस लौटना है। मुँडा सिर देखने वालों की निगाह ठिठकेगी...आते समय पूरे रास्ते बचपन से बड़े होने की यादों के बीच एक बात मन में बार-बार उभर आती, केशों का का मुँडवाना....

भारत में भी सब कुछ कितना बदल गया है—सुना करते थे, वहाँ पर विश्वास नहीं होता था... किंतु दसवें के दिन नाई ने स्वयं पूछा—"बाल छोटे कर दूँ या मुँडवाएँगे?" राहत की साँस ली थी प्रकाश ने।

बगल में रखे मनीबैग से नोटों की गड्डी झाँक रही थी।

"लगता है, पंडित जी पूरा मनीबैग खाली करवा कर रहेंगे," पीछे से किसी ने धीमे से कहा।

युवा पंडित ने सुन लिया। क्रोध से पीछे मुड़कर देखा, "किसने कहा... आजकल लोगों में श्रद्धा नहीं रही। श्राद्ध श्रद्धा से संपन्न होता है। आप जैसे संपन्न पुत्र के पिता की श्राद्ध-क्रिया पूरे विधि-विधान से होनी चाहिए, यही सोच कर.... आप कहते, तो मैं कम में कर देता। पूजा तो हर स्तर के लोगों के लिए हम लोग करते हैं। दक्षिणा सवा रुपये से लेकर ग्यारह सौ तक की होती है।"

पंडित युवा था, शास्त्री की परीक्षा पास करने के बाद अब आचार्य की परीक्षा की तैयारी कर रहा था। उसका स्वाभिमान चोट खाकर आहत हो गया... पोंगा पंडित नहीं है वह। अब सब लोग चुप थे, पंडित की बात में सचाई थी। तीन बेटों के पिता थे परमेश्वर वर्मा। बेटों को शिक्षा दी, योग्य बनाया, भरपूर जीवन जिया। बुढ़ापे और बीमारी का गठजोड़ अस्वाभाविक नहीं, ऐसे में मृत्यु, जीवन की स्वाभाविक परिणति...

दीवार से सटी बैठी थी श्यामा... गोरे-चिट्टे मुँह पर साड़ी जैसी सलवटें, झुकी पलकों के पीछे आँखें... न जाने क्या तैर रहा था उनमें... अतीत के खंडहर, भविष्य के अस्पष्ट मोड़... मौत की सच्चाई।

"ऐसे चुप्पी मत साधो, रो लो... बहुत सेवा की तुमने... सबको जाना है आगे पीछे... अपने बेटों को देखो..." आने वाले की विवशता... ऐसे अवसर पर शब्द गिने-चुने होते हैं... बातें ऊपर से गुज़री जा रही थीं। इस वक़्त श्यामा की चाहत थी थोड़े-से अकेलेपन की, थोड़े-से सन्नाटे की... श्यामा सोचना चाहती है, सोच नहीं पाती, सारी सोच धुँधली होकर अस्पष्ट, दिशाहीन, भटकती हुई दम तोड़ रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थकान बोझ बनकर देह पर, मन पर और आत्मा पर हावी थी। परमेश्वर बाबू की पार्थिव देह जहाँ रखी गयी थी, तेरह दिनों तक दीपक जलाये रखना था... पत्नी का अंतिम कर्तव्य...

ये तेरह दिन ही क्यों... गत तीन वर्ष से रात-दिन का आना-जाना, मौसम का बदलाव—कुछ भी उन्हें छू नहीं पाता था। अच्छा-भला मनुष्य सत्तर वर्ष की अवस्था तक पूरी तरह सक्रिय... पैरेलेटिक स्ट्रोक ने कैसे सब कुछ बदल दिया। मरीज़ की ही अकेले नहीं, तीमारदार की दिनचर्या भी बदल जाती है। चलती-फिरती ज़िंदगी लड़खड़ा गयी थी। बेटे तीन—एक अमेरिका में, एक दिल्ली में, एक भोपाल में।

वह रात भी पिछली हज़ार रातों जैसी थी—अधनींदी, अलसायी, किंतु चौकस।

"नींद नहीं आ रही है, टी.वी. ऑन करो... वाल्यूम धीरे.. उँह, अब इतने धीरे भी नहीं... अस्पष्ट शब्दों के टुकड़े... "बेगार टालती हो... मन नहीं लगता... किसी को मेरी क्या परवाह... बिस्तर गीला हो गया, चादर बदलो.... नहीं, जिह्वा पर भी स्ट्रोक का प्रभाव था। स्पष्ट बोल नहीं पाते थे... गत पैंतालीस वर्षों से उनके शब्द-विन्यास, वाक्यों से परिचित थी... चेहरे की भाव-भंगिमा और अस्पष्ट शब्द भी उनकी समझ में आ जाते। पूरी रात टी.वी. ऑन-ऑफ़ करते, बेड पेन लगाते-हटाते, गीली चादर समेटते-बदलते बीत जाती।

आकाश के बदलते रंगों में जब तारों की चमक समा जाती, भोर की चिड़िया टेर देने लगती-परमेश्वर बाबू को नींद आ जाती। मीठी, सुहावनी नींद....चेहरा इतना शांत जैसे कभी कोई तकलीफ़ हुई ही न हो। श्यामा को अपनी तंद्रा को धकिया कर भगाना पड़ता। दिन के सारे काम उन्हें बुलाते—नहाना-धोना, पूजा-पाठ, घर की साफ़-सफ़ाई, खाना बनाना। सारे कामों के लिए दो बाई थीं, परंतु नागा करना जन्मसिद्ध अधिकार—कभी एक, कभी दोनों।

"मिसेज वर्मा ने बहुत सेवा की... स्त्री-धर्म निभाया, अब बाक़ी ज़िंदगी..."

श्यामा को सहानुभूति लिजलिजी लग रही थी। सोचना चाहती है—बच्चों के विषय में। अपने विषय में सोच भी जैसे स्ट्रोक से आक्रांत हो गयी हो।

प्रकाश ने माँ को देखा। पास आने में कैसी तो झिझक महसूस हो रही है, क्यों? अंदर का आवेग उमड़-घुमड़कर थम जाता है। यहाँ आने पर माँ उनकी छाती से लग गयी थी—निश्शब्द, निढाल। बिछोह के आँसू कब के उफन-उफनकर चुक गये थे। प्रकाश की आँखें भी नम थीं। भावनाओं के वेग को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं थे। वे स्वयं को छिपाते रहे हैं अपने आप से, माँ से और भाइयों से भी। उनके व्यंग्य-वाणों से अनजाने नहीं हैं।

बरस-दर-बरस बीतते गये, आना चाहकर भी नहीं आ पाये। पहले पापा मना करते थे—"कुछ वर्ष वहाँ कमा लो, अच्छी तरह जाओ। आने-जाने में कितना खर्च होता है!"

पापा का एक सपना था, नगर के सम्मानित लोगों में उनकी गणना हो। बीसवीं शती में संपन्नता, वह भी मझोले शहर में गिने-चुने लोगों तक ही सीमित थी। पहली बार जाने के पाँच वर्ष बाद भारत लौटे थे, विवाह के लिए। तब तक घर दुमंज़िला बन चुका था। समाज में प्रतिष्ठा बढ़ चुकी थी।

विजी का जन्म कनाडा में हुआ था, वहीं पली-बढ़ी और शिक्षा प्राप्त की थी। उसके माता-पिता को अपनी जन्मभूमि से बेहद लगाव था और वे भारतीय लड़का ही चाहते थे अपनी बेटी के लिए। विवाह करने के लिए वे यहाँ आये। उस समय से विजी जो बिदककर लौटी, तो आने का नाम नहीं—"क्या रखा है इंडिया में... क्या करेंगे? डॉलर ही न चाहिए उन लोगों को... वह तो तुम बराबर भेजते रहते हो।"

यह ठीक है कि पापा की बीमारी का ख़र्च उन्होंने भेजा, पर शायद माँ तो कभी उन्हें डॉलर से नहीं आँकती थीं। वे तो उनके अमेरिका में जॉब लेने के भी विरोध में थीं—"इंजीनियरिंग पास है मेरा बेटा, क्या भारत में नौकरी नहीं मिलेगी?"

पर, पापा की महत्वाकांक्षा? नहीं पापा ही नहीं, क्या उनके मन में इच्छा नहीं थी विदेश जाने की, दुनियाँ देखने की, संपन्न होने की, नाम कमाने की?

पापा के स्ट्रोक की सूचना पर भी वे नहीं आ सके थे। उन दिनों अमेरिका में रिसेशन का दौर था, नौकरियाँ छूट रही थीं। कितने भारतीयों के काम छूट गये थे। ऐसे में छुट्टी लेने का जोख़िम नहीं उठाना चाहा था।

"अम्मा, तुम अमेरिका आ सकोगी?"

एक चुप्पी न जाने कितने प्रश्नों के उत्तर अपने में समाहित किये है।

"प्रदीप, तुम दिल्ली में हो। अम्मा का पासपोर्ट बनवा देना। विजी के मामा एक्सटर्नल अफ़ेयर मिनिस्ट्री में हैं, सुविधा रहेगी।"

"पासपोर्ट? वह तो अम्मा-पापा ने उसी समय बनवा लिया था, जब आपने यू.एस. में जॉब ली थी।"

"उसी को रिन्यू करा लेना।"

"क्या लाभ, जाना-वाना तो है नहीं। सिर्फ़ पासपोर्ट से ही नहीं जा सकेंगी, रुपये भी लगेंगे। मेरे पास तो हैं नहीं। अम्मा के पास हैं क्या?... हों, तो मेरा भी कुछ काम चले," प्रदीप के शब्दों में तल्ख़ी थी।

"टिकट मैं भेजूँगा," प्रकाश ने धीमे से कहा।

"उस समय भी यही बात कही थी।"

प्रकाश से डेढ़ वर्ष छोटे हैं प्रदीप... बचपन से दोनों में कभी नहीं पटी।

जिस कठिनाई से, जिस अपेक्षा से पापा ने उन्हें इंजीनियरिंग की शिक्षा दी थी, क्या वे उसे पूरा कर पाये। सब लोग, विशेषकर प्रदीप की बातों पर चुप रह जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पासपोर्ट मैं रिन्यू करवा दूँगा," मुन्ना ने अपनी गुमनाम उपस्थिति दर्ज़ करवायी।

"अच्छा है अम्मा जी, आप अमेरिका हो आइए, मन बदल जाएगा," प्रदीप की पत्नी सुनीता ने कहा, "तीन वर्ष से तो. .."

विजी हिन्दी ठीक से बोल नहीं पाती, किंतु समझ लेती है। घर में मम्मी-पापा हिन्दी में ही बात करते आये हैं।

"नो ईज़ी... अमेरिका में लैंग्वेज प्राब्लम, ओल्ड एज हेल्थ इन्श्योरेन्स प्रॉब्लम, मेडिकल ट्रीटमेंट वेरी कॉस्टली... इट्स वेरी डिफ़िकल्ट..." विजी को भारतीयों की तरह घुमा-फिरा कर बात करना नहीं आता।

सुनीता बुदबुदायी, स्पष्ट शब्दों में—"दिल्ली में रहना आसान है क्या, छोटा-सा दो कमरों का फ़्लैट... वेतन अमेरिका जितना नहीं... महँगाई की कोई सीमा नहीं..."

बातें और सिर्फ़ बातें...

"मैंने भोपाल में पार्टी के महासचिव से बात कर ली है। मैं यहीं के ऑफ़िस का काम देखूँगा," मुन्ना ने इस बार पुनः बिखरे सूत्रों को सहेज दिया। श्यामा की सूखी आँखों में कुछ किरकिराया, जैसे बालू पड़ गयी हो।

मुन्ना अपने पिता की कसौटी पर कभी खरे नहीं उतरे। छात्र जीवन से वहाँ की पॉलिटिक्स में जो पड़े, तो जैसे-तैसे ही परीक्षा पास की। नौकरी की कोई गुंजाइश नहीं। परमेश्वर बाबू बिगड़ते—"कम से कम छोटा-मोटा व्यवसाय कर ले, बिल्डिंग कॉन्ट्रेक्टर बन जाए। रुपयों की कमी नहीं है, नेताओं की चमचाई... यही करते रह जाएँगे।" परंतु, वह मुन्ना कैसे, जो पिता की बातों पर ध्यान दें... आज इस क्षण वह सबसे निकट आ गये हैं माँ के...

बी-5, पैराडाइज़ नेक्स्ट
तूबराहल्ली, वर्थुर रोड
बेंगलूरू-560066

कविता

औरत

सुरैया ख़ान

मैं औरत हूँ
नहीं है मेरे पास
दोहरे चरित्र की वह भूमिका
जिसकी अक्सर
मुझसे माँग की जाती है
घर की माँग, बाज़ार की माँग
दफ़्तर की माँग, समाज की माँग
ससुराल की माँग
और मेरे ख़ुद अपने,
मायके की माँग

क्यों हर बार
मेरे अस्तित्त्व पर,
प्रश्नचिह्न के हल से
बार-बार वार किये जाते हैं
मैं जो हूँ
उससे इतर, उगलवाया जाता है
मैं जो हूँ, हूँ
जो नहीं हूँ, नहीं हूँ
मैं सीता-सावित्री के साँचे में
फिट नहीं बैठना चाहती
मीरा भी नहीं होना चाहती

मैं साँस लेती हूँ
महसूस करती हूँ
मूर्ति बनकर पुजना नहीं चाहती
किसी की बेटी, बहन, पत्नी
या सिर्फ़ माँ बनना
मुझे स्वीकार नहीं
फ़लां की लड़की, फ़लां की पत्नी
यह संबोधन नहीं चाहिए
उपनाम नहीं बदलना मुझे
मेरे नाम से पुकारो
मेरी पहचान से पहचानो

मुझे आरोपों से, संस्कारों से
बंधनों से, रिश्तों से मुक्त होना है,
मुझे अपनापन और प्यार चाहिए
किसी के अहं और ईर्ष्या से
मुझे कोई लेना-देना नहीं
हर क्षेत्र में आजमा कर
देख चुकी हूँ अपने हाथ
अब और आज़माइश को
तैयार नहीं हूँ मैं

इसलिए आज, अभी और
इसी वक़्त
मैं स्वयं को हर बंधन से
मुक्त होने की
स्वतंत्र जीने की
मात्र योनि नहीं बनने की
घोषणा करती हूँ
क्योंकि मैं...
मैं औरत हूँ।

प्रवक्ता, ज़ाकिर हुसैन कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

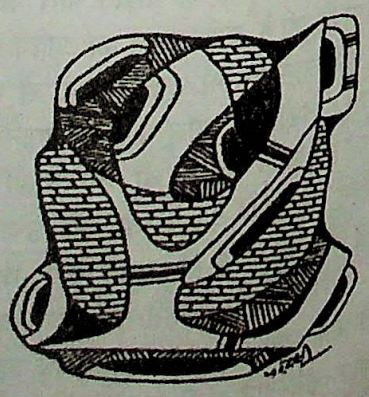

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

राम मेश्राम

1

कविता तमाम नस्र को दिल मानता नहीं,
मैं झूठ बोलने की कला जानता नहीं।

क्या-क्या करूँ कि, लोग मुझे आधुनिक कहें
लफ़्ज़ों का तेल रेत से मैं छानता नहीं।

छपवा ले अपने नाम से, चोरी नहीं है ये,
कविता किसी की अब कोई पहिचानता नहीं।

ये छन्द, बह्र और चुनौती विचार की
आसान का गुलाम जहन, ध्यानता नहीं।

खेमे के कोहिनूर तुझे दूर से सलाम
पन्डों को पूजने की ये दिल ठानता नहीं।

पाला बदल के क्यूँ न कहूँ मैं भी इक ग़ज़ल
अपना ही ख़ौफ़, अपना कहा मानता नहीं।

2

स्याह क्यूँ कह दिया, घोर एतराज़ है
रात 'काली' की 'गाली' से नाराज़ है।

ख़ून दुश्मन का पी ले तो राहत मिले
उसका बोहेमियन जैसा अंदाज़ है।

ये हिमाकत कि कहता है 'काली' मुझे
तुझपे 'जाहिर' मेरा कौन सा राज़ है।

हम तो शोलों पे नाचे बहुत जोर से
कौन बोला, 'ये बेपर की परवाज़ है'।

आप रोए नहीं, सुनके आहें मेरी
क्या मेरी आह नाटक का आगाज़ है?

शोहरतों के समन्दर तेरा क्या करूँ
आस्माँ चूम कर भी तू नासाज़ है।

पाप के बाप को आप ही जानिए
हम वो करते हैं, जो दिल की आवाज़ है।

हाय उस्ताद, तूने बिगाड़ा हमें
ये तेरी रहनुमाई का एजाज़ है।

3

सर में सौदा और कुछ था, मुँह से निकला और कुछ
गालियों ने कर दिया कोताह-किस्सा और कुछ।

कौन से कमरे में इज़्जत जा के चेहरा ढाँप ले,
अनबिके संसार के भीतर लजाया और कुछ।

आपने बेची ख़बर, ख़बरों ने बेचा आपको
मीडिया ने आप-हम-सबको परोसा और कुछ।

लूट इनकी, राज उनका, वोट ही तो आपका
और आगे मोहतरम देखें तमाशा और कुछ।

छा गया पश्चिम का बादल नाम है वैश्वीकरण
इस खुले हाथों लुटी दौलत का तोहफा और कुछ।

वाकया था और कुछ, अफवाह फैली और कुछ
फिर दलालों की दलाली ने दलेला और कुछ।

कर चुके थे कुछ महाजन, क्यूँ न हम भी वह करें
देश-पूजा, भेंट-पूजा, पेट-पूजा और कुछ।

खुल नहीं पाए दरीचे अटकलों के ज़ोर से
तहनशीं था, राज़े-पोशीदा में घपला और कुछ।

धन्य गुरुघन्टाल! 'औरत-मुक्ति' का दर्शन तेरा
स्वर्ग था कुछ और ही, तूने दिखाया और कुछ।

4. गीतिका

राम तेरे बन्दों से, काँपते हुए
जिया किए राम-राम जापते हुए।

जीवन के बोझ तले दबे-कुटे हम
दुनिया भर रंज-ग़म अलापते हुए।

दूर खड़ी खुशियों को टोह-टोहकर
हासिल का इन्च-इन्च नापते हुए।

फ़िरा किए इज़्ज़त का ताज लिए हम
आर्टनुमा थिगड़ों से ढाँकते हुए।

भगवे, या नीले या लाल देश में
रंग जा रे सत्ता को छापते हुए।

शोहरत के चार-चाँद ढल गए हुजूर
राजा को जब-तब सन्तापते हुए।

ग़ालिब के हम ही तो चचा हैं हुजूर
करते हैं उस्तादी हाँफते हुए।

एफ-155/29
शिवाजी नगर, भोपाल-462016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक 'अंजुम' की चार ग़ज़लें

: 1 :

ये ज़मीं साथ रहे, आसमान साथ रहे,
मैं सच कहूँ, और मेरी ज़बान साथ रहे।

वो शख़्स बढ़ता है जितना भी बुलंदी की तरफ़
बताओ उसको कि उतनी ढलान साथ रहे।

सफ़र की आग सितारों में कहीं खो जाए,
यूँ न हो तुझसे मिलूँ और थकान साथ रहे।

यूँ कबूतर अमन के उसने उड़ाए हर सू,
मगर हमेशः ही तीरो-कमान साथ रहे।

हयात बख़्शी है, मुझको तो वे हुनर भी दे,
करूँ मैं आरती जिस पल अजान साथ रहे।

वो सादगी वो हँसी, वो तेरे थिरकते लब,
मैं घर से दूर रहूँ तेरा गुमान साथ रहे।

नहीं है कौन जो बाज़ार की न जद में हो,
चले है राह पे लेकिन दुकान साथ रहे।

: 2 :

यूँ परवतों से उतरती है शान पानी की,
के गीत छेड़ रही है जुबान पानी की।

ये जो बादल हैं परिन्दे हैं अर्श पर फैले,
या कि निकली है सफ़र पे उड़ान पानी की।

बढ़ी जो प्यास तो दरया ने भी मुँह मोड़ लिया,
लगी है जाल बिछाने दुकान पानी की।

ये कहीं राह में बेसुध न होके गिर जाए,
यूँ बढ़ रही है मुसलसल थकान पानी की।

ये शहर बढ़ रहे हैं ले के क़ातिलों का हुजूम,
मुझे है डर कि ले लें न जान पानी की।

: 3 :

सबको चुभती रही मेरी आवारगी
मुझमें सबसे भली मेरी आवारगी

रंग भरे सजाकर विधाता ने तब
रफ़्ता-रफ़्ता रची मेरी आवारगी

वक़्त ने यूँ तो मुझसे बहुत कुछ लिया
जाने क्यों छोड़ दी मेरी आवारगी

जुल्मतें-जुल्मतें हर तरफ़ जुल्मतें
चाँदनी-चाँदनी मेरी आवारगी

ज़िंदगी की डगर में जो कांटे चुभे
बन गई मखमली मेरी आवारगी

हादसों ने कसर कोई छोड़ी नहीं
मेरी रहबर बनी मेरी आवारगी

: 4 :

लोग देते रहे दुआ यूँ ही
कारवाँ फिर भी लुट गया यूँ ही

तेरी यादें थीं और तनहाई
चाँद देता रहा सदा यूँ ही

तुम पे विश्वास करके जीते थे
हो गए तुम भी बेवफा यूँ ही

एक दुनियाँ उजड़ गई पल में
कर दिया तुमने फैसला यूँ ही

मैंने पूछा कि क्यों नहीं आये?
तुमने मुसका के कह दिया यूँ ही।

संपादक : अभिनव प्रयास
615, ट्रक गेट, कासिमपुर (पावर हाउस), अलीगढ़-202127

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवानदास जैन की ग़ज़लें

1

बाग़े इरम को रोऊँ या जलते शहर को मैं।
मरकर भी अब बचाऊँगा हर इक शजर को मैं।

मजबूरी-ए-हयात को हँस-हँस के टाल दूँ,
लाऊँ कहाँ से ढूँढ़ के ऐसी नज़र को मैं।

ख़ुद अपना चेहरा देख के रोता हूँ आज कल,
अपनी नज़र को कोसूँ कि आईनागर को मैं।

जो बढ़ चुके हैं आगे क़दम मुड़ न पाएँगे,
छालों को मैं दिखाऊँ क्या गर्देसफ़र को मैं।

लाचारगी पे मेरी हँसे तो हँसे जहाँ,
कैसे कहाँ छिपाऊँ मगर चश्मेतर को मैं।

शब भर जली जो शम्आ मेरे दिल के साथ-साथ,
कैसे उसे बुझाऊँ भला अब सहर को मैं।

बीनाई मेरी ले गया लंदन में जा बसा,
गुर्बत को अब मैं तड़पूँ या नूरे नज़र को मैं।

अंकों का मायाजाल लुभाएगा क्या मुझे,
हाँ, मिस्ले ख़ुल्द चाहता हूँ बस सिफ़र को मैं।

शेरों में ढाल देता हूँ सोज़े निहाँ जनाब,
अब शेरियत को रोऊँ क्या उसके असर को मैं।

2

किसी का देख के सुख मैं जलूँ ख़ुदा न करे।
गिला भी अपने दुखों का करूँ ख़ुदा न करे।

अज़ीज़ दोनों गुलो ख़ार हैं मुझे लेकिन,
गुलों के प्यार में अंधा बनूँ ख़ुदा न करे।

किसी की पीर से दिल मेरा मोम-सा पिघले,
मैं आदमी रहूँ, पत्थर बनूँ ख़ुदा न करे।

नज़रनवाज़ नज़ारों को देखकर यारो,
मैं आसमान में उड़ने लगूँ ख़ुदा न करे।

उधर सियासी सितम हैं इधर है लाचारी,
मैं चुप्पी साध के देखा करूँ ख़ुदा न करे।

न कोई ख़ौफ़ न लालच, मुझे नवाज़िश का,
मैं हक़ बयानी से फिर भी डरूँ ख़ुदा न करे।

नहीं है रास कतई भेड़िया धसान मुझे,
ख़ामोश मूँद के आँखें चलूँ ख़ुदा न करे।

सियाहसी बन के रवाँ है कलम में मेरा लहू,
मैं फिर भी बैठा रहूँ सरनिगूँ ख़ुदा न करे।

कलम तू ज़िंदगी मेरी है बन्दगी मेरी,
तेरे बग़ैर मैं ज़िंदा रहूँ ख़ुदा न करे।

3

जितना जी चाहे रुलाले मैं अभी ज़िंदा हूँ,
गर्दिशे वक़्त सता ले मैं अभी ज़िंदा हूँ।

आसमाँ तेरे ख़जाने में हों जितने आँसू,
कर दे तू मेरे हवाले मैं अभी ज़िंदा हूँ।

साक़िया मुझमें निहाँ प्यार का है आबे हयात,
जाम में ज़हर मिलाले मैं अभी ज़िंदा हूँ।

मिन्नतें मेरी तबाही की मनाकर ऐ दोस्त,
और कुछ रोज़ मज़ा ले मैं अभी ज़िंदा हूँ।

मुझको उम्मीद न थी दोस्त यूँ मेहफ़िल-मेहफ़िल,
तू मेरा नाम उछाले मैं अभी ज़िंदा हूँ।

मौत की किससे शनासाई है इस दुनिया में,
मरने वाले की दुआ ले मैं अभी ज़िंदा हूँ।

दम जो टूटा तो चले आएँगे कितने काँधे,
कोई क्यूँ आज सँभाले मैं अभी ज़िंदा हूँ।

मेरे अशआर के फूलों को अभी से दुनिया,
कैसे पलकों पे सजा ले मैं अभी ज़िंदा हूँ।

ख़ौफ़े जुल्मात है क्यूँ मेरा जिगर हाज़िर है,
मिस्ले कंदील जला ले मैं अभी ज़िंदा हूँ।

बी-105, मंगल तीर्थ पार्क
कैनाल के पास, जशोदानगर रोड, मणीनगर (पूर्व)
अहमदाबाद-382445 (गुजरात)

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर सय्यद अहमद खाँ की ज़िंदगी की मुकम्मल पड़ताल

पंकज पराशर

बहुतेरे लोग समय के साथ चलने और समयानुसार बदलने को प्राथमिकता देते हैं, जबकि चंद लोग ऐसे भी पैदा होते हैं जो समय को ही बदल देते हैं। सर सय्यद अहमद खाँ ऐसे व्यक्ति थे, जो दूसरी कोटि में रखे जा सकते हैं। हर महान प्रतिभा की तरह उन्हें भी अपने समकालीनों और तत्कालीन प्रभावशाली व्यक्तियों का बहुत विरोध झेलना पड़ा। उनकी नीयत और उनके मुहिम को संदेह की नज़रों से देखा गया, परंतु वक्त के साथ-साथ उनकी असली छवि निखर कर सामने आई, तो लोगों को एहसास हुआ कि उनके दिल में अपने समाज के लिए कितनी अपार करुणा थी। अपने समाज को शिक्षित और उन्नत बनाने के लिए उन्होंने कितने जतन किए। वक्त बीतने के साथ ही उनके बारे में नई पीढ़ी की जिज्ञासा बढ़ती ही जा रही है। इस लिहाज से प्रो0 शान मुहम्मद की महत्त्वपूर्ण किताब 'सर सय्यद : इतिहास और राजनीति के आईने में' अब तक हिन्दी जानने वालों के लिए सुलभ नहीं थी। इस किताब का हाल ही में हिन्दी रूपांतर प्रकाशित हुआ है। डा0 तसनीम सुहेल ने बहुत मेहनत और लगन से हिन्दी में इस पुस्तक को अनूदित किया है।

अनुवाद के मामले में हिन्दुस्तान में एक रूढ़ परंपरा है कि यहाँ अनुवादक को वह सम्मान, श्रेय और पारिश्रमिक नसीब नहीं होता, जो पश्चिमी देशों के अनुवादकों को सहजता से प्राप्त हो जाता है। शायद इस वजह से भी स्तरीय अनुवाद हमारे यहाँ कम सामने आ पाता है और जो आता है वह अक्सर किसी विद्वान के स्वांतः सुखाय प्रयत्नों के फलस्वरूप ही। उर्दू, फ़ारसी और अरबी में अपार साहित्य ऐसा है जो हिन्दी में सहजता से उपलब्ध नहीं है। इस वजह से बहुत सारे हिन्दी के पाठकों की पहुँच ज्ञान के उन अनुशासनों तक नहीं हो पाती है। तसनीम सुहेल ने हिन्दी के पाठकों की पहुँच ज्ञान के उन अनुशासनों तक नहीं हो पाती है। तसनीम सुहेल ने इस रूढ़ि को भंग कर सर सय्यद पर लिखी इस विद्वतापूर्ण किताब को जिस प्रांजल और सहज हिन्दी में रूपांतरित किया है, वह काबिल-ए-तारीफ़ है। हिन्दी की सहज, स्वाभाविक और आमफहम रूप को पकड़े बग़ैर यह संभव नहीं है कि अनुवाद की भाषा, किताब की मूल भाषा जैसी लगे। इस दृष्टिकोण से अनुवादिका ने बहुत सतर्क होकर और सावधानी से भाषा की आत्मा को पकड़कर रखा है।

उर्दू से हिन्दी अनुवाद में अक्सर एक समस्या यह आती है कि अधिकांश अनुवादक हिन्दी के प्रति इतने 'कांशस' और आग्रही रहते हैं कि भाषा हिन्दुस्तानी भी नहीं रहने देते। जबरन उर्दू, फ़ारसी के शब्दों को हिन्दी में आने से रोकते हैं जबकि दूसरी ओर ऐसे अनुवादक हैं, जो महज लिप्यांतरण को ही अंजाम देकर अनुवादक बन जाते हैं। इन दोनों आधारों पर देखने के बाद तसनीम सुहेल का अनुवाद इस तथ्य की पुष्टि करता है कि वे इन दोनों भाषिक अतिरेकों के प्रति साकांक्ष रही हैं जिसके फलस्वरूप इतिहास और राजनीति की यह किताब कथा-साहित्य जैसी रोचकता को अपने भीतर समाहित कर सकी है। ग़ज़ब की पठनीयता है। पाठक एक बार किताब उठा ले, तो फिर वह एक ही साँस में खत्म करना चाहता है, और यदि आपकी पहले से ही सर सय्यद के बारे में जिज्ञासा हो, तब तो आप और भी डूब जाएँगे इसमें।

अनुवाद संबद्ध भाषा की आधुनिक प्रवृत्तियों से भी गहराई से आबद्ध होता है और लक्ष्य भाषा की सांस्कृतिक, पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर अनुवाद कर्म को निष्पादित करना श्रमसाध्य और जोख़िम भरा होता है। महज भाषा को रूपांतरित करना भर अनुवादक का काम नहीं होता है। तसनीम सुहेल के अनुवाद-कर्म में कथा-साहित्य के कर्म की गहरी पहचान भी दिखाई देती है। शायद इन कारणों से वे अनुवाद जैसे शुष्क कार्यों में पुनर्सृजन करके भाषा और ज्ञान के अनुशासन में भी पठनीयता को बखूबी ध्यान में रखा है। सर सय्यद के बारे में बेहतर मालूमात हासिल करने के लिए प्रो0 शान मोहम्मद की इस किताब को इतनी बेहतर हिन्दी में पेश करके अनुवादिका ने बेहद सराहनीय कार्य किया है।

पुस्तक	: सर सय्यद : इतिहास और राजनीति के आईने में
लेखक	: प्रो0 शान मोहम्मद
अनुवादिका	: डा0 तसनीम सुहेल
प्रकाशक	: अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय प्रेस, अलीगढ़
संस्करण	: 2009
मूल्य	: 250/- रुपये

हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैलाश झा 'किंकर' का ग़ज़ल संग्रह

शब्बीर हसन

'देखकर हैरान हैं सब' कैलाश झा किंकर का दूसरा ग़ज़ल-संग्रह है, जो 2008 में प्रकाशित हुआ है। इस पर किंकर के परिचय से आभास होता है कि किंकर ने हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर रखा है। वे कवि हैं, लेखक हैं, संपादक हैं और साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यकर्ता हैं। इस प्रकार, एक बहुआयामी व्यक्ति हैं और इस अंग्रेज़ी के फैलाव के युग में जनता की भाषा हिन्दी का अलख जगाये हैं। इस ग़ज़ल-संग्रह में कुल 93 ग़ज़लें हैं। इन ग़ज़लों को पढ़ते हुए हिन्दी क्षेत्र की जनता का पूरा चित्र उभर कर सामने आ जाता है। हिन्दी साहित्य में अभी विषय की प्रधानता का युग है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कवि और लेखक प्रस्तुति के महत्त्व से परिचित नहीं हैं। मैं स्वयं एक ऐसा पाठक हूँ, जो ऐसे साहित्य को, जिसमें विषय का धुँधलापन हो, एक अँधेरी गली महसूस करता हूँ, जहाँ न रोशनी होती है और न जीवन। कैलाश झा किंकर की विशेषता है कि उनकी ग़ज़लों में विषयों की भरमार है। मैं यह भी अनुभव करता रहा हूँ कि हमारे जनपद का जो साहित्य है, उसमें विषय काफ़ी हैं। महानगरों के रचनाकार बातें साफ़ ढंग से नहीं कह पाते, बल्कि फ़ॉर्म की उलझनों में पाठकों को उलझा कर रखते हैं। ऐसा क्यों होता है? क्या यह षड्यंत्र है जनता के साथ? यह पाठकों को जन-समस्याओं से दूर करने की साज़िश तो नहीं है?

लेकिन, कैलाश किंकर ने बिना छल-कपट के, बल्कि पूरी ईमानदारी के साथ अपनी ग़ज़लों में समाज के दुख-सुख का चित्रण किया है। जो सादगी उनके व्यक्तित्त्व में है, वही सादगी उनके विषयों की प्रस्तुति में है। उनकी रचनाओं में आम मेहनतकश सिर उठाये नज़र आता है। एक ख़ास बात और है कि उन्होंने अपनी बातों को तोता-मैना, पिता की साइकिल आदि के सहारे नहीं कहा है, बल्कि साफ़-साफ़ कहा है। तमाम विषय मुझे ज़मीन से जुड़े मालूम होते हैं। इन ग़ज़लों के चंद अशआर मुलाहिज़ा फरमाएँ :

मसला न कोई जिसका न हल है मुमकिन
धरती किसान की है फ़सलें किसान लेंगे।

जैसे लगता राजतंत्र हो
सामंतों-सा बोल रहा है।

इन पंक्तियों को पढ़कर मुझे गाँव के किसान-मज़दूर याद आ जाते हैं जो दूसरों का दुख दूर करते हैं और स्वयं सदैव समस्याओं से जूझते रहते हैं। कवि ने इन बातों को बिल्कुल कलात्मक अंदाज़ में कहा है, जबकि इन बातों को हम अपनी नवजवानी के ज़माने में यूँ कहते थे—"जो जोतेगा, वह काटेगा।"

कवि ने केवल आर्थिक प्रश्नों को नहीं उभारा है। कैलाश झा किंकर की शायरी का कैनवास बहुत फैला हुआ है। उनके पास विभिन्न प्रकार के अनुभव हैं। आज मौलवी, साधु किस प्रकार संस्था बनकर लोगों को छल रहे हैं, यह बात किसी से अब छिपी नहीं रह गयी है।

संत-सा लग रहा है ऊपर से
पास अपने बिठाके लूटेगा

देवता, रहबर, फ़रिश्ता उसको
क्या - क्या समझा था कमीना निकला।

जनता के दुख अथाह हैं। कवि को अहसास है कि अब ग़म मिले, तो दरिया भर जाएगा। किसी का अपराधी होना अच्छी बात नहीं है, परंतु उसके अपराधी बनने के सामाजिक कारण होते हैं। हम अपराधी से घृणा तो करते हैं, परंतु उसके बनने के कारणों पर ग़ौर नहीं करते। नारी की समस्याएँ भी कवि को महत्त्वपूर्ण लगती हैं। रोज़ तरह-तरह के क़ानून बन रहे हैं, फिर भी पुरुष-प्रधान समाज में नारी का शोषण समाप्त नहीं होता। जिनके पास सत्ता है और जो अहले हुक़्म हैं, वे दुनिया के मालिक हैं। वही ज़ुल्म और अन्याय के मालिक हैं। ये सारे विषय और अन्य बहुत से विषय कैलाश झा किंकर की रचनाओं में मौजूद हैं। अब इन विषयों को कवि के शब्दों में सुनें :

ग़मों से चूर हैं अब और ज़ख़्म देना मत
बहेगी आँख तो दरिया अथाह कर देगी।

आदमी जब भी सताया जाएगा।
एक अपराधी बढ़ाया जाएगा।

इतने क़ानून बन गये लेकिन
पिस रही आज भी तो नारी है।

किंकर की रचनाएँ यथार्थवादी हैं। इनमें सामाजिक यथार्थ को बयान किया गया है। किंकर की ग़ज़लें आंदोलन में संघर्षरत जनता को शक्ति देने वाली हैं। किंकर जैसे रचनाकारों से एक प्रश्न है कि साहित्यकार केवल तमाशागर है और दुनिया को तमाशा दिखाकर अपना कार्य समाप्त समझता है या दुनिया की समस्याओं से जूझता भी है? यह प्रश्न आज तमाम ऐसे रचनाकारों से पाठकगण पूछ रहे हैं। मेरी ओर से भी यह प्रश्न विनम्रतापूर्वक 'देखकर हैरान हैं सब' के कवि से है।

अब कैलाश झा किंकर की ग़ज़लों के फ़ॉर्म के बारे में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद बातें कहना चाहूँगा। इसलिए कि अच्छे फ़ॉर्म के बिना अच्छे विचार भी बेकार हैं। शिल्प और कथ्य से ही रचना का निर्माण होता है। यदि शिल्प देह है, तो कथ्य आत्मा। दोनों का सुंदर होना आवश्यक है। इन पैमानों पर विचार करने के बाद किंकर की ग़ज़लों में छोटी बहर वाली ग़ज़लें ज़्यादा सफल हैं। इनमें लयात्मकता है और विचारों की स्पष्टता भी है। ग़ज़लगोई में एक ऊँचाई प्राप्त करने के बाद किंकर को अगली ऊँचाई तय करने के लिए मेहनत की ज़रूरत है। अतः, धरती की संवेदनाओं से जुड़े कवि कैलाश झा किंकर से आशा की जाती है कि वे ख़ूब से ख़ूबतर की तलाश में सदैव अग्रसर रहेंगे। किंकर की छोटी बहर वाली बहुत सारी अच्छी ग़ज़लों में एक प्यारी-सी ग़ज़ल के साथ अपनी बातें समाप्त करता हूँ :

आग दिल में जलाकर रखें/तल्ख़ियों को बचाकररखें।
गिड़गिड़ाने से क्या फ़ायदा/अपने सिर को उड़ाकर रखें।
जुस्तजू के लिए हर घड़ी /पाँव आगे बढ़ाकर रखें।
हम ग़लत के नहीं पक्ष में/हर किसी को बताकर रखें।
कब, कहाँ, किससे पाला पड़े/हौसला तो बनाकर रखें।

समीक्षित कृति : देखकर हैरान हैं सब
कवि : कैलाश झा किंकर

विभागाध्यक्ष, वनस्पतिशास्त्र विभाग, आर0 डी0 एन्ड डी0 जे0 कॉलेज, मुंगेर, बिहार

असुंदर यात्रा के सुंदर संस्मरण और चित्र

अश्विनी कुमार शुक्ल

अनगिनत कविता-संग्रह आँखों के सामने से गुज़रे हैं, किंतु अनेक पुरस्कार प्राप्त युवा-कवि जितेंद्र श्रीवास्तव के 'असुंदर सुंदर' ने अपने शीर्षक और आवरण-सज्जा से प्रथमदृष्ट्या ही चित्त को आकर्षित किया है। यह संयोग की बात है कि 'असुंदर सुंदर' के आने से कुछ पहले जितेंद्र श्रीवास्तव की एक छोटी किंतु अर्थपूर्ण कविता 'वागर्थ' में देखने को मिली थी, जो स्व. भवानी प्रसाद मिश्र को याद करते हुए लिखी गयी थी। भवानी प्रसाद मिश्र नयी कविता के सशक्त स्तंभ तो हैं ही, अपनी ईमानदारी और साफ़गोई के लिए भी प्रसिद्ध हैं। जितेंद्र श्रीवास्तव की कविता 'अपनों के मन का' भवानी प्रसाद मिश्र से जुड़कर एक नयी अभिव्यंजना दे जाती है और 'असुंदर सुंदर' में संगृहीत कविताओं की समग्र दृष्टि की ओर संकेत भी कर जाती है। इसीलिए, 'अपनों के मन का' का पुनर्पाठ अनिवार्य हो जाता है—"मैं कवि नहीं झूठ फ़रेब का/ रुपया पैसा सोने चाँदी का/ मैं कवि हूँ जीवन का, सपनों का/उजास भरी आँखों का/मैं कवि हूँ उन होंठों का/जिनको काट गयी है चैती पुरवा/ मैं कवि हूँ उन कंधों का/ जो घुस गये हैं बोझ उठाते/ मैं कवि हूँ/ हूँ कवि उनका/ जिनको नहीं मयस्सर नींद आँख भर/ नहीं मयस्सर अन्न आँत भर/ मैं कवि हूँ/ हाँ, मैं कवि हूँ/ उन उदास खेतों के दुःख का/ जिनको सींच रहे हैं आँखों के जल/ मैं कवि हूँ उन हाथों का/ जो नहीं पड़े चुपचाप/जो नहीं काटते गला किसी का/ जो बने ओट हैं किसी फटी जेब का/ मैं कवि हूँ/ जी हाँ, कवि हूँ/अपने मन का/ अपनों के मन का।"

आलोच्य कवि के कथ्य का फलक विस्तृत है। घर-परिवार से लेकर गाँव-गली, क़स्बे, शहर घूमता हुआ कवि यथार्थ-जगत् का कोना-कोना झाँकता है और अपने-अपनों के माध्यम से सबकी बात करता है। व्यष्टिवादी चिंतन कविता की समाप्ति तक हौले-से समष्टिवादी चिंतन में परिवर्तित हो जाता है। संग्रह की पहली कविता 'एक सोते हुए आदमी को देखकर' इस चिंतन का उत्कृष्ट उदाहरण है। संग्रह की अन्य अनेक कविताओं की तरह यह एक संस्मरणात्मक कविता है और इसका कथ्य कवि की बस-यात्रा के दौरान एक सोते हुए यात्री को देखकर निर्मित होता है। कवि यात्रा करते हुए उसके सोने के अनेक संभावित कारणों की कल्पना और संवेदनात्मक विश्लेषण करता है तथा अंत में कह उठता है :

इसलिए इस समय/ उचित यही है/ कि उसकी नींद को/उसके पास छोड़कर/ मुझे लौटना चाहिए अपनी नींद/ और न चाहते हुए भी ज़रूर सोचना चाहिए/ कि बस तो बस है/ आख़िर नींद रात भर क्यों नहीं आती

(पृष्ठ-13)

आलोच्य कवि के इस संग्रह की कविताओं का वर्गीकरण मोटे तौर पर चार शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है। पहले, आत्मकथात्मक, जो संस्मरणों पर आधारित है, दूसरे पारिवारिक, जो स्वस्थ पारिवारिक भावनाओं और बेटियों के प्रति गहरे लगाव को दर्शाती हैं; तीसरे, वर्णनात्मक, जिनमें देश-काल से जुड़कर संवेदनाओं की गहरी प्रतीति ज़ाहिर होती है और चौथे, हाइकू प्रतिदर्श की, जो कम शब्दों में बहुत कुछ कह जाती हैं।

'मैं इक चिड़िया हूँ पापा', 'बिल्कुल तुम्हारी तरह', 'जितनी हँसी तुम्हारे होंठों पर', 'जीवन के वसंत की धूप', 'ओ, मेरी बेटी' याद रखना', 'मेरी प्रतीक्षा से लंबी एक प्रतीक्षा' और 'दिल्ली में बेना' दूसरे वर्ग की कविताएँ हैं, जिनमें पारिवारिक रिश्तों के माध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम से समसामयिक समस्याओं और स्त्री-विमर्श जैसे मुद्दों पर दृष्टिपात किया गया है। कवि का संकेत है कि देश, समाज और जीवन की कुछ ऐसी अनिवार्यताएँ हैं, जो स्त्री को स्त्री होने का गौरव प्रदान करती हैं । एक उदाहरण 'बिल्कुल तुम्हारी तरह' से देखिए :

मैं अच्छी तरह जानता हूँ/तुम पहचानती हो मेरे सुख का रंग, उसकी भाषा/पर संग-साथ के इतने वर्षों बाद भी/ठीक यही बात मैं नहीं कर पाऊँगा अपने लिए/मैं जानता हूँ यह अपराध है/पर क्या करूँ/कहाँ से लाऊँ/अपने भीतर एक स्त्री की आत्मा/वह भी एक ऐसे समय में/ जब बच्चियाँ मारी जा रही हैं कोख में ही।

(पृष्ठ-26)

स्वस्थ जीवन-बोध और पति-पत्नी का एक-दूसरे के प्रति विश्वास कठिनाइयों को हँसते हुए झेलने का साहस उत्पन्न करता है। 'जितनी हँसी तुम्हारे होठों पर' ऐसी ही ऊर्जावान कविता है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं :

सुनो, निराश मत हो/ हौसला रखो/मैं जीत जाऊँगा हर रोग-शोक से/बस हाथ पकड़े रहो/मुस्कराती रहो/एक दिन पलकों पर सहेजकर लाऊँगा बहारों को/तुम धीरे-से उतार लेना उन्हें जीवन में।

(पृष्ठ-51)

वर्णनात्मक वर्ग की कविताएँ संख्या में 36 हैं, इसलिए इनके कथ्य में विविधता है। इन कविताओं में कवि अर्थवत्ता के नये स्वरूप को तलाश-तराशकर जीवन के विविध रंग भर देता है। अपने शिल्प और अपनी उपमान-योजना को भी नया जामा पहनाता है। 'घर की पहचान' के एक अंश में ठीक यही बात है:

किसी घर को जानना/सपनों के एक समूह को जानना है/घर वही होता है, जो सपनों से बनता है/और सपने संजोये चलता रहता है अथक अनवरत।

(पृष्ठ-17)

प्रायः कवि अभिधा में अपनी बात कह देता है, किंतु अनेक कविताओं में लक्षणार्थ और व्यंजनार्थ गुँथे हुए हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि कवि शब्दों के आडंबर से दूर है। 'असुंदर-सुंदर' कविता सही मायने में न केवल सभी वर्णनात्मक कविताओं का बल्कि पूरे संग्रह की कविताओं का प्रतिनिधित्व करती है। हाँ, यह ज़रूर है कि इस कविता को एक पायदान और उतारकर अंतिम कविता के रूप में रखना चाहिए था। गहरी मानवीय संवेदना से संपृक्त यह कविता मानवीय धरातल पर निर्मित भावनाओं के माध्यम से ही प्रतिनिधि कविता ठहरती है। अभिव्यक्ति के नये धरातल पर गूँगे-बहरे हलवाहे बोधू के चरित्र द्वारा 'असुंदर' कथ्य का रूपांतरण 'सुंदर' तथ्य में किसी जादूगर की तरह कर दिया जाता है :

मैं नहीं जानता उसे परख थी या नहीं सुंदर-असुंदर की/उसका कोई सौंदर्यबोध था भी या नहीं/पर जब भी वह देता था पानी फुलवारी में/कुछ पानी-पानी सा दिखता था उसके चेहरे पर/लगता था, हँसते थे उसके रोम-रोम तक।

(पृष्ठ-119)

हाइकू कविताओं के वर्ग में मैंने चार कविताएँ रखी हैं–'घर की उदासी', 'इन दिनों हालचाल', ' घर की चाय' और 'पार करना एक रात को'। भावनात्मक आवेग की तीव्रता से परिपूर्ण ये कविताएँ जीवन-दर्शन और संबंधों को विस्तार देती हैं। मानवीय रिश्तों की मिठास का अनुभव करने के लिए स्वस्थ परिवेश का होना अनिवार्य होता है। जीवन में दर्द, पीड़ा, वियोग और दुख अनायास ही नहीं आते, उनके आगे-पीछे कारणों-घटनाओं का एक सिलसिला होता है, इसका अनुमान 'इन दिनों हालचाल' से सहज ही लगाया जा सकता है-

काँप रहा है दिन/और धूप भी पियराई है/न जाने/ कौन ऋतु आयी है।

(पृष्ठ-68)

जितेंद्र श्रीवास्तव की भाषा सधी हुई और लोक-शब्दावली से समृद्ध है। 'जुग-जमाना', 'पिता', 'रात-बिरात', ' बगास', 'धूस', 'अगोरती', 'लट ओरियान', ' बेना' आदि ऐसे ही शब्द हैं। कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी यथास्थान किया गया है। उपमान-योजना में नितांत मौलिकता झलकती है और इसके माध्यम से सुंदर बिंबों का निर्माण भी हुआ है। 'रक्त-सा लाल एक फूल' का एक बिंब देखिए :

पर समय रुक न सका/जैसे नहीं रुक पाता/देर तक पलकों पर ठहरा पानी। (पृष्ठ-15)

प्रतीक कविता की शक्ति होते हैं। सफल कवि वह है, जो अपने स्वयं के प्रतीकों का निर्माण करे। यह सामर्थ्य आलोच्य कवि में है। 'राजधानी', 'पानी', ' काग़ज़', 'रूमाल' आदि अनेक शब्द कवि द्वारा प्रतीकों में परिवर्तित कर दिये गये हैं।

कुल मिलाकर 'असुंदर सुंदर' सुंदर है। कथ्य, भाषा और शैली में विविधता है, जिनमें अनुभव, स्मृतियाँ और आत्मकथ्य संजोये गये हैं। बुनावट की दृष्टि से कविताओं में एकरूपता है, अर्थ की दृष्टि से अभिधा और लक्षणा अधिक है, व्यंजना कम। बिंबों, प्रतीकों और उपमान-योजनाओं का व्यवस्थित प्रयोग है, जबकि फ़ंतासी और मिथकों से कवि ने एक निश्चित दूरी बनाये रखी है।

कविता संग्रह	: सुंदर असुंदर
लेखक	: जितेन्द्र श्रीवास्तव
प्रकाशक	: भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
संस्करण	: 2008
मूल्य	: 110 रुपये मात्र

ए-80, आवास विकास कॉलोनी, बाँदा-210001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुँवरपाल सिंह की प्रथम पुण्यतिथि पर गोष्ठी

प्रखर, सामाजिक, चिंतक, लेखक और जनवादी लेखक संघ के संस्थापक सदस्य प्रो0 कुँवरपाल सिंह की प्रथम पुण्य तिथि के अवसर पर जनवादी लेखक संघ द्वारा विचार गोष्ठी आयोजित की गयी जिसका विषय था **''उपभोक्तावादी समाज में साहित्य की भूमिका''**। विषय प्रवर्तन करते हुए प्रो0 प्रदीप सक्सेना ने कहा कि प्रो0 सिंह के विस्तृत सामाजिक सरोकार थे और वे लगातार अपने लेखन में इन चिंताओं पर विचार करते रहते थे। सोवियत संघ के विघटन के बाद एक ध्रुवी दुनिया में जैसे विचार के अंत की मुहिम छेड़ी गयी हो। अब आर्थिक रूप से विकासशील देशों को फिर से गुलाम बनाने की साजिश है। प्रो0 सक्सेना ने कहा कि साहित्यकारों को इस परिदृश्य को समझना चाहिए और अपने लेखन में इन सरोकारों को शामिल करना चाहिए। श्री अजय बिसारिया ने कहा कि आज सभी पूरे बाज़ार को घर में भर लेना चाहते है और भविष्य को भी गिरवीं रख देते हैं। उन्होंने मुक्तिबोध की कहानी 'परिंदे और दीमक' का भी ज़िक्र किया। डा0 प्रेमकुमार ने साहित्यकारों की कथनी और करनी में अंतर को रेखांकित करते हुए आत्मनिरीक्षण पर बल दिया। प्रो0 तारिक छतारी ने सामंती समाज के पूँजीवादी समाज में बदलने की प्रक्रिया का ज़िक्र किया और कहा कि आज समाज बाज़ार में परिवर्तित हो रहा है। प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष डा0 तसद्दुक हुसैन ने कहा कि बाज़ारवाद के प्रतिरोध में साहित्यकारों को आम आदमी से जुड़ना और उनकी समस्याओं को अपने लेखन में चित्रित करना चाहिए। डा0 वेद प्रकाश का विचार था कि आज साहित्यकार आम पाठक के लिए नहीं बल्कि आलोचकों और पुरस्कारों के लिए लिखता है। प्रो0 सगीर अफराहीम ने कहा कि प्रो0 कुँवरपाल सिंह की चिंताओं में आम आदमी प्रमुख था। और इसीलिए प्रेमचंद उनके प्रिय कथाकार थे। एडवोकेट हरनारायण सिंह ने कहा कि वैश्विक साम्राज्यवाद का ही रूप उपभोक्तावाद है। आम आदमी के साथ जुड़कर ही हम इसका मुकाबला कर सकते हैं। समाजवादी पार्टी के नेता डा0 रक्षपाल सिंह ने कहा कि साहित्य ने हमेशा आंदोलनों के लिए आम लोगों को प्रेरित किया है और यही साहित्यकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। डा0 रमेश कुमार ने कहा कि उपभोक्तावाद एक प्रक्रिया है जो वैश्विक स्तर पर वर्चस्वकारी शक्तियों की साम्राज्यवादी राजनीति के रूप में दिखायी देती है। साहित्यकार को इस प्रक्रिया को समझना आवश्यक है। बंबई से पधारे संगीतकार श्री भवेश बनर्जी ने कुँवरपाल सिंह को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा ''रहने को सदा आता नहीं कोई /तुम ऐसे गये जैसे जाता नहीं कोई''। डा0 राजीव लोचन शुक्ल ने कहा कि सामाजिक विकास के साथ उपभोक्तावादी प्रवृत्ति क्षीण होने लगेगी।

श्री शहबाज अली खाँ और श्री जावेद (शोधछात्र, हिन्दी विभाग, अमुवि) ने उपभोक्तावाद और सामाजिक विघटन की प्रवृत्तियों पर चर्चा की।

अध्यक्ष मंडल के सदस्य के रूप में 'वर्तमान साहित्य' की संपादिका नमिता सिंह ने कहा कि प्रो0 कुँवरपाल सिंह ने समाज और साहित्य को सदैव एक दिशा दी और आम आदमी के सरोकारों को साहित्य से जोड़ा। उन्होंने कुँवरपाल सिंह की स्मृति में एक ट्रस्ट बनाने की घोषणा की जिसके मंच से साहित्यिक और सामाजिक गतिविधियाँ निरंतर चलेंगी। उन्होंने कुँवरपाल सिंह के नाम पर एक आलोचना पुरस्कार की स्थापना की घोषणा भी की। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा के उपनिदेशक प्रो0 रामवीर सिंह ने कहा कि प्रो0 कुँवरपाल सिंह एक ऐसी रोशनी थे जिसने न जाने कितने अँधेरे दूर किये। मदद क्या होती है और वह कैसे वंचितों तक पहुँचती है कुँवरपाल सिंह इसके प्रतीक थे। अध्यक्ष पद से बोलते हुए सुप्रसिद्ध उर्दू कथाकार प्रो0 काज़ी अब्दुल सत्तार ने कुँवरपाल सिंह को एक हमदर्द और कठिन समय में सबके साथ खड़ा होने वाला व्यक्ति बताया। और कहा ऐसे लोग सदैव स्मृतियों में जीवित रहते हैं।

कार्यक्रम का संचालन जनवादी लेखक संघ अलीगढ़ के कार्यकारी सचिव प्रो0 आशिक बालौत ने किया। सभा में बड़ी संख्या में लेखक, प्राध्यापक और सामाजिक कार्यकर्ता उपस्थित थे।

प्रस्तुति : डा0 देवेन्द्र गुप्ता, हिन्दी विभाग
अमुवि, अलीगढ़

'नन्हों' कहानी का सुंदर मंचन

'नन्हों' मात्र एक युवती या एक विधवा की कहानी नहीं है, वरन् हमारे समाज का ऐसा दर्पण है जिसे हमेशा अनदेखा किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। कथा द्रौपदी के चीरहरण से सीता की अग्नि परीक्षा तक या फिर 18वीं सदी से 21 वीं सदी तक पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ती हुई किसी भी महिला के आत्मसंघर्ष को हम देखें तो वह छली जाती है हमेशा। 'रेडियो समाचार' के माध्यम से प्रारंभ होने वाले नाटक (शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'नन्हों') का मंचन हैदराबाद विश्वविद्यालय के सभागार में विद्यार्थियों की संस्था 'आवर्तन' द्वारा किया गया।

अपने जेठ को गरियाती हुई ताई (पूनम कावड़े) का संवाद संप्रेषण शब्दों की ध्वनि के अनुरूप है, मेरा जेठ राक्षस है, राक्षस। मैं भी तुम्हारी उम्र में ही विधवा हुई थी। पति के मरने के कुछ महीने बाद ही मेरे जेठ ने धोखे से मेरी बच्चादानी को कटवा दिया। (रोती है) मेरे शरीर को मेरा नहीं रहने दिया। जानवरों की तरह नोचता रहा। (निश्वास भरकर) इन मर्दों का कभी भरोसा मत करना। सूत्रध ार के रूप में चेतन और फातिमा के संवाद धारदार हैं। एक दृश्य में फातिमा कहती है-"शायद डरता था नन्हों की आँखों से, आँखों से लगातार झर रहे आँसुओं से और उन आँसुओं से धुल चुके जीवन के सारे रंगों से।" कृष्णा सोनी (चेतन) और सुशीला (फातिमा) ने सूत्रधार की भूमिका में मूल भाव को इस तरह रेखांकित किया कि दर्शक कथ्य की तह तक सीधे पहुँचने लगे।

देवर रामसुभग के रूप में गंभीर व जीवंत अभिनय करते हुए वासुदेव ने अपनी बारीक अभिनय प्रतिभा द्वारा पात्र को साकार किया। अवधेश झा (मिश्रीलाल), अमरदीप बाघमारे (मामा), राज (पिता), जितेन्द्र दिवाकर (पंडित), पिंटु कुमार और चंद्रप्रकाश (ग्रामीण), गीता और माया (महिला), पूनम, राममोहन, इफरा काक, अभिजीत, अमरदीप, रामनजले युलू, आदित्य चौधरी और प्रसाद सहित सभी कलाकारों ने सीमाओं के बाद भी अपनी-अपनी भूमिका के साथ न्याय किया। गंभीर नाटक में पोस्टमेन के अपने छोटे से किरदार में मनोज ने हँसी की फुहार से वातावरण को मनोरम बना दिया।

'नन्हों' बनी संगीता नाटक के प्रारंभ से अंत तक हर क़दम पर 'नन्हों' के आम चरित्र को खास बनाने के लिए बधाई की पात्र है। नाटक पर दो शब्द कहते हुए प्रो0 रविरंजन द्वारा विद्यार्थियों के लिए कही गई ये पंक्तियाँ अभी भी मेरे कानों में रस घोल रही हैं, 'रचनात्मक काम कैसा भी करें, हिन्दी विभाग से हमेशा और भरपूर सहयोग मिलता रहेगा।' कहानी का नाट्य रूपांतरण और सधा हुआ निर्देशन कृष्णा सोनी द्वारा किया गया। निर्देशकीय पकड़ और सूझबूझ ने नाटक को सही मुकाम तक पहुँचाया।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति का यह चित्रण लगभग 100 वर्ष पुराना होने के बावजूद, आज भी हमारे समाज में स्त्री के प्रति बढ़ रही असंवेदनशीलता और उपभोक्ता संस्कृति की, भोगवादी दृष्टि की, अमानवीय क्रूरता की कहानी कहता है। "हाशिए के समाज अर्थात दलित, स्त्री, आदिवासी एवं अल्पसंख्यकों की समस्याओं को लेकर देश और दुनिया में अनेक आयोजन किए जा रहे हैं।" सच तो यह है कि बराबरी के दर्जे की बात हो या बात 50 प्रतिशत आरक्षण की हो, इन सबके बीच स्त्री विमर्श की अनुगूंज जितनी भी हो, अभी और खुला आसमान नारी जाति को चाहिए। क्योंकि हर दृष्टि से वे आधे आकाश की पूरी अधिकारिणी हैं।

प्रस्तुति : महावीर अग्रवाल

संपादक-सापेक्ष, ए-14, आदर्श नगर, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

डा0 माणिक मृगेश का सम्मान

रामप्रसाद मिश्र स्मृति संस्थान, आणंद द्वारा बडोदरा में आयोजित भव्य समारोह में राजभाषा के प्रचार-प्रसार में दिए गए अप्रतिम योगदान के लिए प्रख्यात साहित्यकार डा0 शिव कुमार मिश्र ने इंडियन ऑयल, गुजरात रिफ़ाइनरी के हिन्दी प्रभारी व नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सचिव डा0 माणिक मृगेश को अभिनंदन पत्र, शॉल, श्रीफल अर्पण कर अभिनंदित किया। प्रारंभ में स्मृति संस्थान के अध्यक्ष डा0 पवन कुमार ने स्वर्गीय श्री राम प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व व कृतित्व पर प्रकाश डाला। एस0डी0 आर्ट्स कॉलिज की हिन्दी प्रवक्ता डा0 मीरा सक्सेना ने डा0 माणिक मृगेश की रचना धर्मिता व राजभाषा के प्रचार प्रसार के क्षेत्र में उनके द्वारा दिये गये योगदान की विस्तार से चर्चा की। इस अवसर पर डा0 माणिक मृगेश के द्वारा वडोदरा में, गुजरात में व पूरे पश्चिमाँचल में किए गए कार्यों की चर्चा की गई।

इस अवसर पर बैक ऑफ़ इंडिया के हिन्दी प्रभारी श्री नरेश कुमार ने डा0 माणिक मृगेश की रचना "जी हाँ हुजूर मैं हिन्दी अधि ाकारी हूँ" का काव्य पाठ किया। डा0 माणिक मृगेश ने अपने अभिप्राय में कहा कि हिन्दी अधिकारी विषम परिस्थितियों में काम करता है और उसके कुछ किया हो या न किया, इतना जरूर किया है कि पूरा देश जान गया है कि 14 सितंबर का मतलब हिन्दी दिवस होता है।

प्रस्तुति : माणिक मृगेश, गुजरात रिफाइनरी

मानवीय चरित्र का खुलासा करता दस्तावेज़ : 'काले पृष्ठों पर उकरे शब्द'

साहित्यिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक मंच 'जनश्री-एक प्रयास', जालंधर के तत्त्वावधान में वरिष्ठ बहुआयामी आवेगधर्मी, जनवादी कवि प्रो0 मोहन सपरा के सद्यः प्रकाशित पाँचवे कविता संग्रह 'काले पृष्ठों पर उकरे शब्द' के जलंधर में लोकार्पण एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया।

मूर्धन्य चिंतक, आलोचक एवं कवि डा. विनोद शाही ने बीज वक्तव्य के रूप में प्रश्न उठाया कि कविता सड़ रहे विचार, संस्कार एवं समाज के विरुद्ध जमीन तैयार करने को उत्सुक तो दिखाई देती है लेकिन इस जमीन को तैयार करने में कितने लोग सहयोगी सिद्ध हो रहे हैं। उन्होंने सपरा की कविता को आत्म-संवाद की कविता माना।

उर्दू-हिन्दी के ग़ज़लकार एवं उर्दू अलाइव के संपादक प्रो. अज़ीज़ परिहार ने बताया कि सपरा ने आज के जीवन का खुदरापन अपने शब्दों की मुलायमित में छिपा रखा है जो उसकी कविता को जीवंतता प्रदान करती है। सुप्रसिद्ध कहानीकार सुरेश सेठ ने कहा कि सपरा ने अपनी लंबी कविता 'अंत तक संवाद' के माध्यम से जैसे आईने के सामने चेहरे बना-बना कर समाज के प्रत्येक वर्ग की विसंगतियों को देखने का प्रयत्न किया है।

डा0 तरसेम गुजराल ने अपने प्रपत्र में मोहन सपरा की कविता को कठिन समय का दस्तावेज बताया। उनका मानना था कि मोहन सपरा की 19 प्रेम कविताएँ विविध रंगों की कविताएँ हैं।

डा. अनिल धीमान को 'काले पृष्ठों पर उकरे शब्द' की कविताएँ जीवन के विभिन्न अर्थ तलाशती भाषा की लहरें दिखाई दीं।

डा0 केसी महेन्द्रू ने मोहन सपरा की कविता की प्रत्येक भारतीय की वेदना की कविता कहा। प्रिंसीपल किरण अरोड़ा ने सपरा की कविताओं में 'अहोभाव' रूपी तत्व को देखते हुए उन्हें सांसारिक ही नहीं 'तपस्वी' लेखक की संज्ञा दी। डा. सेवा सिंह ने सीमित बिंबों को ही मोहन सपरा की कविता की विशेषता बताते हुए कहा कि जिस सहजता से मोहन सपरा ने अपनी कविता को राजनीतिक न होते हुए राजनीतिक बनाया है।

दूसरा सत्र कविता-गोष्ठी का था जिसमें सर्वश्री भूपेन्द्र अजीज परिहार, गीत जालंधरी, कीर्ति केसर, कमलेश आहूजा, बखशिंदर, विश्वमित्र, आर.पी. कालिया आदि ने भाग लिया।

धन्यवाद ज्ञापित करते हुए मोहन सपरा ने सारे विद्वानों के संग्रह संबंधी विचारों को मार्ग-दर्शी बताया। इस अवसर पर मोहन सपरा ने पूर्व पंजाब के सुप्रसिद्ध पत्रकार पिता श्री के नाम पर 'अमर-ब्रह्म पुरस्कार' की घोषणा को दोहराया। यह पुरस्कार प्रत्येक वर्ष उत्तर भारत के किसी एक कवि, लेखक व पत्रकार को विशिष्ट साहित्यिक आयोजन में प्रदान किया जाएगा।

प्रस्तुति : यकम, जालंधर

सार्थक फिल्म कार्यशाला का आयोजन

'पहल' और 'जन-संस्कृति मंच' की ओर से जबलपुर में अधारताल स्थित महात्मागांधी राज्य ग्रामीण विकास संस्थान में दो-दिवसीय 'सार्थक फिल्म कार्यशाला' का आयोजन संपन्न हुआ। कार्यशाला का शुभारंभ करते हुए फिल्म उद्योग से संबद्ध श्री डी.पी. बाजपेयी ने मुख्य अतिथि के रूप में कहा कि—'यह कार्यशाला प्रोफेशनल्स के साथ-साथ प्रबुद्ध दर्शकों को सिनेमा के विभिन्न आयाम समझने में सहायक होगी।

चार सत्रों में आयोजित इस कार्यशाला में लगभग 70 प्रतिभागियों ने भाग लिया। श्री संजय जोशी तथा श्री संजय काक ने प्रतिभागियों को देशी-विदेशी लघु फिल्मों और फिल्म-खण्डों के माध्यम से डाक्यूमेंट्री में संबंधित बारीकियाँ समझायीं।

दोनों फिल्म-प्रशिक्षकों ने अपने ज़मीनी अनुभव प्रशिक्षार्थियों के साथ बाँटे। इस अवसर पर प्रतिभागियों द्वारा उठाये गये सवालों के जवाब में प्रशिक्षक-द्वय द्वारा चुनिंदा देसी-विदेशी फिल्मों का प्रदर्शन भी आवश्यकतानुसार किया गया।

इस दो दिवसीय कार्यशाला में फिल्म एवं डाक्यूमेंट्री से संबद्ध प्रोफेशल्स, मॉस-कम्यूनिकेशन स्किल्स से जुड़े लोग, प्राध्यापक, पत्रकारिता के विद्यार्थी तथा एनीमेशन कोर्स में रुचि रखने वाले विद्यार्थी पूरे उत्साह के साथ उपस्थित रहे।

श्री ज्ञानरंजन के मार्गदर्शन में आयोजित इस कार्यशाला में संयोजक श्री राजेन्द्र चंद्रकांत राय, श्री पंकज स्वामी, श्री राजेन्द्र दानी, श्री अरुण पांडेय, श्री वसंत काशीकर, श्री अरुण यादव तथा श्री रमेश सैनी की सक्रिय उपस्थिति निरंतर बनी रही।

प्रस्तुति : मनोहर बिल्लौरे, जबलपुर

अब्दुल बिस्मिल्लाह को कथाक्रम सम्मान

वर्ष 2010 का 'आनंद सागर स्मृति कथाक्रम सम्मान' वरिष्ठ और चर्चित कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह को दिए जाने का निर्णय लिया गया।

कथाक्रम समिति के संरक्षक प्रख्यात कथाकार श्रीलाल शुक्ल की अध्यक्षता में समिति ने यह निर्णय लिया। समिति के अन्य सदस्यों में कथाक्रम संयोजक शैलेन्द्र सागर, वरिष्ठ कहानीकार शिवमूर्ति, प्रखर समीक्षक सुशील सिद्धार्थ एवं चर्चित लेखिका रजनी गुप्त हैं।

यह सम्मान दिनांक 13 नवंबर, 2010 को लखनऊ में आयोजित कथाक्रम 2010 के अवसर पर दिया गगा।

'वर्तमान साहित्य' परिवार की ओर से प्रो0 अब्दुल बिस्मिल्लाह को हार्दिक बधाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाज़ार और स्वतंत्रता एवं शांति

डा0 गिरीश मिश्र

पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी साहित्यकार और पत्रकार बड़ी संख्या में बाज़ार और एक अस्तित्वहीन अवधारणा 'बाज़ारवाद' के खिलाफ लठ लेकर खड़े हैं। कहना न होगा कि इन जिहादियों को न तो अर्थशास्त्र का ज्ञान है और न ही इतिहास का।

अर्थशास्त्र में 'बाज़ारवाद' नाम की कोई भी अवधारणा नहीं है। अगर विश्वास न हो तो किसी भी प्रामाणिक कोश को देखें। पालग्रेव के विश्वकोश में भी ढूँढे तो 'मार्केटिज़्म' शब्द नहीं मिलगा। वस्तुतः हमारे यहाँ 'बाज़ारवाद' का हौवा खड़ा करने वाले, यदि गालब्रेथ के शब्दों में कहें तो, मासूम धोखाधड़ी के शिकार हैं। इसकी जड़ में वह कोशिश है जो रेखांकित करती है कि पूँजीवाद का स्वरूप बदल गया है और वह एक शोषक सामाजिक व्यवस्था नहीं रह गई है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर पूँजीवाद के बदले 'बाज़ार प्रणाली' (हमारे यहाँ 'बाज़ारवाद') कहने पर जोर दिया जा रहा है जिससे आम लोगों के बीच यह भ्रम पैदा हो कि यह नई व्यवस्था है जिसका पूँजीवाद से कोई लेना-देना नहीं है। गालब्रेथ के शब्दों में, 'पूँजीवाद के एक हितकर विकल्प के रूप में बाज़ार प्रणाली की चर्चा एक मनोहर मगर अर्थहीन छद्म के रूप में होती है जिससे निगम से जुड़े गहनतर यथार्थ को छिपाया जा सके।' यह यथार्थ है कि उत्पादक की शक्ति उपभोक्ता की माँग को प्रभावित और नियंत्रित करती है। वे रेखांकित करते हैं कि बाज़ार प्रणाली हमारे (हिन्दी जगत में 'बाज़ारवाद') पूँजीवाद के बदले प्रयोग का अर्थहीन, त्रुटिपूर्ण, परंतु मनोहर और रुचिकर रूप है। इसके ज़रिए शोषण और हेराफेरी पर पर्दा डालने की कोशिश होती है।

आजकल अधिकतर लेखक और पत्रकार बाज़ार को गाली देते और हर संभव सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक विकृति के लिए जिम्मेदार ठहराते मिलते हैं। अगर ध्यान से देखें तो पाएँगे कि उनका इतिहास का ज्ञान नगण्य है। इस दावे को स्पष्ट करने के लिए कुछ शताब्दियाँ पीछे मुड़कर देखें। सत्रहवीं सदी के एक सबसे प्रभावशाली फ्रेंच चिंतक वाल्तेयर को लें। उनके अनुसार कोई भी लेखक जनमत को इसी बिना पर प्रभावित नहीं कर सकता कि वह बहुत बढ़िया लिखता और तर्कसंगत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। महत्त्वपूर्ण बात है कि वह जो लिखता है वह अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँच पाता है या नहीं। वर्ष 1694 में जन्मे वाल्तेयर का निधन 1778 में हुआ। उनके जीवन काल में पाश्चात्य जगत में भारी परिवर्तन हुआ और आधुनिक पूँजीवाद आया। आधुनिक पूँजीवाद का दबदबा बढ़ने के पूर्व अधिकतर लेखक किसी शासक या बड़े सामंत पर निर्भर रहते थे। हमारे अपने देश में लेखक, कवि, कलाकार, चिंतक आदि राजदरबारों से जुड़े होते थे। गुप्तकाल और मुगल काल के नौ रत्नों के विषय में हम भली भाँति जानते हैं। बिहारी, भूषण कवि किसी न किसी राजा के आश्रित थे। पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी को झालावाड़ में महाराज से अपनी पुस्तक 'संपत्ति शास्त्र' के लेखन के दौरान काफी आर्थिक सहायता मिली थी। ओरछा नरेश हों या बिहार के सबसे बड़े ज़मींदार दरभंगा महाराज, सबके यहाँ विद्वान पलते तथा लेखन कार्य करते थे। बंगाल के महिषादल के ज़मींदार के यहाँ निराला वर्षों तक रहे। कहना न होगा कि इस राजाश्रय के कारण लेखकों, कलाकारों और चिंतकों को एक स्पष्ट सीमा में रहना पड़ता था यानी उनकी स्वतंत्रता प्रतिबंधित थी।

अठारहवीं सदी के दौरान आधुनिक पूँजीवाद के उदय के साथ बाज़ार का विस्तार हुआ। फलस्वरूप लेखक, कलाकार और चिंतक की शासक या सामंत के ऊपर निर्भर रहकर काम करने की आवश्यकता काफी कम हो गई। ऐसा बाज़ार के ज़रिये रचनाओं का वितरण करने की भरपूर संभावनाओं के आने के कारण हुआ। लेखकों, चिंतकों और कलाकारों को जीविकोपार्जन के लिए बाज़ार ने स्वतंत्र अवसर दिए। उनकी कृतियों का प्रभाव क्षेत्र विस्तृत हुआ और वे अपने असंख्य पारखियों की पसंद-नापसंद को ध्यान में रखकर सृजन करने लगे। साथ ही शासक वर्ग और धर्म गुरुओं द्वारा लेखन और चिंतन को सीमित करने की संभावना कम हो गई। लेखक और चिंतक बाज़ार के ज़रिए नए विचारों तथा दृष्टिकोण से भरपूर पठन सामग्रियों को प्राप्त तथा उनका परायण कर अपने कार्य की दिशा तय करने लगे। इससे राजनीति के स्वरूप में भारी परिवर्तन हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति वाल्तेयर के मरने के ग्यारह साल बाद फ्रांसीसी क्रांति में देखी गई। अठारहवीं सदी के दौरान लेखकों एवं चिंतकों की अपने भरण पोषण के लिए

. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्कालीन शासन वर्ग पर निर्भरण खत्म होने का क्रम शुरू हो गया। जीवन के आरंभिक काल में वाल्तेयर भी भरण-पोषण के लिए विभिन्न शासकों पर निर्भर रहे। यही बात एडमंड बर्क और कुछ हद तक एडम स्मिथ के लिए भी कही जा सकती है। शासक वर्ग का संरक्षण अनेक रूपों में प्राप्त होता था। मसलन, प्रशासन में ओहदा, पेंशन और अनुदान या मुफ़्त खाना-पीना। ऐसे में लेखन और चिंतन की स्वतंत्रता एक दायरे के आगे नहीं जा सकती थी। ऐसा स्वयं वाल्तेयर के साथ अनेक बार हुआ कि तत्कालीन संरक्षक को उन्होंने अपने लेखन और चिंतन के लिए कुछ अधिक आज़ादी लेकर नाराज़ कर दिया जिससे उन्हें प्रताड़ना का शिकार होना पड़ा। उन्हें अपने फ्रेंच और जर्मन संरक्षक का कोपभाजन बनना पड़ा और भागकर इंग्लैंड जाना पड़ा। बाज़ार का वर्चस्व बढ़ने के साथ ही उन्होंने अपना एक बड़ा पाठक समूह बनाया तथा पुस्तकों की बिक्री से होने वाली कमाई से अपने जीवन-यापन का खर्च जुटाया। अब वे अपने सामंती संरक्षकों की नहीं बल्कि आम पाठकों की पसंद नापसंद का ख्याल रखने लगे। यह बाज़ार में माँग की मात्रा के ज़रिए व्यक्त होने लगी। सामंती संरक्षकों द्वारा पाबंदी लगाने और संरक्षण वापस लेने का भय न रहा। वाल्तेयर ने बाज़ार पर निर्भर हो कमाई करने और उससे जीवन-यापन करने को नैतिक दृष्टि से उचित माना। इससे आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान की भावना बढ़ी।

अपने इंग्लैंड प्रवास के दौरान वाल्तेयर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि धार्मिक सहनशीलता और बाज़ार के बीच घनिष्ठ संबंध होता है। बाज़ार के विकास और विस्तार के साथ ही उसके दायरे में विभिन्न धर्मों और समुदायों के लोग आते और उससे जुटते जाते हैं। उनके बीच रिश्ते बनते हैं और आपसी भरोसा कायम होता है, जो कारोबार के लिए अपरिहार्य होता है। यदि धर्म, राष्ट्रीयता, भाषा, रहन-सहन को लेकर भेदभाव हो तो बाज़ार बिखर जाएगा, यह उनकी नोटबुक में जोनाथन स्विफ़्ट की कृति 'टेल ऑफ़ ए टब' को लेकर की गई टिप्पणी से स्पष्ट है। उनके अनुसार बाज़ार के पनपने के लिए अंतश्चेतना की स्वतंत्रता आवश्यक पूर्व शर्त होती है। हर देश के बंदरगाह पर जाकर देखें, विभिन्न धर्मों, समुदायों, पूजा पद्धतियों और भाषाओं से जुड़े कारोबारी मिलेंगे। वहाँ एक ही चीज़ मायने रखती है—परस्पर विश्वास और शांति का वातावरण। वाल्तेयर की टिप्पणी का आखिरी वाक्य ग़ौ
है कि कारोबारियों का परस्पर सौहार्द इस अंतर्निहित धा
आधारित होता है कि उनकी वाणिज्यिक गतिविधियाँ
ार्मिक विश्वासों से कहीं अधिक टिकाऊ और वास्तविक है
न होगा कि तब तक वह ज़माना लद चुका था जब मा
था कि धार्मिक समरूपता को बलात लाकर ही राजनीतिक
लाई जा सकती है। इसके स्थान पर यह धारणा आ गई कि
का विस्तार धार्मिक सहनशीलता और राजनीतिक स्थि
काफी हद तक बढ़ावा देता है। इस प्रकार बाज़ार की
भूमिका उजागर हुई। इसका एक उदाहरण हमारे सा
1990 के दशक में तब मिला जब वाराणसी के हिन्दू व
ने रामरथ को ट्रक पर लादकर वापस कर दिया। उन्होंने संघ
को वोट और धन देने का वचन दिया मगर रामरथ को
घुमाने का विरोध किया, क्योंकि इससे बनारसी साड़ी
मुसलमान कारीगरों तथा हिन्दू विक्रेताओं के बीच युगों
सौहार्द टूटेगा और दोनों घाटे में रहेंगे। रामरथ चला गया,
शांति बनी रही और आने वाले चुनाव में हिन्दू सेठों ने धा
मत देकर भाजपा उम्मीदवार को जिता दिया। वाल्तेयर के
बंदरगाह ही नहीं बल्कि शेयर बाज़ार भी धार्मिक सहनशीलत
कारोबारियों के बीच सौहार्द को बढ़ावा देता है। लंदन
एक्सचेंज का ज़िक्र करते हुए लिखा कि वह अनेक राज
से अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वहाँ विभिन्न राष्ट्रों और ध
लोग कारोबार करते हुए मिलते हैं जिससे मानवता का भला
है। इस प्रकार पूँजी बाज़ार लोगों को प्रेरित करता है कि वे
संप्रदाय, राष्ट्र आदि के भेदों से ऊपर उठें और अपने
उद्देश्य, अधिकाधिक संपदा बटोरने के लिए जुटें। प्रो0 ज
मुल्लर ने 'द माइंड एंड द मार्केट' में लिखा है कि वाल्तेयर मु
की भावना के मसीहा हैं और लोगों को प्रेरित करते हैं
आत्मभक्ति पाने की अथक कोशिश को छोड़ संपदा हासिल
की प्रतिस्पर्धा में जुटें, जिससे शांति आएगी। अपनी ज़िंदगी
कर दूसरों की आत्मा की मुक्ति के लिए धार्मिक अभियान
से वैध संपदा बटोरने के पीछे दौड़ना कहीं अधिक श्रेयस्क
जिससे शांति रहेगी और सबका भला होगा।

एम-112, स
नई दिल्ली-110

131840
Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जहां नर्मदा की नहरें वहां गरीबी न ठहरे

खुशहाल मध्यप्रदेश बनाने के अभियान में
नर्मदा घाटी सिंचाई परियोजनाओं का ऐतिहासिक योगदान

श्री शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश शासन

श्री के.एल. अग्रवाल
अध्यक्ष, नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण
राज्यमंत्री, मध्य.वि.वि.

मान और जोबट परियोजनाओं से
धार जिले के आदिवासी अंचल में
71 हजार एकड़ खेती सिंचित
अब इंदिरा सागर, ओंकारेश्वर परियोजना की
नहरें खरगोन, बड़वानी, धार, खंडवा जिलों की
6 लाख 28 हजार 500 एकड़
खेती सींचने के लिये अग्रसर

ये हैं हरियाली से खुशहाली के ठोस संकल्प -

परियोजना	खरगोन जिले में सिंचाई	बड़वानी जिले में सिंचाई	धार जिले में सिंचाई	खण्डवा जिले में सिंचाई
इंदिरा सागर	1 लाख 30 हजार एकड़	89 हजार एकड़	-	47 हजार एकड़
ओंकारेश्वर	1 लाख 82 हजार एकड़	-	1 लाख 80 हजार एकड़	500 एकड़

नर्मदा घाटी विकास परियोजनाएं

खुशहाल किसान और समृद्ध मध्यप्रदेश की ग्यारण्टी

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RNI पंजीकरण संख्या 40342/83 डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी.

सृजन स्मरण

जिस चीज में मनुष्य के प्यारे हाथ लगते हैं,
उसमें उसके हृदय का प्रेम और मन की पवित्रता
सूक्ष्म रूप से खिल जाती है और उसमें मुर्दे को
जिन्दा करने की शक्ति आ जाती है।

पूर्ण सिंह

(1881–1931)

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

प्रकाशक, मुद्रक डॉ. नमिता सिंह की ओर से रुचिका प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित तथा 28, एम.आई.जी., अवन्तिका-रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। स्वामित्व : प्रदीप नारायण राय, संपादक : कुंवरपाल सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar